



નમો અરિહંતાણં  
નમો સિદ્ધાણં  
નમો આયરિયાણં  
નમો ઉવજઝાયાણં  
નમો લોએ સવ્વ સાહૂણં  
એસો પંચ નમુકકારો  
સવ્વ પાવપ્પાણાસણો  
મંગલાણં ચ સવ્વેસિં  
પઢમં હવઈ મંગલં

# જિનાગમ પ્રકાશન યોજના

પ. પૂ. આચાર્યશ્રી ઘાંસીલાલજી મહારાજ સાહેબ  
કૃત વ્યાખ્યા સહિત

**DVD No. 1**  
(Full Edition)

**:: યોજનાના આયોજક ::**

શ્રી ચંદ્ર પી. દોશી - પીએચ.ડી.

website : [www.jainagam.com](http://www.jainagam.com)



# UTTARADHYAYAN SUTRA



PART : 1

उत्तराध्ययन सूत्र : भाग- १

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराज-  
विरचितया प्रियदर्शिन्याख्यया-व्याख्यया समलङ्कृतं  
हिन्दी-गुर्जर-भाषाऽनुवादसहितम्-

# ॥ उत्तराध्ययन-सूत्रम् ॥

## UTTARĀDHYAYNA SUTRA

प्रथमो भागः (अध्य० १-३)

नियोजकः

संस्कृत-प्राकृतज्ञ-जैनागमनिष्णात-प्रियव्याख्यानि-  
पण्डितमुनि-श्रीकन्हैयालालजी-महाराजः

प्रकाशकः

अहमदाबादवासि-श्रेष्ठि-श्री मणिलाल-जेसींगभाई-

प्रदत्त-द्रव्यसाहाय्येन

अ० भा० श्वे० स्था० जैनशास्त्रोद्धारसमितिप्रमुखः

श्रेष्ठि-श्रीशान्तिलाल-मङ्गलदासभाई-महोदयः

मु० राजकोट

प्रथम आवृत्ति  
प्रति १०००

वीर संवत्  
२४८५

विक्रम संवत्  
२०१५

ईस्वीसन्  
१९५९

मूल्यम्-रु० १५-०-०

भणवानुं ठेकाणुं :  
श्री. अ. ला. प्रवे. स्थानकुवासी  
नेन शास्त्रोद्धार समिति  
ठे. गरेडिया कुवारोड, श्रीन लोण  
पासे, राजकोट. (सौराष्ट्र)

×  
प्रथम आवृत्ति : प्रत १०००  
वीर संवत : २४८५  
विक्रम संवत : २०१५  
ईस्वीसन : १९५९  
×

: मुद्रक :  
भणुलाल छगनलाल शाह  
धी नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेस  
धीकांटा रोड : अमदावाह

पूज्य श्री वासीदासजी महाराज-रचित

सूत्रोनी टीका माटे

श्री-वर्धमान-श्रमणु-संघना आचार्यश्री

पूज्य आत्मारामजी महाराजश्रीये

आपेक्ष

## सम्भतिपत्र



तेमज

अन्य महात्मायो, महासतील्यो, अद्यतन-पद्धतिवाणा केलेजना प्रोक्षेसरो

तेमज

शास्त्रज्ञ आवडोना अक्षिप्रायो

ठे. श्रीन बोअ पासे,  
गरेडीआकुवा रोड  
राजकोट. }

मंत्री  
श्री अण्डिल वारत प्रवे. स्था. जैन  
शास्त्रोद्धारसमिति

( श्री दशवैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र )

॥ श्रीवीरगौतमाय नमः ॥

### सम्मत्ति-पत्रम्

मए पंडियमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मूलचन्दवासवारापत्ता पंडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सकय-हिंदी-भाषाहिं जुत्ता सिरि - दसवेयालिय - नाम सुत्तस्स आघारमणिमंजूसा वित्ती अवलोइया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सदाणं अइसयजुत्तो अत्थो वणिणओ विडजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ ! आघारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुवं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरुवं जे जहा-तहा न जाणंति तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वणणणं कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय-जुत्ता सिज्झइ ! सकयछावा सुत्तययाणं पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठवा । अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सब्भावो समाजस्स अहोभगं अत्थि, किं ? उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ, अम्हकेरं साहिच्चं च लुत्तप्पायं तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाणं पाविहिइ अओहं आघारमणि-मंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि- ॥

वि. सं. १९९० काल्पुन-

शुक्लत्रयोदशी मङ्गले

( अलवर स्टेट )

इइ-

उवज्झाय-जइण-मुणी, आघारामो

( पचनईओ )



जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ आत्मारामजी  
महाराज तथा न्याय व्याकरण के ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७  
श्री हेमचंद्रश्री महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ  
श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

### सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण संवच्छर २४५८ आसोई

( पुण्णमासी ) १५ सुक्कवारो लुहियाणाओ ।

मए मुणिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवा-  
सगसुत्तस्स अगारधम्मसंजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंतं  
सुया, समीईणं, इयं वित्ती जहाणामं तथा गुणेवि धारेइ, सच्चं, अगाराणं तु इमा  
जीवण ( संजमजीवण ) दाई एव अत्थि । वित्तीकत्तुणा मूलसुत्तस्स भावो उज्जु-  
सेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामणविसेसधम्मो, णयसियवायवाओ,  
कम्मपुरिसठ्ठवाओ, समणोवासयस्स धम्मददत्ता य, इच्चाइविसया अस्सिं फुडरीइओ  
वणिया, जेव कत्तुणो पडिहाए सुट्टुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि  
सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाण-भरहवासस्स य कत्तुणा विसय-  
प्पयारेण चित्तं चित्तित्तं, पुणो सकयपाढीणं, वट्टमाणकाले हिन्दोणामियाए भासाए  
भासीणं य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणी अरहित्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कड्जं  
परमप्पसंसणिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव  
लाहप्पयं, अविउ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो  
अणेगकोडीसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं, अच्चंतपरिस्समेण जइणजणतोवरि असीमो-  
वयारो कडो, अहय सावयस्स बारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि,  
जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तथा भवियव्वयावाओ  
पुरिसकारपरक्कवाओ य अवस्समेव दंसणिज्जो, किंबहुणा इमी से वीत्तीए पत्तेय-  
विसयस्स फुडसद्देहिं वणणं कयं, जइ अनोधि एवं अम्हाणं पसुत्तप्पाए समाजे विज्जं  
भवेज्जा तथा नाणस्स चरित्तस्स तथा संघस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं हं मन्ने ॥

भवईओ—

उवज्झाय-जइणमुणि-आयाराम,-पंचनईओ

## सम्मतिपत्र

( भाषान्तर )

श्री वीर निर्वाण सं० २४५८ असोज

शुक्ला ( पूर्णिमा ) १५ शुक्रवार लुधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमचन्द्रजीने पंडितरत्नमुनिश्री घासीलाल-जीकी रची हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसंजीवनी नामक टीका पंडित मूलचंदजी व्याससे आद्योपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणावली-अच्छी बनी-है। सच यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री-संयमरूप जीवनको देनेवाली-ही है। टीकाकारने मूलसूत्र के भावको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा श्रावकका सामान्य धर्म क्या है? और विशेष धर्म क्या हैं? इसका खुलासा इस टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्याद्वादका स्वरूप कर्म-पुरुषार्थ-वाद और श्रावकको धर्मके अन्दर दृढ़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें भलीभाँति किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा खूब झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टि से श्रमण भगवान् महावीर के समय जैनधर्म किस जाहोजलाली पर था? और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुंचा है? इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है! फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंको भी पुरा लाभ होगा, क्योंकि टीका संस्कृत है, उसकी सरल हिन्दी करदी गई है। इसके पढ़नेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भावसे पढ़ने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें श्रावकों ( गृहस्थों ) का तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें श्रावकके बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढ़ने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है! तथा भवितव्यतावाद और पुरुषकार-

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहांतक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुसप्राय (सोई हुईसी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान चारित्र तथा श्रीसंघका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ—

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्मराम पंजाबी

\*

इसी प्रकार लाहोरमें बिराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८  
श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं. मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी  
महाराजके दिये हुए श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके  
प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने बड़े परिश्रम व पुरुषार्थसे तैयार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्ति-योकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढकर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढनेसे हमको अत्यानन्द हुवा, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे लिये बड़े गौरवकी बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन  
कृष्ण १३ वार भौम लाहोर.

श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्र की 'अनगार धर्माऽमृतवर्षिणा' टीका पर  
जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य श्रद्धेय  
जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका  
सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता. ४-८-५१.

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म. द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽ-  
मृत-वर्षिणी' टीका वाले श्री ज्ञाताधर्मकथाङ्ग सूत्रका मुनि श्री रत्न-  
चन्द्रजीसे आद्योपान्त श्रवण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्य श्री  
घासीलालजी म. ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका  
प्रामाणिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई  
एक विशेषतायें हैं। मूलस्थलोंको सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया  
गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृतज्ञ पाठकों  
का लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूँगा कि वे वृत्तिकारके  
परिश्रम को सफल बनाकर शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षायों से  
अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।  
श्रीमान्जी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इसपर  
आचार्यश्रीजी की जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं  
पहुचन पर समाचार दें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म. ठाने ५ सुख शान्तिसे विराजते  
हैं। पूज्य घासीलावजी म. सा. ठाने ४ को हमारी ओरसे वन्दना  
अर्जकर सुखशाता पूछे।

पूज्य श्री घासीलालजी म. जी का लिखा हुआ (विपाकसूत्र)  
महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं इसलिये १ काँपी आप भेजने की कृपा  
करें, फिर आपको चापिस भेज देंगे। आपके पास नहीं हो तो  
जहां से मिले वहांसे १ काँपी जरूर भिजवाने का कष्ट करें, उत्तर  
जल्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता. ४-८-५१

निवेदक  
प्यारेलाल जैन

जैनागमधारिधि - जैनधर्मादिवाकर - उपाध्याय - पण्डित - मुनि  
श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की  
आचारचिन्तामणि टीका पर  
सम्मति-पत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्रीघासीलालजी (महाराज) की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्र के प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका-न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रम से अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयों का विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवाद के पात्र हैं।

मैं आशा करता हूँ कि-जिज्ञासु महोदय इसका भलीभाँति पठन द्वारा जैनागम-सिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुर्योगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमों के विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे।

वि. सं. २००२  
मृगसर सुदि १

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम  
लुधियाना (पंजाब)

-: ❁ :-

शुभमस्तु॥

बीकानेरवाला समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरुदानजी शेठिआजीका अभिप्राय

\*

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है। इससे जैनजनता को काफी लाभ पहुँचेगा।

(ता. २८-३-५६ ना पत्रमांथी)



॥ श्रीः ॥

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-  
महाराजनां पञ्चनद-( पंजाब ) स्थानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-  
मर्थबोधिनीनामकटीकायामिदम्-  
सम्मतिपत्रम्.

आचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-  
मर्थबोधिनीनाम्नी संस्कृतवृत्तिरूपयोगपूर्वकं सकलाऽपि स्वशिष्यमुखेनाऽश्रावि मया,  
इयं हि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं  
यः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकसौ धन्यवादानर्हन्ति ते । यथा चेयं वृत्तिः सरला  
सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सुभिर्निर्वाण-  
पदमनुसरद्भिर्ज्ञान-दर्शन-चारित्र्येषु प्रयतमानैर्मुनिभिः श्रावकैश्च ज्ञान-दर्शन-चारि-  
त्राणि सम्यक् सम्प्राप्यान्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आशासे श्रीमदाशुकविर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीजुषां विदुषां मनस्तोषाय जैना-  
गमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्थं सरलाः सुस्पष्टाश्च  
वृत्तोर्विधाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च “ मुनिवरस्य परिश्रमं सफलयितुं सरलां सुबोधिनीं चेमां सूत्रवृत्तिं  
स्वाध्यायेन सनाथयिष्यन्त्यवश्यं सुयोग्या हंसनिभाः पाठकाः । ” इत्याशास्ये—

विक्रमाब्द २००२

श्रावणकृष्णा प्रतिपदा

लुधियाना

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः ।

×

एसेहीः—

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रम-  
णोपासक जैन लिखते हैं किः—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टिगत  
हुवा, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वांग-सुन्दर  
एवम् उच्चकोटि का उपकारक है ।

निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र  
 आगमवारिधि-सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य-पूज्यश्री  
 आत्मारामजी महाराजकी तरफ का आया हुआ  
 सम्मतिपत्र

लुधियाना ता. ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत गुलाबचन्द्रजी पानाचन्द्रजी । सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला ! निरयावलिका विषय पूज्यश्रीजीका स्वास्थ्य ठीक न होने से उनके शिष्य पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है वह आपको भेज रहे हैं ! कृपया एक कोपी निरयावलिका की और भेज दिजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ।

भवदीय

गुजरमल-बलवंतराय जैन

॥ सम्मतिः ॥

( लेखक जैनमुनि पं. श्री हेमचन्द्रजी महाराज )

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादसहितं च श्रीनिरयावलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां चोपकारकं भविष्यतीति सुदृढ मेऽभिमतम्, संस्कृतटीकेयं सरला सुबोधा सुललिता चात एव अन्वर्थनाम्नी चाप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बाधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकैषा संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनो भाविनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादावपि एतद्भाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री घासीलालजी महाराजनां परिश्रमोऽयं प्रशंसनीयो धन्यवादार्हाश्च ते मुनिसत्तमाः । एवमेव श्री समीरमल्लजी श्री कन्हैयालालजी मुनिवरेण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाध्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादाहौ स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावनाविषयानुक्रमादिना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि शब्दकोषोऽपि दत्तः स्यात्तर्हि वरतरं स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां सवऽप्यवेषकविद्वांसोऽभवन्ति ।

पाठका : सूत्रस्यास्याध्ययनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परिश्रमं सफलविष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण  
महान् विद्वान् संतोए तेमज विद्वान् श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी छे  
तेमनां नामो नीचे प्रमाणे छे.

- (१) लुधियाना—सम्बत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के  
भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री  
आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य  
श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज.
- (२) लाहौर—वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डितरत्न श्री  
१००८ श्री भागचन्द्रजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री  
१००७ श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.
- (३) खिचन से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८  
श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.
- (४) बालाचोर—ता. १४-११-३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री  
१००८ श्री शतावधानीजी श्री रतनचन्द्रजी महाराज.
- (५) बम्बई—ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री  
कवि नानचन्द्रजी महाराज.
- (६) आगरा—ता. १८-११-३६, जगत् वल्लभ श्री १००८ श्री जैनदिवाकर  
श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्रीसाहित्यप्रेमी  
श्री प्यारचन्द्रजी महाराज.
- (७) हैद्राबाद ( दक्षिण ) ता. २५-११-३६ का पत्र, स्थविरपदभूषित  
भाग्यवान् पुरुष श्री ताराचन्द्रजी महाराज तथा प्रसिद्ध वक्ता श्री १००८  
श्री सोभाग्यमलजी महाराज.
- (८) जयपुर—ता. २६-११-३६ का पत्र, संप्रदायके गौरववर्धक शांतस्वभावी  
श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूबचन्द्रजी महाराज.
- (९) अम्बाला—ता. २९-११-३६ का पत्र, परम प्रतापी षड्नामकेशरी श्री  
१००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

- ( १० ) सेलाना—ता. २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रों के ज्ञाता श्रीमान् रतनलालजी डोसी.
- ( ११ ) खीचन—ता. ९-११-३६ का पत्र, पण्डितरत्न न्यायतीर्थ सुश्रावक श्रीयुत् माधवलालजी.

×

सादर जय जिनेन्द्र

ता. २५-१२-३६

आपका भेजा हुआ उपासकदशांगसूत्र तथा पत्र मिला यहाँ विराजित प्रवर्तक वयोवृद्ध श्री १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित श्री किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं आपके वहाँ विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नव से हमारी वन्दना अर्ज कर सुख शांति पूछे आपने उपासकदशांगसूत्र के विषय में यहाँ विराजित मुनिवरों की सम्मती मंगाई उसके विषय में वक्ता श्री सोभागमलजी महाराज ने फरमाया है कि वर्तमान में स्थानकवासी समाज में अनेकानेक विद्वान मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र की वृत्ति रचने का साहस जैसा घासीलालजी महाराज ने किया है वैसा अन्य ने किया हो ऐसा नजर नहीं आता दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त उपयोगी तो यों हैं संस्कृत प्राकृत हिन्दी और गुजराती भाषा होने से चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं जैन समाज में ऐसे विद्वानों का गौरव बढ़े यही शुभ कामना है आशा है कि स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा । योग्य लिखें शेष शुभ ।

भवदीय

जमनालाल रामलाल कीमती

×

आगरा से—

श्री जैनदिवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोथमलजी महाराज व पण्डितरत्न सुव्याख्यानी गणीजी श्री प्यारचन्दजी महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द किया है ।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचन से लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ ।

परन्तु:—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढा है बहुत सराहना की है वास्तव में ऐसे उत्तम व सबके समझाने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसा ग्रन्थ ही गौरव बढा सकते हैं—ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम है ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाश से यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकार में दीपावली का अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी ।

×

ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पंजाब केशरी पूज्य श्री काशी-रामजी महाराज की सेवा में पढ कर सुना दिया । आपकी भेजी हुई उपासकदशाङ्ग सूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरु की एक प्रति भी प्राप्त हुई । दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं, ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवाये की बड़ी आवश्यकता है । इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है । आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है ।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर.



शान्त स्वभावी वैराग्यमूर्ति तत्त्ववारिधि, धैर्यवान श्री जैनाचार्य पूज्यवर श्री श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज साहेबने सूत्र श्री उपासक दशाङ्गजी को देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घासीलालजी महाराज ने उपासकदशाङ्ग सूत्रकी टीका लिखने में बड़ा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होने से भगवान् निर्ग्रन्थों के प्रवचनों के अपूर्व रस का लाभ मिल सकता है।

X

बम्बई शहर में विराजमान कवि मुनि श्री नानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।

❀

खीचन से स्थविर क्रिया पात्र मुनि श्री रतनचन्दजी महाराज और पंडितरत्न मुनि सन्नथमलजी महाराज श्री फरमाते हैं कि- विद्वान् महात्मा पुरुषोंका प्रयत्न सराहनीय है क्या जैनागम श्रीमद् उपासकदशाङ्गसूत्र की टीका, एवं उसकी सरल सुबोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा बड़ी ही सुन्दरता से लिखी है।

❀

श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीम-ज्जैनाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो।

अपरञ्च समाचार है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर सोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद! आपश्रीजीने तो ऐसा कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्य ने नहीं किया।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनी को उत्तरोत्तर शक्ति प्रदान करें ता कि आप जैनसमाज के ऊपर और भी उपकार करते रहें और आप चिरञ्जीव हों!

हम आपके मुनि तीन

उदेपुर.

मुनि सत्येन्द्रदेव-मुनि लखपतराय-मुनि पद्मसेन

\*

इतवारी बाजार

नागपुर ता. ११-१२-५६

प्रखर विद्वान जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धार हुआ और हो रहा है, सचमुच महाराजश्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रों का सेट देखा और कह मर्मिक स्थलोंको पढा, पढ़ कर विद्वान मुनिराजश्री की शुद्ध श्रद्धा तथा लेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फुट पडी।

वास्तव में मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी महा उपकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाज का नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रक्खा जा रहा है जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घर में होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि जैन.



## मेवाडदेशपावनकतृणां

श्री श्रमणसंघीय पण्डित मुनिश्री माँगीलालजी महाराजानां शिष्यस्य हस्तिमुनेः

सम्मतिपत्रम्

२०१५ वर्षीय-वर्षावास-दीपावली

राजकरेडा ( राजस्थान )

पुरतो जिनवाणीरसिक सज्जनानां पूज्यश्री १००८ श्री घासीलालजी महाराजविरचित जैनागमव्याख्याऽध्ययनजन्मनो मत्स्वान्ते परिमितिमप्राप्नुवतो निर्भरानन्दस्यानुभवं प्रसन्नमनसा कतिपयैः शब्दैर्निर्दिशामि ।

अस्माकमहोभागेन विराजमानैर्विद्यया वयसा च वृद्धैः सज्जनशिरोमणिभिः पूज्यपदवीमलङ्कुर्वद्भिः श्रीमज्जैनाचार्य घासीलालजीमहाराजैः प्रणीतया व्याख्यया समलङ्कृताः जैनागमा दृष्टिगोचरीकृताः । मनोहारिणी संस्कृत टीका हिन्दीगुर्जरभाषानुवादद्वयं च बलान्मानसं समाकर्षति । पूज्यश्रीविरचितजैनागमव्याख्यानसहस्रभानुना मम जैनागमरहस्याज्ञानतमस्संहतिरपहृता, हृत्पद्मं च प्रफुल्लितं जातम् ।

आसीदभावो बहोः कालाज्जैनागमेषु स्थानकवासिसंप्रदायाभिमतसंस्कृतव्याख्यानस्य, परतन्त्रश्चासीदद्यावधिस्थानकवासीजैनसमुदायः । परं परमकृपालुना श्रीमताऽऽचार्यप्रवरेणाऽनवरतं परिश्रम्य जैनागमेषु स्वसंप्रदायपरिपोषिकां टीकां विधाय सकलोऽपि स्थानकवासिजैनसंग्रहः स्वावलम्बोक्तः । श्रीमज्जैनाचार्यकृतेयुष्पकृतिः सकलस्थानकवासिजैनहृदयेषु वज्रलेपायिता भविष्यतीति मन्ये ।

अनादिघोराज्ञानतमसिपततां जनानां त्राणोपायः केवलं जिनभाषितमेवेति सर्वविदितमेव । तत्र सर्वजनकल्याणकामनया पूज्यश्रीचरणैर्या टीका विरचिता सा सर्वेषामपि सिद्धिप्रदा विजयप्रदा कल्याणपदा सन्मार्गप्रदर्शिका चास्तीति मे सुदृढो विश्वासः । अतोऽहं सर्वानपि जैनबन्धून् प्रोत्साहयामि, यत्ते स्वहितमभिसंधाय श्रीमत्पूज्यजैनाचार्यविरचितव्याख्यासाहाय्येन जैनागमहृदयं सम्यगवगम्य तन्निर्दिष्टमार्गेण स्व-स्वजीवनं सफल्यन्तो लोकद्वयं साधयन्त्वित्यलमतिविस्तरेण ।

अन्ते च शासनाधीशमभ्यर्थये-यदस्मदीयाचार्यप्रवराः शतायुषो निरामयश्च भवन्त्विति ।

इत्थं पूज्यश्री १००८ श्रीघासीलालजी महाराजविरचितजैनागमव्याख्यायां स्वसम्मतिं प्रदर्शयति—

श्री श्रमणसंघीय पण्डित मुनिश्री माँगीलालजी महाराजचरणरजो हस्तीमुनिः

## શ્રી દશવૈકલિક સૂત્રનું સમ્મતિ પત્ર

શ્રમણસંઘના મહાન્ આચાર્ય આગમવારિધિ સર્વતન્ત્ર સ્વતન્ત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિ પત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

\*

મેં તથા પંડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પંડિત મુલચંદ આસ (નાગૌર મારવાહ વાલા) દ્વારા મળેલી પંડિતરત્ન શ્રી. ઘાસીલાલજી મુનિ વિચરિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકલિકસૂત્રની આચારમણિમં-જૂયા ટીકાનું અવલોકન કર્યું. આ ટીકા સુંદર બની છે. તેમાં પ્રત્યેક શબ્દનો અર્થ સારી રીતે વિશેષ ભાવ લઈને સમજવવામાં આવેલ છે.

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે પરમ ઉપકાર કરવા-વાળી છે. ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો ઉદ્ભેષ કરેલ છે. જે આધુનિક મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, દયામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે ‘અહિંસા શું વસ્તુ છે’ તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે. વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે.

આ વૃત્તિમાં એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલ સૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રનાં પદ અને પદઅર્થ સુઘોષ દાયક બનેલ છે.

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ. વધારે શું કહેવું અમારા સમાજમાં આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નોનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે. આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુમપ્રાય સુતેલો સમાજ અને હુમપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બનેનો ફરીથી ઉદય થશે. જેનાથી ભાવિતાત્મા મોક્ષ યોગ્ય બનશે અને નિર્વાણ પદને પામશે આ માટે અમે વૃત્તિકારને વારંવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ.

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ફાલ્ગુન શુકલ.

ઈઈ

તેરસ મંગળવાર

(અલ્પવર સ્ટેટ)

ધવળગ્રામજીજી  
મુણી આચારામે  
પંચનદ્યમે

શતાવધાની પંડિતરત્ન મુનિ શ્રી રતનચંદજી મ. સા. નો અભિપ્રાય.

બાલાચોરથી ભારતરત્ન શતાવધાની પંડિત મુનિ શ્રી ૧૦૦૮ શ્રી રતન-ચંદજી મહારાજ ફરમાવે છે કે—

ઉત્તરોત્તર જોતાં મૂલસૂત્રની ટીકાઓ રચવામાં ટીકાકારે સ્તુત્ય પ્રયાસ કર્યો છે, જે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે મગરૂરી લેવાં જોવું છે, વળી કરાંચીના શ્રી સંઘે સારા કાગળમાં અને સારા ટાઈપમાં પુસ્તક છપાવી પ્રગટ કર્યું છે જે એક પ્રકારની સાહિત્ય સેવા બનવી છે.

શ્રમભણ્ણસંઘના પ્રચાર મંત્રી પંજળ કેશરી મહારાજ શ્રી ત્રેમચંદ્ર મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાસ્ત્રોને માટે મળેલો અભિપ્રાય.

\*

શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રવારિધિ પંડિતરાજ સ્વામિ શ્રી. ઘાસીલાલજી મહારાજદ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જનસમાજ તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનકવાસી જનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની જડને મજબૂત કરવાવાળું છે,

એટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશંસનીય છે માટે દરેક વ્યક્તિએ તેમાં યથાશક્તિ લોગ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી એ ભગીરથ કાર્ય જલ્દી સંપૂર્ણપણે પારપાડી શકાય અને જનતા શ્રુતજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે.

\*

દરીયાપુરી સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી ઈશ્વરલાલજી મહારાજ સાહેબનાં

## સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીરં ગિરી સાર ધીરં

પૂજ્ય પાદ જ્ઞાનપ્રવર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા પંડિત શ્રી કનૈયાલાલજી મહારાજ આદિ થાણા છની સેવામાં—

અમઠાવાદ શાહપુર ઉપાશ્રયથી મુનિ દયાનંદજીના ૧૦૮ પ્રણિપાત.

આપ સવે થાણાઓ સુખસમાધિમાં હશે નિરંતર ધર્મધ્યાન ધર્મ-રાધનમાં લીન હશે.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય એવી ભાવના છે દેશવૈકલિક તથા આચારાંગ એક એક ભાગ અહીં છે. ટીકા ખૂબ સુંદર, સરળ અને પંડિત-જનોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સાથે સાથે ટીકા વીનાના મૂળ અને અર્થ સાથે પ્રકાશન થાય તો શ્રાવકગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે અને પૂજ્ય આચાર્ય ગુરુદેવને આંગે મોતીયો ઉતરાળ્યો છે અને સાડું છે એજ.

આસો સુદ ૧૦, મંગળવાર તા. ૨૫-૧૦-૫૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઇચ્છતો,  
દયા મુનિના પ્રણિપાત.

\*



દરીયાપુરી સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન શ્રી ભાઈચિંદ ભહારાજનો અભિપ્રાય

રાણપુર તા. ૧૬-૧૨-૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલભાઈ મહારાજ આદિ મુનિવરોની સેવામાં આપ સર્વ સુખ સમાધીમાં હશે.

સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ સુંદર થઈ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ, આપનાં પ્રકાશિત થયેલાં કેટલાંક સૂત્રો જોયાં. સુંદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાય ને પુષ્ટિ કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને સુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સૂત્ર પ્રકાશનનું કામ ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભાવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામાં સાધનભૂત થાય એજ અભ્યર્થના.

લી. પંડિતરત્ન બાળબ્રહ્મચારી

પૂ. શ્રી ભાઈચિંદ મહારાજની

આજ્ઞાનુસાર શાન્તિમુનિના

પાયવંદન સ્વીકારશે,

\*

તા. ૧૧-૫-૫૬

વીરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રભાઈ મહારાજના સંપ્રદાયના આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન મુનિશ્રી સમરથભલભાઈ મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા. ૧૧-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ધિત

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલભાઈ મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુંદર અને સરળ ભાષામાં થાય છે. તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથલાલભાઈ મહારાજ, સમય એછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શક્યા નથી. છતાં જેટલું સાહિત્ય જોયું છે, તે બહુ જ સારું અને મનન સાથે લખાયેલું છે. તે લખાણ શાસ્ત્ર આજ્ઞાને અનુરૂપ લાગે છે આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાંચવા યોગ્ય છે, આમાં સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરુપણા અને ફરસ-ણાની દૃઢતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે. આચાર્ય શ્રી અપૂર્વ શ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે.

લો. કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ

મુ. ખીચન.

\*

## હીંબડી સંપ્રદાયના સદાનંદી મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

શ્રી વીતરાગદેવે-જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર નામ ગોત્ર આંધવાનું નિમિત્ત કહેલ છે. જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર; અને તેને અનુમોહન આપનાર જ્ઞાનાવર્ણિય કર્મને ક્ષય કરી-કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદનાં અધિકારી બને છે. શાસ્ત્રજ્ઞ-પરમ શાન્ત, અને અપ્રમાદિ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્રાન્તપણે જ્ઞાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે. તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે. વંદનીય છે-તેમની જ્ઞાન પ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને અનુકરણીય છે. જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાનાપ્રચાર માટે અવિશ્રાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના કાર્યવાહકો પણ એમાં સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે. તે પણ ખરેખર ધન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

એ સમિતિના કાર્યવાહકોને મારી એક સૂચના છે કે :-

શાસ્ત્રોદ્ધારક પ્રવર પંડિત અપ્રમાદિ સંત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે-પંડિતો વિગેરેના માટે જે ખર્ચો થઈ રહેલ છે. તેને પહોંચી વળવા માટે સાડું સરખું ફંડ જોઈએ. એના માટે મારી એ સૂચના છે કે:- શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો-જો બની શકે તો પ્રમુખ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ ગુજરાત, સૌરાષ્ટ્ર અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી મેમ્બરો બનાવે અને આર્થિક સહાય મેળવે.

જો કે અત્યારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે. વ્યાપારીઓ, ધંધાદારીઓને પોતાના વ્યવહાર સાચવવા પણ મુશ્કેલ બને છે. છતાં જો સંલવિત ગૃહસ્થો પ્રવાસે નિકળે તો જરૂર કાર્ય સફળ કરે એવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે, પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જ્યાં સુધી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં સુધીમાં એમની જ્ઞાન શક્તિને જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો. કદાચ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વખત રહેવાથી તેમને હવે બહાર વિહરવાની ઈચ્છા હોય તો શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાએ વિનંતી કરી અમદાવાદ પધરાવવા અને ત્યાં-અનુકૂળતા મુજબ બે-ત્રણ વર્ષની સ્થિરતા કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ પૂર્ણ કરાવી લેવું જોઈએ.

થોડા વખતમાં જામજોધપુરમાં શાસ્ત્રોદ્ધાર કમીટી મળવાની છે. તે વખતે ઉપરની સૂચના વિચારાય તો ઠીક.

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક હેવ તેમના શરિરાદીને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે. ॐ અસ્તુ.

ચતુર્માસ સ્થળ. લીંબડી  
સાં. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ.

લિ.  
સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી.

\*

### શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્ય શ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશારદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે. તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે. તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે. આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણીજ સુંદર છે. સંસ્કૃત રચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી યુક્ત છે, વિક્રાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરેએ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃત રચનાની કદર કરવી જોઈએ અને ફરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ.

આવા મહાન કાર્યમાં પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથ કાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે.

અમદાવાદ

તા. ૨૨-૪-૫૬ રવિવાર

મહાવીર જયંતિ

}

મુનિ પૂર્ણચંદ્રજી

અંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય.

શ્રીમાન શેઠ શાંતિલાલભાઈ મંગળદાસભાઈ

પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત ટ્રસ્ટ, સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મુ. અમદાવાદ.

અમો અત્રે દેવગુરુની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ. વિ. માં આપની સમિતિ દ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીનાં સૂત્રોમાંથી ઉપાસકદશાંગસૂત્ર, આચારાંગસૂત્ર, અનુત્તરોપપાતિકસૂત્ર, દશવૈકલિકસૂત્ર વગેરે સૂત્રો જ્યાં તે સૂત્રો સંસ્કૃત

હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણાંજ લાભદાયક છે. તેનું વાંચન ઘણુંજ સુંદર અને મનોરંજક છે. આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્ય શ્રી જે અઘાત પુરુષાર્થે કાર્ય કરે કે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે. આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણું લાભનું કારણ છે.

હંસ સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપરના ભેદથી નિખાલસ ભાવનાએ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ લેવા જેવું છે. માટે દરેક ભવ્ય આત્માઓને સૂચન કરું છું કે આ સૂત્રો પોતપોતાના ઘરમાં વસાવવાની સુંદર તક ચૂકશો નહિ. કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરંપરા ને પુષ્ટીરૂપ સૂત્રો મળવા બહુ મુશ્કેલ છે. આ કાર્યને આપશ્રી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમાં મહાન નિર્જરાતું કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ. એજ

લી. શારદાબાઈ સ્વામી

ખંભાત સંપ્રદાય.

\*

## ખરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય.

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ

ધંધુકા તા. ૨૭-૧-૫૬

પ્રમુખ અં ભાં પ્રવેં સ્થાં જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મું રાજકોટ.

અત્રે ખિરાજતા ગું ગુંના લંડાર મહાસતીજી વિદુષી મોંઘીબાઈ સ્વામી તથા હિરાબાઈ સ્વામી આદિ ઠાણા બન્ને સુખશાતામાં ખિરાજે છે. આપને સૂચન છે કે અસમત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ધર્મધ્યાન કરશોજી એજ આશા છે.

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના રચેલાં સૂત્રો ભાઈ પોપટ ધનજીભાઈ તરફથી ભેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ આઘોપાન્ત વાંચ્યાં મનન કર્યાં. અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનક-વાસી સમાજને અને વીતરાગ માર્ગને ખૂબજ ઉન્નત્ત બનાવનાર છે, તેમાં આપણી શ્રદ્ધા એટલી ન્યાય રૂપથી ભરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ

લેવા જેવું છે. હંસ સમાન આત્માઓ જ્ઞાન ઝરણાઓથી આત્મરૂપ વાડીને વિકસિત કરે છે. ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન લબ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છો. આવા સમર્થન વિહ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરું કરાવશો તેવી આશા છે.

એજ લિ. ખરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી

મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામી

ના ફરમાનથી લી. ઝોડીદાસ ગણેશભાઈ-ધંધુકા

સ્થાનકવાસી જૈન સંઘના પ્રમુખ.

અદ્યતક પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન

પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય.

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યોમાં વ્યાજ થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયાં છે તે હું જોઈ શક્યો છું, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધભાગથી હિન્દી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે, એ એમનો ટુંકો પરિચય કરતાં સહજ જણાઈ આવે છે. શાસ્ત્રોનું સંપાદન કરવામાં તેમને પોતાના શિષ્યવર્ગોને અને વિશેષમાં ત્રણ પંડિતોનો સહકાર મળ્યો છે, તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પંડિતોનો સહકાર મેળવી આપી મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે. સ્થાનકવાસી સમાજમાં વિક્રતા ઘણી ઓછી છે. તે દિગંબર મૂર્તિપૂજક શ્રવેતાંબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતાં હું વિરોધના ભય વગર. કહી શકું. પૂ. મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારાં આપવામાં આવ્યાં છે ભાષા શુદ્ધ છે એમ હું ચોક્કસ કહી શકું છું. ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલાં છે. મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાંચનાલયમાં અને કુટુંબોમાં વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગંજ વડોદરા  
તા. ૨૬-૨-૧૯૫૬

કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ,  
એમ. એ.

## મુંબઈની બે કોલેજના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય.

મુંબઈ તા. ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાંતિલાલ મંગળદાસ

પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત પ્રવે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ,  
રાજકોટ.

પૂજ્યઆચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તૈયાર કરેલા આચારંગ, દશ-વૈકાલિક આવશ્યક, ઉપાસકદશાંગ વગેરે સૂત્રો અમે જોયાં. આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે અને સાથે સાથે હિન્દી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યાં છે, સંસ્કૃત ટીકા અને ગુજરાતી તથા હિન્દી ભાષાંતરો જોતાં આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પર એકસરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સચોટ અને સુરેખ છાપ પડે છે. આ સૂત્ર ગ્રંથોમાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વત્તા મુગ્ધ કરી દે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હિન્દીમાં થયેલા ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે. એથી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સંતોષ આપે એવી એમની લેખિનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હજુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે. બીજા ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો જ્યારે એમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સંપત્તિરૂપ ગણાશે એમાં સંશય નથી. આચાર્યશ્રી આ મહાન કાર્યને જૈન સમાજનો-વિશેષતઃ સ્થાનકવાસી સમાજનો સંપૂર્ણ સહકાર સાંપડી રહેશે એવી અમે આશા રાખીએ છીએ.

પ્રો. રમણલાલ ચીમનલાલ શાહ  
સેન્ટ ઝેવિયર્સ કોલેજ, મુંબઈ.

પ્રો. તારા રમણલાલ શાહ.

સોફિયા કોલેજ, મુંબઈ

રાજકોટની ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજના પ્રોફેસરોનો

અભિપ્રાય.

જયમહાલ

જાગનાથ પ્લોટ

રાજકોટ તા. ૧૮-૪-૫૭

પૂજ્યઆચાર્ય પં. મુનિ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આજે જૈનસમાજ માટે એક એવા કાર્યમાં વ્યાપ્ત થયેલા છે કે જે સમાજ માટે બહુ ઉપયોગી થઈ પડશે. મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલાં આચારંગ, દશવૈકાલિક. શ્રી વિપાકશ્રત

૪

વિ. મેં જોયાં. આ સૂત્રો જોતાં પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનેા સંસ્કૃત, અર્ધ-  
માગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઈ  
આવે છે. એક પણ ભાષા મહારાજશ્રીથી અબાણી નથી. આપણે બાણીએ  
છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટિના છે. તેની વસ્તુ ગંભીર; વ્યાપક  
અને જીવનને તલસ્પર્શી છે. આટલા ગહન અને સર્વશ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાન્તર  
પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટિના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે  
આપણા અહોભાગ્ય છે. યંત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં જ્યારે  
ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે. એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી  
ભરેલા સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાંતર દરેક જાણસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને  
માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે. જૈન અને જૈનેતર વિદ્વાન અને સાધારણ  
માણસ, સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ  
ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યા છે. મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે  
તેમના આ કાર્યમાં સંકળાયેલા જોઈએ છીએ. એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ  
અને ધગશની કલ્પના કરી શકાય છે. તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનેા તથા પંડિતોનેા  
સહકાર મળ્યો છે. મને આશા છે કે જે દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના  
ઘરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તેા  
મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે.

પ્રો. રસિકલાલ કસ્તુરચંદ ગાંધી  
એમ. એ એલ. એલ. ખી.  
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ  
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

\*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ બિનાસર કોન્ફરન્સ તથા  
સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ.

હાલ જે વખતે શ્રી પ્રવેતાંબર સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ માટે આગમ-  
સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોધારની અતિ આવશ્યકતા છે એને  
જે મહાનુભવોએ આ વાત દીર્ઘદ્રષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઈ તે  
પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પંડિતરત્ન શ્રી ઘાસી-  
લાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદડી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્ય મંત્રી  
છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે અ. ભા. પ્રવે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોધાર સમિતિ  
જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને



પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચાર મંત્રીશ્રી તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહાર છાપ આપી છે એને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સિટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ. એ. એ પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે કે તે શાસ્ત્રોદ્ધાર કમિટીના કામને આ સંમેલન તથા કોન્ફરન્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે. અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જરૂર પડે-પડિતની અને નાણાંની-પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને બહાર જનતા પાસેથી મદદ મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આટલી બધી પ્રસંશાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ કોન્ફરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કાંઈ ત્રુટી હોય તે પં ૨. શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજની સાંનિ-ધ્યમાં જઈ. બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો. આ કામને ટલ્લે ચઢાવવા જેવું કોઈપણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે બેવા પ્રમુખ સાહેબને ભલામણ કરે છે.

(સ્થા. જૈન પત્ર તા. ૪-૫-૫૬)

x

### સ્વતંત્રવિચારક અને નિહર લેખક 'જૈનસિદ્ધાંત'ના તંત્રી શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બોલાવી તેમની પાસે બત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠશ્રી દામોદરદાસ સાથે પત્રવ્યવહાર ચાલેલો. ત્યારે શેઠશ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમનાં એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

“આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મ. સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ જવામાં આવતા નથી. લાંબી તપાસને અંતે મેં મુનિ શ્રી ધાસીલાલજી મને પસંદ કરેલા છે.”

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. શ્રાવકો તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાંચન લેતા, તેમ જ્ઞાનચર્યા પણ કરતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી યથાર્થ

જ હોય એમાં નવાઈ નથી. અને પૂ. શ્રી ઘાસીલાલજી મળ્યા બનાવેલાં સૂત્રો સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ. પાસેથી રાખેલી તે ખરાબર ફળી-ભૂત થયેલ છે.

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મળ્યા સૂત્રોની ઉપયોગીતાની ખાત્રી થશે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિન્દી વાચકને હિન્દી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાંચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય જાય છે.

કેટલાકેને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાંચવાનું આપણું કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે. ખીજા કોઈપણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતાં સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભૃગુ મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામાં (અર્ધ માગધી ભાષામાં સૂત્રો બનાવેલાં છે, એટલે એ સૂત્રો વાંચવા તેમજ સમજવામાં ઘણાં સરળ છે.

માટે કોઈપણ વાચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો. અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાંચવાને ચૂકવું નહિ એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલાં સૂત્રો જ વાંચવા.

સ્થાનકવાસીઓમાં આ શ્રી સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે. અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે ખીજાં છ સૂત્રો લખાયેલ પડ્યા છે, જે સૂત્રો-અનુયોગદ્વાર અને ઠાણાંગ સૂત્રો-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે. તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે.

તૈયાર સૂત્રો જલદી છપાઈ જાય એમ ઈચ્છીએ છીએ અને સ્થા. બંધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમનાં સૂત્રો ધરમાં વસાવે એમ ઈચ્છીએ છીએ.

‘જૈન સિદ્ધાન્ત’ પત્ર-મે ૧૯૫૫

\*

## શ્રુત ભક્તિ

(પૂ. આચાર્ય શ્રી ઇશ્વરલાલજી મ. સા. ની આજ્ઞા અનુસાર લખનાર.)

દ. સં. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા. ૨૩-૬-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ.

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી શ્રદ્ધેય પરમપૂજ્ય જ્ઞાન દિવાકર પં. મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ. ચરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર અનુપમ ન્યાય યુક્ત, પૂર્વાપર અવિરોધ, સ્વપર, કલ્યાણકારક, ચરમ શીતળ વાણીના ઘોતક એવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે, તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાલ્ય સંસ્કૃતાદિ અનેક ભાષાના પ્રખર પંડિત છે અને જિન વાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત ગુજરાતી અને હિન્દીમાં મૂળ શબ્દાર્થ, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે એ જૈન સમાજ માટે અતિ ગૌરવ અને આનંદનો વિષય છે.

ભ૦ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણીરૂપે અક્ષર દેહ ગણુધર મહારાજેએ શ્રુત પરંપરાએ સાચી રાખ્યો. શ્રુત પરંપરાથી સચવાતુ જ્ઞાન જ્યારે વિસ્મૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવદિગ્ધિગણિ ક્ષમાશ્રમણે વલ્લભીપુર-વળામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂઠ કર્યો. આજે આ સિદ્ધાન્તો આપણી પાસે છે. તે અર્ધ માગધી પાલી ભાષામાં છે. અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનગણની ધર્મ ભાષા છે. તેને આપણા શ્રમણો અને શ્રમણીઓ તથા મુમુક્ષુ શ્રાવક તથા શ્રાવિકાઓ મુખપાઠ કરે છે, પરંતુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા થોડાઓ સમજે છે.

જિનાગમ એ આપણાં શ્રદ્ધેય પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે. એ આપણી આંખો છે. તેનો અભ્યાસ કરવો એ આપણીસૌની-જૈન માત્રની ફરજ છે. તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજવવા માટે આપણાં સદ્ભાગ્યે જ્ઞાન દિવાકર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે સત્સંકલ્પ કર્યો છે. અને તે લેખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરબ વહેતી કરી છે. આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જૈનોનો સહકાર અવશ્ય હોવો ઘટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાયતે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે.

ભ૦ મહાવીરને ગણુધર ગૌતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય છે? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે. અને તેઓ સંસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે, અને સંસારના કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે.

આવા જ્ઞાન કાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જૈનો દિગંબરો અને અન્યધર્મીઓ હજારો અને લાખો રૂપિયા ખર્ચે છે. હિન્દુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા ગ્રંથ ગીતાના સેંકડો નહિ પણ હજારો ટીકાગ્રંથો દુનિયાની લગભગ સર્વ ભાષાઓમાં પ્રગટ થયા છે. ઇસાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મગ્રંથ આઈબલના પ્રચારાર્થે તેનું જગતની સર્વ ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી, તેને પડતર

કરતાં પણ ઘણી ઝોછી કિંમતે વેચી ધર્મસૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે. મુસ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનું પણ અનેક ભાષાઓમાં ભાષાંતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે. આપણે પૈસા પરનો મોહ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવાં જોઈએ. અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રીય પ્રયત્નો કરવાં જોઈએ. આવા પવિત્ર કાર્યમાં સાંપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા જોઈએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ. સમિતિના નિયમાનુસાર ડા. ૨૫૧૭ ભરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઈએ. ધાર્મિક અનેક ખાતાંઓને મુકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાન પ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણાવવું જોઈએ.

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હર હંમેશ તત્પર રહેવું જોઈએ જેથી પરમ શાન્તિ અને જીવન સિદ્ધિ મેળવી શકાય (સ્થા. જૈન તા. ૫-૭-૫૬) શ્રી. અ. ભા. ૨વે. સ્થા, જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનાં પ્રમુખ શ્રી વગેરે.

### રાણપુર

પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર જ્યારથી શાન્ત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના પુનિત પગલાં થયાં છે ત્યારથી ઘણા લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મનાં પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અર્પણ સહાય આપી રહ્યાં છો તે માટે તમે સર્વને ધન્ય છે અને એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લ્યે છે મને તો સમજાય છે કે સાધુજી છઠ્ઠે ગુણસ્થાનકે જ હોય છે. પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે. એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાંચ-સાત સાધુઓ. જે સ્થાનકવાસી જૈન સમાજમાં હોય તો સમાજનું શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે. સમાજકાશમાં સ્થા. જૈન સંપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે પ....ણ વો દિન.....

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને મહારી એક નમ્ર સૂચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાવે તેવી છે. તેમને ગામોગામ વિહાર કરવા અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમાં ઘણી શારીરિક-માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે. તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાંના શ્રાવકો ભક્તિવાળા હોય. વાડાના રાગના વિષથી અલિપ્ત હોય એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થીરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો જોઈએ. ખીજા કોઈ એવા સ્થળની અનુકૂળતા ન મળે તો છેવટે અમદાવાદમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડતા કરી અપાય તો વધુ સાફ મહારી આ સૂચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપું છું. ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકારશો.

બિ. સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી.

## “ જૈન સિદ્ધાંતના તંત્રીશ્રીનો અભિપ્રાય ”

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સંસ્થા છે. અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતિ કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, હિન્દી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવાં એ કાંઈ સહેલું કામ નથી. એ એક મહાભારત કામ છે. અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડી રહી છે તે સ્થાનક-વાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદનેપાત્ર છે.

સમિતિ તરફથી નવ સૂત્રો બહાર પડી ચૂક્યા છે. હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે. નવ સૂત્રો લખાઈ ગયાં છે અને જંબૂદ્વીપપ્રજ્ઞપ્તિ તથા નંદીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યાં છે.

હાલમાં મંત્રી શ્રી સાકરચંદ્ર ભાઈચંદ્ર સમિતિના કામમાં જ તેમનો આખો વખત ગાળે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા તેમના ખંત માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વયોવૃદ્ધ પંડિત પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ. મૂળ પાઠનું સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓશ્રી જ તૈયાર કરે છે. મુનિશ્રીનો આ ઉપકાર આખાય સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. એ ઉપકારનો બહલો તો વાળી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બરો બની, તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહારાજશ્રીનું થોડું ઋણ અહા કચું ગણાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે પઠમં ગાણં તઓ દયા પહેલું જ્ઞાન પછી દયા, દયા ધર્મને યથાર્થ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણાં સૂત્રો વાંચવા જ જોઈએ તેનું અધ્યયન કરવું જ જોઈએ અને તેનો ભાવાર્થ યથાર્થ સમજવો જોઈએ.

એટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના સર્વ સૂત્રો દરેક સ્થા. જૈને પોતાના ઘરમાં વસાવવા જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણાં સૂત્રોમાંજ સમા-યેલું છે અને તે સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે, માટે દરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાંચે એ ખાસ જરૂરનું છે.

“ જૈન સિદ્ધાંત ” ડીસેમ્બર-૫૬

x

### શ્રી ઉપાસકદશાંગસૂત્રને માટે અભિપ્રાય.

મૂળ સૂત્ર તથા પૂ. મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિન્દી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત.

પ્રકાશક-અ. ભા. પ્રવે. સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ, ગરેડીઆ કુવારોડ, શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (બોટું) કદ. પાકું પુકું. જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિંમત ૮-૮-૦

આપણા મૂળ ધાર અંગ સૂત્રોમાંનું ઉપાસકદશાંગ એ સાતમું અંગ સૂત્ર છે, એમાં ભગવાન મહાવીરના દસ ઉપાસકો શ્રાવકોના જીવનચરિત્રો આપેલાં છે તેમાં પહેલું ચરિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે.

આનંદશ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને બારવ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધાં તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે. તેની અંતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ, નરક દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે.

આનંદશ્રાવકે બાર વ્રત લીધાં તે બાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વિગેરે બધું આપેલું છે. તેજ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે.

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામાં અરિહંત જેઝ્યાઈ શબ્દ આવે છે. મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે. અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સંબંધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામાં અનેક રીતે પ્રમાણ આપી સાબિત કરેલ છે. અરિહંત જેઝ્યાઈ નો અર્થ સાધુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે.

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રિતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે.

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાંચવું જોઈએ એટલું જ નહિ પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમાં વસાવવું જોઈએ.

પુસ્તકની શરૂઆતમાં વર્ધમાનશ્રમણસંઘના આચાર્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સંમતિ પત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સંમતિ પત્રો આપેલા છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે

“ જૈન સિદ્ધાંત ” જાન્યુઆરી, ૫૭



સેંકડો સટીફીકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલા  
કેટલાક તાબ અભિપ્રાયો.

શાસ્ત્રો છાર ના કાર્યને વેગ આપો.

તંત્રી સ્થાનેથી (જનજ્યોતિ) તા. ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ મુકામે સરસ્પુરના સ્થાનકવાસી જૈન ઉપાશ્રયમાં બિરાજમાન છે. તેઓશ્રી શાસ્ત્રોધારનું કાર્ય ખૂબ જ ખંત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે. તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે. આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રાની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીના સૂત્રોની ટીકા જેમ અને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે. સ્થા. જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ અને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ. આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે. પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી. પૂજ્યશ્રી અમુલખજીજી મહારાજે બત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિન્દી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ. ત્યાર બાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિન્દી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણાં શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયાં પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદ કરેલ પૂજ્ય શ્રી જવાહરલાલજી મહારાજશ્રીએ સૂચકાંગ સૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ કરેલ. શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાંગની હિન્દી ટીકા લખેલ. પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા. જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી. બ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસી લાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા તેનો હિન્દી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બંધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સંસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધાં છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય તે માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે.

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના ડૉ. ૨૫૧૭ બરીને લાઈફ મેમ્બર થનારને શાસ્ત્રો તમામ, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી લેટ મળે છે, આ રીતે એક પંથ અને દો કાજ. બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે. ડૉ. ૨૫૧૭ માં ૫૦૦ કિંમતના શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મલાભ પણ મળે છે.



આ સાલે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સુશિષ્ય મુનિશ્રી કન્હૈયા-લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચતુર્માસ બિરાજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના મેમ્બરો કરવા માટે અથાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બબલી રહ્યા છે. અને અત્યાર સુધીમાં સુબંધ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઇફ મેમ્બર બની ગયા છે. અને સુબંધમાં લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે ઇચ્છવા યોગ્ય છે. શ્રીમંત ગૃહસ્થો હબરો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમાં તેમજ મોજશોખના કામોમાં તેમજ વ્યવહારિક કામોમાં વાપરી રહ્યા છે તો આવા શાસ્ત્રોધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમાં રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાશે અને બહલામાં ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે. જેનું વાંચન કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.

+

શતાવધાની મુનિશ્રી જયંતિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “સ્થાનકવાસી જૈન” તા. ૫-૬-૫૭ના અંકમાં છપાયેલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા. ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે ખિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્રને લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે પૂ. મ. સા. સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને જાણ કરવા સાડું લખું છું.

‘શાસ્ત્રોનું કામ એક ગહન વસ્તુ છે. અપ્રમાદી થઈ તેમાં અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. સંપૂર્ણ શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે. આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમાં ખિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે. શાસ્ત્ર લેખનનું આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શંકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થાય છે? કરવામાં આવે છે? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય તે સ્વાભાવિક છે. કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલા સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થયેલા છે જેથી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શંકા થાય.

પણ ખરી રીતે જોતાં, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રી આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમાં પ્રગટ થયેલાં આગમોના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લ્યે.

લિ.

શતાવધાની શ્રી જયંત મુનિ-અમદાવાદ



## “શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટૂંક પરિચય”

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સંસ્થા છે, કે જેણે અત્યાર સુધીમાં તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધાં છે. સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજાં કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે.

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટૂંક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાંચી જઈ સર્વ સ્થા. જૈન ભાઈબહેનોએ આ સંસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હબ્બુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે.

ખાલી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા. કોન્ફેરન્સ જેમ ખોટાં બણુગાં કુંકનારી સંસ્થાની કોઈ કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે.

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે. વયોવૃદ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે. તેવું કામ હબ્બુ સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજું કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શંકાભર્યું છે. પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન ઉપકારનો કિંચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે. સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામાં પાછો હઠે તેમ નથી એવી અમો આશા રાખીએ છીએ.

“જૈનસિદ્ધાંત” પત્ર ઓક્ટોમ્બર ૧૯૫૭

x

## શ્રી દશવૈકાલિક તથા ઉપાસકદર્શાંગ સૂત્રો

ગુજરાતી ભાષામાં અનુવાદ થયેલાં પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત ઐ સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમાં હોવા જ જોઈએ. તે વાંચવાથી શ્રાવકધર્મ અને શ્રમણુધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એષણીય સેવા શ્રમણુ પ્રત્યે બજાવી શકે છે. વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમાં તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અંધશ્રદ્ધાએ શ્રમણુવર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે. પરંતુ ‘કલ્પ શુ’ અને અકલ્પ શુ’ એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણુ વર્ગને પોતાને સહાય થવામાં ઘસડી રહ્યા છે અને શ્રમણુ વર્ગની પ્રાયઃ કુસેવા કરી રહ્યા છે. તેમાંથી બચી લાભનું કારણુ થાય અને શ્રમણુને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી સુગતિ મેળવી શકે. શ્રમણુની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની દ્રવ્ય છે.

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોદ્ધારનો અનુવાદ ત્રણ ભાષામાં રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપિયા ૨૫૧૭ ભરી મેમ્બર થનારને રૂ. ૪૦૦-૫૦૦ લગભગની કીંમતના બત્રીસે આગમો ક્રી મળી શકે છે તો તે રૂ. ૨૫૧૭ ભરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવકધરે મેળવવા જોઈએ. બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે. તો તે લાલ પોતાની નિર્જંશ માટે પુણ્યાનુબંધી પુણ્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપરોક્ત બંને સૂત્રોની કીંમત સમિતિ કંઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમાં શ્રીમંત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીંમતે, મફત અથવા પૂરી કીંમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે.

— એક ગૃહસ્થ

નોંધ—ઉપરની સૂચનાને અમે આવકારીએ છીએ. આવાં સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાંચવા યોગ્ય છે. તાંત્રી—

“ રત્નજ્યોત ” પત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

## શ્રી સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિની કાર્યવાહક કમીટીનો અહેવાલ.

x

મે મહીનાની શરૂઆતમાં શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિની મીટીંગ અમદાવાદમાં મળી હતી તેનો હેવાલ અમને મળેલા છે તેમાં સમિતિએ સરસ કામ કયું છે.

આ ઉપરથી સમજી શકાય છે કે સ્થાનકવાસી સમાજમાં આજ સુધી કોઈ પણ નથી કરી શક્યું એવું મહાભારત કાર્ય પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તથા શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ધણી સફળતાથી કરી રહી છે. અને તેઓ થોડા વખતમાં માથે લીધેલું સર્વકામ સંપૂર્ણ રીતે પાર ઉતારશે એવી મને ખાત્રી છે.

આવા ઉત્તમ કાર્ય માટે સમસ્ત સ્થાનકવાસી જૈનોએ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને પોતાથી બની શકે તે રીતે સંપૂર્ણ ટેકો આપવો જોઈએ, તે તેમની પહેલી ફરજ બની રહે છે. જૈનો માટે સૂત્રો એ પહેલી જરૂરીઆતની વસ્તુ છે સૂત્રના આધારે જ ધર્મજ્ઞાન મળે છે, આજ સુધી જે આપણને અપ્રાપ્ય હતા તે આપણા જૈન સૂત્રો પૂ. શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે તથા શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ સુલભ કરી આપ્યા છે.

તો હવે સ્થાનકવાસી જૈનોએ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના સલાસદ બની સમિતિનું કામ ઉતાવળે પુરું થાય તેમ કરવાની ખાસ જરૂર છે. વાચકોમાંથી જેઓથી બની શકે તેમણે પહેલા વર્ગના શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના સભ્ય બની જવું જોઈએ. તેથી સમિતિના કામને ઉત્તેજમ મળવા ઉપરાંત સભ્યને સૂત્રોનો આખો સેટ મફત મેળવવાનો લાભ મળશે અને સૂત્રો વાંચીને ધર્મારાધન કરવાનો જે લાભ મળશે તે તો અમૂલ્ય જ છે. માટે સમિતિના સભ્ય થઈ જવાની અમારી દરેક સ્થા. જૈનોને ખાસ ભલામણ છે.

“જૈન સિદ્ધાંત” જુલાઈ-૧૯૫૮

દક્ષિણ ઉત્તર પ્રદેશ, રાજસ્થાન, દિલ્હી, પંજાબ અને હાલમાં ગુજરાત સૌરાષ્ટ્રમાં વિચરી રહેલા ઉત્તર વિહારી પૂ. મહાસતીજી શ્રી રંભાકુંવરજી તથા પ્રસિદ્ધ વ્યાખ્યાની વિવિધ ભાષા વિશારદા પૂ. મહાસતીજી શ્રી સુભતિકુંવરજીનો, પૂજ્ય શ્રી ૧૦૦૮ શ્રી ઘાસીલાલજી મ. સા. નિર્મિત જૈનાગમોની સંસ્કૃત ટીકા તથા હિન્દી-ગુજરાતી ભાષાન્તર પર અભિપ્રાય:-

### ૐ નમો સિદ્ધાણું

શાસ્ત્ર વિશારદ શ્રદ્ધેય પંડિતરત્ન પૂજ્ય આચાર્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જૈનાગમોના એક વિદ્વાન, વૃદ્ધવિચારક અને ઉત્તમ લેખક છે.

સાહિત્ય સર્જન એ તેમના જીવનનો એક ઉત્તમ સંકલ્પ છે. સામાજિક પ્રપંચોથી દૂર રહી, અથાગ પરિશ્રમ દ્વારા વિરચિત, સંપાદિત અને અનુવાદિત અનેક ગ્રંથો તેમના દ્વારા પ્રકાશિત થયા છે, જે તમામ જૈનોને માટે ચિંતન, મનન અને અધ્યયન-અધ્યાપન માટે એક અપૂર્વ સાધન રૂપ છે. આવું ઉત્તમ સાહિત્ય તૈયાર કરીને તેઓશ્રીએ સાહિત્ય સેવીના મહાન પદને દીપાવ્યું છે.

આગમના રહસ્યોથી અનભિજ્ઞ (અજ્ઞ) આજની પ્રજામાં શ્રદ્ધેય શ્રી મહારાજ સાહેબનું સાહિત્ય અત્યંત ઉપયોગી છે, તેમ હું માતું છું.

અમદાવાદ. તા. ૧-૫-૫૮

આચાર્ય-સુભતિકુંવર.

શ્રી શ્રમણ સંઘના ઉપાધ્યાય કવિ મુનિશ્રી અમરચંદ્ર મહારાજનો

## કલ્પસૂત્ર માટે અલવરનો આવેલ પત્ર

શ્રીચુત લોગીલાલજી-અમ વા .

જયવીર

આપને ત્યાં ખીરાજમાન પરમ શ્રદ્ધેય શ્રી શ્રી ૧૦૦૮ શ્રી પૂજ્યપાદશ્રી ઘાસીલાલ મહારાજ આદિ બધા સંતોની સેવામાં વંદન સુખશાન્તિ નિવેદન છે

આપે શ્રદ્ધેય કવિજીને મોકલેલ “કલ્પસૂત્ર” મેળવીને પ્રસન્નતા પ્રગટ કરી છે અને સાદર યથાયોગ્ય અભિનંદન પૂર્વક લખાવ્યું છે કે “કલ્પસૂત્ર”નું પ્રકાશન બહુજ ઉત્કૃષ્ટકોટિનું છે. તેની ટીકા સુંદર-વિસ્તારપૂર્વક સારી રીતે લખેલ છે. ટાઇમ મળતાં અધ્યયન કરવા માટે પ્રયત્ન કરવામાં આવશે. છાપવામાં આવેલ આવૃત્તિ માટે કોટિ ધન્યવાદ આપવામાં આવે છે.

કવિશ્રીજીનું સ્વાસ્થ્ય સારી રીતે ચાલે છે પહેલાની અપેક્ષાએ કંઈક સાફ છે. આ પત્ર વીલમ્બથી લખવામાં આવેલ છે તો ક્ષમા કરજો.

અલવર (રાજસ્થાન)

તા. ૬-૮-૧૯૫૮

}

લવહીય : રતનલાલ સચેતી  
(હિન્દીનો ગુજરાતીમાં અનુવાદ)



## वन्देवीरम्

घाटकोपर ( बम्बई )

ता. ९-२-५९

## सम्माति-पत्रम्

यहां पर श्रमणसंघीय पं० र० श्री प्रतापमलजी महाराज श्री जैनसिद्धांत विशारद श्री राजेन्द्रमुनिजी जैनसिद्धान्तविशारद श्री रमेशमुनिजी महाराज आदि ठाणा इसे सुख शांतिपूर्वक विराजमान है।

आप के वहां जैनाचार्य पूज्य श्री घासीलालजी महाराज आदि तत्र विराजित समस्त मुनिमण्डल की वन्दना अर्ज करे और सुखशाता पूछें।

आचार्य श्रीके द्वारा अनुवादित कितनेक शास्त्र देखे। जिन का अनुवादन अत्यन्त सुन्दर ढंग से हुआ है। प्रत्येक व्यक्ति इन शास्त्रोंसे सरलता पूर्वक लाभ उठा सकता है। आपका यह अथक प्रयत्न जैन समाज पर अत्यन्त उपकारी होगा, जो कि कभी भुलाया नहीं जा सकता है।

आपका

रामचन्द्र जैन

ता. ९-२-५९

हमारा पता :-

पं. र. श्री प्रतापमलजी म. श्री की सेवामें

C/o भोगीलाल केशवजी एन्ड कं.

"N" गली, दाणा बंदर,

बम्बई ९

Bombay-9



## સ્વાધ્યાય માટે ખાસ સૂચના

- (૧) આ સૂત્રના મૂલપાઠનો સ્વાધ્યાય દિવસ અને રાત્રિના પ્રથમ પ્રહરે તથા ચોથા પ્રહરે કરાય છે.
- (૨) પ્રાતઃઉષાકાળ, સન્ધ્યાકાળ, મધ્યાહ્ન, અને મધ્યરાત્રિમાં બે-બે ઘડી (૪૮ મિનિટ) વંચાય નહીં, સૂર્યોદયથી પહેલાં ૨૪ મિનિટ અને સૂર્યોદયથી પછી ૨૪ મિનિટ એમ બે ઘડી સર્વત્ર સમજવું.
- (૩) માસિક ધર્મવાળાં સ્ત્રીથી વંચાય નહીં તેમજ તેની સામે પણ વંચાય નહીં. જ્યાં આ સ્ત્રીઓ ન હોય તે ઓરડામાં બેસીને વાંચી શકાય.
- (૪) નીચે લખેલા ૩૨ અસ્વાધ્યાય પ્રસંગે વંચાય નહીં.
  - (૧) આકાશ સંબંધી ૧૦ અસ્વાધ્યાય કાલ.
    - (૧) ઉલ્કાપાત—મોટા તારા ખરે ત્યારે ૧ પ્રહર (ત્રણ કલાક સ્વાધ્યાય ન થાય.)
    - (૨) દિગ્દાહ—કોઈ દિશામાં અતિશય લાલવર્ણ હોય અથવા કોઈ દિશામાં મોટી આગ લગી હોય તો સ્વાધ્યાય ન થાય.
    - (૩) ગર્જરવ—વાદળાંનો ભયંકર ગર્જરવ સંભળાય. ગાજવીજ ઘણી જણાય તો ૨ પ્રહર ( ૯ કલાક) સ્વાધ્યાય ન થાય.
    - (૪) નિર્ધાત—આકાશમાં કોઈ વ્યંતરાદિ દેવકૃત ઘોરગર્જના થઈ હોય, અથવા વાદળો સાથે વીજળીના કડાકા બોલે ત્યારે આઠ પ્રહર સુધી સ્વાધ્યાય ન થાય.
    - (૫) વિદ્યુત—વિજળી ચમકવા પર એક પ્રહર સ્વાધ્યાય ન થા.
    - (૬) યૂપક—શુક્લપક્ષની એકમ, બીજ અને ત્રીજના દિવસે સંધ્યાની પ્રભા અને ચંદ્રપ્રભા મળે તો તેને યૂપક કહેવાય. આ પ્રમાણે યૂપક હોય ત્યારે રાત્રિમાં પ્રથમા ૧ પ્રહર સ્વાધ્યાય ન કરવો.
    - (૭) યક્ષાદીપ્ત—કોઈ દિશામાં વીજળી ચમકવા જેવો જે પ્રકાશ થાય તેને યક્ષાદીપ્ત કહેવાય. ત્યારે સ્વાધ્યાય ન કરવો.
    - (૮) દ્યુમિકાકૃષ્ણ—કારતકથી મહા માસ સુધી ધૂમાડાના રંગની જે સૂક્ષ્મ જલ જેવી ધૂમ્મસ પડે છે તેને ધૂમિકાકૃષ્ણ કહેવાય છે. તેવી ધૂમ્મસ હોય ત્યારે સ્વાધ્યાય ન કરવો.
    - (૯) મહિકાશ્વેત—શીતકાળમાં શ્વેતવર્ણવાળી સૂક્ષ્મ જલરૂપી જે ધુમ્મસ પડે છે. તે મહિકાશ્વેત છે ત્યારે સ્વાધ્યાય ન કરવો.
    - (૧૦) રજઉદ્ઘાત—ચારે દિશામાં પવનથી બહુ ધૂળ ઉડે. અને સૂર્ય ઢંકાઈ જાય. તે રજઉદ્ઘાત કહેવાય. ત્યારે સ્વાધ્યાય ન કરવો.

(૨) ઔદારિક શરીર સંબંધી ૧૦ અસ્વાધ્યાય

(૧૧-૧૨-૧૩) હાડકાં-માંસ અને રૂધિર આ ત્રણ વસ્તુ અગ્નિથી સર્વથા બળી ન જાય, પાણીથી ધોવાઈ ન જાય અને સામે દેખાય તો ત્યારે સ્વાધ્યાય ન કરવો. કૂટેલું ઈંડુ હોય તો અસ્વાધ્યાય.

(૧૪) મળ-મૂત્ર—સામે દેખાય, તેની દુર્ગન્ધ આવે ત્યાં સુધી અસ્વાધ્યાય.

(૧૫) સ્મશાન—આ ભૂમિની ચારે બાજુ ૧૦૦/૧૦૦ હાથ અસ્વાધ્યાય.

(૧૬) ચંદ્રગ્રહણ—જ્યારે ચંદ્રગ્રહણ થાય ત્યારે જઘન્યથી ૮ મુહૂર્ત અને ઉત્કૃષ્ટથી ૧૨ મુહૂર્ત અસ્વાધ્યાય જાણવો.

(૧૭) સૂર્યગ્રહણ—જ્યારે સૂર્યગ્રહણ થાય ત્યારે જઘન્યથી ૧૨ મુહૂર્ત અને ઉત્કૃષ્ટથી ૧૬ મુહૂર્ત અસ્વાધ્યાય જાણવો.

(૧૮) રાજવ્યુદ્ગત—નજીકની ભૂમિમાં રાજાઓની પરસ્પર લડાઈ થતી હોય ત્યારે, તથા લડાઈ શાન્ત થયા પછી ૧ દિવસ-રાત સુધી સ્વાધ્યાય ન કરવો.

(૧૯) પતન—કોઈ મોટા રાજાનું અથવા રાષ્ટ્રપુરુષનું મૃત્યુ થાય તો તેનો અગ્નિસંસ્કાર ન થાય ત્યાં સુધી સ્વાધ્યાય કરવો નહીં તથા નવાની નિમણુંક ન થાય ત્યાં સુધી ઊંચા અવાજે સ્વાધ્યાય ન કરવો.

(૨૦) ઔદારિક શરીર—ઉપાશ્રયની અંદર અથવા ૧૦૦-૧૦૦ હાથ સુધી ભૂમિ ઉપર બહાર પંચેન્દ્રિયજીવનું મૃતશરીર પડ્યું હોય તો તે નિર્જીવ શરીર હોય ત્યાં સુધી સ્વાધ્યાય ન કરવો.

(૨૧થી ૨૮) ચારે મહોત્સવ અને ચાર પ્રતિપદા—આષાઢ પૂર્ણિમા, (ભૂતમહોત્સવ), આસો પૂર્ણિમા (ઈન્દ્ર મહોત્સવ), કાર્તિક પૂર્ણિમા (સ્કંધ મહોત્સવ), ચૈત્ર પૂર્ણિમા (યક્ષમહોત્સવ, આ ચાર મહોત્સવની પૂર્ણિમાઓ તથા તે ચાર પછીની કૃષ્ણપક્ષની ચાર પ્રતિપદા (એકમ) એમ આઠ દિવસ સ્વાધ્યાય ન કરવો.

(૨૯થી ૩૦) પ્રાતઃકાલે અને સન્ધ્યાકાળે દિશાઓ લાલકલરની રહે ત્યાં સુધી અર્થાત્ સૂર્યોદય અને સૂર્યાસ્તની પૂર્વે અને પછી એક-એક ઘડી સ્વાધ્યાય ન કરવો.

(૩૧થી ૩૨) મધ્ય દિવસ અને મધ્ય રાત્રિએ આગળ-પાછળ એક-એક ઘડી એમ બે ઘડી સ્વાધ્યાય ન કરવો.

ઉપરોક્ત અસ્વાધ્યાય માટેના નિયમો મૂલપાઠના અસ્વાધ્યાય માટે છે. ગુજરાતી આદિ ભાષાંતર માટે આ નિયમો નથી. વિનય એ જ ધર્મનું મૂલ છે. તેથી આવા આવા વિકટ પ્રસંગોમાં ગુરુની અથવા વડીલની ઈચ્છાને આજ્ઞાને જ વધારે અનુસરવાનો ભાવ રાખવો.

# स्वाध्याय के प्रमुख नियम

- (१) इस सूत्र के मूल पाठ का स्वाध्याय दिन और रात्री के प्रथम प्रहर तथा चौथे प्रहर में किया जाता है ।
- (२) प्रातः ऊषा-काल, सन्ध्याकाल, मध्याह्न और मध्य रात्री में दो-दो घड़ी (४८ मिनट) स्वाध्याय नहीं करना चाहिए, सूर्योदय से पहले २४ मिनट और सूर्योदय के बाद २४ मिनट, इस प्रकार दो घड़ी सभी जगह समझना चाहिए ।
- (३) मासिक धर्मवाली स्त्रियों को स्वाध्याय नहीं करना चाहिए, इसी प्रकार उनके सामने बैठकर भी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए, जहाँ ये स्त्रियाँ न हों उस स्थान या कक्ष में बैठकर स्वाध्याय किया जा सकता है ।
- (४) नीचे लिखे हुए ३२ अस्वाध्याय-प्रसंगों में वाँचना नहीं चाहिए—

(१) आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्यायकाल

- (१) **उल्कापात**—बड़ा तारा टूटे उस समय १ प्रहर (तीन घण्टे) तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।
- (२) **दिग्दाह**—किसी दिशा में अधिक लाल रंग हो अथवा किसी दिशा में आग लगी हो तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।
- (३) **गर्जांश्व**—बादलों की भयंकर गडगडाहट की आवाज सुनाई देती हो, बिजली अधिक होती हो तो २ प्रहर (छ घण्टे) तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।
- (४) **निर्घात**—आकाश में कोई व्यन्तरादि देवकृत घोर गर्जना हुई हो अथवा बादलों के साथ बिजली के कडाके की आवाज हो तब आठ प्रहर तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।
- (५) **विद्युत्**—बिजली चमकने पर एक प्रहर तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।
- (६) **यूपक**—शुक्ल-पक्ष की प्रथमा, द्वितीया और तृतीया के दिनों में सन्ध्या की प्रभा और चन्द्रप्रभा का मिलान हो तो उसे यूपक कहा जाता है । इस प्रकार यूपक हो उस समय रात्री में प्रथमा १ प्रहर स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।
- (७) **यक्षादीप्त**—यदि किसी दिशा में बिजली चमकने जैसा प्रकाश हो तो उसे यक्षादीप्त कहते हैं, उस समय स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।
- (८) **धूमिका कृष्ण**—कार्तिक से माघ मास तक धूँए के रंग की तरह सूक्ष्म जल के जैसी धूमस (कोहरा) पड़ता है उसे धूमिका कृष्ण कहा जाता है इस प्रकार की धूमस हो उस समय स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।

- (९) **महिकाश्वेत**—शीतकाल में श्वेत वर्णवाली सूक्ष्म जलरूपी जो धूमस पड़ती है वह महिकाश्वेत कहलाती है, उस समय स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।
- (१०) **रजोद्घात**—चारों दिशाओं में तेज हवा के साथ बहुत धूल उड़ती हो और सूर्य ढँक गया हो तो रजोद्घात कहलाता है, उस समय स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।

(२) ऐतिहासिक शरीर सम्बन्धी १० अस्वाध्याय—

- (११,१२,१३) **हाड-मांस और रुधिर** ये तीन वस्तुएँ जब-तक अग्नि से सर्वथा जल न जाएँ, पानी से धुल न जाएँ और यदि सामने दिखाई दें तो स्वाध्याय नहीं करना चाहिए । फूट हुआ अण्डा भी हो तो भी अस्वाध्याय होता है ।
- (१४) **मल-मूत्र**—सामने दिखाई हेता हो, उसकी दुर्गन्ध आती हो तब-तक अस्वाध्याय होता है ।
- (१५) **श्मशान**—इस भूमि के चारों तरफ १००-१०० हाथ तक अस्वाध्याय होता है ।
- (१६) **चन्द्रग्रहण**—जब चन्द्रग्रहण होता है तब जघन्य से ८ मुहूर्त और उत्कृष्ट से १२ मुहूर्त तक अस्वाध्याय समझना चाहिए ।
- (१७) **सूर्यग्रहण**—जब सूर्यग्रहण हो तब जघन्य से १२ मुहूर्त और उत्कृष्ट से १६ मुहूर्त तक अस्वाध्याय समझना चाहिए ।
- (१८) **राजव्युद्गत**—नजदीक की भूमि पर राजाओं की परस्पर लड़ाई चलती हो, उस समय तथा लड़ाई शान्त होने के बाद एक दिन-रात तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।
- (१९) **पतन**—कोई बड़े राजा का अथवा राष्ट्रपुरुष का देहान्त हुआ हो तो अग्निसंस्कार न हो तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए तथा उसके स्थान पर जब तक दूसरे व्यक्ति की नई नियुक्ति न हो तब तक ऊंची आवाज में स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।
- (२०) **औदारिक शरीर**—उपाश्रय के अन्दर अथवा १००-१०० हाथ तक भूमि पर उपाश्रय के बाहर भी पञ्चेन्द्रिय जीव का मृत शरीर पड़ा हो तो जब तक वह निर्जीव शरीर वहाँ पड़ा रहे तब तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।
- (२१ से २८) **चार महोत्सव और चार प्रतिपदा**—आषाढी पूर्णिमा (भूत महोत्सव), आसो पूर्णिमा (इन्द्रिय महोत्सव), कार्तिक पूर्णिमा (स्कन्ध महोत्सव), चैत्र पूर्णिमा (यक्ष महोत्सव) इन चार महोत्सवों की पूर्णिमाओं तथा उससे पीछे की चार, कृष्ण पक्ष की चार प्रतिपदा (ऐकम) इस प्रकार आठ दिनों तक स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।

(२९ से ३०) प्रातःकाल और सन्ध्याकाल में दिशाएँ लाल रंग की दिखाई दें तब तक अर्थात् सूर्योदय और सूर्यास्त के पहले और बाद में एक-एक घड़ी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।

(३१ से ३२) मध्य दिवस और मध्य रात्री के आगे-पीछे एक-एक घड़ी इस प्रकार दो घड़ी स्वाध्याय नहीं करना चाहिए ।

उपरोक्त अस्वाध्याय सम्बन्धी नियम मूल पाठ के अस्वाध्याय हेतु हैं, गुजराती आदि भाषान्तर हेतु ये नियम नहीं है । विनय ही धर्म का मूल है तथा ऐसे विकट प्रसंगों में गुरु की अथवा बड़ों की इच्छा एवं आज्ञाओं का अधिक पालन करने का भाव रखना चाहिए ।

## उत्तराध्ययनसूत्रकी विषयानुक्रमणिका

विषय—	पृष्ठाङ्कः—
१ मङ्गलाचरण	१-५
२ उपाद्घात	६-८
३ अध्ययनोंके नामनिर्देश	९-१०
४ विनयका उपदेश	११-१२
५ संयोगके विषयमें दृष्टान्त	१३-२२
६ विनीत शिष्यादिका लक्षण	२३-२४
७ विनयके विषयमें गुणनिधि शिष्यका दृष्टान्त	२५-२८
८ अविनीत शिष्यका लक्षण और उस-विषय में क्षुद्रबुद्धि शिष्यका दृष्टान्त	२९- ३०-३७
९ दृष्टान्त सहीत अविनीतका लक्षण और अविनीत शिष्यका दृष्टान्त	३८-४४
१० अविनीत प्रवृत्तिमें सूकरका दृष्टान्त श्वानआदि दृष्टान्तके श्रवणसे विनीतशिष्यका कर्तव्य	४५-५२
११ विनय का फल	५५-५७
१२ विनय पालन करनेका उपाय	५८-६४
१३ बालपार्श्वस्थादिकोंका संसर्गकी निंदा	६५-६६
१४ हास्य क्रीडा की निंदा	६७-
१५ क्रोधवश होकर झुठ बोलना आदिका निषेध	६८-७३
१६ शिष्यको प्रतिदिन गुरुके इङ्गित जाननेमें तत्पर रहना चाहिये	७४-७५
१७ शत्रुमर्दन राजाका दृष्टान्त	७६-७८
१८ मणिनाथ का दृष्टान्त	७९-८०
१९ अविनीत और विनीत शिष्यका आचरण	८१
२० चंडरुद्राचार्य के शिष्यका दृष्टान्त	८२-९०
२१ गुरु चित्तानुसारी शिष्यका दृष्टान्त	९१-९२



	विषय	पृष्ठाङ्क-
२२	क्रोधको निष्फल बनानेमें दृष्टान्त	९३-९६
२३	प्रशंसामें मुनिको अपना उत्कर्षका त्यागका उपदेश	९७-९८
२४	अपनी निन्दामें मुनिको अपकर्ष (हलकापना) का त्याग करनेका उपदेश	९९-१०१
२५	आत्माका दमन करनेसेही क्रोधको निष्फल बनासकते है इस हेतु से आत्मदमनका उपदेश और उस विषयमें अनेक दृष्टान्त	१०२-१२७
२६	विनयका उपदेश और उस विषयमें आसन विनय पृच्छा प्रकार विगेरह विनयशालि होनेका दृष्टान्त	१२८-१३७
२७	विनीत शिष्यको वाचनादानका प्रकार	१३८-१४०
२८	सूत्र शब्दका अर्थ और सूत्र निक्षेप लक्षण	१४१-१४४
२९	सूत्रके ३२ दोषोंका वर्णन	१४५-१५६
३०	सूत्रके आठ ८ और छह ६ गुणोंका वर्णन	१५७-१६०
३१	सूत्रका भेद और सूत्रका उच्चारणविधि	१६१-१६३
३२	सूत्रके बोलनेमें दोषोंका कथन	१६४-१६८
३३	वाचना द्वारका वर्णन	१६९-१७३
३४	वाचना द्वारके विषयमें राजाका दृष्टान्त	१७४-१७५
३५	सूत्रार्थकापौर्वापर्य निरूपण नामका आठवां द्वारका वर्णन	१७५-१७९
३६	सूत्र अर्थ एवं सूत्रार्थमें यथोत्तर प्रबलताका कथन नामका नवमां द्वारका वर्णन	१८०-१८४
३७	निरवद्य भाषणविधि	१८४-१९२
३८	निरवद्य भाषा का भेद	१९३-२००
३९	सावद्य भाषण बोलनेका निषेध	२०१-२०२
४०	सावद्य भाषणके विषयमें अश्वपतिका दृष्टान्त	२०३-२०५

विषय-	पृष्ठाङ्क-
४१ निरर्थक भाषण बोलने का निषेध और उस विषयमें दृष्टान्त	२०५-२०७
४२ मार्मिक भाषण बोलनेका निषेध और धनगुप्त श्रेष्टिका दृष्टान्त	२०८-२१६
४३ अन्य का संसर्गसे होनेवाला दोषका परिहार और ब्रह्मचारिका कर्तव्य	२१७-२१८
४४ ब्रह्मचारिका कर्तव्य और शिष्यों को शिक्षा	२१९-२२७
४५ एषणा समिति विषयक विनय धर्मका कथन	२२८-२३३
४६ गृहैषणा समिति की विधि	२३४-२३५
४७ ग्रासैषणा की विधि	२३६
४८ वचनकी यतना (नियमन) की विधि	२३६-२४१
४९ विनीत शिष्यको और अविनीत शिष्य को उपदेश देनेमें फल का भेद और कुशिष्यकी दुर्भावना	२४२-२४५
५० सत् शिष्य की भावनाका वर्णन	२४६
५१ विनीत शिष्य को विनय सर्वस्व का उपदेश द्वारा शिक्षा का वर्णन	२४७-२४८
५२ बुद्धोपघाती न बननेके विषयमें वीर्योल्लासा-चार्य का दृष्टान्त	२४९-२५३
५३ आचार्य महाराज कुपित होनेपर शिष्यके कर्तव्य का उपदेश	२५४-२५८
५४ अध्ययन के अर्थ का उपसंहार और आचार्यादिकों का प्रसन्न होनेपर फल	२५९-२६०
५५ श्रुतज्ञान के लाभका फल और श्रुतज्ञान का लाभ होनेपर मोक्षप्राप्ति अथवा देवत्व प्राप्ति का वर्णन और प्रथमाध्ययन समाप्ति	२६१-२६५
५६ द्वितीयाध्ययन प्रारम्भ-बाईस परीषहों का प्रस्ताव	२६६-२७२

	विषय	पृष्ठाङ्क-
५७	बाईस परीषहों का नामनिर्देश	२७२-२७५
५८	परीषहों का स्वरूपवर्णन में क्षुधापरीषहजय का वर्णन और दृढवीर्य मुनि का दृष्टान्त	२७६-२८७
५९	पिपासापरीषह का वर्णनमें पानमेद का वर्णन और धनप्रियमुनि दृष्टान्त	२८८-२९९
६०	शीतपरीषह जय का वर्णन और उस विषयमें मुनिचतुष्टय का दृष्टान्त	३००-३०७
६१	उष्णपरीषह जय का वर्णन और अरहन्नक मुनि का दृष्टान्त	३०८-३१७
६२	दंशमशकपरीषह का वर्णन और उस विषयमें सुदर्शन मुनि का दृष्टान्त	३१८-३२४
६३	अचेलपरीषह जय का वर्णन	३२४-३३०
६४	स्थविरकल्पका वर्णन और उस विषयमें संलेखना, पादपोषगमन, और संस्तारक विधि का वर्णन	३३१-३३८
६५	जिनकल्पिका वर्णनमें पिण्डैषणा विधि जिन-कल्पमर्यादा	३३९-३४७
६६	स्थविरकल्प और जिनकल्पका दश प्रकारका वर्णन	३४७-
६७	आचैलक्य वर्णन और उस विषयमें सोमदेव मुनिका दृष्टान्त	३४८-३६८
६८	अरतिपरीषह जयका वर्णन और उस विषयमें अर्हदत्तमुनि का दृष्टान्त	३६९-३९०
६९	स्त्री परीषहजयका वर्णन और लावण्यमुनि का दृष्टान्त	३९१-४०४
७०	चर्यापरीषह जयका वर्णन	४०५-४१५
७१	नैषधिकी, शय्या, आक्रोश परीषह वर्णन	४१६-४३६
७२	वधपरीषह याचनापरीषह और अलाभपरीषह का वर्णन	४३७-४६२
७३	रोगपरीषह, तृणपाश, जलपरीषहका वर्णन	४६३-४८४

विषय	पृष्ठाङ्क-
७४ सत्कारपुरस्कार परीषह, प्रज्ञापरीषह, अज्ञानपरीषहका वर्णन	४८५-५२४
७५ दर्शन परीषह का वर्णन	५२५-५५२
७६ परीषहोंका अवतरण और छद्मस्थ परीषहोंका भेद वर्णन	५५३-५६४
७७ केवली परीषहों के भेदों का वर्णन	५६५-५६६
७८ अध्ययनका उपसंहार और द्वितीया- ध्ययन समाप्ति	५६७-५६९
७९ तृतीयाध्ययन प्रारंभ और अङ्ग चतुष्टयका वर्णन और उस विषयमें दश दृष्टान्त	५७०-६२६
८० जीवका अनेक जातिमें भ्रमण और संसार स्वरूपका वर्णन	६२७-६३४
८१ जीवका एकेन्द्रि आदिमें भ्रमण	६३५-
८२ जीवका मनुष्यभव प्राप्तिका क्रम वर्णन	६३६-६३८
८३ मनुष्यभवका लाभ होनेपर भी धर्मश्रवणकी दुर्लभता	६३९-६४०
८४ धर्मश्रवण करने पर भी श्रद्धारहित होनेपर धर्मसे भ्रष्ट होना	६४१-६४२
८५ श्रद्धा लौकिकी वर्णन प्रथमनिह्व जमालि मुनिका दृष्टान्त	६४३-६७६
८६ द्वितीय निह्व तिष्यगुप्त मुनिका दृष्टान्त	६७७-६९५
८७ तृतीय निह्व आषाढाचार्यका दृष्टान्त	६९६-७०२
८८ चतुर्थ निह्व अश्वमित्रका दृष्टान्त	७०३-७१०
८९ पंचमनिह्व गङ्गाचार्यका दृष्टान्त	७११-७२७
९० छद्म निह्व रोहगुप्तका दृष्टान्त	७२८-७६०
९१ सप्तम निह्व गोष्ठमाहिल मुनिका दृष्टान्त	७६१-७७६
९२ बोटिक दृष्टान्त	७७७-७८७

	विषय	पृष्ठाङ्क-
९३	मनुष्यत्व प्राप्त होनेपर भी संयमवीर्यको दुर्लभता	७८८-७८९
९४	मनुष्यत्व प्राप्त होनेका फल और मनुष्यत्व प्राप्तकरके चतुरङ्गी संपन्नको मोक्षफलकीप्राप्ति	७९०-७९१
९५	शिष्योंको उपदेशमें पुण्यकर्म अवशेष से देवगतिकी प्राप्ति	७९२-७९५
९६	दशांग का प्रदर्शन और पुण्यकर्म भोगनेपर मोक्षप्राप्ति	७९६-८००



॥ श्रीबीतरागाय नमः ॥

जैनाचार्य—जैनधर्मदिवाकर—पूज्यश्री—घासीलाल—त्रतिविरचितया  
प्रियदर्शिन्याख्यया व्याख्यया समलङ्कृतम्—

## उत्तराध्ययनसूत्रम् ।

—xxx:०:xxx—

॥ अथ मङ्गलाचरणम् ॥

( मालिनी-छन्दः )

( १ )

भवजलधिनिमज्जजीवरक्षैककृत्यं,  
विमलहितवचोभिर्दर्शितात्मैकसृत्यम् ।  
सुर-नर-घृनिवृन्दैर्बन्धमानाङ्घ्रियत्रम्,  
सकलगुणनिधानं वर्धमानं प्रणौमि ॥

( २ )

चरमजिनवरस्य प्राणिकल्याणकर्त्री,  
चरमसमयजाता देशना सोत्तरारव्या ।  
भवतु भविजनानां सुप्रवेद्या सुहृद्या,  
इति सरलसरण्या वृत्तिरातन्यतेऽस्याः ॥

( पृथ्वी-छन्दः )

( ३ )

सगुप्तिसमितिं समां विरतिमादधानं सदा,  
क्षमावदखिलक्षमं कलितमञ्जुचारित्रकम् ।  
सदोरमुखवस्त्रिकाविलसिताऽऽननेन्दुं गुरुं,  
प्रणौमि भववारिधिप्लवमपूर्वबोधप्रदम् ॥

( अनुष्टुप्-छन्दः )

( ४ )

जैनीं सरस्वतीं नत्वा, गौतमं गणनायकम् ।  
उत्तराध्ययने वृत्तिं, करोमि प्रियदर्शिनीम् ॥

## । हिन्दीभाषानुवाद ।

उत्तराध्ययनसूत्र पर संस्कृत टीका करने के पहले टीकाकार सर्वप्रथम अन्तिम तीर्थंकर श्रीवर्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार करते हैं— 'भवजलधि०' इत्यादि ।

( भवजलधिनिमज्जजीवरक्षैककृत्यं ) अपार संसाररूप समुद्र में डूबते हुए जीवों की रक्षा करना ही जिनका कार्य था, ( विमल-हितवचोभिर्दर्शितात्मैकसृत्यम् ) जिन्होंने अपनी निर्मल हितावह देशनाओं के द्वारा भव्यात्माओं को आत्मकल्याण का मार्ग प्रदर्शित किया, तथा ( सुर-नर-मुनिवृन्दैर्वन्द्यमानाङ्घ्रिपद्मम् ) जिनका चरण-कमल सुर-नर और मुनियों के समूह से वन्द्यमान था, ऐसे ( सकल गुणनिधानं ) सभी गुणों के-समस्त क्षायिक गुणों के-निधानस्वरूप ( वर्धमानं ) चरम तीर्थंकर श्रीवर्धमानस्वामी को ( प्रणौमि ) मन-वचन काया से मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

भावार्थ—वर्धमान प्रभुने इस अपार संसाररूपी समुद्र में डूबते हुए जीवों को आत्म उद्धार का मार्ग बतलाया, उस मार्ग से

## गुजरातीभाषानुवाद.

उत्तराध्ययन सूत्र उपर संस्कृत टीका करतां पढेलां टीकाकार सर्व प्रथम अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्धमान जिनेन्द्रने नमस्कार करे छे:—'भवजलधि०' इत्यादि.

भवजलधिनिमज्जजीवरक्षैककृत्यं —अपार संसाररूप समुद्रमां डुपता लुवोनी रक्षा करवानुं ज जेमनुं कार्यं हुतुं, विमलहितवचोभिर्दर्शितात्मैकसृत्यम्—जेमणे पोतानी निर्मल हितावह देशनाओथी लव्यात्माओना आत्म-कल्याणुनेो मार्गं समज्जोयो, तथा सुर-नर-मुनि-वृन्दैर्वन्द्यमानाङ्घ्रिपद्मम्—जेमनां यरणु कमल सुर-नर अने मुनियोना समूहने वंदनीय हुतां, येवा सकलगुण-निधानं—अथा गुणोना-समस्त क्षायिक गुणोना-निदानस्वरूप, वर्धमानं—यरम तीर्थंकर श्री वर्धमान स्वामीने, प्रणौमि—मन वचन कायाथी नमस्कार करूं छुं.

लावार्थ—वर्धमान प्रभुये आ अपार संसाररूपी समुद्रमां डुपता लुवोने आत्म उद्धारनेो मार्गं अताओयो. ते मार्गथी तेमनी रक्षा थध. आथी लगवानने

उनकी रक्षा हुई। इससे भगवानका तरण-तारण-शक्तिमत्त्व सूचित किया गया है, क्योंकि आत्मा जब तक स्वयं तरण-तारण शक्तिसम्पन्न नहीं होता, तब तक वह न स्वयं तर सकता है न दूसरों को तार सकता है। तरणतारणशक्तिसम्पन्न आत्मा तभी बनता है कि जब उससे समस्त विकारी भाव-रागादिक-नष्ट हो जाते हैं। इस बात को गणधरों ने सूत्रों में तथा दर्शनकारों ने अनुमान प्रमाण से दार्शनिक ग्रन्थों में अच्छी तरह से स्पष्ट किया है। प्रभु की देशना से ही जीवों को अभय प्राप्त होता है। देशना प्रभु की केवलज्ञानप्राप्ति के अनन्तर ही होती है, तभी जीवों की रक्षा होती है। “भवजलधि-निमज्जजीवरक्षैककृत्यम्” इस विशेषण की सार्थकता प्रभु में निर्बाध-रूप से साबित होती है। इसी बात को हेतुपरक “विमलहितवचो-भिर्दर्शितात्मैकसृत्यम्” इस विशेषणद्वारा टीकाकार ने चरितार्थ किया है। प्रभु ने संसाररूपी समुद्र से जीवों का उद्धार कैसे किया? क्या सिखाकर उन्हें अपने कर्त्तव्य की ओर प्रेरित किया? किस प्रकार की वाणी से विस्मृत हुए मार्ग पर लगाकर उन्हें आत्मकल्याण का पथिक बनाया? यही सब बातें इस विशेषण से पुष्ट की गई है।

तरण-तारणना शक्तिमान मानवामां आव्या छे. केमके आत्मा न्यां सुधी स्वयं तरण-तारणशक्तिशाणी नथी अनतो त्यां सुधी न तो ते पोते तरी शके छे के न थीने तारी शके छे. तरणतारणशक्तिसंपन्न आत्मा तयारे अने छे के न्यारे तेनाथी सधणा विकारी भाव-रागवगेरे नाश पावे छे. आ वातने गणधरोये सूत्रोमां तथा दर्शनकारोये अनुमान प्रमाणथी दार्शनिक ग्रंथोमां सारी रीते स्पष्ट करेले छे. प्रभुनी देशनाथी न लोवोने अलय प्राप्त थाय छे. देशना प्रभुनी केवलज्ञाननी प्राप्ति तथा पछी न थाय छे, तयारे न लोवोनी रक्षा थाय छे. अेटले, “भवजलधिनिमज्जजीवरक्षैककृत्यं” आ विशेषणनी सार्थकता प्रभुमां निर्बाधितरूपथी साणीत थाय छे. आ वातने हेतुपरक “विमलहितवचोभिर्दर्शितात्मैकसृत्यम्” आ विशेषणद्वारा टीकाकारे चरितार्थ करेले छे. प्रभुये संसाररूपी समुद्रथी लोवोने उद्धार केवी रीते कर्यो? शुं शिष्यीने तेमने पोताना कर्त्तव्य तरङ्ग प्रेरणा लेता कर्यो? क्या प्रकारनी वाणीथी अेभणु विस्मृत थयेला मार्ग उपर लावी आत्मकल्याणना पथे वाज्यां? आ सधणी वातोनुं आ विशेषणथी समर्थन करवामां आवेले छे.



પ્રભુને જો મી આત્મા કે હિત કા માર્ગ બતલાયા વહ “વિમલ” અર્થાત્ પૂર્વાપરવિરોધ રહિત હૈ। જ્ઞાન મેં સર્વથા શુદ્ધિ આયે વિના વચન મેં સર્વથા પ્રમાણતા નહીં આતી હૈ, યહ એક સર્વમાન્ય સિદ્ધાન્ત હૈ। ઇસસે ભગવાન મેં “આદેયવચનતારૂપ અતિશય” પ્રગટ કિયા ગયા હૈ। વચનોં મેં સર્વથા પ્રમાણતા કા સદ્ભાવ હી ડનકી વિમલતા હૈ। એસે વચનોં સે ત્રિકાલ મેં મી કિસી કા અહિત નહીં હોતા હૈ। વે સદા હિતકારક હી હોતે હૈં। વચન કે ઇન દો વિશેષણોં સે ટીકાકારને અન્ય તીર્થિકોં કે વચનોં મેં સર્વથા પ્રમાણતા કા અભાવ પ્રતિપાદિત કિયા હૈ। અતઃ “ભવજલધિ૦” ઓર “વિમલહિતવચોભિર્દર્શિતા૦” યે દોનોં વિશેષણ “અન્યયોગવ્યચ્છેદક” હૈં। તથા “સુર-નર-મુનિ વૃન્દૈર્વન્દ્યમાનાઙ્ગિપદ્મમ્” ઇસ વિશેષણ સે ભગવાન મેં “ત્રિલોક-વન્દ્યત્વ” સૂચિત કિયા ગયા હૈ। સુરવૃન્દ-ઇન્દ્રાદિક દેવસમૂહ, નરવૃન્દ-ચક્રવર્તી આદિ, તથા મુનિવૃન્દ-સર્વવિરતિમુનિસમૂહ, યે સમી સંસારી જીવોં કે દ્વારા પૂજ્ય હોતે હૈં। ઇન પૂજ્યોં દ્વારા મી પ્રભુ કે ચરણકમલ પૂજ્ય હુએ હૈં। ઇસસે પ્રભુ મેં “ત્રિલોકવન્દ્યતા” સૂચિત હોતી હૈ। તથા-“સકલગુણનિધાનં” ઇસ વિશેષણ સે પ્રભુ મેં જ્ઞાના-

પ્રભુએ આત્માના હિતનો જે કાંઈ માર્ગ બતાવ્યો તે “વિમલ” અર્થાત્ પૂર્વાપરવિરોધથી રહિત છે. જ્ઞાનમાં સંપૂર્ણપણે શુદ્ધિ આવ્યા વિના વચનમાં સર્વથા પ્રમાણતા આવતી નથી, આ એક સર્વમાન્ય સિદ્ધાન્ત છે. આથી ભગવાનમાં “આદેયવચનતારૂપ અતિશય” પ્રગટ કરેલ છે. વચનોમાં સર્વથા પ્રમાણતાનો સદ્ભાવ જ તેની વિમળતા છે. એવા વચનોથી ત્રણ કાળમાં પણ કોઈનું અહિત થતું નથી. તે સદા હિત કરનાર જ હોય છે. વચનના આ બે વિશેષણોથી ટીકાકારે બીજા ધર્મવાળાના વચનોમાં સર્વથા પ્રમાણતાનો અભાવ પ્રતિપાદિત કરેલ છે. એટલે “ભવજલધિ૦” અને “વિમલહિતવચોભિર્દર્શિતા૦” આ બંને વિશેષણ “અન્યયોગવ્યચ્છેદક” છે. તથા “સુર-નર-મુનિવૃન્દૈર્વન્દ્યમાનાઙ્ગિપદ્મમ્” આ વિશેષણથી ભગવાનમાં “ત્રિલોકવન્દ્યત્વ” સૂચિત કરવામાં આવેલ છે. સુરવૃન્દ-ઇન્દ્રાદિક દેવસમૂહ, નરવૃન્દ-ચક્રવર્તી આદિ, તથા મુનિવૃન્દ-સર્વવિરતિમુનિસમૂહ, આ બધા સંસારી જીવો માટે પૂજ્ય હોય છે. આ પૂજ્યો મારફત પ્રભુનાં ચરણ કમળ પૂજ્ય થયેલ છે. આથી પ્રભુમાં “ત્રિલોકવન્દ્યતા” સૂચિત થાય છે. તથા-“સકલગુણનિધાનં” આ

तिशय का सूचन किया गया है, क्योंकि-सकलगुणनिधान-अनन्त-चतुष्टयादिरूप शुद्ध निर्मल गुण, केवल ज्ञान जागृत होने पर ही आत्मा में प्रकट होता है ॥ १ ॥

इस प्रकार चौतीस अतिशयों से विराजमान श्रीवर्धमान प्रभु को नमस्कार कर टीकाकार अब उनकी दिव्यदेशनारूप इस शास्त्र की टीका करने का कारण निर्दिष्ट करते हैं—‘चरमजिन०’ इत्यादि ।

(प्राणिकल्याणकर्त्री) संसारस्थ समस्त प्राणियों के कल्याण करने वाली जो (चरमजिनवरस्य) अन्तिम तीर्थकर श्री भगवान महावीर स्वामी द्वारा (चरमसमयजाता) अन्तिम समय में अर्थात् निर्वाणासन्न समय में दी गई (देशना) देशना (सोत्तराख्या) वह उत्तराध्ययन नाम से प्रसिद्ध है । वह उत्तराध्ययनरूप देशना (भविजनानां) भव्यात्माओं के लिये (सुप्रवेद्या) सुबोध्य एवं (सुहृद्या) हृदयंगम्य हो, (इति) इस हेतु से (अस्याः) इसकी (सरलसरण्या) सुगमशैली से (वृत्तिरातन्यते) वृत्ति की रचना करता हूँ ॥ २ ॥

अब टीकाकार गुरुको नमस्कार करते हैं—‘सगुप्ति०’ इत्यादि ।

विशेषणुथी प्रभुभां “ज्ञानातिशय”नुं सूचन करायेल छे, केम के-सकल गुण-निधान-अन-तत्तुष्टयादिरूप शुद्ध निर्मल गुण, केवलज्ञान जागृत थाथी न आत्माभां प्रकट थाथ छे.

आ प्रकारे चौतीस अतिशयोथी विराजमान श्री वर्धमान प्रभुने नमस्कार करी टीकाकार डवे अमनी दिव्य देशनाइय आ शास्त्रनी टीका करवानुं कारणु निर्देश करे छे—चरमजिन० इत्यादि.

प्राणिकल्याणकर्त्रीः—संसारना समस्त प्राणियोनुं कल्याणु करवावाणी ने चरमजिनवरस्य-छेदलां तिर्थकर श्री भगवान महावीर स्वामी द्वारा चरमसमयजाता-अन्तिम समये अटले निर्वाणासन्न समये आपवाभां आवेल देशना देशना-सोत्तराख्या-ने उत्तराध्ययन नामथी प्रसिद्ध छे. ते उत्तराध्ययनइय देशना भविजनानां-भव्यात्माओने माटे सुप्रवेद्या-सुबोध्य अमन सुहृद्या-हृदयंगम्य थनो. इति-आ हेतुथी अस्याः-आनी सरलसरण्या-सुगम शैलीथी वृत्तिरातन्यते-वृत्तिनी रचना करूं छुं.

डवे टीकाकार गुरुने नमस्कार करे छे—‘सगुप्ति०’ इत्यादि.

(सगुप्तिसमितिं समां विरतिमादधानं सदा) जो पांच समिति और तीन गुप्तियों के धारक हैं, तथा सर्वदा सर्वविरति को पालने वाले हैं, (क्षमावदखिलक्षमं) पृथिवी के समान जो सर्व प्रकार के अनुकूल प्रतिकूल परीषहादिक को सहन करते हैं, (कलितमञ्जुचारित्रकम्) जो निरतिचार चारित्र अराधन में सदा तत्पर रहते हैं, तथा—(सदोरमुखवस्त्रिकाविलसिताननेन्दुं) वायुकायादि की यतना के लिये जिनका मुखरूपी चन्द्रमण्डल सदा सदोरक मुखवस्त्रिका से सुशोभित है, तथा—(अपूर्वबोधप्रदं) जो अपूर्व समकितरूपी बोध-बीज के दाता हैं और (भववारिधिप्लवम्) इस संसारसमुद्र से भव्य जीवों के पार होने के लिये नौका समान हैं, ऐसे (गुरुं) निर्ग्रन्थ गुरु महाराज को (प्रणौमि) मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

अब टीकाकार भगवानकी वाणी आदिको नमस्कार करके अपनी व्यक्तव्यता प्रकट करते हैं—‘जैनों’ इत्यादि ।

(जैनों सरस्वतीं) जिनेन्द्र के मुखकमल से निर्गत द्वादशाङ्गीरूप सरस्वती देवी को, एवं (गणनायकं गौतमं) गणनायक-गच्छ के नायक

(सगुप्तिसमितिं समां विरतिमादधानं सदा)—जे पांच समिति अने त्रणु गुप्तियोना धारक छे, तथा सर्वदा सर्वविरतिने पाणवावाणा छे, (क्षमावदखिलक्षमं) पृथ्वीना समान जे सर्व प्रकारना अनुकूल प्रतिकूल परिषोडोने सहन करे छे, (कलितमञ्जुचारित्रकम्)—जे निरतिचार चारित्रना आराधनमां सदा तत्पर रहे छे. तथा (सदोरमुखवस्त्रिकाविलसिताननेन्दुं) वायुकाय आदिनी यतनाने माटे जेभनुं मुअइपी अन्द्रमंडण सदा होरासहितनी मुंडपत्तीथी सुशोभित छे, तथा (अपूर्वबोधप्रदं) अपूर्व समकितइपी बोध-बीजना दाता छे अने (भववारिधिप्लवम्) आ संसारसमुद्रथी भव्य जिवोने पार करवामां नौकासमान छे, अेवा (गुरुं) निर्ग्रन्थ गुइ महाराजने (प्रणौमि) हुं नमस्कार करे छुं.

हुवे टीकाकार उन भगवाननी वाणी आदिने नमस्कार करी स्ववक्तव्यता प्रकट करे छे—‘जैनों’ इत्यादि.

(जैनों सरस्वतीं) जिनेन्द्रना मुअकमणथी निर्गत द्वादशाङ्गीरूप सरस्वती देवीने, अने (गणनायकम् गौतमं) गणनायक-गच्छना नायक भगवान गौतम

अस्यामवसर्पिण्यां जातस्य चतुर्विंशस्य चरमतीर्थकरस्य भगवतः श्रीवर्धमान-  
स्वामिनश्चरमचातुर्मास्यं पावापुर्यामासीत् । तत्र कृतषष्ठभक्तेषु नवमल्लकि-नव-  
लेच्छकि-काशी-कौशलकेषु अष्टादशसु गणराजेषु समुपस्थितेषु तस्य चरमदेशना  
षट्त्रिंशदध्ययनात्मिका उत्तराध्ययननामतः प्रसिद्धा, विंशत्यध्ययनात्मिका तु  
विपाकश्रुतारव्या । तत्रोत्तराध्ययनस्य शब्दार्थस्त्वेवम्-उत्तराणि=मोक्षसाधकत्वात्  
प्रधानानि अध्ययनानि यत्र तदुत्तराध्ययनम् ।

नन्विदमेव शास्त्रं प्रधानं चेत् आचाराङ्गादिद्वादशाङ्गी भगवत्प्रज्ञप्ताऽपि  
प्रधानतयाऽनुक्तत्वादितोऽपकृष्टतया प्रेक्षावद्भिरनुपादेया स्यादिति चेद् ? अत्रो-  
भगवान् गौतम गणधर को ( नत्वा ) नमस्कार कर में ( उत्तराध्ययने )  
इस उत्तराध्ययन सूत्र के ऊपर ( प्रियदर्शिनी वृत्ति ) प्रियदर्शिनी नामक  
वृत्ति की ( कुर्वे ) रचना करता हूँ ॥ ४ ॥

टीकार्थ-इस अवसर्पिणी काल में उत्पन्न चौबीसवें अन्तिम तीर्थकर  
भगवान् श्रीवर्धमान स्वामी का अन्तिम चातुर्मास पावापुरी में हुआ ।  
वहाँ पर भगवान् की सेवा में, नवमल्लकि नवलेच्छकि जो काशी एवं  
कौशल देश के अठारह गणराजा थे वे उपस्थित हुए । उन सबों ने षष्ठभक्त  
किया । उस समय उन श्री भगवान् महावीर स्वामी की अन्तिम देशना  
हुई, जो देशना छत्तीस अध्ययनरूप 'उत्तराध्ययन' इस नाम से प्रसिद्ध  
हुई, तथा बीस अध्ययनरूप विपाकश्रुत, इस नाम से भी प्रसिद्ध हुई ।  
उनमें 'उत्तराध्ययन' शब्द का अर्थ इस प्रकार है—मोक्ष साधक होने  
से उत्तर-प्रधान हैं अध्ययन जिसमें वह उत्तराध्ययन है ।

गणधरने ( नत्वा ) नमस्कार करी हुं ( उत्तराध्ययने ) उत्तराध्ययन सूत्र उपर  
( प्रियदर्शिनीम् वृत्तिं ) प्रियदर्शिनी नामनी वृत्तिनी ( कुर्वे ) रचना करूँ छुं. ॥४॥

टीका-आ अवसर्पिणी कालमां उत्पन्न थयेला चौबीसमा छेदला तीर्थकर लग-  
वान् श्री वर्धमान स्वामीना छेदला चातुर्मास पावापुरीमां थये. त्यां आगण  
लगवाननी सेवामां नवमल्लकि नवलेच्छकि जे काशी अने कौशल देशना अठार  
गणराज आवेला हुता जे षष्ठाये षष्ठभक्त करेला. आ समये लगवान् श्री  
महावीर स्वामीनी अन्तिम देशना थछ, जे देशना छत्तीस अध्ययनरूप  
'उत्तराध्ययन' आ नामथी प्रसिद्ध थछ, तथा बीस अध्ययनरूपमां विपाकश्रुत  
नामथी षष्ठी प्रसिद्ध थछ, आमां 'उत्तराध्ययन' शब्दना अर्थ आ प्रकारे छे-  
मोक्षसाधक होवाथी उत्तर-प्रधान छे अध्ययन जेमां ते उत्तराध्ययन छे.

च्यते—यद्यपि सर्वे प्रवचनं प्रधानमेव, तथाप्येतानि विनयश्रुतादीनि षट्त्रिंशद्-  
ध्ययनानि रूढिवशात् प्रधानानि । भगवच्चरमदेशनास्वरूपतयाऽस्मिन् शास्त्रे द्वादशाङ्गी  
प्रतिपादितार्थमुपसंहरता भगवता प्राधान्यं रूढ्या प्रदर्शितम्, सविस्तरं तु तत्त्वं तत्र  
तत्र सूत्रे वर्णितमिति न काऽप्यनुपपत्तिः ।

प्रश्न—यदि छत्तीस अध्ययनात्मक यह शास्त्र ही प्रधान माना  
जावेगा तो आचारांग आदि द्वादशांग कि जिनका प्ररूपण भी स्वयं  
भगवान् ने ही किया है, प्रधानरूप से नहीं कहे जाने के कारण इसकी  
अपेक्षा अपकृष्ट-अप्रधान हो जायेंगे, और इस कारण वे प्रेक्षावान्-  
बुद्धिमानों-की दृष्टि में उपादेय नहीं रह सकेंगे, सो इस प्रकार यदि  
कोई प्रश्न करे तो उसका समाधान इस प्रकार है—

भगवत्प्रतिपादित होने के कारण यद्यपि सभी द्वादशांगात्मक  
प्रवचन प्रधान है फिर भी यहां जो इन विनयश्रुतादिक छत्तीस अध्ययनों  
में प्रधानता प्रदर्शित की गई है वह केवल प्रसिद्धि के वश समझना  
चाहिये । भगवान् की अन्तिमदेशनास्वरूप होने से इस शास्त्र में  
द्वादशांगप्रतिपादित अर्थ का संक्षेप से समावेश किया गया है, अतः  
सूत्रकार ने प्रसिद्धि से ही इसमें प्रधानता प्रकट की है । द्वादशांग का  
विस्तारसहित वास्तविक तत्त्व, आचारांग, सूत्रकृतांग आदि आगमोंमें

प्रश्न—जे छत्रीस अध्ययनात्मक आ शास्त्र ज प्रधान बनासे तो आचा-  
रांग वगेरे द्वादशांग के जेनुं प्ररूपण पणु स्वयं लगवाने ज करेले छे, ते  
प्रधानरूपनां न कहेवावाने कारणे आनी अपेक्षा अपकृष्ट-अप्रधान जनी जसे,  
अने आ कारणथी ते प्रेक्षावान्-बुद्धिमानो-नी दृष्टिये उपादेय नही रहे. जे  
आ प्रकारने कहाय केछ प्रश्न करे तो जेनुं समाधान आ प्रकारथी छे—

स्वयं लगवानथी प्रतिपादित होवाना कारणे जेके अधां द्वादशांगात्मक  
प्रवचन प्रधान छे छतां पणु अर्द्धि आ विनयश्रुतादिक छत्रीस अध्ययनोमां  
प्रधानता प्रदर्शित करायेले छे, ते केवण प्रसिद्धिने वश होवानुं समजवुं  
जेछये. लगवाननी छेद्वीदेशनास्वरूप होवाथी आ शास्त्रमां द्वादशांगप्रति-  
पादित अर्थनो संक्षेपमां समावेश करवामां आवेले छे, अेटले सूत्रकारे  
प्रसिद्धिथी ज आमां प्रधानता प्रकट करी छे. द्वादशांगनुं विस्तारसहित  
वास्तविक तत्त्व, आचारांग, सूत्रकृतांग वगेरे आगमोमां ठेकठेकाणुं वर्णन थयेले

तत्र षट्त्रिंशदध्ययनानां नामानि प्रदर्शयन्ते—

१-विनयश्रुतम्, २-परीषद्, ३-चतुरङ्गीयम्, ४-असंस्कृतम्, ५-अकामसकाममरणीयम्, ६-क्षुल्लकनिर्ग्रन्थीयं, ७-एलकीयम् (उरभ्रीयम्), ८-कापिलकम्, ९-नमिप्रव्रज्या, १०-द्रुमपत्रकम्, ११-बहुश्रुतम्, १२-हरिकेशीयम्, १३-चित्तसंभूतीयम्, १४-इषुकारीयम्, १५-सभिक्षु, १६-ब्रह्मचर्यसमाधिः, १७-पापश्रमणीयम्, १८-संयतीयम्, १९-मृगापुत्रीयम्, २०-महानिर्ग्रन्थीयम्, २१-समुद्रपालीयम्, २२-रथनेमीयम्, २३-केशिगौतमीयम्, २४-समितीयम्, २५-यज्ञीयम्, २६-सामाचारी, २७-खलुंकीयम्, २८-मोक्षमार्गगतिः, २९-सम्यक्त्वपराक्रमः, ३०-तपोमार्गः, ३१-चरणविधिः, ३२-प्रमादस्थानम्, ३३-कर्म-

जगह-जगह वर्णित हुआ है, अतः प्रसिद्धिवश इसे प्रधान कहना कोई अनुचित नहीं है। इसलिए इस मूलसूत्र का नाम उत्तराध्ययन कहा गया है। उत्तराध्ययन के ३६ अध्ययन ये हैं—

(१) विनयश्रुत, (२) परीषद्, (३) चतुरङ्गीय, (४) असंस्कृत, (५) अकामसकाममरण, (६) क्षुल्लकनिर्ग्रन्थीय, (७) एलकीय, (८) कापिलक, (९) नमिप्रव्रज्या, (१०) द्रुमपत्रक, (११) बहुश्रुत, (१२) हरिकेशीय, (१३) चित्तसंभूतीय, (१४) इषुकारीय, (१५) सभिक्षु, (१६) ब्रह्मचर्यसमाधि, (१७) पापश्रमणीय, (१८) संयतीय, (१९) मृगापुत्रीय, (२०) महानिर्ग्रन्थीय, (२१) समुद्रपालीय, (२२) रथनेमीय, (२३) केशिगौतमीय, (२४) समितीय, (२५) यज्ञीय, (२६) सामाचारी, (२७) खलुंकीय, (२८) मोक्षमार्गगति, (२९) सम्यक्त्वपराक्रम, (३०) तपोमार्ग,

येटवे प्रसिद्धिवश आने प्रधान कडेवाभां कांछ अनुचित जेवुं नथी. आ भाटे आ मुलसूत्रनुं नाम उत्तराध्ययन कडेवायेल छे. उत्तराध्ययनना छत्रीस अध्ययन आ प्रकारे छे—

(१) विनयश्रुत, (२) परिषद्, (३) चतुरङ्गीय, (४) असंस्कृत, (५) अकामसकाममरण, (६) क्षुल्लकनिर्ग्रन्थीय, (७) एलकीय (८) कापिलक, (९) नमिप्रव्रज्या (१०) द्रुमपत्रक (११) बहुश्रुत, (१२) हरिकेशीय, (१३) चित्तसंभूतीय (१४) इषुकारीय, (१५) सभिक्षु, (१६) ब्रह्मचर्यसमाधि, (१७) पापश्रमणीय, (१८) संयतीय, (१९) मृगापुत्रीय, (२०) महानिर्ग्रन्थीय (२१) समुद्रपालीय, (२२) रथनेमीय, (२३) केशिगौतमीय, (२४) समितीय, (२५) यज्ञीय, (२६) सामाचारी, (२७) खलुंकीय, (२८) मोक्ष मार्गगति, (२९) सम्यक्त्वपराक्रम,

उ-२



प्रकृतिः, ३४-लेश्या, ३५-अनगार मार्गगतिः, ३६-जीवाजीव-विभक्तिः, इति । तत्र-श्रीसुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनमन्यानपि शिष्यानुत्तराध्ययनसूत्रार्थं प्रतिबोधयितुं प्रवृत्तः सन् धर्मस्य विनयमूलकत्वात्प्रथमं विनयश्रुताख्यमध्ययनं प्रस्तुवंस्तस्याच्चं सूत्रमाह—

मूलम्—

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो ।

विणयं पाउँकरिस्सामि, आणुपुँठिविं सुणेहं मे ॥ १ ॥

छाया—

संयोगाद् विप्रमुक्तस्य, अनगारस्य भिक्षोः ।

विनयं प्रादुष्करिष्यामि, आनुपूर्वीं शृणुत मे ॥ १ ॥

टीका—

‘संजोगा.’ इत्यादि । संयोगादिति, संयोगः=सम्बन्धः, स द्विविधः—द्रव्यसंयोगः भावसंयोगश्च । तत्र द्रव्यसंयोगो द्विविधः—पूर्वसंयोगः पश्चात्संयोगश्च । तत्र पूर्वसंयोगो मातापित्रादिभिः सार्धं सम्बन्धः । पश्चात्संयोगस्तु श्वशुरादिभिः

(३१) चरणविधि, (३२) प्रमादस्थान, (३३) कर्मप्रकृति, (३४) लेश्या, (३५) अनगारमार्गगति, (३६) जीवाजीवविभक्ति ।

इन में श्री सुधर्मास्वामीने सर्व प्रथम जम्बूस्वामी एवं और भी दूसरे शिष्योंको इस उत्तराध्ययन सूत्र के अर्थको समझाने के लिये “ विनय है मूल कारण जिसका ऐसा धर्म है ” ऐसा समझकर पहले इस विनयश्रुत नाम अध्ययनका प्ररूपण करते हुए प्रथम सूत्र कहते हैं—‘ संजोगा ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( संजोगा-संयोगात् ) संयोग से (विप्पमुक्कस्स-विप्रमु-

(३०) तपोमार्ग, (३१) चरणविधि, (३२) प्रमादस्थान, (३३) कर्मप्रकृति, (३४) लेश्या, (३५) अनगारमार्गगति, (३६) जीवाजीवविभक्ति ।

आमां श्री सुधर्मा स्वामीणे सर्व प्रथम जम्बूस्वामी अने भील घणा शिष्योने आ उत्तराध्ययन सूत्रने अर्थ समझववा माटे “ विनय छे मूल कारण जेनुं जेवो धर्म छे ” जेवुं समझ पड़ेलां आ विनयश्रुत नामना अध्ययननुं प्ररूपण करतां प्रथम सूत्र ऊहे छे—‘संजोगा विप्पमुक्कस्स’ इत्यादि ।

अन्वयार्थः—(संजोगा-संयोगात्) संयोगात् (विप्पमुक्कस्स-विप्रमुक्तस्य) सर्वथा

सह सम्बन्धः । भावसंयोगः—अशुभावैः सहात्मनः सम्बन्धः, तस्मात् सर्वविध-  
संयोगाद् विप्रमुक्तस्य=विप्रयुक्तस्य, अनित्याशरणादिद्वादशभावनाभिः संयोगस्य  
फलं संसारपरिभ्रमणादिरूपं विज्ञाय संयोगं परित्यक्तवत् इत्यर्थः । संयोगो हि मृग-  
तृष्णावद् भ्रमोत्पादकः, कुगतिसाधकः, विवेकतरुन्मूलने मत्तगजराजोपमः, अम-  
न्दात्मानन्दरसशोषणे प्रचण्डमार्तण्डसमः, श्रुतचारित्रधर्मारामदावानलः, सद्ग्रथान-  
वारिदविक्षेपणे शैलशिखरानिलः । संयोगस्य प्रियवियोगजनकत्वेन दारुणदुःखोत्पाद-  
कतयाऽपि परिहार्यता,

क्तस्य ) सर्वथा रहित ( अणगारस्स—अनगारस्य ) अनगार ( भिक्खुणो  
—भिक्षोः )—साधु के ( विणयं—विनयं ) विनय को मैं ( आणुपुब्बि—आ-  
नुपूर्वी ) शास्त्रोक्तपद्धति के अनुसार ( पाउकरिस्सामि—प्रादुष्करिष्यामि )  
प्रकट—क गा । अतः हे जम्बू ! तुम सब उसे ( मे—मत्तः ) मुझ से  
( सुणेह—शृणुत ) सुनो ॥ १ ॥

भावार्थ—संयोग शब्द का अर्थ संबंध है । द्रव्यसंयोग और  
भावसंयोग के भेद से यह संयोग दो प्रकार का है । पूर्वसंयोग और  
पश्चात्संयोग के भेद से द्रव्यसंयोग भी दो तरह का बतलाया गया है ।  
माता पिता आदि के साथ जो जन्म से संबंध है वह पूर्वसंयोग है ।  
श्वशुर अदि के साथ पीछे से हुआ संबंध पश्चात्संयोग है । अशुभ  
भावों के साथ आत्मा का संबंध रहता है वह भावसंयोग है । इस  
संयोग का सर्वथा परित्याग वही आत्मा कर सकता है जो अनित्य

रहित ( अणगारस्स—अनगारस्य ) अणुगार ( भिक्खुणो—भिक्षोः ) साधुना ( विणयं—  
विनयं ) विनयने दुं ( आणुपुब्बि—आनुपूर्वी ) शास्त्रोक्त पद्धति अनुसार ( पाउक-  
रिस्सामि—प्रादुष्करिष्यामि ) प्रकट करीश. अेटदे डे जम्बू ! तमे षधा अने  
( मे—मत्तः ) मारी पासेथी ( सुणेह—शृणुत ) सांभणे।

भावार्थ—संयोग शब्दने अर्थ संबंध छे. द्रव्यसंयोग अने भावसंयोगना  
लेहथी आ संयोग छे प्रकारे छे. पूर्वसंयोग अने पश्चात्संयोगना लेहथी द्रव्य  
संयोग पणु छे रीतने अतावेले छे. माता पिता वगेरेनी साथेने जे जन्मने  
संबंध छे, ते पूर्वसंयोग छे. श्वशुर वगेरेनी साथे पछीथी थयेले संबंध  
अे पश्चात्संयोग छे. अशुभ भावोनी साथे आत्मानो जे संबंध रहे छे अे  
भावसंयोग छे. आ संयोगने सर्वथा परित्याग अेज आत्मा करी शके छे,



અશરણ આદિ બારહ પ્રકારકી ભાવનાઓં કે પરિચિન્તન સે વાસિતાન્તઃ-  
કરણ હોકર યહ સમજ્ઞતા હૈ કિ હસકા ફલ ઇક માત્ર સંસાર મેં પરિ-  
ભ્રમણ કરના હી હૈ । જિસ પ્રકાર મૃગતૃષ્ણા અભાગે મૃગ કે લિયે કેવલ  
જલકે હી ભ્રમકો ઉત્પન્ન કરતી હૈ ઉસી પ્રકાર યહ સંયોગ મી હસ જીવ  
કો અનાત્મીય પદાર્થોં મેં કેવલ સુખાદિ કા ભ્રમ કરાતા રહતા હૈ । યહી  
કારણ હૈ કિ યહ અજ્ઞાની જીવ ઉસ ભ્રમજ્ઞાન સે મૂર્ચ્છિત બના હુઆ  
અપને સંયોગી પદાર્થોં મેં સુખકો ઢૂંઢને કી અહર્નિશ ચિન્તા સે અપને  
અસલી કર્તવ્ય માર્ગસે અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગ સે મી પરાહ્મુખ હો જાતા હૈ ।  
જિસકા ભયંકર પરિણામ કુગતિ મેં જાકર હસે ભોગના પડતા હૈ ।  
મદોન્મત્ત ગજરાજ જૈસે મજબૂત સે મજબૂત વૃક્ષકો મી ક્ષણમાત્ર મેં  
ઉઘાડકર ફેંક દેતા હૈ ઉસી પ્રકાર અપને સંયોગી પદાર્થકે નશે સે  
બેભાન બના હુઆ યહ જીવાત્મા મી વિવેક જૈસે સર્વશ્રેષ્ઠ તરુ કો નષ્ટ  
બ્રષ્ટ કર દેતા હૈ । ગ્રીષ્મકાલ કા વિશેષકર જ્યેષ્ઠમાસ કા સૂર્ય અપની  
પ્રચંડ કિરણોંસે જૈસે રસ કો સુખા દેતા હૈ ઉસી પ્રકાર યહ સંયોગ મી  
આત્મા કે તપસંયમજનિત અમન્દઆનંદરસ કો સુખા દેતા હૈ ।

જે અનિત્ય અશરણુ આદિ બાર પ્રકારની ભાવનાઓના પરિચિન્તનથી વાસિ-  
તાન્તઃકરણુ થઈ એ સમજે છે કે આનું ફલ એક માત્ર સંસારમાં પરિભ્રમણુ  
કરવું એજ છે.

જે રીતે મૃગતૃષ્ણા અભાગિયા મૃગને માટે કેવળ જળનાજ ભ્રમને ઉત્પન્ન  
કરે છે, એજ રીતે આ સંયોગ પણ આ જીવને અનાત્મીય પદાર્થોમાં કેવળ  
સુખાદિનો ભ્રમ કરાવે છે. એજ કારણુ છે કે આ અજ્ઞાની જીવ એ ભ્રમ  
બલમાં મૂર્ચ્છિત બની જઈ પોતાના સંયોગી પદાર્થોમાં સુખને જોળવાની  
અહર્નિશ ચિન્તામાં પોતાના અસલ કર્તવ્ય માર્ગથી અર્થાત્ મોક્ષમાર્ગથી  
પણુ પરાહ્મુખ થઈ બચે છે. જેનું ભયંકર પરિણામ કુગતિમાં પડી એણે  
લોગવવું પડે છે. મદોન્મત ગજરાજ (હાથી) મજબૂતમાં મજબૂત વૃક્ષને પણુ  
ક્ષણુ માત્રમાં જેમ ઉખેડીને ફેંકી દે છે એજ રીતે પોતાના સંયોગી પદાર્થના  
નશામાં બેભાન બનેલ આ જીવાત્મા પણુ વિવેક જેવા સર્વશ્રેષ્ઠ તરૂને નષ્ટ  
બ્રષ્ટ કરી દે છે. ગ્રીષ્મકાળનો તેમાંએ ખાસ કરીને ન્યેષ મહિનાનો સૂર્ય  
પોતાનાં પ્રચંડ કિરણોથી જેમ રસને સુકવી નાખે છે એજ પ્રકારે આ સંયોગ  
પણુ તપસંયમ વગરના આત્માના અમન્દઆનંદરસને સુકવી નાખે છે.

तथा चोक्तम्—

संयोगो हि वियोगस्य, संसूचयति संभवम् ।  
अनतिक्रमणीयस्य, जन्म मृत्योरिवागमम् ॥ १ ॥

अपरं च—

यथाकाष्ठं च काष्ठं च, समेयातां महोदधौ ॥  
समेत्य च व्यपेयातां, तद्वद् भूतसमागमः ॥ २ ॥

तथा यह संयोग श्रुतचारित्र-धर्मरूपी उद्यान के भस्म करने में दावानल समान है, सद्दयानरूपी मेघको उड़ाने में पर्वतशिखर के प्रचण्ड वायु समान है। कहा भी है—

संयोगो हि वियोगस्य, संसूचयति संभवम् ।  
अनतिक्रमणीयस्य, जन्म मृत्योरिवागमम् ॥ १ ॥

संयोग, अवश्य होने वाला वियोग का सूचक है, जिस प्रकार जन्म, अवश्य होने वाले मृत्यु के आगमन का सूचक होता है ॥ १ ॥

फिर भी—यथाकाष्ठं च काष्ठं च, समेयातां महोदधौ ।

समेत्य च व्यपेयातां, तद्वद् भूतसमागमः ॥ २ ॥

जिस तरह समुद्र में अनेक काष्ठ इधर उधर से बहते हुए आकर मिल जाते हैं और कुछ ही क्षण बाद फिर वे अलग अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार इस संसार में इन संसारी जीवों का मिलने पर अवश्य वियोग होता है ॥ २ ॥

तथा आ संयोग श्रुतचारित्र-धर्मरूपी उद्यानने भस्म करवाभां दावानल समान,  
सद्दयानरूपी मेघने उडारवाभां पर्वतशिखरना प्रचण्ड वायु समान छे. कहुं पणु छे—

संयोगो हि वियोगस्य, संसूचयति संभवम् ।

अनतिक्रमणीयस्य, जन्म मृत्योरिवागमम् ॥ १ ॥

संयोग, अवश्य थवावाणा वियोगनो सूचक छे, जे रीते जन्म जे थनारा  
मृत्युना आगमननुं अवश्य सूचक छे (१).

वणी....यथा काष्ठं च काष्ठं च, समेयातां महोदधौ ।

समेत्य च व्यपेयातां, तद्वद् भूतसमागमः ॥ २ ॥

जे रीते समुद्रभां आरे तरङ्गी अनेक लाकडाओ तणुधने आवे छे, लेणां  
भणे छे अने थोडा ज क्षणु पछी ते पाछां विभराध नथ छे. आज रीते आ  
संसारभां आ संसारी जेवोनुं भीदन अने जे पछी अवश्य वियोग थाय छे (२).

અન્યચ— ન ચ્લુ વિઘટિતાઃ પુનર્ઘટન્તે,  
 ન ચ ઘટિતાઃ સ્થિરસંગતં શ્રયન્તે ।  
 પિપતિષુમવશં રુજન્તિ વશ્યા,—  
 સ્તટતરુમાપ ઇવાપગાગણસ્ય ॥ ૩ ॥

અત્ર વિષયે દૃષ્ટાંતં કથયતિ—

કશ્ચિદ્ વણિક્પુત્રઃ સંયોગસ્ય કટુકફલં વિજ્ઞાય વિરજ્ય સંયોગં પરિત્યક્ત-  
 વાન્ । તથાહિ—મથુરાનગર્યાં સુભગ-સુનન્દનામાનો દ્વૌ વણિજૌ સ્તઃ, સુભગસ્ત્ર  
 ઔર મી-ન ચ્લુ વિઘટિતા પુનર્ઘટન્તે, નચ ઘટિતાઃ સ્થિરસંગતં શ્રયન્તે ।

પિપતિષુમવશં રુજન્તિ વશ્યાસ્તટતરુમાપ ઇવાપગાગણસ્ય ॥ ૩ ॥

જો મિલકર ફિર અલગ હો જાતે હૈં उनका उसी पर्याय में उसी  
 रूप से फिर मिलना होगा, यह सर्वथा असम्भव है । जो मिले हँ वे  
 हमारे साथ सदा स्थिर ही रहेंगे-यह भी कोई नहीं कह सकता । जिस  
 प्रकार नदियों का पानी अपने तट पर रहे हुए वृक्षोंको दुःख देता है,  
 उसी प्रकार वश्य-प्रिय स्त्रीपुत्रादि मरते समय मनुष्य को दुःखी करते हैं,  
 अर्थात् ये स्त्री पुत्रादिक इस जीव को अनेक प्रकार से व्यथित करते  
 रहते हैं । इस लिये माता पिता आदि का संयोग सर्वथा त्यागने योग्य है ।

इस पर सुधन नामक वणिकपुत्र का दृष्टान्त इस प्रकार है—

सुधन नामक एक वणिकपुत्र ने किस तरह इस संयोग का फल  
 कटुक जाना और किस तरह विरक्त होकर उसका परित्याग किया? यह

વળી પણ....ન ચ્લુ વિઘટિતાઃ પુનર્ઘટન્તે, ન ચ ઘટિતાઃ સ્થિરસંગતં શ્રયન્તે ।

પિપતિષુમવશં રુજન્તિ વશ્યાસ્તટતરુમાપ ઇવાપગાગણસ્ય ॥ ૩ ॥

જે મળીને ફરી બુદ્ધા થઈ જાય છે. એમનું એજ પર્યાયમાં એજ રૂપમાં  
 ફરી મળવાનું થાશે; એ સર્વથા અસંભવ છે. જે મળ્યા છે તે અમારી સાથે  
 સદા સ્થિર જ રહેશે-આ પણ કોઈ કહી શકતું નથી. જે રીતે નદિયોનું પાણી  
 પોતાના તટ ઉપરનાં વૃક્ષોને દુઃખ આપે છે, એજ પ્રકારે વશ્ય-પ્રિય સ્ત્રી પુત્રાદિ  
 મરતી સમયે મનુષ્યને દુઃખી કરે છે, અર્થાત્ એ સ્ત્રીપુત્રાદિક આ જીવને  
 અનેક પ્રકારથી દુઃખી કરતાં રહે છે. આ માટે માતાપિતા આદિનો સંયોગ  
 સર્વથા ત્યાગવા યોગ્ય છે.

આ અંગે સુધન નામના વણિકપુત્રનું દૃષ્ટાંત આ પ્રકારનું છે—

સુધન નામના એક વણિકપુત્રને કેવી રીતે આ સંયોગનું ફળ કડવું  
 માણુમ પડ્યું? અને કેવી રીતે વિરક્ત બનીને તેનો પરિત્યાગ કર્યો? એ વાત

दक्षिणतः, सुनन्दश्चोत्तरतो निवसन्नासीत् । तत्रैकोऽपरस्य गृहे प्राघुणिकोऽभवत् , तदोभौ मिथश्चिन्तितवन्तौ—आवयोः प्रीतिर्दृढतरा कथं भविष्यति ? , यथावयोर्मध्ये एकस्य पुत्रः स्यादेकस्य च पुत्री, तदा तयोर्वैवाहिकसम्बन्धेनावयोः संयोगस्तज्जनिता प्रीतिश्च स्थिरतरा भविष्यति । अथैकदा दक्षिणदिग्वातिनः श्रेष्ठिनः सुधननामकः पुत्रो जातः, उत्तरदिग्वासिनः श्रेष्ठिनश्च पुत्री, कुसुमवती—नाम्नी समजनि । तयोः परस्परं वाग्दानं संजातम् । तदनन्तरं दक्षिणदिग्वासी वणिग् मृतः । तस्मिन् मृते—सति तत्पुत्रः सुधनः पितृधनाधिकारी संजातः । प्रचुरं पितृधनं प्राप्य स प्रमुदितो—

बात उसीके आख्यान द्वारा प्रकटित की जाती है—मथुरा नगरीमें सुभग और सुनन्द नाम के दो वणिक् निवास करते थे । सुभग का घर दक्षिण दिशा में था और सुनन्द का घर उत्तर दिशा में । एक दिनकी बात है कि इन दोनों में से एक दूसरे के घर मेहमान हुआ था, वहाँ इन दोनों ने परस्पर यह विचार किया कि-अपने दोनों का यह स्नेह सर्वदा इसी तरह से बना रहे, इस हेतु अपने दोनों में से यदि एक को पुत्र हो और दूसरे को पुत्री हो तो दोनों का विवाह कर दें । भाग्यवशात् ऐसा ही हुआ कि-सुभग के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ । लडकेका नाम सुधन रखा गया । उत्तरदिशा में निवास करनेवाले उस सुनन्दके यहाँ एक पुत्री हुई । उसका नाम कुसुमवती रखा गया, पूर्वनिश्चित के अनुसार इनकी सगाई-वाग्दान पक्की कर दी गई । सगाई पक्की करके सुभग का तो देहांत हो गया । पिता के धनका अधिकारी पुत्र होता है, इस नियम

तेना आख्यान द्वारा प्रकट करवामां आवे छे—मथुरा नगरीमां सुभग अने सुनन्द नामना ये वणिक् निवास करता उता । सुभगनुं घर दक्षिण दिशामां उतुं अने सुनन्दनुं घर उत्तर दिशामां । एक दिवसनी बात छे के ये अन्नेमांथी एक भीलने घर भडेमान अनेल, त्यां आ अन्नेये परस्पर विचार कर्यो के—आपणु अन्नेना आ स्नेह कायम टकी रहे ते हेतुथी आपणु अन्नेमांथी कदाय एकने पुत्र होय अने भीलने पुत्री होय तो अन्नेना विवाह करी देवा । भाग्यवशात् ऐवुं न अन्युं के, सुभगने त्यां पुत्रनो जन्म थयो, छोकरानुं नाम सुधन राभवामां आव्युं उत्तर दिशामां निवास करवावाणा ते सुनन्दने त्यां पुत्री अवतरी, तेनुं नाम कुसुमवती राभवामां आव्युं । अगाउना निश्चय अनुसार तेमनी सगाई करवामां आवी । सगाई पाकी कर्या पछी सुभगनुं मृत्यु थयुं । पिताना धननो अधिकारी पुत्र होय छे, आ नियम अनुसार पिताना पिताना धननो सुधन अधिकारी अन्थे । कोछे एक समये सुधने स्नान

ऽभवत् । अथैकदा तेन स्नानार्थं पार्श्वतः पृष्ठतः पुरतश्चतुर्दिक्षु चत्वारः स्वर्ण-कलशा-  
श्चत्वारो रौप्यकलशाश्चत्वारस्ताम्रकलशाश्चत्वारो मृन्मयकलशा जलपूर्णाः स्थापिताः,  
अन्यान्यपि स्नानोपकरणानि तत्रोपस्थापितानि । अत्रान्तरे तत्पूर्वभवमित्रदेवस्तं  
प्रतिबोधयितुं समागतः । स वणिक्पुत्रः सुधनः स्नानार्थं स्वर्णकलशमुत्थापयति,  
स स्वर्णकलशस्तदानीमेव मित्रदेवप्रभावात्प्रणष्टः, एवं चतुर्दिक्षु सर्वे कलशाः  
प्रणष्टाः । ततोऽसौ स्नानपीठादुत्तिष्ठति । तस्मिन्नुत्थिते सति स्नानपीठमपि नष्टम् ।  
ततस्तस्य धृतिर्नष्टा । यावद् गृहं प्रविष्टः, भृत्यैर्भोजनविधिरुपस्थापितः, स्वर्णरौप्य-

के अनुसार सुधन अपने पिताके धनका अधिकारी बना । किसी एक  
समय सुधनने स्नान के अवसर पर भृत्योंसे चार सोने के कलश, चार  
चाँदी के कलश, चार ताँबेके कलश और चार ही मिट्टी के कलश पानी  
से भरवाकर अपनी चारों ओर आजू बाजू और समक्ष एवं पीछे की  
ओर, इस प्रकार चारों दिशाओं में रखवा लिये । इसके बाद इसका  
पूर्वभवका मित्र जो देवपर्याय में था इसकी इस तरह संयोगी पदार्थों के  
सेवन में अधिक लालसा का निरीक्षण कर उसको प्रतिबोध देने के लिये  
वहाँ आया । वणिक्पुत्र उस सुधन ने ज्योंही नहाने के लिये सुवर्ण के  
कलश को ऊपर उठाया कि उसी समय वह कलश उस अदृश्य हुए देव  
के प्रभाव से शीघ्र ही अदृश्य हो गया । इसी तरह अवशिष्ट तीन  
कलशों की भी यही हालत हुई । वह एकदम स्नान पीठ से उठ कर खड़ा  
हो गया और ज्यों ही उससे नीचे उतरा तो वह स्नान पीठ भी इसकी  
नजरों के समक्ष ही नष्ट-अदृश्य हो गया । उसने आश्चर्यचकित होकर  
इधर उधर देखा पर कुछ समझ में नहीं आया । यह क्या बात है इससे

करवाना समये नोकरेथी चार सोनाना कणश, चार चाँदीना कणश, चार ताँबाना  
कणश, अने चार माटीना कणश पाणीथी लरावीने पोतानी चारे तरङ्ग-आन्नु-  
आन्नु चारे दिशाओमां रभाओया. आ पछी ओना पूर्वं लवनो मित्र ने देव  
पर्यायमां डतो तेणु आ रीते संयोगी पदार्थना सेवनमां अधिक लालसानुं  
निरीक्षणु करी तेने प्रतिबोध आपवा माटे त्यां आओयो. वणिक्पुत्र सुधने नडावा  
माटे न्यां सुवर्णु कणशने उपाउयो त्यां अदृश्य रहेला देवना प्रभावथी  
ते कणश पुरत न अदृश्य थछ गया. आ न रीते पीळ त्रणु कणशोनी  
पणु ओन डालत थछ. वणिक्पुत्र स्नाननी नग्याओथी ओकदम उलो थछ  
गयो अने पाटला उपर पोते ओठो डतो तेनाथी नीचे उतर्यो त्यां ओ पाटलो  
पणु अदृश्य थछ गयो. ओणु आश्चर्यचकित अनी चारे तरङ्ग ओवा मांडुथु

मयभोजनपात्राणि समानीतानि, तत्रैकैकभाजनं क्रमेण नष्टमभवत् । यदाऽसौ स्वर्णमयस्थालमग्रतो धावमानं व्योम्नि पश्यति, तदा तत् स्थालं हस्तेन गृह्णाति, गृहीते सति तदग्रभागतः खण्डमेकं तस्य करतललग्नमासीत्, अपरभागतः स्वर्णमय-स्थालं सर्वं प्रणष्टम् । ततः त्रुटितस्थालैकखण्डहस्तः सुधनः सर्वं नश्यद् विलोकयन् मूलधनं द्रष्टुमागच्छति, तावत् सर्वं मूलधनमपि नष्टम् । एवं सर्वाऽपि तस्य श्री विनष्टा । अथ निर्धिं द्रष्टुमागच्छति तदा सर्वं निधानमपि नष्टम् । एवं दासीवर्गः, परिवारवर्गोऽपि तस्य नष्टः ।

इसका धैर्य नष्ट हो गया । घर में जाकर यह ज्यों ही भोजन करने के लिये भोजनालय में गया तो रसोईयने पहिलेसे सजाकर रखे हुए सुवर्ण एवं चांदी के भोजनपात्रों में इसके बैठने पर भोजन परोस दिया परन्तु इसके समक्ष ही वे सब के सब भोजनपात्र क्रम २ से नष्ट हो गये-पता नहीं पडा कहां चले गये। जब एक सुवर्णका थाल जो इसके समक्ष ही आगे से उठकर आकाश में उडने लगा तो इसने उसे थाम कर पकड लिया । पकडते ही उस थाल की किनार टूटकर इसके हाथ में रह गयी। बांकी का थाल नष्ट हो गया । यह फिर उस टुकडे को हाथ में लिये हुए ही अपने मूल धन को देखने के लिये वहां से दूसरी तरफ चला तो क्या देखता है कि इसका मूल धन भी सब नष्ट हो चुका है । इस तरह समक्ष ही देखते २ इसकी समस्त लक्ष्मी नष्ट हो गई । निधान नष्ट हो गया । दासी-दास आदि और परिवार वर्ग भी नष्ट हो गये । अब यह उस

परंतु कांठ समञ्जामां न आभ्युः अनामां धिरञ्ज न रही. आथी अकणाध नावानुं छोडी दध धरमां गथे अने लोञ्जन करवा लोञ्जनालयमां पडोअथे ज्यां रसोद्यथाअे सोना यांदिना वासञ्जोमां अेना जेडा पछी लोञ्जन पीरस्थुः लोञ्जन धिरसाया पछी तेनी नञ्जर सामे जेत जेतामां कुभ कुभथी लोञ्जनपात्रो अदृश्य थवा लाग्यां. जभरन पडी कथां आल्यां गयां. अेक सुवर्णु थाण जे तेनी सामेथी उडवा मांडेवो तेने डाथथी पकडतां अे थाणनी किनार तुटीने तेना डाथमां रही गध. अने आडीने थाण अदृश्य जनी गथे. थाणना तुटेवा टुकडाने डाथमां राप्पीने पोताना मुण धनने जेवा माटे त्यांथी थील तरक्क गथे. त्यां जतां शुं हेजे छे के पोतानुं मुण धन पणु अदृश्य जनी गथुं डतुं आ रीते पोतानी नञ्जर सामे तेनी सधणी लक्ष्मी अदृश्य जनी गध, निधान नष्ट थध गथे. दासी दास वगेरे परिवार पणु



अथासौ स्वर्णमयस्थालैकखण्डहस्तः सन्नितस्ततो भ्राम्यन्नकस्मादुत्तरभाग-  
वासिनः पितृमित्रस्य सुनन्दनामकस्य वणिजो गृहं जगाम । तं दृष्ट्वा सुनन्दस्तं  
सादरं भोजयामास । भोजनसमये सुधनस्तानि तानि रत्नानि, तांश्च स्वर्णकलशान्,  
तानि स्वर्णमयस्थालानि सर्वाणि स्वकीयानि वस्तूनि तत्र ददर्श । तत्तद् वस्तुजातं  
प्रेक्षमाणं वणिकपुत्रं सुधनं सुनन्दो वणिकं पृच्छति—किं मम पुत्रीं पश्यसि ?  
सुधनेनोक्तम्—नाहं तव पुत्रीं पश्यामि, किं तु त्वद्गृहस्थितान्येतानि रत्नमयानि  
वस्तूनि मदीयानि सन्तीति विलोकयामि । सुनन्देन वणिजा प्रोक्तम्—किमत्र

सोने के थाल के टुकड़े को हाथ में लिये हुए इधर-उधर घूमने फिरने  
लगा । फिरते २ इसकी दृष्टि उस उत्तर दिशा में रहने वाले सुनन्द के  
मकान ऊपर पड़ी, जो इसके पिता का मित्र था । यह उसके घर पर  
गया । सुनन्द ने उसको आदर के साथ भोजन करने के लिये बैठाया ।  
वहाँ पर सुधन ने अपनी समस्त नष्ट हुई वस्तुएँ देखीं—वे ही सोने के  
थाल, वे ही सुवर्णादि के कलश और वे ही रत्न आदि । जब उसकी दृष्टि  
उन अपनी चीजोंके निरीक्षण करने में आसक्त हो रही थी, तब अचा-  
नक ही बीचमें टोकते हुए सुनन्द ने कहा—सुधन ! यह क्या करते हो ?  
तुम्हारी दृष्टि इस समय कहाँ है, क्या हमारी पुत्री को देख रहे हो ?  
सुनन्द के वचन सुन कर सुधन ने कहा—महाशय ! मैं आपकी पुत्री को  
नहीं देख रहा हूँ, किन्तु यह विचार कर रहा हूँ कि “ तुम्हारे यहाँ रही  
हुई ये सबही रत्नादिक वस्तुएँ मेरी हैं, यहाँ ये कैसे आ गईं ” इस बात  
का विचार कर रहा हूँ । सुनन्द ने कहा—तुम्हारी होने का क्या प्रमाण है ?

नष्ट थल गया, आ पछी सोनाना थालना टुकडाने हाथमां राणीने ते अडिं  
तडिं धुमवा लाग्यो. इरतां इरतां तेनी दृष्टि उत्तर दिशामां रहेवावाणा सुनंदना  
मकान उपर पडी, जे तेना पितानो मित्र હતો. તે એના ઘર ગયો. સુનંદે  
તેને આવકારી પ્રેમપૂર્વક ભોજન કરવા બેસાડ્યો. ત્યાં સુધને પોતાની નષ્ટ  
થએલી સઘળી વસ્તુઓ બેઠ-તેજ સોનાનો થાળ, એજ સોનાના કળશ અને  
એજ રત્ન આદિ. જ્યારે તેની દૃષ્ટિ એ પોતાની ચીજોનું નિરીક્ષણ કરવામાં  
આસક્ત થઈ રહી હતી, ત્યારે અચાનક જ તેને ટોકતાં સુનંદે કહ્યું—સુધન !  
આ શું કરો છો ? તમારી દૃષ્ટિ આ સમયે ક્યાં છે, શું મારી પુત્રીને બેઠ  
રહ્યા છો ? સુનંદના વચન સાંભળીને સુધને કહ્યું—મહાશય ! હું આપની  
પુત્રી તરફ બેતો નથી, પરંતુ એ વિચાર કરું છું કે “ તમારે ત્યાં રહેલી આ  
સઘળી રત્નાદિક વસ્તુઓ મારી છે, અહિં એ કઈ રીતે આવી ” આ વાતનો  
વિચાર કરી રહ્યો છું. સુનંદે કહ્યું—તમારી હોવાનું શું પ્રમાણ છે. હા, પ્રમાણ છે.

प्रमाणम् ? । सुधनः प्रत्याह—त्वद्गृहावस्थितस्यैतस्य त्रुटितस्वर्णमयस्थालस्य खण्ड-  
मेकं मम हस्ते विद्यते, पश्य संयोजयामीत्युक्त्वा संयोजयति, संयोजिते सति तत्  
खण्डं तत्र सम्यक् संलग्नम् । अथ सुनन्दः पृच्छति—कस्त्वम्, सुनन्देन पृष्टोऽसौ  
वणिक्पुत्रः सुधनः स्वपितुर्नाम कथयित्वा परिचयं दत्तवान् । तस्मिन् वणिक्-  
पुत्रे परिचिते सति सुनन्दः पुनराह—त्वं तु मम जामाताऽसि, इति । इत्थं सर्वं  
हां, प्रमाण है तभी तो ऐसा कह रहा हूँ, नम्रता से सुधन ने  
जबाब दिया । साबित करनेकी चेष्टा करते हुए सुधन ने वह एक  
सोने के थाल की किनार जो उसके हाथ में पहिलेसे थी उसको  
दिखलाया, और यह भी बतलाया कि देखो यह सुवर्ण का थाल  
जो भग्न अवस्था में आप के यहां है उसी की यह किनार है ।  
मैं आप के ही समक्ष उसे इसमें जोड़ता हूँ, यदि यह उस थाल में  
जुट जाये तो आपको मेरी बात सत्य माननी पड़ेगी । सुनंद ने  
यह सब स्वीकार कर लिया । सुधन ने सुनंद के समक्ष ही उस किनार  
को उस थाल में ज्यों ही योजित किया तो वह उस में अच्छी तरह जुट  
गया । यह देखकर सुनंद ने कहा—ठीक है । अब तुम यह तो बतलाओ  
कि तुम हो कौन ? इस प्रकार सुनंद के पूछ ने पर सुधन ने उसे अपना  
परिचय दे दिया । परिचय पाकर सुनंद बहुत हर्षित हुआ और कहने  
लगा कि धन्य है आज का दिन जो आपके दर्शन हुए । आपके पिताने  
मेरी पुत्री के साथ आप का पहिले से वाग्दान निश्चित कर दिया था,  
अतः आप मेरे संबंध में जामाता हैं । अब आप योग्य हो चुके हैं, इस

त्यारे तो એવું કહી રહ્યો છું તેવો નમ્રતાથી જવાબ સુધને આપ્યો. સાબીત  
કરવાની ચેષ્ટા કરતાં પોતાના હાથમાં રહેલી સોનાના થાળની કિનાર તેને  
બતાવી, અને એ પણ જણાવ્યું કે જુઓ સોનાનો થાળ જે તુટેલી અવસ્થામાં  
તમારે ત્યાં છે તેની આ કિનાર છે. આપની સમક્ષ જ હું તેને આ સાથે જોડું  
છું, કહાય તે આ થાળ સાથે જોડાઈ જાય તો આપને મારી વાત સત્ય માનવી  
પડશે. સુનંદે એ વાતનો સ્વીકાર કર્યો. સુધને સુનંદની સામે જ એ કિનાર  
તુટેલા થાળ સાથે જોડતાં તેની સાથે બરાબર મળી ગઈ. આ જોઈ સુનંદે  
કહ્યું—ઠીક છે, હવે તમે એ તો બતાવો કે તમે છે કેણું ? આ પ્રકારે સુનંદના  
પૂછવાથી સુધને તેને પોતાનો પરિચય આપ્યો. પરિચય સાંભળતાં જ ખૂબ જ  
હર્ષ પામ્યો અને કહેવા લાગ્યો કે ધન્ય છે આજનો દિવસ, કે આપનાં દર્શન  
થયાં. તમારા પિતાએ મારી પુત્રી સાથે તમારું વેવિશાળ અગાઉ નક્કી કરેલું  
એટલે તમે મારા જમાઈ છે, અને તમે યોગ્ય ઉમરના થયા છે, એ માટે મારી



पूर्ववृत्तं वर्णयित्वा सुनन्दो वणिक् पुनरवोचत्—गृहाण मम पुत्रीं, मदीयं सर्वस्वं च । एतद्वचनं श्रुत्वा सुधनोऽब्रवीत्—पुरुषः पूर्वं कामभोगान् परित्यजति, कामभोगा वा पुरुषम्, मां तु कामभोगा एव पूर्वं परित्यक्तवन्तस्तेनाहं तान् परित्यजामि, नास्ति मे किञ्चित् प्रयोजनं तव पुत्र्या सर्वस्वेन चेति । एवं संवेगसंवलितं सुधन-वचनं श्रुत्वा सुनन्दो वणिक् संवेगं प्राप्तवान् ।

अथ वणिक्पुत्रस्य सुधनस्य वैराग्यं दृष्ट्वा तत्पूर्वभवमित्रदेवः प्रत्यक्षीभूय तमब्रवीत्—त्वां प्रतिबोधयितुं मया सर्वमेतत् समाचरितम्, इत्युक्त्वा तस्मै सदोरक-मुखवस्त्रिकारजोहरणपात्रादीनि साधूपकरणानि समर्पितानि । तदा सुधनः सुनन्देन सह प्रव्रजित इति ।

लिये मेरी पुत्री को और मेरे सर्वस्व को अपनाकर मुझे कृतार्थ करें । सुनंद के वचनोंको सुनकर सुधन ने कहा—संसार की विचित्रता को देखो । प्रायः पुरुष ही पहिले काम-भोगोंका परित्याग किया करता है परन्तु आश्चर्य है कि जब काम-भोगों ने ही मुझे पहिले से छोड़ दिया है, तब अब सुन्दर मार्ग यही है कि मैं भी अब इन्हें सर्वथा छोड़ दूं, अतः मुझे अब न आपकी पुत्री से मतलब है और न आपके सर्वस्व से । इस प्रकार वैराग्य से युक्त सुधन के वचनको सुनकर सुनंद भी वैराग्य को प्राप्त हुआ । वणिक्पुत्र सुधनके वैराग्यको देखकर उसका पूर्वभवीय वह मित्र जो देव था प्रत्यक्ष होकर उससे कहने लगा—मित्र सुधन ! तुम्हें प्रतिबोधित करने के लिये ही मैंने यह सब खेल रचा है, अच्छा हुआ तुम प्रतिबोधित हो गये । इस प्रकार कहते हुए उसने उसके लिये

पुत्रीने अने मारा सर्वस्वने पोतानुंमानी मने कृतार्थ करे। सुनंदनां वचने सांभणी सुधने कहुं—संसारनी विचित्रताने बुझो, परी रीते पुरुष न काम भोगोने परित्याग करते आवेले छे, परंतु आश्चर्य छे के न्यारे काम-भोगोअे न पहिलेथी मने छोडी दीधेले छे, त्यारे साराभां सारे मार्ग अे छे के हुं पणु आने सर्वथा छोडी हउं, अेटले मने डवे नथी आपनी पुत्रीथी मतलब के न आपना सर्वस्वथी। आ प्रकारनां वैराग्यथी युक्त अेवां सुधननां वचने सांभणीने सुनंदने पणु वैराग्य प्राप्त थये। डवे वणिक्पुत्र सुधनना वैराग्यने जेई तेना पूर्वभवने मित्र के न देव छे ते प्रत्यक्ष अनी तेने कडेवा लाग्यो—  
—मित्र सुधन ! तने प्रतिबोधित करवा माटे न मे आ सधणो जेले रयेले छे। डीक थयुं के तमे प्रतिबोध पाभ्या। आ प्रकारे कडेतां तेणु तेना माटे

अनगारस्य=न विद्यतेऽगारं = गृहं यस्य सोऽनगारः=द्रव्यभावगृह-  
रहितः, तत्र द्रव्यागारं-नियतवासस्थानम्, भावागारं कषायमोहनीयं कर्म, तस्य  
स्थित्यादिभूयस्त्वे नास्ति विरतिसंभवस्तस्मादल्पकषायमोहनीयो भावतोऽनगार-  
स्तस्य भिक्षोः=हननघातनादिनवकोटिपरिशुद्धभिक्षाग्राहिणः विनयम्=विशिष्टो

साधु के उपकरणरूप सदोरक सुखवस्त्रिका रजोहरण एवं पात्र आदि  
समर्पित किये । इस प्रकार संयोग का कटुक फल जानकर सुधनके साथ  
सुनन्द भी प्रव्रजित हो गया ।

अब 'अणगारस्स भिक्खुणो' का अर्थ कहते हैं-अनगार शब्द  
का अर्थ घर का परित्याग करना है । द्रव्य और भावके भेदसे अगार  
के दो भेद हैं । नियत जो निवास का स्थान है-वह द्रव्य-अगार है ।  
कषाय-मोहनीय कर्म भाव-अगार है । इसकी उत्कृष्ट स्थिति आदि में  
जीव को विरतिका लाभ नहीं होता है । विरति का लाभ होने के लिये  
इसकी स्थिति आदि अल्प अपेक्षित होती है, इसलिये अल्पकषाय-  
मोहनीयवाला भावानगाररूप से विवक्षित हुआ है । अब 'भिक्षु'  
शब्द का अर्थ कहते हैं-भिक्षु वही हो सकता है जो हनन घातन आदि  
क्रियाओं का नवकोटि से परित्यागी होता है, अर्थात् हनना, हनवाना,  
उसका अनुमोदन करना, पकाना, पकवाना, उसका अनुमोदन करना,  
खरीदना, खरीदवाना, उसका अनुमोदन करना, इन नवकोटि दोषोंसे

साधुनां उपकरणरूप दारासाधेभुभवस्त्रिका, रजोहरण्ये अने पात्रो आदि  
समर्पित कर्यां. आ प्रकारे संयोगनां कडवां इणने ज्ञानीने सुधननी साथेसाथ  
सुनंदे पणु प्रव्रज्या अंगीकार करी.

इवे "अणगारस्स भिक्खुणो" नो अर्थ कहे छे-अनगार शब्दने  
अर्थ घरने परित्याग करवो. ते द्रव्य अने भावना भेदथी अगारना जे भेद छे.  
नियत जे निवासनुं स्थान छे ते द्रव्य-अगार छे. कषाय मोहनीय  
कर्म भाव-अगार छे. तेनी उत्कृष्ट स्थिति आदिमां एवने विरतिने लाभ थतो  
नथी. विरतिने लाभ थवा माटे अनी स्थिति आदि अल्प अपेक्षित थाय  
छे, आ माटे अल्पकषायमोहनीयवाणा भावानगाररूपथी विवक्षित थयेल छे.  
इवे "भिक्षु" शब्दने अर्थ कहे छे-भिक्षु अने थछ शके छे जे हनन घातन  
आदि क्रियाओने नवकोटीथी परित्याग करे छे. अर्थात् इणुवुं, इणुवावुं अने तेनुं  
अनुमोहन करवुं. पकावुं, पकावथी तैयार करावुं, तेनुं अनुमोहन करवुं,  
खरीदवुं, खरीदावुं, अने तेनुं अनुमोहन करवुं, आ नवकोटी दोषोथी रडित

नयो नीतिर्विनयः=साधुसमादृतः समाचारस्तम्, यद्वा-विनयति=नाशयति सकल-  
क्लेशजनकमष्टविधं कर्म स विनयस्तम्, गुरुं प्रति नीचैर्वृत्तिलक्षणा नम्रता द्रव्यतो  
विनयः, साध्वाचारं प्रति प्रवणत्वं भावतो विनयस्तमित्यर्थः, प्रादुष्करिष्यामि=  
प्रकटयिष्यामि । केन प्रकारेण प्रादुष्करिष्यामीत्याकाङ्क्षायामाह—‘आणुपुर्व्वि’  
इति । आनुपूर्वीमिति, अत्र-सौत्रत्वात् तृतीयार्थे द्वितीया, आनुपूर्व्या=क्रमेण  
शास्त्रोक्तपरिपाटचेत्यर्थः, हे शिष्याः ! मे=मम मत्सकाशादित्यर्थः, यद्वा—‘ मे ’ इति  
विभक्त्यन्तप्रतिरूपकमव्ययम् मे=मत्तः, शृणुत=यूयमाकर्णयत श्रवणं प्रति सावधाना  
भवतेत्यर्थः । स्वशिष्याभिमुखीकरणार्थमिदम् ॥ १ ॥

‘विनयं प्रादुष्करिष्यामी’त्युक्तं, तत्र विनीतलक्षणे विज्ञाते सति विनय-  
स्वरूपं विदितं स्यादिति विनीतलक्षणमाह—

रहित भिक्षा का ग्रहण करनेवाला भिक्षु कहा गया है । विनय का अर्थ  
है—विशिष्ट नय, इसलिये यहाँ ‘ विनय ’ शब्द से साधुओंका आचार  
समझना चाहिये । अथवा—जो अष्टविध कर्मोंका नाश करे सो ‘विनय’  
है । वह विनय द्रव्य-विनय और भाव-विनय के भेद से दो प्रकार का  
है । गुरु के प्रति, तथा पर्यायज्येष्ठोंके प्रति नम्र होना, तथा उनकी सेवा  
करना यह द्रव्य-विनय है । साध्वाचार में तत्पर रहना यह भाव-विनय  
है । उस विनय को मैं शास्त्रोक्त पद्धति के अनुसार प्रकट करूँगा,  
अतः हे जंबू ! तुम सब मुझ से इस बात को अच्छीतरह सुनो ॥ १ ॥

विनीत के लक्षण का जबतक ज्ञान न हो जाय तब तक विनय का  
स्वरूप जाना नहीं जा सकता है, इसलिये सूत्रकार विनीत का लक्षण  
कहते हैं—‘आणाणिहेसकरे’ इत्यादि ।

भिक्षाने अडणु करवावाणा ‘भिक्षु’ कडेवाय छे. विनयने अर्थ छे—विशिष्ट नय,  
आ भाटे अडिं ‘विनय’ शब्दथी साधुओने आचार समजवे जेधये. अथवा—  
जे अष्टविध कर्मोने नाश करे ते ‘विनय’ छे. ते विनय द्रव्य-विनय अने लाव  
-विनयना लेदथी जे प्रकारे छे. शृङ्गना प्रति तथा पर्यायथी अडाओ प्रति नम्र  
थयुं, तथा तेनी सेवा करवी ते द्रव्य विनय छे. साधुना आचारमां तत्पर रहेवुं  
ये लाव-विनय छे. ते विनयने हुं शास्त्रोक्त पद्धति अनुसार प्रकट करीश,  
भाटे छे जम्भू ! तमे भारथी आ अधणी वातने सारी रीते सांभणे (१).

विनीतना लक्षणयुं न्यां सुधी ज्ञान न थाय त्यां सुधी विनययुं स्वइपन्नाणी  
शकानुं नथी. आ भाटे सूत्रकार विनीतनां लक्षणु कडे छे.—‘आणाणिहेसकरे’. इत्यादि.

मूलम्—आणाणिद्देशकरे, गुरुणमुववायकारण ।

इंगियागारसंपण्णे, से विणीए ति बुच्चई ॥ २ ॥

छाया—

आज्ञानिर्देशकरः गुरुणामुपपातकारकः ।

इङ्गिताकारसम्पन्नः स विनीत इत्युच्यते ॥ २ ॥

टीका—

‘आणाणिद्देशकरे’ इत्यादि । आज्ञानिर्देशकरः=आज्ञा=विधिरूपं प्रतिषेधरूपं वा गुरुवचनं, यथा—‘इदं कुरु’ ‘इदं मा कुरु’ इति, तस्या निर्देशः—भवद्बचनानुसारेण करिष्यामीति कथनं, तस्य करः=कर्ता, यद्वा—आज्ञायाः=तीर्थ-करवाण्या निर्देशः=उत्सर्गापवादकथनं, तस्य कारकः, तथा-गुरुणाम्=आचार्यादीनाम्, उपपातकारकः=उपपातः=समीपेऽवस्थानं, तस्य कारकः, आचार्यादिसंनिहितस्थान-वर्ती, न तु तन्नियोगवचनभयाद् दूरावस्थायीत्यर्थः, तथा—इङ्गिताकारसम्पन्नः, इङ्गितं=निपुणमतिगम्यं स्वाभिप्रायमूचकमीषद्भ्रूचालनादिकम्, आकारः=स्थूल-मतिगम्यः प्रस्थानादिमूचको दिगवलोकनादिः, ताभ्यां संपन्नः=युक्तः, गुरुमनो-वृत्तिज्ञानवानित्यर्थः, एवंभूतो यः शिष्यः सः विनीतः=विनयवान्, इत्युच्यते तीर्थकरगणधरादिभिरिति शेषः ।

अन्वयार्थ—(गुरुणं—गुरुणां) आचार्य आदिकी (आणाणिद्देशकरे—आज्ञानिर्देशकरः) आज्ञा को मानने वाला (उववायकारण—उपपातकारकः) उनके निकट सदा रहने वाला (इंगियागारसंपण्णे—इंगिताकारसंपन्नः) इंगित—सूक्ष्म बुद्धि वालों से जानने योग्य गुरु आदि की भ्रूचालन आदि चेष्टा । आकार—स्थूल बुद्धि वालों से भी समझने योग्य गुरु आदि की गमनादिसूचक दिशाका अवलोकनादि चेष्टा । गुरु आदि की इन दोनों चेष्टाओं को अच्छी तरह जानने वाला जो शिष्य होता है (से विणीए

अन्वयार्थ—(गुरुणं—गुरुणां) आचार्य वगैरेणी (आणाणिद्देशकरे—आज्ञा-निर्देशकरः)आज्ञाने मानवावाणा (उववायकारण—उपपातकारकः) अेभनी पासे सदा रहेवावाणा (इंगियागारसंपण्णे—इंगिताकारसंपन्नः) इंगित—सूक्ष्म बुद्धिवाणाथी ढाणुवा योग्य शुद्धनी भ्रूचालन—(आंभनो षशाशे) आदिनी चेष्टा, आकार-स्थूल बुद्धिवाणाथी पणुसमञ्जवा योग्य शुद्ध आदिनी गमनादिसूचक दिशानुं अवलोकन आदि चेष्टा, शुद्ध आदिनी आ भन्ने चेष्टाअोने सारी रीते ढाणुवावाणा

ત્તિ ઘુચ્ચૈ-સઃ વિનીત ઇતિ ઉચ્ચતે ) વહ તીર્થકર ગણધર આદિ કે દ્વારા વિનીત કહા ગયા હૈ ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—“આજ્ઞાનિર્દેશકરઃ” “યહ કરો, યહ ન કરો” ઇસ પ્રકાર વિધિરૂપ ઓર નિષેધરૂપ જો ગુરુ કે વચન હૈં વે ‘આજ્ઞા’ શબ્દ સે ગ્રહણ કિયે ગયે હૈં । “આપ કે વચન કે અનુસાર હી પ્રવૃત્તિ કરને કા ભાવ હૈ, અન્યથા નહીં,” ઇસ પ્રકાર શિષ્ય કા કથન નિર્દેશ હૈ । ઇસ નિર્દેશ કા અચ્છી તરહ સે પાલન કરને વાલા આજ્ઞાનિર્દેશકર હૈ । અથવા—આજ્ઞા-તીર્થકર પ્રભુ કી વાણી કે દ્વારા જો ઉત્સર્ગ એવં અપવાદ માર્ગ કા નિર્દેશ અર્થાત્ વિધાન કિયા ગયા હૈ ઉસકે અનુસાર કરને વાલા આજ્ઞાનિર્દેશકર કહા જાતા હૈ । ઉપપાત શબ્દ કા અર્થ હૈ—સમીપ બૈઠના । શિષ્ય કા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ સદા અપને ગુરુ કે સમીપ બૈઠે । ઉનકી આજ્ઞા કે પાલન કરને કે ભય સે ઉનસે દૂર ન બૈઠે । ગુરુ કા અભિપ્રાય પરખના યહ સાધારણ બાત નહીં હૈ । યહ બાત તબ હી સીખી જા સકતી હૈ કિ જબ શિષ્ય ઉન કે પાસ મેં બૈઠે, અન્યથા નહીં । વિનીત શિષ્ય ગુરુ કી સેવા કરને સે આત્મકલ્યાણ કરતા હૈ, ।

જે શિષ્ય હોય છે, (સે વિનીત-ત્તિ ઘુચ્ચૈ-સઃ વિનીત ઇતિ ઉચ્ચતે) તે તીર્થકર ગણધર આદિ દ્વારા વિનીત કહેવાયેલ છે (૨).

ભાવાર્થ—“આજ્ઞાનિર્દેશકરઃ” “આ કરો અને આ ન કરો.” આ પ્રકારે વિધિરૂપ અને નિષેધરૂપ જે ગુરુનાં વચન છે તે ‘આજ્ઞા’ શબ્દથી ગ્રહણ કરવામાં આવેલ છે. “આપના વચન અનુસાર જ પ્રવૃત્તિ કરવાના ભાવ છે ખીલ નથી” આ પ્રકારનું શિષ્યનું કથન નિર્દેશ છે. નિર્દેશનું સારી રીતે પાલન કરવા-વાળા આજ્ઞાનિર્દેશકર છે. અથવા—આજ્ઞા-તીર્થકર પ્રભુની વાણીદ્વારા જે ઉત્સર્ગ અને અપવાદ માર્ગનો નિર્દેશ અર્થાત્ વિધાન કરવામાં આવેલ છે તે અનુસાર કરવાવાળા આજ્ઞાનિર્દેશકર કહેવાય છે. ઉપપાત શબ્દનો અર્થ છે. સમીપ બેસવું. શિષ્યનું કર્તવ્ય છે કે તે સદા પોતાના ગુરુની સમીપ બેસે. ગુરુની આજ્ઞાનું પાલન કરવાના ભયથી તેનાથી દૂર ન બેસે. ગુરુનો અભિપ્રાય બાણવો તે સાધારણ વાત નથી. એ વાત ત્યારે જ શીખી શકાય કે જ્યારે શિષ્ય તેની પાસે બેસે, એ શિવાય નહીં. વિનીત શિષ્ય ગુરુની સેવા કરવાથી આત્મકલ્યાણ કરે છે.

अत्र गुणनिधिभ्रमणस्य दृष्टान्तः—

तथाहि—धर्मसिंहाचार्यस्य गुणनिधिनामकः सुधीः शिष्यः प्रकृतिभद्रः प्रकृतिविनीतः प्रतिदिवसं गुरुनिकटवासी गुरुवचनानुकूलकार्यकारी गुरुमनोवृत्त्यनुसारी गुरुविचारश्रेणिसरणिसंचरणशीलः प्रकृतिसरलः सुशील आसीत् । यदा गुरुरागच्छति तदाऽऽसनादुत्थाय तस्मै सविनयमासनं प्रयच्छति, यदा गच्छति तदाऽऽसनमुपादाय तदुपवेशनस्थाने विस्तारयति, गुरोराज्ञा कदा कीदृशी भविष्यतीत्येवं प्रतिक्षणं प्रतीक्षमाणस्तिष्ठति । यस्मिन् यस्मिन् ऋतौ यद् यद् गुरुप्रकृत्यनुकूलमशनादिकं, तत्तत् समानीय गुरवे समर्पयति । गुरुर्हि जननीजनकाभ्यामप्यधिकः, तत्र कारणं-जन्मदाता जन्मनि जन्मनि भवति, मुक्तिदाता गुरुस्तु दुर्लभः,

इस पर गुणनिधिभ्रमण का दृष्टान्त कहते हैं—

धर्मसिंह आचार्य का गुणनिधि नामका एक शिष्य था। यह सुबुद्धि एवं प्रकृतिभद्र था। विनीत था। गुरु महाराज के पास बैठना उनके वचन के अनुसार चलना, उनकी मनोवृत्ति के अनुकूल काम करना, इत्यादि समस्त सदगुणों से युक्त था। बड़ा ही सुशील था। जब गुरु महाराज पधारते तब आसन से उठ कर वह उनके लिये विनयपूर्वक आसन देता, तथा जब गुरु महाराज वहाँ से उठ कर जाते तब वह आसन लेकर उनके पीछे २ चलता और जहाँ गुरु महाराज बैठना चाहते वहाँ आसन बिछा देता। गुरु महाराज की आज्ञा कब कैसी होगी, इसकी प्रतिक्षण प्रतीक्षा करता था। जिस २ ऋतु में जो जो आहार पानी आदि गुरुमहाराज के प्रकृति के अनुकूल होता उस उस ऋतु में वही वही पदार्थ लाकर गुरु महाराज को अर्पण करता। गुरु ने जो कुछ कहा वही

आ अंजे गुणनिधि भ्रमणुं दृष्टान्तं कहे छे—

धर्मसिंह आचार्यने गुणनिधि नामने एक शिष्य छतो. ते सुबुद्धि-वाणे। अने प्रकृतिभद्र छतो. विनीत छतो. गुरु महाराज पासे भेसवुं, तेमना वचन अनुसार आसवुं, तेमनी मनोवृत्ति अनुकूल काम करवुं इत्यादि समस्त सदगुणोधी युक्त छतो. धरो सुशील छतो. न्यारे गुरुमहाराज पधारे त्यारे आसनथी उठीने ते तेमने माटे विनयपूर्वक आसन आपतो, तथा न्यारे गुरु महाराज त्यांथी उठीने जता त्यारे ते आसन लधने तेमनी पाछण पाछण जतो अने न्यां गुरु महाराज भेसवा धच्छे त्यां आसन पीछावी ( पाथरी ) हेतो. गुरु महाराजनी आज्ञा क्यारे केवी छरो, तेनी प्रतिक्षण प्रतीक्षा करतो छतो. जे जे इतुमां जे जे आहार पाणी आदि गुरु महाराजनी प्रकृतिने अनुकूल होयते ते इतुमांते ते पदार्थ लावीने गुरु महाराजने

उ-४



गुरुं विना कालत्रयेऽपि ज्ञानं दुर्लभम् , यथा सिद्धाञ्जनं विना भूतलान्तर्गतं निधानं नयनपथं नावतरति, तथैव गुरुमन्तरेणात्मस्वरूपं न पश्यति । यथा दुग्धान्नवनीतं तद्विलोडनं विना न प्राप्यते, एवं गुरुसेवनं विना रत्नत्रयं नोपलभ्यते । स गुण-करना, यह समझ कर कि गुरु महाराज कभी भी अन्यथा प्रवृत्ति नहीं करा सकते हैं, अहित में प्रवर्तन कराने का अभिप्राय इनके अन्तःकरण में कभी भी जाग्रत नहीं हो सकता है, क्योंकि कि ये मेरे हितकारी हैं, इस अभिप्राय से—इस दृढ आस्था से—वह सदा गुरु की आज्ञा का आराधन किया करता था । साथ में उसका यह पक्का विश्वास था कि गुरुमहाराज माता पिता से भी अधिक उपकारी होते हैं, क्योंकि कि जन्म दाता तो इस जीव को प्रत्येक भव में प्राप्त होते रहते हैं, परन्तु मुक्तिदाता गुरु तो बड़े भाग्य से ही मिलते हैं, निर्धन को निधिके समान आत्मा को इनका समागम बहुत दुर्लभ है । आत्मज्ञानकी प्राप्ति इनसे ही हुआ करती है । गुरु के विना तो कालत्रय में भी सम्यग्ज्ञान का लाभ नहीं हो सकता है. ये तो सिद्ध-अंजन समान हैं—जिस प्रकार सिद्ध-अंजन आंखों में आंजने के प्रभाव से जीवों की भूमिगत निधान को लक्षित करनेवाली दृष्टि खुल जाती है उसी प्रकार गुरु की कृपा से आत्मज्ञान का अनुभव जीवको होने लगता है । दुग्ध के विलोडन किये विना जैसे मक्खन का

अर्पण करते। गुर्मे ने कंठ कहुं अे करवुं, अेवुं समञ्जने के गुर् मडाराज कही पणु अन्यथा प्रवृत्ति न करवे. अहितमां प्रवर्तन कराववानो अलिप्राय तेमना अंतःकरणमां केअ वअत पणु अअत थाय न नडी, केमके तेअो मारा हितकारी छे. आ अलिप्रायथी—आवी द्रढ आस्ताथी—ते सदा गुर्नी आज्ञानुं आराधन कर्या करतो. साथेसाथ तेने अे पाके विश्वास छतो के गुर् मडाराज माता पिताथी पणु अधिक उपकारी होय छे. केमके न्मदाता तो आ अेवने प्रत्येक भवमां प्राप्त थता न रहे छे. परंतु मुक्तिदाता गुर् तो सारा सहभाग्यथी न भणे छे. निर्धनने निधि समान तेवी रीते आत्माने गुर्नेो समागम घणो न दुर्लभ छे. आत्मज्ञाननी प्राप्ति तेमनाथी न थाय छे. गुर् विना तो कालत्रयमां पणु सम्यग्ज्ञाननो लाभ थथ शकतो नथी. अेअो तो सिद्ध-अंजन समान छे. ने प्रकारे सिद्ध-अंजन आंखोमां आंज-वाना प्रभावथी अेवोनी भूमिगत निधानने लक्षित करवावाणी दृष्टि खुली अय छे अेवी रीते गुर्नी कृपाथी आत्मज्ञाननो अनुभव अेवने थवा लागे छे. दुधने वलोअ्या शीवाय नेम भाणणुनुं मणवुं असंभव छे तेम

निधिर्गुरुस्तुतिं करोति—हे गुरो ! भवान् वारिद इव करुणारसवृष्ट्यामामकीनं चित्त-  
चातकं प्रमोदयति, शमदमादिगुणोद्यानं हरितीकरोति । हे करुणासागर ! भव-  
त्करुणां विना सम्यक्त्वप्राप्तिर्न भवति, सम्यक्त्वं विना तत्त्वातत्त्वविवेकरूपाऽमृत-  
भावना न जायते, अमृतभावनां विना विशुद्धध्यानं न भवति । विशुद्धध्यानं विना  
क्षपकश्रेणिर्न प्रादुर्भवति । क्षपकश्रेणिं विना शुक्लध्यानस्य द्वितीयपादः प्राप्तो न  
भवति । शुक्लध्यानस्य द्वितीयपादं विना केवलज्ञानं न संभवति । केवलज्ञान-

मिलना असंभव है उसी प्रकार गुरु की सेवा किये विना भी रत्नत्रयकी  
प्राप्ति होना महादुर्लभ है, धन्य है, गुरुमहाराज !! गुणनिधिने इस प्रकार  
मन में विचार कर गुरु महाराज की स्तुति की, जो इस प्रकार है—  
हेगुरुमहाराज ! आप मेघ की तरह मेरे चित्तरूपी चातक को करुणारस  
के वर्षण से प्रमुदित करनेवाले हैं । शम दम आदि गुणस्वरूप उद्यान  
को हरा भरा बनाने वाले हैं । हे करुणासागर ! जबतक आपकी करुणा-  
रसार्द्र दृष्टि जीवों पर नहीं पडती, तबतक उन्हें सम्यक्त्व का लाभ नहीं  
होता है । सम्यक्त्व प्राप्त किये विना जीव कभी भी तत्त्वातत्त्वविवेकरूप  
अमृत से भरी हुई भावना को अपने में नहीं भर सकता । अमृतभा-  
वना भरे विना विशुद्ध ध्यान कभी भी नहीं जग सकता । विशुद्ध  
ध्यान की जागृति विना जीव को क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति नहीं हो सकती,  
क्षपकश्रेणि की प्राप्ति हुए विना शुक्लध्यान का द्वितीयपाद (दूसरा

गुडनी सेवा कर्था सिवाय रत्नत्रयनी प्राप्ति थवी महादुर्लभ छे. धन्य छे  
गुड महाराज !. गुणनिधिजे या प्रकारने मनमां विचार करी गुडमहाराजनी  
स्तुति करी, जे या प्रकारनी छे.—हे गुडमहाराज आप मेघनी भाङ्क  
भारा चित्तरूपी चातकने कङ्कुरसना वर्षणुथी प्रमुदित करवावाणा छे. शम  
दम आदि गुणस्वरूप उद्यानने झलतो झूलतो अनाववावाणा छे, हे कङ्कुरासागर !  
ज्यां सुधी आपनी कङ्कुरा रसार्द्र (दयाधी लीनी) दृष्टि जेवो पर नथी पडती  
त्यां सुधी तेने सम्यक्त्वने लाल थतो नथी. सम्यक्त्व प्राप्त कर्था वगर  
जव क्यारेय पणु तत्त्वातत्त्वविवेकङ्कुर अमृतथी लरेली लावनाने पोतानामां  
लरी शकतो नथी. अमृत लावना लर्या वगर विशुद्ध ध्यान करी पणु अमृत  
थतुं नथी. विशुद्धध्याननी लभति विना जवने क्षपकश्रेणीनी प्राप्ति थती  
नथी. क्षपकश्रेणीनी प्राप्ति थया विना शुक्लध्यानने भीजे पाये प्राप्त थतो



प्राप्तिं विना शैलेश्यवस्था न जायते । तां विना सकलकर्मक्षयो न भवति । सकल-  
कर्मक्षयं विना मुक्तिर्न संभवति । मुक्तिप्राप्तिं विनाऽयमात्माऽमरपदं न लभते ।  
अमरपदप्राप्तिं विनाऽऽत्मनः सिद्धावस्था न जायते, अतो भवानेव सकलकल्याण-  
कारणमिति प्रतिक्षणं भवच्चरणसमाराधनमेव मम संयमाराधनम् । एवं गुरुमारा-  
धयन् गुणनिधिः संयमयात्रां निर्वहन् स्वात्मकल्याणमचिरेण साधितवान् । एव  
मन्येनापि शिष्येण विनयपरेण भवितव्यम् ॥ २ ॥

अविनीतत्ववर्जनेन विनीतो भवतीत्यतो विनीतविपरीतमविनीत-  
स्वरूपमाह—

पाया ) प्राप्त नहीं हो सकता । शुद्धध्यान के दूसरे पाये की प्राप्ति विना  
केवलज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती । केवलज्ञान की प्राप्ति विना शैलेशी  
अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती है । शैलेशी अवस्था की प्राप्ति विना सकल  
कर्मोंका क्षय नहीं हो सकता है और सकल कर्मोंके क्षय विना मुक्ति  
की प्राप्ति नहीं हो सकती, और मुक्तिकी प्राप्ति विना अमरपद नहीं  
मिल सकता । अमर पद पाये विना आत्मा सिद्धावस्थासम्पन्न नहीं  
बन सकता । इस लिये हे नाथ ! आप ही सकल कल्याण के कारण  
हैं, अतः प्रतिक्षण आपके चरणोंका आराधन ही मेरा संयमाराधन है ।  
इस प्रकार अपने गुरुकी आराधना करते हुए गुणनिधि ने तप संयम  
की आराधना की, और थोड़े ही काल में आत्मकल्याण किया । इसी  
तरह अन्य शिष्यों को भी अपने गुरुके प्रति विनयशील रहना चाहिये ॥ २ ॥

नथी. शुद्धध्यानना पीण पायानी प्राप्ति विना केवलज्ञाननी प्राप्ति थती  
नथी. केवलज्ञाननी प्राप्ति विना शैलेशी अवस्था प्राप्त थती नथी. शैलेशी  
अवस्थानी प्राप्ति विना सकल कर्मोना क्षय थतो नथी अने सकल कर्मोना  
क्षय विना मुक्तिनी प्राप्ति थती नथी. अने मुक्तिनी प्राप्ति विना अमरपद  
भणी शकतुं नथी. अमरपद भेणव्या वगर आत्मा सिद्धअवस्थासंपन्न  
अनी शकतो नथी माटे हे नाथ ! आपण सकल कल्याणना कारण छे. अेटवे  
प्रतिक्षण आपना चरणोानुं आराधनण माइं संयम आराधन छे. आ प्रकारथी  
पोताना शुर्नी आराधना करतां करतां गुणनिधिअे तप संयमनी आराधना  
करी अने थोडाण काणमां आत्मकल्याण कथुं. आवी रीते अन्य शिष्योअे  
पण पोताना शुर् प्रत्ये विनयशील रहेवुं जेधअे. ॥२॥

आणाऽणिद्देशकरे, गुरुणमणुववायकारए ।

पडिणीए असंबुद्धे, अविणीए—त्तिं वुच्चइ ॥ ३ ॥

छाया—

आज्ञाऽनिर्देशकरो गुरुणामनुपपातकारकः ।

प्रत्यनीकोऽसंबुद्धः अविनीत इत्युच्यते ॥ ३ ॥

टीका—

‘आणाऽणिद्देशकरे’ इत्यादि । आज्ञाऽनिर्देशकरः=आज्ञाया गुरुवचन-स्यानिर्देशकरः—अनादरकारकः, तथा गुरुणाम्=आचार्यादीनाम्, अनुपपातकारकः=समीपानवस्थायी, गुरुणां संनिधौ तिष्ठामि चेद् गुरवो मां स्वकार्यार्थमाज्ञापयिष्यन्तीति विज्ञाय दूरे तिष्ठतीत्यर्थः । तथा—प्रत्यनीकः=प्रतिकूलः, गुरुदोषान्वेषणपर इत्यर्थः । तथा—असंबुद्धः जीवाजीवादितत्त्वानभिज्ञः, एवंभूतो यः शिष्यः स खल्वविनीत इत्युच्यते ।

शिष्य में विनीतता, अविनीतता के परित्याग से ही आती है इसलिये विनीत से विपरीत अविनीत का स्वरूप सूत्रकार कहते हैं—‘आणाऽणिद्देशकरे०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(गुरुणं आणाऽणिद्देशकरे—गुरुणां आज्ञाऽनिर्देशकरः) गुरु की आज्ञा का अनादर करने वाला, (अणुववायकारए) उनके समीप नहीं बैठने वाला (पडिणीए) उनसे सदा प्रतिकूल वर्ताव करनेवाला (असंबुद्धे) जीव एवं अजीव आदि के स्वरूप को नहीं जाननेवाला ऐसा शिष्य (अविणीए वुच्चइ—अविनीतः—उच्यते) अविनीत कहा जाता है ।

भावार्थ—इस गाथा द्वारा सूत्रकार ने विनीत से विपरीत अविनीत का स्वरूप प्रदर्शित किया है । यद्यपि यह बात अर्थापत्ति से स्वयं सिद्ध

शिष्यमां विनीतता अविनीतताना परित्यागर्थी न आवे छे. आ माटे विनीतथी विपरीत अविनीतनुं स्वइप सूत्रकारे कडे छे—‘आणाऽणिद्देशकरे.’ इत्यादि

अन्वयार्थ—(गुरुणं आणाऽणिद्देशकरे—गुरुणां आज्ञाऽनिर्देशकरः) गुरुनी आज्ञानो अनादर करवावाणा (अणुववायकारए) अेमनी सामे न अेसवावाणा (पडिणीए) अेमनाथी सदा प्रतिकूल वर्ताव करवावाणा (असंबुद्धे) एव अने अणुव आदिना स्वइपने नहीं जानवावाणा अेवा शिष्य (अविणीए—वुच्चइ—अविनीतः उच्यते) अविनीत कडेवाय छे.

भावार्थ—आ गाथाद्वारा सूत्रकारे विनीतथी विपरीत अविनीतनुं स्वइप प्रदर्शित करेस छे. जेके आ वात अर्थापत्तिथी स्वयंसिद्ध थध नती हुती

हो जाती थी कि जो विनीत के कथित स्वरूपसे रहित है वह अविनीत है फिर भी जो यहां सूत्रकार ने उसे स्पष्ट शब्दों द्वारा अलग उल्लेख किया है उसका कारण विशेषरीति से विवेचन करना है, ताकि मंद-बुद्धि जन भी इस बात को अच्छी तरह समझ सकें। गुरु के समीप वह अविनीत शिष्य इसलिये नहीं रहना चाहता है कि वह विचारता है कि यदि गुरु के पास बैठूंगा तो उनका प्रत्येक कार्य मुझे करना पड़ेगा इसलिये अच्छा है कि मैं उनसे दूर ही बैठूं। ऐसा करने वाला शिष्य स्वेच्छाचारी हो जाता है। गुरु के पास बैठने का मुख्य यही उद्देश्य होता है कि शिष्यजन विनय आदि गुणों को प्राप्त करते हुए तप संयम की आराधना सुख से कर सके। मुझ से गुरु कुछ भी कह न सकें, गुरु पर भी मेरा रौब रहे, इस ख्याल से वह अपने पूज्य गुरुजनों में भी दोषों को ढूंढने में लगा रहता है। यह काम उसी शिष्य से हो सकता है जो असंबुद्ध-अर्थात् हिताहित के विचारों से रहित है। अभिज्ञ शिष्य ऐसा नहीं होता। गाथा में ये सब विशेषण हेतुहेतुमद्भाव वाले हैं, जिनका अभिप्राय इस प्रकार है-वह गुरु की आज्ञा का पालक इसलिये नहीं है कि वह उनके पास नहीं बैठता है-उनके पास नहीं रहता है,

के ने विनीतना कथित स्वरूपथी रहित छे, ते अविनीत छे, तो पणु अर्द्धि सूत्रकारे ऐनेो स्पष्ट शब्दो द्वारा अलग उल्लेख करेद छे, तेनुं कारण विशेष रीतिथी विवेचन करवुं ऐन छे, कारणु के मंदबुद्धिवाणे भाणुस पणु आ वातने सारी रीते समञ्ज शके. गुरुनी समीप ते अविनीत शिष्य अेटदा माटे रहेवा नथी याडतो के ते विचारे छे के कदाच गुरुनी पासे ऐसुं तो तेनुं प्रत्येक कार्यं मारे करवुं पडशे. आ माटे सार्ं ऐ छे के हुं तेमनाथी हूर ऐसुं. आवुं करनार शिष्य स्वेच्छाचारी भने छे. गुरुनी पासे ऐसवानो पास उदेश तो ऐ छे के शिष्यजन विनय आदि गुणोने प्राप्त करतां करतां तप संयमनी आराधना सुभथी करी शके. गुरुं भने कांछं पणु कही न शके, गुरुं उपर मारे दाण रहे, आ ज्यादथी ते पोताना पूज्य गुरुंनोमां पणु दोषोने शोधवा लागी रहे छे. आ काम तेवा शिष्य करे छे के ने असंबुद्ध अर्थात् हिताहितना विचारथी रहित छे, अभिज्ञ शिष्य आवा नथी डोता. गाथांमां आ यथां विशेषणु हेतुहेतुमद्भाववाणां छे, नेनेो अलिप्राय आ प्रकारे छे. ते गुरुनी आज्ञानो पालक ऐ आतर नथी के ते गुरुनी पासे ऐसतो

अत्र क्षुद्रबुद्धिशिष्यस्य दृष्टान्तः—

यथा एकस्य भद्रबुद्धिनामकाचार्यस्याऽविनीतः क्षुद्रबुद्धिनामकः शिष्य आसीत् । यदा गुरुः शिक्षार्थं प्रेरयति, तदा शिक्षा वह्निज्वालेव तस्य प्रतिभाति, व्रतं विषवत्, तपस्या स्वङ्गधारेव, स्वाध्यायः कर्णसूचीव, संयमो यम इव । अयमाहारे विहारे व्यवहारे च सर्वदाऽऽचार्यं पीडयति । सरसं भद्रकं सुस्वादमाहारं स्वयमश्नाति विवर्णं विरसमभद्रकं रूक्षमाचार्याय प्रयच्छति । अथ कदाचिदसौ श्रावकश्राविकाणां पुरतो ब्रूते—अद्य मम गुरोरुपवासः,

पास वह इसलिये नहीं रहना चाहता है कि वह प्रत्यनीक—अर्थात्—गुरु-द्वेषी—गुरु के छिद्रान्वेषण में तत्पर है, गुरुद्वेषी वह इसलिये है कि वह असम्बुद्ध अर्थात् हिताहित के विचारों से रहित है ।

अविनीत शिष्य कैसा होता है इस बात को क्षुद्रबुद्धि शिष्य के दृष्टान्त से स्पष्ट किया जाता है—

भद्रबुद्धि नामके एक आचार्य थे । उनका क्षुद्रबुद्धि नामक शिष्य था जो बड़ा अविनीत था । यह यथानाम तथागुण था । गुरु महाराज जब इसे शिक्षा देने बैठते तब उसका मन उदास हो जाता था । शिक्षा उसे ऐसी मालूम होती थी कि जैसे अग्नि की ज्वाला है । विषतुल्य इसे व्रत ज्ञात होने लगते । तलवार की धार के समान यह तपस्या को मानता, कर्ण को भेदनेवाली शलाई के तुल्य यह स्वाध्याय को समझता । अधिक क्या कहा जाय—संयम को तो यह यमके समान निहारता । आहार में विहार में एवं व्यवहार में यह सदा गुरु—महाराज को दुःखित ही किया

नथी, तेमनी पासे रडेते नथी, पासे रडेवानुं ते अेटला माटे नथी आडते के ते प्रत्यनीक—अर्थात् गुरुद्वेषी—गुरुनां छीद्रो जेवामां तत्पर छे. गुरुद्वेषी ते अे माटे छे के ते छिताडितना विचारेथी रडित छे.

अविनीत शिष्य केवो डोय छे आ वातने क्षुद्रबुद्धि शिष्यना दृष्टान्तथी स्पष्ट करवामां आवे छे—

क्षुद्रबुद्धि नामना अेक आचार्य डता. तेमने क्षुद्रबुद्धि नामनो अेक शिष्य डतो जे अविनीत डतो, तेनामां नाम प्रभाषे गुण डता. गुरु भडारज न्यारे तेने शिक्षा आपवा अेसता त्यारे तेनुं मन उदास थरुं जतुं. शिक्षा जेने अग्निनी न्वाणा जेवी लागती डती. व्रत तेने अडेर जेवां कडवां लागतां, तपस्थाने ते तरवारनी धार समान गणुतो, स्वाध्यायने ते कानने विधनारा सोया माइक न्गणुतो डतो. वधु शुं कडेवामां आवे. संयमने तो ते यमनी माइक न् जेतो, आडारमां, विडारमां, ने वडेवारमां अे गुरुभडारजने

इति, ततोऽसौ स्वयमश्नाति, गुरुश्च क्षुधार्तः सन् दिवसं यापयति। कदाचिद् वदति-  
 अद्य मम गुरुणा षष्ठभक्तं कृतम्, कदाचिच्च वदति-अद्य मम गुरुणाऽष्टभक्तमनु-  
 ष्ठितमिति, एवं क्रमेण गुरुः क्षुधया विवर्णः कृशः शक्तिरहितः संजातः। विहार-  
 काले वृद्धत्वेन शीघ्रगमनसामर्थ्यवर्जितोऽपि गुरुः शिष्यप्रेरणया सकलेशं  
 विहरति। साधुसामाचार्या क्षुद्रबुद्धिर्विपरीतमाचरति, प्रतिलेखनादिकं सम्यग् न  
 करता था। आहार के समय सरस सुस्वादु एवं रुचिकारक आहार यह  
 स्वयं पहिले खाता और जो रुक्ष विरस एवं अंत प्रान्त आहार होता  
 वह गुरु-महाराज को देता। जब इसे गुरु-महाराज को आहार देनेकी  
 इच्छा नहीं होती तो श्रावक और श्राविकाओं के समक्ष कहने लगता  
 कि आज तो मेरे गुरु-महाराज ने उपवास किया है, इस प्रकार यह गुरु  
 महाराज को भूखा रखकर स्वयं खूब खाने पीनेकी मजामौज उड़ाता  
 रहता। विचारे गुरुजी क्षुधा को शांतिभाव से सहन करते हुए  
 शमभाव में समय को व्यतीत करते। कभी २ कहता है कि आज  
 हमारे गुरु महाराज ने षष्ठभक्त किया है, आज अष्ट-भक्त किया है।  
 इस प्रकार गुरु को अत्यन्त कष्ट पहुंचाता। गुरु जी भी सम-  
 ताभाव से क्षुधा की वेदना इसे अविनीत समझ कर सहन करने लगे,  
 परन्तु आग्विर औदारिक शरीर ही तो ठहरा वह विना आहार के कहाँ  
 तक टिके। अन्त में वह शरीर विवर्ण-म्लान, कृश-कमजोर, और शक्ति

सहा दुःभीत न कर्था करते, आहारना समये सरस स्वादवाणा अटले इन्ध-  
 कारक आहार ते पोते पडेलां भाई देतो अने न्ने इक्ष, विरस अवेो अन्त-  
 प्रान्त आहार डोय ते गुड मडाराजने आपतो. न्यारे तेनी गुडमडाराजने  
 आहार देवानी धिच्छा न थती त्यारे श्रावक अने श्राविकाओंनी समक्ष कडेवा  
 लागतो के आज तो मारा गुडमडाराजे उपवास करेद छे. आ प्रकारे ते  
 गुड मडाराजने लूण्या राणीने पोते भूष भावापीवानी भोजमजळ उडावतो  
 रहेतो, भीचारा गुडल क्षुधाने शान्त लावथी सडन करीने समभावमां समयने  
 व्यतीत करता. कोई कोई वपत कडेतो के आज्जे अमारा गुड मडाराजे छट्ट करेद  
 छे. आज्जे अकुम करेदी छे. आवी रीते गुडने अत्यंत कष्ट पडेलांयाउतो. गुड  
 पणु समताभावथी क्षुधानी वेदना तेने अविनीत समल सडन करवा लाग्या.  
 परंतु आअरे औदारिक शरीर तो छे न ते आहार विना कथां सुधी टकी  
 शके? अंतमां तो शरीर विवर्ण म्लान, कृश-कमजोर, अने शक्ति वगरनुं

करोति, यदि कमपि दानादिकं विषयमवलम्ब्य गुरुर्मव्यानुपदिशति, तदा तत्स-  
भायामेव गुरोरनभिज्ञतां वदन् तं विषयं स्वयमुपदिशन् गुरुमपमानयति । कदाचिद्  
वदति—‘अद्य मम गुरुमौनव्रतमनुतिष्ठन्नास्ते’ इत्युक्त्वा स्वयमेव व्याख्यानं करोति।  
एवं क्षुद्रबुद्धिचरितं विलोक्य वृद्धाचार्यः स्वचेतसि चिन्तयति—अयमभीक्ष्णं ‘सनि-  
मित्त—मनिमित्तंवा क्रोधकारकः, कलहप्रियः, अभिमानी, अज्ञानी, मर्ममृषावादी च,  
तदिदं ममैव कर्मणः फलमिति मन्वानो वृद्धाचार्यः सर्वं सहमान आसीत् । कदा-

से विहीन हो गया । गुरुजी वृद्ध थे, इस लिये विहारकाल में चलते  
समय उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा, परन्तु क्या किया जाय फिर भी  
शिष्य की प्रेरणा से उन्हें अनिच्छा होने पर भी विहार करना ही पड़ता  
था । शिष्य का यह हाल था कि वह साधुसामाचारी को भी विपरीत  
करते हुए नहीं लजाता था । गुरु-महाराज जब कभी किसी दानादिक  
विषय को लेकर प्रवचन परिषद् के भीतर बैठकर करते तब यह उनके  
प्रवचन को अन्यथारूप में जाहिर करने के लिये, अथवा उस विषय में  
उनकी अनभिज्ञता प्रकट करने के लिये बीच ही में बोल उठता और  
कहता कि यह ऐसे नहीं ऐसे है, गुरुजी वृद्ध होने के कारण भूल गये  
हैं । जब कभी इसे बोलना होता तो लोगोंसे कहने लगता कि आज  
गुरुजी को मौनव्रत है, वे व्याख्यान नहीं देंगे, मैं ही व्याख्यान दूंगा, इस  
प्रकार कह कर व्याख्यान देने लग जाता । क्षुद्रबुद्धि का इस प्रकार  
स्वच्छंदाचरण देख कर गुरु-महाराज स्वयं इसमें अपने कर्मोंका फल

अनी गयुं. गुर् वृद्ध उता अेथी विहारमां आलती वपते तेमने धलुं कष्ट  
थवा लाग्युं परंतु शुं थर् शके ? शिष्यनी प्रेरणायी तेमणे धच्छा न  
होवा छतां पणु विहार करवा पडतो. शिष्य साधुसामाचारीथी विपरीत  
आलवामां पणु ललतो नडतो. गुर् महाराज न्यारे केर्ष दानादिके विषयने  
लर्षने तेना उपर प्रवचन परिषदमां करता त्यारे ते शिष्य तेमना प्रवचनने  
अन्यथाइपमां लडेर करवा माटे अथवा अे विषयमां तेमनी अनभिज्ञता  
अताववा माटे वचमां न ओली उठतो अने कडेतो के आ आभ नथी पणु  
आभ छे, गुर्ल वृद्ध होवाथी लूली गया छे. न्यारे तेने ओलवानुं मन थतुं  
त्यारे ते लोकेने कडेतो के आने गुर्लने मानव्रत छे. ते व्याख्यान आपसे  
नहीं, हुं न लाषणु करीश. आ रीते कडीने लाषणु करवा लागतो. क्षुद्रबुद्धिनुं  
आवुं स्वच्छंद आचरणु नेर्षने गुर् महाराज पोताना कर्मोनुं क्ष्ण

उ-५



चिदतिक्षुधया पीडितो गुरुश्चिन्तयति आहारानयनार्थं क्षुद्रबुद्धिं प्रेषयामीति, तावदसौ क्षुद्रबुद्धिः स्वगुरोः प्राणव्यपरोपणार्थं चतुर्विधसंघसमक्षमवादीत्-गुरुणा शरीरमतिकृशं शक्तिरहितं विलोक्य यावज्जीवमनशनं स्वीकृतम्, क्षुद्रबुद्धिवाक्यं श्रुत्वा चतुर्विधसंघस्तदैवाचार्यस्य समीपमागत्याब्रवीत्-धन्योऽसि कृतपुण्योऽसि महात्मन् ! भवान् जिनशासनभास्करः करुणासागरः, यत् खलु भवता

विचारते थे और मनही मन कहते थे-देखो तो सही इसकी कितनी बड़ी भारी अज्ञानता है जो विना निमित्त के ही क्रोध किया करता है, चाहे जिससे झगड़ा करता है, समझाने पर भी नहीं मानता है, अभिमान का पुतला बना हुआ है, मर्मच्छेदी मृषावचन बोलने में इसे संकोच तक नहीं होता, अब इसका इलाज क्या किया जावे, कुछ भी उपाय नहीं, अनुपायवस्तु में सहनशीलता धारण करना ही उचित है। इस प्रकार के विचार से गुरुमहाराज शान्त होकर उस के द्वारा प्रदत्त कष्टोंको सहते रहते। एक समय की बात है जब कि गुरु-महाराज क्षुधा से पीड़ित होकर आहार लाने के लिये क्षुद्रबुद्धिको भेजनेका विचार कर रहे थे कि इतने में क्षुद्रबुद्धि ने गुरुमहाराज को मारने के अभिप्राय से चतुर्विध संघ के समक्ष ऐसा प्रकट कर दिया कि वृद्धावस्था के कारण गुरुमहाराजने शरीर की स्थिति कमजोर जानकर यावज्जीव अनशनव्रत-संधारा धारण कर लिया है। क्षुद्रबुद्धि के इस प्रकार वचनों

डोवानुं पोते विचारता अने मनमांज कहेता के लुओ तो परा आनी डेटली अधी अज्ञानता छे के जे विना निमित्त कोध कर्या करे छे, चाहे तेनाथी अगडे छे, समझववा छतां पणु मानतो नथी, अलिमाननुं पुतणुं जनी गयो छे. मर्मवेधक मृषा वचन जोलवामां तेने सङ्कोच थतो नथी, डवे जेनो धलाज शुं थर्ध शके, केध उपाय नथी. अनुपाय वस्तुमां सडन-शीलता धारणु करवी ते ज उचित छे. जेवा प्रकारना विचारथी गुडमडाराज शान्त जनीने तेनाथी अपाता कष्टोने सह्या करता. जेक समयनी वात छे ज्यारे गुड मडाराज लुअथी पीडित जनीने आहार लाववाने क्षुद्रबुद्धिने जोडलवानो विचार करता डता जेटलामां क्षुद्रबुद्धिजे गुडमडाराजने मारवाना अलिप्रायथी चतुर्विध संघनी समक्ष जेवुं प्रगट कर्युं के वृद्धावस्थाने डारणु गुड मडाराजना शरीरनी स्थिति सारी रहेती न डोवाथी तेमणु जथां सुधी लवे त्यां सुधी अनशन व्रत धारणु करैल छे. क्षुद्रबुद्धिना आ प्रकारनां वच-

जराजर्जरिते कृशे निःसत्त्वे सत्यपि शरीरे कातरजनदुष्करं कठिनतरं तीव्र-  
मनशनं स्वीकृतम् । एवं चतुर्विधसंघवचनं श्रुत्वा गुरुणा चिन्तितम्—यदि स्वगतां  
बुभुक्षां प्रकाशयामि शिष्यप्रपञ्चं चावेदयामि, तर्हि जिनशासनस्य हीलना  
निन्दना लघुता भवतीति । तदन्तरं वृद्धाचार्येण चिन्तितम्—मम साहजिकः सकल-  
कर्मक्षयसमयः समायात इति । एवमसौ मनसि धारयन् समाधिभावमुपगत्य प्रवृद्ध-  
परिणामेन क्षपकश्रेणिं प्राप्य सकलकर्म क्षपयित्वा केवली भूत्वा सिद्धिगतिं प्राप्तवान् ।

को सुनकर समस्त चतुर्विध संघ उसी समय आचार्य के समीप आया  
और कहने लगा हे महात्मा ! आपको अनेकशः धन्यवाद है, आप वास्तव  
में बड़े भाग्यशाली हैं, आप जैसे जिनशासन को प्रकाशित करनेवाले  
सूर्य से धर्मकी प्रभावना होती है । करुणासागर ! हम आपका गुणगान  
कहाँ तक गावें, हम सबको तो यह सुनकर अपार हर्ष हो रहा है कि  
आपने जरा से जर्जरित, कृश एवं निःसत्त्व शरीर के होने पर भी  
कायर जनों द्वारा दुष्कर एवं कठिनतर तीव्र अनशन को जो स्वीकृत  
किया है । इस प्रकार चतुर्विध संघ के वचन सुनकर गुरुमहाराज ने  
चित्त में विचार किया कि यदि मैं अपनी भूख प्रकट करता हूँ और 'यह  
सब कुछ शिष्यका प्रपञ्च है' ऐसा जो कहता हूँ तो जिनशासन की अव-  
हेलना होती है, निन्दा होती है लघुता जाहिर होती है अतः अब श्रेय  
इसी में है कि अनशन व्रत अंगीकार कर लूँ, यह सहज ही कर्मक्षय-  
का समय उपस्थित हुआ है, इसे छोड़ना बुद्धिमानी की बात नहीं

नोने सांभणी समस्त चतुर्विध संघ ते समये आचार्यनी पासे आवी अने  
विनंती करी कडेवा लाग्या के डे मडात्मा ! आपने अनेकानेक धन्यवाद छे,  
आप वास्तवमां महान भाग्यशाणी छे. आप नेवा जिनशासनने प्रकाशित  
करवावाणा सूर्यथी धर्मनी प्रभावना थाय छे. कर्णसागर अमे आपना  
गुणोने कथां सुधी वरुणी शकीये. अमने अधाने तो अे ढाणीने अेवो डर्ष  
थयो छे के आपे वृद्धावस्थथी लर्षु कृश अने निःसत्त्व शरीर डोवा छतां  
पणु कायरजनो द्वारा दुष्कर अेवा आ कठिनतर तीव्र अनशननो अंगीकार  
करेले छे. चतुर्विध संघना आ प्रकारनां वचन सांभणीने गुर् मडाराने चित्तमां  
विचार कर्यो के अे हुं मारी लुप प्रगट कर् अने 'आ सघणो शिष्यनो  
प्रपञ्च छे' अेम अे कहुं तो जिनशासननी अवहेलना थाय छे, निन्दा थाय  
छे, लघुता ढाडेर थाय छे, माटे डवे तो श्रेय अेमां छे के अनशन व्रत  
अंगीकार करी लउं. कर्मक्षयनो आ सडेने समय प्राप्त थयो छे. अेने  
छोडवो अे बुद्धिवाणी वात नथी. आ प्रकारे विचार करी गुर् मडाराने



तदा गगनमण्डले देवैर्दुन्दुभिर्वाद्यद्भिर्जयजयध्वनिः कृतः । क्षुद्रबुद्धिकृतं सर्वमत्याचारं च ते देवा विदितवन्तः । ततस्ते तद्वृत्तमुद्घोषितवन्तः । तच्छ्रुत्वा चतुर्विधसंघस्तं संघान्निष्कासितवान् । तस्मिन्नेव समये आचार्यांशातनाजनितपापेन क्षुद्रबुद्धेर्वपुषि षोडश रोगाः समुत्पन्नाः । गच्छान्निष्कासितः, तीव्रवेदनां सर्वजनतिरस्कारं च प्राप्नुवन् स क्षुद्रबुद्धिर्मृतः । तदतन्तरं स नरके निपतितः । तत्र तीव्र-

होगी । इस प्रकार विचार कर गुरु-महाराज ने समाधिभाव को धारण कर लिया, और परिणामों की अतिशय विशुद्धि एवं वृद्धि से क्षपक श्रेणि पर आरूढ़ होकर घातिया कर्मों के नाश से केवली-अवस्था प्राप्त करली, पश्चात् अघातिया कर्मोंके नाश से सिद्धिगति के अधिपति बन गये । देवों ने भद्रबुद्धि आचार्य के केवलज्ञानप्राप्तिका उत्सव मनाया । आकाशमें जयघोषपूर्वक दुंदुभियां बजायीं । उन देवों ने साथ २ यह भी जान लिया कि इन आचार्य के साथ इस क्षुद्रबुद्धि ने अच्छा व्यवहार नहीं किया, उन्हें इसने अधिक से अधिक दुःख दिये और खूब मनमाना उनके साथ अविनीतता का व्यवहार किया है । देवताओं ने इस बात को संघ में जाहिर की । संघ ने क्षुद्रबुद्धि को संघबाहर किया, क्षुद्रबुद्धि भी कुछ समय बाद गुरुद्वेषी होने के कारण अर्जित पापकर्म के उदय से बहुत दुःखी हुआ, उसके शरीर में १६ प्रकार के रोगों ने अपना प्रभाव जमाया । संघ से बहिष्कृत वह इस प्रकार तीव्र वेदना एवं तिरस्कारजन्य दुःखों का अनुभव करता हुआ मर गया,

समाधिभाव धारण कर्था अने परिणामोनी अतिशय विशुद्धि अने वृद्धिथी क्षपकश्रेणी पर आरूढ अनी घातिया कर्मोना नाशथी सिद्धिगतिना अधिपति अनी गया. देवोअे भद्रबुद्धि आचार्यने प्राप्त थयेत केवलज्ञाननो उत्सव मनाव्यो. आकाशमां जयजयकार साथे दुंदुभियो वगाडवामां आवी, अने देवोअे साथेसाथ अे पणु ढाणी दीधुं के आ आचार्यनी साथे क्षुद्रबुद्धिअे साशे वडेवार करेन नथी, तेणु अेमने वधुमां वधु दुःख आपेल छे, अने मनमान्यो अविनीतनो वडेवार अेमनी साथे यदाव्यो छे. देवताओअे आ वातने संघमां ढाडेर करी संघे क्षुद्रबुद्धिने संघ अडार कर्था. क्षुद्रबुद्धि बुद्धेधी डोवाना कारणे थोडा समय बाद अर्जित पापकर्मना उदयथी घणो दुःभीत थयो, तेना शरीरमां सोण १६ प्रकारना रोगोअे पोतानो प्रभाव जमाव्यो. संघथी अडिष्कृत अेवा अे शिष्ये आ प्रकारनी तीव्र वेदना अने तिरस्कार-जन्य दुःखोना अनुभव कर्था, अने छेवटे तेनो डेडांत थयो. मरणुआड तेने

तरां दशविधक्षेत्रवेदनामनुभूय स गर्भाद् गर्भं, जन्मतो जन्म, मरणाद् मरणं, दुःखाद् दुःखं, पुनः पुनश्चतुर्गतिदुःखं प्राप्नुवन् दुर्लभबोधितां दीर्घसंसारितां च प्राप्तवान् ॥३॥

अविनीतस्य सदृष्टान्तमवस्थामाह—

मूलम्—जहाँ सुणी पूइकण्णी, निक्कसिज्जइ सव्वसो ।

एवं दुस्सील पडिणीए, मुहंरी निक्कसिज्जइ ॥ ४ ॥

छाया—

यथा शुनी पूतिकर्णी निष्कास्यते सर्वतः ।

एवं दुःशीलः प्रत्यनीकः मुखारिर्निष्कास्यते ॥ ४ ॥

‘जहा०’ इत्यादि—यथा—पूतिकर्णी=पूती=दुर्गन्तवन्ती कर्णौ यस्याः सा तथोक्ता, कर्णगतानेकविषमव्रणपरिपाकजनितदुस्सहदुर्गन्धपूयविकृतरक्तस्रावस्थितकृमिमक्षिकानिकरदंशनोद्भूततीव्रतरवेदनाव्याकुलतया प्रतिक्षणमितस्ततो भ्रमन्तीत्यर्थः, शुनी=कुक्कुरी, सर्वशः=सर्वप्रकरेण प्रतिस्थानात् निष्कास्यते=निःसार्यते,

और घोर नरक में जाकर नारकी की पर्याय से उत्पन्न हुआ। वहाँ उसने दश प्रकार की तीव्रतर क्षेत्रसंबंधी वेदना को पाया। वहाँ की स्थिति को समाप्त कर जब वह वहाँ से निकला तो भी इस के दुःखों का अन्त नहीं आया। एक गर्भ से दूसरे गर्भ में पहुंचना और वहाँ के कष्टों को भोगना, फिर वहाँ से मर कर पुनः जन्म धारण करना और कष्टों को भोगना, इस प्रकार अनंतसंसारी बने हुए इस क्षुद्रबुद्धि की आत्मा को बोधिका लाभ दुर्लभ हो गया ॥ ३ ॥

अविनीत की अवस्था को दृष्टान्त द्वारा सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—

‘जहा सुणी०’ इत्यादि ।

इस प्रकारनी तीव्रतर क्षेत्र संबंधी वेदनाओं सडेवी पडी. ये स्थिति लोगवी ये न्यारे त्यांधी निकोये छतां पणु तेना दुःषोनो अंत न आये. अेक गर्भांधी भीज गर्भां नुं अने त्यांनां कष्ट लोगववां. अेक स्थणैथी मरी भीजे स्थणे इरी जन्म धारणु करवे अने कष्टो लोगववां. आ प्रकारे अनन्त संसारी अनेल ते क्षुद्रबुद्धिना आत्माने बोधिनो लाल दुर्लभ अनी गये।

अविनीतनी अवस्थाने दृष्टान्त द्वारा सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—‘जहा सुणी’. इत्यादि.

एवं=अमुनैव प्रकारेण, दुःशीलः—दुष्टं=विनयरहितं रागद्वेषदूषितं वा शीलं=स्वभावः, आचारो वा यस्य स तथोक्तः, मूले—‘दुस्सील’ इति लुप्रप्रथमान्तम्, तथा—प्रत्यनीकः=प्रतिकूलः—गुर्वादिदोषान्वेषणपर इत्यर्थः, तथा—मुखारिः—विरुद्ध-भाषणशीलः, वाचा स्वपरानर्थकारीत्यर्थः, यत्तु ‘मुहरी’ मुखरः इति संस्कृतं मत्वा व्याख्यातम्, तन्न समीचीनं कोशाद्यनुक्तत्वात्, निष्कास्यते=दूरतः परिवर्ज्यते । अयं भावः—यथा पूतिकर्णी शुनी शान्त्याशां प्रकुर्वती यत्र यत्र गच्छति तत्र तत्रैव कचिद्दण्डताडिता कचिद् वाचा फट्कारिता कचिद् घृणितदृष्ट्या विलोकिता

अन्वयार्थ—(जहा-यथा) जैसे (पूङ्कण्णी-पूतिकर्णी) सड़े हुए कानोंवाली (सुणी-शुनी) कुत्ती (सव्वसो-सर्वशः) सभी प्रकार से प्रत्येक स्थान से (निक्कसिज्जइ-निष्कास्यते) निकाल दी जाती है (एवं) इसी प्रकार (दुस्सील-दुःशीलः) विनयरहित अथवा साधु के आचारसे रहित (मुहरी-मुखारिः) वाचाल-निरर्थक बोलने वाला, (पडिणीए-प्रत्यनीकः) ऐसा प्रत्यनीक-गुरु आज्ञा के प्रतिकूल चलने वाला शिष्य-कुल-गण-संघ द्वारा गच्छसे हीलना, निन्दना, एवं खिचना-पूर्वक (निक्कसिज्जइ) निकाल दिया जाता है ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस प्रकार कोई कुत्ती कि जिसके दोनों कान बहुत बुरी तरह सड़े हुए हों, और जिनमें से विषम ब्रणों-घावों के पड़ जाने से-नहीं सहन करने योग्य ऐसा पीप गिर रहा हो, तथा कीड़े और मक्खियों के काटने से जो उत्पन्न तीव्रतर वेदना से सदा आकुल व्याकुल

अन्वयार्थ—(जहा-यथा) जेभ (पूङ्कण्णी-पूतिकर्णी) सडेला कानोवाणी (सुणी-शुनी) कुतरी (सव्वसो-सर्वशः) सधला प्रकार्थी (निक्कसिज्जइ-निष्कास्यते) प्रत्येक स्थेण्थी काढी मुकवामां आवे छे. (एवं) आ रीते (दुस्सील-दुःशीलः) विनयरहीत अथवा साधुना आचार रहीत (मुहरी-मुखारिः) वाचाल-निरर्थक धेलावावाणा (पडिणीए-प्रत्यनीकः) जेवा प्रत्यनीक-शुइ आज्ञार्थी प्रतिकूल आलवावाणा शिष्य-कुल गण संघ द्वारा गच्छथी निहित अनि, तिरस्कृत अनि (निक्कसिज्जइ) काढी मुकवामां आवे छे.

भावार्थ—जे प्रकारे जेक कुतरी के जेना अन्ने कान अणु अणु अणु रीते सडी गया छे. अन्ने तेमां उंठा घा पडी जवाथी सडन न थर्क शके तेवुं पड़ पडी रहेल छे तथा डीडा अन्ने भाणीज्योना करडवाथी तीव्र जेवी वेदना सडन न थतां तेनाथी आकुण व्याकुण अनि आ अघाथी पोतानी रक्षा करवा भाटे जेकान्त-

सर्वत्र तिरस्कृता भवति, एवमविनीतः खलु कुलगणसंघैर्हीलना-निन्दना-खिसना-पूर्वकं निष्कासितः सर्वत्र तिरस्कारं लभते । न चाविनीतस्यानिष्कासने का हानिरिति चेद् अत्रोच्यते-अविनीताऽनिष्कासने कुलगणसंघेषु महाननर्थः संभवति ।

बनकर जहाँ भी जाती है वहाँ से निकाली जाती है-उसे कहीं पर भी किसी का भी सहारा नहीं मिलता है, इसी प्रकार जो शिष्य दुःशील है अपने उपकारी गुरुओं तक के भी दोषोंको देखता रहता है, आचारभ्रष्ट होता है वह भी संघ से विना किसी विचार के गुरुओं द्वारा बाहर कर दिया जाता है । कुत्ती के जब कान सड़ जाते हैं तब वह अपनी रक्षा और शांति प्राप्त करने की अभिलाषा से एकान्तस्थान का सहारा लेने की अभिलाषा करती हुई इधर उधर फिरती है, इसका अभिप्राय यह है कि कुत्ती का स्वभाव विना प्रयोजन इधर उधर भटकने का होता है और जब उसका कोई अवयव सड़ जाता है और उसमें कीड़े पड़ जाते हैं तब वह अधिक आकुल व्याकुल बन अधिक मात्रामें इधर उधर भ्रमण करने लगती है । इसी प्रकार जिस शिष्य को अविनीततारूपी रोग लग गया है वह भी गुरु की आज्ञा बाहर होकर विना किसी प्रयोजन के यों ही, अथवा यहाँ पर मुझे मन के माफिक वर्तन करने की जगह प्राप्त होगी, इस आशासे इतस्ततः घूमता फिरता है, अपने कर्तव्य से सदा विमुख रहता है, एतावता

स्थान गौतवा माटे अे न्यां त्यां लटके छे, न्यां न्यां नय छे त्यांथी अे पीचारीने काढी मुकवामां आवे छे. कोर्ध पणु स्थणे सुभ के आश्रय भणतो नथी. आ प्रकारे अे शिष्य दुःशील छे. पोताना उपकारी गुर्मां पणु ते दोष गौत्या करे छे, आचारभ्रष्ट अने छे तेने पणु संघथी कोर्ध प्रकारना विचार वगर गुर्मां द्वारा काढी मुकवामां आवे छे. कुतराना न्यारे कान सडी नय छे त्यारे ते पीचारी पोतानी रक्षा अने शान्ती प्राप्त करवानी अलिदाषाथी अेकान्त स्थाननो आश्रय गौतवानी अलिदाषा साथे न्यां त्यां लटके छे. कुतरानो स्वभाव न्यां त्यां लटकवानो होय छे तेमां अे न्यारे तेनुं कोर्ध अवयव सडी नय छे अने तेमां क्रीडा पडे छे त्यारे पुण न्याकुण अनी वधु प्रमाणमां न्यांथी त्यां लटके छे. आ प्रकारे अे शिष्यने अविनीतता इपी रोग लागु पडे छे ते पणु गुर्मां आज्ञा अडार न्छ कोर्ध प्रयोजन वगर 'भने अडिं मारा मन माक्षक वर्तवानी न्या भणसे' अेवी आशामां न्यां त्यां धुम्या करे छे. पोताना कर्तव्यथी सदा विमुअ अने छे अने अे

अत्र दृष्टान्तस्तथाहि—

कस्मिंश्चिद् गच्छे एकः श्रमणगुणमुक्तः सर्वथा भावविनयवर्जितः साध्वाभासः शिष्य आसीत् । स च प्रतिदिनं पुरःकर्मादिदोषदूषितमनेषणीयं भक्तादिकं गृहीत्वा महता संवेगेन प्रतिक्रमणकाले आलोचयति । तस्य गच्छाचार्यः प्रायश्चित्तं प्रयच्छन् वदति—अहो पश्यत कथमसौ भावमगोपयन् शाठ्यहीनः सर्वं

इस अविनीततारूपी घाव के होने पर शिष्यजनों में स्वाभाविक चञ्चलता आजाती है, परन्तु जब उस घाव में गुरुओं से भी प्रत्यनीक होनेरूप सड़ा आने लगता है तब उसकी दुर्गंध को गुरुजन भी सहन नहीं कर सकते हैं, अतः वह संघ से अथवा गच्छ से बाहर कर दिया जाता है। यदि इस प्रकार की परिस्थितिवाले शिष्य को संघ से बाहर न करे तो कुल गण एवं संघ में महान् अनर्थ होता है। इसी विषय को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

किसी गच्छ में साधुओं के भीतरी आचार विचार से रहित परन्तु उपर से साधु जैसा ज्ञात होने वाला एक साध्वाभास शिष्य रहता था। वह प्रतिदिन पुरःकर्मादिदोषों से दूषित अनेषणीय—आहारादिक ग्रहण करता और उपर से दिग्वावटी संवेगभाव से बड़े जोर-शोर से प्रतिक्रमण के समय आलोचना किया करता था। गच्छाचार्य प्रायश्चित्त देते समय कहा करते कि देखो यह कितना भद्रपरिणामी जीव है जो अपने हार्दिक भावों को नहीं छुपाकर लगे हुवे अतिचारों की शुद्ध आलोचना

कारण अविनीतताइय घा ने लध तेना मनमां लारे चञ्चलता आवी नय छे परंतु गुर्-आज्ञाना अनादरइपी सडो अेना हिलमां लागी नय छे त्तारे अेनी दुर्गंधीने गुर्जन पणु सडन करी शकता नथी अेटले अेने संघथी अथवा गच्छथी आडेर करी हेवामां आवे छे. ने आ प्रकारनी परिस्थितिवाणा शिष्यने संघथी अडार करवामां न आवे तो कुल गणु अने संघमां महान् अनर्थ अने छे. आ विषयने अेक उदाहरणु द्वारा स्पष्ट करवामां आवे छे:—

कोई गच्छमां साधुअेना अंदरना आचार विचारथी रहित परंतु उपरथी साधु अेवा हेभाव राअतो अेक साध्वाभास शिष्य रहेतो डतो. ते दिन दडाडे आधा कर्मादि दोषेथी दूषित अनेषणीय आहारादिक ग्रहणु करतो. अने उपरना हेभावमां संवेगभावथी घणु नेरशोरथी प्रतिक्रमणुना समथे आलोचना कर्या करतो. गुर् महाराज अेने प्रायश्चित्त देती वअते कडेता के अनुअे आ डेटले भद्रपरिणामी अुव छे अे पोताना हार्दिक भावोने नडीं छुपावतां



समालोचयति, सुखं हि आसेवना क्रियते, दुःखं चेत्यमालोचयितुम्, तस्मादयं शाठ्यहीनः शुद्ध इति । एवं तं गुरुणा प्रशस्यमानं दृष्ट्वाऽन्येऽपि अगीतार्थश्रमणाः प्रशंसन्ति चिन्तयन्ति च—दोषासेवनायामसकृदापतितायामपि न कश्चिद्दोषः, आलोचनयैव सकलदोषपरिहारसंभवात् । अथान्यदा तत्र संविग्नगीतार्थः कश्चिदाचार्यः शिष्यगणपरिवृतः समायातः । स च प्रतिदिनं तमेव व्यतिकरं विलोक्या—चार्यमब्रवीत्—हे महाभाग! शासनप्रभावक! भव्यभास्कर! अयमविनीतः खलुशिष्यो

करता है। जो मुनि इस प्रकार से अपने अतिचारों की आलोचना करता है उसी की आलोचना करना ठीक है। ऐसी आलोचना से ही दुःखों का विनाश होता है। इस प्रकार अन्य शिष्यों ने जब गच्छाचार्य को उसकी प्रशंसा करने में रत देखा तो अगीतार्थ शिष्य भी उसकी प्रशंसा करने लगे। तथा साथ २ में यह भी धारणा उनके चित्त में जम गई कि बार २ दोषों की आसेवना करने पर भी हरकत नहीं है, क्योंकि दोष करने पर भी उन दोषों की शुद्धि आलोचना से हो जाती है, नहीं तो इस मुनिकी प्रशंसा हमारे आचार्य क्यों करते, और क्यों यह दोषों का आसेवन करता हुआ भी उनकी आलोचना करता है। एक दिन की बात है कि वहां संविग्न गीतार्थ—( क्रियापात्र ) कोई आचार्य महाराज अपनी शिष्यमंडलीसहित आये। उन्होंने ने जब वहां इस अविनीत शिष्य के इस प्रकार के प्रतिदिन के व्यवहार को देखा तो वे आश्चर्य पाये और गच्छाचार्य से कहने लगे कि—हे महाभाग! शासनप्रभावक।

લાગેલા અતિચારોની શુદ્ધ આલોચના કરે છે. જે મુનિ આ રીતે પોતાના અતિચારોની આલોચના કરે છે. તેવી આલોચના કરવી ઠીક છે. આવી આલોચનાથીજ દુઃખોનો વિનાશ થાય છે. આ પ્રકારે અન્ય શિષ્યોએ ન્યારે ગુરુ મહારાજને તેની પ્રશંસા કરવામાં રત બેઠા ત્યારે ખીજા શિષ્યો પણ તેની પ્રશંસા કરવા લાગ્યા. અને સાથેસાથ એવી ધારણા એમના ચિત્તમાં ઠસી ગઈ કે વારંવાર દોષોનું સેવન કરવામાં પણ હરકત નથી કેમકે દોષ કરવા છતાં પણ તેવા દોષોની શુદ્ધિ આલોચનાથી થઈ જાય છે. નહીં તો આ મુનિની પ્રશંસા અમારા આચાર્ય કયા કારણે કરત. તેમ આવા દોષોનું આસેવન કરવા છતાં પણ તે તેની આલોચના કરે છે. એક દિવસની વાત છે કે ત્યાં કોઈ અન્ય આચાર્ય મહારાજ પોતાની શિષ્યમંડળી સાથે આવ્યા. તેઓએ ન્યારે ત્યાં તે અવિનીત શિષ્યના આ પ્રકારના દરરોજના વહેવારને જોયો તો તેમને આશ્ચર્ય થયું અને આચાર્ય મહારાજને કહેવા લાગ્યા કે

જન્મજરામરણગર્તપાતનાય પશ્ચવિધાસ્રવરૂપઃ, ક્ષાન્ત્યાદિગુણકમલનિકરનાશનાય મયંકરતુષારનિકરસ્વરૂપઃ, ચારિત્રવિધ્વંસને ધૂમકેતુઃ, સકલાસ્રવહેતુઃ, મુનિ-મણ્ડલાસ્વણ્ડશશિમણ્ડલે રાહુરિવ, માયાજાલેન મન્યમૃગવન્ધને મિહ્લુ ઇવ, ધર્મોઘાનદહને તરુકોટરવહ્નિરિવ ગચ્છે વર્તેતે । મવાનિત્યમસ્ય પ્રશંસાં કુર્વન્ ક્ષિતીશ ઇવ લક્ષ્યતે । આચાર્યેણોક્તમ્—કોઽસૌ ક્ષિતીશઃ ? કીદૃશી તસ્ય વાર્તા ?

આપ મન્ય જીવોંકે વિકસિત કરને મેં યદ્યપિ સૂર્ય કે તુલ્ય હૈં તો મી આપકી છત્રછાયા મેં રહકર મી જો કુમુદ હી બના રહે, અર્થાત્—આચાર વિચાર સે સદા શિથિલ રહે ઉસ મન્દભાગી કે લિયે ક્યા કહા જાય । આપ કે ઇસ ગચ્છ મેં એક અવિનીત શિષ્ય હૈ, જો ઇસ ગચ્છ કા કલંક સ્વરૂપ હૈ, ક્યોં કિ અવિનીત શિષ્ય જન્મ જરા એવં મરણરૂપી સ્વદુ મેં પાડને કે લિયે પંચવિધ આસ્રવરૂપ માના ગયા હૈ, જિસ પ્રકાર તુષાર-હિમ કા પુંજ કમલોં કે વન કો વિધ્વસ્ત કરને મેં કસર નહીં રખતા હૈ ઉસી પ્રકાર અવિનીત શિષ્ય મી ક્ષાન્ત્યાદિ ગુણોં કો નષ્ટ ભ્રષ્ટ કરને મેં જરા મી આગે પીછે કા વિચાર નહીં કરતા હૈ । અવિનીત શિષ્ય ચારિત્ર કે વિનાશ કરને કે લિયે ધૂમકેતુ કે જૈસા માના ગયા હૈ । સમ્પૂર્ણ આસ્રવોં કા યહ કારણ બતલાયા ગયા હૈ । મુનિમંડલરૂપ અસ્વંડ ચન્દ્રમણ્ડલ કો ગ્રસન કરને કે લિયે વિદ્વાનોં ને ઇસ કો રાહુ કે જૈસા કહા હૈ । યહ અપની માયા-જાલસે અન્ય વિચારે મોલે મોલે મન્યજીવરૂપી મૃગોં

હે શાસન પ્રભાવક ! આ લબ્ય જીવોને વિકસિત કરવામાં જો કે સૂર્યના તુલ્ય છે તો પણ આપની છત્રછાયામાં રહીને પણ જો કુમુદ જ બની રહે—અર્થાત્ આચાર વિચારથી સદા શિથિલ રહે તેવા મંદભાગી માટે શું કહેવામાં આવે. આપના આ ગચ્છમાં એક અવિનીત શિષ્ય છે—જો આ ગચ્છમાં કલંકસ્વરૂપ છે કેમકે અવિનીતજન જન્મ, જરા, અને મરણરૂપી ખાડામાં પાડવાવાળા પંચવિધ આસ્રવરૂપ માનવામાં આવેલ છે. જો પ્રકારે તુષાર અર્થાત (બરફ) હીમનો પુંજ કમળના વનનો નાશ કરવામાં કસર રાખતો નથી તેમ અવિનીત શિષ્ય પણ ક્ષાન્ત્યાદિ ગુણોને નષ્ટ ભ્રષ્ટ કરવામાં આગળ પાછળનો વિચાર કરતો નથી. અવિનીત શિષ્ય ચારિત્રનો વિનાશ કરવા માટે ધૂમકેતુ જેવો માનવામાં આવેલ છે. સંપૂર્ણ આસ્રવનું એ કારણ બતાવવામાં આવ્યું છે. મુનિમંડળરૂપ અખંડચંદ્રમંડળને બ્રહ્મણ કરનારા રાહુ જેવો વિદ્વાનોએ કહેલ છે તે પોતાની આ અવિનીતતા રૂપી બળથી અન્ય ખીચારા ભોળા-



आगतेनाचार्येण कथितम्—

गिरिनगरनिवासी कश्चिदग्निभक्तो वणिक् पद्मरागरत्नैर्भवनं पूरयित्वा प्रतिवर्षं वह्निना प्रदीपयति । तत्रत्यमन्दबुद्धितृपतिसभायां स वणिक् प्रशंसितः—अहो धन्योऽयं वणिक् यदनेन वह्निदेवः पद्मरागरत्नैः संतर्प्यते । तदनन्तरमेकदा प्रबलपवनपटलप्रेरितस्तत्प्रदीपितदहनः सराजप्रासादं समस्तमपि तन्नगरं दहतिस्म । ततोऽसौ वणिक् राज्ञा दण्डितो नगरान्निष्कासितः, तदेवं राज्ञा को बांधने में भिल्ल के जैसा सिद्धहस्त होता है । धर्मरूपी उद्यान को नष्ट करने के लिये यह तरुकोटरान्तर्गत वह्निकी ज्वाला के समान दारुण और विनाशकारी माना गया है । आप जैसे गच्छाधिपति को इस अविनीत की प्रशंसा करते हुए देख कर मुझे उस राजा की कथा याद आती है—

गिरिनगरनामक एक शहर में अग्निभक्त कोई एक बनिया रहता था, जो प्रतिवर्ष अपने भवन को पद्मराग मणियों से भर कर जला दिया करता था । उसके इस कार्यकी प्रशंसा वहां के मन्दबुद्धि नामक राजा तथा प्रजा सभी मुक्तकंठ से करते थे । वे कहते थे—धन्य है यह अग्निभक्त जो अग्नि की प्रतिवर्ष इस प्रकार से पूजा किया करता है । एक दिन की बात है कि उस वणिक् ने ज्यों ही अपना मकान जलाया कि इतने में बड़ी भारी आंधी का एक प्रबल वेग आया, और उससे प्रज्वलित हो उस अग्निज्वाला ने उस नगर को भस्म कर दिया ।

लाणा लव्य शुवर्षी भृगोने आंधवामां बिलनी भाङ्क सिद्धहस्त डोय छे. धर्मर्षी आगनो नाश करवा माटे आ तर्कोटरान्तर्गत अग्निनी ज्वाला समान दाङ्गु अने विनाशकारी मानवामां आवेल छे. आप जेवा गच्छाधिपतिने आवा अविनीतनी प्रशंसा करता जेठ मने अेक राजनी वात याद आवे छे—

गिरिनगर नामना अेक शहरमां अग्निभक्त अेवो अेक वष्ठीक रहेतो डेतो जे हर वरसे पोताना मकानने पद्मराग मण्ठीआधी लरी आणी नापते. तेना आ कार्यनी प्रशंसा राज अने प्रज भधा मुक्तकंठे करता डेता अने कडेता डेता डे—धन्य छे आ अग्निभक्तने डे जे हरवरसे अग्निनी आ प्रकारधी पूज कर्या करे छे. अेक दिवसनी वात छे डे अे वष्ठीके पोतानुं मकान सणगाव्युं अे समये लारे जेरशोरधी पवननी आंधी अढी आवी वेगवाणी पवननी आंधीने लछ अग्नि जेशभेर प्रज्वलित अन्ये अने तेना अंगारा शहरलरमां डरी वणतां आयुं शहर अने राजना भडेलमां पणु अग्निशाभाअो डरी वणी अने साङ् अे शहर तथा राजभडेल पणु नाश पाभ्ये. राजअे आधी असंतुष्ट अनी अे वष्ठीकने

तस्य प्रशंसां कुर्वता आत्मा नगरं लोकश्च नाशितः । तथा भवानपि अस्याविधि-  
प्रवृत्तस्य प्रशंसां कुर्वन् आत्मानं समस्तगच्छं चोच्छेदयति । ततस्तद्वचनं श्रुत्वा स  
आचार्यः साध्वाभासमविनीतं शिष्यं स्वगच्छतो निष्कासितवान् । तस्माद् दुःशी-  
लस्य निष्कासनं श्रेयस्करम् ॥ ४ ॥

देखते २ वह समस्त नगर उस राजा के महलसहित एकदम जल कर  
नष्ट हो गया । राजाने इससे असंतुष्ट हो उस वणिक को दण्डित  
करके अपने नगर से बाहर निकाल दिया । राजा जो पहिले से उस  
वणिक के इस कार्य की प्रशंसा न करता तो उसका होसला आगे भी  
इस कार्य को करने के लिये नहीं बढ़ता । समस्त नगर एवं राजमहल  
जो नामशेष हुए उसका प्रधान कारण उस राजा की ही नासमझी है ।  
इसी तरह साधु के अकल्पनीय कार्य में प्रवृत्त इस अविनीत शिष्य की  
जो आप प्रशंसा करते हैं उससे इसका होसला बढ़ता है, आगे भी  
अकल्पनीय कार्य करने में सोत्साह बनता है । जिसका अन्तिम फल  
होगा गच्छका उच्छेद, और इस उच्छेदजन्य दोषों के भागी होना  
पड़ेगा आप को, अतः आपका अपनी और गच्छकी रक्षानिमित्त इस  
अविनीत को गच्छ से बाहर कर देने में ही श्रेय है । इस प्रकार आये  
हुवे आचार्य महाराज के कथन पर अच्छी तरह ध्यान देकर गच्छा-  
चार्यजीने उस अविनीत शिष्य को अपने गच्छ से बाहर कर दिया ।  
क्यों कि दुःशील शिष्य का गच्छ से संबंधविच्छेद करना श्रेयस्कर ही  
माना गया है ॥ ४ ॥

सारी रीते दंड करवा उपरान्त तेने पोताना शहरमांथी काढी भूक्यो. राज  
ने वणीकना ये कार्यनी प्रशंसा न करत तो ये वणीकनी ताकात नहोती  
के हर वरसे या प्रमाणे अग्निवाला प्रगटावी शके. समस्त शहर अने  
राजमहल अणी गयां तेनु प्रधान कारण ये राजनी भीनसमजदारी न छे.  
ये रीते साधुना अकल्पनीय कार्यमां प्रथम या अविनीत शिष्यनी याप  
प्रशंसा करे छे, अथी ये पोताना मनमां कुलाधने यागण उपर याथी  
पण विशेष अकल्पनीय कार्यमां यागण वधरी. तेनु अन्तिम इण गच्छना  
उच्छेदमां आववानुं अने ये उच्छेदजन्य दोषाना लागी आपने अनपुं पडरी.  
याथी आपनी अने गच्छनी रक्षा माटे या अविनीतने गच्छमांथी अडार  
करी हेवामां श्रेय छे. या प्रकारे आवेला आचार्य महाराजना कहेवा उपर  
सारी रीते ध्यान दध गच्छाचार्यज्ये ये अविनीत शिष्यने पोताना गच्छथी  
अडार करी दीयो. केमके दुःशील शिष्यनो गच्छथी विच्छेद करवा ये श्रेयस्कर  
मानवामां आवेद छे (४).

ननु दुःशीलं सकलानर्थमूलं चेत् अविनीतेन कथं तर्हि तत्रानुरज्यते ?  
इत्याकाङ्क्षायां दुःशीलरतिकारणं सदृष्टान्तं प्रतिबोधयितुमाह—

मूलम्—कणकुंडगं चइत्तां णं; विट्टं भुंजई सूयरो ।

एवं शीलं चइत्तां णं, दुस्सीले रमई मिण ॥ ५ ॥

छाया—

कणकुण्डकं त्यक्त्वा खलु, विष्टां भुङ्क्ते सूकरः ।

एवं शीलं त्यक्त्वा खलु, दुःशीले रमते मृगः ॥ ५ ॥

टीका—

‘कणकुंडगं’ इत्यादि । सूकरः खलु कणकुण्डकम्—तण्डुलपूर्णभाजनम्—  
इदमुपलक्षणम्—रुचिरं मधुरं सुस्वादं सुगन्धयुक्तं त्वङ्गमांसादिपुष्टिकरं हितकरं  
यत् तण्डुलादिकं, तेन पूर्णं यद्भाजनमुपस्थितं तदिति भावः, त्यक्त्वा विष्टां  
भुङ्क्ते, अत्र विष्टामित्यनेन अपवित्रां घृणोत्पादिकां रुजाकरां हेयां दुर्गन्धां कृमिमक्षि-  
कादिपरिपूर्णामित्यर्थो ध्वनितः । एवम्=अमुना प्रकारेण मृगः=मृग इव मृगः अज्ञः—  
हिताहितविवेकवर्जित इत्यर्थः, शीलं=मूलोत्तरगुणलक्षणं साध्वाचारं, यद्वा—विनय-  
समाधिलक्षणं त्यक्त्वा दुःशीले=दुराचारे अविनयलक्षणे रमते=आसज्यते । अयं  
भावः—यथा सूकरः प्रशस्तमाहारं विहाय नितान्तमशुचिं सादरं भुङ्क्ते, अज्ञत्वात्,

यदि दुःशील सकल अनर्थों की जड़ है तो फिर क्यों अविनीत उसमें  
अनुरक्त होता है? इस प्रकार की शंका के समाधान निमित्त दुःशील में  
रतिका कारण दृष्टान्त देकर सूत्रकार समझाते हैं—कणकुंडगं. इत्यादि ।

अन्वयार्थ—जैसे—( सूयरो—शूकरः ) सूकर ( कणकुंडगं—कणकुंडकं )  
तन्दुल—आदि उत्तम भोजनीय पदार्थों से भरे हुए भाजन को ( चइत्ता )  
परित्याग कर ( णं—खलु ) निश्चय से आनंद के साथ ( विट्टं—विष्टां )  
विष्टा—अशुचिको ( भुंजई—भुंक्ते ) खाता है ( एवं ) इसी तरह ( मिण—

ने दुःशील सकल अनर्थोंनी जड़ छे तो पछी अविनीत अेमां केम  
अनुरक्त थाय छे. आ प्रकारनी शंकांनुं समाधान करवा निमित्त दुःशीलमां  
रतिनुं दृष्टांत आपी सूत्रकार समझवे छे—‘कणकुंडगं.’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—जेम ( सूयरो—शूकरः ) सुकर ( भूँउ ) ( कणकुंडगं—कणकुंडकं )  
शेआ वगेरे उत्तम लोअनना पदार्थोंथी लरेदा लोअन पात्रने ( चइत्ता ) त्याग करी  
( णं—खलु ) निश्चयथी आनंद साथे ( विट्टं—विष्टां ) विष्टा—अशुचिने ( भुंजई—

यथा वा हिताहितविवेकरहितत्वान्मृगः स्वापायमपश्यन् गानतानश्रवणमोहितः सन् व्याधमभिसरति, एवम्—अज्ञानतिमिरसंवृतात्मा खलु संसारवारिधिमहातरणिं शिवपदसरलसरणिं सिद्धिपददायकं सकलगुणनायकम्, अनादिभवसंचिताष्टविध-कर्मबन्धनोच्छेदकं मिथ्यात्वग्रंथिभेदकं सम्यग्ज्ञानसुधावर्षणशीलं शीलं प्रविहाय मृगः ) विवेक रहित होने के कारण मृग जैसा यह अविनीत शिष्य भी ( सीलं—शीलं ) मूलोत्तरगुणरूप अथवा विनयसमाधिरूप साधुसंबंधी आचार को ( चइत्ता—त्यक्त्वा ) परित्याग कर ( णं—खलु ) निश्चय से ( दुस्सीले—दुःशीले ) अविनयरूप दुराचार का ( रमइ—रमते ) सेवन करता है ॥ ५ ॥

भावार्थ—बोधविकल होने के कारण जैसे सूकर प्रशस्त आहार का परित्याग कर नितान्त अशुचि पदार्थका बड़े आनंदके साथ सेवन करता है, तथा हिताहित विवेक से रहित होनेकी वजह से जैसे मृग भविष्य में होने वाली आपत्ति को नहीं जानता हुआ गान के सुनने में एकतान होकर अपने आप व्याध की जाल में फस जाता है, उसी तरह अज्ञानरूपी अंधकार से आच्छादित हुआ अविनीत शिष्य भी संसाररूपी समुद्र से पार लगाने के लिये बड़े सुरक्षित जहाज जैसे, तथा शिवपद में लेजाने के लिये सुन्दर सीधे मार्ग जैसे, एवं सिद्धिपद को

मुक्ते) पाय छे (एवं) आ प्रभाण्णे (मिण्—मृगः) विवेकरहित थवाने कारणे मृग जेवा आ अविनीत शिष्य पणु (सीलं—शीलं) मूलोत्तर गुणरूप अथवा विनय-समाधिइप साधुसंबंधी आचारनो (चइत्ता—त्यक्त्वा) परित्याग करी (णं—खलु) निश्चयथी (दुस्सीले—दुःशीले) अविनयरूप दुराचारनुं (रमइ—रमते) सेवन करे छे.

भावार्थ—बोधविकल होवाने कारणे जेम सूकर (भूंड) प्रशस्त आहारनो परित्याग करी नितान्त अशुचि पदार्थनुं लारे आनंदथी सेवन करे छे. अने डिताडित विवेकथी रहित होवाना कारणे जेम मृग भविष्यमां आवनारी आपत्तिने जणुतो नथी, कारणके संगीतना सुरांमां एकतान अनीने पोते पोताना छथे शीकरनीनी जणमां इसाई जय छे. अथी रीते अज्ञानइपी अंधकारथी आच्छादित अनेला अविनीतशिष्य पणु संसारइपी समुद्रथी पार करवावाजा मोटांमां मोटा सुरक्षित जडाज जेवा तथा शिवपदमां लई जवावाजा सुंदर सीधा मार्ग जेवा अने सिद्धिपदने आपनार जेवा शील—अर्थात् मुनिना

ज्ञानावरणीयादिकर्मरजःसमुत्पादकं क्षान्त्यादिगुणघातकं मूलोत्तरगुणकल्पपाद-  
पोन्मूलकं शुभभावनाऽम्भोजनिकरनीहारपटलं सकलानर्थमूलं धर्ममर्यादाविध्वंसन-  
शीलं दुःशीलं सेवते । अज्ञानं हि सर्वानर्थकरं विवेकरं कष्टकष्टकानुविद्धं सकल-  
दुर्गुणसमिद्धं तपःसंयमविनाशकं प्रमादजनकं स्वर्गापवर्गसुखहारकम् ।

देने वाले ऐसे शील-अर्थात् मुनि के आचार का परित्याग कर देता है । यह शील सकल गुणों में प्रधान माना गया है । जीव के साथ अनादि-  
काल से लगे हुए अष्टविध ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बंध का उच्छेद करने वाला बतलाया गया है । मिथ्यात्वरूपी प्रबलग्रन्थि-(गांठ) का यह भेद करने वाला है । सम्यग्ज्ञानरूपी अमृत की वृष्टि करना इसका स्वभाव है । ऐसे प्रशस्त उपकारक इस शील का वह अविनीत शिष्य परित्याग करके दुःशीलका सेवन किया करता है । यह दुःशील शिष्य ज्ञानावरणीयादिक कर्मरूपी धूलीको अपनी आत्मा में चिपकाने वाला है । क्षान्ति आदि सद्गुणों का ध्वंसक है । मूलगुण एवं उत्तरगुणरूप कल्पवृक्ष का उन्मूलक है । शुभभावनारूपी कमलों को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिये तुषारपात-अर्थात्-हिमवर्षा जैसा है । सकल अनर्थों का यह मूल है । ऐसे धार्मिक मर्यादा को उखाड़ने के स्वभाववाले इस दुःशील का वह अविनीतशिष्य सेवनकर हिताहित को नहीं समझता है । यह कितने आश्चर्य की बात है कि जिस विनयमूल धर्म से अपनी आत्मा का उद्धार होता है उसका वह अविनीत त्याग कर अपकारक दुःशील

आचारनो परित्याग करी दे छे. आ शील सकल गुणोमां प्रधान मनावेद छे. लुवनी साथे अनादिकाणथी लागेला आठ प्रकारना ज्ञानावरणीय आदि कर्मना बंधनो उच्छेद करवा वाणा भतावेद छे. मिथ्यात्वरूपी प्रबल ग्रन्थिनो आ लेद करवावाणो छे, सम्यग्ज्ञानरूपी अमृतनी वृष्टि करवी तेनो स्वभाव छे, एवा प्रशस्त उपकारक आ शीलनो ते अविनीत शिष्य परित्याग करीने दुःशीलनु सेवन करे छे. आवा दुःशील शिष्य ज्ञानावरणीयादिक कर्मरूप धूणने पोताना आत्मांमां थोटाउनार छे. क्षान्ति आदि सद्गुणोनो नाश करनार छे. मूलगुण उत्तरगुणरूप कल्पवृक्षनो उन्मूलक-नाश करनार छे. शुभ भावनारूपी कमलोने नष्ट भ्रष्ट करवा माटे तुषारपात-अर्थात् हिमवर्षा जेवा छे. सकल अनर्थोनु ओ मुण छे. एवा धार्मिक मर्यादाने उभाउवानी वृतिवाणा आवा दुःशीलनु ते अविनीतजन सेवन करी छिताछितने समझता नथी. आ केवा आश्चर्यनी बात छे के जे विनय मुण धर्मथी पोताना आत्मानो उद्धार थाय छे. तेनो

अस्मिन्नर्थे सूकरदृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

बङ्गदेशेक्षितिप्रतिष्ठितनगरेऽरिमर्दननामा नृपो बभूव । तस्य सप्त कन्यका आसन् । स भूपतिस्तासां कन्यकानां यौवने वयसि प्राप्ते ता एकैकक्रमेण विवाहिताः । तत्रैका कन्यका कर्मयोगतो विवाहानन्तरमचिरेणैव कालेन पतिहीना जाता । एकदा सा गवाक्षे स्थिता कुतश्चित् समागतां ससुतां सूकरीं दृष्ट्वा चिन्तयामास—अहो ! धन्यमस्या जन्म, यदियं बहुभिरपत्यैः सार्धं विचरन्ती सुखमनुभवति । इति त्रिचिन्त्य सा स्वदासीमब्रवीत्—अत्रैकं सूकरशिशुं समानय । तदाज्ञया

को सेवता है । अज्ञान की महिमा अपार है । समस्त अनर्थों की जड़ एक अज्ञान ही तो है । अज्ञान आते ही पहिले वह विवेक पर ही कुठाराघात करता है । जिस आत्मा से विवेक का लोप हो जाता है उस आत्मा में विविध कष्टरूपी काँटे खड़े हो जाते हैं । यह अज्ञान अनेक प्रकार के दुर्गुणों को उत्पन्न करता है । तथा तप और संयम का विनाशक है, यह प्रमाद को उत्पन्न करनेवाला है, तथा स्वर्ग और मोक्ष के सुखोंका विघातक है ॥ इस पर सूकर का दृष्टान्त इस प्रकार है—

बंगदेश में क्षितिप्रतिष्ठित नामका एक सुन्दर नगर था । अरिमर्दन नामका राजा उसका शासक था । इसके सात कन्याएँ थीं । राजा ने इनका क्रमशः जब वे तरुण अवस्थावाली हो चुकीं विवाह कर दिया । कर्मकी विचित्रतावश एक लड़की विवाह के बाद ही विधवा हो गई ।

ते अविनीत त्याग करी अपकारक दुःशीलने सेवे छे. अज्ञाननी महिमा अपार छे. समस्त अनर्थोनी जड अेक अज्ञान ज छे. अज्ञान आवतांनी साथे ज ते सहु प्रथम विवेक उपर ज धा करे छे. जे आत्माभांथी विवेकनो लोप थछे जय छे जे आत्माभां नाना प्रकारना कष्टरूपी कांटाओ भीछावाछे जय छे. जे अज्ञान अनेक प्रकारना दुर्गुणोने उत्पन्न करे छे. तथा तप अने संयमनो विनाश करे छे. जे प्रमादने उत्पन्न करनार छे तथा स्वर्ग अने मोक्षना सुखोना नाश करनार छे.

आ उपर सूकरनुं दृष्टान्त आ प्रकारे छे.

बंगदेशमां क्षिति प्रतिष्ठित नामनुं अेक सुंदर नगर હતું. અરિમર્દન નામના રાજાનું શાસન હતું, તેને સાત કન્યાઓ હતી રાજાએ તેના ક્રમ પ્રમાણે જેમ જેમ ઉમર લાયક થતી ગઈ તેમ તેમ તેના વિવાહ કરી આપ્યા. કર્મની વિચિત્રતાવશ અેક પુત્રી વિવાહ પછી વિધવા બની. અેક દિવસની વાત છે કે



दासी सूकरीसंनिधौ गत्वा तदीयशिशुं समानीय राजपुत्र्यै समर्पयामास । सा च राजपुत्री वात्सल्येन सूकरशिशुं पालयन्ती कदाचित्तमङ्गे स्थापयति, स्नापयति, तदङ्गं करेण प्रोञ्जयति, कदाचित् तदङ्गसंलग्नां धूलिमपसारयितुं मार्जयति, विविधं मिष्टान्नं भोजयति, मृदुलशय्यायां स्वसमीपे स्वापयति । सा राजपुत्री तस्य सूकरशिशोर्गले चरणेषु च सकिङ्किणीकं स्वर्णाभरणं रचयति, पृष्ठोपरि बहुमूल्यकं विविधवर्णरञ्जितं 'झूल' इति प्रसिद्धं स्वर्णजटितवस्त्रं च वितरति । एवं सा राजपुत्री पुत्रवत् सूकरशिशुं लालयतिस्म ।

एक दिनकी बात है कि जब यह अपने महलके झरोखे में बैठी हुई बाहर की ओर निहार रही थी कि सहसा इसकी दृष्टि एक सूकरी पर पड़ी, जो अपने बच्चोंको संगमें लिये हुए वहीं पर इधर-उधर फिर रही थी । उसे देखकर उसने मन में विचार किया कि यह सूकरी मेरी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है, जो कम से कम अपने बच्चों के साथ घूमा करती है । इस अवस्था में इसे जो आनंद मिलता है वह यही जान सकती है । एक मैं अभागिनी हूं जो राजमहल में रहती हुई भी इस प्रकार के सुख से वंचित बनी हुई हूं । इस प्रकार का विचार कर उसने अपनी एक दासी को बुलाया और कहा कि जाओ और इन सूकरी के बच्चों में से एक बच्चे को ले आओ । आज्ञा पाते ही दासी सूकरी के पास पहुँची और वहाँ से एक बच्चे को उसने उस राजपुत्री के लिये लाकर दे दिया । राजपुत्री ने भी बड़े आनंद के साथ उसका पालन पोषण करना प्रारंभ कर दिया । इस सिलसिले में कभी वह उसे अपनी गोद में बैठा लेती,

न्याये ये पोताना भडेलना अइषामां भेडी भेडी भडार न्नेध रडी डती, डे सडसा तेनी दृष्टी येक भूंडणु उपर पडी. डे पोताना भय्याय्येने साथमां लधने आभतेम धुमी रडी डती तेने न्नेधने राजकन्याये मनमां विचार कर्ये डे आ सूकरी मारा करतां धणु सुभी छे, डे पोताना भय्याय्ये साथे लधने इरे छे, आ अवस्थामां येने डे आनंद भणतो डशे ते येन न्नेधुती डशे. येक डुं न येवी अभागणी छुं डे राजभडेलमां रहेवा छतां पणु आ प्रकारना सुभधी वंचित भनेल छुं. आ प्रकारनो विचार करी तेणु पोतानी येक दासीने जोलावी अने कहुं डे न्नेय्ये अने ये सूकरीना भय्यामांथी येक भय्युं लध आवो. आज्ञा भणतां न दासी सूकरीनी पासे पडोन्धी अने त्यांथी येक भय्युं लध राजपुत्री पासे आवी तेने सुप्रद कर्युं. राजपुत्रीये तेनुं सारी रीते पालन पोषणु करवानुं शइ कर्युं. आ उत्साडमां ते कोध वभत सूकरीना भय्याने प्रेमथी पोताना जोणामां भेसारी देती, क्यारेक तेने नवडावती



एकदाऽरिमर्दनस्य भवने कंचिदुत्सवं निमित्तीकृत्य सर्वाः कन्यकाः समायाताः । प्रेम्णा परस्परं ता ऊचुः—अद्यास्माभिः सर्वाभिः सहैव भोजनं कर्तव्यम्, तदाऽसौ दुर्भगा राजपुत्री जगाद—यद्यनेन मम प्रियशिशुना सह यूयं भोजनं कुरुत, तर्हि युष्माभिः साकं मया भोक्तव्यं नान्यथा, ततोऽन्याभिस्तस्याः सर्वभगिनीभिस्तद्वचनं नाङ्गीकृतम् । तदा पृथक् पृथगेव सर्वाः स्व-स्व-शिशुभिः

कभी उसको स्नान कराती । और स्नान कराकर फिर उसका शरीर भी पोंछती । कभी कभी यह उसके शरीर पर लगी हुई धूलीका मार्जन करती । विविध मिष्ठान्न खिलाती । नरम-मृदुल-शय्या पर उसे अपने ही पास सुलाती । इतने मात्र से ही वह राजपुत्री संतुष्ट नहीं रहती किन्तु वह उस बच्चे के गले में और पैरों में सुवर्ण रचित बहुमूल्य आभरणों को भी पहिराती । जिनमें छोटी-छोटी बजती हुई घंटियां लगी रहती थी । उसकी पीठ पर वह झूल भी ओढाती जो बहुत कीमती होती तथा अनेक प्रकार के रंगविरंगे रंगों से रंजित रहा करती । और जिस झुलमें सुनहरी काम बना रहता । इस प्रकार वह राजपुत्री उस सूकर के बच्चे का लालन पालन करने में तत्पर रहने लगी । एक समय की बात है कि राजा अरिमर्दनने अपनी समस्त कन्याओं को किसी उत्सव के समय आमंत्रित किया और कन्यायें आयीं, बहुत समय के बाद उन सबको परस्पर मिलने से बहुत ही आनंद हुआ । सबने विचार किया कि आज हम सब मिलकर एक ही साथ भोजन करें । यह सुनकर उस

अने नवदावी तेना शरीरने साङ्क करती, क्यारेक क्यारेक तेना शरीर उपर उडेली धुणने साङ्क करती, विविध मिष्ठान्न भवडावती अने सुंवाणी अेवी शैया उपर पोतानी पासे सुवाडती. आटलाथी न राजपुत्रीने संतोष न थतो परंतु ते अस्थाना गणाभां अने पगोभां सोनाना अहु मुह्य अलंकारे पणु पडेरावती नेभां नानी नानी टोकरिअे-धुधरीअे लगाडवाभां आवती अेनी पीठ उपर जुड पणु ओढाडती ने धणी किंमती डती तेमन अनेक प्रकारना रंगभेरंगी रंगोवाणी डती. नेभां सोनेरी तारनी कसभ कणा पणु करवाभां आवेड डती. आ प्रकारे राजपुत्री अे सूकरना अस्थानुं लालन पालन करवाभां तत्पर रहेती. अेक सभथे राज अरिमर्दने पोतानी समस्त कन्याअेने केअि उत्सवना प्रसंगे आमंत्रणु आपी ओढावी, कन्याअे आवी. धणा सभथ पछी अेक भीणुअेने परस्पर भणतां धणु न आनंद थये. अधी अडेनोअे भणी विचार कर्ये के आने अधी अडेनो साथे अेसीने लोअन करीअे. आ सांभणी अे विधवा राजपुत्रीअे कछुं के अे तभे अधी अडेनो

सह भुक्तवत्यः । सा दुर्भगाऽपि सूकरशिशुना सह भोक्तुं प्रवृत्ता स्वर्णस्थाले रत्न-  
कटोरकेषु च स्थापितं प्रशस्तं पथ्यं रुचिकरं वातपित्तकफहरं विविधमशनं पानं  
खाद्यं स्वाद्यं च चतुर्विधमाहारमभ्यवहरन्ती प्रेम्णा प्रथमग्रासं सूकरशिशुमुखे दत्त्वा  
तदनु सानन्दं स्वयमश्नाति, तदाऽकस्मादेकस्या भगिन्याः शिशुना आसन्नप्रदेशे  
पुरीषोत्सर्गः कृतः, तमालोक्य तेन सूकरशिशुना प्रशस्तमशनं परित्यज्य पुरीष-  
भक्षणं कृतम् । पुरीषमशनन्तं सूकरशिशुं विलोक्य सर्वा भगिन्यः सपरिहासमश्रुवन्-

विधवा राजपुत्रीने कहा कि यदि आप सब जनों मेरे इस सूकर शिशु के  
साथ जो भोजन करने के लिये तैयार हों तो ही मैं आपके साथ भोजन  
करने में सम्मिलित हो सकती हूँ अन्यथा नहीं। उसकी इस बात को  
सुनकर उसकी अन्य बहिनोंने मंजूर नहीं किया। अतः उन सबने  
अपने-अपने बच्चोंके साथ पृथक्-पृथक् रूप में ही भोजन करना प्रारंभ  
किया। और पति विना की राजपुत्री भी अपने सूकर शिशु के साथ  
भोजन करने में प्रवृत्त हुई। खाने के पहिले उसने जो भोजन सुवर्णके  
थालों में परोसा हुआ था और सुवर्णकी कटोरियों में अलग-अलग  
रूपमें रखा गया था और जो प्रशस्त, पथ्य, रुचिप्रद तथा वात पित्त  
एवं कफ हारक था ऐसे उस विविध भांति के अशन-हलुआ पुरी आदि,  
पान-दुध शरबत आदि, खाद्य-द्राक्षा आदि, खाद्य-चूरण आदि, एवं  
चार प्रकार के भोजन में से एक-एक ग्रास अपने प्रिय उस सूकर  
शिशु के मुखमें देती हुई आनंद के साथ भोजन करने लगी। जब यह  
भोजन करने में प्रवृत्त थी कि इतने में ही एक अपनी बहिन के बच्चे

भारा सूकरना भय्यानी साथे लोञ्जन करवा तैयार हो, तो न हूँ आपनी  
साथे लोञ्जन करवाभां सामील थर्ध शकुं ये सिवाय नहीं. तेनी आ वातने  
थीलु अडेनोये मंजुर न करी अटले ते अधीयोये पोतपोताना आणके।  
साथे लुदी लुदी रीते लोञ्जन करवानो आरंल कर्यो. अने विधवा राजपुत्री  
पणु पोताना सूकर भय्यानी साथे लोञ्जन करवा लागी. आवा असेतां पडेलां  
अले न्ने लोञ्जन सोनाना थाणभां पीरसेल हुतुं, न्ने नानी वाटकीओभां अलग  
अलग रीते गोठववाभां आवेल हुतुं न्ने लोञ्जन प्रशस्त, पथ्य, इथीप्रह तथा  
वातपित्त अने कइ डरनाार हुतुं अवा विविध प्रकारना लोञ्जनभां डलवा  
पुरी आदि, पान-दुध शरबत विगेरे पाद्य-द्राक्ष वगेरे, स्वाद्य-चूर्ण वगेरे  
आवा चार प्रकारना लोञ्जनभांथी अकेक कोणीयो पोताना प्रिय सूकरना भय्याना  
भोढाभां देती देती विधवा राजपुत्री पुशी साथे लोञ्जन करवा लागी. न्यारे  
अे लोञ्जन करवाभां प्रवृत्त हुती त्यारे तेनी अेक अडेनना आणके थोडे छेडे

भगिनि ! पश्य तवायं शिशुः किं करोति ! विष्ठां भक्षयति । अनेनैव साकमस्मान् भोजयितुं समीहसे, एवं सर्वभगिनीनां वचनं श्रुत्वा लज्जिता सा राजपुत्री सूकर-शिशुं तत्याज । तदनन्तरमितस्ततो भ्रमन्तं हृष्टपुष्टाङ्गं तं सूकरशिशुं विलोक्य चाण्डालः स्वगृहं नीत्वा चरणेषु बद्ध्वा वह्नौ प्रक्षिप्य कुत्सित मृत्युना हतवान् । तस्मात् दुःशीलं परित्यज्य शीलमासेवनीयम् । ॥ ५ ॥

ने थोड़ी दूर पर जाकर अशुचि कर दी । यह देखकर उस सूकर शिशु ने उस प्रशस्त मधुर सुस्वादु सुगन्धि पथ्य भोजन का परित्याग करके कन्या के मना करते भी शीघ्र ही दौड़कर अशुचि के पास जाकर उसका भक्षण करने लगा । सूकर शिशु को अशुचि खाने देखकर वे सभी बहिनें मजाक करती हुई अपने बहिन से बोलीं कि हे बहिन ! देखो तो सही आपका यह प्यारा पुत्र क्या कर रहा है । कितने आनंदसे अशुचि खाने में मग्न हो रहा है । इसी के साथ आप हम सबको भोजन करने के लिये प्रेरित करती हैं ? इस प्रकार बहिन को उन सब बहिनों ने उलाहना दिया । उलाहनेके वचन सुनकर वह उनके समक्ष अधिक लज्जित हुई और उस सूकर शिशु को घर से बाहिर निकाल दिया । घरसे बाहिर होजाने पर यह इधर उधर फिरने लगा । इतने में चांडाल ने इसे पकड़ लिया और घर ले जाकर चारों पैर बांधकर जमीन पर डाल दिया और उस पर घांस डालकर फिर अग्नि जलाई और

ज्धने अशुचि करी, आ जेध ते सूकर अशुचि प्रशस्त, मधु, सुस्वादु, सुगंधी लोभनने परित्याग करीने विधवा राजकन्याना रोकवा छतां न रोकतां उडपथी होडी ज्ध अशुचि पासे पछोंची तेनुं लक्षणु करवुं शङ्क्युं. सूकर अशुचिने अशुचि भातुं जेध अधी अछेने मश्करी करतां पेदी विधवा अछे-नने कहेवा लागी के छे अछेन ! ज्धो तो अशं तमारो अे प्यारो पुत्र शुं करी रहेल छे. केटला आनंदथी अशुचि भावामां मग्न अनी गथेल छे. आनी साथे तमे अमोने लोभन करवानुं कहेतां छतां. आ प्रकारे पेदी अधी अछेनेअे तेने मछेणुं हेतां मछेणानुं वचन सांलणीने ते अेमनी समक्ष भुअ शरमाध गध अने अे सूकर अशुचिने घरमांधी अडार काठी भूक्युं. घरथी अडार थध जतां ते न्यां त्यां लटकवा लाग्युं अेटलांमां चांडालने हाथ ते पडी गयुं जेने पकडी ते पोताने घेर लध गयो अने त्यां लध ज्ध आरे पग आंधी जमीन उपर पछाड्युं, अने तेना उपर घास नाभीने पछी अग्नि

उक्तार्थमुपसंहरन् कर्तव्यमुपदिशति—

मूलम्—सुणियाँऽभावं साणस्स सूयरस्स नरस्स यं ।

विण्णं ठविज्जं अप्पाणं इच्छंतो हियंमप्पणो ॥६॥

छाया—

श्रुत्वाऽभावं शुन्याः सूकरस्य नरस्य च ।

विनये स्थापयति आत्मानम् इच्छन् हितमात्मनः ॥ ६ ॥

टीका—

‘सुणिया.’ इत्यादि—शुन्याः=पूतिकर्णशुन्याः सूकरस्य च एतदुभय-  
दृष्टान्तस्य, तथा च=पुनः नरस्य=पुरुषस्य-दार्ष्टान्तिकतया कथितस्य दुःशीलशिष्य-  
अग्नि जलाकर उसको अग्नि में भून दिया । इस कुमौत से उसको  
मारा । इस लिये सूत्रकार कहते हैं कि-दुःशील का त्यागकर शील  
सदाचार का सेवन करना चाहिये ॥ ५ ॥

इसी कथित अर्थका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कर्तव्य का उप-  
देश अगली गाथा द्वारा करते हैं—‘सुणिया. इत्यादि’

अन्वयार्थ—(साणस्स-शुन्याः) पूतकर्णी कुत्ती के (सूयरस्स  
नरस्स य-सूकरस्य नरस्य च) सूकर के और दार्ष्टान्तिक रूप में प्रदर्शित  
किये गये दुःशील शिष्य के (अभाव-अनादर) अर्थात् दुर्दशाख्य  
अवस्था को (सुणिया-श्रुत्वा) सुनकर (अप्पणो हियं इच्छंतो-आत्मनः  
हितम् इच्छन्) आत्मा के हित के अभिलाषी शिष्य (अप्पाणं-  
आत्मानं) अपनी आत्माको (विण्णं ठविज्जं-विनये स्थापयेत्) विनय

सणगाव्ये अने तेमां तेने भूँछ नाण्युं. आ रीते कभोतथी तेने भायुं.  
आ माटे सूत्रकार कहे छे के दुःशीलनो त्याग करी शील-सदाचारनुं सेवन  
करवुं जेधये. (५)

आ कहेवायेला अर्थनो उपसंहार करीने सूत्रकार कर्तव्यनो उपदेश  
आ गाथा द्वारा करे छे.—‘सुणिया भावं.’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(साणस्स-शुन्याः) पूतकर्णी कुत्तीना (सूयरस्स नरस्स य-  
सूकरस्य नरस्य च) सूकरना अने दार्ष्टान्तिक रूपमां प्रदर्शित करायेला दुःशील शिष्यना  
(अभाव-अनादर) अर्थात् दुर्दशाख्य अवस्थाने (सुणिया-श्रुत्वा) सांख्यीने  
(अप्पणो हियं इच्छंतो-आत्मनः हितम् इच्छन्) आत्माना हितना अभिलाषी  
शिष्य (अप्पाणं-आत्मानं) पोताना आत्माने (विण्णं ठविज्जं-विनये स्थापयेत्)

સ્યેત્યર્થઃ, અભાવં-કુત્સિતો ભાવઃ અભાવઃ દુર્દશાલક્ષણઃ, સ ચેહ ભવે સર્વતો નિષ્કાસનાદિરૂપઃ, પરભવે ગુરોરાશાતનયા અબોધિઃ, અબોધેસ્તપઃસંયમાસંભવઃ, સંયમભાવેન મોક્ષમાર્ગાનારાધનમ્, તેનાનન્તસંસારપરિભ્રમણમ્ તં તથાવિધમભાવં તપઃ શ્રુત્વા=ગુરુસંનિધૌ નિશમ્ય આત્મનઃ=સ્વસ્ય, હિતં=કલ્યાણમ્ ઇચ્છન્ આત્માનં ધર્મ મેં સ્થાપિત કરતા હૈ । અથવા-ભાવ યહ હૈ કિ કુત્તી સૂકર ઓર અવિનીત શિષ્યકા સ્વરૂપ સૂનકર આત્મહિતૈષી વિનય શીલ બનેં ।

ભાવાર્થ—ઇસ ગાથા દ્વારા સૂત્રકાર યહ ઉપદેશ દે રહે હૈં કિ જો શિષ્ય આત્મકલ્યાણ કા અભિલાષી હૈં ઉસકા કર્તવ્ય હૈં કિ વહ ઇસ વિનયધર્મકે આચરણ કરને મેં થોડા મી પ્રમાદ ન કરે । કારણ કિ અવિનીત શિષ્ય કી વહ દુર્દશા હોતી હૈં જો પૂતિકર્ણી શુની કી તથા સૂકર શિશુ કી હુઈ હૈં । અવિનીત કે ડપર કિસી કા મી વિશ્વાસ નહીં રહતા વહ ઇસ ભવમેં ગુરુ કી અકૃપાકા ભાજન બનતા હુઆ જગહ-જગહ અપમાન આદિ દુઃસ્થિતિ કો સહન કરતા હૈં—ઓર ગચ્છ સે બાહર મી કર દિયા જાતા હૈં તથા પરભવ મેં ગુરુ કી આશાતના સે બોધિ કે લાભ સે મી વંચિત રહતા હૈં બોધિલાભ કે વિના કમી મી શ્રેયસ્કર મુક્તિ કા માર્ગ ઉસે પ્રાપ્ત નહીં હો સકતા હૈં । ક્યોં કિ બોધિ કે અભાવ મેં સમ્યક્ તપ ઓર સંયમ નહીં હોતા હૈં । સમ્યક્ તપ સંયમ કે અભાવ સે મોક્ષમાર્ગ કી આરાધના નહીં હોતી હૈં ઓર મોક્ષ-

વિનય ધર્મમાં સ્થાપિત કરે છે. અથવા ભાવાર્થ એ છે કે—કુતરી, સૂકર અને અવિનીત શિષ્યનું સ્વરૂપ સાંભળી આત્મહિતૈષી વિનયશીલ બને.

ભાવાર્થ—આ ગાથા દ્વારા સૂત્રકાર એવો ઉપદેશ આપે છે કે જે શિષ્ય આત્મ કલ્યાણનો અભિલાષી છે, એનું કર્તવ્ય છે કે તે આ વિનય ધર્મનું આચરણ કરવામાં થોડો પણ પ્રમાદ ન કરે. કારણ કે અવિનીત શિષ્યની આવી દુર્દશા થાય છે જે પૂતકર્ણી શુનીની તથા સૂકર (ભૂંડણના બચ્ચાની) બાળકની થઈ છે, અવિનીતનો કોઈ પણ વિશ્વાસ કરતું નથી. તે આ ભવમાં ગુરૂની અકૃપાનો ભાજન બની દરેક સ્થળે અપમાન આદિ દુસ્થિતિને સહન કરે છે. અને ગચ્છથી બહાર કરી દેવામાં આવે છે અને પરભવમાં ગુરૂની આશાતનાથી બોધિના લાભથી પણ વંચિત રહ્યા કરે છે. બોધિ લાભ વિના કદી પણ શ્રેયસ્કર મુક્તિનો માર્ગ એને પ્રાપ્ત થઈ શકતો નથી. કેમકે બોધિના અભાવમાં સમ્યક્ તપ અને સંયમ હોતું નથી. સમ્યક્ તપ સંયમના અભાવથી મોક્ષ માર્ગની આરાધના બની શકતી નથી. અને મોક્ષમાર્ગની

विनये=अभ्युत्थानादिगुरुशुश्रूषालक्षणे स्थापयति । उक्तं च—

विणया होइ य णाणं, णाणाओ दंसणं तओ चरणं ।  
चरणार्हितो मोक्खो मोक्खे, सोक्खं निराबाहं ॥ १ ॥

छाया—

विनयाद् भवति च ज्ञानं, ज्ञानाद् दर्शनं ततश्चरणम् ।  
चरणाद् मोक्षो, मोक्षे सौख्यं निराबाधम् ॥ १ ॥ इति ॥ ६ ॥

अथोपसंहरन्नाह—

मूलम्—तम्हां विणयमेसिज्जा सीलं पडिल्लभेज्जओ ।

बुद्धपुत्ते नियागट्ठी नं निक्कसिज्जइ कणहुइं ॥ ७ ॥

छाया—

तस्माद् विनयमेषयेत् शीलं प्रतिलभेत यतः ।  
बुद्धपुत्रो नियागार्थी न निष्कास्यते कुतश्चित् ॥ ७ ॥

टीका—

‘तम्हा. इत्यादि ।—तस्मात्=दुःशीलस्य सर्वतो निष्कासनादिरूपा दुर्गति भवतीत्युक्तरूपात् कारणात् साधुर्विनयम् एषयेत्=कुर्यात् धातूनामनेकार्थत्वात् ।

मार्ग के आराधना के अभाव में अनंत संसार परिभ्रमण करना पड़ता है, इसलिये शिष्य को अपने परमोपकारी गुरु महाराज का विनय सदा करना चाहिये । वे जब कहीं से अपने स्थान पर आवें तो शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह उनके समक्ष जावें—उन्हें देखकर अपने आसनसे उठ खड़ा होवे । उनकी शुश्रूषा आदि करता रहे । इससे विनय धर्मकी आराधना होती है । कहा भी है—विनय से ज्ञान होता है । ज्ञान से दर्शन और दर्शन से चारित्रिका लाभ होता है चारित्र से मोक्ष और मुक्ति होने से इस जीव को अव्याबाध सुख की प्राप्ति होती है ॥ ६ ॥

आराधनाना अलावथी अनंत संसार परिभ्रमणु करवुं पडे छे. आ माटे शिष्ये पोताना परोपकारी गुइ मडाराज्जेना सदा विनय करवे जेधये. तेज्यो न्यारे कथांयथी पोताना स्थान उपर आवे त्यारे शिष्यनुं ये कर्त्तव्य छे के ते तेमनी सामे जय-जेमने जेध पोताना आसन उपरथी उठी उला रडे अने जेमनी सेवा करवामां लागी जय, आथी विनय धर्मनी आराधना थाय छे. विनयथी ज्ञान थाय छे, ज्ञानथी दर्शन अने दर्शनथी चारित्रिने लाल थाय छे. चारित्रथी मोक्ष अने मुक्ति थवाथी आ जवने अव्याबाध सुखनी प्राप्ति थाय छे. ॥६॥



વિનયસ્ય ફલમાહ—સીલમિત્યાદિ । યતઃ વિનયાત્, શીલ=મૂલોત્તરગુણલક્ષણં પ્રતિલભેત=પ્રાપ્નુયાત્ । અનેન વિનયસ્ય ફલં શીલપ્રાપ્તિરિત્યુક્તમ્ । શીલસ્યાપિ ફલં પ્રદર્શયન્નાહ—‘બુદ્ધપુત્ર.’ ઇત્યાદિ । બુદ્ધપુત્રઃ—બુદ્ધસ્ય=આચાર્યસ્ય પુત્ર ઇવ પુત્રઃ—શીલધારી શિષ્યઃ, પુત્રશિષ્યયોઃશિક્ષણીયતયા સામ્યાત્ ; અતએવ નિયાગાર્થી—નિયાગો=મોક્ષસ્તમર્થયતીતિ નિયાગાર્થી—મોક્ષાભિલાષી કુતશ્ચિત્=કુલગણગચ્છતઃ ન નિષ્કાસ્યતે=ન બહિષ્ક્રિયતે । અયં ભાવઃ—વિનીતઃ કુલગણગચ્છાનાં સર્વેષા—

અબ ઉપસંહાર કરતે હૈં—‘તમ્હા.’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—અતઃ (તમ્હા-તસ્માત્) અવિનીત શિષ્ય કી સર્વ જગહ દુર્દશા હોતી હૈ સાધુ કા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ (વિણયં-વિનયમ્) વિનયરૂપ ધર્મકા (એસિજ્ઞા-એષયેત્) પાલન કરે । ઇસ વિનય ધર્મ કે પાલન કરનેકા ક્યા ફલ હૈ—ઇસ બાતકો (સીલં પડિલભેજ્જઓ-શીલં પ્રતિ લભેત યતઃ) ઇસ પદ દ્વારા સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હુઃ કહતે હૈં કિ યહ વિનયધર્મ, આચરિત હોને સે આચરણ કરને વાલે સાધુ કે લિયે મૂલગુણ ઓર ઉત્તરગુણોંકી પ્રાપ્તિ કરાતા હૈ । શીલ કી પ્રાપ્તિ હોને સે વહ શીલધારી શિષ્ય (બુદ્ધપુત્રે નિયાગટ્ટી-બુદ્ધપુત્રઃ નિયાગાર્થી) ગુરુજનોં કી દ્રષ્ટિ મેં અપના પુત્ર જૈસા હો જાતા હૈ । ક્યોં કિ પુત્ર શિક્ષણીય હોતા હૈ ઓર વૈસે શિષ્ય મી શિક્ષણીય હોતા હૈ । ઇસી વિચાર સે શિષ્ય કો યહાં પુત્ર જૈસા બતલાયા ગયા હૈ જબ વહ ગુરુ કૃપા કા પાત્ર હર તરહ સે હો જાતા હૈ તબ યહ બાત મી સ્વતઃ ઉસકે હૃદય મેં સ્થાન

હવે ઉપસંહાર કરે છે—‘તમ્હા.’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—એટલા માટે (તમ્હા-તસ્માત્) અવિનીત શિષ્યની સર્વ સ્થળે દુર્દશા થાય છે. સાધુનું કર્તવ્ય છે કે તે (વિણયં-વિનયમ્) વિનયરૂપ ધર્મનું (એસિજ્ઞા-એષયેત્) પાલન કરે. આ વિનય ધર્મનું પાલન કરવાનું શું કામ છે. આ વાતને (સીલં પડિલભેજ્જઓ-શીલં પ્રતિ લભેત યતઃ) આ પદ દ્વારા સૂત્રકાર પ્રગટ કરતાં કહે છે કે આ વિનય ધર્મ આચરિત હોવાથી આચરણ કરવાવાળા સાધુને માટે મુળગુણ અને ઉત્તર ગુણોની પ્રાપ્તિ કરાવે છે. શીલની પ્રાપ્તિ થવાથી એ શીલધારી શિષ્ય (બુદ્ધપુત્રે નિયાગટ્ટી-બુદ્ધપુત્રઃ નિયાગાર્થી) ગુરુજનોની દ્રષ્ટિમાં પોતાના પુત્ર જેવો બની બંધ છે. કેમકે પુત્ર શિક્ષણીય હોય છે અને આવા શિષ્ય પણ શિક્ષણીય હોય છે. આ વિચારથી શિષ્યને અહિં પુત્ર જેવો બતાવવામાં આવેલ છે. બ્યારે તે ગુરુકૃપાને પાત્ર દરેક રીતે બને છે ત્યારે આ વાત પણ સ્વતઃ એના દિલમાં સ્થાન કરી બંધ છે કે



मालम्बनम् । यथा श्रीखण्डचन्दनतरुः समस्तमलयाचलकाननगतान् वृक्षान् सुर-  
भयति, यथा वा अमृतमयशीतलचन्द्रकिरणसंसर्गतो विकसत् कुमुदवनं मनोज्ञसुगन्ध  
शीतलपवनमनोहरचन्द्रिकाभिर्जनमनःप्रसादकं भवति, यथा वा क्षीरसागरनिर्झरी  
स्वासन्नवर्तिनो वृक्षगुच्छगुल्मलतावल्लीप्रभृतीन् नानाविधान् वनस्पतीन् रसप्रदानेन  
वर्धयन्ती मोदयति, एवं विनयविभूषितः खलु शीलेन कुलगणगच्छान् मोदयन्  
लोके चिन्तामणिरिव संमन्यते, कल्पतरुरिव सेव्यते, निधिरिव समाद्रियते, सुधेव  
परिपूज्यते ॥ ७ ॥

कर लेती है कि मुझे अपना कल्याण करना है—अतः वह नियागार्थी-  
मोक्षाभिलाषी बन जाता है । और इस स्थिति में उसकी प्रत्येक क्रिया  
एँ मोक्षप्राप्ति की ओर ही उसे ले जाने वाली होती रहती हैं, अतः वह  
किसी भी कुल, गणएवं-गच्छ से नहीं निकाला जाता है ।

भावार्थ—जिस प्रकार श्रीखण्डचंदन का वृक्ष समस्त मलयाचल  
के जंगल में रहे हुए वृक्षों को अपनी अपार सुगंधि से सुरभित करता  
रहता है । अथवा जिस प्रकार अमृतमय शीतलचन्द्र की किरणों के  
संसर्ग से विकसित कुमुदवन, मनोज्ञ, शीतल एवं सुगंधित वायु एवं  
मनोहर चांदनी के द्वारा प्रत्येक जन के मन को आल्हादित करता है ।  
अथवा—जिस प्रकार क्षीर सागर की निर्झरी अपने निकट रहे हुए वृक्षों  
को उनके गुच्छों को गुल्मों एवं लतावल्ली आदि को रसप्रदान से वृद्धि-  
गत अर्थात् बढ़ाती हुई उन्हें विकसित करती है इसी तरह विनय से

भारे पोतानुं कट्याणुं करतुं छे—आथी ते नियागार्थी—मोक्ष अभिलाषी अनी  
अथ छे. अने अे स्थितिमां अेनी प्रत्येक क्रियाअो मोक्ष प्राप्तिनी तरङ्ग  
अेने लक्ष्णवाणी थती रहे छे. अेटवे ते कोषपणु कुण, गुणु अने गच्छथी  
दूर करवाभां आवता नथी. मतलय आने अे छे के अे प्रकारे श्रीभंड  
यंदननुं वृक्ष समस्त मलयाचलना जंगलमां रहेलां अथां वृक्षाने पोतानी  
अपार सुगंधीथी सुरभित करतुं रहे छे. अथवा अे प्रकारे अमृतमय शीतल  
किरणाना संसर्गथी विकसित कुमुदवन, मनोज्ञ, शीतल अने सुगंधित वायु  
अेनी मनोहर चांदनी द्वारा प्रत्येक जनना मनने आल्हादित करे छे. अथवा—  
अे प्रकार क्षीर सागरनी निर्झरी (अरणां) पोतानी निकट रहेला वृक्षाने  
अेनी अणो विगेरेने तथा कुलङ्गादि, पांडडां वगेरेने रसप्रदानथी वृद्धिगत  
अर्थात् वधारे छे. अने विकसित करे छे. आ रीते विनयथी विभूषित अनेल

વિનયઃ કથમેષણીય ઇત્યાહ—

મૂલમ્—નિસંતે સિંયાઽમુહરી બુદ્ધાણં અંતિણં સયાં ।

અટ્ટજુત્તાણિ સિક્ખિર્વજ્જા, નિરટ્ટાણિ ઉં વજ્જણં ॥૮ ॥

છાયા—

નિશાન્તઃ સ્યાત્ અમુસ્વારિઃ બુદ્ધાનામ્ અન્તિકે સદા ।

અર્થયુક્તાનિ શિક્ષેત નિરર્થાનિ તુ વર્જયેત્ ॥ ૮ ॥

ટીકા—

‘નિસંતે ઇત્યાદિ’—નિશાન્તઃ=નિતરાં શાન્તઃ—ઉપશમયુક્તઃ—અન્તઃ ક્રોધ-પરિવર્જનેન વહિશ્ચ સૌમ્યાકારેણ પ્રશાન્તઃ સ્યાદ્=ભવેત્, અમુસ્વારિઃ=અવિરુદ્ધભાષી પ્રિયભાષી સન્ બુદ્ધાનામ્=આચાર્યાણામ્, અન્તિકે=સમીપે, સદા=સર્વકાલમ્ અર્થ-

વિભૂષિત બના શિષ્ય મી શીલ સે કુલ, ગણ એવં ગચ્છ કો પ્રમુદિત કરતા હુઆ લોક મેં ચિન્તામણિ રત્ન કે સમાન માના જાતા હૈ કલ્પ-વૃક્ષકે સમાન સેવિત કિયા જાતા હૈ, નિધિકે સમાન આદરીણય હોતા રહતા હૈ ઓર સુધા (અમૃત) કે સમાન પૂજા જાતા હૈ ॥ ૭ ॥

વિનય પાલન કૈસે કરના ચાહિયે ઇસે સૂત્રકાર ઇસ નિમ્નલિ-લિખિત ગાથા સે સ્પષ્ટ કરતે હૈ—‘ નિસંતે. ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(નિસંતે-નિશાન્તઃ) જો ઉપશમ ભાવ સે યુક્ત હૈ—મીતર મેં જિસકે ક્રોધ કા ઉદ્રેક નહીં હોતા હૈ—તથા બાહિર સે જિસકા સદા સૌમ્ય આકાર બના રહતા હૈ એસા શિષ્ય (અમુસ્વારિ) અવિરુદ્ધ-ભાષી-પ્રિયભાષી-હોતા હુઆ (બુદ્ધાણં અંતિણ-બુદ્ધાનાં અન્તિકે) આચાર્યા

શિષ્ય પણ શીલથી કુળ, ગણ એટલે ગચ્છને પ્રમુદિત કરીને લોકમાં ચિન્તા-મણી રત્ન સમાન માનવામાં આવે છે. કલ્પવૃક્ષના સમાન સેવિત કરવામાં આવે છે. નિધિની માફક આહત થતા રહે છે. અને સુધાની (અમૃત) માફક પૂજાય છે. ॥૭॥

વિનય પાલન કેવી રીતે કરવું જોઈએ તેને સૂત્રકાર આ નિચે બતાવેલ ગાથાથી સ્પષ્ટ કરે છે. નિસંતે. ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—( નિસંતે-નિશાન્તઃ ) જે ઉપશમ ભાવથી યુક્ત છે—જેને અંદર ક્રોધનો ઉપદ્રવ થતો નથી. તથા બાહરથી જેનો સદા સૌમ્ય આકાર બન્યો રહે છે એવા શિષ્ય (અમુસ્વારિ) અવિરુદ્ધભાષી-પ્રિયભાષી બનીને (બુદ્ધાણં અંતિણ-બુદ્ધાનાં અન્તિકે) આચાર્યોની સમીપ (સયા-સદા) હંમેશાં

युक्तानि-अर्थ्यते=प्रार्थ्यते मुमुक्षुभिर्यःसोऽर्थः अव्याबाधसुखरूपो मोक्षस्तेन युक्तानि तत्प्रतिबोधकानि । यद्वा-अर्थो=हेयोपादेयरूपस्तेन युक्तानि-तत्प्रतिपादकानि वीतरागशास्त्राणि शिक्षेत=अभ्यस्येत् । अयं भावः-मोक्षमार्गप्रदर्शकानि शास्त्राण्येव उपादेयानि पारमार्थिकस्वरूपप्रतिपादकत्वात्, यथा सिन्धुस्तरङ्गैर्विलसति तथा स्याद्वादैर्विलसितानि रागद्वेषदोषपरिवर्जितानि अव्याबाधसुखजनकानि उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूपनिरूपकाणि भगवद्वचनानि, तस्मात् तान्येवाभ्यसेदिति ।

के समीप (सया-सदा) सदा-काल (अद्विजुक्तानि-अर्थयुक्तानि) मोक्ष-प्रतिबोधक-अथवा हेयोपादेय तत्त्व प्रतिपादक-ऐसे वीतरागो-पदिष्ट शास्त्रोंका (सिक्खिज्जा-शिक्षेत) अभ्यास करे । तथा (निरट्टाणि उ वज्जए-निरर्थानि तु वर्जयेत्) इनसे विपरीत अन्य शास्त्रोंका वर्जन करें ।

भावार्थ—वस्तुका पारमार्थिक स्वरूप प्रतिपादन करने वाले होने से मोक्षमार्गके प्रदर्शक शास्त्र ही उपादेय हैं । जिस प्रकार समुद्र अपनी तरङ्गमालाओंसे शाभित होता है उसी तरह प्रभु के वचन स्वरूप आगमशास्त्र भी स्याद्वाद-शैली से सुशोभित होते हैं । इनमें राग एवं द्वेषको बढ़ाने वाली-कथाएँ बिलकुल नहीं हैं । उनसे ये सदा वर्जित हैं । अव्याबाध सुख के ये जनक हैं । उत्पाद व्यय एवं ध्रौव्य के यथार्थ स्वरूप का ये निरूपक हैं । इसलिये मोक्षाभिलाषिओ को वीतराग प्रणीत शास्त्रका ही अभ्यास करना चाहिये । जिन में इस प्रकार की बातें नहीं हैं जो सर्वथा एकान्तवाद के पोषक असर्वज्ञोपदिष्ट शास्त्र हैं

(अद्विजुक्तानि-अर्थयुक्तानि) मोक्ष प्रतिबोधक-अथवा हेयोपादेय तत्त्व प्रतिपादक अेषां वितरागोपदिष्ट शास्त्रोना (सिक्खिज्जा-शिक्षेत्) अभ्यास करे. तथा (निरट्टाणि उ वज्जए-निरर्थानि तु वर्जयेत्) अेनाथी विपरीत अन्य शास्त्रोना त्याग करे.

भावार्थ—वस्तुनुं पारमार्थिक स्वरूप प्रतिपादन करवावाणा डोवाथी मोक्षमार्गना प्रदर्शक शास्त्र न उपादेय छे. जे प्रकार समुद्र पोतानी तरंग-माणाओथी शोभित होआय छे अे न रीते प्रभुना वचन स्वरूप आगम-शास्त्र पणु स्याद्वादशैलीथी सुशोभित होय छे. तेमां राग अने द्वेषने वधा-रनारी कथाओ भीलकुल डोती नथी. अेनाथी अे सदा वर्जित छे. अव्याबाध सुभना अे जनक छे. उत्पाद व्यय, अने ध्रौव्यना यथार्थ स्वरूपना अे निरूपक छे. आ भाटे मोक्षाभिलाषिओअे वितराग प्रणीत शास्त्रनो न अभ्यास करवो बोधअे. जेमां आ प्रकारनी वातो नथी, जे सर्वथा एकान्तपादने पोषनार

निरर्थकानि मोक्षार्थवर्जितानि, यद्वा-हेयोपादेयरूपार्थानभिधायकानि वैशेषिकादीनि वात्स्यायनप्रणीतकामशास्त्राणि तु वर्जयेत्=परिहरेत् । अयं भावः-लौकिकशास्त्राणि तु-महाव्रतपर्वतभेदने वज्रोपमानि, तपःसंयमकाननविनाशने दावानलसमानि, वे निरर्थक शास्त्र हैं । उनका अभ्यास नहीं करना चाहिये । क्यों कि वे अपने अभ्यासियोंके लिये मोक्षमार्ग के यथार्थ स्वरूप से वंचित एवं अपरिचित हैं । अथवा-निरर्थक वे शास्त्र हैं कि जिनके अध्ययन करने से जीवोंको हेय और उपादेय रूप अर्थका भान न हो सके, जो इस प्रकार के मोक्ष अर्थ के अभिधायक नहीं है ऐसे वैशेषिक आदि-आदि द्वारा प्रणीत शास्त्र तथा वात्स्यायनद्वारा प्रणीत काम शास्त्रों का अध्ययन कभी भी मोक्षामिलाषियों को नहीं करना चाहिये । लौकिक-असर्वज्ञ-द्वारा उपदिष्ट लौकिक शास्त्र संसार बढ़ाने वाली ही शिक्षाओं से परिपूर्ण हैं । इनसे साधुओं को अपने महाव्रतों को पालन करनेकी शिक्षा यथार्थतया प्राप्त नहीं होती है । अतः उनका अध्येता अर्थात्-अध्ययन करने वाला भद्रपरिणामी साधुजन अपने व्रतों से भी च्युत हो जाता है । इसलिये ऐसे शास्त्रों का अध्ययन महाव्रतरूप पर्वत को नष्ट करने के लिये वज्रका काम करता है । सम्यग्दर्शन की पुष्टि जबतक जीव की नहीं होती है-तबतक उसे समस्त द्रव्यों से भिन्न आत्मद्रव्य में दृढ श्रद्धा जाग्रत नहीं होती है । इस प्रकार के

असर्वज्ञोपदिष्ट शास्त्र छे ते निरर्थक शास्त्र छे, तेनो अब्यास नहीं करवो जेधये. केमके ते आपणु अब्यासियो माटे मोक्षमार्गना यथार्थ स्वरूपथी वंचित अने अपरिचित छे. अथवा-निरर्थक ते शास्त्र छे के जेतुं अध्ययन करवाथी जेवने जेय अने उपादेयइय अर्थनुं लान थध शकतुं नथी. जे आ प्रकारना मोक्ष अर्थना अबिधायक नथी जेवा वैशेषिक आदि आदि द्वारा प्रणीत शास्त्र तथा वात्स्यायन द्वारा प्रणीत कामशास्त्रोनुं अध्ययन कही पणु मोक्षना अबिलाषियोये करवुं न जेधये. लौकिक-असर्वज्ञ-द्वारा उपदिष्ट लौकिक शास्त्र संसार वधारनारी शिक्षाओथी परिपूर्णुं होय छे. तेनाथी साधुजोने पोतानां महाव्रतोनुं पालन करवानी शिक्षा यथार्थ तया प्राप्त थती नथी, जेटले जेतुं अध्ययन करवावाणा भद्रपरिणामी साधुजन पोताना व्रतोथी पणु च्युत थनी जय छे. आ माटे जेवा शास्त्रोनुं अध्ययन महाव्रतइय पर्वतने नष्ट करनार वज्रनुं काम करे छे. सम्यग्दर्शननी पुष्टि ज्यां सुधी जेवने थती नथी, त्यां सुधी तेने समस्त द्रव्योथी लिन्न आत्मद्रव्यमां दृढ श्रद्धा जग्रत थती नथी. आ प्रकारनी श्रद्धा जग्रत थया

प्रशमसरःशोषणे प्रचण्डमार्तण्डकिरणरूपाणि, भ्रमोत्पादने मृगतृष्णास्वरूपाणि,

श्रद्धा जाग्रत हुए विना जीवको आत्म कल्याण का मार्ग दिखलाई नहीं देता है। अतः वह पतित होकर अनंत संसारी हो जाता है। इसीलिये लौकिक शास्त्रोंका अध्ययन वर्जनीय बतलाया गया है यदि इस भावना से उनका अध्ययन किया जाय कि देखुं कि वीतराग प्ररूपित शास्त्रों में और इनके उपदेश में कितना भेद है तो इस स्थिति में ज्ञानी को अनेकान्त शासन पर और अधिक दृढ श्रद्धा बढ़ जाती है। क्यों कि सच्चे मणिकी कीमत तो झूठे मणि के देखने से ही होती है। सच्चे मणिका परिचायक झूठामणि ही हुआ करता है। इसीलिये टीकाकार ने इन्हें महाव्रत रूप पर्वत के भेदन करने में वज्रकी उपमा दी है। दावानल जिस प्रकार वन को भस्म करने में ढील नहीं करता उसी प्रकार निरर्थक शास्त्रों का अध्ययन भी मोक्षाभिलाषियों के तप और संयमरूप उद्यान को नाश करता है। जिस प्रकार ग्रीष्मकाल का प्रखर आतप-धूप सरोवर को शोषण करता है उसी प्रकार ये मोक्षमार्ग के उपदेश से विहीन शास्त्र भी मोक्षाभिलाषी के प्रशमभावको शुष्क करने में जरा सी भी कसर नहीं रखते हैं। मृगतृष्णा जिस प्रकार मृगों को

विना लुप्तने आत्मकल्याणको मार्ग भणतो नथी. अटवे ते पतित अनी अनंत संसारी थई नय छे आ माटे लौकिक शास्त्रोनुं अध्ययन वर्जनीय अताववामां आवेद छे. जे जे लावनाथी तेनुं अध्ययन करवामां आवे के जेठं वितराग प्ररूपित शास्त्रोमा अने जेमना उपदेशमां केटवे लेद छे तो आ स्थितिमां ज्ञानीने अनेकान्त शासन पर वधु द्रढ श्रद्धा जेसी नय छे केभके साया भण्णिनी किंमत तो जुडा भण्णिने जेवार्थी न थाय छे साया भण्णिने ज्योणभावनार जोटे भण्णि न होय छे. आ माटे टीकाकारे तेने महाव्रतरूप पर्वतनुं लेदन करनारा वज्रनी उपमा आपी छे. दावानल जे रीते वनने भस्म करवामां ढील करतो नथी, तेवी न रीते निरर्थक शास्त्रोनुं अध्ययन पणु मोक्षाभिलाषिज्योना तप अने संयमरूप उद्यानको नाश करे छे. जे प्रकार ग्रीष्मकालको प्रखर आताप सरोवरनुं सोशण करे छे. तेवा प्रकारे मोक्षमार्गनां उपदेशथी विहित शास्त्र पणु मोक्ष अभिलाषिना प्रशमलावने शुष्क करवामां कसर राअतो नथी. मृगतृष्ण जेवा प्रकारे मृगोने

सकलापत्तिदायकविषयविलासप्रवर्तकानि दीर्घाध्वचतुर्गतिकसंसारपरिभ्रमणकारणानि सन्ति, तस्माद् विषमविषधरभुजङ्गवत् तानि दूरतः परिवर्जनीयानि ॥८॥

अर्थयुक्तानि कथं शिक्षेत ? इत्याह—

मूलम्—अणुसांसिओ नं कुप्पिज्जाँ, खंतिं सेविर्जं पण्डिँए ।

खुँडुहिं सह संसर्गं, हांसं क्रीडं' चं वज्जँए ॥ ९ ॥

छाया—

अनुशासितः न कुप्येत्, क्षान्तिं सेवेत पण्डितः ।

क्षुद्रैः सह संसर्गं, हांसं क्रीडां च वर्जयेत् ॥ ९ ॥

टीका—

‘अणुसांसिओ.’ इत्यादि—अनुशासितः—गुरुभिः कठोरवचनैस्तर्जितोऽपि न कुप्येत्=कोपं न कुर्यात् । किं तर्हि ? इत्याह—‘खंतिं.’ इत्यादि । पण्डितः=सदसद्विवेकवान् सन् क्षान्तिं=परुषभाषणसहनरूपां सेवेत । अयं भावः—यद्यपि

जलका भ्रम उत्पन्न करती है उसी तरह मिथ्या शास्त्र भी मोक्षाभिलाषिओंके लिये यथार्थस्वरूप का ज्ञान न कराकर केवल वस्तु के स्वरूप में भ्रमोत्पादक होते हैं । समस्त आपत्ति—एवं विपत्तियों को देने वाले विषय कषायोंकी ही इनसे केवल वृद्धि होती रहती है अतः इनसे संसार का अन्त न आकर जीवों के अनन्त संसार के मार्ग की ही पुष्टि होती है और इसी वजह से यह जीव इस चतुर्गति स्वरूप संसार में इतस्ततः परिभ्रमण किया करता है । इस लिये जिस प्रकार जहरीले सर्पका दूर से ही परिहार कर दिया जाता है उसी प्रकार मोक्षाभिलाषिओं को इन निरर्थक शास्त्रोंका परिहार कर देना चाहिये ॥ ८ ॥

જળનો ભ્રમ ઉત્પન્ન કરે છે, તેવી રીતે મિથ્યાશાસ્ત્ર પણ મોક્ષ અભિલાષીઓ માટે યથાર્થ સ્વરૂપનું જ્ઞાન ન કરાવતાં કેવળ વસ્તુના સ્વરૂપમાં ભ્રમોત્પાદક બને છે. સમસ્ત આપત્તિ અને વિપત્તિને દેવાવાળા વિષય કષાયોની જ તેનાથી ક્ષત વૃદ્ધિ થતી રહે છે. જેથી તે વડે સંસારનો અંત ન આવતાં જીવોને અનંત સંસારના માર્ગમાં લઇ બંધ છે, અને એ કારણે આ જીવ આ ચતુર્ગતિરૂપ સંસારમાં અહિં તહિં ભટકતો રહે છે. આ માટે જે પ્રકારે જહરીલા સાપનો દુરથી જ ત્યાગ કરવામાં આવે છે, તેવી રીતે મોક્ષના અભિલાષીઓએ આવા નિરર્થક શાસ્ત્રનો ત્યાગ કરવો જોઇએ. ॥૮॥



गुरु परुषवचनानि ग्रीष्मर्तुसहस्रकिरणकिरणावलीसमानि तथापि स्वल्पेनैव समयेन सजला जलदावलीसमुत्थितसमीरसहचारिनीरकणिका इव परिणमन्तीति गुरूणां परुषवचनानि अनन्तहितविधायकानि मोक्षपथप्रदर्शकानि सावधकर्म-निवर्तकानि अमृतमयानि आसेवनाग्रहण शिक्षारूपाणि भवन्तीति मन्यमानः सन् सहेत । उक्तं च—

शास्त्र किस तरह से सीखे सो बतलाते हैं—‘ अणुसासिओ. ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—शिष्यजन यदि कदाचित् गुरुओं द्वारा कठोर वचनों से भी (अणुसासिओ-अनुशासितः) अनुशासित-शिक्षापाते हों तो भी उन्हें चाहिये कि वे (न कुप्पिज्जा-न कुप्येत्) अपने शिक्षाप्रदाता गुरुजन पर कभी भी कुपित न हों । प्रत्युत ऐसी अवस्था में सत् और असत् के विवेक करने में ( पण्डिण-पण्डितः) कुशलमति वह शिष्य ( खन्ति सेविज्ज क्षान्ति सेवेत्) परुषभाषणको सहन करने रूप शान्तिभावका ही सेवन करे । तथा (खुड्डेहिं सह संसग्गं हासं क्रीडं च वज्जए-क्षुद्रैः सह संसर्गं हासं क्रीडं च वर्जयेत्) क्षुद्रजनों-बाल अथवा पार्श्वस्थ अवसन्न-कुशील संसक्त-स्वेच्छाचारी साधुओं का संग वर्जन करें । तथा-हास्य क्रीडा का भी वर्जन करें ।

भावार्थ—यद्यपि गुरु महाराजके वचन उस समय शिष्य को ग्रीष्मऋतुके प्रखर सूर्यकी किरणों के समान मालूम पडते हैं परन्तु

शास्त्र कथं रीते शीघ्रवां ते भतावे छे.—अणुसासिओ. धत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्यजन जे कदाच गुड्ठो द्वारा कठोर वचनोधी पणु (अणुसासिओ-अनुशासितः) अनुशासित-शिक्षा भेणवता होय तो पणु तेभणु विचारुं जेधं जे के ते (न कुप्पिज्जा-न कुप्येत्) पोताना शिक्षा प्रदाता गुड्ठन उपर कही पणु कोध न करे. परंतु जेवी अवस्थाभां सत् अने असत्नो विवेक करवाभां (पण्डिण-पण्डितः) कुशलमति ते शिष्य (खन्ति सेविज्ज-क्षान्ति सेवेत्) (कठोर) परुष भाषणुने सहन करवाइय शान्तिभावनुं न सेवन करे. तथा (खुड्डेहिं सह संसग्गं हासं क्रीडं च वज्जए-क्षुद्रैः सह संसर्गं हासं क्रीडां च वर्जयेत्) क्षुद्रजनों, १ भाण अथवा २ पार्श्वस्थ, ३ अवसन्न, ४ कुशील, ५ संसक्त-स्वेच्छाचारि साधुजनों संग वर्जन करे. तथा हास्य क्रीडानुं पणु वर्जन करे.

मतलब तेनो जे छे के कदाच गुड्ठ महाराजनुं वचन, ते समये शिष्यने उनाणाना प्रभर सूर्यना किरणो समान मालूम पडे छे. परंतु परिष्ठाभमां



गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिः-

स्तिरस्कृता यान्ति नरा महत्त्वम् ।

अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां,

न जातु मौलौ मणयो वसन्ति ॥ १ ॥

च=पुनः क्षुद्रैः=बालैः, अथवा पार्श्वस्थावसन्नकुशीलससक्तयथाच्छन्दैः  
सह संसर्गैः=सङ्गं वर्जयेत् ।

परिणाम में वे जल से भरे हुए मेघ के समय उत्पन्न वायु के साथ जल कणिका के समान हितविधायक होते हैं। जिस प्रकार वर्षाकाल में जब आकाश में घटाए घिर आती हैं तो उससमय वायु का भी संचार होने लगता है—आंधी उठने लगती है और उसके उठते ही वे घटाएँ वरसने लगती हैं। इससे आतपतप्त—गरमीसे पीड़ित आत्माओं को शीतलता का अनुभव होने लगता है। इसी प्रकार उस समय गुरुजनों के वचन कठोर प्रतीत होते हैं परन्तु भविष्य में वे शिष्यों के लिये आत्मकल्याण के साधक होने से अनंत शीतलता प्रदान करने वाले हो जाते हैं। शिष्यजन को गुरु के वचन अनंतहित विधायक, मोक्षपथप्रदर्शक, सावधकर्मनिवर्तक अमृतस्वरूप जानकर सहते रहना चाहिये। क्यों कि इनसे शिष्योंको आसेवनशिक्षा एवं ग्रहण शिक्षा प्राप्त होती है व्रतों को ग्रहण करना एवं उनका सम्यग्ग्रीति से पालन करना यह शिक्षा गुरु के वचनोंसे ही शिष्यों को मिलती है। कहा भी है—गीर्भिर्गुरूणां० इत्यादि—

તે જળથી ભરેલા મેઘના સમયે ઉત્પન્ન થતા વાયુની સાથે જળકણિકાના જેવાં હિત વિધાયક હોય છે. જે પ્રકારે વર્ષાકાળમાં જ્યારે આકાશમાં ઘટાઓ ઘેરાય છે. એ સમયે વાયુનો પણ સંચાર થાય છે. અને આંધી ઉઠવા લાગે છે. અને આંધીના આગમનથી તે ઘટાઓ વરસવા લાગે છે. એનાથી (તડકાથી તપેલ) આતપતપ્ત આત્માઓને શીતળતાનો અનુભવ થવા લાગે છે. આ પ્રકારે એ સમયે ગુરૂજને.નું વચન કઠોર જણાય છે. પરંતુ ભવિષ્યમાં તે શિષ્યોને માટે આત્મ કલ્યાણનું સાધક હોવાથી અનંત શીતળતા આપનાર બને છે. શિષ્યજને ગુરૂનાં વચન અનંત હિત વિધાયક, મોક્ષપથ પ્રદર્શક, સાવધ કર્મ નિવર્તક અમૃત સ્વરૂપ જાણીને સહી લેવાં જોઈએ. કેમકે તેનાથી શિષ્યોને આસેવન શિક્ષા અને ગ્રહણશિક્ષા પ્રાપ્ત થાય છે. વ્રતોનું ગ્રહણ કરવું અને તેને સમ્યગ્ગ્રીતિથી પાલન કરવું આ શિક્ષા ગુરૂના વચનોથી જ શિષ્યોને મળે છે. કહ્યું પણ છે—ગીર્ભિર્ગુરૂનાં. ઇત્યાદિ—

ननु बालपार्श्वस्थादिसंसर्गे सत्यपि साधोः का हानिः ? दृश्यते हि वैदूर्यमणिः काचसहयोगेऽपि काचधर्मं नाप्नोति, एवमात्मार्युनि मुनेर्बालपार्श्वस्थादि-संसर्गे सत्यपि स्वाचारपरिवर्तनं न स्यात् ? अत्रोच्यते—जीवो हि संसर्गदोषानु-भावतो बालपार्श्वस्थाद्याचरितप्रमादादिभावनाभावितत्वात् द्रुतमेव तद्भावं प्राप्नोति, यथा—निम्बोदकवासितायां भूमौ क्वचिदाभ्रवृक्षः समुत्पन्नः, पुनस्तत्राभ्रस्य निम्बस्य च द्वयोरपि मूले मिलिते, ततश्च संसर्गदोषादाभ्रो निम्बत्वं प्राप्य

कठोर अक्षरों से युक्त गुरुजनों के वचनों से तिरस्कृत हुए शिष्यजन महत्त्व को प्राप्त करते हैं। जबतक मणी शाण पर नहीं चढ़ाया जाता है तबतक वह अपने उत्कर्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है और न राजाओं के मुकुटों में भी जड़ा जाता है। साधु यदि बाल एवं पार्श्वस्थ आदि की संगति करे तो उसकी इससे क्या हानि है। क्यों कि देखा जाता है कि वैदूर्यमणि काचमणि के साथ रहते हुए भी उसके धर्मको अर्थात् काच के गुण को ग्रहण नहीं करता है इसी प्रकार पार्श्वस्थ आदि की संगति में रहा हुआ आत्मार्थी साधु भी अपने आचार विचार से परिचलित नहीं हो सकता ? प्रश्न ठीक है—परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि भद्रपरिणामी आत्मा निमित्ताधीन होता है। निमित्त मिलने पर निमित्त के अनुसार शीघ्र ही उसका परिणमन हो जाता है। जिस प्रकार जिस भूमि में नीमके वृक्ष लगे हुए होते हैं और उसी भूमिमें यदि आम का भी वृक्ष लगा दिया जावे तो वह नीमके मूल के

कठोर अक्षरोंसे लरेला गुड़नेना वचनोंसे तिरस्कृत थेले शिष्यजन महत्त्वने पावे छे. ज्थां सुधी मणीने सराण उपर चडाववामां आवतो नथी त्यां सुधी ते पोताना उत्कर्षने प्राप्त करी शकतो नथी. अने न तो ओ राब्दयोना मुगटोमां जडाय छे. साधु जे जाल अने पार्श्वस्थ आदिनी संगति करे तो अर्थी अने कंठ ज नुकशान थतुं नथी. केभडे जेठ शकाय छे के वैदूर्यमणी काय मणीनी साथे रहेवा छतां पणु ओ कायना गुण ग्रहणु करतो नथी. आ रीते पार्श्वस्थ आदिनी संगतिमां रहेला आत्मार्थी साधु पणु पोताना आचार विचारथी परिचलित थता नथी ? प्रश्न ठीक छे—परंतु ओ ध्यानमां राखतुं जेठजे के भद्रपरिणामी आत्मा निमित्त आधिन अने छे. निमित्त भणवाथी निमित्तना अनुसार जल्दीथी तेनुं परिणमन थध जाय छे. जे प्रकारे जे भूमिमां लीमडानां वृक्षो लागेलां होय छे. अने ओ जे भूमिमां जे आंभानुं वृक्ष वाववामां आवे तो लीमडाना भूण साथे तेना भूण भणवाथी उ.-९

કઢુફલો ભવતિ । અપરં ચ બાલપાર્શ્વસ્થાદિસંસર્ગો લોકે ગર્હા જનયતિ, સર્વ  
 એવૈતે સાધવ એવંભૂતા ઇતિ, તથા પાપેऽનુમતિમુત્પાદયતિ । અયં ભાવઃ—યથા—  
 રજઃપુષ્કો મણિગણં મલિનયતિ, રાહુચન્દ્રમણ્ડલપ્રભામપકર્ષયતિ, લોભઃ સર્વગુણ-  
 ગણં વિનાશયતિ, હેમન્તઃ કમલવનં પ્રલીનયતિ, તથા—ક્ષુદ્રસંસર્ગઃ શાન્ત્યાદિગુણગણં  
 મલિનયતિ, લઙ્ઘ્યાદિપ્રભાવમપકર્ષયતિ, તપઃસંયમજનિતમહત્ત્વં વિનાશયતિ, દશ-  
 વિધધર્મં પ્રલીનયતિ, તસ્માત્ ક્ષુદ્રસંસર્ગઃ પરિવર્જનીય ઇતિ ।

સાથ અપને મૂલ સે મિલા રહને પર કઢુકફલ દેને લગતા હૈ । યહ બાત  
 પ્રસિદ્ધ હૈ । ઇસલિયે સંસર્ગ કે દોષ સે જૈસે આમ્ર નિમ્બભાવ કો પ્રાપ્ત  
 હોકર કઢુવે ફલ દેને લગતા હૈ ઁસી પ્રકાર આત્માર્થી સાધુજન બી  
 બાલ પાર્શ્વસ્થાદિ કે સંગતિ સે સ્વાચાર ભ્રષ્ટ હો જાતે હૈ । આમ્ર પર  
 નીમકા હી પ્રભાવ પડતા હૈ—નીમ પર આમ્ર કા નહીં—કારણ કિ બુરી  
 વસ્તુ કા હી અધિક પ્રભાવ પડા કરતા હૈ ઁર વહી વસ્તુ દૂસરોં કો  
 જલ્દી અપને અનુરૂપ પરિણમા લેતી હૈ—યહ ઁક સ્વાભાવિક બાત હૈ ।  
 યહ તો આંખોંદેખી વાતે હૈ કિ ઘૂલિ કા પુંજ મણિગણકો બી મલિન  
 બના દેતા હૈ । રાહુચન્દ્રમંડલ કી પ્રભા કા અપકર્ષક હોતા હૈ, લોભ  
 સમસ્ત સદ્ગુણોંકા લોપક હોતા હૈ । હેમન્ત ઋતુ કમલવન કો દગ્ધ કર  
 દેતા હૈ । ઇસી તરહ યહ બી માનને મેં કોઈ આપત્તિ નહીં હૈ કિ ક્ષુદ્ર-  
 જનોં કા સંસર્ગ બી સાધુજનોં કે શાંતિ આદિ ગુણગણોં કો મલિન  
 બના દેતા હૈ । ઁનેકે પ્રાપ્ત—પ્રભાવ કો કમ કર દેતા હૈ । તપ ઁવં સંયમ

કડવાં ફળ આપવા લાગે છે. આ વાત પ્રસિદ્ધ છે. આ માટે સંસર્ગના  
 દોષથી જેમ આંખો લીમડાના ભાવને પામી કડવાં ફળ આપનાર બને છે  
 એ જ રીતે આત્માર્થી સાધુજન પણ આળ પાર્શ્વસ્થાદિના સંગથી સ્વાચારભ્રષ્ટ  
 બની જાય છે. આંખા ઉપર લીમડાનો જ પ્રભાવ પડે છે, લીમડા ઉપર  
 આંખાનો નહીં કારણ કે ખરાબ વસ્તુનો અધિક પ્રભાવ પડે છે. અને વસ્તુ  
 ખીલજોને જલ્દી પોતાના જેવી બનાવે છે. આ એક સ્વાભાવિક વાત છે આ  
 તો આંખે જોયેલી વાત છે કે ધુળનો વંટોળ મણીઓને પણ મલીન બનાવી  
 દે છે. રાહુ ચંદ્ર મંડળ તેજને ઢાંકી દે છે. લોભ સમસ્ત સદ્ગુણોને લોપનાર  
 હોય છે. હેમન્ત કમળ વનને ખાળી નાખે છે. આ રીતે એ માનવામાં કોઈ  
 અચુક્તિ નથી કે ક્ષુદ્રજનોનો સંસર્ગ પણ સાધુજનોના શાંતિ આદિ ગુણોને  
 મલીન બનાવી દે છે. એના પ્રાપ્ત પ્રભાવને ઓછો કરે છે, તપ અને

तथा—हासं=हसनं, क्रीडां=कन्दुकादिकां च वर्जयेत्, ज्ञानावरणीयाद्यष्टविध-  
कर्मबन्धजनकत्वादिति भावः ।

उक्तंच—“जीवे णं भंते ! हसमाणे वा उस्सुयमाणे वा कइ कम्मपगडीओ  
बंधइ ? गोयमा ! सत्तविहबंधए वा अट्टविहबंधए वा ”

छाया—जीवः खलु भदन्त ! हसन् वा उत्सुकन् वा कति कर्मप्रकृतीर्ब-  
ध्नाति, गौतम ! सप्तविधबन्धको वा अष्टविधबन्धको वा इत्यादि । क्रीडाविषये-  
ऽप्येवमेवागमोऽनुसन्धेयः ॥ ९ ॥

के महत्व को भी विनष्ट कर देता है एवं दशविध धर्मको ध्वस्त कर देता  
है। इसलिये क्षुद्रों का तथा बालकों का संसर्ग सदा परिहार्य बतलाया  
गया है। तथा बालआदि जनोंकी संगति से निंदा होती है एवं पापकार्यों  
में अनुमति देने की भी आदत पड़ जाती है। इसी तरह ज्ञानावरणीय  
आदि अष्टविध कर्मोंके बंध के जनक होने से साधुजन को बालोंके साथ  
हँसी करना, क्रीड़ा करना आदि अकर्तव्योंका भी परिहास कर देना  
चाहिये। प्रभुका स्वयं भी ऐसा ही उपदेश है—“जीवे णं भंते ! हसमाणे  
उस्सुयमाणे वा कइ कम्मपगडीओ बंधइ ? गोयमा ! सत्तविहबंधए वा  
अट्टविहबंधए वा ” इत्यादि—प्रभु से गौतमने प्रश्न किया हे भदन्त !  
यह जीव जब हँसी करता है अथवा उत्सुक होता है तब कितने कर्मकी  
प्रकृतियों का बंध करता है ? तब प्रभु ने उत्तर दिया कि हे गौतम ! इस  
अवस्था में यह जीव सात प्रकार के या आठ प्रकार के कर्मोंका बंध करता

संयमना महत्त्वनेो पणु नाश करी नाणे छे. अेम ७ दशविध धर्मनेो  
पणु ध्वस्त करी नाणे छे. आ भाटे क्षुद्रोनेो तथा बालकोनेो संसर्ग सदा  
परिहार्य अताववामां आवेव छे. तथा बाण आदि ७नेोनी संगतिथी निंदा  
थाय छे. तेम ७ पापकार्योमां अनुमति देवानी पणु आदत पडी नथ छे.  
आ रीते ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मनां अंधनेोना ७नक डोवार्थी साधु ७नेोअे  
डांसी करवी, डिडा करवी आदि अकर्तव्योनेो परिहार करी देवेो नेधअे.  
प्रभुनेो स्वयं आवेो ७ उपदेश छे. “जिवेणं भंते ! हसमाणे वा उस्सुयमाणे वा  
कइ कम्मपगडीओ बंधइ ? गोयमा ! सत्तविह बंधए वा अट्टविह बंधए वा०”  
इत्यादि—प्रभुथी गौतमे प्रश्न कर्यो डे लहन्त ! आ एव न्यारे डसे छे  
त्यारे डेटदा कर्मनी प्रकृतियोनेो अंध करे छे ? प्रभुअे उत्तर आवेो डे डे  
गौतम ! आ अवस्थांमां आ एव सात प्रकारना अथवा आठ प्रकारना कर्मोनेो

पुनरपि प्रकारान्तरेण विनयमुपदिशन्नाह—

मूलम्—माँ यं चंडालियं काँसी, बहुयं माँ यं आलवे ।

कालेणं यं अहिर्जित्ता, तँओ झाइँज्ज एगँओ ॥ १० ॥

छाया—

मा च चण्डालीकं कार्षीद्, बहुकं मा च आलपेत् ।

कालेन चाधीत्य, ततो ध्यायेत् एककः ॥ १० ॥

टीका—

‘मा य’ इत्यादि—च शब्दः समुच्चयार्थकः । चण्डालीकं—चण्डः=क्रोध-  
स्तद्वशादलीकं=मृषाभाषणं मा कार्षीत्=मा कुर्यात्, इदमुपलक्षणं मानमायालोभ-  
भयहास्यादीनाम् । उक्तंच—

मुसावाओ उ लोगम्मि, सन्वसाहूहि गरिहिओ ।

अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्जए ॥ ( दशवै. ६ अ. १३ गा. )

छाया—

मृषावादस्तु लोके, सर्वसाधुभिर्गर्हितः ।

अविश्वासश्च भूतानां, तस्माद्मृषा विवर्जयेत् ॥

च=पुनः बहुकं—बह्वेव बहुकम्—अतिशयम् आलजालरूपं मा आलपेत्=मा  
वदेत् । बहुभाषणे बहवो दोषा भवन्ति । उक्तं च—

है । इसी तरह क्रीडाके विषय में भी समझ लेना चाहिये ॥ ९ ॥

दूसरे प्रकार से भी इसी विनयधर्मका सूत्रकार उपदेश करते  
हैं—‘ माय. ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—शिष्यजनों को संबोधित करते हुए सूत्रकार कहते  
हैं कि हे शिष्यो ! तुम ( चण्डालियं माम कासी—चंडालीकं मा चकार्षीत्

अंध करे छे. आ रीते डीडाओना विषयमां पणु समल्ल देवुं जेधओ. ॥ ६ ॥

भील प्रकारथी पणु आ विनय धर्मनो सूत्रकार उपदेश करे छे—  
माय० धत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्यजनोने संबोधन करतां सूत्रकार कहे छे के छे  
शिष्यो ! तमे चंडालियं माम कासी—चंडालीकं मा चकार्षीत् ) कोधना आवेशथी

क्रोध के आवेश से मृषाभाषण मत करो । ( बहुयं माय आलवे-बहुकं माच आलपेत् ) व्यर्थ आलजालरूप वचनोंका उच्चारण मत करो-अनर्थ प्रलाप मत करो-अधिक मत बोलो । ( कालेण य अहिज्जित्ता-कालेन चाधीत्य ) प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय करके ( तओ एगओ झाइज्ज-ततः एकाकी ध्यायेत् ) द्वितीय पौरुषी में एकाकी होकर सूत्रार्थका चिन्तवन करो । उपलक्षण से तृतीय पौरुषी में भिक्षाचयी, एवं चतुर्थी पौरुषी में भण्डोपकारण की प्रतिलेखना के बाद पुनः स्वाध्याय करो । यह बात स्वयं सूत्रकार छाईस वें अध्ययन में कहेंगे ।

भावार्थ—इस सूत्र द्वारा प्रकारान्तर से विनय धर्मका शिष्य-जनों को उपदेश देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यों यदि तुम इस विनय धर्मको पालन करने के अभिलाषी हो तो तुम्हारा यह कर्तव्य है कि तुम क्रोध के आवेशमें आकर कभी भी मृषाभाषण मत करो। क्यों कि इस प्रकार करनेसे विनयधर्मकी पालना नहीं होती है मृषाभाषण के निषेध से उसके साथ-साथ मान, माया, लोभ, एवं हास्यादि कों का भी विनयवान को त्याग कर देना चाहिये। मृषावादादि को त्याग करने का कारण यह है कि इस प्रकार की प्रवृत्ति करने वाला

मृषाभाषणु न करे। ( बहुयं माय आलवे-बहुकं माच आलपेत् ) आणपंपाण इय वयनोनुं व्यर्थ उच्यारणु न करे-अनर्थ प्रलाप न करे-वधारे न ओलो। ( कालेण य अहिज्जित्ता-कालेन चाधीत्य ) प्रथम पौरुषीमां स्वाध्याय करी ( तओ एगओ झाइज्ज-ततः एकाकी ध्यायेत् ) णीण पौरुषीमां ओकाकी थधने सूत्रार्थनुं चिंतवन करे। उपलक्षणुथी त्रीण पौरुषीमां भिक्षा अर्या अने ओथा पौरुषीमां भण्डोपकरणुनी प्रतिलेखना पछी इरी स्वाध्याय करे। आ वात सूत्रकार पोते २६ भा अध्ययनमां कडेशे।

भावार्थ—आ सूत्र द्वारा प्रकारान्तरथी विनय धर्मने शिष्यनोने उपदेश आपतां सूत्रकार कडे छे के छे शिष्यो ! ने तमे आ विनयधर्मनुं पालन करवाना अभिलाषी हो तो तमाईं ओ कर्तव्य छे के तमे कोधना आवेशमां आवी कदी पणु मृषाभाषणु करे नहीं। केमके आ प्रकारे करवाथी विनय धर्मनी पालना थती नथी। मृषाभाषणुना निषेधथी ओनी साथे मान, माया, लोभ अने हास्यादिकने पणु विनयवाने त्याग करी देवे नेछेओ। मृषावादादिकने त्याग करवानुं कारणु आ छे के आ प्रकारनी प्रवृत्ति करवा-



बहुभाषणमुन्मादं, स्वाध्यायध्यानभञ्जनं कुरुते ।  
 अहितमनर्थकरं तद्, भवति च पीडाकरं नितराम् ॥१॥  
 बहुभाषणाद् द्वितीयं, नश्यति तावन्महाव्रतं तस्मात् ।  
 स्यादेव कर्मबन्ध,—स्तस्माद् दीर्घाध्वसंसारः ॥ २ ॥

तर्हि किं कुर्यात् ? इत्याह—‘कालेण.’ इत्यादि । ‘कालेण’—इत्यत्र सप्तम्यर्थे तृतीया; काले=प्रथमपौरुष्यां तु, चकारस्त्वर्थवाचकः, अधीत्य=स्वाध्यायं कृत्वा ततः=तदनु द्वितीयपौरुष्याम् एककः—एकाकी सन् भावतो रागादिरहितः, द्रव्यतो विविकृतशयनासनादिसंस्थः ध्यायेत्—सूत्रार्थं चिन्तयेत् । उपलक्षणमेतत् तृतीयचतुर्थ—पौरुष्योरपि, तथा च—तृतीयपौरुष्यां भिक्षाचर्यं चतुर्थ्यां पुनः स्वाध्यायं कुर्या—दित्यर्थः । वक्ष्यति षड्विंशोऽध्ययने—

साधु साधु नहीं है वह साध्वाभास है । कहा भी है कि—  
 मुसावाओ उलोगम्मि सव्वासाहुहिं गरिहिओ ।

अविस्सासो य भूयाणं तम्हा मोसं विवज्जए । (दशवै० ६ अ. १३ गाथा)  
 यह मृषावाद सर्व—साधुओं अर्थात् तीर्थंकर आदि महापुरुषों द्वारा गर्हित—निन्दित है, दूसरे मृषावादी पर जगत का कोई भी प्राणी विश्वास नहीं करता है, अर्थात् वह सब के लिये अविश्वास्य होता है । इसी प्रकार बहुत बोलने से भी विनय धर्म यथावत् पालित नहीं हो सकता है । क्यों कि इस अवस्था में ऐसे भी कई शब्द निकल जाते हैं जो व्यर्थ होते हैं एवं सुनने वाले के लिये भी कष्टप्रद होते हैं । जो मन में आया सो बोल देना—यह प्रवृत्ति साधु मार्ग की नहीं है । इसमें तो बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है । इसी लिये भाषासमिति एवं वचनगुप्ति

वाणा साधु साधु नथी ते साध्वालास छे. उहुं पणु छे डे—

मुसावओ उ लोगम्मि सव्वासाहु हिं गरिहिओ ।

अविस्सासो य भूयाणं तम्हा मासं विवज्जए । दशवै० ६ अ. १३ गाथा.  
 आ मृषावाद सर्व साधुओं अर्थात् तीर्थंकर आदि महापुरुषोंद्वारा अहित छे. भीज मृषावादी उपर जगतना कोठपणु प्राणी विश्वास करता नथी ते अधाने माटे अविश्वास होय छे. आ प्रकारे अहुं मोलवाथी पणु विनयधर्म यथावत् पालित नथी थछ शकतो. डेभडे अे अवस्थाभां अेवा पणु कोठ शब्द निकणी जाय छे, जे व्यर्थ होय छे, अने सांलगवावाणाने माटे पणु दुःखदायक होय छे. जे मनभां आव्युं ते मोली नाण्युं—आ काम साधुनुं नथी. अेथे तो पूअज सावधानी राखनी पडे छे. आ माटे लाषा



पालने का आदेश है। बहुभाषण में अथवा विना विचार किये भाषण में न तो साधु के मूलगुणरूप इस समिति का ही पालन होता है और न गुप्ति का ही। इसीलिये बहुभाषण में “बहुत दोष है” अन्यत्र भी ऐसा ही कहा है—

बहुभाषणमुन्मादं स्वाध्यायध्यानभंजनं कुरुते ।

अहितमनर्थकरं तत्, भवति च पीडाकरं नितराम् ॥ १ ॥

बहुभाषणात् द्वितीयं नश्यति, तावन्महाव्रतं तस्मात् ।

स्यादेव कर्मबंधस्तस्माद् दीर्घाध्वसंसारः ॥ २ ॥

बहुत आलजालरूप बकवाद करने वालोंके उन्माद रोग हो जाता है। साधु के स्वाध्याय एवं ध्यान में विघ्न पड़ता है—स्वाध्याय ध्यान नष्ट हो जाते हैं। बहुभाषण से अनेक अनर्थ होते हैं। ज्यादा इस विषय में और क्या कहा जाय साधु का इस हालत में द्वितीय सत्य-महाव्रत भी खंडित हो जाता है अतः बहुभाषीके कर्म बहुत बन्धते हैं और वह दीर्घ संसारी होकर संसार में परिभ्रमण करता है।

“कालेण” इस पद से सूत्रकार साधु का क्या कर्तव्य है यह बात दिखलाते हैं। वे कहते हैं कि साधु को प्रथम पौष्पी में स्वाध्याय

समिति अने वचनशुद्धि पाणवानो आदेशे छे. अहु लाषणुमां अथवा विचार कर्या वगरना लाषणुमां न तो साधुना मुणशुणु इय अे समितिनुं पालन थाय छे अने न शुद्धितनुं पणु आ माटे अहु लाषणुमां “घणुा दोष छे” भीलमां पणु तेमज कहुं छे.

बहुभाषणमुन्मादं स्वाध्यायध्यानभंजनं कुरुते ।

अहितमनर्थकरं तत् भवति च पीडाकरं नितराम् ॥१॥

बहुभाषणात् द्वितीयं नश्यति तावन्महाव्रतं तस्मात् ।

स्यादेव कर्मबंधस्तस्मात् दीर्घाध्वसंसारः ॥२॥

आल नलइप वधु अकवाद करवावाणाने उन्माद रोग थध आवे छे. साधुना स्वाध्याय अने ध्यानमां विघ्न पडे छे—स्वाध्याय ध्यान नष्ट थध नय छे. अहु लाषणुथी अनेक अनर्थ थाय छे. आ विषयमां वधु शुं कहेवाय. साधुनुं आ हालतमां भीलुं सत्य महाव्रत पणु अंडित थध नय छे. अेटवे अहुलाषीनां कर्म वधु अंधाय छे. अने ते दीर्घ संसारी अनी संसारमां परिभ्रमणु करे छे.

“कालेण” आ पदथी सूत्रकार साधुनुं शुं कर्तव्य छे आ वात अतावे छे, तेअो कहे छे के साधुने प्रथम पौष्पीमां स्वाध्याय करवाे न्नेअे. पछी

“पढमं पोरिसि सज्झायं बीयं ज्ञाणं झियायई ।

तइयाए भिक्खायरियं पुणो चउत्थीइ सज्झायं ” इति ॥ सू० १० ॥

यदि कथञ्चिदसत्यभाषणं भवेत्तदा तन्न गोपयेदित्याह—‘आहच्च.’ इत्यादि ।

मूलम्—आहच्चं चंडालियं कट्टुं, न निन्दुविज्ज कयाइवि ।

कडं कडेत्तिं भासेज्जां, अकडे नो कडेत्तिं यं ॥११॥

छाया—

कदाचित् चण्डालीकं कृत्वा, न निहनुवीत कदाचिदपि ।

कृतं कृतमिति भाषेत, अकृतं नोकृतमिति च ॥ ११ ॥

टीका—

‘आहच्च’ इत्यादि—कदाचित्=अकस्माद् चण्डालीकं=क्रोधादिवशाद्-  
नृतभाषणं कृत्वा कदाचिदपि—यदा परेण ज्ञातं नोज्ञातं वा तदापि न निहनुवीत=न  
गोपयेत्—अनृतभाषणं मया न कृतमित्यपलापं न कुर्यात् । किं तर्हि ? इत्याह—कृतं  
चण्डालीकादि, कृतमिति=क्रोधादिवशादनृतभाषणं मया कृतमित्येव भाषेत, तथा

करना चाहिये । पश्चात् द्वितीय पौरुषी में रागादिक भावों से रहित  
होकर सूत्रार्थका चिन्तन करना चाहिये । उपलक्षण से तृतीय ‘एवं  
चतुर्थ पौरुषी का ग्रहण हुआ है जिसका भाव इस प्रकार है कि तृतीय  
पौरुषी में वह भिक्षाचर्या करे और चतुर्थ पौरुषी में पुनः स्वाध्याय करे  
इसी बात को इसी सूत्र के छाईस २६ वें अध्ययन में भगवानने कहा है—

पढमं पोरिसि सज्झायं बीयं ज्ञाणं झियायई ।

तइयाएभिक्खा यरिय पुणो चउत्थीइ सज्झायं ॥ इति ॥ सू० १० ॥

अगर किसी कारण वश असत्य बोलाजाय तो उसे छिपावे  
नहीं, इसी बातको कहते हैं—‘आहच्च.’ इत्यादि ।

धीन पौरुषीमां रागादिक लावोथी रहित अनी सूत्रार्थनुं चिंतन करवुं  
जेधये. उपलक्षथी त्रीन अने योथा पौरुषीनुं ग्रहण थयेल छे. जेने लाव  
आ प्रकारे छे के त्रीन पौरुषीमां ते लिखा यर्या करे अने योथा पौरुषीमां  
इरी स्वाध्याय करे. आ वात आन सूत्रना २६मा अध्ययनमां लगवाने कही छे—

पढमं पोरिसि सज्झायं बीयं ज्ञाणं झियायई ।

तइयाए भिक्खायरिय पुणो चउत्थीय सज्झायं इति ॥ सू० १० ॥

आ वातने आ सूत्रना २६ मा अध्ययनमां लगवाने कहुं छे.

जे केधं कारणवश असत्य बोलाधं जय तो अने छुपाववुं नहिं अने  
वात ने कडे छे. आहच्च० इत्यादि.

च-पुनः, अकृतम्=अनाचरितं चण्डालीकादिकं, नो कृतमिति=मृषाभाषणं मया न कृतमित्येव भाषेत । अयं भावः-गुरुशुश्रूषाकारिणोऽपि शिष्यस्य कथंचिदतीचार-संभवे गुरुसंनिधौ तदालोचना करणीया । आलोचना हि-मोक्षमार्गविघातकानाम-नन्तसंसारवर्धकानां माया-निदान-मिथ्यादर्शनशल्यानां निष्कर्षणी, ज्ञानावरणीया-द्यष्टविधकर्ममलापकर्षणी, शुद्धात्मस्वरूपदर्शनी, तच्चातच्चविमर्शनी, अव्याबाध-सुखवर्षिणीति ॥ ११ ॥

(आहच्च-कदाचित्) यदि अकस्मात् (चंडालियं कट्टु-चंडालीकं कृत्वा । क्रोध के आवेश से अकस्मात् झूठ बोला गया हो तो भी उसे (कयावि न निन्दुविज्ज-कदापि न निहनुवीत) कभी भी किसी भी परिस्थिति में छिपाना नहीं चाहिये । (कडं कडेत्ति भासेज्जा-कृतं कृतमिति भाषेत) ऐसा नहीं कहना चाहिये कि मैंने क्रोधादिक के आवेश से असत्य भाषण नहीं किया है-किन्तु ऐसा ही कहना चाहिये कि मेरे द्वारा क्रोधादिक के आवेश से असत्य भाषण अवश्य-अवश्य हुआ है, (अकडं नो कडेत्ति य-अकृतं नो कृतमिति च) और जो क्रोधावेशसे असत्य नहीं बोला गया हो तो ऐसा भी नहीं कहना चाहिये कि मैंने असत्य भाषण किया है ।

भावार्थ-यदि क्रोधादिक कषायों के आवेश से सहसा असत्य भाषण हो भी जाय तो उसे यह नहीं कहना चाहिये कि मैंने असत्य भाषण नहीं किया है । जैसे रक्त से दूषित वस्त्र रक्तसे धोने

आहच्च-कदाचित्-कदाचि यदि-अकस्मात् चंडालियं कट्टु-चंडालीकं कृत्वा क्रोधना आवेशथी अकस्मात् अहुं ओदी जवायुं डोय तो पणु तेने कयावि न निन्दु-विज्ज-कदापि न निहनुवीत कदी पणु डोय पणु परिस्थितिमां छुपाववुं नडीं नेधये. कडं कडेत्ति भासेज्जा-कृतं कृतमिति भाषेत येम न कडेवुं नेधये के में क्रोधा-दिकना आवेशमां असत्य-लाषणु करेल नथी-परंतु येवुं कडेवुं नेधये के भाराथी क्रोधना आवेशमां असत्य लाषणु जइराजइर थयुं छे. अकडं नो कडे-त्ति य-अकृतं नो कृतमिति च अने ने क्रोधावेशना लीधे असत्य न ओलायुं डोय तो येवुं पणु न कडेवुं नेधये के में असत्य लाषणु कथुं छे.

मतलम आनो ये छे के ने क्रोधादिक कषायेना आवेशथी सहसा असत्य-लाषणु थधं नय तो येवुं न कडेवुं नेधये के में असत्य-लाषणु नथी कथुं. ने रीते दोहीथी परउयेवुं दूषित वस्त्र दोहीथी धोवाथी शुद्ध थतुं

गुरोरभिप्रायेणैव सर्वं कर्त्तव्यमित्याह—

मूलम्—मां गलियस्सेव कंसं, वयणमिच्छे पुणो पुणो ।

कंसं वं दंद्दुमाइन्ने<sup>१</sup>, पावंगं परिवर्ज्जए ॥१॥

छाया—

मा गलिताश्व इव कशां, वचनम् इच्छेत् पुनः पुनः ।

कशाम् इव दृष्ट्वा आकीर्णः, पापकं परिवर्जयेत् ॥ १२ ॥

टीका—

‘मा गलियस्सेव.’ इत्यादि—इव=यथा, गलिताश्वः=अविनीततुरङ्गः,  
पुनः पुनः कशां=कशाप्रहारं वाञ्छति, तथा पुनः पुनः वचनं=प्रवृत्तिनिवृत्तिपरं  
गुरोरुपदेशं मा इच्छेत् । उपदिष्टार्थमेव पुनः पुनर्वक्तुं गुरवे परिश्रमो न देय  
इति भावः ।

पर शुद्ध नहीं होता, उसी प्रकार झूठ की शुद्धि पुनः झूठ बोलने से  
नहीं होती है यह विश्वास रखना चाहिये । फलितार्थ यह है कि वास्त-  
विक स्थिति को साधु के लिये छुपाना नहीं चाहिये, और अवास्तविक  
स्थिति को कल्पना के तूलिका से सजाकर प्रकट नहीं करना चाहिये ।  
शिष्य चाहे गुरुजन की शुश्रूषा करनेवाला भी क्यों न हो तो भी उसे  
कथंचित् अतीचार लगने पर गुरु के समीप आलोचना अवश्य करनी  
चाहिये । कारण कि आलोचना से आत्मा की शुद्धि होती है एवं मोक्ष-  
मार्ग के विघातक तथा अनंत संसार के वर्धक ऐसे माया, मिथ्या एवं-  
निदान इन तीन शक्तियों का अभाव होता है । आत्मा को मलिन करने-

नथी अेव रीते णुंणी शुद्धि इरी णुं षोडवाथी थती नथी, आ विश्वास  
राभवो णेधं अे. आनो अर्थ अे छे के वास्तविक स्थितिने साधुअे कही पणु  
छुपावपी न णेधंअे, अने अवास्तविक स्थितिने कल्पनाथी सबवीने प्रगट न  
करवी णेधंअे. शिष्य गुरुजननी शुश्रूषा करवावाणो पणु केम न डोय तो  
पणु तेने कथंचित् अतीचार लागवाथी गुंणी पासे तेणु आलोचना जर  
करवी णेधंअे. कारण के आलोचनाथी आत्मानी शुद्धि थाय छे अने मोक्ष-  
मार्गना विघातक तथा अनंत सागरने वधारनार अेवां माया, मिथ्या अने  
निदान आ त्रणु शक्त्येनो अलाव डोय छे. आत्माने मलिन करवावाणा अष्ट-  
विध कर्म्मोना आ आलोचनाना प्रलावथी विनाश थाय छे. आत्मिक शुद्ध

वाले अष्टविध कर्मोंका इस आलोचना के प्रभाव से विनाश होता है। आत्मिक शुद्ध स्वरूप के दर्शन करानेवाली यह आलोचना है और तत्त्व एवं अतत्त्व के विवेक को जाग्रत करती हुई अव्याबाध सुख को प्रदान करनेवाली यही आलोचना है ॥ ११ ॥

शिष्यको सभी काम गुरुमहाराजके अभिप्रायसे ही करना चाहिये, सो दिखलाते हैं—‘ मा गलियस्सेव०’ इत्यादि।

अन्वयार्थ—( गलियस्सेव कसं—गलिताश्व इव कशां ) जिस प्रकार अविनीत घोड़ा वारंवार कशा ( चाबुक ) के प्रहार की इच्छा करता है, उसी प्रकार ( पुणो पुणो मा वयणमिच्छे—पुनः पुनः मा वचनं इच्छेत् ) पुनः पुनः प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप गुरुके आज्ञा की शिष्य को वांछा नहीं करनी चाहिये, अर्थात्—उपदिष्ट अर्थको ही बारबार कहलवाने के लिये गुरु महाराज को कष्ट नहीं देना चाहिये। किन्तु ( आइन्ने कसं व दट्टुं—आकीर्णः कशाम् इव दृष्ट्वा ) जिस प्रकार आकीर्ण अर्थात् जातिमान् सुशिक्षित विनीत घोड़ा चाबुक को देखकर अपनी अविनीतता का परिहार कर देता है, उसी तरह विनीत शिष्य भी ( पावगं परिवज्जए—पापकं प्रतिवर्जयेत् ) गुरु के इंगित आकार को जानकर पापमय अनुष्ठान का परित्याग करे।

इस श्लोकका भावार्थ शत्रुमर्दन राजा के दृष्टान्त से कहते हैं— वह इस प्रकार है—

स्वइपुं दर्शनं क्रावनां आ आलोचना छे. अने तत्त्व तेमज् अतत्त्वना विवेकने जाग्रत करीने अव्याबाध सुख आपनारी आ ज् आलोचना छे. ॥११॥

शिष्ये अधां काम गुरुमहाराजना अभिप्रायथी ज् करवां जेधये, ते अताववामां आवे छे. ‘ मा गलियस्सेव०’ इत्यादि.

गलियस्सेव कसं—गलिताश्व इव कशां जे प्रकारे घोड़ा वारंवार चाबुकना प्रहारनी इच्छा करे छे जे प्रकारे पुणो पुणो मा वयणमिच्छे—पुनः पुनः मा वचनं—इच्छेत् इरी इरी प्रवृत्तिनिवृत्तिरूप गुरुनी आज्ञानी शिष्ये इच्छा न करवी जेधये—अर्थात् उपदिष्ट अर्थने वारंवार कहेवाववा भाटे गुरुमहाराजने कष्ट न आपुं जेधये. परंतु आइन्ने कसं व दट्टुं—आकीर्णः कशाम् इव दृष्ट्वा जे प्रकारे आकीर्ण अर्थात् जातिमान् देखवाने कहेवायेद घोड़ा चाबुकने जेध पौतानी अविनीतताने त्याग करे छे जे रीते विनीत शिष्य पणु पावगं परिवज्जए—पापकं प्रतिवर्जयेत् गुरुना इंगित—आकारने जे पापमय अनुष्ठानने परित्याग करे.

आ श्लोकने भावार्थ शत्रुमर्दनना दृष्टान्तथी समजववामां आवे छे, जे आ प्रकारे छे.





स च तुरङ्गमः कशया पुनः पुनस्ताडितोऽपि नेच्छति शत्रुमभिगन्तुम् । अत्रान्तरे शत्रु-  
सैनिका अस्य सबलानपि सैनिकान् अनाथानिव अशरणानिव मन्वाना अचिरेणैव  
विजित्य निजवाद्यं वादयामासुः, शत्रुमर्दनः स्ववाहनेन गलिताश्वेन पराजितः श्री-  
हतो यावत्पलायितुं वाञ्छति, तावत् “गृह्यतां गृह्यताम्”-इति वदन्तः शत्रुसैनिकास्तं  
निग्रहीतुं पश्चाद्वावमानाः शत्रुमर्दनं निगृह्य लौहपिञ्जरे स्थापितवन्तः । एवं गलिता-  
श्वसदृशः शिष्यो महतेऽनर्थाय भवति । किं तर्हि कुर्यादित्याह-कशां-‘चाबुक’  
इति भाषाप्रसिद्धां दृष्ट्वा, अकीर्णः=जात्याश्वः, विनीताश्व इव शिष्यो गुरोरिङ्गि-  
तमाकारं दृष्ट्वा पापकं=पापानुष्ठानम्-अविनीततामित्यर्थः, परिवर्जयेत्=सर्वथा परि-  
हरेत् । अयं भावः-यथा जात्याश्वः कशां दृष्ट्वाश्चारूढस्याशयं विज्ञाय कशाताडनं  
घोडे को चाबुकसे ताड़ना करता था वह घोड़ा त्यों त्यों पीछे हटता  
जाता था और शत्रु के सन्मुख जाने में अचकचाताथा। इसके बाद शत्रु  
सैनिकों ने इस राजा के सैनिकोंको अशरण एवं अनाथ जैसा मानकर  
बहुत जल्दी पराजित कर दिया। और अपनी विजयकी ढुंढुंभी बजा दी।  
शत्रुमर्दन नरेश ज्यों ही अपने को उस अड़ियल घोडे की वजह से  
पराजित समझकर एवं श्रीविहीन होकर युद्धभूमि से पलायन करने को  
तैयार हुआ कि इतने में ही “ इसको पकड़ लो पकड़ लो ” इस प्रकार  
बोलते हुए शत्रुसैनिकों ने उसका पीछा किया और उसको पकड़कर  
उन्होंने लौहनिर्मित एक पाँजर के अन्दर बन्द कर दिया।

इस कथा से यह सारांश निकलता है कि गलिताश्व-अड़ियल  
घोडे की तरह अविनीत शिष्य भी महान् अनर्थकारी होता है। तथा  
जिस प्रकार विनीत घोड़ा अपने स्वामी के अभिप्रायानुसार चलता

वार तेने इटकारवानुं शङ् क्युं. परंतु गमे तेटला आबुक पडवा छतां पणु  
घोडे पाछणज् उकतो गये, शत्रुनी सामे जवामां ते व्यकतो उतो. आ  
परिस्थितिनेो लाल लक्ष शत्रु सेनाये शत्रुमर्दन राजना सैन्यमां डाडाकार वर्तावी  
हीधो अने शत्रुओये छत भेणवी पोताना विनयनां वानां वगाड्यां. शत्रुमर्दन  
राजये, आ पोताना अडीयल घोडाने कारणे पराजित थवुं पडयुं छे ते नाली  
युद्धभूमिथी पलायन करवानी तैयारी करी अटलामां “आने पकडी ल्यो, पकडी  
ल्यो ” आ प्रकारे ओलता शत्रुसैनिको तेनी पासे आवी पडोअ्या. अने तेने  
पकडी लोडाना मज्जुत सणीयावाणा पांजरामां पुरी हीधो.

आ वार्ताथी अे सारांश निकणे छे के गलिताश्व-अड़ियल घोडानी  
भाङ्क अविनीत शिष्य पणु महान् अनर्थकारी होय छे. जे प्रकारे विनीत



विनैव तदभिप्रायानुसारं चेष्टते, तथा सुशिष्योऽपि गुरोरिङ्गिताकारं दृष्ट्वा तदाशयं विज्ञाय “गुरोर्वचनायासो माभूदिति”—वचनेनाप्रेरित एव तदभिप्रायानुसारं कुर्यात् ।

अत्र मणिनाथदृष्टान्तः—तथाहि—

आसीदजितनाथजिनशासने बङ्गदेशे रङ्गपुरं नाम नगरम् । तत्र प्रजापालनतत्परः स्वजनपदहितकरः प्रशान्तमानसः सुजनहंसमानसः समाश्रितनीति-सरणिः सकलसद्गुणसरोजरणिर्मणिनाथनामको नृपतिः । स चैकदा दुरात्मभिः प्रबलरिपुभिः परितो वेष्टितां स्वनगरीमालोक्य मन्त्रिभिः सह विचारितवान्—भो है उसी प्रकार सुशिष्य भी गुरु के इंगित आकार को समझ कर उनकी आज्ञा के अनुसार चलता रहता है ।

इस विषय में मणिनाथराजा का दृष्टान्त है और वह इस प्रकार है—

द्वितीय तीर्थंकर श्री अजितनाथ स्वामी के समय में बंगाल देश के अन्दर रंगपुर नामका एक नगर था । वहाँ के नरेश का नाम मणिनाथ था । यह प्रजापालन करने में सदा तत्पर रहा करता था । इससे देश भर में आनन्द मंगल छा रहा था । राज्यकार्य से इसका मन कभी भी कायर नहीं बनता था । सुजनरूपी हंसों को रमने के लिये यह मानसरोवर जैसा माना जाता था । राजनीति के पालन करने में यह सर्वदा दत्तचित्त रहा करता था । सद्गुणरूपी कमलों को विकसित करने के लिये यह सूर्य जैसा था । एक दिन की बात है कि इसकी नगरी को इसके प्रबल शत्रु ने आकर घेर लिया । राजाने यह देखकर मंत्रियोंके

घोडो पोताना भादीकना कडेवा सुज्ज्ण आदे छे, ओ न् रीते सुशिष्य पणु गुरुना धि गित आकारने समञ्ज ऐमनी आज्ञा प्रभाणु आदतो रहे छे.

आ अंगे मणिनाथ राजानुं दृष्टान्त छे जे आ प्रकारनुं छे.

धीज्ज तीर्थंकर श्री अजितनाथ स्वामीना समयमां बंगाल देशमां रंगपुर नामना ऐक नगरमां मणिनाथ नामना राज्ज्ण राज्ज्ण करता हुता. जे प्रज्ज्ण पालन करवामां सदा तत्पर रहेनार हुता. आथी देशभरमां आनंद मंगल वरताछि रहेल्ल हुतो. राज्ज्णकार्यथी ऐनुं मन कही पणु कायर बनतुं नही. सुजनरूपी हुंसोने रमवा भाटे ते मानसरोवर जेवा गणुता हुता. राज्ज्णनीतिनुं पालन करवामां ते सर्वदा दत्तचित्त रहेता हुता, सद्गुणरूपी कमलोंने विकसित करवा भाटे ते सूर्य जेवा हुता. ऐक दिवसनी वात छे के ऐना नगरने ऐना प्रभण शत्रुऐ, सैन्यसाथे आवी घेरी दीधुं. राज्ज्णऐ

भो ! मन्त्रिणः ! किमधुना करणीयं, प्रबलवैरिणश्चतुर्गिणी सेना चतुर्षु खलु भागेषु नगरी-मावेष्ट्य तिष्ठति मन्त्रिण ऊचुः-प्रभो ! अलमनया चिन्तया, वयमल्पसंख्यका अपि भवदीयतेजः समुपलभ्य शत्रुबलविजये प्रखरतरशक्तिशालिनो भवामः । भवत्प्रतापादेव सर्वं रिपुबलं प्रणष्टं भविष्यति । देव ! जात्याश्वमारुह्य भवान् सन्नद्धः सन्नग्रतः शत्रुमभिसरतु, वयमपि सन्नद्धाः सन्तो भवन्तमनुगच्छामः । एवं विचार्य स्वकीयसेनापरिवृतः स मणिनाथो योद्धुं निःसृतः । अल्पबलं मणिनाथ-मवलोक्य शत्रुसैनिकाः केचिदसिचर्महस्ताः केचिद्बल्लहस्ताः केचिदनुर्बाणधराः

साथ विचार किया, बोला-हे मंत्री महाशयो ! कहो अब क्या करना चाहिये । देखो, प्रबलशत्रुकी चतुरंगिणी सेना नगरी को चारों ओर से घेर कर पड़ी हुई है । सुनकर मंत्रियोंने कहा प्रभो ! चिन्ता मत करो । हम सब लोग आपके प्रबल तेज से उद्दीप्त होकर शत्रुसेना को पराजय करने में प्रखर शक्तिशाली होंगे । आपके प्रताप से ही समस्त रिपुदल प्रणष्ट होगा । स्वामिन् ! सजधज कर आप जात्याश्व पर सवार होकर पहिले से ही शत्रु के सन्मुख जाइये । हम लोग भीसन्नद्ध होकर आपके पीछे-पीछे आते हैं । इस प्रकार विचार कर मणिनाथ नरेश सेना से परिवृत होकर युद्ध करने के लिये निकल पडे । अल्पबलवाले नरेश को देखकर शत्रु के सैनिकोंने उसे घेर लिया । सैनिकों में किन्हीं-किन्हीं के हाथों में तलवारें थीं । किन्हीं-किन्हीं के हाथों में भाले थे । किन्हीं-किन्हीं के हाथों में धनुष एवं बाण थे । किन्हीं-किन्हीं के हाथों में

आ ळणी मंत्रीओ साथे विचार कुर्यो, मंत्रीओने उदेशीने तेणे कहुं-हे मंत्रि-महाशयो ! कडो उवे शुं करवुं जेधये. प्रणण शत्रुनी चतुरंगिणी सेना नगरने चारे तरकथी घेरे घालीने पडेल छे. आ प्रकारनुं राब्दनुं कडेवुं सांलणी मंत्रियोओ कहुं, प्रलो ! चिंता न करे. अओ अधा आपना प्रणण तेजथी उद्दीप्त थध शत्रु सेनानो पराजय करवामां प्रणर शक्तिशाणी थधशुं. आपना प्रतापथी शत्रुनुं सैन्य डारी नशे. स्वामिन् ! आप तैयार थध ळत्याश्व पर सवार थध पडेलान् शत्रुओनी सन्मुख पडोचो, अओ पण तैयार थध आपनी पाछण पाछण आवीओ छीथे. आ प्रकारे विचार करी मणिनाथ राब्द सेनाथी परिवृत थध युद्ध करवा माटे निकणी पड्या. थोडा ळणवाणा राब्दने जेध शत्रुसेनाओ तेमने घेरी लीधा. सैनिकोमां कोध कोधना डथमां तरवार डती, कोधना डथमां बालां डतां. कोधनी पासे धनुष आणु डतां. कोधना

केचिद् यष्टिधारिणः केचित्तोमरकरा अनेकानेकशस्त्रास्त्रधारिणः परितो मणिनाथं वेष्टितवन्तः । एवं विविधसंकटेषु समुपस्थितेषु स मणिनाथस्तेन जात्याश्ववाहनेन शत्रुसैनिकरचितविविधव्यूहेषु मृगेषु सिंह इव निःशङ्कः प्रविश्य सर्वानुचरैः सहाग्रतो धावमानः शत्रुसैनिकेषु विजयं प्राप्तवान् । एवं सुशिष्यः स्वगुरुमाराधयन् स्वपर-कल्याणाय भवति ॥ १२ ॥

पुनरविनीतविनीतयोराचरणमाह—

मूलम्—अणासंवा थूलवया कुसीला, मिउंपि चंडं पकरंति सीसा ।

चित्तार्णुया लंहु दक्खोववेया, पसार्यं ते हूँ दुरासंयंपि ॥१३॥

छाया—

अनाश्रवाः स्थूलवचसः कुशीलाः, मृदुमपि चण्डं प्रकुर्वन्ति शिष्याः ।

चित्तानुगा लघु दाक्ष्योपपेताः, प्रसादयन्ति ते हूँ दुराशयमपि ॥ १३ ॥

लकडियां थीं । किन्हीं—किन्हीं के हाथों में तोमर जाति के शस्त्र थे । इस प्रकार अस्त्र एवं शस्त्रों से सुसज्जित उस शत्रुसेना ने चारों ओर से मुझे घेर लिया है, यह देखकर नरेश ने अपने उस घोड़ेको उस सेना के रचित विविध प्रकार के व्यूह में आगे बढ़ाया । जिस प्रकार मृगों के टोले में निःशंक होकर सिंह घुस जाता है उसी प्रकार मणिनाथनरेश भी उस घोड़े पर बैठे हुए उस शत्रु की सेना में घुस पड़े और अपनी एवं अपने अनुचरों की उनसे रक्षा करते हुए आगे बढ़ते गये । शत्रु-सेना भी इनसे ज्यों-ज्यों ये आगे बढ़ते जाते थे परास्त होती जाती थी । इस प्रकार शत्रुसेना को पराजित कर मणिनाथ ने अपनी विजय-पताका वहाँ फहराई । इसी प्रकार सुशिष्य भी गुरु महाराज की आज्ञा

हाथमां लाडडीओ हती, डोडना हाथमां तोमर नामनां शस्त्र हतां. आ प्रकारना शस्त्र-अस्त्रथी सुसज्ज ओवी शत्रुसेनाओ मने घेरी लीधेद छे, ओपुं जेध मण्डीनाथ राजओ पोताना घोडाने ओ सेनाओ रथेला व्यूडनी वर्ये आगण वधार्यो. जे रीते मृगोना टोणाभां निःशंक थनी सिंड धूमतो डोय, आ रीते शत्रुसेनानी वर्ये घुसी जेध पोतानुं अने पोताना सैनिकोनुं रक्षणुं करतां करतां आगण वधवा मांडयुं. आथी शत्रुसेनामां लंगाणु पडयुं. आ प्रकारे शत्रुसेनाने पराजित करी राज मण्डीनाथे पोतानी विजयपताका

टीका—

‘अणासवा’ इत्यादि—अनाश्रवाः=अनाज्ञाकारिणः, उच्छृङ्खलत्वात्, स्थूलवचसः=अविचारितभाषिणः, अभिमानित्वात्, कुशीलाः=कुत्सिताचारवन्तः दुष्टस्वभावा उभयलोकभयरहितत्वादित्यर्थः । शिष्याः मृदुमपि=कोमलहृदयमपि गुरुं, चण्डं=सक्रोपं प्रकुर्वन्ति । पूर्वार्धेनाविनीतशिष्याचरणं प्रदर्शितम् ।

का आराधन करता हुआ स्व और पर का कल्याण करनेवाला होता है ॥ १२ ॥

फिर भी सूत्रकार अविनीत एवं विनीत के स्वरूप को कहते हैं—  
‘अणासवा०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(अणासवा-अनाश्रवाः) अविनीत होने से आज्ञानुसार नहीं चलने वाले (थूलवया-स्थूलवचसः) अभिमानी होने से बिना विचारे बोलनेवाले, (कुशीला-कुशीलाः) इहलोक एवं परलोक के भय से रहित होने के कारण दुष्ट स्वभाववाले ऐसे (सीसा-शिष्याः) शिष्य (मिउंपि-मृदुमपि) कोमल हृदयवाले गुरु को भी (चंडं पकरन्ति-चंडं प्रकुर्वन्ति) कोपयुक्त करते हैं । एवं जो शिष्य (चित्ताणुया-चित्तानुगा) आचार्य महाराजकी आराधना तप एवं संयम की हेतु होती है ऐसा जानकर आचार्य महाराज की मनोवृत्तिका अनुसरण करनेवाले होते हैं अर्थात् उनके आज्ञा के आराधक होते हैं, तथा (दक्खोववेया-दाक्ष्योपपेताः) गुरु महाराज की सुख शाता के अभिलाषी होने से

इरकावी आ प्रकारे सुशिष्य पणु गुरु महाराजनी आज्ञानुं आराधन करतां पोतानुं अने धीळनुं कट्याणु करवावाणा होय छे. ॥१२॥

सूत्रकार वधुभां अविनीत अने विनीतना स्वरूपने कडे छे. अणासवा० इत्यादि अन्वयार्थ—अणासवा-अनाश्रवाः अविनीत अनवाधी आज्ञानुसार न चालवावाणा थूलवया-थूलवचसः अलिमानी होवाधी वगर विचारुं होलवावाणा कुशीला-कुशीलाः आलोड अने परलोडना लयधी रहित होवाना कारणे दुष्ट स्वभाववाणा अवा शिष्य कोमण हृदयवाणा गुरुने पणु कोप युक्त करे छे. अथवा ने सीसा-शिष्याः शिष्य मिउंपि-मृदुमपि। कोमण हृदयवाणा गुरुने पणु चंडं पकरन्ति-चंडं प्रकुर्वन्ति कोप युक्त करे छे. आचार्य महाराजनी आराधना तप अने संयमना हेतुधी होय छे अतुं लक्ष्मी आचार्य महाराजनी मनोवृत्तिनुं अनुसरण करवावाणा होय छे, अर्थात् अनेमनी आज्ञाना आराधक होय छे तथा दक्खोववेया-दाक्ष्योपपेताः गुरु महाराजनी सुखशाताना अलिलाषी

અત્ર ચણ્ડશિષ્યદૃષ્ટાન્તઃ, તથાહિ—

एकः सरलहृदयः सद्यस्तपस्वी तेजस्वी रत्नत्रयसम्पन्नः कोमलान्तःकरणः सुमद्रनामको वृद्धाचार्य आसीत् । तस्यातिविद्वेषी गुरुच्छिद्रान्वेषी प्रचण्ड-चतुराई से युक्त होते हैं वे शिष्य (दुरासयंपि-दुराशयं अपि) कुपित भी अपने गुरुमहाराज को (हु) निश्चय से (लहु-लघु) शीघ्र ही (पसायए-प्रसीदयन्ति) प्रसन्न करते हैं ।

अविनीत शिष्य का आचरण चण्ड अर्थात् क्रोधी शिष्य के दृष्टान्त से वर्णन किया जाता है—

एक वृद्ध आचार्य थे । जिनका नाम सुभद्र था । हृदय इनका कषाय निर्मुक्त होने से बहुत ही सरल था । और दयालु थे । वे बहुत ही अधिक तपस्या किया करते थे, अतः “तपस्वी” इस नाम से प्रसिद्ध थे । जैसे ये तपस्वी थे वैसे ही ये तेजस्वी भी थे । इसी से रत्नत्रय से सुशोभित इनका अन्तःकरण बना हुआ था । आर्जव (सरलता) धर्मकी प्राप्ति हो जाने से जो मनमें एक प्रकार की नरमाई आजाती है उसका नाम कोमलता है । यह कोमलता इनके अन्तःकरण में पूर्णतया भरी हुई थी । इनका एक शिष्य था । इसका नाम चण्डथा । यह यथा नाम तथा गुणवाला था । जितने गुरु महाराज कोमल परिणामी थे उतना ही अधिक यह कठोर था । अपने गुरु महाराज के

હોવાથી ચતુરાઈથી યુક્ત હોય છે તે શિષ્ય દુરાસયંપિ-દુરાશયંઅપિ ક્રોધાયમાન થયેલા પોતાના ગુરુ મહારાજને હુ નિશ્ચયથી લહુ-લઘુ જલ્દી પસાયએ-પ્રસીદયન્તિ પ્રસન્ન કરે છે.

અવિનીત શિષ્યનું આચરણ ચંડ અર્થાત્ ક્રોધી શિષ્યના દૃષ્ટાંતથી વર્ણન કરવામાં આવે છે.

એક વૃદ્ધ આચાર્ય હતા, જેમનું નામ સુભદ્ર હતું. એમનું હૃદય કષાય નિર્મુક્ત હોવાથી બહુજ સરળ હતું અને દયાળુ હતા. તેઓ ખુબ અધિક તપસ્યા કર્યા કરતા હતા. જેથી તપસ્વી નામથી પ્રસિદ્ધ હતા. જેવા એ તપસ્વી હતા એવા એ તેજસ્વી પણ હતા. તેજસ્વીપણાને લીધે રત્ન-ત્રયથી સુશોભિત એમનું અંતઃકરણ હતું. આર્જવ (સરલતા) ધર્મની પ્રાપ્તિ થઈ જવાથી જે મનમાં એક પ્રકારની નરમાઈ આવી જાય છે, એનું નામ કોમળતા છે. આ કોમળતા એમના અંતઃકરણમાં પૂર્ણતયા ભરી હતી. એમને એક શિષ્ય હતો જેનું નામ ચણ્ડ હતું. તે યથા નામ તથા ગુણવાળો હતો. જેટલા ગુરુ મહારાજ કોમળ પરિણામી હતા એટલા જ એ કઠોર હતો. પોતાના ગુરુ

श्रण्डनामकः शिष्यो मिलितः । अथैकदा भिक्षाचर्या गच्छतस्तस्याचार्यस्य मार्गेऽ-  
कस्माद्ज्ञानतो मृतमण्डूकलेवरोपरि चरणतलं संलग्नम् । तदनुगतोऽसौ चण्डस्तदानीं-  
गुरुमब्रवीत्-अहह ! भवता चरणाघातेन मण्डूको मारितः, तदा गुरुः शिष्यवचनं श्रुत्वा  
दुःशीलोऽयमिति मत्वा समतामवलम्ब्य मौनमास्थाय स्वस्थानमागत्य स्वाध्याय-  
ध्यानसंलग्नो जातः । तदानीं चण्डेन मनसि विचारितम्-मामयं प्रतिदिनं प्रतिक्षणं  
ग्रहणासेवनाशिक्षायां प्रेरयति-मा प्रमाद्यताम्, मा प्रमाद्यताम् । इति कार्यभारं

छिद्रोंका अन्वेषण करना ही एक उसका काम था । इसी से गुरुमहाराज  
जैसे परमोपकारी के साथ भी यह सदा अपनी ब्रह्म भरी दृष्टि रखा  
करता था । एक दिन की बात है कि जब गुरु महाराज स्वयं गोचरी के  
लिये जा रहे थे-तब मार्ग में इनका पैर एक मृतक मण्डूक के कलेवर  
के ऊपर अनजान से पड़ गया । साथ में यह क्रोधी शिष्य भी था ।  
जो गुरुमहाराज के पीछे-पीछे चल रहा था । उसने ज्यों ही यह देखा,  
सहसा बोल उठा कि गुरु महाराज आप के पैर के आघात से मंडूक की  
विराधना हुई है । इस प्रकार शिष्य का वचन सुनकर और यह दुःशील  
है ऐसा जानकर समता का अवलंबन करके चुपचाप गुरु महाराज अपने  
स्थान पर वापिस लौट आये और वहाँ आकर स्वाध्याय एवं ध्यान में  
लीन हो गये । ऐसा देखकर उस समय चंड-(क्रोधी शिष्य ) ने मनमें  
विचार किया-देखो गुरु महाराज तो मुझे प्रतिदिन एवं-प्रतिक्षण  
“ प्रमाद मत करो, प्रमाद मत करो ” इस प्रकार से ग्रहण शिक्षा और

महाराजना छिद्रोंका अन्वेषण करवुं ओ न ओनुं काम हुतुं । ओथी गुरु  
महाराज नेवा परमोपकारीना साथे पणु सदा पोतानी द्वेशलरी दृष्टी राभ्या  
करतो हुतो । ओक द्विवसनी वात छे के, न्यारे गुरुमहाराज पोते गोचरी  
भाटे नर्ध रह्या हुता, त्यारे मार्गमां तेभनो पण ओक भरेदा देडकाना  
कलेवर उपर अब्बाणुथी पडी गयो । ते क्रोधी शिष्य पणु साथे हुतो ने गुरु  
महाराजनी पाछण पाछण आबतो हुतो न्यारे तेणु आ ओयुं तो तुर्तन  
पोली उठयो के गुरु महाराज आपना पगना आघातथी देडकानुं मृत्यु थयुं  
छे । आ प्रकारनां शिष्यनां वचन सांलणीने अने ते दुःशील छे, तेवुं न्बाणीने  
समतानुं अवलंबन करीने गुरु महाराज चुपचाप पोताना स्थान उपर पाछा  
करी गया । अने त्यां आवीने स्वाध्याय तेभन ध्यानमां लीनअनी गया । आवुं  
नेध अन्डे ( ते क्रोधी शिष्ये ) मनमां विचार कर्यो । न्युओ गुरु महाराज तो  
मने प्रतिदिन तेभन प्रतिक्षण “ प्रमाद न करो, प्रमाद न करो ” आ प्रका-



दत्त्वाऽनेन विश्रामाय मह्यं समयो न प्रदीयते, अद्य तु स्वयमेव प्रमादवशं गतः । प्रतिक्रमणसमये सायंकाले सर्ववैरनिर्यातनं करिष्यामि । तदनु सायंकाले दैवसिक-प्रतिक्रमणे कृते सति स चण्डो वन्दन समये श्रावकसंघसमक्षे ब्रवीति-गुरो ! मण्डूकविराधनायाः प्रायश्चित्तं कथं न गृह्यते, एवं पुनः पुनः शिष्येणोक्तः सन् गुरुः क्रोधवशेन तं शिष्यं ताडयितुं सवेगमुत्थितो यावत् तदभिमुखं गच्छति ताव-दुपाश्रये तमसि पाषाणमयस्तम्भे संघट्टितं तस्य शिरः स्फुटितम् । तदाऽऽर्तध्यान

आसेवन शिक्षा देते रहते हैं । तथा मेरे ऊपर इतना अधिक कार्यभार रख दिया है कि जिससे मुझे विश्राम करने का भी समय नहीं मिलता है । और आप स्वयं प्रमाद का सेवन करते हैं । आज सायंकाल के समय प्रतिक्रमण करने के अवसर पर मैं उनसे समस्त वैर भाव का बदला लूंगा । इस प्रकार विचार कर उसने सायंकाल के समय प्रतिक्रमण कर चुकने पर वन्दना के समय श्रावकसंघ के समक्ष गुरुमहाराज से कहा कि हे गुरो ! आज आपने मण्डूक की विराधना का प्रायश्चित्त क्यों नहीं लिया । शिष्य की इस बात को गुरु महाराज ने लक्ष्य में नहीं दिया । अतः शिष्य को बुरा मालूम दिया और ईर्ष्यावश उसने फिर से वही बात बारंबार कही । गुरुमहाराज को सुनकर क्रोध का आवेश हो आया । इससे वे उस शिष्य को मारने के लिये खड़े हुए और उसकी तरफ आगे बढ़े । बीच में उस उपाश्रय में एक पाषाण का स्तम्भ था

रथी अणु शिखा अने आसेवन शिक्षा आपे छे अने मारा उपर अेटले। अधिक कार्यभार राण्ये छे के जेथी मने विश्राम करवाने समय भणतो नथी, अने पोते प्रमादनुं सेवन करे छे. आज सांजना वणते प्रतिक्रमण करवाना अवसर उपर हुं तेमनाथी समस्त वैरभावने अटले लक्षि. आ प्रकारे विचार करी तेणु सायंकाणनुं प्रतिक्रमण करी लीधा पछी वंदनाना समये श्रावक संघनी समक्ष गुरु महाराजने कहुं के हे गुरु ! आज आपे हेउकानी विराधनानुं प्रायश्चित्त केम न लीधुं ? शिष्यनी आ वातने गुरु महाराजे लक्षमां लीधी नही आथी शिष्यने भराण लाग्युं अने ईर्ष्यावश इरीथी तेने ते वात वारंवार कही. गुरु महाराजे सांलणीने तेमना मनमां कोधने आवेश आवी गयो जेथी ते पोताना शिष्यने मारवा उला थया अने तेनी तरइ आगण वध्या, वचमां ते उपाश्रयमां अेक पत्थरने स्तंभ हतो जे अंधकार होवाना कारणु हेभवामां आवतो न हतो ते स्तंभ साथे



वशगतोऽसौ वृद्धाचार्यः शरीरं त्यक्त्वा सर्पदेहं प्राप्तवान् । स च विषमविषधरो नाम्ना चण्डकौशिकः सर्पो जातः । एवं चण्डशिष्यवदविनीतशिष्या मृदुमपि गुरुं प्रकोपयन्ति, दुर्गतिमपि प्रापयन्ति ।

अथ विनीतशिष्याचरणं प्रदर्शयति—‘चित्ताणुया’ इत्यादि । चित्तानुगाः= आचार्यमनोवृत्त्यनुसरणशीलाः, आचार्याराधनस्य तपःसंयमहेतुत्वात्, दाक्ष्योपेताः—दाक्ष्यं=चातुर्यं तेनोपेताः=युक्ताः, गुरुशाताभिलाषित्वात्, ते शिष्याः हु=निश्चयेन, दुराशयमपि=सक्रोपमपि गुरुं लघु=शीघ्रं प्रसादयन्ति=प्रसन्नं कुर्वन्ति । अथ चण्डरुद्राचार्यशिष्योदाहरणम्—तथाहि—

कदाचिदुज्जयिनीनगर्यां शिष्यपरिवारसहितः स्वभावतश्चण्डश्चण्डरुद्रनामक आचार्यः समवसृतः । स च साधूनां ग्रहणासेवनाशिक्षायां न्यूनातिरिक्तादिदोष-

जो अन्धकार होने की वजह से दिखलाई नहीं पड़ रहा था । उससे उनका माथा टकराया और फूट गया विशिष्ट आघात होने से उनके चित्त में आर्त्तध्यान उत्पन्न हुआ । इससे वे वृद्ध आचार्य आर्त्तध्यान में मरकर विषम-विषधर चण्डकौशिक सर्पकी पर्याय में उत्पन्न हुए । इस प्रकार चण्डशिष्यकी तरह अविनीत शिष्य कोमल हृदयवाले भी अपने गुरु महाराज को कुपित करते हैं और दुर्गति तक पहुँचाते हैं—

विनीत शिष्यका आचरण कैसा होता है, यह बात चण्डरुद्राचार्यके शिष्य के उदाहरण से स्पष्ट की जाती है—

किसी समय उज्जयिनी नगरी में शिष्य परिवार सहित चण्डरुद्र नामक एक आचार्य जो स्वभावतः क्रोधी थे आये । वे एकान्त स्थान में बैठकर स्वाध्याय एवं ध्यान इस अभिप्राय से किया करते थे कि कहीं

तेमनुं माथुं टकरायुं अने कुटी गयुं. विशिष्ट आघात होवाथी तेमना चित्तमां आर्त्तध्यान उत्पन्न थयुं, जेनाथी ते वृद्ध आचार्य आर्त्तध्यानमां मरीने विषम विषधर अंडकौशिक सर्पनी पर्यायमां उत्पन्न थया. आ प्रकारे अंड शिष्यनी माक्षक अविनीत शिष्य कोमल हृदयवाणा पोताना गुरुने पणु कोधीत पनावे छे, अने दुर्गतिमां पहुँचाउे छे.

विनीत शिष्यनुं आचरणुं केवुं होय छे तेवात अंडरुद्राचार्यना शिष्यना उदाहरणुथी स्पष्ट करवामां आवे छे.

कोधं अेक समय उज्जयिनी नगरीमां शिष्य परिवार सहित अंडरुद्र नामना अेक आचार्य जे स्वभावे क्रोधी हुता ते पधायी ते अेकान्त स्थानमां जेसीने स्वाध्याय तेमज ध्यान अेवा अभिप्रायथी करता हुता के कथारेक

दर्शनात् कोपोत्पत्तिर्माभूदिति मनसि कृत्वा रहसि स्वाध्यायध्यानं कुर्वन्नन्यसाधुभ्यः पृथगवतिष्ठते । अत्रान्तरे उज्जयिनीवास्तव्य इभ्यपुत्रः कोऽपि नवपरिणीतः सुहृत्परिवृतः कृतकुङ्कुमरागः प्रवरनेपथ्यः साधूनां वन्दनार्थं तत्रागतः, साधूनां सविधि वन्दनं कृत्वा तत्र स्थितः । अथ तन्मित्रैः कैश्चित् सोपहाससमुक्तम्-भो साधवः ! धर्मं ब्रूत । ते साधवस्तेषामुपहासवचनं विदित्वा किमपि नोक्तवन्तः, किंतु स्वाध्यायं कुर्वन्त आसन् । पुनस्तैः सपरिहाससमुक्तम्-हे भगवन्तः ! दीयतामस्मै दीक्षा,

साधुओं की ग्रहण शिक्षा एवं आसेवन शिक्षा में न्यूनातिरिक्त दोषों के देखने से उनके प्रति मेरे चित्त में क्रोध की उत्पत्ति न हो जाय, । अतः वे साधुओं से सदा अलहदा ही एकान्त में रहा करते थे । और वहाँ स्वाध्याय एवं ध्यान करते-करते अपना समय व्यतीत करते । एक समय की बात है कि उसी उज्जयिनी नगरी का रहने वाला कोई एक सेठ का पुत्र कि जिसका उसी समय विवाह हुआ था अपनी मित्रमंडली सहित सजधज के साधुओंको वन्दना करनेके लिये आया ! उसके पैरों का माहुर अभी ढीला भी नहीं पड़ा था और हाथोंकी मेंहदी भी अभी पूरी तरह से सुखी नहीं थी । वह सविधिवन्दना कर एक ओर बैठ गया । इतने में उसके मित्रों ने मुनिराज से उपहास करके कहा कि हे महाराज ! आप लोग धर्मका उपदेश दीजिये । साधुओंने उनके हास्य मिश्रित वचन सुनकर उन्हें धर्मका उपदेश नहीं दिया और न कुछ कहा भी किन्तु अपने स्वाध्याय करने में ही तल्लीन रहे । पश्चात् फिर भी

साधुओंनी अहणु शिक्षा अने आसेवन शिक्षामां न्यूनातिरिक्त दोषोने जेवाथी तेमना प्रति मारा चित्तमां कोधनी उत्पत्ति न थर्ध जय, आथी तेओ साधु-ओथी सदा अलायदा अेकान्तमां न रखा करता उता. अने त्यां स्वाध्याय अने ध्यान करतां करतां पोतानो समय व्यतित करता. अेक समयनी वात छे के, अे उज्जयनी नगरीमां रहैनार अेक शेठनो पुत्र के जेनो तुरतमांन विवाड थयो उतो ते पोताना मित्र मंडण साथे अनी ठनीने साधुओने वंदना करवा आओयो. अेना पगतुं माहुर (मडावर) पगना तणीयानो लाल रंग ) उणु ढीदुं थयेल न उतुं तेम डायमांनी मेंदी पणु सुकाध न उती. ते सविधि वंदना करी अेक आणु जेठो. अे वथतेतेना मित्रोअे मुनिराजने उपहास करी कहुं के मडाराज ! आप धर्मने उपदेश आपो. साधुओअे तेमनुं हास्य मिश्रीत वचन सांलणीने उपदेश न आप्यो. अने न कांठ पणु कहुं, पोतानो स्वाध्याय करवामांन तद्वलीन रखा. करीथी उसतां उसतां

निर्विण्णोऽयं गृहवासेन, भार्ययाऽप्ययं परित्यक्तः अतः प्रसीदत, संसारदुत्तारयत, साधुभिरुक्तम्—अत्रास्माकं गुरुस्ति स प्रव्राजयिष्यति, वयमनधिकारिणोदीक्षा—दानस्य, तस्मात् तत्समीपं गच्छत, तदनु मित्रवर्गस्तमिभ्यपुत्रं चण्डरुद्राचार्यस्य समीपं नीत्वा तं प्रणम्य सपरिहासमुक्तवान्—भदन्त ! दीयतामस्मै दीक्षा । ततस्तत्परिहासवचनं श्रुत्वा संजातकोपेन चण्डरुद्राचार्येण कथितम्—भस्मानयेति, तदानीमेकेन मित्रेण हास्यादेव भस्मानीतं, ततश्चण्डरुद्राचार्यो भस्म गृहीत्वा बलादेव तत्केशलुञ्चनं चकार, तदा तद्वयस्याः सर्वे प्रव्रज्याभयात्पलायिता ।

उन्होंने हँसी में कहा कि महाराज ! इस नव परिणीत श्रेष्ठि पुत्र को आप दीक्षा दीजिये । क्यों कि यह गृहस्थावास से उदासीन हो रहा है । इस की धर्मपत्नी ने भी इसका परित्याग कर दिया है । अतः प्रसन्न होकर इसे संसार से पार उतारिये । मुनिराजों ने सुनकर उनसे कहा कि यहां हमारे गुरुमहाराज विराजमान हैं—वे ही दीक्षा देंगे—हम लोग उनके समक्ष दीक्षा देने के अधिकारी नहीं हैं । इसलिये आप लोग इन्हें उनके ही पास ले जाइये । साधुओंके इस प्रकार के कहे गये वचनों को सुनकर वे लोग अपने उस मित्र को चंडरुद्र आचार्य के समीप ले गये । आचार्य महाराज को वन्दना कर वे उनसे भी परिहासपूर्वक यही कहने लगे कि हे भदन्त ! इसको आप दीक्षा दीजिये । उनकी हँसी के वचन सुनकर कुपित होते हुए चंडरुद्र आचार्य बोले—ठीक है—भस्म लाओ मैं इसे दीक्षा देता हूँ । इतना सुनते ही किसी एक मित्र ने हंसी—हंसी में शीघ्र ही भस्म लाकर वहां उपस्थित कर दी । चंडरुद्राचार्य ने उस भस्म

तेमणे कहुं के महाराज ! आ नवपरिणीत श्रेष्ठि पुत्रने आप दीक्षा आपो केमके अे गृहस्थावासथी उदासीन गनी रडेल छे. आनी धर्मपत्निअे पणु तेने त्याग कर्यो छे. आथी प्रसन्न थधने आने संसार सागरथी पार उतारे. मुनिराजेअे अे सांलणीने तेमने कहुं के अडिं अमारा गुरु महाराज गिराजे छे ते दीक्षा आपशे. अमे तेमनी सामे दीक्षा आपवाना अधिकारी नथी. भाटे आप लोग तेने गुरु महाराज पास लधं जव. साधुअेना आ प्रकारे कडेवाभां आवेल वयनेथी तेअे तेमना मित्रने अंउड्र आचार्य पास लधं गया. आचार्य महाराजने वंदना करी तेअे तेमने पणु परिहासपूर्वक अेवुं ज कडेवा लाग्या के डे लहन्त ! आने आप दीक्षा आपो. तेमनां हासीनां वयन सांलणीने कधीत थतां अंउड्र आचार्य जेअ्या ठीक छे—लस्म लावो, हुं तेने दीक्षा आपुं छुं आ सांलणतां डेअं अेक मित्रे डसतां डसतां तुरतज लस्म लावीने हाजर करी. अंउड्रआचार्ये अे लस्मने हाथभां

ततः स इभ्यपुत्रो भाग्यवशेन लघुकर्मणा च भावश्रमणो जातः, तदानीं तस्येभ्यपुत्रस्य लोचे कृते सति “मम प्रव्रज्यैवास्तु” इति परिणामः सम्पन्नः, ततो रजोहरणसदोरकमुखवस्त्रिकादिभिः साधुवेषं धृत्वा द्रव्यभावतः संयतो जातः । ततोऽसौ गृहीतप्रव्रज्यः शिष्यो गुरुमब्रवीत्—भदन्त ! अन्यत्र व्रजामः, अत्र मम

को हाथ में लेकर जबर्दस्ती उसके केशों का लुंचन कर दिया । मित्रों ने यह देखकर समझा कि कहीं हमारी भी यही हालत न हो जाय—हमें भी जबर्दस्ती से दीक्षित न बना दिया जाय—इस डरसे वे सब के सब वहाँ से शीघ्र भाग गये ।

उस समय वह श्रेष्ठिपुत्र भाग्य के उदय से एवं लघुकर्म के प्रभाव से भावश्रमण बन गया था । क्यों कि जिस समय आचार्य—महाराजने उसके केशोंका लुंचन किया था उस समय उसके चित्त में यही परिणाम हो गया था कि मेरी दीक्षा ही हो जाय तो सर्व सुन्दर है । ” इस परिणाम विशिष्ट—भाव श्रमण अवस्था संपन्न—उस इभ्यपुत्र के लिये आचार्य महाराज ने केशलुंचन करने के बाद ही रजोहरण एवं सदोरक मुखवस्त्रिका प्रदान करदी—इससे वह यथार्थ में द्रव्यरूप से भी साधु वेषसे सुशोभित होने लगा । इस प्रकार द्रव्य एवं भाव से संयत अवस्था को धारण किये हुए—उस नवीन शिष्य ने गुरुमहाराज से कहा कि हे भदन्त ! चलो अब यहाँ से दूसरी जगह चलें । नहीं तो मेरे

लडने जबरजस्तीथी तेना वाणनेो लोच कर्यो. मित्रो आ लोचने अणुं समन्या के अमारी पणु आवी डालत न थणु जय अमने पणु जबरजस्तीथी दीक्षित न अनावाय आवा उरथी तेओ सधणा त्यांथी तुरतज लागी गया.

ते समय श्रेष्ठी पुत्र भाग्यना उदयथी तेमज लघु कर्मना प्रभावथी लावश्रमणु अनी गयो डतो केमके जे समय आचार्य महाराजे तेना वाणनेो लोच कर्यो त्तारे ते समये तेना चित्तमां अणु परिणाम थणु गयुं डतुं के मने दीक्षा अपाय तो ते सर्व सुन्दर छे. आ परिणाम विशिष्ट—लावश्रमणु अवस्था संपन्न—ते ध्विय पुत्र माटे आचार्य महाराजे केशनेो लोच कर्यो पछी रजोहरणु अने होरा साथेनी मुखवस्त्रिका आवी. आथी यथार्थमां द्रव्य रूपथी पणु साधु वेशथी सुशोभित अनी रह्यो. आ प्रकारे द्रव्य अने लावथी संयत अवस्थाने धारणु करीने अणु नवीन शिष्ये गुरुमहाराजने कहुं के डे लहन्त ! आलो डवे अडिंथी जीज स्थणे जधअे. नहीं तो मारा अंधु-

बान्धवा उपद्रवं करिष्यन्ति । गुरुणोक्तम्—अहो शिष्य ! संप्रति रात्रिर्जाता, अहं रात्रौ न पश्यामि । ततस्तेन शिष्येण स्वकीयस्कन्धे गुरुरारोपितः, मार्गं उच्च-नीचप्रदेशे वहनेन गुरुचेतसि खेदः समुत्पन्नः, तेन चण्डरुद्राचार्येण शिष्यशिरसि रजोहरणदण्डप्रहारो दत्तः, असौ शिष्यो मनस्येवं विचारयति—अहो ! ममाराधनीयो गुरुं मयेदृशीमवस्थां प्रापितः इति । एवं सम्यग्भावनया तस्य शिष्यस्य केवल-बन्धुजन यहाँ आकर उपद्रव करेंगे। शिष्यकी यह बात सुनकर आचार्य महाराज ने कहा—ठीक है परन्तु इस समय तो अब रात्रि हो चुकी है तथा मुझे रात्रि में दिखता भी नहीं है—अतः जाना ठीक नहीं है । आचार्य महाराज की बात सुनकर शिष्य ने कहा कि आप इसकी चिन्ता नहीं करें । मैं आप को अपने कंधे पर बैठा लूंगा । ऐसा कह कर उस शिष्य ने गुरु महाराज को अपने कंधे पर बैठा लिये और उस स्थानसे दूसरे स्थान पर पहुँचने के लिये प्रयाण प्रारंभ कर दिया । मार्ग सम विषम था । अतः गुरु महाराज को अचानक हिलने डुलने की बजह से कष्ट हुआ और इससे उनके चित्तमें अशांति उत्पन्न हो गई । उन्होंने बैठे-बैठे ही अपना रजोहरण दंड उसके मस्तक पर दे मारा । चोट लगते ही शिष्य ने चित्त में चिन्तवन किया कि हे मन जिनकी मुझे सेवा करनी चाहिये उन गुरु महाराज को इस समय मेरे द्वारा कितना कष्ट पहुँच रहा है । गुरुमहाराज की इस कष्टावस्था का कारण मैं ही बन रहा हूँ । इस प्रकार की भक्तिरूप हार्दिकभावना के प्रभाव से क्षपक श्रेणी

जन अङ्घ्रियां आवीने उपद्रव करशे. शिष्यनी आ वात सांभणीने आचार्य महाराज्ने कछुं, डीक छे. परंतु आ समये रात्रीतुं आगमन थधं युक्तुं छे तेम भने रात्रीमां सुञ्चतुं पणु नथी, आथी न्वं डीक नथी. आचार्य महाराजनी वात सांभणी शिष्ये कछुं, आप ज्येनी चिंता न करे हुं आपने मारा भला उपर जेसाडी लधशि ज्येवुं कही ते शिष्ये गुरु महाराज्ने पोताना भला उपर जेसाडी लीधा अने ज्ये स्थानथी थीन स्थान तरई प्रयाणु करवाने प्रारंभ कर्यो. मार्ग सम विषम हुतो. आथी गुरु महाराज्ने अचानक डलवा डोलवाने कारणे कष्ट थयुं अने तेथी ज्येभना चित्तमां अशान्ती उत्पन्न थधं तेज्योअे जेठा जेठा न पोताने रनेडणु दंड ज्येना माथा उपर मार्यो, चोट लागतां शिष्ये मनमां विचार्युं के छे मन ! ज्येनी मारे सेवा करवी जेधज्ये ज्ये गुरु महाराज्ने आ समय मारा तरईथी केटलुं कष्ट थधं रह्युं छे. गुरु महाराजनी कष्ट अवस्थानुं कारणे हुं न अनि रडेल छुं. आ प्रकारनी लक्षितरूप हार्दिक भावनाना प्रभावथी क्षपक श्रेणी प्राप्त करी घातक कर्मोना



ज्ञानमुत्पन्नम्, ततः केवलज्ञानप्रभावादसौ समप्रदेश इव वहन् गुरुणा प्रोक्तः—  
मार एव सारः, अधुना कीदृशः समप्रदेशे इव वहन्नसि ? शिष्येणोक्तं—युष्मत्प्र-  
सादान्मम वहनं समं भवति । पुनर्गुरुणोक्तम्—किं रे ! ज्ञानं समुत्पन्नं तव । शिष्ये-  
णोक्तम्—एवम् । पुनर्गुरुणा प्रोक्तम्—प्रतिपाति, अप्रतिपाति वा ज्ञानमुत्पन्नम् ? ।  
तेनोक्तम्—अप्रतिपाति । ततो गुरुः पश्चात्तापं कुर्वन् वदति—हा ! मया केवली आशा-  
तितः—इत्युक्त्वा शिष्यशिरसि रजोहरणदण्डप्रहारजनितं रुधिर प्रवाहं पश्यन् पुनः

प्राप्तकर घातक कर्मोका नाशकर उस शिष्य ने केवलज्ञान को प्राप्त किया । केवल ज्ञान के प्रभाव से यह गुरुको इस प्रकार अब लेजाने लगा कि मानो सम प्रदेशमें ही वह चल रहा हो । गुरुजीने कहा कि मार ही सार है, इतना मार ने पर अब तू सीधा चलने लगा है । शिष्यने कहा महाराज आपके प्रभावसे ही यह सब कुछ हो रहा है—अर्थात् पहिले चलते समय उँची नीची जगह में मेरा पैर पड़ता था सो आपको कष्ट होता था । पर अब नहीं पड़ता है अतः समभूमि में चलने की तरह मैं चल रहा हूँ । गुरु महाराज ने कहा तो क्या तुझे ज्ञान उत्पन्न हो गया है ? शिष्यने कहा हां ! पुनः गुरु महाराज ने कहा वह ज्ञान प्रतिपाति उत्पन्न हुआ है या अप्रतिपाति उत्पन्न हुआ है । शिष्यने उत्तर दिया महाराज ! अप्रतिपाति ज्ञान उत्पन्न हुआ है । बाद गुरु ने कहा ! हाय ! मैं ने केवली की इस समय आशातना की है । इस प्रकार कह कर गुरु जी शिष्य के शिर पर रजोहरण के दण्ड के प्रहार से वहते हुए रुधिर को देख-देख

नाश करी ते शिष्ये केवल ज्ञानने प्राप्त क्युं. केवलज्ञानना प्रभावथी ते गुरुने एवा प्रकारे लक्ष जवा लाग्ये के ज्ञाने ते समप्रदेशमां यादी रहा डोय. गुरुज्ये क्युं के “ मार ज सार छे. ” आटवुं मारवाथी डवे तुं सीधा यालवा लाग्ये छे, शिष्ये क्युं मडाराज ! आपना प्रभावथी ज आ सधणुं षनी रह्युं छे. अर्थात् पहिलां यालती वणते उँची नीची जग्यामां मारा पग पडता डता जेनाथी आपने कष्ट थतुं डतुं पणु डवे पडता नथी. अटवे समभूमिमां यालवानी माइक हुं यावुं छुं. गुरु मडाराजे क्युं के शुं तने ज्ञान उत्पन्न थर्ध गयुं छे ? शिष्ये क्युं डा ! इरी गुरु मडाराजे क्युं, ते ज्ञान प्रतिपाति उत्पन्न थयुं छे के अप्रतिपाति शिष्ये क्युं. मडाराज ! अप्रतिपाति ज्ञान उत्पन्न थयुं छे. आथी गुरुज्ये क्युं, अडाडा ! में केवलीनी आ समये आसातना करी छे. आ प्रकारे कहीने गुरुज्ये शिष्यना शीर उपर रणेडरणुना दंडना प्रहारथी वडैता इधीरने जेध वारंवार



पुनस्तत्क्षामणं कुर्वन् सोऽपि केवलज्ञानं प्राप्तवान् । एवं विनीतशिष्यैर्भवितव्यम् ॥१३॥  
कथं गुरुचित्तानुगामी भवेदित्याह—

मूलम्—नापुट्टो वागरे किंचि, पुट्टो वा नालियं वए ।

कोहं असच्चं कुंठिवजा, धारिजां पियंमापियं ॥१४॥

छाया—

नापुट्टो कुर्यात् किंचित्, पृष्टो वा नालिकं वदेत् ।

क्रोधम् असत्यं कुर्यात्, धारयेत् प्रियमप्रियम् ॥ १४ ॥

टीका—‘नापुट्टो’. इत्यादि—

अपृष्टः=गुरुणाऽनुक्तः किंचित् न व्याकुर्यात्=न वदेत् पृष्टो वा=गुरुणा कास्मि-  
श्विद् विषये पृष्टः सन् अलीकम्=अनृतं न वदेत्, क्रोधं=केनापि कारणेन समुत्पन्नं  
क्रोधम् असत्यं=निष्फलं कुर्यात् ।

कर बार बार अतिशय पश्चात्ताप करने लगे। पश्चात् उनसे अपने दोष  
खमाने लगे। इस प्रकार पश्चात्ताप करते करते विशुद्ध भावना से गुरु  
ने भी केवलज्ञान प्राप्त किया। इसदृष्टान्त का सार यही है कि विनीत  
शिष्य अपनी विशुद्धि के साथ-साथ गुरु महाराज की भी विशुद्धि का  
कारण बनता है। अतः शिष्य को इसी तरह विनीत होना चाहिये ॥१३॥

गुरु-चित्तानुगामी शिष्य के चिन्हों को इस गाथा द्वारा सूत्रकार  
बतलाते हैं—‘नापुट्टो.’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(अपुट्टो किंचि न वागरे-अपृष्टः किञ्चित् न व्या-  
कुर्यात्) गुरुमहाराज जब तक कोई बात नहीं पूछें तब तक शिष्य का  
कर्तव्य है कि वह किसी भी विषय में कुछ न कहे। (पुट्टो वा

अतिशय पश्चात्ताप करवा लाग्या. पछी तेनार्थी पोतानो दोष अभाववा लाग्या.  
आ प्रकारे पश्चात्ताप करतां करतां विशुद्ध भावनाथी गुरुने पणु केवली ज्ञान  
प्राप्त थयुं.

आ दृष्टान्तो सार ओ छे के विनीत शिष्य पोतानी विशुद्धिनी साथे  
साथे गुरु महाराजनी पणु विशुद्धितुं कारणु अने छे. अटले शिष्योओ आ  
रीते विनीत थयुं जेधअे. ॥१३॥

गुरु-चित्तानुगामी शिष्यना चिन्होने आ गाथा द्वारा सूत्रकार अतावे  
छे. नापुट्टो. इत्यादि,

अन्वयार्थ—अपुट्टो किंचि न वागरे-अपृष्टः किञ्चित् न व्याकुर्यात् गुरु  
महाराज ज्यां सुधी कोठि वात न पूछे त्यां सुधी शिष्यनुं कर्तव्य छे के ते  
कोठि पणु विषयमां कोठि न कडे. पुट्टो वा नालियं वए-पृष्टो वा अलीकं वदेत्

अयं भावः—गुरुणा निर्भर्त्सने कृते सति कदाचित् क्रोधोत्पत्तौ सत्यां तस्य कटुकविपाकमनुचिन्त्य क्षमया तं परिहरेत्, क्रोधो हि सर्वानर्थकरः सकलग्रामहरः तपः संयमोद्यानदावज्वलनः समभावजलदपटलोविकिरणप्रचण्डपवनः शान्तिसुधाकरतमः सकलसद्गुणसरोजवनहिमः चित्तोद्वेजकः शत्रुतावर्धकः सकलविपदा-मास्पदं जनपदं विप्लवयति ।

१—तमः=राहुः ।

नालियंवण-पृष्ठो वा अलीकं न वदेत् ) यदि प्रसंग वश किसी विषय में गुरु महाराज पूछें भी तो उस में झूठ नहीं बोलना चाहिये । (कोहं असच्चं कुन्विज्जा-कोपं असत्यं कुर्यात् ) किसी निमित्त से उत्पन्न हुए क्रोध को शीघ्र ही दबा देना चाहिये ।

भावार्थ—किसी कारण वश यदि कदाचित् गुरु महाराज शिष्य को कठिन वचन से शिक्षा दें तो उस समय क्रोध का कडुआ फल समझकर उत्पन्न हुवे क्रोध को क्षमा से दबा देवे । कारण कि क्रोध समस्त अनर्थों की एक मजबूत जड़ है । सकल कल्याणों का विनाशक है । संयमरूपी उद्यान को भस्म करने के लिये यह दावानल की ज्वाला जैसा भयंकर है । समतारूपी मेघघटाओं को विक्षिप्त करने के लिये यह क्रोध प्रचण्ड पवन के जैसा है । शान्तिरूपी चन्द्रमंडल के ग्रसने के लिये राहु जैसा, सकल सद्गुणरूपी कमलवन को दग्ध करने के लिये हिमपात जैसा कहा है । क्रोध से चित्त में उद्वेग उत्पन्न होता है और क्रोध से ही शत्रुता की वृद्धि होती है । जिस जनपद (देश) में इस क्रोध का आवास हो जाता है वह सकल विपत्तियों का स्थान बनकर देश आदि को नष्ट कर देता है । कहा भी है—

जे प्रसंगवश कोध विषयमां गुरु महाराज पूछे तो पण्येमां लुहुं नहीं  
ओलपुं ओधंये. कोहं असज्जंकुविज्जा-कोपं असत्यं कुर्यात् कोधं निमित्तथी  
उत्पन्न थयेदा कोधने जलहीथी द्वावी देवे ओधंये.

भावार्थ—कोध कारणवश जे कदाय गुरु महाराज शिष्यने कठिन वचनथी शिक्षा आपे तो ते समये कोधनुं कडुपुं इण समल उत्पन्न थयेद कोधने क्षमाथी द्वावी हे. कारण के कोध समस्त अनर्थोनी अेक मज्जुत जड छे. अथा कल्याणोना विनाशक छे. संयमरूपी उद्यानने लस्म करवा माटे दावानलनी ज्वाला जेवे लयंकर छे. समतारूपी मेघ घटाओने वेरविपेर करवा माटे आ कोध प्रचंड पवन जेवे छे. शान्तिरूपी चंद्रमंडलने ग्रसवा माटे राहु जेवा सकल सद्गुणरूपी कमलवनने दग्ध करवा माटे हिमपात जेवे कडेल छे. कोधथी चित्तमां उद्वेग उत्पन्न थाय छे अने कोधथीज शत्रुतानी वृद्धि थाय छे. जे जनपद (देशमां) आ कोधने आवास थाय छे ते सकल विपत्तियोनुं स्थान अनी देश आदिनो नाश करे छे. कहुं पण्ये छे—

उक्तंच—लोभी पश्येद्धनप्राप्तिं, कामिनीं कामुकस्तथा ।

भ्रान्तं पश्येदथोन्मत्तो न किञ्चिच्च क्रुधाकुलः ॥१॥

अन्वच्च—अपकारिणि चेत् क्रोधः क्रोधे क्रोधः कथं न ते ।

धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां परिपन्थिनि ॥ २ ॥

क्रोधस्यासत्यकरणे उदाहरणम् । यथा—कस्यचित् कुलपुत्रस्य भ्राता वैरिणा हतः ।

“लोभी आत्मा धनकी प्राप्ति की चिन्ता में ही मस्त बना रहता है । कामुक कामिनी में मस्त है । उन्मत्त सर्वत्र भ्रान्ति युक्त बना रहता है । परन्तु क्रोध से आकुल हुआ आत्मा देखता हुआ भी अन्धा बना रहता है ॥१॥”

इस क्रोध को निवारण करना हो तो इस प्रकार की भावना माननी चाहिये जैसे—

“हे आत्मन् ! तू अपने अपकार करनेवाले पर जिस प्रकार क्रोध करता है उसी प्रकार इस अपकार करने वाले क्रोध पर क्रोध क्यों नहीं करता । क्यों कि यह तेरा बड़ा भारी अपकारी है । कारण कि इसके सद्भाव में धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का सर्वथा विनाश हो जाता है । अतः चतुर्वर्गका विनाश करने वाला होने से यह तेरा सबसे अधिक अपकारी है । क्रोध पर क्रोध करना इसका मतलब है कि क्रोध कभी नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥ ”

क्रोध को असत्य करने में दबा देने में—दृष्टान्त इस प्रकार है—  
किसी कुलपुत्र के भाई को उसके वैरी ने मार डाला । वह कुल-

लोभी आत्मा धनकी प्राप्ति की चिन्ता में ही मस्त बना रहता है, कामुक कामिनी में मस्त है, उन्मत्त सर्वत्र भ्रान्ति युक्त बना रहता है । परन्तु क्रोध से आकुल होनेवाला आत्मा अन्धा होता है । ॥१॥

आ क्रोध को निवारण करने के लिये तो आ प्रकार की भावना करनी चाहिये कि हे आत्मा ! तू तारे पर अपकार करवावाणा पर तू के प्रकारे क्रोध करे छे के प्रकारे ते अपकार करवावाणा क्रोध पर क्रोध केम नथी करते. केमके छे तारे भुण मोटे अपकारी छे. कारण के तेना सहभावमां धर्म, अर्थ, काम अने मोक्षनां सर्वथा विनाश थाय छे. अर्थी चतुर्वर्गनां विनाश करवावाणा होवाथी छे तारे अधाथी वधु अपकारी छे. क्रोध पर क्रोध करवा केने मतलब छे के क्रोध कही न करवा के छे.

क्रोधने दबावी हेवामां दृष्टान्त आ प्रकारे छे—

किसी कुलपुत्रना भाईने तेना वैरीके भारी नाथ्ये. ते कुलपुत्र भरथे

पुत्रमरणार्त्तध्यानयुक्तां जननीं विलोक्य स कुलपुत्रस्तं वैरिणं गृहीत्वा मातुः समिपमानीयाब्रवीत्—अरे ! बन्धुघातक ! अनेनासिना त्वां कुत्र हन्याम्, तेनातिभी-तेन कथितम् यत्र शरणागता न हन्यन्ते तत्र । एतद्वचनं श्रुत्वा कुलपुत्रेण जननीमुखं विलोकितम् । जनन्या च मध्यस्थभावमवलम्ब्य संजात-करुणया निगदितम्—हे पुत्र ! शरणागता न हन्यन्ते । यतः—

शरणागता य वीस,—त्था पणया वसणपत्ता य ।

रोगी अजंगमा य, सप्पुरिसा णेव पहरंति ॥

छाया—शरणागतांश्च विश्वस्तान् प्रणतान् व्यसनप्राप्तांश्च ।

रोगिणः अजङ्गमांश्च सत्पुरुषा नैव प्रहरन्ति ॥

पुत्र पुत्रमरण जनित दुःख से आर्त्तध्यान करती हुई माता को देखकर शीघ्र ही अपने भाई के उस घातक को पकड़ कर माता के सन्मुख उपस्थित कर कहा अरे बन्धु घातक ! बोल तुझे इस तलवार के द्वारा कहाँ पर मारूँ। उसने डरते हुए कहा—जहाँ शरण में आये हुए प्राणी नहीं मारे जाते हैं वहीं पर आप मुझे मारें। बन्धु घातक के इस प्रकार वचन सुनकर कुलपुत्र ने माता के मुखकी ओर देखा। माता ने धैर्य धारण कर दयायुक्त होते हुए कहा कि हे बेटा ! शरण में आये हुए को वीर पुरुष मारा नहीं करते हैं। क्यों कि इतने प्राणी अवध्य होते हैं—

शरणागता य वीस,—त्था पणया वसण पत्ताय ॥

रोगी अजंगमा य, सप्पुरिसा णेव पहरंति ॥ १ ॥

गाथार्थ—शरणागत, विश्वासपात्र, कष्ट में पडा हुआ, रोगी और अपंग, इनके ऊपर महा पुरुष प्रहार नहीं करते हैं अर्थात् इनकी रक्षा करते हैं ॥

जनीत दुःखी आर्त्तध्यान करती माताने जेठ तुरतज पोताना लाधना ये घातकने पकडीने मातानी सन्मुख उलो राभी कहुं, अरे अंधु घातक ! जेठ तने आ तस्वार कये स्थणे माइं. तेणे उरीने कहुं—ज्यां शरणुमां आवेलां प्राणीने मारवाभां नथी आवतां ये स्थणे आप मने मारे. अंधुने मारनारनां आ प्रकारनां वचनने सांलणी कुणपुत्रे माताना मुअनी सामे जेथुं. माताये धैर्य धारणु करी दयायुक्त जनी कहुं के हे भेटा ! शरणुमां आवेलां वीरपुत्रो कही मारता नथी केभके आटला प्राणी अवध्य होय छे.

शरणागता य वीस,—त्था पणया वसणपत्ता य ।

रोगी अजंगमा य, सप्पुरिसा णेव पहरति ॥ १ ॥

गाथार्थ—शरणागत, विश्वासपात्र, कष्ट में पडेला, रोगी अने अपंग,

ततस्तेन कुलपुत्रेण कथितम्—तर्हि कथं स्वरोषं सफलीकरोमि ? जनन्या प्रोक्तम्—वत्स ! सर्वत्र न रोषः सफलीक्रियते । मातृवाक्यात् कुलमित्रेण स बन्धुघातको मुक्तः । ततोऽसौ तयोश्चरणेषु निपत्य स्वापराधं क्षामयित्वा गतः । एवं कुलपुत्रवत् क्रोधमसत्यं कुर्यात् ।

तथा—अप्रियं=शिक्षार्थं गुरोः कटुवचनं, प्रियं=प्रियमिव-हितमित्यर्थः, धारयेत्=

माता के इस प्रकार वचन सुनकर कुलपुत्र ने कहा—ठीक है यह अवध्य है परन्तु हे जननि ! यह रोष जो मुझे उत्पन्न हुआ है उसे कैसे अब सफल करूँ ? माता बोली प्रिय पुत्र ! उत्पन्न रोष सर्वत्र सफल ही किया जाय ऐसा कोई नियम नहीं है । माता के इन वचनोंसे सन्तुष्ट होकर कुलपुत्र ने रोष को शांत करते हुए उस अपने बन्धु के घात करने वाले बैरी को बिना किसी तकलीफ दिये छोड़ दिया । उस बैरी ने भी उन दोनोंके चरणों में गिरकर अपने अपराध की क्षमा मांगी और खुश होते हुए अन्त में वह अपने घर चला गया । प्रत्येक मुनि का कर्तव्य है कि वह कुलपुत्र की तरह अपने उत्पन्न हुए क्रोध को विफल बनाने में सचेष्ट रहे ।

(अप्रियं प्रियं धारिज्जा—अप्रियं प्रियं धारयेत्) शिष्य का यह कर्तव्य है कि वह गुरु महाराज के द्वारा कहे गये अप्रिय वचनों को भी प्रियवचन ही मानकर हृदय में धारण करे । गुरु महाराज के वचन

ओमना उपर मडापुइष प्रडार करता नथी, परंतु तेनी रक्षा करे छे.

मातानां आ प्रकारनां वचन सांभलीने कुणपुत्रे कहुं ठीक छे. आ अवध्य छे. परंतु हे माता ! आ रोष जे मारामां उत्पन्न थये छे तेने हुं कछ रीते शान्त कइ ?

माताये कहुं प्रिय पुत्र ! उत्पन्न थयेल रोष अधी रीते सक्रण करवामां आवे जेवो केछ नियम नथी, मातानां आवां वचनोथी संतुष्ट अनी कुणपुत्रे रोषने शान्त करीने तेणे पोताना अंधुने घात करनार बैरीने केछ तकलीक आग्या वगर छोडी दीथो. मारनार बैरीये पणु अन्नेना चरणामां पडीने पोताना अपराधनी क्षमा मागी अने खुश थयो ते पोताना घर तरक आवी गयो. प्रत्येक मुनितुं कर्तव्य छे के कुणपुत्रनी माइक पोतानामां उत्पन्न थयेल क्रोधने दबाववामां सचेष्ट रहे.

(अप्रियं प्रियं धारिज्जा—अप्रियं प्रियं धारयेत्) शिष्यतुं कर्तव्य छे के ते गुरु महाराज द्वारा कहेवामां आवेल अप्रिय वचनोने पणु प्रिय वचन मानी हृदयमां धारण करे. गुरु महाराजना वचन परिणाममां संतापने

मनसा भावयेत् । गुरोर्वचनं हि परिणामे तापोपशमकं रत्नत्रयपरिशोधकं शान्तिसुधा-  
संभृतं परमहितम् , आम्रफलमिवादी कटुकं, मध्येऽम्लरसयुतम्, अन्ते चापूर्वास्वाद-  
जनकं भवतीति मत्वा प्रियमेव मन्येतेति भावः ।

यद्वा-प्रियं=प्रीतिजनक स्तुत्यादि, अप्रियम्=अप्रीतिकारकं निन्दादि, धारयेत्=  
समं जानीयात् । भिक्षाचर्यादौ प्रियमप्रियं वा वचनं श्रुत्वा समभावनया तत् तितिक्षेत,  
तत्र रागं द्वेषं वा न कुर्यादित्यर्थः । उक्तं च भगवता—

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तथा ।

समो निंदापसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥ (उत्त० १९अ.)

परिणाम में संताप को मिटाने वाले रत्नत्रय को परि शुद्ध करने वाले,  
शान्तिरूपी अमृत के समुद्र परम हितकारी तथा आम्रफल के समान  
आदि में कटुक, मध्य में आम्लरसयुक्त एवं अन्त में अपूर्व रस का  
आस्वाद कराने वाले होते हैं । इसलिये गुरु महाराज के वचन को प्रिय  
मानकर ही उनका सेवन करते रहना चाहिये यही विनीत शिष्य का  
कर्तव्य है । अथवा—“ धारिज्जा पियमपियं ” इसका अभिप्राय यह भी  
है कि साधु जब भिक्षाचर्या आदि के लिये जावे तब उस समय यदि  
कोई खोटे मीठे वचन भी कहे-निंदा एवं स्तुति भी करे तो भी उसमें  
इसे पक्षपाती नहीं होना चाहिये-दोनों पर साधु का समान भाव ही  
होना चाहिये । उस पर राग एवं द्वेष करना साधुका कर्तव्य नहीं है ।

लाभालाभे सुहे दुक्खे । जीविए मरणे तथा ॥

समो निंदा पसंसासु । तहा माणा व माणओ ॥ (उ. १९अ.)

मटाउवावाणा रत्नभयने परिशुद्ध करवावाणा शांतिरूपी अमृतना समुद्र परम  
हितकारी तथा आम्रफल जेवा. शङ्खातमां तुरा, मध्यमां आम्लरस युक्त  
तथा अंतमां अपूर्व रसनो आस्वाद करवावाणा होय छे. आ माटे गुरु  
महाराजनां वचनने प्रिय मानीने तेनुं सेवन करता रहवुं जेधये. ते विनीत  
शिष्यनुं कर्तव्य छे. अथवा—“ धारिज्जा पियमपियं ” आनो अलिप्राय जेवो  
पणु छे के साधु ज्यारे भिक्षा चर्या वगेरे माटे जय त्यारे ते समये कोर्ध  
कोर्ध साङ् नरसु वचन कहे-निंदा अगर स्तुति पणु करे तो पणु जेमां  
तेमणे पक्षपाति न अनवुं जेधये. अन्ने पर साधुनो समानभाव होवो जेधये.  
जेना पर राग अगर द्वेष करवो जे साधुनुं कर्तव्य नथी.

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तथा ।

समो निंदापसंसासु, तहा माणावमाणओ ॥ (उत्त० १९ अ.)



इदमत्र बोध्यम्—यथा गुरोराज्ञया भिक्षाचर्यां गतः शिष्यः श्रावकगृहं प्रविष्टः, तत्र भद्रभावसंपन्नो धार्मिको धर्मानुगो धर्मसेवी धर्मिष्ठो धर्मख्यातिधर्मानुरागी धर्मप्रलोकी धर्मजीवी धर्मप्ररञ्जनो धर्मशीलः श्रावको मुनिं दृष्ट्वा सप्ताष्टपदानि तदभिमुखमागच्छन् हृष्टस्तुष्टः प्रसन्नचित्तः प्रीतमनाः परमसौमनस्ययुक्तो मुनिदर्शनजनितहर्षवशविसर्पन्मानसस्तं वन्दित्वा नमस्कृत्य पुनः पुनः स्तुवन् वदति—

लाभ में, अलाभ में, सुख में, दुःख में, जीने में मरण में, मान में, अपमान में तथा निंदा और प्रशंसा में एक साधु ही ऐसा है जो समान रहता है। यहाँ इस प्रकार समझना चाहिये—गुरु की आज्ञा प्राप्त कर ही तो शिष्य भिक्षाचर्या के लिये गृहस्थों के घर जाता है। गृहस्थ भी अपने घर पर पधारे हुए साधु के दर्शन कर अपने आपको बहुत ही पुण्यशाली मानता है। क्यों कि ऐसे गृहस्थजन प्रकृति से भद्रपरिणामी एवं धर्मानुग-धर्मका अनुसरण करने वाले होते हैं। धर्म सेवी होते हैं और धर्मिष्ठ होते हैं। धर्मख्याति-धर्मका उपदेश देनेवाले एवं धर्मानुरागी-धर्म में अनुराग रखने वाले होते हैं। धर्मप्रलोभी और धर्मजीवी होते हैं। धर्मप्ररञ्जन और धर्मशील होते हैं। ये मुनि को घर पर आते हुए देखकर सर्व प्रथम उनका विनय करने के निमित्त सात आठ पग उनके समक्ष जाते हैं। हर्ष से संतुष्ट चित्त होकर ऐसे फूल जाते हैं कि मानों कोई अपूर्व निधि का ही इन्हें लाभ हुआ है।

લાભમાં, અલાભમાં, સુખમાં, દુઃખમાં, જીવવામાં, મરણમાં, માનમાં, અપમાનમાં, તથા નિંદા અને પ્રશંસામાં એક સાધુજ એવા છે જે સમાન રહે છે. અહિં એ પ્રકારે સમજવું જોઈએ—ગુરુની આજ્ઞા મેળવીને પછીજ શિષ્ય ભિક્ષાચર્યા માટે ગૃહસ્થોને ઘેર જાય છે. ગૃહસ્થ પણ પોતાના ઘેર પધારેલા સાધુનાં દર્શન કરી પોતાને બહુજ પુણ્યશાળી માને છે. કેમકે એવા ગૃહસ્થજન પ્રકૃતિથી ભદ્ર પરિણામી તેમજ ધર્મનું અનુસરણ કરવાવાળા હોય છે, ધર્મ સેવી હોય છે અને ધર્મિષ્ઠ હોય છે. ધર્મખ્યાતિ-ધર્મનો ઉપદેશ દેવાવાલા એટલે ધર્માનુરાગી-ધર્મમાં અનુરાગ રાખવાવાળા હોય છે. ધર્મપ્રલોકી અને ધર્મજીવી હોય છે. ધર્મ પ્રરંજન અને ધર્મશીલ હોય છે. મુનિને ઘેર આવતા જોઈને સર્વ પ્રથમ તેનો વિનય કરવા નિમિત્ત સાત આઠ પગલાં એમની સામે જાય છે. હર્ષથી સંતુષ્ટ ચિત્ત બનીને એવા કુશાતા હોય છે કે જાણે કોઈ અપૂર્વ નિધિનો એમને લાભ થયો હોય, અહરો પ્રસન્ન થઈ જાય છે, મનમાં

उ.-१३

‘धन्योऽस्मि, कृतपुण्योऽस्मि, कृतलक्षणोऽस्मि भवदर्शनेन, भवदागमनं दरिद्रस्य गृहे स्वर्णवृष्टिरिव कामधेनुरिव मम सर्वसौभाग्यजनकम्” इत्युक्त्वा स्वगृहं सादर-मानीय विपुलमशनं पानं खाद्यं स्वाद्यं ददाति, दत्त्वा च पुनः पुनः स्तौति, तत्र मुनिः स्वात्मानं नोत्कर्षयेत् ।

चेहरा प्रसन्न हो जाता है । मन में एक प्रकार का विलक्षण संतोष आ जाता है, उस समय उसे बड़ा भारी आनन्द आता है । उस आनन्द में तल्लीन होता हुआ वह श्रावक उस समय एक प्रकार से अपने आपको भी भूल सा जाता है और वन्दना एवं नमस्कार कर भक्ति के आवेश से स्वयं अपने गुरु महाराज की स्तुति करता हुआ कहता है हे नाथ ! आज मैं धन्य हुआ हूँ कृतपुण्य हुआ हूँ और मेरी यह पर्याय सफल हुई है जो आपके दर्शन पाये । दरिद्र के घर में सुवर्ण की वर्षा के समान एवं कामधेनु के समान आप का मेरे घर पधारना मेरे परम सौभाग्य का उत्पन्न करने वाला एवं वृद्धि करनेवाला है । इसलिये पधारिये और घर को पावन कीजिये—इस प्रकार कह कर वह महात्मा को अपने घर लाता है और सादर उन्हें विपुल अशन, पान, खाद्य एवं स्वाद्य चार प्रकार का आहार देता है । फिर बारम्बार उनकी स्तुति करता है । ऐसी प्रशंसा सुनकर गृहस्थकी ऐसी विनय भक्ति देखकर साधु को फूल नहीं जाना चाहिये ।

એક પ્રકારનો વિલક્ષણ સંતોષ આવી જાય છે. એ સમયે એને ઘણોજ આનંદ થાય છે. એ આનંદમાં તલ્લીન થતાં થતાં તે શ્રાવક એ સમયે એક પ્રકારથી પોતે પોતાને પણ ભૂલી જાય છે. અને વંદના એવં નમસ્કાર કરી ભક્તિના આવેશથી સ્વયં પોતાના ગુરુ મહારાજની સ્તુતિ કરતાં કહે છે કે હે નાથ ! આજ હું ધન્ય બન્યો છું, કૃત પુણ્ય બન્યો છું, અને મારી આ પર્યાય સફળ બની છે જે આપનાં દર્શન થયાં. દરિદ્રના ઘરમાં સોનાના વરસાદ સમાન તેમ કામ ધેનુ સમાન આપનું મારે ઘર પધારવું મારા પરમ સૌભાગ્યને ઉત્પન્ન કરવાવાળું અને વૃદ્ધિ કરનાર છે. આ માટે પધારો અને ઘરને પાવન કરો આ પ્રકારે કહી તે મહાત્માને પોતાને ઘર લાવે છે અને આદર માનથી તેમને વિપુલ અશન, પાન, ખાદ્ય અને સ્વાદ્ય એમ ચાર પ્રકારનો આહાર આપે છે. પછી વારંવાર તેની સ્તુતિ કરે છે. એવી પ્રશંસા સાંભળી, ગૃહસ્થની એવી વિનય ભક્તિ જોઇ, સાધુએ કુલાઈ જવું ન જોઈએ.

तथा—केचिदधार्मिका अनार्या म्लेच्छा अधर्मजीविनोऽधर्मानुरागिणोऽधर्म-  
शीला विवेकविकलाः साधुं दृष्ट्वा निन्दन्ति हीलन्ति खिसन्ति—‘अयं वराको  
निःसत्त्वः कातरो दाम्भिको भिक्षामात्रोपजीवी कुर्क्षिभरिर्भूमिभारस्वरूपो गृहे गृहे  
गृहपाल इव भ्रमति’ इत्यादि वचनं श्रुत्वा मुनिः स्वात्मानं नापकर्षयेत् ।

अत्रोदाहरणम्—कश्चिद् वृद्धो महात्मा भिक्षार्थमेकस्मिन् गृहे गत्वा तद्गृहस्वा-  
मिनीं प्रति किं सचित्तजलादिस्पर्शरहिताऽसि न वेत्याशयेन पृष्टवान्—भगिनि !

तथा कितनेक ऐसे भी अधार्मिक, म्लेच्छ, अनार्यजन हैं कि  
जिनका जीवन सत्य धर्म की वासना से बिलकुल विहीन बना हुआ  
है, अधर्म में ही जिन्हें बड़ा भारी अनुराग है, प्रकृति भी जिनकी  
अधर्मशील हैं, विवेक से जो सर्वथा पराङ्मुख हैं वे साधुजन को देखते  
ही अपनी नाक भौं हैं सिकोड़ने लगते हैं और जो मन में आता है वही  
बकने लग जाते हैं—निन्दा करते हैं, हीलना करते हैं—खिसाते हैं—कहते  
हैं कि देखो तो सही यह विचारा कितना अपने आपको भूलता है तथा  
कितना कायर बना हुआ फिर रहा है कैसे—कैसे दंभ रच रहा है जो  
यह वहां से भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह करता है। अपना ही पेट  
भरना इसने सीखा हैं। ऐसे जनों से संसार की क्या भलाई हो सकती  
है। ये तो केवल इस पृथिवी के भारभूत हैं जो कुत्तेकी तरह घर घर में  
प्रतिदिन भ्रमण करते रहते हैं। इस प्रकार के वचन सुनकर साधु को  
चाहिये कि वह अपनी आत्मा को हल्की न समझे। इसी विषय को  
एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

तथा डेटलाक येवा पञ्च अधार्मिक. म्लेच्छ, अनार्यजन छे डे जेभनुं  
जवन सत्य धर्मनी वासनाथी भीलकुल विहीन भनेल डोय छे. अधर्मांभां  
जेने लारे अनुराग छे, प्रकृति पञ्च जेनी अधर्मशील छे, विवेकथी जे सर्वथा  
पराङ्मुख छे. ते साधुजनने जेधने पोतानां नाक तथा भडोने भगाडे छे  
अने मनमां आवे तेवुं भडवा लागी नय छे. निंदा करे छे, हीलना करे छे—  
खिसाय छे, कडे छे डे जनुओ तो भरा आ भीयारे डेटले. पोतानी नतने  
लुडे छे तथा डेवा कायर भनीने डरी रह्या छे, डेवा डेवा दंभ रथी रडेल छे,  
जे अडिं तडिंथी भिक्षा मागीने पोताने निर्वाड करे छे. पोतानुं जे पेट  
भरवानुं जे शीपेल छे. आवा साधुथी संसारनी शुं लदाध थर्क शकवानी  
छे. आ तो डेवण आ पृथ्वी उपर भार जेवा छे. जे कुतरानी माकक घेर  
घेर हररोज लभता रडे छे. आ प्रकारनां वचन सांभणी साधुजे पोताना  
आत्माने डकडे मानता न भनुं जेधजे. आ विषयने जेक उदाहरण द्वारा  
स्पष्ट करवाभां आवे छे—

स्वस्थाऽसि, तथा कथितम्-त्वमेवासि रोगी, अहं तु स्वस्थैवारिम भिक्षादानार्थं महात्मना प्रोक्ता सा गृहस्वामिनी वदति-किमत्र तव पित्रोपार्जनं कृत्वा स्थापितं, तद् ग्रहीतुमत्रागतोऽसि, एतद् वचनं श्रुत्वा स महात्मा परावृत्तः । ततो गृहस्वामिनी वदति-अहो ! भिक्षार्थिनोऽपि तवैतावान् मदः, एहि, एहि, ददामि भिक्षाम्, एवं तथाऽभिहितः सन् स महात्मा पुनस्तद्गृहे भिक्षां ग्रहीतुमागतः । स्थूलाः स्थूलाश्च-तस्रो रोटिकास्तया समानीताः, महात्मना प्रोक्तम्-स्तोकं देहि, गृहस्वामिनी कथ-

कोई एक वृद्ध महात्मा भिक्षा के लिये किसी एक घर पर पहुँचे। वहाँ जाकर गृहस्वामिनि से “ सचित्त जलादिक के स्पर्श से रहित हो कि नहीं ” इस अभिप्राय से पूछा कि बहिन ! स्वस्थ तो हो ? महात्मा जी की बात सुनकर गृहस्वामिनी कहने लगी कि मैं तो स्वस्थ ही हूँ-रोगी तो तुम ही हो। महात्माजी ने फिर उससे भिक्षा देने के लिये कहा तो वह बोली कि यहाँ क्या तुम्हारा बाप कमाकर रख गया है जो लेने के लिये दौड़े आये हो ? इन वचनोंको सुनकर महात्माजी वहाँ से पीछे लौटे। महात्माजी को पीछा लौटा हुआ देखकर गृहस्वामिनि बड़बडाती हुई कहने लगी-ओहो ! भिक्षार्थी होकर के भी इतना अभिमान। अच्छा आओ आओ और भिक्षा ले जाओ। मैं भिक्षा देती हूँ। इस प्रकार जब उस गृहस्वामिनि ने कहा तो महात्मा उसके घर भिक्षा लेने के लिये पीछे आये। वह जब उन्हें मोटी-मोटी चार रोटी देने लगी तो महात्मा-जीने पुनः कहा बहिन थोड़ा आहार दो-यह तो अधिक है। तब गृह

केरुं अके वृद्ध महात्मा भिक्षा माटे केरुं अके घेर पडोन्व्या त्या न्हं गृहस्थनी स्त्रीने “ सचित्त न्जालाकना स्पर्शथी रहित छे के नही ” आ अलिप्रायथी पूछयुं के, अडेन ! स्वस्थ छे ने ? महात्माजीने वात सांलणीने गृहस्थनी स्त्री कडेवा लागी के हुं तो स्वस्थ न्ज छुं-रोगी तो तमेन छे. महात्माजीने पछी तेने भिक्षा आपवा कछुं तो अे भोली के, अडीं कथां तभारे आप कमाधने राणी गयेल छे, न्ज देवा माटे होडी आन्वा छे ? आ वयनेने सांलणीने महात्माजी त्यांथी पाछा कथां, महात्माजीने पाछा कुरेला न्हं गृहस्थनी स्त्री अडभडाट करतां कडेवा लागी, ओहो ! भिक्षार्थी होवा छतां पण् आटवुं अलिमान ! आवे भिक्षा लथ नव. हुं भिक्षा आयुं छुं. आ प्रकारे अे गृहस्थनी स्त्रीने कछुं तो महात्मा अेने घेर भिक्षा देवा पाछा गया ते न्यारे तेने मोटी मोटी चार रोटी देवा लागी तो महात्माजीने कछुं अडेन थोडा आहार आपो-आ तो कछुं छे. त्यारे गृहस्थनी स्त्रीने कछुं-

यति-स्थूलस्य हृष्टपुष्टाङ्गस्य तव कथमल्पेनोदरं भरिष्यति ? इत्यादि परिभववचनं श्रुत्वाऽपि स महात्मा समभावं समालम्ब्य स्वात्मानं हीनं न मन्यते स्म, तदा स उचितभिक्षां गृहीत्वा प्रतिनिवृत्तः । एवं सर्वैर्मुनिभिर्भाव्यम् ॥ १४ ॥

आत्मनो दमने सत्येव क्रोधवैफल्यं कर्तुं शक्यते तस्मात् तदुपदेशं तत्फलं चाह—  
मूलम्—अर्प्णा चेवं दमेयं ष्वो अर्प्णा हुं खलु दुर्दमो ।

अर्प्णा दंतो सुंही होई अंसिं लोएँ परतंथ यं ॥१५॥

छाया—आत्मा एव दमितव्यः आत्मा हु खलु दुर्दमः ।

आत्मानं दाम्यन् सुखी भवति, अस्मिन् लोके परत्र च ॥१५॥

स्वामिनि ने कहा—वाह खूब कहा इतने संडमुसंड तो होरहे हो फिर भी थोड़ा आहार देने के लिये कह रहे हो थोड़े से दिये गये आहार से भला इस हृष्टपुष्ट शरीर की तृप्ति कैसे हो सकेगी । इत्यादि उसके अपमान जनक वचन सुनकर भी वे महात्मा समभावशाली ही बने रहे और उन्होंने उसके वचन से अपने आपको हीन नहीं समझा । वहां से उचित भिक्षा लेकर फिर वे अपने स्थान पर वापिस आगये । इसी प्रकार कहने का मतलब यह है कि समस्त मुनिजनोंको अपने आपको प्रतिकूल संयोग में हीन नहीं मानना चाहिये ॥ १४ ॥

जो आत्मा का दमन करता है वही क्रोध को निष्फल कर सकता है इस लिये सूत्रकार आत्मा-अर्थात्-मन को दमन करने का उपदेश देते हैं एवं उसका फल भी कहते हैं—‘अर्प्णाचेव०’ इत्यादि ।

वाड भूष कहुं, आटला अलमस्त जेवा तो भनी रडेव छे छतां पणु थोडा आहार देवानु कडी रह्या छे. थोडा आहारथी लडा आ अलमस्त शरीरनी तृप्ति कर्छ रीते थर्छ शकशे. छत्यादि जेनां अपमान जनक वचन सांभणीने पणु ते महात्मा समभावशाणी न भनी रह्या अने तेनां तेवां वचनोथी पोतानी नतने हीन नडिं समन्या. त्यांथी उचित भिक्षा लधने पछी ते पोताना स्थान उपर आवी गया. आ प्रकार कडेवानो मतलब जे छे के समस्त मुनि जेनेजे पोत पोताने प्रतिकूल संजोगमां पणु छिन मानवुं न जेछ जे. ॥१४॥

जे आत्मानुं दमन करे छे ते क्रोधने निष्कण करी शके छे आ भाटे सूत्रकार आत्मा-अर्थात्-मनने दमन करवानो उपदेश आपे छे. अने तेनुं इण पणु कडे छे—अर्प्णाचेव० इत्यादि

ટીકા—‘અપ્પા ચેવ૦’ ઇત્યાદિ—

આત્મૈવ=મન એવ, દમિતવ્યઃ—વશી કર્તવ્યો જેતવ્ય ઇત્યર્થઃ, ઇહાત્મશબ્દેન મનો ગૃહ્યતે તસ્યૈવ દમનીયત્વાત્ । આત્મા તુ દમકો બોધ્યઃ । શબ્દાદિ વિષયેષુ પ્રવર્તમાનં મનસ્તતઃ પ્રત્યાહત્ય સ્વાત્મનિ સ્થાપનીયમિતિ ભાવઃ ।

અન્વયાર્થ—(અપ્પાચેવ દમેયવ્વો—આત્મા એવ દમિતવ્યઃ) મન હી દમન કરને યોગ્ય હૈ । ( અપ્પા હુ ખલુ દુદ્દમો—આત્મા હુ ખલુ દુર્દમઃ ) ક્યોં કિ મન હી દુર્દમ હૈ । (અપ્પા દંતો અસ્સિ લોણ પરત્થ ય સુહી હોઈ—આત્માનં દામ્યન્ ઇહલોકે પરત્ર ચ સુખી ભવતિ ) મનકો દમન કરને વાલા જીવ નિયમ સે ઇસ લોક મેં તથા પરલોક મેં સુખી હોતા હૈ ।

ભાવાર્થ—સૂત્રકાર ઇસ ગાથા દ્વારા ઇન્દ્રિયોં કે વિષયોં મેં પ્રવર્તમાન મન કે નિગ્રહ કરનેકા ઉપદેશ દે રહે હૈં । વે કહતે હૈં કિ ઇસલોક એવં પરલોક મેં યદિ સુખી હોના ચાહતે હો—તો મનકા નિગ્રહ કરો ઉસે અપને વશ મેં કરો । જબ તક ઇસકો વશ મેં નહીં કિયા જાયગા તબ તક ઇસકા અધીન બના હુઆ આત્મા કમી મી કિસી મી ભવ મેં સુખ શાંતિ નહીં પાયેગા । આત્મા હી મન કા દમન કર સકતા હૈ । દમન કરનેકા મતલબ યહ હૈ કિ જો મન ઇન્દ્રિયોંકે વિષયોં મેં ગૃહ્ય બના હુઆ હૈ ઉસકો ઉનમેં ગૃહ્ય નહીં બનને દેતા । યહી મનકા દમન કરના હૈ । મનકો વિષયોંસે હટાકર આત્મામેં સ્થાપિત કરના ચાહિયે । તમી આત્મા મેં શાંતિ

અન્વયાર્થઃ—અપ્પા ચેવ દમેયવ્વો—આત્મા એવ દમિતવ્યઃ—,

મનજ દમન કરવા યોગ્ય છે.

અપ્પા હુ ખલુ દુદ્દમો—આત્મા હુ ખલુ દુર્દમઃ—,

કેમકે મનજ દુર્દમ છે.

અપ્પા દંતો અસ્સિ લોણ પરત્થ ય સુહી હોઈ ।

આત્માનં દામ્યન્ ઇહ લોકે પરત્ર ચ સુખી ભવતિ ।

મનનું દમન કરનાર એવ આલોક અને પરલોકમાં સુખી થાય છે.

ભાવાર્થ—સૂત્રકાર આ ગાથા દ્વારા ઇન્દ્રિયોના વિષયોમાં પ્રવર્તમાન મનનો નિગ્રહ કરવાનો ઉપદેશ આપી રહ્યા છે. તેઓ કહે છે કે, આ લોક અને પરલોકમાં જો સુખી થવાં ચાહતા હો તો—મનનો નિગ્રહ કરો, અને પોતાના વશમાં રાખો. જ્યાં સુધી મનને વશ કરવામાં ન આવે ત્યાં સુધી એના આધીન બનેલો આત્મા ક્યારેય પણ—કેઈ પણ ભવમાં સુખ શાંતિથી રહી શકવાનો નથી. આત્મા જ મનનું દમન કરી શકે છે. દમન કરવાનો હેતુ એ છે કે મન ઇન્દ્રિયોના વિષયમાં વ્યાપ્ત બન્યું છે. એને એમાંથી દુર કરવું એજ મનનું દમન કરવું છે. મનને વિષયોથી હટાડી આત્મામાં સ્થાપિત કરવું જોઈ એ. ત્યારે



उक्तंच—जओ जओ संचरइ, मणो चंचलमत्थिरं ॥

तओ तओ नियमिय, कुज्जा अप्पंमि तं थिरं ॥१॥

छाया—यतो यतः संचरति मनः चंचलमस्थिरम् ।

ततस्ततो नियम्य कुर्यात् आत्मनि तत् स्थिरम् ।

सूर्योदये सति शीतवेदना निवृत्तवन्मनोविजये सति सकलदुःखानामात्यन्तिक निवृत्तिर्भवति । अविजितं मनस्तत्त्वज्ञानं विनाशयति तपः संयमशिखरादात्मानं

जाग्रत हो सकती है। आत्मा शब्द का अर्थ यहाँ पर मन है। क्यों कि इसीका दमन किया जाता है। जीव आत्मा इसका दमन करने वाला है। दमन करने से आत्मा को सब से बड़ा भारी लाभ यह होता है कि जिस प्रकार सूर्यके उदय होने पर शीतवेदना की निवृत्ति हो जाती है उसी प्रकार मनको जीत लेने पर आत्मा से सकल दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। इसीलिये शास्त्रकारों का यह उपदेश है कि “जओ जओ संचरइ मणो चंचलमत्थिरं। तओ—तओ नियमिय कुज्जा अप्पंमि तं थिरं ॥ यह अस्थिर चंचल मन जिन-जिन पदार्थोंकी ओर झुके-उनमें चले-उसे वहाँ से खेंचकर मोक्षाभिलाषी का कर्तव्य है कि वह उसे अपनी आत्मा में संलग्न करे। जबतक मन स्थिर नहीं होगा उसका निग्रह नहीं होगा-तब तक तत्त्वज्ञान आत्मा में उत्पन्न नहीं हो सकता है। तत्त्वज्ञान की जागृति हुए विना आत्मा को हेय एवं उपादेय पदार्थोंका वास्तविक भान नहीं हो सकता। मनकी ही तो यह चंचलता

७ आत्माभां शांती नगी शके छे. आत्मा शब्दने अर्थ अडीं मन छे. केम के आत्मानुं ७ दमन करवाभां आवे छे. एव आत्मा अेनुं दमन करवावाणा छे. दमन करवाथी आत्माने मोटाभां मोठो लाल तो अे थाय छे के ७ प्रकारे सूर्यने उदय थवाथी ठंडीनी वेदानानी निवृत्ति थाय छे. अे ७ रीते मनने एती वेवाथी आत्माना सकण दुःखोनी निवृत्ति थर् नय छे. आ भाटे शास्त्रकारोने आ उपदेश छे के:-

“जओ जओ संचरई, मणो चंचलमत्थिरं ।

तओ तओ नियमिय, कुज्जा अप्पंमि तं थिरं ॥”

आ अस्थिर चंचल मन ७ ७ पदार्थोनी तरक् ढणे-अेभां आवे-अेने त्यांथी अेथीने मोक्षाभिलाषीअे पोताना आत्माभां संलग्न करी हेतुं न्नेथ अे. न्यां सुधी मन स्थिर नही होय-त्यां सुधी अेने निग्रह थनार नथी-त्यां सुधी तत्त्वज्ञान आत्माभां उत्पन्न थर् शकतुं नथी. तत्त्वज्ञाननी नगृति थया वगर आत्माने उेय अने उपादेय पदार्थोनुं वास्तविक भान थर् शकतुं नथी.

पातयति उन्मार्गं प्रापयति चतुर्गतिकसंसारचक्रे भ्रामयति नरकनिगोदाद्यनन्तदुःख-  
गते निपातयति रत्नत्रयं लुण्ठयति आत्मगुणान् घातयति ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं  
कर्मोपार्जयति । तस्मान्मनो निग्रहं कुर्यात् ।

अत्रोदाहरणम्—

तथाहि—एको लब्धिसंपन्नो महात्मा बद्धसदोरकमुखवस्त्रिकः ध्याननिष्ठः सन्

है जो अच्छे-अच्छे ज्ञानीजन भी संयमरूपी शिखर से इकदम पतित  
हो जाते हैं और नहीं सेवन करने योग्य मार्ग में भी प्रवृत्त हो जाते हैं।  
इससे उनकी चतुर्गतिरूप संसार में परिभ्रमणरूप दुर्दशा ही होती रहती  
है। नरक एवं निगोद के अनंत दुःखों को वे भोगते हैं। इन समस्त  
दुःखों से आत्मा का संरक्षण करनेवाला जो रत्नत्रय धर्म है—वह उनका  
लुटा जाता है। वे बिलकुल निर्धन बन जाते हैं। इन निर्धनता में और  
भी अनेक जो आत्मा के सद्गुण हैं उनका विकास नहीं होते पाता है  
इस स्थिति में इस आत्मा की इतनी दयनीय स्थिति हो जाती है, कि  
ज्ञानावरणादिक अष्ट प्रकार के कर्म इस पर रात दिन अपना प्रहार  
करते रहते हैं। इसको उस समय बचानेवाला कोई नहीं होता है। इस  
लिये मोक्षामिलायी का कर्तव्य है कि वह मन का निग्रह करे।

इस विषय को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जाता है—

कोई एक महात्मा जो लब्धिसंपन्न थे, एक वृक्ष के नीचे ध्यानमें

मन એવું ચંચળ છે કે ભલભલા જ્ઞાનીજનને પણ સંયમરૂપી શિખર ઉપરથી  
એકદમ નીચે ગબડાવી મુકે છે, અને સેવન ન કરવા યોગ્ય માર્ગમાં પ્રવૃત્ત  
બનાવી દે છે. આથી તેમની ચતુર્ગતિરૂપ સંસારમાં પરિભ્રમણ રૂપ દુર્દશા જ  
થતી રહે છે. નરક અને નિગોદના અનંત દુઃખો તે ભોગવે છે. આ સમસ્ત  
દુઃખોથી આત્માનું રક્ષણ કરનાર જે રત્નત્રય ધર્મ છે—તે એની પાસેથી  
લુટાઈ બચે છે, આથી બિલકુલ નિર્ધન બની બચે છે. આ નિર્ધનતામાં  
આત્માના જે બીજા સદ્ગુણ હોય છે એનો પણ વિકાસ થતો નથી. આ  
પરિસ્થિતિમાં આત્માની એટલી દયામય હાલત થઈ બચે છે, કે જ્ઞાનાવરણાદિક  
આઠ પ્રકારનાં કર્મ રાત અને દિવસ એના પર પ્રહાર કરતાં રહે છે. આ સમયે  
એને આમાંથી કોઈ બચાવનાર હોતું નથી. આ માટે મોક્ષામિલાયીનું કર્તવ્ય  
છે કે, તે મનનો નિગ્રહ કરે.

આ વિષયને એક ઉદાહરણ દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવે છે—

કોઈ એક મહાત્મા જે લબ્ધિસંપન્ન હતા, એક વૃક્ષની નીચે ધ્યાનમાં

वृक्षतले उपविष्ट आसीत् तदा तेन महात्मना ध्यानावस्थायामेकं श्वापदसंकुलं व्यालाकुलं विशालं महारण्यं दृष्टम् । तत्रैको पुरुषस्तेन दृष्टः, स च सहस्रश्रुजो विस्तृतकायः सहस्रहस्तधृतैः सहस्रशुलैः स्वदेहं ताडयन् भीतभीत इव चीत्कारं कुर्वन्नितस्ततः पलायमानः शतयोजनानि धावमानः श्रमेण शिथिलावयवः परवशः सन् पातालवद्गम्भीरे गाढान्धकारे महान्धकूपे निपतितः । पुनरसौ तस्मादन्यकूपाद् बहिर्निःसृतः पूर्ववत् सहस्रशुलैः स्वदेहं ताडयति तदनु महत्यामग्निज्वालायां शलभ इवासौ प्रविष्टः । पुनरसौ ततोऽपि बहिर्निः सृत्यकण्टकाकीर्णं महारण्ये इतस्ततो धावति, तदनु पुनः स्वदेहोपरि पूर्ववत्सहस्रशुलप्रहारं कुर्वन् स दृष्टः ।

बैठे हुए थे । मुख पर सदोरक मुखवस्त्रिका बँधी हुई थीं, उन्हें उस ध्यान में एक विशाल जंगल दिखलाई पड़ा । जो श्वापदोंहिंसक प्राणीयों से संकीर्ण एवं व्याप्त था । उस में उन्होंने एक महाकाय व्यक्ति जिसके हजार हाथ थे देखा । उसके सब ही हाथों में मुसल थे । वह इधर उधर भागता हुआ मुसलको शरीर पर मारता हुआ भयंकर चीत्कार शब्द करता था । वह भगता भी इतना अधिक कि सौ योजन तक निकल जाता । जब वह थक जाता और उसका शरीर जब ढीला हो जाता तब वह पाताल के समान गंभीर एक महान्धकूप में कि जिसमें गाढ अंधकार ही अंधकार था उसमें गिर जाता था । पीछे वहाँसे निकलना और इसी तरह अपने शरीर को हजारों मुसलोंसे पीटता, बाद में शलभ—(पतंग) की तरह एक महती अग्निज्वाला में प्रविष्ट हो जाता । पश्चात् वहाँ से भी निकल कर वह एक कण्टकाकीर्ण अरण्य में घुस जाता और वहाँ इधर उधर दौड़ता हुआ अपने शरीर को सहस्र मुसलों से पूर्वकी तरह

झेड़ा होता. मोटा उपर दोरासाथे मुण्वस्त्रिका बाँधेला होती. ऐमने ऐ ध्यानमां  
ऐक विशाल जंगल देखायुं, ऐ अनेक प्रकारना हिंसक प्राणीयोथी लरेकुं  
हुतुं, तेमां ऐमण्णे ऐक महाकाय व्यक्ति जेने उन्नर हाथ छे तेवी जेध, ऐना  
अथा हाथोमां मुशण हुतां, ते अडिंथी तडीं होउता होउता मुसलोने पोताना  
शरीर पर मारतो हुतो अने लयंकर चित्कार शब्द करतो हुतो, ऐ ऐटला  
जेरथी होउतो हुतो के सो योजन सुधी निकणी जतो. थाक लागतो अने शरीर  
न्यारे ढीलुं थर्ध हुतुं त्यारे ते भुण्ज उंडा अने गाढ अंधकारथी छवायेल  
कुवामां कुही पउतो, पाछो त्यांथी निकणतो अने ऐज रीते उन्नरो मुसलोथी  
पोताना शरीरने टीपतो. आदमां शलभ (पतंग)नी माइक ऐक महती अग्नि-  
ज्वालामां पउतो अने त्यांथी पणु नीकणीने ते महान कांटांओवाणा  
जंगलमां घुसी जतो त्यां पणु आम तेम होउतो अने पडेलांनी जेम पोताना  
उ० १४

अथासौ दूरं गत्वाऽट्टाहासं कुर्वन् धावमानश्चन्द्रकिरणशीतलं कदलीवनं प्रविष्टः । क्षणादेव ततोऽपि बहिर्निःसृत्य पुनः स्वदेहोपरि सहस्रमुशलैः प्रहारं कुर्वन् धावमान इतस्ततो भ्राम्यति । पुनः श्रमेण शिथिलावयवः सन् महान्धकपे निपतितः । ततश्चिरेण निःसृत्य पुनः कदलीवनं प्रविष्टः, ततोऽपि निर्गत्य लतावनं गतः, लतावनाद् बहिर्भूत्वाऽन्धकूपे पतितः, तदनु कूपाग्निःसृत्य कुसुमवनं गतस्तत्रैतस्ततो धावमानः स्वदेहोपरि मुशलैः प्रहारं करोति ततोऽपि निःसृत्य फलवनं प्रविष्टः, तत्रापि धावमानः स्वदेहोपरि पूर्ववत् सहस्रमुशलैः प्रहारं करोति । एवंविधं पुरुषं स महात्मा ज्ञान दृष्ट्या विलोक्य स्वलब्धि बलेन तस्य प्रतिरोधं कृत्वा पृष्टवान्-कस्त्वम् ? किमर्थमेवं क्रियते ? तव किं प्रियमस्ति ? एवं पृष्टोऽसौ पुरुषोऽब्रवीत्-

ही प्रहारित करता । फिर दूर जाकर बड़े जोर से हँसता और चंद्रकिरण के समान शीतल कदलीवन में प्रवेश कर वहाँ विश्राम करने लगता । क्षण एक विश्रामित होकर वहाँसे बाहर आते ही फिर वही अपनी चाल शुरू करता, जब वह इस चाल से थक जाता था तो गाढ़ अंधकार वाले कूएँ में गिर जाता था, वहाँ से निकल कर फिर कदली वनमें जाता, वहाँ से बाहर होते ही लतावन में वहाँसे फिर अंधकूप में वहाँ से कुसुमित वन में, वहाँ से फल वाले वन में इस प्रकार भ्रमण करता-करता वह अपने शरीर को मूसलों के प्रहारोंसे कूटता रहता । महात्मा ने जब इस प्रकार की इसकी स्थिति देखी तो उन्हें बड़ा ही अचरज हुआ । उसकी इस स्थिति को उन्होंने अपने लब्धिबलसे स्थंभित कर दिया और उससे पूछा-तुं कौन है और क्यों इस प्रकार की चेष्टाएँ करता है ? तुझे क्या प्रिय है ? महात्माकी इस बात को सुनकर उसने कहा कि मैं और कोई

शरीर उपर मुशलेना इटका लागवतो पछी थोडा आगण वधी नेर नेरथी डसतो अने अंद्रकिरेषु समान शीतल केजोना वनमां प्रवेश करी त्यां आराम करवा लागतो. थोडा समय विश्रांति लध-श्रम रहित अनी त्यांथी अडार नीकणी पूर्ववत् होडा होड अने शरीर उपर मुशलना प्रडारनी प्रवृत्ति. अंध-कारवाणा कुवामां पडवुं, इरी पाछे केजोना वनमां प्रवेश, त्यांथी लता वनमां, त्यांथी इरी कुवामां, त्यांथी नीकणी इरी केजोना वनमां, आ प्रकारे भ्रमण करतो अने पोताना शरीरने मुसलेथी भारतो. आ स्थिति न्यारे मडात्माअे लेध त्यारे तेभने लारे अचरज थध, अेनी अे स्थितिने पोताना लब्धिअणथी स्थंभित अनावी इध मडात्माअे तेने पूछयुं-तुं केषु छे अने आ प्रकारनी चेष्टाअे शा भाटे करे छे ? तने शुं प्रिय छे ? मडात्मांनी वात सांलणी तेणे कथुं के

अहमन्यो नास्मि किं तु मनोनाम्ना प्रसिद्धोऽस्मि इष्टानिष्टशब्दादिविषये प्रवर्तमानोऽहं तृष्णारज्ज्वा प्राणिनं बध्नामि, ततस्तमारम्भपरिग्रहाऽऽसक्तं संसारचक्रे भ्रामयन् कदाचिद्देवजातौ कदाचिन्नरजातौ कदाचित्तिर्यग्जातौ कदाचित् पृथिव्यादिस्थावरयोनिषु द्वीन्द्रियादि-त्रसयोनिषु अनन्तदुःखं प्रापयामि । यदा तु भवादृशेन महात्मना निगृहीतो भवामि तदा रत्नत्रयाराधनं कारयामि, मोक्षमार्गं स्थापयामि, क्षपकश्रेणिमारोहयामि । शनैः शनैर्निग्रहाभ्यासप्रकर्षे सति शास्त्रसंदर्शि-

नहीं हूँ—मेरा नाम मन है । इष्ट अनिष्ट शब्दादिक विषयों में प्रवृत्ति करना और तृष्णारूपी रस्सी से प्राणियों को जकड़ना यही मुझे प्रिय है । मुझे आनंद भी इसी में आता है कि जब प्राणी आरंभ परिग्रह में आसक्त होकर संसार चक्रमें घूमता है । मैं ही तो उनकी इस स्थिति का मूल कारण बनता हूँ । कभी मैं जीवों को देवजाति में, कभी मनुष्य योनि में कभी तिर्यञ्चगति में, कभी पृथ्व्यादिक स्थावर योनि में, कभी द्वीन्द्रियादिक त्रस पर्यायों में घुमाता रहता हूँ और वहाँके अनंत कष्टों का उन्हें पात्र बनाता हुआ बड़ा खुशी होता रहता हूँ । आप जैसे महात्माओं पर दुःख है कि मेरा बश नहीं चलता । कारण कि आपके सामर्थ्य के आगे मेरी शक्ति सर्वथा संकुचित हो जाती है । वह इस दिशा में न वह कर दूसरी दिशा तरफ बहने लग जाती है । इसलिये मैं निगृहीत होकर आप जैसे से रत्नत्रय की आराधना करवाता हूँ । मुक्ति के मार्ग में लगा देता हूँ तथा क्षपकश्रेणि पर भी चढा देता हूँ । जब साधुजनों का मुझे निग्रह करने

हुं थीले केई नथी—भाइं नाम मन छे. इष्ट अनिष्ट शब्दादिक विषयोमां प्रवृत्ति करवी अने तृष्णाइपी रस्सीथी प्राणीओने आंधवा ओ मने पसंद छे. मने आनंद पणु ओ वातमां आवे छे के न्यारे प्राणी आरंभ परिग्रहमां आशक्त अनी संसार चक्रमां घूमे छे. हुं पोतेअ तेनी आ स्थितिनुं मूण कारण अतुं छुं, केई वअत हुं ओवोने देव जातीमां, क्यारेक मनुष्य योनीमां, क्यारेक तिर्यञ्च गतिमां, क्यारेक पृथ्वी आदि स्थावर योनीमां, क्यारेक ओ द्वीन्द्रियवाणा त्रस पर्यायोमां घूमतो रहुं छुं. अने त्यांना अनेक कष्टोने पात्र अनावी हुं खुशी थतो रहुं छुं. आप जेवा महात्माओ उपर भारे प्रभाव पडी शकतो नथी ओ वातनुं मने दुःख छे. कारण के आ आपना सामर्थ्य आगण भारी शक्ति सर्वथा संकुचित अनी नय छे. ते आ दिशामां न वहेतां थीले दिशा तरफ वहेती डोय छे. आ भाटे हुं निगृहीत अनीने आप जेवाओधी रत्नत्रयनी आराधना करवतुं छुं मुक्तिना मार्गमां लगाडी हउं छुं, अने क्षपक



तोपायाः वचनगोचरातीताः, निग्रहाभ्यासप्रकर्षरहितप्राणिगणसंवेदनयाऽगम्याः सिद्धिपदसंपज्जनकाः सूक्ष्मसूक्ष्मतरार्थविषया मनाक् समुल्लसत्स्फुटप्रतिभासा ज्ञानविशेषा उत्पद्यन्ते। ततः किंचिद्दूनात्यन्तप्रकर्षे निरपेक्षमत्यादिज्ञानं प्रकर्षपर्यन्तोत्तरकालभाविकेवलज्ञानादर्वाक्तं सवितुरुदयात् प्राक् तदालोककल्पम् अशेषरूपादिवस्तुविशेषं प्रातिभं ज्ञानमुदयते, पश्चात् सर्वोत्कृष्टप्रकर्षे सति सुस्पष्टप्रतिभासंसकललोकालोकविषयमनुपममबाध्यं केवलज्ञानमुत्पद्यते। एवमुक्त्वाऽसौ तिरोहितो जातः। तस्मादात्मैव दमनीयः।

का अभ्यास धीरे-धीरे प्रकर्ष अवस्था को प्राप्त हो जाता है तब इस अभ्यास की प्रकर्षता की कृपा से उन्हें ज्ञानविशेषोंकी प्राप्ति हो जाती है। इनसे वे शास्त्र प्रतिपादित उपायों का निरीक्षण किया करते हैं। उन ज्ञानविशेषों का कथन ऐसा तो नहीं है जो आपके समक्ष वचनों द्वारा कथित हो सके। यह बात तो वे ही जान सकते हैं जो इस अवस्था पर पहुँच चुके होते हैं। जिनकी आत्मा इस निग्रह के अभ्यास के प्रकर्ष से विहीन है भला वे इनके स्वाद को क्या जानें। ये ज्ञान विशेष सिद्धिपदरूपी संपत्ति के जनक होते हैं। सूक्ष्म, सूक्ष्मतर भी पदार्थोंके ये निर्णायक होते हैं। इनसे जीवोंका कुछ-कुछ पदार्थोंका स्पष्ट प्रतिभास होने लग जाता है। जब मनोनिग्रह करनेका अभ्यास किञ्चित् न्यून अत्यंत प्रकर्ष अवस्था तक पहुँच जाता है तब उस समय आत्मा में प्रातिभ नामका एक ज्ञानविशेष उत्पन्न होता है। यह ज्ञान केवलज्ञानसे पहिले होता है। इसमें मत्यादिक परोक्ष ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रहती है।

श्रेणी पर पणु यडावी दडं छुं. न्यारे साधुजनने निग्रह करवाने मने अभ्यास धिरे धिरे प्रकर्ष अवस्था प्राप्त थाय छे, त्यारे आ अभ्यासनी प्रकर्षतानी कृपाथी तेने ज्ञान विशेषेनी प्राप्ति थई नय छे, तेनाथी ते शास्त्र प्रतिपादित उपायेनुं निरीक्षण कर्था करे छे. अे ज्ञान विशेषेनुं कथन अबुं तो नथी अे आपनी सामे वचनथी कही शक्या, ते वात तो तेअ न्णथी शके छे अे आ अवस्थाने पडोअेल छे. जेनी आत्मा आ निग्रहना अभ्यासना प्रकर्षथी विहित छे. आवा अेव अे स्वादने कथाथी न्णथे. आ ज्ञान विशेष सिद्धि पदरूपी संपत्तिना जनक डोय छे. सूक्ष्मथी सूक्ष्म पदार्थेना पणु अे न्णुकार डोय छे. अेमनाथी अेवने डोई डोई पदार्थेना स्पष्ट प्रतिभास थवा लागे छे. मनो निग्रह करवाने अभ्यास न्यारे थोडा अंशे अत्यंत प्रकर्ष अवस्था सुधि पडोअथी नय छे त्यारे अे समये आत्माभां प्रातिभ नामनुं अेक ज्ञानविशेष उत्पन्न थाय छे. आ ज्ञान केवल ज्ञानथी पडैलां थाय छे. तेभां मत्यादिक परोक्ष



यद्वा—आत्मा=बाह्येन्द्रियं दमितव्य एव बाह्येन्द्रिय पञ्चविधं श्रोत्रचक्षुर्घ्राण रसनस्पर्शनभेदात् । बाह्येन्द्रियाणां दमनाकरणे आत्मनो विनाशः स्यात् । उक्तंच—

जिस प्रकार सूर्य के उदय होने के पहिले उसका आलोक-प्रकाश प्रसृत हो जाता है उसी प्रकार समस्त रूपादिक पदार्थोंको विषय करने वाला यह प्रतिभज्ञान, केवलज्ञानरूप सूर्य के उदित होने के पहिले उसकी प्रभा सरीखा प्रकट हो जाता है । जिससे यह बात निश्चित हो जाती है कि अब इस आत्मा में केवलज्ञान का उदय होनेवाला है । जब मनो-निग्रह का अभ्यास सर्वोत्कृष्ट अवस्था संपन्न हो जाता है तब उस समय आत्मा में केवलज्ञान की उद्भूति हो जाती है । इसके समस्त पदार्थोंका स्पष्ट प्रतिभास होने लग जाता है । कोई भी रूपी अथवा अरूपी पदार्थ ऐसा नहीं बचता जो केवलज्ञान का विषय नहीं बनता हो । यह ज्ञान अनुपम है—ऐसा कोई और ज्ञान नहीं है—कि जिससे इसे उपमित किया जा सके । इसके द्वारा प्रकाशित पदार्थों में किसी भी प्रकार से बाधा नहीं आती है । इस प्रकार महात्मासे कहकर वह मन नामका पुरुष अन्तर्हित हो गया ॥

आत्मा शब्द का अर्थ बाह्य इन्द्रियां भी हैं । वे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण के भेद से ५ प्रकार की हैं । मोक्षाभिलाषी आत्मा

ज्ञाननी अपेक्षा रहेती नथी. जेम सूर्यने उदय थया पड़ेलां तेना आववानो प्रकाश प्रसार पाये छे, लास प्रस्तुत भने छे ते प्रकारे समस्त रूपादिक पदा-र्थोना विषय करवावाणा आ प्रातिल ज्ञान केवण ज्ञानरूप सूर्यना उदय थयां पड़ेलां तेनी प्रभाइये प्रगट थाय छे. जेथी जे वात निश्चय भने छे डे हवे आ आत्माभां केवलज्ञानने उदय थवानो छे. ज्यारे मनोनिग्रहने अभ्यास सर्वोत्कृष्ट अवस्था संपन्न जनी जाय छे, त्यारे ते समय आत्माभां केवलज्ञाननी उद्भूति थय जाय छे. आथी समस्त पदार्थोना स्पष्ट प्रतिभास थवा लागी जाय छे. केछ पञ्च रूपी अथवा अरूपी पदार्थ जेवे नथी अथतो जे केवलज्ञानने विषय न अनतो होय, आ ज्ञान अनुपम छे जेवुं भीजुं केछ ज्ञान नथी डे जेनाथी आने उपमित करी शके. तेना द्वारा प्रकाशित पदार्थोभां केछ पञ्च प्रकारनी बाधा आवती नथी. आ प्रकारे महात्माने कहीने ते मन नामने पुरुष अंतर्धान थय गयो.

आत्मा शब्दने अर्थ बाह्य इन्द्रियो पञ्च छे, जे स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, अने कानना लेहथी पांच प्रकारनी छे. मोक्षाभिलाषी आत्मा जेवुं दमन

कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्ग,-

मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।

एकः प्रमादीस न हन्यते किं,

यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥ १ ॥

अन्यच्च—इन्द्रियाणां हि चरतां, विषयेष्वपहारिषु ।

संयमे यत्नमातिष्ठेद्, विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥ १ ॥

अयमर्थः—विद्वान्=तत्त्वज्ञः अपहारिषु=भ्राकर्षकेषु=तत्तदिन्द्रियविषयेषु चरतां=गच्छताम् इन्द्रियाणां संयमे=संयमने यत्नम् आतिष्ठेत्=कुर्यात्, क इव ? इत्याह-वाजिनाम्=अश्वानां यन्तेव=सारथिरिवेति ।

यदि इनका दमन नहीं करता है तो वह मुक्तिमार्ग में प्रवृत्त नहीं हो सकता है और न साधक ही बन सकता है । इन्द्रियों का यदि दमन न किया जाय तो शास्त्रकारों ने यहां तक कह दिया है कि आत्मा का भी विनाश हो जाता है । कहा भी है—देखो—जब क्रमशः एक एक इन्द्रिय के विषय में लोलुप होने से कुरंग-हिरण, मातंग-हस्ती, पतंग, भ्रमर एवं मीन-मछली, ये प्राणी अपने प्राणों से रहित होते हैं तब जो मनुष्य पांचों इन्द्रियोंके विषय में लोलुप बनेगा क्या वह विनष्ट नहीं होगा ? परंतु अवश्य विनष्ट होगा—दुर्गति को प्राप्त करेगा । अतः जिस प्रकार यन्ता-अश्वरोही-घुड़सवार-हृच्छित मार्ग पर चलाने के लिये घोड़े को लगाम द्वारा अपने आधीन बना लेता है उसी प्रकार आत्महितैषी का कर्तव्य है कि वह भी इन इन्द्रियरूपी घोड़ों को कि जो अपने-अपने

न करे तो ते मुक्ति मार्गमां प्रवर्तं अनी शकते नथी. तेमञ्ज साधक पञ्च अनी शकते नथी. इन्द्रियोनुं जे दमन न करवाभां आवे तो शास्त्रकारोअे त्यां सुधी कडेकुं छे के, आत्मानो पञ्च विनाश थर्ध ज्य कथुं पञ्च छे-जुओ-ज्यारे कुमथी अेक अेक इन्द्रियना विषयमां डोडुप डोवाथी कुरंग-डरथु, मातंग-डार्थी, पतंग, भ्रमर, तेमञ्ज मछली, आ प्राणी पोताना प्राणोथी रडित अने छे. तो पछी माणुस ज्यारे पांचेय इन्द्रियोना विषयमां डोडुप अनी रडे तो तेनो नाश न थाय ? अरेअर नाश थवानो-दुर्गतिने प्राप्त करशे. अेथी जे रीते घोडेस्वार हृच्छित मार्ग उपर चलाववा भाटे घोडाने लगाम द्वारा पोताना आधीन अनावी डे छे. अेज प्रकारे आत्महितैषीनुं कर्तव्य छे के, ते पञ्च आ इन्द्रियरूपी घोडाओने के जे पोत पोताना विषयोनी तरक्ष अर्थात् असंयम

अयं भावः—मनोनिग्रहेण बाह्येन्द्रियनिग्रहेण चात्मा उपशमभावे नेतव्य इति भावः ।

हु=निश्चयेन, खलु-यतः आत्मा दुर्दमः=दुर्जयः ।

अत्रोदाहरणम्—

‘अप्पा हु खलु दुहमो’ इति भगवद्वचनं भद्राचार्यसन्निधौ श्रुत्वाऽऽत्मक-  
ल्याणसाधक उग्रवंशोत्पन्न उग्रनामा नृपः प्रव्रज्यां गृहीतवान् । स्वकल्याणार्थं मनो  
निग्रहीतुं प्रवृत्तः । किन्तु मनः पारदवत् परमचञ्चलम्, तेन तत्स्वायत्तं न जातम्,  
असौ मुनिव्रतधारी नृपश्चिन्तयति—अहो ! एकेनापि कोपकटाक्षमात्रेण सर्वे जना  
ममाज्ञां शिरसि धृत्वा ममायत्ताः सन्तो मम चरणं शरणीकृत्य तिष्ठन्ति स्म । परन्तु

विषयों की ओर अर्थात् असंयम मार्ग में प्रवृत्ति करते हैं । संयमरूपी  
लगाम से संयमित करे जिससे उनकी असंयम में प्रवृत्ति रुक जाय । कहने  
का भाव यही है कि पांच इन्द्रिय एवं मन इन छह को निगृहीत करने से  
आत्मा अपने उपशम भावमें स्थित होता है । अतः इनके निग्रह करनेका  
प्रयत्न प्रत्येक मोक्षाभिलाषी आत्मा को करना चाहिये । “अप्पा हु  
खलु दुहमो ” इस प्रभु कथित वचन को भद्राचार्य के पास सुनकर उग्र-  
वंशीय उग्र नामका राजा दीक्षित हुए । उन्होंने हर तरह से अपने मन  
को निग्रह करने का खूब प्रयत्न किया, परन्तु पारे एवं पवन के समान  
अति चंचल होने से उसका वह निग्रह नहीं कर सके । उसी मुनिव्रत-  
धारी राजा ने विचार किया—बड़े आश्चर्यकी बात है कि एक कोपकुटिल  
भ्रुकुटीमात्र से भी समस्त मेरे प्रजाजन मेरी आज्ञाको शिर पर धारण  
कर लिया करते थे और चरण की शरण में आ जाते थे—परन्तु—यह

मार्गमां प्रवृत्ति करे छे. अने संयमरूपी लगामथी संयमित अनावे अनाथी  
तेनी असंयमनी प्रवृत्ति रोकाथ नय. मतकथ कडेवाने अे छे के, पांच इन्द्रिय  
अने मन, आ छ ने निगृहीत करवाथी आत्मा पोताना उपशम भावमां स्थित  
थाय छे. आथी अेना निग्रह करवाने प्रयत्न हरेक मोक्षाभिलाषी आत्माअे  
करवे जोध अे. “अप्पाहु खलु दुहमो” आ प्रभुअे कडेवा वचनने भद्राचार्यनी  
पासेथी सांभलीने उग्रवंशीय उग्र नामना राजा दीक्षित थया. तेअेअे हरेक  
प्रकारे पोताना मनने निग्रह करवाने अुअ प्रयत्न कर्ये, परंतु पवनना समान  
अति अंचल होवाथी तेनाथी निग्रह करी शकथे नही. अे मुनिव्रतधारी राजाअे  
विचार कर्ये—अेषा आश्चर्यनी बात छे के, अेक कोप कुटिल भ्रुकुटी मात्रथी मारा  
समस्त प्रजाजने मारी आज्ञाने माथा उपर धारण करता हता अने अरथुना  
शरणमां आवी जाता हता. परंतु आ मन केटलुं अणवाणुं छे अे मारा वशमां

इदमेकमेव मनः शतधा मां नर्तयति, अहं जातिसम्पन्नः कुलसम्पन्न उग्रवंशीयः क्षत्रियोऽस्मि, येन केनापि प्रकारेणातिचञ्चलमिदं मनः स्वायत्तीकरिष्यामि तपसा संयमेन वा स्वाध्यायध्यानादिना वा यथातथा मनः सुस्थिरं करिष्यामि, इति मनसि निश्चित्य समितिषु मनः संयोजयति, ततो निःसरति तदनु गुप्तिषु नियोजयति ततोऽपि निःसृतं स्वाध्याये, ततोऽपि निःसृतं सूत्रार्थचिन्तनलक्षणे ध्याने

मन कितना बलिष्ठ है जो मेरे वशमें नहीं आता है—उल्टा मुझे ही अनेक तरह से नचाता है। मैं जाति संपन्न हूँ, कुल संपन्न हूँ और उग्रवंशीय क्षत्रिय हूँ, अतः मेरा कर्तव्य है कि इसका विजय करने के लिये मैं अपनी शक्ति का परिचय दूँ। मैं कोई ऐसा वैसा व्यक्ति तो हूँ नहीं जो इसके वश में पड़ जाऊँ। अतः जैसे भी हो सकेगा हर एक उपाय से चाहे यह कितना भी चंचल क्यों न हो इसे अपने अधीन बनाकर ही रहूँगा। यदि यह तप से वश में होना चाहेगा—तो तप करूँगा—संयम से वश में होना चाहेगा—तो संयम मार्ग अराधुंगा, यदि स्वाध्याय एवं ध्यान से वश में होना चाहेगा—तो स्वाध्याय, ध्यान करूँगा, परंतु इसे अब छोड़ूँगा नहीं। इस प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञा होकर सर्वप्रथम उसने पांच समितियों के पालन करने में मनको नियुक्त किया, परन्तु यह तो बड़ा ही चंचल था, इसलिये ज्यों ही वहां से निकला की गुप्तियों में नियुक्त किया, फिर भी यह वहां कुछ ही देर ठहर कर जब इसने इधर उधर जानेका प्रयत्न किया कि राजऋषि ने शीघ्र ही स्वाध्याय में निरत कर दिया।

आवतुं नथी. उलटुं मनेन अनेक रीते नचावे छे. हुं जति संपन्न छुं, कुल संपन्न छुं, अने उग्र वंशीय क्षत्रिय छुं. आथी भाइं कर्तव्य छे के, येना उपर विजय करवा भाटे हुं भारी शक्तिने परिचय करावुं. हुं कोछ अवेना नभणा मनने भाणुस नथी के येना वशमां पडी जठं. आथी जेम अने तेम दरेक उपायथी आडे ते केटवुं पणु अंचल केम न डोय तेने भारा आधिन अनावीने न नपीश. जे ते तपथी वश अनशे तो हुं तप करीश—संयमथी वश थशे तो संयम मार्गनुं आराधन करीश, जे स्वाध्याय अने ध्यानथी वशमां आवशे तो स्वाध्याय, ध्यान करीश. परंतु आने हुं छोडनार नथी. आ प्रकारनी दृढ प्रतिज्ञा लछि सर्व प्रथम तेणे पांच समितिअेनुं पालन करवामां मन परोअुं परंतुं मन तो लारे अंचल हुतुं आ डारणे जेम त्याथी निकअुं के गुप्तिअेमां नियुक्त थयुं. छतां पणु ते त्यां थोडीवार रडी न्यारे तेणे अडिं

नियमयति, ततोऽपि निःसृतं पुनरुपशमभावे समारोहयति, ततोऽपि निःसृतं दृष्ट्वा स चिन्तयति—अहो ! मनो हि दुर्दमम् तदपि ज्ञानक्रियाभ्यां वशीकरिष्यामि, इति विचिन्त्य क्षपकश्रेण्यामारुह्य मनो निगृह्य शुक्लध्यानद्वितीयपादं संप्राप्य केवलज्ञानं प्राप्तवान् । आत्मानं दाम्यन् अस्मिन् लोके परत्र च सुखी भवति ।

अत्रोदाहरणम्—

एको धर्मघोषनामाऽऽचार्यः शिष्यसहितो ग्रामानुग्रामं विहरन् विस्मृतमार्गः पञ्चशतचौराधिष्ठितायां चौरपल्लयां गतः । मार्गविस्मरणादेव चातुर्मास्यकरणार्थं

जब यह वहाँ भी नहीं ठहरा तो सूत्रार्थचिन्तनरूप ध्यान में लगा दिया । तब यह वहाँ सूत्रार्थ के चिन्तन करने में लग गया । परंतु यह बहुत काल तक स्थित नहीं रह सका । तो फिर उसको उपशम भाव में लगाया । जिससे उसको शांति मिले, फिर भी यह स्थिर नहीं रहा और निकला तो मुनि विचारने लगे अहो ! मन बड़ा ही दुर्दम है उसको ज्ञान एवं क्रिया में लगा दिया । ज्ञान क्रिया से इसको वश में करूँगा ऐसा निश्चित विचारकर क्षपक श्रेणी का आश्रयण किया, फिर मन स्थिर हो गया, और शुक्ल ध्यान के द्वितीय पाद के अवलम्बन से केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया और सिद्धिपद पाये, तात्पर्य कहनेका यह है कि आत्मा को दमन करने वाला साधु इस लोक एवं परलोक में सुखी होता है ।

धर्मघोष नाम के कोई एक आचार्य थे । वे शिष्यों सहित विहार करते हुए किसी दूसरे ग्राम को पधार रहे थे । चलते-चलते वे मार्ग

तडिं जवानो प्रयत्न कर्यो के, राज्ञिष्ये तुरतज स्वाध्यायमां निरत करी दीधुं ।  
न्यारे ते त्यां पणु न टक्युं त्यारे सूत्रार्थं चिंतनरूप ध्यानमां लगावी दीधुं  
अने ते सूत्रार्थना चिंतनमां त्यां लागी गया. परंतु त्यां पणु ते लागेो सभय  
स्थिर न रही शक्या. आ पछी उपशम भावमां लगाववामां आवतां जेमांथी  
शांति भणे. छतां पणु अे स्थिर न रह्युं. त्यारे मुनि वीचारवा लाग्या के, मन  
भडुज चंचल छे. तेने ज्ञान वगेरेनी क्रियामां लगाववामां आव्युं, ज्ञानक्रियाथी  
तेने वश करीश जेवो निश्चीत विचार करी क्षपक श्रेणीने आश्रय लीधो, पछी  
मन स्थिर थयुं अने शुक्ल ध्यानना भीज पदना अवलम्बनथी केवलज्ञानने  
प्राप्त कर्युं. अने सिद्धी पद पाव्या. तात्पर्य कहेवानुं अे छे के, आत्माने दमन  
करवावाणा साधु आ लोक अने परलोकमां सुखी थाय छे. आने उदाहरणु द्वारा  
समर्थन करवामां आवे छे—

धर्मघोष नामना कोठिं अेक आचार्य हुता, ते शिष्येो सहित विहार  
करीने कोठिं गांजे जई रह्या हुता, आलतां आलतां ते मार्ग भुली गया अने



निश्चितस्थानं गन्तुमक्षमो भूत्वा चौरपल्लयामेव चातुर्मास्येऽवस्थातुं चौर-  
पल्लीनायकमुपाश्रयं याचितवान् चौरपल्लीनायकेन प्रोक्तम्—अत्र भवता देशना न  
कर्तव्या, सर्वे वयं तस्करवृत्तिजीविनः । मुनिना तद्वचनं स्वीकृत्य स्वाध्यायध्याना-  
दिना चातुर्मास्यं यापितम् । चातुर्मास्यावसाने विहारसमये सर्वे तस्कराः किञ्चिद्दूरं  
मुनिमनुगताः तदा मुनिना तेभ्यो रात्रिभोजनप्रतिषेधरूपा देशना दत्ता तथा चोक्तम्—

भूल गये और चौरोंकी पल्ली में जा पहुँचे । वहाँ ५०० चौर रहते थे,  
चौमासे का समय बिलकुल नजदीक आ पहुँचा था । इतना समय था  
नहीं कि किसी और दूसरे स्थान पर वहाँ से चलकर चौमासे में रहने  
का निश्चय किया जा सके । अतः आचार्यने वहीं पर चतुर्मास व्यतीत  
करने के अभिप्राय से चौरों के नायकसे चतुर्मास में ठहरने के लिये  
उपाश्रयकी याचना की । आचार्यकी बात सुनकर पल्लीपति ने उनसे कहा  
कि आप यहाँ ठहरें—हमें इसमें कुछ हरकत नहीं है परंतु आप यहाँ  
धार्मिक उपदेश देने का कष्ट न करें । कारण कि हम सब यहाँ के  
निवासी चोरी करके अपना निर्वाह करते हैं कहीं ऐसा न हो कि  
आपकी देशना से हमारा व्यापार धंदाबंद हो जाय । आचार्य ने उसकी  
बात मान ली और स्वाध्याय एवं ध्यान से वहीं पर रहते हुए अपना  
चौमासे का समय व्यतीत किया । जब विहार करने का समय आया  
तो उस वख्त सब चौर मिलकर आचार्य को पहुँचाने के लिए इकट्ठे  
हुए और कुछ दूर तक सब के सब आचार्य महाराज को पहुँचाने के

शेराना नेसडामां ऋषिपडोन्व्या. त्यां ५०० चौर रहतेता डता, चोमासाने सभय  
नञ्क आवी रह्यो डतो, अेटडो सभय न डतो डे त्यांथी थील स्थाने पडोन्वीने  
त्यां चोमासांमां रहवाने निश्चय करी शकय. आथी आचार्ये अे स्थान उपर  
चतुर्मास व्यतित करवाना अलिप्रायथी शेराना नायकथी चतुर्मास रोडावा भाटे  
आश्रय स्थाननी याचना करी. आचार्यनी वात सांलणी शेराना नायके कहुं डे  
लडे आप अडिं रहे अमने अेमां कांछ वांधे नथी. परंतु आप अडिं  
धार्मीक उपदेश आपवाने विचार न राअशो. कारुष डे अमे सधणा अडिंना  
निवासी चोरी करीने पोताने निर्वाड करीअे छीये. कदाच अेतुं न अने डे  
आपना उपदेशथी अमारो धंधे अंध थर्ध लय, आचार्ये तेनी वात मानी  
दीधी अने स्वाध्याय अने ध्वानथी त्यां रहीने पोताने चोमासाने सभय व्यतित  
कर्यो. न्यारे विहार करवाने सभय आंव्ये ते वअते अथा शेराने अे भणी आचार्य-  
र्यने पडोन्वाडवा भाटे अेकडा थया अने थोडे डूर सुधी आ अथा आचार्य



मेघां पिपीलिका हन्ति, यूका कुर्याज्जलोदरम् ॥  
 कुरुते मक्षिका वान्ति, कुष्ठरोगं च कोलिकः ॥ १ ॥  
 कण्टको दासुखण्डं च, वितनोति गलव्यथाम् ।  
 व्यञ्जनान्तर्निपतित, -स्तालु विध्यति वृश्चिकः ॥ २ ॥  
 विलग्नस्तु गले बालः, स्वरभंगाय जायते ।  
 इत्यादयो दृष्टदोषाः, सर्वेषां निशिभोजने ॥ ३ ॥  
 तथैव परलोकेऽपि, दुर्गतिर्जायते ध्रुवम् ।  
 तस्मात् रात्रौ न भुञ्जीत प्रोक्तं भगवता सदा ॥ ४ ॥

लिये उनके पीछे २ गये । वहां आचार्य ने उन्हें रात्रिभोजन न करने का उपदेश दिया । उस समय में उन्होंने ने बतलाया कि रात्रिभोजन में अनेक दोष हैं, क्यों कि सूर्यास्त हो जाने से उस समय अनेक सूक्ष्म जीवों का प्रचार और उत्पत्ति होती है तथा यदि भोजन में पिपीलिका-कीड़ी खाने में आ जावे तो खाने वाले की बुद्धि नष्ट हो जाती है । जूं यदि भोजनमें खाने में आ जावे तो जलोदर नामका रोग हो जाता है । भोजनमें मक्षिका आ जानेसे वमन होता है, भोजनमें कौलिक करोळिया के खाने से कुष्ठरोग होता है, कांटा तथा लकड़ी की फांस से गले में घोर दुःख होता है, विछु खाने में आ जाय तो तालु का भेदन होता है, केश-खाने में आ जावे तो स्वर का भंग होता है इत्यादि अनेक दोष रात्रिभोजन में हैं । तथा परलोक में रात्रिभोजन करने वाले को दुर्गति की प्राप्ति होती है । इसलिये किसी को रात्रिभोजन नहीं करना चाहिये ।

महाराजने पडोऽयाउवा तेमनी पाछण पाछण गया. त्यां आचार्ये तेमने रात्री लोअन न करवानो उपदेश आये, ते वभते तेमणे जण्णायुं के रात्री लोअनमां अनेक दोष छे केमके, सूर्यास्त थर्ध जवाथी अनेक सूक्ष्म लोवोनो प्रचार अने उत्पत्ति थाय छे. अने लोअनमां जे पीपीलीका-कीडी भावामां आवी जय तो बुद्धिनो नाश थाय छे. जुं वगेरे जे भावामां आवी जय तो जलोदर नामने रोग थाय छे, माभी आवी जवाथी उलटी थाय छे, जे कुरोणीयो भावामां आवी जय तो कोठ थाय छे, कांटा तेमज लाकडांनी फांस जेवुं भावामां आवी जय तो गणामां अटकाई जय छे अने धालु दुःख थाय छे, विंछी जे भावामां आवी जय तो तालुवुं तोडी नाजे छे, मोवाणे भावामां आवी जय तो स्वरने भंग थाय छे. इत्यादि अनेक दोष रात्री लोअनमां छे अने रात्री लोअन करनारने दुर्गतिनी प्राप्ति थाय छे. आ माटे कोईजे रात्री लोअन न करवुं.

देशनां श्रुत्वा तेषु केवलमेकेन पल्लीपतिना रात्रिभोजनप्रत्याख्यानं कृतम् । एकदा पञ्चशतसंख्यकैश्चौरैः सह पल्लीपतिः स्तेयं कर्तुं गतः । एकस्यां नगर्यां बहुतरं धनं चौर्येण प्राप्तं, तदुपादाय ते सर्वे महारण्ये समागत्य तत्र सर्वे संस्थिताः । तत्र तन्नायकेन कथितम्—अत्र भुज्यतां सर्वैः, तदा सार्धद्वयसंख्यकाः पाककरणार्थं प्रवृत्ताः, सार्धद्वयसंख्यकाश्च सुरादिकमानेतुं समीपस्थं ग्रामं गताः । मदिरादिकमानेतुं प्रवृत्तैस्तैश्चिन्तितम्—चौर्येणोपार्जितं सर्वं धनमस्माकं भविष्यति, यद्यर्धमदिरा विषमिश्रिता नीयते । एवं विचिन्त्यार्धमदिरा विषमिश्रिता तैरानीता, अर्धा तु स्वार्थं

आचार्य महाराज की इस प्रकार की धर्मदेशना सुनकर उनमें से केवल एक पल्लीपति ने रात्रिभोजन का त्याग कर दिया । एक समय की बात है कि यह पल्लीपति उन पांचसौ चोरों के साथ चोरी करने के लिये बाहर गया । किसी एक नगर में चोरी करने से उन्हें बहुत सा द्रव्य मिला । उसे लेकर वे सब के सब वहाँ से चल दिये और किसी एक जंगल में आकर ठहर गये । पल्लीपति ने सब से कहा कि अब सब लोग भोजन की तैयारी करो । पल्लीपति के इस आदेश को पाकर उनमें से आधे अर्थात् अढाईसौ चौर तो भोजन करने की तैयारी में लग गये और अढाईसौ चौर सुरा मदिरा आदि को लेने के लिये पास के गावों में गये । मदिरादिक लानेके लिये गये हुए इन व्यक्तियों ने मनमें विचार किया कि चोरी में जितना भी द्रव्य हाथ लगा है वह सब का सब हम सब लोगों को ही मिल जावे तो बहुत ही उत्तम बात है, इसलिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जो लोग भोजन बना रहे हैं वे सब के सब मर जायें—अतः उन्हें मारने की तरकीब एक यही है कि इस मदिरा में

आचार्य महाराजनी आ प्रकारनी धर्म देशना सांलणीने तेमांथी इक्षत ऐक चोरना आगेवाने रात्री लोञ्जनने त्याग कर्यो। ऐक वपते ते चोरने आगेवाने ऐ पांचसो चोरानी साथे चोरी करवा भाटे अहार गयो, केअ ऐक नगरमां चोरी करवाथी तेने धलुं द्रव्य भळ्युं अने लळ ते अथा त्यांथी आसता थया अने केअ ऐक जंगलमां पडोंथी त्यां रोकाया। चोरना आगेवाने अधाने लोञ्जननी तैयारी करवानुं कळुं तेना आदेशने सांलणी अरध जेटला चोर तो लोञ्जननी तैयारीमां लागी गया अने अरधा हाइ विगेरे लेवा भाटे पासेना गाममां गया, हाइ विगेरे लेवा गयेला अे चोरिअे मनमां विचार कर्यो के, चोरीमां भणेळुं सधळुं द्रव्य अधु अभने भणी जय तो धलुं साइं थाय आ भाटे अेवो प्रयत्न करवो जेअे के जे लोके लोञ्जन अनावे छे ते अथा भरी जय. तेभने भारवानी तरकीब केवण ऐक ज छे के आ हाइमांना अरधा हाइमां विष लेणवववामां

निर्विषा । पाकप्रवृत्ता अपि एवमेव विचार्य स्वभोजनार्थमर्ष मांसं पृथक् निधाय अर्ध मांसं विषमिश्रितं कृतवन्तः । सर्वे भोजनार्थमुपस्थिताः पल्लीनायकं प्रोक्तवन्तः । पल्लीपतिनोक्तम्—इदानीं रात्रिः संजाता, मया रात्रिभोजनस्य प्रत्याख्यानं कृतम्, सर्वैर्भुज्यताम्, ततः पल्लीनायकाज्ञया सर्वे चौरा भोक्तुमुपविष्टाः । तत्र सार्धद्वय-संख्यकाश्चोराः सविषमदिरापानेन मृताः, अन्ये सार्धद्वयसंख्यकाः सविष-मांसभक्षणेन मृताः । एतत् सर्वं दृष्ट्वा पल्लीनायकेन मनसि चिन्तितम्—

से आधी मदिरा में विष मिला दिया जाय । ऐसा विचार कर उन्होंने आधी मदिरा में विष मिला दिया और आधी मदिरा अपने लिये विना विष की अलग रख ली । उधर जो मांस आदि पकाने में लगे हुए थे उन्होंने भी यही विचार किया और जैसा काम इन लोगोंने किया वैसा ही उन्होंने ने किया—अर्थात् उन लोगों ने भी आधे भोजन में विष मिला दिया और आधा भोजन अपने लिये विना विष का अलग रख लिया । जब सब भोजन के लिये बैठने लगे तब सब ने पल्लीपति को भोजन करने के लिये बुलाया । परंतु पल्लीपति ने उस समय भोजन करने से यह कह कर मना कर दिया कि देखो भाईयों इस समय रात्रि हो चुकी है—मैं ने रात्रिभोजन का त्याग किया है, अतः आप लोग ही इस समय भोजन करें ! पल्लीपति की इस प्रकार आज्ञा प्राप्त कर वे सब के सब भोजन करने के लिये बैठ गये । उनमें आधे तो विष मिश्रित मदिरा के पान करने से मर गये और आधे विषमिश्रित मांस के खाने से मर गये । इस प्रकार सर्व विनाश देखकर पल्लीपति ने मन में विचार

आवे. એવો વિચાર કરી તેઓએ અરધા ઠાડમાં વિષ મેળવી દીધું અને અરધા ઠાડ પોતાના માટે અલગ રાખ્યો. અહિં પણ જે માંસ વગેરે પકાવવામાં લાગેલ હતા તેમણે પણ એવો વિચાર કર્યો જેવું કામ આ લોકોએ કર્યું. અર્થાત્ એ લોકોએ પણ અરધા ભોજનમાં વિષ મેળવી દીધું અને અરધું પોતાના માટે અલગ રાખી લીધું. બ્યારે બધા જમવા માટે એસવા માંડ્યા ત્યારે બધાએ તેના આગેવાનને જમવા માટે બોલાવ્યા. પરંતુ આગેવાને એમ કહી ના કહી કે બુએ ભાઈએ આ સમયે રાત્રીનો સમય થઈ ચુક્યો છે મેં રાત્રી ભોજનનો ત્યાગ કરેલ છે આથી આપ લોકોજ જમી લ્યો. આગેવાનની આ પ્રકારે આજ્ઞા મળતાં તે બધા જમવા માટે એસી ગયા, અને અરધા તો વિષ મેળવેલ ઠાડું પાન કરવાથી મરી ગયા અને અરધા વિષ મિશ્રિત માંસના ખાવાથી મરી ગયા. આ પ્રકારે સર્વ વિનાશ બોધને આગેવાને મનમાં વિચાર કર્યો કે

रात्रिभोजनप्रत्याख्याननेन रसनेन्द्रियमात्रदमनस्य फलमेतद् यन्मया जीवनं लब्धम्, यदि पुनः सर्वथाऽऽत्मदमनं कुर्यां तर्हि कथं न ध्रुवं नित्यमचलमव्याबाधं शिवसौख्यं लभेयम् । एवं विचिन्त्य चौरपल्लीनायकेन मुनिसमीपे गत्वा प्रव्रज्यां गृहीत्वा स्वात्मकल्याणं साधितम् ॥ १५ ॥

आत्मदमनार्थमेवं चिन्तयेदित्याह—

मूलम्—वरं मे अप्पा दंतो संजमेण तवेण यं ।

माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहिं वहेहि यं ॥ १६ ॥

छाया—वरं मे आत्मा दान्तः संयमेन तपसा च ।

माऽहं परैदमितः बन्धनैर्वधेश्च ॥ १६ ॥

टीका—‘वरं मे०’ इत्यादि ।

मे=मया, आत्मा=मनोरूपः पञ्चेन्द्रियरूपश्च संयमेन=सावधानुष्ठानविरति-

क्रिया कि रात्रिभोजन त्याग करने का, जिसमें एक मात्र रसनेन्द्रिय का दमन किया जाता है, यह फल है जो मैं अकेला जीवित बच सका हूँ । यदि सर्व प्रकार से मैं आत्मा-इन्द्रियों एवं मन का दमन करूँ तो क्यों नहीं ध्रुव, नित्य, अचल और अव्याबाध मुक्ति सुख का अधिकारी बनूँ । इस प्रकार विचार कर उस पल्लीपति ने उसी समय मुनिकी पास जा कर दीक्षा धारण कर आत्मकल्याण के मार्ग का साधन करना प्रारंभ कर दिया ॥१५॥

आत्मा को दमन करने के लिये मोक्षाभिलाषी को इस प्रकार विचार करना चाहिये—‘वरंमे०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( मे अप्पा संजमेण तवेण य दंतो वरं-संयमेन तपसा मया दान्तः वरं ) संयम एवं तप के द्वारा जो मैं आत्मा का-इन्द्रियों

रात्री लोअन त्याग करवाथी मात्र अेक रसनेन्द्रियनुं दमन करवाभां आवे छे तेनुं आ कृण छे. जे हुं अेकलो अवतो रही शकथे. जे हुं सर्व प्रकारथी आत्मा-इन्द्रिये अने मननुं दमन कइं तो ध्रुव, नित्य, अचल अने अव्याबाध मुक्ति सुअने अधिकार केम न अनुं ? आ प्रकारने विचार करी ते चोरना आगेवाने अेअ वअते मुनि पासे अेअने दीक्षा धारअ करी आत्म कल्याणना मार्गनुं साधन करवाने प्रारंअ करी हीथे ॥ १५ ॥

मोक्षना अलिलाषीअे आ प्रकारे आत्मानुं दमन करवाने विचार करवे. जेअेअे—वरंमे० इत्यादि.

अन्वयार्थ—मे अप्पा संजमेण तवेण य दंतोवरं-संयमेन तपसा मया दान्तः वरं

लक्षणेन समदशविधेन, तपसा अनशनादिद्वादशविधेन च दान्तः=वशीकृतः स्यात् तर्हि वरं=श्रेयः शोभनं भवेदित्यर्थः, संयमो हि आस्रवनिरोधं जनयति, क्षपकश्रेणि समारोहयति, कर्म निर्जरयति केवलज्ञानमुत्पादयति, शैलेश्यवस्थां प्रापयति सिद्धावस्थां प्रकटयति । तपश्च रागद्वेषादिदोषमलिनात्मसंशोधकं, तेजोलेश्यादिविबिधलब्धिजनकं पूर्वसंचितसकलकर्मदाहकं नवकर्मानुत्पादकम् । पुनर्मनस्येवं चिन्तयेत्-अहं परैः=अन्यैः बन्धनैः शृङ्खलादिभिः, वधैः=लगुडचपेटादिभिः, दमितः=निगृहीतः-बद्ध्वा ताडयित्वा च स्वाधीनीकृत इत्यर्थः, मा भवेयम् ।

अयं भावः-यदाऽन्ये मम बन्धन ताडनैर्दमनं करिष्यन्ति तदा मम श्रेयो नास्ति, परवशत्वात्, तथाहि-वधबन्धनैः परवशस्य मम चित्तसमाधिर्न सम्भवति तदभावे कर्मनिर्जराभावः, तदभावे दीर्घाध्वसंसारपरिभ्रमणं भविष्यतीति ।

एवं मन का दमन करूँ यह सर्वोत्तम है । अगर ऐसा नहीं करूँ तो कदाचित् मुझे ( बंधणैहिं वहेहिं परेहिं दम्मं तो अहं मा वरं-बंधनैः वधैः परैः दमितः अहं मा वरं ) बधनों-श्रृंखला आदि के द्वारा बांधनारूप क्रियाओं से तथा वध-चपेटा आदि प्रहारों से जो मैं दूसरों के द्वारा दमित हों। अथवा यदि मैं इन्द्रियो एवं मनका जो तप तथा संयम द्वारा दमन कर लूंगा तो यह इसलिये उत्तम है कि मैं भविष्य में अन्य व्यक्तियों द्वारा बंधन एवं वध से निगृहीत नहीं हो सकूंगा । कहने का तात्पर्य यह है कि जब मुझे अन्यजन बंधन एवं ताडन आदि द्वारा निगृहीत करेंगे तो इसमें मेरी कोई भी भलाई नहीं है कारण कि यह अवस्थाएँ अनिच्छापूर्वक वश होने की वजह से सहन करनी पड़ती हैं । इसमें चित्त की समाधि तो होती नहीं है । चित्त में समता भावरूप

संयम अने तप द्वारा जे हुं आत्मानो-इन्द्रियो अने मननुं दमन करूं जे सर्वोत्तम छे. जे तेम न करूं तो कदाचित् मने वंधणैहिं वहेहिं परेहिं दम्मं तो अहं मा वरं-बंधनैः वधैः परैः दमितः अहं मा वरं अंधनो श्रंखला आदि द्वारा बांधवाइप क्रियाओथी तथा वध-चपेटा आदि प्रहारोथी जे हुं भीलओथी दमित अनुं अथवा-जे हुं इन्द्रियो अने मननुं तप तथा संयम द्वारा दमन करी लउं तो ते जे भाटे उत्तम छे के हुं भविष्यमां अन्य व्यक्तियो द्वारा अंधन अने वधथी निगृहीत नही थछं शकुं. कहेवानो मतलब जे छे के न्यारे मने भील भाणुसो अंधन अथवा ताडन आदि द्वारा निगृहीत करे तो आमां भारी कोछं पणु ललाछं नथी. कारण के, आ अवस्थाओ अनिच्छाओ परवश थवाने कारणे सहन करवी पडे छे. तेमां चित्तनी समाधि थती नथी. चित्तमां



अत्र दृष्टान्तः सेचनकहस्ती यथा—

एकस्यामटव्यां बहुतरहस्तिनीभिः सह महागजो निवसन्नासीत् । स च जातं जातं करिशावकं विनाशयति । एकदा तत्रैका हस्तिनी सगर्भा जाता, सा चैवं समाधि की प्राप्ति नहीं होगी—यह भी निश्चित है कि कर्म की निर्जरा नहीं होगी । कर्म की निर्जरा के अभाव में इस अनन्तसंसार का परिभ्रमण भी नहीं रुक सकता है । १७ प्रकार के संयम से एवं १२ प्रकार के अनशन आदि तप से जो मैं आत्मा का दमन कर लूंगा उससे मेरा एकान्त हित होगा । कारण कि संयम से ही आस्रव का निरोध होता है । इसकी सहायता से ही आत्मा क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होता है । अनन्तगुणी कर्मों की निर्जरा इसके ही सद्भाव से होती है । केवलज्ञान की प्राप्ति जीव को इसी के बल पर होती है । शैलेशी अवस्था का लाभ एवं सिद्धावस्था की प्रकटता इसी तप संयम से मिलती है । रागद्वेष आदि से मलिन आत्मा का शोधन तप से होता है । तेजोलेख्या आदि विविध लब्धियों का जनक तथा पूर्व में संचित समस्त कर्मों का नाशक एवं नवीन कर्मों का आगमन का निरोधक तप होता है । अतः इस अवस्था में एकान्ततः आत्मा का हित भरा हुआ है ।

अब सेचनकहस्ती के दृष्टान्त से इस विषय को स्पष्ट करते हैं—  
किसी एक अटवीमें अनेक हस्तिनीके साथ एक मदोन्मत्त महागज

समतालावर्ष समाधिनी प्राप्ति थशे नडीं. आ पणु निश्चीत छे डे, कर्मनी निर्जरा पणु थशे नडीं. कर्मनी निर्जराना अलावभां आ अनंत संसारतुं परिभ्रमणु पणु रोकी शकावातुं नथी. १७ प्रकारना संयमथी अने १२ प्रकारना अनशन आदि तपथी जे हुं आत्मानुं दमन करी लठं तो तेनाथी भाड़ं अेकान्त हित थशे. कारण डे, संयमथी न आश्रवने निरोध थाय छे, तेनी सहायताथी न आत्मां क्षपक श्रेणीअे पडोअे छे. अनंतगुणी कर्मोनी निर्जरा अेना न सहलावथी थाय छे. केवलज्ञाननी प्राप्ति एवने अेना न भणथी भणे छे. शैलेशी अवस्थाने लाभ तेम न सिद्धावस्थानी प्रकटता अे न तप संयमथी भणे छे. रागद्वेष आदिथी मलीन आत्मानुं शोधन तपथी थाय छे. तेजे लेख्या आदि विविध लब्धिअेना नक तथा पूर्वनां संचित समस्त कर्मोने नाश करनार अने नवीन कर्मोने राकनार तप डोय छे. आथी आ अवस्थाभां अेकान्ततः आत्मानुं हित समायेतुं छे.

( सेचनक हाथीना दृष्टान्तथी सूत्रकार आ विषयने स्पष्ट करे छे. )

डोड अेक वनभां अनेक हाथणीअेनी साथे अेक मदोन्मत्त गजराज



चिन्तयति, यदा कथमपि मे बालको भविष्यति तदाऽनेन हनिष्यते । ततः सा हस्तिनी यूथादपसरति, क्रमेण प्रहरं प्रहरद्वयमन्तरितं कृत्वा यूथमध्ये मिलति, क्रमशः सा द्वितीये दिवसे यूथमध्ये गत्वा मिलति एवं कुर्वत्या तथा प्रसवसमये समागते सति तापसाश्रमो दृष्टः, सा तत्राऽऽलीना गुप्तस्थाने प्रसूता, बालकः संजातः। स बालकस्तत्र यथा तापसकुमारा घटादिभिरुद्यानगतान् वृक्षान् सिञ्चन्ति, तथा जलाशयं गत्वा स्वशुण्डायां जलं भृत्वा वृक्षान् सिञ्चति । ततस्तापसैस्तस्य

निवास करता था । वहाँ जितने भी नवीन बच्चे पैदा होते थे सब को मार डालता था । एक समय की बात है कि एक हस्तिनी गर्भवती हुई । गर्भावस्था में हस्तिनी ने विचार किया कि जब मेरी कुक्षि से बच्चा पैदा होगा तो यह निश्चय है कि यह दुरात्मा गज उसे बिना मारे नहीं रहेगा, अतः अच्छी अब यही है कि मैं इस यूथ से अलग ही होकर रहूँ । ऐसा विचार कर यूथ से अलग रहने लगी—परन्तु यह अलग रहने का भेद प्रकट न हो जाय इस ख्याल से पहिले तो वह यूथ में एक २ दो २ प्रहर के बाद आती जाती रही, फिर १-१-२-२ दिन के बाद मिलती रही । इस प्रकार करते २ जब उसके प्रसव का समय नजदीक आ गया तो वह किसी तापस के आश्रम में जा पहुँची । वहाँ पर गुप्तस्थान में प्रच्छन्न होकर उसने बच्चे को जन्म दिया । बच्चा क्रमशः बढ़ने लगा । वहाँ पर जिस तरह तापस कुमार घड़ों में पानी भरकर उद्यान के वृक्षों को सींचा करते थे उसी प्रकार यह हाथी का बच्चा भी जलाशय से अपनी सूँड़ में पानी भर कर उद्यान के वृक्षों

( हाथी ) निवास करतो હતો. ત્યાં જેટલાં નવાં બચ્ચાં જન્મતાં હતાં તે બધાને તે મારી નાખતો. એક સમયની વાત છે એક હાથણી ગર્ભવતી થઈ, ગર્ભાવસ્થામાં હાથણીએ વિચાર કર્યો કે બ્યારે મને બચ્ચુ અવતરશે ત્યારે એ વાત નિશ્ચિત છે કે આ દુરાત્મા હાથી તેને મારી નાખ્યા વગર રહેશે નહીં. આથી સાઝું તો એ છે કે, આ બુથથી બુદ્ધા પડીને રહું. આવો વિચાર કરી તે બુથથી બુદ્ધી રહેવા લાગી. પરંતું અલગ રહેવાનો ભેદ પ્રગટ ન થઈ બાથ એ માટે તે બુથમાં અવાર નવાર આવતી જતી અને ધીરે ધીરે એકેક દિવસ અને બીજે દિવસના અંતરે આવતી જતી. આ પ્રકારે કરતાં કરતાં બ્યારે તેનો પ્રસવ સમય નજીક આવ્યો ત્યારે તે કોઈ તપસ્વીના આશ્રમમાં જઈ પહોંચી અને ત્યાં ગુપ્ત સ્થાનમાં પ્રચ્છન્ન-છૂપાઈ ને બચ્ચાને જન્મ આપ્યો. બચ્ચું મોટું થવા માંડ્યું, ત્યાં જે રીતે તાપસ કુમાર ઘડામાં પાણી ભરીને ઉદ્યાનના વૃક્ષોને પાતા હતા તે રીતે આ હાથીનું બચ્ચું પણ જળાશયથી પોતાની સુંઢમાં પાણી ભરીને

‘सेचनक’ इति नाम कृतम् । स सेचनकस्तापसबालकानां वयस्यो जातः । कदाचिद् भ्रमन्तं यूथाधिपतिं दृष्ट्वा सेचनकस्तं मारितवान् । स्वयं यूथाधिपतिर्जातः । स च तापसाश्रमे वृक्षाणां विध्वंसनं कृतवान् , काऽप्यन्या मन्मातेव प्रच्छन्ना मा तिष्ठतु इति विचारितवांश्च । ततस्ते तापसा रुष्टाः पुष्पफलपूर्णहस्ताः श्रेणिकनृपस्य समीपं गत्वा तमब्रुवन्—एकः सेचनकनामाहस्ती वने तिष्ठति, स चास्माकं वासस्थाने वनं विनाशयति । ततः श्रेणिकेन महत्या सेनया सह वनं गत्वा सेचनकं निगृह्य

को सिंचने का काम करने लगा। सिंचनरूप कार्य को करने से तापसों ने इसका नाम “सेचनक” रख दिया। तापस बालक इस पर बड़े प्रसन्न रहा करते, अतः उन सबके साथ यह खूब हिलमिल कर रहने लगा, यहां तक कि उनके साथ इसकी पूर्ण मित्रता हो गई। जब यह खूब बलिष्ठ हो चुका—तो एक समय की बात है कि उसने अवसर पाकर यूथाधिपति हाथी को घूमते समय जान से मार दिया और स्वयं यूथ का अधिपति हो गया। इसने ऐसा विचार किया कि मेरी माता के समान कोई भी हथिनी छुप कर न बच्चा उत्पन्न करे और न छुप कर ही रहे, इस अभिप्राय से इसने आश्रम के समस्त वृक्ष उखाड़ डाले। इसके इस प्रकार के कार्य से तापस लोग रुष्ट हो गये। वे सब के सब पुष्प फलादिकरूप भेट लेकर राजा श्रेणिक के पास पहुँचे। वहां पहुँचकर उन्होंने राजा को अपनी सारी कथा सुनाई। कहा महाराज ! एक सेचनक नामक हस्ती वनमें रहता है वह बहुत ही उपद्रव कर

उद्यानना वृक्षाने पाष्णी यावानुं काम करवा लज्युं, तापसोऽप्ये आ प्रकारनुं काम करवाथी ते हाथी आणकनुं नाम ‘सेचनक’ राज्युं, तापस आणक तेना पर भूष प्रसन्न रक्षा करता, अथी ते अमनी साथे भूष उणी मणीने रडेवा लाग्युं, ते त्यां सुधी के अमनी साथे तेनी पूर्ण मित्रता थर्ग गर्ग न्यारे ते हाथी अन्युं भूष अणवान अन्युं त्यारे अेक समथे ते सशक्त अने अणवान अनेवा हाथी आणे महाअणवान अने घातक अेवा हाथी अुंडपतिने अवसर भेणवी अवथी मारी नाज्यो. अने पोते अुंडपति अन्यो. तेणे विचार कर्यो के मारी मातानी माइक केअर् पणु हाथणी छुपाअर् ने अन्याने न्म न आये अने न तो छुपाअने रडे. आ अलिप्रायथी तेणे आश्रमनां अधां वृक्षोने न्मणथी उणेडी नाज्यां. हाथीना आ प्रकारना कार्यथी तपस्वीयोना हिलमां आरे दुःख थयुं अने तेयो पुष्प इण वणेरे बेट लर्ग राज् श्रेणिकनी पासे पडोअ्या अने त्यां न्म राजने अधी वात कही संलणावी अने कल्लुं, महाराज ! सेचनक नामने अेक हाथी वनमां रडे छे ते भूष उपद्रव करे छे, अमारा

आलानस्तम्भे लौहशृङ्खलाभिः स निबद्धः । तापसास्तत्रागत्य सेचनकं भर्त्सयन्ति-  
अरे गजराज ! अधुना क्व ते पराक्रमः, अविनयस्य फलमिदानीं लब्धम् । एतद्वचनं  
श्रुत्वा सेचनकः क्रुद्धः स्तम्भं भङ्क्त्वा पुनर्वनं प्रविष्टस्तेषामावासभूमौ वृक्षान् विध्वं-  
सितवान् । पुनः श्रेणिकः सेचनकं गजं निगृहीतुं तद्वनं गतः । अत्रान्तरे पूर्वभव  
मित्रदेवेन सेचनकसमीपमागत्य प्रोक्तम्-हे वत्स ! परेभ्यो दमनात् स्वयं दमनं  
वरम्, ततस्तद्वचः श्रुत्वाऽसौ स्वयमागत्यालानस्तम्भनिकटे स्थितः ।

रहा है । हमारे आश्रम का समस्त वन उसने नष्ट भ्रष्ट कर दिया है ।  
तापसों की इस प्रकार बात सुनकर श्रेणिक ने बड़ी सेना के साथ वन  
में जाकर उस सेचनक हाथी को पकड़ लिया । और उसे लाकर आलान-  
स्तम्भ में लौहे की सांकलों से बांध दिया । तापस आकर अब उसे  
भर्त्सित करने लगे । कहने लगे-अरे ! सेचनक गजराज ! कह अब वह  
तेरा पराक्रम कहां चला गया, देख तेरी कैसी दुर्दशा हुई है । समझा  
यह अविनय करने का फल है, जिसे तू भोग रहा है । तापसों के  
इस प्रकार भर्त्सना भरे वचनों को सुनकर सेचनक को बहुत ही क्रोध  
आया और उस आवेश में आलानस्तम्भ को तोड़ मरोड़ कर वह सीधा  
वन में जा पहुँचा । वहाँ पहुँचकर उसने पहिले की तरह ही उनकी  
आवासभूमि के वृक्षों का विध्वंस करना प्रारंभ कर दिया । राजा श्रेणिक  
पुनः उसे पकड़ने के लिये वन में आये । इतने में पूर्वभव के मित्र देवने  
आकर सेचनक से कहा-जो तुम बार २ दूसरों के द्वारा दमित किये  
जाते हो-उसकी अपेक्षा तो यही अच्छा है कि तुम अपने आपको

आश्रमनां सधणां वृक्षानो अखे नाश करी नाभ्यो छे. तापसेनी वात सांलणी  
श्रेणिक राज्ये लारे सेना साथे वनमां ज्छ अ सेचनक हाथीने पकडी दीघो  
अने तेने राजधानीमां लावी अक पूज भज्युत स्तंभ साथे लोढानी सांकणोथी  
बांधी दीघो. तापसेअे आ समथे तेनी साथे ज्छ तेनी भशकरी शइ करी अने  
कडेवा लाग्या-अडो ! सेचनक गजराज कडो डवे तमाइं पराक्रम कयां यादयुं  
गयु ? जे तारी डेवी दुर्दशा थर्ध ? अविनयतुं आ इण छे, जे तुं लोगवी रडेल छे.  
तापसेतुं आ कडेवानुं सांलणी सेचनकने पूज ज कोध आव्यो अने ते  
जजरजस्त अेवा स्तंभने तोडी नाभी लोढानी सांकणोने इगावी दध वनमां  
ज्छ पडोअ्यो. त्यां पडोअ्यीने आरे आनुथी वननां वृक्षानो विच्छेद करवानुं  
शइ करी दीधुं. राज श्रेणिक इरी तेने पकडवा भाटे वनमां पडोअ्यो. आ समथे  
सेचनकना पूर्वलवना मित्र देवे आवी सेचनकने कहुं-तमे थीज द्वारा घडी  
घडी डेरान थाव छो-आथी साइं तो अे छे के तमे तमारी जते पोतानुं दमन करे.

स्वयमागतं स्तम्भसमीपे त्रिचरणेनावस्थितं सेचनकं दृष्ट्वा श्रेणिकनृपस्तं मिष्टाहारैः स्वर्णभूषणैः करस्पर्शादिभिश्च नितरां लालयति स्म । एवं सेचनकहस्तिवत् स्वयमात्मनो दमनेन लोके सर्वत्रादरं लभमानः सुखी भवति । तथैव परलोकेऽपि सुखी भवति ' तत्रोदाहरणम्—

अष्टमतीर्थंकरस्य श्रीचन्द्रप्रभस्य शासने चन्द्रपुरीनगर्यां तद्वंशपरंपरायां सुदर्शनो नाम नरपतिरासीत् । स चैवं पूर्वोपाजितपुण्यराशिरासीत्—येन तस्य दर्शनात् प्रजानामिष्टलाभो भवति, अतस्तद्दर्शनार्थमनुदिवसं तत्र चतसृभ्यो दिग्भ्यः

दमन करो । देव के इस प्रकार वचन सुनकर सेचनक आलानस्तम्भ के पास स्वयं आ कर खड़ा हो गया । राजा सेचनकको आलानस्तम्भके पास खड़ा देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने मिष्ट आहार से तथा स्वर्ण के आभूषणों से उसका खूब सत्कार किया । बारंवार उसके ऊपर हाथ फेरा और पुचकारा । मतलब कहने का यही है कि जो व्यक्ति सेचनक हाथी की तरह अपना स्वयं दमन करता है वह सर्वत्र आदरणीय बन कर इस लोक में खूब सुखी हो जाता है । तथा परलोक में आनंदका भोक्ता बनता है, इस विषय में उदाहरण इस प्रकार है—

अष्टमतीर्थंकर श्री चंद्रप्रभु स्वामी के शासन में चंद्रपुरी नाम की नगरी में सुदर्शन नामका एक राजा थे । यह चंद्रप्रभुस्वामी की वंशपरंपरा में ही उत्पन्न हुए थे । उसकी पूर्वोपाजितपुण्यराशि इतनी प्रबल थी कि जो कोई प्रजाजन इसका दर्शन करते थे उसे अवश्य ही इष्ट का लाभ होता था । इसी से उसके दर्शन के लिये हरएक दिशा से दौड़ २ आते थे ।

देवनां आ प्रकारनां वचन सांलणी सेचनक पोतानी जाते ज राजधानीमां पडोऽथे अने प्रथम जे स्थणे तेने आंधवाभां आवेक डते। ते स्थणे जध उले। रही गये। सेचनकने आ रीते पाछे आवेले जेध राज श्रेष्ठिक पुशी थया अने तेने साइं अबुं भीष्ट लोजन आपी सोनाना अलंकारे पडेशावी तेना शरीर उपर प्रेमथी हाथ देखवा लाग्या। कडेवाने मतलब जे छे के जे व्यक्ति सेचनक हाथीनी माइक स्वयं पोतानुं दमन करे छे ते सर्वत्र आदरने पात्र जनी आ लोकमां भूष सुभी थर्थ परलोकमां पणु आनंदना लो गवनार जने छे।

आ विषयमां उदाहरणुं आ प्रकारनुं छे—

आठमा तीर्थंकर श्री चंद्रप्रभुस्वामीना शासनमां चंद्रपुरी नामना नगरमां सुदर्शन नामना राजा डता। ते चंद्रप्रभु स्वामीना वंशना ज डता। जेनी पूर्वोपाजित पुण्यराशि जेटली प्रथण डतो के जे केध प्रजजन जेमनां दर्शन करतो तेने छिटने लाल अवश्य भणी जतो, आथी जेमना दर्शन भाटे दरेक

समागताः प्रजा संमिलन्ति । तस्य प्राज्यं राज्यसुखं, प्रतिदिवसं नवं नवमिव यौवनम्, नवनीतमिव शिरीषकुसुममिव सुकुमारं शरीरम्, नयनलोभकरं रूपलावण्यम्, सर्वत्राव्याहतगतिकं यानम्, दिङ्मण्डलविजयिनी चतुरङ्गिणी सेना, शीतलसुगन्धमन्दमारुतमनोविनोदनं, नन्दनवनमिव सर्वर्तुसुखदं रमणीयमुद्यानम्, चन्द्रमण्डलावधीरणगगनस्पर्शिधवलप्रासादाः, सर्वे कामभोगा अनुकूला आसन् । असौ दौगुन्दुकदेव इव सर्वं सुखमनुभवन्नास्ते । तत्रैकदा धर्मचन्द्रनामक आचार्यः शिष्यगणपरिराज्य का उसे अधिक से अधिक सुख था । यौवन भी इसका प्रतिदिन नवीन नवीन रूप में खिलता रहता था । शरीर इसका नवनीत एवं शिरीष पुष्प से भी अधिक सुकुमार था । रूप लावण्य नयनों को लुभावे ऐसे थे इसे कहीं पर भी चले जाने में कोई रुकावट नहीं होती थी । इसकी चतुरंगिणी सेना दिङ्मण्डल को विजय करने वाली थी । इसके एक रमणीय उद्यान था जो नन्दनवन के समान समस्त ऋतुओं में सुखदायक था । जिसमें शीतल, मंद एवं सुगन्धित पवन बहा करता था उससे मन का अच्छा विनोद होता था । जिस महल में राजा का निवास था वह चंद्रमण्डल से भी रमणीय था तथा इतना ऊँचा था कि आकाश को जैसे स्पर्श करता हो । समस्त कामभोग इसके अनुकूल थे । दौगुन्दक देव की तरह यह समस्त प्रकार के सुखों को भोगता हुआ अपना समय निश्चितरूप से व्यतीत करते थे । इतने में एक दिन की बात है ग्रामानुग्राम विचरते हुए धर्मचन्द्र नामके आचार्य

दिशाओमांथी ढोके होडीने आवता डता. राब्धतुं ओमने साइं ओवुं सुभ डतुं, यौवन पष्प ओमनुं प्रतिदिन अपनवीन रीते भीलतुं रडेतुं डतुं, शरीर ओमनुं नवनीत (भापष्प) अने शिरीष पुष्पथी पष्प अधिक सुकुमार डतुं, रूपावण्य नयनाने ढोलावे तेपुं डतुं, कैथ पष्प स्थणे जवामां ओने कैथ रूकावट न डती, ओमनी चतुरंगिणी सेना दिङ्मण्डलने विजय करनार डती, ओमनुं ओक सुंदर ओवुं उद्यान डतुं जे नन्दनवन समान दरैक रतुमां सुभ आपनार डतुं. जेमां शीतल, मंद, अने सुगन्धित पवन वहा करतो डतो, जेथी मनने सारे आनंद भणतो. जे महेलमां राजने निवास डतो ते चंद्रमण्डलथी पष्प रमणिय डतो अने ते ओटढो उओ डतो के जे आकाशने ओडीने लो डोय ओम लागतुं. अथा कामभोग ओने अनुकूल डता. दौगुन्दक देवनी भाइक ओ समस्त प्रकारनां सुभाने लागवतां पोताने समय निश्चित रीते व्यतीत करता डता. आमां ओक दिवसनी वात छे के ग्रामानुग्राम विचरता धर्मचंद्र



वृत्तो ग्रामानुग्रामं विहरन् चन्द्रपुरीनगर्या बहिस्थाने सहस्राऽऽम्रवने समवसृतः । तद्वन्दनार्थं सुदर्शनो नृपः सपरिवारः समायातः । आचार्येण सुदर्शननृपस्य नामानुरूपं रूपलावण्यादिकं विलोक्य धर्मदेशना दत्ता-सुदर्शननृपो निशम्य मुनिदेशनां मनसि चिन्तयति-अहो ! यः स्वात्मानं स्वयं न दमयति, स परैर्बन्धवन्धनादिभिर्दमितः सन् स्वात्मनः कर्म निर्जरयितुं न प्रभवति अपितु ज्ञानावरणीयाद्यष्टविध-कर्मरजोभिः स्वात्मानं गुरुतरीकृत्य चतुर्गतिकसंसारगते निपतति जन्मजरामरणाद्यनन्तदुःखं प्राप्नोति । इति चिन्तयन् सर्वेभ्यः कामभोगेभ्यो विरज्य प्रव्रजितः ।

महाराज अपने शिष्यगण सहित उस चंद्रपुरी नगरी के बाहिर बगीचे में सहस्राम्रवन में पधारे । उनको वन्दन करने के लिये वे सुदर्शननरेश परिवारसहिक वहां गये । आचार्य महाराज ने नाम के अनुरूप उनके रूपलावण्य को देखकर धर्म देशना प्रारंभ की । सुनकर नरेश बहूत ही आनंदित हुए और विचारने लगे-जो व्यक्ति अपनी आत्मा को स्वयं दमन नहीं करता है वह दूसरों द्वारा वध बंधनादिक से दमित होकर अपने कर्मों की निर्जरा करने में शक्ति शाली नहीं होता है किन्तु दुर्ध्यान होने से उस समय वह आत्मा चतुर्गतिक संसाररूप गर्त में निपातन हेतु जो ज्ञानावरणीयादिक अष्टविध कर्म का बंध है उसे दृढ़ करता है । उस कर्मरूपी रज से मलिन बना वह आत्मा इतना भारी हो जाता है कि उसका पतन संसाररूपी गर्त में अवश्यंभावी होता है । और वहां पड़ा हुआ वह जन्ममरण आदिके अनंत दुःखों को भोगता रहता है । इस प्रकार विचार कर वह नरेश समस्त कामभोगों से विरक्त

नामना आचार्य पोताना शिष्यगण सहित ये चंद्रपुरी नगरना भंडारना भगी-  
याभां पधार्थां । राज सुदर्शन तेमने वंदन करवा परिवार साथे त्यां गया । आचार्य  
भंडाराने नामना जेवाज तेना रूप लावण्यने जेध धर्म देशना प्रारंभ करी ।  
सांभणी राज भूअज भुशी थया अने मनमां विचारवा लाग्या के जे व्यक्ति  
पोताना आत्मानुं स्वयं दमन नहीं करतो ते भीज द्वारा वध बंधनादिकथी  
दमित थध पोताना कर्मोनी निर्जरा करवाभां शक्तिशाणी अनी शकतो नथी ।  
परंतु दुर्ध्यान होवाथी जे समय ते आत्मा चतुर्गतिक संसाररूप पाडामां  
अवश्य पडे छे । अने जेभां ज पडयो रछी ते जन्म मरण आदिना अनंत  
दुःखो भोगवतो रछे छे । आ प्रकारना विचार करी राज सुदर्शन समस्त काम-  
भोगोथी विरक्त अनी दीक्षित थध गया । तेमजे पोताना रूपलावण्य युक्त सुंदर



अनशनावमौदरिकाभ्यां तपोभ्यां रूपलावण्य संपन्नं सुकुमारं शरीरं कृशयति, तथाहि—चतुर्भक्तं कृत्वा तत्पारणायामन्तप्रान्तरूक्षं, तदपिसाभिग्रहं, तदपि स्वल्पं, तदप्यवमोदरिकानुकूल गृह्णाति । तदनन्तरं षष्ठभक्तमष्टमभक्तं दशमभक्तं द्वादशभक्तं यावन्मासक्षण तपः कृत्वा सर्वपारणासु अवमोदरिकं तपः कुर्वन्नेव शरीरं कृशतरं कृतवान् । एवं तीव्रतरतपश्चरणाद् धन्यनामानगारवत् शुष्कमांसशोणितः सन् परिचिन्तयति—आचार्यदेशनानुसारेण मया सर्वथाऽऽत्मा दमितः, धर्मध्यानेनात्मबलं प्राप्य पुष्टोऽस्मि, अतः परं शुक्लध्यानाय सर्वथा यतिष्ये, एवं सोत्साहं विशुद्धभाव-नया क्षपकश्रेणिं समारुहान्तर्मुहूर्तमात्रेण केवलज्ञानं प्राप्तवान्, एवं वर्षैकमात्रेण तीव्र-तपसा स्वात्मानं दमयन् सिद्धो जातः । तस्मात् स्वयमेव स्वात्मा दमनीय इति ॥१६॥

होकर दीक्षित हो गये । उन्होंने ने अपने रूपलावण्ययुक्त सुन्दर सुकुमार शरीर को अनशन एवं अवमौदरिक तप द्वारा कृश करना प्रारंभ कर दिया । कभी वह चतुर्भक्त उपवास करते और पारणा के समय अन्त, प्रान्त एवं रूक्ष आहार लेते, उसमें भी अभिग्रह, अभिग्रह में भी स्वल्प, उसमें भी अवमोदरिकानुकूल लेते । बाद में षष्ठ भक्त, अष्टमभक्त, द्वादशभक्त, से लेकर एक मासक्षण तक भी तपश्चर्या करते । और इन सब तपस्याओं के पारणा के दिन यह अवमोदरिक तप करते । इससे इनका शरीर अतिशय दुर्बल हो गया । इस प्रकार तीव्र तपश्चर्या के करने से इनका शरीर धन्य नामक अनगर के शरीर की तरह शुष्क मांस शोणित वाला होकर केवल अस्थिपंजर मात्र अवशिष्ट रहा । उस समय उन्होंने विचार किया—कि मैं ने आचार्य महाराज की देशना अनुसार सर्व प्रकार से अपनी आत्मा का दमन किया तथा इस अवस्था

सुकुमार शरीरने अनशन अने अवमौदरिक तपथी कृश करवाने प्रारंभ करी हीयो. क्यारैक तेज्यो चतुर्भक्त उपवास करता अने पारणाना समये अन्त, प्रान्त अने रूक्ष आहार लेता हुता. जेमां पणु अलिग्रह, अलिग्रहमां पणु स्वल्प, जेमां पणु उमोदरिक तप करता आदमां षष्ठभक्त, अष्टमभक्त, दश-मभक्त, द्वादशभक्त, थी लई जेक मासक्षण सुधीनी पणु तपश्चर्या करता अने जे अधी तपश्चर्याना पारणाना द्विसे उलोदरिक तप करता. आथी जेमनुं शरीर अतिशय दुर्बल अनी गयुं, आ प्रकारनी तीव्र तपश्चर्या करवाथी तेमनुं शरीर धन्य नामना अनगारना शरीरनी माइक लोडी मांस वगरनुं थई गयुं, अने इकत हाउकाने माणजे न आकी रह्यो. जे समये तेमणे विचार कर्यो के—जे आचार्य महाराजनी देशना अनुसार सर्व प्रकारथी मारा आत्मानुं दमन कर्युं

पुनर्विनयमाह—

मूलम्—पडिणीयं च बुद्धाणं, वायां अदुवै कम्मुणां ।

आंवी वा जई वा रंहस्से, नैव कुज्जा कयाईं वि ॥१७॥

छाया—प्रत्यनीकं च बुद्धानां, वाचा अथवा कर्मणा ।

आविर्वा यदि वा रहसि, नैव कुर्यात् कदाचिदपि ॥ १७ ॥

टीका—‘ पडिणीयं ’ इत्यादि ।

बुद्धानाम्—आचार्यादीनां प्रत्यनीकं=प्रतिकूलं-शत्रुभावं वाचा-वचनेन ‘ भवानपि किञ्चिज्जानाति किम् ? इत्यादिरूपया, अथवा कर्मणा=कायिकया क्रियया संस्तारकस्योल्लङ्घनेन चरणादिना संघट्टनेन, आचार्यापेक्षया उच्चासनोपवेशनादिना वा आविर्वा=जन समक्षं वा यदि वा रहसि कदाचिदपि नैव कुर्यात् ।

मैं मुझे एक अलभ्य वस्तु प्राप्त हुए हैं जिसका नाम आत्मबल है । इसीसे मैं इस समय पुष्ट हो रहा हूँ । अब मेरा कर्तव्य है कि मैं इससे भी आगे अपनी उन्नति करूँ, कि जिससे मुझे शुद्धध्यान की प्राप्ति हो जाय । इस प्रकार उत्साह सहित होकर उन्होंने ने विशुद्धभावना के बल से क्षपकश्रेणि पर आरूढ होकर एक अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया । केवल एक वर्ष की तीव्रतपस्या से अपनी आत्मा का दमन कर उन नरेश ने इस तरह सिद्ध अवस्था का लाभ किया । इसलिये स्व का ही दमन करना चाहिये ॥ १६ ॥

फिर से विनय को समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं—‘पडिणीयं’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ ( बुद्धाणं च पडिणीयं-बुद्धानां च प्रतिकूलं ) आचार्य आदिकों के प्रतिकूल ( वाया अदुव कम्मुणा-वाचा अथवा कर्मणा ) वचन

अने आ अवस्थाभां मने अेक अलभ्य वस्तुने दास थये जेनुं नाम आत्म-  
अण छे. अेनाथी ज हुं आ समये टकी रह्यो छुं. हुवे भाईं कर्तव्य छे के  
आनाथी पञ्च वधु उन्नति करे. के जेथी मने शुद्धध्याननी प्राप्ति थई अथ.  
आ प्रकारना उत्साहथी अने विशुद्ध भावनाना अणथी तेमणे क्षपकश्रेणी पर आरूढ  
अनी अेक अंत मुहूर्तभां केवलज्ञानने प्राप्त करी दीधुं. अेक वर्षनी तीव्र  
तपस्याथी पोताना आत्मानुं दमन करी अे राजविअे आ रीते सिद्ध अवस्था  
प्राप्त करी आ भाटे स्व आत्मानुं ज दमन करवुं जेईअे. ॥ १६ ॥

इरीथी विनयने समभवतां सूत्रकार कहे छे.—पडिणीयं० इत्यादि.

अन्वयार्थ—बुद्धाणं च पडिणीयं-बुद्धानां च प्रतिकूलं आचार्य आदिनां  
प्रतिकूल वाया अदुव कम्मुणा-वाचा अथवा कर्मणा वचनथी अथवा कार्यथी

अयं भावः—गुरोः प्रत्यनीक भाव करणादाशातना भवति, आशातनया—अबोधिर्जायते, अबोधिर्हि विवेकमावृणोति, रागद्वेषौ जनयति, यथा भास्करः प्रचण्ड-किरणैरमृतरसपूर्णं द्राक्षादिफलं विशोष्य नाशयति, तथैव गुरुं प्रति प्रत्यनीकभावोऽपि शुभभावमूलां सम्यक्त्वालवालां तपःसंयमपल्लवां महाव्रतसमितिगुप्तिपुष्पाम् अलौकिकसुधारससंभृतां स्वर्गापवर्गफलां सुकोमलां विनयलतां विशोष्य विनाशयति । तस्माद् गुरोः प्रत्यनीकत्वं नाचरणीयम् ॥ १७ ॥

से अथवा काय से ( आबी वा जइ वा रहस्से—आवि वा यदि रहसिं वा ) जन समक्ष में अथवा एकान्त में ( कयावि नैव कुज्जा—कदाचिदपि नैव कुर्यात् ) कभी भी आचरण न करे ।

भावार्थ—गुरु के प्रतिकूल आचरण करने का निषेध इसलिये किया जाता है कि उससे शिष्य को अबोधि की प्राप्ति होती है । अबोधि की प्राप्ति का कारण गुरु की प्रतिकूलताजन्य आशातना है । इससे शिष्य आशातना का भागी होता है । अबोधि को प्राप्ति होने से विवेक की जागृति नहीं होती है । विवेक के अभाव से रागद्वेष होता है । जिस प्रकार अमृतरस से परिपूर्ण द्राक्षादिक फलविशेष को सूर्य अपनी तेज किरणों से शुष्क करके नष्ट कर देता है उसी प्रकार गुरु के प्रति किया गया प्रतिनीक भाव भी शुभभावरूपी मूलवाली, सम्यक्त्वरूपी कियारी वाली, तप एवं संयमरूपी पल्लववाली, महाव्रत समिति एवं गुप्तिरूपी पुष्पवाली अलौकिक विनयरूपी लताओं जो अमृतरस से परिपूर्ण है एवं देवलोक और मोक्षमुख रूपी फल की देनेवाली है ऐसी विनयरूपी कोमल

आबी वा जइ वा रहस्से—आविः वा यदि वा रहसिं जन समक्षमां अजर ऐकान्तमां कयावि नैव कुज्जा—कदाचिदपि नैव कुर्यात् कही पणु आचरणु न करे.

भावार्थ—गुरुथी प्रतिकुण आचरणु करवानो निषेध आ भाटे करवाभां आवे छे के अनाथी शिष्यने अबोधिनी प्राप्ति थाय छे. अबोधिनी प्राप्तिनुं कारणु गुरुनी प्रतिकुणताजन्य आशातना छे. अनाथी शिष्य आशातनानो भागी अने छे. अबोधिनी प्राप्ति थवाथी विवेकनी अश्रती थती नथी, विवेकना अभावथी रागद्वेष थाय छे, जे प्रकारे अमृतरसथी परिपूर्णुं द्राक्षादिक इण विशेषने सूर्य पोतानां ते जे किरणोथी शुष्क करीने नष्ट करे छे. अवा प्रकारे गुरुना प्रत्ये करायेला प्रत्यनिक भाव पणु सुभावइपी भूणवाणी, सम्यक्त्वइपी कियारीवाणी, तप अने संयमइपी पल्लववाणी, महाव्रत समिति अने गुप्तिइपी पुष्पवाणी अलौकिक विनयइपी लताओ के जे अमृतरसथी परिपूर्णुं छे तेमज देवलोक अने मोक्षइपी इणने आपवावाणी छे अवी विनयइपी कामण सुंदर

आसनविनयमाह—

मूलम्—नँ पक्खओ नँ पुरँओ, नेवँ किच्चाण पिट्ठँओ ।

नँ जुंजे' उरुणा उरुं, सर्यणे नो' पडिस्सुणे ॥१८॥

छाया—न पक्षतो न पुरतो, नैव कृत्यानां पृष्ठतः ।

न युञ्ज्याद् उरुणा उरुं, शयने नो प्रतिशृणुयात् ॥ १८ ॥

टीका—' न पक्खओ ' इत्यादि ।

कृत्यानाम्=कृतियोग्याः कृत्याः, अत्र कृतिशब्देन कृतिकर्म गृह्यते, कृतिकर्म-  
वन्दनविशेषः, तद्वर्णनमावश्यकसूत्रस्य मत्कृतमुनितोषिणीटीकायां द्रष्टव्यम्, कृति-

सुन्दर लता को प्रत्यनीकभाव नष्ट कर देता है। इसलिये मोक्षाभिलाषी विनयवान शिष्य का कर्तव्य है कि वह स्वप्न में भी अपने गुरु महाराज का प्रत्यनीक न बनें ।

श्लोक में “ वाचा कर्मणा ” जो पद दिये गये हैं उसका मतलब यह है कि गुरु के प्रति शिष्य ऐसा न कहे कि “ आप भी क्या कुछ जानते हैं ” । इस प्रकार का व्यवहार वाचनिक प्रतिकूल आचरण में गर्भित होता है । इसी तरह वे जिस संस्तारक पर बैठते हों उसका कभी भी शिष्य को उल्लंघन नहीं करना चाहिये । उससे पैर का संघर्षण या संघट्टन न हो इसकी सदा सावधानी रखनी चाहिये । तथा आचार्य महाराज के समक्ष कभी भी शिष्य को उच्च आसन पर नहीं बैठना चाहिये और उनके आने पर अपने आसन से उठकर गुरु महाराज को वंदन आदि करना उचित है ॥ १७ ॥

लतानो प्रत्यनिकभाव नाश करी नाये छे. आ भाटे मोक्षाभिलाषी विनयवान शिष्यनुं कर्तव्य छे के ते स्वप्नाभां पणु पोताना गुरु महाराजने प्रत्यनिक न अने.

श्लोकभां ( वाचा कर्मणा ) ने पद आपवाभां आवेल छे तेना मतलब अये छे के गुरुना प्रति शिष्य अयुं न कहे के “ तमे पणु शुं कांठि जाणो छे ” आ प्रकारने वडेवार वाचनिक प्रतिकूल आचरणभां गर्भित थाय छे. आ रीते ते ने आसन उपर भेसता होय तेनुं शिष्ये कहे पणु उल्लंघन करयुं न जेधअे, अये आसनने तेना पग न लागे तेनी तेणे सावधेती राखवी जेधअे तथा आचार्य महाराजनी सामे कही पणु शिष्ये उंचा आसन पर भेसयुं न जेधअे अने तेमना आपवाथी पोताना आसन उपरथी उला थधं गुरु महाराजने वंदन वगेरे करयुं उचित छे ॥ १७ ॥

कर्मयोग्यानाम् आचार्यादीनामित्यर्थः, पक्षतः=पार्श्वतः, न उपविशेदिति शेषः । पार्श्वभागोपवेशने गुर्वादिपंक्तौ समावेशात् तत्साम्यं स्यात्, किञ्च शिष्यं प्रति वक्रावलोकने गुरोः स्कन्धादिबाधासम्भवः तथा चाविनयः प्रसज्येत, तस्मादाचार्यादिबाहुना सह बाहुं कृत्वा शिष्यो नोपविशेदिति भावः । पुरतो न=गुर्वादीनामग्रतोऽपि नोपविशेत्, तथोपवेशने वन्दनार्थमागतानां जनानां गुर्वादिमुखावलोकनेऽन्तरायः स्यात्, पृष्ठतोऽपि नैवोपविशेत्, गुरुशिष्ययोरुभयोरपि मुखादर्शने वाचनादीनामानन्दो न स्यादिति भावः । ऊरुणा=जङ्घया ऊरुं=जङ्घां न युञ्ज्यात्=न संघट्टयेत्, अत्यासन्नोपवेशनादिभिः शिष्यः स्वकीयेनोरुणा गुरोरूरुं न स्पृशेदित्यर्थः । तथाकरणे सति गुर्वादीनामविनयः स्यात् । तथा-शयने=शय्यायां शयित आसीनो वा न प्रतिशृणुयात् । अयं भावः-शय्यागतः शिष्यो यदि गुरुणाऽऽहूतः

आसन विनय को सूत्रकार कहते हैं—‘ न पक्खओ० ’ इत्यादि ॥

अन्वयार्थ ( किञ्चाणं पक्खओ-कृत्यानां पक्षतः “ न उपविशेत् ” कृतिकर्म-अर्थात् वन्दनादि के योग्य-आचार्य तथा अपने से बड़े के पास में संघट्टा करते हुए बराबर नहीं बैठे । ( पुरओ न पिट्ठओ न-पुरतः न पृष्ठतः न ) गुरु महाराज के आगे नहीं बैठे । पीछे संघट्टा करता हुआ नहीं बैठे । ( ऊरुणा ऊरुं न जुंजे-ऊरुणा ऊरुं न युञ्ज्यात् ) उनके ऊरु-घुटना से घुटना लगाकर नहीं बैठे । ( सयणे नो पडिस्सुणे ) तथा जिस समय आचार्य आदि किसी काम करने के लिये बुलावें अथवा कहें उस समय अपने आसन पर बैठे ही बैठे उत्तर नहीं दे ।

कृतिकर्म का अर्थ वन्दन विशेष है । इसका वर्णन मेरे द्वारा रचित आवश्यक सूत्र की टीका में किया गया है । अतः यह विषय वहाँ से जान लेना चाहिये । इस कृतिकर्म के योग्य आचार्य आदि होते हैं ।

आसन-विनय विषे सूत्रकार कहे छे—न पक्खओ० इत्यादि.

अन्वयार्थ—किञ्चाणं पक्खओ-कृत्यानां पक्षतः “ न उपविशेत् ” कृतिकर्म अर्थात् वन्दनादिने योग्य आचार्य तथा पोतानाथी मोटाओनी पासे तेमनी अओअउ थछिने जेसवुं नडिं, पुरओ न पिट्ठओ न-पुरतः न पृष्ठतः न शुरु भडाराओनी आगण जेसवुं नडिं, पाछण अओअउ थछि न जेसे ऊरुणा ऊरुं न जुंजे-ऊरुणा ऊरुं न युञ्ज्यात् तेमना धुंठणुथी धुंठणु लगाडीने न जेसे सयणे नो पडिस्सुणे तथा जे समये आचार्य आदि कोई काम करवा भाटे ओलावे अथवा कहे ते समये पोताना आसन उपर जेकां जेकां जवाज न आपे.

सावार्थ—कृति कर्मने अर्थ वन्दन विशेष छे ! जेतुं वरुण न भारथी शयित आवश्यक सूत्रनी टीकाभां करवाभां आवेल छे, आथी आ विषय त्याथी



किंचित्कार्यकरणाय प्रोक्तो वा स्यात्, तदा शिष्येण शय्यायां स्थितेनैव न श्रोतव्यम्, किं तु गुरुवचनश्रवणसमन्तरमेव संप्रान्तचेताः सविनयः कृताञ्जलिः सन् गुरोः समीपमागत्य चरणारविन्दं वन्दमानः 'अनुगृहीतोऽहम्' इति मनसि मन्यमानो वदेत्—'भदन्त ! आज्ञापयतु किं विधेयं मया' इति ॥ १८ ॥

मोक्षाभिलाषी शिष्य का कर्तव्य है कि वह आचार्यादिक को दायें बायें न बैठे । कारण कि इस प्रकार बैठने से गुर्वादिक की पंक्ति में उसका समावेश होता है । दर्शनार्थी लोग शिष्य को समझेंगे कि यही गुरु महाराज है । तथा शिष्य के प्रति जब गुरु को देखने की इच्छा होगी तो वे अपनी गर्दन को मोड़कर उसको देखेंगे, इससे उनकी गर्दन में तथा स्कन्ध आदि फिराने में तकलीफ होगी, तथा गुरु महाराज का संघटा आदि होने से शिष्य को आशातना आदि दोष लगने का संभव है । इसलिये गुरु महाराज की बराबरी में नहीं बैठना चाहिये । गुरु महाराज के आगे भी इसी तरह से नहीं बैठना चाहिये । कारण कि इस प्रकार से बैठने में गुरु महाराज को वन्दना निमित्त आने वालों को उनके दर्शनों में अन्तराय होती है । इसी प्रकार गुरु के पीछे भी शिष्य को नहीं बैठना चाहिये—क्यों कि इस प्रकार से बैठने पर गुरु को शिष्य का मुख नहीं दीख सकेगा और शिष्य को गुरु का मुख नहीं दीख सकेगा, इससे वाचना पृच्छना आदि में अन्तराय होने से उनका आनंद

भाषी देवे जेधये, आ कृतिर्भना योग्य आचार्य आदि होय छे. मोक्षा-  
भिलाषी शिष्यनुं कर्तव्य छे के ते आचार्य आदिही जाया-जमया न जेसे  
कारण के, आ प्रकारे जेसवाथी गुरु आदिनी पंक्तिमां तेना समावेश थाय छे.  
दर्शनार्थी होइ शिष्यने ज गुरु महाराज मानी दे. शिष्य तरइ ज्यारे गुरु  
महाराजने जेवानी छिछि थाय त्यारे ते पोतानी गरदन भरडीने तेना तरइ  
जेशे आथी जेमनी गरदनमां तथा जला वगेरे जेरवामां तकलीइ  
थसे तथा गुरु महाराजनुं संघट्ट आदि थवाथी शिष्यने अशातना  
आदि दोष लागवानो संभव छे. आ भाटे गुरु महाराजनी अरोअरीमां  
जेसवुं न जेधये तेम गुरु महाराजनी आगण पथु आ रीते  
जेसवुं न जेधये. कारण के आ प्रकारना जेसवाथी गुरु महाराजनी वंदना भाटे  
आवनारने तेमना दर्शनमां अंतराय थाय छे. आ प्रकारे गुरुनी पाछण पथु  
शिष्ये जेसवुं न जेधये केम के आ रीते जेसवाथी गुरु शिष्यनुं मुअ जेध  
शकता नथी अने शिष्य, गुरुनुं मुअ जेध शकता नथी अने गुरु शिष्यनुं मुअ  
जेध शके नही आथी वाचना पृच्छना आदिमां अंतराय थवाथी जेना आनंद



मूलम्—नेव पल्हत्थियं कुज्जा, पक्खपिण्डं च संजए ।

पाएँ पँसारिए वाविं नँ चिट्ठे' गुरुणंतिएँ ॥ १९ ॥

छाया—नेव पर्यस्तिकां कुर्यात् , पक्षपिण्डं च संयतः ।

पादौ प्रसार्य वापि, न तिष्ठेद् गुरुणामन्तिके ॥ १९ ॥

टीका—' नेव पल्हत्थियं ' इत्यादि ।

संयतः—मुनिः, पर्यस्तिकाम्—द्वे जानुनी उत्थाप्य वस्त्रेण पृष्ठतः समारभ्य पार्श्वद्वयं जानुद्वयं च संवेष्ट्योपवेशनं पर्यस्तिका, यद्वा—जङ्घाद्वयं वस्त्रेण संवेष्ट्यो-

उन्हें प्राप्त नहीं हो सकेगा । तथा गुरु महाराज की जंघा से जंघा अड़ाकर भी शिष्य को इसलिये नहीं बैठना चाहिये कि इस प्रकार की क्रिया से गुरु महाराज का अविनय होता है । गुरु महाराज जब किसी कार्य करने के लिये शिष्य को बुलावें तो उस समय उसका कर्तव्य है कि वह 'तहेति-तहेति' कहकर आसनसे उसी वस्तु संभ्रान्तचित्त होकर आसन का परित्यागकर दें और बड़ी भक्तिसे विनयके साथ गुरुके समक्ष जाकर हाथ जोड़ वन्दना करके पूछे कि हे भदंत ! आज्ञा दीजिये—किस कार्य के लिये आपने मुझे याद किया है । इस प्रकार का व्यवहार भी विनयधर्म में परिगृहीत हुआ है ॥ १८ ॥

'नेव पल्हत्थियं' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( संजए संयतः ) मुनि शिष्य को ( गुरुणंतिए—गुरुणामन्तिके ) अपने गुरुजनों के समक्ष ( पल्हत्थियं नेव कुज्जा—पर्यास्तिकां नेव कुर्यात् ) पैरों पर पैर रखकर—पालरथी मारकर—पद्मासन माड़कर—कभी नहीं बैठना चाहिये । इस प्रकार बैठने से आशातना दोष लगता है ।

अने प्राप्त थई शकते नथी. तेम गुरु महाराजना गोठण्णी गोठण्णी लीडावीने शिष्ये अटला भाटे न असवुं नेई अ, कारणु के आ प्रकारनी क्रियाथी गुरु महाराजने अविनय थाय छे, गुरु महाराज ठाई काम भाटे शिष्यने भोलावे तो ते सभये असुं कर्तव्य छे के पोताना आसन उपरथी अज वअते स्वस्थ चित्त अनी गुरु भोलावे त्यारे तडेत कही आसनने त्याग करी लक्ष्मिपूर्वक विनय साथे गुरुनी सामे अई हाथ नेडी वंदना करी पूछे के हे भदन्त ! आज्ञा आपो क्या काम भाटे आपे मने याद करेल छे. आ प्रकारने वडेवार पण विनय धर्मभः अडण्णी करवामां आवेल छे ॥ १८ ॥

नेव पल्हत्थियं इत्यादि,

अन्वयार्थ—संजए—संयतः मुनि शिष्ये गुरुणंतिए—गुरुणामन्तिके पोताना शुद्धनेनी सामे पल्हत्थियं नेवकुज्जा—पर्यास्तिका नेव कुर्यात् पग उपर पग राथी—पदीही लगावी—पद्मासन लगाडी, कहि पणु असवुं न नेई अ. आ

पवेशनं, पर्यस्तिका, ताम्, पक्षपिण्डं—बाहुद्वयेन कायवेष्टनं च नैव कुर्यात् । अपि वा=अपि च गुरुणाम् अन्तिके=संनिधौ पादौ=चरणौ प्रसारितौ कृत्वा न तिष्ठेत् । इदमुपलक्षणम्—एकजङ्घोपरि अपरचरणं निधायपि न तिष्ठेत् । तथासत्यविनयः स्यादिति भावः ॥ १९ ॥

मूलम्—आयरिण्हिं वाहित्तो, तुसिणीओ न कयाई वि ।

पसायपेही नियांगट्टी, उंवचिट्टे गुं सया ॥२०॥

छाया—आचार्यैर्व्याहृतः तूष्णीको, न कदाचिदपि ।

प्रसादप्रेक्षी नियागार्थी, उपतिष्ठेत् गुं सदा ॥ २० ॥

टीका—‘आयरिण्हिं०’ इत्यादि ।

आचार्यैः=गुरुभिः, व्याहृतः—आहूतः, यद्वा—उक्तः सन् तूष्णीकः=मौनावलम्बी, कदाचिदपि=ग्लानाद्यवस्थायामपि न भवेदिति शेषः । किंतु प्रसादप्रेक्षी=प्रसादं

( पक्खपिण्डं च नेव कुज्जा—पक्षपिण्डं च नैव कुर्यात् ) इसी प्रकार दोनों हाथों से घुटने बांधकर तथा पीठ भाग से लेकर दोनों घुटनों को वस्त्र बांधकर भी बैठना गुरु महाराज की आज्ञातना है । ( पाए पसारिए वावि न चिट्टे—पादौ प्रसार्य वापि न तिष्ठेत् ) अर्थात् गुरु महाराज के सामने पैरों को पसार कर भी शिष्य को बैठना उचित नहीं है । इसी तरह अर्ध पद्मासन के रूप में भी उनके समक्ष नहीं बैठना चाहिये । ऐसा करने से अविनय दोष लगता है ॥ १९ ॥

‘आयरिण्हिं०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—शिष्य को चाहिये कि वह ( आयरिण्हिं वाहित्तो—आचार्यैः व्याहृतः सन् ) आचार्य तथा अपने से बड़ों द्वारा जब बुलाया

प्रकारे भेसवाथी अशातनानो दोष लागे छे. पक्खपिण्डं च नेव कुज्जा—पक्षपिण्डं च नैव कुर्यात् आ प्रकारे अन्ने डाथेने गोष्ठ्यु उपर लगावी. तथा वांसाना लागथी लर्ध अन्ने घुटण्णे वस्त्रथी आंधी भेसवाथी पणु गुरु महाराजनी अशातना थाय छे. पाए पसारिए वावि न चिट्टे—पादौ प्रसार्यवापि न तिष्ठेत् अर्थात् गुरु महाराजनी सामे पग लांभा करीने पणु शिष्ये भेसवुं उचित नथी. आ रीते अर्ध पद्मासनना रुपथी पणु अेमनी सामे भेसवुं न लेध अे अेम करवाथी अविनय दोष लागे छे ॥ १९ ॥

‘आयरिण्हिं०’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—विवेकी शिष्य भाटे अे जरूरी छे के ते आयरिण्हिं वाहित्तो—आचार्यैः व्याहृतः सन् आचार्य तथा पोतानाथी भेटाओ तरइथी

प्रेक्षितुं शीलमस्येति तथा, असौ गुरुणां प्रसादः—यदन्येषां शिष्याणां सद्भावेऽपि गुरवो मामाज्ञापयन्तीति विचारशील इत्यर्थः । यद्वा—केन विधिना गुरुः प्रसन्नो भवेदिति भावनाभावितः, गुरुप्रसादलाभार्थी इति यावत् । उक्तञ्च—

जो नत्थि भग्गसाली, नो सो गुरुदेसणं इहं लभए ।

धारामियस्स निवडइ, अंगेणो पुन्नहीणाणं ॥ १ ॥

छाया—यो नास्ति भाग्यशाली, नासौ गुरुदेशनामिहालभते ।

धाराऽमृतस्य निपतति, अङ्गे नो पुण्यहीनानाम् ॥ १ ॥

तथा नियागार्थी=मोक्षार्थी शिष्यः गुरुं=धर्माचार्यादिकं, सदा उपतिष्ठेत्= ' मत्पण वंदामि ' इत्यादि वदन् सविनयं गुरुसमीपे तिष्ठेदित्यर्थः ॥१०॥

जावे, अथवा किसी कार्य करने के लिये कहा जावे—तब वह ( कयाइविं-कदाचिदपि ) कभी भी ( तूसणीओ न-तूष्णीकः न भवेत् ) उत्तर दिये विना नहीं रहे चाहे बीमार भी होवे तौ भी चुपचाप न रहे । ( पसाय-पेही-प्रसादप्रेक्षी ) यह समझे कि मेरा बड़ा भारी सौभाग्य का उदय है, जो अन्य शिष्यों के होने पर भी गुरु महाराज मुझे ही आज्ञाप्रदान-कर रहे हैं । अथवा—यह विचार करे कि गुरु महाराज जिस उपाय से मेरे पर प्रसन्न हों वही उपाय मुझे करते रहना चाहिये । इस प्रकार की भावना से भावित होकर गुरु के प्रसाद का लाभार्थी बने । क्यों कि कहा भी है—जिस प्रकार हीन पुण्यवालों के शरीर ऊपर अमृत रस की धारा नहीं पड़ती है—उसी प्रकार जो शिष्य भाग्यशाली नहीं होता है वह गुरु की देशना का पात्र नहीं होता है । इसी तरह ( नियागट्टी ) मोक्षा-भिलाषी शिष्य का कर्तव्य है कि वह ( सया गुरुं उवचिट्ठे-सदा गुरुं

न्यारे तेने जेलाववाभां आवे अथवा केई काम माटे कडेवाभां आवे त्यारे कयाइविं-कदाचिदपि ते कट्टि पणु तूसणीओ न-तूष्णीकः न भवेत् उत्तर आग्धा वगर न रहे. आडे ते भीमार डोय तो पणु चुपचाप न रहे. पसायपेही-प्रसादप्रेक्षी ते जेवुं समजे के, मारा सौभाग्यने मोटो उदय छे के, भीज शिष्यो डोवा छतां पणु गुरु महाराज भने न आज्ञा आपे छे. अथवा जेवो विचार करे के गुरु महाराज जे उपायथी मारा उपर प्रसन्न रहे तेवो न उपाय मारे करता रहेवुं जेईजे. आ प्रकारनी भावनाथी भाविक अनिने गुरुना प्रसादने लाभार्थी भने. केभके, कहुं छे के—जे प्रकारे दुर्भागिना शरीर उपर अमृतरसनी धार पडती नथी, जे प्रकारथी जे शिष्य भाग्यशाली नथी डोतो ते गुरुनी देशनाने पात्र अनतो नथी. आ रीते नियागट्टी-मोक्षा-भिलाषी शिष्यनुं कर्तव्य छे के ते सया गुरुं उवचिट्ठे-सदा गुरुं उपतिष्ठेत् डभेशां

आसनस्थितस्य शिष्यस्य विनयमाह—

मूलम्—आलवंते लवंते वा, न निसिज्जं कयाइवि ।

चइऊण आसणं धीरो, जंओ जंतं पडिस्सुणे ॥२१॥

छाया—आलपति लपति वा, न निषीदेत् कदाचिदपि ।

त्यक्त्वा आसनं धीरो, यतो यत्तु प्रतिशृणुयात् ॥ २१ ॥

टीका—‘ आलवंते ’ इत्यादि ।

गुरौ आलपति=सकृद् वदति सति, कार्यस्य लघुत्वात्सकृत्कथनमिति भावः, यथा—आसनमानीयताम्, पारणं क्रियताम्, इत्यादि, वा=अथवा गुरौ लपति=पुनः पुनः कथयति सति ग्रहणासेवनाशिक्षायां स्वपरवैयावृत्त्यकार्ये च, कार्यस्य बृहत्त्वादत्यावश्यकत्वाच्च पुनः पुनः कथनमिति भावः, शिष्यः कदाचिदपि न निषीदेत्=आसनाऽऽसीनो न भवेत् । अयं भावः—यदि गुरुः किञ्चित् कार्यं सकृद् वा, पुनः पुनर्वा,

उपतिष्ठेत्) “ मत्थे णं वंदामि ” इस प्रकार विनयद्योतक शब्द का व्यवहार करता हुआ सदा अपने गुरु के समक्ष उपस्थित होवे ।

भावार्थ—गुरुमहाराज जिस तरह अपने ऊपर प्रसन्न हो उत्तम शिष्य का कर्तव्य है कि वह उस प्रकार प्रयत्नशील रहे ॥ २० ॥

‘ आलवंते० ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(आलवंते लवंते वा कयाइ वि न निसिज्जा—आलपति लपति वा कदाचिदपि न निषीदेत्) उत्तमशिष्य—विनयशीलशिष्य का कर्तव्य है कि जब गुरु महाराज किसी कार्य को करने के लिये एक ही बार में कहें या बार २ भी कहें तौ उस समय उसे कभी उस कार्य को करने के लिये आना कानी नहीं करनी चाहिये । अर्थात्—उस समय वह शिष्य चाहे अपने आसन पर भी

पोताना गुरुनी समक्ष ञ्ती वण्ते मत्थे णं वंदामि आ प्रकारेणो विनय द्योतक शब्दो वडेवार करतो रहे.

भावार्थ—गुरुदेव ने रीते पोताना उपर प्रसन्न थाय ओवो प्रयत्न करवानुं उत्तम शिष्यनुं कर्तव्य छे, अने ओ प्रकारे ते प्रयत्नशील रहे ॥ २० ॥

आलवंते० इत्यादि.

अन्वयार्थ—आलवंते लवंते वा कयावि न निसिज्जा—आलपति लपति वा कदाचिदपि न निषीदेत् उत्तम शिष्य—विनयशील शिष्यनुं कर्तव्य छे के न्यारे गुरु महाराज कोइ काम करवा भाटे ओक ञ वण्ते कडी हे अथवा बारंवार कडे ते समये तेले कडि पणु ओ कार्यने करवा भाटे आनाकानी करवी न नेछे. अर्थात्—ओ वण्ते ओ शिष्य लडे पोताना

आसनावस्थितं शिष्यं वदति, तदा शिष्यो व्याख्यानादिकालेपि पट्टाघासने नोप-  
विष्टः स्याद्, किंतु आसनं त्यक्त्वा धीरः=बुद्धिमान्, शिष्यः यतः=यत्नवान् एका-  
ग्रचित्तः सन् यत्=यत् कार्यं, गुरुणोक्तं सुकरं दुष्करं वा, तत्तत् प्रतिशृणुयात्,  
'अवश्यकरणभावोऽस्ति' इत्युक्त्वा स्वीकुर्यात् । अत्र-धीर इति विशेषणं व्याख्या-  
नादिकाले, तथा स्वशरीरादिकार्यवशाद् व्यग्रस्यापि शिष्यस्य गुरुविनयाराधनार्थं  
क्षमत्वं सावधानत्वं च सूचयति । 'यतः' इति विशेषणेन समितिगुप्तिसमाराधन-  
पूर्वकं गुरोः सकलकार्यसंपादनाभिरुचिः सूचिता । प्रतिशृणुयादिति पदेन गुरुव-  
चनश्रवणसमनन्तरमविलम्बेन तत्कार्यसंपादनार्थं स्वीकृतिवचनमुक्त्वाऽन्यत् सर्वं  
स्वकीयकार्यं विहाय प्रथमं सर्वथा गुरुकार्यसाधने सादरा प्रवृत्तिः सूचिता ॥२१॥

बैठा हो तौ भी उस समय शीघ्र उठकर उसे गुरु महाराज की आज्ञा  
का पालन करना चाहिये । ऐसा नहीं करना चाहिये कि गुरु महाराज  
की बात सुनकर भी पुनः आसन पर बैठ जावें । अर्थात् उस समय  
व्याख्यान आदि का समय हो तौ भी गुरु महाराज की आज्ञा का  
आराधन करना चाहिये । इसी बात को उत्तरार्ध में सूत्रकार ने स्पष्ट  
किया है—( चङ्गण आसणं धीरो जओ जत्तं पडिस्सुणे—त्यक्त्वा आसनं  
धीरः यत्तत् प्रतिशृणुयात् ) चाहे वह कार्य सरल हो चाहे कठिन हो तौ  
भी सर्वप्रकार के संकल्प विकल्प से रहित होकर गुरु महाराज कथित  
कार्य को “ अवश्य करने का भाव है ” ऐसा कहकर शिष्य को स्वीकार  
करना चाहिये । सूत्र में जो धीर विशेषण दिया गया है उससे सूत्रकार  
का यह अभिप्राय सूचित होता है कि जिस समय गुरु महाराज कार्य  
करने के लिये शिष्य से कहें उस समय वह शिष्य चाहे व्याख्यान देने

आसन उपर भेसेद होय तो पण त्यांथी तुरत न उठीने तेणे गुरु महाराजनी  
आज्ञानुं पालन करवुं जेधये. जेवुं नडीं करवुं जेधये के, गुरु महाराजनी  
वात सांलणीने पणु आसन उपर पाछे। जेसी जय अर्थात् जे वधते व्याख्यान  
आदिने। समय होय तो पणु गुरु महाराजनी आज्ञानुं आराधन करवुं  
जेधये. आ वातने उत्तरार्धथी सूत्रकारे स्पष्ट करेद छे.

चङ्गण आसणं धीरो जओ जत्तं पडिस्सुणे—त्यक्त्वा आसनं धीरः यतो यत्तत् प्रति-  
शृणुयात् आडे ते काम सरण होय, आडे कठीन होय तो पणु सर्व प्रकारना  
संकल्प विकल्पथी रहित थधने गुरु महाराजे कडेला कामने “ अवश्य करवुं  
जेधये तेवे। भाव छे ” जेवुं कठीने शिष्ये तेने स्वीकार करवे। जेधये.  
सूत्रमां जे धीर विशेषणु अपायेद छे तेनाथी सूत्रकारने। जे अबिप्राय नुष्ठाय  
छे के, जे समये गुरु महाराज काम करवा माटे शिष्यने कडे ते समये शिष्य

उ० १८

मूलम्—आसणगओ न पृच्छज्जा, नैव सेज्जागओ कयाइ वि ।  
आगम्म्वर्कुडुओ संतो, पृच्छज्जा पंजलीउडो ॥२२॥

छाया—आसनगतो न पृच्छेत्, नैव शय्यागतः कदाचिदपि ।

आगम्योत्कुटुकः सन्, पृच्छेत् प्राञ्जलिपुटः ॥ २२ ॥

टीका—‘आसणगओ’ इत्यादि । आसनगतः=आसनोपविष्टः सन् न पृच्छेत् सूत्रार्थं कुशलादिकं वा किमपि न पृच्छेदित्यर्थः । तथा—कदाचिदपि कस्मिन्नपि काले शय्यागतः-संस्तारकस्थितः नैव पृच्छेत्-रोगाद्यवस्थां विना शयानः सन् किमपि नैव पृच्छेदित्यर्थः । किंतु आगम्य=गुरोः समीपे आगत्य, उत्कुटुकः=उत्कुटुकासनं

के लिये भी तैयार रहा हो—वह काल उसके व्याख्यान करने का भी हो अथवा अपने शारीरिक कार्य के वश से वह शिष्य व्यग्रचित्त वाला भी हो तौ भी विनय धर्म की आराधना निमित्त उसे गुरु महाराज कथित कार्य करने की क्षमता एवं उस कार्य करने में विशेष सावधानी रखनी चाहिये । “जओ—यतः” यह पद यह प्रकट करता है कि शिष्य को समिति गुप्ति के आराधनपूर्वक ही गुरु महाराज के समस्त कार्यों के सम्पादन में रुचि शील होना चाहिये । “प्रतिश्रृणुयात्” यह क्रिया-पद इस विशेषता का सूचक है कि गुरु वचन के श्रवण के अनन्तर ही विना किसी विलंब के उनके कार्य को करने के लिये प्रतिज्ञा वचन कहकर और अपने निज कार्य को भी छोड़कर शिष्य का कर्तव्य है कि वह सर्व प्रकार से उनके कार्य के साधन करने में सादर प्रवृत्ति करे ॥२१॥

बड़े व्याख्यान आपवा भाटेनी तैयारीमां होय—ते समय तेने व्याख्यान करवानो होय, अथवा पोताना शारीरिक कार्यना वशथी ते शिष्य व्यग्र चित्त-वाणो होय तो पणु विनय धर्मनी आराधना निमित्त तेनामां गुरु महाराजे कडेला कामने करवानी क्षमता अने ओ काम कराववामां विशेष सावधानी राखवी जेध ओ. जओ—यतः ओ पद ओवुं प्रकट करे छे के, शिष्ये समिति गुप्तिना आराधन पूर्वक ओ गुरु महाराजना हरेक कामोनुं संपादन करवामां रुचि देणववी जेध ओ. प्रतिश्रृणुयात् ओ क्रियापद ओ विशेषतानुं सूचक छे के गुरुवचनने सांख्यतां ओ केध प्रकारना विलंब विना ओमना कामने करवा भाटे प्रतिज्ञा वचन कडीने अने पोतानुं काम होय तेने छोडीने शिष्यनुं कर्तव्य छे के, ते सर्व प्रकारथी गुरु महाराजना कामने पूंइ करवामां पोतानी सादर प्रवृत्ति करे. ॥ २१ ॥



कृत्वा स्थितः सन् प्राञ्जलिपुटः=कृताञ्जलिः, सूत्रादिकं पृच्छेत् । यद्वा-कदाचिदपि  
=बहुश्रुतत्वेऽपि आसनगतः शय्यागतो वा न पृच्छेत् सूत्रादिकमित्यर्थः ।

‘ आसनगओ ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—उत्तम शिष्य को चाहिये कि वह ( आसनगओ-  
आसनगतः ) आसन पर बैठे २ अथवा ( सेज्जागओ-शय्यागतः )  
संस्तारक पर बैठे २ या सोये २ ( रोगादिक अवस्था को छोड़-  
कर ) ( कयाइवि-कदाचिदपि ) कभी भी ( न पुच्छिज्जा-न पृच्छेत् )  
गुरु महाराज से सूत्र का अर्थ अथवा उनकी कुशलता न पूछे । किन्तु  
( आगम्मुक्कुडुओ संतो पंजली उडो पुच्छिज्जा-आगम्य उत्कुटुकः सन्  
प्राञ्जलिपुटः पृच्छेत् ) उनके समीप आकर और उत्कुटुकासन-उकडु  
आसनसे बैठकर दोनों हाथजोड़ फिर उनसे सूत्र आदि का अर्थ पूछे ।  
शिष्य कितना ही बहुश्रुती क्यों न हो तौ भी अपने गुरु से  
सूत्रार्थ की प्रच्छना अथवा सुख शाता की पृच्छना आसन पर  
बैठे २ या विस्तर पर लेटे २ नहीं करनी चाहिये । यद्यपि सूत्रार्थ की  
पृच्छना संशय होने पर ही की जाती है । बहुश्रुत होने पर भी संशय  
हो सकता है । अब ऐसी स्थिति में शिष्य का धर्म है कि उस संशय की

आसनगओ इत्यादि.

अन्वयार्थ—उत्तम शिष्यनी ओ इरञ्छे के ते आसनगओ-आसनतः  
आसन उपर ओठां ओठां अथवा सेज्जागओ-शय्यागतः शय्यामां ओठां ओठां  
के सुतां सुतां ( रोगादिक अवस्थाने छोडीने ) कयाइवि-कदाचिदपि कही पणु  
शुरु महाराजथी सूत्रने। अर्थ अथवा ओमनी कुशलता न पुच्छिज्जा-न पृच्छेत्  
न पुछे. परंतु आगम्मुक्कुडुओ संतो पंजलि उडो पुच्छिज्जा-आगम्य  
उत्कुटुकः सन् प्राञ्जलिपुटः पृच्छेत् तेमनि सामे आवी अने उत्कुटासनथी  
ओसी अने डाय ओडी तयारपछी ओमने सूत्र आदिना अर्थ पुछे अने सुभ-  
शाताना समाचार पुछे शिष्य गमे तेवा बहुश्रुत केम न डोय तो पणु पोताना  
शुरुथी सूत्रार्थना अर्थ अथवा सुभशाताना समाचार आसन पर ओठां ओठां  
अथवा तो पथारी पर सुतां सुतां न पुछवा ओछये. ओ के सूत्रार्थ आदिना  
अर्थ संशय थवाथी न पुछाय छे. बहुश्रुत डोवा छतां पणु संशय  
थाय छे. आथी आवी स्थितिमां शिष्यने। धर्म छे के, ओ संशयनी निवृत्ति  
भाटे ते शुरुनी समक्ष नय अने शुभ विनयनी साथे ओ संशयनी निवृत्ति

અર્થ ભાવઃ—બહુશ્રુતોઽપિ શિષ્યઃ સંશયે સતિ ગુરું પૃચ્છતિ સૂત્રાર્થમ્, તત્ર વિનયપૂર્વિકૈવ પ્રચ્છના કરણીયા યથા ગુરોરાશાતના ન ભવેદિતિ । ઉત્કુટુક ઇતિ વિશેષણેન—ઈન્દ્રિયદમનશીલત્વં વિનીતત્વં ચ સૂચિતમ્, પ્રાજ્જલિપુટ ઇત્યનેન સર્વવિધવિનયવત્ત્વં જાતિકુલસમ્પન્નત્વં ચ સૂચિતમ્ ॥ ૨૨ ॥

મૂલમ્—એવં વિણયજુત્તસ્સ, સુત્તં અર્થં ચ તદુભયં ।

પુચ્છમાણસ્સ સીસસ્સ, વાગ્ગરિઙ્ગ જહાસુયં ॥૨૩॥

છાયા—એવં વિનયયુક્તસ્ય, સૂત્રમ્ અર્થં ચ તદુભયમ્ ।

પૃચ્છતઃ શિષ્યસ્ય, વ્યાકુર્યાદ્ યથાશ્રુતમ્ ॥ ૨૩ ॥

ટીકા—‘ એવં વિણયજુત્તસ્સ ’ ઇત્યાદિ । એવં=ઉક્તપ્રકારેણ વિનયયુક્તસ્ય—વિનયવતઃ, સૂત્રમ્—કાલિકોત્કાલિકાદિ, અર્થં—તદ્વોધ્યં, સૂત્રાભિપ્રાયમિત્યર્થઃ ।

નિવૃત્તિકે લિયે ગુરુકે સન્મુખ જાવેઔર વઢે વિનયકે સાથ ઉસ સંશય કી નિવૃત્તિ કરે । ગુરુ મહારાજ કા વિનય ભક્તિ મેં યદિ જરા સી ખી ઝુટિ હો જાયગી તો શિષ્ય આશાતના દોષ કા ભાગી હોગા । “ ઉત્કુટુક ” હસ વિશેષણ સે સૂત્રકાર યહ સૂચિત કરતે હૈં કિ જો હસ આસન સે બૈઠતા હૈ વહ સાધુ ઈન્દ્રિય દમન શોલ તથા વિનીત હોતા હૈ । “ પ્રાજ્જલિપુટ ” હસ વિશેષણ સે શિષ્ય મેં સખી પ્રકાર કે વિનયગુણ તથા જાતિસમ્પન્નતા એવં કુલ સમ્પન્નતા સૂચિત હોતી હૈ ॥ગા.૨૨॥

‘ એવં ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—( એવં—એવં ) પૂર્વોક્ત પ્રકાર સે ( વિણયજુત્તસ્સ—વિનયયુક્તસ્ય ) વિનયધર્મ સે યુક્ત હોકર ( સુત્તં અર્થં ચ તદુભયં પુચ્છમાણસ્સ—સૂત્રં અર્થં તદુભયં પૃચ્છતઃ ) સૂત્ર—અર્થ ઔર સૂત્ર અર્થ ઢોનોં કો પૂછને વાલે ( સીસસ્સ—શિષ્યસ્ય ) શિષ્ય કો ( જહાસુયં

કરી લ્યે. ગુરુ મહારાજની વિનય ભક્તિમાં જરા પણ ભૂલ થાય તો શિષ્ય આશાતના દોષને ભાગી અને છે. “ ઉત્કુટુક ” આ વિશેષણથી સૂત્રકાર એ એ સૂચિત કરે છે કે, જે આ આસનથી બેસે છે તે સાધુ ઈન્દ્રિયનું દમન કરનાર તથા વિનિત હોય છે. “ પ્રાજ્જલિપુટ ” આ વિશેષણથી શિષ્યમાં સર્વ પ્રકારના વિનયશુભ તથા જાતિસંપન્નતા અને કુળસંપન્નતા દેખાઈ આવે છે. ॥૨૨॥  
એવં ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ— એવં—એવં પૂર્વોક્ત પ્રકારથી વિણયજુત્તસ્સ—વિનયયુક્તસ્ય વિનય ધર્મથી યુક્ત બની સુત્તં અર્થં ચ તદુભયં પુચ્છમાણસ્સ—સૂત્રં અર્થં તદુભયં પૃચ્છતઃ સૂત્ર—અર્થ અને સૂત્ર અર્થ બન્નેને પુછવાવાળા સીસસ્સ—શિષ્યસ્ય

उक्तञ्च—

जो सुत्ताभिप्पाओ, सो अत्थो अज्जए य जम्हा । (स्था. २ ठा. १ उ०)  
छाया—यः सूत्राभिप्रायः सोऽर्थः, अर्थते च यस्मात् ।

व्याख्या—यः सूत्रस्य अभिप्रायः स एव अर्थः । यस्मात्=यतः करणादसा-  
वर्थः सूत्रात् अर्थते गम्यते । तदुभयं=सूत्रार्थद्वयं च पृच्छतः=पृच्छां कुर्वतः शिष्यस्य  
गुरुः यथाश्रुतं—गुरुपरंपरातो यथा ज्ञातं तथा सूत्रम्, अर्थं तदुभयं च व्याकुर्यात्  
=कथयेत्, न तु स्वबुद्ध्या कल्पितं कृत्वा बोधयेदिति भावः । इह तावत् सूत्रज्ञा-  
नाय सूत्रस्य शब्दार्थं तल्लक्षणं तद्भेदं तद्वाचनादिकं च निर्दिशामः, तथाहि—

वागरिज्जा—यथाश्रुतं व्याकुर्यात् ) गुरु महाराज उन सब का शास्त्रविहित  
विधि के अनुसार प्रतिपादन करे ।

कालिक उत्कालिक आदि सूत्र है । सूत्र का जो अभिप्राय है वही  
अर्थ है । कहा भी है—जो सुत्ताभिप्पाओ सो अत्थो अज्जए य जम्हा—  
सूत्र के अभिप्राय को अर्थ कहा गया है । क्यों कि यह अर्थ सूत्र से ही  
निश्चित किया जाता है । इस तरह केवल सूत्र को अथवा उसके अर्थ  
को एवं इन दोनों को जब शिष्य अपने आचार्य महाराज से पूछे तो  
आचार्य महाराज को चाहिये कि वे उसको गुरु परंपरा से यथाज्ञात  
सूत्र—अर्थ एवं दोनों को अच्छी तरह समझावें । ऐसा न करें कि अपनी  
निजी कल्पना से मिश्रित कर उन्हें समझावें । सूत्रज्ञान के लिये उपयोगी  
समझकर सूत्र का शब्दार्थ, उसका लक्षण, उसके भेद, एवं उसकी  
वाचना आदि के विषय में कुछ स्पष्टीकरण किया जाता है ।—

शिष्यने जहासुयं वागरिज्जा—यथाश्रुतं व्याकुर्यात् गुरु महाराज ये अधाने शास्त्र  
विहित विधि अनुसार प्रतिपादन करे.

कालिक उत्कालिक आदि सूत्र छे, सूत्रनेो ने अबिप्राय छे तेन अर्थ  
छे. कहुं पण छे,—जो सुत्ताभिप्पाओ सो अत्थो अज्जए य जम्हा—सूत्रना अबिप्रायने  
अर्थ कडेवामां आवेल छे. केम के, आ अर्थ सूत्रथी निश्चित करवामां आवे  
छे. आ रीते केवण सूत्रने अथवा तेना अर्थने अथवा ये अन्नेने न्यारे  
शिष्य पोताना आचार्य महाराजने पूछे तो आचार्य महाराजने तेने गुरु  
परंपराथी यथाज्ञात सूत्र—अर्थ अने अन्नेने सारी रीते समजवे अपुं न  
करे के पोतानी न कल्पनाथी मिश्रित करी तेने समजवे. सूत्र जानने भाटे  
उपयोगी समजने सूत्रनेो शब्दार्थ, तेनुं लक्षण, तेनेो लेद, अने तेनी वाचना  
आदिना विषयमां कांछं स्पष्टिकरण करवामां आवे छे—सूत्रयतीति सूत्रम्—

નનુ કઃ સૂત્રશબ્દાર્થઃ ?—ઉચ્યતે—સૂચયતીતિ સૂત્રમ્, યથા સૂચી સૂત્રેણ સૂચ્યતે, સૂચીસંલગ્નં યત્ સૂત્રં તદેવ સૂચ્યાઃ સૂચકં પ્રબોધકં ભવતિ, તથાઽર્થસંબદ્ધં સૂત્રં, વાચ્યવાચકભાવસમ્બન્ધેન યાવાનર્થઃ સૂત્રે વિદ્યમાનસ્તસ્ય તસ્યાર્થસ્ય સૂચકં સૂત્રમ્। એવમર્થસ્ય સૂચનાત્ સૂત્રમ્ ॥ ૧ ॥ અથવા—સીવ્યતીતિ સૂત્રમ્ । યથા—સૂત્રં—તન્તુઃ અન્ગરક્ષિકાદીનિ સીવ્યતિ, એવમર્થં ચ પદં સીવ્યતિ=યોજયતિ—એવં ચ સીવનાત્ સૂત્રમિતિ ॥ ૨ ॥ અથવા—સ્રવતીતિ સૂત્રમ્ યથા—ચન્દ્રકાન્તમણિઃ ચન્દ્રકિરણસંનિધાનાજ્જલં સ્રવતિ—પ્રાદુર્ભાવયતિ । એવં સૂત્રમપ્યાચાર્યસંનિધાનાદર્થં પ્રસ્રવતિ તથા ચ સ્રવણાત્ સૂત્રમિતિ ॥ ૩ ॥ અથવા—સરતીતિ સૂત્રમ્, અષ્ટવિધં કર્મ સરતિ—નિર્ગચ્છતિ યેન તત્ સૂત્રમ્ ॥ ૪ ॥

॥ ઇતિ પ્રથમં સૂત્રશબ્દાર્થદ્વારમ્ ॥ ૧ ॥

### સૂચયતીતિ સૂત્રમ્—

સૂત્ર શબ્દ કા અર્થ—જિસ પ્રકાર સૂઈ સંલગ્ન સૂત્ર સૂઈ કા પ્રબોધક હોતા હૈ ઉસી તરહ અર્થ સંબદ્ધ સૂત્ર વાચ્ય વાચકભાવ સંબંધ સે જિતના ૨ અર્થ અપને મેં વિદ્યમાન હોતા હૈ ઉતને ૨ અર્થ કા સૂચક હોતા હૈ, ઇસ તરહ “સૂચયતીતિ સૂત્રમ્” અર્થ કા સૂચક હોને સે સૂત્ર કહા ગયા હૈ । યહ વ્યુત્પત્તિલભ્ય અર્થ હૈ । અથવા—“સીવ્યતીતિ સૂત્રમ્”—જિસ પ્રકાર ડોરા અંગરક્ષિકા—કુર્તા—આદિ વસ્ત્રોં કો સીતા હૈ પરસ્પર મેં જોડ દેતા હૈ—ઉસી તરહ સૂત્ર મી અર્થ કો યોજિત કર દેના હૈ । અથવા—“સ્રવતીતિ સૂત્રમ્”—જિસ પ્રકાર ચન્દ્રકાન્તમણિ ચન્દ્ર કિરણોં કે સંપર્ક સે દ્રવિત હો જાતા હૈ—પાની છોડતા હૈ—ઉસી પ્રકાર સૂત્ર મી આચાર્ય કે સંનિધાન સે અર્થ કો અપનેમેં પ્રકટ કર દેતા હૈ । અથવા—“સરતીતિ સૂત્રમ્”—

સૂત્ર શબ્દનો અર્થ—જે રીતે સોય સંલગ્ન સૂત્ર સોયનો પ્રબોધક બને છે તેવી રીતે અર્થ સંબદ્ધ સૂત્ર વાચ્ય વાચક ભાવ સંબંધથી જોડલા જોડલા અર્થ તેનામાં વિદ્યમાન હોય છે, જોડલા જોડલા અર્થનો સૂચક હોય છે. “સૂચયતીતિ સૂત્રમ્” અર્થનો સૂચક હોવાથી જ સૂત્ર કહેવામાં આવેલ છે. આ વ્યુત્પત્તિલભ્ય અર્થ છે. અથવા—સીવ્યતીતિ સૂત્રમ્ જે રીતે દોરા અંગુરું રક્ષણ કરનાર કુર્તા આદિ વસ્ત્રોને સીવે છે, પરસ્પરથી જોડી દે છે. એવી જ રીતે સૂત્ર પણ અર્થને યોજનાર હોય છે. અથવા સ્રવતીતિસૂત્રમ્ જે રીતે ચન્દ્રકાન્ત મણી ચન્દ્રકિરણોના સંપર્કથી દ્રવિત બને છે. પાણી છોડે છે—તે પ્રકારે સૂત્ર પણ આચાર્યના સંનિધાનથી અર્થને કે જે પોતાનામાં સમાયેલ છે તે પ્રકટ કરી દે છે અથવા સરતીતિ સૂત્રમ્ જેના સેવનથી—ઉપાસના

सूत्रपदनिक्षेपनामकं द्वितीयं द्वारम्—

अथ—सूत्रपदनिक्षेपः । द्रव्यसूत्रं—कार्पासादिकम् । भावसूत्रं तु—अस्मिन् ज्ञानाधिकारे सूचकं ज्ञानं श्रुतज्ञानम्, तस्यैव स्वपरार्थसूचकत्वात्, श्रूयते यत् तत् श्रुतं ज्ञायतेऽनेनेति ज्ञानं, श्रुतं च तद् ज्ञानं श्रुतज्ञानम् । तच्च—एकादशाङ्गानि, प्रकीर्णकानि, दृष्टिवादश्च । तदुक्तम्—

“ एकारसमंगाईं, पइन्नगं दिट्ठिवाओ य ” इति । ( उ. २८ अ. २३ गा. )

॥ इति द्वितीयं सूत्रपदनिक्षेपद्वारम् ॥

अथ तृतीयं सूत्रलक्षणद्वारम्—

यत् सूत्रं सूत्रलक्षणोपेतं तदेवोच्चारणीयम्, लक्षणरहितं हि सूत्रं विवक्षितमर्थं न साधयति, तस्माल्लक्षणयुक्तमेव सूत्रमिष्यते, अतः सूत्रलक्षणं वाच्यम् । तद् यथा—  
अप्पक्खरं महत्थं, बत्तीसदोसविरहियं जं च ।  
लक्खणजुत्तं सुत्तं, अट्ठहि य गुणेहि उव्वेयं ॥

जिसके सेवन से—उपासना करने से—उसके द्वारा प्रतिपादित मार्ग का अनुसरण करने से—अष्टविध कर्मों का आत्मा से निर्गमन हो जाय उसका नाम सूत्र है । १ ।

सूत्र पद निक्षेप नामक दूसरा द्वार कहते हैं—

सूत्र के दो भेद हैं—१ द्रव्यसूत्र, २ भावसूत्र । कपास आदि से बना हुआ द्रव्यसूत्र है । भावश्रुत का नाम भावसूत्र है । इससे ही स्वरूप और परस्वरूप का सूचन—अर्थात् बोध होता है । जो सुना जाय वह श्रुत एवं जिसके द्वारा जाना जाय वह ज्ञान है । श्रुतरूप जो ज्ञान है उस का नाम श्रुतज्ञान है । ११ अंग प्रकीर्णक ( पइन्ना ) एवं दृष्टिवाद ये सब श्रुतज्ञान स्वरूप हैं । कहा भी है—“एकारसमंगाईं पइन्नगं दिट्ठिवाओय” । ३ ।

કરવાથી તેના દ્વારા પ્રતિપાદિત માર્ગનું અનુસરણ કરવાથી આઠ પ્રકારના કર્મોનું આત્માથી નિર્ગમન થઈ બંધ તેનું નામ સૂત્ર છે. ॥ ૧ ॥

સૂત્રપદ નિક્ષેપ નામનું બીજું દ્વાર કહે છે—

સૂત્રના બે ભેદ છે—૧ દ્રવ્યસૂત્ર, ૨ ભાવસૂત્ર કપાસ વગેરેથી બનેલ દ્રવ્યસૂત્ર છે, ભાવશ્રુતનું નામ ભાવસૂત્ર છે. આનાથી જ સ્વસ્વરૂપ અને પરસ્વરૂપનું સૂચન—અર્થાત્ બોધ થાય છે. જે સાંભળી શકાય તે શ્રુત અને જેનાથી બાણી શકાય તે જ્ઞાન છે. શ્રુતરૂપ જે જ્ઞાન છે. એનું નામ શ્રુતજ્ઞાન છે. ૧૧ અંગ પ્રકીર્ણક ( પઈન્ના ) અને દૃષ્ટીવાદ એ બધા શ્રુતજ્ઞાન સ્વરૂપ છે. કહ્યું પણ છે કે—એકારસમંગાઈં પઈન્નગં દિટ્ઠિવાઓ ય

યદ્ અલ્પાક્ષરં, તથા-મહાર્થં ચ ભવતિ, અત્ર “અલ્પાક્ષરં મહાર્થમ્” ઇતિ વિશેષણદ્વયે ચત્વારો ભક્ષા ભવન્તિ, યથા—અલ્પાક્ષરમલ્પાર્થમ્’ યથા કાર્પાસા-દિકમ્ ॥ ૧ ॥ ‘અલ્પાક્ષરં-મહાર્થમ્’ યથા-સામાયિકં બૃહત્કલ્પાદિ ચ ॥ ૨ ॥ ‘મહાક્ષરમલ્પાર્થમ્’ । યથા—જ્ઞાતાધ્યયનાનિ, અન્યચ્ચ યદસ્યાં કોટૌ વ્યવસ્થિતમ્ ।

અબ સૂત્રલક્ષણ નામ કા તીસરા દ્વાર કહતે હૈ—જો સૂત્ર સૂત્રલક્ષણ સે યુક્ત હૈ વહી ઉચ્ચારણ કરને કે યોગ્ય હોતા હૈ । ઓર ઉસીસે અપને વાસ્તવિક અર્થ કા બોધ હોતા હૈ । ઇસસે વિપરીત સૂત્ર દ્વારા વિવક્ષિત અર્થ કી પ્રતિપત્તિ-જ્ઞાન નહીં હો સકતી હૈ ક્યોં કિ ઉસસે યથાર્થ અર્થ કા પ્રકાશન નહીં હોતા હૈ । ઇસ લિયે “સૂત્ર કા ક્યા લક્ષણ હૈ” ઇસ પ્રકાર કે પ્રશ્ન કે સમાધાન નિમિત્ત ઉસકા લક્ષણ કહા જાતા હૈ ।

“અપ્પક્ષરં મહત્યં, વત્તીસદોસ, વિરહિયં જં ચ ।

લક્ષણજુત્તં સુત્તં, અદ્દહિય ગુણેહિ ઉવવેયં” ॥ ૧ ॥

જિસમેં અલ્પ અક્ષર હોતે હૈં ઓર મહાન્ જિસકા અર્થ હોતા હૈં એવં વત્તીસ દોષોં સે જો રહિત હોતા હૈ તથા આઠગુણોં સે જો યુક્ત હોતા હૈં વહ સૂત્ર હૈ “અલ્પ અક્ષર વાલા હો એવં અર્થ જિસકા મહાન્ હો” ઇસ પ્રકાર કે સૂત્ર કે વિશેષણ સે યે ૪ અંગ હોતે હૈં—અલ્પ અક્ષર વાલા હો એવં અલ્પ અર્થ વાલા હો જૈસે કપાસ આદિ કા બના હુઆ સૂત ૧ । અલ્પ અક્ષર વાલા હો, પર જિસકા મહાન્ અર્થ હો જૈસે સામાયિક સૂત્ર,

હવે સૂત્ર લક્ષણ નામનું ત્રીણું દ્વાર કહે છે—

જે સૂત્ર સૂત્રલક્ષણથી યુક્ત છે તે જ ઉચ્ચારણ કરવા માટે યોગ્ય છે, અને એનાથી પોતાના વાસ્તવિક અર્થનો બોધ થાય છે. એનાથી વિપરીત સૂત્રથી વિવક્ષિત અર્થની પ્રતિપત્તિ-જ્ઞાન થઈ શકતું નથી, કારણ કે, એનાથી યથાર્થ અર્થનું પ્રકાશન થતું નથી.

અપ્પક્ષરં મહત્યં વત્તીસ દોસવિરહિયં જં ચ ।

લક્ષણજુત્તં સુત્તં અદ્દહિયથેણેહિ ઉવવેયં જેમાં અક્ષર ઓછા હોય છે અને અર્થ મહાન હોય છે જે બત્તીસ દોષોથી રહિત હોય છે તથા આઠ ગુણોથી જે યુક્ત હોય છે તે સૂત્ર છે. “થોડા અક્ષરવાળા હોય અને અર્થ જેનો મહાન હોય”

આ પ્રકારના સૂત્રના વિશેષણથી આ ચાર ભાગ થાય છે. થોડા અક્ષર-વાળા હોય અથવા અલ્પ અર્થવાળા હોય. જેમ કે કપાસ આદિથી બનેલ સુતર ૧. થોડા અક્ષરવાળા હોય પણ જેનો અર્થ મહાન હોય, જેવાં સામાયિક પૃહલક-



‘महाक्षरं महार्थं’ यथा-दृष्टिवादः ॥ ४ ॥ यच्च द्वात्रिंशदोषविरहितं= अलीकादिभिर्द्वात्रिंशदोषैर्वर्जितं तथाऽष्टभिर्गुणैरुपेतं सूत्रं तल्लक्षणयुक्तं सूत्रं भवति तत् सूत्रं पठनीयमित्यर्थः ।

अथ-सूत्रदोषाः—

अथ सूत्राणां द्वात्रिंशदोषा उच्यन्ते—

अलियमुवघायजणयं, णिरत्थगमवत्थयं छलं दुहिलं ।

निस्सारमहियमूणं, पुणरुत्तं वाहयमजुत्तं ॥ १ ॥

क्रमभिन्न-वयणभिन्ने, विभक्तिभिन्नं च लिंगभिन्नं च ।

अणमिहियमपयमेव य, सभावहीणं ववहियं च ॥ २ ॥

काल-जति-च्छवि-दोसो, समयविरुद्धं च वयणमित्तं च ।

अत्थावत्ती दोसो, हवइ य असमासदोसो य ॥ ३ ॥

उवमा रूवगदोसो, निहेसपयत्थसंधिदोसो य ।

एण य सुत्तदोसा, वत्तीसं हुंति नायव्वा ॥ ४ ॥

छाया—अलीकम् १, उपघातजनकं २, निरर्थकं ३, अपार्थकं ४, छलं ५, द्रुहिलम् ६, निःसारम् ७, अधिकम् ८, ऊनम् ९, पुनरुक्तं १०, व्याहृतं ११, अयुक्तम् १२, ॥ १ ॥

क्रमभिन्न १३, वचनभिन्ने १४, विभक्तिभिन्नं च १५, लिङ्गभिन्नं च १६, अनभिहितं १७, अपदमेव च १८, स्वभावहीनं १९, व्यवहितं च २० ॥ २ ॥

तथा वृहत्कल्पादि सूत्र २ । महा अक्षर वाला हो पर अर्थ अल्प हो जैसे- ज्ञाताध्ययन आदि ३ । महाक्षर वाला हो और अर्थ भी जिसका महान् हो जैसे दृष्टिवाद ४ । ३२ वत्तीस दोष सूत्र के ये हैं—

३२ दोष सूत्र के—अलीक १, उपघातजनक २, निरर्थक ३, अपार्थक ४, छल ५, द्रुहिल ६, निःसार ७, अधिक ८, ऊन ९, पुनरुक्त १०, व्याहृत ११, अयुक्त १२, क्रमभिन्न १३, वचनभिन्न १४, विभक्तिभिन्न १५, लिङ्गभिन्न १६, अनभिहित १७, अपद १८, स्वभावहीन १९, व्यवहित

दृष्टि सूत्र २. वधु अक्षरवाणा डोय पणु अर्थ नानो डोय जेवां ज्ञाताध्ययन आदि ३. वधु अक्षरवाणा डोय अने अर्थ पणु जेनो महान डोय जेवां दृष्टीवाद ४. सूत्रना अत्रीस दोष आ छे.....

अलीक १, उपघातजनक २, निरर्थक ३, अपार्थक ४, छल ५, द्रुहिल ६, निःसार ७, अधिक ८, ऊन ९, पुनरुक्त १०, व्याहृत ११, अयुक्त १२, क्रमभिन्न १३, वचनभिन्न १४, विभक्तिभिन्न १५, लिङ्गभिन्न १६, अनभिहित १७, अपद १८, स्वभावहीन १९, व्यवहित २०, कालदोष २१, यति-

उ० १९

काल-यति-च्छविदोषः ( कालदोषः २१, यतिदोषः २२, छविदोषः २३ ) समयविरुद्धं च २४, वचनमात्रं च २५, । अर्थापत्तिदोषो २६, भवति च असमास दोषश्च २७ ॥ ३ ॥

उपमा २८,—रूपकदोषो २९, निर्देश ३०,—पदार्थ ३१,—संधिदोषश्च ३२, एते तु सूत्रदोषा द्वात्रिंशद् भवन्ति ज्ञातव्याः ॥ ४ ॥

व्याख्या—अलीकम्—अनृतम् तच्च द्विधा—अभूतोद्भावनं भूतनिहवश्च । यथा—‘ ईश्वरकर्तृकं जगत् ’ इत्यादि—अभूतोद्भावनम् । ‘ नास्ति आत्मा ’ इत्यादिकस्तु भूतनिहवः ॥ १ ॥ उपघातः—सत्त्वघातादिः, तज्जनकं यथा—‘ वेदविहिता हिंसा-धर्माय ’ इत्यादि ॥ २ ॥ निरर्थकं—यत्र वर्णानां क्रमनिर्देशमात्रमुपलभ्यते न त्वर्थो

२०, कालदोष २१, यतिदोष २२, छविदोष २३, समयविरुद्ध २४, वचनमात्र २५, अर्थापत्ति २६, असमासदोष २७, उपमा २८, रूपक २९, निर्देश ३०, पदार्थ ३१, एवं संधिदोष ३२ । कहा भी है—

‘ अलियमुवघायजणयं ’ इत्यादि—

इन ३२ दोषों का स्वरूप इस प्रकार है—अलीक नाम असत्य का है यह दो प्रकार का होता है—अभूतोद्भावन १ । भूतनिहव है २ । जैसे—“ ईश्वर कर्तृक जगत् इत्यादि ” जगत् को ईश्वर ने बनाया है—इस प्रकार का प्रतिपादक सूत्र अभूतोद्भावनक है नास्ति आत्मा—आत्मा नहीं इस प्रकार जमाली द्वारा कथित सूत्र भूतनिहव स्वरूप है ॥१॥ उपघात शब्द का अर्थ है प्राणियों की हिंसा आदिका प्ररूपण करना । इस बात के प्ररूपक सूत्र उपघात दोषवाले माने जाते हैं—जैसे कहना कि वेदविहिता हिंसा धर्माय ” वेदविहित हिंसा धर्म के लिये है ” ॥ २ ॥ जिसमें सिर्फ वर्णों का क्रम ही निर्दिष्ट हो वह निरर्थक दोष है—इसमें अर्थ का पता

दोष २२, छविदोष २३, समयविरुद्ध २४, वचनमात्र २५, अर्थापत्ति २६, असमास दोष २७, उपमा २८, रूपक २९, निर्देश ३०, पदार्थ ३१, एवं संधिदोष ३२, तदुक्तं—“ आलियमुवघाय जणयं ” इत्यादि !

आ अतीस दोषानुं स्वइय आ प्रकारे छे—अलीक नाम असत्यनुं छे. आ मे प्रकारे छे, १ अभूतोद्भावन, २ भूतनिहव, नेम—‘ ईश्वर कर्तृक जगत् इत्यादि ” जगतने ईश्वरे बनाव्युं छे—आ प्रकारे प्रतिपादित सूत्र अभूतोद्भावनक छे, नास्ति आत्म—आत्मा नथी, आ प्रकारेना जमाली द्वारा कडेवायेल सूत्र भूतनिहव स्वइय छे. उपघात शब्दने अर्थ छे. प्राणीयेनी हिंसा आदिनुं प्ररुपण करवुं, आ वातने प्रइयक सूत्र उपघात दोषवाणा मानवाभां आवे छे—नेम कडेवुं के, वेदविहिता हिंसा धर्माय (२) ” वेद विहित हिंसा धर्मना भाटे छे ” नेमां इकत वर्णाना कभनोज निर्देश डोय ते निरर्थक दोष छे,—आभां अर्थ

यथा—‘ अ, आ, इ, ई, ’ इत्यादि । डित्यादिवद्वा ॥ ३ ॥ अपार्थकम्-असंबद्ध-  
र्थकम् , यथा—“ दश दाडिमानी षड्रूपाः, सप्त गर्दभपुच्छाः, इत्यादि ॥ ४ ॥

छलं—यत्रानिष्टस्यार्थान्तरस्य संभवाद् विवक्षितार्थोपघातः कर्तुं शक्यते  
तच्छलम्, यथा—‘ नवकम्बलो देवदत्तः ’ इत्यादि, अत्र-नूतनकम्बलस्य विव-  
क्षितार्थस्य नवसंख्यककम्बलविषयकबोधसंभवादुपघातः कर्तुं शक्यते ॥ ५ ॥

द्रुहिलं-जन्तूनामहितोपदेशकत्वेन पापव्यापारपोषकम्, यथा—

अनुष्टुप्छन्दः—एतावानेव लोकोऽयं, यावानिन्द्रियगोचरः ।

भद्रे ! वृकपदं पश्य, यद् वदन्त्यबहुश्रुताः ॥ १ ॥

वियोगिनी छन्दः—पिव खाद च चारुलोचने, यदतीतं वरगात्रि ! तन्न ते ।

नहि भीरु ! गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ॥ २ ॥

नहीं पड़ता; जैसे-अ आ इ ई इत्यादि ॥ ३ ॥ असंबद्ध अर्थ जिस सूत्र  
द्वारा कहा जाता है वह अपार्थक दोष वाला सूत्र माना जाता है-जैसे  
दशदाडिम, छह मालपुए, सात गधे की पूंछे इत्यादि ॥ ४ ॥ ये सब सूत्र  
असंबद्ध अर्थ के प्रतिपादक हैं । जहां अनिष्ट अर्थान्तर की संभावना से  
विवक्षित अर्थ का अपलाप किया जा सकता है वह छलदोष है जैसे किसी  
ने कहा कि “ नव कम्बलोऽयं देवदत्तः ” देवदत्त नवकम्बल वाला है-यहां  
नव शब्द का अर्थ नूतन है, और इसी अर्थ में नव शब्द विवक्षित हुआ  
है, परंतु इस अर्थ को उपघात करने वाला यह कह देता है कि ९ संख्या  
युक्त कम्बल इसके पास कहां है एक ही कम्बल तो है । इस प्रकार के  
अर्थ की संभावना नव शब्द से हुई है । अतः विवक्षित अर्थ का उपघात  
जिस शब्द से युक्त सूत्र का हौना, उपघात दोषावशिष्ट माना जाता है.

७ भणतो नधी, नेम अ आ ई ई इत्यादि (३) असंबद्ध अर्थ ने सूत्र द्वारा  
कहेवांमां आवे छे ते अपार्थक दोषवाणा सूत्र मानवांमां आवे छे. नेम इस  
दाडम, छ पुआ, सात गधेडानी पूछ इत्यादि. (४) आ भधा सूत्र असंबद्ध  
अर्थनां प्रतिपादक छे. न्यां अनिष्ट अर्थान्तरनी संभावनाथी विवक्षित अर्थना  
अपलाप करवांमां आवे छे ते छलदोष छे. नेम केधये कहुं के, “नव  
कम्बलोऽयं देवदत्तः” आ देवदत्त नव कम्बलवाणा छे-अहि नव शब्दने अर्थ  
नूतन छे. अने आन अर्थमां नव शब्द विवक्षित थयेल छे. परंतु आ अर्थने  
उपघात करवावाणा अेबुं कडी दे छे के, नव संख्या युक्त कम्बल अेभनी पासे  
क्यां छे. अेक ७ कम्बल छे. आ प्रकारे अर्थनी संभावना नव शब्दथी थई छे.  
विवक्षित अर्थना उपघात ने सूत्रमां थाय छे अे शब्दथी युक्त सूत्रनुं डोबुं  
उपघात दोषाविशिष्ट मानवांमां आवे छे. (५)

इत्यादि ॥ ६ ॥

निःसारं=तथाविधयुक्तिरहितं परिफल्गु, यथा-सौगतादिशास्त्रम् ॥ ७ ॥

अधिकम्-अक्षरपदादिभिरतिमात्रम् । अथवा हेतोर्दृष्टान्तस्य वाऽऽधिक्ये सति अधिकं, यथा-अनित्यः शब्दः, कृतकत्व प्रयत्नानन्तरीयकत्वाभ्यां घटपटवदित्यादि। एकस्मिन् साध्ये एक एव हेतुर्दृष्टान्तश्च वक्तव्यः । अत्र च प्रत्येकं द्वयाभिधानादाधिक्यमिति भावः ॥ ८ ॥

॥ ५ ॥ जन्तुओं को अहित का उपदेशक होने से जो पापव्यापार का पोषक सूत्र होता है वह दुहिल दोषवाला सूत्र माना जाता है । जैसे-चार्वाक का यह कहना कि-यह लोक जितना प्रत्यक्ष से दिखता है उतना ही है इससे आगे नहीं । पुण्य पाप एवं स्वर्ग नरक यह भी नहीं है । इस लिये खाओ पीओ मस्त रहो और आनंद से अपने समय को निकालो ॥ ६ ॥ युक्ति रहित जो सूत्र होता है वह निस्सार दोष वाला माना जाता है, जैसे सौगत आदि का शास्त्र ॥ ७ ॥ जिसमें अक्षर पद आदि आवश्यकता से अधिक होते हैं वह सूत्र अधिक दोष संयुक्त जानना चाहिये, अथवा-जिसमें एक हेतु और दृष्टान्त के अतिरिक्त हेतु और दृष्टान्त हों वह भी अधिक दोषवाला सूत्र मानना चाहिये-जैसे-“ अनित्यः शब्दः कृतकत्वप्रयत्नानन्तरीयकत्वात् घटपटवदिति ” शब्द अनित्य है क्यों कि वह कृतक है एवं प्रयत्नपूर्वक होता है जैसे घट और पट ॥ ७ ॥ इस अनुमान में एक हेतु और १ दृष्टान्त अधिक है । एक साध्य में १ ही हेतु और १ ही दृष्टान्त होता है । दो हेतु और दो दृष्टान्त नहीं ॥ ८ ॥ जो

જન્ટુઓના અહિતના ઉપદેશક હોવાથી જે પાપ વ્યપારને પોષક સૂત્ર હોય છે, તે દુહિલ દોષવાળા સૂત્ર માનવામાં આવે છે. જેમ ચાર્વાક કહે છે કે:— આ લોક જે રીતે પ્રત્યક્ષથી દેખાય છે એટલું જ છે એનાથી આગળ નથી, પુણ્ય, પાપ અને સ્વર્ગ નરક એ પણ નથી, આ માટે ખાઓ પીઓ અને મસ્ત રહો તથા આનંદથી સમયને પસાર કરો, (૬) યુક્તિ રહિત જે સૂત્ર હોય છે તે નિસ્સાર દોષવાળા મનાય છે. જેમ સૌગત આદિ શાસ્ત્ર, (૭) જેમાં અક્ષર પદ આદિ આવશ્યકતાથી અધિક હોય છે તે સૂત્ર અધિક દોષ સંયુક્ત બાણુવું જોઈએ. અથવા જેમાં એક હેતુ અને દૃષ્ટાંતના અતિરિક્ત હેતુ અને દૃષ્ટાંત હોય તેને પણ અધિક દોષવાળા સૂત્ર માનવા જોઈએ. જેમ—“ અનિત્યઃ શબ્દઃ કૃતકત્વપ્રયત્નનાન્તરીયકત્વાત્ ઘટપટવદિતિ ” શબ્દ અનિત્ય છે, કેમ કે, તે કૃતક છે. અને પ્રયત્નપૂર્વક થાય છે, જેમ ઘટ અને પટ. આ અનુમાનમાં એક હેતુ અને એક દૃષ્ટાંત અધિક છે. એક સાધ્યમાં એક જ હેતુ અને એક જ દૃષ્ટાંત હોય છે. બે હેતુ

ऊनम्—अक्षरपदादिभिर्हीनम् । अथवा—हेतुदृष्टान्ताभ्यामेव हीनम् ऊनम् । यथा—अनित्यः शब्दो घटवदिति । अत्र हेतुर्नास्ति, यथा वा ‘अनित्यः शब्दः कृतकत्वाद्’ इत्यादि, अत्र—घटादिरूपो दृष्टान्तो नास्ति ॥ ९ ॥

पुनरुक्तं त्रिधा—शब्दतोऽर्थतश्च । तथा—अर्थादापन्नस्य पुनर्वचनं—पुनरुक्तं । तत्र शब्दतः पुनरुक्तं यथा—घटः, घटः, इत्यादि । अर्थतः पुनरुक्तं यथा—घटः, कुटः, कुम्भ इत्यादि । अर्थादापन्नस्य पुनर्वचनं यथा—पीनोऽयं देवदत्तो, दिवा न भुङ्क्ते इत्युक्ते अर्थादापन्नं—‘ रात्रौ भुङ्क्ते ’ इति, तत्रार्थादापन्नमपि ‘ रात्रौ भुङ्क्ते ’ इति यो ब्रूयात् तस्य पुनरुक्तता ॥ १० ॥

व्याहृतं—यत्र पूर्वेण परं विहन्यते । यथा—

“ कर्म चास्ति फलं चास्ति कर्ता न त्वस्ति कर्मणाम् ” इत्यादि ।

अक्षर एवं पद आदि से हीन होता है वहां ऊन नामक दोष माना जाता है । अथवा हेतु एवं दृष्टान्त से जो हीन होता है वहां भी यह दोष माना जाता है । जैसे “अनित्यः शब्दः घटवत्” यह वाक्य हेतु से हीन है ॥९॥ पुनरुक्त दोष शब्द, अर्थ एवं प्रसंगादि से प्राप्त अर्थ के पुनः कथन से होता है । घट घट यहां शब्द की अपेक्षा, घट कुंभ कुट यहां अर्थ की अपेक्षा तथा “पीनोऽयं देवदत्तः दिवा न भुङ्क्ते” यहां अर्थात् प्रसक्त अर्थ रात्रि में भोजन करना है फिर भी “ रात्रौ भुङ्क्ते ” रात्रि में खाता है यह कहना पुनरुक्ति दोष से दूषित माना जाता है ॥ १० ॥ पूर्व से पर जहां विरोध होता है, वहां व्याहृत दोष माना जाता है—जैसे—किसी ने कहा कि कर्म हैं फल हैं परन्तु कर्मों का कर्ता कोई नहीं है । यह वाक्य पूर्वापर में

अने जे दृष्टान्त नही. (८) जे अक्षर अने पद आदिथी हीन होय छे. त्यां उन नामने दोष मानवामां आवे छे. अथवा हेतु अने दृष्टान्तथी ज हीन होय छे, त्यां पण्ये जे दोष मानवामां आवे छे. जेवी रीते अनित्यः शब्दः घटवत् आ वाक्य हेतुथी हीन छे. अनित्यः शब्दः कृतकत्वात् अडिं दृष्टान्तथी विहितता छे. (९) पुनरुक्त दोष शब्द, अर्थ अने प्रसंग आदिथी प्राप्त अर्थना पुनः कथनथी थाय छे. घट घट अडिं शब्दनी अपेक्षा घट कुंभ कुट अडिं अर्थनी अपेक्षा तथा “पीनोऽयं देवदत्तः दिवा न भुङ्क्ते” अडिं अर्थात् प्रसक्त अर्थ रात्रिमां भोजन करवुं जे छे. छतां पण्ये जे कडेवुं छे के रात्रौ भुङ्क्ते जे रात्रिमां थाय छे, आम कडेवुं पुनरुक्ति दोषथी दूषित मानवामां आवे छे. (१०) पूर्वथी परने जयां विरोध छे, त्यां व्याहृत दोष मानवामां आवे छे, जेभ के, कोछे जे कछुं के, कर्म छे, क्षण छे, परंतु कर्मोना कर्ता कोछे नथी. आ वाक्य



पूर्व—‘ कर्म चास्ति ’ इत्युक्तम्, तेन-कर्मणां कर्तानास्तीत्यस्य विघातो भवति ।  
यथा वा—अयं बालको बन्ध्याप्रसूतः, इत्यादि ॥ ११ ॥

अयुक्तम्—बुद्ध्या चिन्त्यमानम्—अनुपपत्तिक्षमम् । यथा—

“ तेषां कटतटभ्रष्टैः—र्गजानां मदबिन्दुभिः ।

प्रावर्तत नदी घोरा, हस्त्यश्वरथवाहिनी ॥ १ ॥

यथा वा—श्रावकस्य मुनिदर्शनहर्षाश्रुभिरुपाश्रयः संभृतः ॥ १२ ॥

क्रमभिन्नं—यत्र क्रमो नाराध्यते । यथा—‘ श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनानां विषयाः

विरोधी है कारण कि जब कर्म है तों कोई न कोई इनका कर्ता भी हैं—फिर यह कहना कि इनका कोई कर्ता नहीं है यह व्याहत दोष है । इसी तरह “ अयंबालकोबन्ध्याप्रसूतः ” अर्थात् यह बालक बन्ध्यापुत्र है यह भी समझना चाहिये ॥ ११ ॥ जो युक्ति सह नहीं होता है वहां अयुक्त दोष आता है जैसे—हाथियों का वर्णन करते समय ऐसा कहा जाय कि उनके हाथियो के गण्डस्थल से च्युत मदजल का इतना अधिक प्रवाह वहा कि वहां एक घोर नदी हो गई जिसमें हाथी, अश्व एवं रथ सब के सब वह गये । यह बुद्धिकल्पित चीज युक्ति सह नहीं है । इस लिये ये अयुक्त नामका दोष है । इसी तरह यह कथन भी “ कि मुनियों के दर्शन से श्रावकों की आंखों से इतने आनंदाश्रु निकले कि उपाश्रय भर गया ” ॥ १२ ॥ जहां क्रम वर्णन पर ध्यान नहीं रखा जाता है वहां क्रमभिन्न नामका दोष है—जैसे—श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनानां विषयाः रूपगंधशब्दस्पर्शरसाः, ऐसा कोई सूत्र बनावें तो उसमें क्रमभिन्न नाम

पूर्वापरभां विरोधी छे कारण के, न्यारे कर्म छे तो केछने केछतेनो कर्ता पणु होवो भेछं अे. पछी अे कडेवुं के अेनो केछं कर्ता नथी अे ‘व्याहत’ दोष छे. आ रीते “ अयं बालको बन्ध्याप्रसूतः ” अर्थात् “ आ आणक बन्ध्या पुत्र छे ” अेभ कडेवुं ते पणु समञ्जुं भेछं अे. (११) जे युक्ति पुरःसर नथी त्यां अयुक्त दोष आवे छे. जेभ हाथीयोनुं वणुंन करती वपते अेभ कडेवामां आवे के ते हाथीयोनो गंडस्थलथी च्युत मदजलनो अेटवो वधु प्रवाह निकण्यो के, त्यां अेक घोर नदी थछं गछं जेभां हाथी, अश्व अने रथ आ अघां तणुाछं गयां, आ बुद्धि कल्पित चिज युक्ति सह नथी. आ माटे अयुक्त नामनो दोष छे. अेवी रीते “ मुनियाना दर्शनथी श्रावकेनी आंभोभांथी अेटलां आंसु वहा के तेनाथी उपाश्रय लराछं गयो. आ कथन पणु अयुक्त दोषवाणुं छे (१२) न्यां कभवणुंन उपर ध्यान नथी रभातुं त्यां कभलिन्न नामनो दोष छे—जेभ श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनानां विषयाः—रूप—गंध—शब्द—स्पर्श—रसाः अेवुं केछं सूत्र अनावे तो अेभां कभ-



शब्दरूपगन्धरसस्पर्शा इति वक्तव्ये रूपगन्धशब्दस्पर्शरसा इति ब्रूयाद्' इत्यादि ॥१३॥

वचनभिन्नं—यत्र वचनव्यत्ययः, यथा—'वृक्षा ऋतौ पुष्पितः' इत्यादि ॥१४॥

विभक्तिभिन्नं—यत्र विभक्तिव्यत्ययः, यथा—'वृक्षं पश्य' इति वक्तव्ये 'वृक्षः पश्य' इति ब्रूयात्' इत्यादि ॥ १५ ॥

लिङ्गभिन्नं—यत्र लिङ्गव्यत्ययः, यथा—'इयं स्त्री' इति वक्तव्ये 'अयं स्त्री' इति ब्रूयात्, इत्यादि ॥ १६ ॥

अनभिहितं—स्वसिद्धान्तोपदिष्टाधिककथनम् । यथा—राशिद्वयमिति वक्तव्ये राशित्रयकथनम्, इत्यादि ॥ १७ ॥

का दोष आता है । क्यों कि सूत्र में जिस क्रम से इन्द्रियों का वर्णन किया गया है उसी क्रम से उनके विषय का भी वर्णन करना चाहिये ॥ १३ ॥ जहाँ वचन का व्यत्यय होता है वहाँ वचनभिन्न नामका दोष होता है जैसे "वृक्षाः ऋतौ पुष्पितः" यहाँ वचन व्यत्यय है । क्यों कि "पुष्पितः" की जगह "पुष्पिताः" ऐसा बहुवचन होना चाहिये ॥१४॥ जहाँ विभक्ति का व्यत्यय होता है वहाँ विभक्तिभिन्न दोष माना जाता है जैसे "वृक्षः पश्य" यहाँ पर विभक्ति भिन्न दोष है यहाँ, 'वृक्षः' की जगह 'वृक्षं' ऐसा होना चाहिये ॥ १५ ॥ जहाँ स्त्रीलिङ्ग आदि का व्यत्यय होता है वह लिङ्गभिन्न दोष है जैसे; "अयं स्त्री" यहाँ हुआ है । 'अयं' की जगह 'इयं' होनी चाहिये सो 'इयं' की जगह 'अयं' कर दिया यह लिङ्गव्यत्यय है ॥ १६ ॥ जो बात सिद्धान्त में प्रतिपादित नहीं है उसे भी मानना अर्थात् सिद्धान्तकथित बात से भी

भिन्न नामनो दोष आवे छे. केम के, सूत्रमां ने कभथी इन्द्रियोनुं वर्णन करवामां आव्युं छे ये कभथी येना विषयनुं पणु वणुं न करवुं नेधये. (१३) न्यां वचननो उलट-सुलट व्यत्यय थाय छे. त्यां वचनभिन्न नामनो दोष लागे छे. नेम वृक्षाः ऋतौ पुष्पितः-अहीं वचनव्यत्यय छे, केमके पुष्पितः नी न्याये "पुष्पिताः" येम अहुवचन होवुं नेधये. (१४) न्यां विलङ्घितनो व्यत्यय होय छे. ते विलङ्घित भिन्न दोष मानवामां आवे छे. नेम "वृक्षः पश्य" अहिं पद छे "वृक्षं पश्य" ये हीक छे. वृक्षं नीन्याये वृक्षः आ विलङ्घितनो व्यत्यय छे. (१५) न्यां स्त्रीलिङ्ग आदिनो व्यत्यय अने छे ते लिङ्ग भिन्न दोष छे, नेम अयं स्त्री अहीं अयं नी न्याये इयं होवुं नेधये. ते इयं नी न्याये अयं करी हीधुं ये लिङ्गव्यत्यय छे, (१६) ने वात सिद्धान्तमां प्रतिपादित नथी तेने मानवी, अर्थात् सिद्धान्त कथित वातथी पणु अधिक ने युक्ति

अपदं—निर्विभक्तिकशब्दोच्चारणरूपम् । यथा—मुनिर्विहरतीति वक्तव्ये मुनि विहरतीति कथनम् ॥ १८ ॥

स्वभावहीनं—यत्र वस्तुस्वभावोऽन्यथा स्थितोऽन्यथाऽभिधीयते तत् । यथा 'शीतो वह्निः' 'रूपवदाकाशम्' इत्यादि ॥ १९ ॥

व्यवहितं—यत्र प्रकृतमुक्त्वाऽप्रकृतं विस्तरतोऽभिधाय पुनः प्रकृतमुच्यते तद् । यथा—हेतुकथामधिकृत्य सुप्तिङन्तपदलक्षणप्रपञ्चमर्थशास्त्रं वा अभिधाय पुनर्हेतुवचनम् । यथा वा—दयां प्रस्तुत्य शीलस्य विस्तरवर्णनं विधाय पुनर्दयावर्णनम् ॥२०॥

अधिक जो युक्तियुक्त नहीं है—उस को मानना जैसे—जीवराशि अजीवराशि ये दो ही राशियां हैं । पर ऐसा कहना कि “नो जीव नो अजीव” इस प्रकार तीसरा राशि का वर्णन करना अनभिहित दोष है ॥ १७ ॥ विभक्ति रहित शब्द वाला सूत्र अपद दोष वाला माना जाता है जैसे “मुनिविहरति” यहां हुआ है । क्यों कि सुबन्त एवं तिङन्त की पद संज्ञा होती है । निर्विभक्तिक शब्द पद संज्ञक नहीं होता । अतः इस प्रकार का शब्द वाला सूत्र इस दोष से विशिष्ट माना जाता है । “मुनिर्विहरति” यह शुद्ध है ॥ १८ ॥ जिस सूत्र द्वारा वस्तु का यथावस्ति स्वरूप निरूपित न होकर अन्यथारूप में निरूपित किया जाता है वहां स्वभावहीन दोष होता है । जैसे—अग्नि को शीत एवं आकाश को रूपी कहना ॥ १९ ॥ जहाँ प्रकृत अर्थ को छोड़कर अप्रकृत का विस्तार से वर्णन करके पुनः प्रकृत अर्थ का वर्णन किया जाता है वहां व्यवहित नाम का दोष होता है—जैसे—हेतु के लक्षण के कथन अवसर

युक्त नहीं तेने मानवां नेम-लवराशी अलवराशी अे अे राशी छे, पञ्च अेम कडेवुं के नो जीव-नो अजीव आ प्रकारे त्रील राशीनुं वरुणं करवुं अनलिहित दोष छे. (१७) विलङ्घितरहित शब्दवाणा सूत्र अपद दोषवाणा मनाय छे नेम “मुनिविहरति” अर्हि थयेल छे. केभके, सुबन्त अने तिङन्तनी पद संज्ञा थाय छे. निर्विलङ्घितक शब्द पद संज्ञक थतो नहीं अेटवे आ प्रकारना शब्दवाणा सूत्र आ दोषथी विशिष्ट मानवामां आवे छे. “मुनिर्विहरति” आ शुद्ध छे. (१८) ने सूत्रथी वस्तुनुं यथावस्थित स्वरूप निरूपित न थतां भील रूपमां निरूपित करवामा आवे छे त्यां स्वभावहित दोष होय छे. नेम अग्निने शीत अने आकाशने रूपी कडेवुं. (१९) न्यां प्रकृत अर्थने छोडीने अप्रकृतनुं विस्तारथी वरुणं करीने पुनः प्रकृत अर्थनुं वरुणं करवामां आवे छे त्यां व्यवहित नामने दोष लागे छे—नेम हेतु लक्षणना कथन अवसरमां

कालदोषो यत्रातीतादिकालव्यत्ययः, यथा ' रामो वनं प्रविवेश ' इति वक्तव्ये ' रामो वनं प्रविशति ' इत्यादि ॥ २१ ॥

यतिदोषोऽस्थानविरतिः, सर्वथाऽविरतिर्वा । यथा—' धम्मो मंगलमुक्किट्टं ' इत्यादौ ' धम्मो ' इत्यत्र विरामः । यद्वा—गाथाया अन्ते विरामकरणम् ॥ २२ ॥

छविः—अलंकारः, तेन शून्यं छविदोषः । यथा—' बालो धावति ' इत्यादि ॥ २३ ॥ समयविरुद्धं—स्वसिद्धान्तविरुद्धं, यथा—स्याद्वादसिद्धान्ते तद्विरुद्धकथनम् ॥ २४ ॥

में सुबन्त तिङन्तात्मक पद का स्वरूप विस्तार से विवेचित करके अथवा अर्थशास्त्र का कथन करके पुनः हेतु का कथन करने लग जाना । इसी तरह दया के वर्णन करते समय शील का विस्तृत वर्णन करना और पुनः दया का वर्णन करना । इस प्रकार का वर्णन इस दोष वाला जानना चाहिये ॥ २० ॥ जहाँ अतितादिकाल का व्यत्यय होता है वहाँ काल-दोष माना जाता है—जैसे—राम वन में प्रविष्ट हुए की जगह ऐसा कहना कि राम वन में प्रवेश करते हैं ॥ २१ ॥ अस्थान में विरति—' अर्थात्-विराम-रुकना ' होना अथवा सर्वथा अविरति—' नही रुकना ' होना उसका नाम यति दोष है । जैसे—धम्मोमंगल मुक्किट्टं " इत्यादि में धम्मो यहाँ विराम करना अथवा गाथा का अन्तमें विराम करना ॥ २२ ॥ अलंकार शून्यता में छविदोष होता है—जैसे—" बालो धावति " इत्यादि ॥ २३ ॥ जहाँ स्वसिद्धान्त से विरुद्ध कहा जाता है वहाँ समय विरुद्ध दोष लगता है—जैसे—स्याद्वादसिद्धान्त में उसके विरुद्ध प्रतिपादन करना

सुबन्त तिङन्तात्मक पदनुं स्वरूप विस्तारथी विवेचित करीने अथवा अर्थ-शास्त्रनुं कथन करीने पुनः हेतुनुं कथन करवा लागी जपुं. आ रीते दयानुं वर्णन करती वपते शिलनुं विस्तृत वर्णन करवुं अने इरीथी दयानुं वर्णन करवुं. आ प्रकारनुं वर्णन व्यवहित दोषवाणुं जणवुं जेधञ्जे. (२०) ज्यां अतीतादि काणने व्यत्यय थाय छे त्यां काण दोष मनाय छे—जेम राम वनमां प्रविष्ट थयानी जय्याञ्जे जेवुं कडेवुं के, राम वनमां प्रवेश करे छे. (२१) अस्थानमां विरति—अर्थात्—विराम—रोकावुं, थवुं अथवा सर्वथा अविरति—“ न रोकावुं ” थवुं, तेनुं नाम यतिदोष छे. जेम—“ धम्मो मंगलमुक्किट्टं ” धत्यादिमां धम्मे जे जय्याञ्जे विराम करवे अथवा गाथाना अंतमां विराम करवे. (२२) अलंकार शून्यतामां छवि दोष थाय छे. जेम “ बालो धावति ” छेकरे दोडे छे. (२३) धत्यादि. ज्यां स्वसिद्धांतथी विरुद्ध कडेवामां आवे छे त्यां समयविरुद्ध दोष लागे छे. जेम स्याद्वाद सिद्धांतमां तेनी विरुद्ध प्रतिपादन करवुं. (२४) युक्तिशून्य कथन करवामां वचन मात्र नामनुं दुषण आवे छे.

वचनमात्रं-निर्हेतुकं केवलवचनम्, यथा कश्चिद् यथेच्छया कंचित् प्रदेशं लोक-  
मध्यतया जनेभ्यः प्ररूपयति ॥ २५ ॥

अर्थापत्तिदोषः—यत्रार्थापत्त्याऽनिष्टमापतति तत्र, यथा—ग्रामकुक्कुटो न  
हन्तव्यः, इत्युक्तेऽर्थापत्त्या शेषघातोऽदुष्ट इत्यापतति ॥ २६ ॥

असमासदोषः—यत्र समासविधिप्राप्तौ समासं न करोति, व्यत्ययेन वा  
करोति तत्र । यथा—भगवतो नामनिर्देशे 'महावीरः' इति वक्तव्ये 'महान् वीरः'  
इति कथनम् । यद्वा—समानाधिकरण्येन समासे कर्तव्ये व्यधिकरणेन तत्करणम् ।  
यथा—महतो वीरो महद्वीर इति ॥ २७ ॥

उपमादोषो यत्र हीनोपमा क्रियते । यथा—मेरुः सर्षपोपमः । अधिकोपमा वा  
क्रियते, यथा—सर्षपो मेरुसंनिभः । अनुपमा वा यथा मेरुः समुद्रोपमः, इत्यादि ॥२८॥

॥ २४ ॥ युक्ति शून्य कथन करने में वचनमात्र नामका दूषण आता है ।  
जैसे—अपनी इच्छा से कल्पना करके कहना कि अमुक प्रदेश लोक के  
मध्य में है ॥ २५ ॥ जहाँ पर अर्थापत्ति से अनिष्ट की प्रसक्ति होती,  
वहाँ अर्थापत्तिदोष माना जाता है । जैसे—किसी ने कहा कि ग्राम का  
कुक्कुट ( मुर्गा ) नहीं मारना चाहिये, तो इससे इस अनिष्ट का आपा-  
दन होता है कि शेष जीवों का घात करना दोषावह नहीं है ॥ २६ ॥  
जहाँ समासविधि प्राप्त हो भी तौ भी वहाँ समास नहीं करना, इसमें  
असमासदोष माना जाता है अथवा व्यत्यय से समास करना इसमें  
भी समासदोष माना जाता है । जैसे किसी ने पूछा कि अन्तिम तीर्थंकर  
का नाम क्या है ? वहाँ महावीर न कह कर महान् वीर ऐसा कह देना ।  
अथवा—समानाधिकरण्य से समास कर्तव्य होने पर व्यधिकरण से समास  
करना—जैसे—महतो वीरः महद्वीरः ॥२७॥ जहाँ हीन उपमा अथवा अधिक

नेम पोतानी धिच्छथी कल्पना करीने कहेवुं के, अमुक प्रदेश लोकना मध्यमां  
छे. (२५) न्यां अर्थापत्तिथी अनिष्टनी प्रसक्ति थाय छे त्यां अर्थापत्ति दोष  
मानवामां आवे छे. नेम कोधये कहुं के, गामनो कुकठो मारवो न नेधये,  
तो आथी ये अनिष्टनुं कथन आपादान थाय छे के, शेष जिवोनो घात करवो  
ते दोषावह नथी. (२६) न्यां समासविधि प्राप्त थाय तो पणु त्यां समास न  
करवो येमां असमास दोष मानवामां आवे छे, अथवा व्यत्ययथी समास करवो येमां  
पणु समास दोष मानवामां आवे छे, नेम कोधये पूछयुं के अन्तिम तीर्थंकरनुं  
नाम शुं छे ? त्यां महावीर न कहेता महान् वीर येम कही हेवुं अथवा सामा-  
नाधिकरण्यथी समास कर्तव्य होवा छतां व्यधिकरण्यथी समास करवो, नेम  
'महतोवीरः महावीरः' (२७) न्यां हीन उपमा अथवा अधिक उपमा करवामां आवे छे

रूपकदोषः=अवयविन्यारोपयितव्येऽवयवारोपणम् । यथा-पर्वतादौ रूपयितव्ये शिखरादींस्तदवयवान् रूपयति । गजं प्रति उच्चत्वादि धर्म निरीक्ष्य पर्वताभेदमारोप्य पर्वतोऽयमिति वक्तव्ये शिखरोऽयमिति कथनम् ॥ २९ ॥

निर्देशदोषस्तत्र, यत्र निर्दिष्टपदानामेकवाक्यता न क्रियते, यथा-इह श्रावक उपाश्रये प्रतिक्रामतीत्यभिधातव्ये प्रतिक्रामति शब्दं नाभिधत्ते ॥ ३० ॥

पदार्थदोषः—यत्र वस्तुनि पर्यायोऽपि सन् पदार्थान्तरत्वेन कल्प्यते, यथा-‘सतो भावः सत्ता’ इति कृत्वा वस्तुपर्याय एव सत्ता, सा च वैशेषिकैः पदसु पदार्थेषु मध्ये पदार्थान्तरत्वेन स्वीकृता, तच्चायुक्तम्-वस्तूनामनन्तपर्यायत्वेन पदार्थानन्त्य-प्रसंगादिति ॥ ३१ ॥

उपमा करने में आती है वहां उपमा दोष माना जाता है जैसे कहना कि मेरु सर्षप के समान है अथवा सर्षप मेरुके समान है ॥२८॥ अवयवी का जहां आरोपण करना चाहिये वहां अवयव का आरोपण करना, जैसे-पर्वतके निरूपयितव्य होने पर उस के अवयवभूत शिखरादिकों का निरूपण करना । गज में उच्चत्व आदि धर्म का निरीक्षण कर के उस में पर्वत का रूपक बांधकर फिर ऐसा कहना कि यह शिखर है ॥ २९ ॥ जहां निर्दिष्ट पदों में एक वाक्यता नहीं की जाती है वहां निर्दिष्ट दोष माना जाता है । जैसे-इस उपाश्रय में श्रावक प्रतिक्रमण करता है ऐसे कहने की जगह सिर्फ इतना ही कहना । “ इह उपाश्रये श्रावकः ” अर्थात् एक वाक्यता प्रदर्शक क्रियापद का प्रयोग नहीं करना ॥ ३० ॥ जिस वस्तुमें पर्याय भी दूसरे पदार्थरूप में कल्पित की जावे वहां पदार्थदोष माना जाता है । जैसे-सत् का भाव ही सत्ता है और यह सत्ता वस्तु की ही

त्यां उपमादोष मानवाभां आवे छे. जेम कडेवुं के, मेइ सर्षवना जेवो छे अथवा सर्षव मेइना समान छे. (२८) अवयवीनुं न्यां आरोपणुं करवुं जेधये त्यां अवयवनुं आरोपणुं करवुं, जेम पर्वतना निरूपयितव्य कथन करवुं जेधये त्यां जेमना शिखरादिकोनुं निरूपणुं करवुं, गजभां उच्चत्व आदि धर्मनुं निरीक्षणुं करी जेभां पर्वतनुं रूपक आंधीने पछी जेवुं कडेवुं के जे शिखर छे. (२९) न्यां निर्दिष्ट पदोभां एकवाक्यता करवाभां नथी आवती त्यां निर्दिष्ट दोष मानवाभां आवे छे. जेम आ उपाश्रयभां श्रावक प्रतिक्रमणुं करे छे जेम कडेवाने अद्वे इक्त जेटवुं ज कडेवुं के, “ इह उपाश्रये श्रावकः ” अर्थात् एक वाक्यता प्रदर्शक क्रियापदना प्रयोग करवो नई. (३०) जे वस्तुभां पर्याय पणुं अल पदार्थरूपभां कल्पित करवाभां आवे त्यां पदार्थ दोष मनाय छे, जेम सत्तो भाव ज सत्ता छे अने जे सत्ता वस्तुनी ज एक पर्याय छे-



सन्धिदोषः—यत्र सन्धिप्राप्तौ तं न करोति, दुष्टं वा करोति तत्र, यथा—“संयमाराधनम्” इति वक्तव्ये ‘संयम, आराधनम्’ इति कथनम् । यथा वा ‘मुनि एतौ’ इति वक्तव्ये ‘मुन्येतौ’ इति कथनम् ॥३२॥ एते द्वात्रिंशत् सूत्रदोषाः ।

अथ सूत्रगुणाः—

सूत्राणामष्टौ गुणास्त्वेवम्—

निदोसं सारवंतं च, हेउजुत्त मलंक्रियं ।

उवणीयं सोवयारं च, मिर्यं महुरमेव य ॥ १ ॥

एक पर्याय है—फिर भी वैशेषिक सिद्धान्तकार इसे द्रव्यगुण आदि पदार्थ से भिन्न पदार्थरूप से स्वीकार करते हैं । अतः उनके सूत्रों में यह दोष आता है । कारण कि इस प्रकार से पर्याय को यदि भिन्न पदार्थ तरीके माना जायगा तो प्रत्येक पदार्थ की अनंत पर्याये हैं उन सबमें अनंत पदार्थता की प्रसक्ति माननी पड़ेगी, इस प्रकार छह ही भावात्मक पदार्थ है, यह कथनविरुद्ध मानना पड़ेगा ॥ ३१ ॥ जहां संधि की प्राप्ति होने पर भी संधि नहीं की जाय वहां सन्धिदोष होता है जैसे—“यह संयम का आराधन करता है” इस स्थानमें संयमाराधनं न कह कर “संयम आराधनं” ऐसा कहना । इसी प्रकार “मुनी एतौ” इस जगह “मुन्येतौ” कहना । “मुनी एतौ” यहां व्याकरण सिद्धान्त के अनुसार द्विवचनान्त ईदन्त शब्दकी प्रगृह्य संज्ञा होती है और उससे सन्धिकार्य का अभाव हो जाता है ॥३२॥ इस प्रकार सूत्रके ये बत्तीस (३२) दोष हैं ।

वैशेषिक सिद्धांतकार तेनो द्रव्यगुण आदि पदार्थथी लिन्न पदार्थं उपथी स्वीकार करे छे. आथी तेभना सूत्रेभां अये दोष आवे छे. कारण के, आ प्रकारथी पर्यायने कदि भिन्न पदार्थ तरीके मानवामां आवे तो प्रत्येक पदार्थनी अनंत पर्याये छे अये अथाभां अनंत पदार्थतानी प्रसक्ति मानवी जेधशे. आ प्रकारे छे भावात्मक पदार्थ छे, अये कडेवुं विरुद्ध मानवुं पडशे. (३१) ज्यां संधिनी प्राप्ति होवा छतां पथु संधी न करवामां आवे तो संधी दोष अने छे. जेभ—“आ संयमनुं आराधन करे छे” आ स्थानभां संयमाराधन न कहीने “संयम आराधनं” अयेम कडेवुं. आ प्रकारे “मुनि एतौ” आ स्थणे मुन्येतौ कडेवुं. व्याकरण सिद्धांत अनुसार द्विवचनान्त ईदन्त शब्दनी प्रगृह्य संज्ञा थाय छे. अने अथी संधी कार्यने अभाव थधे जय छे. (३२) आ प्रकारे सूत्रना ३२ दोष छे.



व्याख्या—निर्दोषम्—अलीकादिदोषवर्जितम् ॥ १ ॥ सारवत्—भूमिशब्दवद्  
बहुपर्याययुक्तम् ॥ २ ॥ हेतुयुक्तं—हेतवः—अन्वयव्यतिरेकलक्षणास्तैर्युक्तम् ॥ ३ ॥  
अलंकृतम्—उपमोत्प्रेक्षाघलंकारैर्युक्तम् ॥ ४ ॥ उपनीतम्—उपनयोपसंहृतम् ॥ ५ ॥  
सोपचारं—ग्राम्यभणितिरहितम् ॥ ६ ॥ मितं=वर्णादिनियतपरिमाणम् ॥ ७ ॥  
मधुरं—श्रवणमनोहरम् ॥ ८ ॥

अब सूत्रके ८ गुण कौन २ से हैं सो कहते हैं—निर्दोष १, सारवत् २, हेतुयुक्त ३, अलंकृत ४, उपनीत ५, सोपचार ६, मित ७, एवं मधुर ८, कहा भी है—

“निर्दोसं सारवंतं च, हेउजुत्त मलंकियं ।

उवणीयं सोवायारं च, मियं महुरमेव च ॥१॥

जो सूत्र अलीकादि दोषों से वर्जित होता है वहां निर्दोष यह गुण माना जाता है ॥ १ ॥ जिस प्रकार भूमि शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द हैं, उसी प्रकार अनेक पर्यायों से युक्त जो सूत्र होता है वह “सारवत्” इस गुण से विशिष्ट माना जाता है ॥ २ ॥ अन्वय व्यतिरेक लक्षण हेतु से युक्त हो वह हेतुयुक्त नामक तीसरा गुण है ॥ ३ ॥ उपमा उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से संपन्न सूत्र को अलंकृत गुण वाला कहा गया है ॥ ४ ॥ उपनय पूर्वक से उपसंहृत—समाप्ति जो सूत्र होता है वह उपनीतगुणवाला कहा गया है ॥ ५ ॥ ग्राम्यभणिति से रहित जो सूत्र होता है अर्थात् जिस सूत्र की भाषा साधारणजनों की भाषा जैसी नहीं होती है वह सूत्र सोपचारगुण से विशिष्ट माना गया है.

હેવે સૂત્રના આઠ ગુણ કયા કયા છે તે કહે છે—નિર્દોષ, સારવત્, હેતુયુક્ત, અલંકૃત, ઉપનીત, સોપચાર, મિત, અને મધુર કહ્યું પણ છે—

નિર્દોસં સારવંતં ચ, હેઉજુત્ત મલંકિયં ।

ઉવણીયં સોવચારં ચ, મિયં મહુરમેવ ॥ ૧ ॥

જે સૂત્ર અસત્ય અલીકાદિ દોષોથી વર્જિત હોય છે ત્યાં નિર્દોષ આ ગુણ માનવામાં આવે છે. (૧) જે પ્રકારે ભૂમિ શબ્દ જે અનેક પર્યાયવાચી શબ્દ છે એ જ રીતે અનેક પર્યાયોથી યુક્ત જે સૂત્ર હોય છે તે “સારવત્” આ ગુણથી વિશિષ્ટ માનવામાં આવે છે. (૨) અન્વય વ્યતિરેક લક્ષણ હેતુથી યુક્ત હોય તે હેતુયુક્ત નામનો ત્રીજો ગુણ છે. (૩) ઉપમા ઉત્પ્રેક્ષા આદિ અલંકારોથી સંપન્ન સૂત્રને અલંકૃત ગુણવાળા કહેવામાં આવેલ છે. (૪) ઉપનય પૂર્વકથી ઉપસંહૃત સમાપ્તિ જે સૂત્ર હોય છે તે ઉપનીત ગુણવાળા કહેવાયેલ છે. (૫) ગ્રામ્યભણિ-તિથી રહિત જે સૂત્ર હોય છે અર્થાત્ જે સૂત્રની ભાષા સાધારણ જનોની ભાષા જેવી હોતી નથી તે સૂત્ર સોપચાર ગુણથી વિશિષ્ટ માનવામાં આવેલ છે. (૬)

કેચિત્તુ સૂત્રસ્ય षड् ગુણાન્ વદન્તિ । તદ્ યથા—

અપ્પક્ષરમસંદિઘ્, સારવં વિસ્સઓમુહં ।

અત્થોભમણવ્જ્જં ચ, સુત્તં સવ્વણ્ણભાસિયં ॥ ૧ ॥

છાયા—અલ્પાક્ષરમસંદિઘ્, સારવદ્ વિશ્વતોમુખમ્ ।

અસ્તોભમનવઘં ચ, સૂત્રં સર્વજ્ઞભાષિતમ્ ॥ ૧ ॥

વ્યાख्या—‘અલ્પાક્ષરમ્’ મિતાક્ષરં, યથા સામાયિકસૂત્રમ્ ॥ ૧ ॥

અસંદિઘમ્—સૈન્ધવશબ્દવદ્ યલ્લવ્ણ—વસન—તુરગાદ્યનેકાર્થસંશયકારિ ન ભવતિ, યથા—અહિંસા ॥૨॥ સારવત્ત્વં ચ પૂર્વવત્ ॥૩॥ ‘વિશ્વતોમુખં’ પ્રતિમૂત્રં ચરણાનુયોગાદ્યનુયોગચતુષ્ટયવ્યાખ્યાક્ષમમ્, યથા—‘ધમ્મોમંગલ મુક્કિટ્ટં’ ઇત્યાદિ શ્લોકે

॥ ૬ ॥ વર્ણાદિક કા જિસમેં નિયત પરિમાણ હોતા હૈ વહ મિત ગુણ હૈ ॥ ૭ ॥ એવં કર્ણમનોહર જો હોતા હૈ વહ મધુર ગુણ સંયુક્ત સૂત્ર માના જાતા હૈ ॥ ૮ ॥ કિન્હીં ૨ કે મતાનુસાર સૂત્ર કે ૬ ગુણ મી માને મયે હૈ—વે યે હૈ—

અલ્પાક્ષર ૧, અસંદિઘ ૨, સારયુક્ત ૩, વિશ્વતોમુખ ૪, અસ્તોભ ૫, અનવઘ ૬ । इनमें मित अक्षर जिसमें हो वह अल्पाक्षर गुण है, यह “अल्पाक्षर” प्रथम गुण है । जैसे सामायिक सूत्र ॥ १ ॥ सैन्धव शब्द की तरह जो लवण, वसन, तुरग आदि अनेक अर्थों के बोध का संशयजनक नहीं हो वह “असंदिग्ध” गुण है । जैसे अहिंसा शब्द ॥ २ ॥ भूमि शब्द के समान अनेक पर्यायों से युक्त जो सूत्र वह “सारवत्” तीसरा गुण वाला है ॥ ३ ॥ प्रत्येक सूत्र चरणानुयोगादिक अनुयोगचतुष्टय से युक्त है वह “विश्वतोमुख” गुणवाला सूत्र माना जाता है ।

વર્ણાદિકનું જેમાં નિયત પરિમાણ હોય છે તે મિતગુણ છે. (૭) જે કર્ણ મનોહર હોય છે તે મધુરગુણ સંયુક્ત સૂત્ર માનવામાં આવે છે. (૮) કોઈ કોઈના મત અનુસાર સૂત્રના છ ગુણ પણ માનવામાં આવ્યા છે તે પ્રમાણે છે—

અલ્પાક્ષર ૧ અસંદિઘ ૨ સારયુક્ત ૩

વિશ્વતોમુખ ૪ અસ્તોભ ૫ અનવઘ ૬

આમાં મિત અક્ષર જેમાં હોય તે અલ્પાક્ષર ગુણ છે, આ “અલ્પાક્ષર” પ્રથમ ગુણ છે, જેમ સામાયિક સૂત્ર (૧) સૈન્ધવ શબ્દની માફક લવણ, વસન, તુરગ આદિ અનેક અર્થોના બોધ જેમાં સંશયજનક ન હોય તે “અસંદિઘ” ગુણ છે. જેમ અહિંસા શબ્દ (૨) ભૂમિ શબ્દની માફક અનેક પર્યાયોથી યુક્ત જે સૂત્ર હોય તે “સારવત્” ત્રીજા ગુણવાળા છે. (૩) પ્રત્યેક સૂત્ર ચરણાનુયોગાદિક અનુયોગ ચતુષ્ટયથી યુક્ત છે તે “વિશ્વતોમુખ” ગુણવાળા સૂત્ર માનવામાં આવે છે.

चत्वारोऽप्यनुयोगा व्याख्यायन्ते॥४॥‘अस्तोभकम्,स्तोभकाः-निरर्थकतया प्रयुक्ताः, चकार-वा-शब्दादयो निपाताः, तैर्वियुक्तम् ॥५॥ ‘अनवद्य’-कामादिपापव्यापारा-प्ररूपकम् ॥६॥ एवंभूतं सूत्रं सर्वज्ञभाषितम् । इमे षड् गुणाः पूर्वोक्तेष्वष्टसु गुणे-ष्वन्तर्भूताः सन्ति, तथाहि-अल्पाक्षरस्य विश्वतोमुखस्य च मिते समावेशः, अस-न्दिग्धानवद्यास्तोभानां च निर्दोषेऽन्तर्भावः ।

एवं सूत्रानुगमे समस्तदोषवर्जिते लक्षणयुक्ते सूत्रे उच्चारिते सति स्वसमयगत-जीवाद्यर्थप्रतिपादकस्य स्वसमयपदस्य ज्ञानं भवति तथा परसमयगत-प्रकृतीश्व-राद्यर्थप्रतिपादकस्य परसमयपदस्य ज्ञानं भवति । अनयोरेव मध्ये परसमयपदं

जैसे “ धम्मो मंगलमुक्किट्ठं ” यह सूत्र है । इस सूत्र में चारों ही अनुयोग का व्याख्यान है ॥ ४ ॥ जिस सूत्र में चकार, वकार आदि निरर्थक शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता है वह सूत्र “अस्तोभ” गुण वाला माना गया है ॥ ५ ॥ जिस सूत्र द्वारा कामादिक व्यापारों की प्ररूपणा नहीं की जाती है वह सूत्र “अनवद्य” गुण संपन्न है ॥६॥ सूत्र इसी प्रकार का होना चाहिये, इससे विपरीत नहीं, ऐसा प्रभु का आदेश है । ये छह गुण पूर्वोक्त अष्टगुणों में अन्तर्भूत समझना चाहिये । अल्पाक्षर एवं विश्वतोमुख, इन दो गुणों का अन्तर्भाव “मित” इस गुण में तथा असन्दिग्ध, अनवद्य एवं अस्तोभ इन गुणों का अन्तर्भाव “निर्दोष” इस गुण में हुआ है ।

इस प्रकार समस्तदोषवर्जित, एवं लक्षणयुक्त सूत्र के उच्चारित होने पर जीवादिक अर्थ के प्रतिपादक स्वसमय-पद का ज्ञान तथा पर समयानुसार प्रकृति ईश्वर आदिक अर्थ के प्रतिपादक परसमय-पद का

नेम-“ धम्मो मंगलमुक्किट्ठं ” आ सूत्र छे आमां आरे अनुयोग ने व्याख्यान छे. यकार, वकार आदि व्याख्यान छे आदि निरर्थक शब्दना प्रयोग नथी करवामां आव्ये ते सूत्र अस्तोभ गुणवाणा भनायेल छे. (५) ने सूत्रद्वारा कामादिक व्यापारिनी प्ररूपणा करवामां नथी आवती ते सूत्र अनवद्य गुणसंपन्न छे. (६) सूत्र आवा प्रकारनुं होतुं ने छे अथवा विपरीत नही अथवा प्रभुना आदेश छे. आ छे गुण पूर्वोक्त आठ गुणमां अन्तर्भूत समज्वा ने छे. अल्पाक्षर तेमज् विश्वतोमुख आ छे गुणाना अन्तर्भाव “मित” आ गुणमां तथा असन्दिग्ध, अनवद्य अने अस्तोभ गुणाना अन्तर्भाव “निर्दोष” आ गुणमां थयेल छे.

आ प्रकार समस्त दोष वर्जित, अने लक्षणयुक्त सूत्रना उच्चारित होवाथी जीवादिक अर्थना प्रतिपादक स्वसमय पदनुं ज्ञान तथा पर समयानु-सार प्रकृति, ईश्वर आदिक अर्थना प्रतिपादक परसमयपदनुं ज्ञान थाय छे.

कुवासनाजनकत्वाद् बन्धपदम्, स्वसमयपदं तु-सद्बोधकारणत्वान्मोक्षपद-  
मिति बोध्यम् ।

इति तृतीयं द्वारम् ।

अथ सूत्रपर्यायनामकं चतुर्थं द्वारम् :—

सुयसुत्तगंथसिद्धं-त, सासणे आण वयण उवएसो ।

पणवणा मा गमइय, एगट्टा पज्जवा सुत्ते ॥ १ ॥

श्रुतम्, सूत्रम्, ग्रन्थः, सिद्धान्तः, शासनम्, आज्ञा, वचनम्, उपदेशः,  
प्रज्ञापना, आगमः, इति दश पर्यायाः एकार्थाः ।

॥ इति चतुर्थं द्वारम् ॥

अथ सूत्र भेद नामकं पञ्चमं द्वारम्—

सूत्रं नाम श्रुतज्ञानमित्युक्तम्, तत् खलु मूलभेदापेक्षया द्विभेदम्, अङ्गप्रवि-  
ष्टम्, अङ्गबाह्यं च । तथा चोक्तम्—

ज्ञान होता है । कुवासना का जनक होने से परसमयपद बन्धपद है  
एवं सद्बोध का कारण होने से स्वसमय-पद मोक्षपद है ॥

॥ इस प्रकार तीसरा द्वार सम्पूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

अब चौथा द्वार कहते हैं—

श्रुत, सूत्र, ग्रन्थ, सिद्धान्त, शासन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापना  
आगम, ये सब सूत्र के पर्यायवाची शब्द-नामान्तर हैं—

कहा भी है—“ सुयसुत्तगंथसिद्धं सासणे आण वयण उवएसो ।

पणवणा-मागम इय, एगट्टा पज्जवा सुत्ते ॥ १ ॥

॥ चौथा द्वार सम्पूर्ण ॥ ४ ॥

कुवासनाना जनक होवाची परसमयपद बन्ध पद छे अने सद्बोधना कारण-  
इय होवाची स्वसमयपद मोक्षपद छे.

आ प्रकारची त्रीणुं द्वार संपूर्ण थयुं.

अब सूत्रभेद नामनुं चौथुं द्वार कहे छे:—

श्रुत, सूत्र, ग्रन्थ, सिद्धान्त, शासन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापना,  
आगम, आ अथा सूत्रना पर्यायवाची शब्द-नामान्तर छे, कहुं पणु छे—

सुयसुत्तगंथसिद्धं, सासणे आण वयण उवएसो ।

पणवणा-मागम इय एगट्टा पज्जवा सुत्ते ॥ १ ॥

॥ चौथुं द्वार संपूर्ण ॥

“सुयनाणे दुविहे पणत्ते, तं जहा-अंगपविट्टे चेव, अंगबाहिरे चेव” ।  
स्था० २ ठा० १

अङ्गप्रविष्टं द्वादशभेदम्-आचारादिभेदात्, तत्र दृष्टिवादवर्जं सर्वं कालिकम्, दृष्टिवादसूत्रं तूत्कालिकम् । तत्र यद् दिवसस्य प्रथमपश्चिमपौरुषीद्वये रात्रेश्च प्रथमपश्चिमपौरुषीद्वय एव पठ्यते, तत् कालिकम् । यत् कालवेलावर्जं पठ्यते तदुत्कालिकम् । अङ्गबाह्यं द्विविधम्, आवश्यकं, तद् व्यतिरिक्तं च । तत्रावश्यकं मुत्कालिकं, तच्च-षड्विधम्-सामायिकं १, चतुर्विंशतिस्तवः २, वन्दनकं ३, प्रतिक्रमणं ४, कायोत्सर्गः ५, प्रत्याख्यानं ६ च ।

अब सूत्र भेदनाम के पांचवा द्वार कहते हैं—

यह कहा ही जा चुका है कि सूत्र का दूसरा नाम श्रुतज्ञान भी है, अतः यह मूलभेद की अपेक्षा से दो भेदवाला है-१ अङ्गप्रविष्ट २ अंगबाह्य । कहा भी है-“सुयनाणे दुविहे पणत्ते तं जहा-अंगपविट्टे चेव अंगबाहिरे चेव” इनमें अङ्गप्रविष्ट श्रुतज्ञान के १२ भेद हैं-आचारांग से लेकर दृष्टिवाद तक । उनमें दृष्टिवाद को छोड़कर बाकी सब कालिक हैं । दृष्टिवाद उत्कालिक है । जो सूत्र दिवस के प्रथम पश्चिम पौरुषीद्वय में तथा रात्रि के प्रथम पश्चिम पौरुषीद्वय में ही पढ़ा जाता है वह सूत्र कालिक जानना चाहिये । जो सूत्र अकाल के समय को छोड़ कर पढ़ा जाता है वह उत्कालिक है । अंगबाह्य श्रुतज्ञान भी आवश्यक एवं तद्व्यतिरिक्त के भेद से दो प्रकार का है । इनमें आवश्यक सूत्र उत्कालिक है, और वह ६ प्रकार का है जैसे-सामायिक १, चतुर्विंशतिस्तव २, वन्दनक ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्ग ५, एवं प्रत्याख्यान ६ । कालिक, उत्कालिक के भेद

७वे सूत्रभेद नामनु पांचमुं द्वार कहे छेः—

ये कहेवाध गयुं छे के, सूत्रनुं णीणुं नाम श्रुतज्ञान पणुं छे. आथी ते मूल भेदनी अपेक्षाये ये भेदवाणुं छे अंग प्रविष्ट ने १ अंगबाह्य २. कहुं पणुं छे के सुयनाणे दुविहे पणत्ते तं जहा-अंगपविट्टे चेव अंगबाहिरे चेव तेमां अंग प्रविष्ट श्रुतज्ञानना १२ भेद छे. आचारांगथी लधने दृष्टीवाद सुधी. येमां दृष्टीवादाने छोडीने भाडी अथा कालीक छे. दृष्टीवाद उत्कालिक छे, ने सूत्र दिवसना प्रथम अने पश्चिम ये पौरुषीमां तथा रात्रीना प्रथम अने पश्चिम ये पौरुषीमां वांची शकय छे, ते सूत्रने कालीक णणुवां भेधये. ने सूत्रने अकालना समयने छोडी वांची शकय छे ते उत्कालिक छे. अंगबाह्य श्रुतज्ञान पणुं आवश्यक अने तद्व्यतिरिक्तना भेदथी ये प्रकारे छे. येमां आवश्यक सूत्र उत्कालिक छे, अने ते छ प्रकारनुं छे, नेम सामयिक १, चतुर्विंशतिस्तव २, वन्दनक ३, प्रतिक्रमण ४,

७० २१

आवश्यकव्यतिरिक्तं द्विविधम्—कालिकम्, उत्कालिकं च । तत्र—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति-  
चन्द्रप्रज्ञप्तिर्निरयावलिकादीनि च पञ्च सूत्राणीति सप्तोपाङ्गानि, व्यवहारादीनि चत्वारि  
छेदसूत्राणि, मूलसूत्रेषु—उत्तराध्ययनं, समुत्थानसूत्रं च । एतत् सर्वं कालिकम् ।  
उत्कालिकं तु दशवैकालिकसूत्रं नन्दीसूत्रम्, अनुयोगद्वारसूत्रं च—एतत्त्रयं मूलसूत्रम्,  
औपपातिकं राजप्रश्नीयं जीवाभिगमः प्रज्ञापना सूर्यप्रज्ञप्तिरिति पञ्चोपाङ्गानि च ।  
॥ इति पञ्चमद्वारम् ॥

अथ सूत्रोच्चारणविधिनामकं षष्ठं द्वारम्—

सुविनीतेन शिष्येण सूत्रं गुरुसंनिधौ ग्रहीतव्यम् । यथा—द्रासप्ततिकलापण्डितो  
मनुष्यः प्रसुप्तः सन् तासां कलानां न किञ्चित् जानाति, एवमर्थेनाबोधिते सूत्रे न  
से तद्व्यतिरिक्त दो प्रकार का है । जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति और निर-  
यावलिका आदि पाँच सूत्र—ये सातों उपांग, व्यवहार आदिक चार छेद  
सूत्र, मूलसूत्रों में उत्तराध्ययन, और समुत्थानसूत्र, ये सब कालिक हैं ।  
दशवैकालिक, नन्दीसूत्र और अनुयोगद्वार ये तीनों मूलसूत्र, तथा—  
औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना और सूर्यप्रज्ञप्ति ये  
पाँचों उपांग उत्कालिक हैं ।

॥ पांचवा द्वार संपूर्ण ॥

अब छठे द्वार में सूत्र के उच्चारण की विधि कहते हैं—

सुविनीत शिष्य को सूत्र का अध्ययन गुरु महाराज के समीप  
करना चाहिये । जिस प्रकार ७२ कलाओं का ज्ञाता मनुष्य प्रसुप्त  
अवस्था में उन कलाओं के अर्थविशेष को नहीं जानता है, उसी प्रकार

काथोत्सर्ग ५, अने प्रत्याख्यान ६. कालिक, उत्कालिकना लेदधी तद्व्यतिरिक्त ये  
प्रकारे छे. जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति अने निरयावलिका आदि पांच तथा  
व्यवहारआदिक चार सूत्र—ये साते उपांग, व्यवहार आदिक चार छेद सूत्र,  
मूलसूत्रोमां उत्तराध्ययन अने समुत्थान सूत्र ये यथां कालिक छे. दशवैकालिक,  
नन्दीसूत्र अने अनुयोगद्वार आ त्रणे मूलसूत्र तथा—औपपातिक, राजप्रश्नीय,  
जीवाभिगम, प्रज्ञापना अने सूर्यप्रज्ञप्ति आ पांचे उपांग उत्कालिक छे.

॥ पांचमं द्वार संपूर्ण ॥

इवे छठ्ठा द्वारमां सूत्रना उच्चारणुनी विधि कहे छे—

सुविनीत शिष्ये सूत्रतुं अध्ययन शुरु महाराजनी समीप करवुं लेधये,  
ये प्रकार ७२ कलाओना ज्ञाता मनुष्य प्रसुप्त अवस्थांमां ये कलाओना अर्थ  
विशेषने नथी जानुतो ये ज रीते सूत्रनो अर्थ ले जानुले न डाय तो पांचनार



किंचिदर्थविशेषं जानाति, यदा तु गुरुणाऽर्थेन सह सूत्रं प्रबोधितं भवति, तदा शिष्यस्तदन्तर्गतानां सर्वेषां भावानां ज्ञाता भवति, यथा स एव कलाऽभिज्ञः पुरुषः प्रबोधितः सन् सर्वासां कलानां ज्ञाता भवति, अतः सूत्रं गुरुसंनिधानं विना प्रसुप्त-समं भवति, तस्मात् सूत्रं गुरुसंनिधौ श्रुत्वा पठनीयम् ।

किंच-गुरुसंनिधानाभावे सूत्रोच्चारणं स्वलितादिदोषदुष्टं स्यात् । तथा सति प्रायश्चित्तम्, अज्ञानं, मिथ्यात्वं, आत्मविराधना, संयमविराधनादयो दोषा भवन्ति तस्माद् गुरुसंनिधौ सूत्रमुच्चारणीयम् ।

सूत्र का अर्थ यदि ज्ञात न हो तो पढ़ने वाला व्यक्ति उसके महत्त्व को नहीं जान सकता है । जिस समय शिष्य गुरु महाराज के पास अर्थ-सहित सूत्र का अध्ययन करता है, अथवा गुरु महाराज शिष्य को अर्थ-सहित सूत्र पढ़ा देते हैं उस समय शिष्य उसके अन्तर्गत समस्त भावों का ज्ञाता हो जाता है । जिस प्रकार ७२ कला के जानने वाला पुरुष जगने पर समस्त कलाओं का ज्ञाता होता है । इसलिये सूत्र गुरु महाराज के समीप सुनकर ही पढ़ना चाहिये, क्यों कि विना गुरु महाराज के पठित सूत्र कलानिपुण सोया हुआ पुरुष जैसा माना जाता है, पढ़ने वाले को उससे अर्थविशेष की प्राप्ति नहीं हो सकती है ।

किञ्च-गुरुमुखसे यदि सूत्र का अध्ययन न किया जाय तो सूत्र के यथावत् उच्चारण करने में स्वलना आदि दोषों का सद्भाव हो सकता है । इससे अध्ययन करने वालों को लाभ के स्थान में प्रायश्चित्त का भागी होना पड़ता है । अज्ञान, मिथ्यात्व, आत्मविराधना एवं संयम की विराधना आदि दोषों का भाजन भी बनना पड़ता है । इसलिये गुरु महाराज के

व्यक्ति तेना महत्त्वेने ज्ञाती शकता नथी. जे समये शिष्य गुरुमहाराजनी पासै अर्थ सहित सूत्रतुं अध्ययन करे छे अथवा गुरु महाराज शिष्यने अर्थ सहित सूत्र लक्ष्मी दे छे, ते समये शिष्य तेना अन्तर्गत समस्त भावोना ज्ञाता भनी जय छे. जे प्रकारे ७२ कलाने ज्ञातवावाणा पुरुष जगवाथी समस्त कलाओना ज्ञाता भने छे. आ भाटे सूत्र गुरु महाराजनी समीप सांलक्ष्मीने लक्ष्मुं जेधंजे. केम के गुरु महाराज वगर लक्ष्मीमां आवेत्त सूत्र कला निपूष्ण सुतेवा पुरुष जेवुं मानवामां आवे छे. लक्ष्मीवावाणाने जेनाथी अर्थ विशेषनी प्राप्ति थती नथी.

किञ्च इरी-गुरु मुखथी सूत्रतुं अध्ययन कदाय न करवामां आवे तो, सूत्रतुं यथावत् उच्चारण करवामां स्वलना आदि दोषोना सहभाव भने छे. अर्थी अध्ययन करवावाणाजे लाभना स्थानमां प्रायश्चित्तना भागी अनवुं पडे छे, अज्ञान, मिथ्यात्व, आत्मविराधना अने संयमनी विराधना आदि दोषोना भाजन

अथोच्चारणदोषाः स्वलितादयो दश प्रोच्यन्ते—स्वलितम् १, मिलितम् २, व्याविद्धाक्षरम् ३, हीनाक्षरम् ४, अधिकाक्षरम् ५, व्यत्याम्रेडितम् ६, अपरिपूर्णम् ७, अपरिपूर्णघोषम् ८, अकण्ठोष्ठविप्रमुक्तं ९, अगुरुवाचनोपगतम् १०, इति । तत्र—

१ स्वलितम्—यद् अन्तराऽन्तरा आलापकान् मुञ्चति, यथा—“ अहिंसा ” “ देवा वि तं नमंसति ” ।

२ मिलितम्—यद् अन्यस्यान्यस्योद्देशकस्याध्ययनस्य वा आलापकान् एकत्र मीलयति ‘ सर्वं जिनवचनम् ’ इति कृत्वा, यथा—“ सव्वे पाणा पियाउया ” ( सर्वे प्राणाः प्रियायुष्काः ) ( आचा. १ श्रु. २ अ. ३ उ. ) “ सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं ” (सर्वे जीवा अपि इच्छन्ति जीवितुं न मर्तुम्) दश. वै. ६ अ. ।

समीप ही सूत्र का अध्ययन या उसका उच्चारण करना सीखना चाहिये । उच्चारण के कितने दोष हैं यह अब प्रकट किया जाता है—स्वलित १, मिलित २, व्याविद्धाक्षर ३, हीनाक्षर ४, अधिकाक्षर ५, व्यत्याम्रेडित ६, अपरिपूर्ण ७, अपरिपूर्णघोष ८, अकण्ठोष्ठविप्रमुक्त ९, एवं अगुरुवाचनोपगत १०, ये १० दोष उच्चारण संबंधी हैं । स्वलित—बीच २ में रुक २ कर सूत्र का बोलना यह स्वलित दोष है, जैसे—अ हिं सा, देवा वि तं नमं संति इत्यादि ॥१॥ मिलित—जहां अन्य २ उद्देशक अथवा अध्ययन के आलापकों को एकत्र मिला दिया जाता है वहां मिलित दोष होता है, जैसे—“ सर्वं जिनवचनं ” ऐसा ख्यालकर “ सव्वे पाणा पियाउया ” “ सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं ” इन सब को एक साथ ही बोल देना । इन सब के एक साथ बोलने में मिलित दोष इसलिये आता है कि

पण्यु अनवुं पडे छे. भाटे गुरु भड्डाराज समीपण सूत्रनुं अध्ययन अगार तेनुं उच्चारणु करवुं—सीधुनुं नेधये उच्चारना डेटला दोष छे ते डवे प्रगट करवाभां आवे छे. (१) स्वलित, (२) मिलित, (३) व्याविद्धाक्षर, (४) हीनाक्षर, (५) अधिकाक्षर, (६) व्यत्याम्रेडित, (७) अपरिपूर्ण, (८) अपरिपूर्णघोष, (९) अकण्ठोष्ठविप्रमुक्त, अने (१०) अगुरुवाचनोपगत आ दस दोषो उच्चारणु संबंधी छे.

स्वलित—वचनं वचनं रोकाधने सूत्रनुं ओलवुं ते स्वलित दोष छे. नेम—अहिंसा देवा वि तं नमं संति इत्यादि ! (१) मिलित—न्यां अन्य अन्य उद्देशक अथवा अध्ययनना आलापाने अकत्र भेगवी अपाय छे त्यां मिलित दोष थाय छे नेम “ सर्वं जिनवचनं ” अवे। ख्याल करी “ सव्वे पाणा पियाउया सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविउं न मरिज्जिउं ” आ अधाने अक साथे न ओलवुं. आ अधाने अक साथे ओलवाभां मिलित दोष अे भाटे आवे छे डे,

अत्र न ज्ञायते सकलसाधारणश्रोतृभिः, यदिदं कालिकमुत्कालिकं वा । यथा वा-सामायिकपदे दशवैकालिकोत्तराध्ययनभृतीनामनेकानि पदानि मीलयति ।

३ व्याविद्धाक्षरम्—व्याविद्धाक्षरं, विपर्यस्तरत्नमालागतरत्नानीव विद्धानि विपर्यस्तान्यक्षराणि यत्र तत् । यथा—‘धम्मो मंगल’ इत्यत्र ‘लगमंम्मोध’ इत्युच्चारणम् ।

४ हीनाक्षरम्-अक्षरैर्हीनम् । यथा—‘नमो अरिहंताणं’ इत्यत्र ‘नमो अरिहंता’ इत्युच्चारणम् ।

५ अधिकाक्षरं—स्वबुद्ध्याऽधिकाक्षरयोजनं यत्र तत् । यथा—‘धम्मो मंगल मुक्किटं’ अत्र—‘धम्मो मंगलमुक्किटं नरगं’ इत्युच्चारणम् । हीनाक्षरे अधिकाक्षरे वा

सर्वसाधारण श्रोताजन यह नहीं समझ सकते कि यह कालिक है अथवा उत्कालिक है । अथवा-जो उच्चारण सामायिक पद में दशवैकालिक उत्तराध्ययन आदिके अनेक पदों को मिला देता है वहां पर भी यह दोष होता है ॥ २ ॥ व्याविद्धाक्षरम्-जिस उच्चारण में उल्टे उल्टे कर अक्षर बोले जावें वहां व्याविद्धाक्षर नामका दोष होता है-जैसे-धम्मो मंगलं ऐसा न बोलकर “लंगमंम्मोध” ऐसा उच्चारण करना ॥३॥ हीनाक्षरम्-जैसा सूत्र हो वैसा उच्चारण न करना-हीनाक्षर दोष है । जैसे-“णमो अरिहंताणं” की जगह “णमो अरिहंता” ऐसा बोलना ॥४॥ अधिकाक्षर-जिस उच्चारण में अधिक अक्षर उच्चरित हों वहां अधिकाक्षर नामका दोष जानना चाहिये, जैसे-धम्मो मंगलमुक्किटं” बोलते समय धम्मो मंगलमुक्किटं नरगं” ऐसा अधिक “नरगं” अक्षर का उच्चारण करना । हीनाक्षर एवं अधिकाक्षर, ये दोनों दोष उच्चारण के

सर्व साधारण श्रोताजन ये नहीं समझ सकते हैं, या कालिक है या उत्कालिक है । ये उच्चारण सामायिक पदों में दशवैकालिक उत्तराध्ययन आदिना अनेक पदों को मिला देता है वहां पर भी यह दोष होता है ॥ २ ॥

(२) व्याविद्धाक्षरम्—ये उच्चारणों में उल्टी उल्टी अक्षर जोड़ने में आवे ल्यां ‘व्याविद्धाक्षर’ नामको दोष होने से । जैसे धम्मो मंगलं एवुं न जोड़ने लंगमंम्मोध एवुं उच्चारण करवुं ।

(३) हीनाक्षरम्—जैसा सूत्र होय ते प्रमाणे उच्चारण न करवुं अर्थात् जो अक्षरों को उच्चारण करवुं—‘हीनाक्षर’ दोष है, जैसे—“णमो अरिहंताणं” नी जगह “णमो अरिहंता” एवुं जोड़वुं ।

(४) अधिकाक्षरम्—ये उच्चारणों में वधु अक्षर उच्चारण में आवे ल्यां अधिकाक्षर नामको दोष जानवुं । जैसे “धम्मो मंगल मुक्किटं” बोलते वधु “धम्मो मंगल मुक्किटं नरगं” एवुं “नरगं” का वधु अक्षर उच्चारण करवुं । हीनाक्षर एवं अधिकाक्षर, ये दोनों दोष उच्चारणों में

उच्चारिते सति-अर्थस्य विसंवादः, अर्थस्य विसंवादे चरणस्य विसंवादः, चरण-विसंवादान्न मोक्षः, मोक्षाभावे सर्वा दीक्षा निरर्थिका ।

६ व्यत्यात्रेडितं—नाम अन्यान्यशास्त्रपल्लवविमिश्रणं, यथा—‘सर्वभूयष्प-भूयस्स सम्मं भूयाई पासओ । पिहियासवस्स दंतस्स, पावकम्मं न बंधई ॥’

अत्रेदमपि-घटते इति कृत्वा क्षिपति—अन्यशास्त्रवचनम्—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।

आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥

इसलिये माने जाते हैं कि सूत्र में हीनाक्षर अथवा अधिकाक्षर उच्चरित होने पर उसके अर्थ में विसंवाद (विपरीतता) होता है। अर्थ में विसंवाद जहां हुआ कि चरण-आचार-चारित्र में भी विसंवाद होने लगता है। इससे मोक्ष का लाभ नहीं हो सकता। मोक्ष के अभाव में समस्त दीक्षा निरर्थक हो जाती है ॥ ५ ॥ व्यत्यात्रेडित-भिन्न २ शास्त्रों के पल्लव (अंश) का जिस उच्चारण में मिश्रण होता है वहां व्यत्यात्रेडित दोष माना जाता है। जैसे—“सर्वभूयष्पभूयस्स सम्मं भूयाई पासओ । पिहियासवस्स दंतस्स पावकम्मं न बंधई”—यहां यह भी घटित होता है ऐसा समझकर अन्य शास्त्र का वचन मिलाना, जैसे—

“श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ॥

आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥१॥”

महाभारत के इस वाक्य को मिश्रित करना। यह व्यत्यात्रेडित दोष इस लिये माना गया है कि उच्चारण करने वाला द्रव्य एवं भाव से जब सूत्र

अे भाटे मानवामां आवेल छे के सूत्रमां हीनाक्षर अथवा अधिकाक्षर उच्चारवार्थी अेना अर्थमां विसंवाद थाय छे. विपरीत अर्थमां विसंवाद न्यां थये के, अरण्य-आचार आरित्रमां पणु विसंवाद थवा लागे छे अेथी मोक्षनो लाल थर्थ शकतो नथी. मोक्षना अलावथी समस्त दीक्षा निरर्थक थर्थ नय छे.

(५) व्यत्यात्रेडित जुहा जुहा शास्त्रोना पदलवनुं अे उच्चारणमां मिश्रण थाय छे त्यां “व्यत्यात्रेडित” दोष मानवामां आवे छे. अेम सर्वभूयष्पभूयस्स सम्मं भूयाई पासओ ” “पिहियासवस्स दंतस्स पावकम्मं न बंधई” अडिं अे पणु घटित थाय छे अेम समल्ल थील शास्त्रनुं वचन भेणववुं अेम—

“श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यतां ॥

आत्मनः प्रति कूलानि परेषां न समाचरेत् ॥१॥

महाभारतना आ वाक्यने भेणववुं, आ “व्यत्यात्रेडित” दोष अे भाटे मानवामां आवेल छे के, उच्चारण कर्वावाणा द्रव्य अने लावथी न्यारे सूत्रमां व्यत्यात्रेडित थवार्थी अेना अर्थमां स्वभावतः

द्रव्यभावतो व्यत्यात्रेडितं सूत्रे कुर्वतोऽर्थस्य विसंवादः इत्यादि विवक्षा प्रागिव, यया दीक्षा निरर्थिका ।

७ अपरिपूर्णं—मात्राभिः, पदै श्रणै बिन्दुभि वर्णैश्च । मात्राभिरपरिपूर्णं ' धम्म मंगलमुक्किट्टं ' । पदैरपरिपूर्णं—यथा—“ धम्मं उक्किट्टं ” । चरणैरपरिपूर्णं—यथा— ' धम्मो मंगलमुक्किट्टं ' इत्यादि गाथायां कमपि चरणं परित्यज्य पठनम् । बिन्दु-भिरपरिपूर्णं—यथा ' धम्मो मंगलमुक्किट्टं ' इति । वर्णैरपरिपूर्णं यथा—' धम्मो ल उक्किट्टं ' इत्यादि । मात्राभिः पदैश्रणैर्बिन्दुभिर्वर्णैरपरिपूर्णं उच्चारिते तदेव प्रायश्चित्तं त एव दोषाश्च भवन्ति ।

में व्यत्यात्रेडित कर देता है तब उसके अर्थ में स्वभावतः विसंवाद होने लगता है और इससे जो हानि होती है यह अधिकाक्षर तथा हीनाक्षर के दोष के स्वरूपनिरूपण में बता चुके हैं ॥ ६ ॥ अपरिपूर्ण—जहां मात्राओं से, पदों से, चरणों से, बिन्दुओं से, वर्णों से अपरिपूर्णता होती है वहां अपरिपूर्ण दोष माना जाता है, जैसे “ धम्मो मंगलमुक्किट्टं ” की जगह “ धम्ममंगलमुक्किट्टं ” इस प्रकार “ ओकार ” की मात्रा हीन कर पढ़ना । “ धम्मं उक्किट्टं ” ऐसा मंगलपद हीन कर पढ़ना । किसी चरण को—पाद को—हीन कर पढ़ना, किसी बिन्दु को हीन कर पढ़ना, किसी वर्ण को हीन कर पढ़ना सो क्रमशः मात्रा आदिकों से अपरिपूर्ण दोष माना गया है । इस प्रकार के उच्चारण करने पर एक तो आगम की आशातना होने से प्रायश्चित्त का भागी होना पड़ता है दूसरे विसंवादादि अनेक अनर्थ उत्पन्न हो जाते हैं । इससे जीव को मुक्ति का लाभ नहीं हो सकता है । तथा दीक्षा में निरर्थकता की प्रसक्ति का प्रसंग प्राप्त होता है ॥ ७ ॥

विसंवाद थवा लागे छे अने अर्थी ने हानी थाय छे ते अधिकाक्षर तथा हिनाक्षरना दोषना निरूपणमां अताववामां आवेल छे.

(६) अपरिपूर्णं न्यां मात्राअर्थी पदोर्थी, चरणोर्थी, बिन्दुअर्थी, वर्णोर्थी, अपरिपूर्णता होय छे त्यां ' अपरिपूर्णं ' दोष मानवामां आवे छे. “ धम्मो मंगल मुक्किट्टं ” नी अन्त्याये धम्ममंगलमुक्किट्टं आ रीते, ओकार'नी मात्रा हीन करी वांचवुं, “ धम्मं उक्किट्टं ” अथे मंगल पद हीन करी वांचवुं, केअ वणुंने हीन करी वांचवुं ते क्रमशः मात्रा आदिथी अपरिपूर्णं दोष मानवामां आवेल छे. आ प्रकारनुं उच्चारण करवाथी अेक तो आगमनी आशातना थवाथी प्रायश्चित्तना लागी थवुं पडे छे अीणुं विसंवादादि धणु अन्थं उत्पन्न थाय छे, अर्थी अणुने मुक्तिने लाल मणी शकते नथी. अर्थी दीक्षामां निरर्थकतानी प्रसक्तिने प्रसंग प्राप्त थाय छे.



૮ અપરિપૂર્ણઘોષમ્—ઘોષૈરેવાપરિપૂર્ણ નાક્ષરાદિભિઃ, ઘોષા-ઉદાત્તાદયઃ । તત્ર-ઉચ્ચૈરુદાત્તઃ, નીચૈરનુદાત્તઃ, સમાહારઃ સ્વરિતઃ । ઉચ્ચૈઃશબ્દેન યથા—“ ઉપ્પન્નેહ વા વિગમેહ વા, ધ્રુવેહ વા ” ઇત્યાદિ । નીચૈઃશબ્દેન યથા—“ જે ભિક્ષૂ વા ભિક્ષુણી વા ” ઇત્યાદિ । અત્ર ઘોષૈરયુક્તમુચ્ચારણં કુર્વતસ્તદેવ પ્રાયશ્ચિત્તં ત ઇવ ચ દોષાઃ ।

૯ અકળ્ઠૌષ્ટવિપ્રમુક્તમ્—કળ્ઠૌષ્ટેન વિપ્રમુક્તં—વ્યક્તં—સુસ્પષ્ટં યન્ન ભવતિ, બાલમૂકભાષિતવદવ્યક્તમિત્યર્થઃ ।

૧૦ અગુરુવાચનોપગતમ્, ગુરુપદત્તયા વાચનયા યન્ન પ્રાપ્તં તત્ ॥

॥ ઇતિ ષષ્ઠં દ્વાસમ્ ॥

અપરિપૂર્ણઘોષ-ઘોષોં સે અર્થાત્-ઉદાત્તાદિક સ્વરોં સે-જો અપરિપૂર્ણ હોતા હૈ વહાં અપરિપૂર્ણઘોષ નામ કા દોષ આતા હૈ । જો ઊંચે સ્વર સે બોલા જાય ઉસકા નામ ઉદાત્ત, નીચે સ્વર સે જો બોલા જાય ઉસકા નામ અનુદાત્ત, તથા જો ન અધિક ઊંચે સ્વર ઓર ન અધિક નીચે સ્વર સે કિન્તુ મધ્યમ સ્વર સે બોલા જાય ઉસકા નામ સ્વરિત હૈ । જૈસે-“ ઉપ્પન્નેહ વા, વિગમેહ વા, ધ્રુવેહ વા, ” ઇત્યાદિ ઊંચે સ્વર સે બોલે જાતે હૈ । નીચે સ્વર સે જૈસે-“ જે ભિક્ષૂ વા ભિક્ષુણી વા ” ઇત્યાદિ સૂત્ર નીચે સ્વર સે બોલા જાતા હૈ । ઇસ કો દોષ ઇસલિયે માના હૈ કિ ઘોષોં સે અયુક્ત ઉચ્ચારણ કરને વાલે કો આગમ કી આશાતનાજન્ય દોષ કા ભાગી હોને સે પ્રાયશ્ચિત્ત કા ભાગી હોના પડ્ઠતા હૈ ॥ ૮ ॥ અકળ્ઠૌષ્ટવિપ્રમુક્ત-બાલમૂકાદિક કે બોલને કી તરહ જો ઉચ્ચારણ વ્યક્ત-સ્પષ્ટ નહીં હોતા હૈ વહ અકળ્ઠૌષ્ટવિપ્રમુક્ત દોષ હૈ ॥ ૯ ॥ અગુરુવાચનોપગતદોષ-ગુરુપદત્ત

(૭) અપરિપૂર્ણઘોષ—ઘોષોથી-અર્થાત્ ઉદાત્તાદિક સ્વરોથી-જે અપરિપૂર્ણ હોય છે, ત્યાં ‘અપરિપૂર્ણઘોષ’ નામનો દોષ લાગે છે, જે ઉંચા સ્વરથી બોલાય તેનું નામ ઉદાત્ત, નીચા સ્વરથી બોલાય એનું નામ અનુદાત્ત તથા જે ન તો ઘણા ઉંચા સ્વરથી કે ન તો ઘણા નીચા સ્વરથી પરંતુ મધ્યમ સ્વરથી બોલાય એનું નામ સ્વરિત છે. જેમ-“ ઉપ્પન્નેહ વા, વિગમેહ વા, ધ્રુવેહ વા, ” ઇત્યાદિ ઉંચા સ્વરથી બોલાય છે. નીચા શબ્દથી જેમ-“ જેભિક્ષૂ વા ભિક્ષુણી વા ” ઇત્યાદિ સૂત્ર નીચા સ્વરથી બોલાય છે. આનો દોષ એ માટે માનવામાં આવેલ છે કે, ઘોષોથી અયુક્ત ઉચ્ચારણ કરવાવાળાએ આગમની આશાતના જન્ય દોષના ભાગી બનવાથી પ્રાયશ્ચિત્તના ભાગી બનવું પડે છે. (૮) અકળ્ઠૌષ્ટ વિપ્રમુક્ત-બાલ મૂકાદિકના બોલવાની રીતે જે ઉચ્ચારણ સ્પષ્ટ વ્યક્ત થતું નથી તે અકળ્ઠૌષ્ટ વિપ્રમુક્ત દોષ છે. (૯) અગુરુ વાચનોપગત દોષ-ગુરુ પ્રદત્ત વાચ-



अथ वाचनानामकं सप्तमं द्वारम्—

अथ वाचनाविधिरुच्यते—तत्रैवं वाचनाशब्दार्थः—वाचयतीति वाचना—पाठना, शिष्याय सूत्रादिदानं । ननु वाचनायाः किं फलम् ? वाचनया जीवो निर्जरां जनयति श्रुतस्य चानाशातनायां प्रवर्तते, तत्र च प्रवर्तमानो जीवः श्रुतप्रदानरूपं तीर्थधर्ममवलम्बते, एवं तीर्थधर्ममाश्रयन् कृत्स्नकर्मक्षपणेन महानिर्जरावान् भवति । ततो मुक्तिप्राप्त्या तस्य सर्वथा भवपर्यवसानं भवति । वाचनादानग्रहणविधिस्त्वेवम्—

उवविसइ उवज्जाओ, सीसा विअरंति वंदणं तस्स ।

सो तेसिं सव्वसमयं, वायइ सामइयप्पमुहं ॥ १ ॥

वाचना से जो विहीन होता है, अर्थात्—गुरुप्रदत्त वाचना से जो प्राप्त नहीं होता है वह अगुरुवाचनोपगत दोष है ॥ १० ॥

॥ यह छद्दा द्वार हुआ ॥ ६ ॥

सातवां वाचनाद्वार कहते हैं—

अब वाचना की विधि बतलाते हैं—शिष्य को सूत्रादिक का देना-पढाना यह वाचना है । सूत्र की वाचना से कर्मों की निर्जरा होती है तथा उसकी अनाशातना में प्रवृत्ति होती है । उस वाचना में लगा हुआ जीव श्रुतप्रदानरूप तीर्थधर्म का आधार होता है । तीर्थधर्म का आधार होने से वह जीव समस्त कर्मों के क्षपण से महानिर्जरावाला होता है । महानिर्जरावाला होने से मुक्ति की प्राप्ति द्वारा उसके सर्वथा भव का क्षय हो जाता है । वाचना के देने की एवं उसके ग्रहण करने की विधि इस प्रकार है—

नाथी ने विहिन होय छे, अर्थात्—शुद्धप्रदत्त वाचनाथी ने प्राप्त थयेल नथी होतु. ते अशुद्ध वाचनोपगत दोष छे. (१०)

आ छद्दुं द्वार थयुं

सातमुं वाचनाद्वार कडेवाभां आवे छे.—

डवे वाचनानी विधि यताववाभां आवे छे—शिष्यने सूत्रादिक लघुवावा-समजववां जे वाचना छे. सूत्रनी वाचनाथी कर्मोनी निर्जरा थाय छे, तथा तेना अनाशातनानी प्रवृत्ति थाय छे. जे वाचनाभां लागेल लुव श्रुतप्रदानरूप तीर्थ धर्मना आधार अने छे, तीर्थ धर्मना आधार थवाथी ते लुव समस्त कर्मोना क्षपणथी महानिर्जरावाणा थाय छे. महानिर्जरावाणा थवाथी भूडितनी प्राप्ति द्वारा जेने लुवन भरणुना इशानो लय मरी जय छे.

उ० २२

छाया—उपविशति उपाध्यायः, शिष्या वितरन्ति वन्दनं तस्मै ।

स तेभ्यः सर्वसमयं, वाचयति सामायिकप्रमुखम् ॥ १ ॥

वाचना—त्रिविधा भवति—उपदेशः, स्मारणा, प्रतिस्मारणा च । ये खलु गृहीत-सामाचारीकाः शिष्यास्तेभ्य सूत्रार्थवाचना दातव्या । तेषां सामाचारीकरणे प्रमादं कुर्वतां क्रमेण उपदेशः, स्मारणा, प्रतिस्मारणा च करणीया । तत्र गुरुस्तान् प्रति वदति—“ मुनीनामेषा सामाचारी यन्निद्राविकथादयः प्रमादाः परिहर्तव्याः ” एष उपदेशः ।

“ उवविसइ उवज्जाओ, सीसा वियरंति वदणं तस्स ।

सो तेसिं सव्वसमयं, वायइ सामाइयप्पमुह ॥ वाचना देने वाला उपाध्याय अपने आसन पर विराजमान जब हो जाय तब वाचना लेने वाला शिष्य सर्वप्रथम उन्हें वंदना करे । फिर बाद में उनसे सामायिक आदि सर्व सूत्रों की वाचना लेवे । उपदेश १, स्मरणा २ एवं प्रति-स्मारणा ३ के भेद से वाचना ३ प्रकार की है । जिन शिष्यों ने सामा-चारी को ग्रहण कर लिया है उन शिष्यों को सूत्रार्थ की वाचना देना चाहिये । वे यदि सामाचारी के आचरण करने में प्रमाद करें तो गुरु का कर्तव्य है कि वे उन्हें क्रम से उपदेश, स्मारणा एवं प्रतिस्मारणा रूप वाचना दें । उसमें वे उसे यह समझावे कि देखो यही मुनियों की सामाचारी-आचार है कि वे सर्वप्रथम निद्रा विकथा आदि प्रमादों को दूर करें । यह उपदेश हैं । निद्रारूप प्रमाद में पड़ा हुआ शिष्य यदि

वाचना हेवानी अने तेने अइणु करवानी विधि आ प्रकारे छे—

उवविसइ उवज्जाओ, सीसा विअरंति वंदणं तस्स ।

सो तेसिं सव्वसमयं वायइ सामाइयप्पमुहं ॥

वाचना आपवावाणा उपाध्याय न्यारे पोताना आसन उपर विराजमान थई जय त्यारे वाचना देवावाणा शिष्य सर्व प्रथम अेभने वंदना करे अने पछी तेभनी पासैथी सामायिक आदि सर्व सूत्रोनी वाचना ले. उपदेश, स्मारणा अने प्रति स्मारणा ना त्रणे लेदथी वाचना त्रणु प्रकारनी छे. जे शिष्योअे समाचारीने अइणु करी दीधेल डोय ते शिष्योने सूत्रार्थनी वाचना हेवी जेईअे. ते कही सामाचारीनुं आचरणु करवाभां प्रमाद करे तो शुइनुं कर्तव्य छे के ते अेने कुभथी उपदेश, स्मारणा, अने प्रति स्मारणा इप वाचना आपे. अेभां तेअो शिष्यने अे समज्जावे के, लुअो आज मुनियोनी समा-चारी आचार छे के जे सर्व प्रथम निद्रा, विकथा आदि प्रमादोने दूर करे आ

निद्रारूपे प्रमादे, अप्रतिलेखने दुष्प्रतिलेखनादौ च सकृत् स्वलितस्य स्म-  
रणा कर्तव्या भवति । यथा—“ भो आयुष्मन् ! प्रमादो वर्जनीयः ” इति पूर्वमेवा-  
स्माभिः कथितम्, अतः प्रमादं मा कुरु तपःसंयमं च समाराधय, इत्येषा स्मारणा ।  
अथ प्रतिस्मारणा—

पुनः पुनः सामाचार्यां प्रमादं कुर्वन् शिष्यः पुनर्गुरुणा बोधनीयः—“ वत्स ! मा  
प्रमाद्यताम्, तपःसंयमाराधनं क्रियताम् ” । इत्येषा प्रतिस्मारणा ।

इत्थमुक्तोऽपि यदि प्रमाद्यति, तदा दण्डना—लघुप्रायश्चित्तरूपा कर्तव्या ।

प्रतिलेखना नहीं करे अथवा दुष्प्रतिलेखना आदि करता है उस समय  
उसे स्मारणा वाचना देनी चाहिये, इसमें उसे यह समझाना चाहिये  
कि है आयुष्मन् ! तुम्हें यह पहिले बतला दिया गया है कि प्रमाद  
वर्जनीय है । इसलिये इस बात का ख्याल करो, और प्रमाद का आसे-  
वन मत करो. तथा तप एवं संयम की अच्छी तरह आराधना करो,  
इसका नाम स्मारणा है । प्रतिस्मरणा वाचना शिष्य को उस समय दी  
जाती है जब शिष्य अपनी समाचारी में बार २ प्रमाद करता है । उस  
समय उसे यही समझाया जाता है कि हे वत्स ! देखो यह प्रमाद  
ठीक नहीं है, इससे तप एवं संयम की आराधना ठीक २ नहीं होती है ।  
तुम्हें बार बार यह समझा दिया गया है अतः इसका परित्याग कर तप  
एवं संयम की आराधना करो । इसी में आत्मा की भलाई है, इसका  
नाम प्रतिस्मारणा है । अब दण्डना कहते हैं—इस प्रकार उपदेश, स्मारणा,

उपदेश छे. निद्रारूप प्रमादमां पडेल शिष्य जे प्रतिदोषना न करे अथवा दुष्प्र-  
तिलेखना आदि करतो होयतो जे समये जेने स्मारणा वाचना आपवी जेधजे  
जेमां जेने जे समजवपुं जेधजे के आयुष्मन् ! तमने जे पडेतुं भताव-  
वामां आवेल छे के, प्रमाद छोडवा योग्य छे, जेथी जे वातना ज्याल करे ने  
प्रमादना ज्याल न करे, तथा तप जेने संयमनी सारी रीते आराधना करे.  
आनुं नाम स्मारणा छे. प्रतिस्मारणा वाचना शिष्यने ते समये आपवामां आवे  
छे ज्यारे शिष्य पोतानी सामाचारीमां वारंवार प्रमाद करे छे. ते समये  
तेने जेपुं समजवाय छे के हे वत्स जेजो आ प्रमाद करवे। ठीक नथी तेनाथी  
तप जेने संयमनी आराधना सारी रीते थती नथी तमने वजतौ वजत जे  
समजववामां आवेल छे, माटे तेना परित्याग करी संयम जेने तपनी आरा-  
धना करे. तेमां आत्मानी ललाध छे, तेनुं नाम प्रति स्मारणा छे. हुवे  
दंडना कडे छे—आ प्रकारने उपदेश स्मारणा, प्रतिस्मारणा इप त्रषु प्रका-

ततोऽपि यदि प्रमाद्यति तर्हि मासलघुप्रायश्चित्तरूपा दण्डना कर्त्तव्या । इत्थं दण्डितोऽपि यदि प्रमादान्न विरमते तदा कुङ्कुमदृष्टान्तो वक्तव्यः । यथा—अतीव पिष्टं कुङ्कुमं 'केसर' इति भाषाप्रसिद्धं पाषाणमिव कठोरं न भवति, भवान् महता प्रयासेन प्रतिनोद्यमानः कथं प्रमत्तः संवृत्तः । अत्र मासलघु दीयते ।

वारत्रयादूर्ध्वं यदि प्रमादतो न निवर्तते तदा निष्कासना कर्त्तव्या । अथासौ स्वयं परेण वा प्रज्ञापितः सन् पुनरागत्य प्रमादात् प्रतिनिवृत्तो वदति—भगवन् ! क्षमस्व मदीयमपराधनिकुरम्बम्, न पुनरेवं करिष्यामीति । तदा गुरुरेवं वदेत्—यथा प्रतिस्मारणारूप तीन प्रकार की वाचना के देने पर भी यदि शिष्य प्रमादपतित होता है, तो उसे एक मास का लघु प्रायश्चित्त देना चाहिये । उस समय उससे यह कहना चाहिये कि देखो केशर जब बार २ रगड़ कर पीसी जाती है तो वह भी पाषाण जैसी कठोर नहीं रहती है किन्तु इकदम नरम पड़ जाती है परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि तुम्हें बार २ समझाया जाता है फिर भी तुम प्रमाद को नहीं छोड़ते हो । क्या बात है पता नहीं पड़ता कि तुम प्रमादी क्यों बन रहे हो ॥

आचार्य तथा अन्य मुनि द्वारा तीन वार समझाने पर भी यदि शिष्य प्रमाद से पीछे नहीं हटता है, उस समय उसे संघ से बाहर करने रूप दण्ड देना चाहिये । उस समय यदि दूसरों के द्वारा समझाये जाने पर अथवा अपनी गलती अपने आप स्वीकार करने पर यह ऐसा गुरु महाराज के समक्ष कहे कि हे गुरु महाराज ! मेरे अभीतक के समस्त अपराध आप क्षमा करें, अब आगे ऐसा नहीं करने का भाव

रनी वाचना देवा छतां पणु जे शिष्य प्रमाद वश अने, तो तेने अेक मासनुं लघु प्रायश्चित देवुं जेध अे. ते समय तेने अेवुं कडेवुं जेध अे के, केशर ने वारवार धुंटाध धुंटाधने पीसवामां आवे छे, तो पणु पत्थरनी भाइक कठोर नडि अनतां वधु ने वधु नरम अने छे. धणु जे आश्चर्यनी वात छे के, तमने वारवार समजववा छतां पणु तमे प्रमादने छोडता नथी. कथुं कारणु छे ते समजतुं नथी के तमे तमारो प्रमाद छोडता नथी. आचार्य तथा अन्य मुनिद्वारा त्रणुवार समजववा छतां पणु जे शिष्य प्रमादथी पाछे न छटे तो तेने ते समये संघनी भडार करवाइप दंड देवो जेध अे. ते समय कदाय भीजअे द्वारा समजववार्थी अथवा पोतानी भूल पोते जे स्वीकारने ते शुइ भडाराज समक्ष अेवुं कडे के, छे गुरु महाराज ! मारा आज सुधीना अधा अपराध आप भाइ करे, छेवे आगण हुं आवुं नडिं करे. ते समये

ताम्बूलपत्रं कुथितं न परित्यज्यते चेत्, तर्हि शेषाण्यपि पत्राणि तत् कोथयति । एवं त्वमपि स्वयं विनष्टो मम अन्यानपि साधून् विनाशयिष्यसीति कृत्वा निष्कासितोऽस्माभिः । संप्रति पुनरप्रमत्तेन भवितव्यम्, मासगुरु च ते प्रायश्चित्तम् ।

अत्र राजदृष्टान्तो वर्णनीयः ।

कस्यचिद् राज्ञोऽक्षिरोगः संजातः । तत्रत्यवैद्यास्तच्चिकित्सां कर्तुमशक्ता अभूवन् । अन्यश्च कश्चिदागन्तुको वैद्यस्तत्रागत्याह—ममाग्निगुटिकास्तु अक्षिरोगप्रशमन्यः । ताभिरञ्जितेषु अग्निषु तीव्रतरा दुःसहा वेदना भवति । सा तु मुहूर्तमात्रम् ।

है, उस समय गुरु महाराज उससे ऐसा कहें कि देखो, पान सड़ जाने पर यदि बाहर निकाल कर न फेंक दिया जाय तो वह जैसे अन्य पानों को सड़ा कर बिगाड़ देता है, उसी प्रकार तुम भी स्वयं विनष्ट होकर मेरे संघ के अन्य साधुओं को विनष्ट कर दोगे इस ख्याल से हम तुम्हें संघ से बाहर कर रहे हैं । यदि आगे ऐसा नहीं करोगे तो संघ में रख लिये जाते है । इसलिये जाओ १ मास का यह तुम्हें गुरु प्रायश्चित्त दिया जाता है । इस विषय में एक राजा का दृष्टान्त इस प्रकार है—

किसी एक राजा को आंखों में रोग हो गया । नगर भर में जितने वैद्य थे उन सब ने खूब यत्नपूर्वक इलाज किया, परंतु उनके इलाज से राजा की आंखों का रोग शमित नहीं हुआ । एक समय वहां बाहर गांव का एक वैद्य आया । उसने नरेश के पास जाकर कहा कि महाराज ! हमारे पास ऐसी गोलियां हैं जो आंखों में आंजने पर बिलकुल रोग को नष्ट कर देती हैं । परन्तु उनके आंजने पर १ मुहूर्त तक बड़ी दुःसह

शुरुभडारान् तेने अेषुं कडे के जुओ पान सडी ज्वाथी भडार काढी ईंकी देवामां न आवे तो ते जेम भील पानने सडावी भगाडी हे छे. ते ज् रीते तमे पषु स्वयं विनिष्ट भनी मारा संघना भील साधुओने पषु विनिष्ट भनावी देशो. आ भ्यालथी तमने संघथी भडार करवामां आवे छे. कदाय आगण अेषुं नही करे तो संघमां राभवामां आवशे. आ माटे तमने अेक भडिनातुं शु३ प्रायश्चित्त आपवामां आवे छे.

आ विषयमां अेक राजनेा दाभलो आ प्रकारे छे.—

काध अेक राजनी आंभमां रोग थयो, शडेरमां जेटला वैद्य हुता ते सघणाथी भूभ प्रयत्न पुर्वक धलाज करवामां आंथे परंतु तेओना धलाजथी राजनी आंभेनेा रोग भटयो नही. अेक समये त्यां भडार गामनेा अेक वैद्य आंथे तेओ राजनी पासे पडोंथी कहुं के, भडारान् ! मारी पासे अेवी गोणीओ छे, जे आंभेमां आंजवाथी रोगने भीलकुल भटाडे छे परंतु तेने आंजवाथी

यदि वेदनायां सत्यां मां प्राणदण्डं कर्तुं कर्मचारिभ्य आज्ञां न ददासि, तर्हि तवाक्षिणी अज्ञयामि । राज्ञा कथितम्—नाहं तव प्राणदण्डं कर्तुमाज्ञापयिष्यामि । तदा राज्ञोऽक्षणोरञ्जनं वैद्यः कृतवान् । अञ्जितयोरक्षणोस्तीव्रतरा वेदना जाता । तदा राज्ञा निगदितम्—‘अनेनाक्षिणी मम पीडिते, अत एनं मारय ’ इत्याज्ञां स्वकर्मचारिणः प्रति दत्तवान् । तैः कर्मचारिभिस्तस्य राज्ञो हितकरं विज्ञाय वैद्यः प्रच्छन्नः स्थापितः । मुहूर्तान्तरेण राज्ञो वेदना उपशान्ताः, अक्षिणी रोगरहिते दिव्ये दिव्यज्योतिष्मती संजाते । तदा राज्ञा वैद्यः स्मृतः । राजकर्मचारिभिरानीय समर्पितो वैद्यः सत्कारितः संमानितश्च । यथा तस्य राज्ञस्तत्कालदुःसहमपि गुटिकाञ्जनं क्रमेण चक्षुषो नैरुज्यकरणात् परिणामसुन्दरं समजनि, एवं भवतामपि स्मारणादिकं खरपीडा होती है । यदि आप वेदना होने पर अपने कर्मचारियों को मुझे प्राणदण्ड देने की आज्ञा न करे तो मैं आपकी आंखों में उन गोलियों को आंज सकता हूँ । राजाने वैद्य की बात सुन कर उसे अभय करने का वचन दे दिया । वैद्य ने भी गोलियों को घिस कर राजा की आंखों में आंज दिया । आंजते ही राजा की आंखों में तीव्रतर दुःसह वेदना होने लगी । उस वेदना से पीडित होकर राजा ने उसे मारने की आज्ञा दे दी । कर्मचारियों ने उसे राजा का हितकारी मान कर एक जगह छिपा दिया और मारा नहीं । कुछ समय के बाद वेदना शांत हो गई और आंखें रोग रहित हो गईं । राजा ने प्रसन्न होकर उस वैद्य को याद किया तब कर्मचारियों ने उस वैद्य को लाकर हाजर किया । राजा ने उसको खूब आदर सत्कार करके विसर्जित किया । मतलब इस दृष्टान्त का यह है कि जिस प्रकार उस राजा के लिये दुःसह भी

એક ઘડી સુધી ઘણી જ અસહ્ય વેદના થાય છે. વેદના થવાથી આપ આપના કર્મચારીઓ દ્વારા મને પ્રાણદંડ દેવાની આજ્ઞા ન કરો તો હું આપની આંખોમાં એ ગોળીઓ આંજવા ઇચ્છું છું. રાજાએ વેદની વાત સાંભળીને તેને અભય કરવાનું વચન આપ્યું. વૈદ્યે પણ ગોળીઓને ઘસીને રાજાની આંખમાં આંજી દીધી આંજતાં જ રાજાની આંખોમાં તીવ્રતર દુઃસહ વેદના થવા લાગી, આ વેદનાથી વ્યાકુળ બની રાજાએ તેને મારવાની આજ્ઞા આપી. કર્મચારીઓએ તેને રાજાનો હિતકારી માની એક જગ્યાએ છુપાવી દીધો અને માર્યો નહીં. થોડા સમય પછી વેદના શાન્ત થઇ અને આંખો રોગ રહિત બની. રાજાએ પ્રસન્ન થઇને તે વૈદ્યને યાદ કર્યો ત્યારે કર્મચારીઓએ તે વૈદ્યને લાવીને હાજર કર્યો. રાજાએ તેનો ખૂબ આદરસત્કાર કરીને વિદાય આપી. આ દૃષ્ટાંતનો સાર એ છેકે, રાજા માટે દુઃસહ એવી આંખોની પીડાનું ગુટિકાના અંજનથી શમન થયું.



પરુષત્વાત્ યદ્યપ્યાપાતમાત્રદુઃસ્વજનકં તથાપિ પરિણામસુન્દરમેવ દ્રષ્ટવ્યમ્, ઇહ પરત્ર ચ સકલકલ્યાણપરંપરાકારણત્વાદિતિ ।

॥ ઇતિ સપ્તમં વાચનાદ્વારમ્ ॥

સૂત્રાર્થયોઃ પૌર્વાપર્યનિરૂપણનામકમષ્ટમંદ્વારમ્—

અથ પૂર્વં સૂત્રમ્ અર્થો વા ? ઇતિ નિરૂપ્યતે—ઉત્પાદવ્યયઘ્રૌવ્યલક્ષણોઽર્થસ્તીર્થ-  
કૈઃ પૂર્વમુક્તઃ, પશ્ચાત્ તમેવાર્થં હૃદયે નિધાય ગણધરાઃ સૂત્રં રચન્તિ, તસ્માદર્થતઃ  
પશ્ચાદ્ભાવિ સૂત્રમ્, ઇતિ સિદ્ધાન્તઃ । અત એવ સૂત્રમ્ અણુ-લઘુ ભવતિ, અર્થસ્તુ મહાન્,  
ગુટિકાંજન આંત્રો કી પીડા કા શમક હુઆ-પીડાજનક હોને પર મી  
પરિણામ મેં હિતવિધાયક હુઆ, ડસી પ્રકાર શિષ્યોં કો મી ગુરુ  
મહારાજ દ્વારા પ્રદત્ત સ્મારણાદિક તીવ્ર કઠોર હોને પર મી આયતિ-  
(ઉત્તરકાલ) સુખ કારક હોને સે એકાન્ત હિતવિધાયક હી હોતે હૈં ।  
ક્યોં કિ ઇનસે ઇસ લોક મેં તથા પરલોક મેં આત્મા કા હિત હી હોતા  
હૈ અહિત નહીં ।

॥ સાતવાં દ્વાર સમાપ્ત હુઆ ॥ ૭ ॥

અવ આઠવાં દ્વાર કહતે હૈં—

સૂત્ર એવં અર્થ કે પૌર્વાપર્ય દ્વાર કા નિરૂપણ કરતે હૈં—

અવ યહાં યહ વતલાયા જાતા હૈ કિ પહિલે સૂત્ર હોતા હૈ કિ અર્થ  
હોતા હૈ । ઉત્પાદ, વ્યય, એવં ઘ્રૌવ્ય ઇસ લક્ષણ સે યુક્ત અર્થ-પદાર્થ  
હોતા હૈ । અર્થ કા યહ લક્ષણ તીર્થકર પ્રભુને કહા હૈ । ઇસી અર્થ  
કો હૃદય મેં અવઘૃત કર ગણધર દેવોં ને સૂત્રોં કી રચના કી હૈ । ઇસ-

પીડા આપનાર હોવા છતાં પણ પરિણામમાં હિતકારક પરિણામ આવ્યું.  
આ પ્રકાર શિષ્યોએ પણ ગુરુમહારાજ દ્વારા પ્રદત્ત સ્મારણાદિક તીવ્ર-કઠોર હોવા  
છતાં પણ અતે ગુણ કરનાર સુખકારક હોવાથી એકાન્ત હિતવિધાયક જ હોય  
છે કેમકે એનાથી આલોક તથા પરલોકમાં આત્માનું હિત થાય છે, અહિત નહીં

॥ સાતમું દ્વાર સમાપ્ત થયું ॥૭॥

હવે આઠમું દ્વાર કહેવામાં આવે છે—

સૂત્ર તથા અર્થના પૌર્વાપર્યદ્વારનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે.—

હવે અહિં એ બતાવવામાં આવે છે કે, પહેલાં સૂત્ર હોય છે કે અર્થ  
હોય છે. ઉત્પાદ, વ્યય, અને ઘ્રૌવ્ય આ લક્ષણથી યુક્ત અર્થ પદાર્થ બને છે.  
અર્થનું એ લક્ષણ તીર્થકર પ્રભુએ કહેલ છે તે અર્થને હૃદયમાં ધારણ કરીને  
ગણધર દેવોએ સૂત્રની રચના કરી છે. માટે અર્થની પાછળ સૂત્ર છે, એ સિદ્ધાંત

एकैकस्य सूत्रस्यार्थोऽनन्तः । स्तोक्तत्वात् पश्चादभिहितत्वाच्च सूत्रम् 'अणु' इत्युच्यते, तेन चाणुना सूत्रेण सहार्थस्य यः सम्बन्धो योगः स चानुयोग इत्युच्यते ।

ननु पूर्वमर्थः पश्चात् सूत्रमिति कथनमयुक्तम्, पूर्वं हि सूत्रं पश्चादर्थः, सूत्राभावे तु अर्थः कस्य स्यात् । लौकिका अप्येवमेव वदन्ति—आधारे सत्येवाधेयं तिष्ठतीति ।

यच्च सूत्रमणु, अर्थस्तु विस्तृत इति, तदप्ययुक्तम् ? एकस्यां हि पेटिकायां बहूनि वस्त्राणि सन्ति, तत्र पेटिकाया एव बादरत्वं युज्यते, तद्वशाद् बहूनि वस्त्राणि

लिये अर्थ के पश्चाद् सूत्र है यह सिद्धान्त निर्धारित हो जाता है । सूत्र अणु-लघु होता है । तथा—अर्थ सूत्र की अपेक्षा महान् होता है । एक २ सूत्र के अनन्त अर्थ होते हैं । सूत्र को अणु इसी अभिप्राय से कहा गया है कि एक तो वह अर्थ के पश्चाद् भावी है और दूसरे वह स्तोक अर्थात् छोटा होता है । उस अणु सूत्र के साथ अर्थ का जो योग है—संबंध है उसी का नाम अनुयोग है ।

प्रश्न—पहिले अर्थ होता है बाद में उसके सूत्र होता है यह कथन अयुक्त है । कारण कि सूत्र के बिना अर्थ नहीं हो सकता है । इसलिये ऐसा मानना चाहिये कि पहिले सूत्र होता है और बाद में अर्थ होता है । लौकिक जन भी यही कहते हुए पाये जाते हैं । सूत्र आधार है और अर्थ आधेय है । सूत्र में अर्थ रहता है अर्थ में सूत्र नहीं । आधार के होने पर ही आधेय रह सकता है अन्यथा नहीं । दूसरे—अर्थ की अपेक्षा जो सूत्र को अणु कहा गया है वह भी ठीक नहीं मालूम पड़ता । कारण कि देखा जाता है कि एक ही सन्दूक

निर्धारित अनी जाय छे. सूत्र अणुं—लघु डोय छे. तथा अर्थ सूत्रनी अपेक्षाथी महान् डोय छे, ओक ओक सूत्रना अनन्त अर्थ थाय छे. सूत्रने अणु ओ अलि-प्रायथी कडेवामां आवेल छे के, ओक तो ते अर्थना पश्चाद्भावि छे, (पाछण थनाइ) अने भीणुं ते लघु डोय छे, ओ अणु सूत्रनी साथे अर्थना ओ योग छे—संबंध छे तेनुं नाम अनुयोग छे.

प्रश्न—पडेवो अर्थ थाय छे अने ओ पछी सूत्र थाय छे, ते कडेवुं अयुक्त छे. कारण के सूत्र वगर अर्थ थई शके नही. आ भाटे समजवुं जेई ओ के पडेवां सूत्र डोय छे अने पछी अर्थ थाय छे. सूत्र आधार छे अने अर्थ आधेय छे. सूत्रमां अर्थ रहे छे अर्थमां सूत्र नही. आधारना डोवाथी ओ आधेय रही शके छे तेना वगर नही. भीणुं अर्थनी अपेक्षा ओ सूत्रने अणुं कडेवामां आवेल छे ते पणु ठीक नथी. कारण के, जेवामां आवे छे के, ओक ओ पेट्रीमां वस्त्रां वस्त्र राखवामां आवे छे आथी ते पेट्रीमां आदरता

तत्र मान्ति स्म । एवं पेटिकास्थानीये सूत्रे बहून्यर्थपदानि वर्तन्ते, तत्र सूत्रमेव बादरं भवितुमर्हति नार्थ इति । किंचार्थस्य महत्त्वमेकान्ततो नास्ति, प्रथमे उत्क्षिप्तज्ञाते हि 'अनुकम्पा कर्तव्या' इत्यर्थो बहुभिः सूत्रैर्वर्णितः । तथा—अष्टादशे सुंसुमादारिकाज्ञाते वर्णरूपबलादिवृद्धयर्थं नाहारयितव्यम्, इत्यर्थो बहुभिः सूत्रैर्वर्णितः, तस्मादर्थो न महान् किन्तु सूत्रमेव महदिति चेत्—?

अत्रोच्यते—पूर्वं सूत्रं पश्चादर्थः, इति न संभवति । अर्थस्य हि सूत्रतः पश्चाद्भावित्वं न युज्यते, अर्थं विना सूत्रं निश्चारहितं सत् कीदृशं स्यात् ? असंबद्धं में अनेक वस्त्र रख दिये जाते हैं एतावता पेटी में ही बादरता आती है वस्त्रों में नहीं । क्यों कि उसके आधार से ही बहुत वस्त्र उसमें समा जाते हैं । इसी तरह पेटी के स्थानीय सूत्र में भी बहुत से अर्थपद रहा करते हैं इसलिये सूत्र को ही बादर होने का प्रसंग प्राप्त होता है अर्थ को नहीं । तथा—अर्थ में महत्ता भी एकान्त से स्थापित नहीं होती है । “प्रथमे उत्क्षिप्तज्ञाते” ज्ञातासूत्र के प्रथम उत्क्षिप्तज्ञात नामक अध्ययन में भगवान ने फरमाया है कि अनुकंपा करनी चाहिये इस प्रकार का अर्थ बहुत सूत्र से वर्णित किया है । तथा “अष्टादशे सुंसुमादारिकाज्ञाते” अर्थात् इसी ज्ञाता सूत्र के अठारवें सुंसुमादारिकानामक अध्ययन में वर्ण, रूप, बल आदि की वृद्धि निमित्त मुनियों को आहार नहीं करना चाहिये यह अर्थ बहुत सूत्रों से वर्णित किया है । इसलिये अर्थ महान् नहीं है किन्तु सूत्र ही महान् है यही बात ज्ञात होती है ।

उत्तर—पहिले सूत्र होता है पश्चात् अर्थ यह कथन युक्तियुक्त नहीं है,

आवे છે, વસ્ત્રોમાં નહીં, કેમ કે પેટીના આધારથી જ ઘણાં વસ્ત્રો તેમાં સમાઈ શકે, એવી રીતે સ્થાનીય સૂત્રમાં પણ ઘણા અર્થ પદ રહ્યા કરે છે માટે જ સૂત્રને બાદર હોવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થાય છે, અર્થને નહીં. તેમ અર્થમાં મહત્તા પણ એકાન્તથી સ્થાપિત થતી નથી, જ્ઞાતા સૂત્રના પ્રથમ ઉત્ક્ષિપ્તજ્ઞાત નામના અધ્યયનમાં ભગવાને ફરમાવ્યું છે કે, અનુકમ્પા કરવી જોઈએ. આ પ્રકારનો અર્થ ઘણા સૂત્રોથી વર્ણવવામાં આવેલ છે તથા “અષ્ટાદશે સુસુમાદારિકા જ્ઞાતે” અર્થાત્ આ જ્ઞાતા સૂત્રના અઠારમા “સુસુમાદારિકા” નામના અધ્યયનમાં વર્ણ, રૂપ, બળ વગેરેની વૃદ્ધિ નિમિત્તે મુનિયોએ આહાર ન કરવો જોઈએ આ અર્થ ઘણા સૂત્રોમાં વર્ણવવામાં આવેલ છે. આ માટે અર્થ મહાન નથી પણ સૂત્ર જ મહાન છે આ વાત જ્ઞાત થાય છે.

ઉત્તર—પહેલાં સૂત્ર હોય છે પછી અર્થ આ કહેવું યુક્તિ યુક્ત નથી, કારણ

નિરર્થકં સ્યાત્, યથા નવ પૂપા દશદાડિમાનીત્યાદિવાક્યં સમ્બન્ધરહિતં નિરર્થકં ભવતિ । અપિ ચ-લૌકિકા અપિ શાસ્તારઃ પ્રથમતોડર્થં દૃષ્ટ્વા સૂત્રં કુર્વન્તિ, અર્થમન્ત-રેણ સૂત્રસ્યાનિષ્પત્તેઃ । તથા ચોક્તમ્—

“અત્યં ભાસઙ્ અરિહા, તમેવ સુત્તીકરેંતિ ગણધારી ।

અત્યં વિણા ચ સુત્તં, અણિસ્સિયં કેરિસં હોઙ્ ॥ ૧ ॥

છાયા—અર્થ ભાષતેડર્હન્, તમેવ સૂત્રીકુર્વન્તિ ગણધારિણઃ ।

અર્થ વિના ચ સૂત્રમ્, અનિશ્રિતં કીટ્શં સ્યાત્ ॥ ૧ ॥

કિશ્ચ—“અત્યં ભાસઙ્ અરિહા, સુત્તં ગુંફંતિ ગણહરા નિડુણા ।”

અપરશ્ચ—સાસણસ્સ હિયટ્ટાણ, તતો સુત્તં પવત્તઈ ॥

યદપ્યુક્તં—પેટિકાવદ્ વાદરં સૂત્રમ્, અર્થસ્તુ અણુરિતિ તદપ્યસત્, યતસ્તસ્યા પેટિકાયા એકં વસ્ત્રમાદાય તેનાનેકાઃ પેટિકા બધ્યન્તે, તથૈકેનાર્થેન બહૂનિ સૂત્રાણિ

કારણ કિ અર્થ કે વિના નિશ્રારહિત સૂત્ર હો હી નહીં સકતા હૈ । યદિ વહ હોતા હૈ તો “નવપૂપા દશદાડિમા” આદિ વાક્ય કી તરહ નિરર્થક ઓર અસંબદ્ધ હી હોગા । લૌકિક શાસ્ત્ર કે જાનને વાલે ખી તો પ્રથમ અર્થ કો દેખકર હી સૂત્ર કી રચના કિયા કરતે હૈ । ક્યોં કિ અર્થ કે વિના સૂત્ર કી નિષ્પત્તિ નહીં હોતી હૈ । કહા ખી હૈ—

અત્યં ભાસઙ્ અરિહા, તમેવ સુત્તી કરેંતિ ગણધારી ।

અત્યં વિણા ચ સુત્તં, અણિસ્સિયં કેરિસં હોઙ્ ॥ ૧ ॥

અત્યં ભાસઙ્ અરિહા, સુત્તં ગુંફંતિ ગણહરા નિડુણા ।

સાસણસ્સ હિયટ્ટાણ, તતો સુત્તં પવત્તઈ ॥ ૨ ॥

તીર્થકર ભગવાન પહિલે અર્થ કી પ્રરૂપણા કરતે હૈ ઓર ડસી અર્થ કો ગણધર ભગવાન સૂત્રરૂપ મેં ગુંથતે હૈ । ૧ ।

કે અર્થના વિના નિશ્રા રહિત સૂત્ર થઈ જ શકતુ નથી. કદાચ તે હોય છે, તો “નવપૂપા દશદાડિમા” આદિ વાક્યની માફક નિરર્થક અને સંબંધ વગરનું હોય લૌકિક શાસ્ત્રના બાણુવાવાળા પણ પ્રથમ અર્થને જોઈને સૂત્રની રચના કર્યા કરે છે. કેમ કે અર્થના વગર સૂત્રની ઉત્પત્તિ થતી નથી. કહ્યું પણ છે કે—

અત્યં ભાસઙ્ અરિહા, તમેવ સુત્તીકરેંતિ ગણધારી ।

અત્યં વિણા ચ સુત્તં, અણિસ્સિયં કેરિસં હોઙ્ ॥ ૧ ॥

અત્યં ભાસઙ્ અરિહા, સુત્તં ગુંફંતિ ગણહરા નિડુણા ।

સમણસ્સ હિયટ્ટાણ, તતો સુત્તં પવત્તઈ ॥ ૨ ॥

તીર્થકર ભગવાન પહેલા અર્થની પ્રરૂપણા કરે છે, અને એજ અર્થને ગણધર ભગવાન સૂત્રના રૂપમાં ગૂંથે છે. અર્થના વગર સૂત્ર નિશ્રારહિત બનીને

रच्यन्ते । एवं वस्त्रस्थानीयस्यार्थस्य महत्त्वम्, पेटिकास्थानीयस्य तु सूत्रस्याणु-  
त्वमेव । यदप्युक्तम्—अर्थो महानित्यस्यैकान्तता नास्तीति तदप्यविचारितभाषितम्  
—उत्क्षिप्तज्ञातादिषु सत्त्वानुकम्पादिकोऽश्रुस्तत्तदध्ययनमात्रस्य, अशेषस्य तु सूत्रस्य  
तदतिरिक्ता अपि बहवोऽर्थाः सन्ति ।

॥ इति अष्टमं द्वारम् ॥

अर्थ के बिना सूत्र निश्चारहित होता हुआ दशदाडिम आदि वाक्य  
की तरह केवल असंबद्ध और निरर्थक ही माना जाता है । २ । जो यह  
कहा है कि पेट्टी की तरह सूत्र वादर होता है तथा वस्त्रादिक की तरह  
अर्थ अणु होता है सो यह कहना भी ठीक नहीं है । क्यों कि जिस  
प्रकार उसी पेट्टी के किसी एक वस्त्र द्वारा उसी पेट्टी जैसी अनेक पेट्टियाँ  
लपेट्टी जा सकती हैं उसी प्रकार एक अर्थ से अनेक सूत्र रचे जा सकते हैं ।  
इस तरह वस्त्रस्थानीय अर्थ में महत्त्व आता है और पेट्टी स्थानीय  
सूत्र में अणुत्व हो । एकान्तसे अर्थ में महत्त्व नहीं है क्यों कि उत्क्षिप्त  
आदि अध्ययनों में जो कहा गया है वह सत्त्वानुकम्पादिक रूप अर्थ  
उस अध्ययनमात्र का ही है, अर्थात् उनमें अनुकम्पादि अर्थों की ही  
प्रधानता है । और अनुकम्पादि अर्थों को ही सिद्ध किया है । न कि  
अवशिष्ट समस्त सूत्र का । उसके तो उससे अतिरिक्त और भी  
अनेक अर्थ हैं ।

॥ यह आठवाँ द्वार संपूर्ण हुआ ॥ ८ ॥

दशदाडिम आदि वाक्यनी भाङ्क डेवण असंभ्रित्त अने निरर्थक न मानवामां  
आवे छे. ओम कडेवामां आवे डे पेट्टीनी भाङ्क सूत्र आदर डोय छे, तथा  
वस्त्रादिकनी भाङ्क अर्थ अणु डोय छे ते ते कडेवुं पणु डीक नथी. डेम डे, ओ  
पेट्टीना डोय ओक वस्त्रमां आवी अनेक पेट्टीओ भांधी शकाय छे. ओन रीते  
ओक अर्थथी अनेक सूत्र रची शकाय छे. आ रीते वस्त्रनुं स्थानीय अर्थमां  
महत्त्व आवे छे. अने पेट्टी स्थानीय सूत्रमां अणुत्व न ओकान्तथी अर्थमां महत्त्व  
नथी ओवुं ओ कडेवामां आवेल छे ते पणु डीक नथी. डेम डे, उत्क्षिप्त वगेरे  
अध्ययनमां ओ कडेवायेल छे ते सत्त्वानुकम्पादिक रूप अर्थ ते ते अध्ययन  
मात्राना न छे. अर्थात् तेमां अनुकम्पादि अर्थोनी न प्रधानता छे. अने अनु  
कम्पादि अर्थोने न सिद्ध करेल छे. न डे अवशिष्ट अथा सूत्रोने. ओना तो ओनाथी  
थीन धरुा अर्थो छे.

॥ आ आठमुं द्वार संपूर्ण थयुं. ॥ ८ ॥

अथ नवमं द्वारम्—सूत्रार्थतदुभयेषु यथोत्तरं प्राबल्यम्—

द्वादशाङ्गमधीयानानां वैयावृत्ये क्रियमाणे तेषां वैयावृत्यकराणां महती निर्जरा भवति तदावरणीयस्य कर्मणः क्षयकरणात्, तेषां महापर्यवसानं च भवति—पुनरन्य नवकर्मबन्धाभावात् । ननु कस्य कीदृशी निर्जरा भवति ?

अत्रोच्यते—सूत्रेऽर्थे च यथोत्तरं बलवती निर्जरा । आवश्यकदियावच्चतुर्दश पूर्वाणि सूत्रं, तद्वारा यथोत्तरं महती महत्तरा निर्जरा भवति । इयमत्र भावना—एक आवश्यकसूत्रधरस्य वैयावृत्यं करोति, अपरो दशवैकालिकसूत्रधरस्य वैयावृत्यक-

सूत्र, अर्थ एवं सूत्रार्थ में यथोत्तर प्रबलता का कथन नववें द्वार में करते हैं—

द्वारशांग को पढ़ते हैं और वे वैयावृत्य करते हैं (अर्थात् आचार्य उपाध्याय की सेवा करते हैं) उनको श्रुतज्ञानावरणीय कर्मों की महानिर्जरा होती है तथा अन्य नवीन कर्म का बन्ध भी नहीं होता है । किसके कैसी निर्जरा होती है ? इस बात को स्पष्ट किया जाता है—सूत्र एवं अर्थ को पढ़ने वालों की यथोत्तर महानिर्जरा होती है । आवश्यक सूत्र से लेकर १४ पूर्वतक के आगम सूत्र हैं । इनके द्वारा उत्तरोत्तर महानिर्जरा होती है सो तात्पर्य इसका इस प्रकार है कि कोई मुनि आवश्यक सूत्र को जानने वाले की वैयावृत्ति (सेवा) करता है और कोई दूसरा दशवैकालिक सूत्र को जानने वाले की वैयावृत्ति (सेवा) करता है । तो इनमें आवश्यक सूत्र को जानने वाले की वैयावृत्ति करने वाले की निर्जरा की अपेक्षा जो दशवैकालिक को पढ़ाने वाले की वैया-

सूत्र, अर्थ एवं सूत्रार्थमां यथोत्तर प्रबलतानुं कथन नवमां द्वारमां करे छे.—

द्वादशांग लखे छे अने जे वैयावृत्य करे छे. ( आचार्य—उपाध्ययनी सेवा करे छे ) अने श्रुतज्ञानावरणीय कर्मोनी महानिर्जरा थाय छे. तथा नवा भीज कर्मोनी अंध पणु थतो नथी. केने केवी निर्जरा थाय छे ? आ वातने स्पष्ट करवामां आवे छे.—

सूत्र अने अर्थने लखुवावाणाने यथोत्तर महानिर्जरा थाय छे. आवश्यक सूत्रथी लख १४ पूर्वं सुधीनां आगम सूत्र छे, अनेना द्वारा उत्तरोत्तर महानिर्जरा थाय छे. मतलब केछ मुनि आवश्यक सूत्रने लखुवावाणानी वैयावृत्ति (सेवा) करे छे अने केछ भीज दशवैकालिक सूत्रने लखुवावाणानी वैयावृत्ति (सेवा) करे छे. तो अनेमां आवश्यकसूत्रने लखुवावाणानी वैयावृत्ति करवावाणानी निर्जरा ने पहले जे दशवैकालिकना लखुवानारनी वैयावृत्ति करवावाणा छे,



रस्तस्वावश्यकसूत्रधरवैयावृत्त्यकरापेक्षया महती निर्जरा, आवश्यकसूत्रधरस्यैव दश-  
वैकालिकाध्ययनेऽधिकारात् । एवम् अधस्तनाधस्तनतरश्रुतधरवैयावृत्त्यकरापेक्षया  
उपर्युपरितनश्रुतधरवैयावृत्त्यकरो यथोत्तरं महानिर्जरावान् भवति । एवं त्रयोदश-  
पूर्वधरवैयावृत्त्यकरापेक्षया चतुर्दशपूर्वधरवैयावृत्त्यकरो महानिर्जराकारी भवति ।  
एवमर्थेऽपि भावनीयम् । आवश्यकार्थधरस्य यो वैयावृत्त्यं करोति, तदपेक्षया दश-  
वैकालिकाध्ययनस्य यो वैयावृत्त्यकरस्तस्य महती निर्जरा भवति, एवं पूर्ववद्बोधम्  
यथा सूत्रे यथोत्तरं बलिष्ठता एवमर्थेऽपि भावनीया । तत्र विशेषस्तु—अर्थधरवैया-

वृत्ति करने वाला है उसके महानिर्जरा होती है । क्यों कि आवश्यक  
सूत्र को पढ चुकने वाले का ही अधिकार दशवैकालिक सूत्र के अध्ययन  
में होता है । इस प्रकार नीचे २ श्रुत को धारण करने वालों की वैया-  
वृत्ति करने वालों की निर्जरा की अपेक्षा जो ऊपर २ के श्रुत को धारण  
करने वाले हैं उनकी वैयावृत्ति करने वालों की निर्जरा यथोत्तर अधिक  
अधिकतर होती है । इसी तरह जो तेरहपूर्व के धारी हैं उनकी जो वैयावृत्ति  
करने वाला है उसके जितनी निर्जरा होगी उसकी अपेक्षा जो १४ पूर्व  
के पाठियों की वैयावृत्ति करने वाला होगा उसकी महानिर्जरा होगी ।  
इसी तरह इनके अर्थ विषय में भी समझ लेना चाहिये । जैसे—जो आव-  
श्यक सूत्र के अर्थ का पाठी है उसका जो वैयावृत्त्य करने वाला है उसके  
जितनी निर्जरा होगी उसकी अपेक्षा जो दशवैकालिक सूत्र के अर्थ का  
पाठी है उनको वैयावृत्ति करने वाले की निर्जरा अधिकतर होगी । इस  
तरह पहिले की तरह अर्थ के विषय में लगा लेना चाहिये । जिस तरह

એને મહાનિર્જરા થાય છે. કેમકે, આવશ્યક સૂત્ર પુરી રીતે શીખી લેનારનો જ  
અધિકાર દશવૈકાલિકસૂત્રના અધ્યયનનો હોય છે. આ રીતે નીચે નીચેનાં શ્રુતને  
ધારણ કરવાવાળાની વૈયાવૃત્તિ કરનારને નિર્જરાની અપેક્ષા જે ઉપર ઉપરનાં  
શ્રુતને ધારણ કરવાવાળા છે એની વૈયાવૃત્તિ કરનારની નિર્જરા યથોત્તર અધિક  
અધિકતર થાય છે. આ રીતે જે તેરપૂર્વના ધારક છે એમની જે વૈયાવૃત્તિ કરે  
છે, એને જેટલી નિર્જરા થાય એની અપેક્ષા જે ચૌદપૂર્વના ધારક છે એની વૈયાવૃત્તિ  
કરવાવાળાને મહાનિર્જરા થાય છે આવી જ રીતે અર્થમાં પણ સમજવું જોઈ એ.  
જે આવશ્યક સૂત્રના અર્થના પાઠી છે, એની વૈયાવૃત્તિ કરનારની જેટલી નિર્જરા  
થાય એની અપેક્ષા જે દશવૈકાલિક સૂત્રના અર્થના પાઠી છે એમની વૈયાવૃત્તિ  
કરવાવાળાની નિર્જરા અધિકતર થાય છે. એજ રીતે પહેલાની માફક અર્થના વિષ-  
યમાં સમજી લેવું જોઈ એ. જે રીતે સૂત્રમાં ઉત્તરોત્તર મહાનિર્જરા કહી છે એજ

वृत्त्यकरेषु निशीथ-बृहत्कल्प-व्यवहारार्थधराणां वैयावृत्त्यकरो महानिर्जरावान् भवति । तथा द्वादशाङ्गीधरस्य वैयावृत्त्यकरः । शेषार्थेभ्यश्छेद सूत्रार्थस्य बलवत्त्वे किं कारणमिति चेत्-उच्यते-स्खलितचारित्रस्य छेदसूत्रार्थेन शोधिर्भवति, तस्मात् शेषात् सर्वस्मादप्यर्थात् छेदसूत्रार्थो बलवान् ।

सूत्रेऽर्थे तथा युगपत् तदुभयस्मिंश्चिन्त्यमाने यथोत्तरं निर्जरा बलवती भवति । सूत्रापेक्षयाऽर्थो महर्द्विकः, अर्थापेक्षया तदुभयो महर्द्विकः, तत्र किं कारणमिति चेत् ? अत्रोच्यते-गृहनिष्पत्तौ यत् साधनं-काष्ठ पाषाणादि, तत्संग्रहे कृते सत्येव

सूत्र में उत्तरोत्तर महानिर्जरा कही हैं उसी तरह अर्थ में उत्तरोत्तर महानिर्जरा समझनी चाहिये । अर्थधरों की वैयावृत्ति करने वालों में निशीथ, सूत्र, बृहत्कल्पसूत्र, एवं व्यवहार सूत्र के अर्थधरों की वैयावृत्ति करने वालों के महानिर्जरा होतो हैं तथा-द्वादशांगी के पाठी की वैयावृत्ति करनेवाला महानिर्जरा करता है । शेष अर्थ की अपेक्षा छेद सूत्रों के अर्थों में अधिकता क्यों कही गई हैं, उसका समाधान इस प्रकार है । यदि कोई साधु अपने गृहीत चारित्र से स्खलित हो जाता है तो उसकी शुद्धि छेदश्रुत के अर्थ से होती है । इसलिये अवशिष्ट-समस्त अर्थों की अपेक्षा छेदश्रुतों का अर्थ अधिक कहा गया है ।

सूत्र का, अर्थ का तथा युगपत् सूत्रार्थ का अध्ययन करने पर यथोत्तर अधिक २ निर्जरा होती है । सूत्र की अपेक्षा अर्थ महान् होता है और अर्थ की अपेक्षा तदुभय-सूत्र एवं अर्थ-ये दोनों महान् होते हैं । इसमें कारण यह है कि जिस प्रकार घर बनाने में जो काष्ठपाषाण आदि साधन हैं जब उनका संग्रह हो जाता है तब घर बनता है । उसी

रीते अर्थों में उत्तरोत्तर महानिर्जरा समझनी लगेगी. अर्थधरों की वैयावृत्ति करवावाणामां निशीथसूत्र, बृहत्कल्पसूत्र अने व्यवहारसूत्रना अर्थधरों की वैयावृत्ति करवावाणाने महानिर्जरा थाय छे. तथा द्वादशांगीना पाठी की वैयावृत्ति करनार महानिर्जरा करे छे. शेष अर्थों की अपेक्षा छेद सूत्रोंना अर्थों में अधिकता केम कडेवांमां आवी छे, अने संमाधान आ प्रकारनुं छे.-जे कोरु साधु पोते अडलु करेला चारित्रधी स्खलित थरुं जाय छे. तो अने शुद्धि छेदश्रुतना अर्थधी थाय छे. आ माटे अवशिष्ट-समस्त अर्थों की अपेक्षा छेदश्रुतोंना अर्थ अधिक कडेवायेल छे.

सूत्रनुं, अर्थनुं तथा युगपत् सूत्रार्थनुं अध्ययन करवाधी यथोत्तर अधिक अधिक निर्जरा थाय छे. सूत्रनी अपेक्षा अर्थ महान् होय छे. आमां अे कारणु छे के, जे रीते घर बनाववांमां पाषाण लाकडां वगेरे साधन छे, अने तेना संग्रह

गृहं निष्पद्यते, तथाऽर्थानुसन्धाने सत्येव सूत्रं निष्पद्यते, अतः सूत्रापेक्षयाऽर्थस्य प्राधान्यं भवति । किं च—सूत्रगणधर प्रोक्तम्, अर्थस्तु भगवद्बोधितस्तस्मात् सूत्रापेक्षयाऽर्थस्य प्राधान्यं भवति । तथाचोक्तम्—

तित्थगरद्वानो खलु, अथो सुत्तं तु गणहरद्वान् ।

अत्थेण य वंजिज्जइ सुत्तं, तम्हा उ सो बलवं ॥ १ ॥

छाया-तीर्थकरस्थानः खलु अर्थः, सूत्रं तु गणधरस्थानम् ।

अर्थेन च व्यज्यते सूत्रं, तस्मात्तु स बलवान् ॥ १ ॥

व्याख्या—अर्थः खलु तीर्थकरस्थानः, तस्य तेनाभिहितत्वात् । सूत्रं तु गणधरस्थानं तस्य तैर्ग्रथितत्वात् । अर्थेन च यस्मात् सूत्रं व्यज्यते=प्रकटीक्रियते, तस्मात् सोऽर्थः सूत्राद् बलवान् ॥ १ ॥

सूत्रापेक्षयाऽर्थापेक्षया च सूत्रार्थोभयस्य प्राबल्ये दृष्टान्तः प्रदर्श्यते । यथा जातमात्रं दधि मधुरं, तदपेक्षया शर्करा मधुरतरा, एकत्र संमिलिते दधिशर्करे श्रीख-

तरह अर्थ का अनुसंधान जब होता है तभी गणधर भगवान् सूत्रों की रचना करते हैं । अतः सूत्र की अपेक्षा अर्थ में प्रधानता आती है । तथा—सूत्र गणधरों ने कहे हैं और अर्थ प्रभु द्वारा प्ररूपित हुआ है इसलिये भी सूत्रकी अपेक्षा अर्थ में प्रधानता आजाती है । कहा भी है—अर्थ तीर्थकर के स्थानापन्न है क्योंकि कि तीर्थकर ही अर्थ की प्ररूपणा करते हैं । सूत्र गणधर के स्थानापन्न है क्योंकि कि वह उनके द्वारा ग्रथित होता है । अर्थ से ही सूत्र उत्पन्न होता है अतः अर्थ ही प्रधान है । सूत्र की अपेक्षा एवं अर्थ की अपेक्षा सूत्रार्थ किस प्रकार प्रधान होता है यह बात दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट की जाती हैं—जैसे—ताजा दही मीठा होता है । दही की अपेक्षा शर्करा मीठी होती है । जब इन दोनों का परस्पर

करवायां आवे छे त्यारे न धर अने छे अे न रीते अर्थनुं अनुसंधान थाय छे, त्यारे गणधर भगवान् सूत्रानी रचना करे छे. आथी सूत्रनी अपेक्षाअे अर्थमां प्रधानता आवे छे. तथा—सूत्र गणधरांअे कडेल छे, अने अर्थ प्रभु द्वारा प्ररूपित थयेल छे. आ कारणे पण अर्थमां प्रधानता आवे छे. कहुं पण छे.—अर्थ तीर्थकर प्रभुना स्थानापन्न छे केभके, तीर्थकर न अर्थनी प्ररूपणा करे छे. सूत्र गणधरनां स्थानापन्न छे केभके, ते अेभना द्वारा ग्रथित थाय छे. अर्थथी न सूत्र उत्पन्न थाय छे आथी अर्थ न प्रधान छे. सूत्रनी अपेक्षा अने अर्थनी अपेक्षा सूत्रार्थ कर्छरीते प्रधान होय छे, ते वात द्रष्टांत द्वारा स्पष्ट करवायां आवे छे.—जेम—ताजुं दही मीठुं होय छे, अने दहीथी साकर मीठी होय छे, त्यारे अे अने ने अेक थील साथे भेणववायां आवे छे त्यारे

ષ્ટનામકં દ્રવ્યં ભવતિ, તત્ સ્વલુ ઉમાભ્યાં પૃથગવસ્થિતાભ્યાં દધિશર્કરાભ્યામધિકં  
ત્રિશિષ્ટાસ્વાદજનકં યથા ભવતિ, તથા સૂત્રાર્થોભયસ્ય સર્વભાવાધિગમકારણત્વેન  
વિશિષ્ટભાવશુદ્ધિજનકત્વાત્ સર્વતઃ પ્રાધાન્યમ્ । અતસ્તદુભયધરસ્ય મહતી નિર્જરા  
ભવતિ ॥ ૨૩ ॥

॥ इति नवमं द्वारम् ॥

પુનઃ શિષ્યસ્ય વાગ્વિનયમાહ—

मूलम्—मुंसं परिहरे भिक्खू, न यं ओहारणि वए ।

भासादोसं परिहरे, मायं चं वज्जए सयां ॥ २४ ॥

મેં સંમિશ્રણ હો જાતા હૈ તો ઉસસે શ્રીલંકાનામ કા એક અપૂર્વ મધુર પદાર્થ બનતા હૈ । ઉસકા સ્વાદ ન દહી જૈસા હોતા હૈ ઓર ન શક્કર જૈસા હોતા હૈ । કિન્તુ ઇન દોનોં સે વિલક્ષણ સ્વાદ હોતા હૈ । ઇસી તરહ સૂત્ર અર્થાં યે દોનોં જબ સમ્મિલિત હોતે હૈ તબ ઇનસે સમસ્ત ભાવોં કા-પદાર્થોં કે સ્વરૂપ કા જ્ઞાન હોને લગતા હૈ જો ન કેવલ સૂત્ર સે સાધ્ય હૈ ઓર ન કેવલ અર્થ સે । ઇસસે વિશિષ્ટ ભાવોં કી અર્થાત્-અધ્યવસાયોં કી વિશિષ્ટ શુદ્ધિ હોતી હૈ । ઇસલિયે સૂત્ર ઓર અર્થ ઇન દોનોં કી અપેક્ષા તદુભય પ્રધાન કહા ગયા હૈ ઓર ઇસીલિયે કેવલ સૂત્રધારી અથવા કેવલ અર્થધારી કી અપેક્ષા તદુભયધારી કી સેવા કરને વાલે કે મહાનિર્જરા હોતી હૈ । ઇસ તરહ તેવીસવીં ગાથા કા અર્થ સંક્ષેપ સે સંપૂર્ણ હુઆ વિસ્તાર સે અર્થ અન્ય શાસ્ત્રોં સે સમજનાં ચાહિયે ॥ ૨૩ ॥

નવમા દ્વાર સમ્પૂર્ણ

એનાથી શ્રીલંકા નામનો એક અપૂર્વ મધુર પદાર્થ બને છે, જેનો સ્વાદ ન દહીં જેવો હોય છે અને ન તો સાકર જેવો. પરંતુ આ બંનેથી બુદ્ધિ જ ભાતેનો સ્વાદ હોય છે. આવી જ રીતે સૂત્ર અને અર્થ એ બંને ત્યારે સમ્મિલિત હોય છે, ત્યારે એનાથી સમસ્ત ભાવોનું-પદાર્થોના સ્વરૂપનું જ્ઞાન થવા લાગે છે. જે ન કેવળ સૂત્રથી સાધ્ય છે અને ન કેવળ અર્થથી. એનાથી વિશિષ્ટ ભાવોની અર્થાત્-અધ્યવસાયોની વિશિષ્ટ શુદ્ધિ થાય છે. આ માટે સૂત્ર અને અર્થ આ બંનેની અપેક્ષા તદુભય પ્રધાન કહેવામાં આવેલ છે. અને એજ માટે કેવળ સૂત્ર ધારી અથવા કેવળ અર્થધારીની અપેક્ષા તદુભયધારીની સેવા કરવાવાળાની મહા-નિર્જરા થાય છે. આ રીતે તેવીસવીં ગાથાનો અર્થ સંક્ષેપથી સંપૂર્ણ થયો. વિસ્તારથી અર્થ અન્ય શાસ્ત્રોથી સમજવો જોઈ એ. ॥ ૨૩ ॥

નવમું દ્વાર સંપૂર્ણ

छाया—मृषा परिहरेद् भिक्षुः, न चावधारणीं वदेत् ।

भाषादोषं परिहरेत्, मायां च वर्जयेत् सदा ॥ २४ ॥

टीका—‘मुसं परिहरे’ इत्यादि ।

भिक्षुः=साधुः, मृषा=मृषावादम्—असत्यवचनं परिहरेत्=वर्जयेत् । मृषावादः संक्षेपेण द्विविधः—लौकिको लोकोत्तरश्च । तत्र प्रत्येकं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-भेदा-च्चतुर्था । द्रव्यतो लौकिकमृषावादः—विपरीतद्रव्यकथनम्, यथा—गाम् अश्वं कथयति । क्षेत्रतः—यथा—अन्यदीयक्षेत्रं प्रति मदीयमिदं क्षेत्रम्, इति कथनम् । एवमेव कालेऽपि भूत भविष्यद् वर्तमानविषये विपरीतकथनम्, यथा—पूर्वाह्नं प्रति—मध्याह्नकालोऽयमिति कथनम् इत्यादि ।

भावतो लौकिकमृषावादः—क्रोधादिकषायनिमित्तकः, तत्र क्रोधतो यथा—रुष्टः पुत्रो वदति नैष मम पिता, रुष्टः पिता वा वदति—नैष मम पुत्र इति । मानतो

शिष्य के वचनविनय के विषय में सूत्रकार समझाते हुए कहते हैं कि—‘मुसं०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( भिक्षु मुसं परिहरे-भिक्षुःमृषा परिहरेत् ) भिक्षु-साधु का कर्तव्य है कि वह मृषावाद का परित्याग कर देवे । मृषावाद संक्षेप से दो प्रकार का है—एक लौकिक और दूसरा लोकोत्तर । ये दोनों द्रव्य, क्षेत्र, काल, एवं भाव से चार २ प्रकार के हैं । विपरीत द्रव्य का कहना यह द्रव्य से लौकिक मृषावाद है जैसे गाय को घोड़ा कहना ॥ १ ॥ दूसरे के क्षेत्रको अपना क्षेत्र बनाना यह क्षेत्र की अपेक्षा मृषावाद है ॥२॥ पूर्वाह्न को मध्याह्नकाल बतलाना यह काल की अपेक्षा मृषावाद है ॥ ३ ॥ जो क्रोधादि कषाय निमित्तक होता है वह भाव की अपेक्षा मृषावाद कहलाता है ४ ॥ वह भी चार प्रकार का है—जैसे क्रोध के आवेश में

शिष्यता वचनविनयना विषयमां सूत्रकार समज्जवतां कडे छे के—मुसं० इत्यादि

अन्वयार्थ—भिक्षुमुसं परिहरे-भिक्षुः मृषापरिहरेत् भिक्षु-साधुनुं कर्तव्य छे के ते मृषावादनो परित्याग करी हे. मृषावाद संक्षेपथी जे प्रकारे छे. ओक लौकिक अने ओजे लोकोत्तर आ अन्ने द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावथी चार प्रकारना छे. विपरीत द्रव्यनुं कडेछुं जे द्रव्यथी लौकिक मृषावाद छे, जेभ गायने घोडा कडेवे, ॥१॥ ओजना क्षेत्रने पोतानुं क्षेत्र अनावधुं ते क्षेत्रनी अपेक्षा मृषावाद छे ॥२॥ सवारने मध्यान काल कडेवे जे कालनी अपेक्षा मृषावाद छे. ॥३॥ जे क्रोधादिक कषाय निमित्त अने छे, ते भावनी अपेक्षा मृषावाद कडेवाय छे. ॥४॥ ते पद्य चार प्रकारथी छे. जेभ क्रोधनां आवेशमां आवीने पुत्र कडे छे के आ भारे पिता नथी अथवा जे समय

उ० २४



यथा—अस्य कुटुम्बस्य भरणपोषणादिकार्यं कर्तुं को मां विहाय समर्थः ? । मायातो यथा—राजकरग्राहकः कंचिद् व्यापारिणं विक्रयवस्तु समादाय स्वस्थानमागतं प्रति पृच्छति—‘ कस्येदं वस्तुजातम् ’ इति, एवं पृष्टोऽसौ व्यापारी मायया कथयति— ‘ नास्ति ममेदं वस्तुजातम्, अन्यदीयमेतत् सर्वम् ’ इति ।

लोभतो यथा—व्यापारी लोभवशाद् वदति ग्राहकं प्रति ‘ यावता मूल्येन मया क्रीतं, तावतैव तव हस्ते विक्रीणामि किञ्चिदप्यधिकं मूल्यं न गृह्णामी—’ ति ।

लोकोत्तरमृषावादः प्रदर्श्यते—तत्र द्रव्यतो यथा—जीवम् अजीवं वदति, अजीवं

आकर पुत्र कहता कि यह मेरा पिता नहीं है। अथवा जिस समय पिता रुष्ट होता है, उस समय वह कहता है कि यह मेरा पुत्र नहीं है, यह सब कथन क्रोध रूप भाव की अपेक्षा मृषावाद है (१) मन कषाय के वशवर्ती होकर ऐसा कहना कि यदि मैं न होऊँ तो इस कुटुम्ब का भरण पोषण कौन करे (२) माया के वश में होकर जो ऐसा कहता है कि यह वस्तु मेरी नहीं है यह तो दूसरों की है, तात्पर्य इसका यह है जब कोई व्यापारी किसी राजा का कर लेने वाले के पूछने पर कि यह विक्रय वस्तु किसकी है तब वह माया वश कहता है कि यह तो दूसरों की है मेरी नहीं है (३) लोभ के वश होकर जो झूठ वचन बोला जाता है वह लोभ कषाय की अपेक्षा मृषावाद है—जैसे व्यापारी लोग ग्राहकों को ऐसा कहते हैं कि भाई हमने जितने मूल्य में यह चीज खरीदी है उतने ही मूल्य में हम तुम्हें यह दे रहे हैं। कुछ भी अधिक नहीं ले रहे हैं ॥ ४ ॥ यह सब लौकिक मृषावाद है। चार प्रकार का लोकोत्तर मृषावाद इस प्रकार है—जीव को अजीव कहना, अजीव

पिता क्रोधित होने छे ते वणते ते कडे छे के, आ भारो पुत्र नथी, आ सधणां कथन भावनी अपेक्षा मृषावाद छे (१) मन कषायना वशवर्ति अनिने अेवुं कडेवुं के अेहुं न डोडं तो आ कुटुम्बुं लरणु पोषणु कोषु करे. (२) मायाना वशमां आवीने ने अेम कडे छे के आ वस्तु भारी नथी पणु पीजनी छे. मतलप आनी अे छे के, न्यारे कोरि शजनेा कर्माचारी, कर वसुल माटे आवे अने तेना पुछ-वाथी कोरि वेपारी पोतानी वस्तु डोवा छतां माया वश अनि पोतानी न डोवानुं कही पीजनी डोवानुं अतावे (३) दोलना वश अनिने ने अुहुं वचन बोलवामां आवे छे ते दोल कषायनी अपेक्षा मृषावाद छे. नेम-वेपारी दोक आडकोने अेम कडे छे के, लार्थ नेटकी डिंमते आ वस्तु भारा घरमां पडेल छे तेज डिंमते हुं तमोने आयुं छुं, कंरि पणु न्देशे देतो नथी. (४) आ अधा लौकिक मृषावाद छे. चार प्रकारना लोकोत्तर मृषावाद आ प्रकारे छे, अुवने



वा जीवम्, इत्यादि । क्षेत्रतो यथा—भरतक्षेत्रम् ऐरवतक्षेत्रम् वदति, ऐरवतं वा भरतमिति । कालतो यथा—उत्सर्पिणीम् अवसर्पिणीं वदति, तथा—अवसर्पिणीम् उत्सर्पिणीं वदति । भावतो लोकोत्तरमृषावादः क्रोधादिकषायजनितः, तत्र क्रोधतो यथा—सत्यपि गुरुशिष्यसम्बन्धे रुष्टो गुरुर्वदति—न त्वमसि मम शिष्यः, क्रोधाविष्टः शिष्योऽपि वदति—‘नायं मम गुरुः’ इत्यादि । मानतो यथा—अहमेव गच्छधुराधारणे समर्थोऽस्मि, यद्वा—अहमेव साधुनिर्वाहकोऽस्मि । मायातो यथा—कृतातिचारं शिष्यं प्रति गुरुः पृच्छति—त्वयाऽतिचारः कृतः किम् ? तदा शिष्यो मायया वदति न मयातिचारः कृतः’ इत्यादि ।

को जीव कहना । यह द्रव्य की अपेक्षा मृषावाद है १ । भरतक्षेत्र को ऐरावत क्षेत्र कहना अथवा ऐरावत क्षेत्र को भरत क्षेत्र कहना यह क्षेत्र की अपेक्षा लोकोत्तर मृषावाद है २ । उत्सर्पिणी काल को अवसर्पिणी काल कहना अथवा अवसर्पिणी काल को उत्सर्पिणी काल कहना यह काल की अपेक्षा लोकोत्तर मृषावाद है ३ । भाव से लोकोत्तर मृषावाद क्रोधादिक कषाय को लेकर चार प्रकार का है । गुरु शिष्य संबंध होने पर भी जिस समय गुरु किसी निमित्त को लेकर जब शिष्य के प्रति रुष्ट हो जाते हैं तब वे कहने लगते हैं कि तुम मेरे शिष्य नहीं हो । शिष्य भी जब क्रोध के आवेश में आ जाता है तो वह भी इस तरह से गुरु के प्रति कहने लगता है कि आप हमारे गुरु नहीं हैं । यह क्रोध की अपेक्षा लोकोत्तर भाव मृषावाद है (१) । मैं ही गच्छ की धुरा धारण करने में समर्थ हूँ अथवा मैं ही साधुओं का निर्वाहक हूँ इस प्रकार कहना यह मान कषाय की अपेक्षा लोकोत्तर भाव मृषावाद है (२) ।

अथ कडेपुं, अथने अथ कडेपुं, अे द्रव्यनी अपेक्षा मृषावाद छे. (१) भरत क्षेत्रने औरावतक्षेत्र कडेपुं अने औरावत क्षेत्रने भरतक्षेत्र कडेपुं ते क्षेत्रनी अपेक्षा लोकोत्तर मृषावाद छे. (२) उत्सर्पिणी काणने अवसर्पिणी काण कडेपुं अथवा अवसर्पिणी काणने उत्सर्पिणी काण कडेपुं अे काणनी अपेक्षा लोकोत्तर मृषा वाद छे. (३) भावथी लोकोत्तर मृषावाद क्रोधादिक कषायने लक्ष चार प्रकारना छे. गुरु कौं निमित्ते न्यारे शिष्य प्रत्ये क्रोधित अने छे त्यारे ते कडेपुं लागे छे के तुं मारे शिष्य नथी, शिष्य पणु क्रोधना आवेशमां आवी नथ छे, त्यारे ते पणु पौताना गुरुने कडेपुं लागे छे के आप मारा गुरु नथी. आ क्रोधनी अपेक्षा लोकोत्तर भाव मृषावाद छे. (१) हुं न गच्छनी धुरा धारण कर-वामां समर्थं छुं अथवा हुं न साधुओंना निर्वाहक छुं. आ प्रकारे कडेपुं अे मान कषायनी अपेक्षा लोकोत्तर भाव मृषावाद छे. (२) ने समय शिष्य न्यारे

लोभतो यथा—अकल्पेऽपि वस्त्रपात्रादौ, 'ममेदं वस्त्रं कल्पते' इत्यादि कथनम् ।  
 यद्वा-मृषावादश्चतुर्विधः—सद्भावप्रतिषेधः १, असद्भावोद्भावनम् २, अर्था-  
 नन्तरम् ३, गद्वा च ४, । तत्र सद्भावप्रतिषेधो यथा—नास्त्यात्मा, नास्ति पुण्यं,  
 नास्ति पापम्, इत्यादि । असद्भावोद्भावनं यथा—अस्त्यात्मा सर्वगतः, आत्मा स्यामाक-  
 तण्डुलमात्रः, इत्यादि । अर्थान्तरं यथा—गोविषये—'अश्वोऽयम्' इति । गद्वा तु  
 त्रिधा—एका सावद्यव्यापारप्रवर्तनी, यथा 'क्षेत्रं कृष' इत्यादि । द्वितीया—अप्रिया,

जिस समय शिष्य जब कोई अतिचार लगा लेता है तो गुरु महाराज उससे पूछते हैं कि क्या तुमने अतिचार लगाया है तब शिष्य माया कषाय का अवलम्बन कर कहता है कि मैंने कोई अतिचार नहीं लगाया, इस प्रकार शिष्य का यह कथन माया कषाय की अपेक्षा लोकोत्तर भावमृषावाद है (३) । जो वस्त्र पात्रादिक अकल्पनीय हैं उनमें ये मेरे लिये कल्पनीय हैं इस प्रकार कहना यह लोभकषाय की अपेक्षा लोकोत्तर मृषावाद है । अथवा—मृषावाद इन अन्य प्रकारों से भी चार भेद वाला है—१ सद्भाव का प्रतिषेध, २ असद्भाव का उद्भावन, ३ अर्थान्तर, ४ गद्वा । आत्मा नहीं है पुण्य और पाप नहीं हैं इस प्रकार सत् अर्थ का अपलापक वचन सद्भाव प्रतिषेध मृषावाद है १ । आत्मा सर्वव्यापक है अथवा श्यामाक तन्दुल के समान आत्मा है इस प्रकार असत् अर्थ का उद्भावक वचन असद्भाव का उद्भावनरूप द्वितीय मृषावाद है २ । गो के विषय में ऐसा कहना कि यह अश्व है इस प्रकार अर्थान्तर का कथक वचन तृतीय अर्थान्तर नामक मृषावाद है ३ । गद्वा तीन प्रकार की है सावद्य

कोई अतिचार लगादी दे छे तो गुरु महाराज अने पूछे छे के, शुं तने अति-  
 चार लागेले छे, त्तारे शिष्य माया कषायनुं अवलम्बन करी कहे छे के भे  
 कोई अतिचार लगाडेले नहीं. आ प्रकारनुं अे शिष्यनुं कथन माया कषायनी  
 अपेक्षा दोकोत्तर भाव मृषावाद. (३) ने वस्त्र पात्रादिक अकल्पनीय छे अेमां  
 अे भास भाटे कल्पनीय छे अेम कहेपुं ते लोक कषायनी अपेक्षा दोकोत्तर मृषा-  
 वाद छे. अथवा—मृषावाद अे अन्य प्रकारेथी पणु चार भेद वाणा छे. १ सद्-  
 भावने प्रतिषेध, २ असद्भावनुं उद्भावन, ३ अर्थान्तर, ४ गद्वा. आत्मा नहीं,  
 पुण्य अने पाप नहीं, आ प्रकारनुं साया अर्थनुं अपलापक वचन सद्भाव  
 प्रतिषेध मृषावाद छे. १. आत्मा सर्व व्यापक छे, अथवा श्यामाक योभाना नेयो  
 आत्मा छे, आ प्रकारनुं असत् अर्थनुं उद्भावक वचन असद्भावनुं उद्भाव-  
 न रूपणीनुं मृषावाद छे. २. गायना विषयमां अेपुं कहेपुं के ते धोडे छे.  
 आ प्रकारे अर्थान्तरनुं कथन वचन त्रीजे अर्थान्तर नामने मृषावाद छे. ३. गद्वा

यथा—काणं प्रति—‘अयं काण’ इत्यादि । तृतीया—आक्रोशरूपा यथा—‘अरे बान्धकिनेय दासीपुत्रः ?’ इत्यादि । पुनरयं क्रोधादिभावोपलक्षितश्चतुर्विधः । अत्रेदं बोध्यम्—मृषावादः क्रोधमानमायालोभहास्यभयव्रीडाक्रीडारत्यरतिदाक्षिण्यमात्सर्यविषादादिभिः संभवति । पीडाजनकः सत्यवादोऽपि मृषावाद इति । मृषाभाषणे दोषा उक्ताः—

धर्महानिरविश्वासो, देहार्थव्यसनं तथा ।

असत्यभाषिणां निन्दा, दुर्गतिश्चोपजायते ॥ १ ॥ इति ।

व्यापार प्रवर्तिनी, अप्रिया, और आक्रोशरूपा । क्षेत्र को जोतो इत्यादिक सावद्यव्यापार में प्रवर्तन कराने वाला वचन गद्दा का प्रथम भेद है । काने को काना कहना यह गद्दा का द्वितीय प्रकार है । ‘अरे कुलटा के पुत्र’ इत्यादि वचन गद्दा का तृतीय प्रकार है । क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, भय, व्रीडा—(लज्जा) क्रीडा, रति, अरति, दाक्षिण्य, मात्सर्य एवं विषाद आदि निमित्तो को लेकर मृषावाद में मनुष्यों की प्रवृत्ति होती है । जिस सत्यवचन से दूसरों की पीडा उपजे ऐसा सत्यवचन भी मृषावाद में अन्तर्हित जानना चाहिये । मृषावाद में अनेक दोष हैं—जैसे कहा है—

“ धर्महानिरविश्वासो, देहार्थव्यसनं तथा ॥

असत्यभाषिणां निन्दा, दुर्गतिश्चोपजायते ॥ १ ॥ ”

मृषावाद से धर्म की क्षति होती है लोगों में विश्वास उठ जाता है देह और धन का नाश होता है । जो असत्यभाषी होते हैं उनकी अनेक

त्रण प्रकारनी छे. सावद्य व्यापार प्रवर्तिनी, अप्रिया अने आक्रोश रूपा क्षेत्रने जेधने धत्यादिक सावद्य व्यापारमां प्रवर्तन करावनार वचन गद्दानो प्रथम भेद छे. काणाने काणो कडेवे अ गद्दानो भीले प्रकार छे ‘अरे कुलटाना पुत्र’ धत्यादि वचन गद्दानो त्रीले प्रकार छे. क्रोध, मान, माया; लोभ, हास्य, लय, लज्जा क्रीडा, रति, अरति, दाक्षिण्य, मात्सर्य अने विषाद आदि निमित्तोने मृषावादमां मनुष्योनी प्रवृत्ति थाय छे. जे सत्य वचनथी भील्योने पीडा उपजे ओपुं सत्य वचन पणु मृषावादमां अंतर्हित जणुपुं जेध अ मृषावादमां अनेक दोष छे. जेवी रीते कहुं छे के—

“ धर्महानिरविश्वासो देहार्थव्यसनं तथा ।

असत्यभाषिणां निन्दा दुर्गतिश्चोपजायते ॥ १ ॥ ”

मृषावादथी धर्मनी क्षती थाय छे, लोकोने विश्वास उठी जय छे, देह अने धनने नाश थाय छे, जे असत्य भाषी होय छे तेनी अनेक प्रकारथी

ચ-પુનઃ, અવધારણીમ્-નિશ્ચયાત્મિકાં ભાષાં ન વદેત્-‘ગમિષ્યામ્યેવ’  
‘કરિષ્યામ્યેવ’ इत्यादिकां भाषां न ब्रूयादित्यर्थः । यतः—

“अन्नह परिचिंतिज्जइ, कज्जं परिणमइ अन्नहा चेव ।

विहिवसयाण जियाणं, मुहुत्तमेत्तं पि बहुविग्धं ॥ १ ॥

છાયા-અન્યથા પરિચિન્ત્યતે, કાર્ય પરિણમત્યન્યથા ચૈવ ।

विधिवशगानां जीवानां मुहूर्तमात्रमपि बहुविघ्नम् ॥ १ ॥

यद्वा—अवधार्यते ज्ञायतेऽर्थोऽनयेत्यवधारणी अवबोधजनिका भाषा, सा  
चतुर्विधा-सत्या, मृषा, सत्यामृषा, असत्यामृषा च ।

प्रकार से इस लोक में निन्दा होनी है और परलोक में उन्हें दुर्गति की प्राप्ति होती है । अवधारणात्मक ( निश्चयकारी ) भाषा को बोलना यह भी एक असत्य का प्रकार है—जैसे—‘जाऊंगा ही,’ ‘करूंगा ही’ । अथवा—‘जाऊंगा’ ‘करूंगा’ इस प्रकार की भाषा मृषावाद में इसलिये सम्मिलित हो जाती है कि—

“अन्नह परिचिंतिज्जइ, कज्जं परिणमइ अन्नहा चेव ।

विहिवसयाण जियाणं मुहुत्तमेत्तं पि बहुविग्धं” ॥१॥

बोलने वाला विचारता कुछ है और होता कुछ है । मन में अवधारित बात की पूर्ति नहीं होती है । क्यों कि कर्म वशावर्ती जीवों के एक मुहूर्त में भी अनेक विघ्न उत्पन्न हो जाते हैं । अथवा—“अवधारण” शब्द का अर्थ अवबोध जनक भी है । यह अवबोधजनक भाषा सत्या १, मृषा २, सत्यामृषा ३, एवं असत्यामृषा ४, के भेद से

આ લોકમાં નિંદા થાય છે, અને પરલોકમાં તેને દુર્ગતિની પ્રાપ્તિ થાય છે. અવધારણાત્મક નિશ્ચયકારી ભાષા બોલવી એ પણ એક અસત્યનો પ્રકાર છે. જેમ-‘જઈશજ, કરીશજ’ અથવા-‘જઈશ-કરીશ’આ પ્રકારની ભાષા મૃષાવાદમાં એ માટે સમાય જાય કે,—

अन्नह परिचिंतिज्जइ कज्जं परिणामइ अन्नहा चेव ।

विहिवसयाण जीयाणं मुहुत्तमेत्तं बहुविग्धं ॥ १ ॥

બોલવાવાળો વિચારે છે કાંઈ અને બને છે કાંઈ, મનમાં અવધારિત વાતની પૂર્તિ થતી નથી કેમકે, કર્મવશ વર્તી જીવોને એક ઘડીમાં પણ અનેક વિઘ્ન ઉત્પન્ન થાય છે. અથવા—“અવધારણ” શબ્દનો અર્થ અવ બોધજનક પણ છે. અવ બોધજનક ભાષા ૧ સત્યા, ૨ મૃષા, ૩ સત્યામૃષા અને ૪ અસત્યા-મૃષાના ભેદથી ચાર પ્રકારની છે. દેશકાલાદિકની અપેક્ષા જેમાં કાંઈ પ્રકારનો

तत्राराधनी सत्या । आराध्यते मोक्षमार्गोऽनयेत्याराधनी यथावस्थितवस्त्व-  
भिधायिनी-या सर्वज्ञमतानुसारेण भाष्यते, यथा-अस्त्यात्मा सदसन्नित्यानित्याद्यनेकधर्मयुक्त इत्यादि ।

या तु विराधनी विपरीतवस्त्वभिधायिनी सा मृषा । विराध्यते मोक्षमार्गोऽन-  
येति विराधनी, सर्वज्ञमतप्रातिकूल्येन भाष्यते, यथा-‘नास्त्यात्मा’ यथा वा-  
‘एकान्तनित्य आत्मा’ यथा वा-अचौरैः ‘अयं चौरः’ इत्यादि । तथा-सत्याऽपि  
परपीडोत्पादिका, सा परपीडाजनकत्वाद् मुक्तिविराधनाद् वा विराधनी, विराधनो-  
त्वाच्च मृषा । यथा चौरं प्रति-‘अयं चौरः’ इति ।

चार प्रकार की है । देशकालादिक की अपेक्षा जिसमें किसी भी प्रकार  
का विसंवाद न आसके एवं वस्तुका जो स्वरूप है उसे उसी  
प्रकार से कहने वाली भाषा सत्य भाषा है । इस भाषा से मोक्षाभिलाषी  
मोक्षमार्ग की आराधना करते हैं । जैसे-आत्मा है और वह न  
सर्वथा नित्य है और न सर्वथा अनित्य है किन्तु कथांचित् नित्या-  
नित्यात्मक है (१) इस प्रकार अनेक धर्मविशिष्ट वस्तु का कथन करने  
वाली भाषा इस कोटि में परिगणित होती है १ । जो भाषा विराधिनी  
है-वस्तु के विपरीत स्वरूप को प्रतिपादन करने वाली है-वह मृषा भाषा  
है । इसको बोलने वाला प्राणी कभी भी मुक्तिमार्ग का आराधक नहीं  
हो सकता है । इस प्रकार की भाषा में सदा सर्वज्ञ मत से प्रतिकूलता  
रहा करती है । जैसे-आत्मा नहीं है । अथवा है भी तो वह सर्वथा  
नित्य है या सर्वथा अनित्य है । अथवा जो चोर नहीं है उसको ‘यह  
चोर है’ ऐसा कहना । जो भाषा सत्य भी हो-परन्तु यदि उससे दूसरों  
को पीड़ा होती हो तो वह भी इसी मृषावाद में सम्मिलित जाननी चाहिये २ ।

विसंवाद न आवी शके अने वस्तुनुं जे स्वरूप छे तेने तेवा प्रकारथी कडेवा-  
वाणी भाषा सत्य भाषा छे आ भाषाथी मोक्षाभिलाषी मोक्ष मार्गनी आरा-  
धना करे छे. जेम आत्मा छे अने ते सर्वथा नित्य नथी तेम सर्वथा अनित्य  
पणु नथी. परंतु कथांचित नित्यानित्यात्मक छे. आ रीते अनेक धर्म विशिष्ट  
वस्तुनुं कथन करवावाणी भाषा आ कोटिमां परिगणित थाय छे (१) जे भाषा  
विराधिनी छे वस्तुना विपरीत स्वरूपने प्रतिपादन करवावाणी छे. ते मृषा भाषा छे.  
अने जेवनार प्राणी कही पणु मुक्ति मार्गने आराधक भनी शकते नथी.  
आ प्रकारनी भाषामां सदा सर्वज्ञ मतथी प्रतिकूलता रह्या करे छे. जेम-आत्मा  
नथी, अथवा छे तो पणु ते सर्वथा नित्य छे या सर्वथा अनित्य छे, अथवा जे  
चोर नथी अने ‘आ चोर छे’ जेम कडेवुं, जे भाषा सत्य पणु होय-परंतु  
जे अनेथी भोजने पीडा थती होय तो ते पणु आ मृषावादमां सम्मिलित



યા તુ આરાધનવિરાધની સા સત્યમૃષા-આરાધની चासौ विराधनी च આરાધનવિરાધની, કર્મધારયત્વાત્ પુંવદ્ભાવઃ । યથાવસ્થિતવસ્તુતત્ત્વાભિધાયિની ત્રિવરીતવસ્ત્વભિધાયિની ચેત્યુભયસ્વભાવા સત્યામૃષા । યથા-કર્મિશ્ચિન્નગરે પશ્ચસુ દારકેષુ જાતેષુ એવમભિધીયતે ‘ અસ્મિન્નગરેઽથ દશ દારકા જાતાઃ ’ ઇતિ સા આરાધનવિરાધની । ઇયં હિ પશ્ચાનાં દારકાણાં યજ્જન્મ, તાવતાંશેન સંત્રાદન-સંભવાદારાધની, દશ ન પૂર્યન્તે ઇત્યેતાવતાંઽશેન વિસંત્રાદસંભવાદ્ વિરાધની ભવતિ । યદ્વા-શ્વસ્તે શતં દાસ્યામીત્યભિધાય પશ્ચાશત્સ્વપિ દત્તેષુ લોકે મૃષાત્વાદર્શનાત્, અદત્તેષ્વેવ ચ મૃષાત્વસિદ્ધેઃ, સર્વથા પ્રદાનક્રિયાઽભાવેન સર્વથાવ્યત્યયાત્ ।

જો ભાષા આરાધની મી હો ઓર વિરાધિની હો વહ સત્યમૃષા ભાષા હૈ । સત્યભાષા કા નામ આરાધિની હૈ ઓર મૃષાભાષા કા નામ વિરાધિની હૈ । ઇન દોનોં સ્વરૂપવાલી જો ભાષા હૈ વહ સત્યામૃષા ભાષા હૈ જૈસે યહ કહના કિ આજ ઇસ ગાંવ મેં દશ બાલક ઉત્પન્ન હુણ હૈં । ડસ ગાંવ મેં પાંચ હી બાલક ઉત્પન્ન હુણ થે । તવ એસા કહના સત્યામૃષા સ્વરૂપ ઇસલિયે હૈ, કિ દશ કે કહને મેં પાંચ કા અન્તર્ભાવ તો હો હી જાતા હૈ અતઃ ઇતને અંશકી અપેક્ષા યહ વચન સત્ય હૈ પરન્તુ દશ બાલક હુણ નહીં હૈં ઇતને અંશ મેં વહ મૃષા હૈ । અથવા એસા કહના કિ “ શ્વસ્તે શતં દાસ્યામિ ” મેં કલ તુમ્હેં સો (૧૦૦) રૂપયે ડૂંગા । ઇસમેં સો રૂપયે ન દેકર વહ યદિ પચાસ રૂપયે હો દે દેતા હૈ તો ઇસપ્રકાર કે વ્યવહાર કો લોક મેં અસત્ય મેં પરિગણિત નહીં ક્રિયા જાતા હૈ । જિતના ભાગ નહીં દિયા ગયા હૈ ડસી મેં અસત્યતા આતી હૈ । હાં યદિ વહ બિલકુલ ન દેતા તો યહ ભાષા

જાણવી જોઈ એ. (૨) જે ભાષા આરાધની પણ હોય અને વિરાધની પણ હોય તે સત્યામૃષા ભાષા છે. સત્યભાષાનું નામ આરાધિની છે અને મૃષા ભાષાનું નામ વિરાધિની છે. આ બન્ને સ્વરૂપવાળી જે ભાષા છે તે સત્યામૃષા ભાષા છે. જેમ એવું કહેવું કે, આજ આ ગામમાં ૧૦ બાળક જન્મ્યાં છે. કોઈ ગામમાં પાંચ જ બાળક જન્મ્યાં હતાં. ત્યારે એવું કહેવું સત્યામૃષા સ્વરૂપ આ માટે છે કે, દશના કહેવામાં પાંચનો અંતર્ભાવ તો થઈ જાય છે. આથી આટલા અંશની અપેક્ષા આ વચન સત્ય છે પરંતુ ઇસ બાળક જન્મ્યાં નથી એટલા અંશે એ મૃષા છે. અથવા જેમ કહેવું કે હું “ કાલે તમને સો રૂપીયા આપીશ, ” આમાં સો ન આપતાં જે ૫૦ રૂપીયા પણ આવે તો આ પ્રકારના વ્યવહારમાં લોકોમાં અસત્ય બોલનાર તરીકેની ગણના નથી થતી, જેટલા ભાગ આપવામાં ન આવ્યો એટલા પુરતી એમાં અસત્યતા આવે છે, પણ જે એ બીલકુલ



या तु नैवाऽसत्या नापि सत्या सा असत्यामृषा नाम चतुर्थीभाषाव्यवहाररूपा ।  
तत्र प्रथमा चतुर्थी च भाषा भाषणीया । चतुर्थी-असत्यामृषा भाषा-आमन्त्र-  
ण्यादिभेदयुक्ता । तत्र कोऽसावामन्त्रण्यादिभेदः ? उच्यते-अयमर्थो भगवत्यामुक्तः ।  
यथा-“अहं भंते ! आसइस्सामो सइस्सामो चिट्ठिस्सामो निसीइस्सामो तुयट्ठिस्सामो ।

आमंतणि आणवणी, जायणि तह पुच्छणी य पणवणी ।

पच्चक्खाणी भासा, भासा इच्छाणुलोमा य ॥ १ ॥

अणभिग्गहिया भासा, भासा य अभिग्गहम्मि वोद्धवा ।

संसयकरणी भासा, वोयडमव्वोयडा चेव ॥ २ ॥

पन्नवणी णं एसा, न एसा भासा मोसा ? ।

मृषा में ही अन्तर्भूत हो जाती (३) । जो न सत्य है, और न असत्य है ऐसी भाषा का नाम असत्यामृषा-अर्थात् व्यवहार भाषा है ४ । इनमें प्रथम एवं चतुर्थ भाषा बोलने योग्य है । चौथी जो असत्यामृषा भाषा है वह आमन्त्रणी आदि भेदों से अनेक प्रकार की कही गई है । इसी विषय को भगवान ने भगवतीसूत्र में कहा है-

अहं भंते ! आसइस्सामो सइस्सामो चिट्ठिस्सामो निसीइस्सामो तुयट्ठिस्सामो ।

आमंतणि आणवणी, जायणि तह पुच्छणी य पणवणी ।

पच्चक्खाणी भासा, भासा इच्छाणुलोमा य ॥ १ ॥

अणभिग्गहिया भासा, भासा य अभिग्गहम्मि वोद्धवा ।

संसयकरणी भासा, वोयडमव्वोयडा चेव ॥ २ ॥

पन्नवणी णं एसा, न एसा भासा मोसा ? ।

न हेत तो अे भाषा मृषामां न अंतर्भूत णनी णत. (३) ने न सत्य छे अने न असत्य छे अेवी भाषानुं नाम असत्यामृषा-अर्थात् व्यवहार भाषा छे. (४) आमां प्रथम अने चोथी भाषा णोलवा योग्य छे. चोथी ने असत्यामृषा भाषा छे, तेने आमंत्रणी आदि भेदोथी अनेक प्रकारनी कडेवामां आवे छे. आ विषयने भगवाने भगवती सूत्रमां कडेल छे-

अहं भते आसइस्सामो सइस्सामो चिट्ठिस्सामो निसीइस्सामो तुयट्ठिस्सामो ।

आमंतणि आणवणी, जायणि तह पुच्छणी य पणवणी ।

पच्चक्खाणी भासा, भासा इच्छाणु लोमाय ॥ १ ॥

अणभिग्गहिया भासा, भासा य अभिग्गहम्मि वोद्धवा ।

संसयकरणी भासा, वोयडमव्वोयडा चेव ॥ २ ॥

पन्नवणी णं एसा, न एसा भासा मोसा ? ।

हंता ! गोयमा ! आसइस्सामो तं चेव० जाव न एसा भासा मोसा ।

( भ० १० श० ३ उ० ४०३ सू० )

छाया—अथ भदन्त ! आशयिष्यामहे शयिष्यामहे स्थास्यामः निषत्स्यामः  
त्यग्वर्तयिष्यामः ।

आमन्त्रणी आज्ञापनी याचनी तथा प्रच्छनी च प्रज्ञापनी ।

प्रत्याख्यानी भाषा, भाषा इच्छानुलोमा च ॥ १ ॥

अनभिगृहीता भाषा, भाषा चाभिग्रहे बोद्धव्या ।

संशयकरणी भाषा, व्याकृता अव्याकृता चैव ॥ २ ॥

प्रज्ञापनी खलु एषा, नैषा भाषा मृषा ? ।

हंत ! गौतम ! आशयिष्यामहे तदेव यावत् नैषा भाषा मृषा ।

व्याख्या—‘अथ’ इति प्रश्नार्थकः । भदन्त ! हे भगवन् इत्येवं श्री महावीरं गौतमः  
पृच्छति—आश्रयिष्यामहे=आश्रयणीयं वस्तु स्वीकरिष्यामः, शयिष्यामहे=विशेषतः  
शयनं करिष्यामहे, स्थास्यामः—ऊर्ध्वस्थानेन स्थास्यामः, निषत्स्यामः=उपवेक्ष्यामः।  
त्वक्परिवर्तयिष्यामः—संस्तारके पार्श्वपरिवर्तनं करिष्यामः, यद्वा—आश्रयिष्यामः=  
आश्रयणीयं स्थानादिकं स्वीकरिष्यामः । इत्यादिका भाषा किं प्रज्ञापनी ? इत्यन्वयः  
इदमुपलक्षणम् । एवंजातीया भाषाविशेषाः किं प्रज्ञापनीरूपाः ? इति भावः ।

हंता ! गोयमा ! आसइस्सामो तं चेव० जाव न एसा भासा मोसा  
( भ. १० श० ३ उ. ४०३ सूत्र )

भगवान् महावीर से गौतम पूछते हैं कि—हे भगवन् ! हम आश्रय-  
योग्य वस्तु का आश्रय लेंगे, शयन करेंगे, खड़े रहेंगे, बैठेंगे, करवट बदलेंगे  
इत्यादिक भाषा, तथा आमंत्रणी आदि भाषा क्या प्रज्ञापनी भाषा है ? यह  
भाषा मृषा नहीं है ? । आमन्त्रणी आदि भाषाओं के नाम ये हैं—१ आमंत्रणी,  
२ आज्ञापनी, ३ याचनी, ४ प्रच्छनी, ५ प्रज्ञापनी, ६ प्रत्याख्यानी, ७ इच्छा-  
नुलोमा, ८ अनभिगृहीता, ९ अभिगृहाता, १० संशयकरणी, ११ व्याकृता,  
१२ अव्याकृता । इस प्रकार गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान् उत्तर

हंता गोयमा ! आसइस्सामो तंचेव० जाव न एसा भासा मोसा (भ. १० श. ३ उ. ४०३ सूत्र)

भगवान् महावीरने गौतम पूछे छे डे डे भगवान् ! अमे सुधशुं, वधुं  
सुधशुं, उला रडिशुं, भेसशुं, करवट बदलशुं, धत्यादिक भाषा तथा आमंत्रणी  
आदि भाषा शुं प्रज्ञापनी भाषा छे ? आ भाषा मृषा नथी ?

आमंत्रणी आदि भाषाओंनां नाम आ छे—१ आमन्त्रणी २ आज्ञापनी  
३ याचनी ४ प्रच्छनी ५ प्रज्ञापनी ६ प्रत्याख्यानी ७ इच्छानुलोमा ८ अनभिगृहीता  
९ अभिगृहीता, १० संशयकरणी, ११ व्याकृता, १२ अव्याकृता. आ प्रकारे गौतम

तत्र-आमन्त्रणी-यथा 'हे साधो !' इत्यादि । एषा च किञ्च वस्तुनोऽविधायकत्वादननिषेधकत्वाच्च सत्यादिभाषात्रयलक्षणवियोगतश्चाऽसत्यामृषा व्यवहाररूपा । १ ।

आज्ञापनी-कार्ये परस्य प्रवर्तनी यथा " इदं कुरु " " इदं मा कुरु " इत्यादि । एषा च निर्दिष्टकार्यप्रवर्तकत्वाददुष्टविवक्षासद्भावाच्चाऽसत्यामृषा । एवमन्यत्रापि भावनीयम् ॥ २ ॥

याचनी-अनिर्दिष्टवस्तुविशेषस्य देहीत्येवं याचनरूपा । यथा- " भिक्षां देहि " ॥ ३ ॥

प्रच्छनी-अविज्ञातस्य संदिग्धस्य वाऽर्थस्य ज्ञानार्थं प्रच्छनम् । यथा- " कथमेतत् " ? ॥ ४ ॥

देते हैं कि हे गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार को भाषा प्रज्ञापनी भाषा है, किन्तु यह भाषा मृषा नहीं है । आमन्त्रणी आदि भाषाओं का अर्थ कहते हैं-

आमन्त्रणी-' हे साधो ! ' इत्यादि । यह किसी वस्तु की अविधायक एवं अनिषेधक होने से, तथा सत्यादि तीन भाषा के लक्षण से रहित होने से असत्यामृषास्वरूप व्यवहार भाषा है १ । आज्ञापनी-दूसरे को कार्य में प्रवृत्त कराने वाली भाषा आज्ञापनी भाषा है । जैसे-' यह करो, यह मत करो ' इत्यादि । यह भाषा निर्दिष्टकार्य में प्रवर्तक होने से तथा निर्दोष विवक्षा के सद्भाव से असत्यामृषा-स्वरूप है २ । याचनी-" भिक्षा दो " इस प्रकार की याचनस्वरूप भाषा याचनी भाषा है ३ । प्रच्छनी-अविज्ञात-अर्थात्-विना जाने हुए विषय को, अथवा संदिग्ध अर्थात्-संदेहयुक्त विषय को जानने के लिये जो पूछना वह प्रच्छनी भाषा है ४ ।

स्वामीना पुछवाथी भगवान उत्तर दे छे के डे गौतम पूर्वोक्त प्रकारनी भाषा प्रज्ञापनीभाषा छे परंतु आ भाषा मृषा नथी. आमन्त्रणी वगेरे भाषाओंना अर्थ कडे छे.

अमन्त्रणी-हे साधो ! इत्यादि ! आ कौछ वस्तुनी अविधायक अने अनिषेधक डोवाथी, तथा सत्यादि भाषात्रयना लक्षणथी रहित डोवाथी असत्यामृषा स्वरूप व्यवहार भाषा छे. १ आज्ञापनी-भीळने कार्यमां प्रवृत्त कराववावाणी भाषा आज्ञापनी भाषा छे. जेम-आ करो, आ न करो, इत्यादि ! आ भाषा निर्दिष्टकार्यमां प्रवर्तक डोवाथी तथा निर्दोष विवक्षाना सद्भावथी असत्यामृषा स्वरूप छे. २ याचनी-" भिक्षादो " आ प्रकारनी याचन स्वरूप भाषा याचनीभाषा छे. ३ प्रच्छनी-अविज्ञात, अर्थात् नळया वगरना विषयनी अथवा -संदिग्ध अर्थात्-संदेहयुक्त विषयने नळया भाटे ने पूछबुं ते पुछनि भाषा छे. ४ प्रज्ञापनी-शिष्यने उप-

પ્રજ્ઞાપની—વિનયસ્યોપદેશદાનરૂપા, અર્થવોધિકા ભાષા, યથા—હિંસાપ્રવૃત્તો-  
ડનન્તદુઃખમાગી ભવતિ ” ઇત્યાદિ । યથા વા—પ્રાણિવધાન્નિવૃત્તાઃ પ્રાણિનો ભવે  
ભવે દીર્ઘાયુષો નીરોગાશ્ચ ભવન્તિ । ઉક્તશ્ચ—

પાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીહાઽ યા અરોગા ય ।

એસ મઈ પન્નત્તા, પન્નવળી વીયરાગેહિં ॥ ૧ ॥ ૫ ॥

છાયા—પ્રાણિવધાદ્ નિવૃત્તા, ભવન્તિ દીર્ઘાયુષઃ અરોગાશ્ચ ।

એવા મતિઃ પ્રજ્ઞા, પ્રજ્ઞાપની વીતરાગૈઃ ॥ ૧ ॥

પ્રત્યાખ્યાનીભાષા—યાચમાનસ્ય પ્રતિષેધ વચનમ્ । યથા—મર્યાદાતિરિક્તં વસ્ત્રં  
પાત્રં વા યાચમાનં શિષ્યં પ્રતિ ગુરુર્વદતિ—“અધિકં વસ્ત્રં પાત્રં વા ન દીયતે” ઇતિ ॥૬॥

પ્રજ્ઞાપનો—શિષ્ય કો ઉપદેશ દેને સ્વરૂપ જો ભાષા હોતી હૈ કિ જિસસે  
ઉસે અર્થ કા અવબોધ હોતા હૈ ઉમકા નામ પ્રજ્ઞાપની ભાષા હૈ । જૈસે—“ જો  
હિંસા મેં પ્રવૃત્ત હોતા હૈ વહ અનંત દુઃખ કા ભાગી હોતા હૈ ” અથવા  
જો પ્રાણિવધ સે દૂર રહતે હૈં વે ભવ ભવ મેં દીર્ઘ આયુ પાતે હૈં તથા  
નિરોગ શરીર હોતે હૈં ૫ । ઉક્તંચ—

“ પાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીહાઽ યા અરોગા ય ।

એસ મઈ પન્નત્તા, પન્નવળી વીયરાગેહિં ॥ ”

પ્રત્યાખ્યાની—ગુરુ મહારાજ કે પાસ યાચના કરતે હુણ શિષ્ય કે  
લિયે જો નિષેધાત્મક ભાષા કા પ્રયોગ હોતા હૈ વહ પ્રત્યાખ્યાની ભાષા હૈ,  
જૈસે—મર્યાદા સે અતિરિક્ત વસ્ત્ર એવં પાત્ર કો યાચને વાલે શિષ્ય કો  
ગુરુ મહારાજ કહતે હૈં કિ—મર્યાદા સે અધિક વસ્ત્ર વ પાત્ર નહીં દિયા  
જાતા હૈ ” ઇત્યાદિ ૬ । ઇચ્છાનુલોમા—પ્રતિપાદન કરને વાલે કી અર્થાત્

દેશ આપવા સ્વરૂપ જે ભાષા હોય છે તે જેનાથી તેને અર્થનો અવબોધ થાય છે.  
એતું નામ પ્રજ્ઞાપનીભાષા છે જેમ—“ જે હિંસામાં પ્રવૃત્ત બને છે તે અનંત  
દુઃખનો ભાગી થાય છે ” અથવા જે પ્રાણી વધથી દૂર રહે છે તે ભવભવમાં  
દીર્ઘાયુ ભોગવે છે તથા શરીરે નિરોગી રહે છે. ૫ કહ્યું છે કે—

“ પાણિવહાઽ નિયત્તા, હવંતિ દીહાઽ યા અરોગા ય ।

એસ મઈ પન્નત્તા, પન્નવળી વીયરાગેહિં ॥ ”

પ્રત્યાખ્યાની—ગુરુ મહારાજની પાસે યાચના કરનાર શિષ્યને માટે જે  
નિષેધાત્મક ભાષાનો પ્રયોગ હોય છે તે પ્રત્યાખ્યાની ભાષા છે. જેમ—મર્યાદાથી  
અતિરિક્ત વસ્ત્ર અને પાત્રની યાચના કરનાર શિષ્યને ગુરુ મહારાજ કહે છે કે  
મર્યાદાથી વધુ વસ્ત્ર અને પાત્ર દેવામાં આવતું નથી. (૬) ઇત્યાદિ ! ઇચ્છાનુલોમા—

इच्छानुलोमा—प्रतिपादयितुर्या इच्छा तदनुलोमा—तदनुकूला । यथा शुभकार्ये प्रेरितस्य “ एवमस्तु ममाप्यभिप्रेतमेतत् ” एवं रूपा, यथा वा कश्चित् किञ्चित् शुभकार्यमारभमाणः कंचन पृच्छति, स ग्राह—‘ भवान् करोतु ममाप्येतदभिप्रेतम् ’ इति । यथा वा-केनचित् कश्चिदुक्तः—“साधुसकाशं गच्छामः” स वदति—एवमस्तु इति॥७॥

अनभिगृहीता—अर्थमनभिगृह्य योच्यते ‘ डित्थादिवत् ’ । अथवा—अनभिगृह्य यत्र न प्रतिनियतार्थावधारणम् । यथा—बहुषुकार्येष्ववस्थितेषु कश्चित् कंचन पृच्छति—किमिदानीं करोमि ?, स ग्राह—‘ यत् रोचते तत् कुरु ’ इति ॥ ८ ॥

अभिगृहीता—अर्थमभिगृह्य योच्यते—इदं वस्त्रपात्रादिक धर्मोपकरणम्, अथवा

प्रेरक की इच्छा के अनुकूल जो भाषा बोली जाती है वह ‘इच्छानुलोमा’ भाषा है—जैसे कोई किसी को किसी शुभ कार्य में प्रेरणा करे तब वह कहे कि ‘ठीक है यह मुझे भी अभिलषित है’ । अथवा कोई किसी शुभ कार्य का प्रारंभ करते हुए किसी को पूछे तो वह कहे कि—करो यह मुझे भी पसंद है । अथवा—कोई ऐसा कहे—‘मैं साधु के पास जा रहा हूँ’ तो सुनने वाला कहता है कि अच्छा जाओ ७ । अनभिगृहीता—अर्थशून्य—डित्थडवित्थादि शब्दों का बोलना । अथवा जिसमें किसी एक अर्थ का निश्चय न हो जैसे—बहुतसे कार्यों के उपस्थित होने पर कोई किसी से जब यह पूछता है कि—‘कहो मैं इस समय कौनसा काम करूँ?’ तो वह कहता है कि—जो तुम्हें रुचे सो करो’ । इस प्रकार की भाषाका नाम अनभिगृहीता भाषा है ८ । अभिगृहीता—अर्थ को लक्ष्य करके जिस भाषाका प्रयोग किया जाता है वह अभिगृहीता भाषा है—जैसे ये वस्त्र पात्रादिक धर्म के उपकरण हैं’ । अथवा ‘इस

प्रतिपादन करवावाणानी अर्थात्—प्रेरकनी भ्रिष्ठाने अनुकूल जे भाषा ओलाय छे ते ‘इच्छानुलोमा’ भाषा छे. जेम-कोई कोईने कोई शुभ कार्यमां प्रेरणा करे त्यारे कडे के ठीक छे. जे मारी पणु अबिलाषा छे अथवा—कोई शुभ कार्यना प्रारंभ करतां कोईने पूछे तो ते कडे के—करे। जे मने पणु पसंद छे. अथवा कोई जेम कडे के हुं साधुनी पासे जठ रह्यो छुं तो सांलगनार कडे के, साइं नव. ७ अनभिगृहिता—अर्थशून्य—“ डित्थ डवित्थादि ” शब्द ओलवो अथवा जेमां कोई जेक अर्थना निश्चय न होय, जेम-धरुणां कामे उपस्थित यतां कोई श्रीजनने ज्यारे जे पूछे छे के, कडे हुं आ वणते कयुं काम करूं, तो ते कडे छे के, जे तमने ज्ये ते करे। आ प्रकारनी भाषानुं नाम अनभिगृहिता भाषा छे. ८ अभिगृहीता—अर्थनुं लक्ष करीने जे भाषाने प्रयोग करवामां आवे छे ते ‘अभिगृहिता’ भाषा छे. जेम—“ आ वस्त्र पात्रादिक धर्मनां उपकरण छे ” अथवा ‘आ समये

—પ્રતિનિયતાર્થાવધારણમ્ । યથા—ઇદમિદાનીં કર્તવ્યમ્ , इदं न कर्तव्यमिति ॥૧॥

સંશયકરણી—યાડનેકાર્થપ્રતિપત્તિકરી સા । યા ભાષા અનેકાર્થાભિધાયિ તયા પરસ્ય સંશયમુત્પાદયતિ, યથા - સૈન્ધવમાનયેત્યત્ર સૈન્ધવશબ્દો નરહ્લવળ-વાજિવાચકત્વેન સંશયોત્પાદકઃ ॥ ૧૦ ॥

વ્યાકૃતા—યા પ્રકટાર્થા । યથા—અહિંસા—સર્વકલ્યાણકારિણી ॥ ૧૧ ॥

અવ્યાકૃતા—અતિગમ્ભીરશબ્દાર્થા, અવ્યક્તાક્ષરપયુક્તા વા, યથા—  
“સંયત-સ્ય મહત્પાપં પ્રતિક્રમણકર્મણા” । इत्यादि, યથા વા મમ્મળાદિ બાલભાષા ॥ ૧૨ ॥ एषा=आमन्त्रण्यादिका भाषा प्रज्ञापनी खलु-प्रज्ञाप्यते प्रकटी क्रियतेऽर्थोऽनयेति प्रज्ञापनी अर्थकथनी, સા ભાષણીયા इत्यर्थः । नैषा भाषा मृषा

સમય યહ કરના ચાહિયે, યહ નહીં કરના ચાહિયે ’ ૯ । સંશયકરણી-જિસ ભાષા સે સુનને વાલેકો અનેક અર્થોં કી પ્રતિપત્તિ હોને લગે ઉસ ભાષા કા નામ સંશયકરણી ભાષા હૈ, જૈસે-કિસી ને કહા કિ-‘સૈન્ધવ લાઓ’ યહ સૈન્ધવ શબ્દ પુરુષ, લવળ ઓર ઘોડે રૂપ અર્થોં કા પ્રતિપાદક હૈ, અતઃ સુનને વાલે કો સંશય જનક હો જાતા હૈ ૧૦ । વ્યાકૃતા-જિસકા અર્થ સ્પષ્ટ હોતા હૈ વહ વ્યાકૃતા ભાષા હૈ જૈસે-“અહિંસા સર્વ પ્રકાર સે કલ્યાણ કરને વાલી હૈ ” ૧૧ । અવ્યાકૃતા-અતિગંભોર શબ્દાર્થવાલી ભાષા અવ્યાકૃતા ભાષા હૈ । અથવા-જો અવ્યક્ત અક્ષર સે યુક્ત હોતી હૈ વહ ભાષા અવ્યાકૃતા ભાષા હૈ જૈસે-“સંયત-સ્ય મહત્પાપં પ્રતિક્રમણકર્મણા” પ્રતિક્રમણ કર્મ સે સંયત કો વડા ભારી પાપ લગતા હૈ । યહાં પર જબ “સ્ય” કો ક્રિયાપદ માન લિયા જાતા હૈ તબ ઈસકા

આ કરવું જોઈએ, આ ન કરવું જોઈએ.” ૯ સંશયકરણી-જે ભાષાથી સાંભળનારને અનેક અર્થોનો આભાસ થવા લાગે તે ભાષાનું નામ સંશયકરણી ભાષા છે. જેમ કોઈએ કહ્યું કે—“સૈન્ધવ લાઓ” આ સૈન્ધવ શબ્દ પુરુષ મીઠું અને ઘોડારૂપ અર્થોનો પ્રતિપાદક છે. આથી સાંભળવાવાળાને પ્રકરણાદિના અભાવમાં સંશયજનક બને છે. એ માટે પ્રકરણ સમજીને આ ભાષા યોલવામાં દોષ નથી કેમકે, તે વ્યવહારૂ ભાષા છે. ૧૦ વ્યાકૃતા-જેનો અર્થ સ્પષ્ટ થાય છે તે વ્યાકૃત ભાષા છે. જેમ—“અહિંસા” સર્વ પ્રકારથી કલ્યાણ કરવાવાળી છે.” ૧૧ અવ્યાકૃતા અતિ ગંભીર શબ્દાર્થવાળી ભાષા અવ્યાકૃતા ભાષા છે. અથવા-જે અવ્યક્ત અક્ષરથી યુક્ત હોય છે તે ભાષા અવ્યાકૃતા ભાષા છે. જેમ—

સંયત-સ્ય મહત્પાપં પ્રતિક્રમણા કર્મણા—

પ્રતિક્રમણ કર્મથી સંયતને મોટું ભારે પાપ લાગે છે, અહિં જ્યારે “સ્ય” ને ક્રિયાપદ માનવામાં આવે ત્યારે એનો અર્થ એવો થાય છે કે, હે



—एषा भाषा मृषा अवक्तव्या नेत्यर्थः । प्रश्नकर्तुरयमभिप्रायः—‘ आशयिष्यामहे ’ इत्यादिका भाषा भविष्यत्कालविषया, साचान्तरायसंभवेन कदाचिदर्थभिधायिनी न स्यात् । तथा एकार्थविषयाऽपि बहुवचनान्ततयाऽभिहिता तस्मादयथार्था । तथा—आमन्त्रणीप्रभृतिका, सत्यभाषावदर्थे नियता नास्ति विधिप्रतिषेधबोधकत्वाभावात्, अतः किमियं वक्तव्या स्यात्, उत न ? इति ।

अर्थ ऐसा होता है कि हे संयत ? प्रतिक्रमण कर्म से तुम अपने पापोंका क्षय करो । यह बोध शीघ्र नहीं हो सकता है, अतः इसे अव्याकृत भाषा कहा है । अथवा—बालककी भाषाको अव्याकृत भाषा कहते हैं १२ । ये सब भाषायें प्रज्ञापनी हैं, यह प्रज्ञापनी भाषा मृषास्वरूप नहीं है । प्रश्न करने वालेका कहने का हेतु यह है—जब यह कहा जाता है कि हम ‘शयनकरेंगे’ इत्यादि, तब यह भाषा भविष्यत् काल को विषय करने वाली होने से अर्थकी पूर्ति में असमर्थ जान पड़ती है, कारण कि अन्तराय कर्म के उदय की संभावना होने से उस विवक्षित अर्थकी कदाचित् पूर्ति न भी हो सके तो फिर जिस प्रकार मृषाभाषा अर्थको कहनेवाली नहीं मानी जाती है उसी प्रकार यह भाषा भी अनर्थाभिधायिनी मान लेना चाहिये तथा “हम शयनकरेंगे” इस कथनमें “मैं शयनकरूंगा” इस एक वचन के ही प्रयोग में बहुवचन का प्रयोग किया गया है । जैसे एक को अनेक कहनेवाली भाषा अयथार्थ मानी जाती है । उसी प्रकार यह भी अयथार्थ मानी जानी चाहिये । इसी तरह आमन्त्रणी भाषाएँ भी सत्य भाषाकी तरह अर्थ में नियत नहीं हैं, क्यों कि इनमें विधि एवं प्रतिषेध की बोधकता का अभाव है, इसलिये यह संदेह होता है कि यह बोलने के योग्य है अथवा नहीं है । इस प्रकारकी आशंका का यह उत्तर है कि

संयत ! प्रतिक्रमण कर्मार्थी तमे तमारं पापानो क्षय करे। आ बोध बलही थर्ष शकतो नथी। आधी आने अव्याकृता भाषा कडेवाभां आवे छे। अथवा—आणकनी भाषाने अव्याकृत भाषा कडेवाभां आवे छे। १२ आ अधी भाषा प्रज्ञापनी छे। आ प्रज्ञापनी भाषा मृषा स्वप्ननी नथी। प्रश्न करनारना कडेवानो मतलब अे छे के, न्यारे अेम कडेवाभां आवे छे के, “अमे सुध अे छीअे” आ कथनमां “हुं सुठं छुं” आ अेक वचनना प्रयोगमां बहु वचनना प्रयोग करवाभां आवे छे। अेम अेकने अनेक कडेवावाणी भाषा अयथार्थ मानवाभां आवे छे अे रीते पणु अयथार्थ मानवी अेध अे। आ रीते आमन्त्रणी भाषाअो पणु सत्य भाषानी अेम अर्थमां नियत नथी केभके, अेनामां विधि अने प्रतिषेधनी बोधकतानो अभाव छे। आ भाटे अे संदेह थाय छे, अे बोलवाने योग्य छे,

अत्रोत्तरमाह—हंता ! इत्यादि । ‘ हन्त ’ इति स्वीकारार्थकः, अयं भावः—  
 ‘ आशयिष्यामहे ’ ‘ शयिष्यामहे ’ इत्यादिका भाषा निश्चयात्मकशब्दप्रयोगा-  
 भावान्नास्ति निश्चयात्मिका, या तु—‘ आशयिष्यामहे एव ’ ‘ शयिष्यामहे एव ’  
 इत्यादिका निश्चयात्मिका सैवान्तरायसंभवाद् भविष्यत्कालविषया भाषा मृषा-  
 भवितुमर्हति । ‘ आशयिष्यामहे ’ इत्यादौ तु—शयनादिक्रियायां वक्तुरभिप्रायः  
 “शयनादिक्रियाकरणस्य भावो मम वर्तते” इत्यादि रूपः सत्य एवास्तीति भवति  
 प्रज्ञापनी । एकार्थविषये बहुवचनाभिधानमपि आत्मनि गुरौ च शास्त्रानुमतं,  
 तस्माद् बहुवचनान्ततया प्रयुक्ताऽपि प्रज्ञापन्येव भवति । एवमामन्त्रण्यादिकाऽपि ।

“ आश्रयिष्यामहे ” इत्यादिक भाषाएँ निश्चयात्मक शब्द के प्रयोग के अभाव से निश्चयात्मक नहीं हैं । ये निश्चयात्मक जब ही मानी जाती हैं कि जब इनके साथ निश्चयात्मक शब्दका प्रयोग किया हुआ होता है । जैसे—आश्रयिष्यामहे एव, शयिष्यामहे एव” इस प्रकारकी निश्चया-  
 त्मक भाषा में जो कि भविष्यत् कालको विषय करनेवाली हो अन्तराय कर्म के उद्द्य से अपने अर्थकी पूर्ति की निश्चितता संदिग्ध रहती है अतः वही भाषा मृषावाद रूप मानी जाती है । “ आश्रयिष्यामहे ” इत्यादि भाषा में तो शयनरूप क्रिया करने का भाव ही केवल वक्ता का रहा हुआ है अतः उस अपेक्षा वह सत्य ही है । इसी अर्थ को मन में रख कर मुनिराज भविष्यत्काल के अर्थ में भाव शब्द का प्रयोग करते हैं, जैसे—‘कल स्वाध्याय करने का भाव है’ अथवा—‘तपस्या करने का भाव है’ इत्यादि । एकवचन में भी व्याकरणसिद्धान्त के अनुसार

अथवा नथी अे प्रकारनी आशंकाने आ उत्तर छे के, “ आशयिष्यामहे ” धत्यादिके लाषाओ निश्चयात्मक नथी. अने निश्चयात्मक ल्यारे न मानवामां आवे के ल्यारे अेनी साथे निश्चयात्मक शब्दने प्रयोग करवामां आवेल डोय नेम आशयिष्यामहे एव शयिष्यामहे एव—आ प्रकारनी निश्चयात्मक लाषामां के ने भविष्यत् कालने विषय करवावाणी डोय अंतराय कर्मना उद्द्यथी तेना अर्थनी पूर्तिनी निश्चितता संदिग्ध रहे छे. आथी ते लाषा मृषा-  
 वान रूप मानवामां आवे छे. “ आशयिष्यामहे ” धत्यादि लाषामां तो कडेनारने सुवानी क्रिया करवाने लाव न इकत रहेल छे. आथी अे अपेक्षाथी ते सत्य न छे. आ न अर्थने मनमां राणी मुनिराज भविष्यकालना अर्थमां लाव शब्दने प्रयोग करे छे. नेम—‘ काले स्वाध्याय करवाने लाव छे ’ अथवा “ तपस्या करवाने लाव छे ” धत्यादि ! अेक वचनमां पणु व्याकरण सिद्धांतनी अनुसार

या निरवद्यपुरुषार्थसाधनी सा प्रज्ञापन्येव । यथा “ हे साधो ! ” “ इदं कुरु ” “ इदं मा कुरु ” इत्यादिका । सा तु भाषणीयैवेति ।

भाषादोषं=सावद्यानुमोदनादिकं, मृषा-कर्कशाऽसभ्यशब्दोच्चारणादिकं च, परिहरेत् । च-पुनः, मायां सदा=सर्वकालं परिवर्जयेत् ।

अत्र मायामित्युपलक्षणम्, क्रोधमानलोभानां कषायाणाम् । सर्वान् कषायान् परिवर्जयेदित्यर्थः । कषायाणां मृषाभाषणहेतुत्वात्, कषायवर्जने सति मृषाभाषणपरिहारः सुतरां स्यादिति भावः ॥ २४ ॥

बहुवचन का प्रयोग हो जाता है । वहां कहागया ह कि अपने में एवं गुरु में बहुवचन का प्रयोग करना निर्दोष है, इसलिये एक में भी बहुवचनान्तरूप से प्रयुक्त भाषा प्रज्ञापनी ही भाषा है । इसी तरह आमन्त्रणी आदि भाषाएँ भी जो निरवद्य पुरुषार्थ की साधक होती हैं वे प्रज्ञापनी ही हैं । जैसे-“ हे साधो । ” “ यह करो यह मत करो ” इत्यादि ।

सावद्य कर्म की अनुमोदना आदि करना यह भाषा दोष है । इसी प्रकार कर्कश एवं कठोर शब्द का उच्चारण करना आदि भी मृषा भाषा में ही अन्तर्हित है । माया शब्द उपलक्षण है । इसलिये क्रोधादिक कषाय के विषय में भी समझ लेना चाहिये, क्यों कि कषाय के आवेश से ही मृषाभाषण होता है । इनके परिवर्जन से मृषाभाषाका परिवर्जन हो जाता है । अतः भाषादोष एवं माया का सदा काल परित्याग कर देना चाहिये ॥ २४ ॥

બહુ વચનનો પ્રયોગ થઈ બધ છે, આથી એ બતાવાયું છે કે, પોતાનામાં અને ગુરુ મહારાજમાં બહુ વચનનો પ્રયોગ કરવો નિર્દોષ છે. આ માટે એકમાં પણ બહુવચનાન્તરૂપથી પ્રયુક્ત ભાષા પ્રજ્ઞાપની ભાષા જ છે આ રીતે આમન્ત્રણી આદિ ભાષાઓ પણ જે નિરવધ પુરૂષાર્થની સાધક હોય છે તે પ્રજ્ઞાપની જ છે. જેમ—“ હે સાધો ! ” “ આ કરો, આ ન કરો, ” ઇત્યાદિ !

સાવધ—કર્મની અનુમોદના આદિ કરવી એ ભાષા દોષ છે. આ પ્રકારે કર્કશ અને કઠોર શબ્દનું ઉચ્ચારણ કરવું આદિ પણ મૃષાભાષામાં જ અન્તર્હિત છે. માયા શબ્દ ઉપલક્ષણ છે આ માટે ક્રોધાદિક કષાયના વિષયમાં પણ સમજવું જોઈએ. કેમકે, કષાયના આવેશથી જ મૃષાભાષણ થાય છે. તેના ત્યાગથી મૃષા ભાષાનો ત્યાગ થાય છે. આથી ભાષાદોષ અને માયાનો સદાકાળ પરિત્યાગ કરી દેવો જોઈએ. (૨૪)

उ० २६

मूलम्—न लवेज्जं पुट्टो सावज्जं, न निरट्टं न मम्मयं ।

अप्पणट्टा परट्टा वा, उभयस्संतरेण वा ॥ २५ ॥

छाया—न लपेत् पृष्ठः सावद्यं, न निरर्थं न मर्मगम् ।

आत्मार्थं परार्थं वा, उभयस्य अन्तरेण वा ॥ २५ ॥

टीका—‘न लवेज्जं’ इत्यादि । पृष्ठः=केनचित्, सावद्यं-अवद्येन-पापेन सह वर्तते इति सावद्यं-सदोषं वचनं न लपेत्-न वदेत्, सावद्यवचनं हि रागद्वेषादिदुर्गुणनिधानं सकलास्रनिदानम्, आत्मसमाधिविधुविधुंतुदस्वरूपं, गुणवृक्षस-मूलोन्मूलने प्रचण्डझंझावातरूपं, कषायविषवल्लीवर्धकं, षड्जीवनिकायोपमर्दकम् ।

न लवेज्जं इत्यादि—

अन्वयार्थ—(पुट्टो सावज्जं न लवेज्ज-पृष्ठः सावद्यं न लपेत्) किसी के द्वारा पूछे जाने पर सावद्य-पापयुक्त वचन नहीं बोलना चाहिये । (न निरट्टं न मम्मयं-न निरर्थकं न मर्मगं) निरर्थक वचन नहीं बोलना चाहिये । मर्म उद्घाटक वचन नहीं बोलना चाहिये । (अप्पणट्टा परट्टा वा उभयस्संतरेण वा सावज्जं न लवेज्ज-आत्मार्थं परार्थं वा उभयस्यान्तरेण वा सावद्यं न लपेत्) अपने निमित्त अथवा पर के निमित्त तथा उभय-स्व पर के निमित्त और विना प्रयोजन के (व्यर्थ) भी सावद्य वचन नहीं बोलना चाहिये । क्यों कि-सावद्य वचन राग द्वेष आदि दुर्गुणों का निधान है, समस्त आस्रवों का निदान-कारण है, आत्मसमाधिरूप चन्द्रमा को ग्रसन करने में राहुसमान है, गुणरूप वृक्षों को जड़ से उखाड़ने में प्रचण्ड झंझावात समान है, तथा कषाय-

न लवेज्जं इत्यादि—

अन्वयार्थ—पुट्टो सावज्जं न लवेज्ज-पृष्ठः सावद्यं न लपेत्—केहिना पुछवाथी या पयुक्त सावद्य वचन भोलवुं भेधं अने नही. न निरट्टं न मम्मयं-न निरर्थकं न मर्मगं निरर्थक वचन भोलवुं न भेधं अने मर्म उद्घाटक वचन भोलवुं न भेधं अने.

अप्पणट्टा परट्टा वा उभयस्संतरेण वा सावज्जं न लवेज्जं—

आत्मार्थं परार्थं वा उभयस्यान्तरेण वा सावद्यं न लपेत्—

पोताना निमित्त अथवा भीजना निमित्त तथा अरसपरसना निमित्त अने वगर प्रयोजन (व्यर्थ) सावद्य वचन न भोलवां भेधं अने.

केमके, सावद्य वचन राग द्वेष आदि दुर्गुणानुं निधान छे, समस्त आश्रवोनुं कारण छे, आत्मसमाधिइय अद्रमानुं अडणु असित करवामां राहु समान छे, शुणुइय वृक्षने जडथी उणेडवामां अथंड अंजावात समान छे, तथा

**सावद्यवचनभाषणदृष्टान्तः—**

निरवद्यभाषानभिज्ञः कश्चिदश्वपतिर्लक्षमूल्यकमश्वं विक्रेतुं कस्मिंश्चिन्नगरे-  
जगाम । तत्राकस्मादश्वपतिहस्तादश्वो निर्मुक्तः सन् धावति । धावन्तमश्वं परिग्रहीतुं  
तत्पृष्ठतोऽश्वपतिरपि धावति । तं परिग्रहीतुमशक्तोऽसौ धावन्नात् परिश्रान्तः कोपा-  
वेशेन तदानीं स्वाभिमुखमागच्छन्तं कंचिद् भाषादोषानभिज्ञं दण्डहस्तं पुरुषम-  
ब्रवीत्-भो ! अश्वोऽयं धावति, एनं मारय मारय, एवमुक्तोऽसौ दण्डेन तमश्वं  
मर्मस्थाने ताडितवान् । तदाऽसौ दण्डाघातेन मृतः । अथाश्वपतिस्तं तुरगघातकं  
रूप विषलताओं को बढाने में मेघसमान है, एवं षडजीवनिकार्यों का  
उपमर्दन करने वाला है ।

सावद्य वचन के बोलने में जीव को क्या हानी उठानी पडती है,  
इसे दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट किया जाता है.

एक अश्वपति था जो निरवद्य भाषा बोलने का अनभिज्ञ था । वह  
एक लाख रुपया की कीमत वाले अपने घोड़े को बेचने के लिये किसी  
नगर में आया । वहां आते हा उसके हाथ से वह घोडा छूटकर भाग  
निकला । भागते हुए उस घोड़े का पीछा करने पर भी वह पकड नहीं  
सका । जब यह दौडते २ थक गया तो क्रोधके आवेश में आकर इसने  
एक पुरुष से जो हाथ में दंडा लिये हुए इसकी ही ओर आ रहा था ।  
तथा भाषा के दोष से अनभिज्ञ था कहा कि हे भाई देखो यह घोडा  
जो भाग रहा है इसे मारो मारो । इस प्रकार अश्वपति के कहने पर  
उस व्यक्ति ने एक दंडा ऐसा मारा जो उस घोड़े के मर्मस्थान में लगा ।

कषायरूप विष लताओंने वधारनार छे, षट् लुवनीकायेानुं उपमर्दन करनार छे.

सावद्य वचन ओलवाथी शुं अनर्थ थाय छे, ते आ द्रष्टां द्वारा स्पष्ट  
करवामां आवे छे—

એક અશ્વપતિ હતો, જે નિરવદ્ય ભાષા બોલવામાં અનભિજ્ઞ હતો. તે  
એક લાખ રૂપીયાની કિંમતના પોતાના ઘોડાને વેચવા માટે કોઈ એક નગરમાં  
ગયો ત્યાં પહોંચતાં જ તેના હાથમાંથી તે ઘોડો છુટીને ભાગી ગયો, ભાગી  
રહેલા તે ઘોડા પાછળ તેને હાથ કરવા તે ખૂબ દોડયો છતાં પકડી શકાયો  
નહીં. ત્યારે તે દોડતાં દોડતાં થાકી ગયો ત્યારે ક્રોધના આવેશમાં આવી એણે એક  
પુરુષ, કે જે હાથમાં દંડો લઈને તેની સામે આવી રહ્યો હતો અને તે ભાષાના  
દોષથી અબ્બણ હતો, તેને કહ્યું કે હે ભાઈ! આ ઘોડો જે ભાગી રહ્યો છે તેને મારો.  
આ પ્રકારે એ અશ્વપતિના કહેવાથી પેલા માણસે એક દંડો ઘોડાને એવો માર્યો  
કે જે મર્મસ્થાનમાં લાગવાથી તેના પ્રહારના કારણે ઘોડો એજ વખતે મરી ગયો.



गृहीत्वा न्यायालयं गतः । तत्र स न्यायाध्यक्षसंनिधौ वदति—अनेन मम लक्ष्मू-  
ल्यकस्तुरगो दण्डाघातेन मारितः। तदा न्यायाध्यक्षेण कथितम्—‘कथय कस्ते साक्षी’  
इति । अश्वपतिर्ब्रूते—अस्यैव पुत्रो मम साक्षी । न्यायाध्यक्षेण पृष्टस्तत्पुत्रोऽवदत्—  
अनेनाश्वपतिना मम पिता निगदितः—“ भो ! तुरगोऽयं धावति, एनं मारय मारय ”  
इति । तदा मम पित्रा दण्डेनास्य तुरगो मारितः । एवं साक्षिभाषणं श्रुत्वा न्याया-  
धीशो मनसि विचारयति—अहो ! सावद्यभाषादोषानभिज्ञतयाऽनेनाश्वपतिना ‘ मारय  
मारय ’ इत्युक्तम् दण्डताडनभयं प्रदर्श्य तुरगं निवर्तयेत्याशयेनानेन प्रोक्तमेतत् ।

घोडा दंडा के प्रहार से शीघ्र मर गया । जब अश्वपति ने अपने घोड़ेको मरा हुआ देखा तो वह उस मारने वाले को पकड़कर न्यायालय ले गया । न्यायधीश के समक्ष उसके ऊपर अभियोग (आरोप) लगा ने के अभिप्राय से इसने कहा कि इसने मेरा एक लाख रुपये की कीमत का घोडा दंडे के प्रहार से मार दिया है । यह सुनकर न्यायधीश ने कहा ठीक है । परंतु इसका साक्षी कौन है कहो ! अश्वपतिने कहा कि साहेब ! इसका पुत्र ही मेरे इस विषय में साक्षी है । न्यायधीश ने उसके पुत्र से पूछा—तब पुत्र ने कहा कि स्वयं इस अश्वपति ने ही मेरे पिता से घोडे को मारने के लिये कहा था । अतः मेरे पिता ने दंडे के प्रहार से इस के घोडे को मारा है । इस प्रकार साक्षी के भाषण को सुनकर न्यायधीश ने मन में विचार किया मालूम पडता है कि घोडे का यह स्वामी भाषा दोष से अनभिज्ञ है । इसलिये इसने “मारो मारो” ऐसा कहा है । इसके कहने का अभिप्राय केवल उस समय इतना ही था की यह दण्डे का भय दिखलाकर उस घोडे को लौटा देवे । इस

न्याये अश्वपतिञ्चे पोताना घोडाने मरणु पायेदो ज्ञेयो त्यारे ते मार-  
नारने पकडी न्यायालयां लब्धं गयो, न्यायाध्यक्षिणी सामे तेना उपर आरोप  
लगाववाना लावथी तेणु कहुं के, आ माणुसे मारा अेक लाख रुपीयानी किंम-  
तना घोडाने दंडाना प्रहारथी मारी नापेल छे. आ सांलणीने न्यायाधीशे कहुं  
ठीक छे, परंतु आने साक्षी केणु छे ते कडो. अश्वपतिञ्चे कहुं के, साहेब !  
तेना पुत्र ज मारा आ विषयमां साक्षी छे. न्यायाधीशे तेना पुत्रने पूछ्युं त्यारे  
पुत्रे कहुं के, आ अश्वपतिञ्चे पोते ज मारा पिताने घोडाने मारवानुं कहुं डतुं.  
आथी मारा पिताने दंडाना प्रहारथी तेना घोडाने मारेद छे. आ प्रकारे साक्षीतुं  
भाषणु सांलणी न्यायाधीशे मनमां विचार करी के घोडाने आ स्वामी लाषा  
दोषथी अनभिज्ञ छे तेपुं ज्ञाय छे, आ भाटे तेणु मारो, मारो ! अेभ  
कडेद छे. आभ कडेवाने अभिप्राय केवण ते समय अेटेदो ज डतो के, दंडाने



इत्थं मनसि विमृश्य न्यायाधीशः सावद्यभाषाभाषिणमश्वपतिं प्राह—त्वया सावद्य-  
भाषा प्रोक्ता, तत्फलमेतत् प्राप्तम् । पुनरेवं कदापि कथमपि सावद्यभाषा न  
वाच्या ॥ इति । तथा निरर्थम्=अर्थरहितं न लपेत्, यथा—

एष बन्ध्यासुतो याति, खपुष्पकृतशेखरः ।

मृगतृष्णाम्भसि स्नातः, शशश्रृंगधनुर्धरः ॥ १ ॥

प्रकार विचार कर सावद्य भाषा भाषी उस अश्वस्वामी से न्यायाधीशने  
कहा कि इसका क्या अपराध है ! अपराध तो तेरा ही है । जो तूने  
मारो २ इस प्रकारकी सावद्य भाषा द्वारा इसे मार ने के लिये उत्साहित  
किया, उसीका यह फल है । अब आगे इस बात का ध्यान रखो कि  
इस प्रकारकी सावद्य भाषा न बोली जाय ।

इसी प्रकार निरर्थक भाषा भी नहीं बोलनी चाहिये । जिस भाषा  
का कोई अर्थ नहीं होता हो ऐसी भाषा का प्रयोग करना भी वर्जित  
बतलाया गया है—जैसे—

एष बन्ध्या सुतो याति । खपुष्पकृतशेखरः ।

मृगतृष्णाम्भसि स्नातः । शशश्रृंगधनुर्धरः ॥ ९ ॥

यह बन्ध्या पुत्र जा रहा है । इस के शिर पर आकाश के पुष्पों की  
माला है, तथा यह मृग तृष्णा के जल में स्नान किया हुआ है, इस के  
हाथ में शशले के सींग का धनुष है । इस प्रकार के वचन निरर्थक  
होते हैं । क्यों कि न तो बन्ध्या का कोई पुत्र होता है, न आकाश का

लय देखाडी ते घोडाने पाछे डेरवी हे. आ प्रकारने विचार करी सावद्य भाषा-  
भाषी ते अश्वस्वामीने न्यायाधीशे कहुं आने। शुं अपराध छे, अपराध तो तारो  
छे, जे ते मारो, मारो ! आ प्रकारनी सावद्य भाषा द्वारा तने मारवा भाटे  
उत्साहित जनाव्यो। तेनुं आ इण छे, हुवे पछी जे वात ध्यानमां राज्यो के आ  
प्रकारनी सावद्य भाषा जेवनामां न आवे।

आजप्रकारे—निरर्थक भाषा यणु न जेवनी जेठं जे. जे भाषाने कोठ  
अर्थ न थतो होय जेनी भाषाने प्रयोग करवो जे निरर्थक जताववामां  
आवेल छे. जेम—

“ एष बन्ध्या सुतो याति ख पुष्प कृत शेखरः ।

मृगतृष्णाम्भसि स्नातः शशश्रृंगधनुर्धरः ॥ ”

आ बन्ध्यापुत्र जेठं रह्यो छे, तेना माथा उपर आकाशना पुष्पानी माणा छे,  
तथा जेणु मृगतृष्णाना जणमां स्नान करेल छे, जेना हाथमां ससलाना  
शींगनुं धनुष्य छे, आ प्रकारनां वचन निरर्थक होय छे, केभके, न तो बन्ध्या

निरर्थकं वचनं हि वह्निवत् सकलगुणभस्मकारकं, सद्भूतार्थापलापकं, मिथ्यार्थप्रतिबोधकं, भवाटवीभ्रामकं, विकल्पजालजनकं, वैराग्यलताविनाशकं, विवेकचन्द्रप्रच्छादकम् ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते यथा—

आसीत् कश्चिदेको वसतिनिर्मापको नृपतिः, स आसीदासीन्न चासीत् । असद्भावं प्राप्तेन तेन भूपतिना त्रयो ग्रामा निर्मापिताः । तत्र वसतिनिवासिनां जनानां निर्वासनाद् द्वौ ग्रामौ निर्वासितौ, एकश्च जननिवासाभावादेव वसतिर्नाभूत् । अथ यत्र जनानां वासो नाभूत् तत्र त्रयः कुम्भकारा आसन् । तेषु द्वौ

कोई पुष्प होता है, न मृगतृष्णा रूप जल कोई भावात्मक पदार्थ है, और न शशश्रृंग कोई वस्तु है । निरर्थक वचन अग्नि की तरह सकलगुणों को भस्म करने वाले सद्भूत अर्थ के अपलापक एवं मिथ्या अर्थ के प्रतिबोधक होते हैं । इनके प्रयोग से प्रयोक्ता भवाटवो में ही भ्रमण करता रहता है । अनेक प्रकार के विकल्पों का तांता इन निरर्थक वचनों से आत्मा में उद्भूत होता रहता है । वैराग्यरूपी लता के ये विनाशक तथा विवेक रूपी चंद्रमा के आच्छादक ये माने गये हैं । इस विषय में दृष्टांत इस प्रकार है—

कोई एक राजा था जो वस्ति का निर्माण किया करता था । वह होकर भी नहीं था । उसने अपनी गैर मौजूदगी अवस्था में तीन ग्रामों की रचना की । दो गाँवों को उसने वहाँ के निवासियों को निकाल कर बिलकुल उजड़ कर दिये । एक इसलिये ऊजड़ था कि उसमें जनों के

स्त्रिने पुत्र होय छे, न आकाशतुं कोर्ध पुष्प होय छे, मृगतृष्णारूप जल न तो कोर्ध भावात्मक पदार्थ छे, अने न तो ससलाना शिंंग कोर्ध वस्तु छे. निरर्थक वचन अग्नि भाइक सधणा गुणोने लसभ करवावाणा सद्भूत अर्थनो अपलापक अने मिथ्या अर्थ करवावाणा होय छे. आवा प्रयोगथी प्रयोक्ता भवाटवीमां ज ब्रमण करता रहे छे. अनेक प्रकारना विकल्पोना तांता आवा निरर्थक वचनोथी आत्मामां उद्भवता रहे छे, वैराग्यरूपी लताना अे विनाशक तथा विवेकरूपी चंद्रमातुं आच्छादन करनार मान्या गया छे.

आ विषयमां आ प्रकारे द्रष्टांत छे.—

कोई एक राजा હતો, જે વસ્તીતું નિર્માણ કર્યા કરતો હતો, તે હોવા છતાં ન હતો, તેણે પોતાની ગેરમોજૂદગી અવસ્થામાં ત્રણ ગામોની રચના કરી જે ગામોને ત્યાંના રહેવાસીઓને ત્યાંથી કાઢી મુકી ઉજડ બનાવી દીધાં. એક એ માટે ઉજડ હતું કે ત્યાં કોઈ વસ્તી જ ન હતી. જે ગામ લોકોના નિવાસથી

मूर्खों, एकस्तु भाण्डनिर्माणकलाभिज्ञोऽपि नैव निर्माति । यस्तु नास्ति भाण्डनिर्माता, तेन त्रीणि भाण्डानि निर्मितानि । तत्र द्वे स्फुटिते, एकं न युज्यते । अयोजिते भाण्डे त्रयस्तण्डुला रन्धिताः, तत्रोभौ तण्डुलावामरूपौ, एको न सिध्यति । तेन त्रयो ब्राह्मणा भोजिताः तत्रोभौ बुभुक्षितौ, एकोन भुङ्क्ते, एवमेकः कश्चिदासीद् भूपतिर्य आसीदासीन्नचासीत् ।

तथा—मर्मगं=मर्मवाचकं वचनं न लपेत् । रहस्योद्घाटकं वचनं न ब्रूयादित्यर्थः । मर्मगं वचनं हि हृदये शराघातवेदनामिव वेदनां जनयति, वज्राघात इव मूर्छयति,

निवास का ही अभाव था। जो गांव जनों के निवास से विहीन था उसमें तीन कुंभार थे। इन में दो मूर्ख थे और एक बर्तन बनाने की कला में निपुण था। परंतु यह बर्तन नहीं बनाता था। जो बर्तन बनाने वाला नहीं था—उसने तीन बर्तन बनाये। दो फूटे और एक ऐसा जो जुडता नहीं था। अर्थात् कपाल माला जिसकी जुड़ी २ थी। इस में तीन चावल पकाये गये। इन में दो चावल कच्चे रहे और एक चावल सीझा नहीं। उससे तीन ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। दो ब्राह्मण तो भूखे रहे और एक ने खाया नहीं। इस प्रकार इस कथा में केवल निरर्थक शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। इस प्रकार के निरर्थक वचन नहीं बोलना चाहिये।

जिनसे दूसरों के मर्म का उद्घाटन होता तो ऐसे वचन भी नहीं बोलना चाहिये। जो मर्मोद्घाटक वचन होते हैं वे जिस प्रकार बाण हृदय में आघात पहुँचाता हैं, उसी तरह आघात पहुँचाते हैं। वज्र के

विहीन इतुं तेमां त्रष्टु कुंभार रडेटा इता, जेमां जे मूर्ख इता अने अेक वासष्टु अनाववानी कणामां निपुष्टु इतो, परंतु ते वासष्टु अनावतो न इतो. जे वासष्टु अनावनार न इते, तेष्टु त्रष्टु वासष्टु अनाव्यां. जे कुट्टेलां अने अेक अेवुं डे जे जेडातुं न इतुं. अर्थात् कपालमाणा जेनी लुट्टी लुट्टी इती, जेमां त्रष्टु अेभा पकववामां आव्या, जेमां जे अेभा काया रड्या अने अेक अेभा अेडये नडीं—अेनाथी त्रष्टु आरड्डेलेने लेजन कशववामां आव्युं. जे आरड्डेले ते लुप्या रड्या अने अेके आधुं नडीं. आ रीते आ कथां डेवण निरर्थक शब्दोना ज प्रयोग थये छे. आ प्रकारनां निरर्थक वचन न बोलवां जेधअे.

जेनाथी धीजना मर्मनुं उद्घाटन थाय अेवां वचन पष्टु न बोलवां जेधअे जे मर्मोद्घाटक वचन डेय छे, ते जेम आष्टु हृदयमां आघात पडोंयाडे छे अेज रीते आघात पडोंयाडे छे. वज्रना आघातथी जे रीते मूर्छा

દ્વેષાગ્નિ પ્રજ્વલયતિ, શોકમુત્પાદયતિ, ચારિત્રં ધ્વંસયતિ, ગુણગણં સંહારયતિ, નરકનિગોદાદિદુઃસ્વર્ગે નિપાતયતિ, નિશિતકૃપાણધારાવન્મર્માણિ કર્તયતિ ।

મર્મગવચનભાષણસ્ય દૃષ્ટાન્તસ્ત્વેવમ્—

આસીદ્ ધનગુપ્તનામા કશ્ચિદેકઃ શ્રેષ્ઠી । સ ચૈકદા માર્યામિબ્રવીત્-પ્રિયે ! ધનાર્જનાય વિદેશં વ્રજામિ । તયા પ્રોક્તમ્-નાથ ! ભવાન્ મામપિ તત્ર નયતુ । સ શ્રેષ્ઠી સહગમનાર્થમનુમતિં પત્ન્યૈ પ્રદત્તવાન્ । તતોઽસૌ પત્ન્યા સહ ગચ્છન્ માર્ગે

આઘાત સે જિસ પ્રકાર મૂર્છા આજાતી હૈ ઉસી પ્રકાર ઇન વચનોં સે ખી પ્રાણી મૂર્ચ્છિત હો જાતા હૈ । યે વચન સદા દ્વેષ રૂપી અગ્નિ કો પ્રજ્વલિત કરતે રહતે હૈં ઓર શોક પરમ્પરા કે સંવર્દક હોતે હૈં । ઇન કે સદ્ભાવ મેં ચરિત્ર કા સર્વથા વિનાશ હોતા રહતા હૈ । ગુણગણ કા સંહાર કરકે વે વચન પ્રાણી કો નરક ંવં નિગોદાદિક કે દુઃસ્વ રૂપી સ્વદે મેં ગિરાતે હૈં । જૈસે તીક્ષ્ણ ધાર વાલી તલવાર હર ંક વસ્તુ કો છેદનભેદન કરતી હૈ ઉસી પ્રકાર મર્મગ વચન ખી પ્રાણી કે મર્મસ્થાનોં કોં છેદનભેદન કરતે હૈં ।

इस विषय में दृष्टાંત इस प्रकार है—

કોઈ ંક ધનગુપ્ત નામ કા સેઠ થા । ંસને ંક દિન અપની પત્ની સે કહા કિ હે પ્રિયે ! મૈં ધન કમાને કે લિયે પરદેશ જાના ચાહતા હૂં । સુનકર ંસને કહા કિ હે નાથ ! આર મુજે ખી સાથ લે તે ચલિયે । પત્ની કી બાત સુનકર ધનગુપ્ત ને ંસે અપને સાથ ચલને કી અનુમતિ દે દી । ધનગુપ્ત પત્ની કો સાથ લેકર પરદેશ નિકલા । ચલતેર માર્ગે મેં

આવી જાય છે, એ જ રીતે આવા વચનોથી પણ પ્રાણી મૂર્ચ્છિત થઈ જાય છે. આવાં વચનો હંમેશાં દ્વેષરૂપી અગ્નિને પ્રગટ કરતાં રહે છે અને શોક પરંપરાને ઉત્તેજન કરનાર નિવડે છે. આના સદ્ભાવમાં ચારિત્રનો સર્વથા વિનાશ થતો રહે છે. શુભ સમૂહનો સંહાર કરીને એ વચનો પ્રાણીને નરક અને નિગોદાદિકના દુઃખરૂપી ખાડામાં પાડે છે. જેમ તીક્ષ્ણ ધારવાળી તરવાર હરએક વસ્તુનું છેદન ભેદન કરે છે એજ રીતે માર્મિક વચન પણ પ્રાણીના મર્મસ્થાનોનું છેદન ભેદન કરે છે.

આ વિષયમાં આ પ્રકારનું દૃષ્ટાંત છે.—

કેઈ એક ધનગુપ્ત નામે શેઠ હતા, એણે એક દિવસ પોતાની સ્ત્રીને કહ્યું કે, હે પ્રિયે ! હું ધન કમાવા માટે પરદેશ જવા ઇચ્છું છું. સાંભળીને તેણે કહ્યું, કે હે નાથ ! આપ મને પણ સાથે લેતા જાવ, સ્ત્રીની વાત સાંભળી ધનગુપ્ત શેઠે તેને પોતાની સાથે ચાલવાની અનુમતિ આપી. ધનગુપ્ત સ્ત્રીને સાથે લઈ પરદેશ

श्वशुरग्रामसमीपस्य कूपस्य तटे विश्रामार्थमुपविष्टः । तत्र तद्भार्यया चिन्तितम्-विदेशे नानाविधं कष्टं मया कथं सोढव्यम् ? इति विमृश्य सा पतिमब्रवीत्-प्राणनाथ ! मां पिपासा बाधते । ततोऽसौ श्रेष्ठी भार्यावचनं निशम्य तत्र कूपादुदकमुद्धर्त्तुं कूपा-भिमुखं शिरोऽवनतीकरोति यावत्, तावदेव भार्यया पृष्ठे हस्ताघातेन कूपे निपा-तितः । तदनन्तरं सा पितुर्गेहं गत्वा पितरमब्रवीत्-तव जामाता गुहात् क्वचिन्नि-र्गतस्तस्य नास्ति वार्ता, अतस्तव समीपे समागताऽस्मि ।

उसे अपने श्वशुर का ग्राम मिला । वह वहां गाम के बाहर कुए के पास विश्राम करने के लिये एक तरफ ठहर गया । इतने में उसकी पत्नी ने विचार किया कि-‘ये विदेश जा रहे हैं और मैं भी इनके साथ जा रही हूँ । विदेश में अनेक प्रकार के कष्ट प्राणियों को सहन करने पड़ते हैं मैं उन कष्टों को कैसे सहन करूँगी’ ऐसा विचार कर उसने अपने पति धनगुप्त से कहा कि हे प्राणनाथ ! मुझे इस समय बड़े जोरकी प्यास लग रही है, पति पानी लेने को ज्यों ही कुए पर पहुँचा और पानी भरने लगा कि इतने में पीछे से उस पत्नी ने आकर उसे धक्का मारकर कुए में पटक दिया । बाद में फिर वह अपने पिता के घर जाकर कहने लगी कि हे पिता ! तुम्हारे जमाई न मालूम घर से कहां निकल कर चले गये हैं । मैं ने बहुत तपास कराई परन्तु अभी तक उनकी कोई खबर नहीं मिली है, सो मैं तुम्हारे पास आई हूँ ।

जवा नीकल्या यावतां यावतां मार्गमां तेना ससरानुं गाम आव्युं. ते त्यां गाम अहार अेक कुवा पासे आराम करवा रोकाया. अे समये तेनी स्त्रीअे विचार करी के, “शेठ परदेश जाय छे अने हुं पणु तेमनी साथे जाठं छुं परदेशमां अनेक प्रकारना दुःखे प्राणीयेअे सहन करवां पडे छे, हुं अे दुःखेने केम करीने सहन करी शकीश ” अेवे विचार करी तेले पोताना पति धनगुप्तने कहुं के, हे प्राणनाथ ! मने अत्यारे भूअ तरस लागी छे, पति पाणी लेवा माटे ज्यां कुवा पर पडोअ्या, अने पाणी भरवा लाग्या के अेटवामां तेनी स्त्रीअे पाछणथी आवीने तेने धक्को मारी कुवामां डडसेली दीधे. आ पछी ते पोताना पियर पडोअी अने त्यां जर्ध कडेवा लागी के, हे पिता ! तमारा जमाई कथा वगर केाणु जाणु केम घेरथी याव्या गया छे, में घणु तपास करावी छतां हणु सुधी तेनी केछं जाण मणी नथी. माटे हुं तमारी पासे आवी छुं.

उ० २७

इतश्चासौ श्रेष्ठी कूपे पतन् भाग्यवशात् कूपभित्तिगतं पाषाणं प्राप्य तमवल-  
म्ब्य स्थितः । तदनु तत्रागतैर्जलार्थिजनैरनुकम्पयाऽसौ कूपान्निःसारितः । ततोऽसौ  
विदेशं गत्वा पुण्यप्रभावात् प्रचुरं धनं समुपाज्यं श्वशुरगृहे समायातः । तदा तस्य  
पत्नी प्रसन्ना जाता, तथा सह श्रेष्ठी स्वगृहं गतः । अथैकदा श्रेष्ठिनः पुत्रो जातः  
तस्य यौवने वयसि प्राप्ते श्रेष्ठिना विवाहः कारितः । पुत्रवधूरागता । किञ्चिद्दि-  
वसेषु व्यतीतेषु सत्सु श्वश्रूवध्वोर्मध्ये कलङ्कः प्रवृत्तः । वधूर्नित्यं श्वश्रूच्छिद्रान्वेषण-  
परा जाता । एकदाऽसौ श्रेष्ठी रङ्गभवने भोजनं कुर्वन्नासीत्, तत्पत्नी तदानीं बाल-

धनगुप्तज्यो ही कुए में गिरा कि भाग्यवश से उसे कुए की भित्ति  
में पास ही एक पत्थर का टुकड़ा लगा हुआ दिखलाई पडा । यह भित्ति से  
कुछ अधिक बाहर की ओर निकला था । पडते ही धनगुप्त ने उसको पकड  
लिया । जब पानी भरने वाले वहां पानी भर ने के लिये आये तब  
उन्होंने धनगुप्त को कुए से बाहर निकाला । स्वस्थ होकर यह बिना कुछ  
कहे परदेश की ओर चल दिया । वहां पहुँच कर उसने पुण्यकर्म के  
उदय से खूब धन कमाया । कमाकर यह वहां से अपने घर वापिस  
हुआ । रस्ते में इस के श्वसुर का गाम आया और यह श्वशुर के घर  
पहुँचा । पत्नी ने पति को देखकर बहुत आनंद मनाया । वहांसे अपनी  
पत्नी को साथ लेकर घर आ गया । कालान्तर में धनगुप्त के एक पुत्र  
हुआ । समय पर उसका विवाह कर दिया गया, बहु घरमें आई । रहते २  
सास और बहु में झगडा होने लगा । बहु ने सास को दवाने के लिये  
उस के छिद्रों का अन्वेषण करना प्रारंभ कर दिया । एक दिनकी बात है,

धनगुप्त कुवामां पडयो के, भाग्यवश कुवानी लीं तमां तेनी पासे ७ अेक  
पत्थर योटाडोले नजरे पडयो ७ लीं तथी थोडो अडार चिकणेलेो डते। कुवामां  
पडतांनी साथे ७ धनगुप्ते ते पत्थर पकडी लीधो ७यारे पाणी भरवावाणा कुवा उपर  
पाणी भरवा आव्यां त्यारे तेमणे धनगुप्तने कुवामांथी अडार काढयो. स्वस्थ अनी  
कांठ पणु जोड्या सिवाय ते परदेश ७वा ग्याली निकळ्यो त्यां पडोंथी ते पुण्य  
कर्मांता उदयथी पूण धन कमायो. पूण धन कमाई ते पोताने घेर आववा निकळ्यो,  
रस्तामां सासरानुं गाम आव्युं त्यारे ते सासराने घेर पडोंथ्यो. पत्निअे पतिने  
जेई आनंद मनाव्यो. त्यांथी अे पोतानी स्त्रीने लधने पोताने गाम पोताने घेर  
पडोंथ्यो. समय ७तां अे धनगुप्तने त्यां अेक पुत्र थयो. समय उपर तेनां लग्न  
कर्यां वहु घेर आवी, रडोतां रडोतां सासु अने वहु वय्ये विणवाड थवा लाव्यो,  
वहुअे सासुने दगाववा माटे तेनां गुप्त छिद्रोनां अन्वेषण करवाने प्रारंभ करी  
दीधो. अेक दिवस धनगुप्त पोताना रंगलवनमां जेसी लोअन करी रडेल डते।



व्यजनवोजनं कुर्वती पुरोऽवतिष्ठते । अकस्माद् भास्करकिरणास्तद्भवनजालान्त-  
र्गताः श्रेष्ठिमुखोपरि निपतन्तस्तया दृष्टाः । पत्युर्मुखे भास्कर कर स्पर्शजनितस्तापो  
मा भूदिति भावनया सा सत्वरं निजकरद्वयं भास्कर किरणसंमुखेकृत्वा श्रेष्ठिमुखो-  
परि सूर्यकिरणान् निवारयति ।

अकस्मात्तदैव पत्नीकृतं पूर्ववृत्तं श्रेष्ठिना स्मृतम् । श्रेष्ठी मनसि चिन्तयति-  
“अहो ययाहं कूपे निपातितः सैवेयमधुना मम सूर्यकरस्पर्शजनितं तापं निवारयति”  
इत्येवं विचारयतस्तस्य श्रेष्ठिनो मुखे हास्यं समजनि । तदा तत्पुत्रवधूर्हसन्तं श्रेष्ठी-  
नमकस्मादपश्यत् । सा पत्युः समीपमागत्य वदति-नाथ ! भवतः पिता श्वश्रूसमक्षं

कि धनगुप्त अपने रंगभवन में बैठा हुआ भोजन कर रहा था । और पत्नी उस के ऊपर पंखा कर रही थी । धनगुप्त के चहरे पर अकस्मात् सूर्य की किरणों भकान की छत के छिद्रों में से आकर पडने लगी, पत्नी ने ज्यों ही यह देखा कि शीघ्र ही उसने ‘पति को ताप न लगे’ इस ख्याल से अपनी दो नों हथेलियों को सूर्य के साम्हने कर दिया । इससे धनगुप्त के मुख पर पडती हुई वे किरणें थम गई-मुख पर हथेलियों की छाया हो गई । पत्नी द्वारा इस प्रकार की गई सेवा का अवलोकन कर धनगुप्त को पहले का वह कुए में डाल ने का वृत्तान्त याद आ गया । धनगुप्त ने विचार किया, देखो-जिसने मुझे पहिले कुए में पटकवा वही अब मुझे ‘सूर्यजनित संताप न हो’ इस ख्याल से उस संताप का निवारण कर रही है । ऐसा ख्याल कर धनगुप्त को कुछ हँसी आगई । धनगुप्त को अकस्मात् हँसता हुआ उस समय उसकी पुत्रवधू ने देख-लिया था, इसलिये वह अपने पति के पास आकर कहने लगी कि नाथ,

अने तेनी श्री पंआथी तेने डवा नाणी रही हती अे वअते धनगुप्तना अडेरा  
उपर भकानना छतना काष्ठाभांथी सूर्यनां किरणो अकस्मात् पडवा लाय्यां तेनी  
श्रीअे जेवुं आ जेयुं के तुरत अे अेणे “पतिने ताप न लागे” अेवा प्यालथी  
पोताना अ-ने डायनी डथेणीअेने सूर्यना अे किरणोनी आडे धरी दीधी. आथी  
धनगुप्तना अडेरा उपर पडतो किरणोनी ताप अटकी गयो, मुअे उपर  
डथेणीअेनी छाया थई गई, श्री तरक्षी आ रीते करवामां आवेली सेवा  
जेईने धनगुप्तने पडेलांने कुवावाणे प्रसंग याद आवी गयो, धनगुप्ते विचार  
कथी, जेअे ! जेअे भने पडेलां कुवामां नाणी दीधो डतो ते डवे भने सूर्यना  
किरणोनी ताप न लागे अेवा प्यालथी अे संतापनुं निवारण करी रही छे. आ  
विचारथी धनगुप्तने जरा डसवुं आव्युं. धनगुप्तने अकस्मात् डसतां तेनी पुत्र  
वधुअे जेई लीधेद, आथी अे पोताना पति पासे जई कडेवा लागी के-

हसन् मया दृष्टः, किं तत्र हासस्य कारणमभूदित्यावेद्यताम् । श्रेष्ठिपुत्रः प्राह-  
पतिपत्न्योर्वृत्तमवेद्यं भवति । पत्नी वदति-भवता यावदेतद्वृत्तं नानेष्यते, न वा  
वृत्तानयनवचनं दास्यते, तावन्मयाऽन्नपानं परित्याज्यम् । प्रेमपरवशेन विस्मृतविवे-  
केन श्रेष्ठिपुत्रेण 'हास्यकारणं कथयिष्यामी' ति वचन प्रदानेन पत्नी परितोषिता ।

एकदा श्रेष्ठिपुत्रः पितुश्चरणसंवाहनं कुर्वन् पृच्छतिस्म आर्य ! तस्मिन् दिवसे  
केनकारणेन भवता हसितम्, इत्येवं पृष्टोऽसौ सरलहृदयः श्रेष्ठो सर्वं पूर्ववृत्तं  
पुत्राय कथितवान् । श्रेष्ठिपुत्रः सर्वं पूर्ववृत्तं विज्ञाय पत्न्यै कथयामास ।

आज मैं ने आप के पिता को सासुजी के समक्ष हँसते हुए देखा है  
अतः हे नाथ ! आप मुझे बतलाईं ये कि इस अकारण हँसी का क्या  
कारण है । सेठ के पुत्र ने अपनी पत्नी को समझाया कि पति और पत्नी  
का वृत्त अवेद्य हुआ करता है । अतः इस विषय को जानने की चेष्टा  
करना व्यर्थ है । पत्नी ने पति के मुख से यह बात सुनकर कहा हे नाथ !  
जब तक आप मुझे इसका कारण नहीं बतलावेंगे, तबतक मैं अन्नजल  
ग्रहण नहीं करूंगी । पत्नी का इस प्रकार वृत्त को जानने का अधिक  
आग्रह देखकर पति ने उसके प्रेम से पागल जैसे बनकर उसे इस  
बात का आश्वासन दिया कि वह कुछ समय बाद इसका वास्तविक  
कारण उसे बतला देगा । इस प्रकार रुष्ट हुई पत्नी संतुष्ट हो गई । एक  
समय की बात है कि श्रेष्ठि पुत्र ने पिता के चरणों को दाबते हुए उनसे  
पूछा कि हे तात ! आप एक दिन भोजन करते समय किस कारण से  
हँसे थे ? पुत्र की इस बात को सुनकर सरल हृदय वाले सेठ ने समस्त

हे नाथ ! आज मैं तमारा पिताने सासुजी सामे हसता जेया. तो आप जे  
अतावे ते तेमना अकारण हसवानुं शुं कारण छे ? सेठ पुत्रे पोतानी अनी  
समज्जयुं के, पति पत्नीने संबंध अवेद्य होय छे. आ विषयने ज्ञायवानी  
चेष्टा करवी व्यर्थ छे. पत्नीजे पतिना सुभधी आवी वात सांभणीने कहुं के,  
हे नाथ ! जयां सुधी तमे मने तेनुं कारण नही अतावे त्यां सुधी हुं अन्न  
जल ग्रहण करीश नही. पत्नीने आ प्रकारे वृत्तान्त ज्ञायवाने अधिक आग्रह  
ज्जानीने पतिजे तेना प्रेममां पागल जेम अनीने तेने आ वातनुं आश्वासन  
आप्युं के, थोडा समयमां पोते तेनुं वास्तविक कारण अतावसे. आधी इष्ट  
अनेल पत्नीने संतोष थयो. अेक समयनी वात छे के, सेठ पुत्रे पोताना पिताना  
पग हायता हायतां जेमने पूछयुं के, हे तात ! आप अेक दिवस लोअन  
करतां करतां शा भाटे हस्या डता ? पुत्रनी आ वातने सांभणीने सरण हृदय-

पुनरेकदा श्रेष्ठिपत्न्याः पुत्रवध्वा सह कलहो जातः, तस्मिन्नवसरे पुत्रवधूर-  
वदत्-जानामि तव चरित्रम्, पतिं कूपे निपात्य, संप्रति पतिव्रता भवितुमुद्यताऽसि।  
एतन्मार्मिकं वचनं निशम्य श्वश्रूः परमदुःखिता जाता, बहुशो रुरोद, रुदित्वा च  
मनसि चिन्तयति स्म-अधुना मम जीवनं धूलिरिव निरर्थकम्. अद्य ममेयं वार्ता  
लोके प्रसारिष्यति, मां लोकः किं वदिष्यति। इत्येवं विचिन्त्य सा भवनस्य द्वितीय-  
भूमिकामारुरोह। तत्र गत्वा गले पाशं संयोज्य रज्ज्वां लम्बिता प्राणान्  
परित्यक्तवती।

हँसी का जो कुछ कारण था वह अपने पुत्र को कह दिया। मौका पाकर  
श्रेष्ठि पुत्र ने भी जो कुछ जैसी बात थी वह अपनी पत्नी से कह दी।

एक समय सास बहु में परस्पर जब कलह हुआ तो पूत्रवधू ने  
सासु से कहा कि “आप ज्यादा मत बोलो मैं जानती हूँ कि आप वही  
हैं जिन्होंने अपने पति को कूप में डाल दिया था, अब पतिव्रता  
बनती हैं।” इस प्रकार बहु के मार्मिक वचनों को सुनकर सास के  
हृदय में अपार दुःख हुआ, वह बारं बार रोने लगी, विचार किया कि  
अब मेरा जीना बिलकुल निरर्थक है। बहु ने मेरी सब शान धूलि में  
मिला दी है। यदि मेरी यह बात लोक में फैल गई तो लोग क्या कहेंगे?  
इस प्रकार सोचकर वह अपने मकान के दूसरे मंजिल पर गई, और  
वहाँ उसने गले में फाँसी डालकर आत्मघात कर लिया।

वाणा शेठे हांसीतुं ने कांछ कारणु इतुं ते सघणुं पोताना पुत्रने कही दीधुं.  
अवसर भेणवीने शेठ पुत्रे पणु ने कांछ वात इती ते पोतानी पत्नीने  
कही दीधी.

सासु वहुमां परस्पर न्यारे कंकास थये त्यारे पुत्रवधुये सासुने कहुं  
के, “तमे वधु न जोढो, हुं जाणुं छुं के, तमे ये न छो के नेणे पोताना  
पतिने कुवाभां धकेलो दीधेल, हुवे प्रतिव्रता भनो छे.” आ प्रकारनां वहुनां  
मार्मिक वचनोने सांलणी सासुना हृदयमां अपार दुःख उपन्युं अने ते योधार  
आंसुये रडवा लागी, तेणे मनमाने मनमां येवो निश्चय कर्यो के, हुवे माइं  
लववुं भीलकुल नीरर्थक छे, वहुये मारी अधी शान धुणमां भेणवी दीधी छे. ने  
मारी आ वात दोडोमां इलाछ नथ तो दोडो थुं कडेशे? आ रीते विचार  
करीते पोताना मकानना भील भाणा उपर पडोंची अने त्यां न्हं गणां  
कासो नाभी आत्मघात कर्यो.

अथ श्रेष्ठी गृहमागतः, पत्नीमनवलोक्य पुत्रवधूं पृष्टवान्-आयुष्मति ! तव श्वश्रूः क्वास्ति ?, पुत्रवधूः करचेष्टयाऽऽवेदयति-भग्नोपरिभागे गता इति । श्रेष्ठी गृहोपरिभागभूमिकां गत्वा श्रेष्ठिनीं गच्छे पाशवद्धां मृतां पश्यति । तदाऽसौ श्रेष्ठी विषादमुपगतः सन् विचिन्तयति-अनया विना मम कीदृशी दशा भविष्यति, इत्यादि । तदनु स श्रेष्ठो पत्नीगलगतं पाशं विमुच्य स्वगले संयोज्य प्राणांस्त्यक्तवान् । पुत्रोऽपि गृहमागतः, स पितरमदृष्ट्वा पत्नीं पृष्टवान् 'क्वास्ति मम तातः' । पत्नी प्राह-उभौ ममानिष्टं कर्तुमुपरि वर्तेते । पुत्रः पत्नीवचनमाकर्ण्य तत्र गत्वा पश्यति-माता मृता निपतिताऽस्ति, पिताऽपि पाशवद्धो मृतः प्रलम्बितो वर्तते, इति ।

धनगुप्त जब घर आया तो उसने सेठानी को न देखकर बहू से पूछा आयुष्यमती ! तुम्हारी सास कहां है ? उसने हाथ के इशारे से कहा कि वे मकान के दूसरे मंजिल पर हैं । धनगुप्त वहां पहुँचा और देखा कि वह गले में फाँसी लगा कर मर गई है । धनगुप्त ने यह दशा देखकर बहुत ही शोच विचार किया और अन्त में यह निर्णय कर कि सेठानी के बिना मेरी क्या दशा होगी, पत्नी को फाँसी से उतार कर वह स्वयं फाँसी लटक गया । पुत्र ने पिता को घर पर आकर जब नहीं देखा तो पत्नी से पूछा कि पिताजी कहां पर हैं । उसने बात को बना-कर कहा कि माता-पिता दोनों ही दूसरे मंजिल पर मेरा अनिष्ट करने की विचारणा करने के लिये गये हुए हैं । पत्नी की बात सुनकर वह मकान के ऊपर गया । देखा कि माता मरी पड़ी है और पिताजी

धनगुप्त न्यारे घेर आये तो तेणु पौतानी स्त्रीने न जेतां वहुने पूछयुं, आयुष्मती ! तमारी सासु कथां छे ? तेणु हाथना धशाराथी कहुं के, पील भाण उपर (मेडी उपर) छे. धनगुप्त त्यां पडोन्थे अने जुअे छे तो गणाभां क्षसे नाथी ते मरी गयेल छे. आ रीते पौतानी पत्तिनी दशा जेछ धनगुप्ते पूअअ भनोभंथन साथे विचार कये. अने अते अे निर्णय कये के, पत्तिना जवा पछी हुवे मारी शुं दशा थसे ? क्षंसाथी लटकती पत्तिने नीचे उतारी अे होरडाने क्षंसे पौताना गणाभां नाथी लछ पौते पणु अत्मघात कये.

ओठ तरक् पतिपत्ति अेक ज होरडाना क्षंसाथी आत्महत्या करी लुवमुक्त अन्यां अे समये पुत्रे घेर आवतां पौताना पिताने न जेवाथी पत्तिने पूछयुं, पितालु कथां गया ? स्त्रीअे वातने अनानीने कहुं के, माता-पिता अन्ने जषां भाङ् अनिष्ट करवानी विचारणु करवा मेडी उपर गयेल छे. पत्तिनी वात सांलणी ते मेडी उपर गये. जेथुं तो भा नीचे भरली पडी छे, अने पितालु

तदाऽसौ पुत्रोऽपि मातापित्रोर्वियोगेन शोकार्तः सन् भविष्यदनिष्टं चिन्तयन् मृतं पितरं पाशबन्धनाद् विमुच्य स्वगले तं पाशं बद्ध्वा मृतः ।

तदनन्तरं पुत्रवधूः ' इमे त्रयः खलु मिलित्वा ममैव दुर्दशां भावयन्ति ' इति विचिन्त्य क्रोधावेशेन धमधमायमाना उपरि गता । तत्र सा पश्यति—श्वश्रूः श्वशुर-श्रोभौ मृतौ निपतितौ, पतिरपि गले बद्धपाशो मृतः पाशरज्ज्वां लम्बित इति । तदा विनिवृत्तकोपा नितान्तदुःखार्ता सा चिन्तयति स्म—अतः परं कीदृशी दशा मम भविष्यति, लोकाः किं वदिष्यन्ति, कः स्यान्मम शरणम्, इत्यादि। तदनन्तर-मसौ सगर्भा पुत्रवधूः पत्युर्गले संलग्नं पाशबन्धनं विमुच्य स्वगले संयोज्य लम्बिता प्राणान् त्यक्तवती ।

गले में फांसी लगाकर मरे हुए लटक रहे हैं। इस परिस्थिति से उसे बहुत ही दुःख हुआ। माता पिता के वियोग ने उसे पागल बना दिया, अन्त में उस विचारे ने भी अपने पिता के गले से फांसी उतार कर अपने गले में लगा ली। जब पुत्रवधू ने यह विचारा कि " देखो ये तिनों के तिनों मिलकर मेरी दुर्दशा करने की भावना कर रहे हैं। अतः ऊपर जाकर देखूं, कि इन सबकी क्या राय हो रही है ' इस प्रकार क्रोध के आवेश से धम धम करती हुई वह ऊपर गई। जाते ही उसने देखा कि सासु श्वशुर मरे पड़े हुए हैं पति भी गले में फांसी लगाकर मरे हुए लटक रहे हैं। उस दुर्घटना को देखकर उसके शरीर में सन्नाटा छा गया, कोप जाता रहा। अत्यंत शोक से वह विह्वल हो गई। विचारा कि अब संसार में मेरा कौन है, कि जिस के लिये इन प्राणों की रक्षा करूँ। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे। इस प्रकार विचार कर वह भी अन्त में

गणांमां शंसो लगाडी भरेली डालतमां लटकी रह्या छे. आ परिस्थिति जेठ तेने भूम दुःख थयुं, माता पिताना वियोगे तेने पागल बनावी दीघा. अंते जे विचाराजे पणु पेताना पिताना गणांमांथी शंसो काडी पेताना गणांमां लगावी आत्मघात करी ज्यारे पुत्रवधुजे जे विचारुं" के, " आ तरे जणु भणी भारी दुर्दशा करवानी येजना घडी रह्यां डशे. आथी उपर जेठ जेठं तो भरी के अधा केवे विचार करी रह्या छे" आ रीते क्रोधना आवेशथी धम धम करती वहु उपर पडेथी ने जेजे छे तो सासु ससरा भरेल पड्या छे. अने पति पणु गणांमां शंसो लगावी भरेल लटकी रडेल छे. आ दुर्घटनाजे जेठ जेना शरीरमां कंपारी वछुटी, क्रोध जेतो रह्यो अने शोकथी विह्वल जनी गछ. विचारुं" के हवे संसारमां मारुं केणु छे के जेना माटे आ प्राणुनी रक्षा करे लोको जणुशे तो शुं कडेशे? आ विचार करी तेजे पेताना



अस्मिन् दृष्टान्ते—सकृदुक्तादपि मर्मवचनात् षण्णां जीवानां प्राणव्यपरोपणं जातम्, यतः पुत्रवधूगर्भे द्वयमपत्यमासीत् । तस्मान्मार्मिकं वचनं न भाषणीयम् ।

सावद्य-निरर्थक-मर्मग-वचनभाषणस्य सर्वथा प्रतिषेधं बोधयितुमुत्तरार्धमाह—  
'अप्पण्डा' इत्यादि । आत्मार्थं=स्वार्थं, परार्थं वा, तथा उभयस्य आत्मनः परस्य च अर्थे, वा-अथवा, अन्तरेण=अनुभयार्थे स्वपरप्रयोजनाभावेऽपि सावद्यं न लपेत्= न निरर्थकं लपेत्, न मर्मगं लपेत्, इति सम्बन्धः ॥ २५ ॥

अथान्यसंसर्गकृतदोषपरिहारमाह—

मूलम्—समरेषु अगारेषु, संधीषु र्यं महापथे ।

एगो एगित्थिए सद्धिं, नैवं चिट्ठे न संलपेत् ॥२६॥

छाया—समरेषु अगारेषु, संधिषु च महापथे ।

एकः एकस्त्रिया सार्धं, नैव तिष्ठेत् न संलपेत् ॥२६॥

टीका—'समरेषु' इत्यादि—

समरेषु=झोहकारशालासु तथा-अगारेषु=गृहेषु, तथा संधिषु=गृहद्वयान्तरालेषु तथा-महापथे=राजमार्गे, एकः=एकाकी, एकस्त्रिया=एकाकिन्या स्त्रिया, सार्धं=सह, नैव तिष्ठेत्=ऊर्ध्वस्थानावस्थितो नैव भवेत् । न संलपेत्-तया=सह समरादिषु स्थानेषु क्वाऽपि संभाषणं न कुर्यादित्यर्थः । अत्र समरादिचतुष्टयस्थानप्रुप

पति के गले से फांसी निकाल कर अपने गले में फांसी डालकर मर गई वह उस समय गर्भवती थी । उस के गर्भ में दो बालक थे ।

इस दृष्टान्त से यह बात स्पष्ट होती है कि देखो एक बार भी कहे गये मार्मिक वचन से छह प्राणियों का दारुण आपघात हुआ । इसलिये मार्मिक वचन नहीं कहना चाहिये । अपने अथवा पर के निमित्त तथा दोनों के निमित्त एवं जहां स्व और पर का कुछ भी प्रयोजन न हो वहां पर भी व्यर्थ ही मनुष्य को सावद्य, निरर्थक एवं मर्मग वचन नहीं बोलना चाहिये ॥ २५ ॥

पतिना गणामांथी क्वासे काढी पोताना गणामां नाभी मरी गध ते ये समये गर्भवती हुती, येना गर्भमां ये आणक हुतां.

आ दृष्टान्तथी ये वात स्पष्ट थाय छे के, येक वपत पणु कडेवाभां आवेला मार्मिक वचनथी छ प्राणीयेना कश्णु आपघात थये, आ माटे मार्मिक वचन न ओलवां जेधये. पोताना अथवा पीलना निमित्त तथा पनेना निमित्त अने न्यां पोतानुं के पीलनुं केध पणु प्रयोजन न होय त्यां पर पणु मनुष्यने सावद्य, निरर्थक अने मार्मिक वचन ओलवां न जेधये. (२५)



लक्षणं सर्वेषां स्थानानाम्, कुत्रापि स्त्रिया सहावस्थानं संभाषणं च न कुर्यादित्यर्थः, एकग्रहणमप्युपलक्षणम् तेनानेकस्त्रीभिरपि सहावस्थानं संभाषणं च वर्जनीयम्, यत्र पुरुषः साक्षी नास्ति तत्र स्त्रिया सहावस्थानं संभाषणं च परिहरेदिति सूत्राशयः। उक्तं च श्रीदशवैकालिक सूत्रे—

जहा कुक्कुडपोयस्स, निच्चं कुललओ भयं।

एवं सु वंभयारिस्स, इत्थीविग्गहओ भयं ॥ (अ. ८ गा. ५४)

छाया—यथा कुक्कुटपोतस्य, नित्यं कुललाद् भयम् ॥

एवमेव ब्रह्मचारिणः, स्त्रीविग्रहाद् भयम् ॥

स्वगत दोष का निरूपण कर के अब अन्य के संसर्ग से होने वाले दोषोंका वर्णन करते हैं—‘समरेसु-इत्यादि.

अन्वयार्थ—(समरेसु-समरेषु) लुहारकी शाला में (अगारेसु-अगारेषु) घरों में, (संधीसु-संधिषु) दो घरों के अंतराल में तथा (महापहेसु-महापथेषु), राजमार्ग में (एगित्थिएसद्धि-एकस्त्रियासार्ध) अकेली स्त्री के साथ (नेवचित्ठे न संलवे-नैवतिष्ठेत् नैव संलपेत्) न खडा होवे और न उससे बातचीत करे।

इस श्लोक में समरादिक चार पद उपलक्षण हैं, इससे समझना चाहिये कि किसी भी जगह में जब तक पुरुष साक्षीभूत न हो तब तक अकेली स्त्री से अथवा अनेक स्त्रियों से ब्रह्मचारी का कर्तव्य है कि वह न बोले और न वहाँ खडा रहे। दशवैकालिक सूत्र में भगवानने कहा है

आ प्रकारे पोतानामां इहेल दोषोतुं वण्णं करी डवे णीलना संसर्गंथी थयेल दोषोतुं वण्णं करे छे. समरेसु इत्यादि.

अन्वयार्थ—समरेसु-समरेषु लुहारनी केडमां, अगारेसु-अगारेषु धरोमां, संघेसु-संघेषु ये धरोना अंतराणमां तथा महापहेसु-महापथेषु राजमार्गमां, एगित्थिएसद्धि-एकस्त्रिया सार्धं ऐकली स्त्रीनी साथे, नेव चित्ठे न संलवे-नैव तिष्ठेत् नैव संलपेत् जेला न रहेवुं अने ऐनाथी वातचीत करवी नहीं.

आ श्लोकमां समरादिक चार उपलक्षण छे, ऐथी ऐ समज्जुं जेधंऐ के, केड पण्ण स्थणे न्यां सुधी णीजे पुइप साक्षीभूत न होय त्यां ऐकली स्त्रीथी अथवा अनेक स्त्रीयो साथे ब्रह्मचारीये जेलावुं न जेधंऐ, अने त्यां जेलावुं पण्ण न जेधंऐ. दशवैकालिक सूत्रमां भगवाने कह्युं छे के, जे रीते कुकडाना षट्ठ्याने षिवाडीने लय रहे छे, ऐ रीते स्त्रीना शरीरने ब्रह्मचारीने पण्ण लय रखा करे छे.

उ० २८

उक्तं चान्यत्र-ससा सुया नुसा माया, एयाहिं वि न संलवे ।

एगंते नेव चिट्ठेज्जा, अप्पट्ठी संजए सया ॥ १ ॥

छाया—स्वसा सुता स्नुषा माता, एताभिरपि न संलपेत् ।

एकान्ते नैव तिष्ठेत्, आत्मार्थी संयतः सदा ॥ १ ॥ इति ॥ २६ ॥

अथ विनीतशिष्यकर्तव्यमाह—

मूलम्—जं मे<sup>३</sup> बुद्ध्वाऽणुसांसति, सीएण फरुसेण वा ।

मम लाभो त्ति<sup>०</sup> पेहाएँ, पयओ तं<sup>३</sup> पडिस्सुणे ॥२७॥

छाया—यन्मां बुद्ध्वा अनुशासति, शीतेन परुषेण वा ।

मम लाभ इति प्रेक्षया, प्रयतस्तत् प्रतिशृणुयात् ॥ २७ ॥

टीका—‘जं मे’ इत्यादि ।

बुद्ध्वाः=आचार्याः, यन्माम् शीतेन=शीतलवचनेन मृदुवचनेनेत्यर्थः, वा=अथवा परुषेण=कठोरवचनेन अनुशासति शिक्षयन्ति, इदमनुशासनं मम लाभः=लाभका-

-कि-जिस प्रकार मुर्गे के बच्चेको कुलल-बिलाडी से भय बना रहता है उसी तरह ब्रह्मचारी को भी स्त्री के शरीर से सदा भय रहा करता है । इसलिये चाहे अपनी सांसारिक बहिन भी हो, चाहे पुत्री हो, बहू हो, माता भी हो, तो भी एकान्तमें ब्रह्मचारी को इनके साथ उठना बैठना नहीं चाहिये और न बातचीत ही करनी चाहिये ॥ २६ ॥

अब विनीत शिष्य का कर्तव्य कहते हैं—‘जंमे’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—विनीत शिष्य को इस प्रकार विचार करना चाहिये कि (जंमे बुद्ध्वा-यन्मां बुद्ध्वा) जो मुझे आचार्य महाराज (सीएण-शीतेन) मीठे वचनों से, वा अथवा (फरुसेण-परुषेण) कठोर वचनों से (अणुसासति-अनुशासति) अनुशासित करते हैं अर्थात् शिक्षा देते हैं सो (मम लाभो-मम लाभः) यह मेरे लिये एक बड़ा भारी लाभ है, क्यों कि

आ माटे लवे पोतानी संसारीक भडेन डोय, याडे पुत्री डोय, वहु डोय, अथवा माता डोय तो पणु अेकांतमां अेमनी साथे अेसवुं उठवुं के वातचित पणु अ्रह्मचारीअे करवी न अेधअे ॥२६॥

हुवे विनीत शिष्यनुं कर्तव्य कडे छे—जंमे धत्यादि.

विनीत शिष्ये आ प्रकारनेो विचार करवेो अेधअे के,

अन्वयार्थ—जंमेबुद्ध्वा-यन्मांबुद्ध्वा मने आचार्य महाराज, सीएण-शीतेन मीठा वचनेशी, वा अथवा फरुसेण-परुषेण कठोर वचनेशी, अनुसासति-अनुशासति अनुशासित करे छे, अर्थात् शिक्षा आपे छे. ममलाभो-ममलाभ अे

रणम्, लाभः—अप्राप्तस्य सम्यक्दर्शन—सम्यग्ज्ञान—सम्यक्चारित्र्यलक्षणरत्नत्रयस्य प्राप्तिस्तस्य कारणमस्ति, इतिप्रेक्षया=इतिपर्यालोचनात्मिकया बुद्ध्या प्रयतः=प्रकर्षेण यतनावान् सहनशीलः सन् शिष्यः तत्=अनुशासनं गुरोः शिक्षावचनं प्रतिशृणुयात्=कर्तव्यतयाऽङ्गीकुर्यात् ।

अयं भावः—

यथा—वर्षाकाले सूर्यकिरणाः प्रचण्डतरा भवन्ति, परन्तु परिणामे द्वित्रदिवसाभ्यन्तर एव ते जलदावलीसमागमनशीतलपवनजलधारासंपातजनितशीतस्पर्शसुखंप्रादुर्भावयन्ति। “यथा वा—नालिकेरं बहिः कर्कशं भवति, तथापि तदीयं शीतलमधुरनीरगर्भितमाभ्यन्तरिकभागमुपलभ्य लोकस्तदास्वादनेन तुष्टिं पुष्टिं

इससे अप्राप्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र्य की मुझे प्राप्ति होती है। (त्ति पेहाए—इति प्रेक्ष्य) इस प्रकार पर्यालोचनात्मक बुद्धि से विचार कर (पयओ तं पंडिस्सुणे—प्रयतःतं प्रतिशृणुयात् ) सहनशील बना हुआ शिष्य गुरु के शिक्षात्मक वचनों को कर्तव्य समझकर अंगीकार करे ।

तात्पर्य—जिस प्रकार वर्षाकाल में सूर्य की किरणें प्रचण्डतर हो जाती हैं और इस से वे प्राणियों को असहनीय बनती हैं परन्तु परिणाम में दो तीन दिन के भीतर ही वे बरसात के समागमन से पवन को शीतल बना देती हैं उस से जलवृष्टि खूब होकर शीतस्पर्श के सुख का उन्हें अनुभव कराती हैं। अथवा जैसे—नारियल ऊपर से कठोर होता है परन्तु उसका भीतर का भाग शीतल, मीठे जल से भरा रहता है, उसको

अधुं मादे माटे दासकारक छे. केम के, अेनाथी अप्राप्त सम्यग् दर्शन सम्यग्ज्ञान, अने साभ्यक् चारित्र्यनी भने प्राप्ति थाय छे. त्तिपेहाए—इतिप्रेक्ष्य आ प्रकारे पर्या-लोचनात्मक बुद्धिथी विचार करी, पयओ तं पंडिस्सुणे—प्रयतः तत् प्रतिशृणुयात् सहनशील अनेद शिष्य गुरुना शिक्षात्मक वचनेने कर्तव्य समल अंगिकार करे.

आनुं तात्पर्य अे छे के, जेवी रीते वर्षाकाणमां सूर्यनां किरण्णु। प्रयंततर थर्ध ळय छे, अने तेथी ते प्राणीअे मादे असहनीय अनी ळय छे. परंतु परिणामे जे त्रण्णु द्विवसनी अंदर ते वरसादना समागमथी पवनने शीतल अनावी हे छे, जेथी जलवृष्टि भूष थाय छे अने ठंडीने स्पर्श सुअने अनुभव करावे छे. अथवा जेम नाणियेर उपरथी कठोर होय छे परंतु अेनी अंदरने भाग शीतल मीठा जलथी भरैदो होय छे. जेने जेणवी दौके तुष्टि—सतोष

च लभते । एवमाचार्याणां शीतं परुषं चेत्युभयविधं शिक्षावचनं परिणामे सुखजनकमेव । आचार्यवचनं हि—परिणामतस्तपःसंयमाराधनप्रवर्तकं, मिथ्यात्वादिपञ्चविधास्रवनिवर्तकं, ज्ञानावरणीयादिकर्मरजःपटलापसारणपरमभीषणसमीरणात्मकं, नानाविधलब्धिसाधकं, निखिलभावस्वभावावभासककेवलालोकप्रदर्शकं, शाश्वतिकसुखसमर्पकं च भवति” इत्येव पर्यालोच्य गुरोः शिक्षावचनमङ्गीकुर्यादिति ॥ २७ ॥

सकलकल्याणकारिण्यपि गुरुशिक्षा कस्मै कीदृशी परिणमतीत्याह—

मूलम्—अणुसासनमोवायं, दुक्कडँस्स यं चोर्यणं ।

हियं तं मन्नए पन्नो, वेस्सं होइं असाहुणो ॥२८॥

प्राप्त कर लोक तुष्टि एवं पुष्टि को प्राप्त करते हैं । इसी तरह आचार्य महाराज के कोमल एवं कठोर, दोनों प्रकार के शिक्षाप्रद वचन शिष्य को परिणाम में सुखजनक होते हैं । शिष्य को आचार्य महाराज के वचन ही अन्त में तप एवं संयम की आराधना करने में प्रवृत्त कराने वाले होते हैं । मिथ्यात्वादि पांच प्रकार के आस्रव के वे निरोधक होते हैं । ज्ञानावरणीय आदि कर्मरज के पटल को हटाने में वे प्रचण्ड पवन के वेगतुल्य होते हैं । शिष्यजनोंमें अनेक प्रकार की लब्धियों की जागृति कराने वाले होते हैं । समस्त पदार्थों के स्वभाव का जिस में अवभासन होता है ऐसे केवलज्ञानरूप प्रकाश के प्रदर्शक एवं शाश्वतिक सुख के देनेवाले होते हैं । इस प्रकार गुरु महाराज के शिक्षा वचनों को हितकारक जानकर शिष्यका कर्तव्य है कि वह उन्हें अंगीकार करे ॥ २७ ॥

अने पुष्टि प्राप्त करे छे. आ रीते आचार्य महाराजनां कोमल अथवा कठोर अन्ने प्रकारनां शिक्षाप्रद वचन शिष्यने परिष्ठाभमां सुखजनक अने छे. आचार्य महाराजनां वचनज अंतमां शिष्यने तप तथा संयमनी आराधना करवाभां प्रवृत्त करानेवा होय छे. मिथ्यात्वादि पांच प्रकारना आस्रवना अे निरोधक होय छे. ज्ञानावरणीय आदि कर्मरजना आवरणने दूर करवाभां ते प्रचंड पवनना वेग जेवां होय छे. शिष्यजनोंमां अनेक प्रकारनी लब्धियेनी जागृति करानेवा होय छे, समस्त पदार्थेना स्वभावनुं जेनाभां अवभासन होय छे अेवा केवल ज्ञान रूप प्रकाशना प्रदर्शक अने शाश्वतिक सुखने देवावाणा होय छे. आ प्रकारे गुरु महाराजना शिक्षा वचनेने हितकारक जाणीने शिष्यनुं अे कर्तव्य छे के ते अेना अंगिकार करे. ॥ २७ ॥

छाया—अनुशासनमौपायं, दुष्कृतस्य च नोदनम् ।

हितं तत् मन्यते प्राज्ञः, द्वेष्यं भवति असाधोः ॥ २८ ॥

टीका—‘अणुसासन’ इत्यादि—

प्राज्ञः=प्रज्ञावान् मेधावी शिष्यः, औपायम्—उपाये=शीतपरुषभाषणरूपे भवम्, मृदुकठोरभाषणसमन्वितम् अनुशासनं=गुरोः शिक्षावाक्यं, च—पुनः दुष्कृतस्य=अति-चारस्य निवारणार्थं नोदनं=प्रेरणं, ‘हा किमिदमकल्प्यं त्वया कृतम्’ इत्यादिरूपम् तद् वचनं हितं—लोकद्वयकल्याणकारकं, मन्यते । असाधोःअविनीतशिष्यस्य तदेव वचनं द्वेष्यं=द्वेषजनकं भवति ।

यथा—इक्षुक्षेत्रे दत्तं जलं मधुरसरूपेण परिणतं भवति, निम्बतरुमूले तु तदेव

सकल कल्याण करनेवाली भी गुरुशिक्षा किस को किस रूप में परिणत होती है सो कहते हैं—‘अणुसासनं’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(पन्नो-प्रज्ञः) बुद्धिमान मेधावी शिष्य (ओवायं-औपायं) मृदु एवं कठोर भाषण से मुक्त (अणुसासनं-अनुशासनं) गुरु के शिक्षा स्वरूप वचनों को कि जो (दुष्कृतस्य च चोयणं-दुष्कृतस्य च नोदनम्) अतिचार के निवारण के लिये प्रयुक्त किये गये हैं—‘यह तुमने नहीं करने योग्य काम क्यों कर दिया है’ इत्यादिरूप से जो कहे गये हैं (तं हियं मन्नए-तत् हितं मन्यते) उसको अपना हितकारक मानता है। (असाहुणो-असाधोः) परन्तु जो अविनीत शिष्य होता है वह उन्हीं शिक्षावचनों को (वैसंहवइ-द्वेष्यं भवति) अहितकारी मानता है। मेधावी शिष्य गुरु के मृदुकठोररूप वचनों को अपना हितकारक, एवं असाधु अर्थात् अविनीत शिष्य उन्हीं वचनों को दुःखदायक मानता है ।

सकल कल्याण करवाणी गुरु शिक्षा केने क्या रूपमां परिणत थाय छे ते कडेवामां आवे छे. अणुसासनं इत्यादि.

अन्वयार्थ—पन्नो-प्रज्ञः बुद्धिमान मेधावी शिष्य ओवायं-औपायं केभाय अथवा कठोर भाषणथी युक्त अणुसासनं-अनुशासनं गुरुनां शिक्षा स्वरूप वचनोने के जे दुष्कृतस्य च चोयणं-दुष्कृतस्य च नोदनम् अतिचारना निवारण भाटे प्रयुक्त करवामां आवेल छे. आ न करवा योग्य काम तमे शा भाटे क्युं ?” इत्यादि रूपथी जे कडेवाय छे तेहियं मन्नए-तत् हितं मन्यते एने पोतानां हितकर माने छे. असाहुणो-असाधोः परंतु जे अविनीत शिष्य होय छे ते जे शिक्षा वचनोने द्वेष्यं भवति अहितकारी माने छे.

कटुकरसरूपेण, यथा वा सितोपलं—‘मिसरी’ इति भाषाप्रसिद्धं सर्वेषां मधुरा-  
स्वादजनकं भवति तदेव पित्तदूषितरसनस्य निम्बादिवत् कटुकं, गर्दभाणां तु विष-  
मेव भवति, यथा वा शुद्धं घृतं सर्वेषां पुष्टिकरं भवति, तदेव ज्वराक्रान्तानां जनानां  
रोगवर्धकम् । एवं गुरुवचनं सविनयस्य हिताय जायते, विनयरहितस्य शिष्यस्य तु  
द्वेषाय इति भावः ॥ २८ ॥

उक्तमर्थं विशदयन्नाह—

मूलम्—हियं विगयभया बुद्ध्या, फरुसं पि अणुसासणं ।

वेरुसं तं होइ मूढाणं, खंतिसोहिकरं पयं ॥२९॥

छाया—हितं विगतभया बुद्ध्याः, परुषमपि अनुशासनम् ।

द्वेष्यं तत् भवति मूढानां, क्षान्तिशोधिकरं पदम् ॥ २९ ॥

तात्पर्य इसका इस प्रकार का है कि जिस प्रकार इक्षु के खेन में दिया गया पानी मधुर रसरूपसे परिणत होता है और वही पानी जब निम्बवृक्ष के मूलमें दिया जाता है तो कटुवे रूपमें परिणत हो जाता है, अथवा जैसे मिश्री सब के लिये मधुर आस्वाद देती है परन्तु जिस की जीभ पित्त से दूषित हो रही है उसके लिये वह मिश्री कटुवी नीम जैसी मालूम होती है, तथा गर्धों को तो वह विष जैसी ही मालूम होती है । अथवा जैसे शुद्ध घृत समस्तजनों को पुष्टि करने वाला होता है परन्तु वही घृत ज्वरवाले के लिए रोगवर्धक होता है, इसी प्रकार जो विनयी शिष्य हैं उनके लिये गुरु महाराज के वचन हितकारक होते हैं और वे ही वचन अविनीत शिष्य के लिये द्वेषकारक होते हैं ॥ २८ ॥

तेनुं तात्पर्यं आ प्रकारनुं छे, के जे प्रकारे द्राक्षना जेतारमां आपवामां आवेल पाणी मधुरसरूपमां परिष्णीत अने छे अने तेज पाणी ज्यारे लिजडाना वृक्षना भूगमां आपवामां आवे छे तो कटुरस रूपमां परिष्णमे छे. जेम-साकर जधा माटे मधुर आस्वाद आपे छे परंतु जेनी जल पित्तथी दुषित थयेल डोय छे, तेने माटे साकर कडवा लिजडा जेवी मालुम पडे छे. अने गर्धेडाने तो ते अडेर जेवी अने छे. अथवा जेम योज्जुं धी सधणा माटे पुष्टी करवावाणुं डोय छे परंतु ते धी ताववाणा माटे रोगने वधारनार अने छे. जे ज रीते जे विनयी शिष्य छे तेने माटे गुरु महाराजनुं वचन हितकारक डोय छे. अने ते ज वचन अविनीत शिष्य माटे द्वेषकारक डोय छे. ॥ २८ ॥



टीका—‘ हियं ’ इत्यादि—

विगतभयाः=भयरहिताः, भयं सप्तविधम्—इहलोकभयम् १, परलोकभयम् २, आदानभयम् ३, अकस्माद्भयम् ४, आजीविकाभयम् ५, मरणभयम् ६, अश्लोक-भयं च ७, एतैर्विवर्जिताः, बुद्धाः=ज्ञाततत्त्वा मेधाविन इत्यर्थः, एवंभूताः शिष्याः परुषमपि=ऋतोरमपि, अनुशासनम्=गुरूणां शिक्षावचनम् हितं=पथ्यं मन्यन्ते इति शेषः। किंतु क्षान्तिशोधिकरं—क्षान्तिः=क्षमा, शोधिः=शुद्धिः आत्मशुद्धिः, तयोः करम्=उत्पत्तिजनकं, यथा-वर्षाऋतुनिमित्तं प्राप्य जलधरा गर्जन्ति, वसन्तं प्राप्य वृक्षा नूतनपल्लवकुसुमश्रियोपेता भवन्ति, चन्द्रं प्राप्य चन्द्रकान्तमणयः प्रस्रवन्ति, सूर्यं प्राप्य कमलानि विकसन्ति, तथा क्षमां प्राप्य निर्लोभतादिगुणाः प्रादुर्भवन्ति। शोधि-श्च दुःखमेघनाशने पवनरूपा, सुखोत्पादने कल्पतरुरूपा भवसिन्धुपारकरणे नौका-रूपा, अज्ञानान्धकारनाशने प्रभारूपा। एवंभूतयोः क्षान्तिशोधोर्जनकम्, इदमुप-लक्षणम् तेन आर्जवादिकरमपि, पदं=ज्ञानादि गुणानां स्थानम्। तत्=अनुशासनं, मूढानां=कुशिष्याणां द्वेष्यं=द्वेषजनकं भवति। उक्तं च—

पुनरप्याह—‘ हियं ’ इत्यादि।

अन्वयार्थ—( विगतभया-विगतभयाः ) इहलोकभय, परलोकभय, आदानभय, अकस्मात्भय, आजीविकाभय, मरणभय, एवं अश्लोकभय, ये सात भय हैं। इनसे जो रहित हैं तथा (बुद्धा-बुद्धा): तत्त्वों के जो जानकार हैं—मेधावी हैं वे शिष्य ( फरुसंपि-परुषमपि ) कठार भी (अणुसासनं-अनुशासनं) गुरु महाराज के शिक्षात्मक वचनों को (हियं-हितं) पथ्य-हितविधायक मानते हैं। किन्तु ( खंति सोहिकरं -क्षान्तिशोधिकरं ) क्षमा और शुद्धि के विधायक तथा ( पयं-पदम् ) ज्ञानादिक गुणों के स्थानभूत ( तत् ) गुरु के वे ही अणुशासनरूप

पुनरप्याह हियं:-इत्यादि.

अन्वयार्थ—विगतभया-विगतभयाः आ लोकेनो भय, परलोकेनो भय, आदान भय, अकस्मात् भय, आजीविका भय, मरण भय अने अश्लोक भय आ सात भय छे अनाथी जे रहित छे तथा ( बुद्धा-बुद्धा ) तत्त्वोने जे ज्ञातकार छे, मेधावी छे, ते शिष्य फरुसंपि-परुषमपि कठोर पथ्य अणुसासनं-अनुशासनं गुरु महाराजनां शिक्षात्मक वचनोने हियं-हितं पथ्य हित विधायक माने छे, खंतिसोहिकरं-ज्ञानिशोधिकरं क्षमा अने शुद्धिना विधायक, पयं-पदम् ज्ञानादिक

સદ્બોધં વિદધાતિ હન્તિ કુમર્તિ મિથ્યાદ્રશં બાધતે,  
 ધત્તે ધર્મમર્તિ તનોતિ પરમે સંવેગનિર્વેદને ।  
 રાગાદોન્ વિનિહન્તિ નીતિમમલાં પુષ્ણાતિ હન્ત્યુત્પથં,  
 યદ્વા કિં ન કરોતિ સદ્ગુરુમુખાદભ્યુદ્ગતા ભારતી ॥૧॥ ઇતિ ॥ ૨૯ ॥

વચન (મૂઢાણં વેસ્સં હોઢ-મૂઢાનાં દ્વેષ્યં ભવતિ) મૂર્ખ-અવિનીત શિષ્યોં  
 કે લિયે દ્વેષજનક હોતે હૈં । કહા ખી હૈ—

“સદ્બોધં વિદધાતિ હન્તિ કુમર્તિ મિથ્યાદ્રશં બાધતે,  
 ધત્તે ધર્મમર્તિ તનોતિ પરમે સંવેગનિર્વેદને ।  
 રાગાદોન્ વિનિહન્તિ નીતિમમલાં પુષ્ણાતિ હન્ત્યુત્પથં,  
 યદ્વા કિં ન કરોતિ સદ્ગુરુમુખાદભ્યુદ્ગતા ભારતી ” ॥ ૧ ॥

સદ્ગુરુ કે મુખસે નિકલો હુઈ વાણી પ્રશસ્ત બોધકી-સમ્યગ્જ્ઞાન કી  
 જનક હોતી હૈ, કુમર્તિ કી વિદારક હોતી હૈ, મિથ્યાત્વરૂપી દૃષ્ટિ કી  
 વિધ્વંસક હોતી હૈ, ધર્મ મેં મતિ ઉત્પન્ન કરને વાલી હોતી હૈ, સંવેગ,  
 એવં નિર્વેદ ગુણ કી ઉત્કર્ષક હોતી હૈ, રાગાદિકોં કી વિનાશક હોતી હૈ,  
 નિર્મલ નીતિ કી પોષક હોતી હૈ, કુમાર્ગ કી વિદ્રાવક હોતી હૈ । એસે  
 ઓર કોન સે સદ્ગુણ વચતે હૈં જો ગુરુદેવ કી વાણી સે જીવોં કો પ્રાપ્ત  
 ન હોતે હોં ॥ ૨૯ ॥

શુભોના સ્થાનભૂત, તત્ તે શુરુ કે જ્ઞેઓનાં અનુશાસના રૂપ વચન મૂઢાણં  
 વેસ્સં હોઢ-મૂઢાનાં દ્વેષ્યં ભવતિ અવિનીત શિષ્ય માટે દ્વેષ જનક અને છે.  
 કલ્યું પશ્ય છે કે—

સદ્બોધં વિદધાતિ હન્તિકુમર્તિ, મિથ્યાદ્રશં બાધતે ।  
 ધત્તે ધર્મમર્તિ તનોતિ પરમે સંવેગનિર્વેદને ॥  
 રાગાદોન્ વિનિહન્તિ નીતિમમલાં પુષ્ણાતિ હન્ત્યુત્પથં ।  
 યદ્વા કિં ન કરોતિ સદ્ગુરુમુખાદભ્યુદ્ગતા ભારતી ॥૧॥

સદ્ગુરુના મુખથી નીકળેલી વાણી પ્રશસ્ત બોધની સામ્યગ્જ્ઞાનની જનક  
 હોય છે, કુમર્તિની વિદારક હોય છે, મિથ્યાત્વરૂપી દૃષ્ટિની વિધ્વંસક હોય છે,  
 ધર્મમાં મતિ ઉત્પન્ન કરવાવાળી હોય છે, સંવેગ અને નિર્વેગ શુભોના ઉત્કર્ષક  
 કરવાવાળી હોય છે, રાગાદિકોના વિનાશ કરનારી હોય છે, નિર્મળ નીતિની  
 પોષક હોય છે. કુમાર્ગની વિદ્રાવક હોય છે, એવા અને બીજા કયા સદ્ગુણ  
 બાકી રહે છે કે જે શુરુદેવની વાણીથી શુભોને પ્રાપ્ત ન થતા હોય ॥ ૨૯ ॥

मूलम्—आसणे उवचिद्विजा, अणुञ्चे अकुए थिरे<sup>३</sup> ।

अपुट्टाई निरुट्टाई, निसीएजप्पकुर्वकुए ॥३०॥

छाया—आसने उपतिष्ठेत्, अनुच्चे अकुचे स्थिरे ।

अल्पोत्थायी निरुत्थायी, निषीदेत् अल्पकौकुच्यः ॥ ३० ॥

टीका—‘आसणे’ इत्यादि—

अनुच्चे—द्रव्यतो गुर्वासनाबीचे, भावतः स्वल्पमूल्यके, अकुचे अकम्पमाने, यद्वा चटत्कारादिशब्दरहिते, स्थिरे=समपादवच्चेन निश्चले, आसने उपतिष्ठेत् पीठादौ वर्षासु उपतिष्ठेत्=उपविशेत् । ईदृशेऽप्यासने साधुः किमवस्थः संस्तिष्ठे-दित्याह—‘अपुट्टाई’ इति अल्पोत्थायी-कार्ये सत्यपि ईषदुत्तिष्ठतीत्येवंशीलः, एककार्येणोत्थितः सन् बहुकार्यसंपादक इत्यर्थः । अत-एव-कीदृशः सन्नित्याह—

अब शिष्य के लिये आसन की विधि कहते हैं—‘आसणे’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—शिष्य (अणुच्चे-अनुच्चे) द्रव्यकी अपेक्षा गुरुमहाराज के आसनसे नीचा भावकी अपेक्षा अल्पमूल्यवाला (अकुए-अकुचे) तथा चटचट इत्यादि शब्द से रहित, अथवा हिलनेवाला नहीं ऐसा जो (थिरे-स्थिरे) स्थिर-चारों पाये जिसके समान हों ऐसे (आसणे-आसने) आसन - पीठ फलक पाट पाटले आदि, उन पर वर्षाकाल में (उवचिद्विजा-उपतिष्ठेत्) बैठे । शिष्य जिस आसन पर बैठे वह गुरु के आसन की अपेक्षा नीचा होना चाहिये । तथा अल्प मूल्यवाला एवं हिलने डुलने वाला नहीं होना चाहिये । शिष्य अपने आसन पर जम कर बैठे, कारण बिना न उठे, यही बात (अपुट्टाई-अल्पोत्थायी) इस पद द्वारा प्रदर्शित की गई है । उठने का काम यदि

हुवे शिष्य भाटे आसननी विधि कडे छे, आसणे-धत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्य अणुच्चे-अनुच्चे द्रव्यकी अपेक्षा गुरुमहाराजना आसनथी नीचा, लावनी अपेक्षा अल्पमूल्यवाला, अकुए-अकुचे तथा चटचट धत्यादि शब्दथी रहित अथवा डुलवावाला नही अथवा जे थिरे-स्थिरे स्थिर-आरे पाया जेना अेक सरभा डोय तेवा, आसणे-आसने आसन-पीठ फलक पाट पाटला आदि जेना उपर वर्षाकालमां उवचिद्विजा-उपतिष्ठेत् जेसे. शिष्य जे आसन उपर जेसे ते गुरुना आसनथी नीचुं डोवुं जेधअे, तथा हुवे अडे नही तेवुं डोवुं जेधअे. शिष्य पोताना आसन उपर स्थिर थधने जेसे, कारण वगर न उठे, अपुट्टाई-अल्पोत्थाई आ वात आ पद द्वारा प्रदर्शित करवामां

उ० २९

‘નિરુઠ્ઠાઈ’ इति निरुत्थायी-प्रयोजनेऽपि न पुनः पुनरुत्थानशीलः पुनः कीदृशः सन्नित्याह-‘अप्पकुक्कुए’ इति अल्पकौकुच्यः-अल्पं कौकुच्यं यस्य स तथा-अत्राल्पशब्दो नञर्थे वर्तते तथाच-करचरणभ्रूभ्रमणाद्यशिष्टचेष्टारहित इत्यर्थः निषीदेत्=उपविशेत् ।

‘अनुच्चे’ इति विशेषणेन विनयः प्रदर्शितः ।

‘अकुच्चे’ इत्यनेन द्वीन्द्रियादित्रसजीवयतना सूचिता ।

‘स्थिरे’ इत्यनेन वायुकाययतना सूचिता ।

‘अल्पोत्थायी’ इत्यनेन निषद्यापरिषहविजयः सूचितः ।

‘निरुत्थायी’ इत्यनेन आभ्यन्तरिकव्युत्सर्गतपसः समाराधनाऽऽवेदिता ।

પટે મી તૌ મી જબ ઉઠે તવ જિસ કામ કે લિયે ઉઠા હો ઉસ સમય ઔર મી જો કામ કરના હો વે મી કર લેવે । તથા (અપ્પકુક્કુએ-અલ્પ કૌકુચ્યઃ) હાથ તથા પૈર એવં ભ્રૂ આદિ કા અશિષ્ટ સંચાલન ન કરે, તાત્પર્ય યહ કિ યદિ ઘહ પાટ આદિ આસનપર જમકર બેઠે તો મી એસી હાલત મેં જિસ પ્રકાર સંસારી જન બેઠે ૨ હી હાથ પૈર આદિ હિલાયા ડુલાયા કરતે હૈં વૈસી અશુભ ચેષ્ટાએં નહીં કરની ચાહિયે । સૂત્રકાર ને ‘અનુચ્ચે’ હસ પદ દ્વારા વિનયગુણ પ્રદર્શન કિયા હૈ । ‘અકુચ્ચે’ હસ વિશેષણ દ્વારા દ્વીન્દ્રિયાદિ જીવોં કી યાતના કા સૂચન કિયા હૈ । ‘સ્થિરે’ હસ શબ્દ દ્વારા વાયુકાય કી યાતના કા ‘અલ્પોત્થાયી’ હસ પદ દ્વારા નિષદ્યાપરીષહ કે વિજય કા ‘નિરુત્થાયી’ હસ દ્વારા આભ્યન્તર

આવેલ છે. ઉઠવાનું કામ જો પડે તો પશુ જ્યારે ઉઠે ત્યારે જે કામ માટે ઉઠેલ હોય તેની સાથે ધીભૂં પશુ જે કામ કરવાનું હોય તે કરી લે. તથા અલ્પકુક્કુએ-અલ્પકૌકુચ્યઃ તથા હાથ અને પગ તથા ભ્રૂ વગેરેનું અશિષ્ટ સંચાલન ન કરે. તાત્પર્ય એ છે કે, જો તે પાટ આદિ આસન ઉપર સ્થિર બેસે તો પશુ એવી હાલતમાં જે પ્રકારથી સંસારી જન બેઠાં બેઠાં જ હાથ પગ વગેરે હલાવ્યા-ડાલાવ્યા કરે છે તે રીતે અશુભ ચેષ્ટાઓ કરવી ન જોઈ એ. સૂત્રકારે “અનુચ્ચે” આ પદ દ્વારા વિનયગુણ પ્રદર્શન કરેલ છે. અકુચ્ચે આ વિશેષણ દ્વારા દ્વિ ધન્દ્રિયાદિ જીવોની યતનાનું સૂચન કરેલ છે. સ્થિરે આ પદ દ્વારા વાયુકાયની યતનાનું સૂચન કરેલ છે. “અલ્પોત્થાયી” એ પદ દ્વારા નિષદ્યા પરિષદના વિજયનું સૂચન કરેલ છે. નિરુત્થાયી એ પદ દ્વારા આભ્યન્તર વ્યુત્સર્ગ તપનો તથા

‘अल्पकौकुच्यः’ इति विशेषणेन संयमलज्जा सूचिता ॥ ३० ॥

संप्रति एषणासमिति विषयं विनयमाह—

मूलम्—कालेण निक्खमे भिक्खू, कालेण यं पडिक्कमे ।

अर्कालं च विवज्जित्ता, काले कालं समाचरे ॥३१॥

छाया—कालेन निष्क्रामेद् भिक्षुः, कालेन च प्रतिक्रामेत् ।

अकालं च विवर्ज्य, काले कालं समाचरेत् ॥ ३१ ॥

टीका—‘कालेण’ इत्यादि—

कालेन—काले—देशकालानुसारेण भिक्षायोग्यसमये एव भिक्षुः=साधुर्निष्क्रामेत्=भिक्षार्थं निर्गच्छेत्—अकाले भिक्षार्थं निर्गमने संनिवेशनिन्दास्वात्मक्लेशादि दोषसंभवात् । च—पुनः कालेन=काले उचित समय एव प्रतिक्रामेत्=भिक्षाटनात् प्रति-निवर्तते, अल्पलाभे अलाभे वा लाभाशया कालमतिक्रम्य न चिरकालमटेदिति भावः ।

व्युत्सर्ग तपका तथा ‘अल्पकौकुच्यः’ इस पद द्वारा संयम की लज्जा के निर्वाह का सूचन किया है ॥ ३० ॥

अब एषणासमिति विषयक विनयधर्मका सूत्रकार कथन करते हैं—‘कालेण’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(कालेण—कालेन) देश काल के अनुसार भिक्षायोग्य समय में ही (भिक्खू—भिक्षु) साधु को (निक्खमे—निष्क्रामेत्) भिक्षा के लिये अपने स्थान से जाना चाहिये । अकाल में भिक्षा के लिये निकलने में संनिवेश—गाँव की तथा साधु की निन्दा होती है, इस से आत्मा को क्लेशादिक दोषों की संभावना रहती है । तथा (कालेण य पडिक्कमे—कालेन च प्रतिक्रामेत्) उचित समय में ही वह वापिस भिक्षाटन से लौट आवे, ऐसा नहीं करना चाहिये कि भिक्षा का अल्पलाभ हो अथवा

अल्पकौकुच्यः अत्र पद द्वारा संयमनी लज्जाना निर्वाहनु सूचन करेत् । ॥३०॥

इत्थं एषणासमिति विषयक विनयधर्मनु सूत्रकार कथन करेत् । कालेण० इत्यादि.

अन्वयार्थ—कालेण—कालेन देशकालानुसार भिक्षाया योग्य समये, भिक्खु—भिक्षु साधु अत्र निक्खमे—निष्क्रामेत् भिक्षा माटे पोताना स्थानथी ज्वं जेधअ. अकालमां भिक्षा माटे निकणवाभां गामनी तथा साधुनी निन्दा थाय अ. अथी आत्माने उक्लेशादिक दोषानी संभवना रहे अ. तथा कालेण य पडिक्कमे—कालेन च प्रतिक्रामेत् उचित समयमां ज ते भिक्षाटनथी पाछा इरे. अत्रुं न करवुं जेधअ अे भिक्षानो अल्प लाभ होय अथवा अलाभ होय तो ते दासनी

उक्तं च—अलाभो त्ति न सोइज्जा, तवोत्ति अहियासए ॥

छाया—अलाभ इति न शोचेत्, तप इत्यध्यासीत् ॥

च—पुनः अकालं—प्रतिक्रमण—प्रतिलेखनाऽऽपृच्छना—स्वाध्याय—भिक्षाचरीप्रभृति-कार्याणामयोग्य समयं च विवर्ज्य=परित्यज्य, काले—यस्य कार्यस्य यः कालस्तस्मिन्नेव, कालं-तत्तत्कालोचितं प्रतिक्रमण-प्रतिलेखनादिकं कार्यं समाचरेत्=कुर्यात् ।

अयं भावः—यो यस्य अङ्गप्रविष्टादेः श्रुतस्य काल उक्तस्तस्य श्रुतस्य तस्मिन्नेव काले स्वाध्यायः कार्यः, नान्यदा, विघ्नसंभवात्, तीर्थंकराणां विरोधाच्च ।

अलाभ हो तो वहीं लाभ की आशा से समय को उल्लंघन कर बहुत समय तक घूमता ही रहे । भगवान ने कहा भी है—

“अलाभो त्ति न सोइज्जा, तवोत्ति अहिया सए”

साधु को जब अपने समयानुसार भिक्षा का लाभ न हो तो उस समय उसे शोच नहीं करना चाहिये किन्तु ऐसा समझना चाहिये कि यह एक बड़े भारी तप का लाभ हुआ है । प्रतिक्रमण, प्रतिलेखना, अपृच्छना, स्वाध्याय तथा भिक्षाचर्या का जो समय नियत है उस समय के अतिरिक्त (अकालं च विवर्जिता—अकालं च विवर्ज्य) शेष उनका अकाल का समय है अतः उसे छोड़कर (कालं) जोर, कार्य जिसर समय में किये जाने चाहिये उन्हें (काले) उसी समय में (समायरे—समाचरेत्) करे ।

भावार्थ—जिस अंगप्रविष्ट आचारांग आदि सूत्रों के स्वाध्याय करने का जो समय नियत है उस समय में उसी श्रुत की स्वाध्याय

आशाथी समयतुं उलंघन करीने घण्टा समय सुधी करता रहे. लगवाने कहुं छे के अलाभोत्ति न सोइज्जा तवो त्ति अहियासए साधुने न्यारे पोताना समय अनुसार भिक्षाने लाभ न थाय तो ते समये तेहे सोच न करवे जेधये परंतु जेभ समयतुं जेधये के, आ जेक लारे तपने लाभ भज्ये, प्रतिक्रमण, प्रतिलेखना. आस्पृच्छना. स्वाध्याय. तथा भिक्षाचर्याने जे समय नियत छे जे समय सिवाय, अकालं च विवर्जिता—अकालं च विवर्ज्य शेष तेने अङ्गाने समय छे, आथी जेने छोडी, कालं जे जे कार्य जे जे समयमां करी देवां जेधये जेने जे जे काले समयमां समायरे—समाचरेत् करे.

भावार्थ—अंग प्रविष्ट आचारांग आदि सूत्रोने स्वाध्याय करवाने जे समय नियत छे जे समयमां जेज श्रुतने स्वाध्याय करवे जेधये. पीब



दृश्यते च लोकेऽपि काल एव कृष्यादिकरणे धान्यादिनिष्पत्तिरूपं फलं भवति, विपर्यये तु विपर्ययः । यथा काल एव वनस्पतीनामङ्कुराः प्रादुर्भवन्ति, काल एव वृक्षाः कुसुमिता भवन्ति, फलवन्तश्च, काल एव षड् ऋतवः समायान्ति, काल एव तीर्थकराश्चक्रिणो बलदेवा वासुदेवा जायन्ते, काल एव शुक्तिकायां मुक्ता उत्पद्यन्ते, काले आवश्यककारिणस्तीर्थकरगोत्रं कर्मोपार्जयन्ति ।

यतः—कालम्मि कीरमाणं, किसिकम्मं बहुफलं जहा होइ ।

इय सव्वच्चिय किरिया, निय-निय-कालम्मि विन्नेया ॥ १ ॥

छाया—काले क्रियमाणं, कृषिकर्म बहुफलं यथा भवति ।

इति सर्वैव क्रिया, निज-निज-काले विज्ञेया ॥ १ ॥

करनी चाहिये, भिन्न समय में नहीं, कारण कि अकाल में विघनों के आने की संभवना रहती है। तथा तीर्थकर प्रभुकी ऐसी आज्ञा नहीं है, अतः उनकी आज्ञा के विरुद्ध प्रवृत्ति करने से स्वच्छंदता का दोष लगता है। लोकमें भी यही बात देखी जाती है—खेती आदि करने का जो काल नियत है उसी में उस के करने से धान्यादिक फल की निष्पत्ति होती है, अन्य समय में नहीं। समयानुसार ही वृक्षों में पत्र पुष्प फलादिक आया करते हैं। तथा वनस्पतियाँ अङ्कुरों को उत्पन्न करती हैं। अपने अपने समय में छह ऋतुएँ आती हैं। तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, ये सब अपने २ समय पर ही होते हैं। सीप में मोती, समयानुसार ही होते हैं। आवश्यक क्रियाओं को करने वाले जीव समय पर ही तीर्थकर गोत्र का उपार्जन किया करते हैं। कहा भी है—

समयमां नहीं. कारण के अकालमां विघ्ना आववाणी संलावना रहे छे. तथा तीर्थकर प्रभुनी ओवी आज्ञा नथी. माटे ओमनी आज्ञानी विरुद्ध प्रवृत्ति करवाथी स्वच्छंदताने दोष लागे छे. लोकमां पण्य आवी वात देखाथ छे—  
खेती वगेरे करवाने के काल नियत छे ओ समये न करवाथी धान्यादिक फलानी उत्पत्ति थाय छे. अन्य समयमां नहीं. समयानुसार वृक्षां पत्र पुष्प फलादिक आया करे छे. तथा वनस्पतिओ अङ्कुराने उत्पन्न करे छे. सीपाना समयमां छ ऋतुओ आवे छे तीर्थकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव. ओ अथा सीप सीपाना समय उपर थाय छे. सीपमां मोती समयानुसार न थाय छे. आवश्यक क्रियाओने करवावाणा एव समय पर न तीर्थकर प्रभुतिने अर्थ कया करे छे. कहुं पण्य छे के—

तस्मात् साधुभिः कालएव सर्वा प्रतिक्रिमणप्रतिलेखनादिक्रिया कर्तव्येति ।  
सूत्रे 'कालेण' इत्यत्र तृतीया सप्तम्यर्थे ॥ ३१ ॥

मूलम्—परिवाडीए न चिट्टेज्जा, भिक्खु दत्तेसणं चरे ।

पँडिरूवेण एसित्ता, मियं<sup>०</sup> कालेण भक्खँए ॥३२॥

छाया—परिपाट्यां न तिष्ठेत्, भिक्षुः दत्तैषणां चरेत् ।

प्रतिरूपेण एषित्वा, मितं कालेन भक्षयेत् ॥ ३२ ॥

टोका—'परिवाडीए' इत्यादि—

भिक्षुः=साधुः, परिपाट्यां—गृहस्थगृहे भुञ्जानानां जनानां पङ्क्तौ न तिष्ठेत् ।  
किं च—दत्तैषणां=दत्तं—दानं तस्मिन् गृहस्थेन दीयमाने, एषणा—तद्गतशङ्कित—

“कालम्मि कीरमाणं, किसिकम्मं बहुफलं जहा होइ ।

इय सव्वच्चिय किरिया, निय-निय-कालम्मि विन्नेया ॥ १ ॥

छाया—काले क्रियमाणं, कृषिकर्म बहुफलं यथा भवति ।

इति सर्वा चैव क्रिया निज-निज-काले विज्ञेया ॥ १ ॥

इस लिये साधुओं को चाहिये कि वे समस्त अपनी प्रतिक्रमण  
प्रतिलेखनादिक क्रियाओं को नियत समय पर ही करते रहें ॥ ३१ ॥

'परिवाडीए' इत्यादि.

अन्वयार्थ—( भिक्खु-भिक्षुः ) साधु (परिवाडीए न चिट्टेज्जा-  
परिपाट्यां न तिष्ठेत्) गृहस्थ के घर में भोजन करती हुई जीमणवार  
की जनपंक्ति में न खडा रहे । ( दत्तेसणं चरे-दत्तैषणां चरेत् )

“कालम्मि कीरमाणं, किसिकम्मं बहुफलं जहा होई ।

इय सव्वच्चिय किरिया, निय-निय-कालम्मि विन्नेया ॥ १ ॥

छाया—काले क्रियमाणं, कृषिकर्म बहुफलं यथा भवति ।

इतिसर्वैवक्रिया, निज-निज-काले विज्ञेया ॥१॥

आ भाटे साधुनुं कर्तव्य छे के तेछे पोतानी सभस्त क्रियाओ प्रतिक्रमण  
प्रतिक्षेपनादिक नियत समय उपर करवी लेईये. ॥ ३१ ॥

परिवाडिए—इत्यादि.

अन्वयार्थ—भिक्खु-भिक्षुः साधु, परिवाडीए न चिट्टेज्जा-परिपाट्यां न तिष्ठेत्  
गृहस्थनाशरमां भोजन करती गृहस्थवारणी जनपंक्तिमां उभा न रहे. दत्तेसणं चरे—  
दत्तैषणां चरेत् गृहस्थ द्वारा प्रदत्त दानमां शक्ति, भक्षिक आदिदोषोनी अवेषणा इय

अक्षितादिदोषान्वेषणात्मिका दत्तैषणा तां, चरेत्=आसेवेत । अनेन ग्रहणैषणा सूचिता । किं कृत्वा दत्तैषणां चरेदित्याह-‘ पडिरूवेण ’ इत्यादि । प्रतिरूपेण=मुनिवेषेण, बद्धसदोरकमुखवस्त्रिकत्वं, रजोहरणपात्रधारकत्वं, श्वेतवस्त्रपरिधायकत्वं च मुनिवेषस्तेन, एषित्वा=गवेषयित्वा, अनेन उद्गमोत्पादनाविषया गवेषणैषणा प्रोक्ता । मितं=परिमितं कालेन-काले-आगमोक्तसमये देशकालानुसारेण भक्षयेत्-भुञ्जीत । अनेनाभ्यवहरणविषया ग्रासैषणाऽऽवेदिता ।

अत्र ‘परिवाडीए न चिट्टेज्जा’ इत्यनेन अप्रीतिः, रसलोलुपतावर्जनं च सूचितम् । ‘दत्तैसणं’ इत्यनेनादत्तादाननिवृत्तिः सूचिता । ‘पडिरूवेण’ इत्यनेन निष्कपटता प्रदर्शिता । ‘मियं’ इत्यनेनाधिकभोजननिवृत्तिरावेदिता ॥ ३२ ॥

गहस्थद्वारा प्रदत्त दान में शङ्कित, अक्षित आदि दोषों की गवेषणा रूप दत्तैषणा अर्थात् ग्रहणैषणा का ध्यान रखे । (पडिरूवेण-प्रतिरूपेण) प्रतिरूपसे-मुनि के वेष से-मुख पर दोरासहित मुंहपत्ति बांधना रजोहरण एवं पात्रों का धारण करना, यह मुनिवेष है इस वेष से (एसित्ता-एषित्वा) गवेषणा कर (कालेण-कालेन) आगमन में कथित समयमें देश काल के अनुसार समय पर मिले हुए अन्न आदिका (मियं-मितं) परिमितं (भक्षये-भक्षयेत्) आहार करे । ‘एसित्ता-एषित्वा’ इस पद से उद्गम, उत्पादन आदि दोषों से वर्जित गवेषणैषणा, तथा ‘भुञ्जीत’ इस क्रियापद द्वारा ग्रासैषणा प्रकट की गई है । ‘परिवाडीए न चिट्टेज्जा’ इस पद द्वारा अप्रीति एवं रस में लोलुपताका परिहार सूचित हुआ है । ‘दत्तैसणं’ से अदत्तादान से निवृत्ति, ‘पडिरूवेण’ से निष्कपटता, ‘मियं’ इस से अधिक भोजनकी निवृत्ति सूचित की गई है ॥ ३२ ॥

दत्तैषणा अर्थात् अड्डैषणात् ध्यान राप्ते. पडिरूवेण-प्रतिरूपेण प्रतिरूपेण-मुनिना वेशेण भोटा उपर दोरासहित मुहपत्ति बांधवी, रजोहरण तथा पात्रोनुं धारण करवुं तथा शुक्ल वस्त्रोने धारण करवां अये मुनिवेशे छे. आ वेशेने, एसित्ता-एषित्वा धारण करी, कालेण-कालेन आगमना कडेला समयमां देशकाल समय अनुसार समय उपर भणेलो अन्न आदिने। मियं-मितं परिमित भक्षये-भक्षयेत् आहार करे. एसित्ता-एषित्वा अये पदथी उद्गम, उत्पादन आदि दोषेथी वर्जित गवेषणैषणा तथा “भुञ्जीत” आ क्रिया पद द्वारा ग्रासैषणा प्रकट करवामां आवेल छे. परिवाडी ए न चिट्टेज्जा आ पद द्वारा अप्रीति अयेव रसमां लोलुपतानो परिहार सूचित थयेल छे. दत्तैसणं आ पदथी अदत्तादाननी निवृत्ति, सूचित करवामां आवी छे. पडिरूवेण आ पदथी निष्कपटता सूचित करे छे. मियं अये पदथी अधिक भोजननी निवृत्ति सुचयवामां आवेल छे. (३२)

भिक्षाचर्यां कुर्वता साधुना गृहस्थगृहे पूर्वसमागतभिक्षुसञ्जावे यत्  
कर्तव्यं तदाह—

मूलम्—नाइदूरमणासन्ने, नन्नैसिं चर्क्खुफासओ ।

एंगो चिट्ठेज्ज भत्तं, लंघित्ता तं नाइक्कमे ॥३३॥

छाया—नातिदूरं अनासन्ने, नान्येषां चक्षुःस्पर्शतः ।

एकस्तिष्ठेद् भक्तार्थम्, लङ्घयित्वा तं नातिक्रामेत् ॥ ३३ ॥

टीका—‘नाइदूर०’ इत्यादि—

अतिदूरम्=अतिदूरे न तिष्ठेत्, भिक्षाचर्यां कुर्वन् साधु गृहस्थगृहे पूर्वसमागतं  
भिक्षुकं दृष्ट्वा ततोऽति दूरे न तिष्ठेत्, अतिदूरावस्थाने भिक्षुनिर्गमनं ज्ञातुमशक्यं  
स्यात्, एषणा शुद्रयसंभवश्चेति भावः । तथा आसन्ने=अतिनिकटेऽपि न तिष्ठेत्,

जिस समय साधु भिक्षाचर्या कर रहा हो उस समय यदि गृहस्थ  
के घर में कोई दूसरा भिक्षु भिक्षाचर्या के लिये आया हुआ हो तो  
साधु का क्या कर्तव्य है? इस विषय को इस गाथाद्वारा स्पष्ट किया  
जाता है—‘नाइदूर०’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—भिक्षा करता हुआ साधु (नाइदूरमणासन्ने—नातिदूरं  
अनासन्ने) जब यह देखे कि गृहस्थ के घर पर पहिले से कोई दूसरा  
भिक्षु आदि भिक्षानिमित्त आया हुआ है, या भिक्षा ग्रहण कर रहा है  
तो वह उस समय बहुत दूर जाकर खड़ा न होवे और न अति समीप  
खड़ा होवे । क्यों कि अतिदूर खड़े होने पर भिक्षु का निर्गमन उसे  
ज्ञात नहीं हो सकता है, तथा अति समीप खड़े रहने पर उससे पूर्वगत

ने समय साधु भिक्षा चर्या करता होय ओ समये गृहस्थने घर केअर्ध  
भील भिक्षु भिक्षाचर्या भाटे आवेल होय तो साधुतुं शुं कर्तव्य छे. आ  
विषयने आ सूत्रद्वारा स्पष्ट करवाभां आवे छे—नाइदूर—इत्यादि.

अन्वयार्थ—भिक्षा भाटे निकजेल साधु, नाइदूरमणासन्ने—नातिदूरं अनासन्ने  
ओ ओओ के ओ गृहस्थने त्यां पोते अर्ध रहेल छे, त्यां तेनी पडेलां केअर्ध भील  
भिक्षु भिक्षा निमित्त गयेल छे, अथवा भिक्षा ग्रहण करी रहेल छे, तो ते  
ओ समये धणु आवे अर्ध जिला न रहे तेम अति समीपमां पणु जिला न  
रहे केम के, अति इर जिला रहेवाथी भिक्षार्थे गयेला भिक्षुतुं निर्ग-  
मन अणु शकतुं नथी तथा अति समीप रहेवाथी पडेलां भिक्षा भाटे

तत्र स्थिते सति पूर्वागतभिक्षुकस्य द्वेषः स्यादिति भावः । अन्येषां=भिक्षुकापेक्षया=येऽन्ये सन्ति गृहस्थास्तेषां, चक्षुःस्पर्शतः=चक्षुःस्पर्शे दृष्टिगोचरे न तिष्ठेत्, 'अयं भिक्षुः पूर्वागतभिक्षुनिष्क्रमणं प्रतिक्षते इति यथा गृहस्था न जानन्ति तथा तिष्ठेदिति भावः । एकः=रागद्वेष रहितः सन्, भक्तार्थम्-आहारार्थं तिष्ठेत् । तम्=पूर्वागतभिक्षुकं, लङ्घयित्वा=अनादृत्य, नातिक्रमेत्= न गृहमध्ये गच्छेत्, पूर्वागतभिक्षुकस्य सद्भावे गृहस्थस्यगृहेःगमने तदप्रीतिशासनलघुतादिदोषाणां संभव इति भावः ॥ ३३ ॥

सम्प्रति ग्रहणेषणाविधिं सूत्रकारः प्रदर्शयति—

मूलम्—नाँइँउच्चे न नीँए वा, नाँसँणणे नाँइँदूरँओ ।

फाँसुँयं परँकडं पिँडं, पडिँगाँहिज्ज संजँए ॥३४॥

छाया—नात्युच्चे न नीचे वा नासन्ने नातिदूरतः ।

प्रासुकं परकृतं पिण्डं, प्रतिगृहीयात् संयतः ॥ ३४ ॥

भिक्षु को द्वेष हो सकता है । इसी प्रकार ( नन्नेसिं चक्खुफासओ चिट्ठेज्ज-नान्येषां चक्षुःस्पर्शतः तिष्ठेत् ) गृहस्थ के नजर में आवे ऐसा भी खडा न होवे ( एगो-एकः ) एक तथा राग-द्वेष रहित होकर ( भक्तद्वं-भक्तार्थम् ) आहार के लिये ( चिट्ठेज्ज ) खडा रहे और ( लंघित्ता तं नाइकमे-लङ्घयित्वा तं नातिक्रमेत् ) पहले वाला भिक्षु जब तक बाहर न निकले तब तक मुनि को उस गृहस्थ के घर में आहार निमित्त प्रविष्ट नहीं होना चाहिये । पहले आये हुए भिक्षु के सद्भाव में गृहस्थ के घर जाने पर गृहस्थ को उस के प्रति अप्रीति हो सकती है एवं शासन की लघुता आदि दोषों की संभावना हो सकती है ॥ ३३ ॥

गथेवा भिक्षुकना मनमां द्वेष लागवा जेवुं अने छे. तेम नन्नेसिं चक्खु-फासओ चिट्ठेज्ज-नान्येषां चक्षुःस्पर्शतः तिष्ठेत् गृहस्थनी दृष्टि पडे अे रीते पणुं उभा न रहे. एगो-एकः अेक तथा राग द्वेष रहित अनीने भक्तद्वं-भक्तार्थम् भिक्षा माटे चिट्ठेज्ज उभा रहे अने लंघित्ता तं नाइकमे-लंघयित्वा तं नातिक्रमेत् पडेवा भिक्षा माटे गथेव भिक्षु न्यां सुधी अडार न नीकणे त्यां सुधी मुनिअे ते गृहस्थना घरमां आडार निमित्त प्रवेश न करवे अेधअे. पडेवां गथेवां साधुना सइभावमां गृहस्थने त्यां जवाथी गृहस्थने तेना तरइ अप्रीति थाय अने शासननी लघुता आदि दोषोनी संभावना थाय छे. ॥ ३३ ॥

उ० ३०

टीका—‘ नाइ उच्चे’ इत्यादि—

संयतः=साधुः, प्रासुकं=पनकादिजंतुरहितं, निर्दोषं=नवकोटिविशुद्धं, पर-  
कृतं=परेण गृहस्थेन स्वार्थं कृतं न तु साध्वर्थम्, पिण्डम्=चतुर्विधमाहारम्, अत्युच्चे-  
गृहोपरिभूमिकादौ वंशकाष्ठनिर्मितचर निश्रेणिकारोहणं कृत्वा, न प्रतिगृह्णीयात्  
प्रतिगृह्णीयादित्यस्य नीचादावपि सम्बन्धः। नीचे=अतिनीचे-भूमिगृहादौ वा न  
प्रतिगृह्णीयात् तथा-आसन्ने=अत्यासन्ने, अतिसमीपे स्थितः सन् न प्रति-  
गृह्णीयात्, अतिदूरतः-अतिदूरे स्थितः सन् न प्रतिगृह्णीयात्।

अत्र-‘अत्युच्चे’ इति-आरोहणेऽवरोहणे च स्वपरविराधनासंभवं सूचयति।

अत्र ग्रहणेषणा की विधि कहते हैं—‘नाइउच्चे’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(संजए-संयतः) साधु (फासुयं-प्रासुकं) पनक-नीलन  
-फूलन-आदि जीवों से रहित-निर्दोष-नवकोटि से विशुद्ध तथा  
(परकडं-परकृतं) गृहस्थ द्वारा अपने निमित्त बनाये गये-न कि साधु के  
निमित्त बनाये गये, ऐसे (पिंडं-पिण्डं) चतुर्विध आहार को (अइउच्चे  
न पडिगाहिज्ज-अत्युच्चे न प्रतिगृह्णीयात्) घर के ऊपर की भूमि  
कादि पर वाँस अथवा काष्ठ की निसरणी से चढकर न लेवे. इसी  
तरह जो आहार (नीए-नीचे) अत्यंत नीचे तलघर आदि में हो उसको  
(न) नहीं लेवे। तथा (नासण्णे नाइदूरओ-नासन्ने नातिदूरतः) न अति  
नजदीक से लेवे और न अतिदूर से ही लेवे।

‘अत्युच्चे’ इस पद द्वारा सूत्रकार यही सूचित करते हैं कि ऊँचे  
स्थान पर चढने एवं उतरने में स्व और पर को विराधना होने की

हुवे गृहणेषणां विधि कहेवाभां आवे छे. नाइउच्चे-इत्यादि.

अन्वयार्थ—संजए-संयतः साधु, फासुयं-प्रासुकं पनक, नीलन, फूलन, आदि  
जिवेथी रहित निर्दोष-नव कोटीथी विशुद्ध तथा पडकडं-परकृतं गृहस्थने त्यां  
पोताना निमित्त बनाववाभां आवेल न के साधुना निमित्त बनावेल जेवा पिंडं-पिण्डं  
चतुर्विध आहारने आइउच्चे न पडिगाहिज्ज-अत्युच्चे न प्रतिगृह्णीयात् घरनी  
उपरनी भूमि उपर वांस के लाकडानी निसरणी उपर चडीने न दे आ रीते  
जे आहार नीए-नीचे अत्यंत नीचे तलघर आदिभां होय तेने पणु न दे  
तथा नासण्णे नाइदूरओ-नासन्ने नातिदूरतः अती नजकी न दे तेमज  
अति दूरथी पणु न दे.

अत्युच्चे आ पद द्वारा सूत्रकार जेवुं सूचित करे छे के, उँचा स्थाने  
चढवा अगर उतरवाभां स्व अने परनी विराधना थवानी संभावना रहे छे.



‘नीचे’ इति तत्रोत्क्षेपनिक्षेपनिरीक्षणसंभवः स्वपरविराधनासंभवश्चेति द्योतयति ।

‘आसन्ने’ इति पश्चात्कर्मादिसंभवं ज्ञापयति ।

‘अतिदूरे’ इति एषणाशुद्धिसंभवं बोधयति ॥ ३४ ॥

अथ ग्रासैषणाविधिमाह—

मूलम्—अप्पपाणेऽल्पबीयम्मि, पडिच्छन्नम्मि संवुडे ।

समयं संजए भुंजे, जयं अपरिसाडियं ॥३५॥

छाया—अल्पपाणेऽल्पबीजे, प्रतिच्छन्ने संवृते ।

समकं संयतो भुञ्जीत, यतमानोऽपरिशाटितम् ॥ ३५ ॥

टीका—‘अप्पपाणे’ इत्यादि—

अल्पपाणे=अवस्थितागन्तुकद्वीन्द्रियादिजीवरहिते, अल्पबीजे=शाल्यादि-बीजरहिते, इदमुपलक्षणम्—पृथ्व्याद्येकेन्द्रियजीवरहिते इत्यर्थः, प्रतिच्छन्ने=संपा-  
तिमजीवा यथा न पतन्ति तथोपरिकृतप्रावरणयुक्ते, संवृते=पार्श्वतः कटकुड्या-

संभावना रहती है। ‘नीचे’ इस पद से भी यही बात उनकी लक्षित होती है। ‘आसन्ने’ पद से पश्चात्कर्मादिक की संभावना रहती है, तथा ‘अतिदूरे’ पद से एषणाशुद्धि की ठीक तरह पालना नहीं होती है वह बात प्रदर्शित की गई है ॥३४॥

अब ग्रासैषणा का विधि कहते हैं—‘अप्पपाण’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(अप्पपाणे अप्पबीयम्मि पडिच्छन्नम्मि संवुडे—अल्प-  
पाणे अल्पबीजे प्रतिच्छन्ने संवृते) अवस्थित एवं आगन्तुक द्वीन्द्र-  
यादिक जीवों से रहित तथा शाली आदि बीजों से रहित, इसी तरह  
पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय जीवों से वर्जित और संपातिम जीव न पड़ सके  
इस ख्याल से ऊपर से तथा चारों तरफ से छाये हुए ऐसे उपाश्रय

“नीचे” आ पदथी पणु ये ञ वात येने लक्षित छे. “आसन्ने” आ पदथी  
पश्चात्कर्मादिकनी संभावना रहे छे. तथा “अतिदूरे” आ पदथी एषणा शुद्धिनी  
ठीक ठीक पालना यती नथी ये वात प्रदर्शित करवाभां आवी छे. ॥ ३४ ॥

हुवे ग्रासैषणाणी विधी कडेवाभां आवे छे. अप्पपाणे०—इत्यादि.

अन्वयार्थ—अप्पपाणे अप्पबीयम्मि पडिच्छन्नम्मि संवुडे—अल्पपाणे अल्पबीजे  
प्रतिच्छन्ने संवृते अवस्थित अने आगन्तुक द्वीन्द्रयादिक एवोथी रहित तथा शाली  
आदि भीजेथी रहित, ये ञ रीते पृथ्वी आदि एकेन्द्रिय एवोथी वल्लंत अने  
संपत्तिभय एव न पडी शके आ ज्यालथी उपरथी तथा यारे आणुथी

दिना समावृते उपाश्रयादावित्यर्थः, संयतः=साधुः, यतमानः-चप्पड चप्पडादि शब्दमकुर्वन् सन् अपरिशाटित=परिशाटरहितं । सिक्थपातनेन रहितं यथा स्यात्, यथा एकोऽप्यन्नकणः करान्मुखतो वाऽधः पतितो न भवेत्तथेत्यर्थः, समकम्-संभोगि साधुभिः सह न त्वेकाक्येव आहारं भुञ्जीत ॥ ३५ ॥

संप्रति वाग्यतनामाह—

मूलम्—सुकडेत्ति सुपक्केत्ति, सुच्छिन्ने सुहँडे मडे ।

सुनिट्टिए सुलट्टेत्ति सावज्जं वज्जए मुणी ॥३६॥

छाया—सुकृतमिति सुपक्वमिति, सुच्छिन्नं सुहृतं मृतम् ।

सुनिष्ठितं सुलष्टमिति, सावद्यं वर्जयेन्मुनिः ॥ ३६ ॥

टीका—‘सुकडेत्ति’ इत्यादि—

मुनिः=साधुः, सावद्यं=सपापं वचनं वर्जयेत्=न वदेत् । कीदृशं तत्सावद्यमित्याह

आदि में (संजए-संयतः) साधु (जयं-यतमानः) चप्पड चप्पड आदि शब्द के तथा विना (अपरिसाडियं-अपरिशाटितम्) हाथ से या मुँह से एक भी सीथ-अन्न का कण-नीचे न गीरे, इस रूप से (समयं-समकं) संभोगी साधुओं के साथ (भुंजे-भुञ्जीत) आहार करे ॥३५॥

अब वचन की यातना कहते हैं—‘सुकडेत्ति’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(मुणी सावज्जं वज्जए-मुनिः सावद्यं (वचनं) वर्जयेत् मुनि का कर्तव्य है कि वह इस प्रकार के सावद्य-सपाप वचन के बोलने का परित्याग करे । वे वचन ये हैं—(सुकडे त्ति सुपक्के त्ति, सुच्छिन्ने, सुहँडे मडे सुनिट्टिए, सुलट्टेत्ति,—सुकृतमिति, सुपक्वमिति सुच्छिन्नं सुहृतं मृतम् (सुमृतम्) सुनिष्ठितं सुलष्टमिति, ‘सुकडे’

छवायेत अथवा उपाश्रय आदिभां संजये-संयतः साधु जयं-यतमानः चप्पड चप्पड आदि शब्द वगैर अपरिसाडियं-अपरिशाटितम् तथा हाथथी तथा भोठाथी अथ पण् सीथ अन्नने। कण् नीचे न पडे अे रीते समयं-समकं संभोगी साधुओंनी साथे भुंजे-भुञ्जीत आहार करे. ॥ ३५ ॥

इवे वचननी यतना इडेवाभां आवे छे. सुकडेत्ति०-इत्यादि.

अन्वयार्थ—मुणीसावज्जं वज्जए-मुनि सावद्यं वचनं वर्जयेत् मुनिनुं कर्तव्य छे डे ते आ प्रकारना सावद्य-सपाप वचनने ओलवानो परित्याग करे ते वचन आ छे. सुकडेत्ति सुपक्केत्ति सुच्छिन्ने सुहँडे मडे सुनिट्टिए सुलट्टेत्ति-सुकृतमिति, सुपक्वमिति, सुच्छिन्नं सुहृतं मृतम् (सुमृतम्) सुनिष्ठितम् सुलष्टमिति

—‘सुकडेत्ति’ इत्यादि । सुकृतमिति—इदं सूपमिष्टान्नादिकं हिङ्गुजीरकादिव्या-  
घारैः सुष्ठु संस्कृतमिति, तथा—सुपक्वमिति—इदं घृतपूरादिकं घृतादिना सुपक-  
मस्तीत्यादिकं, तथा—सुच्छिन्नमिति—इदं शाकपत्रादि दात्रासिपुत्रादिशस्त्रैः सुष्ठु छेदित-  
मस्तीत्यादिकं, तथा—सुहृतं=‘कारवेष्टादिशाकस्थं कटुकत्वं सुष्ठु हृतं=निवारितं  
तदुत्कालनेन’ इत्यादिकम्, तथा—‘मडे’ इत्यनेन पूर्वापर—साहचर्यात् ‘सुमडे’  
इति बोध्यते, मृतं=सुमृतम्—पारदादिधातुजातम्, इत्यादिकं, तथा—‘सुनिष्टिण्’  
सुनिष्ठितम्—‘इदमन्नादिकं सम्यग् निष्ठां रसप्रकर्षात्मिकां प्राप्तं, सुष्ठु रसवत्कृत-  
मस्ति’ इत्यादिकं, तथा—‘सुलट्टेत्ति’ सुलष्टं—सुष्ठु कमनीयम् ‘इदमन्नादिकं  
मनोहरमस्ति’ इत्यादिकं सावद्यं वर्जयेदिति संबन्धः ।

यह दाल वगैरह हींग जीरे आदि के वघार से बहुत अच्छी बनी हुई है,  
तथा ‘सुपक्वे’ यह कचौरी खाजा मालपुआ घेवर आदि घी में बहुत  
अच्छी तरह से पकाये गये हैं, तथा—‘सुच्छिन्ने’ यह शाक आदि चाकू  
छूरि आदि से बहुत ही उत्तम रीत से काटा गया है, तथा ‘सुहडे’ यह  
करेला का शाक देखो तो सही कितना स्वादिष्ट बना है कि इन का  
कडुआपन सर्वथा हरलिया है अर्थात् इन में जरा भी कडुआपन नहीं  
रहा है, । तथा—‘मडे’ यह पारदादिक धातुएँ कितनी अच्छी तरह से  
मार कर दवा के उपयोग लायक बना दी गई हैं । तथा—‘सुनिष्टिण्’ यह  
आहार बहुत ही स्वादिष्ट बनाया गया है । ‘सुलट्टे’ यह भोजन जब  
देखने में ही मनोहर लग रहा है तो फिर इस के खाने में कितना आनंद  
आवेगा ? इत्यादि, ये समस्त सावद्य वचन हैं, इस लिये साधु को इस  
प्रकार के सावद्य वचन नहीं बोलना चाहिये ।

आ हाण वगेरे हिंग जीरे वगेरेना वघारथी घण्णी सारी भनी छे, तथा सुपक्वे  
आ कचौरी, भाळ, मालपुवा, घेवर वगेरे घीमां घण्णी सारी रीते पकववामां  
आवेळ छे, तथा सुच्छिन्ने आ शाक वगेरे खाजा छरीथी घण्णी उत्तम रीते  
सुधारवामां आवेळ छे, तथा सुहडे आ करेलांनुं शाक जुळो तो भरा डेवुं  
स्वादिष्ट अन्युं छे डे जेनुं कडवापळुं पळु हूर थयेळ छे. अर्थात् जेमां जरा पळु  
कडवापळुं रडेळ नथी. मडे आ पारदादिक धातुजो डेवी सारी रीते भारीने  
दवाना उपयोग लायक अनाववामां आवी छे. तथा सुनिष्टिण् आ आहार  
घण्णे ज स्वादिष्ट अनाववामां आवेळ छे. सुलट्टे आ भोजन न्यारे जेवाथी ज  
मनोहर लागे छे तो पळी जेने भावामां डेटलो आनंद आवशे ? इत्यादि.  
आ सधणां सावद्य वचन छे. साधुजे आ प्रकारनां वचन न भोलवा जेधजे.

यद्वा-सुकृतं-‘सुष्ठुकृतं यदनेन शत्रुं प्रति प्रतिक्रिया कृता’ इति, सुपक्वम्, इदमपूपादिकं घृताद्यतिशयेन पाचितमिति, सुच्छिन्नोऽयं वृक्षो वटपिप्पलादिरिति, सुहृतं-कृपणस्य धनं तस्कैरिति, मृतः-सुष्ठु मृतोऽयं दुष्ट इति । सुनिष्ठितः-‘सुष्ठु नष्टोऽयं प्रासादः, कूपो वा’ इति, यद्वा-‘सुष्ठु निर्मितोऽयं प्रासादः, कूपो वा’ इति, यद्वा-‘सुष्ठु नष्टमस्यदुष्टस्य द्रविणादिक’ मिति । सुलष्टः-‘सुपुष्टोऽयं गजस्तुरङ्गमो वा’ इति, यद्वा-‘सुलष्टा रुचिरावयवेयं राजकन्ये’-ति सावद्यं वर्जयेत् ।

अथवा-इस प्रकार साधु को कभी नहीं करना चाहिये, कि जो -‘सुकडे’-इसने शत्रु को मार भगा दिया है, यह बहुत अच्छा काम किया । ‘सुपक्के’ ये अपूपादिक अधिक घृत में खूब अच्छे पकाये गये हैं इस लिये सुपक्क हैं खाने में बहुत अच्छे लगते हैं । ‘सुच्छिन्ने’ इस वृक्ष को आसानी से खूब अच्छा काटा है । ‘सुहडे’ अच्छा हुआ जो इस कंजूस का द्रव्य चोरों ने चुरा लिया । ‘मडे’ यह बड़ा दुष्ट था मरा सो अच्छा ही हुवा । ‘सुनिष्ठिए’ यह मकान अथवा कुंआ गिर गया वह अच्छा हुआ, अथवा-यह मकान या कुंआ बहुत ही सुन्दर बनाया गया है, या ऐसा कहना कि भला हुवा इस दुष्ट की संपत्ति जो लूट गई । ‘सुलष्टे’ यह हाथी अथवा घोडा बहुत अच्छा पुष्ट हुआ है । यह राजकन्या बड़ी सुन्दर है । ये सब वचन सावद्य हैं, अतः साधु के कहने योग्य नहीं हैं ।

अथवा-आ प्रकारनां वचनो पणु साधुओ कही उच्चारवां न जेधओ. के जे सुकडे आणे शत्रुने मारी लगाडी हीधो छे, ओ काम धणुं सारुं कथुं. सुपक्के आ भिठार्धओ, अपूप-मालपुडा वगेरे सारा धीमां धणी ज सारीरीते पकाववामां आवेल छे तेथी ओ सुपक्क छे, आवामां बहु लीज्जत आपे छे. सुच्छिन्ने आ वृक्षने ओधी भडेनते सारीरीते कापवामां आयुं छे. सुहडे सार्इ थयुं के, आ कंणुसनुं धन चोर उपाडी गया मडे ओ धणुं दुष्ट हुतो मर्यो ते सार्इ थयुं, सुनिष्ठिए आ मकान अगर कुवो पाडी अथवा पुरी नाणवामां आवतां सार्इ थयुं अथवा आ मकान अगर कुवो भूष सुंदर अनाववामां आवेल छे. तथा आ दुष्टनी संपत्ति लुंटाई गर्ध ते सार्इ थयुं सुलष्टे आ हाथी अथवा घोडा भूष सारीरीते पुष्ट अनेल छे, आ राजकन्या भूष सुंदर छे, आ अथां वचनो सावद्य वचन छे आथी ते साधुओ भोलवा योग्य नथी.

‘सुकृतम्’ इत्यनेन सूपनिष्ठानादिसंपादने लवणलक्षणपृथिवीकायादिजल-  
तेजोवायुवनस्पतिद्वीन्द्रियादित्रसजीवपर्यन्त हिंसानुमोदनं सूचितम् । एवं सुप  
कमित्यत्रापि हिंसानुमोदनं बोध्यम् ।

सुच्छिन्नमित्यनेन-वनस्पतिद्वीन्द्रियादिहिंसानुमोदनं सूचितम् । सुहृतमित्य-  
नेन कारवेष्टादिपक्षे वनस्पत्यादिहिंसानुमोदनम्, धनहरणपक्षेऽदत्तादानपरपीडोत्पा-  
दनाद्यनुमोदनं सूचितम् । मृतमित्यनेन पारदादिधातुपक्षे पृथिवीकायादि हिंसानु-

‘सुकृतम्’ इस पद से सूत्रकार यह प्रकट करते हैं कि जब साधु  
ऐसा कहता है कि यह दाल आदि बहुत ही अच्छी बनी हैं तब उसे  
लवणरूप पृथिवीकाय तथा जलकाय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पति-  
काय एवं द्विन्द्रियादिक त्रस काय, इन सबकी हिंसा की अनुमोदना  
करने का दोष लगता है। इसी प्रकार सुपक कहने में भी यही दोष  
लगते हैं।

‘सुच्छिन्नम्’ इस पद से सूत्रकार यह बात सूचित करते हैं कि  
यदि मुनि ‘ये शाकपत्रादि चाकू आदि से अच्छी तरह काटे गये हैं’  
ऐसा कहता है तो उसे वनस्पति काय की एवं द्विन्द्रियादिक त्रसकाय  
की हिंसा की अनुमोदना करने का दोष लगता है। ‘सुहृतम्’ यदि  
यही बात धन हरण आदि के पक्ष में जब बोलने में आती है तो उस  
समय उसे अदत्तादान की अनुमोदना करने का तथा पर को पीड़ा  
उत्पन्न करने आदि की अनुमोदना का दोष लगता है। ‘मृतम्’ इस

“सुकृतम्” आ पदथी सूत्रकार अये प्रकट करे छे के, साधु न्यारे अयेम  
कडे छे के, आ दाण वगेरे भूष स्वादिष्ट अनेल छे. त्यारे तेने लवणु इपी  
पृथिवीकाय, जलकाय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय अने द्विन्द्रियादिक  
त्रसकाय आ अधानी हिंसामां अनुमोदना करवानो दोष लागे छे. आ रीते  
सुपकम् कडेवार्थी पणु आ दोष लागे छे.

सुच्छिन्नम् आ पदथी सूत्रकार आ वात सूचित करे छे के, मुनि जे शाक  
पत्रादिक आकु वगेरेथी सरस रीते कापवामां आवेल छे. अवेनुं कडे तो तेने  
वनस्पति काय अने द्विन्द्रियादिक त्रसकायनी हिंसा करवामां अनु-  
मोदन करवानो दोष लागे छे. सुहृतम् आवी ज रीते धन हरण वगेरेनी  
आभतमां ओलवामां आवे त्यारे तेने अदत्ता दाननी अनुमोदन करवानो तथा  
पीडने पीडा उत्पन्न करवी वगेरेनी अनुमोदनो दोष लागे छे मृतम् अये पदथी

मोदनं सूचितम्, दुष्टपक्षे तु प्राणघातानुमोदनं बोध्यम् । सुनिष्ठितमित्यनेन षट्काय हिंसानुमोदनं सूचितम् । सुलष्टमित्यत्रापि तथैव बोध्यम् ।

‘सावद्यं वर्जयेत्’ इत्यनेन उक्तमेव भाषणं निरवद्यं चेत् तत्र न प्रतिषेध इति ध्वन्यते, तथा च पक्षद्वयमनया गथया गम्यते । तत्र सावद्यपक्षो व्याख्यातः,

पद से सूत्रकार का यह अभिप्राय है कि जब साधु ‘सुमृतं’ इस पद का खुश होकर प्रयोग करता है और वह प्रयोग यदि उसका पारदादिक धातुओं के मारण करने के पक्ष में होता है तो उस समय उसे पृथिवी कायादिक एकेन्द्रिय जीव की हिंसा करने की अनुमोदना का समर्थक माना जाता है । जब यही प्रयोग साधु की ओर से किसी दुष्ट के पक्ष में किया गया होता है तो वह प्राणघात का अनुमोदक माना जाता है । ‘सुनिष्ठितम्’ इस पद से सूत्रकार यह सूचित करते हैं कि जब साधु ‘यह अन्नादिक सामग्री सरस तैयार हुई है’ इस प्रकार का प्रयोग करता है तो उसे अन्नादिक सामग्री की तैयारी में जो षट्काय के जीवों की विराधना हुई है उसकी अनुमोदना करने का दोष लगता है । इसी तरह ‘सुलष्टम्’ इस पद के उच्चारण करने में भी इसी दोष का भागी होना पडता है ।

‘सावद्यं वर्जयेत्’ इस प्रकार के कथन का यह अभिप्राय है कि यदि यह सुकृत आदि भाषण निरवद्य होता है तो उस समय साधु को

सूत्रकारने ओ अबिप्राय छे के, न्यारे साधु “ सुमृतं ” आ पढने खुश थई प्रयोग करे छे अने ते प्रयोग पारदादिक धातुओनुं मारण करवाना पक्षमां डोय छे तो ओ समये अने पृथवीकायादिक ऐकेन्द्रिय अवननी हिंसा करवानी अनुमोदनाना समर्थक मानवामां आवे छे. न्यारे ओ प्रयोग साधु तरक्ष्ठी केई दुष्टना पक्षमां करवामां आव्यो डोय तो ते प्राणघातने अनुमोदक मानवामां आवे छे.

सुनिष्ठितम् आ पढथी सूत्रकार ओ सूचित करे छे के, न्यारे साधु “ आ अन्नादि सामग्री सरस तैयार करवामां आवी छे ” आ प्रकारने प्रयोग करे छे तो तेने अन्नादिक सामग्रीनी तैयारीमां ओ षट्काय अवननी विराधना थई छे अनी अनुमोदना करवाने दोष लागे छे. आ रीते “ सुलष्टम् ” ओ अंगेना पढनुं उच्चारण करवामां पणु ओ दोषना लागी अननुं पडे छे.

“ सावद्यं वर्जयेत् ” आ प्रकारना कथन अंगे ओ अबिप्राय छे के, ओ ओ सुकृत आदि भाषण निरवद्य डोय छे तो ओ समये साधुने केई दोष



निरवद्यपक्षो व्याख्यायते—यथा—‘सुकृतमिति’ सुष्ठु कृतमनेन वैयावृत्यमभयदानं सुपात्रदानादिकं वेति, ‘सुपक्वमिति’ सुष्ठु पक्वमस्य ब्रह्मचर्यादिकमिति, ‘सुच्छिन्नं’ सुष्ठु छिन्नमनेन स्नेहबन्धनमिति, ‘सुहृतं’ सुष्ठु हृतं=स्वायत्तीकृतं ज्ञानादिरत्नत्रयमिति, ‘सुनिष्ठितम्’ सुष्ठु नष्टमस्याप्रमत्तसाधोः कर्मजालम्, सुमृतः=सुष्ठु मृतोयं पण्डितमरणेन इति । सुलष्टा=सुष्ठु मनोज्ञा क्रियाऽस्य साधोः, यद्वा—सुलष्टा=दीक्षायोग्या कन्येति वदेत् ॥ ३६ ॥

कोई दोष नहीं लगता, इस प्रकार यह सावद्य पक्ष का वर्णन हुआ है । अब निरवद्य पक्षका अर्थ कहते हैं—निरवद्य पक्ष में जब साधु ‘सुकृतं’ ‘इस ने वैयावृत्य; अभयदान एवं सुपात्र दान आदि सत्कर्म जो किये हैं वे बहुत अच्छे किये हैं’ इस प्रकार बोलने में कोई दोष नहीं है । इसी प्रकार आगे सब जगह समझलेना चाहिये,—जैसे ‘सुष्ठु पक्वमस्य ब्रह्मचर्यादिकं’ इस के ब्रह्मचर्य आदि सद्गुण अच्छी तरह से परिपक्व हो चुके हैं, इति ‘सुष्ठु छिन्नं अनेन स्नेहबन्धनम्’ इति, इस ने स्नेह का बंधन अच्छी तरह से काट दिया है, ‘सुष्ठु हृतं स्वायत्तीकृतं अनेन ज्ञानादिरत्नत्रयं’ इति, इस ने ज्ञानादिक रत्नत्रय को अच्छी तरह से स्वाधीन कर लिया है, ‘सुष्ठु नष्टमस्याऽप्रमत्तसाधोः कर्मजालम्’ इति, इस अप्रमत्त साधु का कर्मजाल अच्छी तरह से नष्ट हो चुका है; ‘सुष्ठु मृतोऽयं पण्डितमरणेन’ इति, पण्डित मरण से इसकी मृत्यु हुई यह बहुत ही सुंदर बात हुई, ‘सुष्ठु मनोज्ञा अस्य साधोः क्रिया’ इति,

लागतो नथी. आ प्रकारे आ सावद्य पक्षनु वर्णन थयुं हुवे निरवद्य पक्षनु वर्णन करवाभां आवे छे.—

निरवद्य पक्षभां न्यारे साधु “सुकृतं” आण् वैयावृत्य, अलयदान, अने सुपात्रदान आदि जे सत्कर्म कर्थां छे ते धरुं सारां कर्थां छे” आ प्रकारे भोलवाभां कोरि दोष नथी. आ प्रकारे आगण दरेक न्ययां सभल लेवुं जेध अे. जेभ—“सुष्ठु पक्वमस्य ब्रह्मचर्यादिकं” अेने प्रक्षयर्थं आदि सद्गुण सारी रीते परिपक्व थयेल छे, धति, “सुष्ठु छिन्नं अनेन स्नेहबन्धनम्” धति, अेले स्नेहनु अंधन सारी रीते कापी नाथेल छे “स्वायत्तीकृतं अनेन ज्ञानादिरत्नत्रयं” धति, अेले ज्ञानादिक रत्नत्रयने सारी रीते स्वाधीन करी लीथेल छे. “सुष्ठु नष्टमस्या-प्रमत्त साधोः कर्मजालम्” आ अप्रमत्त साधुनी कर्मजाल सारी रीते नष्ट थई थुकैल छे, “सुष्ठु मृतोऽयं पण्डितमरणेन” धति, पण्डित मरणथी अेनु मृत्यु थयुं अे धरुं न साईं थयुं, “सुष्ठु मनोज्ञा अस्य साधोः क्रिया” धति यद्वा—

विनीताविनीतयोरुपदेशदाने यत् फलं गुरोर्भवति तदाह—  
मूलम्—रमए पंडिए सांसं, ह्यं भद्रं वं वाहए ।

बालं सम्मंडं सांसंतो, गलिर्यस्सं वं वाहए ॥३७॥

छाया—रमते पण्डितान् शासत्, ह्यं भद्रमिव वाहकः ।

बालं श्राम्यति शासत्, गलिताश्वमिव वाहकः ॥ ३७ ॥

टीका—‘ रमए ’ इत्यादि—

अत्र गुरुरिति कर्तृपदं प्रकरणवशाद्विज्ञेयम् । पण्डितान्=विनीतशिष्यान्, शासत् =शिक्षयन् गुरुः, रमते=सफलप्रयत्नतया प्रसन्नो भवतीत्यर्थः । क इव ? भद्रं=जात्यं विनीतं, ह्यम्=अश्वं वाहयन्, वाहकः=अश्ववाह इव, यथा जात्याश्वं वाहयन्नश्ववाहः

यद्वा- ‘सुलष्टा दीक्षायोग्या कन्येति’ इसी साधु की क्रिया मनोज्ञ है अथवा यह कन्या दिक्षा योग्य है ।

भावार्थ—सुकृत आदि शब्दों का प्रयोग यदि साधु सांसारिक कार्यों को लक्ष्य में रख कर करता है तो वह दोष का भागी होता है और इन्हीं शब्दों का प्रयोग यदि वह धार्मिक कार्यों को लक्ष्य में रखकर करता है तो उसको कोई दोष नहीं लगता है ॥३६॥

विनीत और अविनीत शिष्य को उपदेश देने में गुरु महाराज को जो फल प्राप्त होता है उसे इस गाथाद्वारा सूत्रकार कहते हैं—‘रमए’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—गुरु महाराज (पंडिए-पंडितान्) विनीत शिष्यों को (सांसं-शासत्) शिक्षा देते हुए (रमए-रमते) सफल प्रयत्नवाला होने से प्रसन्न होते हैं । जैसे—(भद्रं ह्यं व वाहए-भद्रं ह्यं इव वाहकः)

सुलष्टा दीक्षायोग्या कन्येति” आ साधुनी क्रिया मनोज्ञ छे. अथवा आ कन्या दिक्षा योग्य छे.

भावार्थ—सुकृत आदि शब्दोंने प्रयोग ले साधु सांसारिक कार्योंने लक्षमां राभीने करे छे तो ते दोषने भागी अने छे अने अे न शब्दोंने प्रयोग ले ते धार्मिक कार्योंने लक्षमां राभीने करे छे तो तेने केछे दोष लागतो नथी. ॥३६॥

विनीत अने अविनीत शिष्यने उपदेश देवामां गुरु महाराजने ने क्षण प्राप्त थाय छे अने आ गाथा द्वारा सूत्रकार कहे छे.—रमए० इत्यादि.

अन्वयार्थ—गुरु महाराज पंडिए-पंडितान् विनीत शिष्योंने सांसं-शासत् शिक्षा आपतां रमए-रमते सक्षण प्रयत्न वाणा डोवाथी तेना उपर प्रसन्न थाय छे,

પ્રસીદતિ તદ્વદિત્યર્થઃ । બાલં=વિનયરહિતં શિષ્યં, શાસત્=શિક્ષયન્ ગુરુઃ શ્રામ્યતિ=વિદ્યતે, ક ઇવ ? ગલિતાશ્વં=દુર્વિનીતમશ્વં બહુશઃ કશયા તાડનેઽપિ વિપરીતગત્યા પશ્ચાદ્ભાગગમનાદિકારિણમશ્વં વાહયન્. વાહક ઇવ । યથા દુર્વિનીતમશ્વં વાહયન્ વાહકઃ સ્વલુ નિષ્ફલપ્રયત્નતયા સ્વેદં પ્રાપ્નોતિ તદ્વદિત્યર્થઃ ॥ ૩૭ ॥

વિનીત ઘોડે કો ઇચ્છિત માર્ગ પર ચલાને રૂપ શિક્ષા સે ઘુડસવાર પ્રસન્ન હોતા હૈ । (બાલં-બાલં) વિનયરહિતશિષ્યકો (સાસંતો-શાસત્) શિક્ષા દેતે હુણ ગુરુ મહારાજ (સમ્મદ્-શ્રામ્યતિ) સ્વેદસ્વિન્ન હોતે હૈ । જૈસે-(ગલિયસ્સં વ વાહણ-ગલિતાશ્વં ઇવ વાહકઃ) દુર્વિનીત અશ્વકો વાર ૨ કશા સે તાડિત કરને પર સવાર દુઃસ્વિત હોતા હૈ, ક્યોં કિં દુર્વિનીત અશ્વકો જ્યોં ૨ ચાબુક લગાતે હૈ ત્યોં ૨ વહ પીછે ડલટા હટતા હૈ । ઇસસે સવાર કા પ્રયત્ન નિષ્ફલ હોતા હૈ ।

ભાવાર્થ-વિનીત શિષ્ય કો દી ગર્દ શિક્ષા સફલતા કા સાધક હોને સે ગુરુ કી પ્રસન્નતા કા કારણ હોતી હૈ । અવિનીત શિષ્ય કો દી ગર્દ વહી શિક્ષા અસફલ હોતી હૈ । અતઃ ડસ સે ડલ્ટા ગુરુ મહારાજ કો સ્વેદસ્વિન્ન હી હોના પડતા હૈ । જૈસે-વિનીત અશ્વ ઇચ્છિત માર્ગ પર ચલ કર અપને માલિક કો પ્રસન્ન કરતા હૈ ઓર અવિનીત અશ્વ કશાદ્વારા તાડિત હોને પર મી વિપરીત હી માર્ગ પર ચલતા હૈ, ઇસ સે સવાર કો ડલ્ટા કષ્ટ ડઠાના પડતા હૈ ॥ ૩૭ ॥

જેમ મદં હયં વવાહણ-મદંહયં ઇવ વાહકઃ-વિનીત ઘોડાને ઇચ્છિત માર્ગ ઉપર ચલાવવા ડપ શિક્ષાથી ઘોડેસવાર પ્રસન્ન થાય છે. બાલં-બાલં વિનય રહિત શિષ્યને સાસંતો-શાસત્ શિક્ષા આપતાં ગુરુ મહારાજ સમ્મદ્-શ્રામ્યતિ ખેદ ખિન્ન બને છે, જેમ ગલિયસ્સેવ વાહણ-ગલિતાશ્વં ઇવ વાહકઃ અવિનીત ઘોડાને ઘડી ઘડી આખખાથી મારવાની આખતમાં સ્વારનું મન દુઃખીત બને છે. કેમ કે, અવિનીત ઘોડાને જેમ જેમ આબુક મારવામાં આવે છે તેમ તેમ તે પાછો પડે છે આથી સવારને પ્રયત્ન નિષ્ફળ બને છે.

ભાવાર્થ:-વિનીત શિષ્ય ને આપવામાં આવેલ શિક્ષા સફળતાની સાધક બનવાથી ગુરુ મહારાજની પ્રસન્નતાનું કારણ બને છે, અવિનીત શિષ્યને આપવામાં આવતી એ જ શિક્ષા અસફળ બને છે, આથી ગુરુ મહારાજે ખેદ ખિન્ન બનવું પડે છે. જેમ-વિનીત ઘોડો ઇચ્છિત માર્ગે ચાલી પોતાના માલિકને પ્રસન્ન કરે છે, અને અવિનીત ઘોડો આબુકથી પીટવામાં આવવા છતાં પણ વિપરીત માર્ગ પર જ ચાલે છે જેનાથી સવારને ઉલ્ટાનું કષ્ટ જ લોગવવું પડે છે. ॥૩૭॥

गुरोः शिक्षावचने कुशिष्यस्य दुर्भावनामाह—

मूलम्—खड्गुया मे चवेडा मे, अक्रोसा यं वहाँ यं मे ।

कल्लाणमणुसासंतो, पावदिट्टित्ति मन्नई ॥ ३८ ॥

छाया—खड्गुका मे चपेटा मे, आक्रोशाश्च वधाश्च मे ।

कल्याणमनुशासत्, पापदृष्टिरिति मन्यते ॥ ३८ ॥

टीका—‘ खड्गुया ’ इत्यादि—

कल्याणं=लोकद्वयहितम्, अनुशासत् = शिक्षयन् गुरुः कुशिष्येण पापदृष्टिः= पापा=पापमयी दृष्टिर्यस्य स तथा, इति मन्यते-अयं गुरुर्मम हिंसकोऽस्तीति मन्यते । यतोऽनेन-मे=मम, खड्गुकाः=टकरा आघाता दीयन्तेऽनेनेति शेषः । तथा मे=मम, चपेटाः=करतलाघाता दीयन्ते । च-पुनः, आक्रोशाः=परुषभाषणानि, च-पुनः, मे=मम, वधाः=दण्डादिघाताः क्रियन्ते ।

જો કુશિષ્ય હોતા હૈં ઉસે જબ ગુરુ મહારાજ શિક્ષા દેતે હૈં તબ ઉસકી વ્ચા ભાવના હોતી હૈં યહ બાત હસ ગાથા દ્વારા પ્રકટ કી જાતી હૈં— ‘ યહ્દુયા ’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—અવિનીત શિષ્ય ( કલ્લાણમણુસાસંતો-કલ્યાણં અનુશાસત્ ) ઉભયલોકસંબંધી હિત શિક્ષા દેને વાલે ગુરુ મહારાજ કો ( પાવદિટ્ટી-પાપદૃષ્ટિઃ ) યહ પાપદૃષ્ટિ વાલે મેરે ઘાતક હૈં ( ત્તિ-ઇતિ ) હસ પ્રકાર સમજતા હૈં । ક્યોં કિ વહ ગુરુ મહારાજ કી શિક્ષા સમ્બન્ધી બાતોં કો હસ પ્રકાર માનતા હૈં કિ ( યહ્દુયા મે ચવેડા મે અક્રોસા ય વહા ય મે-યહ્દુયા મે ચપેટા મે આક્રોશાશ્ચ વધાશ્ચ મે ) યે મેરે લિયે આઘાતસ્વરૂપ હૈં યપ્પદ્સ્વરૂપ હૈં, પરુષભાષણ-ગાલી-સ્વરૂપ હૈં, પ્રહારસ્વરૂપ હૈં ।

જે કુશિષ્ય હોય છે એને ગુરુ મહારાજ શિક્ષા આપે છે, ત્યારે તેની કેવી ભાવના હોય છે! તે વાત આ ગાથા દ્વારા પ્રગટ કરવામાં આવે છે. યહ્દુયાઽધ્ત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—અવિનીત શિષ્ય કલ્લાણમણુસાસંતો-કલ્યાણં અનુશાસત્ ઉભય લોક સંબંધી હિતશિક્ષા દેવાવાળા ગુરુ મહારાજને પાવદિટ્ટી-પાપદૃષ્ટિઃ એ પાપ દૃષ્ટીવાળા મારા ઘાતક છે ત્તિ-ઇતિ એ પ્રકારના સમજે છે. કેમ કે, ગુરુ મહારાજની શિક્ષા સંબંધી વાતોને એ પ્રકારે માને છે કે, યહ્દુયા મે ચવેડા મે અક્રોસા ય વહા ય મે-યહ્દુયા મે ચપેટા મે આક્રોશાશ્ચ વધાશ્ચ મે આ મારા માટે આઘાત સ્વરૂપ છે, યપ્પદ્ સ્વરૂપ છે, પ્રહાર સ્વરૂપ છે.

अयं भावः—दुर्विनीतशिष्यः खल्वेवं चिन्तयति-अयं गुरुर्मां केवलं खड्डुकादिभिः पीडयति न तु किमपि ममहितं चिन्तयतीति ॥ ३८ ॥

सविनयशिष्यस्य भावनामाह—

मूलम्—पुत्रो मे' भायं णाँइत्ति, साहू कल्लण मन्नइ ।

पावदिट्ठी उं अप्पाणं, सांसं दासेत्ति' मन्नइ ॥ ३९ ॥

छाया—पुत्रो मे भ्राता ज्ञातिरिति, साधुः कल्याणं मन्यते ।

पापदृष्टिस्तु आत्मानं, शास्यमानं दास इति मन्यते ॥ ३९ ॥

टीका—'पुत्रो मे' इत्यादि—

अयं शिष्यः, मे=मम, पुत्रतुल्य इति, भ्राता=भ्रातृतुल्य इति, ज्ञातिः=ज्ञाति-

भावार्थ—उभयलोकसंबंधी हितकारक उपदेश देने पर भी अविनीत शिष्यकी दृष्टिमें वह गुरु महाराज के शिक्षावचन हितकारक प्रतीत न होकर केवल कष्टप्रद चपेटा आदिरूप ही प्रतीत होते हैं। वह ऐसा मानता है कि ये मुझे इस बहाने केवल पीडित ही करना चाहते हैं। क्यों कि इन्होंने कभी भी मेरे हित का विचार ही नहीं किया है तो फिर ये मेरे हित की बुद्धि से अच्छी बात कहेंगे भी कैसे ॥ ३८ ॥

विनीत शिष्य की भावना कैसी होती है ! इसको इस गाथाद्वारा सूत्रकार प्रकट करते हैं—'पुत्रो मे' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—जब गुरुमहाराज शिष्यों को शिक्षा देते हैं तब उनमें जो (साहू-साधुः) विनीत शिष्य होता है वह इस प्रकार विचार करता

भावार्थः—उभयलोक संबंधी हितकारक उपदेश देवा छतां पणु अविनीत शिष्यनी दृष्टीमां गुरु भडाराणनुं ते शिक्षा वचन हितकारक न गणुतां केवण दुःअहायक तेमण सुंणवनार आदिइय ण लागे छे ते अणुं भाने छे के, आ अडाना तणे तेओ केवण पिडवाण भागे छे. केमके, तेमणुे कही पणु मारा हितने विचार कर्यो नथी. तो तेओ मारा हितनी भावनाथी सारी वात केवी रीते कडे. ॥ ३८ ॥

विनीत शिष्यनी भावना केवी होय छे—अने आ गाथा द्वारा सूत्रकार प्रकट करे छे. पुत्रो मे इत्यादि.

अन्वयार्थ—अन्यारे गुरु भडाराण शिष्यने शिक्षा आपे छे, तयारे अनामां ने साहू-साधुः विनीत शिष्य होय छे ते अे प्रकारने विचार करे छे के, आ गुरु

તુલ્ય ઇતિ ગુરુર્જાનાતિ, ઇત્યેવં સાધુઃ=વિનયવાન્ શિષ્યઃ કલ્યાણં=શુભં મન્યતે-  
 ‘અયં ગુરુઃ પુત્રાદિભાવેન મામનુશાસ્તિ’ ઇતિ શુભભાવનાં કરોતીત્યર્થઃ। કુશિષ્યઃ  
 પુનઃ કિં મન્યતે ? ઇત્યાહ-‘ પાવદિદ્વીઽ ’ ઇત્યાદિ । પાપદૃષ્ટિઃ=વિનયરહિતઃ શિષ્યસ્તુ  
 શાસ્યમાનમ્ આત્માનં=માં દાસ ઇતિ ગુરુર્જાનાતિ, ઇત્યેવં મન્યતે । ‘અયં ગુરુર્નીચ-  
 દૃષ્ટ્યાઽવમાનયન્માં દાસમિવ તર્જયતિ’ ઇત્યશુભભાવનાં કરોતીત્યર્થઃ ।

અન્યે તુ સુભૂવિભક્તિવ્યત્યયાત્ ‘પુત્રો’ ઇત્યસ્ય ‘પુત્રમિવ’ ‘ભાય’  
 ઇત્યસ્ય-‘ભ્રાતરમિવ’ ‘ગાઈ’ ઇત્યસ્ય ‘જ્ઞાતિમિવ’ ઇતિ દ્વીતીયાન્તાર્થં કલ્પયન્તિ  
 ‘મે’ ઇતિ દ્વિતોયાન્તાર્થકં ચ કલ્પયન્તિ તત્સર્વમનુચિતમ્-આગમોક્તપાઠેઽર્થસંગતૌ  
 સત્યાં તદ્વિપરીતાર્થકલ્પનાયાં ભગવદ્વચનવિરાધનાઽપત્તેઃ ॥ ૩૧ ॥

હૈ કિ યે ગુરુ મહારાજ મુજ્ઞે ( પુત્રો મે-પુત્રઃ મે ) યહ શિષ્ય મેરે પુત્રતુલ્ય  
 હૈ ( ભાય-ભ્રાતા ) માર્ઠૈ કે સમાન હૈ ( ગાય-જ્ઞાતિઃ ) જ્ઞાતિજનતુલ્ય હૈ,  
 એસા સમજ્ઞકર શિક્ષા દેતે હૈ, ( ત્તિ-ઈતિ ) હસ પ્રકાર વિનીત શિષ્ય  
 ( કલ્લાણ-કલ્યાણ ) શુભ ( મન્નઈ-મન્યતે ) માનતા હૈ, અર્થાત્ વિનીત  
 શિષ્ય ગુરુ મહારાજ કે પ્રતિ કલ્યાણ ભાવના કરતા હૈ । ઓર ( પાવદિદ્વી  
 ય-પાપદૃષ્ટિસ્તુ ) જો અવિનીત શિષ્ય હોતા હૈ વહ હસ પ્રકાર વિચારતા  
 હૈ કિ યે ગુરુમહારાજ ( સાસં અપ્પાણં-શાસ્યમાનમાત્માનમ્ ) શિક્ષાપાતે  
 હુણ મુજ્ઞકો ( દાસે-દાસઃ ) યહ દાસ હૈ, હસ પ્રકાર સમજ્ઞકર શિક્ષા દેતે  
 હૈ ( ત્તિ-ઈતિ ) હસ પ્રકાર ( મન્નઈ-મન્યતે ) અશુભ માનતા હૈ, અર્થાત્  
 અવિનીત શિષ્ય ગુરુ મહારાજ કે પ્રતિ અશુભ ભાવના કરતા હૈ । હસ  
 ગાથા મેં વિનીત ઓર અવિનીત શિષ્ય કી ભાવના પ્રદર્શિત કી હૈ ॥૩૧॥

મહારાજ મને પુત્રો મે-પુત્રઃ મે આ શિષ્ય મારા પુત્ર તુલ્ય છે ભાય-ભ્રાતા ભાઈની  
 તુલ્ય છે ગાય-જ્ઞાતિ જ્ઞાતિ તુલ્ય છે. એવું સમજીને શિક્ષા આપે છે. ત્તિ-ઈતિ આ  
 પ્રકારે વિનીત શિષ્ય કલ્લાણ મન્નઈ-કલ્યાણ-મન્યતે કલ્યાણકારક અને શુભકારક  
 માને છે. અર્થાત્ વિનીત શિષ્ય ગુરુ મહારાજ તરફ ખૂબ ઉંચી ભાવના રાખે છે અને  
 પાવદિદ્વીય-પાપદૃષ્ટિસ્તુ જે અવિનીત શિષ્ય હોય છે તે એવા પ્રકારનું વિચારે છે કે,  
 ગુરુ મહારાજ સાસં અપ્પાણં-શાસ્યમાનમાત્માનં શિક્ષા આપતી વખતે મને દાસે-દાસઃ  
 આ દાસ છે, એવી રીતે સમજીને શિક્ષા આપે છે. ત્તિ ઇતિ આ પ્રકારે મન્નઈ-મન્યતે  
 અશુભ માને છે. અર્થાત્ કુશિષ્ય, ગુરુ મહારાજ તરફ અશુભ ભાવના ભાવે છે.  
 આ ગાથામાં શિષ્યની વિનીત અને અવિનીત ભાવના પ્રદર્શિત કરેલ છે. ॥૩૬॥



अथ विनयसर्वस्वमुपदिशति—

मूलम्—न कोवए आयरिय, अप्पाणं पि न कोवए ।

बुद्धोवघाई न सियां, न सियां तोत्तंगवेसए ॥४०॥

छाया—न कोपयेत् आचार्यम्, आत्मानमपि न कोपयेत् ।

बुद्धोपघाती न स्यात्, न स्यात् तोत्रगवेषकः ॥ ४० ॥

टीका—‘न कोवए’ इत्यादि—

आचार्यं न कोपयेत्=क्रोधाविष्टं न कुर्यात्, आचार्यमित्युपलक्षणं तेन विनया-  
हमुपाध्यायादिकमपि न कोपयेदित्यर्थः । आत्मानमपि न कोपयेत्—आचार्येण परुष  
भाषणादिभिः शिक्ष्यमाणमात्मानमपि कोपयुक्तं न कुर्यात् । अपिनाऽन्यस्यापि संग्रहः  
अन्यं कमपि न कोपयेदित्यर्थः ॥

यतः—मासोपवासनिरतोऽस्तु तनोतु सत्यं,

ध्यानं करोतु विदधातु बहिर्निवासम् ।

ब्रह्मव्रतं धरतु भैक्षरतोऽस्तु नित्यं,

रोषं करोति यदि सर्वमनर्थकं तत् ॥ १ ॥

कथंचित् कोपावेशेऽपि बुद्धोपघाती न स्यात्—आचार्योपघातको न भवेत् ।

अब विनय का सारांश कहते हैं—‘न कोवए’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(आयरियं न कोवए—आचार्यं न कोपयेत्) विनीत  
शिष्य का कर्तव्य है कि वह आचार्य को कभी भी कुपित न करे ।  
(अप्पाणं पि न कोवए—आत्मानमपि न कोपयेत्) आचार्य महाराज जब  
कोई शिक्षा देवें उस समय अपनी आत्मा को भी कुपित न करे । यदि  
कदाचित् कोप का आवेश आ भी जावे तो उस समय ( बुद्धोवघाई न  
सिया—बुद्धोपघाती न स्यात् ) अपने आचार्य महाराज का उपघातक नहीं

हुवे विनयने। सारांश कडे छे.—न कोवए इत्यादि.

अन्वयार्थ—आयरियं न कोवए—आचार्यान् न कोपयेत् विनीत शिष्यनुं अ  
कर्तव्य छे के, ते आचार्यने कही पणु के।पित न करे. अप्पाणं पि न कोवये—  
आत्मानमपि न कोपयेत् आचार्य महाराज न्यारे के। शिष्या आये त्त्यारे पोताना  
आत्माने पणु के।पित न करे. कदाचित् नो के।पने आवेश आवी पणु नथ तो ते  
समय- बुद्धोवघाई न सिया—बुद्धोपघाती न स्यात् पोताना आचार्य महाराजनुं

तथा तोत्रगवेषको न स्यात्-तोत्रं=तोदनं तत्सदृशस्य पीडोत्पादकस्य परुषभाषणा-  
ऽऽदर्शगवेषकः=अन्वेषको न भवेदित्यर्थः । अयं भावः-यथा-दुष्टस्तुरङ्गमो विपरीत-  
गत्या प्रचलन् तोदनमन्वेषयति तद्वत् शिष्यः आचार्यस्य प्रेरणालक्षणवचनस्य  
गवेषको न भवेदिति ।

होना चाहिये । तथा-( तोत्तगवेसए न सिया-तोत्रगवेषकः न स्यात् )  
तोत्रगवेषक भी नहीं होना चाहिये-अर्थात् गुरु महाराज को वार २  
प्रेरणा करने की आवश्यकता नहीं होने दे । तात्पर्य इसका यह है  
कि शिष्य को यह चाहिये कि जिस समय आचार्य महाराज अपने  
लिये परुष भाषण आदि रूप में भी यदि शिक्षात्मक वचन कहें तो  
उस समय वह उनके प्रति ऐसा व्यवहार न करे कि जिससे वे कुपित  
हो जावें, तथा स्वयं भी अपनी आत्मा को उनके व्यवहार से अप्र-  
सन्न न रखे । तथा ऐसी चेष्टा भी उसको नहीं करना चाहिये कि जिसमें  
आचार्य महाराज का उपघात हो । जिस प्रकार दुष्ट धोडा विपरीत चाल  
से चलता हुआ अपने मालिक को पद २ पर दुःखित किया करता है  
उसी प्रकार उनकी इच्छा के विरुद्ध चलकर शिष्यको उन्हें कभी भी  
दुःखित नहीं करना चाहिये । सूत्र में जो अपि-शब्द आया है वह इस  
बात का सूचक है कि शिष्य को अपने आचार्य महाराज से अतिरिक्त  
और भी किसी को व्यथित नहीं करना चाहिये । तथा उपाध्याय आदि

अपमान करनार न थवो जेधं अये. तथा तोत्तगवेसए न सिया-तोत्रगवेषकः न स्यात्  
तोत्रगवेषक पणु न अनवुं जेधंअये. अथवा-गुरु महाराजे वारवार प्रेरणा करवी  
पडे तेषुं न थवा हे. जे समये आचार्य महाराज पोताना भाटे प३प लापणु  
आदि ३पथी पणु कदाय शिक्षात्मक वचन कहे तो ते वणते ते तेमना प्रत्ये  
अयेवो वडेवार न करे के, जेथी गुरु महाराजे क्रोधित अनवुं पडे. तथा तेमना  
वडेवारथी पोतानी जतने पणु अप्रसन्न न राजे. तथा अयेवी अयेठा पणु तेणु  
न करवी जेधंअये के जेमां आचार्य महाराजनुं अपमान होय, जे प्रकार दुष्ट  
धोडा विपरीत आलथी आलीने पोताना भालीकने पगले पगले दुःखित कर्या करे  
छे तेवी रीते, तेमनी ध्विछानी विद्वद्ध आलीने शिष्ये तेमने कही पणु दुःखी  
न करवा जेधंअये. सूत्रमां जे 'अपि' शब्द आवेल छे ते आ वात सूचन करे  
छे के शिष्ये पोताना गुरु महाराज के भीज कोधने पणु दुःख न पडोयाउवुं  
जेधंअये. तथा उपाध्याय आदि जे विनयने योग्य छे तेमने पणु कुपित न

बुद्धोपघाती न स्यादिति यदुक्तं तत्र दृष्टान्तो वर्ण्यते—

अङ्गदेशे चम्पापुरीनगर्यां गणिगुणसमन्वितः प्रक्षीणप्रायकर्मा क्षीणजङ्घाबलः कृतैकशिष्यप्रतिज्ञः कश्चिद् वीर्योल्लासनामक आचार्यः क्षुद्रमतिनाम्नैकेनैव शिष्येण जो विनय के योग्य हैं उन्हें भी कुपित नहीं करना चाहिये, क्यों कि कोप अनेक अनर्थों की जड़ एवं समस्त उत्तम क्रियाओं का विनाशक माना गया है, कहा भी है—

“ मासोपवासनिरतोऽस्तु तनोतु सत्यं,  
ध्यानं करोतु विदधातु बहिर्निवासम् ।  
ब्रह्मव्रतं धरतु भैक्षरतोऽस्तु नित्यं,  
रोषं करोति यदि सर्वमनर्थकं तत् ” ॥ १ ॥

कोई भी व्यक्ति यदि मास मास खमण भी पारणा करता हो, सदा सत्य बोलता हो, ध्यान करता हो, वन में भी निवास करता हो, ब्रह्म-चर्यव्रत का पालन करता हो, भिक्षावृत्ति करता हो परन्तु यदि रोष-कोप करता है तो उसकी ये समस्त क्रियाएँ व्यर्थ हैं ॥ १ ॥

‘बुद्धोपघाती नहीं होना चाहिये’ ऐसा जो कहा है उसको दृष्टान्त से स्पष्ट करते हैं—

अंगदेश में चंपा नामकी नगरी थी । उसमें गणिगुणों से युक्त

करवा जेठ अ. केभके, कोप अनेक अनर्थानी जड तेमज समस्त उत्तम क्रियाओंने नाश करनार बनायेव छे. कहुं पणु छे.—

मासोपवास निरतोऽस्तु तनोतु सत्यं,  
ध्यानं करोतु विदधातु बहिर्निवासम् ।  
ब्रह्मव्रतं धरतु भैक्षरतोऽस्तु नित्यं,  
रोषं करोति यदि सर्वमनर्थकं तत् ॥ १ ॥

कोई पणु व्यक्ति कदाय ते भडिना भडिनाना अपवास करे, सदा सायुं भोलतो डोय, ध्यान करतो डोय, वनमां पणु रडेतो डोय, ब्रह्मचर्यव्रतनुं पावन करतो डोय, भिक्षावृत्ति करतो डोय, परंतु ते जे कोध करतो डोय तो तेनी अे सधणी क्रियाओं व्यर्थ छे.

बुद्धोपघाति न थपुं जेठअे, अपुं जे कडेवामां आवे छे अेने दष्टां-तथी स्पष्ट करवामां आवे छे.—

अंग देशमां चंपापुरी नामनी नगरी डती, तेमां गण्णीशुभोथी युक्त  
७० ३२

सह कृतस्थिरवास आसीत् । तत्रासौ शिष्यः प्रतिदिवसं संसारसागरोत्तारकं जन्ममरणोच्छेदकं सकलकर्मविध्वंसकं तीर्थंकरगोत्रोपार्जकं गुरुवैयावृत्यं कुर्वाणो गुरुकर्म-कत्वाद् दुर्लभबोधित्वाच्चैकदा मनसि चिन्तयति—‘प्रक्षीणबलः स्थविरोऽयमस्माभिः कियत्कालमनुपालनीयः’ इत्येवं विमृश्यासौ तद्वयोऽनुरूपं स्निग्धं मधुरं मनोज्ञं सुरसं वीर्योद्धास नाम के आचार्य अपने प्रिय क्षुद्रमति नामक शिष्य के साथ स्थिरवास रहते थे । विशेष वृद्ध होने के कारण हलन-चलन आदि क्रियाएँ इनकी क्षीणप्राय हो चुकी थी । जंघा बल भी कम हो गया था । “मैं एक ही शिष्य करूँगा ” ऐसी उनकी प्रतिज्ञा थी । उस के अनुसार उन्होंने क्षुद्रमति नामक एक ही शिष्य किया था, और उसी के साथ वे वहाँ रहा करते थे । शिष्य भी अपने गुरु महाराज की ठीक २ रीत से वैयावृत्य किया करता था । वैयावृत्य करना यह एक तप है इसके प्रभाव से प्राणी संसार समुद्र से पार हो जाता है । जन्म, मरण और जरा से विमुक्त हो जाता है । अष्ट कर्मों का विनाश भी इस वैयावृत्य के बल पर प्राणी कर देता है । इससे तीर्थकरनामगोत्र का उपार्जन भी करता है । शिष्य गुरु कर्मा था । इस लिये वैयावृत्य करने पर भी इसे बोध का लाभ दुर्लभ हो रहा था । एक दिन शिष्य ने विचार किया कि हम इनकी अब कबतक वैयावृत्य करते रहेंगे । यह तो बिलकुल स्थविर हो चुके हैं । इन में तो अब इतनी भी शक्ति नहीं रही है जो ये यहाँ से

એક વિર્યોદ્ધાસ નામના આચાર્ય પોતાના ક્ષુદ્રમતિ નામના શિષ્ય સાથે સ્થિર વાસ રહેતા હતા. ખૂબ વૃદ્ધ થઈ જવાના કારણે હલન ચલન આદિ ક્રિયાઓ તેઓ કરી શકતા નહીં. શરીરનું તેમજ બંગોનું અળ પશુ ક્ષિણ થઈ ગયું હતું. “હું એકજ શિષ્ય કરીશ” એવી તેમની પ્રતિજ્ઞા હતી એ અનુસાર તેમણે એક જ શિષ્ય કરેલ હતો. જેનું નામ ક્ષુદ્રમતિ હતું તે શિષ્યની સાથે તે અંબાપુરીમાં રહેતા હતા. શિષ્ય પણ પોતાના ગુરુમહારાજની યોગ્ય રીતે આકરી અરદાસ કરતો હતો. વૈયાવૃત્ય કરવું એ એક તપ છે. તેના પ્રભાવથી પ્રાણી સંસાર સમુદ્રથી પાર થાય છે. જન્મ મરણ અને જરાથી વિમુક્ત થઈ બચ છે. આઠ કર્મોના વિનાશ પણ આ વૈયાવૃત્યના અળ ઉપર પ્રાણી પુરી દે છે. તેનાથી તીર્થંકર નામ ગોત્રનું ઉપાર્જન પણ કરે છે. શિષ્ય ગુરુ કર્મી હતો. આ માટે વૈયાવૃત્ય કરવા છતાં પણ એને બોધનો લાભ દુર્લભ થતો હતો. એક દિવસ શિષ્યે વિચાર કર્યો કે, હું કયાં સુધી આમની સેવા આકરી કરતો રહીશ. આ તો બીલકુલ સ્થવિર બની ગયા છે. એમનામાં એટલી પણ શક્તિ હવે

पथ्यं चतुर्विधमशनादिकं श्रावकजनैरुदारभावैरनुदिनं दीयमानमुपादाय तस्मै नार्पयति स्वयमेव तदश्नाति ।

अन्तं प्रान्तं रूक्षं शुष्कं कुपथ्यमशनादिकमानीय गुरवे प्रयच्छति । वदति च-  
किमिह कुर्मो वयम् । ईदृशीं दशामुपगतानां भवतां योग्यमशनादिकं विद्यमानमपि  
नामो विवेकविकलाः श्रावका दातुमिच्छन्ति । श्रावकान् कथयति च-ममाचार्याः  
खलु परमनिःस्पृहतया स्वशरीरयात्रामप्यचिन्तयन्तः प्रणीतं भक्तपानं ग्रहीतुं नेच्छन्ति

और दूसरी जगह भी चल फिर सकें। इस प्रकार विचार कर उसने  
ऐसा काम करना प्रारंभ किया कि-श्रावकों से जो आचार्य की अवस्था  
अनुरूप स्निग्ध, मधुर, मनोज्ञ, सरस चतुर्विध आहार इसे भिक्षा में  
मिलता वह स्वयं खा जाता और गुरु महाराज को अन्तप्रान्त, रूक्ष  
शुष्क एवं कुपथ्यरूप आहार लाकर देता। जब गुरु महाराज पूछते तो  
कहने लगता कि महाराज हम इस में क्या करें। यहां के श्रावक आप-  
की ऐसी अवस्था को देखकर असंतुष्ट हो गये हैं, इसी लिये वे अपने  
घर में होते हुए भी योग्य अशनादिक को देना नहीं चाहते। जब  
श्रावक उससे पूछते तो कहता कि हमारे ये आचार्य महाराज अब  
बिलकुल शिथिलशरीर हो रहे हैं इसलिये उन्हें अपने शरीरमें अब  
कोई ममत्वपरिणति नहीं रही है। उन्हें तो जैसा भी आहार मिलजाता  
है वे उसे ले लेते हैं। वे नहीं चाहते कि हमारा यह शरीर अब और

रही नथी के अेक स्थण उपरथी जीण स्थणे जरा पणु डाली आली शके.  
आ प्रकारनेो विचार करी तेणे अेवा कामनेो प्रारंभ कर्या के, श्रावकाथी  
आचार्यनी अवस्था अनुइप जे स्निग्ध, मधुर, मनोज्ञ, सरस आर प्रकारनेो  
आहार तेने भिक्षामां भणतो ते स्वयं पाई जतो अने गुरु महाराजने  
अन्त, प्रान्त, इक्ष, शुष्क अने कुपथ्यइप आहार लावी आपतो. गुरु महा-  
राजना पूछवाथी ते कडेतो के, महाराज हुं अेमां शुं कइं अहीना श्रावका  
आपनी आवी अवस्था जेधने असंतुष्ट जनी गया छे. आ माटे तेअो पोताना  
घरमां होवा छतां पणु योज्य आहार आपवा धरिछता नथी. न्यारे श्रावक  
तेने पूछता तो कडेतो के, मारा आचार्य महाराज हवे जीलकुल शिथिल  
शरीरना जनी गया छे आ माटे तेमने हवे पोताना शरीरमां कोई ममत्व  
परिष्पती रही नथी. तेमने जेवो आहार भणी जय छे तेवो ते ह्ये छे. ते  
नथी आहता के माइं आ शरीर हवे वधु वधत टकथुं रहे. आ माटे प्रष्ठीत

किंतु संलेखनामेव कर्तुं व्यवस्यन्ति । ततः शिष्यवचनं निश्चयं शोकार्तवचेतसः श्रावकास्तमुपसृत्य सगद्गदं वदन्ति—भगवन् ! कथमत्र भवद्भिरकाल एव संलेखनाविधिरारब्धः ? न च क्वयं निर्वेदहेतवः, इति मन्तव्यम् यतः शिरःस्थिता अपि भवन्तो न भारमस्माकं कुर्वन्ति । इत्थं श्रावकाणां वचनं श्रुत्वाऽऽचार्येण विचारितम्—सर्वमेतच्छिष्यदुश्चरितम्—अलमस्य शिष्यस्याप्रीतिकरेण मम प्राणधारणेन, इति मनसि विचिन्त्य तेन श्रावकाणां शिष्यस्य च पुरस्तादुक्तम्—क्रियच्चिरमज्जमै

अधिक समय तक टिका रहे । इस लिये प्रणीत रस वाले भक्त पान को लेने की वे अब चाहना ही नहीं करते हैं, किन्तु संलेखना धारण करने के लिये उद्यत हो रहे हैं, श्रावक जनों ने जब शिष्य के इन वचनों को सुना तो वे बहुत शोकार्त चित्त हो चिन्तित हुए और गुरु महाराज के समीप पहुँच कर गद्गद वाणी से कहने लगे कि—महाराज ! अकाल में आप संलेखना क्यों धारण कर रहे हैं ? हम लोग तो आपके लिये निर्वेद के कारण हैं नहीं—हमारे तो आप माथे पर भी बैठें तो भी आपका हमें कोई भार नहीं लग सकता है । आचार्य ने जब श्रावकों के इन वचनों को सुना तो वे बड़े विचार में पड़ गये और मन में कहने लगे कि यह सब करतूत हमारे शिष्य की है, मालूम पड़ता है इस को मैं बहुत भारी हो रहा हूँ । इस प्रकार सोच समझकर आचार्य ने शिष्य एवं श्रावकों के समक्ष कहा कि महानुभाव ! अब हम से चलना फिरना बनता नहीं है, अतः ऐसी स्थिति में आप सब को एवं शिष्य को

रसवाणा लडत पानने देवानी याडना डवे तेओ करता नथी. परंतु संलेखना धारण करवाभां प्रयत्नशील भनी रह्या छे. शिष्यनुं आ कडेवुं सांलणी श्रावक-भनेओ पूष शोकातुर भन्या अने गुरु महाराज पासे जडने गद्गद वाणीथी कडेवा लाग्या के, महाराज ! अकालमां आप संलेखना केम धारण करी रह्या छे ? अमे दोके तो आपना माटे निर्वेदना केछं कारण नथी ? आप अमारा माथा डपर भेसो तो पणु अमने आपनेओ केछं भार लागतो नथी. आचार्ये श्रावकेनुं न्यारे आ प्रकारनुं कडेवुं सांलणुं तो ते विचारमां पडी गया अने मनमां कडेवा लाग्या के, आ अधुं करतूत मारा शिष्यनुं छे, अने हुं पूष भार इप भनी रह्यो छुं. आ प्रकारनुं समणुं विचारिने आचार्ये शिष्य तेमणुं श्रावकेनी समक्ष कहुं के, माराथी डालीयाली शकतुं नथी, आथी आवी स्थितीमां आप अधाने तथा शिष्यने कयां सुधी कष्ट आप्या कइं. आथी अण



रस्माभिर्भवन्तः शिष्यश्च पीडनीयाः ? इति निवेद्य भक्तं प्रत्याख्याय स प्राणरहितो जातः । एवं क्षुद्रमतिशिष्यवत् साधुर्बुद्धोपघाती न भवेत् ॥ ४० ॥

आचार्ये कुपिते शिष्यकर्तव्यमाह--

मूलम्—आयरियं कुवियं नच्चा, पत्तिण्ण पसायए ।

विज्झविज्ज पंजलीउडो, वएज्ज नं पुण्णत्ति र्य ॥४१॥

छाया—आचार्यं कुपितं ज्ञात्वा, प्रीतिकेन प्रसादयेत् ।

विध्यापयेत् प्राञ्जलिपुटः, वदेत् न पुनरिति च ॥ ४१ ॥

टीका—‘आयरियं’ इत्यादि ।

शिष्यः केनचित् स्वापराधेन आचार्यं कुपितम्=अपरितुष्टं ज्ञात्वा प्रीतिकेन=प्रीतिरेव प्रीतिकं तेन-प्रीतिजनकेन विनयभावेन यद्वा-‘प्रीतिकेन’ इतिच्छाया; प्रतीतिकेन-विश्वासजनकेन वाक्येन तं प्रसादयेत्=प्रसन्नं कुर्यात् । ‘प्रीतिकेन’

कहाँ तक कष्ट दिया जाय, अतः यही सर्वसुन्दर मार्ग है कि संलेखना धारण करली जाय । ऐसा कह कर उन्होंने भक्तप्रत्याख्यान कर दिया और कुछ समय के बाद वे समाधिमरण को प्राप्त कर अपना कल्याण किया । इस कथा से शिष्य को यह शिक्षा लेनी चाहिये कि क्षुद्रमति शिष्य की तरह वह गुरु महाराज का प्राणप्रहारी न बने ॥४०॥

आचार्य महाराज के कुपित होने पर शिष्य का क्या कर्तव्य है सो कहते हैं-‘आयरियं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्य (कुवियं आयरियं नच्चा-कुपितं आचार्यं ज्ञात्वा । जब यह समझे कि आचार्य महाराज कुपित है उस समय वह (पत्ति-एण पसायए-प्रीतिकेन प्रसादयेत्) प्रीतिजनक-विनयभाव से अथवा

सर्व सुंदर मार्ग छे के, संलेखणा धारण करी हठं एवुं कहीने तेओओे लक्ष्ण-प्रत्याख्यान करी लीधुं अने थोडा समय बाद समाधी मरणने प्राप्त करी. पोतानुं कल्याणु कथुं. आ कथाथी शिष्ये ओ शिक्षा लेवी नेधंओे के, क्षुद्रमति शिष्यनी माक्क ते पोताना गुरु महाराजना प्राणु डरनार न अने. ॥ ४० ॥

आचार्य महाराजना कोधित थवाथी शिष्यनुं शु कर्तव्य छे. ते कडेवामां आवे छे.—आयरियं-इत्यादि.

अन्वयार्थ—शिष्य कुवियं आयरियं नच्चा-कुपितं आचार्यं ज्ञात्वा न्यारे एवुं समने के आचार्य महाराज कुपित छे ते समय ते पत्तिण्ण पसायए-प्रीतिकेन प्रसादयेत् प्रीतिजनक-विनय भावथी अथवा विश्वास जनक वाक्यथी तेने प्रसन्न

इत् यत्र रूढ्या नपुंसकत्वम् । प्राञ्जलिपुटः=कृताञ्जलिः सन् विध्यापयेत्=कथंचिदुत्थित-  
कोपवर्हिं प्रशमयेत् । च=पुनः 'न पुनरेवं करिष्यामि' 'क्षन्तव्योऽयमपराधः' इति  
वदेत् । मानसिक-कायिक वाचिकोपायै गुरुः प्रसादनीय इति भावः ॥४१॥

अथ येन गुरोः कोप एव नोत्पद्येत तमुपायमाह—

मूलम्—धम्मज्जियं च वव्हारं, बुद्धेहायरियं सया ।

तमायरंतो वव्हारं, गरंहं नाभिगच्छइ ॥४२॥

छाया—धर्माजितश्च व्यवहारः बुद्धैः आचरितः सदा ।

तमाचरन् व्यवहारं, गहीं नाभिगच्छति ॥४२॥

टीका—' धम्मज्जियं ' इत्यादि—

यत्तदोर्नित्यसम्बन्धाद् यः धर्माजितः=धर्मेण क्षान्त्यादिना अजितः=उपा-  
जितः, च-पुनः सदा=सर्वकालं बुद्धैः=तत्त्वविद्धिः आचरितः=सेवितः, व्यवहारः=

-विश्वासजनक वाक्य से उन्हें प्रसन्न करे । और (पंजलीउड़ो विज्जविज्ज-  
-प्राञ्जलिपुटः विध्यापयेत्) दोनों हाथ जोड़कर उनकी कथंचित् उत्थित  
कोपाग्नि को बुझावे । उस समय वह ऐसा (वण्ज-वदेत्) कहे कि ( न  
पुणुत्ति य-न पुनरिति च) हे गुरु महाराज अब ऐसा व्यवहार नहीं करने  
का भाव है अतः अब यह मेरा अपराध आप क्षमा करें । मन से वचन से  
एवं काया से जैसे भी बने उस प्रकार के उपायों से गुरु महाराज को  
प्रसन्न कर लेना चाहिये ॥ ४१ ॥

अब सूत्रकार ' गुरु महाराज को कोप ही न उत्पन्न हो सके ऐसा  
उपाय बतलाते हैं—'धम्मज्जियं इत्यादि.

अन्वयार्थ—जो ( धम्मज्जियं-धर्माजितः ) उत्तम क्षमा आदि धर्मों

करे. पंजलिउड़ो विज्ज विज्ज-प्राञ्जलिपुटः विध्यापयेत् अने अन्ने हाथ जेडीने  
तेमनी कथंचित् उत्थित कोपाग्निने भुआवे. अे समय ते अेपुं वण्ज-वदेत् कडे के,  
न पुणुत्ति य-न पुनरिति च डे गुरु भडाराज डेवे हुं अेपुं कही नहीं कइं आथी  
डेवे आप आ भारे अपराध क्षमा करे. मन वचन अने कायाथी जेपुं पणु  
अने अे प्रकारना उपायोथी गुरु भडाराजने प्रसन्न करी देवा जेध अे. ॥ ४१ ॥

डेवे सूत्रकार ' गुरु भडाराजने कोपण न उत्पन्न थाय ' अेवे उपाय  
अतावे छे.-धम्मज्जियं इत्यादि.

अन्वयार्थ—जे धम्मज्जियं-धर्माजितम् उत्तम क्षमा आदि धर्मोथी अणुत कर-

मोक्षार्थी कर्त्तव्यः प्रतिलेखनादिरूपः, अस्ति, तं व्यवहारम्—आचरन् साधुः, गर्हीं—निन्दाम्—‘अविनीतोऽयम्’ इत्यादिरूपां नाभिगच्छति=न प्राप्नोति। एवं कृते गुरोः कोपोत्पत्तिर्न भवतीति भावः।

‘धम्मज्जियं’ इत्यादौ प्रथमार्थे द्वितीया आर्षत्वात्। ‘धम्मज्जियं’ इति विशेषणं प्रतिलेखनादिव्यवहारस्य शास्त्रानुकूलतां दंभसंमानाद्यर्थं कृतव्यवहारस्य परिहार्यतां च बोधयति। ‘बुद्धेहायरियं’ इति विशेषणं व्यवहारस्य शासनसंप्रदायानुगतत्वं सूचयति ॥ ४२ ॥

मूलम्—मंगोगयं वक्कगयं, जाणित्तारियस्स उ।

तं परिगिञ्ज वायाँण, कम्मणा उववाँयण ॥४३॥

के द्वारा अर्जित किया है, तथा (सदा—सदा) सर्व काल (बुद्धेहायरियं—बुद्धैः आचरितः) तीर्थंकर गणधारों के द्वारा आचरित—सेवित हुआ है ऐसा यह (ववहारं—व्यवहारः) प्रतिलेखनादिरूप कर्त्तव्य है। (तं ववहारं आयरंतो—तं व्यवहारम् आचरन्) उस व्यवहार को अपने आचरण में लाने वाला साधु (गरहं—गर्हीं) ‘यह अविनीत है’ इत्यादिरूप निन्दा को (नाभिगच्छइ—नाभिगच्छति) प्राप्त नहीं करता है। “धम्मज्जियं” यह पद यह सूचित करता है कि प्रतिलेखनादिकरूप जो व्यवहार है वह शास्त्रानुकूल है, तथा दंभ एवं सम्मान आदि के निमित्त जो व्यवहार किया जाता है वह परिहार्य है। “बुद्धेहायरियं” यह पद ‘यह व्यवहार तीर्थंकर एवं गणधारों की परंपरा से चला आ रहा है अतः प्रामाणिक हैं’ यह सूचित करता है ॥ ४२ ॥

વામાં આવેલ છે તથા સદા—સદા સર્વ કાળ બુદ્ધેહાયરિયં—બુદ્ધઃ આચરિતઃ તીર્થંકર ગણુધરોથી સેવીત થયેલ છે એવાં આ વવહારં—વ્યવહારઃ પ્રતિલેખનાદિરૂપ કર્તવ્ય છે. આ વ્યવહારને પોતાના આચરણમાં લાવનાર સાધુ ગરહં—ગર્हीं ‘આઅવિનીત છે’ ઇત્યાદિ રૂપ નિંદાને નાભિગચ્છઈ—નાભિગચ્છતિ પ્રાપ્ત કરતા નથી. ધમ્મજ્જિયં આ પદથી એ સૂચિત થાય છે કે પ્રતિલેખનાદિક રૂપ જે વ્યવહાર છે તે શાસ્ત્રાનુકૂળ છે. તથા દંભ અને સમ્માન આદિ નિમિત્ત જે વ્યવહાર કરવામાં આવે છે તે પરિહાર્ય છે “બુદ્ધેહાયરિયં” આ પદથી આ વ્યવહાર તીર્થંકર તેમજ ગણુધરોની પરંપરાથી ચાલ્યો આવે છે આથી તે પ્રમાણીક છે એવું સૂચિત કરવામાં આવે છે. ॥ ૪૨ ॥

छाया—मनोगतं वाक्यगतं, ज्ञात्वा आचार्यस्य तु ।  
तत् परिगृह्य वाचा, कर्मणा उपपादयेत् ॥४३॥

टीका—‘मणोगयं’ इत्यादि—

आचार्यस्य मनोगतं=मनसि वर्तमानं, तथा वाक्यगतं=वचसि स्थितं तु शब्दात् कायगतमपि कार्यं पूर्वं ज्ञात्वा, पश्चात् तत्=कार्यं वाचा परिगृह्य=अङ्गीकृत्य, ‘अहमेतत् कार्यं करोमि’ इत्युक्त्वा शिष्यः कर्मणा=कायिक्या क्रियया, उपपादयेत्=संपन्नं कुर्यात् । यत् कार्यं गुरोर्मनसि विद्यमानं, ‘कार्यमिदं क्रियताम्’ इत्यादिना वचसा वाऽभिहितं, गुरुणा क्रियमाणं वा यत् कार्यं तद् गुरुहस्तादुपादाय त्वरितमेव सुशिष्येण संपादनीयमिति भावः ॥४३॥

‘मणोगयं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(आयरियस्स मणोगयं वक्कगयं-आचार्यस्य मनोगतं वाक्यगतं) आचार्य महाराज के मनोगत एवं वाक्यगत “तु” शब्द से कायगत कार्य को (जाणित्ता-ज्ञात्वा) पहिले जानकर पश्चात् (तं-तत्) उस कार्य को (वायाए-वाचा) वाणी से (परिगिज्ज-परिगृह्य) अंगीकार कर के शिष्य (कम्मणा-कर्मणा) कायसंबंधी क्रिया द्वारा (उववायए-उपपादयेत्) उस कार्य को कर देवे। जो कार्य गुरु के मन में स्थित हो-गुरु ने जिस कार्य को करने का विचार किया हो ‘इदं कार्यम् क्रियताम्’ यह काम करो’ इस प्रकार जिस कार्य को करने के लिये उन्होंने कहा हो, अथवा गुरु महाराज जिस कार्य को स्वयं अपने हाथ से कर रहे हों तो विनयी शिष्य का कर्तव्य है कि वह उस कार्य को शीघ्र ही स्वयं संपादित करे। और गुरु महाराज करते हों तो उनके हाथ से लेकर स्वयं करने लग जाय ॥ ४३ ॥

मणोगयं-इत्यादि.

अन्वयार्थ—आयरियस्स मनोगयं वक्कगयं-आचार्यस्य मनोगतं वाक्यगतं आचार्य महाराजना मनोगतं अने वाक्यगत “तु” शब्दथी कायगत कार्यने जाणित्ता-ज्ञात्वा पडेलां जाणीने पछीथी तं-तत् ते कार्यने वायाए-वाचा वाणीथी परिसिज्ज-परिगृह्य अंगिकार करीने शिष्य कम्मणा-कर्मणा काय संबंधी क्रिया द्वारा उववायए-उपपादयेत् अे कार्य करी दे. अे कार्य गुरुना मनमां स्थित होय, गुरुअे अे कार्य करवाने विचार कर्यो होय, “आ काम करे.” आ प्रकार अे कार्यने करवा माटे पोते पोताना हाथथी करी रखा होय तो विनयी शिष्यनुं कर्तव्य छे के अे ते कार्यने तुरत अे पोते उपाडी दे अने गुरु महाराज करता होय तो तेमना हाथमांथी लईने पोते करवा लगी जाय. ॥ ४३ ॥

मूलम्—वित्ते<sup>१</sup> अचोइए निच्चं, खिप्पं हवइ सुचोइए ।

जहोवइइटं सुकयं, किच्चाइं कुव्वइ सयां ॥४४॥

छाया—वित्तः अनोदितः नित्यं, क्षिप्रं भवति सुनोदितः ।

यथोपदिष्टं सुकृतं, कृत्यानि करोति सदा ॥ ४४ ॥

टीका—‘ वित्ते ’ इत्यादि—

वित्तः=विनयादिगुणेन प्रसिद्धः शिष्यः, अनोदितः=अप्रेरित एव गुरुकार्येषु नित्यं=सर्वदा, प्रवर्तते। कदाचित् स्वयमेव कार्यं कुर्वाणः सुनोदितः=गुरुणा सुष्ठु प्रेरितश्चेत् स विनयवान् शिष्यः क्षिप्रं=क्षिप्रकृद् शीघ्रमेव—कार्यकारी भवति। अयं भावः—कार्यं कुर्वन् आचार्येण प्रेरितश्चेद् एवं न ब्रूते—‘ अहं तु कार्यं करोम्येव, किं

‘ वित्ते ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( वित्ते-वित्तः ) विनय आदि गुणों से प्रसिद्ध शिष्य (अचोइए-अनोदितः) विना कहे ही-प्रेरणाकिये विना ही-अपने गुरु महाराज के कार्यों में (निच्चं-नित्यं) सर्वदा प्रवृत्ति शील रहा करता है। (सुचोइए-सुनोदितः) गुरु महाराज अपने कार्य को करने की प्रेरणा करें तो विनयवान् शिष्य का कर्तव्य है कि वह (खिप्पं हवइ-क्षिप्रं भवति) गुरु महाराज का कार्य यतनापूर्वक शीघ्र करे। ऐसा शिष्य गुरु महाराज जब कार्य करने के लिये कहते हैं तब ऐसा नहीं कहता है कि ‘मैं तो कार्य कर ही रहा हूँ आप क्यों कहते हैं’। वह तो (सया-सदा) सर्वदा जो कुछ भी करने को कहा जाता है उसे ही कहने के अनुसार (सुकयं-सुकृतं) जैसे वह अच्छी रीति से हो सकता है उसी

वित्ते इत्यादि-

अन्वयार्थ—वित्त-वित्तः विनय आदि गुणोत्थी प्रसिद्ध शिष्य अचोइए-अनोदितः कक्षा वगर प्रेरणा कर्त्ता वगर-पोताना गुरु महाराजना कार्योंमां निच्चं-नित्यं सदा सर्वदा प्रवृत्तिशील रह्या करे छे. सुचोइए-सुनोदितः गुरु महाराज पोतानुं कार्य करवा माटे प्रेरणा करे तो विनयवान शिष्यनुं कर्त्तव्य छे के ते खिप्पं हवइ-क्षिप्रं भवति गुरु महाराजना ते कार्यने यतनापूर्वक तुरत ज करवा मांटे. विनयी शिष्य गुरु महाराजना तरक्षी काम माटेनुं सूचन यतां अपुं कही पणु कडेतो नथी के, हुं काम तो करी रह्यो छुं, आप शा माटे कडे छे. ते तो सया-सदा सर्वदा अने ने कांछ कडेवामां आवे ते काम ते कडेवा अनु-सार सुकयं-सुकृतं नेम ते सारी रीते थछ शके अ रीते किच्चाइं कव्वइ-कृत्यानि

उ० ३३

भवद्भिः प्रलप्यते?’ इति । यथोपदिष्टम्=उपदिष्टमनतिक्रम्य सर्वमुपदिष्टं कार्यं, सुकृतं =सुष्ठु कृतं, यथा स्यात्, तथा कार्याणि=सर्वाणि गुरुकार्याणि, सदा=सर्वकालं, करोति=संपादयति । गुरुकार्येष्वालस्यं न विधेयं प्रसन्नभावेन तदेव कार्यं सत्वरं करणीयमिति भावः ॥ ४४ ॥

अध्ययनार्थमुपसंहरन्नाह—

मूलम्—नच्चा नमइ मेहावी, लोए किंती से जायए ।

हवइ किच्चाण संरणं, भूयाणं जगइ जहा ॥४५॥

छाया—ज्ञात्वा नमति मेधावी, लोके कीर्तिस्तस्य जायते ।

भवति कृत्यानां शरणं, भूतानां जगती यथा ॥ ४५ ॥

टीका—‘नच्चा’ इत्यादि—

मेधावी=मर्यादावर्ती शिष्यः, ज्ञात्वा=अनन्तरोक्तं सर्वमध्ययनार्थमवगम्य, नमति=नम्रीभवति विनयवान् भवतीत्यर्थः, स्वकर्तव्यकरणं प्रति सादरमुद्यतो भवतीति यावत् । विनयस्य फलमाह—‘लोए’ इत्यादि । लोके तस्य कीर्तिः—

रीति के माफिक (किच्चाइं कुवइ—कृत्यानि करोति) उन सब कार्यों को सुसंपादित करता है । गुरु महाराज के कार्यों में कभी भी आलस्य नहीं करना चाहिये प्रत्युत प्रसन्नचित्त से जो कुछ भी करने को कहा जाय वह शीघ्र ही कर देना चाहिये ॥ ४४ ॥

अब अध्ययन के अर्थ का उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—  
‘नच्चा’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(मेहावी—मेधावी) मर्यादावर्ती शिष्य (नच्चा—ज्ञात्वा) अनन्तरोक्त इस समस्त अध्ययन के अर्थ को जानकर (नमइ—नमति) अवश्य विनयी होता है । अर्थात् अपने कर्तव्य को निभाने के लिये सादर उद्यत हो जाता है । (से लोए किंती जायए—तस्य लोके कीर्तिः

करोति ते अधां कामे सारीरीते करतो रहे छे. गुरु महाराजना कामेमां कही पणु आणस शिष्ये न करवी जेधंछे. जे कांछं करवानुं कहेवाभां आवे ते प्रसन्न चित्ते शीघ्र करी देवुं जेधंछे. ॥ ४४ ॥

हुवे अध्ययनना अर्थने उपसंहार करता सूत्रकार कहे छे—नच्चा इत्यादि—

अन्वयार्थ—मेहावी—मेधावीमर्यादावर्ती शिष्य नच्चा—ज्ञात्वा अनन्तरोक्त आ समस्त अध्ययनना अर्थने जाणीने नमइ—नमति अवश्य विनयी भने छे. अर्थात् पोताना कर्तव्यने निभावावा भाटे सादर उद्यत रहे छे. से लोए किंति जायए—तस्य



‘अनेन सफलीकृतं जन्म, छिन्नं च दुश्छेद्यं कर्मबन्धनं निस्तीर्णञ्च दुस्तरः संसार-सागरः’ इत्यादिरूपा, जायते=प्रादुर्भवति, अपि च—स कृत्यानां=आचार्याणां शरणम्=आश्रयो भवति, यथा जगती=पृथिवी, भूतानां=प्राणिनां शरणम्=आधारोऽस्ति तद्वत् ॥ ४५ ॥

मूलम्—पुज्जां जस्स पसीयंति, संबुद्धा पुव्वंसंथुया ।

पसन्नां लाभइस्संति, विउलं अट्टियं सुयंम् ॥४६॥

छाया—पूज्या यस्य प्रसीदन्ति, संबुद्धाः पूर्वसंस्तुताः ।

प्रसन्ना लाभयिष्यन्ति, विपुलम् आर्थिकं श्रुतम् ॥ ४६ ॥

टीका—‘पुज्जा’ इत्यादि—

संबुद्धाः=सम्यग्ज्ञानवन्तः, पूर्वसंस्तुताः=पूर्वं सम्यक् प्रकारेण स्तुताः, श्रुतदा-

जायते) जो साधु अपने कर्तव्य को निभाता है उसका उसे यह फल मिलता है कि उसकी कीर्ति इस लोक में फैल जाती है। लोग कहने लग जाते हैं कि इसने अपने जन्म को सफल बना लिया है। दुश्छेद्य कर्मबन्धन इसने छेद डाला है। दुस्तर संसार सागर इसने पार कर लिया है। (जहा-यथा) जैसे-(जगई-जगती) पृथिवी (भूयाणं सरणं हवइ-भूतानां शरणं भवति) प्राणियों के लिये आधारभूत होती है, इसी तरह वह शिष्य भी (किच्चाण सरणं हवइ-कृत्यानां शरणं भवति) अपने आचार्य महाराज का आधार बन जाता है ॥ ४५ ॥

‘पुज्जा’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(संबुद्धा-संबुद्धाः) पहिले-श्रुतदान के पहिले ही विनय-

लोके कीर्ति: जायते जे साधु पोताना कर्तव्यने निभावे छे अने तेनुं अे इण भणे छे के, तेमनी किर्ती आ लोकमां इलाय जय छे, लोक कडेवा लागे छे के, आणे पोताना जन्मने सक्षण भनावी लीधे छे. कर्मना बंधने अेणे तोडी नाय्यां छे, दुस्तर संसार सागर अेणे पार करी लीधे छे. जहा-यथा जेम-जगई-जगती पृथ्वी भूयाणं सरणं हवइ-भूतामां शरणं भवति प्राणीअेने माटे आधारभूत होय छे, अेज रीते ते शिष्य पण पोताना आचार्य महाराजने आश्रय भनी जय छे. ॥ ४५ ॥

पुज्जा-इत्यादि—

अन्वयार्थ—संबुद्धा-संबुद्धाः पहिलां श्रुतदानना पहिलां-विनयशुषुधी

નાત્ પૂર્વમેવ વિનયેનાનુરજિતા इत्यर्थः पूज्याः=आचार्यादयः, यस्य शिष्यस्य प्रसी-  
दन्ति=प्रसन्ना भवन्ति, ते प्रसन्नाः सन्तः विपुलं=विस्तीर्णम्, आर्थिकम्=अर्थो  
मोक्षः स एव प्रयोजनमस्येत्यार्थिकं-मोक्षजनकं श्रुतं=श्रुतज्ञानम्-अङ्गोपाङ्गादिभेद-  
युक्तं लाभयिष्यन्ति=प्रापयिष्यन्ति ॥ पूज्यप्रसादनस्यानन्तरंफलं श्रुतलाभः परं-  
पराफलं तु मुक्तिरिति बोध्यम् ।

‘संबुद्धा’ इति विशेषणेन-श्रुतज्ञानदानयोग्यता सूचिता ।

‘पूर्वसंस्तुताः’ इत्यनेन वाचनाकालात् प्राग्, वाचनाकाले, तदनन्तरं चेति  
કાલત્રયે વર્તમાનઃ સ્વાભાવિકવિનય એવ પ્રસન્નતાયાઃ કારણમસ્તીતિ સૂચિતમ્ ॥૪૬॥

ગુણ સે અનુરંજિત હુણ એસે ( પુજ્જા-પૂજ્યાઃ ) પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ  
આદિ ( જસ્સ પસીયંતિ-યસ્ય પ્રસીદંતિ ) જિસ શિષ્ય કે ડપર પ્રસન્ન હો  
જાતે હૈં । ( પ્રસન્ના વિપુલં અદ્વિયં સુયં-પ્રસન્નાઃ વિપુલં આર્થિકં શ્રુતમ્ )  
ઉસકે લિયે પ્રસન્ન હુણ વે વિસ્તીર્ણ, એવં મોક્ષજનક શ્રુત કી ( લાભઈસ્સંતિ  
-લાભયિષ્યન્તિ ) પ્રાપ્તિ કરાને વાલે હોતે હૈં । તાત્પર્ય ઇસકા યહ હૈં કિ  
જબ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ, શિષ્ય કે ડપર ઉસકે વિનયગુણ સે પ્રસન્ન  
હો જાતે હૈં તો ઉસ શિષ્ય કો ઉનકી પ્રસન્નતા કા લાભ યહ મિલતા હૈ  
કિ વહ અંગ ઉપાંગ આદિ ભેદવિશિષ્ટ શ્રુતજ્ઞાન કો પ્રાપ્ત કર લેતા હૈં ।  
યહ ઉનકી પ્રસન્નતા કા સાક્ષાત્ ફલ હૈં । પરંપરા ફલ યહ હૈં કિ ઉસકો  
મુક્તિકા લાભ હોતા હૈં ।

इस गाथा के “संबुद्धा” इस विशेषण से श्रुतज्ञान के देने की योग्यता  
सूचित होती है । “पूर्वसंस्तुताः” इस विशेषण से सूत्रकार यह सूचित

અનુરંજિત અનેક એવા પુજ્જા-પૂજ્યાઃ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ આદિ જસ્સ-  
પસીયંતિ-યસ્યપ્રસીદંતિ જે શિષ્ય ઉપર પ્રસન્ન થઈ બીય છે પ્રસન્ના વિપુલં અદ્વિયં સુયં  
-પ્રસન્નાઃ વિપુલં આર્થિકં શ્રુતમ્ એને માટે પ્રસન્ન થયા તે વિસ્તીર્ણ અને મોક્ષ  
જનક શ્રુતની લાભઈસ્સંતિ-લાભયિષ્યન્તિ પ્રાપ્તિ કરાવવાવાળા હોય છે. મતલબ  
આનો એ છે કે, ત્યારે આચાર્ય મહારાજ શિષ્યના વિનયગુણથી તેના ઉપર  
પ્રસન્ન થઈ બીય છે ત્યારે એ શિષ્યને એમની પ્રસન્નતાનો લાભ એ મળે છે  
કે, તે અંગ ઉપાંગ આદિ ભેદ વિશિષ્ટ શ્રુતજ્ઞાનનો પ્રાપ્ત કરનાર અને છે. એ  
તેમની પ્રસન્નતાવું સાક્ષાત્ ફળ છે, અને પરંપરા ફળ એ છે કે તેને મુક્તિનો  
લાભ મળે છે.

આ ગાથાના “સુબુદ્ધા” આ વિશેષણથી શ્રુતજ્ઞાન આપવાની યોગ્યતા  
સૂચિત થાય છે. પૂર્વસંસ્તુતા આ વિશેષણથી સૂત્રકાર એવું સૂચિત કરે છે કે,

संप्रति श्रुतज्ञानलाभस्य फलमाह—

मूलम्—स पुञ्जसत्थे सुविणीयसंसए, मणोरुई चिट्टंइ कर्मसंपया ।  
तवोसमायारिसर्माहिसंवुडे, महंज्जुई पंचवयाइं पालिया ॥४७॥

छाया--स पूज्यशास्त्रः सुविनीतसंशयः, मनोरुचिस्तिष्ठति कर्मसंपदा ।

तपःसमाचारीसमाधिसंवृतः, महाद्युतिः पञ्च व्रतानि पालयित्वा ॥ ४७ ॥

टीका--‘ स पुञ्जसत्थे ’ इत्यादि--

स=शिष्यः, गुरुप्रसादात्प्राप्तश्रुतज्ञानः अतएवं-पूज्यशास्त्रः=पूज्यं-सर्वजन-  
श्लाघ्यं, शास्त्रं यस्य स तथा गुरुमुखादधीतं विनयपूर्वकमधीतं च शौचं संमाननीयं  
भवतीति भावः । तथा-सुविनीतसंशयः=सुष्ठु विनीतः=प्रसादितेन गुरुणा शास्त्र-  
सिद्धान्तार्थप्रदानेन दूरीकृतः, संशयो यस्य स तथा, कर्मसंपदा-कर्म=क्रिया दश-  
विधसमाचारीकरणरूपा, तस्याः संपन्नता, तथा, मनोरुचिः=मनसः=गुरोर्मनसः,  
रुचिः=प्रीतिर्यस्मिन् स तथा, गुरुप्रिय इत्यर्थः, यद्वा-मनसि=गुरोर्मनसि मनोगते

करते हैं कि शिष्य वाचनाकाल से पहिले, तथा वाचना के समय में  
और वाचना के अनन्तर में विनयगुण से विशिष्ट ही रहे। यह स्वाभा-  
विक विनयगुण ही आचार्य आदि की प्रसन्नता में हेतु माना जाता है ॥४६॥

श्रुतज्ञान के लाभ का क्या फल है इसे सूत्रकार कहते हैं--

‘ स पुञ्जसत्थे ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ-(पुञ्जसत्थे-पूज्यशास्त्रः) सर्वजनों द्वारा श्लाघ्य है श्रुतज्ञान  
जिसका ऐसा (स-सः) वह शिष्य कि जिसका (सुविणीयसंसए-सुविनीत-  
संशयः) प्रसन्न हुए गुरु महाराज द्वारा प्रदत्त शास्त्रसंमत अर्थ के अध्ययन  
से संशय दूर हो चुका है, तथा (कर्मसंपया-कर्मसंपदा) दशविध समा-  
चारी की आराधना रूप संपत्ति से (मणोरुई-मनोरुचिः) जो गुरु महाराज  
के मनकी प्रीति का स्थान बन गया है अथवा गुरु महाराज के मनोनुकूल

शिष्य वाचनकाण्ठी पडेलां तथा वाचनकाण्ठा समयमां तेभञ्ज वाचनकाण्ठा  
विनयगुण्ठी विभूषित अनी रहे. आ स्वाभाविक विनयगुण्ठा आचार्य आदिनी  
प्रसन्नताने हेतु बनाय छे. ॥ ४६ ॥

श्रुतज्ञानना लाभतुं शुं इण छे ? तेनाप्रकार अतावे छे. स पुञ्जसत्थे इत्यादि-

अन्वयार्थ--पुञ्जसत्थे-पूज्यशास्त्रः सर्व जनो द्वारा जेतु श्रुतज्ञान श्लाघ्य  
छे अेवा स-सः ते शिष्य के जेतुं सुविणीयसंसए-सुविनीतसंशयः गुरु महाराज  
द्वारा प्रदत्त शास्त्र संमत अर्थना अध्ययनथी जेने संशय दूर थयेल छे, तथा  
कर्मसंपया-कर्मसंपदा दशविध समाचारीनी आराधना रुप संपत्तिथी मनोरुई-  
मनोरुचिः जे गुरुमहाराजना मनथी प्रीतितुं स्थान अनी गयेल छे. अथवा

कार्ये रुचिरिच्छा यस्य स मनोरुचिः—गुरुमनोऽनुवर्ती न तु स्वेच्छाचारी तिष्ठति= आस्ते तथा-तपःसमाचारीसमाधिसंवृतः—तपसोऽनशनानादेर्द्वादशविधस्य समाचारी च समाधिश्च तपःसमाचारीसमाधी, ताभ्यां संवृतः=निरुद्धास्रवः, पञ्च व्रतानि=प्राणा-तिपातविरमणादीनि पञ्चमहाव्रतानि पालयित्वा=निरतिचारं समाराध्य महाद्युतिः =महती द्युति र्यस्य स महाद्युतिः=तपस्तेजःसमन्वितः, तेजोलेख्यापुलाकलब्ध्यादि सहितो भवतीत्यर्थः ॥ ४७ ॥

कार्य को संपादन करने की जिसकी इच्छा बनी रहती है—गुरु महाराज की इच्छानुसार चलने वाला, स्वेच्छाचारी नहीं। एवं (तवोसमाचारिसमाहिसंबुडे—तपःसमाचारीसमाधिसंवृतः) अनशन आदि बारह प्रकार के तप के अनुष्ठान से, तथा चित्तकी शुद्धिरूप समाधि से जिसने आस्रव के द्वारको निरुद्ध कर दिया है (पंचवयाइं पालिया—पंचव्रतानि पालयित्वा) पांच प्राणातिपातविरमण आदि महाव्रतों का निरतिचार पालन करके (महज्जुई चिट्ठइ—महाद्युतिः तिष्ठति) तपस्तेज से समन्वित होता हुआ तेजोलेख्या एवंपुलाकलब्धि आदि से सहित होता है।

भावार्थ—गुरु महाराज के प्रसाद से जिसने श्रुतज्ञान प्राप्त कर लिया है ऐसा शिष्य शास्त्रसंमत अर्थ में विगतसंशयहोकर जनता द्वारा प्रसंशनीयज्ञानवाला माना जाता है। उसके वचन को जनता निस्संदेह अंगीकार कर लेनेमें निस्संकोचित हो जाती है। उसकी विनयादि

प्राप्तानां गुरु भट्टाराजना मनोनुकूल कार्यं संपादन करवाती इच्छा जेनी अनी रहे छे. जेवा गुरु भट्टाराजनी इच्छानुसार आलवावाणा स्वेच्छाचारी नहिं जेवा शिष्य के जेहे तवोसमाचारिसमाहिसंबुडे—तपः समाचारीसमाधिसंवृतः अनशन आदि बार प्रकारनातपना अनुष्ठानथी तथा चित्तनी शुद्धिरूप समाधीथी जेहे आश्रवना द्वारने निरुद्ध करी दीधां छे, पंचवयाइं पालिया—पंचव्रतानि पालयित्वा पंच प्राणातिपात विरमण आदि महाव्रताने निरतिचार पालन करी महज्जुई चिट्ठइ—महाद्युतिः तिष्ठति तपस्तेजथी समन्वित थर्थ तेजे लेख्या जेवं पुलाकलब्धि आदिथी सहित अने छे.

भावार्थ—गुरु महाराजना प्रसादथी श्रुतज्ञान जेहे प्राप्त करी दीधुं छे जेवा शिष्य शास्त्रीय संमत अर्थमां विगतसंशय अनीने जनता द्वारा प्रसं-शनीय ज्ञानवाणा मानवामां आवे छे. जेवा वचनने जनता निःसंदेह अंगीकार करवामां सकेअरहित अनी जय छे. जेनी क्रिया—संपत्तिथी गुरु भट्टाराज

मूलम्—स देवगंधव्वमणुस्सपूइए, चइत्तु देहं मलपंकपूइयं ।  
सिद्धे वा हर्वइ सासए, देवे वा अप्परंए महिद्धिंए-त्ति वेमि ॥४८॥

[ स सिद्धए वा हवएय सासए, सुरेय वा अप्परए महिद्धिं ए-त्तिवेमि ]

॥ उत्तरज्झयणस्स पढमज्झयणं समत्तं ॥

छाया—स देव गन्धर्वमनुष्यपूजितः, त्यक्त्वा देहं मलपङ्कपूतिकम् ।

सिद्धो वा भवति शाश्वतः, देवो वा अल्परजा महर्द्धिक इति ब्रवीमि ॥४८॥

[ स सिद्धो वा भवति च शाश्वतः, सुरश्च वा अल्परजा महर्द्धिकः—इति ब्रवीमि ]

टीका—‘ स देवगंधव्व० ’ इत्यादि—

सः=पूर्वोक्तलक्षणविशिष्टो विनयवान् शिष्यः, इह लोके देवगन्धर्वमनुष्य-  
पूजितः=देवैः=वैमानिक ज्योतिष्कैः, गन्धर्वैः—गन्धर्वनिकायो—पलक्षितैर्व्यन्तरभ-  
वनपतिभिः, मनुष्यैः=चक्रवर्त्यादिभिः पूजितः संमानितो भवति । यथा मलपङ्कपू-  
तिकं=मलं=विण्मूत्रादिकं, तदेव पङ्कःकर्मस्तेन पूतिकं=दुर्गन्धियुक्तं देहम्=औदारिकं

क्रियासंपत्ति से गुरु महाराज उस पर सदा प्रसन्न रहा करते हैं । द्वादश  
प्रकार की तपस्या से वह कर्मों के आस्रव को रोकने वाला हो जाता है ।  
पांच महाव्रतों की आराधना से उसका आत्मिक बल विशिष्ट होकर  
उसको तपस्तेज की लब्धि से संपन्न बना देता है ॥ ४७ ॥

‘ सदेव ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( स-सः ) पूर्वोक्त लक्षणों से विशिष्ट विनयशाली शिष्य  
( देवगंधव्वमणुस्सपूइए—देवगंधर्वमनुष्य पूजितः ) देव वैमानिक ज्योतिष्क  
देवों से गंधर्व—गंधर्वनिकाय से उपलक्षित व्यन्तर देवों से, एवं भवनपति-  
देवों से, तथा मनुष्यों—चक्रवर्ती आदि से पूजित होता है । तथा ( मलपं-

अनेा पर सदा प्रसन्न रह्या करे छे आर प्रकारनी तपस्याथी ते कर्मना  
आश्रवने शिकनार अनी जय छे. अने पांच महाव्रतोनी आराधनाथी अनेुं  
आत्मिक अल विशिष्ट अने छे. अने आथी तेने तपस्तेजनी लब्धि संपन्न  
अनावे छे. ॥ ४७ ॥

“ स देव इत्यादि—

अन्वयार्थ—स-सः पूर्वोक्त लक्षणुनी विशिष्ट विनयशाली शिष्य देव गंधव्व-  
मणुस्सपूइए—देव गंधर्व मनुष्य पूजितः देव—वैमानिक ज्योतिष्क देवो, गंधर्व—गंधर्व  
निकायथी उपलक्षित व्यन्तर देव अते भवनपति देवो तथा मनुष्यो—चक्रवर्ती  
आदिथी पूजित अने छे. तथा मलपंक पूइयं देहं चइत्तु—मलपंकपूतिकं देहं त्यक्त्वा

मनुष्यशरीरं, त्यक्त्वा, शाश्वतः=सर्वकालावस्थायी जन्ममरणरहितः सिद्धो भवति । वा=अथवा, सावशेषकर्मा तु अल्परजाः=अल्पकर्मा महर्द्धिकः=महती=दिव्या ऋद्धिः=विमानादिसम्पत्, उपलक्षणेन दिव्यानि द्युतियशोवर्णबलवीर्यादीनि च यस्य स महर्द्धिकः, तत्र=द्युतिः-शरीराभरणकान्तिः, यशः=कीर्तिः, वर्णः=शुक्लादिः, बलं=शारीरिकपराक्रमः, वीर्यम्=आत्मबलम्, आदिपदेन-इतोऽन्यदपि संग्राह्यम्, एभिः संपन्नः, देवो भवति ।

कपूह्यं देहं चइत्तु-मलपंकपूतिकं देहं त्यक्त्वा) शुक्रशोणित से जन्य इस औदारिक शरीर का परित्याग कर ( सासए सिद्धे हवइ-शाश्वतः सिद्धो वा भवति ) अनंत काल तक सदा सिद्धि स्थान में रहने वाला सिद्ध परमात्मा हो जाता है । ( वा ) अथवा यदि वह सिद्ध नहीं बने तो ( अप्परएमहिडिहए देवे वा हवइ-अल्परजाः महर्द्धिकः देवो वा भवति ) अल्पकर्मा महर्द्धिक देव हो जाता है ।

भावार्थ — पूर्वोक्तलक्षणविशिष्ट विनीत शिष्य देवादिक द्वारा पूज्य होता है, एवं इस अपवित्र औदारिक शरीर का परित्याग कर सिद्ध हो जाता है । यदि कर्म शेष रह जाय तो वह महाऋद्धिशाली देव होता है । यहां ऋद्धिसे द्युति, यश, वर्ण, बल, वीर्य इन सबका ग्रहण हुवा है । विमान आदि संपत्ति का नाम ऋद्धि है । शरीर एवं आभरण की कान्ति का नाम द्युति है । कीर्त्ति का नाम यश है । शरीर का जो शुक्ल आदि वर्ण है - उसका नाम वर्ण है । शारीरिक पराक्रम का नाम बल एवं आत्मजन्य शक्ति का नाम वीर्य है ।

शुक्र शोणित जन्य आ औदारिक शरीरनो परित्याग करी सासए सिद्धे हवइ-शाश्वतः सिद्धो भवति अनन्तकाल सुधी सदा सिद्धि स्थानमां रहेवावाणा सिद्ध परमात्मा अनी जय छे. वा अथवा जे ते सिद्ध न अने तो, अल्पकर्मा महर्द्धिक देव अनी जय छे.

भावार्थ—पूर्वोक्त लक्षणविशिष्ट विनीत शिष्य देवादिक द्वारा पूज्य अने छे. अने आ अपवित्र औदारिक शरीरनो परित्याग करी कान्तो सिद्ध अनी जय छे. जे कर्म शेष रही जय तो ते महाऋद्धि शाणी देव अने छे. ऋद्धिथी द्युति, यश, वर्ण, अण, वीर्य, आ अधानुं गाथाभां ग्रहण करेले छे, विमान आदि संपत्तिनुं नाम ऋद्धि छे. शरीर अने आभरणनी कान्तिनुं नाम द्युति छे, कीर्त्तिनुं नाम यश छे. शरीरनो जे शुक्ल आदि वर्ण छे-द्रव्य देश्या छे-अनुं नाम वर्ण छे. शारीरिक पराक्रमनुं नाम अण छे. अने आत्मजन्य



इति शब्दः समाप्तिबोधकः, अथवा 'इति' एवम्-अगुना प्रकारेण एतद् विनयश्रुताख्यमध्ययनं ब्रवीमि यथा भगवता कथितं तथा कथयामि न तु स्वबुद्ध्या परिकल्प्य किञ्चिद् ब्रवीमीत्यर्थः ॥ ४८ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-  
कलितललितकलापालापक-प्रवि-शुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्माय-  
कवादिमानमर्दक-श्रीशाहूच्छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-  
“जैनशास्त्राचार्य”-पदभूषित-कोल्हापुर-राजगुरु-  
बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य-  
श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीमदुत्तराध्ययन-  
सूत्रस्य प्रियदर्शिन्याख्यायां व्याख्यायां  
विनयसमाधिनामकं प्रथममध्ययनं  
संपूर्णम् ॥ १ ॥



('त्तिवेमि'—इति ब्रवीमि) यह पद अध्ययनकी समाप्ति का सूचक है, इसका यह अर्थ है कि—श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं कि हे जम्बू! यह विनयश्रुत नाम का अध्ययन जैसा भगवान से सुना है उसी तरह का मैंने कहा है। इस में अपनी बुद्धि से कल्पित कुछ नहीं कहा गया है ॥ ४८ ॥

विनयश्रुतनामक प्रथम अध्ययन सम्पूर्ण ॥ १ ॥



शक्तिनुं नाम वीर्यं छे. “त्तिवेमि” ‘इति ब्रवीमि’ आ पद अध्ययननी समाप्तिनुं सूचक छे तेनो अर्थ आ छे के—श्री सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने कहे छे के छे जम्बू! आ विनयश्रुत नामनुं अध्ययन नेवुं भगवानशी सांलग्नुं छे तेज प्रकारे मे कहुं छे. आभां पोतानी बुद्धिथी कल्पित कांछि नथी कहुं. ॥ ४८ ॥  
॥ आ विनयश्रुत नामनुं प्रथम अध्ययन संपूर्ण ॥ १ ॥



## द्वितीयाध्ययनम् ।

विनयश्रुताख्यं प्रथममध्ययनं वर्णितम्, इदानीं द्वितीयमध्ययनं प्रारभ्यते । अस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तराध्ययने विनयः सविस्तरं वर्णितः, स चानुकूलप्रतिकूलपरीषहजनशीलैरेव कर्तुं शक्यते इति द्वितीयं परीषहाख्यमध्ययनं प्रारभ्यते—

यद्वा—विनयाराधकाः प्रायः परीषहभाजो भवन्त्येवेति द्वितीयं परीषहाख्यमध्ययनं प्रारभ्यते, तस्येदमाद्यं सूत्रम्—

मूलम्—सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—इह खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विनिहन्नेज्जा ॥१॥

छाया—श्रुतं मे आयुष्मन् ! तेन भगवता एवमाख्यातम्—इह खलु द्वाविंशतिः परीषहाः श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदिताः, यान् भिक्षुः श्रुत्वा ज्ञात्वा जित्वा अभिभूय भिक्षाचर्यायां परिव्रजन् स्पृष्टो नो विनिहन्येत ॥१॥

## द्वितीय अध्ययन ।

विनयश्रुत नाम के प्रथम अध्ययन का वर्णन हुआ, अब सूत्रकार द्वितीय अध्ययन का वर्णन करते हैं । प्रथम अध्ययन के साथ इसका संबंध इस प्रकार है—प्रथम अध्ययन में विस्तारपूर्वक विनयधर्म का वर्णन करने में आया है । उस विनयधर्म की आराधना परीषहों को जीतने वाला ही कर सकता है, और विनयशील को प्रायः परीषह उत्पन्न होते ही हैं इसलिए अब परीषहाध्ययन कहते हैं जिसका यह प्रथमसूत्र है—“सुयंमे” इत्यादि ।

## पीणुं अध्ययन

विनय श्रुत नामना प्रथम अध्ययननुं वर्णन पुइं थयुं डवे सूत्रकार पीण अध्ययननुं वर्णन करे छे. प्रथम अध्ययननी साथे अनेो संबंध आ प्रकारनो छे. प्रथम अध्ययनमां विस्तार पूर्वक विनय धर्मनुं वर्णन करवामां आवेल छे. ते विनय धर्मनी आराधना परिषडने जतवावाणा न करी शके छे अने विनयशीलने परिषड धखे भागे उत्पन्न थाय न छे, आ माटे डवे “परिषडाध्ययन” कडेवामां आवे छे जेनुं आ प्रथम सूत्र छे सुयंमे इत्यादि.

टीका—श्रीसुधर्मा स्वामी श्रीजम्बूस्वामिनं प्रति कथयति—‘सुयं मे आउसं!’ इत्यादि । हे आयुष्मन् ! भगवता=ज्ञानादियुक्तेन, तेन=तीर्थकरणे, एवम्=वक्ष्यमाणप्रकारेण, यत् आख्यातं=सकलजीवभाषापरिणामिन्या भाषया कथितम्, उक्तञ्च—

देवा दैवीं नरा नारीं, शबराश्चापि शाबरीम् ।

तिर्यञ्चोऽपि हि तैरश्रीं, मेनिरे भगवद्विरम् ॥ १ ॥

तत्, मे=मया, श्रुतम् । भगवत्कथितमेवार्थं तवाग्रे वर्णयामीति भावः । अस्य सविस्तरं व्याख्यानं जिज्ञासुभिराचाराङ्गसूत्रस्य मत्कृताचारचिन्तामणिटीकायां द्रष्टव्यम् । यद्वा—‘आउसंतेणं’ इत्येकं पदं, ‘मया’ इत्यस्य विशेषणम् ।

श्री सुधर्मा स्वामी श्री जम्बूस्वामी से कहते हैं—(आउसं-आयुष्मन्) कि हे आयुष्मन् ! जम्बू ! (तेणं भगवया एवमक्खायं-तेन भगवता एवं आख्यातम्) ज्ञानादि गुणों से युक्त उन तीर्थकर भगवान् श्री महावीर स्वामी ने वक्ष्यमाण प्रकार से कहा है वह (मे सुयं-मया श्रुतम्) मैंने सुना है वही मैं कहता हूँ । प्रभु की भाषा सर्वभाषामय होती है, कहा भी है—“देवा दैवीं” इत्यादि ।

प्रभु की वाणी को देव, मनुष्य, आर्य, अनार्य, तिर्यञ्च, सभी अपनी अपनी भाषा में समझते हैं ।

इस सूत्र का विस्तृत विवेचन आचारांग सूत्र की आचारचिन्तामणि टीका में किया गया है, इसलिए जिज्ञासु को वहाँ से देख लेना चाहिये । “आउसं तेणं” इस पद की संस्कृत छाया “आयुष्मन् तेन” ऐसी न

श्री सुधर्मास्वामी, श्री जम्बूस्वामीने कहे छे के आउसं-आयुष्मन् ‘हे आयुष्मन् जम्बू ! तेणं भगवया एवमक्खायं-तेन भगवता एवं आख्यातम् ज्ञानादि गुणोत्थी युक्त एवा तीर्थकर भगवान् श्री महावीर स्वामीञ्चे वक्ष्यमाण प्रकार्थी कहुं छे मे सुयं-मया श्रुतम्-ते मे सांलुयुं छे ए हे हुं कहुं छुं । प्रभुनी भाषा सर्वभाषामय होय छे. कहुं पणु छे—देवा दैवीं इत्यादि.

प्रभुनी वाणीने देव, मनुष्य, आर्य, अनार्य, तिर्यञ्च, सधणा पोत पोतानी भाषाभां समजे छे.

आ सूत्रनुं विस्तृत विवेचन आचारांगसूत्रनी आचारचिन्तामणी टीकाभां करेल छे. माटे जिज्ञासुञ्चे त्यांथी जेध देवुं जेधे. “आउसं तेणं” ए पदनी संस्कृत छाया “आयुष्मन् तेन” एवी न थतां आउसंतेणं” “आवसता”

આવસતા=શાસ્ત્રમર્યાદાનુસારેણ વસતા ગુરુકુલવાસે, इत्यर्थः । भगवदुक्तमर्थं बोध-  
यितुं सुधर्मा स्वामी पुनः प्राह—‘ इह खलु ’ इत्यादि । इह खलु=जिनशासने एव,  
न तु शाक्यादिशासने, द्वाविंशतिः=द्वाविंशतिसंख्यकाः, परीषहाः=मार्गाच्यवन-  
निर्जरार्थं तीर्थकरणधरादिभिरे परिसह्यन्ते ते परीषहाः । श्रमणेन-श्राम्यतीति  
श्रमणः=तपस्वी, तेन । उक्तञ्च—

यः समः सर्वभूतेषु, त्रसेषु स्थावरेषु च ।

तपश्चरति श्रद्धात्मा, श्रमणोऽसौ प्रकीर्तितः ॥ १ ॥

હોકર “ આડસંતેણ ” ‘ આવસતા ’ યહ તૃતીયાન્તવિભક્તિવાલી ખી હો  
સકતી હૈ । ઇસકા અર્થ—“ શાસ્ત્રમર્યાદા કે અનુસાર ગુરુકુલ મેં રહને  
વાલે ” એસા હોતા હૈ ।

ભગવાન્ ને કયા કહા હૈ સો કહતે હૈ—( इह खलु ) इस जिनशासन  
में निश्चय से ( बावीस परीसहा ) बाईस परीषह ( समणेणं भगवया  
महावीरेणं कासवेणं पवेइया ) श्रमण-काश्यपगोत्री आ भगवान्  
वर्धमान स्वामी ने केवल ज्ञानद्वारा साक्षात् करके कहे हैं । मार्ग से  
पतन न हो सके तथा कर्मों की निर्जरा हो इस हेतु से तीर्थकर एवं  
गणधर आदि के द्वारा जो सहन किये जाते हैं उनका नाम परीषह है,  
और वे बाईस हैं । इनके सहन करने का उपदेश केवल जिनशासन  
में ही है अन्यत्र नहीं है । श्रमण के लक्षण इस प्रकार हैं—

“ यः समः सर्वभूतेषु, त्रसेषु स्थावरेषु च ।

तपश्चरति शुद्धात्मा श्रमणोऽसौ प्रकीर्तितः ॥

એ પ્રમાણે તૃતીયાન્ત વિભક્તિ પશુ થઈ શકે છે. એનો અર્થ શાસ્ત્રમર્યાદા  
અનુસાર ગુરુકુલમાં રહેવાવાળા એ સુજ્ઞ થાય છે.

લગવાને શું કહ્યું છે તે કહેવામાં આવે છે—“इह खलु” इत्यादि. आ  
जिनशासनમાં निश्चयથી बावीस परीसहा भावीस २२ परिषद समणेणं भगवया  
महावीरेणं कासवेणं पवेइया श्रमण-काश्यप गोत्री श्री लगवान वर्धमान स्वामीએ  
केवलज्ञान द्वारा साक्षात् करीने कहेल છે. मार्गથી પતન ન થાય તથા કર્મોની  
નિર્જરા બને તેવા હેતુથી તીર્થ-કર તેમજ ગણધર આદિ દ્વારા જે સહન  
કરવામાં આવે છે તેનું નામ પરીષદ છે. અને તે ૨૨ છે. તેને સહન કરવાનો  
ઉપદેશ કેવળ જિન શાસનમાં જ છે. અન્યત્ર નથી. શ્રમણનું લક્ષણ આ પ્રકારનું છે—

यः समः सर्वभूतेषु, त्रसेषु स्थावरेषु च

तपश्चरति शुद्धात्मा श्रमणोऽसौ प्रकीर्तितः ॥

काश्यपेन=काश्यपगोत्रेण, भगवता महावीरेण श्रीवर्धमानस्वामिना प्रवेदिताः= केवलालोकेन स्वयं साक्षात्कृत्य प्रतिबोधिता इत्यर्थः ।

यान्=परीषहान्, भिक्षुः=साधुः श्रुत्वा=सविनयं सादरं कर्णगोचरीकृत्य, ज्ञात्वा='परीषहैः पराभूतस्य चतुर्विधसंसारपरिभ्रमणं, परीषहविजयिनस्तु मोक्ष-मार्गादप्रच्युतिः कर्मनिर्जरा च भवति' इत्यवबुध्य, जित्वा=वीर्योल्लासेन विजयं कृत्वा, अभिभूय=धैर्येण तत्सामर्थ्यमुपहत्य भिक्षाचर्यायां=भिक्षाटने, परिव्रजन्=विचरन्,

जो समस्त जीवों में—त्रस एवं स्थावरों में—समानदृष्टि रखनेवाले होते हैं, एवं जो घोर तपस्या करते हैं उनका नाम भ्रमण है। इन परीषहों को (जो भिक्षु सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्षाय-रियाए परिव्वयंतो पुट्टो नो विनिहन्नेज्जा) जो भिक्षु 'सोच्चा' गुरु के समीप सुनकर, तथा 'नच्चा' "जो भिक्षु इन परीषहों से पराभूत हो जाता है वह चतुर्विध संसार के चक्कर से बच नहीं सकता है तथा जो इन्हें जीत लेता है उसको मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती है और उसके कर्मों की निर्जरा भी होती है" ऐसा जानकर, तथा 'जिच्चा' अपने वीर्योल्लास से उनको परि-चित्त करके, तथा 'अभिभूय' धैर्यता से उनके सामर्थ्य को नष्ट करके भिक्षाचर्या निमित्त भ्रमण करता हुआ कदाचित् परीषहों से आक्रान्त होता है तो वह ज्ञान दर्शन चारीत्ररूप मोक्षमार्ग से प्रच्युत

जे समस्त जिवनमां त्रस अने स्थावरोमां-समान दृष्टि राखवावाणा छेय छे. अने जे घोर तपस्या करे छे अणुं नाम भ्रमण छे. जे भिक्षु सोच्चा नच्चा जिच्चा अभिभूय भिक्षायरियाए परिव्वयंतो पुट्टो नो विनिहन्नेज्जा अवा परिषडोने जे भिक्षु सोच्चा गुरुनी पासे सांलणीने तथा नच्चा " जे भिक्षु अ परिषडोथी पराभूत अने छे ते चतुर्विध संसारना अकथी अथी शकता नथी. तथा जे अने जित्वा दे छे तेने मोक्ष मार्गनी प्राप्ति थाय छे. अने तेना कर्मोनी निर्जरा पणु थाय छे. अणुं नलणीने तथा जिच्चा पोताना विर्योल्लासथी तेना परिचित्त करीने, तथा अभिभूय धैर्यताथी अने सामर्थ्यने नष्ट करीने, भिक्षाचार्या निमित्त भ्रमण करतां करतां कदाचित् परिषडोथी आक्रान्त थाय छे तो ते ज्ञान दर्शन चारीत्ररूप मोक्ष मार्गथी पाछे न रहे " भिक्षायरियाए " आ

कदाचित् स्पृष्टः=परीषहैराक्रान्तः सन्, न विनिहन्येत=मोक्षमार्गात् प्रच्युतो न भवेदित्यर्थः । ' भिक्खायरियाए ' इत्यनेन भिक्षाटने प्रायः परीषहाः प्रादुर्भवन्ति, इति सूचितम् ॥

नहीं होवे । “ भिक्खायरियाए ” इससे यह प्रकट होता है कि भिक्षु को भिक्षाटन करते समय प्रायः परीषह उत्पन्न होते हैं ।

भावार्थ—इस सूत्र द्वारा सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी को समझाते हुए यह कह रहे हैं कि हे जम्बू ! मैं इस अध्ययन में २२ परीषहों के संबंध में जो कुछ भी विवेचन करूँगा वह सब जैसा मैंने प्रभु वर्धमानस्वामी के मुख से सुना है वैसा ही करूँगा । भगवान् ने बाईस परीषह फरमाये हैं—जो भिक्षु इन परीषहों से स्वयं पराजित न होकर इनको जीतता रहता है वह मोक्षमार्ग से कभी भी विचलित नहीं होता है । भिक्षाचर्या करते समय परीषहों के आने की अर्थात् उत्पन्न होने की प्रायः अधिक संभावना रहती है, अतः साधु को उनसे विचलित नहीं होना चाहिये । परीषह साधु की कसौटी है । इनके द्वारा कसा जाने पर जो साधु मोक्षमार्ग से चलायमान नहीं होता है, एवं वीर्योल्लास प्रकट कर इनका साम्हना करता है वह कर्मों की निर्जरा करता हुआ अपना कल्याण करता है ॥

पदार्थी प्रगट् थाय छे के, भिक्षुने भिक्षाटन करती वअते प्रायः परिषड् उत्पन्न थाय छे.

भावार्थ—आ सूत्र द्वारा सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामीने ये समझावने कहे छे के, हे जम्बू ! हुं आ अध्ययनमां २२ परिषडनां संबधमां ने कांठ पणु विवेचन करीश. ते मे प्रभु वर्धमानस्वामीथी ने रीते सांलज्युं छे ते करीश. भगवाने आवीस २२ परिषड् इरभाव्या छे. ने भिक्षु आ परिषडोथी स्वयं पराजित न अनी तेने लते छे ते भोक्ष मार्गथी कही पणु विचलित थता नथी. भिक्षाचर्या करती वअते परिषडोना आववानी अर्थात् उत्पन्न थवानी प्रायः अधिक संभावना रहे छे. आथी साधुये तेनाथी विचलित न अनहुं लेधं ये. परिषड् साधुनी कसौटी छे तेना द्वारा कसाया पछी साधु भोक्षमार्गथी चलायमान नथी थता तेमज् विर्योल्लास प्रगट् करी येना सामनेा करे छे ते कर्मोनी निर्जरा करीने पोतानुं कल्याण करे छे.



एवं श्रीसुधर्मस्वामिना प्रोक्ते सति श्री जम्बूस्वामी पृच्छति—

मूलम्—कयरे ते खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया  
महावीरेणं कासवेणं पवेइया जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा  
अभिभूय भिक्खायरियाए परिव्वयंतो पुट्ठो नो विनिहन्नेज्जा? ॥२॥

छाया—कतरे ते खलु द्वाविंशतिः परीषदाः श्रमणेन भगवता महावीरेण  
काश्यपेन प्रवेदिताः । यान् भिक्षुः श्रुत्वा ज्ञात्वा जित्वा अभिभूय भिक्षाचर्यायां  
परिव्रजन् स्पृष्टो न विनिहन्येत ? ॥२॥

टीका—‘ कयरे ते ’ इत्यादि ।

कतरे=किंनामकास्ते=अनन्तरसूत्रोक्ताः खलु द्वाविंशतिः परीषदाः, अत्र  
खलु शब्दो वाक्यालंकारे, शेषपदानां व्याख्या पूर्ववत् ॥

तदा श्रीसुधर्मा स्वामी श्रीजम्बूस्वामिनं प्रति प्राह—

मूलम्—इमे ते खलु बावीसं परीसहा समणेणं भगवया

इस तरह श्री सुधर्मास्वामिका कहने पर श्री जम्बू स्वामी पूछने  
लगे—‘ कयरे ’ इत्यादि ।

( कासवेणं ) काश्यपगोत्री ( समणेणं भगवया महावीरेणं ) श्रमण  
भगवान् महावीर स्वामी ने जिन २२ परिषदों का ( पवेइया-प्रवेदिता )  
वर्णन किया है और जिनके सुनने आदि से भिक्षाचर्या में घूमता  
हुवा मुनि उन परिषदों से स्पृष्ट होने पर भी संयममार्ग से चलित नहीं  
होता है उन परिषदों के नाम क्या २ हैं ? ।

सुधर्मास्वामी जंबूस्वामी के २२ परिषदों के नामों को जानने  
विषयक प्रश्न का उत्तर देने के लिये कह रहे हैं कि हे जंबू ! सुनो—

आ प्रभाषे श्री सुधर्मास्वामीये कहुं त्थारे जम्बूस्वामी इरी पूछवा लाग्या  
कयरे इत्यादि.

कासवेणं काश्यपगोत्री “ समणेणं भगवया महावीरेणं ” श्रमणु लगवान् महावीर  
स्वामीये जे २२ परिषदोनुं पवेइया-प्रवेदिता वणुं न करेल छे. अने जेना सांभ-  
णवा आदिथी भिक्षाचर्यामां इरी रडेल मुनि ये परिषदोथी स्पृष्ट थया पछी  
पणु संयम मार्गथी चलित अनता नथी. ये परिषदोनां नाम कथां कथां छे ?

सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने २२ परिषदोना नामने जणुवा अणेना  
प्रश्नो उत्तर आपतां कडे छे के, के जम्बू ! सांभणो “ इमे ” इत्यादि !

महावीरेण कासवेणं पवेइया, जे भिक्खू सोच्चा नच्चा जिच्चा  
अभिभूय भिक्खायरियाए परिठ्वयंतो पुट्ठो नो विनिहन्नेज्जा ॥३॥

छाया—इमे ते खलु द्वाविंशतिः परीषहाः श्रमणेन भगवता महावीरेण  
काश्यपेन प्रवेदिताः, यान् भिक्षुः श्रुत्वा ज्ञात्वा जित्वा अभिभूय भिक्षाचर्यायां  
परिव्रजन् स्पृष्टो नो विनिहन्येत ॥३॥

‘इमे ते’ इत्यादि ।

ये द्वाविंशतिः परीषहाः श्रमणेन भगवता महावीरेण काश्यपेन प्रवेदितास्ते  
खलु इमे=अग्रे वक्ष्यमाणाः सन्ति, अनन्तरमेव वक्ष्यमाणत्वात् हृदि वर्तमानाः परी-  
षहाः ‘इदं’ शब्देन निर्दिष्टाः। यान् भिक्षुः श्रुत्वा ज्ञात्वेत्यादि पदानां व्याख्या पूर्ववत्॥  
अथ तानेव नामनिर्देशपूर्वकं दर्शयति—

मूलम्—तं जहा—दिगिंछापरीसहे १, पिवासापरिसहे २, सी-  
यपरीसहे ३, उसिणपरीसहे ४, दंसमसयपरीसहे ५; अचेल-  
परीसहे ६, असइपरीसहे ७, इत्थीपरीसहे ८, चरियापरीसहे ९,  
निसीहियापरीसहे १०, सेज्जापरीसहे ११, अक्कोसपरीसहे १२,  
वहपरीसहे १३, जायणापरीसहे १४, अलाभपरीसहे १५,  
रोगपरीसहे १६, तणफासपरीसहे १७, जल्लपरीसहे १८,  
सक्कारपुरक्कारपरीसहे १९, पन्नापरीसहे २०, अन्नाणपरीसहे २१,  
दंसणपरीसहे २२ ॥४॥

छाया—तद् यथा—क्षुधापरीषहः १, पिपासापरीषहः २, शीतपरीषहः ३,  
उष्णपरीषहः ४, दंशमशक्रपरीषहः ५, अचैलपरीषहः ६, अरतिपरीषहः ७, स्त्री-  
परीषहः ८, चर्यापरीषहः ९, नैवेधिकीपरीषहः १०, शय्यापरीषहः ११, आक्रोश-  
परीषहः १२, वधपरीषहः १३, याचनापरीषहः १४, अलाभपरीषहः १५,  
रोगपरीषहः १६, तृणस्पर्शपरीषहः १७, जल्लपरीषहः १८, सक्कारपुरक्कारपरीषहः १९,  
पन्नापरीषहः २०, अज्ञानपरीषहः २१, दर्शनपरीषहः २२ ॥ ४ ॥

टीका—तद् यथा—क्षुधापरीषद्ः दिग्गिच्छाशब्दो देशीयः क्षुधार्थे वर्तते ।  
 सैव परीषद्ः परिषद्भते इति परीषद्ः, ॥ १ ॥ पिपासापरीषद्ः—पिपासा  
 =तृषा, सैव परीषद्ः, एवं सर्वत्र परीषद्भार्थेन समानाधिकारण्यं बोध्यम् ॥२॥ शीत-  
 परीषद्ः—शीतं=हेमन्तशिशिरयोर्जातः शीतस्पर्शः, तदेव परीषद्ः शीतपरीषद्ः  
 ॥३॥ उष्णपरीषद्ः—उष्णं—ग्रीष्मवर्षासु जातस्तापरूप उष्णस्पर्शः, तदेव परीषद्ः ॥४॥  
 दंशमशकपरीषद्ः—दंशमशकाः प्रसिद्धाः, त एव परीषद्ः दंशमशकपरी-  
 षद्ः, दंशमशकाः परीषद्त्ववन्त इत्यर्थः, तत्र परीषद्त्वगतैकत्वविवक्षया परीषद्  
 इत्येकवचनम् ॥ ५ ॥ अचैलं=चैलाभावः जिनकल्पिकविशेषणाम् । स्थविरक-  
 ल्पिकानां तु जीर्णं खण्डितमल्पमूल्यं प्रमाणोपेतं च चैलं सदप्यचैलमेव । तदेव

“हमे”—इत्यादि । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने जिन २२ परीषद्दों को सहन करने के लिए भिक्षुको आदेश दिया है वे २२ परीषद् ये हैं—

दिग्गिच्छाशब्द देशीय शब्द है, इसका अर्थ क्षुधा है । दिग्गिच्छारूप परीषद् का नाम दिग्गिच्छापरीषद् है । १। पिपासा—शब्द का अर्थ तृषा है । इसरूप जो परीषद् है वह पिपासापरीषद् है । २। हेमन्त एवं शिशिर ऋतु में उत्पन्न शीतस्पर्श का नाम शीत है । इसरूप जो परीषद् है उसका नाम शीतपरीषद् है । ३। ग्रीष्म ऋतु एवं वर्षा ऋतु में उत्पन्न हुए ताप का नाम उष्णस्पर्श है । इसरूप परीषद् का नाम उष्णपरीषद् है । ४। डांस, मच्छर, बिच्छू, चिउंटी आदि का नाम दंशमशक है । इनके काटने की वेदनारूप जो परीषद् है वह दंशमशकपरीषद् है । ५। वस्त्रका सर्वथा अभाव अचैल है, यह जिनकल्पियों को होता है । स्थविरकल्पियों के जीर्ण, खंडित, अल्पमूल्यवाले एवं प्रमाणोपेत वस्त्र होते हैं तौ भी उनको

श्रमणु भगवान् महावीर स्वामीये ने २२ परीषद्दोने सहन करवानो भिक्षुने आदेश आयेल छे ते २२ परिषद् आ छे.

दिग्गिच्छाइय परिषद्दुतं नाम दिग्गिच्छापरीषद् छे (१) “दिग्गिच्छा” अेट्ठे भूअ. पिपासा शब्दोने अर्थ तृषा छे, आ इय ने परीषद् छे ते पिपासा-परीषद् छे (२) हेमन्त अने शिशिर ऋतुमां उत्पन्न थतां ङंठा स्पर्शनुं नाम शीत-परीषद् छे (३) ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतुमां उत्पन्न थता ताप इय उष्ण स्पर्शनुं नाम उष्णपरीषद् छे (४) डांस, मच्छर, वींछी, माकड, आदिनुं नाम दंशमशक छे, तेना करडवानी वेदना इय परीषद् ते दंशमशकपरीषद् छे. (५) वस्त्रो सदा अलाव तेअचैल छे अे अणकट्टियओने थाय छे. स्थविरकट्टियओना अणुं, अंडित अल्पमूल्यवाणां अेवां प्रमाणोपेत वस्त्र डोय छे तो पणु तेने अचैलने मानवा नेअंअे. अेवो

परीषहः अचैलपरीषहः ॥ ६ ॥ अरतिपरीषहः-रतिः=संयमविषयिका प्रीतिः । तद्विपरीता त्वरतिः, सैव परीषहः, अरतिपरीषहः ॥७॥ स्त्री=नारी सैव कथंचिद् दृष्टा सती तद्गतरागपूर्वकगतिविलासहासचेष्टाचक्षुर्विकाराद्यवलोकनेऽपि तदभिलाषनिवर्तनेन परिषह्यमाणत्वात् परीषहः स्त्रीपरीषहः ॥ ८ ॥ चर्या-ग्रामानुग्राम विहाररूपा, सैव परीषहः चर्यापरीषहः ॥ ९ ॥ नैषेधिकी-स्वाध्यायभूमिः, सैव परीषहः-नैषेधिकीपरीषहः ॥ १० ॥ शय्या=वसतिः, सैव परीषहः शय्यापरीषहः ॥११॥ आक्रोशः=असभ्यभाषणरूपः, स एव परीषहः आक्रोशपरीषहः ॥१२॥ वधः-ताडनं, स एव परीषहः वधपरीषहः ॥१३॥ याचनैव परीषहः याचनापरीषहः ॥१४॥ अलाभः-अभिलषितवस्तुनोऽप्राप्तिः, स एव परीषहः, अलाभपरीषहः

अचेल ही जानना चाहिये । इस रूप परीषह ही अचेल परीषह है । ६। संयमविषयक अप्रीति का नाम अरति है इस अप्रीतिरूप ही अरति परीषह है । ७। स्त्री के रागपूर्वक गमन, विलास, हास्य, चेष्टा, तथा चक्षु के विकार कटाक्ष-आदि के अवलोकित होने पर भी उस विषय की कोई भी अभिलाषा नहीं करना-वह स्त्री परीषह है । ८। एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करना इसका नाम चर्या है इसरूप परीषह चर्यापरीषह है । ९। स्वाध्याय करने के स्थान का नाम नैषेधिकी है । इसरूप जो परीषह है वह नैषेधिकी परीषह है । १०। वसति रूप परीषह शय्यापरीषह है । ११। असभ्यभाषणरूप परीषह आक्रोशपरीषह है । १२। ताडनरूप परीषह वधपरीषह है । १३। याचनारूप परीषह याचनापरीषह है । १४। अभिलषित वस्तु की अप्राप्तिरूप परीषह अलाभपरीषह है । १५। वात पित्त

परीषह अचेलपरीषह छे. (६) संयमविषयक अप्रीतिनुं नाम अरति छे, अे अप्रीतिरूप परीषह अरतिपरीषह छे (७) स्त्री तरङ्गना रागपूर्वक गमन, विलास, हास्य, चेष्टा तथा चक्षुने विकार-कटाक्ष आदिना अवलोकन जेठने पणु अे विषयनी क्रेष्ठ अभिलाषा न करवी तेवे परीषह ते स्त्रीपरीषह छे. (८) अेक ग्रामथी भिन्न ग्रामे विहार करवे अेनुं नाम चर्या छे, आ रूप जे परीषह ते चर्यापरीषह छे. (९) स्वाध्याय करवाना स्थाननुं नाम नैषेधिकी छे तेवा रूपने जे परीषह ते नैषेधिकीपरीषह छे. (१०) वस्तीरूप परीषह शय्यापरीषह छे. (११) असभ्यभाषणु सहन करवुं ते आक्रोशपरीषह छे. (१२) ताडनरूप परीषह वधपरीषह छे. (१३) याचनारूप परीषह ते याचनापरीषह छे. (१४) अभिलषित वस्तुनी अप्राप्तिरूप परीषह ते अलाभपरीषह छे. (१५) वात, पित्त, कङ्कनी विषमताथी

॥ १५ ॥ रोगः=वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्येण समुत्पन्नः कुष्ठादिः, स एव परीषहो रोगपरीषहः ॥ १६ ॥ तृणस्पर्शः—दर्भादिस्पर्शः, स एव परीषहः तृणस्पर्शपरीषहः ॥ १७ ॥ जल्ल=मलः, स एव परीषहः जल्लपरीषहः ॥ १८ ॥ सत्कारो वस्त्रपात्रादिदानेन संमाननम्, पुरस्कारोऽभ्युत्थानासनप्रदानवन्दनादिसंपादनम्, तावेव परीषहः सत्कारपुरस्कारपरीषहः ॥ १९ ॥ प्रज्ञा=स्वयंविमर्शपूर्वको वस्तुपरिच्छेदः, सैव परीषहः प्रज्ञापरीषहः ॥ २० ॥ अज्ञानपरीषहः—ज्ञान=मत्यादि, तदभावस्तु अज्ञानम् तदेव परीषहः ॥ २१ ॥ दर्शनपरीषहः—दर्शनं=सम्यग्दर्शनं, तदेव क्रियादिवादिनां नानाविधमतश्रवणेऽपि निश्चलतया ध्रियमाणत्वात् सम्यक् परिषह्यमाणं सत् परिषहो भवति ॥ २२ ॥ ४ ॥

एवं श्रीसुधर्मा स्वामी परीषहाणां नामान्यभिधाय तेषां स्वरूपं वक्तुकामः प्राह—

मूलम्—परीसहाणं पविभंत्ती, कासवेणं पवेईया ।

तं भे उदाहरिस्सामि, आणुपुठिं व सुणेहं मे ॥१॥

कफ की विषमता से समुत्पन्न कुष्ठादिरूप परीषह रोगपरीषह है । १६। दर्भ आदि का स्पर्शरूप परीषह तृणस्पर्शपरीषह है । १७। मेल आदिरूप परीषह जल्लपरीषह है । १८। अन्यद्वारा वस्त्र, पात्र आदि के देने रूप सत्कार, एवं अभ्युत्थान, आसनप्रदान तथा वंदना आदि करने रूप पुरस्कार, इन दोनोंरूप परीषह सत्कारपुरस्कार परीषह है । १९। स्वयं विमर्शपूर्वक वस्तु के परिच्छेद करनेरूप परीषह प्रज्ञापरीषह है । २०। मत्यादिज्ञान के अभावरूप अज्ञानपरीषह है । २१। क्रियावादी आदि के अनेकविध सिद्धान्तों के श्रवण करने पर भी सम्यग्दर्शन को निश्चलरूप से धार रखने के परिषह का नाम दर्शनपरीषह है । २२॥

उत्पन्न थयेल कुष्ठादिइय परीषड रोगपरीषड छे. (१६) दर्भां आदिना स्पर्शइय परीषड तृणस्पर्शपरीषड छे. (१७) मेल आदिइय परीषड जल्लपरीषड छे. (१८) अन्यद्वारा वस्त्र, पात्र आदिना देवाइय सत्कार, अने अब्युत्थान, आसनप्रदान तथा वंदना आदि करवाइय पुरस्कार आ अन्ने इय परीषड सत्कार-पुरस्कारपरीषड छे. (१९) स्वयं विमर्शपूर्वक वस्तुने निष्पृथ-परिच्छेद करवाइय परीषड प्रज्ञापरीषड छे. (२०) मत्यादि ज्ञानना अभावइय परीषड अज्ञानपरीषड छे. (२१) क्रियावादी आदिना अनेकविध सिद्धान्तोने श्रवण करवाथी पणु सम्यग् दर्शनने निश्चय इपथी धारी राखवाना परीषडतुं नाम दर्शनपरीषड छे. ॥२२॥

छाया—परीषहाणां प्रविभक्तिः, काश्यपेन प्रवेदिता ।

तां युष्माकम् उदाहरिष्यामि, आनुपूर्व्यां शृणुत मे ॥ १ ॥

टीका—‘ परीसहाणं ’ इत्यादि ।

हे शिष्याः ! परीषहाणां प्रविभक्तिः=पृथक् पृथक् विभागः, काश्यपेन=काश्यपेन=गोत्रोत्पन्नेन, श्रीमहावीरवर्धमानस्वामिना प्रवेदिता, प्रकर्षेण बोधिता द्वादशपरिषदि, तां=परीषहाणां प्रविभक्तिम्, आनुपूर्व्यां=अनुक्रमेण, यथानिर्दिष्टक्रमेण युष्माकम् उदाहरिष्यामि=कथयिष्यामि, मे=मत्, मम सकाशात्, शृणुत=सावधानतया श्रवणगोचरी कुरुत । ‘ सुणेह ’—अत्र बहुवचनमादरार्थम् ॥ गा. १ ॥

इह सर्वेषु परीषहेषु क्षुधापरीषद् एव दुस्सहः । उक्तञ्च—

पथसमा नत्थि जरा, दारिद्रसमो य परिभवो नत्थि ।

मरणसमं नत्थि भयं, खुहासमा वेयणा नत्थि ॥ १ ॥

छाया—पथसमा नास्ति जरा, दारिद्र्यसमश्च परिभवो नास्ति ।

मरणसमं नास्ति भयं, क्षुधासमा वेदना नास्ति ॥ १ ॥ इति

इस प्रकार सुधर्मा स्वामी परीषहों के नामोंका कथन करके अब उनका प्रत्येक का स्वरूप प्रकट करते हैं—परीसहाणं—इत्यादि।

हे शिष्य ! ( परीसहाणं पविभक्ती—परीषहाणां प्रविभक्तिः ) परीषहों का यह पृथक् २ विभाग ( कासवेणं—काश्यपेन ) काश्यपगोत्रोत्पन्न श्री वर्धमान स्वामीने ( पवेइया—प्रवेदिता ) समवसरण में प्रकट किया है । मैं ( तं मे उदाहरिस्सामि—तां युष्माकं उदाहरिष्यामि ) उस परीषहों के पृथक् २ विभाग को तुम को कहूंगा ( मे आणुपुर्व्वि सुणेह—मे आनुपूर्व्यां शृणुत ) अतः मेरे से उस को यथा क्रम तुम सुनो । इन समस्त परीषहो में क्षुधापरीषद् ही दुस्सह है । कहा भी है—

आ प्रकारे सुधर्मा स्वामी परीषडोना नामोनुं कथन करीने हवे ते हरेकनुं स्वरूप प्रकट करे छे—परीसहाणं इत्यादि।

हे शिष्य ! ‘ परिसहाणं पविभक्ती ’—परीषहाणां प्रविभक्तिः परिषडोना प्रथक् प्रथक् विभाग कासवेणं पवेइया—काश्यपेन प्रवेदिता काश्यपगोत्रोत्पन्न श्री महावीर वर्धमान स्वामीने समवसरणुमां प्रकट करेद छे. तं मे उदाहरिस्सामि—तां युष्माकं उदाहरिष्यामि हुं अये परीषडोना प्रथक् प्रथक् विभाग तमोने कहीश. मे आणुपुर्व्वि सुणेह—मे आनुपूर्व्यां शृणुत आथी यथाक्रम तेने सांलणे. भाराथी आ समस्त परिषडोमां क्षुधा परिषद् हुंकर छे. कहुं छे के—



तस्मादादौ द्वाभ्यां गाथाभ्यां क्षुधापरीषद्द्वयं ग्राह—

मूलम्—दिग्निष्ठापरिगए देहे, तवस्सी भिक्खू थामंवं ।

नं छिंदे नं छिंदावए, नं पए नं पर्यावए ॥ २ ॥

छाया—क्षुधापरिगते देहे, तपस्वी भिक्षुः स्थामवान् ।

न छिन्द्यात् न छेदयेत्, न पचेत् न पाचयेत् ॥ २ ॥

टीका—‘दिग्निष्ठापरिगए०’ इत्यादि ।

तपस्वी=षष्ठाष्टमभक्तादितपोऽनुष्ठानवान् स्थामवान्=मनोबल समन्वितः, भिक्षुः=साधुः, देहे=शरीरे, क्षुधापरिगते=बुभुक्षया व्याप्ते सति, न छिन्द्यात्=फलादिकं स्वयं न चोटयेत्, न छेदयेत्=नाप्यन्यैः फलादीनां छेदनं कारयेदित्यर्थः, न पचेत्=स्वयं पाकं न कुर्यात्, न च पाचयेत्=अन्यैः पाकं न कारयेत् । इदमुपलक्षणम्—

पंथसमा नत्थि जरा, दारिद्र समो य परिभवो नत्थि ।

मरणसमं नत्थि भयं, खुहासमा वेयणा नत्थि ॥ १ ॥

मार्ग के समान जरा कोई नहीं है अर्थात्—निरन्तर चलनेवाला मार्ग गामी जराजनित दुःखों का अनुभव करता है । तथा दारिद्र्य के समान अन्य कोई भी परिभव—अर्थात् अनादर नहीं है, तात्पर्य यह है—अन्य गुण के रहने पर भी दारिद्र्य के अस्तित्व में मनुष्य अनादर पाता है । तथा—मरण के समान भय नहीं है और न क्षुधा से बढ़कर कोई वेदना है, अर्थात् मनुष्य मरण के भयसे जितना डरता है उतना अन्य से नहीं । तथा—क्षुधाजनित वेदना जितनी दुःखदायी होती है उतनी अन्य वेदना नहीं ॥ १ ॥

पंथसमा नत्थि जरा, दारिद्र्यसमो य परिभवो नत्थि ।

मरणसमं नत्थि भयं, खुहासमा वेयणा नत्थि ॥ १ ॥

मार्गना समान जरा कोई नहीं, अर्थात् निरन्तर आलवावाणा मार्गगामी जराजनित दुःखोंको अनुभव करे छे. तथा दारिद्र्यना जेवुं अन्य कोई पणु परिभव—अर्थात् अनादर नहीं. तात्पर्य ओ छे के, अन्य गुणना होवा छां दारिद्र्यना अस्तित्वमां माणुस अनादर पाये छे. तथा मरणना समान लय नहीं. अने क्षुधाथी वधु कोई वेदना नहीं. अर्थात् मनुष्य मरणना लयथी जेटलो डरे छे, जेटलो भीजथी नहीं डरतो, तथा—क्षुधाजनक वेदना जेटली असह्य होय छे, तेवी भीजुं कोई वेदना नहीं. ॥ १ ॥

अन्यं छिन्दन्तं पचन्तं वा नानुमोदयेत् । उपलक्षणत्वादेव-न स्वयं क्रीणीयात् ,  
नाप्यन्यैः क्रापयेत् , न चान्यं क्रीणन्तमनुमोदयेत् । न स्वयं हन्यात् , न चान्यै-  
र्घातयेत् , न चान्यं घ्नन्तमनुमोदयेत् । बुभुक्षया पीडितोऽपि नवकोटिशुद्धमेवाहारं  
गृहीयादिति भावः ॥ गा. २ ॥

क्षुधा से अधिक कोई वेदना नहीं है इस लिये सब से पहिले सूत्रकार  
प्रथम क्षुधापरिषह का जय कहते हैं—‘ दिग्गिच्छापरिगए ’—इत्यादि.

(तवस्सी-तपस्वी) षष्ठाष्टमभक्तादि तपोका अनुष्ठान करने वाला  
एवं (थामवं-स्थामवान्) मनोबल से समन्वित (भिक्षू-भिक्षुः)  
-साधु (देहे) शरीर (दिग्गिच्छापरिगए-क्षुधापरिगते) क्षुधा से  
व्याप्त होने पर भी (न छिंदे-न छिन्द्यात्) फलादिक को स्वयं छेदे  
नहीं-तोडे नहीं (न छिंदावए-न छेदयेत्) न दूसरों से तुडवावे (न पए  
न पयावए-नपचेत् न पाचयेत्) न स्वयं पकावे और न दूसरों से पक-  
वावे । उपलक्षण से (अन्यं छिन्दन्तं पचन्तं वा नानुमोदयेत्, न स्वयं  
क्रीणीयात् नाप्यन्यैः क्रापयेत् न चान्यं क्रीणन्तमनुमोदयेत्, न स्वयं  
हन्यात् त चान्यैर्घातयेत् न चान्यं घ्नन्तं अनुमोदयेत्) इन पदों का भी  
यहां संग्रह करलेना चाहिये, अर्थात् छेदन करने वाले तथा पकाने वाले  
व्यक्ति की अनुमोदना न करे, न स्वयं खरीदे न दूसरों से खरीदवावे  
और न खरीदने वाले की अनुमोदना करे, न स्वयं हणे न दूसरों से  
हणावे और न हणते हुए की अनुमोदना करे ।

क्षुधाथी अधिक डोई वेदना नथी, अेटला भाटे सूत्रकार सौथी पडेलां  
क्षुधा परीषडनेो जय करवा डडे छे. दिग्गिच्छापरिगए-इत्यादि.

तवस्सी-तपस्वी छष्ट अडुम भक्तादि तपोनुं अनुष्ठान करवावाणी तथा  
थामवं-स्थामवान् अने मनोबलथी समन्वीत भिक्षू-भिक्षुः भिक्षु-साधु दिग्गिच्छा  
परिगए-क्षुधापरिगते शरीरे भूषथी व्याकुण डोवा छतां पथु न छिंदे-न छिन्द्यात्  
इण इणादिकने स्वयं छेदवुं नडि, तोडवुं नडि, न छिंदावए-न छेदयेत् भीलथी  
तोडाववुं नडि. नपए न पयावए-नपचेत् न पाचयेत् न स्वयं पकावे, अने न  
भीलथी पकावे. उपलक्षणथी अन्यं छिन्दन्तं पचन्तं वा नानुमोदयेत् छेदन कर-  
वावाणी तथा पकवावाणी व्यक्तितनी अनुमोदना न करे न स्वयं क्रीणीयात् नान्यैः  
क्रापयेत् न चान्यं क्रीणन्तमनुमोदयेत् न स्वयं खरीदे न भीलथी खरीदावे डे  
न तेनी अनुमोदना करे. न स्वयं हन्यात् न चान्यैर्घातयेत् न चान्यं घ्नन्तमनुमोदयेत्  
न स्वयं डडु, न डोईथी डडुवावे डे न तेनी अनुमोदना करे.

किञ्च —

मूलम्—कालीपर्वसंकासे, किंसे धमणिसंतए ।

मायन्ने असणपाणस्स, अदीणमणसो चरे ॥३॥

छाया—कालीपर्वसंकाशाङ्गः, कृशः धमनिसंततः ।

मात्रज्ञः अशनपानस्य, अदीनमनाश्चरेत् ॥ ३ ॥

टीका—‘ कालीपर्वसंकाशाङ्ग० ’ इत्यादि ।

कालीपर्वसंकाशाङ्गः—काली=काकजङ्घा वनस्पति, तस्याः पर्वाणि मध्ये तनूनि, अन्त्ये स्थूलानि भवन्ति तत्संकाशानि=तत्सदृशानि बाहुजङ्घादीन्यङ्गानि यस्य स तथा, यस्य साधोस्तपश्चर्यया जानुर्कूर्परादयोऽवयवाः काकजङ्घावत् प्रतलाः सन्ति स इत्यर्थः। अत एव कृशः=कृशशरीरः, धमनिसंततः=धमनिभिः नाडीभिः संततः=व्याप्तः शोणितमांसादीनां शुष्कतया दृश्यमाननाडीयुक्त इत्यर्थः। तथा—अशनपानस्य=अशनम्=ओदनरोटिकादि, पानं=दुग्धादि, तयोः समाहारः अशनपानं, तस्य, मात्रज्ञः=परिमाणज्ञानसम्पन्नः। यावताऽऽहारेण स्वकीयोदरपूरणं भवेत् तावत्प्रमाणमेवाहारं गृह्णाति, न तु रसास्वादादिषोभादधिकं गृह्णातीति भावः। तथा—अदीनमनाः

तात्पर्य यह है कि साधु को भूखसे पीड़ित होने पर भी नवकोटि से विशुद्ध आहार ग्रहण करना चाहिये ॥ २ ॥

फिर भी—‘ कालीपर्वसंकाशाङ्ग० ’—इत्यादि ।

( कालीपर्वसंकासे—कालीपर्वाङ्गसंकाशः ) काली—काकजंघा (वनस्पति विशेष)के पर्व जैसे अंगवाला अत एव (किसे—कृशः) कृशशरीरयुक्त, ( धमणिसंतए—धमनिसंततः) नसाजाल से व्याप्त, एवं ( असणपाणस्स मायन्ने—अशनपानस्य मात्रज्ञः) अशन पान की मात्रा का ज्ञाता साधु

तात्पर्य आ छे के, साधुअे लूअथी पिडित होवा छतां पणु नवप्रकारना विशुद्ध आहारने अ ग्रहण करवे लेअये. ॥ गा. २ ॥

इरी पणु कडे छे. कालिपर्वसंकाशाङ्ग० इत्यादि.

कालिपर्वसंकासे—कालीपर्वाङ्ग संकाशः काली—काकजंघाना पर्व लेवा अंगवाला अतयेव किसे—कृशः कृश शरीरयुक्त, धमणिसंतए—धमनिसंततः नसाजालथी व्याप्त अने असणपाणस्स मायन्ने—अशनपानस्य मात्रज्ञः अशन पाननी मात्राणा ज्ञाता साधु अदीणमणसो—अदीनमनाः अदीन मन अनी संयमना भागभां

=अव्याकुलचित्तः, अशनादेरप्राप्तौ दैन्यं विषादं च न कुर्वन्नित्यर्थः, चरेत्=संयममार्गे विचरेत् । प्राकृतत्वात्-‘संकास’ इति विशेषणस्य परनिपातः ।

( अदीणमणसो-अदीनमनाः ) आदीनमन होकर संयम के मार्ग में ( चरे-चरेत् ) विचरण करे।

भावार्थ-विशिष्ट तपस्याओं के अनुष्ठान करते २ जिसके शारीरिक अवयव काक की जंघा के पर्व समान बीच में पतले तथा अन्त में स्थूल हो गये हैं, और इससे जिसका शरीर अत्यंत कृश हो गया है, तथा शरीर में कृशता होने की वजह से ही जिसके शरीर के नसाजाल स्पष्ट दिखलाई दे रहा है ऐसा साधु इतना ही आहार ग्रहण करे की जिन से संयमयात्राका निर्वाह हो सके ! रसास्वाद के लोभ से अधिक आहार न लेवे । तथा जिस समय तपस्या का पारणा करने का अवसर आवे उस समय यदि आहार प्राप्त न हो तो भी चित्त में किसी भी प्रकार का विषाद न करे और संयममार्ग में सदा सावधान बने रहने की चेष्टा करता रहे । काक की जंघा के पर्व बीच में पतले एवं अन्त में स्थूल होते हैं, तपस्या करते २ साधु के भी जंघा आदि अंग इसी तरह हो जाते हैं ।

चरे-चरेत् विचरन् करे.

भावार्थ—विशिष्ट तपस्याओं अनुष्ठान करतां करतां जेनां शारीरिक अवयव काकनी जंघाना पर्व समान वयमां पातणा तथा अंतमां स्थूल थछ गयेल डोय अने तेनाथी जेनुं शरीर अत्यंत कृश थछ गयेल डोय तथा शरीरमां कृषता आवी जवाना कारणे जेना शरीरनी नाडीओ स्पष्ट देखाछ आवे छे, जेवा साधु जेटले ज आहार ग्रहण करे के, जेनाथी संयम मार्गना निर्वाह थछ शके. रस स्वादना लोभथी अधिक आहार न ले. तथा जे समय तपस्यानुं पारणुं करवाने समय आवे ते वधते कदाच आहार न भणी शके तो पणु चित्तमां केछ पणु प्रकारने विषाद न करे अने संयम मार्गमां सदा सावधान जनी रहेवानी चेष्टा करता रहे. काकनी जंघानुं पर्व वयमां पातणुं अने छेडे स्थूल डोय छे, तपस्या करतां करतां साधुनी जंघा आदि अंग आ प्रकारनां थछ जय छे.

अत्र क्षुधापरीषहविजये दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

आसीदुज्जयिन्यां गजमित्रनामा श्रेष्ठी । तस्य दृढवीर्यनामकः पुत्रोऽभवत् । एकदा गजमित्रश्रेष्ठिनो भार्या मृता । ततः संसारासारतां विज्ञाय संजातवैराग्योऽसौ दृढवीर्यपुत्रेण सह प्रव्रजितः । स च गजमित्रमुनिः स्व शिष्येण दृढवीर्येण सह ग्रामानुग्रामं विचरंस्तत्र तत्र धर्मदेशनां कुर्वन् संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति । स चैकदा विहारं कुर्वन् विस्मृतमार्गः सन् महारण्यं प्रविष्टः ।

तत्र क्वचिन्मृगाणां यूथा इतस्ततो धावन्ति । क्वचिज्जम्बूकाः स्वपरिवारैः सह शब्दायन्ते । क्वचिद् व्याघ्रा उत्प्लवन्ति । क्वचित् सिंहा गर्जन्ति, येषां नादानुपश्रुत्य

क्षुधापरीषह के विजय करने में दृष्टान्त इस प्रकार है—उज्जैनी नगरी में गजमित्र नामका एक सेठ रहता था। उसका एक पुत्र था जिसका नाम दृढवीर्य था। एक समय की बात है कि सेठ की पत्नी का देहान्त हो गया। इससे सेठ को संसार, शरीर एवं भोगों से विरक्ति आ गई और अपने पुत्र के साथ उन्होंने दीक्षा धारण कर ली। साधुचर्या की विधि के अनुसार सशिष्य वे विहार करने लगे। वे जनता को धर्म के उपदेश से वासित करते और संयम एवं तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए ग्रामानुग्राम विचरते थे। एक समय की बात है कि ये विहार में मार्ग भूल गये और भयंकर किसी अटवी में जा पहुँचे। वहाँ पहुँच कर ये देखते क्या हैं कि कहीं पर इधर उधर मृगों का झुण्ड दौड़ रहा है, कहीं पर श्रृंगाल फिक्कार कर रहे हैं

क्षुधा परिषदने लतवानी उपर दृष्टान्त आ प्रकारे छे—

उज्जैनी नगरीमां गजमित्र नामने। अेक शेठ रहेतो डते। तेने अेक पुत्र डते। तेनुं नाम दृढवीर्यं डतुं। अेक समयनी वात छे के, शेठनी पत्नीने। देहान्त थर गये। तेथी शेठने संसार शरीर अने लोभोथी विरक्ति आवी गध अने पोताना पुत्रनी साथे तेणे दीक्षा ग्रहण करी लीधी। साधु चर्यानी विधी अनुसार सशिष्य तेणे विहार करवा लाग्या। तेणे जनताने धर्मने उपदेश आपतां आपतां संयम अने तपथी पोताना आत्माने भावित करता ग्रामानुग्राम विचरवा लाग्या। अेक समयनी वात छे के विहारमां अे मुनिराज मार्ग भूली गया अने भयंकर जंगलमां जध पडोय्या। त्यां पडोय्यतां तेभणे अेबुं लोभुं के, ल्यां त्यां मृगोनां टोणां दौडी रद्यां छे, कयांक शियाणयां लाणी करी रद्यां छे, वाघ धुमी रद्यां छे, सिंड गल्ल रद्यां छे, कयांक सिंडगजर्नना लयथी

उ० ३६

क्वचिद्भयभीताश्चकिता हस्तिनः पलायन्ते । क्वचिच्च विषमविषधरा भयंकराः फणिनः स्वकीयविस्वृतफणाटोपमुत्थाप्य समुत्तिष्ठन्ति । तथा बृहद्विषाणधारिणः स्थूलकायाः श्यामवर्गा महिषाः क्वचित् सजलपङ्किले गर्ते शरीरपरिवर्तनेन पङ्कलिस-  
देहाः सन्ति । क्वचित् तथैव सूकराणां यूथाः परिभ्रमन्ति । क्वचिद्धानराः क्वचिद् ऋक्षा अत्युत्प्लवन्ति । लतावल्लीसमावृता निबिडच्छाया विटपिनः परितः समुल्ल-  
सन्ति । क्वचिन्नानाविधानि निकुञ्जानि भवनानीव विलसन्ति । क्वचित् कण्टकिनो वृक्षाः परितः परस्परं लतावितानैरुद्ग्रथिताः सन्ति, येषां कण्टका इतस्ततो वि-  
कीर्णाः सन्ति । एवं बहुर्द्विससंकुला कुशकाशादितृणपरिपूर्णा निम्नोन्नता कण्ट-  
किता जनानां दुर्गमा वनस्थली वर्तते ।

कहीं पर व्याघ्र घूम रहे हैं, कहीं पर सिंह गर्ज रहे हैं, कहीं पर सिंह की गर्जना को सुनकर भय से त्रस्त गजराज चिंघार करते हुए इधर उधर भागे फिर रहे हैं, कहीं पर विषम विषधर सर्प अपने फणों को ऊपर उठाकर बैठे हुए हैं, कहीं पर जंगली भैंसे कि जिनका शरीर बिलकुल काला है, तथा सींग भी जिनके बड़े २ हैं और जो शरीर में विशेष स्थूल हैं, सजलगर्तमें कि जिसमें कादव हो रहा है अपने शरीर को इधर से उधर करते हुए कीचड़ से लिस बने हुए हैं। इसी तरह कहीं २ शूकरों का यूथ भी इधर उधर भाग रहा है। कहीं २ पर बानर और कहीं पर ऋक्ष-रींछ-उछलकूद कर रहे हैं। इस बन में चारों ओर लताओं से वेष्टित बहुत गहरी छाया वाले वृक्षों के झुंड हैं। कहीं २ पर वृक्षों का झुंड ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे मानो मकान ही खड़े हुए हैं। कहीं २ पर कांटेदार वृक्ष कि जिनके कांटे इधर

त्रासीने ङाथी चिंकार करतां अहिं तहिं नासलाग करी रह्या छे, कयांक विषम विषधरो पोतानी झुणोने ङंथी करीने भेडा छे, कयांक जंगली भैंसे के जेनां शरीर अेकदम काणां छे अने जेनां शींग लांभां छे अने शरीर जेनां अलभस्त छे ते जणथी लरेला भाडाओभां जेभां कादव लरेल छे तेभां आणेटी पोताना शरीरने कीचडथी भरडावी रडेल छे, आनी रीते दुकरेनां जुथो पणु अहिं तहिं लागतां नजरे पडे छे, कयांक कयांक वानर अने रींछ कुढाकुढ करतां हेभाय छे. अे जंगल यारे तरङ्गथी भोटां वृक्षा अने तेनी डाणीयो तथा अन्य वेला पानथी छवार्थ रडेल छे, कोर्ध वृक्षनां जुंड अेवां अरसपरस भणी गयां हेभाय छे के लणु तेनी नीचे भजान जेपुं अनी गयेल छे, कोर्ध स्थणें डांटावाणां वृक्षोथी तेना डाटा जभीन उपर न्यां त्यां पडया छे, वेला-



तत्र वने गच्छतस्तस्य गजमित्रमुनेश्चरणतलं विषमविषभरेण कण्टकोप्रेण विद्ध-  
मभवत् । ततो गन्तुमसमर्थोऽसौ निजायुरल्पमवगम्य चतुर्विधाहारस्य प्रत्याख्यानं  
कर्तुमुद्यतः सन् शिष्यमवदत्-इतोऽन्यत्र गम्यताम् , अत्र दुःसहः खलु क्षुधापरीषह-  
स्तव सोढव्यः स्यात् । शिष्योऽवदत्-भदन्त ! यथा छाया शरीरं विहाय नापस-  
रति, तथाऽहमपि भवदीयचरणयुगलं परित्यज्य नैव गमिष्यामि । इत्युक्त्वाऽसौ

उधर फैले हुए हैं, लताप्रतानों द्वारा ग्रथित होकर एक जैसे बन गये हैं ।  
इस प्रकार यह अटवी अनेक हिंसक जीवों से परिपूर्ण होती हुई जनों  
के लिये सर्वथा दुर्गम थी । कुश काश आदि घास से भरे हुए रहने के  
कारण यहां के मार्ग बड़े ही विकट बने हुए थे । यहां की भूमि ऊंची नीची  
और कांटों से व्याप्त थी ।

इस अटवीमें चलते हुए गजमित्र मुनिराज के पैरों में विषम  
वेदना कारक विषैले कांटे चुमने लगे तथा उनके पैरों के तलिये  
कांटों से विंध गये, इससे ये आगे विहार नहीं कर सके । इन्होंने उस  
समय अपनी अवशिष्ट आयु बहुत अल्प जानकर चतुर्विध आहार के  
परित्याग करने के अभिप्राय से अपने शिष्य से कहा—तुम यहां से  
किसी दूसरी जगह चलेजाओ नहीं तो यहां पर मेरे साथ रहने से  
तीव्र क्षुधापरीषह तुम्हें सहन करना पड़ेगा । गुरुकी इस बात को सुनकर  
शिष्यने कहा, भदन्त ! जिस प्रकार छाया वृक्ष को नहीं छोड़ती है उसी  
तरह मैं भी आप के चरणकमलों को छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकता ।

ओथी आ अधां वृक्षे ओकृप अनी गयां देभाय छे, आ प्रकारे ते जंगल  
अनेक डिंसक ओवोथी परिपूर्णः इतुं, भाषुसो भाटे दरेक रीते लयकारक इतुं,  
जमीन उपर उगेलां घास वगेरेने कारणे केरि सरण मार्ग देभातो नथी, भूमि  
उंचीनीथी अने कांटाथी लरेदी इती.

आ जंगलमां यावतां यावतां गजमित्र मुनिराजना पगोमां धषी  
वेदना उपलवे तेवा कांटा लागवा लाग्या आथी तेना पगोनां तणीयां कांटाथी  
विंधाई गयां ओथी ते आगण विहार करी शक्यां नडीं तेमणे ते समय पोतानी  
आकी रडेल आयु धषी टुंकी न्णुथीने आर प्रकारना आहारने त्याग करवाना  
लावथी पोताना शिष्यने कहुं, तमे अडिंथी केरि अन्य स्थणे विहार करे, आ  
स्थणे मारी साथे रडेवाथी तमारि भूषने तीव्र परिषड सहन करवे पडथे,  
गुरुनी आ वातने सांलणीने शिष्ये कहुं-भदन्त ! जे प्रकारे छाया वृक्षने छोडती  
नथी तेवी रीते हुं पणु आपना अरणु कभणने छोडीने अन्यत्र जई शकतो नथी.

तत्रैव निवसति स्म । गुरुश्च चतुर्विधाहारस्य प्रत्याख्यानं कृतवान् । स च शिष्यः स्वगुरुं परितस्तदङ्गरक्षणार्थं परिभ्रमंस्तिष्ठति, तत्र विविधेषु मनोज्ञेषु रुचिरेषु फलेषु सत्स्वपि न तानि त्रोटयितुमिच्छति, वृक्षाधस्तले पतितान्यपि फलानि सचित्ततया केनाप्यदत्ततया च नैव गृह्णाति । आहारार्थं किञ्चिद्गुरुं गत्वा गत्वा प्रतिनिवर्तते । वसतेरभावात् क्वचिदाहारो न लभ्यते । मार्गस्य दुर्गमतया कश्चित् पथिकोऽपि नायाति, यस्मादशनं गृह्णीयात् । पुनरुज्ज्वलभावेन गुरोर्वैयावृत्त्यं करोति । यद्यपि तदा क्षुधाया बलं वर्धमानमात्मनः प्रतिप्रदेशं व्याप्तुं प्रवर्तते । यतः—

शिष्य की इस प्रकार बात को सुनकर गुरु महाराज ने चारों प्रकार के आहार का परित्याग कर दिया । शिष्य ने इस परिस्थिति में अपने गुरु महाराज की सेवा करना प्रारंभ कर दिया । उस अटवी में यद्यपि अनेक प्रकार के मनोज्ञ सरस फल थे तौ भी उन्हें तोड़ने का शिष्य ने स्वप्न में भी विचार नहीं किया । वृक्षों के नीचे टूटे हुए फल पड़े रहते थे उनको भी सचित्त होने की वजह से ग्रहण नहीं किया । तथा किसी २ फल के अचित्त होने पर भी दाता के अभाव से वे अदत्त होने से नहीं लिये । शिष्य आहार के लिये जाता है और कुछ दूर जा जाकर पीछे वापिस लौट आता है, क्यों कि एक तो वहां वसति नहीं थी, इस लिये वहां आहार का कोई जोग नहीं मिलता था । दूसरे—मार्ग अत्यंत दुर्गम होने से उस रास्ते कोई भी पथिक प्रायः नहीं आता जाता था । परन्तु शिष्य अनन्य भाव से गुरु की सेवा करता था । क्षुधा एक ऐसी वस्तु है कि

शिष्यनी आ प्रकारनी बात सांभलीने गुरु महाराजे चार प्रकारना आहारना त्याग करी दीधो. शिष्ये आ परिस्थितिमां पोताना गुरु महाराजनी सेवा करवानो प्रारंभ कर्यो. ते जंगलमां जे के, अनेक प्रकारनां सुंदर अने स्वादिष्ट अेवां इणो उतां तो पणु तेने तोडवानो शिष्ये स्वप्नामां पणु विचार न कर्यो. वृक्षोनी नीचे तूटीने पडेवां जे इण देखातां तेने पणु सचित्त भानीने अडणु क्यो नडीं तथा केध केध इण अचित्त होवा छतां आपनारना अभावथी ते अदत्त होवाथी लीधां नडीं. शिष्य आहार भाटे जतो अने थोडे इर जठ त्यांथी पाछे इरी आवतो केभके, अेक तो त्यां वस्ती उती नडीं. भाटे त्यां आहारना केध जोग भणतो न उतो, भीजुं मार्ग अत्यंत दुर्गम होवाथी ते रस्ते केध पणु वटेभागु आवतो जतो न उतो. परंतु शिष्य अनन्य भावथी गुरुनी सेवा करतो उतो. भूप अेक अेवी वस्तु छे के जे आत्मानी

या सा रूपविनाशिनी स्मृतिहरी पञ्चेन्द्रियाकर्षिणी,  
चक्षुःश्रोत्रललाटदीनकरणी संक्लेशसंपादिनी ।  
बन्धूनां त्यजनी विदेशगमनी धैर्यस्य विध्वंसिनी,  
सेयं तिष्ठति सर्वभूतदमनी प्राणापहारिक्षुधा ॥ १ ॥

अपरं च—

विवेको ह्रीर्दया धर्मो, विद्या स्नेहश्च सौम्यता ।

सत्त्वं च जायते नैव, क्षुधार्तस्य शरीरिणः ॥ २ ॥ इति ॥

तथापि स दृढवीर्यशिष्यः कस्मिन्नपि निजात्मप्रदेशे कातरतां नाश्रयति किं

जो आत्माके प्रतिप्रदेशमें व्याप्त होकर अपना प्रबल प्रताप दिखलाती है, जैसे कहा भी है—

यह क्षुधा रूप को विनष्ट कर देती है, स्मृति को ध्वस्त कर देती है, पांचों इन्द्रियों की शक्ति का हास कर देती है, चक्षु में श्रोत्र में एवं ललाट में दिनता के निशानें बना देती हैं संक्लेश परिणामों को जागृत करती रहती है, बन्धुओं का वियोग करा देती है, विदेश में वास करा देती है, धैर्य को जडमूल से उखाड़ देती है, अधिक क्या कहा जाय यह क्षुधा प्राणियों के प्राण का भी हरण करने वाली है ॥ १ ॥

और भी कहा है—क्षुधार्त्त प्राणी के विवेक, लज्जा, दया, धर्म, विद्या स्नेह, सौम्यता, बल आदि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

मुनि दृढवीर्य शिष्य की आत्मा के प्रतिप्रदेश में यद्यपि क्षुधा की तीव्र वेदना जागृत हो रही थी तो भी वह कभी भी कायर नहीं बना ।

અંદરના ભાગમાં પ્રવેશ કરીને પોતાનો પ્રબળ પ્રભાવ બતાવે છે. કહ્યું પણ છે—

આ ભૂખ રૂપનો નાશ કરે છે, સ્મૃતિનો ધ્વંસ કરે છે, પાંચ ઇન્દ્રિયની શક્તિઓને ક્ષિણ બનાવી દે છે, આંખ, કાન અને કપાળમાં દિનતાની નિશાની જગાડે છે. કલેશના પરિણામોને જાગૃત કરે છે, બંધુઓનો વિયોગ કરાવે છે, વિદેશમાં વાસ કરાવે છે, ધૈર્યને જડમુળથી ઉખેડી નાખે છે, છેલ્લે છેલ્લે આ ભૂખ પ્રાણીઓના પ્રાણોત્તું પણ હરણ કરે છે. ॥ ૧ ॥

ફરી પણ કહ્યું છે ભૂખથી પીડાતા પ્રાણીમાં વિવેક, લજ્જા, દયા, ધર્મ વિદ્યા, સ્નેહ, સૌમ્યતા, બળ, આદિ સઘળા સદ્ગુણો નાશ પામે છે. ॥ ૨ ॥

મુનિ દૃઢવીર્ય શિષ્યના આત્માના ઉંડાણમાં જો કે, ભૂખની તીવ્ર વેદના થઈ હતી તો પણ કોઈ વખત કાયર ન બન્યો. પોતાના

तु कर्मनिर्जरार्थं क्षुधापरीषहं विजित्य गुरुसेवापरायण एवासीत् । ततो गजमित्र-  
मुनिः कण्टकजनितामसहवेदनां सहमानः समाधिभावेन निजायुः समाप्य प्रथम-  
कल्पे वैमानिकदेवत्वं प्राप्तः । अथासौ देवः स्वकीयपूर्वभवमवधिना विज्ञाय,  
स्वदिव्यशक्त्या शिष्यरक्षार्थं तत्समीपप्रदेशे वसतिं निर्माय स्वयं मनुष्यरूपः सन्  
दृढवीर्यशिष्यं प्राह—मुने ! इतः समीपे वसतिर्दृश्यते, अशनपानमानीयताम् ।  
शिष्यो वदति—अयमस्ति कश्चिद्देवप्रपञ्चः, इह हि नासौत् पुरा कापि वसतिः, भूमि-

अपने वीर्योल्लास से उसने इस परीषह को खूब सहन किया ।  
और गुरु महाराज की सेवा भक्ति की, क्यों कि शिष्य को यह पूर्ण-  
श्रद्धा थी कि कर्मनिर्जरा के लिये क्षुधापरीषह को सहन करना ही  
चाहिये। पैर में लगे हुए कांटे की असह्य वेदना प्रतिक्षण बढ़ने लगी,  
अपनी आयु के अन्त समयमें समाधिभाव से कालधर्म को प्राप्त होकर  
प्रथमकल्प में वैमानिक देव हुए । इन्होंने देव की पर्याय में अपने पूर्वभव  
को अवधिज्ञान से जानकर अपने शिष्य की प्राणरक्षा निमित्त दिव्यशक्ति  
से उसके समीप प्रदेश में एक वसति का निर्माण किया और स्वयं  
मनुष्य के रूप में प्रकट होकर शिष्य से कहने लगे कि यहां से नजदीक  
ही एक वसति दिखाइ देती है अतः वहां से आप आहार पानी ले आइये ।  
देव की इस प्रकार बात को सुनकर शिष्य ने चित्त में विचार किया—यह  
कोई देव छलना करता है । मैं पहिले यहां कई बार आया हूं परन्तु  
मुझे तो कोई वसति नजर नहीं आई, इसलिये यहां से आहार पानी

विद्येद्विज्ञासथी तेषु आ परीषडने भूष सडन कुर्ये अने गुरु भडाराजनी  
सेवा लक्षित करी. केभके, शिष्यने अने पूषुं श्रद्धा डती के, कर्मनिर्जरा  
भाटे क्षुधा परिषड सडन करवो लोभये. पगमां लागेला कंटाओनी वेदना  
रोज भरोज वधवा लागी, पोताना आयुना अंतसमयमां समाधीलावथी गुरुज  
काण धर्मने पामी प्रथम कल्पमां वैमानिक देव अन्या. तेओअने देवनी पर्या-  
यमां पोताना पुर्वभवने अवधिज्ञानथी लणीने पोताना शिष्यनी प्राणरक्षा  
निमित्त दिव्य शक्तिथी तेना समीपप्रदेशमां अेक वस्तितुं निर्माषु कुरुं अने  
पोते मनुष्यना रूपमां प्रगट अननीने शिष्यने कडेवा लाग्या के, अडिंथी नजुड  
ज अेक वस्ति देभाय छे भाटे त्यांथी तमे आडार पाषी लड आवो, देवनी  
आ प्रकारनी वातने सांलणीने शिष्ये चित्तमां विचार कुर्ये के, आ कोड देव  
भारी छलना करे छे. हुं पडेलां डेटलीअे वअत गयो छुं परंतु भने कोड  
वस्ती देभाड नथी, भाटे त्यांथी आडार पाषी लाववो उचित नथी. शिष्यनी आ

रत्रत्या प्रागेव दृष्टाऽस्माभिः, अतोऽत्राशनपानं न ग्रहीष्यामि । ततोऽसौ प्रसन्नमनसा साक्षाद्देवरूपं धृत्वा दृढवीर्यमुनिं प्रशंसति-धन्योऽसि दृढव्रतोऽसि ' इत्यादि । पुनरसौ दृढवीर्यमुनिर्दुःसहं क्षुधापरीषहं सहमानः क्षपकश्रेणीमारुह्य प्रशस्तध्यानेन शुभाध्यवसायेन केवलज्ञानं प्राप्य मोक्षं प्राप्तवान् । स च देवस्तस्य केवलोत्सवं निर्वाणोत्सवं च कृत्वा स्वस्थानं गतः । एवं सर्वैर्मुनिभिरपि दृढवीर्यमुनिवत् क्षुधापरीषहः सोढव्यः ॥ ३ ॥

क्षुधां सहमानस्यैषणीयाहारार्थं भिक्षाचर्यां पर्यटतो मुनेर्यदि श्रमादिजनिता पिपासा स्यात्तर्हि साऽपि सोढव्येत्याशयेन पिपासापरीषहजयं ग्राह—

मूलम्—तओ पुँट्टो पिवासांए, दोँगुँच्छी लज्जसंजए ।

सीओदगं नँ सेविज्जा, विर्यडस्सेसंणं चरे ॥ ४ ॥

ग्रहण करना उचित नहीं है। शिष्य की इस प्रकार दृढ विचारधारा को देखकर वह देव बहुत ही प्रसन्न हुआ और साक्षात् रूप में प्रकट होकर शिष्य की बहुत प्रशंसा करने लगा, बोला—आप धन्य हैं व्रत के पालन करने में अतीव दृढप्रतिज्ञ हैं। शिष्य ने दुःसह क्षुधापरीषह को सहन करने से क्षपकश्रेणी पर आरूढ होकर प्रशस्त-ध्यान एवं शुभाध्यवसाय के बल पर केवलज्ञान का लाभ कर मोक्ष को प्राप्त किया। इनके गुरु महाराज का जीव जो देव था उसने अपने पूर्वपर्याय के शिष्य को प्राप्त हुए केवलज्ञान के एवं निर्वाण के उत्सव को मनाकर अपने स्थान गया। इसी तरह प्रत्येक मुनिका कर्तव्य है कि वह दृढवीर्यमुनि की तरह क्षुधापरीषह को सहन करे ॥ ३ ॥

प्रकारनी दृढ धारणा जेधने ते देवने लव भूषण प्रसन्न थये. अने प्रगट थधने शिष्यनी भूष प्रसंशा करवा लाज्या. तेमणे कहुँ—आपने धन्यवाद छे, व्रतनुं पालन करवाभां दृढ प्रतिज्ञ छे. शिष्ये दुःसह भूषणे परिषह सहन करवाथी क्षपकश्रेणी उपर आरूढ अनी प्रशस्त ध्यान अने शुभ अध्यवसायना अण उपर केवलज्ञानने लाभ करी मोक्षने प्राप्त कर्यो. देव के जे तेना गुरु महाशयने लव इतो तेणे पोताना पूर्व पर्यायना शिष्यने प्राप्त थयेल केवलज्ञानना अने निर्वाणना उत्सवने मनावीने पोताने स्थाने गया. आवी रीते प्रत्येक मुनितुं कर्तव्य छे के, ते दृढवीर्य मुनिनी भाइक क्षुधा परिषहने सहन करे. ॥ ३ ॥

छाया—ततः स्पृष्टः पिपासया, जुगुप्सी लज्जासंयतः ।

शीतोदकं न सेवेत विकृतस्य एषणां चरेत् ॥ ४ ॥

टीका—‘ तओ पुट्टो ’ इत्यादि ।

ततः=क्षुधापरीषहानन्तरं, पिपासया=तृषया, स्पृष्टः=व्याप्तः सन्, जुगुप्सी =जुगुप्सकः अनाचारविरत इत्यर्थे तथा—लज्जासंयतः—लज्जायां=संयमे सम्यग् यत्नवानित्यर्थः । साधुः शीतोदकं=सचित्तं जलं ‘ न सेवेत ’ न व्यापृणुयात् किं तु विकृतस्य=यवतण्डुलद्राक्षादिधावनोत्कालनादिना वर्णगन्धरसस्पर्शैरन्यथाभावं प्राप्तस्य प्रासुकस्य जलस्य, प्रासुकजलं त्वेकविंशतिविधं भवतीत्याचाराङ्गसूत्रे द्वितीयश्रुतस्कन्धे नवमाध्ययने निगदितम्—

क्षुधापरीषह को सहन करने वाला मुनि को आहार की गवेषणा करते हुए पिपासा लगे, तथा अहार करने के बाद पिपासा लगे तो उसको सहन करना चाहिये, इस आशय से अब सूत्रकार पिपासापरीषह को कहते हैं—“ तओ पुट्टो ” इत्यादि ।

(तओ—ततः) क्षुधापरीषह के अनन्तर (पिपासाए पुट्टो—पिपासया—स्पृष्टः) पिपासा से व्याप्त होने पर भी (दोगुंच्छी—जुगुप्सी) अनाचार-विरत तथा (लज्जासंयत—लज्जासंयतः) संयम की रक्षा करने में प्रयत्न-शील साधु (सीओदकं न सेवेत—शीतोदकं न सेवेत) सचित्त जल का सेवन नहीं करे । किन्तु (वियडस्सेसणं चरे—विकृतस्य एषणां चरेत्) विकृत—यव, तण्डुल, एवं द्राक्षा आदि के घोने से अथवा उनके उकालने से जिनके वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्श का परिवर्तन हो चुका है ऐसे प्रासुक जल की गवेषणा करे । तात्पर्य यह है कि पिपासा से पीड़ित होने

क्षुधा परिषद सहन करने वाले मुनिने आहार कर्या पछी तरस लागे तेने सहन करवी जेध अथवा आशयथी सूत्रकार पिपासा परिषद कहे छे. तओ पुट्टो—इत्यादि.

तओ—ततः क्षुधा परिषदना अनन्तर पिपासाए पुट्टो—पिपासयास्पृष्टः तरसथी व्यापृत होवा छतां अनाचार विरत तथा दोगुंच्छी—जुगुप्सी अनाचार विरत तथा लज्जासंयत—लज्जासंयतः संयमनी रक्षा करवाभां प्रयत्नशील साधु सीओदकं न सेवेत—शीतोदकं न सेवेत सचित्त जलतुं सेवन न करे. किंतु वियडस्सेसणं चरे—विकृतस्य एषणां चरेत् विकृत (अचित्त)—जव, योभा, द्राक्ष वर्गेरेना धावाथी अथवा अने उकाणवाथी तेना वर्ण, गंध, रस तथा स्पर्शतुं परिवर्तन थध युक्तुं छे अथवा प्रासुक जलनी गवेषणा करे. तात्पर्य अथ छे के, तरसथी पीडाता होवा छतां पछु साधुअथ सचित्त अनेषणीय



- (१) उस्सेइमं-उत्स्वेदिमं-पिष्टोत्स्वेदनार्थमुदकम् । रोटिकायां कृतायां येनोदकेन पिष्टस्थाल्यादिधावनं क्रियते तदित्यर्थः ।
- (२) संसेइमं-संसेकिमं-उत्कालितानां पत्रशाकादीनामनपगततित्तादिरसापसारणार्थं शैत्यार्थं वा येनोदकेन धावनं क्रियते, तदित्यर्थः ।
- (३) चाउलोदगं-तण्डुलोदकं-तण्डुलधावनोदकम् ।
- (४) तिलोदगं-तिलोदकं-तिलधावनोदकम् ।
- (५) तुसोदगं-तुषोदकं-तुषधावनोदकम् ।
- (६) जवोदगं-यवोदकं-यवधावनोदकम्, अत्र 'यव' इत्युपलक्षणं तेन ब्रीह्यादिधावनोदकस्यापि ग्रहणम् ।

पर भी साधु को चाहिये कि वह कभी भी सचित्त अनेषणीय जल का उपयोग न करे। प्रासुक जल इक्कीस २१ प्रकार का होता है यह बात आचारांगसूत्र में द्वितीय श्रुतस्कन्ध के नवम अध्ययन में कही गई है-

- १ उस्सेइमं-भोजन बन चुकने के बाद आटे की थाली आदिका धोवन।
- २ संसेइमं-शाकपत्रादिकों के उबालने पर उनका कडुआपन आदि निकालने के लिये अथवा उन्हें ठंडे करने के लिये जो जल ऊपर से डाला जाता है वह ।
- ३ चाउलोदकं-चावलों का धोवन।
- ४ तिलोदगं-तिलों का धोवन।
- ५ तुसोदगं-तुषों को धोने से निकला हुआ जल।
- ६ जवोदगं-जौ आदि का धोया हुआ जल।

ज्जनो। उपयोग क्ती पञ्च न करवे ज्जैथ्थे। प्रासुक ज्जण ज्जेकवीस प्रकारतुं डोय छे आ वात आचारांगसूत्रमां जीज्ज श्रुतस्कंधना नवमां अध्ययनमां क्खेवामां आवेत्त छे।

- |           |  |
|-----------|--|
| उस्सेइमं- | १ लोजन ज्जनी चुक्या पछी आटानी थाणी विगेरेतुं धोवञ्चु।  |
| संसेइमं-  | २ शाक पत्रादिकने उकाणवाथी तेना कउवा पञ्चा वगेरेने काढवा माटे अथवा तेने ठंडा कराववा माटे जे पाण्णी उपरथी नाथ-वामां आवे छे ते। |
| चाउलोदगं- | ३ थाण्णातुं धोवञ्चु।   |
| तिलोदगं-  | ४ तलतुं धोवञ्चु।   |
| तुसोदगं-  | ५ तुषोने धोवाथी निकजेत्त पाण्णी।   |
| जवोदगं-   | ६ जव आदिने धोतां निकजेत्त पाण्णी।  |

उ० ३७

- (७) आयामं-आचामं-शाकतण्डुलादीनामवस्त्रावणम् ।  
 (८) सोवीरं-सौवीरं-काञ्जिकम् । दध्यम्लिकादिनिःसृतं जलम् । तक्रोपरि  
 निस्तरितं जलम्-‘ आँछ ’ इति भाषाप्रसिद्धं च ।  
 (९) अंबपाणगं-आम्रपानकं-आम्रधावनोदकम् ।  
 (१०) अंबाडगपाणगं-आम्रातकपानकं, आम्रातकम्-अम्लरसयुक्तः फलविशेषः,  
 तद्भावनोदकम् ।  
 (११) कविट्टपाणगं - कपित्थपानकं - कपित्थं = ‘ कौठ ’ इति भाषाप्रसिद्धं,  
 तद्भावनोदकम् ।  
 (१२) मातुलिंगपाणगं-मातुलिङ्गपानकं, मातुलिङ्गं-‘ बिजोरा ’ इति भाषा-  
 प्रसिद्धं, तद्भावनोदकम् ।  
 (१३) मुहियापाणगं-मृद्वीकापानकं-द्राक्षाधावनोदकम् ।  
 (१४) दाडिमपाणगं-दाडिमपानकं-दाडिमधावनोदकम् ।

- ७ आयामं-शाक एवं तण्डुल आदि का ओंसामण ।  
 ८ सोवीरं-दही मट्ठा का जल-कांजी । दही के नीचे का जल, तथा  
 छाँछ के ऊपर का जल ।  
 ९ अंबपाणगं-आमका धोवन ।  
 १० अंबाडगपाणगं-एक फलविशेष कि जिसका रस आम्ल कषायला  
 होता है उस का धोवन ।  
 ११ कविट्टपाणगं-कपित्थ-कैथ का धोवन ।  
 १२ मातुलिंगपाणगं-बिजोरा का धोवन ।  
 १३ मुहियापाणगं-दाखों का धोवन ।  
 १४ दाडिमपाणगं-अनार का धोवन ।

आयामं-	७ शाक अने चोभानुं ओसामण.
सोवीरं-	८ दही अने छाशनुं पाणी जेमां दहीनी नीचेतुं पाणी अने छाशनी उपरनी आछ.
अंबपाणगं-	९ डेरीनुं धोवण.
अंबाडगपाणगं-	१० जे इणने रस पाटी छाय तेतुं धोवण.
कविट्टपाणगं-	११ कपित्थ-कौठानुं धोवण.
मातुलिंगपाणगं-	१२ भीजेरानुं धोवण.
मुहियापाणगं-	१३ दाखोतुं धोवण.
दाडिमपाणगं-	१४ दाडमनुं धोवण.

- (१५) खज्जूरपाणगं-खर्जूरपानकं, खर्जूरधावनोदकम् ।  
 (१६) गाह्वरपाणगं-नारिकेरपानकं-नारिकेलफलधावनोदकम् ।  
 (१७) करीरपाणगं-करीरपानकं-करीरं 'केर' इति भाषाप्रसिद्धं, तद्भावनोदकम् ।  
 (१८) कोलपाणगं-कोलपानकं-बदरीफलधावनोदकम् ।  
 (१९) आमलगपाणगं-आमलकपानकम्, आमलकम्-'आंवला' इति प्रसिद्धं, तद्भावनोदकम् ।

(२०) चिंचापाणगं-चिञ्चापानकं-अम्लिकाधावनोदकम् ।

(२१) सुद्धवियडं-शुद्धविकटम्-उष्णोदकम् ।

एवंविधस्य निर्दोषस्य, एषणाम्=गवेषणाम्-आधाकर्मादिदोषान्वेषणरूपं चरेत्=कुर्यात् । अयं भावः-पिपासया पीडितोऽपि सचित्तमनेषणीयं जलं न पिबे-दिति ॥ गा. ४ ॥

- १५ खज्जूरपाणगं-खजूरो का धोवन ।  
 १६ गाह्वरपाणगं-नारियल का धोवन ।  
 १७ करीरपाणगं-केर का धोवन ।  
 १८ कोलपाणगं-बदरीफल-बैरों का धोवन ।  
 १९ आमलगपाणगं-आमला का धोवन ।  
 २० चिंचापाणगं-अम्लिका का धोवन ।  
 २१ सुद्धवियडं-उष्ण जल ।

इस प्रकार यह इक्कीस प्रकार का पानी साधु के लिये कल्पनीय बतलाया गया है । आधाकर्म आदि दोषों से रहित ऐसे इस पानी की गवेषणा साधु को करनी चाहिये ॥ गा० ४ ॥

खज्जूरपाणगं-	१५ अञ्जुरीतुं धोवणु.
गाह्वरपाणगं-	१६ नारीञ्जेणुं धोवणु.
करीरपाणगं-	१७ केरतुं धोवणु.
कोलपाणगं-	१८ अदरी इणतुं धोवणु.
आमलगपाणगं-	१९ आमणानुं धोवणु.
चिंचापाणगं-	२० आमलीतुं धोवणु.
सुद्धवियडं-	२१ गरम पाण्णी.

उपर अताववामां आवेदा आ प्रकारनां पाण्णी साधुओ माटे कल्पनीय अतावेदा छे. आधाकर्म आदि दोषथी रहित अेवा पाण्णीनी गवेषणा साधुओ करनी अेध् अे. ॥ गा० ४ ॥

अथ ग्रामनगरादिभ्यो बहिः क्वचिदटव्यादिमार्गे विहरन् मुनिर्यदि पिपासया पीडितः स्यात् तदाऽपि तत्परीषहः सोढव्य इत्याह—

मूलम्—छिन्नावाएसु पंथेसु, आउरे सुपिवासिए ।

परिसुक्कमुहादीणे, तं तितिक्ष्वे परीसहं ॥५॥

छाया—छिन्नापातेषु पथिषु आतुरः सुपिपासितः ।

परिशुष्कमुखादीनः तं तितिक्षेत परीषहम् ॥ ५ ॥

टीका—‘छिन्नावाएसु’ इत्यादि ।

छिन्नापातेषु=छिन्नः=अपगतः, आपातः—जनानां गमनागमनरूपः संचारो यत्र तेषु, पथिषु=मार्गेषु गच्छन्निति शेषः, आतुरः तृषया व्याप्तकायः, अत एव सुपिपासितः=अतिशयेन तृषितः, अत एव परिशुष्कमुखादीनः=परीशुष्कमुखः गत-निष्ठीवनतया शुष्कतालुरसनोष्ठः, स चासावदीनश्च परिशुष्कमुखादीनः, परिशुष्क-

ग्राम नगर आदि से बाहर किसी अटवी आदि के मार्ग में विचरते हुए साधु को यदि पिपासा से आकुलता उत्पन्न हो जावे तौ भी उसे उस द्वितीय क्षुधापरीषह को सहन करना चाहिये यह बात इस नीचे की गाथा द्वारा सूत्रकार प्रकट करते हैं—‘ छिन्नावाएसु ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(छिन्नावाएसु—छिन्नापातेषु) जिन मार्गों में जनो का आवागमनरूप संचार छिन्न हो गया है अर्थात्—नहीं होता है ऐसे (पंथेसु—पथिषु) मार्गों में संचरण अर्थात्—विचरण करता हुआ साधु ( सुपिवासिए आउरे—सुपिपासितः आतुरः ) यदि पिपासा से व्याप्त होकर आतुर-अत्यंत पीडित हो जाता है और इसीसे ( परिसुक्कमुहादीणे—परिशुष्क-मुखादीनः ) जिसके मुख का थूंक तक भी सूखचुका है और ऐसी

ग्राम, नगर वगैरैथी अडारना रस्ता उपर विचरता साधुने मार्गमां तर-सनी आकुणता उत्पन्न थाय तो पष् तेषु अे अीन क्षुधापरीषडने सहन करवे अेधअे. आ वात नीचेनी गाथा द्वारा सूत्रकार प्रकट करे छे. छिन्नावाएसु—इत्यादि.

अन्वयार्थ—छिन्नावाएसु—छिन्नापातेषु अे मार्गमां माषुसेना अवागमनइष संचार अंध अर्ध गये डोय. अर्थात् नथी थतो अेवा पंथेसु—पथिषु मार्गोमां संचारषु अर्थात् विचारषु करनार साधु सुपिवासिए आउरे—सुपिपासितः आतुरः पाष्णीनी तरसथी व्याकुण अनी अत्यंत पीडित अर्ध नय छे अने अेथी परिसुक्कमुहादीणे—परिशुष्कमुखादीनः अेना मोढामांतुं थुंक पष् सुकार्ध नय छे अेवी डाढतमां,

मुखोऽपि सन्नदीन इत्यर्थः । तं=तृषापरीषहं, तितिक्षेत=सहेत । अयं भावः—निर्जन-स्थानस्थितोऽपि तृषाव्याकुलितोऽपि सन् सचित्तमनेषणीयं जलं न पिबेदिति ।

‘ छिन्नावाएसु पंथेसु ’ इत्यनेन मुनीनां चरणविहारः सूचितः ।

‘ आउरे ’ इत्यनेन—परीषहावस्थायामपि समाधिभावेन वर्तितव्यमिति बोधितम् ।

‘ सुपिवासिए ’ इत्यनेन पिपासाधिक्येऽपि सचित्तमनेषणीयमुदकं न ग्रहीत-व्यमिति सूचितम् ।

‘ परिसुकमुहादीणे ’ इत्यनेन कष्टावस्थायामपि परीषहो जेतव्य एवेति-सूचितम् ।

‘ तितिक्षे ’ इत्यनेन परीषहोपस्थितौ सहिष्णुता समाश्रयणीया, इति बोधितम् ।

हालत में तालु, रसना एवं ओष्ठ भी बिलकुल शुष्क हो चुका है फिर भी अदान बना हुआ मुनि ( तं परीसहं तितिक्षे—तं परीषहं तितिक्षेत ) इस तृषापरीषह को जीते । तात्पर्य इसका यह है कि निर्जनस्थान में रहने पर भी यदि साधु तृषा से पीडित होता है तौ भी उसे सचित्त अनेषणीय जल का पान नहीं करना चाहिये ।

गाथा में रहे हुए “ छिन्नावाएसु पंथेसु ” इस विशेषणगर्भित पद द्वारा मुनियों का चरण विहार सूचित किया है । “ आउरे ” इस पद द्वारा परीषह अवस्था में मुनियों को समाधिभावपूर्वक रहना बतलाया गया है । “ सुपिवासिए ” पद द्वारा पिपासा की तीव्र अवस्था में भी सचित्त अनेषणीय उदक नहीं लेना चाहिये, यह प्रकट

तालु रसना अने डोठ पणु तदन सुका अनी जय छे, अेवी परिस्थितिमां मुकावा छतां पणु अदीन अनेल मुनि तं परिसहं तितिक्षे—तं परीषहं तितिक्षेत अे तृषा परीषहने णते. अेतुं तात्पर्य अे छे के, निर्जन स्थानमां रडेवा छतां पणु साधु तरसथी पीडित डोय तो तेणु सचित्त अनेषणीय जणनुं पान न करवुं जेधअे.

गाथामां रडेला “ छिन्नावाएसु पंथेसु ” विशेषणु गर्भित पद द्वारा मुनि-येनो अरणु विहार सुयववामां आवेल छे. आउरे—आपदथी परीषह अवस्थामां मुनियेअे समाधि भाव पूर्वक रडेवानुं अतावेल छे. सुपिवासिए आ पदथी तरसनी तीव्र अवस्थामां पणु सचित्त अनेषणीय पाणी न देवुं जेधअे.

अत्र दृष्टान्तः—

आसीदुज्जयिन्यां धनमित्रनामकः श्रेष्ठी, स धनप्रियनाम्नाऽष्टवर्षवयस्केन स्वपुत्रेण सह मित्रगुप्ताचार्यसमीपे प्रव्रजितः । स धनप्रियशिष्यः सपरिवारेणाचार्येण सह कदाचिन्मार्गे विहरन् पिपासार्तोऽभवत् । अन्यैः साधुभिः सहाचार्यमग्रे गतं दृष्ट्वा धनमित्रमुनिना नदीमालोक्य पुत्रानुरागेण कथितम्, वत्स! जलं पिब, पश्चादालोचनया शुद्धिर्भविष्यति । इत्युक्तोऽपि शिष्यो जलपानं कर्तुं न वाञ्छति । ततो

किया गया है। “परिसुक्कमुहादीणे” इस पद से सूत्रकार यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि कष्ट की अवस्था में भी परोषहों को जीतना ही चाहिये। “तित्तिक्खे” पद से यह ज्ञात होता है कि परोषह की उपस्थिति में घबड़ाना नहीं चाहिये किन्तु सहिष्णुता धारण करनी चाहिये।

इस विषय को अब दृष्टान्तद्वारा स्पष्ट किया जाता है—

उज्जैनी नगरी में धनमित्र नाम का एक सेठ रहता था। वैराग्य पाकर उसने अपने आठवर्ष के धनप्रिय नामक पुत्र के साथ मित्रगुप्तआचार्य के पास मुनिदीक्षा धारण करली। एक समयकी बात है कि वे धनप्रिय मुनि सपरिवार आचार्य के साथ जब विहार कर रहे थे तब मार्ग में उन को प्यास की वेदना जागृत हुई। अन्य साधुओं के साथ आचार्य को आगे गये हुए जान कर धनमित्र मुनि ने नदी को देखते ही पुत्रानुराग के वशवर्ती बन धनप्रिय से कहा कि वत्स! जल पीलो, पीछे आलोचना से इसकी शुद्धि कर लेना। इस प्रकार धनमित्र मुनि के वचन

એવું પ્રગટ કરેલ છે. પરિસુક્કમુહાદીણે આપદથી કષ્ટની અવસ્થામાં પણ પરિ-  
ષહોને છૂટવા ભેદ્યે. એવું સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે. “તિત્તિક્ખે” આપદથી  
પરિષહનાં આવવાથી ગભરાવું ન ભેદ્યે પરંતુ સહિષ્ણુતા ધારણ કરવી ભેદ્યે.

આ વિષય ઉપર એક દૃષ્ટાંત કહેવામાં આવે છે.—

ઉજ્જૈની નગરીમાં ધનમિત્ર નામે એક શેઠ રહેતો હતો. વૈરાગ્ય પામીને તેણે પોતાના આઠ વર્ષના ધનપ્રિય નામના પુત્ર સાથે મિત્રગુપ્ત નામના આચાર્ય પાસે મુનિ દીક્ષા ધારણ કરી. એક સમયની વાત છે કે, ધનપ્રિય મુનિ સપરિવાર આચાર્યની સાથે જ્યારે વિહાર કરી રહેલ હતો, ત્યારે માર્ગમાં તેને તરસ લાગી. બીજા સાધુઓ સાથે આચાર્યને આગળ ગયેલા બાણીને ધનમિત્ર મુનિએ નદીને ભેદને પુત્રપ્રેમને વશ બની ધનપ્રિયને કહ્યું, વત્સ પાણી પીઈ લો. પછી આલોચનાથી એની શુદ્ધિ કરી લેજો. આ પ્રકારનાં ધનમિત્ર



धनमित्रमुनिश्चिन्तयति—मम समक्षे नायं जलं पिबतीति, एवं विचिन्त्य शुष्कमार्गेण सत्वरं नदीमुत्तीर्याग्रे गतः, तदनन्तरं धनप्रियमुनिर्जलपानार्थं नद्यां प्रविश्याञ्जलौ जलं धृत्वा सद्यः संजातकारुण्यश्चिन्तयति—कथमहं जलं पिबामि । यतः—

एगंमि उदगबिंदुम्मि, जे जीवा जिणवरेहि पन्नत्ता ।

ते सरिसवपरिमित्ता, जम्बुद्वीवे न मायंति ॥ १ ॥

छाया—एकस्मिन्नुदकबिन्दौ, ये जीवा जिनवरैः प्रज्ञप्ताः ।

ते सर्षपपरिमात्राः जम्बूद्वीपे न मायेयुः ॥ १ ॥

व्याख्या—एकस्मिन् जलबिन्दौ ये जीवाः सन्ति, ते यदि सर्षपप्रमाणं शरीरं धृत्वा वर्तयुस्तर्हि जम्बूद्वीपे न मायेयुरित्यर्थः ॥ १ ॥

मुनकर धनप्रिय ने पानी पीने की जरा भी इच्छा नहीं की। इस परिस्थिति को देखकर धनमित्र मुनि ने विचार किया कि यह मेरे साम्हने जल नहीं पीवेगा अतः यहां से चल देना चाहिये, सो वे शुष्कमार्ग से नदी को पार कर आगे चले गये। इसके बाद धनप्रियमुनि जलपान करने के लिये नदी में प्रविष्ट हुए और अंजलि में पानी भर कर दया भाव से विचारने लगे कि इस अकल्पनीय सचित्त जल को मैं कैसे पीऊँ ? क्यों कि—

“ एगंमि उदगबिंदुम्मि, जे जीवा जिणवरेहि पन्नत्ता ।

ते सरिसवपरिमित्ता, जंबुद्वीवे न मायंति ॥ १ ॥ ”

एक जल के बिन्दु में जितने जीव जिनेन्द्र भगवान ने बतलाये हैं वे यदि सरसों के आकार को धारण करलें तो इस जंबूद्वीप में नहीं समा सकते हैं ॥१॥

मुनिनां वयन सांभणीने धनप्रियमुनिये पाष्णी पीवानी जरा पञ्च धिच्छा न करी आ परिस्थितिने जेध धनमित्रमुनिअे विचार कर्यो के, आ भारी सामे पाष्णी पीशे नहीं भाटे अहींथी आलवुं जेध अे जेथी तेअे सुका भागेथी नहीने पार करीने आगण आल्या. आ पधी धनप्रियमुनिअे जणपान करवा भाटे नदीभां प्रवेश कर्यो अने हाथभां पाष्णी लध द्या लावथी विचारवा लाग्या के, आ अकल्पनीय सचित्त पाष्णी हुं केवी रीते पीठं केभके कहुं छे के—

एगंमि उदगबिंदुम्मि, जे जीवा जिणवरेहि पन्नत्ता ।

ते सरिसव परिमित्ता, जम्बुद्वीवे न मायन्ति ॥ १ ॥

जणना अेक टीपामां जेटला अेव अेनेन्द्र भगवाने अताव्या छे ते कदाच सरसवना आकारने धारण करीत्ये तो आ जम्बूद्वीपभां समाध न शके. ॥१॥

जत्थ जलं तत्थ वणं, जत्थ वणं तत्थ णिच्छियो तेऊ ।

तेऊ वाउसहगओ, तसा य पच्चक्खया चेव ॥ २ ॥

छाया—यत्र जलं तत्र वनं, यत्र वनं तत्र निश्चितं तेजः ।

तेजो वायुसहगतं त्रसाश्च प्रत्यक्षका एव ॥ २ ॥

व्याख्या—यत्र जलं तत्र वनं=वनस्पतिः, यत्र वनस्पतिस्तत्र निश्चयेन तेजो=वह्निः, यत्र तेजस्तत्र वायुः सहयोगित्वात्, त्रसास्तु प्रत्यक्षा एव सन्ति ॥२॥

हंतूण परप्पाणे, अप्पाणं जो करेइ सप्पाणं ।

अप्पाणं दिवसाणं, कए य नासेइ सप्पाणं ॥ ३ ॥

छाया—हत्वा परप्राणान्, आत्मानं यः करोति सप्राणम् ।

अल्पानां दिवसानां, कृते नाशयति स्वात्मानम् ॥ ३ ॥

व्याख्या—तस्मात् परप्राणान् हत्वा यः आत्मानं सप्राणं=सबलं करोति, स अल्पानां दिवसानां कृते स्वात्मानं नाशयति ॥३॥

“जत्थ जलं तत्थ वणं, जत्थ वणं तत्थ णिच्छओ तेऊ ।

तेऊवाउ सहगओ, तसा य पच्चक्खया चेव ॥ २ ॥”

जहां जल है वहां निश्चित वनस्पति है । जहां वनस्पति है वहां निश्चित तेज-अग्नि है । जहां तेज है वहां निश्चित वायु है । त्रसकाय तो प्रत्यक्ष ही है ॥२॥

“हंतूण परप्पाणे, अप्पाणं जो करेइ सप्पाणं ।

अप्पाणं दिवसाणं, कए य नासेइ सप्पाणं ॥ ३ ॥”

जो दूसरे जीवों के प्राणों का हनन कर कुछ ही दिनों के लिये अपने आपको सबल बनाने की चेष्टा करता है वह अपने आपका विनाश करता है ॥३॥

जत्थजलं तत्थ वणं, जत्थ वणं तत्थ णिच्छओ तेऊ ।

तेऊ वाउसहगओ, तसाय पच्चक्खया चेव ॥ २ ॥

ज्यां जण छे त्यां वनस्पतिनुं डोपुं निश्चित छे, ज्यां वनस्पति छे त्यां तेज अग्नि निश्चित छे. ज्यां तेज छे. त्यां वायुं निश्चित छे. त्रसकाय तो प्रत्यक्ष छे ज ॥२॥

हंतूण परप्पाणे, अप्पाणं जो करेइ सप्पाणं ।

अप्पाणं दिवसाणं, कए य नासेइ सप्पाणं ॥ ३ ॥

जे थीज श्रवणा प्राणोनी विराधना करीने थोडा द्विसो भाटे पोते पोतानी जतने सभण थनाववानी थेष्टा करे छे ते पोते पोतानी जतने विनाश करे छे ॥३॥

अहो! दुर्लभा संयमप्राप्तिः, ततोऽपि संयमरक्षणं दुर्लभतरं, तच्चापूकायविराधनया षट्कायविराधनायां सत्यां न भवितुं शक्यते, संयमरक्षणाभावे सर्वेषां महाव्रतानां भङ्गः स्यात्, ततश्च चतुर्गतिकसंसारपरिभ्रमणं भविष्यति। यस्मान्नेदं जलं पास्यामीति निश्चित्यासौ मुनि रञ्जलितो जलं नद्यामेव यतनया मुमोच। स लघुवयस्कोऽपि महनीयधैर्यः शुष्कमार्गेण तां नदीमुत्तीर्य तत्तीर एव पिपासया गन्तुमक्षमः सन् भूमौ निपतितः।

इस प्रकार विचार कर धनप्रियनामक लघुमुनिने यह भी विचार किया कि इस संसार में जीवों को एक तो संयम की प्राप्ति होना दुर्लभ है, और उसकी अपेक्षा संयम की रक्षा महान् दुर्लभ है। मैं कच्चा पानी पीऊँ तो अपूकाय की विराधना होती है अपूकाय की विराधना में षट्काय की विराधना अवश्य होती है, षट्काय की विराधना से संयम की रक्षा नहीं हो सकती। जहाँ संयम की रक्षा नहीं है वहाँ समस्त महाव्रतों का भंग है। इनके भंग से संसारपरिभ्रमण अवश्य होता है, अतः मैं तो इस जलको नहीं पीऊँगा। इस प्रकार निश्चय कर लघुमुनि ने बड़ी ही यतना से अंजलि में लिये हुए जल को उसी नदी में छोड़ दिया। उस समय उनकी आयु कोई अधिक नहीं थी परंतु धैर्य की मात्रा हृदय में बढी हुई थी इस लिये यथा कथंचित् वे शुष्कमार्ग से होकर नदी को पार करके दूसरे तीर पर आगये। परन्तु प्यास ने इतनी प्रबलता धारण की कि वे आगे मार्ग पर नहीं चलसके और

आ प्रकारनो विचार करी धनप्रिय नामना नाना मुनिये अवे। विचार कर्यो के, आ संसारमां लुवेने अक तो संयमनी प्राप्ति थवी दुर्लभ छे अने तेनी अपेक्षा संयमनी रक्षा मडान दुर्लभ छे. हुं कायुं पाष्णी पीठं तो अपूकायनी विराधना थाय छे, अपूकायनी विराधनामां षट्कायनी विराधना अवश्य अने छे. षट्कायनी विराधनाथी संयमनी रक्षा थती नथी. ज्यां संयमनी रक्षा नथी त्यां समस्त मडावतोने लंग छे. तेना लंगथी संसार परिभ्रमण अवश्य थाय छे. माटे हुं तो आ जणने पीछशि नडीं. आ प्रकारनो निश्चय करी लघु मुनिये भूभय यतनाथी जोगामां लीधेव पाष्णीने ते नदीमां छोडी वीधुं. आ समये तेनी ठंभर कांठ मोटी न डती परंतु धैर्यनी मात्रा हृदयमां वधेवी डती. आ कारणे आगण कडेवामां आन्था प्रमाणे सुका मार्गथी नडीने पार करी सामा कांठे पडोंथी गया. परंतु तरस अटला जेरथी लागी डती के आने

७० ३८

अथ पिपासाविवशोऽपि धर्मे निश्चलमतिरसौ पञ्चनमस्कारस्मरणपूर्वकं समाधिभावेन देहं विहाय प्रथमकल्पे वैमानिकदेवत्वेन समुत्पन्नः । ततोऽवधिज्ञानेन स्वपूर्वभवं विज्ञाय तेन धनप्रियेण देवेन सर्वेषां मुनीनामनुग्रहार्थं वैक्रियशक्त्या पथि गोकुलं निर्मितम् । अथ सपरिवारो मित्रगुप्ताचार्यः पुरतो गोकुलं दृष्ट्वा तत्र शुद्ध तक्रादि गृहीत्वा पिपासां निवार्य चलितः । अथ तेन देवेन स्वपरिचयार्थमेकस्य साधोरासनं विस्मारितम् । येन मुनिनाऽऽसनं विस्मृतम् , स च स्वासनान्वेषणार्थं पुनर्गोकुलस्थानमागत्य गोकुलमपश्यन् प्रत्यावृत्तः सर्वान् मुनीनब्रवीत्-नास्ति तत्र वहीं पर गिर पडे । पिपासा से विवश होने पर भी इनकी मति धर्म में निश्चल बनी रही, पंचनमस्कार मंत्र का स्मरण करते हुए इन्होंने समाधिभाव से काल को प्राप्त किया । पिपासापरीषह को सहन करने के प्रभाव से ये प्रथमकल्प में वैमानिक देव हुए । अवधिज्ञान से अपने पूर्व भव को जानकर उस लघुमुनि के जीव देव ने समस्त मुनियों की रक्षा के लिये अपनी वैक्रियिक शक्ति से मार्ग में गोकुल की रचना कर दी । सपरिवार मित्रगुप्ताचार्य ने आगे गोकुल देखा ।

वहां से शुद्ध तक्र आदि को लेकर अपनी पिपासा को शांत किया, एवं आगे विहार करना प्रारंभ कर दिया । किसी ने भी यह नहीं जाना कि यह सब देवकृत माया है, अतः देव ने अपने परिचय के निमित्त एक साधु को अपना आसन विस्मृति करा दिया । जो मुनि वहां पर आसन भूल गया था वह उस आसन को लेने के लिये पीछे उस स्थान पर आया तो क्या देखता है कि यहां पर तो कोई

वर्ष ते आगण मार्गे आसी शक्या नहीं अने त्यां न पडी गया. तरसथी विवश बनवा छतां पणु तेनी मति धर्ममां निश्चल अनि रडी. पंचनमस्कार मंत्रनुं स्मरणु करीने तेमणु समाधी लावथी काणधर्म प्राप्त कर्यो. तरसना परीषडने सहन करवाना प्रलावथी ते प्रथम कल्पमां वैमानिक देव थया. अवधिज्ञानथी पोताना पूर्वभवने न्णणीने ते लघुमुनिना अणु देवे समस्त मुनियोना अनुग्रह माटे पोतानी वैक्रियिक शक्तिथी मार्गमां गोकुलनी रचना करी. सपरिवार मित्रगुप्ताचार्ये आगण गोकुल न्ण्युं अने त्यांथी शुद्ध छाश आदि लघने पोतानी तरसने छिपावी. अने आगण विहार करवा लाग्या. कोर्छे अने न न्ण्युं के आ अधी देवकृत माया हती. आथी देवे पोताना परिचय निमित्त अेक साधुने तेनुं आसन लुटावी दीधुं. न्ण मुनि आसन लुटी गया हता ते मुनि त्यां आसन देवा माटे पाछा आव्या तो शुं देणे छे के त्यां कोर्छ गोकुल

पूर्वदृष्टं गोकुलम् । तदा तद्वचनेन सर्वैरपि साधुभिर्ज्ञातगोकुलाभावैस्तत्र काचिद्देव शक्तिर्विदिता । सर्वैस्तत्पिण्डभोजनस्य प्रायश्चित्तं कृतम् । ततस्तत्रागत्य तेन देवेन संसारावस्थायां तातं स्वगुरुं मुक्त्वा सर्वे साधवो वन्दिताः । किं कारणं त्वया नायं वन्दितः ? एवमाचार्येण पृष्ठोऽसौ सर्वं स्ववृत्तान्तं सचित्तजलपानार्थं पितुः प्रेरणं च सर्वेषां साधूनां पुरस्ताद् कथयित्वा देवलोको गतः । एवमन्यैरपि मुनिभिस्तृषापरीषहः सोढव्यः ॥ ५ ॥

क्षुधापिपासापरीषहसहनेन कृशशरीरस्य साधोः शीतकाळे शीतमपि बहु बाधते, इति शीतपरीषहजयं प्राह—

गोकुल नहीं है । वह शीघ्र ही पीछे वहां से वापिस लौटा और अपने आचार्य के पास आकर इस बात को कहा कि अब तो वहां पर कोई गोकुल नहीं है । साधुओं ने जब यह बात सुनी तो उन्होंने ने यह निश्चित किया कि अवश्य इस में कोई देव की माया थी। सब ने मिलकर इसका प्रायश्चित्त लिया, क्यों, कि इन सब ने वहां से पहिले तक्रादि को ग्रहण किया था। बाद में देव ने आकर अपने संसार अवस्था के पिता-धन-मित्र मुनि को छोड़कर बाकी के समस्त साधुओं को वंदना की। आचार्य ने पूछा धनमित्र मुनि को वंदन क्यों नहीं किया? तब उस देव ने समस्त पहिले का वृत्तान्त जो धनमित्र मुनि ने सचित्त जल को पीने के लिये अपने शिष्य धनप्रिय को मुनि की अवस्था में कहा था आचार्य के समक्ष कह दिया। कह कर फिर यह स्वर्ग को वापिस चला गया। इसी प्रकार अन्य मुनियों को भी तृषापरीषह का विजय करना चाहिये ॥ ५ ॥

नथी. ते अेव वणते पाछा इयां अने पोताना आचार्यनी पासे आवीने कहुं के, त्यां तो केळ गोकुल नथी. साधुआये न्यारे आ वात सांभणी तो तेआये अेवुं नक्षी क्युं के, अवश्य आमां केळ देवनी माया डती, सहुंये मणीने तेवुं प्रायश्चित्त लीधुं. कारण के, ते सहुंये त्यांथी छस आदि वस्तु अडणु करेव डती. आहमां देवे आवीने पोताना संसार अवस्थाना पिता धनमित्र मुनीने छोडीने आडीना समस्त साधुआने वंदना करी, आचार्ये पूछ्युं के, धनमित्र मुनिने वंदना केम न करी ? त्यारे ते देवे पडेवानो समस्त वृत्तांत ने धन-मित्रःमुनिये सचित्त पाणी पीवा माटे पोताना शिष्यने मुनि अवस्थामां कहुं डतुं ते आचार्य समक्ष कडी हीधुं. आ कडीने ते पोताना मुणधाम स्वर्गमां याव्या गया. आ प्रकारे अ यमुनियोअे पणु तृषापरीषहने विजय करवो जेधये. ॥५॥

मूलम्—चरंतं विरयं लूहं, सीयं फुसइ एगया ।

नाइ वेलं<sup>१</sup> मुणी गच्छे, सोच्चा णं जिणंसासणं ॥६॥

छाया—चरन्तं विरतं रूक्षं, शीतं स्पृशति एकदा ।

नातिवेलं मुनिर्गच्छेत् श्रुत्वा खलु जिनशासनम् ॥ ६ ॥

टीका—‘चरंतं’ इत्यादि ।

चरन्तं=मोक्षमार्गं, ग्रामानुग्रामं वा विहरन्तं, विरतं=सावद्ययोगतो निवृत्तम्-अग्निप्रज्वालनादिभ्यो निवृत्तमित्यर्थः, रूक्षं=स्निग्धाहारतैलाभ्यङ्गपरिहारेण धूसराङ्गं मुनिम्, एकदा=शीतकाले, शीतं स्पृशति=पीडयति ।

शीतकाले हि वनस्पतयो हिमनिपातेन परितः परिशुष्का भवन्ति, पथिकाः संकोचितपाणयः पदैकमपि गन्तुमसमर्थाः पङ्गुवत् तत्र तत्रैव तिष्ठन्ति, केचित् क्वणदन्तवीणिकाः कम्पमानगात्राः कृशानुसेवनाय तदभिमुखं शलभा इवापतन्ति ।

क्षुधा एवं पिपासा परीषह के सहन करने से मुनि का शरीर कृश हो जाता है इससे शीतकाल में शीत की पीडा बहुत होती है इसलिये तीसरे शीतपरीषह को जीतना चाहिये; यही बात इस नीचे की गाथा से सूत्रकार प्रकट करते हैं—

‘चरंतं विरयं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(चरंतं विरयं—चरन्तं विरतं) मोक्ष मार्ग में अथवा एक ग्राम से दूसरे ग्राम में विहार करने वाले तथा सावद्ययोग से विरक्त एवं (लूहं—रूक्षम्) स्निग्धाहार तैलमर्दन आदि के त्याग से धूसर शरीर वाले ऐसे मुनि को (एगया—एकदा) शीतकाल में (सीयं फुसइ—शीतं स्पृशति) शीत पीडित करता है । उस समय वह मुनि (णं—खलु) निश्च-

भूष्य अने तरस सडन करनारा मुनिनुं शरीर दुर्भण्ण अनी जय छे, अने दुर्भण्ण शरीरवाणाने ङंउिथी अहु पीडा थाय छे. आथी त्रीजे ङंउिना परिषडने मुनिजे अतवेो जेधं अे. अेवी वात सूत्रकार नीचेनी गाथाथी प्रगट करे छे.

चरंतं विरयं इत्यादि.

अन्वयार्थ—चरंतं विरयं—चरंतं विरतं मोक्षमां अथवा अेक गाभथी णीज गाभे विहार करवावाणा तथा सावद्य योगथी विरक्त अने लूहं—रूक्षम् स्निग्धाहार तैलमर्दन आदिना त्यागथी धूसर शरीरवाणा अेवा मुनिने एगया—एकदा शीतकालमां सीयं फुसइ—शीतं स्पृशति शीतकाल पीडित करे छे. ते सभथे ते मुनि णं—खलु



वायवश्च तुषारासारसंगादतिशय शिशिराः प्राणिनां शरीराणि परितः सातिशयं पीडयन्ति । अनवरतशीतपातजनितव्यथावारणाय बालकाः काष्ठखण्डादीनि समाहृत्यैकत्र वह्निं प्रज्वाल्य प्रसारितपाणयस्तापमासेवन्ते । यत्र प्रतिक्षणं प्राणिनां प्राणाः प्रखर शीतवेदनाभिरुद्विग्ना भवन्ति ।

तदा स मुनिः खलु=निश्चयेन, जिनशासनं जिनवचनरहस्यं श्रुत्वा 'अनेन ममात्मना नरकनिगोदादौ तीव्रतरा अनन्तवेदना अनन्तवारमनुभूता' इति विभाव्य, अतिवेलं=वेलाऽतिक्रमणं न गच्छेत्=न प्राप्नुयात्-प्रतिलेखनादे र्यः कालस्तं शीतभयादुल्लङ्घयाऽन्यस्मिन् काले प्रतिलेखनादिकं न कुर्यादित्यर्थः । यद्वा-शीतभयात् पूर्वोपविष्टस्थानं विहाय स्थानान्तरं न व्रजेदिति ।

'चरंतं' इत्यनेन कारणं विना एकत्रावस्थानं न करणीयमिति सूचितम् ।

'विरयं' इत्यनेन यतनावचं सूचितम् ।

यसे ( जिणसासनं सोच्चा-जिनशासनं श्रुत्वा ) जिन शासन को- ' इस मेरी आत्मा ने नरक निगोद आदि स्थानों में तीव्रतर अनंत वेदनाएँ अनन्तवार भोगी हैं उस वेदना के सामने यह शीतवेदना क्या अधिक है ? ' इस बात को सुनकर-समझकर ( अइवेलं-अतिवेलम् ) समय को उल्लंघन करके-प्रतिलेखना आदि के समय को टालन करके ( न गच्छे-न गच्छेत् ) प्रतिलेखना आदि का जो समय है उसके सिवाय अन्य समय में प्रतिलेखनादिक क्रियाओं को न करे । तथा शीत के भय से पूर्वाधिष्ठित स्थान का परित्याग कर दूसरे स्थान में भी न जावे ।

गाथा में रहे हुए "चरंतं" इस पदद्वारा सूत्रकार यह प्रदर्शित करते हैं कि मुनि को कारणविशेष विना एक जगह स्थिररूप से नहीं

निश्चयथी जिणसासाणं सोच्चा-जिनशासनं श्रुत्वा एन शासनने आ मारा आत्माओ नरक निगोद आदि स्थानोभां तीव्रतावाणी अनंत वेदनाओ धरुणी वभत लोगवी छे ते वेदनाओ सामे आ शीत वेदना क्या डिसाभमां छे ? आ वातने सांलणी समओ अइवेलं-अतिवेलं समयनुं उल्लंघन करी प्रतिलेखना आदिना समयने टाणीने न गच्छे-न गच्छेत् प्रतिलेखना आदिने ओ समय छे तेना सीवाय थील समयमां प्रतिलेखनादिक क्रियाओने न करे. तथा ठंडीना लयथी पूर्वाधिष्ठित स्थानने त्याग करीने थील स्थानमां न लय.

गाथामां रहेला "चरंतं" ओ पदद्वारा सूत्रकार ओ प्रदर्शित करेछे के, मुनिये कारण विशेष वीना ओक जग्याओ स्थिर रूपथी रोकवुं न लेछेओ.

‘लूहं’ इत्यनेन तपश्चरणशीलत्वं प्रवेदितम् ॥ ६ ॥

‘मुणी’ इत्यनेन सावद्यकार्ये मौनत्वमिति बोधितम् ।

मूलम्—‘न मे’ निवारणं अत्थि, छवित्ताणं न विज्जए ।

अहं तु अग्निं सेवामि, इइ भिक्खू न चिंतए ॥७॥

छाया—न मे निवारणम् अस्ति, छवित्ताणं न विद्यते ।

अहं तु अग्निं सेवे, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥ ७ ॥

टीका—‘न मे’ इत्यादि ।

मे=मम, निवारणं=शीतनिवारकं स्थानं नास्ति, तथा—छवित्ताणं=शरीराच्छा-  
दनकं वस्त्रकम्बलादिकं न विद्यते । तु=पुनः, अग्निं सेवे=अग्निं प्रज्वालय तत्तापमा-  
श्रयेय, इति=एवं, भिक्षुर्न चिन्तयेत्=मनसापि न प्रार्थयेत् । चिन्ताप्रतिषेधेन  
तत्सेवनं तु दूरत एव निराकृतम् ।

ठहरना चाहिये। “विरयं” इससे मुनिको यतनावान् होना चाहिये यह  
सूचित किया गया है। “लूहं” पद से तपश्चरण शीलता एवं “मुणी”  
इस पद से सावद्यकार्य में मौन रखना यह सूचित किया गया है ॥ ६ ॥

‘न मे निवारणं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(मे-मम) मेरे पास (निवारणं-निवारणम्) शीत को दूर करने  
वाला स्थान (न अत्थि-नास्ति) नहीं हैं (छवित्ताणं न विज्जए—छवित्ताणं  
न विद्यते) शरीर को आच्छादान करने वाला वस्त्र एवं कम्बल आदि भी  
नहीं है अतः (अहं तु अग्निं सेवामि—अहंतु अग्निं सेवे) मैं अग्नि का  
सेवन करूँ (इइ—इति) इस प्रकार (भिक्खू—भिक्षुः) साधु (न चिंतए—न  
चिन्तयेत्) मन से भी विचार न करे, उसके सेवन की बात तो दूर रही।

“विरयं” अनाथी मुनिये यत्नावान् अनपुं जेष्ठ अ. अपुं सूचित करवाभां  
आपुं छे “लूहं” पदथी तपश्चरण शीलता अने “मुणी” आ पदथी सावद्य  
कार्यभां मौन रापुं अ. सूचित करवाभां आवेल छे.

नमे निवारणं इत्यादि.

अन्वयार्थ—मे-मम भारी पासे निवारणं-निवारणम् ङंठीथी अयावी शके तेपुं  
स्थान न अत्थि-नास्ति नथी, छवित्ताणं न विज्जए-छवित्ताणं न विद्यते शरीर उपर अपेठवा  
भाटे वस्त्र ताथा कम्बल वगेरे पणु नथी. आथी अहंतु अग्निं सेवामि—अग्निं सेवे  
अग्निपुं सेवन करे इइ—इति आ प्रकारने। मनथी पणु भिक्खू—भिक्षु मुनि न  
चिंतए—न चिन्तयेत् विचार न करे. तेना सेवननी वात तो दूर रही.

अयं भावः—शीते महत्यपि पतति सति जीर्णवसनः पस्त्रिणवर्जितो नाकल्प्यानि वसनानि गृह्णीयात् शीतत्राणाय । आगमविहितेन विधिना एषणीयमेव यथाकल्पं गवेषयेत् परिभुञ्जीत वा । नापि शीतार्तोऽग्निं ज्वालयेत्, अन्यज्वालितं वा नासेवेत । एवमनुतिष्ठता शीतपरीषहजयः कृतो भवतीति ।

अत्र ' भिक्खू ' इत्यनेन निरवद्यभिक्षाग्रहणशीलत्वं सूचितम् ।

अत्र दृष्टान्तः—

चतुर्थारके—राजगृहे नगरे चत्वारः कुबेरदत्तश्रेष्ठपुत्राः कुबेरसेन—कुबेरमित्र—कुबेरवल्लभ—कुबेरप्रियनामानो भद्रगुप्ताचार्यसमीपे जिनोक्तं धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजिताः ।

इस का भाव यह है कि जब शीतकाल में शीत पड़ता है उस समय जीर्णवस्त्र वाला एवं शीत की रक्षा के साधनों से रहित साधु अकल्पनीय वस्त्रों को शीत की रक्षा निमित्त ग्रहण नहीं करे । आगम में विहित विधिके अनुसार जो एषणीय हों तथा साधु के लिये कल्पनीय हों उन्हें ही ग्रहण करें । ठंड से पीड़ित होने पर भी अग्नि को न जलावे तथा दूसरों द्वारा जलाई गई अग्नि का भी सेवन नहीं करें । ऐसा करने से ही साधु शीतपरीषहविजयी माना जाता है । गाथा में रहे हुए—भिक्खूपद से सूत्रकार ' भिक्षु को निरवद्य भिक्षा ही ग्रहण करना चाहिये ' यह सूचित करते हैं ।

इस विषय पर यहां दृष्टान्त दिया जाता है—राजगृह नगरमें कुबेरदत्त नामक एक सेठके कुबेरसेन, कुबेरमित्र, कुबेरवल्लभ, कुबेरप्रिय

आनो लाव ये छे के, न्यारे शीतकाणमां ठंडी पडे छे ये समये लुण्णं वस्त्र-वाणा अने ठंडीनी रक्षाना साधनोथी रहित साधु अकल्पनीय वस्त्रोने ठंडीनी रक्षा निमित्ते अडणु न करे. आगममां कडेवायेद विधि अनुसार ने अेषणीय डोय तथा साधु भाटे कल्पनीय डोय तेने न अडणु करे. ठंडीथी पिडीत डोवा छतां यणु अग्निने प्रगटावे नडीं तथा पीणअो द्वारा प्रगटाववामां आवेद अग्निनुं यणु सेवन न करे. आ शीतनुं वर्तन राअनार साधु शीतपरीषहविजयी मानवामां आवे छे. गाथामां रहेदा " भिक्खू " पदथी सूत्रकार अेम सूचित करे छे के, ' भिक्षुअे निरवद्य भिक्षा न अडणु करवी नेधअे. '

आ विषय उपर अडीं दृष्टांत कडेवामां आवे छे.

योथा आरामां—राजअड नगरमां कुबेरदत्त नामनो अेक शेठ डतो. नेने कुबेरसेन, कुबेरमित्र, कुबेरवल्लभ अने कुबेरप्रिय नामे आर पुत्र डता. आ

ते श्रुतमधीत्यान्यदा कदाचिदेकाकित्वविहाराख्यप्रतिमां स्वीकृतवन्तः । तदनन्तर-  
मेकाकित्वप्रतिमया विहरन्तस्ते पुनरपि राजगृहनगरसमीपवर्तिनि वैभारगिरिप्रदेशे  
वसतेर्यथाकल्पमवग्रहमवगृह्य संयमेन तपसाऽत्मानं भावयन्तो विहरन्ति स्म । तदा  
हेमन्तर्तुस्तुषारसारैर्जनान् पीडयन् , वनस्पतीन् परिम्लानयन् , पशुपक्ष्यादीन् का-  
ष्ठवज्जडतां प्रापयन् , सर्वप्राणिप्राणानुद्वेजयन्नासीत् । तस्मिन् समये ते चत्वारो  
मुनयस्तृतीययामे भिक्षाचर्यार्थं राजगृहनगरं प्रविष्टाः, तत्र भिक्षां गृहीत्वा कृता-  
नामके चार पुत्र थे । उन चारों पुत्रों ने भद्रगुप्त आचार्य के समीप धर्म  
का श्रवण कर मुनिदीक्षा धारण की । शास्त्रों का अच्छी तरह से  
अध्ययन किया ।

एक समय की बात है उन्होंने ने एकाकित्वविहार नाम की भिक्षु  
प्रतिमा स्वीकार की इससे वे एकाकी होकर विहार करने लगे । विहार  
करते-२ वे किसी समय पुनः राजगृह नगर के समीपवर्ती वैभारगिरि  
की तलहटी में बसी हुई एक बस्ती में आये और वहां यथाकल्प अव-  
ग्रह-आज्ञा लेकर उतरे और संयम एवं तप से आत्मा को भाते हुए  
विचरने लगे । यह समय हेमन्तऋतु का था । तुषार-हिम के छोटे २  
कणों से इस समय मनुष्यों को अधिक कष्ट होता है । वनस्पतियाँ हिम-  
कणों के निपात से दग्ध हो जाती हैं । पशु पक्षी काष्ठ जैसे जड़ हो  
जाते हैं । तात्पर्य यह कि इस ऋतु में ठंड की अधिकता से हर एक  
प्राणी को अधिक कष्ट का अनुभव होता है । ऐसे समय में ये चारों ही

चार पुत्रोंके लद्गुप्त आचार्य पासेथी धर्मनुं श्रवणु करी मुनिदीक्षा धारणु  
करी. शास्त्रोनुं सारी रीते अध्ययन कथुं. अेक समयनी बात छे, तेअेअे  
अेकाकित्व विहार नामनी भिक्षु प्रतिमा स्वीकारी. आथी तेअेअे चारे अेकाकी  
अनीने विहार करवा लाग्या. विहार करतां करतां कोअेअे समये राजगृह नगर  
समीप रहेली वेभारगिरीनी तणेटीमां वसेली अेक वस्तीमां आअ्या अने त्यां  
यथाकल्प अवग्रह आज्ञा लधने उतर्या संयम अने तपथी आत्माने भावता  
विचरवा लाग्या. आ समये हेमन्त ऋतु डती. तुषार हिमनां नानां नानां  
कणोथी आ समये मनुष्यो अधिक कष्ट पाअे छे. वनस्पतिअेअे हिम कणोना  
पडवाथी अणी अय छे, पशु पक्षीअेअे लाकडां जेवा अड थध अय छे. मतलअ  
अे के, आ ऋतुमां ठंडीनी अधिकताथी दरेक प्राणीने वधु कष्टने अनुभव  
थाय छे. अेवा समयमां अे चारेय मुनि द्विसना त्रीज भागमां भिक्षाचर्या

द्वारास्ते सर्वे स्ववसतिं गन्तुं पृथक् पृथगेव प्रतिनिवृत्ताः तेषामेकस्य कुबेरसेनमुने-  
वैभारगिरिकन्दरान्तिकमुपगतस्य रात्रिः संजाता, अतस्तत्रैव सोऽतिष्ठत् । द्वितीयस्य  
कुबेरमित्रमुनेरुद्याने रात्रिः समजनि, अतस्तत्रैव सोऽतिष्ठत् । तृतीयस्य कुबेरवल्ल-  
भमुनेरुद्यानसमीपे, चतुर्थस्य कुबेरप्रियमुनेस्तु नगरसमीपे । तत्र वैभारगिरिकन्दरा-  
द्वारसमीपावस्थितस्य मुनेर्निपतत्तुषारसंपर्कशीतलैः शैलमारुतैः प्रकम्पितशरीरस्यापि  
मनो मेरुरिवनिष्कम्प मासीत् । यथा यथा शीतं प्रवर्धते, तथा तथा ऽऽत्मिकबलं  
प्रकाशयन् मनः सुस्थिरं कुर्वन् रणे वीर इव शत्रुं शीतं विजेतुं प्रोत्साहसंपन्नः सुधीरः  
शीतवेदनां सहमानोऽसौ मुनिः समाधिभावेन रात्रेः प्रथमयाम एव कालं गतः ।

मुनि दिवस के तृतीय प्रहर में भिक्षाचर्या के लिये राजगृहनगर में  
आये । वहाँ पर मिले हुए एषणीय आहार करके वे सब फिर वहाँ से  
एक पीछे एक वैभारगिरि के समीप जहाँ उतरे हुए थे वहाँ पहुँचने के  
लिए चले । इनमें कुबेरसेन मुनि को मार्ग में ही जब वे वैभारगिरि का  
कन्दरा के पास पहुँचे तो रात्रि हो गई, इसलिये वह वहीं पर ठहर गये ।  
दूसरे कुबेरमित्रमुनि रात्रि हो जाने से बगीचे में ठहरे । वैसे ही तीसरे  
कुबेरवल्लभमुनि बगीचे के पास ठहरे । चौथे कुबेरप्रियमुनि रात्रि होने  
से राजगृह नगर के पास ही ठहर गये । वैभारगिरि की कन्दरा-गुफा के  
द्वार पर ठहरे हुए मुनिराज ने पड़ते हुए शीत के संपर्क से अत्यंत  
शीतल पर्वतीय वायु के वेग से कम्पितशरीर होने पर भी अपने मनको  
मेरु के समान निष्कंप बनाते हुए उस शीत की प्रबलता का सामना  
किया । जैसे २ शीतकी अधिकता होती जाती थी, उस उस रूप से

भाटे राजगृह नगरमां आयां। त्यांथी भजेल अेषणीय आहार करीने ते सधणा  
इरी पाछा अेक पछी अेक वैभारगिरीनी समीप ज्यां तेअो उतयां हता त्यां  
पछोअंयवा भाटे आली नीकल्या। तेमांथी कुबेरसेन मुनिने मार्गमांअ रात्रि पडी  
अवाथी वैभारगिरीनी कंदरानी पासै शेकाअं गया। थीअ कुबेरमित्र मुनि रात्रि  
थवाथी अगीयामां शेकाअं गया, अेवी अ रीते त्रीअ कुबेरवल्लभ मुनि अगी-  
आनी पासै शेकाअं गया, अेथी कुबेरप्रियमुनि रात्रि थअं अवाथी राजगृह  
नगरनी पासै अ शेकाअं गया वैभारगिरि कंदराना मुअ द्वार पासै शेकाअं  
अयेला, मुनिराजे अंडीना संपर्कथी अत्यंत शीतल पर्वतीय वायुना वेगथी कंभीत  
शरीर डोवा छतां पअ पोताना मनने अेइ समान अडग रापी अंडीनी प्रअणताने  
सामने कथीं। अेअ अेअ अंडीनी अधिकता वधती अअं ते ते इअथी तेअनुं आत्म-

उद्यानस्थं तु नीचप्रदेशवर्तित्वाद् द्वितीययामे प्रबलतरं शीतं बाधते स्म, तदा सोऽपि पूर्वोक्तमुनिवन्निश्चलेन मनसा शीतवेदनां सहमानः समाधिभावेन द्वितीययामे कालगतोऽभवत् । एवमुद्यानसमीपसंस्थितस्तु तृतीययामे, एवं नगरासन्नस्तु-  
उनका आत्मिकबल भी अधिकर विकसित होता जाता था। जिस प्रकार कोई उत्तम वीर रणाङ्गण में वैरी का सामना करता है, उसी प्रकार ये भी उस शीत का डटकर सामना कर रहे थे। सद्भावना में जरा सी भी शिथिलता इन्होंने नहीं आने दी। साम्हना करते २ ही वे मुनि समाधिभाव से कालधर्म को पाये १ ।

जो मुनिराज उद्यान में ठहरे हुए थे उन्हें शीत की वेदना ने द्वितीयप्रहर में सताया। जिस प्रकार प्रथम मुनिराज ने शीत की वेदना सहन करने में निश्चलता धारण की, उसी प्रकार इन्होंने भी उसके सहन करने में निश्चलता धारण की। अन्त में समाधिभाव से ये भी कालधर्म पा गये २ ।

जो मुनिराज उद्यान के समीप ठहरे हुए थे, उन्हें शीत की वेदना रात्रि के तृतीय प्रहर में सताने लगी, और नगर के पास ठहरे हुए मुनिराज को शीत वेदना ने रात्रि के चतुर्थ प्रहर में सताना शुरू किया। इस प्रकार ये दोनों मुनिराज भी शीतपरीषह को जीतते २ ही समाधिभाव से अन्त में कालधर्म को प्राप्त हुए ४। ये चारों के चारों ही अनुत्तर

अण पण्य अधिक ३पथी विकसतुं न्तुं हतुं. ने रीते कोर्ध उत्तम वीर रणुंगणुमां वैरीना सामनो करे छे तेवा प्रकारे मुनि पण्य ठंडीना अेवी न रीते सामनो करी रखा हता. सद्भावनामां जरा पण्य शिथीलता तेमण्णे आववा न दीधी. सामनो करतां करतां ते मुनि समाधि लावथी काण धर्मं पाभ्या.

ने मुनि अगीच्यामां रखा हता. तेमने ठंडीनी वेदना थीण प्रहरमां थर्ध. ने प्रकारे प्रथम मुनिराजे ठंडीनी वेदना सहन करवामां अडगता धारण्य करी तेवी न रीते आभण्णे पण्य अडगता दाअवी अने छेवटे समाधीलावथी काणधर्मं पाभ्या.

ने मुनिराज अगीच्यानी अडार रोक्याया हता तेमने ठंडीनी वेदना रात्रीना त्रीण पडोरमां थवा लागी अने नगरनी पासे रोकयेला मुनिराजने ठंडीनी वेदना योथा पडोरे सताववा लागी. आ प्रकारे आ अन्ने मुनिराज पण्य ठंडीना परीषहने अततां अततां समाधी लावथी अंते काणधर्मने पाभ्या. आ रीते



चतुर्थयामे । सर्वेऽप्येते विजितशीतपरीषदाः कालं कृत्वाऽनुत्तरविमानेषु एकभवा-  
वतारित्वेन समुत्पन्नाः । एवमन्यैरपि मुनिभिः शीतपरीषदः सोढव्यः ॥ ७ ॥

शीतकालानन्तरं ग्रीष्मागमो भवतीत्यतः शीतपरीषदानन्तरमुष्णपरीषद्व  
जयं प्राह—

मूलम्—उसिणपरियावेणं, परिदाहेण तज्जिण् ।

घिसुं वां परियावेणं, सायं नो परिदेवण् ॥ ८ ॥

छाया—उष्णपरितापेन, परिदाहेन तर्जितः ।

ग्रीष्मे वा परितापेन, सातं नो परिदेवयेत् ॥ ८ ॥

टीका—‘उसिण०’ इत्यादि ।

ग्रीष्मे=उष्णकाले, यत्र हि-भास्करः किरणनिकरैर्दहनं किरन्निव धरातलेऽङ्गार-  
प्रकरमास्तृणन्निव जीवजातं परितापयति, तरुणं परिशोषयति, शुष्कयति च ।

विमानों में एकभवावतारी रूप से उत्पन्न हुए । इसी प्रकार अन्य मुनियों  
को भी शीतवेदना के सहन करने में अपना पराक्रम फोड़ना चाहिये ॥७॥

शीतकाल के बाद ही ग्रीष्मऋतु का आगमन होता है अतः शीत-  
परीषद्व को सहन करने के बाद चौथा उष्णपरीषद्व भी मुनिराज को  
सहन करना चाहिये, यह बात इस नीचे की गाथा द्वारा सूत्रकार प्रद-  
र्शित करते हैं—‘उसिण०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(घिसु-ग्रीष्मे) ग्रीष्मकाल में कि जिसमें सूर्य अपनी प्रखर  
किरणों के निकर से इस समस्त भूमण्डल पर प्रबल ताप की वर्षा किया  
करता है, समस्त जीव जिसमें मानों अग्नि तापसे जलते हों, वृक्षसमूह  
जिस में शुष्क जैसा हो जाता है। विचारे प्यासे भोले मृगों के झुण्ड के

ये आरे मुनिराज अनुत्तर विमानमां येऽस्य अवतारी इपथी उत्पन्न थया. आ  
प्रकारे अन्य मुनियोऽप्ये पशु शीतवेदना सहन करवामां पोतानुं पराक्रम  
अतावतुं नेर्धये. ॥७॥

ठंडीना वअत पथी उनाणानो वअत आवे छे अडीं शीतपरीषद्वने  
सहन कर्या पथी योथो गरमीना परीषद्वने पशु मुनिराजे सहन करवे नेर्धये.  
ये वात नीचेनी गाथाथी सूत्रकार प्रगट करे छे.—“उसिण०” इत्यादि.

अन्वयार्थ—घिसु-ग्रीष्मे ग्रीष्म कालमां के न्यारे सूर्य पोतानां प्रखर किरणोथी  
समस्त भूमंडल उपर प्रबल तापनी वर्षा वरसावे छे. समस्त जव नेमां  
अग्निना तापनी आइक अणता डोय छे, वृक्ष समूह शुष्क अनी नय छे.

મૃગતૃષ્ણાભિરારચિતજલતરંગમાલાભિરિવ પ્રચલજ્જલધારા વિભ્રમમુપગતા મુગ્ધમૃગ-  
યૂથાઃ પિપાસયા પરિતઃ પ્રધાવન્તિ । મનુષ્યાઃ સ્વલુ પ્રાયશઃ પ્રચળ્ડમાર્ત્ત્ત્વકરનિક-  
રસંપર્કપ્રવરરજઃકળોપેતવાત્યાપરિઘટ્ટિતાઃ પ્રતપ્તભૂતલનિપતિતાઃ પિપાસયાઽઽસ-  
ન્નમૃત્યવ્ ઇવ ભવન્તિ । યત્ર સ્વલુ વનસ્થલી પિપાસાવશવિભ્રમદ્ધિર્વિવિધપશુપક્ષ્યા-  
દિભિઃ પરિશુષ્કતાલુરસનકળ્પૈઃ સમાકુલા, નમસ્તલં ચ નાનાવિધ પત્રકાષ્ટતૃણકચ-  
વરોદ્ધૂલનકરપ્રતિકૂલમારુતધ્વનિસમાકુલં ભવતિ । તસ્મિન્નુષ્ણકાલે, વા શબ્દેન-  
શરદિ વર્ષાસુ વા, ઉષ્ણપરિતાપેન=ઉષ્ણમ્-સૂર્યકિરણસંયોગાત્તપ્તમ્-ભૂમિધૂલિપાષાણા-

હુણ્ડ જિસમેં “ યહ જલધારા બહ રહી હૈ ” હિસ પ્રકાર અમોત્પાદક  
મૃગતૃષ્ણા સે પાગલ જૈસે બને હુએ ઇધર ઉધર દૌડને લગતે હૈં । જિસ  
ઋતુમેં સૂર્ય કી પ્રચળ્ડકિરણોં સે ધૂપ સ્વૂબ પડતી હૈ જિસસે રેતી તપ  
જાતી હૈ ઓર લૂ ચલને લગતી હૈ । સંતપ્ત રજકળ સે મિશ્રિત ઉસ લૂકે  
વેગ સે વ્યાકુલ હોકર મનુષ્ય ખી ઉસ તપી હુઈ ભૂમિ પર ગિર ગિર કર  
પ્યાસ કે મારે મૂર્છિત હો આસન્નમૃત્યુ જૈસે દિખાઈ દેને લગતે હૈં । જિસ  
ગ્રીષ્મ કાલ મેં પિપાસા કે વશ જિનકે તાલૂ ઓષ્ઠ એવં કંઠ સૂચ રહે હૈં  
ગર્મીં કે મારે મુંહ જિન કે ફટે હુએ હૈં ઓર જીભ લટક રહી હૈ એસે  
પશુ પક્ષિયોં સે અટવી વ્યાસ હો જાતી હૈ । તથા જિસમેં આકાશ  
નાનાવિધપત્ર, કાષ્ઠ, તૃણ, કૂડા-કચરા આદિ કો ઉડાને વાલી પ્રતિકૂલ  
વાયુ કી સનસનાહટ ધ્વનિ સે વ્યાસ હો જાતા હૈ એસે ઉષ્ણકાલ મેં ।  
( ઉસિણપરિયાવેગં-ઉષ્ણપરિતાપેન ) ઉષ્ણપરિતાપ સે-સૂર્ય કિરણોં કે

તરસથી બીચારા લોણાં હરણુનાં ટોણાં “ આ જળધાર વહી રહી છે ” આ  
પ્રકારના અમથી પાગલની માફક મૃગજળ રૂપી જળના આભાસ તરફ  
દોડતાં રહે છે. જે ઋતુમાં સૂર્યના પ્રચંડ કિરણોથી ખૂબ તાપ પડે છે તેનાથી  
રેતી તપે છે, અને લૂ ચાલવા લાગે છે, સંતપ્ત રજકળથી મિશ્રિત તે લૂના  
વેગથી વ્યાકુળ બની મનુષ્ય પણ તે તપેલી ભૂમી ઉપર તરસના માર્યા પડી  
જઈ મૂર્છિત થઈ આસન્ન મૃત્યુ જેવા દેખાય છે. જે ગ્રીષ્મકાળમાં અટવીમાં પીપા-  
સાને વશ જેનું તાળવું, હોઠ અને કંઠ સુકાઈ જાય છે, ગરમીના માર્યા મોઢું જેનું  
ફાટી રહે છે અને જીભ લટકી જાય છે એવા પશુ પક્ષિઓથી વ્યાપ્ત થઈ જાય છે.  
તથા જેમાં આકાશ બુદ્ધી બુદ્ધી જાતનાં પાંદડાં, લાકડું, ઘાસ, કચરા, પુંબ વગેરેને  
ઉડાવવાવાળા પ્રતિકૂળ વાયુના સુસવાટા કરતા ધ્વનિથી વ્યાપ્ત થઈ જાય છે. એવા  
ઉષ્ણકાળમાં “ ઉસિણ પરિયાવેગં-ઉષ્ણપરિતાપેન ” ઉષ્ણ પરિતાપથી સૂર્ય કિરણોના

दिकं, तेन परितापः—उष्णपरितापस्तेन तर्जितः, अत्यंत पीडितःसन्, तथा—परिदाहेन=सूर्यकिरणसंतप्तवायुना 'लू' इति भाषाप्रसिद्धेन, दाहज्वरादिकृता-न्तरिकतापेन वा, तर्जितः, तथा परितापेन=सूर्यकिरणादिजनिततापेन-तर्जितः, सातं=सुखं प्रति न परिदेवयेत्=हा ! कदा मम चन्द्रचन्दनशीतलानिलादिभिः सह संयोगो भविष्यति येन मम शान्तिः स्यादिति ॥ ८ ॥

उपदेशान्तरमाह—

मूळम्—उष्णहाहिततो मेहावी, सिंहाणं नो वि<sup>३</sup> पत्थंए ।

गायं नो परिस्त्रिचेज्जा, न<sup>३</sup> वीएँज्जा थं अत्पयं ॥९॥

छाया—उष्णाभितप्तः मेधावी, स्नानं नो अपि प्रार्थयेत् ।

गात्रं नो परिषिञ्चेत्, न वीजयेच्च आत्मानम् ॥९॥

संयोग से तप्त ऐसे जो भूमि, धूलि, एवं पाषाण आदि हैं उनके द्वारा जो परिताप—कष्ट होता है उससे, तथा (परिदाहेण) सूर्य की किरणों द्वारा गर्म हुई वायु से—लूसे, अथवा दाहज्वर आदि से होने वाले आन्तरिक ताप से (परियावेणं-परितापेन) एवं सूर्य की किरणों से उत्पन्न हुई अत्यंत गर्मी से (तज्जिए-तर्जितः) अतिशय पीडित साधु (सायं नो परिदेवए-शातं नो परिदेवयेत्) सुख की वाच्छा न करे—हा ! किस समय मुझे चन्द्र अथवा चंदन के समान शीतल पवनादि का संयोग मिलेगा कि जिस से मुझे शान्ति मिले । अर्थात्—साधु का कर्तव्य है कि वह हर एक अवस्था में उष्णपरीषह को जीते किन्तु इस से घबरावे नहीं ॥ ८ ॥

संयोगथी तपेल अेवी ने भूमि धूलि अने पाषाणुवाणी छे. तेना द्वारा ने कष्ट थाय छे, अेनाथी तथा “परिदाहेण” सूर्यना किरणुा द्वारा गरम थयेला वायुथी लूथी, अथवा दाहज्वर आदिथी थनार आंतरिक तापथी परियावेणं-परितापेन अने सूर्यना किरणुथी उद्भवेल अत्यंत गरमीथी तज्जिए-तर्जितः अतिशय पीडित साधु “सायंनो परिदेवए-शातं नो परिदेवयेत् सुअणी वांच्छना न करे-भने क्या समये अंद्र अथवा अंदननी अेवी शीतल पवन आदिने संयोग भणे के अेथी भने शान्ती थाय. अर्थात्—साधुनुं कर्तव्य छे के ते हरेक अवस्थाभां उष्ण परीषहने अते, परंतु तेनाथी गबराय नडी. (८)

टीका—‘उण्हाहित्तो’ इत्यादि ।

मेधावी=आगमोक्तमर्यादानुवर्ती मुनिः, उष्णाभितप्तः=उष्णेन-उष्णस्पर्शेन, अभितप्तः-तापाकुलः सन् स्नानं नो प्रार्थयेत्=नैवाभिलषेत् । अपि च गात्रं-शरीरं, नो परिषिञ्चेत्-न जलैरार्द्रीकुर्यात् । च=पुनः आत्मानं-स्वदेहं न बीजयेत्=व्यजनादिना शरीरे वायुं नोदीरयेत् ।

अयं भावः-उष्णतप्तोऽपि मुनिर्जलावगाहनस्नानव्यजनवातादि वर्जयेत्, न च जलैर्गात्रं सिञ्चेत् । आतपवारणाय स्वदेहोपरि रजोहरणादिना छायां न कुर्यात् । न चापि छात्रादिकं धारयेत् । मनसाऽपि न प्रार्थयेत् किं तु उष्णपरीषहं सम्यक् सहेतेति ।

‘उण्हाहि०’ इत्यादि ।

अन्वयार्थं-(मेधावी-मेधावी) आगमोक्त मर्यादा का अनुसरण करने वाला मुनि (उण्हाहित्तो-उष्णाभितप्तः) उष्णस्पर्श से संतप्त होता हुआ भी (सिसाणं नो विपत्थए-स्नानं नोऽपि प्रार्थयेत्) स्नान की अभिलाषा न करे । तथा (गायं नो परिसिञ्चेज्जा-गात्रं नो परिषिञ्चेत्) अपने शरीर ऊपर पानी न छींटे तथा उसको गोला भी न करे और न गीले कपड़े से ही पोंछे । तथा (अप्पयं न वीएज्जा-आत्मानं न बीजयेत्) शरीर पर बीजना आदि से हवा भी न करे ।

इसका भाव यह है-उष्ण से संतप्त भी मुनि अचित्त जल का भी अवगाहन करना-उससे स्नान करना, बीजनादि से-पंखा आदि से हवा करना इन समस्त शीतलोपचारकारक क्रियाओं का परित्याग कर देवे । अपने शरीर पर गर्मी की वेदना को शमन करने के लिए शीतल जल के

“उण्हाहि” इत्यादि.

अन्वयार्थं-मेधावी-मेधावी आगमभां कडेल मर्यादानु अनुसरणु करवावाणा मुनि उण्हाहित्तो-उष्णाभितप्तः उष्ण स्पर्शेन संतप्त थवा छतां पणु सिसाणं नो विपत्थए-स्नानंनोऽपि प्रार्थयेत् स्नाननी अबिलाषा न करे गायं नो परिसिञ्चेज्जा-गात्रं-नो परिषिञ्चेत् पोताना शरीर उपर पाणी न छींटे तेम अने लीनुं पणु न करे के न तो लीना कपडाथी लुछे, तथा “अप्पयं न वीएज्जा”-आत्मानं न बीजयेत् शरीर उपर वीजणा वगेरेथी हुवा पणु न नाणे.

आनो भाव अे छे-उष्णताथी संतप्त थनेल मुनिअे पाणीने आशरो लेवे, अेनाथी स्नान करवुं, पंखा आदिथी हुवा भावी आ समस्त शीतण उपचार कारक क्रियाअेनो परित्याग करवे। पोताना शरीर उपर गरमीनी वेदनानुं शमन करवा भाटे शीतण वणनो छींटे पणु न लेवे, आतपनुं वारणु

अत्र दृष्टान्तः—

आसीत् तगरानगयां दत्तनामकः श्रेष्ठी । तस्य भद्राभार्यायामरहन्नक नामकः पुत्रो जातः । एकदाऽसौ दत्तश्रेष्ठी भार्यापुत्राभ्यां सहार्हन्मित्राचार्यसंनिधौ धर्मदेशनां निशम्य विरक्तः सन् प्रव्रज्यां गृहीतवान् । स दत्तमुनिः स्नेहवशादारहन्नकं कदाचिदपि भिक्षार्थं न प्रेषयति, स्वयमेव भिक्षामानीय तं पोषयति, न च तेन किमपि कार्यं कारयति, अतोऽसौ सुकुमारो जातः । अन्यदा कदाचित् तस्य पिता

छींटे भी न दे, तथा आतप को चारण करने के लिये रजोहरणादिक से शरीर पर छाया भी न करे। छत्र-छाता-आदि को भी धारण न करे और न इस प्रकार की क्रियाओं को करने की भावना ही रखे। जैसे भी बने उष्णपरीषह को सहन करे।

दृष्टान्त—तगरा नाम की नगरीमें दत्त नाम का एक सेठ रहता था। उसकी धर्मपत्नी का नाम भद्रा था। भद्रा से एक पुत्र हुआ, जिस का नाम अरहन्नक था। एक समय सेठ ने अपने स्त्री पुत्र के साथ जाकर अर्हन्मित्र नामके किसी आचार्य के पास धर्म का उपदेश सुना। सुनकर वे संसार से विरक्त हो गये और स्त्रीपुत्रसहित उसने दीक्षा अंगीकार करली, पुत्र से प्रेम होने के कारण वे कभी भी अपने पुत्र को भिक्षा लाने के लिये नहीं भेजते थे, किन्तु स्वयं जाकर भिक्षा लाते और पुत्र को भी आहार कराते। पुत्र से कुछ भी कार्य नहीं कराते। इस तरह दत्तमुनि का वह पुत्ररूप शिष्य बहुत ही सुकुमार प्रकृति के

करवा भाटे रणेडरणादिकथी शरीर उपर छाया पणु न करवी, छत्र-छत्री वगेरे पणु धारणु न करवां. अने आ प्रकारनि क्रियाओ करवानी लावना पणु न राषवी. जेम अने तेम उष्णपरीषहने सहन करवां.

दृष्टान्त—तगरा नामनी नगरीमां दत्त नामना ऐक शेठ रहैता डता, तेनी धर्मपत्तिनुं नाम लद्रा डतुं. लद्राथी ऐक पुत्र थये जेतुं नाम अरहन्नक डतुं ऐक समय शेठे पोताना स्त्री पुत्रनी साथे अर्हन्मित्र नामना ऐक आचार्य पासे धर्मने उपदेश सांलये. ऐ उपदेशथी संसारथी विरक्तलाव जगये. अने स्त्री पुत्र साथे तेले दीक्षा अंगिकार करी लीघो. पुत्रथी प्रेम होवाने अरण्णे कही पणु पोताना पुत्रने भिक्षा लाववा भाटे भोकलता न डता परंतु पोते जे जेठ ने भिक्षा लावता अने पुत्रने पणु आहार करावता. पुत्रथी कांछ पणु कार्य करावता नडीं. आ रीते दत्त मुनिना ऐ पुत्रइप शिष्य धण्णी जे सुकुमार प्रकृतिवाणा

दत्तमुनिर्मृतः तदनन्तरं साधुभिः प्रेरितः सन्नरहन्नको ग्रीष्मकाले भिक्षार्थं गतः । स पूर्वमकृतश्रमोऽतीवसुकुमाराङ्गः सूर्यकिरणोत्तमरेणुनिकरण चरणतले, तपनांशुभिर्मस्तके च तापाभिभूतस्तृषाशुष्कण्ठोऽरहन्नकः कस्यचित् श्रेष्ठिनः प्रोत्तुङ्गभवनस्य-च्छायामाश्रित्य तिष्ठति ।

तदा तं सुकुमारं रूपसौन्दर्यं लावण्यगुणैर्मन्मथावतारं मुनिमरहन्नककुमारं दृष्ट्वा काचित् प्रोषितभर्तृका वणिग्भार्या दास्या तं समाहूय गृहमानयति । ततः सा तं पृच्छति—भवान् किं याचते ? अरहन्नकः प्राह—भिक्षां याचे । ततः सा कामवशंगता बन गये । कालान्तर में दत्तमुनि का स्वर्गवास हो गया । अब क्या था—साधुओं से प्रेरित होकर वह एक समय भिक्षा लाने के लिये ग्रीष्म काल में गये । सुकुमार प्रकृति के तो थे ही, पिता के समय पहिले इन्होंने ने कुछ परिश्रम भी नहीं किया था, अतः उस ग्रीष्मकाल में सूर्य की प्रचण्ड किरणों से संतप्त भूमि पर चलने से उनके पैरों में छाले पड़ गये । माथा गरम हो गया । कंठ गर्मी के मारे सूख गया गर्मी की इनको अधिक वेदना हुई । पास में किसी एक सेठकी बहुत ऊँची हवेली थी सो वे गर्मी के मारे उसकी छाया में आकर ठहर गये । ठहरे हुए इन मुनि को एक प्रोषितभर्तृका—विरहिणी—स्त्री ने देखा । यह शारीरिक रूप, लावण्य एवं सौन्दर्य से ऐसे मालूम पड़ते थे कि जैसे मानो साक्षात् देव ही हो । देखते ही सुकुमार इस अरहन्नक मुनि को उस विरहिणी वणिग्भार्या ने अपनी दासी द्वारा मकान ऊपर बुलवाया । मकान ऊपर पहुँचते

गयी । कालान्तरे दत्तमुनिने स्वर्गवास थयो । आ पछी साधुओंनी प्रेरणाथी प्रेरित गनी ते सुकुमारमुनि ग्रीष्मकालमां भिक्षा लेवा भाटे गया । सुकुमार प्रकृति तो होती न, पितानी डालरीमां तेणे नरा नेटलो पणु परिश्रम करेन न हुतो । आथी ग्रीष्मकालमां सूर्यनां प्रचंड किरणोथी संतप्त अनेल भूमि उपर चालवाथी अना पगमां छाला पडी गयां, माथुं गरम थर्ध गथुं, गणुं गरमीना कारणे सुकाईगथुं, गरमीनी अने अधिक वेदना थर्ध, पासे न कोर्ध अेक शेडनी धणु न उंची हुवेदी हुती—आथी ते अे हुवेदीनी छायामां नर्धने उला रह्या । उलेला मुनिने नेर्ध अेक विरहणी स्त्रीनु अे तरक्क लक्ष जेथायुं अे शारीरिक रूप, लावण्य अने सौंदर्यथी तेनी द्रष्टिअे देव तुल्य हेभाया । आ अरहन्नक सुकुमार मुनिने नेर्धने ते विरहिणी वणिक् स्त्रीअे पोतानी दासी भार-दत्त मकान उपर बोलाव्या । मकान उपर पहुँचतां न मुनि अरहन्नकने तेणे



तं प्रलोभ्य स्वभवने स्थापितवती । अथ तन्माता भद्रासाध्वी मुनीनां निवासस्थाने वन्दनार्थमागता । सा तत्र तमपश्यन्ती अर्हन्मित्राचार्यमपृच्छत्-भदन्त ! अरहन्नकमुनिः क्व वर्तते ? अर्हन्मित्राचार्यः प्राह-अरहन्नको भिक्षार्थं गतः, किं तु न पुनः परावृत्तः, अतस्तमन्वेषयन्ति मुनयः, इति तदनुपलब्धिवचनं वज्राघातमिवकठोरं श्रुत्वा व्याकुला सती भद्रा साध्वी पुत्रमोहेन अरे अरहन्नक ! अरे अरहन्नक ! इत्युच्चैर्विलपन्ती नयननिःस्रवदश्रुधारां पातयन्ती मोहेन पदे पदे प्रस्खलन्ती प्रति-

ही मुनि अरहन्नक से उसने पूछा आप क्या चाहते हैं ? अरहन्नक ने कहा भिक्षा चाहता हूँ । काम के वशंगत हुई उस स्त्री ने भिक्षा का लोभ देकर अरहन्नक मुनि को अपने घर पर ठहरा लिया । उधर अरहन्नक मुनि की माता भद्रा साध्वी मुनियों को वन्दना करने के लिये आई । अरहन्नक मुनि को ज्यों ही वहाँ साध्वी ने नहीं देखा त्यों ही वह अर्हन्मित्राचार्य को पूछने लगी कि भदन्त ! अरहन्नक मुनि कहां हैं । आचार्य महाराज ने कहा कि वे भिक्षा लेने के लिये बाहर गये थे, परन्तु अभी-तक वापिस नहीं आये हैं अतः अन्यमुनिजन उनकी तलाश कर रहे हैं । माता भद्रा साध्वी ने ज्यों ही यह बात सुनी त्यों ही उसके हृदय में वज्र के आघात जैसा एक कठोर आघात हुआ और उसी समय उस का चित्त विक्षिप्त-हो गया । वह पुत्र के मोह से बहुत ही आकुल-व्याकुल होने लगी, और अपने आप बड़-बडाने लगी-अरे अरहन्नक ! तू इस समय कहां है, कह तो सही । इस प्रकार ऊँचे स्वर से विलाप करती और आँखों से आँसुओं की धारा बहाती हुई वह स्थान स्थान पर

पूछ्युं. आप शुं धन्छो छे ? अरहन्नके कल्युं के, हुं भिक्षा यालुं छुं. कामने वश भनेल ते स्त्रीये भिक्षाने। दोल आपीने अरहन्नक मुनिने पेताने घेर रेकी दीया. अहिं अर्हन्नक मुनिनी माता भद्रा साध्वी मुनियोने वदंष्टा करवा आवी. अरहन्नक मुनिने न्यारे ते साध्वीये त्यां न जेया त्यारे आचार्यने पूछ्युं के, ' हे भदन्त ! अरहन्नक मुनि कयां छे ? आचार्य भडराणे कल्युं के, भिक्षा देवा माटे तेया भडार गया छे, परंतु डणु सुधी पाछा इरेल नथी. जेथी अन्य मुनिजन तेनी तपास करी रहेल छे. माता भद्रा साध्वीये न्यारे आ वात सांभणी त्यारे तेना हुं-यमां वज्रना घा जेवे। ओक आघात थयो अने ओ वभते अनेतुं चित्त व्याकुण भनी गयुं. ते पुत्रना मोहथी घणुं आकुण व्याकुण थवा लाग्यां, अने पेताना मनमांज भडभडवा लाग्यां के, अरे अरहन्नक ! तूं आ सभये कयां छे, कहे तो अरे आ प्रकारे उंचा स्वरथी विलाप करतां अने आंजोथी अश्रुधारा वहावतां, ते

ड० ४०

स्थलं भ्राम्यति, सा यत्र यत्र गच्छति तत्र तत्र पुनः पुनर्लोकान् पृच्छति—मम प्राणवल्लभः पुत्रोऽरहन्नकः क्वापि दृष्टो भवद्भिः? । इत्येवं पृच्छन्ती रुदती यं कमपि दृष्टवती, तं प्रति—अयमरहन्नक इति मत्वा हर्षमुद्रहन्ती, पुनस्तमनालोक्य रुदती विलपन्ती एकदा यत्रारहन्नक आसीत् तद्भवनसमीपे समागता । तदा गवाक्षवर्तिनाऽरहन्नकेन तादृशावस्थापन्ना माता दृष्टा, संजातात्यन्तसंवेगः स गवाक्षादुत्तीर्य चरणयोः पतित्वा मातरमेवमाह—हे मातः ! सोऽहमरहन्नकः । इति तद्वचनं श्रुत्वा माता स्वस्थमानसा जाता, तदनु सा पुत्रं प्राह—वत्स ! भव्यकुलोत्पन्नस्य तव कथमीदृशी-गिरती पडती इधर उधर घूमने लगी । जहां जहां वह जाती वहां २ पूछती कि हे महानुभावो ! कहो तो सही तुम लोगों ने मेरे पुत्र अरहन्नक को कहीं देखा भी है ? । इस प्रकार पूछती, विलाप करती, रोती हुई वह भद्रा साध्वी जिस किसी को भी देखती हर्ष के भावावेश में आकर कहने लगती 'यह रहा मेरा अरहन्नक' । परन्तु जब उसमें उसे अरहन्नक दिखाई नहीं पड़ता तो पुनः रोने लगती । इस प्रकार अत्यंत विह्वल बनी हुई एक दिन वह वहां पहुँची जिस मकान में स्वयं अरहन्नक थे । जब यह वहां पहुँची थी उस समय अरहन्नक उस मकान की खीड़की में बैठे हुए थे । उसने रोती हुई अपनी माता को ज्यों ही देखा त्यों ही उसे संवेग के भाव अतिशय रीति से जागृत हो उठे । वह इकदम झरोखे से नीचे उतर कर माता के दोनों चरणों में पड़ गये और बोला कि हे मातः मैं अरहन्नक हूँ । इस प्रकार उनके वचन को सुनकर माता का चित्त शान्त हो गया और बोली—वत्स ! तुम तो कुलवान् हो जातिमान हो फिर तुम्हारी

स्थणे स्थणे अथडातां अडिं तडिं इरवा दाग्यां. ने ते स्थणे ते ँर्ध पूछतां के डे भडानुभावो ! कडेा तो भरा तभोअे भारा पुत्र अरडन्नकने कयांर्ध देभये छे ? आ प्रकारे पूछतां अने विलाप करतां अने रोतां ते लद्रा साध्वी न्यारे केांर्ध ने न्नुअे तो डर्धना लावावेषमां आवीने कडेवा दागतां के आ रह्यो भारे अरडन्नक ! परंतु न्यारे तेने अरडन्नक न देभातो त्यारे ते इरीथी रोवा दागतां आ प्रकारे अत्यंत विह्वल अनी अेक दिवसे ते अे मकान डपर पडेांअ्यां के न्यां अरडन्नक डतो. न्यारे ते त्यां पडेांअ्यां ते वअते अरडन्नक ते मकाननी अेक भारीमां अेडेल डतो. तेअे चोतानी भाताने रोती न्नेर्ध त्यारे तेनामां संवेगने लाव अतिशय न्नुगृत थये. ते अेकदम अडभेथी नीचे डतरीने भाताना अरखोमां पडी गये अने ओह्ये के डे माता ! डुं अरडन्नक धुं. आ प्रकारनां तेनां वचन सांभणीने भातानुं चित्त शान्त अनी गयुं अने ओली, वत्स !

दशा ? सोऽवदत्—हे मातश्चारित्रं पालयितुमसमर्थोऽस्मि । सा प्राह—तर्हि अनशनं कुरु । यतः—

वरं पवेशो जल्लिए हुयासणे,  
न यावि भग्गं चिरसंचियं वयं ।

वरं हि मच्चू सुविसुद्धकम्मओ,  
न यावि सीलक्खलियस्स जीवणं ॥ १ ॥

छाया—वरं प्रवेशो ज्वलिते हुताशने,  
न चापि भग्नं चिरसंचितं व्रतम् ।

वरं हि मृत्युः सुविशुद्धकर्मतो,  
न चापि शीलस्खलितस्य जीवनम् ॥ १ ॥

सुविशुद्धकर्मतः—निरवद्यक्रियाऽऽचरणतः, मृत्युः=मरणं, वरं=श्रेयः, न तु शीलस्खलितस्य=चरित्रपतितस्य जीवनम् । अन्यत् सुगमम् ।

ऐसी दशा क्यों हुई ?। अरहन्नक बोले—मातः ! इस दशा के होने का कारण चारित्र को पालन करने की असमर्थता है। माता बोली—यदि तुम चरित्र पार करने के लिये असमर्थ हो तो अनशन करो। जैसे कहा है—

“ वरं पवेशो जल्लिए हुयासणे,  
न यावि भग्गं चिरसंचियं वयं ।

वरं हि मच्चू सुविसुद्धकम्मओ,  
न यावि सीलक्खलियस्स जीवणं ॥ १ ॥ ”

धधकती हुई अग्नि में प्रवेश करना तो ठीक है परन्तु चिरसंचित व्रत का भंग करना ठीक नहीं है। सुविशुद्ध कर्म—शील आराधन करते

तमे तो कुणवान छो, ळतिवान छो, छतां तमारी आवी दशा केम थछ ? अरहन्नके कहुं, माता ! आ दशा थवानुं कारणु आरित्र पालन करवानी अस-मर्थता छे. माताअे कहुं, जे तमे आरित्र पालन करवा भाटे असमर्थ छे तो अनशन करो. जेम कहुं छे—

“ वरं पवेशो जल्लिए हुयासणे,  
न यावि भग्गं चिरसंचियं वयं ।

वरं हि मच्चू सुविसुद्धकम्मओ,  
नयावि सीलक्खलियस्स जीवणं ॥ १ ॥ ”

ललकती अेवी अग्निमां प्रवेश करवेो ठीक छे, परंतु चिरसंचित व्रतनेो लंग करवेो ठीक नथी. सुविशुद्ध कर्मशील आराधना करतां करतां मृत्यु थछुं ठीक छे,

एवं मातृवचः श्रुत्वा स संजातवैराग्यः सर्वसावद्ययोगं प्रत्याख्याय पुनः संयमं गृहीतवान् । तत उत्कृष्टाचारेण ग्रामानुग्रामं विहरन् उष्णपरीषहं सहमानः क्वचित् पाषाणमयप्रदेशं प्राप्य चिन्तयति—‘प्रदेशोऽयं प्रचण्डमार्त्तण्डकिरणसंयोगाद् वह्नि-वत्प्रतप्तः, उष्णतरश्च वायुः प्रवहति, अत्र पदमपि गन्तुमसमर्थोऽस्मि,’ एवं विचिन्त्य परितः प्रतप्तभूमीतलं विलोक्य परीषहोऽयं मया सोढव्य इत्यवधार्य तप्तशिलोपरि करते मृत्यु होना ठीक है, परन्तु शील से स्खलित व्यक्ति का जीवन ठीक नहीं है। निरवद्य क्रिया का नाम सुविशुद्धकर्म एवं चारित्र्य से पतित होने का नाम शील से स्खलित होना है।

इस प्रकार जननी के वचन सुनकर उसका सुप्त वैराग्य जग उठा, पश्चात् उसने सर्वसावद्य योग का प्रत्याख्यान कर पुनः संयम लिया। माता के वचन से उद्बोधित होकर उसने फिर उत्कृष्ट चरित्र का आराधन किया और चारित्र्य की आराधनापूर्वक ही ग्रामानुग्राम विहार करते हुए उष्णपरीषह को सहन किया। एक समय की बात है कि ये विहार करते २ ऐसे प्रदेश में पहुँचे कि जहाँ पत्थरों की बहुलता थी। वहाँ पहुँच कर उन्होंने विचार किया कि यह प्रदेश सूर्य की किरणों से अधिक संतप्त बना हुआ है। यह तो ऐसा तप रहा है कि जैसे मानों अग्नि ही जल रही हो। वायु भी इतनी गर्म चल रही है कि जिससे एक पैर भी सुखपूर्वक चला नहीं जा सकता है। इस प्रकार विचार करते हुए अरहन्नक मुनि ने अपने आसपास की समस्त भूमि को

परन्तु शीलवर्ती स्खलित थयेव व्यक्तिनु श्रवण ठीक नहीं. निरवद्य क्रियानुं नाम सुविशुद्ध कर्म, चारित्र्यवर्ती पतित थवानुं नाम शीलवर्ती स्खलित अननुं ते.

आ प्रकारनां मातानां वचन सांभजीने तेने सुतेदो वैराग्य जगी उठ्यो. अने तेणे सर्व सावद्य योगनुं प्रत्याख्यान करी पुनः संयमने धारणु क्यो. माताना वचनथी उद्बोधित जनी तेणे पछी उत्कृष्ट चारित्र्यनुं आराधन क्युं अने चारित्र्यनी आराधना पूर्वक ज आमनुआम विहार करीने उष्ण परीषहने सहन क्यो. अेक समये अे विहार करतां करतां अेवा प्रदेशमां पडोंची गया के, ज्यां पत्थराओ मोटा प्रमाणुमां हुता. त्यां पडोंचीने तेओअे विचार क्यो के, आ प्रदेश सूर्यना किरणोथी अधिक संतप्त जनेदो छे. आ तो अेवा तपी रह्या छे के जणु अग्नि ज सणगी रडी छे. वायु पणु अेटली ज रीते गरम कुंकाई रडेळ छे आथी अेक उगतुं पणु सुखपूर्वक चाली शकतुं नथी. आ प्रकारने विचार करतां करतां अरहन्नक मुनिये पोतानी आसपासनी

समुपविशति । तत्र-प्रत्याख्याताष्टादशपापः कृतदुष्कृतगर्हः क्षामितसकलसत्त्वः स्वीकृतचतुर्विधशरणः, परित्यक्तसर्वसंगः पुनः पुनः कृतपंचनमस्कारोऽनशनं कृत्वा समाधिभावसम्पन्नः पादपोपगमनेन मुहूर्तमात्रेण सुकुमारशरीरो नवनीतपिण्डइवोष्णेन विलीनः सौधर्म सुरलोकं गतः, एवं मुनिभिरुष्णपरीषहः सोढव्यः ॥९॥

ग्रीष्मकालान्तरं वर्षाकाले दंशमशकादिकृतपीडां प्राप्तेन साधुना तत्परीषहः सोढव्यः इत्याह—

मूलम्—पुँटो यं दंसंमसएहिं, संम रेवं महाँमुणी ।  
नागो संगामसीसे वां, सूरुो अभिहँणे परं ॥१०॥

छाया—स्पृष्टश्च दंशमशकैः सम एव महामुनिः ।

नागः संग्रामशीर्षे वा, शूरोऽभिहन्यात् परम् ॥ १० ॥

अत्यंत उष्ण देखा और पुनः विचार करने लगे कि यह उष्णपरीषह मुझे साधु के नाते अवश्य सहन करना चाहिये, ऐसा निश्चित कर वह एक तप्त शिला के ऊपर बैठ गये। वहाँ उन्होंने १८ पापस्थानों का प्रत्याख्यान किया, अपने दुष्कृतों की गहरी की, समस्त जीवों से खमता खामणा किया। चार प्रकार के शरणों को स्वीकार किया, समस्त ममता का त्याग किया, एवं पंचपरमेष्ठी को बार बार नमस्कार किया। पश्चात् अनशन धारण कर समाधिभाव से युक्त अरहन्नक मुनि ने पादपोपगमन संथारा किया। एक मुहूर्तमात्र में ही उनका सुकुमार शरीर मक्खन के पिंड की तरह गर्मी से विलीन हो गया और वे मर कर सुधर्मदेवलोक में देव हुए। इसी तरह अन्य मुनि जनों को भी उष्णपरीषह सहन करना चाहिये ॥ ९ ॥

समस्त भूमीने अत्यंत उष्ण जेठ अने पाछा विचार करवा लाग्या के उष्ण परीषह भारे साधुना धर्मथी अवश्य सहन करवे जेठये. जेवे निश्चय करी जेक तपेवी शिला उपर जेसी गया ज्यां तेजेजे १८ पापस्थानोतुं प्रत्याख्यान कर्युं, पोताना दुष्कृत्योनी भाइी भागी, समस्त जेवेथी भमत आभणु लीधां, चार प्रकारना शरणुना स्वीकार कर्यो अने समस्त ममतानो त्याग कर्यो तेमज पंचपरमेष्ठीने वारवार नमस्कार करवा लाग्या. पछी अनशन धारणु करी समाधि-भावथी युक्त अरहन्नक मुनिजे पादपोपगमन संथारो कर्यो. जेक मुहूर्त मात्रमां ज तेमनुं सुकुमार शरीर माणणुना पीडनी भाइक गरमीथी जोगणी गर्युं. अने ते मरीने सुधर्म देवलोकमां देव थया. आरीते अन्य मुनिजनेजे पणु उष्णपरीषह सहन करवे जेठये. ॥ ९ ॥

टीका—‘ पुट्टो य ’ इत्यादि ।

च=अपरं च सम एव=उपकार्यपकारिषु तुल्यभावधारकः, महामुनिः=उग्र-  
तपश्चरणशीलः दंशमशकैः, इदमुपलक्षणम्, तेन मत्कुणयूकादिभिरपि स्पृष्टः—पीडितः  
सन्, संग्रामशिरसि=रणमस्तके, शूरः=पराक्रमी, नागो वा=हस्तीव परं=शत्रुं-  
रागद्वेषलक्षणं भावशत्रुम्, अभिहन्यात्=पराजयेत् । ‘ समरेव ’ इत्यत्रार्थत्वाद्देफः ।

अयं भावः—यथा—शूरः=करी शराघातैर्व्यथितोऽपि रणे शत्रुं जयति, तद्वत्  
साधुरपि दंशमशकादिभिः पीड्यमानोऽपि कषाय शत्रुं जयेदिति ॥ १० ॥

ग्रीष्म काल के बाद वर्षा काल आता है, उसमें दंशमशक आदि का  
परीषह उत्पन्न होता है। साधु का कर्तव्य है कि वह इस दंशमशकरूप  
पांचवे परीषह को सहन करे, इस बात को सूत्रकार आगे की गाथा  
द्वारा बतलाते हैं—‘ पुट्टो य ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( समरेव-समएव ) उपकारी और अपकारी में तुल्य भाव  
धारण करने वाला ( महामुणी-महामुनिः ) उग्रतपश्चरणशील महामुनि  
( दंसमसएहिं-दंशमशकैः ) दंशमशकों के द्वारा, उपलक्षण से मत्कुण-  
खटमल, यूका-जूं आदि द्वारा भी ( पुट्टो-स्पृष्टः ) पीडित होने पर ( संगाम-  
सीसे-संग्राम शीर्षे ) युद्ध के बीच में ( सूरौ-शूरः ) पराक्रमी ( नागो वा-  
नाग इव ) हस्ती की तरह ( परं अभिहणे-परं अभिहन्यात् ) शत्रु को-  
रागद्वेषरूप भावशत्रु को परास्त करे ।

गरभक्तु पथी योभासानो सभय आवे छे आभां दंशमशक वगेरे परी-  
षडनी उत्पत्ति थाय छे, साधुनुं अे कर्तव्य छे के दंशमशकइपी पांचभे परीषड  
सहन करे. आ वातने सूत्रकार आगणनी गाथाथी भतावे छे.

“ पुट्टो य ” इत्यादि.

अन्वयार्थ—( समरेव-समएव ) उपकारी अने अपकारीमां सभभाव धारण  
करवावाणा महामुणी-महामुनिः उग्र तपस्या करनार शीलवान भडामुनि दंसमसएहिं-  
दंशमशकैः डांस, भच्छर द्वारा उपलक्षणथी माकड, जू, आदि द्वारा पणु पुट्टो-स्पृष्टः  
पिडित होवा छतां “ संगामसीसे-संग्रामशीर्षे ” युद्धनी वयमां ( सूरौ-शूरः ) पराक्रमी  
( नागो वा-नागइव ) हाथीनी माकड ( परं अभिहणे-परं अभिहन्यात् ) शत्रुने-राग द्वेष  
इप भावशत्रुने परास्त करे. अेनो भाव आ छे. जेम पराक्रमी हाथी आषोना  
आघातथी व्यथित होवा छतां पणु रणुमां शत्रुअेनो डरावे छे तेवी रीते साधु पणु  
डांस, भच्छर आदि द्वारा पीडित होवा छतां पणु कषायइपी शत्रुने परास्त करे.



केन प्रकारेण भावशत्रुं जयेदित्याह—

मूलम्—न संतसे न वारेज्जा, मणंपि न पओसए ।

उवेहे न हण्णे पाण्णे, भुंजन्ते मंसंसोणियं ॥ ११ ॥

छाया—न संत्रसेत् न वारयेत्, मनोऽपि न प्रदूषयेत् ।

उपेक्षेत न हन्यात् प्राणान्, शुञ्जानान् मांसं शोणितम् ॥ ११ ॥

टोका—‘ न संतसे ’ इत्यादि ।

महामुनिर्दंशमशकैरुपद्रुतः सन् न संत्रसेत्=नोद्विजेत्-दंशमशकादिभिर्दंश्यमानोऽपि न ततः स्थानादपगच्छेदित्यर्थः । न वारयेत्, हस्तवस्त्रादिना नापसारयेत्-मनोऽपि न प्रदूषयेत्=न क्लृषितं कुर्यात् अपि-शब्दाद्वचनादिकमपि न प्रदुष्टं

इसका भाव यह है—जैसे पराक्रमी हस्ती बाणों के आघात से व्यथित होने पर भी रण में शत्रु को परास्त कर देता है, उसी तरह साधु भी दंशमशक आदि द्वारा पीडित होने पर भी कषायरूपी शत्रु को परास्त करे ॥ १० ॥

भावशत्रु को किस तरह परास्त करना चाहिये इसको इस गाथा द्वारा स्पष्ट किया जाता है—न संतसे इत्यादि

अन्वयार्थ—महामुनि दंशमशक आदि से पीडित होने पर भी ( न संतसे-न संत्रसेत् ) कभी भी चित्त में उद्विग्न न होवे—दंशमशक आदि से पीडित होने पर भी मुनि एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जावे ( न वारेज्जा-न वारयेत् ) दंशमशक को अपने शरीर पर बैठ जाने पर हस्तअथवा वस्त्र आदि से नहीं हटावे । ( मणं पि न पओसए—

आने। लाव अे छे के-जेम पराकभी हाथी आणुना आघातथी पीडित होवा छतां पणु रणुमां शत्रुने पराजित करे छे, तेवी ज रीते साधु पणु दंशमशक आदि द्वारा पीडित होवा छतां पणु कषायरूपी शत्रुने। पराजय करे ॥१०॥

लावशत्रुने केवी रीते जितवा जेध अे, अे हकीकत आ गाथा द्वारा प्रगट करवामां आवे छे. नसंतसे-इत्यादि.

अन्वयार्थ—डांस अने भच्छरथी पीडित बनवा छतां पणु न संतसे-न संत्रसेत् महामुनि चित्तमां उद्वेग न लावे,—डांस भच्छरना करडवाथी मुनिअे अेक स्थानथी थीज स्थाने न जपुं, न वारेज्जा-न वारयेत् डांस भच्छरने पोताना शरीर पर जेठेद जेधने हाथ अने वस्त्र आदिथी तेने हटावे नही, मणंपि न पओसए—

कुर्यादित्यर्थः । किं तु उपेक्षेत-मध्यस्थभावमाश्रयेत् । अत एव-मांसशोणितं भुञ्जानान् प्राणान्=प्राणिनः, न हन्यात्=न मारयेत् ।

अत्र सुदर्शनमुनेर्दृष्टान्तः—

चम्पानगर्या रिपुमर्दननामको भूपतिरासीत् । तस्य पुत्रः सुदर्शननामकः संजातः । स धर्मघोषाचार्यसमीपे धर्मदेशनां निश्चय्य कामभोगेभ्यो विरक्तः प्रव्रजितः । स सुदर्शनो मुनिर्गुरुप्रसादात् श्रुतज्ञानसम्पन्नो दृढसचचतया एकाकित्व-विहाराख्यप्रतिमया विहरन् कदाचित् महाटव्यां निशि पञ्चप्रहरात्मकं कायोत्सर्गं मनोऽपि न प्रदूषयेत् । अपने मन में उनके काटने पर अपने मन में कलुषित विचार नहीं करे। अथवा उनके काटने पर मन को कलुषित नहीं करना चाहिये। अपि शब्द से वचन आदिक को भी प्रदुष्ट नहीं करे। किन्तु उस समय(उवेहे-उपेक्षेत) मध्यस्थभाव का ही आश्रय करे। अतः साधु का कर्तव्य है कि वह (मांस शोणितं भुञ्जते पाणे न हणे-मांस शोणितं भुञ्जानान् प्राणिनः न हन्यात्) मांस खाते एवं शोणित को पीते हुए प्राणियों को कभी भी न मारे ।

दृष्टान्त—चंपानगरी में रिपुमर्दन नामक एक राजा था। उसका एक पुत्र था, जिसका नाम सुदर्शन था। उसने धर्मघोष आचार्य के पास धर्म-देशना सुनकर काम भोगों से विरक्त बन मुनिदीक्षा धारण की। इन सुदर्शन मुनि ने अपने गुरु महाराज के प्रसाद से श्रुतज्ञान की प्राप्ति कर दृढ पराक्रमशाली होने की वजह से एकाकी विहार करने रूप प्रतिमा को धारण किया। अब ये उस प्रतिमा से विचरने लगे।

मनोऽपि न प्रदूषयेत् तेना करडवाथी पोताना मनमां कलुषित विचार पणु न करे, अथवा तेना करडवाथी मनने कलुषित न करे. अरे शब्दथी वचनादिकने पणु प्रदुष्ट न करे, परंतु ते समये उवेहे-उपेक्षेत मध्यस्थ भावने आश्रय करे आथी साधुनुं कर्तव्य छे के ते मांसशोणितं भुञ्जतेपाणे न हणे-मांसशोणितं भुञ्जानान् प्राणिनः न हन्यात् मांस खाता अने ढोडी पीता प्राणीअने कही पणु न मारे.

दृष्टान्तः—यंथा नगरीमां रिपुमर्दन नामना अेक राजा उता. तेमने अेक पुत्र उतो; अेसुं नाम सुदर्शन उतुं. तेणु धर्मघोष आचार्यनी पासे धर्मदेशना सांभणी कामभोगथी विरक्त अनी मुनिदीक्षा धारणु करी. आ सुदर्शन मुनिअे पोताना गुरुमहाराजना प्रसादथी श्रुतज्ञाननी प्राप्ति करी, दृढ पराक्रम-शाणी थवाना करणुथी अेकाकी विहार करवा रूप प्रतिमाने धारणु करी. अने तेअे अे प्रतिमाथी विचरवा लाज्या. अेक समयनी वात छे के,

कृत्वा समुत्तस्थौ । तत्र प्रथमयामे लघुकाया सूच्यग्रतीक्ष्णमुखाः दंशमशकाः सहस्रशः परितः समागत्य मुनेः शरीरं दंशन्ति । तदनु-द्वितीययामे तदपेक्षया स्थूलाकारा दंशमशकाः घनघनध्वनिं कुर्वन्तः परितस्तद्वपुस्तीक्ष्णतरं दंशन्ति, तदनु तृतीयचतुर्थयामयोस्तदपेक्षयापि स्थूलतराः स्थूलतीक्ष्णमुखा विविधजातीया दंशमशकास्तं सातिशयं दंशन्ति । ततः सूर्योदये सति पञ्चमप्रहरे अकस्मात् तत्रैवो-ड्डीयमाना मधुमक्षिकाः सहस्रशस्तद्वपुःसंलग्नास्तं मुनिं दंशन्ति । मधुमक्षिकाभि-राच्छादितं सकलं तद्वपुः श्यामवर्णं संजातम् । तस्य मुखोपरि सदोरकमुखवस्त्रिकाऽपि

एक समय की बात है कि इन्होंने एक अटवी में रात्रि के समय पांच प्रहरका कायोत्सर्ग धारण किया । उस अटवी में कायोत्सर्ग में रहे हुए इन सुदर्शन मुनि के शरीर को प्रथम प्रहर में लघुकायवाले हजारों दंशम-शकों ने सूची के अग्रभाग के समान अपने २ तीक्ष्ण मुखों से चारों ओर से आ आकर खूब डसा । फिर द्वितीय प्रहर में इनकी अपेक्षा स्थूला-कार वाले दंशमशकों ने घन घन शब्द करते हुए सब तरफ से आकर बहुत बुरी तरह उनके शरीर को डसना प्रारंभ किया । बाद में तृतीय चतुर्थ प्रहर में द्वितीय याम में आये हुए दंशमशकों की अपेक्षा बलिष्ठ एवं स्थूलतर विविध जाति के दंशमशकों ने काटना शरू किया । इस प्रकार जब रात्रि के चार प्रहर समाप्त हो चुके और सूर्योदय हुआ तब पंचमप्रहर में—अर्थात् दिवस के प्रथमप्रहर में—अकस्मात् उड़ी हुई हजारों मधुमक्षिकाओं ने उन मुनि के शरीर में चिपट कर उन्हें काटना प्रारंभ

तेजोऽप्ये षेक जंगलमां रात्रिना समये पांच प्रहरना कायोत्सर्गं कर्था । ते जंगलमां कायोत्सर्गमां रडेला आ सुदर्शन मुनिना शरीरने प्रथम प्रहरमां नाना शरीरवाणा डलरोे डांस, मच्छरोे सोयनी अष्ठी जेवा पोत पोताना तीक्ष्ण मुपोथी आरे आनुथी आवीने षुण उंण भार्या । पाछा भील प्रहरमां तेनी अपेक्षा स्थूल आकारवाणा डांस, मच्छरोे गणु गणु शण्ड करीने आरे तरक्षी आवीने षष्ठी षराभ रीते तेमना शरीरने उंण भारवा लाज्या । त्थार पछी त्रील अने योथा प्रहरमां आवेला डांस मच्छरोेनी अपेक्षा नाना मोटा विविध लतना डांस मच्छरोे उंण भारवा शइ कर्था । आ प्रकारे ज्यारे रात्रीना थार प्रहर पुरा थया । अने सूर्योदय थये त्थारे पांचमा प्रहरमां अर्थात् दिवसना प्रथम प्रहरमां अकस्मात् उडेली डलरोे मधमाष्ठीजोे ते मुनिना शरीर उपर योंटी पडीने करडवुं शइ कर्था । मधमाष्ठीजोेथी आच्छा-

मक्षिकाभिराच्छादितत्वान्नलक्ष्यते । एवं दंशमशकमक्षिकाकृतवेदनां प्राप्यापि स सुदर्शनमुनिर्दंशादीन् न निवारयति चिन्तयति च—दुःखमेतत् कियत्, इतोऽनन्तगुण-वेदनाऽनन्तवारं नरकेषु मया प्राप्ता, असिपत्रेण क्षुरपत्रेण कदम्बचीरिकापत्रेण छिद्यमाने शक्यप्रेण कुन्ताप्रेण शराप्रेण शूलाप्रेण छुरिकाप्रेण, सूचीकलापत्रेण, कपिकच्छुना, वृश्चिककण्टकेन भिद्यमाने, अङ्गारेण, प्रज्वलज्ज्वालाया दह्यमाने च यादृशी

कर दिया । मधुमक्षिकाओं से आच्छादित सुदर्शन मुनि का गौर शरीर उस समय श्यामवर्णवाला मालूम देने लगा । उनके मुख के ऊपर डोरे से जो मुखवस्त्रिका बंधी हुई थी वह भी मक्षिकाओं से आच्छादित होने की वजह से दिखलाई नहीं पड़ती थी । इस प्रकार दंशमशकों द्वारा तीव्र वेदना को पाकर भी सुदर्शन मुनि ने उन दंशमशकों का अपने हाथ आदि से निवारण नहीं किया । प्रत्युत उस समय यही विचार किया कि हे आत्मन् ! यह जो वर्तमान में दुःख मिल रहा है वह तेरे द्वारा पहिले भोगे हुए नरक एवं निगोद के दुःखों के समक्ष कितना सा है । अरे ! तूने पहिले भवों में इस वेदना से भी अनन्तगुणी वेदनाएँ अनन्तवार नरक में भोगी हैं । असिपत्र, क्षुरपत्र एवं कदम्बचीरिका पत्र से छेदे जाने पर, शक्ति के अग्रभाग से कुन्त-भाला के अग्रभाग से, बाणके अग्रभाग से, छुरिका के अग्रभाग से, सूचिकलाप के अग्रभाग से, कपिकच्छु कोंचकीफली से और विच्छु के डंक से भेदे जाने पर, तथा जलती हुई अग्नि से जलाये जाने पर जैसी वेदना जीवों को होती है

हित भनेव सुदर्शन मुनितुं गौर शरीर ते समये श्याम वर्णुवाणुं हेभावा लाण्युं, तेमना मुण्ण उपर होराथी जे मुण्णपत्ति अंधायेव डती ते पण्ण माणीओथी आच्छादित होवाना कारणे जेवामां आवती न डती. आ प्रकारे अंस, मच्छरोथी तीव्र वेदना पाभीने पण्ण सुदर्शन मुनिओ जे अंस, मच्छर, वगरेने पोताना हाथ आदिथी हर न कर्या. परंतु जे वपते जेवोण विचार कर्यो के हे आत्मन् ! वर्तमानमां जे प्रकारनुं आ दुःख मणी रह्णुं छे ते ताराथी पडेलां लोगववामां आवेव नरक अने निगोदना दुःखो पासे शुं हिसाअमां छे, अरे ! ते पडेलाना लवोमां आ वेदनाथी पण्ण अनंतगुणी वेदनाओ अनंतवार नरकमां लोगवी छे. असिपत्र, क्षुरपत्र, अने कदम्बचीरिना पत्रथी छेदाथि जवाथी, शक्तिना अग्रभागथी कुंत भालाना अग्रभागथी, बाणना अग्रभागथी, छुरिना अग्रभागथी, सूचि कलापना अग्रभागथी, कपि कच्छु-केंचनी कृणीथी, अने वींछीना डंअथी, लेदाथि जवाथी तथा अणती

वेदना जायते ततोऽप्यनन्तगुणा वेदना नरकेऽनन्तवारं मया सोढा, एवं निगो-  
देऽपि, यत्र सूच्यप्रपरिमितकन्दादौ असंख्याताः श्रेणयः सन्ति, एकैकश्रेण्या  
मसंख्यातानि प्रतराणि, एकैकप्रतरे असंख्याता गोलाः, एकैकगोले असंख्यातानि  
निगोदशरीराणि, एकैकशरीरे अनन्ता जीवाः, एकैकनिगोदजीवः प्रत्येकश्वासो-  
च्छ्वासे सार्धसप्तदश जन्ममरणानि करोति, एवंविधनिगोदेऽपि अनन्तजन्ममर-  
णानां दारुणदुःखानि अनन्तवारं परवशेन मया सोढानि । किं पुनरेतत्, यतस्त-  
त्तद्दुःखसागरैकबिन्दुमात्रमपि नैतत्, एवं दंशमशकपरीषहं प्रकृष्टपरिणामेन सहमानः

इससे भी अनंतगुणी वेदना नरक में अनंतवार तूने भोगी है। इसी तरह  
निगोद में भी सही हैं। सूची-सुई-के अग्रभाग प्रमाण कन्द आदि में  
असंख्यात श्रेणियां होती हैं एक एक श्रेणी में असंख्यात प्रतर होते हैं।  
एक एक प्रतर में असंख्यात गोले होते हैं। एक एक गोले में असंख्यात  
निगोद शरीर हुआ करते हैं। एक एक निगोद शरीर में अनन्त जीव रहा  
करते हैं। एक एक निगोदराशि का जीव एक २ श्वासोच्छ्वास में १७।  
साढासत्रह बार जन्मता है और १७। साढा सत्रह बार ही मरता है। इस  
प्रकार के स्वरूप वाले निगोद में भी हे आत्मन्! तूने अनन्तवार अनंत  
जन्म और मरण के दुःखों को परवश होकर सहन किया है। उन दुःखों  
के सामने यह दंशमशक आदि से होने वाला दुःख कितना सा है। उन  
दुःखों के सामने तो यह एक लेश मात्र भी नहीं है। इस प्रकार दंशमशक  
परीषह को प्रकृष्ट शुभाध्यवसाय से सहन करते हुए सुदर्शन मुनिराज

अग्निथी आणवाथी जेवी वेदना लवोने थाय छे, तेथी अनंतगणी वेदना नरकमां  
अनंतवारतें लोगवी छे. आ रीते निगोदमां पणु सडन करेव छे. सोयना अग्रभाग  
प्रमाणनां कन्द आदिमां असंख्यात श्रेणियो डोय छे. ओकेक श्रेणीमां असंख्य  
प्रतर डोय छे. अने ओकेक प्रतरमां असंख्य गोणा डोय छे. अने ओकेक गोणामां  
असंख्यात निगोद शरीर डोय छे. ओकेक निगोद शरीरमां अनंत लव रखा करे छे.  
ओकेक निगोद शरीरमां लव ओक श्वासोच्छ्वासमां साडासत्तरवार जन्मे छे. अने  
साडासत्तरवार भरे छे. आ प्रकारना स्वइपवाणा निगोदमां पणु डे आत्मन्! ते  
अनंतवार अनंत जन्म अने मरणना दुःखोने परवश अनी सडन कर्यां छे  
ओ दुःखोनी सामे आ डांस भच्छरोथी थतुं दुःख डेवडुं छे? ते दुःखोनी  
सामे तो आ दुःख लेश मात्र पणु नथी. आ प्रकारे डांस भच्छरोना परी-  
षडने प्रकृष्ट शुभाध्यवसायथी सडन करतां सुदर्शन मुनिराजे प्रशस्त

प्रशस्तध्यानेन शुभाध्यवसायेन प्राप्तकेवलज्ञान-केवलदर्शनः सुदर्शनः साद्यन्तम-  
व्याबाधं शाश्वतं शिवपदं लब्धवान् । एवमन्यैरपि मुनिभिर्मध्यस्थभावेन दंशमश-  
कपरीषहः सोढव्यः ॥ ११ ॥

अथाचेलपरीषहजयं प्राह—

मूलम्—परिजुन्नेहिं वत्थेहिं, होक्खामि त्ति अचेलए ।

अदुवा सचेलए, होक्खं, इति भिक्खू नं चित्तए ॥१२॥

छाया—परिजीणैर्वत्त्रै,—भविष्यामि इति अचेलकः ।

अथवा सचेलको भविष्यामि, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥१२॥

टीका—‘ परिजुन्नेहिं ’ इत्यादि ।

परिजीणैः=पुरातनैः, वत्त्रैः, अचेलकः=वस्त्ररहितः, भविष्यामि, तेषां स्वल्प-  
कालस्थायित्वात्, इति=एतद्रूपं दैन्यं, भिक्षुर्न चिन्तयेत्= न कुर्यात् । अथवा

ने प्रशस्तध्यान से और शुभ परिणामों को धारा से केवलज्ञान और  
केवलदर्शन प्राप्त कर लिया । पश्चात् आयु के अंत में सादि अनंत,  
अव्याबाध एवं शाश्वत पद जो मुक्तिपद है उस को प्राप्त कर लिया ।  
सुदर्शन मुनि की तरह अन्यमुनिजनों को भी मध्यस्थभाव से दंशमशक  
परीषह सहन करना चाहिये ॥ ११ ॥

अब सूत्रकार छठे अचेल परीषह को जीतने का उपदेश करते हैं—  
परिजुन्नेहिं—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(परिजुन्नेहीं—परिजीणैः) पुराने ( वत्थेहिं—वत्त्रैः ) वस्त्रोंसे  
( अचेलए होक्खामि—अचेलकः भविष्यामि ) मैं उनकी अल्पकाल  
स्थिति होने से अचेल वस्त्र रहित हो जाऊंगा । ( त्ति—इति ) इस प्रकार का

ध्यानशी अने शुभ परिष्णामोनी धाराशी केवलज्ञान अने केवलदर्शन प्राप्त  
क्युं. पछी आयुना अंतमां आदि अनंत, अव्याबाध अने शाश्वत पद जे  
मुक्तिपद छे तेने प्राप्त क्युं. सुदर्शन मुनिनी माशक अन्य मुनिजनोंअये  
पणु मध्यस्थ भावशी उंस अने मच्छरोना परीषहने सहन करवे जेधअये ॥११॥

इवे सूत्रकार छठे अचेल परीषहने उतवाने उपदेश करे छे. परिजुन्नेहिं इत्यादि.

अन्वयार्थ—परिजुन्नेहिं—परिजीणैः णुनां “ वत्थेहिं—वत्त्रैः ” वस्त्रोंशी अचेलए  
होक्खामि—अचेलकः भविष्यामि इं तेनी अल्पकाल स्थिति होवाशी अचेल वस्त्र  
रहितथधे जधशि त्ति—इति आ प्रकारने दैन्यभाव न करे अदुवा—अथवा अथवा



सचैलकः=नूतनवस्त्रवान् भविष्यामि, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत्, अयं भावः-जीर्णवस्त्र-  
धारी साधुर्वस्त्राभावसंभावनया स्वात्मनि विषादं न कुर्याद्, नापि च नूतनवस्त्र-  
प्राप्तिसंभावनया हर्षं कुर्यादिति ॥१२॥

उक्तार्थमेव दृढीकर्तुमाह—

मूलम्—एगया अचेलं होइ, संचेले योविं एगया ।

एयं धम्मोहियं नच्छा, नाणी नो परिदेवैए ॥१३॥

छाया—एकदा अचेलको भवति, सचेलश्चापि एकदा ।

एतद् धर्महितं ज्ञात्वा, ज्ञानी नो परिदेवयेत् ॥१३॥

टीका—‘एगया’ इत्यादि ।

एकदा=कदाचित्, कल्पनीयजीर्णखण्डितमलिनाल्पवस्त्रस्य सद्भावे मुनिः,

दैन्यभाव न करे । (अदुवा-अथवा) अथवा (सचेलए होक्खं-सचेलको  
भविष्यामि) नवीन वस्त्रों से “उनकी अधिक स्थिति होने से” सचेलक-  
वस्त्र सहित हो जाऊँगा (इति) इस प्रकार (भिक्षू) साधु (न चिंतए  
-न चिन्तयेत्) विचार न करे ।

इस का भाव केवल यही है कि साधु जिस समय जीर्ण वस्त्रों का  
परिधान करे उस समय मुनि “ये फटे पुराने वस्त्र कितने दिन तक  
चलेंगे इनके फट जाने पर मैं निर्वस्त्र हो जाऊँगा” इस प्रकार कभी  
भी अपनी आत्मा में विषाद न करे । “ये नवीन वस्त्र हैं अधिक दिन  
तक चलते रहेंगे अतः मैं सवस्त्र ही रहूँगा” इस प्रकार कभी हर्ष  
भाव को प्राप्त न हो । अथवा ‘अब नूतन वस्त्रों की मुझे प्राप्ति होगी,  
इस बात की संभावना से भी साधु कभी भी हर्षित न होवे ॥ १२ ॥

सचेलए होक्खं-सचेलको भविष्यामि नवीन वस्त्रोथी “ते वधु प्रमाणमां होवाथी”  
सचेलक वस्त्र सहित थर्षं जर्षश आ प्रकारेणो पणु “भिक्षू” साधु नचितए-न  
चितयेत् विचार न करे.

आनो लाव डेवण ये ज छे डे, साधु जे समये एणु वस्त्रो परिधान  
करे ये समये आ श्टयां तूटयां वस्त्रो डेटला द्विस आलशे, आना श्टी  
जवा पछी हुं वस्त्र वगरनेो जनी जर्षश. आ प्रकारेणो विषाद कही पणु पोताना  
आत्मांमां न करे. आ नवां वस्त्र छे, घणु समय सुधी आलतां रडेशे, अने  
आथी हुं सवस्त्रज रडेश. आ प्रकारेणो डर्षलाव पणु कही न लावे. अथवा  
डवे अने नवां वस्त्रनी प्राप्ति थशे आ वातनी संभावनाथी पणु साधु कही  
हर्षित न थाय (१२)

अचेलकः=वस्त्ररहित इव, भवति-तथाविधवस्त्रस्य तनुत्रायकत्वाभावात् । एकदा= कदाचित्-नूतनवस्त्रसद्भावे, सचेलकोऽपि=नवीनवस्त्रवानपि भवति । एतद्=अचेल- कत्वं सचेलकत्वं चेति द्वयं, धर्महितं=धर्माय हितं-श्रुतचारित्रधर्मोपकारकं, ज्ञात्वा ज्ञानी=मेधावी, नो परिदेवयेत्=जीर्णवस्त्रसद्भावे विषादं न कुर्यात् ,

‘एगया अचेलए’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—( एगया-एकदा ) कभी किसी समय कल्पनीय जीर्ण खंडित मलिन एवं अल्प वस्त्रों के सद्भाव में मुनि (अचेलए होई-अचेलको भवति) वस्त्र रहित जैसा ही होता है । क्यों कि जो जीर्णादिवस्त्र उसके होते हैं उनसे यथावत् शरीर की रक्षा नहीं होती है । ( एगया ) कभी किसी समय-नूतन वस्त्रों के सद्भाव में ( सचेले यावि होइ-सचेलकोऽपि भवति ) सचेल भी-नवीन वस्त्र वाला भी होता है । ( एवं-एतत् ) ये दोनों ही अवस्थाएँ साधु की उसके ( धम्महियं-धर्महितम् ) श्रुतचारित्र रूप धर्म की उपकारक हैं । ऐसा ( नच्चा-ज्ञात्वा ) जानकर ( नाणी नो परिदेवए ज्ञानी नो परि देवयेत् ) ज्ञानी मुनि किसी भी अपनी अवस्था में चाहे वस्त्र सहित अवस्था हो चाहे वस्त्र रहित अवस्था हो उसमें हर्षविषाद न करे ।

भावार्थ—साधु को “ ये वस्त्र जो मेरे पास हैं वे बहुत ही जीर्ण शीर्ण हैं, तथा हलके पोतके हैं, ये बहुत थोड़े हैं, सुन्दर भी नहीं हैं इनसे शीत आदिक की रक्षा कैसे होगी ” इस प्रकार कभी विषाद

‘एगया अचेलए’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—एगया-एकदा केई वषत् कल्पनीय अणुं खंडित मलिन अने अल्पवस्त्रोना सद्भावमां मुनि अचेलए होइ-अचेलको भवति वस्त्र रहित जेवे। जे डोय छे, केम के, जे अणुं जेवां वस्त्र तेनी पासे डोय छे तेनाथी यथावत् शरीरनी रक्षा थती नथी एगया केईवषत् नवा वस्त्रोना सद्भावमां सचेले यावि होइ-सचेलकोऽपि भवति सचेल पणु-नवीन वस्त्रवाणा पणु डोय छे. एवं-एतत् आवी अने अवस्थाओ साधुनी धम्महियं-धर्महितं श्रुतचारित्र इप धर्ममां उपकारक छे जेपुं नच्चा-ज्ञात्वा ज्ञानीने नाणी नो परिदेवए-ज्ञानी नो परिदेवयेत् ज्ञानी केई पणु अवस्थामां आडे वस्त्रसहित अवस्था डोय, आडे वस्त्ररहित अवस्था डोय तेमां हर्ष-विषाद न करे.

भावार्थः—साधुओ “ आ वस्त्र जे मारी पासे छे ते धणां अणुं शीर्ण छे, तथा हलका पोतनां छे अने थूथ थोडां छे, सुंदर पणु नथी, जेनाथी कंडी बगेरथी रक्षा केम थशे ” आ प्रकारने विषादभाव कदी न करवे जेई जे. आ

नवीनवस्त्रसद्भावे तन्निमित्तकं हर्षं न कुर्यात्, तथा एषणीयप्रमाणोपेतवस्त्राणाममहामूल्यकत्वादल्पत्वादशोभनत्वाच्च विषादं न कुर्यात् शीतस्पर्शादिना बाधितोऽपि प्रमाणाधिकवस्त्राकाङ्क्षां च न कुर्यादित्यर्थः । तथाचोक्तमाचाराङ्गसूत्रे—

“ जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायचउत्थेहिं, तस्स णं णो एवं भवइ, चउत्थं वत्थं जाइस्सामि । ” ( आचा. १ श्रु. ८ अ. ४ उ. )

छाया—यो भिक्षुस्त्रिभिर्वस्त्रै पर्युषितः पात्रचतुर्थैः, तस्य खलु नो एवं भवति चतुर्थं वस्त्रं याचिष्ये । पर्युषितः=व्यवस्थितः । अनेन स्थविरकल्पिकस्य चतुर्थवस्त्र प्रतिषेधोऽवगम्यते । अपरं च—तत्रैवोक्तम्—

“ जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ-पुट्ठो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं

भाव नहीं करना चाहिये—और ये नवीन वस्त्र हैं इनसे शीत आदिक की रक्षा बहुत अच्छी तरह हो जायगी ” इस प्रकार कभी हर्षित भी नहीं होना चाहिये । शीतस्पर्शादिक से पीडित होने पर प्रमाण से अधिक वस्त्रों की आकांक्षा करना साधुमार्ग में निषिद्ध है । आचारांग सूत्र ( १ श्रु. ८ अ. ४ उ. ) में यही बात बतलाई गई है “ जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पायचउत्थेहिं तस्स णं णो एवं भवइ चउत्थं वत्थं जाइस्सामि ” जो भिक्षु तीन वस्त्रों से एवं चौथे पात्र से व्यवस्थित रहता है उसे चतुर्थ वस्त्र के याचन की आवश्यकता नहीं होती है उस के चित्त में यह बात नहीं आती है कि मैं चतुर्थ वस्त्र की याचना करूँ । इस कथन से स्थविरकल्पी साधु को चतुर्थवस्त्र का प्रतिषेध सिद्ध होता है । और भी आचारांग सूत्र ( १ श्रु. ८ अ. ४ उ. ) में कहा है “ जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ-पुट्ठो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं

नवीन वस्त्र छे, तेनाथी ढंडी वगेरेनी रक्षा सारी रीते धरे, आ प्रकारे कही हर्षित पणु न थपुं नेधंये. ढंडीना स्पर्शथी पीडित थवाथी अधिक वस्त्रोनी आकांक्षा करवी ते साधु मार्गमां निषेध छे. आचारांगसूत्र ( १ श्रु. ८. अ. ४ उ ) मां येवी वात भताववामां आवेल छे के, जे भिक्खू तिहिं वत्थेहिं परिवुसिए पाय चउत्थेहिं तस्स णं णो एवं भवइ चउत्थं वत्थं जाइस्सामि जे भिक्षु त्रय वस्त्र अने येथा पात्रथी व्यवस्थित रहे छे. तेने येथा वस्त्रनी याचना करवानी आवश्यकता थती नथी. येना चित्तमां ये वात आवती नथी के हुं येथा वस्त्रनी याचना कइं. आ कथनथी स्थविरकल्पी साधुने येथा वस्त्रनो प्रतिषेध सिद्ध थाय छे.

भीलुं पणु आचारांग सूत्र ( १. श्रु. ८. अ. ४. उ. ) मां कथुं छे—  
जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ-पुट्ठो खलु अहमंसि नालमहमंसि सीयफासं

अहियासित्तए, से वसुमं सव्वसमन्नागयपन्नाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरणयाए आउट्टे, तवस्सिणो हु ते सेयं जं एगे विहमाइए । तत्थ वि तस्स कालपरियाए । से वि तत्थ विअंतिकारए । इच्चेयं विमोहायतणं हियं सुहं खमं णिस्सेयसं अणुगामियं । ( आचा. १ श्रु. ८ अ. ४ उ. )

छाया—यस्य खलु भिक्षोः एवं भवति—स्पृष्टः खलु अहमस्मि, नालमहमस्मि शीतस्पर्शम् अध्यासितुम्, स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन आत्मना कोऽपि अकरणतया आवृतः तपस्विनः खलु तच्छ्रेयः यदेकं वैहायसादिकम् । तत्रापि तस्य कालपर्यायः । सोऽपि तत्र व्यन्तकारकः । इत्येतत् विमोहायतनं हितं सुखं क्षमं निःश्रेयसम् आनुगामिकम् ।

व्याख्या—यस्य भिक्षोः खलु एवम्=ईदृशी विचारणा भवति—अहं खलु परीषहैः स्पृष्टः=बाधितोऽस्मि, अहं शीतस्पर्शम् अध्यासितुं=सोढुम्, अलं=पर्याप्तः, नास्मि । सः—ईदृशभावनाभावितः, कोऽपि वसुमान्=संयमी, सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन=पूर्णापयोगयुक्तेन, आत्मना=अन्तःकरणेन अकरणतया=उपसर्गप्रतीकारस्या-अहियासित्तए, से वसुमं सव्वसमन्नागयपन्नाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरणयाए आउट्टे, तवस्सिणो हु ते सेयं जं एगे विहमाइ ए । तत्थ वि तस्स कालपरियाए । से वि तत्थ विअंतिकारए । इच्चेतं विमोहायतणं हियं सुहं खमं णिस्सेयसं अणुगामियं ॥ ”

जिस भिक्षु के हृदय में ऐसी विचारणा होती है कि मैं परीषहों से पीड़ित हूँ अतः शीतपरीषह को सहन करने के लिये समर्थ नहीं हूँ ” । इस प्रकार के विचार से युक्त होकर वह संयमी मुनि प्रमाणाधिक वस्त्रों को ग्रहण करने रूप, तथा अग्नि को जलाने रूप सावध व्यापारों को कभी भी न करे । किन्तु वैहायस (फ्रांसी)

अहियासित्तए से वसुमं सव्वसमन्नागयपन्नाणेणं अप्पाणेणं केइ अकरणयाए आउट्टे तवस्सिणो हु ते सेयं जं एगे विहमाइए । तत्थ वि तस्स कालपरियाए । से वि तत्थ विअंतिकारए । इच्चेतं विमोहायतणं हियं सुहं खमं णिस्सेयसं अणुगामियं ॥

७ भिक्षुना हृदयमां येवी विचारणा थाय छे के, “ हुं परीषडोथी पीडित छुं आथी इंडीना इःपोने सडन करवामां समर्थं नथी ” आ प्रकारना विचारणी युक्त थनी ते संयमी मुनि प्रमाणाधिक वस्त्रोने ग्रहण करवा इप, तथा अग्निने जलाववा इप सावधव्यापारोने कही पणु न करे. पणु ते वैयहायस

करणभावनया आवृतः=व्यवस्थितस्तिष्ठेत् । तपस्विनः खलु तच्छ्रेयः=तदेव श्रेयस्करं भवति, यत्-एकं वैहायसादिकं-वैहायसविषभक्षणज्ञपापातादिमरणेषु किमप्येकं मरणम् । तत्रापि=वैहायसादिषु तस्य कालपर्यायः=भक्तपरिज्ञादिवत् कालमृत्युरेव नत्व-कालमृत्युः, अत एव सोऽपि तत्र=चतुर्थवस्त्रानाकाङ्क्षाविषये, व्यन्तकारकः=पर्यवसान मृत्युकारकः, संसारान्तकारक इत्यर्थः । इत्येतत्-इति=अतः-अस्मात् कारणात्, एतन्मरणं त्रिमोहायतनम्-त्रिमोहानां=परीषहसहिष्णुनाम्, आयतनं=स्थानं-मोक्षपददायकमितिभावः, हितम्=उपकारकम्, सुखं=सुखकरं, क्षमं=योग्यं, निःश्रेयसं=निश्चितं-निश्चलं, श्रेयः-शुभम्, आनुगामिकम्=गच्छन्तं पुरुषम् आ=समन्तात्, अनुगच्छतीत्येवं शीलं आनुगामि, तदेव-आनुगामिकम्, मोक्षपदपर्यन्तानुगमन-शीलमित्यर्थः ।

अयं भावः-एषणीयवस्त्रत्रयधारणे शीतस्पर्शवेदनामसहिष्णुश्चतुर्थवस्त्राकाङ्क्षाया अकरणेन त्रिवस्त्रकत्वरूपमचेलं परीषहं सहमानो मुनिर्वैहायसादिष्वेकं किमपि मरणमुपगतश्चेत्तर्हि तादृशमरणजन्यः प्रकृष्टधर्मस्तस्य मुनेस्तस्मिन्नेव भवे संसारान्तं करोति, मोक्षपदं च प्रापयति ।

इहाचेलकत्वं प्रवचनोक्तरीत्या ग्राह्यम् । तीर्थकरोपदिष्टाचारसेविनो मुनयः प्रवचनानुसारेण कल्पनीयाल्पजीर्णखण्डितमलिनवस्त्रपरिधानाः प्रमाणोपेतवस्त्रधारिण-श्चाप्यचेलका एव । यथा-परिहितकौपीना अपि तापसा लोके नग्ना उच्यन्ते,

आदि मरणों में से किसी एक मरण को धारण कर अपने प्राणों का व्युत्सर्ग कर देवे । इस प्रकार के मरण से होने वाला जो प्रकृष्ट धर्म है वह उस मुनि को उसी भव में संसार का अन्त करता हुआ मोक्ष का प्रदायक होता है ।

प्रवचन में कथित रीति के अनुसार यहां अचेलकता का ग्रहण किया गया है । तीर्थकरों द्वारा उपदिष्ट आचार का सेवन करने वाले मुनि प्रवचन के अनुसार कल्पनीय, अल्प, जीर्ण, एवं

इंसी वगेरे भरल्लोभांथी केछ अेक भरल्लुने धारल्लु करी पोताना प्राल्लुने त्याग करी हे. आ प्रकारना भरल्लुथी थनार ले प्रकृष्ट धर्म छे ते अे मुनिने अे लवभां संसारने अंत करावनार मोक्षदायी अने छे.

प्रवचनभां कडेल रीत अनुसार अडिं अचेलकतानुं अडल्लु करवाभां आवेल छे. तीर्थकरे द्वारा उपदिष्ट आचारनुं सेवन करवावाणा मुनि प्रवचन अनुसार कल्पनीय, अल्प, लुल्लु अने अडित मलिन वस्त्रने, प्रमाणोपेत वस्त्रने, धारल्लु करेद डोवा छतां

યથા વા યસ્યાઙ્ગરક્ષિકા જીર્ણાં સંજાતા, સ પરિધૃતાઙ્ગરક્ષિકોઽપિ સૌચિકાન્તિકં ગત્વા વદતિ—અનાવૃતોઽસ્મિ, અઙ્ગરક્ષિકાં દેહીતિ, યથા વા કાચિન્નારી પરિહિત-પરિજીર્ણશાટિકાઽપિ વસ્ત્રકારં તન્તુવાયંવદતિ—‘ નગ્નાઽ હમસ્મિ, દેહિ મે શાટિકામ્’ ઇત્યાદિ, એવં સાધવોઽપ્યમહાલ્પમૂલ્યાનિ ચ્વિન્ડિતાનિ જીર્ણાનિ પ્રમાણોપેતાનિ પ્રમાણતો ન્યૂનાનિ વા વસ્ત્રાણિ શ્રુતોપદેશાદ્ ધર્મબુદ્ધયા ધારયન્તોઽચેલકા એવ । અચેલકસદૃશા અપ્યચેલકા ઉચ્યન્તે ।

ચ્વિન્ડિત મલિન વસ્ત્ર કો પ્રમાણોપેત વસ્ત્રો કો ધારણ કરતે હુએ ધી અચેલક હી માને જાતે હૈં । જિસ પ્રકાર લોક મેં લંગોટીમાત્ર કો ધારણ કરને પર ધી તાપસ લોગ “ યે નગ્ન હૈં ” ઇસ પ્રકાર કહે જાતે હૈં । અથવા જૈસે કિસી પુરુષ કા અંગરચ્વા જીર્ણ હો જાય ઓર વહ ઉસે પહિર કર ધી જબ દર્જી કે પાસ દૂસરે અંગરચ્વે કો સિલાને કે લિયે જાતા હૈ તો કહતા હૈ કિ ધાઈ દેચ્વો જલ્દી ઇસે સીકર દે દેના મૈ ઉઘાડા ફિરતા હૂં, મેરે પહિરને કો અંગરચ્વા નહીં હૈ । અથવા—જૈસે કોઈ સ્ત્રી કિ જિસકી શાટિકા—સાડી પરિજીર્ણ હો ચુકી હૈ જબ તન્તુ-વાય—કપડે બુનનેવાલે કે પાસ જાતી હૈં તો કહતી હૈં કિ મુઝે સાડી દે મેં વિના સાડી ફિર રહી હૂં । ઇસી તરહ સાધુ ધી પ્રમાણોપેત ચ્વિન્ડિત જીર્ણ એવં અત્યંત અલ્પમૂલ્યવાલે વસ્ત્રો કો શ્રુતોપદેશ કે અનુસાર ધર્મ-બુદ્ધિ સે ધારણ કરતે હુએ ધી અચેલક હી હૈં, એસા સમજના ચાહિયે । જો અચેલક કે તુલ્ય હોતે હૈં વે ધી અચેલક હી માને જાતે હૈં ।

પણ અચેલક જ માનવામાં આવે છે. જે પ્રકારે લોકમાં તાપસ લોકો લંગોટી ધારણ કરે છે. પણ “આ નગ્ન છે” આ પ્રકારથી કહેવામાં આવે છે. અથવા જેમ-કોઈ પુરુષનું અંગરખું જીર્ણ થઈ જાય અને તે તેને પહેરીને પણ જ્યારે દરજીની પાસે ખીજી અંગરખું શિવડાવવા માટે જાય છે તો કહે છે ભાઈ જીજો આને જલ્દીથી શીવી આપજો હું ઉઘાડો કરું છું. મારે પહેરવાને અંગરખું નથી અથવા જેમ-કોઈ સ્ત્રી કે જેની સાડી પરિજીર્ણ થતાં તે કપડાં અનાવનાર પાસે જાય છે અને કહે છે કે મને સાડી આપ હું સાડી વગરની કરી રહી છું. આ રીતે સાધુ પણ પ્રમાણોપેત ચ્વિન્ડિત જીર્ણ અને અત્યંત અલ્પમૂલ્યવાળાં વસ્ત્રોને શ્રુત ઉપદેશ અનુસાર ધર્મ બુદ્ધિથી ધારણ કરતા હોવા છતાં અચેલક જ છે એવું સમજવું જોઈએ. જે અચેલક તુલ્ય હોય છે તે પણ અચેલક જ માન્યા જાય છે.



आगमे हि द्विविधः कल्पः—स्थविरकल्पः जिनकल्पश्च । तत्र गच्छप्रतिबद्धानां मुनीनामाचारः स्थविरकल्पः ।

ननु कस्तावत् स्थविरकल्पक्रमः ? उच्यते—प्रथमं श्रुतचारित्रलक्षणधर्मश्रवणम् , ततः सम्यक्त्वलाभः, तदनुआलोचनापूर्विका प्रव्रज्याप्रतिपत्तिः, ततः शिक्षाधिकारो भवति शिक्षा च द्विविधा—ग्रहणशिक्षा, आसेवनाशिक्षा च । तत्र ग्रहणशिक्षा—सूत्राध्ययनरूपा, आसेवनाशिक्षा—प्रतिलेखनादिरूपा । ततः सूत्राणामर्थग्रहणम् । तत्पश्चादनियतवासः । स च तादृशयोग्यतासंपन्नस्य मुनेः साधुसहायस्य ग्राम-नगरसंनिवेशादिषु देशान्तरे वा गुरोराज्ञया पर्यटनम् ।

आगम में स्थविरकल्प और जिनकल्प के भेद से दो कल्प भगवान ने कहे हैं । उनमें गच्छप्रतिबद्ध मुनियों का जो आचार है वह स्थविरकल्प है । स्थविरकल्प का क्रम इस प्रकार है—प्रथम श्रुतचारित्ररूप धर्म का श्रवण, उससे सम्यक्त्व का लाभ, बाद में आलोचनापूर्वक प्रव्रज्या की प्रतिपत्ति, उससे ग्रहणशिक्षा एवं आसेवनशिक्षा के अधिकार का लाभ । सूत्र के अध्ययन करने रूप ग्रहणशिक्षा एवं प्रतिलेखनादिकरूप आसेवनशिक्षा है । इसके बाद सूत्रों का अर्थ ग्रहण करना, पश्चात् अनियत वास । अनियतवास का तात्पर्य है गुरु की आज्ञा से ग्राम, नगर एवं सन्निवेश आदिकों में अथवा देशान्तर में विचरण करना । यह विचरण, विचरण करने की योग्यता संपन्न जो साधु होता है उसी का होता है । फिर भी यह एकाकी विहार नहीं कर सकता किन्तु अन्य साधुओं के साथ ही विहार करता है ।

आगममां स्थविरकल्पे अने अनकल्पना लेहोथी ये कल्पे भगवाने कहां छे. अेमां गच्छप्रतिबद्ध मुनियोना आचार छे, ते स्थविरकल्पे छे. स्थविर कल्पेना क्रम आ प्रकारेना छे.—प्रथम श्रुतचारित्ररूप धर्मनुं श्रवण, अेनाथी सम्यक्त्वने लाल, पछी आलोचना पूर्वक प्रव्रज्यानी प्राप्ति अेथी अडणु-शिक्षा अथवा आसेवनशिक्षाने लाल, सूत्रनुं अध्ययन करवा रूप अडणु-शिक्षा अने प्रतिलेखनादिक रूप आसेवनशिक्षा छे. अे पछी सूत्रेना अर्थ समन्था पछी अनियतवास, अनियतवासनुं तात्पर्य अे छे के, गुरुनी आज्ञाथी ग्राम-नगर अने सन्निवेश वगेरेमां अथवा देशान्तरमां विचरण करवुं. आ विचरण करवानी योग्यता संपन्न अे साधु होय छे, तेने अ गुरु महाशय अेवी आज्ञा आये छे. आमां ते अेकाकी विहार करी शकता नथी परंतु अन्य साधुअेनी साथे अ विहार करे छे.

નનુ કિં પ્રયોજનં દેશાન્તરપર્યટનસ્ય ? ઉચ્યતે—નાનાસ્થાનેષુ બહુશ્રુતાનાચાર્યાદીન્ પશ્યતસ્તસ્ય સૂત્રાર્થેષુ સમાચાર્યાં ચ વિશેષપ્રતિપત્તિર્ભવતિ, નાનાદેશભાષાજ્ઞાનં ચ । તેનાસૌ તત્તદેશીયભાષયા તત્ર તત્ર ધર્મદેશનાં દદાતિ પ્રવ્રજ્યાં ગ્રાહ્યતિ ચ । ગચ્છાન્તરીયા અન્યદેશીયાઃ સાધવઃ ‘ અયમસ્મઙ્ગાષાજ્ઞાનવાન્ ’ ઇતિ મત્વા તદન્તિકમાગત્ય શાસ્ત્રાભ્યસનરૂપાં તદુપસંપદં પ્રતિપદ્યન્તે, તેષાં પ્રીતિશ્ચ તદુપરિજાયતે । એવમનિયતવાસેન પર્યટતસ્તસ્ય નિષ્પત્તિર્ભવતિ । નિષ્પત્તિર્નામ સદ્ગુણવચ્ચેન પ્રભૂતશિષ્યાણાં તદન્તિકે સંસિદ્ધિઃ ।

દેશાન્તર મેં ધ્રમણ કરને કા પ્રયોજન યહ હૈ કિ જબ સાધુ દેશાન્તર મેં ધ્રમણ કરતે હૈં, તબ ડનકા અન્યદેશ કે અનેક બહુશ્રુત આચાર્ય આદિકોં કે સાથ સંપર્ક વઢતા હૈ । ડસસે ડનકો સૂત્રમેં અર્થ મેં એવં સાધુ સમાચારી મેં વિશેષ પ્રતિપત્તિ-જાનકારી હોતી હૈ । તથા નાના દેશકી ભાષાઓં કા જ્ઞાન મી હો જાતા હૈ । ડસસે સાધુ કો ધર્મપ્રચાર કરને મેં બઢી મારી સહાયતા મિલતી હૈ । ક્યોં કિ વહ ડસ ૨ દેશમેં ડસ ૨ દેશ કી ભાષા સે ડપદેશ દેકર વહાં કી જનતા કો ધાર્મિક વાસના સે વાસિત કરતે હૈં । એવં લોગોં કો ડીક્ષા ગ્રહણ કરને કી ભાવના જાગૃત કરતે હૈં । લોગ ડનસે પ્રતિબોધ પાકર ડીક્ષા ધારણ કરતે હૈં । ડૂસરે ગચ્છ કે અથવા અન્ય દેશ કે સાધુ “ યે હમારી ભાષા ભાષી હૈં ” યહ સમઙ્ગકર ડનકે પાસ આતે જાતે હૈં ઓર ડનસે શાસ્ત્રોં કા અભ્યાસ કરતે હૈં । ડસસે ડૂસરે ગચ્છ કે મુનિરાજોં કી ડન પર અધિક પ્રીતિ મી હો જાતી હૈ । શિષ્યપરંપરા કી મી વૃદ્ધિ હોતી હૈ । ક્યોં કિ લોગ જબ

દેશાન્તરમાં ધ્રમણ કરવાતું પ્રયોજન એ છે કે, ન્યારે સાધુ દેશાન્તરમાં ધ્રમણ કરે છે ત્યારે તેને ખીજ દેશના બહુશ્રુત આચાર્ય વગેરે સાથે સંપર્ક થાય છે આથી તેને સૂત્રમાં અર્થમાં અને સાધુ સમાચારીમાં વધુ જાણવાતું મળે છે. અને જુદા જુદા દેશની ભાષાઓતું પણ જ્ઞાન થાય છે. આથી સાધુને ધર્મ પ્રચાર કરવામાં સારી એવી સહાયતા મળી રહે છે. કેમ કે, તે જે તે દેશમાં જે તે દેશની ભાષાથી ત્યાંની જનતાને ધાર્મિક ભાવનાથી ભાવનાયુક્ત બનાવી શકે છે, અને લોકોમાં ડીક્ષા ગ્રહણ કરવાની ભાવના જાગૃત કરે છે. ખીજ ગચ્છના અથવા ખીજ દેશના સાધુ “ આ અમારા ભાષાભાષી છે. ” એમ સમજી એની પાસે આવે છે. સંપર્ક વધારે છે. અને એની પાસેથી શાસ્ત્રોનો અભ્યાસ કરે છે. આથી ખીજ ગચ્છના મુનિરાજોની પણ તેના પર પ્રીતિ થવા લાગે છે આથી શિષ્ય પરંપરાની વૃદ્ધિ થાય છે, કેમ કે

एवं शिष्यप्राप्त्यनन्तरं स्व परोपकारकरणेन गच्छकार्ये संपादिते दीर्घे पर्याये च प्रतिपालिते सति अभ्युद्यतमरणं स्वीकरणीयम् । अभ्युद्यतमरणं त्रिविधम्—पादपोषगमनं, इङ्गितम्, भक्तप्रत्याख्यानं च ।

अभ्युद्यतमरणे संलेखनादिरूपा समाचारी प्रदर्श्यते—संलेखना आगमोक्तेन विधिना शरीरादेः कृशोकरणम्, सा त्रिविधा—उत्कृष्टा, मध्यमा, जघन्या च । तत्रो-  
उनको गुणगणशाली समझने लगते हैं तो उनके अधिक परिचय में आने से लोगों पर उनके ज्ञानादिक गुणों का प्रभाव पडता है । इससे प्रभावित होकर वे उनको अपना हितकारक जान उनके समीप दीक्षित भी हो जाते हैं । इससे शिष्यपरंपरा बढ़ती है । इस प्रकार अनियत वास से पर्यटन करने वाले साधु को ये अनेक लाभ होते हैं ।

शिष्यप्राप्ति के अनंतर स्व एवं पर का उपकार करने से गच्छ का कार्य संपादित होने पर तथा साधु अवस्था की पर्याय दीर्घकालतक पालीजाने पर उन साधुओंको अभ्युद्यतमरण स्वीकार करना चाहिये । यह अभ्युद्यतमरण ३ तीन प्रकार का है १ पादपोषगमन, २ इङ्गित, ३ भक्तप्रत्याख्यान ।

इस अभ्युद्यतमरण में अब संलेखनादि रूप समाचारी दिखलाई जाती है — आगमोक्तविधि के अनुसार शरीर आदि का कृश करना इस का नाम संलेखना है । यह उत्कृष्ट, मध्यम एवं जघन्य के

ढोके न्यारे तेने गुणशाली समजता थाय छे त्यारे तेना अधिक परिचयमां आवे छे. आथी ढोके उपर येना ज्ञानादिक गुणोना प्रभाव पडे छे. येथी प्रभावित थर्ध तेने पोताना छितकारी ज्ञानी तेनी समीप दीक्षित पणु थर्ध जय छे. आथी शिष्यपरंपरा वधे छे. आथी आ प्रकारने अनियतवास अने पर्यटन करवावाणा साधुने अनेक लाभ थाय छे.

शिष्य प्राप्ति उपरांत स्व अने परना उपकारक बनवाथी गच्छनुं कार्य संपादित थवाथी. तथा साधु अवस्थानी पर्याय लांभा समय सुधी पाणवामां आववाथी ये साधुओये अभ्युद्यतमरण स्वीकारवुं जेधे ये. आ अभ्युद्यतमरण त्रय प्रकारनां छे. (१) पादपोषगमन (२) इङ्गित (३) भक्तप्रत्याख्यान.

आ अभ्युद्यतमरणमां डवे संलेखनादि रूप समाचारी जताववामां आवे छे. आगममां जतावेद विधि अनुसार शरीर वगेरेने कृश करवुं, येनुं नाम संलेखना छे. ये उत्कृष्ट, मध्यम अने जघन्यना बेदथी त्रय प्रकारनी

त्कृष्टा द्वादशवर्षप्रमाणा, मध्यमा-संवत्सरप्रमाणा, जघन्या-षण्मासिकी । तत्रो-  
त्कृष्टा तावदेवम्-प्रथमं चत्वारि वर्षाणि विचित्रं तपः कृत्वा पारणके विकृतिपरि-  
त्यागं करोति । ततः परं चत्वारि वर्षाणि विचित्रतपांसि करोति । ननु किं नाम  
विचित्रं तपः ? उच्यते-कदाचिच्चतुर्थम् कदाचित् षष्ठम्, कदाचिदष्टमम्, एवं दशम  
द्वादशादीन्यपि करोति, पारणं च सर्वकामगुणितेन उद्गमादि शुद्धेनाहारेण विधत्ते ।  
ततः परं द्वे च वर्षे एकान्तरितमाचाम्लं करोति । एकान्तरं चतुर्थं कृत्वा आचाम्लेन  
पारणं करोतीत्यर्थः । एवं दशवर्षाणि व्यतीत्यैकादशेवर्षे आद्यान् षण्मासान् चतुर्थं

भेद से तीन प्रकार की होती है । उत्कृष्टसंलेखना बारह १२ वर्ष की,  
मध्यम संलेखना एक १ वर्ष की एवं जघन्य संलेखना छह ६ मास की  
होती है । उत्कृष्टसंलेखना की विधि इस प्रकार है-सब से पहिले जो  
उत्कृष्टसंलेखना धारण करता है वह प्रथम के चार वर्ष लगातार  
विचित्र तप करके पारणा में विकृति-विगय का त्याग करे । दूसरे चार  
वर्षों में विचित्र तप अर्थात् कभी वह चतुर्थ करता है कभी छठ करता  
है कभी अष्टम करता है कभी दशम करता है और कभी द्वादश आदि  
करता है । पारणा सर्वकामगुणित सब इन्द्रियों के अनुकूल तथा उद्गम  
आदि दोषों से विशुद्ध ऐसे आहार से करता है । इसके बाद फिर वह  
दो वर्षों में अर्थात् नवमें दशमें वर्ष में एकान्तरित आचाम्ल (आयंबिल)  
व्रत की आराधना करता है । यह आराधना उसकी दो २ वर्ष तक  
चलती रहती है । अर्थात्-दो वर्ष एकान्तर चतुर्थ करके आचाम्ल  
(आयंबिल) से पारणा करता है । इस प्रकार करते २ उसके दस १०

होय छे. उत्कृष्टसंलेखना बारवर्षनी, मध्यम संलेखना छेकवर्षनी, अने  
जघन्यसंलेखना छ भडिनानी होय छे. उत्कृष्ट संलेखनानी विधि आ प्रकारनी  
छे, सहुथी पडेलां जे उत्कृष्ट संलेखना धारणु करे छे, तेखे प्रथमना बार  
वर्ष सुधी विचित्र तप करी पारणांमां विकृति विगयने त्याग करे, भील  
बार वर्षोमां ते विचित्र तप अर्थात् कही योथ करे छे. कहीक छठ  
करे छे. कहीक अष्टम करे छे. अने कयारेक द्वादश वगेरे करे छे. पारणुं सर्व-  
काम शुणीत अधी इन्द्रियोने अनुकूल तथा उद्गम आदि दोषोथी रहित  
आहारथी करे छे. आ पछी ते जे वर्षमां अर्थात् नवमा दशमा वर्षमां  
अेकान्तरित आयंभील व्रतनी आराधना करे छे. आ आराधना जे वर्ष सुधी आबे  
छे. अर्थात् जे वर्ष अेकान्तर योथ करी आयंभीलथी पारणुं करे छे, आ रीते  
करतां करतां अेना दश वर्ष व्यतित थर्थ जाय छे. अयारे अगीयारमां वर्षनी

षष्ठं वा तपः करणीयं नाष्टमादिकम् । ततः परमन्यान् षण्मासान् अष्टमदशम-  
द्वादशादिकमुत्कृष्टं तपः करोति । अस्मिन्नेकादशेवर्षे पारणके तु परिमितं-स्वल्प-  
संख्यकमाचाम्लं करोति । कदाचित् करोति कदाचिन्नकरोतीति भावः । द्वादशे  
तु वर्षे कोटिसहितं निरन्तरमाचाम्लं करोति । अत्र कोटिसहितमित्यस्यायमर्थः—  
कोटिभ्यां सहितम्—विवक्षितदिने आचाम्लं कृत्वा पुनर्द्वितीयेऽह्नि आचाम्लमेव  
प्रत्याख्याति, ततः प्रथमस्य पर्यन्तकोटिः, द्वितीयस्य प्रारम्भकोटिः, इमे द्वे मिलिते  
भवतस्तत्कोटिसहितं भवति, इदमाचाम्लं निरन्तरं भवतीत्यर्थः । तत्रापि मासार्द्धेन  
मासिकेन वाऽऽहारत्यागेन तपश्चरणीयम् । अनशनं करणीयमित्यर्थः । अनेन क्रमेण  
द्वादशवार्षिकीमुत्कृष्टां संलेखनां कृत्वा गिरिगहरं वा षट्कायोपमर्दरहितं निर्जनं

वर्ष व्यतीत हो जाते हैं और जब ग्यारह ११वां वर्ष प्रारंभ होता है तो  
उसमें आदि के छह ६ मास तक वह चतुर्थ, षष्ठ, तपस्या की आराधना  
करता है, अष्टम आदि की नहीं । बाकी ऊपर के छह ६ महिनों में  
अष्टम, दशम एवं द्वादश आदि उत्कृष्ट तप करता है । इस वर्ष में  
पारणा के दिन परिमित आयंबिल करता है । अर्थात् कभी आयंबिल  
करता है कभी नहीं करता । बारह १२वे वर्ष में कोटिसहित-निरन्तर  
आयंबिल करता है । जहां पहिले आयंबिल का अन्त हो और दूसरे  
आयंबिल का प्रारंभ, इसका नाम कोटि है । इन दोनों कोटियों से  
सहित जो आयंबिल होता है उसका नाम कोटिसहित आयंबिल है ।  
ये आयंबिल निरन्तर होता है, अन्त में मासार्ध-एक पक्ष और  
मासिक-एक मास का अनशन करता है । इस क्रम से बारह १२  
द्वादश वर्ष की उत्कृष्ट संलेखना होती है । इस उत्कृष्ट संलेखना को

शब्दात् डोय छे. छ मास सुधी ते योथ, छठु तपस्यानी आराधना करे छे.  
अष्टम वगेरेनी नडीं ये पछीना छ महिनामां अष्टम, दशम, अने द्वादश  
आदि उत्कृष्ट तप करे छे. आ वर्षमां पारणाना द्विसे परिमित आयंबिल  
करे छे. अर्थात् कोठि वषत आयंबिल करे छे. कोठि वषत करता नथी.  
आरमा वर्षमां कोटि सहित निरंतर आयंबिल करे छे. ज्यां पहिलां आयं-  
बिलने अंत आवे अने भील आयंबिलने प्रारंभ थाय अनुं नाम कोटि  
छे. आ अने कोटिआ सहित ने आयंबिल डोय छे अनुं नाम कोटि  
साहित आयंबिल छे. आ आयंबिल दोन थाय छे. अंतमां मासार्ध-एक  
पक्ष अने मासिक-एक मासनुं अनशन करे छे. आ कभी आर (द्वादश)  
वर्षनी उत्कृष्ट संलेखना थाय छे. आ उत्कृष्ट संलेखना करीने साधु कां तो

સ્થાનં વા ગત્વા પાદપોપગમનમ્ , ઇક્ષિતં ભક્તપ્રત્યાખ્યાનં વા મરણં યથાશક્તિ પ્રપદ્યતે ।

મધ્યમા તુ સંલેખના પૂર્વોક્તપ્રકારેણ દ્વાદશભિર્માસૈર્ભવતિ । તત્ર વર્ષસ્થાને માસા સ્થાપનીયાઃ ।

જઘન્યા તુ દ્વાદશભિઃ પક્ષૈઃ પૂર્વોક્તપ્રકારેણ ભવતિ । પક્ષાનેવ વર્ષસ્થાનીયાન્ કૃત્વા તપશ્ચરણં કર્તવ્યં ભવતિ । ગિરિકન્દરાદિગમનં મધ્યમજઘન્યયોરપિ ।

કરકે સાધુ યા તો કિસી પર્વત કી ગુફા મેં ચલા જાતા હૈ, યા ષટ્કાય કે ઉપમર્દન સે રહિત નિર્જીવ કિસી નિર્જનસ્થાન મેં ચલા જાતાં હૈ । વહાં પહુંચ કર પાદપોપગમન, ઇંગિત, ભક્તપ્રત્યાખ્યાન ઇન તીનોં મેં સે કિસી એક કો જૈસી શક્તિ હોતી હૈ ઉસકે અનુસાર સ્વીકાર કર લેતા હૈ ।

મધ્યમા સંલેખના એક ૧ વર્ષ કી હોતી હૈ । જો વિધિ બારહ ૧૨ વર્ષ કી સંલેખના મેં પ્રદર્શિત કરને મેં આઈ હૈ વહ વિધિ હસકી ખી હૈ વહાં જહાં વર્ષ કા પ્રમાણ ગ્રહણ કિયા ગયા હૈ હસમેં ઉસ જગહ માસ રૂપ પ્રમાણ સમજ્ઞાના ચાહિયે । જૈસે વહાં ૪ વર્ષ આદિ કહા હૈ હસમેં ૪ માસ સમજ્ઞાના ચાહિયે ।

જઘન્ય સંલેખના ૧૨ પક્ષોં-૬ માસ-કે પ્રમાણ વાલી હોતી હૈ । હસકી ખી વિધિ વહી હૈ જો ઉત્કૃષ્ટ સંલેખના કી હૈ । વર્ષ કે સ્થાન મેં યહાં પક્ષોં કો ગ્રહણ કિયા જાતા હૈ । મધ્યમ સંલેખના એવં જઘન્ય સંલેખના ઇન દોનોં મેં ખી ગિરિકન્દરા આદિ મેં જાના આવશ્યકીય હૈ ।

કોઈ પર્વતની શુક્રામાં ચાલ્યા જાય છે. અથવા ષટ્કાયના, ઉપમર્દનથી રહિત નિર્જીવ એવા નિર્જન સ્થાનમાં ચાલ્યા જાય છે. ત્યાં પહોંચી પાદપોપગમન ઇંગિત, ભક્તપ્રત્યાખ્યાન આ ત્રણમાંથી પોતાની શક્તિ પ્રમાણે કોઈ એક મરણનો સ્વીકાર કરી લે છે,

મધ્યમા સંલેખના એક ૧ વર્ષની હોય છે. જે વિધિ બાર ૧૨ વર્ષની સંલેખનામાં પ્રદર્શિત કરવામાં આવી છે તે વિધિ આની પણ છે. જ્યાંવર્ષનું પ્રમાણ શ્રદ્ધ કરવામાં આવ્યું છે ત્યાં મહિનાનું પ્રમાણ મધ્યમા સંલેખના માટે સમજવું જોઈએ. જેમ ત્યાં ચાર વર્ષ આદિ કહેલ છે. ત્યાં આમાં ચાર મહિના સમજવા જોઈએ.

જઘન્ય સંલેખના ૧૨ પક્ષ-છ માસ ના પ્રમાણવાળી હોય છે. આની વિધિ પણ એ જ છે. જે ઉત્કૃષ્ટ સંલેખનાની છે. મધ્યમ સંલેખના અને જઘન્ય સંલેખના આ બંનેમાં પણ ગિરિકન્દરા આદિમાં જવું આવશ્યક છે.



संलेखनायामसमर्थेन मुनिना संलेखनां विनाऽपि यथाशक्ति संस्तारकं कृत्वाऽ-  
भ्युद्यतमरणं स्वीकरणीयम् ।

अभ्युद्यतमरणाङ्गीकरणात् प्रागिदं चिन्तनीयम्-मया विशुद्धचारित्रानुष्ठानेन  
स्वपरहितं संपादितम् , शिष्याद्युपकारतः परहितं च, निष्पन्नाश्च सम्प्रति मम ग-  
च्छपरिपालनक्षमाः शिष्याः, अथ विशेषेण ममात्महितमनुष्ठेयमिति विचिन्त्य  
स्वपरिज्ञाने सति स्वकीयमायुः शेषं स्वयमेव पर्यालोचयति, तदभावेऽन्यं विशिष्ट  
माचार्यादिकं पृच्छति । स्वायुषिस्तोकतया ज्ञाते भक्तप्रत्याख्यानादि मरणं यथा-  
शक्ति प्रतिपद्यते । यदि स्वायुर्दीर्घतया ज्ञातं जङ्घाबलमात्रं परिक्षीणं तदा स्थिरवासं

जो साधु संलेखना करने में असमर्थ है उसे संलेखना के विना भी  
यथाशक्ति संधाराकर अभ्युद्यतमरण स्वीकार करना चाहिये । इस अभ्यु-  
द्यतमरण को अंगीकार करने के पहिले साधु को इस प्रकार विचार  
करना चाहिये कि मैंने विशुद्ध चारित्र के अनुष्ठान से स्व हित संपादित  
कर लिया है । शिष्यादिकों के उपकार से पर का उपकार भी कर दिया  
है । इस समय गच्छ का परिपालन करने में समर्थ मेरी शिष्यादि संपत्ति  
भी सर्व प्रकार से शक्तिशाली हो चुकी है । अब मुझे निश्चिन्त होकर  
विशेष रीति से अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहिये “ मेरी अव-  
शिष्ट आयु कितनी है ” इस प्रकार स्वयं जान कर अथवा यदि स्वयं  
नहीं जान सके तो अन्य विशिष्ट आचार्य आदि से पूछकर निश्चित  
करले । यदि आयु अल्प ज्ञात होवे तो यथाशक्ति उसे भक्तप्रत्याख्या-  
नादि मरण स्वीकार कर लेना चाहिये । यदि आयु दीर्घ ज्ञात होवे और

जे साधु संलेखना करवामां असमर्थ छे, जेणे संलेखना वगर पण  
यथाशक्ति संधारो करी अण्युद्यत मरणुनो स्वीकार करवो जेधजे. आ अण्यु-  
द्यत मरणुनो अंगिकार करतां पळेलां साधुजे जे प्रकारनो विचार करवो जेधजे  
के, में विशुद्ध चारित्रना अनुष्ठानथी स्वहित संपादित करी लीधुं छे, शिष्या-  
दिकेना उपकारनी साथेसाथ भीज उपर पण उपकार कर्यो छे. आ समय  
गच्छनुं परिपालन करवामां समर्थ जेवी भारी शिष्यादिसंपत्ति पण सर्व  
प्रकारथी शक्तिशाली जनी चुकी छे. हुवे भारे निश्चित जनीने विशेष रीतथी  
भारा आत्मानुं कल्याण करवुं जेधजे. “ भारी अवशिष्ट आयु केटली छे ” आ  
वात पोते जणुने अथवा जे पोते न जणु शके तो भीज शुषुसंपन्न  
आचार्य आदिथी पूछीने नक्की करी दे. जे आयुष्य अल्प होय तो; यथाशक्ति  
तेणे भक्तप्रत्याख्यान आदि मरणुनो स्वीकार करवो जेधजे. जे आयु लांभी

स्वीकरोति तत्रैव क्षेत्रे वसन्नपि वसतिदोषैरुपविदोषैश्च रहितो भवति । शक्तौ पुष्टायां तु अस्मिन् पञ्चमारके जिनकल्पप्रतिपत्तिविधानाभावात् स्थविरकल्पेनैव स्वपरोपकारकरणेन दीर्घपर्यायः प्रतिपालनीयः ।

॥ इति स्थविरकल्पिकसामाचारी ॥

चतुर्थारकापेक्षया जिनकल्पादिप्रतिपत्तिरूपे अभ्युद्यतविहारे मर्यादा प्रदर्श्यते - तत्र जिमकल्पादि प्रतिपित्सुना प्रथममेव ' मया विशुद्धचारिबानुष्ठानेन स्वपरहितं ' इत्यादि विचिन्त्य, तथः सत्त्वादि भावनाभिरात्मा माचनीयः ।

साथ'म जघाबल क्षीण हुआ मालूम पड़े तो उसे स्थिरवास अंगीकार करलेना चाहिये । और इसी स्थिरवास से उसी क्षेत्र में रहते हुए भी वह वसति के दोषों से एवं उपाधि के दोषों से रहित हो जाता है । यदि शक्ति पुष्ट होवे तो भी इस पञ्चम आरे में जिनकल्प की प्रतिपत्ति के विधान का अभाव होने से स्थविरकल्प की हालत में ही रहते हुए स्व पर का उपकार करते २ दीर्घपर्याय को पालते रहना चाहिये ।

॥ यह स्थविर कल्प की समाचारी है ॥

अब-चौथे आरे की अपेक्षा से जिनकल्प आदि की प्रतिपत्ति स्वीकृति रूप अभ्युद्यत विहार में कैसी क्या मर्यादा होती है यह बात प्रकट की जाती है-जो साधु जिनकल्प आदि को प्राप्त करने का अभिलाषी है उसे चाहिये की वह सर्व प्रथम ऐसा विचार करे कि मैंने विशुद्ध चरित्र के अनुष्ठान से अपना और पर का हित तो साधित किया । अब हम को तवं एवं सत्त्वादि पांच भावनाओं से आत्मा को भावित करना चाहिये ।

होय अने साथे ऋधाभण क्षीणु ऋष्याय तो तेणु स्थिरवास अंगिकार करी देवो न्नेधये. आ स्थिरवासथी ते क्षेत्रमां रडेवा छतां ते वस्तीना दोषोथी अने उपाधीना दोषोथी रडित अने छे. कदाच शक्ति सारी होय तो पणु आ पांचमा आरामां अनुकल्पनी प्रतिपत्तिना विधानना अभाव होवाथी स्थविरकल्पनी हालतमां रडीने स्व अने परने। उपकार करतां करतां दीर्घ पर्यायनुं पालन करता रडेवुं न्नेधये.

॥ आ स्थविरकल्पनी समाचारी छे ॥

हवे योथा आरानी अपेक्षाथी अनुकल्प आदिनी प्रतिपत्ति स्वीकृतिरूप अभ्युद्यत विहारमां डेवी अने डेटली मर्यादा होय छे आ वात प्रगट करवामा आवे छे-जे साधु अनुकल्प आदिने प्राप्त करवानो अभिलाषी छे तेणु ऋषुवुं न्नेधये डे, जे विशुद्ध चरित्रना अनुष्ठानथी पोतानु अने परनु हिततो साधु. हवे मांरे तथ अने सत्त्वादिपाच भावनाओथी आत्माने भावित करवा न्नेधये

तथाचोक्तम्—

तवो सत्तं च सुत्तं च, एगत्तं बलमप्पणो ।

पहमं पंच भावित्ता जिणकप्पं पवज्जइ ॥ १. ॥

छाया—तपः सत्त्वं च सूत्रं च, एकत्वं बलमात्मनः ।

प्रथमं पञ्च भावयित्वा, जिनकल्पं प्रपद्यते ॥ १ ॥

अयं भावः—जिनकल्पप्रतिपित्सुस्तपोभावनयात्मानं भावयन् देवादिकृतोपसर्गादिनाऽनेषणादिकारणतो वा यदि षण्मासपर्यन्तमाहारं न लभते तथापि न बाध्यते ॥ १ ॥ सत्त्वभावनया भयं पराजयते ॥ २ ॥ सूत्रभावनया सूत्रं स्वनामवत् पहिचितं करोति ॥ ३ ॥ एकत्व भावनया चात्मानं भावयन् सार्धमिक साध्वादिना सह मिथः कथादिव्यतिकरान् सर्वानपि परिवर्जयति । ततो बाह्य-

कहा भी है ।

तवो सत्तं च सुत्तं च, एगत्तं बलमप्पणो ।

पहमं पंच भावित्ता जिणकप्पं पवज्जइ ॥ १ ॥

इसका भाव यह है कि—जिनकाप को धारण करने का डच्छुक साधु तप भावना से आत्मा को भावित करता हुआ यदि देव मनुष्य आदि द्वारा होने वाले उपसर्ग से अथवा अनेषणादि रूप कारण से छह नदख तक आहार प्राप्त न कर सके तौ भी बाधिन नहीं होता है । सत्य भावना से वह भय पर विजय प्राप्त करता है । एकत्वभावनया से असनी आत्मा को भावित करता हुआ साधर्मिक साधु आदिकों के साथ पर-सार में कथा वार्ता आदि समस्त बातों का परित्याग कर देता है । जब

कथं, पथु छे—

तवो सत्तं च सुत्तं च, एगत्तं बलमप्पणो ।

पहमं पंच भावित्ता, जिणकप्पं पवज्जइ ॥ १ ॥

आनो लाव अे छे के—अनकल्पने धारण करवानी छिछावाणा साधु तप लावनाथी आत्माने लावित करीने देव मनुष्य आदि द्वारा थनार उपसर्गथी अथवा अनेषणादिइय कारणथी छ भडिना सुधी आहार भेगवी न शके तो पथु पीडा पाभतो नथी. सत्वलावनाथी ते लय उपर विजय प्राप्त करे छे. सूत्र-लावनाथी पोताना नामनी माइक सूत्रनो परियय प्राप्त करे छे, अेकत्व लावनाथी पोताना आत्माने लावित करीने साधर्मिक साधु आदिनी साथे परस्परमां कथावार्ता आदि समस्त वातेनो परित्याग करी दे छे. क्यारे बाह्यमां तेनुं भभत्व

મમત્વે મૂલત ઇવોચ્છેદિતે પશ્ચાદ્ દેહાદિભ્યોઽપિ ભિન્નમાત્માનં પશ્યન્ સર્વથા તેષ્વ-  
નાસક્તો ભવતિ ॥ ૪ ॥ બલભાવનાયાં બલં દ્વિવિધં-શરીરં, માનસં ચ । તત્ર શારી-  
રમપિ બલં જિનકલ્પપ્રતિપત્તિયોગ્યસ્ય શેષજનાતિશાયિકં સ્યાત્, તપઃ પ્રમૃતિભિઃ  
શુઘ્યમાણસ્ય યદ્યપિ શારીરં બલં તાદૃશં ન ભવતિ તથાપિ સ્વાત્મા ધૃતિબલેન તથા  
ભાવયિતવ્યો યથા મહદ્ધિરપિ પરીષહોપસર્ગૈર્નવાધ્યતે ।

આભિઃ પશ્ચમિર્ભાવનામિર્ભાવિતાત્મા જિનકલ્પાદિ પ્રતિપિત્સુર્ગચ્છે પ્રતિ-  
વસન્નાહારાદિપરિકર્મ પ્રથમમેવ કરોતિ । આહારાદાવન્યસાધ્વપેક્ષ્યાઽન્તપ્રાન્તાદિ-

બાહ્ય મેં મમત્વ મૂલતઃ ઉસકા ઉચ્છેદિત હો જાતા હૈ તબ અન્ય દેહાદિ  
પદાર્થો સે ભિન્ન સ્વ આત્મા કો જાનતા હુઆ વહ્ ઉન મેં સર્વથા અના-  
સક્ત હી રહતા હૈ । ઉનમેં આસક્ત નહીં હોતા । બલભાવના મેં બલ દો  
પ્રકાર હૈ એક શરીર સંબંધી ઓર દૂસરા મનસંબંધી । જો સાધુ જિન-  
કલ્પ કી પ્રતિપત્તિ કે યોગ્ય હોતા હૈ ઉસકા શારીરિક બલ ખી યદ્યપિ  
સાધારણજન કી અપેક્ષા અતિશય વિશિષ્ટ હોતા હૈ પરન્તુ તપશ્ચર્યા  
આદિ કે કારણ ઉનકા શરીર જબ કૃશ હો જાતા હૈ તબ વહ્ વૈસા નહીં  
રહતા હૈ તૌ ખી ઉનકી આત્મા ધૃતિબલ દ્વારા ઇતની અધિક ભાવિત  
રહતી હૈ કિ જિસકી વજહ સે વે અધિક સે અધિક પરીષહ ઓર ઉપ-  
સર્ગોં સે આક્રાન્ત હોને પર ખી અપને કર્તવ્યમાર્ગ સે જરા ખી  
વિચલિત નહીં હોતે ।

इन पांच भावनाओं से भावितात्मा जिनकल्पादिक को ग्रहण  
करने की इच्छा से गच्छ में रहता हुआ आहारादि परिकर्म को सब

મુલતઃ નાશ પામે છે ત્યારે બીજા દેહાદિ પદાર્થોથી ભિન્ન પોતાના આત્માને  
જાણીને તેમાં સર્વથા અનાસક્ત જ રહે છે. એમાં આસક્ત બનતા નથી.  
બળભાવનામાં બળ બે પ્રકારનાં છે. એક શરીર સંબંધી અને બીજું મન  
સંબંધી. જે સાધુ જિનકલ્પની પ્રતિપત્તિને યોગ્ય હોય છે તેનું શારીરિક બળ  
પણ જો કે, સાધારણ જનની અપેક્ષા અતિશય બલવાન હોય છે. પરંતુ તપ-  
શ્ચર્યા આદિના કારણથી તેનું શરીર બ્યારે કૃષ અને છે ત્યારે તે તેવા રહેતા  
નથી. તો પણ તેની આત્મા ધૃતિબળ દ્વારા એટલી અધિક ભાવિત રહે છે કે,  
જેનાથી તે અધિકથી અધિક પરીષહ અને ઉપસર્ગોથી આક્રાન્ત થતા હોવા છતાં  
પણ પોતાના કર્તવ્યમાર્ગથી જરા પણ ચલિત થતા નથી.

આ પાંચ ભાવનાઓથી ભાવિતાત્મા જિનકલ્પાદિકને ગ્રહણ કરવાની ઇચ્છાથી  
ગચ્છમાં રહીને આહારાદિ પરિકર્મને બધાથી પહેલાં કરી લે છે, આહારાદિમાં

ग्रहणादुत्कृष्टतासम्पादनम्-परिकर्म । यथा-तृतीयपौरुष्यामवगाढायां वल्ल-चण-  
कादिकमन्तं प्रान्तं रूक्षं च गृह्णाति ।

“ संसद्वमसंसद्वा, उद्धड तह होइ अप्पलेवा य ।

उग्गहिया पग्गहिया, उज्झियधम्मा य सत्तमिया ॥ १ ॥ ”

आसां सप्तविधानां पिण्डैषणानां मध्ये आद्यद्वयं विहाय पञ्चानां मध्यादन्य-  
तरैषणाद्वयाभिग्रहेणाऽऽहारं गृह्णाति एकैषणया भक्तं, द्वितीयया तु पानकम् ।  
एवमागमोक्तविधिनाऽऽत्मानं भावयित्वा गच्छप्रतिबद्ध एव जिनकल्पं प्रतिपित्सु-  
श्चतुर्विधसंघं संमेलयति, तदभावे स्वर्गणं ततस्तीर्थकरस्य समीपे, तदभावे गण-

से पहिले ही कर लेता है आहार आदि में अन्य साधु की अपेक्षा  
अंतप्रांत आदि ग्रहण से उत्कृष्टता का संपादन करना परिकर्म है ।  
जैसे तृतीय पौरुषी में वल्ल; चना आदि का आहार करना एवं अन्त-  
प्रान्त रूक्ष आहार करना ।

संसद्वमसंसद्वा, उद्धड तह होइ अप्पलेवा य ।

उग्गहिया पग्गहिया, उज्झियधम्मा य सत्तमिया ॥१॥

इन सात प्रकार की पिण्डैषणाओं के मध्य में आदि की दो एष-  
णाओं को छोड़कर बाकी बची पांच एषणाओं में से अन्यतर एषणा दो  
के अभिग्रह से वह आहार को ग्रहण करता है । एक एषणा से भक्त  
को और द्वितीय एषणा से पान को । इस प्रकार आगमोक्त विधि के  
अनुसार आत्मा को भावित करके गच्छ में रहता हुआ ही जिनकल्प  
को अंगीकार करने का अभिलाषी साधु चतुर्विध संघ को एकत्रित

अन्य साधुनी अपेक्षा अंतप्रान्त आदि अदृष्ट्या उत्कृष्टतानुं संपादन करवुं  
परिकर्म छे. जेम-त्रीण पौरुषीमां वाल, यण्ण आदिने आहार करवे। अने  
अन्तप्रान्त रूक्ष आहार करवे।

संसद्वमसंसद्वा, उद्धड तह होइ अप्पलेवा य ।

उग्गहिया पग्गहिया, उज्झियधम्मा य सत्तमिया ॥ १ ॥

ये सात प्रकारनी पिण्डैषणायेना मध्यमां पडेदानी ये अेषणायेने  
छोडीने आकी अयेव पांच अेषणायेमांथी अन्यतर अेषणा येना अलिअदृथी  
ते आहार अदृष्ट करे छे, अेक अेषणाथी लकतने अने थीअ अेषणाथी पानने  
आ प्रकारे आगममां कडेव विधि अनुसार आत्माने भावित करीने गच्छमां  
रडीने अ अन्तकल्पने अंगिकार करवाना अभिलाषी साधु चतुर्विध संघने अेक-

धरस्य, तदभावे चतुर्दशपूर्वधरस्य, तदभावे दशपूर्वधरस्य, तदभावे वटाश्वत्थाशोक-  
वृक्षाणां संनिधौ सिद्धसाक्षिकं जिनकल्पं स्वीकरोति । तदा सवालवृद्धं गच्छं  
क्षामयति । ततो निःशल्यो निष्कषायोऽसौ स्वगणसाध्वादीननुशास्ति । एवमेव  
युष्माभिरप्याचरणीयम् नात्र प्रमादः कार्यः । गणमर्यादा नोल्लङ्घनीया । इत्यादि  
शिक्षां दत्त्वा गच्छाद् विनिर्गतो भवति । तस्मिन् चक्षुर्विषयातिक्रान्ते सति साधवः  
प्रतिनिवर्तन्ते ।

करता है । इसके अभाव में अपने गण को, एकत्रित करता है बाद में तीर्थकर के समीप में, इनके अभाव में गणधर के समीप में, इनके अभाव में चौदहपूर्वधारी के समीप में, इनके अभाव में दशपूर्वधारी के समीप में, इनके भी अभाव में वटवृक्ष अश्वत्थ-पीपल वृक्ष, अथवा अशोक वृक्ष के समीप सिद्ध परमात्मा को साक्षी करके जिनकल्प को स्वीकार करता है । उस समय यह अपने गच्छ में रहने वाले बालवृद्ध साधुओं से खमत खामणा करते हैं । पश्चात् निःशल्य एवं निष्कषाय होकर अपने गच्छ के साधु आदिकों को यह शिक्षा देता है कि आप-लोग भी इसी तरह से करें इसमें प्रमाद करना ठीक नहीं है । गण की जो मर्यादा है उसका उल्लंघन नहीं करना । इत्यादि शिक्षा देकर फिर वह गच्छ निर्गत हो जाता है । साधु वर्ग जब तक वह दिखता रहता है तबतक उसके पीछे २ चलता रहता है और जब वह दिखलाई नहीं पड़ता तब सब पीछे वापिस लौट आते हैं ।

त्रीत करे छे, जेना अलावमां पोताना गणुने ओकत्रीत करे छे, आदमा तीर्थ करनी समीपमां, जेना अलावमां गणुधरनी समीपमां, तेना अलावमां चौद पूर्वधारीनी समीपमां, तेना अलावमां दशपूर्वधारीनी समीपमां, तेना पणु अलावमां वटवृक्ष, आशोपालव, पीपणो अथवा अशोकवृक्षना समीप सिद्ध परमात्माने साक्षी राभीने उनकल्पने स्वीकार करे छे, आ समये ते पोताना गच्छमां रडेला आण-वृद्ध साधुओथी अमत आमणु करे छे पछी निःशल्य अने निष्कषाय थछने पोताना गच्छना साधु आदिने जेवी शिषामणु आपे छे के, आप दोकोजे पणु आज रीते करवुं, तेमां प्रमाद करवो ठीक नहीं, गणुनी जे मर्यादा छे तेतुं उलंघन करवुं नहीं, इत्यादि शिषामणु आपीने पछी ते गच्छ निर्गत थछ जय छे, ज्यां सुधी ते देणाय छे त्यां साधुवर्ग तेनी पाछण पाछण आदता रडे छे अने ज्यारे ते देणाय थय छे त्यारे सधणा पाछा करे छे,



अथ जिनकल्पिकमर्यादा—

अनया मर्यादया जिनकल्पं स्वीकृत्यासौ यत्र ग्रामे मासकल्पः करिष्यमाणस्तत्र षड् भागान् कल्पयति, ततश्च यस्मिन् भागे एकस्मिन् दिने भिक्षाचर्या-कृता, तत्र पुनरपि सप्तम एवं दिने पर्यटति । भिक्षाचर्यां ग्रामान्तरगमनं च तृतीय-पौरुष्यामेव करोति । यत्र चतुर्थपौरुषी प्राप्ता भवेत्, तत्रैवावतिष्ठति, नान्यत्र गच्छति । मक्तं पानकं च पूर्वोक्तैषणाद्वयाभिग्रहैणालेपकृदव गृह्णाति । एषणादिविषयमन्तरेण न केनापि सार्धं भाषते । एकस्मां च वसतौ यद्यपि उत्कृष्टतः सप्त जिनकल्पिकाः प्रतिवसन्ति तथापि ते परस्परं संभाषणं न कुर्वन्ति । समापन्नान् उपसर्गपरीषहान् सर्वान् सहत एवं । रोगेषु चिकित्सां न कारयत्येव तद्वेदानां तु

अथ जिनकल्पी की मर्यादा कहते हैं—

इस मर्यादा से जिनकल्प को स्वीकार कर यह जिस ग्राम में मास-कल्प करता है वहाँ छह भागों की कल्पना करता है । जिस भाग में एक दिन में भिक्षाचर्या करली गई हो वहाँ फिर यह सातवे दिन ही भिक्षाचर्या करता है । भिक्षाचर्या करना अथवा एक ग्राम से दूसरे ग्राम में जाना यह तृतीय पौरुषी में ही करता है । जहाँ चतुर्थ पौरुषी आ जाती है वह वहीं पर ठहर जाता है । अन्यत्र नहीं जाता है । पूर्वोक्त दो एषणाओं के अभिग्रह से अलेपकृत-लेपरहित जिसका लेप न लगे ऐसे भक्त पान को ग्रहण करता है । एषणादि विषय-के बिना किसी के भी साथ बातचीत नहीं करता है । एक वस्ती में यद्यपि अधिक से अधिक सात जिनकल्पी साधु रह सकते हैं तौ भी वे परस्पर संभाषण नहीं करते हैं । जो भी उपसर्ग या परीषह आपडे तो उसे सहते ही हैं । रोग

हुवे उनकल्पिनी मर्यादा कडेवाभां आवे छे—

आ मर्यादाथी उनकल्पने स्वीकार करी ते साधु जे गामभां मास कल्प करे छे त्यां छ लागोनी कल्पना करे छे. जे लागभां अेक दिवसभां भिक्षाचर्या करी देवाभां आवी डोय त्यां ते करी सांतभां दिवसे जे भिक्षाचर्या करे छे. भिक्षाचर्या करवी अथवा अेक गामथी भीज गामे जेवुं अे त्रीज पौरुषीभां जे करे छे न्या थोथी पौरुषी आवे त्या ते रोकार्थ जय छे आगण वधता नथी. पूर्वोक्त जे अेषणां अलिअडथी (अलेपकृत) जेने लेप न लागे अेवा भक्त पानने अडणु करे छे. अेषणादि विषय वगर कौर्धनी साथे वातचित्त करता नथी, अेक वस्तीमा जे के, वधुभां वधु सात उनकल्पी साधु रडी शके छे तो पणु तेअे परस्पर संभाषणु करता नथी. जे पणु उपसर्ग अने परीषड आवी पडे

सम्यगेव सहते । आपातसंलोकादिदोषरहिते स्थण्डिले उच्चारादीन् करोति, नत्वस्थण्डिले । परिकर्मरहितायां वसतौ तिष्ठति । यद्युपविशति तदा नियमादुत्कुटुक एव, न तु निषद्यायाम्, औपग्रहिकोपकरणस्यैवाभावात् । मत्तमातङ्गसिंहव्याघ्रादिके संमुखे समापतति सति उन्मार्गगमनादिना ईर्यासमिति न भिनत्ति ।

जिनकल्पिकोऽपवादं नासेवते, जङ्घाबलपरिक्षीणस्तु अविहरमाणोऽप्याराधकः लोचं च करोत्येव, दशविधसामाचार्यां पञ्च समाचार्यीं जिनकल्पिकानां, आप्रच्छना, में ये किसी भी प्रकार चिकित्सा नहीं कराते हैं किन्तु जैसे भी बनता है उस रोग को सहन ही करते हैं । जहां मनुष्यों का आवागमन नहीं होता है ऐसे स्थण्डिल में ही ये उच्चार आदि के लिये जाते हैं । अस्थण्डिल में नहीं । परिकर्म रहित-घटारी मठारी विना की वस्ती में ये रहते हैं जब बैठते हैं तो नियम से उत्कुटुक आसन से ही बैठते हैं । निषद्या से नहीं क्यों कि औपग्रहिक उपकरण आसन आदि का ही इनके पास अभाव है । मत्तमातंग, सिंह, एवं व्याघ्र आदि इन्हें मार्ग में चलते हुए साम्हने मिल जाय तो भी ये उसीमार्ग से चलकर अपनी ईर्यासमिति को खंडित नहीं करते हैं ।

ये जिनकल्पी साधु अपवाद मार्ग का सेवन नहीं करते हैं । इनका जंघाबल यदि परिक्षीण भी हो जावे और उसकी वजह से ये विहार न भी करे तौ भी आराधक ही माने गये हैं । ये केशों का लोच करते हैं । दश प्रकार की समाचारी में से पांच प्रकार की समाचारी इन जिनकल्पियों

तेने तेज्यो सडन करे छे. शैगभां कोर्ध पषु प्रकारनी चिकित्सा तेज्यो करावता नथी पषु जेम अने तेम ते शैगने सडन करे छे. न्यां मनुष्योनुं आवागमन डोतु नथी जेवा उल्लङ्घ स्थानोभां ज तेज्यो शौचादिक कर्म भटे जय छे. अवरजवरना स्थाने नडीं. परिकर्म रहित-घटारी मठारी वगरनी-वस्तीभां रडे छे. न्यारे जेसे छे तो नियमथी उत्कुटुक (उल्लङ्घक पगे जेसपुं) आसनथी जेसे छे, निषद्याथी नडीं. केभके, औपग्रहिक उपकरण आसन आदिने तेनी पासे अभाव छे. मत्त मातंग, सिंह, अने वाघ आदि तेने मार्गभां आबतां सामा भगे तो पषु ते ते मार्गथी खडीने पोतानी धियांसमितिने अंडित करता नथी.

जे अनकल्पी साधु अपवाद मार्गे जाता नथी, तेमनुं जंघाबल जे क्षिणु पषु थई जय अने जे कारणु ते पोतानी जग्याज्येथी विहार न पषु करे तो पषु आराधक ज मानवाभां आवे छे. ते केशोने लोच करे छे दश प्रकारनी समाचारीभांथी पांच प्रकारनी समाचारी अनकल्पीयेनी छे. ते आ प्रकारे छे. १ आप्र-

मिथ्याकारः, आवश्यकी, नैषेधिकी, गृहस्थोपसंपत्, इति। आवश्यकीप्रभृतयस्तिस्त्रो वा सामाचार्यस्तेषाम्। तेषां श्रुतज्ञानं जघन्यतो नवमस्य पूर्वस्य तृतीयमाचारवस्तु, उत्कर्षतस्तु दशपूर्वाणि भिन्नानि, न तु सम्पूर्णानि। संहननं च शारीरं—वज्रर्षभनाराचारख्यं, मानसं वज्रकुड्यसमाना धृतिः च।

स्थितिरपि तेषां क्षेत्रादिका अनेकविधा। क्षेत्रतस्तावज्जन्मना सद्भावेन च पञ्चदशस्वपि कर्मभूमिषु, संहरणतः कदाचित् कर्मभूमौ, अकर्मभूमौ वा सद्भावापेकी है। वह इस प्रकार है—१ आप्रच्छना, २ मिथ्याकार, ३ आवश्यकी, ४ नैषेधिकी, ५ गृहस्थोपसंपदा गृहस्थ की आज्ञा लेकर उतरना, बैठना। अथवा आवश्यकी, नैषेधिकी, गृहस्थोपसंपत्, यह तीन प्रकार की सामाचारी इन जिनकल्पियों के होती है। इनका श्रुतज्ञान जघन्य की अपेक्षा नवमपूर्व की तृतीय आचार वस्तुतक, उत्कृष्ट की अपेक्षा भिन्न दशपूर्वतक ही सीमित रहा करता हैं संपूर्ण नहीं। इनका शारीरिक संहनन वज्र ऋषभ नाराच नामक है और मानसिक संहनन वज्रकुड्य—वज्रकी भीत के तुल्य धैर्य है अर्थात् इनका धैर्य वज्रभित्ति के समान अभेद्य होता है और वही इनका मानसिक बल है।

क्षेत्र आदि की अपेक्षा इनकी स्थिति अनेक प्रकार की है। इनका १५ कर्मभूमियों में ही जन्म होता है इस अपेक्षा १५ कर्मभूमियों में इनकी स्थिति जन्म और सद्भाव की अपेक्षा मानी जाती है। संहरण की अपेक्षा कदाचित् कर्मभूमिमें कदाचित् अकर्मभूमिमें भी इनकी स्थिति हो सकती है।

२ मिथ्याकार, ३ आवश्यकी, ४ नैषेधिकी ५ गृहस्थोपसंपत् गृहस्थनी आज्ञा लधने उतरवुं, जेसवुं अथवा आवश्यकी, नैषेधिकी, गृहस्थोपसंपत्, आ त्रषु प्रकारनी सभाचारी ते अनकल्पीओने डोय छे. तेमनुं श्रुतज्ञान जघन्यनी अपेक्षा नवमा पूर्वना त्रीण आचार वस्तुतक, उत्कृष्टनी अपेक्षा भिन्न दशपूर्व सुधी ज सीमित रह्या करे छे, संपूर्ण नडीं. तेनुं शारीरिक संहनन वज्र वृषभ नाराच नामनुं छे. अने मानसिक संहनन वज्र कुड्य—वज्रनी भीत जेवुं धैर्य छे. अर्थात् तेनुं धैर्य वज्रभीत समान अभेद्य डोय छे. ते तेनुं मानसिक बल छे.

क्षेत्र आदिनी अपेक्षा अनेकी स्थिति अनेक प्रकारनी छे, अनेको १५ कर्मभूमिओमांज जन्म थाय छे. आ अपेक्षा १५ कर्मभूमिओमां तेनी स्थिति जन्म अने सद्भावनी अपेक्षा मानवामां आवे छे. संहरणनी अपेक्षा कदाचित् कर्म भूमिमां, कदाचित् अकर्मभूमिमां पणु अनी स्थिति डोय शके छे. आ

क्षया स्थितिः। कालतः उत्सर्पिण्यां, व्रतापेक्षया तृतीयचतुर्थारकयोरेव, जन्ममात्रेण तु द्वितीयारकेऽपि । अवसर्पिण्यां तु जन्मना तृतीयचतुर्थारकयोरेव । पूर्वप्रतिपन्नव्रतापेक्षया तु पञ्चमारकेऽपि । संहरणतस्तु महाविदेहक्षेत्रापेक्षया सर्वस्मिन्नपि काले प्राप्यते। चारित्रतः— प्रतिपद्यमानानां सामायिके, छेदोपस्थापनीये च चारित्रे स्थितिः । मध्यमतीर्थकर-विदेहतीर्थकरतीर्थवर्त्यपेक्षयाऽत्र सामायिकं, प्रथमचरमतीर्थकरतीर्थवर्त्यपेक्षया तु छेदोपस्थापनीयचारित्रम् । प्रतिपन्नानां तु सूक्ष्मसंपराये,

यह सद्भाव की अपेक्षा कथन है। काल की अपेक्षा—उत्सर्पिणी काल के तृतीय और चतुर्थ आरे में उनकी स्थिति मानी गई है। सो यह व्रत की अपेक्षा जानना चाहिये। वैसे तो जन्ममात्र की अपेक्षा से द्वितीय आरे में भी इनकी स्थिति हैं। अवसर्पिणीकाल में जन्म की अपेक्षा तृतीय और चौथे आरे में ही, तथा पूर्वप्रतिपन्न व्रत की अपेक्षा अर्थात्—चौथे आरे के व्रत को लेकर पंचम आरे में भी इनकी स्थिति जानना चाहिये। यदि कोई देव इन्हें हरण कर महाविदेह क्षेत्र से अन्यत्र पहुँचा देवे तो उस अपेक्षा इनकी स्थिति सब काल जाननी चाहिये। चारित्र की अपेक्षा जो प्रतिपद्यमानचारित्री हैं उनको सामायिक एवं छेदोपस्थापनीय चारित्र में स्थित मानना चाहिये, क्यों कि जो मध्यमतीर्थकर एवं विदेह क्षेत्र में रहे हुए तीर्थकर के तीर्थ में रहने वाले हैं वे सामायिकचारित्र में, एवं जो प्रथम एवं चरमतीर्थकर के तीर्थवर्ती हैं वे छेदोपस्थापनीय चारित्र में स्थित रहते हैं। जो

सद्भावथी अपेक्षनुं कथन छे। काणनी अपेक्षा—उत्सर्पिणी काणना त्रीण योथा आराभां स्थिति मानवाभां आवेल छे। आने व्रतनी अपेक्षाथी न्नुं न्नुं न्नुं। अमे तो जन्म मात्रनी अपेक्षाथी भीण आराभां पणु तेनी स्थिति छे। अवसर्पिणी काणभां जन्मनी अपेक्षा त्रीण अने योथा आराभां, तथा पूर्वप्रतिपन्न व्रतनी अपेक्षा अर्थात् योथा आराभां व्रतने लथ पांयभा आराभां पणु अनी स्थिति न्नुं न्नुं न्नुं। कदाय कोठ देव आदि अनें उरणु करी महाविदेह क्षेत्रथी भीजे पडोयाडी हे तो अे अपेक्षा अनी स्थिति अथा काणभां न्नुं न्नुं न्नुं। चारित्रनी अपेक्षा ने प्रतिपद्यमान चारित्री छे ते सामायिक अने छेदोपस्थापनीय चारित्रभां स्थित मानवा न्नुं न्नुं न्नुं केमके, ने मध्यम तीर्थकर अने विदेह क्षेत्रभां रहेता तीर्थकरना तीर्थभां रहेवावाणा छे ते सामायिक चारित्रभां, अने ने प्रथम एवं चरमतीर्थकरना तीर्थवर्ती छे ते छेदोपस्थापनीय चारित्रभां स्थित रहे छे। ने प्रतिपन्न चारित्री छे तेनी

यथाख्याते च चारित्रे उपशमश्रेण्याम् । तीर्थतस्तु जिनकल्पिकानां स्थितिर्नियमत-  
स्तीर्थ एव भवति न तु तीर्थे व्यवच्छिन्ने । पर्यायागमवेदाख्याः स्थितिभेदा  
अप्यवगन्तव्याः ।

स्थविरकल्पिकानां जिनकल्पिकानां च कल्पो दशविधः—आचैलक्यम् १, औद्देशिकं २, शय्यातरपिण्डत्यागः ३, राजपिण्डत्यागः ४, कृतिकर्म ५, महाव्रतम् ६, पुरुषज्येष्ठत्वम् ७, प्रतिक्रमणम् ८, मासकल्पः ९, पर्युषणकल्प १० (वर्षाकल्प) श्रेति । तेषु मध्यमतीर्थकरतीर्थवर्तिनां साधूनां चत्वारः कल्पाः अवस्थिताः नियमेन पालनीयाः—शय्यातरपिण्डत्यागः १, कृतिकर्म २, महाव्रतम् ३, पुरुषज्येष्ठत्वम् ४ चेति । इतरे षट् कल्पास्तु तेषामनवस्थिताः ।

प्रतिपन्नचारित्री हैं उनकी स्थिति उपशमश्रेणी में सूक्ष्मसांपराय, एवं यथाख्यातचारित्र में होती है । तीर्थ की अपेक्षा जिनकल्पियों की स्थिति नियम से तीर्थ में ही होती है, तीर्थ के व्यवच्छिन्न होने पर नहीं । पर्याय आगम एवं वेद, ये भी स्थिति के भेद हैं ।

स्थविरकल्पियों का एवं जिन कल्पियों का कल्प दश प्रकार का है—

१ आचैलक्य, २ औद्देशिक, ३ शय्यातरपिण्डत्याग ४ राजपिण्ड-  
त्याग, ५ कृतिकर्म, ६ महाव्रत, ७ पुरुषज्येष्ठता ८ प्रतिक्रमण ९ मास-  
कल्प १० पर्युषणकल्प (वर्षाकल्प) इन कल्पो में मध्यमतीर्थकर के तीर्थवर्ती साधुओं के चार कल्प अवस्थित होते हैं—नियम से पालनीय होते हैं । वे चार ये हैं—शय्यातरपिण्डत्याग, कृतिकर्म, महाव्रत, पुरुष-  
ज्येष्ठता । बाकी के ६ कल्प उनके लिये अनवस्थित हैं ।

स्थिति उपशम श्रेणीमां सूक्ष्मसांपराय, एवा यथाख्यात चारित्रमां थाय छे. तीर्थानी अपेक्षा अनकल्पियेानी स्थिति नियमथी तीर्थमां न थाय छे, तीर्थानां व्यवच्छिन्न थवाथी नही. पर्याय, आगम अने वेद आ पणु स्थितिना लेद छे.

स्थविरकल्पियेाना अने अनकल्पियेाना कल्प दश प्रकारना छे.—

१ आचैलक्य, २ औद्देशिक, ३ शय्यातरपिण्डत्याग, ४ राजपिण्डत्याग, ५ कृतिकर्म, ६ महाव्रत, ७ पुरुषज्येष्ठता, ८ प्रतिक्रमण ९ मासकल्प, १० पर्युषणकल्प (वर्षाकल्प) आ कल्पेमां मध्यमतीर्थकरना तीर्थवर्ती साधुयेाना आर कल्प अवस्थित होय छे—नियमथी पाणवाना होय छे. ते आर आ छे—शय्यातरपिण्डत्याग, कृतिकर्म, महाव्रत, पुरुष ज्येष्ठता. बाकीना छ कल्प अने अने भाटे अनवस्थित छे.



आद्यचरमतीर्थकरतीर्थवर्तिनां साधूनामेष दशविधः कल्पोऽवस्थित एव । तत्रा-  
चैलक्यं द्विविधम्—मुख्यम्, औपचारिकं च । अविद्यमानचैलकत्वरूपं मुख्यमाचै-  
लक्यं प्रायशो जिनकल्पिकविशेषाणाम् । औपचारिकमाचैलक्यं स्थविरकल्पिका-  
नाम्, स्थविरकल्पिका हि—कल्पनीयमेषणीयं जीर्णं खण्डितं मलिनं तथैव नूतन-  
मपि स्वल्पमूल्यकं वस्त्रं गृह्णन्ति, लोकरूढप्रकारादन्यप्रकारेण च तदासेवन्ते ।  
अतस्ते चेलसद्भावेऽप्युपचारतोऽचैलका व्यपदिश्यन्ते ।

प्रथमतीर्थकर एवं अन्तिमतीर्थकर के तीर्थ में रहनेवाले जो साधु  
हैं उनके लिये तो यह १० प्रकार का कल्प अवस्थित ही हैं—अवश्य  
पालने योग्य ही है । आचैलक्य जो प्रथम कल्प है वह दो प्रकार का है ।

१ मुख्य २ औपचारिक, कटिबन्धन—रजोहरण—और सदोरकमुखव-  
स्त्रिका के सिवाय अन्य वस्त्र का परित्याग करना यह मुख्य आचैलक्य  
है । यह जिनकल्पिक विशेषों के होता है । औपचारिक जो आचैलक्य  
है वह स्थविरकल्पिकों के होता है । क्यों कि जो स्थविरकल्पी साधु  
होते हैं वे कल्पनीय, एषणीय, जीर्ण खंडित एवं मलिन वस्त्र रखते  
हैं । जो नवीन वस्त्र भी लें तो वह भी अल्पमूल्य वाला ही लेते हैं ।  
लौकिकजन जिस पद्धति से वस्त्रों का परिधान करते हैं वे उस पद्धति  
से वस्त्रों का परिधान नहीं करते हैं, किन्तु अन्य प्रकार से ही उन्हें  
पहिनते हैं । इस लिये चेल के सद्भाव में भी वे अचैलक ही कहे जाते हैं ।

प्रथम तीर्थकर अने अन्तिम तीर्थकरना तीर्थमां रडेवावाणा ने साधु छे,  
तेमने माटे तो आ दश प्रकारना कल्प अवस्थित न छे.—अवश्य पाणवा  
योग्य न छे. आचैलक्य ने प्रथम कल्प छे ते जे प्रकारना छे.

१ मुख्य, २ औपचारिक, कटीबन्धन रजोहरण अने सदोरकमुखवस्त्रि-  
काना सिवाय अन्य वस्त्रना परित्याग करवे। आ मुख्य आचैलक्य छे, आ  
जिनकल्पिक विशेषमां डोय छे. औपचारिक ने आचैलक्य छे ते स्थविरकल्पि-  
काने डोय छे. केमके, स्थविरकल्पी साधु डोय छे ते कल्पनीय, एषणीय,  
खण्डित अने मलिन, वस्त्र राखे छे. ने नवीन वस्त्र मणे ते पणु  
ओछा मूल्यतुं डोय ते न ले छे. लौकिकजन ने पद्धतिथी वस्त्रोतुं परिधान करे  
छे अे पद्धतिथी तेओ वस्त्र परिधान करता नथी. परंतु अन्य प्रकारथी न ओने  
पडेरे छे आ माटे चैलना सद्भावमां पणु ते आचैलक न कडेवाय छे.



ननु—जीर्णखण्डितादिवस्त्रसद्भावे मुनीनामचेलकत्वे दरिद्रा अपि—अचेलकाः कथं न कथयन्ते ? उच्यते—नवव्यूतसदशकमहामूल्यकादीनां वस्त्राणामलाभे दरिद्राः परिजीर्णादीनि वासांसि धारयन्ति न तु धर्मबुद्ध्या । अतो भावतस्तद्विषयकमूर्च्छा-परिणामस्यानिवृत्तत्वात् परिजीर्णवस्त्रसद्भावे दरिद्राणामचेलकत्वव्यपदेशो न भवति । मुनयस्तु—केनचिद्दीयमानान्यपिमहामूल्यकानि प्रमाणबहिर्भूतानि वस्त्राणि

शंका—जीर्ण, खण्डित आदि वस्त्रों के सद्भाव में यदि मुनियोंको अचेलक माना जाय तो जो दरिद्री जन हैं, जिनके पास जीर्ण खण्डित आदि वस्त्र हैं वे भी अचेलक कहे जाने चाहिए ? परन्तु वे तों अचेलक नहीं कहे जाते हैं ?

उत्तर—दरिद्री जो जीर्ण शीर्ण आदि वस्त्र धारण करते हैं वे धर्म-बुद्धि से नहीं करते हैं किन्तु उन्हें नवीन महामूल्यवाले वस्त्र मिलते नहीं हैं—उनका उनके पास अभाव है—अतः उनके अभाव में उन्हें वे पहिनने पड़ते हैं परन्तु पहिनना नहीं चाहते, इसलिये वे अचेलक नहीं कहे जाते हैं। क्यों कि उनके भाव से तद्विषयक मूर्च्छापरिणाम की अनि-वृत्ति है, इसलिये परिजीर्ण वस्त्र के सद्भाव में दरिद्रियों में अचेलकत्व का व्यवहार नहीं होता है। मुनियो को तद्विषयक मूर्च्छा नहीं है, क्यों कि यदि कोई दाता उन्हें बहुमूल्यवस्त्र प्रदान करता है और वस्त्र यदि प्रमाणोपेत नहीं है—प्रमाण से बहिर्भूत है तो वे उस को ग्रहण नहीं करते हैं, किन्तु जीर्ण खण्डित ही वस्त्र ग्रहण करते हैं। यदि कोई नवीन

शंका लुब्ध्. अंडित, आदि वस्त्रोना सहभावमां जे मुनियोने अचेलक मानवामां आवे तो जे दरिद्री जन छे, जेनी पासे लुब्ध् अंडित आदि वस्त्र छे. तेने पणु अचेलक कडेवा जेध अे ? परंतु तेने तो अचेलक नथी कडेवामां आवता ?

उत्तर—दरिद्री जे लुब्ध् शीर्ण वस्त्र धारणु करे छे, ते धर्म बुद्धिथी नथी, परंतु तेने नवीन सारा भूद्यवाणा वस्त्रो भणतां नथी,—जेना जेनी पासे अलाव छे तेथी जेना अलावमां तेणु ते पडेरवां पडे छे, परंतु पडेरवां आडता नथी. आ माटे ते अचेलक कडेवातां नथी. केम के तेने लावथी तद्विषयक मूर्च्छा परिणामनी अनिवृत्ति छे. माटे परिणुब्ध् वस्त्रोना सहभावथी दरिद्रीयोमां अचेलकत्वनेो व्यवहार थतो नथी. मुनियोने तद्विषयक भमता-मूर्च्छा नथी. केम के, कोध दाता तेमने अहुभूद्य वस्त्रप्रदान करे छे. जेने ते वस्त्र जे प्रमाणोपेत नथी छेतुं—प्रमाणथी अडिर्भूत छेय छे तो ते तेने अडणु करता नथी. परंतु लुब्ध् अंडित वस्त्र ज अडणु करे छे. जे कोध

परिवर्जयन्ति, जीर्णखण्डितानि नूतनान्यप्यमहामूल्यकानि वसनानि प्रमाणोपेतान्येव धारयन्ति । तान्यपि श्रुतचारित्रधर्मोपकरणबुद्धयैव, न तु तत्र मुनीनां मूर्च्छापरिणामो भवति । अतस्तेषामचैलकत्वेन व्यपदेशः सम्यगेव ।

मध्यमतीर्थकरतीर्थवर्तिनां मुनीनामाचेलक्यमनवस्थितम् अतस्तेषां रक्तपीतादिरागरञ्जितमहामूल्यकादिवस्त्रवर्जननियमो नास्ति, ममत्वरहिततत्वात् तेषाम् । प्रथमचरमतीर्थकरतीर्थवर्तिनां मुनीनां तु धर्मबुद्ध्या स्वल्पमूल्यकप्रमाणोपेत-श्वेतवस्त्राणामेव धारकत्वादाचेलक्यं भवति ।

वस्त्र देता भी हो तो वह यदि अल्पमूल्य वाला एवं प्रमाणोपेत है तो ही लेते हैं । उसका लेना भी वे इसीलिये आवश्यक समझते हैं कि वह उनके श्रुतचारित्ररूप धर्म का उपकरण है । मूर्च्छापरिणाम से उसका वे ग्रहण नहीं करते हैं, क्यों कि उनके तद्विषयक मूर्च्छा का अभाव है । इसलिये मुनियों में अचेलकत्व का व्यवहार वास्तविक ही है ।

जो मध्यम तीर्थकरों के तीर्थवर्ती साधु हैं उनमें अचेलकत्व अनवस्थित है । इसलिये उन्हें लालपीले आदि रंग से रंगे हुए, तथा महामूल्यवाले वस्त्रों के परिवर्जन का कोई नियम नहीं है, क्यों कि ये ममता से रहित होते हैं । प्रथम चरम तीर्थकर के तीर्थवर्ती मुनियों के तो प्रमाणोपेत तथा स्वल्पमूल्यवाले श्वेतवस्त्रों के परिधान करने का ही नियम है, सो भी उन का ग्रहण केवल धर्मबुद्धि से ही है । मूर्च्छापरिणाम से नहीं, अतः वस्त्रों के सद्भाव में भी इनमें अचेलकता ही है ।

नवीन वस्त्र आपे छे तो ते अल्पमूल्यवाणुं अने प्रमाणोपेत डोय तो न दे छे. ये देवानुं पणु तेअे। अे आतर आवश्यक माने छे के, अेना श्रुत अरित्र इप धर्मनुं उपकरणु छे. मूर्च्छा परिष्ठाभथी तेने अे अडुषु करता नथी. केम के अेनामां अेना माटेनी लावनाने अलाव छे आ माटे मुनियोमां अचेलकत्वने व्यवहार वास्तविक न छे.

जे मध्यम तीर्थकराना तीर्थवर्ती साधु छे. अेमनामां अचेलकत्व अनवस्थित छे. आ माटे तेने लाल, पीणा आदि रंगथी रंगेलां तथा अडुमूल्य वस्त्राना परिवर्जनने डोछ नियम नथी. केम के अे ममताथी रहित डोय छे. प्रथम अरम तीर्थकरना तीर्थवर्ती मुनि छे. अेने तो प्रमाणोपेत तथा स्वल्प मूल्यवाणां श्वेत वस्त्रो परिधान करवाने न नियम छे अने ते अडुषु करवाने नियम केवल धर्म बुद्धिथी न छे. मूर्च्छा परिष्ठाभथी नडीं. आथी वस्त्राना सद्भावमां पणु अेमनामां अचेलकता छे न.

स्थविरकल्पिकानां वस्त्रधारणमाचाराङ्गबृहत्कल्पाद्यागमेषु व्यवस्थितम् ( आचाराङ्गसूत्रे द्वितीयश्रुतस्कन्धे चतुर्दशाध्ययने ) ( बृहत्कल्पसूत्रे तृतीयोद्देशके ) ।

स्थानाङ्गसूत्रे भगवताऽचेलकस्य पञ्चभिः स्थानैः प्रशस्तत्वं प्रतिबोधितम्, तथाहि—

पंचहिं ठाणेहिं अचेलए पसत्थे भवइ । तं जहा—“अप्पा पडिलेहा, लाघविए पसत्थे, रूवे वेसासिए, तवे अणुण्णाए, विउले इंदियनिग्गहे ।”

पञ्चाभिः स्थानैः=कारणैः, अचेलकः प्रशस्तः—तीर्थंकरादिभिः प्रशंसित इत्यर्थः । स च जिनकल्पिकविशेषः, स्थविरकल्पिकश्च । तत्र वस्त्राभावादेव जिनकल्पिकवि-

स्थविरकल्पिकों के लिये वस्त्रों को धारण करने की व्यवस्था का उल्लेख आचारांगसूत्र एवं बृहत्कल्पसूत्र आदि आगमों में पाया जाता है । इसके लिये आचारांगसूत्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध का १४ वां अध्ययन देखना चाहिये । तथा बृहत्कल्पसूत्र का तृतीय उद्देश देखना चाहिये ।

स्थानाङ्गसूत्रमें भगवान् ने पांच कारणों को लेकर अचेलकता को प्रशस्त प्रतिबोधित की है, जैसे—

“पंचहिं ठाणेहिं अचेलए पसत्थे भवइ । तं जहा—अप्पा पडिलेहा १, लाघविए पसत्थे २, रूवे वेसासिए ३, तवे अणुण्णाए ४, विउले इंदियनिग्गहे ५ ॥”

पांच कारणों से भगवान् ने अचेलकता की प्रशंसा की है । जिनकल्पिकविशेषों में जो अचेलकता कही गई है वह वस्त्र के अभाव से

स्थविरकल्पीयाने भाटे वस्त्राने धारणु करवानी व्यवस्थाने उल्लेख आचारांगसूत्रे अने षड्स्कल्पसूत्रे आदि आगमोभां जाणी शक्ये छे । आने भाटे आचारांगसूत्रे पील श्रुतस्कन्धना १४ मा अध्ययनने नेध देवुं नेध अे । तथा षड्स्कल्पसूत्रना त्रील उद्देशने नेध देवो नेध अे ।

स्थानांगसूत्रभां लगवाने पांच कारणाने लध अचेलकताने प्रशस्त प्रतिबोधित करेद छे ।

पंचहिं ठाणेहिं अचेलए पसत्थे भवइ । तं जहा अप्पा पडिलेहा, १ लाघविए पसत्थे २ रूवे वेसासिए ३ तवे अणुण्णाए ४ विउले इंदियनिग्गहे ५ ॥

पांच कारणोथी लगवाने अचेलकतानी प्रशंसा करेद छे । उनकल्पी विशेषोभां ने अचेलकता कडेवामां आवी छे । ते वस्त्रना अभावथी ज

શેષોઽચેલકઃ, સ્થવિરકલ્પિકસ્તુ અલ્પમૂલ્યસપ્રમાણજીર્ણમલિનવસનત્વાદિતિ વિશેષઃ।  
તાનિ સ્થાનાનિ પ્રદર્શયતિ—

‘તં જહા’ इत्यादि। ‘अप्पा पडिलेहा’ अल्पा प्रत्युपेक्षा प्रतिलेखनीयस्य वस्त्रस्याल्पत्वात्, अल्पप्रतिलेखनया स्वाध्यायादेरन्तरायो न भवतीति भावः। तथा ‘लाघविए पसत्थे’ लाघविकं प्रशस्तम्—लघोर्भावो लाघवं तदेव लाघविकम्, यद् वस्त्रस्य परिमाणतो मूल्यतः संख्यया चाल्पतरत्वाल्लघुत्वं, तदेव द्रव्यतो लाघवम्, भवतोऽपि तत्र रागाद्यभावादित्यचेलकस्य लाघविकं प्रशस्तम्—अनव-  
द्यम्। ‘रूवे वेसासिए’ रूपं वैश्वासिकम्—तत्र रूपं—वेषः, तच्च साधूनां मुखवद्धश्चेत  
ही कही गई है। तथा स्थविरकल्पियों में जो अचेलकता कही गई है वह केवल अल्पमूल्यवाले प्रमाणोपेत जीर्ण, मलिन वस्त्रों के ग्रहण करने की अपेक्षा से कही गई है। यह बात तीर्थकरों की परम्परा से प्रशंसित होती हुई चली आ रही है। कल्पित नहीं है। वे पांच स्थान-  
कारण ये हैं—अल्पप्रतिलेखना-प्रतिलेखनीय वस्त्रों की अल्पता से प्रति-  
लेखना भी अल्प ही होगी—अल्पसमयसाध्य होगी, इस से स्वाध्याय  
आदि में अन्तराय नहीं आ सकती है। इस अपेक्षा अचेलकता प्रशस्त  
कही गई है। १। इसी तरह लाघव की अपेक्षा भी अचेलकता प्रशस्त  
कही गई है, क्यों कि वस्त्रों में जो लघुता है वह परिमाण, मूल्य एवं  
संख्या की अपेक्षा से है। यह द्रव्य की अपेक्षा लघुता है। भाव की  
अपेक्षा लघुता उनमें साधु के रागादिक का अभाव है। २। वैश्वासिक  
रूपकी अपेक्षा अचेलकता इसलिये प्रशंसित हुई है कि जब कोई ऐसा

કહેવામાં આવી છે. તથા સ્થવિરકલ્પિયોમાં જે અચેલકતા કહેવામાં આવી  
છે તે કેવળ અલ્પમુલ્યવાળા પ્રમાણોપેત જીર્ણ, મલિન વસ્ત્રોને ગ્રહણ  
કરવાની અપેક્ષાથી કહેવામાં આવેલ છે. આ વાત તીર્થકરોની પરંપરાથી  
પ્રશંસિત થતી આવી આવેલ છે કલ્પિત નથી. આ પાંચ સ્થાન-કારણ આ  
છે. અલ્પપ્રતિલેખના પ્રતિલેખનીય વસ્ત્રોની અલ્પતાથી પ્રતિલેખના પણ અલ્પ  
જ થશે. અલ્પ સમય સાધ્ય થશે. આથી સ્વાધ્યાય આદિમાં અંતરાય  
આવી શકતો નથી. આ અપેક્ષાથી અચેલકતા પ્રશસ્ત કહેવામાં આવેલ છે.  
(૧) આ રીતે લાઘવની અપેક્ષા પણ અચેલકતા પ્રશસ્ત રહી છે. કેમ કે,  
વસ્ત્રોમાં જે લઘુતા છે તે પરિણામ મૂલ્ય અને સંખ્યાની અપેક્ષાથી છે. આ  
દ્રવ્યની અપેક્ષા લઘુતા છે. ભાવની અપેક્ષા આ લઘુતામાં સાધુના રાગાદિકનો  
અભાવ છે.(૨) વૈશ્વાસિક રૂપની અપેક્ષા આ અચેલકતા એ મારે પ્રશંસનીય થઈ

सदोरकमुखवस्त्रिकं परिहितश्वेतचोलपट्टकं परिधृतश्वेतवस्त्रपावरणं परिगृहीतप्र-  
मार्जिकारजोहरणं, भिक्षाधानीसमावृतपात्रहस्तम्, अनावृतमस्तकम्, पादत्राण-  
रहितचरणम्, ईर्यादिपञ्चसमितिसमितं गुप्तित्रयगुप्तम्, जिनकल्पिकानां तु-मुख-  
बद्धश्वेतसदोरकमुखवस्त्रिकं परिगृहीतरजोहरणं, बद्धकटिवन्धनवस्त्रं च । एतादृशं  
साधूनां रूपं वैश्वासिकं=जनानां विश्वासजनकं भवति निःस्पृहतासूचकत्वात् । तथा  
' तवे अणुण्णाए ' तपः अनुज्ञातं=तपः सकलेन्द्रियसंगोपनरूपम् अनुज्ञातं=जिना-

वेष देखता है कि " मुख पर सफेददोरासहित मुखवस्त्रिका बंधी हुई है, सफेद चोलपट्टा पहिरा हुआ है, सफेद चादर ओढ़ी हुई है, रजोह-  
रण धारण किया हुआ है, भिक्षाधानी-झोली-से ढंके हुए पात्र हाथ में हैं, मस्तक खुला हुआ है, पैरों में पगरखी मोजा आदि नहीं है, इर्या-  
समिति आदि पांच समितियों से युक्त हैं, तीन गुप्तियों से गुप्त हैं " यही साधु का वेष है और इस वेष वाला "यह साधु है " ऐसा शीघ्र ही समझाजाता है, तथा जिनकल्पियों का यह वेष है कि वे अपने मुख पर दोरे से सफेद मुखवस्त्रिका बांधे रहते हैं, रजोहरण लिये रहते हैं और कटिवन्धन वस्त्र रखते हैं । जब कोई इस वेषको देखता है देख-  
कर वह यह समझ जाता है कि यह जिनकल्पि साधु है । इस प्रकार का यह साधु का वेष लोगों में विश्वासजनक होता है और वह इसलिये होता है कि यह वेष निःस्पृहता का सूचक होता है । ३। तप की अपेक्षा यह अचेलकता इसलिये प्रशंसित हुई है कि इसमें सकल इन्द्रियों का

छे के, ज्यारे केअ वेश ज्ये छे " मुख उपर होरा साथेनी मुख-  
वस्त्रिका बांधेल छे. सईद चोलपट्टो पडेरेल छे. सईद चादर ओढेल छे, रने  
डरषु धारषु करेल छे. भिक्षा भाटेना पात्र जेणीभां ढंकायेल हाथभां छे.  
मस्तक खुल्लं छे. पगभां पगरभां, मोज आदि नथी, धर्या समिति आदि  
पांच समितिओथी युक्त छे. त्रषु गुप्तियोथी गुप्त छे." साधुनो आन वेश  
छे. अने आवा वेशवाणा आ साधु छे, जेवुं तुरत न समज्जं जय छे.  
तथा अनकटिपओनो जे वेष छे के ते पोताना मोठा उपर होराथी सईद  
मुखवस्त्रिका बांधे छे. रनेडरषु राणे छे, अने कटिवंधन वस्त्र राणे छे.  
अने जेतानी साथे न जेतार समज्जं जय छे के जे अनकटिप साधु छे, आ  
प्रकारनो साधुनो वेष लोकोभां विश्वास जनक होय छे. अने ते जे भाटे  
के, आ वेष निस्पृहतानो सूचक होय छे. (३) तपनी अपेक्षा आ अचे-  
लकता जे भाटे प्रशंसनीय जनी छे के जेभां सकल इंद्रियोना संगोपन

नुमतं भवति । तथा—‘ विउले इन्द्रियनिग्रहे ’ विपुलः=महान्, इन्द्रियनिग्रहो भवति, उपकरणं विना स्पर्शनप्रतिकूलशीतवातातापदिसहनात् ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

आसीद्दशपुरनाम्निनगरे सोमदेवनामा ब्राह्मणः । तस्य जिनाज्ञाराधिका रुद्र-सोमानाम्नी भार्याऽभवत् । तस्यां भार्यायां सोमदेवस्य द्वौ पुत्रौ जातौ । तत्र ज्येष्ठ आर्यरक्षितनामकः, द्वितीयः फल्गुरक्षितनामकः । आर्यरक्षितः पितुः संनिधौ शास्त्र-मधीत्याधिकविद्यालाभार्थं पाटलिपुत्रनगरं गतः । तत्र तेन साङ्गोपाङ्गाश्चत्वारो वेदा अधीताः, चतुर्दशविद्यास्थानानि गृहीतानि । ततोऽसौ दशपुरं नगरं समायातः।

संगोपनरूप तप जिनेन्द्र भगवान् का अनुज्ञात है। ४। तथा इसमें महान् इन्द्रिय निग्रह होता है, क्यों कि उपकरण के विना स्पर्शन इन्द्रिय के प्रतिकूल शीत वात आतप आदि का सहन होता है। इससे इन्द्रियां काबू में रहती हैं।

दृष्टान्त—दशपुर नामके नगर में एक सोमदेव नाम का ब्राह्मण था। उसकी पत्नी का नाम रुद्रसोमा था। यह जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा की आराधिका थी। सोमदेव के दो पुत्र थे। जेठे पुत्र का नाम आर्यरक्षित था और छोटे पुत्र का नाम फल्गुरक्षित। आर्यरक्षित पिता के पास शास्त्रों का अध्ययन करके अधिक विद्या की प्राप्ति की अभिलाषा से दशपुर से पाटलिपुत्र नगर को रवाना हुआ। वहाँ पहुँचकर इस ने सांगोपांग चारों वेदों का एवं १४ चौदह विद्याओं का खूब अध्ययन किया। जब यह पटु बन चुका तब वहाँ से वापिस दशपुर नगर की

इय तप जनेन्द्र भगवान् की अनुज्ञात छे। (४) तथा तेमां महान् इन्द्रिय निग्रह थाय छे। केम के उपकरण वगर स्पर्शन इन्द्रियने प्रतिकूल शीतवात, आतप, आदि सहेवां पडे छे, आनाथी इन्द्रियो कायुमां रहे छे।

दृष्टान्त—दशपुर नामना नगरमां अेक सोमदेव नामना आह्मणु हुतो, तेनी स्त्रीनुं नाम रुद्रसोमा हुतुं। ते जनेन्द्र भगवान्नी आज्ञानी आराधिका हुती। सोमदेवने ये पुत्रे हुता। मोटा पुत्रनुं नाम आर्यरक्षित अते नाना पुत्रनुं नाम फल्गुरक्षित हुतुं। आर्यरक्षित पितानी पासे शास्त्रानुं अध्ययन करीने अधिक विद्याप्राप्तिनी अलिहाषाथी दशपुरथी पाटलीपुत्र रवाना थयो, त्यां पडेवांथीने तेखे सांगोपांग चारे वेदानुं अने चौद विद्यानुं खूब अध्ययन क्युं। अ्यारे ते पारंगत अनी चूकथे। अ्यारे ते पाटलीपुत्रथी पेताने



तन्नगरनरेशस्तं नगरसमीपे समागतं विज्ञाय तदभिमुखं गत्वा गजोपरि तमुपवेश्य बहुसंमानपुरस्सरं नगरे प्रावेश्य तस्य रूप्यस्वर्णमणि प्रभृतिभिः प्राभृतैः संमानं कृतवान् । एवं तन्नगरनिवासिभिः प्रवेशोत्सवं कृत्वा संमानितः स्वगृहमागतः पितरौ प्रणतवान् । प्राप्तविद्यं लोकसंमानितमार्यरक्षितं विलोक्य पिताऽतीव हृष्टो जातः, किंतु माता हर्षं न दर्शितवती । आर्यरक्षितस्तदा मातरमजातहर्षां दृष्ट्वा प्राह—हे मातः ! किमिदानीं मदवलोकनेन हृष्टा न भवसि ? सा प्राह—किमनेन

ओर प्रस्थान किया । दशपुर के राजा को जब इसके आने का समाचार मिला तो उसने इसके स्वागत की खूब तैयारी की । जब आर्यरक्षित आते २ नगर के समीप पहुँचा तो राजा इन्हें नगर में प्रवेश कराने के लिये इसके संमुख गया । हाथी पर बैठा कर बहुत सन्मानपूर्वक राजा ने इसको नगर में प्रवेश कराया । रूप्य, सुवर्ण और मणि आदि के नजराने से राजा ने इसका खूब सत्कार किया । इसी तरह नगरनिवासियों ने भी राजा का साथ दिया । सब से अच्छी तरह संमानित होकर आर्यरक्षित अपने घर पर आया । मातापिता को नमस्कार किया । विद्या की प्राप्ति से राजा तथा अन्य नगर निवासियों द्वारा संमानित अपने पुत्र को देखकर पिता तो चित्त में बहुत ही हर्षित हुआ, परन्तु माता ने इस विषय में अपना हर्ष नहीं प्रकट किया । जब आर्यरक्षितने अपनी माता की इस प्रकार परिस्थिति देखी तो वह बोला हे माता ! क्या बात है तुम्हें क्यों नहीं इस समय मेरी इस परिस्थिति के अवलोकन से हर्ष

गाम पाछे आव्यो. दशपुरना राजने न्यारे तेना आववाना समाचार भन्या अटके तेणे तेना स्वागतनी भूष तैयारी करी. आर्यरक्षित न्यारे नगरनी समीप पडोन्थो, ते समये राज तेने नगरमां प्रवेश कराववा तेनी सामे गया. हाथी उपर भेसाडीने धषुण् सन्मान पूर्वक राजने तेना नगरमां प्रवेश कराव्यो. रुपुं, सोनुं विगेरेना नजरानुथी राजने तेना भूष सत्कार कथो. आ रीते नगर निवासीओने पणु राजने साथ आव्यो. सारी रीते आहर सत्कार भेजवीने आर्यरक्षित पोताने घर पडोन्थो. माता पिताने नमस्कार कथो. विधानी प्राप्तिथी राज तथा अन्य नगरवासीओथी सन्मानित पोताना पुत्रने जेध पिता तेना दिलमां भूष न हर्षित भन्या, माताने आ विषयमां पोतानो हर्ष प्रकट कथो नही न्यारे आर्यरक्षिते मातानी आ प्रकारनी स्थिति जेध तो ते बोव्यो के, हे माता ! शुं कारणु छे के तमे आ

जीवघातादिहेतुकेन बहुशास्त्राध्ययनेन ? किं त्वया दृष्टिवादः पठितः ? येन मम हर्षः स्यात् । मातुरेतद् वचनं श्रुत्वाऽऽर्यरक्षितः पृच्छति—क्वास्ति दृष्टिवादः ? जनन्या निगदितम्—इक्षुवाटकनामके ग्रामे विद्यमानस्य तोसलिपुत्राचार्यस्य समीपेऽस्ति, तदासेवनया तदाज्ञापरिपालनया तत्संनिधौ दृष्टिवादोऽभ्यसनीयः । आर्यरक्षितेनोक्तम्—हे मातः ! श्वस्तत्राहं गमिष्यामि दृष्टिवादपठनार्थम् । रात्रौ सुप्तो-

हो रहा है। पुत्र के वचन सुनकर माताने कहा कि बेटा ! मुझे जो हर्ष नहीं उमड़ रहा है उसका कारण यह है कि तुम्हें जीवघात की हेतुभूत अनेक वेदादि शास्त्रों की इस पढ़ाई से क्या लाभ ? बेटा ! तुम हमें यह बतलाओं कि क्या तुमने दृष्टिवाद का भी अध्ययन किया है ? मुझे तो तभी हर्ष हो सकता है कि जब तुम दृष्टिवाद का ज्ञाता हो जावो। जननी के इस प्रकार के वचन सुनकर आर्यरक्षित ने माता से पूछा मातः ! जिसके लिये तुम मुझे पढ़ने के लिये कह रही हों वह दृष्टिवाद शास्त्र कहां है। माता ने कहा—सुनो ! इक्षुवाटक नाम का एक ग्राम है। उस में तोसलिपुत्र नामके एक आचार्य ठहरे हुए हैं, उनके पास यह शास्त्र है सो तुम वहां जाओ और उनकी खूब सेवा करो तथा उनकी आज्ञानुसार रहो तो वे तुम्हें इस शास्त्र का अध्ययन करा देंगे। आर्यरक्षित ने माता के ये सीखभरे वचन सुनकर कहा—मातः ! मैं कल उनके समीप इस शास्त्र का अध्ययन करने के लिये जाऊँगा। रात्रि में

सभये मारी आ प्रकारनी स्थितिथी हर्षित थतां नथी ? पुत्रनुं वचन सांभणीने माताये कहुं, के डे पुत्र ! मने हर्ष थतो नथी तेतुं कारणु ये छे के, लवनघातना डेतुभूत अनेक वेदादि शास्त्रो लणुवाथी तने शुं दाब थशे ? बेटा ! तुं मने ये तो अताव के ते दृष्टिवादतुं पणु अध्ययन कथुं छे ? मने ल्यारे न हर्ष थाय के ल्यारे तुं दृष्टिवादनो ज्ञाता अने. मातानुं आ प्रभाणेतुं वचन सांभणीने अर्थरक्षिते माताने पूछथुं, माता ! तुं मने ने लणुवानुं कडे छे ते दृष्टिवाद शास्त्र कथां छे ? माताये कहुं, सांभण ! अेक इक्षुवाटक नामनुं गाम छे, तेमां तोसली पुत्र नामना अेक आचार्य विचरे छे तेमनी पासे आ शास्त्र छे, जेथी तुं त्यां न अने तेनी भूष सेवा कर तथा अेनी आज्ञानुसार रडे तो तेयो तने आ शास्त्रनुं अध्ययन करावी देशे. आर्यरक्षिते मातानुं आपुं हितवाणुं वचन सांभणीने कहुं, मा ! हुं आवती कडे आ शास्त्रनुं अध्ययन करवा माटे तेमनी पासे नथश, रात्रे ल्यारे अर्थरक्षित सुवा

त्थितेन तेन मनस्येवं चिन्तितम्—दृष्टिवादानाम्नेव तस्य शास्त्रस्य तत्त्वज्ञानबोधकत्वं ज्ञायते । ततोऽसौ प्रभाते प्रस्थितः । मार्गे दशपुरनगरनिकटवर्तिग्रामनिवासी पितृसुहृद् ब्राह्मणः सार्धनवेक्षुदण्डान् गृहीत्वा समागच्छन् मिलितः । स आर्यरक्षितं दृष्ट्वा परस्परं कुशलप्रश्नं कृत्वाऽवदत्—एते मया सार्धनवसंख्यका इक्ष्वो भवदर्थमा-नीताः, गृह्णातु भवान् । आर्यरक्षितो वदति—इदमिधुरूपं प्राभृतं मम मातुर्हस्ते भवताऽर्पयित्वा कथनीयम्—एते इक्ष्वो मयाऽऽर्यरक्षिताय समानीताः, तेन तुभ्यं प्रेषिताः, इति । कथितं च—अहमेव मार्गे प्रथमं मिलितः, इत्यपि तदग्रे कथनीय-

आर्यरक्षित सोने के लिये अपने स्थान पर गया और शांति से सो गया । जब वह उठा तो उसने विचार किया—माता ने जो कुछ कहा है वह बिलकुल ठीक है, कारण कि वह शास्त्र तत्त्वज्ञान का बोधक है यह बात तो उसके नाम से ही ज्ञात होती है । प्रातःकाल होते ही वह घर से इक्षुवाटक ग्रामकी ओर चल दिया । मार्ग में इस को दशपुर नगर के पास के ग्राम में रहने वाला एक ब्राह्मण जो इनके पिता का मित्र था मिला । वह ९॥ साढे नौ इक्षु दण्डों को लेकर आ रहा था । कुशल प्रश्न के बाद उसने आर्यरक्षित से कहा कि भाई ! ये ९॥ साढे नौ इक्षुदंड मैं आप के लिये ही लाया हूँ—अतः आप इन्हें लीजिये । आर्य-रक्षित ने कहा ठीक है आप इस भेंट को मेरी माता के हाथ में देकर कहना कि ये ९॥ साढे नौ इक्षुदंड मैं आर्यरक्षित के लिये लाया था । वे मुझे मार्ग में मिल गये हैं । उन्होंने ने ही ये तुम्हारे पास भेजे हैं । और

भाटे पोताना स्थान उपर गये। अने शांतिथी सुध गये। न्यारे ते उठये। त्यारे तेले विचार कर्यो के, माताअे ने कांथ कहुं छे ते अक्षरशः सत्य छे। कारण के ते शास्त्र तत्वज्ञानने ओध आपनार छे, अे डकिकत तेना नाम उपरथी न् न्नुअे आवे छे। सवार थतां ते धरथी अडार नीकणी धक्षुवाटक गामनी तरक्ष् आलतो थये। मार्गभां तेने दशपुरनगरनी पासना गामभां रडेवा वाणे। अने पोताना पिताने मित्र अेक ब्राह्मणु भणी गये। ते ब्राह्मणु हाथभां ला। धक्षुदंड लधने आवतो डतो कुशणु सभाचार पूछया आड तेले आर्यरक्षितने कहुं के, भाई! आ ला। धक्षुदंड तारा भाटे न् लाव्ये छुं। भाटे तुं तेने स्वीकार कर। आर्यरक्षिते कहुं, डीक छे। आप आ दंड भारी माताना हाथभां आपीने कडेअे के, हुं आ ला। धक्षुदंड आर्यरक्षित भाटे लाव्ये डतो, ते मने मार्गभां भव्ये डतो अने तेले आ दंड तमने आप-

मिति । अथासौ तद्वचनात्तथैव कृतवान् । ततो माताऽतीव हृष्टा तुष्टा संजाता, चिन्तयति च । मार्गे सार्धनवसंख्यका इक्ष्वो मिलिता अतोऽसौ सार्धनवपूर्वाणि अध्येष्यते । आर्यरक्षितोऽपि शुभं शकुनं मत्वेक्षुवाटकं गतः । उपाश्रये प्रविश्य तोसलिपुत्राचार्यस्य वन्दनं कृत्वा तत्रोपविष्टः । तोसलिपुत्राचार्येण पृष्टम्—तव किं नाम?, किं च प्रयोजनम् ? । आर्यरक्षितेन स्वनाम कथयित्वा प्रयोजनं कथितम्—दृष्टिवादमध्येतुमहमत्रागतोऽस्मि, मामध्यापयन्तु दृष्टिवादं भवन्तः । आचार्यः

यह भी कहना कि मार्ग में उनको पहले पहल मैं ही मिला था । आर्य-रक्षित के वचनानुसार उस ब्राह्मण ने वैसा ही किया । माता ने ९॥ साढे नौ इक्षुदंड प्राप्त कर इस शकुनसे ऐसा अनुमान लगाया कि इसे जो ये ९॥ साढे नौ इक्षुदंड मार्ग में चलते समय मिले हैं उससे ऐसा ही ज्ञात होता है कि यह ९॥ साढे नौ पूर्वी का अध्ययन कर सकेगा । आर्यरक्षित ने भी “इनकी प्राप्ति शुभ शकुन स्वरूप है ” ऐसा जानकर बड़े आनंद के साथ इक्षुवाटक की ओर अधिक तेजी से चलने लगा । वहाँ पहुँचते ही वह उपाश्रय में गया । तोसलिपुत्र आचार्य को वंदन कर फिर वहीं बैठ गया । आचार्यश्री ने पूछा तुम्हारा क्या नाम है ? यहाँ किस प्रयोजन से आये हो । ? आर्यरक्षित ने अपना नाम कह कर प्रयोजन भी स्पष्ट कर दिया । आचार्यश्री ने जब यह जाना कि “ यह दृष्टिवाद के अध्ययन के लिये यहाँ आया है ” तब आचार्यश्री ने उससे कहा कि

वातुं कलुं छे, अने अये पणु कडेले के मार्गमां अने पडेलवडेलेो हुं न मळो डतो. आर्यरक्षितना वचनानुसार ते प्राह्मणे तेषुं न क्युं. माताअे ९॥ इक्षुदंड प्राप्त करी अये शुकनथी अेषुं अनुमान लगाव्युं के, तेने ने आ ९॥ इक्षुदंड रस्तामां याववा समये मणेल छे अथी अेषुं ज्ञात थाय छे के, साडानव पूर्वनुं अध्ययन करी शकशे. आर्यरक्षिते पणु आनी प्राप्ति शुभ शुकन स्वइप छे तेषुं नक्ष्त्रीने धणु आनंदनी साथे इक्षुवाटकनी तरङ्ग उडपथी याववा मांडयुं. त्यां पडेच्यतां न ते उपाश्रयमां गये तोसलीपुत्र आचार्यने वंदन करी त्यां अेसी गये. आचार्यश्रीअे तेने पूछयुं, तमाइं नाम शुं छे? शुं कारणुथी अडिं आव्या छे? आर्यरक्षिते पोतानुं नाम आपीने आववानुं प्रयेजन नक्ष्त्रावी दीधुं. आचार्यश्रीअे न्यारे अेषुं नक्ष्त्रुं के, “ आ दृष्टीवादन अध्ययन माटे अडिं आवेल छे. त्यारे आचार्यश्रीअे तेने कलुं के, दृष्टिवादन अध्ययन न्यारे

प्राह—यदि ममान्तिके प्रव्रज्यां गृह्णासि, तर्हि त्वां दृष्टिवादमध्यापयामः । आर्यरक्षितेन प्रव्रज्याग्रहणं स्वीकृतम्, तदनन्तरमसौ श्रावकेण दत्तं साधुवेषयोग्यं सदोरकमुखवस्त्रिका—रजोहरणवस्त्रपात्रादिकं लब्ध्वा साधुवेषेण मातुरनुमत्या च प्रव्रजितः सन्नाचार्यस्य समीपे एकादशाङ्गानि सोपाङ्गानि पठित्वा दृष्टिवादस्य प्रथमं परिकर्मार्ख्यं द्वितीयं सूत्रार्ख्यमध्ययनमधीतवान् । अथातः परं दृष्टिवादं पठितुं तोसलिपुत्राचार्याज्ञया स वज्रस्वामिसमीपं गन्तुकामः पथि गच्छन्नवन्त्यां भद्रगुप्ताचार्यस्यान्त्यक्रियारूपां निर्यापनां कृतवान् । तेन चान्त्यसमये प्रोक्तम्—त्वया रात्रौ

दृष्टिवाद का अध्ययन हम तुम को तब ही करायेंगे कि जब तुम मेरे पास दीक्षा धारण करोगे । आर्यरक्षित ने दीक्षाग्रहण करना मंजूर कर लिया । माताने उन्हें दीक्षा लेने की अनुमति पहले दे दी थी । आर्यरक्षितने मुनिदीक्षा धारण कर ली । श्रावकों ने मिलकर उनके लिये मुनिवेष के योग्य सदोरक मुखवस्त्रिका एवं रजोहरण तथा वस्त्रपात्रादिक प्रदान किये । आचार्य के पास रह कर आर्यरक्षित ने उपाङ्गसहित ग्यारह अंगों का अध्ययन कर दृष्टिवाद का प्रथम परिकर्म नाम का अध्ययन तथा द्वितीय सूत्र नाम का अध्ययन पढ़ लिया । अवशिष्ट दृष्टिवाद को पढ़ने के लिये फिर वे वहां से तोसलिपुत्राचार्य की अनुमति से वज्रस्वामी के समीप जाने को इच्छुक हुए । जब ये उनके पास जा रहे थे तो मार्ग में इन्हें उज्जैनो नगरी आई । वहां उस समय भद्रगुप्ताचार्य की उन्होंने अन्त्यक्रिया रूप निर्यापना की । आचार्यने अंत समय में इनसे यह कहा कि

तमे भारी पासे दीक्षा धारण करशे। त्यारे ७ कराववाभां आवशे। आर्यरक्षिते दीक्षा अर्हण करवानु स्वीकार्युं, माताये पणु तेने दीक्षा लेवानी अनुमति पडेलांथी आपी, इती. आर्यरक्षिते मुनिदीक्षा धारण करी श्रावकैये मणीने तेने माटे मुनिवेषने योग्य सहोरकमुखवस्त्रिका, रजोहरण तथा वस्त्रपात्रादिक प्रदान कर्थां. आचार्यनी पासे रड्डीने आर्यरक्षिते उपांग सहित अग्यार अंगोनुं अध्ययन करी दृष्टिवादनुं प्रथम परिकर्म नामनुं अध्ययन तथा द्वितीय सूत्र नामनुं अध्ययन शीभी लीधुं. आकीना दृष्टिवा-दने शीभववा माटे पछी ते त्यांथी तोसलीपुत्राचार्यनी अनुमतिथी वज्रस्वामी समीप ७वा माटे धर्यण करी. त्यारे ते तेनी पासे ७ध रह्यो इतो। त्यारे पथभां मार्गभां उज्जैनो नगरी आवी. त्यां ये समये भद्रगुप्ताचार्यनी अंत्यक्रिया रूप निर्यापना करी. आचार्ये अंत समये तेने ये कहुं के, तमे रात्रीभां वज्र-



वज्रस्वामिना सह न स्थातव्यम् यतस्तेन सह रात्रौ संवसन् म्रियते । एतद्वचनं हृदि निधाय स ततो निर्गत्यावन्तीनगर्या अदूर एव ग्रामाद् बहिरुद्याने रात्रौ स्थितः । वज्रस्वामिना रात्रिशेषे स्वप्नो-दृष्टः केनचिदागन्तुकेन शिष्येण मत्पात्रस्थं साव शेषं पयः पीतमिति । अथार्यरक्षितः प्रभाते क्वचिदन्यस्मिन्नुपाश्रये वसतिं कृत्वा वन्दनार्थं वज्रस्वामिनोऽन्तिकं गतः । तदानीं स वज्रस्वामी रात्रिशेषदृष्टं स्वप्नं चिन्तयन्नासीत् । वज्रस्वामिना कुशलप्रश्नानन्तरं रात्रावन्यत्रावस्थानस्य कारणं पृष्टम् आर्यरक्षितः प्राह—भद्रगुप्ताचार्यस्यानुशासनादहमन्यस्मिन्नुपाश्रये निवसामि, वज्रस्वामी तु तदा पूर्वं निजोपयोगं दत्त्वा आर्यरक्षितकृतस्य रजन्यामन्यत्रोपाश्रयेऽ

तुम रात्रि में वज्रस्वामी के साथ नहीं रहना, क्यों कि रात्रि में उनके साथ रहने वाले की मृत्यु हो जानी है । आचार्य के इन वचनों को हृदय में रखकर वे वहां से निकले और जाकर पास के किसी ग्राम के बाहिर उद्यान में रात्रि में ठहर गये । उधर वज्रस्वामीने रात्रिके शेषभाग में एक ऐसा स्वप्न देखा, कि किसी आनेवाले शिष्य ने मेरे पात्र का सावशिष्ट (कुछ बाकी रखकर) क्षीरको पी लिया है । इधर आर्यरक्षित प्रभात काल में किसी अन्य उपाश्रयमें अपने उपकरण रखकर एवं स्थान निश्चित कर वंदना निमित्त वज्रस्वामी के पास पहुँचे । उस समय वज्रस्वामी रात्रि के शेष-भाग में दृष्ट स्वप्न का विचार करने में मग्न हो रहे थे । वज्रस्वामी ने कुशलप्रश्न के बाद रात्रि में अन्यत्र ठहरने का कारण आर्यरक्षित से पूछा, आर्यरक्षित ने कहा कि मैं भद्रगुप्ताचार्य के अनुशासन से अन्य उपाश्रय में ठहर गया हूँ । उस समय वज्रस्वामी ने अपने उपयोग के बलसे

स्वामीनी साथे रहेशो नहीं. कारण के; रात्रे तेनी साथे रहैवावाणानुं मृत्यु थाय छे. आचार्यना आ वचनने हृदयमां रात्रीने त्यांथी नीकणी पासेना केछ गांमे अहार अगीत्यामां रात्री रोकथो. आ तरङ्क वज्रस्वामीये रात्रीना छेदला प्रहरे अेक अेवुं स्वप्न देण्युं के, केछ आवी रहैला शिष्ये भारा पात्रमांथी सावशिष्ट(कछके अकी रात्रीने) भीर पीछ लीधैल छे. आ तरङ्क आर्यरक्षित प्रभातका-णमां केछ भील उपाश्रयमां पोतानुं उपकरण रात्रीने अने स्थान निश्चित करीने वंदना.निमित्ते वज्रस्वामी पासे पडोअ्यो. अे समये वज्रस्वामी रात्रीना छेदला प्रहरे जेयेला स्वप्नने विचार करवामां मग्न हुता. वज्रस्वामीये कुशल प्रश्न आद रात्रीमां भील स्थणे रोकवातुं कारण आर्यरक्षितने पूछ्युं. आर्यरक्षिते कहुं के हुं भद्रगुप्ताचार्यना अनुशासनथी भील उपाश्रयमां रोकथो छुं. ते समये वज्र-स्वामीये पोताना उपयोगना अणथी “ आर्यरक्षितनुं भील उपाश्रयमां रात्रे



वस्थानस्य कारणं ज्ञात्वाऽब्रवीत्-युक्तमेतदुक्तं भद्रगुप्ताचार्येणेति । अथार्यरक्षितेन वज्रस्वामिसंनिधौ नव पूर्वाणि पठितानि, दशमपूर्वस्य कतिचिदधिकारास्तेन यावत् पठितास्तावद् दशपुरात् फल्गुरक्षितो भ्राता चिरविरहार्तमात्रादिभिः प्रेरितस्तस्या-कारणाय तत्रागतः । आर्यरक्षितस्तं प्रतिबोध्य तत्रैव प्रव्रज्यां ग्राहयति स्म ।

एकदाऽऽर्यरक्षितो वज्रस्वामिनं पृच्छति-भगवन् ! मम पठनार्थं दृष्टिवादे दशमं पूर्वं कियदवशिष्टमस्ति ? वज्रस्वामी प्राह-वत्स ! त्वया दशमपूर्वस्य बिन्दुमात्रं पठितं समुद्रोपमं दशमं पूर्वमस्ति । ततोऽसौ श्रान्तमनाः प्राह-नाहमतः परं पूर्वपाठं कर्तुं

‘आर्यरक्षित का अन्य उपाश्रय में रात्रि में ठहरने का क्या कारण है’ यह बात अच्छी तरह जानकर आर्यरक्षित से कहा भद्रगुप्ताचार्य ने जो कहा वह युक्त ही कहा है । बाद में आर्यरक्षित ने वज्रस्वामी से नव पूर्व का अध्ययन आनन्द से कर लिया । परन्तु दशम पूर्व के कितनेक अधिकार जब ये पढ़ रहे थे कि इतने में इनका छोटा भाई फल्गुरक्षित दशपुर से चिरविरहार्त माता आदि द्वारा प्रेरित होकर इन्हें बुलाने के लिये वहां आपहुँचा । आर्यरक्षित ने उसे समझाकर-प्रतिबोधितकर-वहीं दीक्षा दिलवा दी । एक दिन की बात है कि आर्यरक्षित ने वज्रस्वामी से पूछा कि भगवन् ! दृष्टिवाद में दशमपूर्व, पढ़ने के लिये अब मेरा कितना बाकी रहा है । यह सुनकर वज्रस्वामी ने कहा कि वत्स ! दशम पूर्व तो समुद्र के समान है तुमने तो अभीतक उसको बिन्दुमात्र ही पढ़ा है । वज्रस्वामी की यह बात सुनकर इनका मन कुछ श्रान्त सा

रोकवानुं शुं कारणु छे” आ वात सारी रीते ज्ञानीने आर्यरक्षितने कहुं, भद्र-गुप्ताचार्ये ने कहुं छे, ते युक्त ज कहुं छे. आहमां आर्यरक्षिते वज्रस्वामीथी नव पूर्वन्तु अध्ययन आनन्दथी शीघ्री लीधुं. परंतु दशमा पूर्वना डेटलाक अधिकार न्यारे ते शीघ्री रह्यो डेतो त्यारे ते अरसांमां तेना नानोभाळ इदु-रक्षित दशपुरथी पुत्रनेा विरड अनुभवती माता द्वारा प्रेरित अनी तेने जोला-ववा माटे त्यां आवी पडोअ्यो. आर्यरक्षिते तेने समजवीने प्रतिबोधित करी त्यांज दीक्षित अनाव्यो. अेक दिवसनी वात छे के, आर्यरक्षिते वज्रस्वामीने पूछ्युं के लहत दृष्टीवाहमां हसमुं पूर्व पुडं थवा माटे डवे डेटलो समय आकी छे? आ सांजणीने वज्रस्वामीअे कहुं के, वत्स ! दशमुं पूर्व तो समुद्र समान छे, आमांथी तें तो मात्र डणु भींडु नेटलुं ज शीघेल छे. वज्र-स्वामीनी आ वात सांजणीने तेनुं मन कांठक पिन्न थध गयुं अने कडेवा

शक्नोमि । वज्रस्वामी तु दशमपूर्वस्य स्वस्मिन्नेवावस्थानं ज्ञात्वा मौनमवलम्ब्य स्थितः । आर्यरक्षितो वज्रस्वामिगुरोरनुज्ञया फल्गुरक्षितेन सह दशपुरनगरं समागतः । वज्रस्वामिना स्वायुरल्पं ज्ञात्वा तस्मै सुशिष्यायार्यरक्षिताय विहारसमये आचार्यपदं प्रदत्तम् । अथार्यरक्षिताचार्यः स्वमातृभगिनीप्रमुखसांसारिकवर्गं प्रतिबोध्य प्रव्रज्यां ग्राहयामास । सोमदेवस्तु प्रतिबोधितोऽपि साधुवेषं नैव गृह्णाति, आर्यरक्षिताचार्यस्तं दीक्षाग्रहणार्थं बहुशः कथयति । ततस्तस्य पिता सोमदेवः प्राह— वस्त्रयुग्मं, यज्ञोपवीतं, कमण्डलुं, छत्रं, पादुकां चापरित्यज्यैव मया दीक्षा ग्राह्या ।

हो गया और कहने लगे—भदन्त ! अब मैं इससे आगे पढ़ने के लिये समर्थ नहीं हूँ । वज्रस्वामी दशमपूर्व “मेरे हृदय में ही अवस्थित रहेगा” ऐसा जानकर पश्चात् चुप हो गये । आर्यरक्षित वज्रस्वामी गुरु की आज्ञा से फल्गुरक्षित के साथ विहार करके दशपुर नगर को आये । वज्रस्वामी ने अपनी आयु अल्प जानकर उन सुशिष्य आर्यरक्षित के लिये विहार के समय में आचार्य पद दे दिया था । आचार्य आर्यरक्षित ने अपनी माता बहिन आदि सांसारिक जनों को प्रतिबोधित कर उन्हें दीक्षा से दीक्षित कर दिये । अपने संसारी पिता सोमदेव को भी समझाया पर उन्होंने ने प्रतिबोधित होने पर भी दीक्षा धारण नहीं की । आचार्य आर्यरक्षित ने उनको अनेक बार बहुत २ भी कहा कि ‘आप दीक्षा स्वीकार करलो’ परन्तु उन्होंने ने साधुवेष अंगीकार नहीं किया । कहने लगे कि वस्त्रयुग्म, यज्ञोपवीत, कमण्डलु, छत्र एवं पादुका नहीं छोड़कर ही मैं दीक्षा ग्रहण

लाज्या, भदन्त! डवे हुं आनाथी आंगण शीपी शकुं तेम नथी. वज्रस्वामी दशमुं पूर्वं पोताना हृदयमां न अवस्थित रहेशे तेपुं न्नाणीने युप रह्या. आर्यरक्षित वज्रस्वामी गुरुनी आज्ञाथी इत्तुरक्षितनी साथे विहार करी दशपुर नगरमां आव्या. वज्रस्वामीये पोतानी आयु अल्प न्नाणीने विहार करवाना समये सुशिष्य आर्यरक्षितने आचार्य पद अपी दीधु. आचार्य आर्यरक्षिते पोतानी माता, भडेन, वगेरे संसारी संभधीओने प्रतिबोधित करीने तेओने दीक्षा अपी दीक्षित कर्या. पोताना संसारिक पिता सोमदेवने पणु समनव्या पणु तेओने प्रतिबोध करवा छतां पणु तेमणे दीक्षा ग्रहणु न करी. आचार्य आर्यरक्षिते तेमने अनेकवार धणुं धणुं कहुं के, तमे दीक्षा लघुं हो. परंतु तेओये साधुवेश अंगिकार न कर्या. कडेवा लाज्या के, वस्त्रनी न्नेडी, यज्ञोपवीत, कमंडल,

आर्यरक्षिताचार्येण स्वपितुर्वृद्धावस्थायां तारणबुद्ध्या पूर्वज्ञाने उपयोगं दत्त्वा तथैवासौ प्रव्राजितः ।

अन्यदा कदाचिद् गृहस्थबालकाः साधूनां वन्दनार्थं तत्र मंडल्यां समागताः, आचार्यः क्वचिदन्यत्र तदानीं गतश्चासीत्, तत्र साधुभिरिङ्गितेन प्रतिबोधितास्ते बालका वदन्ति—इमं छत्रधरं मुक्त्वाऽन्यान् सर्वान् साधून् वन्दामहे । इत्युक्त्वा ते बालका एकं छत्रधरं तं विहाय सर्वान् साधून् वन्दन्ते । ततः सोमदेवमुनिः प्राह—एते मम पुत्रनपत्रादयः सर्वे गुणमाभिर्वन्दिताः, अहं कस्मान्न वन्दितः? किं मया दीक्षा न

करूंगा । अपने पिता सोमदेव की यह बात सुनकर आर्यरक्षित आचार्य ने उन्हें वृद्धावस्था में तारण की भावना से पूर्वज्ञान में उपयोग देकर अपने आगमविहारी होनेसे उसीरूप से दीक्षित कर लिया ।

किसी एक समय की बात है कि गृहस्थों के बालक साधुओं को वंदना निमित्त वहाँ मंडली में आये । आचार्य आर्यरक्षित कहीं दूसरी जगह उस समय गये हुए थे । साधुओंके इशारे से प्रतिबोधित किये गये वे सब बालक कहने लगे कि—हम लोग इस छत्रधारी साधुको छोड़कर बाकी समस्त साधुओं को वंदना करते हैं । इस प्रकार कह कर वे सबके सब एक छत्रधारी मुनिको छोड़कर सबको वंदना करनेलगे । सोमदेव मुनिने जब यह बालकों का व्यवहार देखा तो बोले—क्यों बालको !—तुमने हमारे इन पुत्रों एवं नातियों को तो वंदना की पर मुझे वंदना क्यों नहीं की ? क्या मैंने

छत्र, अने पाहुका छोड्या शिवायज् हुं दीक्षा अहणु करीश. पोताना पिता सोमदेवनी आ वात सांभणीने आर्यरक्षित आचार्ये तेमनी वृद्धावस्थाभां तारवानी लावनाथी पूर्वज्ञानने उपयोग आपी पोताना आगम विहारी डोवाथी तेवा इपथी दीक्षित अनाव्या.

केअ अेक समयनी वात छे के गृहस्थानां आणके साधुओनी वंदना निमित्ते साथे भणीने आव्या. आचार्य अे समये केअ भील जग्याअे गया हुता. साधुओअे इशाराथी हरेकने वंदना करवा भाटे ते आणकेने कहुं. तो ते सधणा आणके कहेवा लाग्या के, अमे अधा आ छत्रधारी मुनिने छोडीने आकी समस्त साधुओने वंदना करीअे छीये अेम कडीने ते सधणा आणके छत्रधारी भडाराज्ने छोडीने भील अधाने वंदना करवा लाग्या. सोमदेव मुनिअे आणकेने अ्यारे आ प्रकारने वडेवार ज्ये तो आद्या के छे आणके ! तमे भारा आ पुत्रे तेमज् संभंधीओने वंदना करी तो मने केम वंदना करी

गृहीता ?, बालका ऊचुः—किं दीक्षिताच्छत्रधारिणः स्युः । एवमुक्त्वा गतेषु बालकेषु आर्यरक्षिताचार्यस्तत्र समायातः । तदाऽसौ सोमदेवमुनिस्तत्समीपमागत्य वदति—पुत्र ! बालका अपि मां हसन्ति, अलमनेन छत्रेण, इत्युक्त्वा तेन छत्रं परित्यक्तम् । एवमेकैकं क्रमेण परित्यजता तेन धौतिकवस्त्रमन्तरेण सर्वं यज्ञोपवीतादिकं परित्यक्तम्, बहुशस्तथा वन्दनाकरणैरुपहासादि प्रयोगैश्चापि स धौतिकं न मुञ्चति ।

मुनिदीक्षा धारण नहीं की है ? । बालकों ने उनकी इस बात को सुनकर शीघ्र ही निस्संकोच से उत्तर दिया कि जो मुनिदीक्षा से दीक्षित हुआ करते हैं क्या वे छत्रधारी होते हैं ? । बालक ऐसा कह कर चले गये इतने में ही वहां बाहर से आर्यरक्षित आचार्य आ पहुँचे । आचार्य को आये देखकर सोमदेव मुनि ने उनके पास जाकर कहा पुत्र ! देखो तो सही—बालक भी मेरी हँसी मजाक करते हैं—कहते हैं कि मुनि कहीं छत्रधारी भी होते हैं । अतः इस छत्र की मुझे अब जरूरत नहीं है । ऐसा कहकर सोमदेव ने छत्रका परित्याग कर दिया । इसी तरह क्रमशः और भी गृहीत वस्तुओंसे अपनी मुनि अवस्था में हँसी होती हुई जानकर उन्होंने ने धोतीजोड़े के सिवाय अन्य समस्त जनेऊ आदि वस्तुओं का परित्याग कर दिया । यद्यपि धोती के रखने से लोग उनका उपहास भी करते थे तौ भी वे उसे नहीं छोड़ सके ।

नहीं ? शुं में मुनिदीक्षा धारण नहीं करी ? आणकेअये तेनी आ वात सांभणीने तस्त नःसंकोचथी नवाण दीधो के, जे मुनिदीक्षा दे छे तेअो छत्रधारी होय छे अरा ? आणके आ प्रभाणे कहीने यात्यां गयां अेवा समये अहार गयेला आर्यरक्षित आचार्य आपी पड़ोअ्या. आचार्यने आवेला जेधने सोमदेव मुनिअे तेमनी पासे जधने कहुं. पुत्र जुअो तो अरा ! आणके पणु भारी हांसी मजक करे छे. कडे छे के, मुनि कयांय छत्रधारी होय छे अरा ! आथी आ छत्रनी डवे मने जरूरत नहीं अेम कहीने सोमदेवे ते छत्रने परित्याग करी दीधो. आ प्रभाणे कमे कमे तेमणु अडणु करेदी वस्तुअोथी पोतानी मुनि अवस्थाभां हांसी थती जणुने तेमणु धोतीजेटा सिवाय भीअ समस्त जनोअ आदि वस्तुअोने परित्याग करी दीधो. अेम छतां पणु धोतीना राभवाथी बोके तेमने उपहास करता डता. छतां पणु तेअो तेने छोडी शक्या नहीं.

अन्यदा कदाचिदेकः साधुरनशनतपश्चरणेन स्वर्गं गतः । तत आर्यरक्षिताचार्येण तस्य सोमदेवमुनेर्धौतिकपरित्याजनार्थं साधवोऽभिहिताः—य एनं साधुमृतकं स्कन्धेन वहति तस्य महती निर्जरा भवति । तदनन्तरं स सोमदेवमुनिर्वदति—पुत्र ! अत्र निर्जरा भवति किम् । आर्यरक्षिताचार्य आह—सत्यम्, ततः स वदति—अहं वहामि । आचार्यः प्राह—अत्रोपसर्गा बहवो जायन्ते, कतिचिद् बालकास्तस्य संलग्ना भवन्ति, तत्र तूष्णीभात्र आश्रयणीयः, कोपो न करणीयः, स्वीकृतकार्यं सर्वथा संपादनीयम्, यदि सकला उपसर्गाः शक्यन्ते सोढुम्, तदा श्रेयः, अन्यथाऽस्माकम-

कोई एक दिन की बात है कि एक साधु अनशन से कालधर्म पाये । आर्यरक्षित आचार्य ने सोमदेव मुनि की धोती छुड़ाने के अभिप्राय से साधुओं से कहा कि जो इस मृतक साधु को अपने कंधे पर आरोपित कर ले जायगा उसके लिये महान् निर्जरा होगी । यह बात सुनकर सामदेव मुनिने कहा कि पुत्र ! क्या इस कार्य के करने में निर्जरा होती है ? । आचार्य ने कहा—हां होती है । सोमदेव ने कहा तो इसे कंधे पर रखकर मैं ले जाऊँगा । आचार्य ने कहा कि देखो—ऐसा करने में बहुत विघ्न आते हैं—कितनेक बालक देखते ही उसके पीछे लग जाते हैं, हँसी उड़ाते हैं सो उसमें शांतिभाव रखना पड़ता है । क्रोध नहीं करना पड़ता है । तथा जिस कार्य को करने का आरंभ किया जाता है उसे अन्ततक निभाना पड़ता है । यदि इन सब विघ्नों को सहन करने के लिये अपने को शक्तिशाली समझते हो तो ही इसमें श्रेय है अन्यथा हमसब लोगों का

એક વખતે એક સાધુ અનશનથી કાળધર્મ પામ્યા, આર્યરક્ષિત આચાર્યે સોમદેવ મુનિને ઘેતી છોડાવવાના ભાવથી સાધુએને કહ્યું કે, જે કોઈ આ મૃત્યુ પામેલા સાધુને પોતાની કાંધ ઉપર લઈને જશે તેમના માટે મહાન નિર્જરા થશે. આ વાત સાંભળીને સોમદેવ મુનિએ કહ્યું કે હે પુત્ર ! તું આ કાર્ય કરવામાં નિર્જરા થાય છે? આચાર્યે કહ્યું કે, હા ! થાય છે. સોમદેવે કહ્યું કે, તો હું એને કાંધ ઉપર ઉપાડીને લઈ જઈશ. આચાર્યે કહ્યું કે, જુઓ ! આમ કરવામાં બહુ વિઘ્ન આવે છે. કેટલાક બાળકો દેખતાં જ તેમની પાછળ પડે છે, હસી ઉડાવે છે, તો આમાં શાન્તી ભાવ રાખવો પડે છે. ક્રોધ આવવો ન જોઈએ તથા જે કાર્ય કરવાનો આરંભ કર્યો છે તેને અન્ત સુધી નભાવવું પડે છે. જે આ બધા વિઘ્નોને સહન કરવા માટે આપ આપને શક્તિશાળી માનતા હો તો જ તેમાં શ્રેય છે. નહિતર અમારા સઘળા લોકોનું તેમાં અનિષ્ઠ

शुभं भविष्यति। एवं प्रवर्तितोऽसौ मृतकं साधुं स्कन्धे समारोप्य साधुभिः सह वहति। मार्गे मृतकं वहतस्तस्य धौतिकं बालकैराचार्यसंकेति तैराकर्षितम्। स लज्जावशात्तं मृतकं स्कन्धादवतारयति तावदन्यैः साधुभिस्तुक्तम्—मा मुञ्च, मा मुञ्च, तदा तस्य कट्यां केनचित्साधुना स्वसार्धमानीतश्चोलपट्टको बद्धः, स तु लज्जया तं शवं वहन् निर्जने वने प्रासुकस्थण्डिले तं व्युत्सृज्याचार्यसमीपमागतो ब्रूते—हे

इसमें अनिष्ट हो जायगा। इस प्रकार समझाने पर जब सोमदेव संभल गये तो उन्होंने ने उस शब को उठाकर अपने कंधे पर रख लिया और साधुओं के साथ चले। मार्ग में मृतकसाधु को वहन किये हुए सोमदेव को देखकर बालकों ने उनकी आचार्यआर्यरक्षित के संकेत करने पर धोती खींच ली। अपनी धोती उतारी हुई देखकर उन्हें नग्न होने की वजह से बड़ी लज्जा का अनुभव होने लगा। उन्होंने ने चाहा कि इस मृतकसाधु के शब को कंधे से नीचे उतार कर बालकों से अपनी धोती छुड़ा ली जाय। ज्यों ही वे ऐसा करने को उद्यत हुए कि इतने में ही साधुओं ने कहना प्रारंभ कर दिया कि इसे नीचे मत उतारो मत उतारो। और इसी के भीतर ही किसी साधु ने जो चोलपट्टा उनके पहिराने के लिये पहिले से साथ ले आया था उन्हें पहिरा दिया। लज्जा से उस साधु के शब को वहन करते हुए सोमदेव ने निर्जन वन में उस शब को प्रासुक भूमि पर उतार दिया, और आचार्य महाराज के

थर्ध ञशे. आ प्रभाषे समञ्जववाथी न्यारे सोमदेव समञ्ज गया त्तारे तेमञ्जे ते शभने उठावी पोतानी कांध उपर राभी दीधुं अने साधुओनी साथे आत्था. मार्गमां भरेला साधुने उपाडी जाता सोमदेवने ञेधने ञाणकेअे आचार्य आर्यरक्षितना धिसाराथी तेमनी धोती ञेथी दीधी. पोतानी धोती नीकणी गयेदी ञाणीने तेमने नग्न थवाना कारणे धणी लञ्जने अनुभव थवा लाग्ये. तेओअे धञ्छयुं के, आ भरेला साधुना शभने कांधथी नीचे उतारी ञाणके पासैथी भारी धोती छोडावी लठं न्यां तेओ अेवुं करवाने उद्यत ञन्या अेटलामां ञ साधुओअे कडेवाने प्रारंभ कर्ये के, तेने नीचे न उतारे अेक तरङ्गथी आम कडेवायुं अेव वणते अे साधुओमांथी अेक साधुअे चोलपट्टे तेने पहरेववा माटे अगाठथी ञ साथे रापेद ते पहरेवावी दीधे. लञ्जथी अे साधुना शभने वडन करतां सोमदेवे निर्जन वनमां अे शभने प्रासुक भूमि उपर उतारी दीधुं अने आचार्य भडाराजनी समीप आवीने



पुत्र ! अद्य महानुपसर्गो जातः, तथापि सर्वं कार्यं भवत्कथनानुसारेण मया सम्पादितम् । आचार्योऽन्यं मुनिं प्रति प्राह-धौतिकमानीयास्मै दीयताम् तदा स वृद्धोऽवदत्-इदानीमलं धौतिकवस्त्रेण, यद् द्रष्टव्यं तद् दृष्टमेव, अतः परमयं चौलपट्टक एव मम देहे तिष्ठतु । अद्यप्रभृति नवीनवसनं नैव परिधास्यामि, अन्यसाधुव्याप्तमेव वस्त्रं ग्रहीष्याम, एकेनैव प्रावरणेन, एके नैव चौलपट्टकेन संयमयात्रा निर्वाहं करिष्यामि । एवमेवासौ विहरन्नवीनवस्त्रानाकाङ्क्षया द्वितीयप्रावरणचौलपट्टानाकाङ्क्षया च जीर्णशीर्णवस्त्रहेतुकदैन्याद्यकरणेन चाचैलपरीषहं सहते स्म । एकदा-

समीप आकर कहने लगे-हे पुत्र ! आज बड़ा भारी उपसर्ग उपस्थित तो हुआ था, परन्तु आपके कथनानुसार मैंने सब कार्य यथावस्थित संपादित कर दिया है । आचार्य ने उसी समय एक मुनि से कहा कि-धोती लाकर इन्हें दे दो । आचार्य महाराज की बात सुनकर सोमदेव ने कहा कि अब धोती से बस करो । इसकी अब आवश्यकता नहीं रही है । जो कुछ देखना था वह देख लिया है, इस लिये यह चौलपट्टा ही अब मेरे शरीर पर रहे यही भावना है, तथा मैं आज से नवीन वस्त्र नहीं पहिँरूँगा, तथा अन्य साधुओं द्वारा उपभुक्त वस्त्र ही ग्रहण करूँगा, एक ही प्रावरण से एक ही चौलपट्टक से संयम यात्रा का निर्वाह करूँगा । इस प्रकार सोमदेव मुनि विहार करते हुए नवीन वस्त्र की अनाकांक्षा से तथा द्वितीय प्रावरण (चादर) एवं द्वितीय चौलपट्टक की अनिच्छा से जीर्णशीर्णवस्त्र हेतुक दीनता के नहीं करने से अचैलपरीषह को सहते

कडेवा लाग्या हे पुत्र ! आज घण्टे लारे उपसर्ग उपस्थित थये હતો, પરંતુ તમારા કથન અનુસાર મેં સઘળું કાર્ય યથાવસ્થિત સંપૂર્ણ કરેલ છે. આચાર્યે એજ વખતે એક મુનિને કહ્યું કે, ધોતી લાવીને આમને આપી દો. આચાર્ય મહારાજની વાત સાંભળીને સોમદેવે કહ્યું કે, હવે ધોતીથી બસ કરો. મારે હવે તેની આવશ્યકતા નથી. જે કાંઈ જોવું હતું તે જોઈ લીધું છે. જેથી આ ચોલપટ્ટોજ મારા શરીર ઉપર રહે એજ ભાવના છે. તથા હું આજથી નવીન વસ્ત્ર પહેરવાનો નથી. અને બીજા સાધુઓ દ્વારા વપરાયેલા વસ્ત્રોનો હું અંગિકાર કરીશ. એક જ પ્રાવરણથી, એક જ ચોલપટ્ટાથી સંયમ યાત્રાનો નિર્વાહ કરીશ. આ પ્રકારે સોમદેવ મુનિ વિહાર કરતા કરતા નવા વસ્ત્રોની આકાંક્ષા વગર તથા બીજા પ્રાવરણ ચાદર અને બીજા ચોલપટ્ટાની અનિચ્છાથી જીર્ણ શીર્ણ વસ્ત્રથી દીનતા ન બતાવતા અચેલપરીષહ સહન કરતા રહ્યા. એક

ऽतिशयितं हिमं समापतितम् तथाप्येकमात्रं प्रावरणमसौ दधाति न तु द्वितीयवस्त्रं  
गृह्णाति, तस्मिन्नेव जीर्णशीर्णे प्रावरणे प्रोत्साहसम्पन्नेन मनसाऽचेलपरीषहं  
सहमानः समाधिभावेन कालधर्मं प्राप्य देवलोकं गतः। एवं तेन यथा-अचेलपरीषहः  
सोढस्तथैवान्यैरपि साधुभिः सर्वदाऽचेलपरीषहः सोढव्य एव ॥१३॥

अचेलकस्य शीतादिभिः स्पृष्टस्यारतिः स्यात्, अतस्तत्परीषहजयं प्राह—

मूलम्—गामाणुंगामं रीयंतं, अणंगारं अकिञ्चणं ।

अरंई अणुर्पवेसेज्जा, तं तितिक्रखे परीसहं ॥१४॥

छाया—ग्रामानुग्रामं रीयमाणम्, अनगारम् अकिञ्चनम् ।

अरतिः अनुप्रविशेत्, तं तितिक्षेत परीषहम् ॥ १४ ॥

टीका—‘ गामाणुंगामं ’ इत्यादि ।

ग्रामानुग्रामम्-ग्रामम् अनु, ग्रामात् पश्चात्, ग्रामानन्तरवर्ती यो ग्रामः स

रहे। एक दिन की बात है कि शीतकाल में अत्यन्त हिम गिरा तौ भी इन्होंने द्वितीय प्रावरण धारण करने की स्वप्न में भी इच्छा नहीं की किन्तु एक ही प्रावरण से उस हिम का सामना किया। जीर्ण शीर्ण उस प्रावरण में ही प्रोत्साहसंपन्न चित्त से अचेलपरीषह को सहन करते हुए उन सोमदेव महात्माने समाधिभाव से कालधर्म पाकर देवलोक को प्राप्त किया।

इस कथा के कहने का केवल एक यही प्रयोजन है कि देखो सोमदेव मुनिराज ने पहिले अचेलपरीषह नहीं सहा, पश्चात् प्रतिबोधित होने पर उस परीषहको अधिक प्रोत्साह के साथ सहन किया। इस तरह अन्य साधुओं को भी अचेलपरीषह सहन करना चाहिये ॥ १३ ॥

दिवसनी वात छे के, ङं डीना सभये अत्यंत हिम पडयुं तो पणु तेओओ भीणुं  
प्रावरणु करवानी स्वप्नमां पणु छंछा न करी. परंतु ओक ओ प्रावरणुमांओ उत्साह  
संपन्न चित्तथी अचेल परीषडने सहन करीने ते सोमदेव महात्माओ समाधि  
भावथी कालधर्मं पाभी देवलोक ने प्राप्त कर्यो.

आ कथा कडेवानुं डेवण ओक ओ प्रथोअन छे के, ओओ, सोमदेव मुनिओ  
पडेलां अचेलपरीषड न सहो पाछणथी प्रतिओध पाभतां तेमणु ओ परीषडने  
अधिक उत्साहथी सहन कर्यो. अन्य साधुओओ पणु ओमनी भाइक  
अचेलपरीषड सहन करवो जेधंओ (१३)

ग्रामानुग्रामस्तम् । नगराद्युपलक्षणमेतत्, नगरादिकं चेत्यर्थः । रीयमाणं=विहर-  
माणम्, अकिञ्चनं=निष्परिग्रहम्, अनगारं=मुनिम् अरतिः=संयमविषयिकाऽधृतिः  
मोहनीयकर्मोदयजनिता संयमारुचिरूपाऽऽत्मपरिणतिः अनुप्रविशेत्=प्रविष्टा भवेत्-  
मुनेर्मनसि प्राप्ता भवेत्, तम्=अरतिरूपं परीषहं तितिक्षेत=अरतिरूपस्य मनः  
परिणामस्य कटुकफलं चिकणकर्मबन्धनं चतुर्गतिकसंसारपरिभ्रमणं च विज्ञाय  
मनसस्तन्निराकरणेन सहेत ॥

अचेलक के शीत आदि द्वारा सताये जाने पर अरति भी हो सकती  
है इसलिये सातवें अरतिपरीषह को सहने के लिये सूत्रकार कहते हैं ।

‘ गामाणुगामं ’ इत्यादि

अन्वयार्थ—(गामाणुगामं रीयतं-ग्रामानुग्रामं रीयमाणम्) एक गाँव से  
दूसरे गाँव तथा उपलक्षण से एक नगर से दूसरे नगर विहार करते हुए  
तथा ( अकिञ्चनं-अकिञ्चनम् ) अकिञ्चन-परिग्रहरहित ऐसे ( अणगारं-  
अनगारम् ) मुनि को ( अरई अणुप्पवेसेज्जा-अरतिः अनुप्रविशेत् ) यदि  
अरति-संयम में अरुचि अर्थात् मोहनीय कर्म के उदय से होनेवाली जो  
संयमअरुचिरूप आत्मपरिणति, तथा संयम में अधृति जाग्रत हो जावे  
तो मुनि का कर्तव्य है कि वह ( तं परीषहं तितिक्षे-तं परीषहं तिति-  
क्षेत ) उस परीषह को शांति के साथ सहन करे । “ अरतिरूप इस मान-  
सिक परिणति का फल चिकणकर्मबन्धरूप है और उससे जीव का

अचेलकमुनीने शीतआदि सतावे ल्यारे अरति पषु थवाने। संभव छे  
तेथी उभा अरतिपरीषहने सडन करवा माटे सूत्रकार कडे छे.

‘ गामाणुगामं ’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—गामाणुगामं रीयतं-ग्रामानुग्रामं रीयमाणम् अेक गाभथी भील गाभ  
तथा उपलक्ष्णुथी अेक नगरथी भीलनगर विडार करता अकिञ्चनं-अकिञ्चनम् तथा  
अकिञ्चन-परिग्रह रहित अेवा अणगारं-अनगारम् मुनिने कदाच्य अरई  
अणुप्पवेसेज्जा-अरति अनुप्रविशेत् अरति-संयमभां अइथि अर्थात् मोहनीय कर्मना  
उदयथी थनारी अे संयम अइथि इप आत्मपरिष्णुति-तथा संयमभां अधृति, नगृति  
थर्ध नय तो मुनिनुं कर्तव्य छे के, ते मुनी तं परिसहं तितिक्षे-तं परीषहं तितिक्षेत  
अे परिषहने शान्तीनी साथे सडन करे “ अरति इप आ मानसिक परिष्णुतिनुं  
इण थिकषु कर्मबंध इप छे. अने तेनाथी अणुत्तं अणुत्तं इपे संसारभां

उ० ४७

‘ ગામાનુગામં રીયંતં ’ इत्यनेन रागादिनिवृत्तिः सूचिता ।

‘ અર્કિચ્ચં ’ इत्यनेन ममत्वरहितत्वं प्रवेदितम् ।

‘ અરઈઅણુપ્પવેસેજ્જા ’ इत्यनेन शब्दादिविषयाणां प्रबलता प्रदर्शिता ।

‘ તિતિક્ખે ’ इत्यनेनानगारस्य परीषहसहिष्णुता सूचिता ॥ १४ ॥

ઉક્તમર્થં દ્રઢ્યન્નાહ—

મૂલમ્—અરઈં પિટ્ટંઓ કિંચ્ચા, વિરંઓ આયરંકિલ્લણ ।

ધમ્મારામે નિરારંભે, ઉવંસંતે, મુંળી ચંરે ॥ ૧૫ ॥

છાયા—અરતિં પૃષ્ઠતઃ કૃત્વા, વિરતઃ આત્મરક્ષિતઃ ।

ધમ્મારામે નિરારમ્ભઃ, ઉપશાન્તઃ મુનિશ્ચરેત્ ॥ ૧૫ ॥

ટીકા—‘ અરઈં ’ इत्यादि ।

વિરતઃ=હિંસાદિભ્યો નિવૃત્તઃ, આત્મરક્ષિતઃ—આત્મા રક્ષિતઃ નરકનિગોદાદિ-

ચતુર્ગતિક સંસાર મેં પરિભ્રમણ હોતા હૈ” યહ સમજ્ઞકર હસ સંયમ વિષયક અરતિ કો સાધુ મનસે ખી હટાતે રહે ।

સૂત્રકાર ને “ગામાનુગામં” હસ પદ સે રાગાદિક કી નિવૃત્તિ સૂચિત કી હૈ । “અર્કિચ્ચં” હસ પદ સે મુનિ કો મમત્વરહિત પ્રદર્શિત કિયા હૈ ॥ “અરઈ અણુપ્પવેસેજ્જા” હસ પદ સે શબ્દાદિક વિષયોં કી પ્રબલતા પ્રકટ કી હૈ । “તિતિક્ખે” હસસે ‘અણગાર કો પરીષહ સહિષ્ણુ હોના ચાહિયે’ યહ કહા હૈ ॥ ૧૪ ॥

હસી અર્થ કો દૃઢ કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘અરઈં પિટ્ટંઓ’ इत्यादि ।

અન્વયાર્થ—(વિરઓ-વિરતઃ) હિંસાદિક પાપોંસે વિરક્ત તથા (આયર-કિલ્લણ—આત્મરક્ષિતઃ) નરકનિગોદાદિકકે દુઃખોંકે જનક અશુભ ધ્યાનસે

પરિભ્રમણ થાય છે. એવું સમજીને આ સંયમ વિષયક અરતિને સાધુએ મનથી પણ હટાવવી જોઈ એ.

સૂત્રકારે ગામાનુગામં આ પદથી રાગાદિકની નિવૃત્તિ સૂચિત કરેલ છે.

અર્કિચ્ચં—આ પદથી મુનિને મમત્વ રહિત પ્રદર્શિત કરેલ છે. અરઈઅણુપ્પવેસેજ્જા આ પદથી શબ્દાદિક વિષયોની પ્રબળતા પ્રગટ કરેલ છે. “તિતિક્ખે” આથી અણગારે પરીષહ સહિષ્ણુ બનવું જોઈ એ તેમ કહ્યું છે. ॥૧૪॥

આ અર્થને દ્રઢ કરતા સૂત્રકાર કહે છે. અરઈં પિટ્ટંઓ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—વિરઓ-વિરતઃ હિંસાદિક પાપોથી વિરક્ત તથા આયરકિલ્લણ—આત્મરક્ષિતઃ નરક નિગોદાદિકના દુઃખના જનક એવા અશુભ ધ્યાનથી પોતાના આત્માની રક્ષા

दुःखजनकादशुभध्यानाद् येन स तथा, यद्वा-आयरक्षित इतिच्छाया, आयः-  
रत्नत्रयस्य लाभः, रक्षितो येन स तथेत्यर्थः । निरारम्भः=सावद्यक्रियावर्जितः, तथा  
उपशान्तः=क्रोधादिकषायोपशमाद् मनोवाक्कायविकारवर्जितः मुनिः, अरतिं पृष्ठतः  
कृत्वा=इयं धर्मविराधिकेति मत्वा परित्यज्य धर्मारामे चरेत्, इत्यग्रेण सम्बन्धः ।

अरतिर्हि धूलिर्वात्मानं मलिनयति, जलदपटलावलीसंकुला गाढतिमिरपरि-  
व्याप्ता रजनीव विवेकं संहरति, अविवेकं वर्धयति, वज्रमिव ज्ञानादिगुणानुपघात-  
यति, अविवेकिजनमनःकानननिवासिनी कृष्णसर्पिणीव छिद्रान्वेषणपरा मुनीनां

अपनी आत्मा की रक्षा करने वाला अथवा “आयरक्षितः” रत्नत्रय-  
लाभरूप आय-आवक की रक्षा करने वाला-संभाल रखनेवाला, तथा  
(निरारंभे-निरारंभः) सावद्य क्रिया के सेवन से वर्जित, तथा (उवसंते  
-उपशांतः) क्रोधादिक कषाय के उपशम से मन वचन एवं काय  
संबंधी विकारों से रहित (मुणी-मुनिः) साधु (अरइं पिट्टुओ किच्चा-  
अरतिं पृष्ठतः कृत्वा) अरति का परित्याग कर (धम्मारामे-धर्मारामे)  
धर्मरूपी उद्यान में (चरे-चरेत्) सदा लवलीन रहे-उस में सर्वदा  
विचरता रहे ।

यह अरतिभाव धूली की तरह आत्मा को मलिन करता है ।  
बादलों के समूह से संकुल एवं गाढ अन्धकार से व्याप्त रात्री के  
समान यह विवेकरूपी सूर्य को आच्छादित करदेता है, एवं अविवेक-  
रूपी अन्धकार की वृद्धि करता है । वज्र की तरह ज्ञानादिक गुणरूप  
पर्वत का भेदन करता है । यह अरतिभाव अविवेकी जन के मनरूप

करवावाणा अथवा “आयरक्षितः” रत्नत्रय लाभरूप आय-आवकनी रक्षा करवा-  
वाणा-संभाल राखवावाणा निरारंभे-निरारंभः तथा सावद्य क्रियाना सेवनधी  
पृष्ठत उवसंते-उपशांतः क्रोधादिक कषायना उपशमधी मन वचन अने काय  
संबंधी विकारधी रहित मुणी-मुनिः साधु अरइं पिट्टुओ किच्चा-अरतिं पृष्ठतः  
कृत्वा अरतिना त्याग करी धम्मारामे-धर्मारामेधर्मरूपी उद्यानभां चरे-चरेत्  
अभां सदा विचरता रहे.

आ अरतिभाव धुणनी भाइक आत्माने मलीन करे छे. वाइणोना समूहधी  
छवायेल अने गाढ अंधकारधी व्याप्त रात्रिना समान अे विवेकरूपी सूर्यने  
आच्छादित करे छे, अने अविवेकरूपी अंधकारनी वृद्धि करे छे. वज्रनी भाइक  
ज्ञानादिक गुणरूप पर्वतनुं भेदन करे छे. आ अरतिभाव अविवेकी भाइसना

संयमप्राणानपहरति, कुठार इव श्रुतचारित्रधर्मतरून् समुच्छेदयति, कुपथ्याहार इव कर्मव्याधिं वर्धयति । एवं विचिन्त्य धर्मारामे=धर्म एव निरन्तरानन्दहेतुतया प्रतिपाल्यतया चारामः धर्मारामः, यद्वा-धर्म आराम इव कर्मसंतापोपतप्तानां जन्तूनां निर्वृतिहेतुतया स्वाभिलषितफलप्रदानतश्चेति धर्मारामः, यत्र सम्यक्त्वं भूमिः,

वन में विहार करने वाला है, कृष्णसर्प की तरह छिद्रान्वेषण में तत्पर रहता है, एवं मुनियों के संयमरूपी प्राणों का हरण करने वाला है । कुठार की तरह श्रुतचारित्ररूपी वृक्ष को यह मूलसे उच्छेदन करता है । कुपथ्य आहार की तरह कर्मबन्धरूपी व्याधिको बढ़ाने वाला है । इस प्रकार विचार करके साधु को इस धर्मरूपी उद्यान में विचरण करते रहना चाहिये । उद्यान जिस प्रकार अपने में विचरण करने वालों को आनन्द का हेतु होता है, उसी प्रकार यह धर्म भी अपने आराधकों को आनन्द का कारण होता है, तथा उद्यान जिस प्रकार प्रतिपाल्य-रक्षण करने के योग्य होता है उसी प्रकार जीवन को सुन्दर बनाने वाला होने से धर्म भी प्रतिपाल्य-करने योग्य होता है । अथवा धूप से संतप्त प्राणियों के लिये उद्यान जिस प्रकार शीतलता प्रदान करता है उसी प्रकार कर्मरूपी आताप के संताप से संतप्त प्राणियों को शांति का हेतु होने से एवं अभिलषित फल का देनेवाला होने से धर्म भी एक उत्तम उद्यान के समान यहाँ प्रकट किया गया है । इस उद्यान

मनःपी वनमां विहार करनार छे. काणा सापनी माइक उंश देवामां तत्पर रहे छे, अने मुनियोना संयमःपी प्राणुतुं डरषु करनार छे. कुडाडाःपे श्रुत आरित्रःपी वृक्षनुं अे भूणसाथे उच्छेदन करे छे, कुपथ्य आहारनी माइक कर्म अंधःपी व्याधिने वधारनार छे. आ प्रमाणे विचार करीने साधुअे धर्मःपी उद्यानमां विचरषु करता रहेपुं जेधअे.

उद्यान जेम तेनी अंदर करनाराअेने आनंद आपवावाणुं छे तेज प्रमाणे धर्म पषु पोताना आधारःप साधु माटे आनंदनुं कारषु डोय छे. तथा उद्यान जेम प्रतिपाल्य-रक्षण करवाने योग्य छे तेज प्रमाणे जवनने सुंदर अनाववाणा धर्मने पषु प्रतिपाल्य-पालन करवाने योग्य छे. अथवा धूपथी संतप्त अनेला प्राणीयोने उद्यान जेम शीतलता आपे छे तेज प्रमाणे कर्मःपी आ तापथी संतप्त थयेला प्राणीअेने माटे शांतिने हेतु डोवाथी अभिलषित इजने देनार धर्मने अेक उद्यान इपथी अडिं अताववामां आवेल छे. आ उद्यानमां सम्यक्त्वं



गुप्तिरालवालः, समितिः पाली, क्षान्त्यादयो धर्मा एव वृक्षाः, विनयस्तेषां मूलम्, भावना सलिलम्, श्रुतमेव स्कन्धः धर्मशुक्लध्यानरूपाः शाखाः, ध्यानभेदाः प्रशाखाः, योगसंग्रहाः पत्राणि, ज्ञानादिगुणाः पुष्पाणि, स्वर्गापवर्गप्राप्तिः फलम्, तद्गतं सुखं रसः, तस्मिन् धर्मरामे चरेत्=विचरेत्, अरतिं निराकृत्य स्वाध्यायध्यानेषु परायणो भवेदित्यर्थः ॥

‘अरइं पिट्टओ किच्चा’ इत्यनेन मुनेरात्मबलसंपन्नत्वं सूचितम् ।

‘विरए’ इत्यनेन मुनेवैराग्यदशा प्रदर्शिता ।

में सम्यक्त्व तो भूमि है, गुप्तियां क्यारियां हैं, समितियां ही पालियां हैं, क्षान्त्यादिक धर्म वृक्ष है, एवं उन वृक्षों का मूल विनय है। भावनारूपी जल से वे सदा हरे-भरे रहते हैं। श्रुतज्ञान उनका विस्तृत स्कंध है। धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान उनकी शाखाएँ हैं, ध्यान के भेद उनकी प्रशाखाएँ हैं। बत्तीस योगसंग्रह उनके पत्र, ज्ञानादिकगुण उनके पुष्प, स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति उनके फल, स्वर्गमोक्षसंबंधी सुख ही उनका रस है। इतने मनोहर इस धर्मरूपी उद्यान में साधु का कर्तव्य है कि वह अरति को दूर कर विचरण करता रहे। स्वाध्याय एवं शुभध्यान में सदा आत्मपरिणति को लगाता रहे।

‘अरइं पिट्टओ किच्चा’ इस पद से यह सूचित किया गया है कि मुनि को आत्मबल से युक्त होना चाहिये। “विरए” इस पद से यह ज्ञात होता है, कि मुनि में इस प्रकार के बल की जागृति बिना वैराग्य दशा के नहीं हो सकती है, अतः वैराग्यदशा दृढ बनानी चाहिये।

तो भूमि छे. गुप्तियो क्यारा छे, समितियो पाणा छे, क्षान्त्यादिक धर्मवृक्ष छे, अने अे वृक्षोनुं मूल विनय छे, भावनाइप जणथी ते सदाय डर्याबर्या रहे छे. श्रुतज्ञान अेनो विशाल स्कंध छे, धर्मध्यान तेमज्ज शुक्लध्यान अेनी शाखाअो छे, ध्याननो लेह अेनी प्रशाखाअो छे, उर योग संग्रह तेना पान, ज्ञानादिक गुण तेनां पुष्प, स्वर्ग अने मोक्षनी प्राप्ति अेनां इण स्वर्ग मोक्ष संबंधि सुख ते अेनो रस छे, आवा मनोहर धर्मरूपी उद्यानमां साधुनुं अे कर्तव्य छे के तेअो अरतिने दूर करी विचरण करता रहे. स्वाध्याय अने शुभ ध्यानमां पोताना आत्मापरिणती ने लगावता रहे.

अरइं पिट्टओ किच्चा—आ पदथी अे सूचित करवामां आवे छे के, मुनिये आत्मजणथी युक्त रहेहुं जेधअे “विरए” आ पदथी मुनिमां जणनी जागृती बिना वैराग्यदशा आवी शकती नथी. आथी वैराग्यदशा दृढ बनाववी जेध अे.

- ‘आयरक्खिए’ इत्यनेन मुनेरास्रवनिरोधः प्रदर्शितः ।  
 ‘निरारंभे’ इत्यनेन मुनेररतिपरीषहविजययोग्यता सूचिता ।  
 ‘उवसंते’ इत्यनेन कषायनिग्रहित्वं सूचितम् ।  
 ‘मुणी’ इत्यनेन प्रवचनरहस्यमननशीलत्वं प्रतिबोधितम् ।  
 ‘धम्मारामे’ इत्यनेन संयमस्य रमणस्थानत्वं सूचितम् ।  
 ‘चरे’ इत्यनेन मुनेः संयमविषये प्रमादवर्जितत्वं प्रवेदितम् ।

“आयरक्खिए” इससे यह सूचित किया है कि मुनि को आस्रव का निरोध करते रहना चाहिये। “निरारंभे” पद से यह ज्ञात होता है कि अरतिपरीषह को जीतने की योग्यता विना मुनिअवस्था आती नहीं है, क्यों कि उसी अवस्था में निरारंभता रहती है। “उवसंते” पद से यह सूचित होता है कि विना कषाय के निग्रह हुए आत्मा में मुनिव्रत पालने की योग्यता नहीं आती है, अतः कषाय का निग्रह अवश्य करना चाहिये। ‘मुणी’ पद से कषाय का निग्रह करने वाला तभी हो सकता है कि जब वह प्रवचन के रहस्य का मनन करने वाला होता है। विना ऐसा किये आत्मा कषायों का निग्रह नहीं कर सकता है। “धम्मारामे” इससे यह सूचित किया गया है कि कषायों का निग्रह करने का वही आत्मा परिणामशाली होगा—जो संयम में रमण करने की भावना रखता होगा, इसके विना नहीं। इसी लिये संयम को रमण का स्थान बतलाया गया है। “चरे” इस क्रियापद से मुनि को संयम के विषय में प्रमादरहित होना चाहिये यह बतलाया गया है।

आयरक्खिए आ पदथी अ्मेम सूचित करवाभां आ०युं छे के, आस्रवनेा निरोध करीने रडेवुं जेधं अ्मे निरारंभे आ पदथी अरति परीषडने लतवानी योग्यता प्राप्त कर्या सिवाय मुनिअवस्था आवती नथी। कारणु के, आ अवस्थाभां निरारंभता रडे छे। उवसंते आ पदथी सूचित थाय छे के, कषायनेा निग्रह कर्या सिवाय आत्माभां मुनिव्रत पाणवानी योग्यता आवती नथी जेथी कषायनेा निग्रह अवश्य करवेा जेधं अ्मे। “मुणी” पदथी कषायनेा निग्रह करवावाणा त्पारे न् अनी शके छे के, ज्यारे प्रवचननुं रडस्य मनन करनार अनी रडे। अ्मेम कर्या सिवाय आत्मा कषायनेा निग्रह करी शकतेा नथी। धम्मारामे आ पदथी सूचित करवाभां आवेल छे के—कषायनेा निग्रह तेज आत्मा करवाने परिष्काम शाणी अने छे जे संयमभां रमणु करवानी भावना राभता डोय, तेना वगर नडीं। आथी संयमने रमणुनुं स्थान अतावेल छे। चरे आ पदथी मुनिअे संयमना विषयभां प्रमाद रडित अनवुं जेधं अ्मे अ्मेम अतावेल छे।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

अचलपुरे जितशत्रुनाम्नो राज्ञः पुत्रोऽपराजितनामा रोहाचार्यस्य समीपे दीक्षितोऽभवत् । एकदा रोहाचार्यः स्वशिष्यपरिवारैः सह ग्रामानुग्रामं विहरन् तगरानगरीं समवसृतः । तदानीं रोहाचार्यस्य स्वाध्यायशिष्य आर्यरोहनामाऽऽचार्य उज्जयिन्यामासीत्, तस्य ज्येष्ठः शिष्यः श्रुतकीर्तिनामको मुनिः शिष्यपरिवारैः सह ग्रामानुग्रामं विहरमाणस्तगरानगर्यां समागतः । रोहाचार्यः शिष्टाचारानन्तरं श्रुतकीर्तिमुनिं पृच्छति—उज्जयिन्यां साधवो निरुपसर्गं तिष्ठन्ति किम्, ? श्रुतकीर्तिमुनिः प्राह—भदन्त ! सर्वं तत्र कुशलम्, किन्तु राजपुत्रः पुरोहितपुत्रश्च

दृष्टान्त—अचलपुर में जितशत्रु राजा का अपराजित नामका पुत्र था । वह धर्मश्रवण कर रोहाचार्य के समीप दीक्षित हो गया । एक समय की बात है कि रोहाचार्य अपनी शिष्यमंडली सहित ग्रामानुग्राम विहार करते हुए तगरानगरी पधारे । उस समय इन रोहाचार्य के स्वाध्याय शिष्य आर्यरोह नामके आचार्य उज्जयिनी नगरी में विराजमान थे । उन आर्यरोह आचार्य के मुख्य शिष्य श्रुतकीर्ति भी अपने शिष्यपरिवार के साथ ग्रामानुग्राम विचरते हुए इसी तगरा नगरी में रोहाचार्य के पास पधारे । रोहाचार्य ने शिष्टाचार के अनन्तर श्रुतकीर्ति मुनि से पूछा—कहो उज्जयिनी नगरी में साधु मंडल तो सुखशाता में विराजमान हैं न ? सुनकर श्रुतकीर्ति मुनि ने उत्तर में कहा—भदन्त ! सब सुखशाता में विराजमान तो हैं, परन्तु वहाँ के राजा का एवं पुरोहित का पुत्र

दृष्टान्त—अचलपुरमां जितशत्रु राजने अपराजित नामनो पुत्र इतो. तेष्ु धर्मं श्रवण करीने रोहाचार्यं पासे दीक्षा लीधी. अेक समयनी वात छे, के रोहाचार्यं पोतानी शिष्य मंडली साथे विहार करता करता तगरानगरीमां पधायी. आ समये रोहाचार्यना स्वाध्याय शिष्य आर्यरोह नामना आचार्य उज्जयिनी नगरीमां विराजमान इता. आ आर्यरोह आचार्यना मुख्य शिष्य श्रुतकीर्तिं पष्ु पोताना शिष्य परिवार सहित अेक गाभथी भीजे गाभ विचरता आ तगरा नगरीमां रोहाचार्यनी पासे पधायी. रोहाचार्ये शिष्टाचार पष्ु श्रुतकीर्ति मुनिने पूछ्युं, कडे ! उज्जयिनी नगरीमां साधु मंडल तो सुख शातामां विराजमान छे ने ? आ सांखणी श्रुतकीर्ति मुनिजे जवाबमां कहुं, भदन्त ! देखे सुख शातामां विराजमानतो छे, परंतु त्यांनो राजनो अने पुरोहितनो पुत्र

मुनीनुद्वेजयतः । श्रुतकीर्तरेतद्वचनं श्रुत्वा रोहाचार्योऽपराजितमुनिं कथयति—तव सांसारिकभातृपुत्रोऽसौ राजकुमारः साधुजनमुद्वेजयति, तं प्रतिबोधयितुमुज्जयिन्यां त्वया गन्तव्यम् । आचार्यनिदेशेन शिष्यपरिवारेण सहापराजितमुनिरुज्जयिन्यां गतः । तत्रार्यरोहाचार्यं प्रणम्यापराजितमुनिर्भिक्षावेलायां राजकुलं प्रविष्टः । तत्रापराजितमुनिं राजपुत्र—पुरोहितपुत्रौ सोपहासं वन्दनं कुरुतः । मुनिवरे गते सति तस्मिन्नेव समये मुनेरुपहासाज्जठरे वेदना समुत्पन्ना, उच्चैः स्वरेण तौ रोदनं

मुनियों को दुःखित किया करते हैं । श्रुतीकर्त्तिके वचनों को सुनकर रोहाचार्य ने अपने शिष्य अपराजित मुनि से कहा कि उज्जयिनी नगरी का जो कुमार है वह तुम्हारे सांसारिक भाई का पुत्र है । इस समय वह साधुओं को उज्जयिनीनगरी में कष्ट पहुँचा रहा है अतः तुम उसको समझाने के लिये वहाँ जाओ । आचार्य के आदेश से अपराजित मुनि तगरानगरी से शिष्यमंडली सहित विहार कर उज्जयिनी नगरी में आर्यरोह आचार्य के पास पहुँचे, और उनको वंदन नमस्कार किये । बाद भिक्षा के समय आचार्य के निदेश से वे अपराजित मुनि राजमहल में प्रविष्ट हुए । वहाँ उन अपराजित मुनि के सांसारिक भाई का पुत्र राजकुमार एवं पुरोहित पुत्र ने उन मुनि को उपहासपूर्वक वंदना कि । अपराजित मुनि के वहाँ से चले जाने पर मुनि के उपहास से उन दोनों के पेट में बड़े जोर से पीड़ा होने लगी ।

मुनियेने दुःखित कर्था करे छे. श्रुतकीर्तिनुं वचन सांभणीने रोहाचार्ये पोताना शिष्य अपराजित मुनिने कहुं के, उज्जयिनी नगरीना जे राजकुमार छे ते तभारा सांसारिक भाधना पुत्र छे. आ समये तेओ उज्जयिनी नगरीमां साधुओने कष्ट पहुँचाडी रह्या छे जेथी तभे तेने समजववा भाटे त्यां जव. आचार्यना आदेशथी अपराजित मुनि तगरानगरीमांथी शिष्य मंडली साथे विहार करी उज्जयिनी नगरीमां आर्यरोहाचार्यनी पासे आवी पहुँचा अने तेमने वंदन नमस्कार कर्था आह भिक्षाना समये आचार्यना आदेशथी अपराजित मुनिये राजमहलमां प्रवेश कर्था. त्यां ते अपराजित मुनिना सांसारिक भाधना पुत्र राजकुमार तेमज पुरोहितपुत्रे ते मुनिने उपहासपूर्वक वंदना करी. अपराजित मुनिना त्यांथी जव आह मुनिने उपहास करवाथी आ अन्नेना पेटमां अकहम पीडा उत्पन्न थई. अन्ने जष्या पूज जेर जेरथी राडे पाडवा लाग्या,

कृतवन्तौ । राजा पुरोहितश्च पुत्रयोर्दुरवस्थां परिवारवचनाद् विज्ञाय आर्यरोहा-  
चार्यस्य समीपं गतवन्तौ । तत्रार्यरोहाचार्यं प्रणम्य तौ सरोदनं प्रार्थितवन्तौ,  
भदन्त ! प्रसीदतु भवान्, अस्मद्बालकौ रक्षणीयौ, इत्यादि । आर्यरोहाचार्य आह-  
राजन् ! अस्मिन् विषये न किञ्चिज्जानामि, इमं प्राधुणकं महामुनिं प्रसादय ।  
ततस्तद्वचनाद्राजा पुरोहितेन सहापराजितमुनेः पार्श्वं गत्वा तं प्रणम्य ब्रवीति-  
हे भदन्त ! स्वभ्रातृपुत्रं जीवितं कुरु, मुनिः प्राह—साधुपीडकस्य पुत्रस्यापि  
शिक्षां दातुं न शक्नोषि?, नीतिमार्गानुसारिणा राज्ञाऽन्यस्यापि कस्यचिदपराधे  
कृते तु पुत्रो निग्रहणीयः किं पुनर्यः साधुबाधकः ? नृपेणोक्तम्—भदन्त ! ममापराध-

दोनों जने खूब जोर २ से चिल्लाने लगे । राजा एवं पुरोहित दोनों ही  
परिवार जनों के कहने से अपने २ पुत्रों की दुरवस्था जानकर साथ २  
आर्यरोहाचार्य के पास आये । आचार्य महाराज को वंदन कर वे दोनों  
के दोनों उनके समक्ष रोते २ प्रार्थना करने लगे, कि भदन्त ! आप हमारे  
ऊपर प्रसन्न होइये—कृपा कीजिये—हमारे बालकों की रक्षा कीजिये इत्यादि।  
आर्यरोहाचार्य ने कहा कि राजन् ! मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता हूँ ।  
यह जो महेमानरूप में महामुनि आये हुए हैं उनके पास जाओ और उनसे  
कहो । राजा आर्यरोह के वचन से पुरोहित को साथ लेकर अपराजित  
मुनि के पास गया और उनको वंदन कर कहने लगा कि—हे भदन्त !  
अपने भाई के पुत्र को जीवित करो । मुनि ने कहा कि—हे राजन् राजनीति  
इस प्रकार की है कि जब अपना पुत्र साधारण जनता का भी अपराध करे  
तो उसके लिये शिक्षा है तो फिर जो मुनिजनों को पीड़ा पहुंचावे

राज्य अने पुरोहित अन्ने पोताना परिवार जनाना कडेवाथी पोताना पुत्रोनी  
दुःखद अवस्था लक्ष्मीने आर्यरोहाचार्यनी पासे आव्या. आचार्य महाराजने  
वंदना करीने अन्ने तेमनी समक्ष रीतां रीतां प्रार्थना करवा लाग्या के, हे  
भदन्त ! अमारा ऊपर प्रसन्न थाओ, कृपा करे, अमारां आणकेनी रक्षा करे,  
विगेरे. आर्यरोहाचार्ये कहुं, हे राजन् ! आ विषयमां हुं कंठलक्षुतो नथी. मडेमा-  
नइपमां महामुनि पधायीं छे तेमनी पासे लओ अने तेमने कडे. आर्यरोहनां  
वचन सांलणी राज पुरोहितने साथे लछने अपराजित मुनिनी पासे गया. अने  
तेमने वंदना करीने कडेवा लाग्या के, हे भदन्त ! तमारा लछनी पुत्रने लवतदान  
आपो. मुनिओ कहुं के, हे राजन् ! राजनीति ओवा प्रकारनी छे के, न्यारे आपने  
पुत्र साधारण जनतानो पणु अपराध करे तो तेने भाटे शिक्षा छे तो मुनिराजने

क्षमस्व, बालकौ महाकष्टं प्राप्तौ, अनुकम्पस्व भगवन् । स्वस्थावस्थासम्पन्नौ तौ मुनिदेशनया प्रव्रज्यां स्वीकृतवन्तौ । तत्र राजपुत्रः शुद्धभावेन चारित्रपालनं कृतवान्, पुरोहितपुत्रस्तु जातिमदं कृत्वा पूर्वपीडास्मरणेन गुरुं प्रति सामर्षी जातः । द्वावपि चारित्रं पालयन्तौ मृत्वाऽन्ते देवलोकं गतौ ।

इतश्च कौशाम्बीनगर्यां तापसनामकः कोऽपि धनिक आसीत् । स स्वगृहे मृत्वा लोभावशेन सूकरो जातः, स स्वभवनादिकं दृष्ट्वा जातिस्मरणं प्राप्तवान् ।

उसके लिए राजा को चाहिये कि जरूर ध्यान रखे । अपराजित मुनि की बात सुनकर राजाने समझकर कहा कि महाराज ! आजपीछे ऐसा नहीं होगा, आप मेरे इस अपराध को क्षमा करे । तथा राजकुमार और पुरोहित पुत्र ने भी अपराजित मुनि से क्षमा मांगी । फिर उपदेश सुमकर वे दोनों प्रव्रजित हो गये । प्रव्रज्या लेने पर राजपुत्र ने तो शुद्ध भाव से चारित्र का पालन किया परन्तु जो पुरोहित का पुत्र था, वह जाति मद से संयम का आराधन पूरा नहीं करता था और अपने पेट की पीड़ा को याद करता हुआ अपने गुरु अपराजित मुनि पर रुष्ट भाव रखता था । अन्त में ये दोनों ही चारित्र की पालना करते हुए काल धर्म को पाकर देव लोक में देव हुए ।

इधर-कौशाम्बी नामकी एक नगरी थी । उसमें तापस नामका एक हिंसक धनिक व्यक्ति रहता था । वह लोभ के वश होकर मरा तो अपने ही घर पर सूअर की योनि में उत्पन्न हुआ । अपने पूर्व के भवना-

पिडा पडोयाडनाराओ भाटे राओओ ऋर ध्यान राओवुं लेधओ. अपराओत मुनिनी वात सांलणीने राओओ समओ ऋधने कहुं के, मडाराओ ! डवेथी ओवुं नडीं अने. आप मारा आ अपराधने क्षमा करो. राओकुमार अने पुरोहितना पुत्रे पओ अपराओत मुनिनी क्षमा भागी. त्पार आड उपदेश सांलणीने ते अन्ने प्रव्रओत अन्या. प्रव्रज्या लीधा पछी राओपुत्रे शुद्ध भावथी चारित्रनुं पालन कथुं. परंतु ने पुरोहितने पुत्र डते ते नतीना मडना कारओ संयमनुं आराधन पूरुं रीते करतो न डते अने पोताना चेटनी पीडाने याड करतां करतां अपराओत मुनि उपर ओधभाव राओतो डते. अंतमां ओ अन्ने चारित्रनुं पालन करतां करतां काणधर्भने पाभीने देवडोडमां देव थया.

आ तरङ्ग कौशांभी नामनी ओक नगरी डती. ओमां तापस नामने ओक हिंसक धनवान भाओस रहेतो डते. ते डोलवशे करीने पोताना ऋधरमां सूवर (बूंड) इपे जन्मथे. पोताना पूर्वना मडान आडि लेधने



एकदा तत्पूर्वभवपुत्रास्तं तस्यैव श्राद्धदिने हतवन्तः, ततः स्वगृह एवासौ सर्पों जातः, तस्मिन्नपि भवे तस्य जातिस्मरणं संजातम् । पुनस्त एव पूर्वभवपुत्रास्तं सर्पं गृहान्तर्भ्रमन्तं दृष्ट्वा जघ्नुः । तदनन्तरमसौ स्वपुत्रस्य पुत्रोऽभवत्, पित्रा तस्य 'अशोकदत्त' इति नाम कृतम् । स तत्रापि जन्मनि जातिस्मरणं प्राप्य मूकत्वमङ्गी-चकार । पूर्वभवीया पुत्रवधूरिदानीं माता जाता, कथमेनां मातेति ब्रवीमि । पुत्रोऽपि पिताभवत् कथमेनं 'तातः' इति संबोधयामि, इत्येवं मनसि विचार्य स मूकोऽभवत् । मातापितृभ्यां तन्मूकत्वापनयनार्थं बहवः प्रयत्नाः कृतास्तथापि तस्य मूकत्वं नाप-गतम्, अतो लोकास्तं मूकनाम्नाऽऽह्वयन्ति ।

दिकको देखकर उस सूअर के बच्चे कों जातिस्मरण ज्ञान हो गया । एक दिन की बात है कि पुत्रोने अपने बाप के श्राद्ध के निमित्त उस सूअर को मार डाला । यह मर कर अपने ही घर में सर्प हुआ । इस भव में भी इसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया । पुत्रों ने अपने घर में इधर उधर घूमते हुए सर्प को जब देखा तो उसको मार डाला । मर कर यह तृतीय भव में अपने पुत्र का पुत्र हुआ । पिताने इसका नाम अशोकदत्त रक्खा । इस अवस्था में भी इसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया, अतः इसने मूकपना अंगीकार कर लिया । जो पूर्वभव में मेरी पुत्रवधू थी वह इस भव में माता हो गई है अतः कैसे तो इसे माता कह कर पुकारूँ तथा जो पुत्र था वह भी अब मेरा बाप बन गया है इसलिये अब इसे पिता कैसे कहूँ, ऐसा मन में विचार कर उसने अपना

आ सूवरना अन्ध्यामां जाति स्मरणं ज्ञानं थयुं. अकं द्विवसनी वात छे. पुत्रोअे पोताना आपना श्राद्ध निमित्ते आ सूवरने भारी नाअ्युं. त्यांथी भरीने इरीथी पोताना अेअ घरमां सर्पं थयो. आ लवमां पणु तेने जाति स्मरणं ज्ञानं थयुं. पुत्रोअे पोताना घरमां आभ तेम धुमता सर्पाने अ्यादे अेथो त्यादे तेने भारी नाअ्यो. भरीने त्रीअलवमां पोताना पुत्रना पुत्र (पौत्र) तरीके अन्भयो. पिताअे तेनुं नाम अशोकदत्त राअ्युं. आ अवस्थामां पणु तेने जातिस्मरणं ज्ञानं थयुं. आथी तेषु भौनप्रत धारणु करी लीधुं. पडेला लवमां अे भारी पुत्रवधू डती ते आ लवमां भारी माता थर्ध छे तो डेवी रीते हुं माता कडीने ओलावुं. अे भारी पुत्र डतो ते अत्यादे भारी आप थर्ध गथेल छे तेथी डवे तेने पिता तरीके केम संओधन कइं ? अेम मनमां विचार

एकदा चतुर्ज्ञानधराः स्थविराः स्वज्ञानोपयोगेन मूकं विज्ञाय तं प्रति-  
बोधयितुं तत्र शिष्यपरिवारैः सह समवसृताः, तैश्च मूकगृहे द्वौ श्रमणौ प्रेषितौ  
तत्रैकेन मूकस्य पुरतः स्थविरशिक्षिता गाथा पठिता ।

“ तावस ! किमिणा ? मूअव्वयेण पडिवज्ज जाणिउं धम्मं ।  
मरिऊण सूअरोरग, जाओ पुत्तस्स पुत्तोत्ति ॥ १ ॥ ”

मूकभाव ( गुंगापन ) रखना ही अच्छा समझा । माता पिता ने अपने  
बच्चे की जब ऐसी स्थिति देखी तो उसकी मूकता दूर करने के लिये  
उन्होंने अनेक प्रयत्न किये, परन्तु उसकी मूकता दूर नहीं हुई, इसलिये  
लोगों ने उसका नाम “ मूक ” रख दिया, और इसी नाम से उसे  
बुलाने लगे ।

एक समय कि बात है कि चार ज्ञान के धारी स्थविर मुनि अपने  
ज्ञानोपयोगसे उस मूक की परिस्थितिको जानकर उसे प्रतिबोधित करनेके  
लिये वहाँ शिष्यमंडलीसहित आये । उन्होंने उस मूकके घर पर दो  
मुनियों को भेजा । उनमेंसे एक मुनिने उस मूक के आगे स्थविरशिक्षा  
से युक्त एक गाथा पढ़ी । वह गाथा इस प्रकार है—

तावस ! किमिणा ? मूअव्वयेण पडिवज्ज जाणिउं धम्मं ।  
मरिऊण सूअरोरग, जाओ पुत्तस्स पुत्तोत्ति ॥ १ ॥

करीने ते आणके भूंगापणुं राअवानुं येअय भान्धुं. माता पिताअे न्यारे आणकनी  
आ स्थिति ञेअं त्यारे तेनुं भूंगापणुं हर करवा भाटे अनेक प्रयत्नो कया परंतु  
तेनुं भूंगापणुं हर न थयुं. आथी दोआअे तेनुं नाम “भूंगो” राअयुं. अने  
अेअ नाअथी तेने आलाववा लाग्या.

अेअ वअत आर ज्ञानना धारी स्थविरे पोताना ज्ञानना उपयोगथी  
आ भूंगानी परिस्थिति ञाणीने तेने प्रतिआधित करवा भाटे शिष्य  
भंडणी साथे त्यां पधार्या. तेअेअे आ भूंगाना घेर अे मुनिअेने भोकथ्या.  
आमांथी अेअ मुनिअे आ भूंगानी आगण स्थविरनी शीअवेदी अेअ गाथा गाअ.  
ते गाथा आ प्रकारनी अे.

तावस ? किमिणा ? मूअव्वयेण, पडिवज्ज जाणिउं धम्मं ।  
मरिऊण सूअरोरग, जाओ पुत्तस्स पुत्तोत्ति ॥ १ ॥

छाया—तापस ! किमनेन मूकव्रतेन प्रतिपद्यस्व ज्ञात्वा धर्मम् ।  
मृत्वा सूकर उरगो जातः पुत्रस्य पुत्र इति ॥ १ ॥ ”

मूकस्तां गाथां श्रुत्वाऽऽश्चर्यं गतस्तौ प्रणम्य पृच्छति — भवद्भिरेतत् कथं ज्ञातम् ? तौ ब्रूतः—इहोद्यानेऽस्मद्गुरवः समवसृतास्ते खलु जानन्ति । ततोऽसौ मूकस्ताभ्यां श्रमणाभ्यां सह गत्वा नगरोद्याने स्थविराणां वन्दनं कृत्वा तद्देशनां श्रुत्वा श्रावको भूत्वा मूकत्वं परित्यक्तवान् ।

इतश्च कृतजातिमदः पुरोहितपुत्रजीवदेवः कृताञ्जलिः सन् महाविदेहे तीर्थकर-समीपे पृच्छति—भगवन् ! किमहं सुलभबोधिस्तदितरो वा ? भगवता प्रोक्तम्—त्वं दुर्लभबोधिकोऽसि । देवः पुनरपृच्छत्—इतश्च्युतः सन् कुत्राहमुत्पन्नो भविष्यामि ?

इस गाथा को सुनकर मूक को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ । उसने उन दोनों को नमस्कार कर पूछा—आपने हमारी सूअर की पर्याय से लेकर यहां तक की समस्त परिस्थिति कैसे जानली ? उन्होंने कहा—कि इस नगर के उद्यान में हमारे गुरु महाराज पधारें हुए हैं वे तुम्हारी इस समस्त स्थितिको जानते हैं । मूकने जब यह सुना तो वह उन दोनों मुनियों के साथ उद्यान में आया । उसने सब मुनियों को नमस्कार एवं वंदन किया । पश्चात् उनसे धर्मका उपदेश सुनकर श्रावक हो गया और मूकता का परित्याग कर दिया ।

जातिमद करने वाला जो पुरोहितपुत्र का जीव था कि जो मरकर देव की पर्याय से उत्पन्न हुआ था उसने हाथ जोड़ कर महा-विदेह क्षेत्र में तीर्थकर श्री सीमंधर स्वामी के पास ऐसा प्रश्न किया

आ गाथा सांभजीने ते भूंगाने लारे आश्चर्यं थयुं. तेणे आ अन्ने स्थविशेने नमस्कार करीने पूछयुं, “तमेणे भारी सूवरनी स्थितिथी भांडीने आण सुधीनी समस्त परिस्थिति केम ळणी ?” तेणेणे कळुं के, “आ नगरना अगीच्यामां अमारा गुरु महाराज पधार्या छे अने तेणे तमारी सधणी थीना ळणे छे.” भूंगाणे न्यारे आ ळण्युं त्यारे ते अन्ने मुनिणेनी साथे अगीच्यामां आणे, अने तेणे अघा मुनिणेने नमस्कार अने वंदना करी. त्यार पछी तेमनी पासेथी धर्मने उपदेश सांभजीने ते श्रावक अनी गये अने भूंगापणाने छोडी दीधुं.

जातिमद करवावाणा पुरोहित पुत्रने एव जे मरीने देवनी पर्यायमां उत्पन्न थये हते तेणे हाथ जेडीने महाविदेह क्षेत्रमां तीर्थं कर श्रीमंधर स्वामी नी समक्ष येवे प्रश्न करी के, “हे भगवन्त ! हुं सुलभयोधी छुं के दुर्लभ-योधी छुं ?” भगवाने जवाअमां कळुं के, तमे दुर्लभयोधी छे. देवे करी प्रश्न

भगवता कथितम्—कौशाम्बीनगर्यां मूकभ्राता भविष्यसि । धर्मप्राप्तिश्च मूकादेव तव भविष्यति । इत्येवं भगवद्बचनं श्रुत्वाऽसौ देवस्तं प्रणम्य कौशाम्बीनगर्यां मूकोपान्तिकमागत्य तस्मै बहुद्रव्यं दत्त्वा प्रोक्तवान्—स्वर्गात् प्रच्युतस्य मम जन्म त्वन्मातुर्गर्भे भविष्यति, तदा तस्या अकालेऽप्याम्रदोहदो भविष्यति । तदर्थं सर्वतु फलवानाम्रवृक्षः कौशाम्ब्याः समीप एव पर्वतस्य निर्जनप्रदेशे मया रोपितः । यदा सा तद्दोहदाकुलाऽऽम्रं याचते तदा तस्याः पुरस्त्वया वाच्यम् । यदि जनिष्यमाणं बालकं मम ददासि, तदाऽऽम्रफलमानीय तुभ्यं ददामि ।

किं हे भगवान् ! मैं सुलभबोधि हूँ कि दुर्लभबोधि हूँ ? भगवान् ने इसके उत्तर में कहा कि तुम दुर्लभबोधि हो । देव ने पुनः प्रश्न किया कि मैं यहां से च्यवकर कहां उत्पन्न होऊँगा ? भगवान् ने कहा कि कौशाम्बी नगर में मूक के भाई होंगे । वहां तुम्हें धर्म की प्राप्ति मूक से ही होगी । इस प्रकार भगवान् की वाणी सुनकर वह देव उन्हें नमन कर के कौशाम्बी नगरी में मूक के पास आया और उसे बहुत सा द्रव्य देकर कहने लगा कि मैं स्वर्ग से च्यवकर तुम्हारी माता की कुक्षि में जन्म धारण करूँगा । उस समय उसे अकाल में आम खाने का दोहला उत्पन्न होगा । उस दोहले की पूर्ति के लिये सर्वक्रतुओं में फल देने-वाला आम का वृक्ष मैंने पहिले से ही कौशाम्बी नगरी के समीप के पर्वत के निर्जन प्रदेश में आरोपित कर दिया है । जिस समय वह दोहद से आकुलित होकर आम की याचना करे तो तुम उससे ऐसा कहना कि जो बालक उत्पन्न होगा उसे यदि तुम मुझे देना अंगीकार करो तो मैं तुम्हें लाकर आम देता हूँ ।

कुर्यो, हु अडिंथी व्यवीने कयां उत्पन्न थर्धश ? लगवाने कहुं के, कौशांभी नगरीमां भूंगाने। लार्ध थर्धश. त्यां तमने धर्मनी प्राप्ति भूंगार्थी थशे. आ प्रकारनी लगवाननी वाष्ठी सांलणीने ते देव नमस्कार करीने कौशांभी नगरीमां ते भूंगानी पासे आव्या अने तेने पूष्य द्रव्य दर्धने कडेवा लाग्या के हुं स्वर्गथी व्यवीने तमारी मातानी कुंजे जन्म धारण करीश. अे वपते तेने अकाणे केरी आवाने। लाव (दोहद) उत्पन्न थशे. आ दोहदनी सङ्गता भाटे सर्व इतुओमां इण हेनार आंभाना वृक्षने पडेलेथी ज कौशांभी नगरीनी पासे आवेला पर्वतना निर्जन प्रदेशमां मे वावी हीधेल छे. ज्यारे ते दोहदथी व्याकुण थर्धने केरीनी भागणी करे ल्यारे तारे तेने अे प्रमाणे कडेपुं के, जे आणक जन्मे तेने मने सांपवानुं स्वीकारे तो हुं तमने केरी लावी आपुं.

एवमुक्त्वा तव माता यदि गर्भस्थपुत्रदानं स्वीकुर्यात् तर्हि तस्यै त्वया महर्शि-  
ताऽऽन्नफलं दातव्यम् । जातस्य मम यथा जैनधर्मप्राप्तिर्भवेत् तथा प्रयत्नस्त्वया  
कर्तव्यः । एवमुक्त्वा स पुरोहितपुत्रजीवदेवो गतः ।

अन्यदा कदाचिदसौ देवो देवलोकाच्च्युतस्तस्या गर्भे समुत्पन्नः, तदा तस्या  
आम्रदोहदः समुत्पन्नः । मूकेन पूर्वोक्तव्यवस्थां कारयित्वाऽऽम्रदोहदः पूरितः ।  
पुत्रो जातः । तस्यार्हद्दत्त इति नाम मातापितृभ्यां कृतम् । तदनन्तरमसौ मूक  
स्तं बालसोदरं लालयन् साधूनां समीपं तद्वन्दनार्थं नयति, परन्त्वसौ दुर्लभबोधि-

तुम्हारी माता जब तुम्हारे इस कथन को मंजूर कर ले अर्थात्-  
गर्भस्थ पुत्र का तुम्हें देना स्वीकार कर ले-तो तुम उसके लिये मेरे  
द्वारा बताये हुए आम के वृक्ष से आम लाकर दे देना । तथा तुम इस  
प्रकार का प्रयत्न भी करते रहना कि जिस से मुझे जैनधर्म की प्राप्ति हो ।  
इस प्रकार कह कर वह पुरोहित के पुत्र का जीव देव तिरोहित हो गया ।

किसी समय अपनी आयु के समाप्त होने पर यह स्वर्गलोक से  
च्यवकर मूक की माता के गर्भ में अवतरित हो गया । उस की माता  
को आम खाने का दोहला उत्पन्न हुआ । मूक ने पूर्वोक्त व्यवस्था करवा  
कर उस के आम के दोहले की पूर्ति की । पुत्र का जन्म हुआ । उसका  
नाम अर्हद्दत्त रक्खा गया । अर्हद्दत्त को जो कि अपना बालसोदर था  
मूक ने बड़े चाव से लाड़ प्यार से रखा । कभी २ यह उसे साधुओं के  
समीप भी वंदना कराने के लिये ले जाता था, परन्तु यह ता दुर्लभ-

तमारी माता न्यारे तमारी आ भागणीने मंजूर करे अर्थात्  
गर्भमां रडेला पुत्रने तमने सोंपी देवानो स्वीकार करे त्यारे तमारे मे तमने  
जतावेला आंजाना वृक्ष उपरथी केरी लावीने तेने आपवी. तथा तमारे जेवा  
प्रकारना प्रयत्न करता रडेपुं के जेनाथी मने जैनधर्मनी प्राप्ति थाय.  
आ प्रमाणे कहीने ते पुरोहित पुत्रने जव-देव अलोप थर्त गयो. केटलाक  
समय आद पोताना आयुष्यनी समाप्ति थवाथी ते देव स्वर्गलोकाथी ब्यवीने  
भूंगानी माताना गर्भमां उत्पन्न थया. तेनी माताने केरी भावानुं मन थयुं. भूंगाजे  
पडेलेथी ज व्यवस्था करीने तेनी केरी भावानी ध्यिछाने पूरुं करी. समय जतां  
पुत्रने जन्म थयो. तेनुं अर्हद्दत्त नाम राणवामां आंयुं. अर्हद्दत्त के जे पोतानो  
नानो लार्थ थतो इतो तेने भूंगाजे पूज लाड प्यारथी राणयो. कोर्ध कोर्ध वार  
ते तेने साधुजोनी पासे वंदना करवा माटे लर्ध जतो इतो. परंतु आ तो

त्वेन साधून् दृष्ट्वा रोदिति । एवमाबालं प्रतिबोधितोऽप्यसौ न बोधिं लभते । ततस्तद्भ्राता मूकः प्रव्रजितो भूत्वा संयमं परिपाल्य देवलोकं गतः ।

अथ तेन मूकजीवदेवेनासौ दुर्लभबोधिर्बालकः प्रतिबोधार्थं जलोदरव्याधियुक्तः कृतः, स्वयं च वैद्यरूपं कृत्वा तत्समीपमागत्याह—अहं सर्वरोगोपशमनं करोमि । जलोदरी वदति—मम जलोदरव्याधिं प्रशमय । वैद्येनोक्तम्—असाध्योऽयं तव रोगः, तथापि तत्प्रतीकारं करोमि, यदि ममौषधकोत्थलकं स्कन्धे समारोप्य मामनुगच्छसि । जलोदरिणोक्तम्—एवमस्तु । ततो वैद्येन स जलोदरी निर्व्याधिः कृतः ।

बोधि था, इसलिये साधुओं को देखते ही रोने लग जाता । इस प्रकार बाल्य अवस्था से प्रतिबोधित करने पर भी यह बोधि को प्राप्त नहीं कर सका । इसके बाद उसके बड़े भाई मूकने दीक्षा धारण कर ली और संयम का पालन कर अन्तमें वह देवलोक में जा कर उत्पन्न हो गया ।

अपने सहोदर को प्रतिबोधित करने के लिये मूक के जीव देव ने उसके शरीर में जलोदर की व्याधि उत्पन्न कर दी । यह उसने इस लिये की कि देखें यह दुर्लभबोधि कैसे है । तथा स्वयं वैद्य का रूप ले कर उसके पास आ कर कहने लगा कि मैं समस्त रोगों को दूर करने का इलाज करता हूँ । उस जलोदरी बालक ने कहा कि ठीक है आप मेरे इस रोग का इलाज करें । वैद्य ने प्रत्युत्तर में कहा कि यद्यपि तुम्हारा यह रोग असाध्य है तौ भी इस शर्त पर प्रयत्न करता हूँ कि यदि तुम मेरे इस कोथले को कि जिस में औषधियाँ भरी हैं अपने कंधे पर

हुल्ल भोधी हुतो अटवे साधुओने जेधने रोवा लागी जतो आ प्रभाणे आत्थावस्थाधी ज तेने प्रतिबोधित करवा छतां पणु ते बोधने प्राप्त करी शक्या नहीं. आ आह तेना भोटाभाधं भूंगाओ दीक्षा धारणु करीने, संयमतुं पालन करीने, अंतमां देव लोकमां उत्पन्न थयो. पोताना सहोदरने प्रतिबोधित करवा भाटे भूंगाना एव देवे तेना शरीरमां जलोदरनी व्याधि उत्पन्न करी. ते व्याधि अटवा भाटे उत्पन्न करी के, जेठं तो थरो के ते हुल्ल भोधी केवो छे? पछी पोते वैद्यतुं इप लधने तेनी पासो आवीने कडेवा लाग्या के, समस्त रोगोने निवारवानो धलाज भारी पासो छे. ते जलोदरवाणा भाणके कहुं के, आप मारा आ रोगनो धलाज करो. वैद्ये प्रत्युत्तरमां कहुं के जे के तमारो आ रोग असाध्य छे. तो पणु अवी शरत उपर प्रयत्न करूं के, तमे मारा आ कोथणाने जेमां औषधीओ लरी छे तेने तमारा कंधे उपर राखीने भारी पाछण



अथ तेन वैद्येनौषधकोत्थलकस्तस्मै वाहनार्थं समर्पितः । स चार्हद्दत्तः कोत्थलकमुत्थाप्य स्कन्धोपरि वहन् वैद्यपृष्ठतश्चलति । तथा स कोत्थलको देवमा- ययाऽस्तीवभारकारकः संजातः, तेनातिभारेण स श्रान्तोऽपि तमुत्सृज्य गन्तुं न शक्नोति, चिन्तयति च-अहं वचनबद्धोऽस्मि, कथमिमं भारं परित्यजामि, कोत्थलकं वहतो ममैतत्पृष्ठतो गमनेन पुनर्जलोदरव्याधिर्न स्यादतो वज्रसार तुल्यमिव भारं वहन् यदहं खञ्जो भवामि तन्मे योग्यं भवतीत्येवं विचिन्त्य स कोत्थलकं वहन् वैद्यमनुगच्छति ।

रख कर मेरे पीछे चलो तो । जलोदरी ने कहा इस में कौन सी बड़ी बात है । ' यह मेरा कोथला उठायेगा ' ऐसा जानकर वैद्य ने इलाज के द्वारा उसको व्याधिमुक्त कर दिया । वैद्यने अपना औषधि का कोथल उठा कर चलने के लिये दे दिया । अर्हद्दत्त उस कोथले को कन्धे पर रख कर वैद्य के पीछे चलने लगा । कोथला देव की माया से ले जाते ले जाते मार्ग में बहुत वजनदार बन गया । उससे वह बहुत थक गया । परन्तु फिर भी उसकी हिम्मत उसे छोड़कर आगे जाने की नहीं हुई । विचारने लगा कि मैं वचन बद्ध हो चुका हूँ अतः अब इस भार को कैसे छोड़सकता हूँ । तथा यदि कोथले को लाद कर इस वैद्य के पीछे जो न चलूँ तो फिर जलोदर हो जानेकी आशंका है, अतः जैसे भी बनें वज्र-समान भारी इस कोथले को लेकर ही चलने में श्रेय है, चाहे मेरे शिर के बाल भी क्यों न घिस जायँ । इस प्रकार विचार कर वह कोथले को सिर पर लिए हुए वैद्य के पीछे चलता रहा ।

पाछण आलो. जणोदर वाणाये कहुं के, तेमां कथं भोटी वात छे. 'आ भारो केथणो उठावशे' अणुं लोणी ने वैद्ये धलाज द्वारा तेने व्याधिमुक्त करी दीधो. वैद्ये पोतानी औषधीने. केथणो उठावीने आलवा भाटे तेने आये. अर्हद्दत्त ते केथणाने कांधे उपर राभीने वैद्यनी पाछण पाछण आलवा लाग्यो. केथणो देवनी मायाथी आलतां आलतां मार्गमां धल्लो वजनदार भनी गयो, आथी ते धल्लो ज थाकी गयो अने आगण आलवानी तेनामां छिंभत न रही छतां पणु ते विचारवा लाग्यो के हुं वचनथी अंधायेल छुं भाटे हुवे आ लारने हुं केवी रीते छोडी शकुं? अने जे केथणाने उपाडीने हुं आ वैद्यनी पाछण पाछण न आलुं तो इरी पाछो जणोदरने उपद्रव थर्ध जवा संभव छे. जेम अने तेम वज्र समान भारे आ केथणाने उपाडीने आलवामां ज श्रेय छे. भारा माथाना वाण घसाध जय तो पणु भारे केथणाने उपाडीने आलवुं जेधये. आ प्रकारने विचार करी माथा उपर केथणो लध ते वैद्यनी पाछण पाछण आलतो रह्यो.

एकदा स मायिको वैद्यस्तं मुनिसंनिधौ नीत्वा वदति यदि त्वं दीक्षां गृह्णासि, तर्हि त्वां मुञ्चामि । स भाराक्रान्तो वदति ग्रहीष्याम्येव दीक्षाम् । ततोऽसौ मायिक-वैद्यस्तस्मै दीक्षां प्रदाप्य स्वयं देवलोकं गतः । देवे स्वस्थानं गते स दुर्लभबोधि-त्वादरतिपरीषहेणाभिभूतः सन् संयमं त्यक्तुं समुद्यतः । ततो देवेनावधिना ज्ञात्वा पुनरपि तथैव जलोदरं कृत्वा वैद्यरूपेणागत्य पुनरसौ प्रतिबोधितः । पुनर्गते च देवे परीषहाभिभूतेन तेन दीक्षात्यागो मनसि धृतः । तदाऽसौ वैद्यरूपो देवस्त्वृतीय-वारं प्रतिबोध्य व्रते स्थिरीकरणार्थमर्हद्दत्तसमीप एव तिष्ठति ।

अब वह मायिक वैद्य उस जलोदरी को मुनि के पास ले गया और कहने लगा कि यदि तुम दीक्षा धारण करलो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँ । भार से हेरान होकर उसने विचार किया कि—‘अच्छा है दीक्षा लेने से इस वजन को उठाने के दुःख से तो बच जाऊँगा’ और बोला दीक्षा ही ले लूँगा । वैद्य उसको संयम दिला कर अपने स्थान देवलोक को चला गया । देव को अपने स्थान पर गया हुआ जानकर वह दीक्षा का परित्याग करने को उद्यत हुआ । देवने पुनः उसे जलोदर रोग से पीडित किया और वैद्य के रूप से आकर प्रतिबोधित किया । फिर भी वह अरतिपरीषह से उद्विग्न होकर संयम छोड़ने की इच्छा करने लगा । फिर भी देव आकर उसको प्रतिबोधित किया और “यह संयम में स्थिर बना रहे” इस ख्याल से वह देव स्वयं इसके पास रहने लगा ।

એ માયાધારી વૈદ્ય એ જળોદરવાળાને મુનિની પાસે લઈ ગયા અને કહેવા લાગ્યા કે જો તમે દીક્ષા ધારણ કરી લ્યો તો હું તમને છોડી દઉં. ભારથી હેરાન અનેલા તેણે વિચાર કર્યો કે,—‘ઠીક છે દીક્ષા લેવાથી આ વજનને ઉઠાવવાના દુઃખથી તો ખચી જઈશ’ આમ વિચારી તેણે કહ્યું કે ભલે ! હું દીક્ષા લઈશ તે પછી તેને દીક્ષા અપાવી વૈદ્ય પોતાના સ્થાને દેવલોકમાં ચાલ્યા ગયા. દેવને પોતાના સ્થાન ઉપર ગયેલા જાણીને તે દીક્ષાનો પરિત્યાગ કરવા તૈયાર થયો. દેવે ફરીથી તેને જળોદરના રોગથી પીડિત બનાવ્યો અને વૈદ્યના સ્વરૂપથી આવીને પ્રતિ-બોધિત કર્યો. ફરીથી તે અરતિપરીષદથી ઉદ્વેગ પામીને સંયમ છોડવાની ઇચ્છા કરવા લાગ્યો. ફરી પાછા દેવે આવીને તેને પ્રતિબોધિત કર્યો અને “આ સંયમમાં સ્થિર બની રહે” એવા ખ્યાલથી તે દેવ પોતે તેની પાસે રહેવા લાગ્યા.

एकदा स देवो मनुष्यवेषेण तृणभारं गृहीत्वा कस्मिंश्चित् प्रज्वलति ग्रामे प्रविशति, तदा संयमारतिं कुर्वन्नर्हद्दत्तमुनिः प्राह—ज्वलति ग्रामे तृणभारं नयन् कथं प्रविशसि? किं मूढोऽसि? देवेनोक्तम्—त्वं तु महामूढोऽसि, यतः सकलकल्याणकारणं संयमं विहाय क्रोधमानमायालोभवह्निप्रज्वलिते सकलानर्थकरे गृहवासे पुनः पुनर्वार्यमाणोऽपि प्रवेष्टुमिच्छसि?। स एतद्वचनं श्रुत्वाऽप्यरतिं सर्वथा न मुञ्चति ।

एक दिन की बात है कि वह देव मनुष्य का वेष धारण कर घास का गट्टा लेकर एक गांव में कि जिसमें आग लगी हुई थी जाने लगा । उस समय अरतिभाव को धारण करने वाले उस अर्हद्दत्त मुनि ने उस से कहा कि तुम कितने मूर्ख हो जो आग से जल रहे इस ग्राम में घास का भारा लेकर जा रहे हो । इस स्थिति में तो कोई मूर्ख भी इस गांव में घास का भारा लेकर जाने को तैयार नहीं हो सकता है, अतः तुम्हारे जैसे समझदार व्यक्ति को ऐसा काम करना इस समय सर्वथा अनुचित है । अर्हद्दत्त मुनि की इस बात को सुनकर देव ने कहा कि—परोपदेश में पांडित्य प्रदर्शन करने वाले दुनिया में अनेक मनुष्य हैं तुम भी उन्हीं में से एक हो । मैं तो समझता हूँ कि मेरी अपेक्षा अधिक मूर्ख तुम हो जो कल्याण के कारणभूत इस ग्रहण किये हुए संयम में अरतिभाव धारण करते हुए क्रोध, मान, माया एवं लोभ—रूपी अग्नि से प्रज्वलित एवं सकल अनर्थों के उत्पादक ऐसे गृहस्थाश्रम में जाने के लिये बार२ मना करने पर भी संयम छोड़ने की इच्छा करते हो ।

એક સમય તે દેવે મનુષ્યનો વેશ ધારણ કરીને ઘાસની ગાંસડી લઈ એક ગામમાં કે જ્યાં આગ લાગી હતી ત્યાં જવા લાગ્યા તે સમયે અરતી ભાવના ધારણ કરવાવાળા તે અર્હદત્ત મુનિએ તેમને કહ્યું, કે, તમે કેવા મૂર્ખ છો કે, આગથી બળી રહેલા ગામમાં ઘાસનો ભારો લઈને જાવ છો? આ સ્થિતિમાં તો કેઈ મૂર્ખ પણ તે ગામમાં ઘાસનો ભારો લઈને જવાની તૈયારી ન કરે. માટે તમારા જેવી સમજદાર વ્યક્તિએ એવું કામ કરવું આ સમયે સર્વથા અનુચિત છે. અર્હદત્ત મુનિની આ વાતને સાંભળીને દેવે કહ્યું કે, પારકાને ઉપદેશ આપવામાં પાંડિતાઈનું પ્રદર્શન કરવાવાળા દુનિયામાં અનેક મનુષ્યો છે. તેમાંના તમે એક છો. હું તો સમજું છું કે મારી અપેક્ષાએ તમે અધિક મૂર્ખ છો. જે કલ્યાણના કારણભૂત એવા લીધેલા સંયમમાં અરતી ભાવ ધારણ કરીને, ક્રોધ, માન, માયા, લોભ રૂપી અગ્નિથી પ્રજ્વલિત એવા સકળ અનર્થોના ઉત્પાદક એવા ગૃહસ્થાશ્રમમાં જવા માટે વારંવાર મના કરવા છતાં પણ સંયમ છોડવાની ઈચ્છા કરો છો. આ પ્રમાણે તે દેવના

अन्यदा कदाचित् तेन सह पुरः पुरश्चलन्नसौ देवः पन्थानं विहाय कण्ट-  
काकीर्णेनोत्पथेनाटवीं गच्छति । ततोऽसौ दुर्लभबोधिरर्हदत्तः साग्रहं वदति अध्वानं  
हित्वा कथमुत्पथेन गच्छसि ? । देवेनोक्तम्—त्वमपि विशुद्धं मोक्षमार्गं परित्यज्याऽऽधि-  
व्याधिरूपे कण्टकाकीर्णे संसारमार्गे कस्माद् व्रजसि ? एवमुक्तोऽप्यर्हदत्तो बोधिमल-  
ब्ध्वा वदति—कस्त्वम् । ततो देवः स्वपूर्वभवसम्बन्धिनं मूकरूपं दर्शयित्वा प्राह—  
हे भ्रातः ! शृणु, भवता पूर्वजन्मनि देवभवं प्राप्य मह्यं निगदितम्—यदा स्वर्गा-

इस प्रकार उस देव के वचन सुनकर अर्हदत्त मुनि अरतिपरीषह  
का सर्वथा नहीं त्याग सका । देवने और भी उपाय उसे समझाने  
के लिये किये जैसे—कोई एक दिन जब अर्हदत्त बाहर जा रहे थे तब  
देव भी इनके आगे २ चलने लगा और रास्ता छोड़कर कुरास्ते जाने  
लगा । वह मार्ग कण्टकाकीर्ण था एवं अटवी की ओर जानेवाला था ।  
उसकी इस प्रकार चाल देखकर अर्हदत्त मुनि ने कहा कि—तुम कैसे  
आदमी हो जो मार्ग का परित्याग कर कुमार्ग से जा रहे हो । तब देव  
ने भी अर्हदत्त से कहा कि तुम भी कैसे आदमी हो जो विशुद्ध मोक्षमार्ग  
का परित्याग कर आधिव्याधिरूप कंटकों से आकीर्ण संसारमार्ग में जाने  
को तैयार हो रहे हो । इस प्रकार जब देव ने कहा तो वह अर्हदत्त कहने  
लगा कि—सच तो कहो तुम कौन हो । देवने अर्हदत्त की इस प्रकार  
बात सुनकर अपना पूर्वभवसंबंधी मूक रूप दिखा कर कहा—हे मित्र !  
सुनो आपने पूर्वभव में देवभव प्राप्त कर मुझ से कहा था कि यदि मैं

वचन सांभलीने पणु अर्हदत्त मुनिअे अरतिपरीषहने। त्याग सर्वथा न  
कुर्यो. देवे भीण पणु उपाय तेने समभववा भाटे कुर्या. जेभ केअ अेक  
दिवस अर्हदत्त षडार जर्ध रह्या हुता त्यारे देव पणु तेनी आगण आगण  
आलवा लाग्या अने रस्ते छोडीने कुरस्ते जवा लाग्या. ते मार्ग कंटाथी  
भरैल हुतो. अने घोर जंगल तरङ्ग जतो हुतो. तेनी आ प्रकारनी आल  
नेधने अर्हदत्त मुनिअे कहुं तमे केवा भाणुस छे के मार्गने। त्याग करी  
कुमार्गे जर्ध रह्या छे. त्यारे देवे पणु अर्हदत्तने कहुं के, तमे पणु केवा  
आदमी छे के, विशुद्ध मोक्ष मार्गने। परित्याग करी आधि व्याधि रूप  
कंटाओथी भरैला संसारमार्गमां जवाने तैयार थर्ध रह्या छे. आ प्रकारे  
देवे कहुं अेटवे अर्हदत्त कहेवा लाग्या के, सायुं कहे। तमे केणु छे ? देवे  
अर्हदत्तनी आ वात सांभलीने पोताना पूर्वभव संबंधी भूंगानुं स्वरूप देखाडीने  
कहुं के, हे मित्र ! सांभलो. आपे पूर्वभवमां देव भव प्राप्त करी भने कहुं हुतुं के,

त्पच्युतः स्याम् , तदा तव सहोदरभ्राता भविष्यामि, ततस्त्वया सुरालयगते-  
नाऽप्यहं जैनधर्मं प्रतिबोधनीयः, इति त्वद्वचनं मया स्वीकृतम् , अतस्त्वां प्रतिबो-  
धयितुमहमत्रागतोऽस्मि, तस्माद् धर्मं स्वीकृत्य मुहुर्मुहुररतिं मा सेवस्व, इत्येवं  
मूकदेववचनं निश्चयार्हद्दत्तोऽब्रवीत्-पूर्वभवेऽहं देव आसमित्यत्र किं प्रमाणम् ? ततो  
मूकदेवस्तद्विश्वासार्थं देवभवे तेन रोपितमाश्रवृक्षं प्रदर्श्य सर्वं पूर्ववृत्तमवदत् । ततस्त-  
स्य जातिस्मरणमभूत् । तेनाऽस्य चारित्रदृढता जाता । अस्य पूर्वमरतिः, पश्चात्संय-  
मे रतिः समुत्पन्ना । एवमन्यैरपि मुनिभिररतिपरीषदस्तन्निराकरणेन सोढव्यः॥१५॥

देवभव से च्युत हुआ तो तुम्हारा सहोदर होऊंगा, इसलिये तुम देवलोग  
में देव होते हुए भी मुझे जैनधर्म का प्रतिबोध देना । तुम्हारे इस कथन  
को उस समय मैंने स्वीकार कर लिया था । इसलिये मेरी प्रतिज्ञा के  
अनुसार मैं तुम्हें प्रतिबोधित करने के लिये यहां आया हुआ हूं; अतः  
संयमको अंगीकार कर फिर उस में बार बार अरति का सेवन नहीं करना  
चाहिये । इस प्रकार मूक देव के वचन सुनकर अर्हद्दत्त ने कहा कि  
इस में क्या प्रमाण है कि मैं पूर्वभव में देव था । मूकदेव ने अर्हद्दत्तकी  
बात सुनकर उसके विश्वास के लिये देवभव में आरोपित आश्रवृक्ष को  
दिखलाकर समस्त पूर्व का वृत्तान्त कह दिया । इस सब को सुनकर  
उसे जातिस्मरण हो गया । इससे इसके चारित्र में दृढता आ गई ।  
इस का सारांश यही है कि देखो अर्हद्दत्त को पहिले चारित्र में अरति  
थी पश्चात् प्रतिबोधित होने पर उसे चारित्र में रति आ गई इस बात को

जे हुं देव भवथी च्युत थधश तो तभारे सडोदर भनीश. आ माटे  
देव डोडभां रडेवा छतां पणु तभे भने जैनधर्मने। प्रतिबोध आपता  
तभारा अे कथनने। मे' अे समये स्वीकार करी लीधो डतो जेथी भारी  
प्रतिज्ञा अनुसार हुं तभाने प्रतिबोधित करवा माटे अडि' आण्यो छुं.  
आथी संयमने। अंगिकार करी तेभा वारंवार अरतिनुं सेवन न करवुं  
जेध'अे. आ प्रकारे ते भूंगा देवनां वचन सांलणीने अड'दत्ते कछुं के,  
आभां कथुं प्रमाणु छे के, हुं पूर्वभवमां देव डतो. भूंगा देवे अड'दत्तनी  
वात सांलणीने तेना विश्वास माटे देव भवमां उगाडेवुं आश्रवृक्ष देवाडीने  
अगाडनुं सधणुं वृत्तांत कडी सांलणाव्युं. आ भधुं जेध' जणुंने तेने जति-  
स्मरणु थयुं. आने। सारांश अे छे के, अड'दत्तने पडेलां अरित्रमां अरति  
डती पधी प्रतिबोधित थवाथी तेना अरित्रमां रति आवी. आ वातने जणुंने



અરતિસદ્ભાવે સ્ત્રીષ્વમિલાષઃ સ્યાદતઃ સ્ત્રીપરીષહજયં પ્રાહ—

મૂલમ્—સંગો એસ મણુસ્સાણં, જાઓ લોગંમિ ઈત્થિઓ ।

જૈસ્સ ઈયા પરિણાર્યા, સુકંડં તૈસ્સ સામંપ્પં ॥૧૬॥

છાયા—સંગ એષ મનુષ્યાણાં, યાઃ લોકે સ્ત્રિયઃ ।

યસ્ય ઇતાઃ પરિજ્ઞાતાઃ, સુકૃતં તસ્ય શ્રામણ્યમ્ ॥ ૧૬ ॥

ટીકા—‘ સંગો ’ ઇત્યાદિ ।

લોકે=અસ્મિન્ સંસારે યાઃ સ્ત્રિયઃ સન્તિ, એષ મનુષ્યાણાં—પુરુષાણાં સંગઃ= સંગચ્છતે=વશીભવતિ જીવો યસ્માત્ સ સંગો=બન્ધનમ્—યથા મૃગાણાં બન્ધનં વાગુ- રાદિ, યથા વા મક્ષિકાણાં શ્લેષ્મસંગો બન્ધનં તથા પુરુષાણાં સ્ત્રિયો બન્ધનમિત્યર્થઃ। સ્ત્રિયો હિ હાવભાવાદિભિઃ પુરુષાણાં વિષયાસક્તિલક્ષણં રાગમુત્પાદયન્તિ, રાગો-

જાનકર સબ મુનિયોં કો ચાહિયે કિ વે આતે હુએ અરતિપરીષહ કો નિવારણ કર સંયમ મેં રતિ રખેં ॥ ૧૫ ॥

અરતિ કે સદ્ભાવ મેં મુનિ કો સ્ત્રીપરીષહ ઉત્પન્ન હોને કા સંભવ હૈ ઇસ લિયે અવ સૂત્રકાર આઠવેં સ્ત્રીપરીષહજય કો કહતે હૈ—

‘ સંગો એસ ’—ઇત્યાદિ

અન્વયાર્થ—( લોગંમિ—લોકેઃ ) ઇસ સંસાર મેં ( જાઓ ઇત્થિઓ—યાઃ સ્ત્રિયઃ ) જો સ્ત્રિયાં હૈં ( એસ મણુસ્સાણં સંગો—એષઃ મનુષ્યાણાં સંગઃ ) યહ મનુષ્યોં કા બન્ધન હૈ । જિસ પ્રકાર મૃગોં કા બંધન વાગુરા—જાલ—આદિ, મક્ષિકા કા બંધન શ્લેષ્મ આદિ હૈં ડસી પ્રકાર સ્ત્રિયાં મી પુરુષોં કા બંધનરૂપ હૈં, કયોં કિ યે સ્ત્રિયાં હાવ ભાવ આદિ સે પુરુષોં મેં વિષયા- સક્તિરૂપ રાગ ઉત્પન્ન કરતી હૈં । તદ્વિષયક રાગ કી ઉત્પત્તિ હોને પર

સઘણા મુનિઓએ જાણુવું જોઈએ કે, આવેલ અરતિપરીષહને નિવારી સંયમમાં રતિ રાખે. ॥ ૧૫ ॥

અરતિના સહભાવમાં મુનિને સ્ત્રી પરીષહ ઉત્પન્ન થવાનો સંભવ છે. તેથી સૂત્રકાર આઠમો સ્ત્રી પરીષહ ‘જાઓ’ કહે છે. સંગોએસ—ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—લોગંમિ—લોકે આ સંસારમાં જાઓ—ઇત્થિઓ—યાઃ સ્ત્રિયઃ જે સ્ત્રિઓ છે, એસ મણુસ્સાણં સંગો—એષઃ મનુષ્યાણાં સંગઃ તે મનુષ્યોનું બંધન છે. જેમ મૃગોનું બંધન જાળ આદિ માખીઓનું બંધન ગળકા આદિ છે, તે પ્રકાર સ્ત્રિઓ પણ પુરુષોને બંધનરૂપ છે કેમ કે, સ્ત્રિઓ હાવભાવ આદિથી પુરુષોમાં વિષયાસક્તિ રૂપ રાગ ઉત્પન્ન કરે છે, તે વિષયરાગ ઉત્પત્તિ થવાથી પુરુષ તેને વશીભૂત બની જાય છે.



त्यक्तौ च तद्वशीभूतानां पुरुषाणां नरकनिगोदादिदुर्गतिकसंसारपातः, तस्मात् स्त्रियः पुरुषाणां बन्धनमिति व्यपदेशः ।

अतः किं कर्तव्यमित्याकाङ्क्षायामाह—‘ जस्स ’ इत्यादि ।

यस्य—अत्र सम्बन्धसामान्ये षष्ठी, येन मुनिनेत्यर्थः, एताः स्त्रियः परिज्ञाताः परि=सर्वथा ज्ञाताः ज्ञ=परिज्ञयाऽस्मिन् भवे परभवे चानन्तदुःखकारणतया विज्ञाताः प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिवर्जिताः, तस्य मुनेः श्रामण्यं=चारित्र्यम्, अत्र श्रामण्येन सह परिपाल्यपरिपालकभावसम्बन्धे षष्ठी । सुकृतं=सुष्ठु आचरितं भवति, सफलं भवतीत्यर्थः ॥ १६ ॥

पुरुष उनके वशीभूत हो जाता है । उनके वश में हो जाने से उसका नरक निगोद आदि दुर्गतिरूप संसार में पतन अवश्यंभावी है । इस लिये ये स्त्रियां पुरुषों का बंधन है । इसलिये ( जस्स-यस्य ) जिस मुनि द्वारा ( एया परिणया-एताः परिज्ञाताः ) ये सर्वथा ज्ञ-परिज्ञा से इस भव में तथा परभव में अनंत दुःखों के कारणरूप जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से परिवर्जित कर दी जाती हैं ( तस्स सामण्यं सुकृतं-तस्य श्रामण्यं सुकृतम् ) उस मुनि का साधुपना सफल है ।

भावार्थ—जिस प्रकार मृगादि पशुओं को पकड़ कर रखने के लिये वागुरा ( जाल ) आदि बन्धन प्रसिद्ध हैं क्यों कि इन द्वारा परतन्त्र किये वे स्वतन्त्र विहार से रहित हो जाते हैं, और अनेक प्रकार की यातनाएँ सहन करते हैं इसी प्रकार पुरुषों का बंधन ये स्त्रियाँ हैं । इनके वश में पड़ा हुआ प्राणी परतन्त्र होकर अपनी स्वतन्त्रता-चारित्र्य

तेना वश थवाथी तेनुं नरक निगोद आदि दुर्गति इय संसारमां पतन अवश्यंभावि छे माटे स्त्रियो पुश्पोतुं अंधन छे, आ माटे जस्स-यस्स ने मुनिद्वारा एयापरिणया-एताः परिज्ञाताः ये सर्वथा ज्ञ-परिज्ञाथी आ लव तथा परलवमां अनंत दुःखोना कारण इय ज्ञाणीने प्रत्याख्यान परिज्ञाथी परिवर्जित करी देवामां आवे छे. तस्स सामण्यं सुकृतं-तस्य श्रामण्यं सुकृतम् एवा मुनिनुं साधुं पणुं सक्षण छे.

भावार्थ—ने प्रकार मृग आदि पशुओने पकडी राखवा माटे जाल आदि अंधन प्रसिद्ध छे केम के, तेना द्वारा परतन्त्र करीथी ते स्वतन्त्र विहारथी रहित अनी जय छे अने अनेक प्रकारनी यातनाओ सहन करे छे. आ रीते पुश्पोतुं अंधन स्त्रीओ छे तेना वशमां पडेवे प्राणी परतन्त्र अनीने

अतः किं कर्तव्यमित्याह—

मूलम्—एवमादाय मेधावी, पंकभूयाउ इतिथौ ।

नो ताहिं विणिहन्नेजा, चरेज्जत्तगवेसए ॥ १७ ॥

छाया—एवमादाय मेधावी, पङ्कभूताः स्त्रियः ।

नो ताभिर्विनिहन्यात्, चरेदात्मगवेषकः ॥ १७ ॥

में रमणता-भूल जाता है और इससे अनन्त नरक निगोदादि की वेदनाएँ सहन करता रहता है । यही कारण है कि जो स्वतन्त्र होने के अभिलाषी हैं वे इस बंधन से सदा दूर रहते हैं । यदि कदाचित् इस बंधन में पड़ने का अवसर आ भी जाय, अथवा जो इस बंधन से जकड़े जायें तो उनका कर्तव्य है कि वे अपनी ज्ञानशक्ति को जागृत कर इस बंधन से मुक्त होने का प्रयत्न करते रहें । बंधन तो कोई भी आत्मा के लिये श्रेयस्कर नहीं है । ऐसा ख्याल कर प्रत्येक मोक्षाभिलाषी को पुरुषार्थ जगाकर बंधन से परे होते रहना चाहिये । जिन साधुओं ने ऐसा विचार कर इस अनंत दुःखदायी बंधन का ज्ञ-परिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से परित्याग कर दिया है उनका यह प्रशंसनीय परित्यागपूर्वक संयमपालन वंदनीय है ॥ १६ ॥

और भी साधु का इस विषय में क्या कर्तव्य होना चाहिये यह इस गाथा द्वारा सूत्रकार प्रकट करते हैं—‘एवमादाय-’इत्यादि

पोतानी स्वतंत्रता, आरित्रमां रमणुता लुली जय छे अने तेनाथी अनंत नरक निगोदादिकनी वेदनाओ सहन करतो रहे छे, अेटवा भाटे जे स्वतंत्र थवानो अबिलाषी छे ते आ अंधनथी सदा दूर रहे. जे कदाचित् आ अंधनमां जकड़ाई पणु जय तो तेनुं कर्तव्य छे के, ते पोतानी ज्ञानशक्तिने जगृत करी आ अंधनथी मुक्त थवानो प्रयत्न करतो रहे. अंधन तो कौई पणु आत्मा भाटे श्रेयस्कर नथी. अेवो ख्याल करी प्रत्येक मोक्ष अबिलाषीओ पुरुषार्थ जगाडी अंधनथी मुक्त थता रहेवुं जेईअे. उन साधुओअे आवो विचार करी आ अनंत दुःखदायी अंधनने ज्ञ-परिज्ञाथी ज्ञानीने प्रत्याख्यान परिज्ञाथी तेनो परित्याग करी छे. तेमनुं आ प्रशंसनीय परित्याग पूर्वकनुं संयम पालन प्रशंसनीय छे, वंदनीय छे ॥१६॥

साधुनुं आ विषयमां भीलुं शुं कर्तव्य छे, ते आ गाथा द्वारा सूत्रकार प्रदर्शित करे छे. ‘एवमादाय’ इत्यादि.

टीका—‘ एवमादाय ’ इत्यादि ।

स्त्रियः पङ्कभूताः=कर्मतुल्या एव सन्ति, मोक्षमार्गे विचरतां विघ्नकारकत्वाद्, मालिन्यजनकत्वाच्च, अत्र तु-शब्दोऽवधारणार्थकः, एवम्-ईदृशं प्रवचन-रहस्यमर्थम्, आदाय=गृहीत्वा बुद्ध्या निश्चित्येत्यर्थः । मेधावी-चारित्रमर्यादावर्ती, ताभिः=स्त्रीभिः, नो=नैव विनिह्न्यात्, आत्मानं संयमरूपजीवितोपघातेन न नरकादिषु पातयेदित्यर्थः, किं तु आत्मगवेषकः-आत्मानमेव गवेषयतीत्यात्मगवेषकः, ‘आत्मा केनोपायेन संसारसागरतस्तारणीयः, इत्येवमात्मकल्याणचिन्तनपरः सन्, चरेत्=ब्रह्मचर्यधर्मारामे विहरेदित्यर्थः ।

अन्वयार्थ-(इत्थिओ पंकभूयाउ-स्त्रियः पंकभूताः) ये स्त्रियां कर्म तुल्य ही हैं, क्यों कि मोक्षमार्ग में विचरण करने वाली आत्माओं को ये सदा से विघ्नकारक होती हैं, तथा इनसे पुरुषों में रागरूप मलिनता उत्पन्न होती है ( एवमादाय मेधावी-एवमादाय मेधावी ) इस प्रकार प्रवचन के रहस्यभूत अर्थ का अपनी हिताहितविवेचक बुद्धि से निश्चय कर चारित्र की मर्यादा में रहने वाला मुनि ( ताहिं नो विणिह्नेज्जा-ताभिः नो विनिह्न्यात् ) स्त्रियों द्वारा अपने संयमरूप जीवन के विनाश से अपने आपको नरकादिक योनियों में नहीं गिरावे किन्तु ( अत्तगवेसए चरेज्ज-आत्मगवेषकः चरेत् ) “ आत्मा किस उपाय से इस संसार सागर से पार हो ” इस प्रकार आत्मकल्याण की चिन्तना में तत्पर होता हुआ वह ब्रह्मचर्यरूप आराम-उद्यान-में ही विचरण करता रहे।

अन्वयार्थ—इत्थिओ पंकभूयाउ-स्त्रियः पंकभूताः आ स्त्रियो कादव तुल्य न् छे, कारणु के मोक्ष मार्गमां विचरनारा आत्माओने ये सदा विघ्नकारक थाय छे. अने तेनाथी पुरुषेमां राग इय मलिनता उत्पन्न थाय छे. एवमादाय मेधावी-एवमादाय मेधावी आ प्रकारे प्रवचनना रहस्यभूत अर्थेना पोताना डिताडित विवेचक बुद्धिथी निश्चय करी चारित्रनी मर्यादांमां रडेवावाणा मुनि ताहिं नो विणिह्नेज्जा-ताभिः नो विनिह्न्यात् स्त्रियो द्वारा थती पोताना संयमइय जवनना विनाशथी पोते पोताने नकादिक योनिओमां न लई जय. परंतु अत्तगवेसए चरेज्ज-आत्म-गवेषकः चरेत् “ आत्मा क्या उपायथी आ संसार सागरने तरी जय ” आ प्रकारनी आत्मकल्याणनी चिंतनामां तत्पर रह्तीने ते ब्रह्मचर्यइय आराम उद्यानमां न् विचरणु करता रहे.

उ० ५०

अयं भावः—धर्ममर्यादानुवर्ती मुनिः—स्त्रीणामङ्गप्रत्यङ्गसंस्थानहसितविभ्रमा-  
घाश्चित्तविक्षेपकारिणीश्रेष्ठाः कदाचिदपि न चिन्तयेत्, नापि कामबुद्ध्या मोक्ष-  
मार्गकर्मकल्पामु तासु चक्षुरपि निक्षिपेत् किंत्वात्मानमेव पर्यालोचयेत्। एवं स्त्री  
परीषहजयः स्यादिति ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

द्वादशतीर्थकरवासुपूज्यशासने चम्पानगर्यां तद्वंशीयो रूपलावण्यसम्पन्नः,  
सुजातसर्वाङ्गसुन्दरः, शशिसौम्याकारः, इष्टः, इष्टरूपः, कान्तः, कान्तरूपः, प्रियः,

इस का भाव यह है—धर्म मर्यादा अनुवर्तन करने वाला मुनि चित्त  
को विक्षिप्त करने वाली स्त्रियों के अंग, प्रत्यंग की आकृति का, तथा  
उनकी हांसी आदि क्रियाओं का एवं हाव विभाव आदि विलासों का  
कभी भी विचार तक न करे, और न मोक्षमार्ग में कर्मस्वरूप  
इनको विकारदृष्टि से देखे। जहां तक हो मुनिका यही कर्तव्य है कि  
वह अपनी आत्मा का जिस तरह से कल्याण होता रहे, तथा जिन  
विचारधाराओं से वह अहर्निश अपने गृहीत पथ पर अग्रगामी बना  
रहे, इस प्रकार का ही प्रयत्न साधु को करते रहना चाहिये। यही  
अपनी पर्यालोचना है ॥

दृष्टान्त—बाहर वें तीर्थकर श्री वासुपूज्य स्वामी के शासन काल में  
चम्पानगरी में इन्हीं का वंशज लावण्यपूर नामका एक राजा रहता था।

वह सुजातसर्वाङ्गसुन्दर—अर्थात् आकार से सर्वाङ्ग सुन्दर था,

आने लावार्थ ऐ छे के—धर्म मर्यादानु अनुवर्तन करवावाणा मुनि चित्तने  
विक्षिप्त करवावाणी स्त्रियोना अंग प्रत्यंगनी आकृतितुं तथा तेनी हांसी आदि  
क्रियाओनुं, अने लावलाव आदि विलासोना कही विचार सुद्धां पणु न करे.  
मोक्षमार्गमां कर्मस्वरूप ओवी आ लावनाने विकार दृष्टिथी न ओओ. ओनुं  
कर्तव्य छे के, ज्यां सुधी अनी शके त्यां सुधी पोताना आत्मानुं कल्याणु थतुं  
रहे अने ओ विचारधाराओथी ते डरडंभेश पोते अडणु करेव मार्ग उपर  
अग्रगमी अनी रहे. आ प्रकारने ओ विचार प्रयत्न साधुओ करवे ओध ओ  
ओ ओ तेमनी पर्यालोचना छे.

दृष्टान्त—आरमा तीर्थकर श्री वासुपूज्य स्वामीना शासनकालमां चं-  
नगरीमां तेमना ओ वंशना लावण्यपूर नामना ओक राजा राओ करता हता.  
ते सुजातसर्वाङ्गसुंदर अर्थात् आकारथी सर्वांग सुंदर हता, ते सकलसमाओना  
मनोरथ पूणुं करवावाणा होवाथी अधाने इष्ट हता, तेमनी आकृति मनोहर

प्रियरूपः, मनोज्ञः, मनोज्ञरूपः, सौम्यः, सुभगः, प्रियदर्शनः, सुरूपोः लावण्यपूर-  
नामको नृप आसीत् । असौ नृपः सुभूमनामकस्य वासुपूज्यतीर्थकृत्प्रथमगणधरस्य  
समीपे धर्मदेशनां श्रुत्वा दीक्षितो जातः ।

स चैकदा भिक्षाचर्यां पर्यटन् श्रावकगृहं मत्वा वेश्यागृहं प्रविष्टः, तत्र सा काम-

वह सकल समाज का मनोरथ पूर्ण करनेवाला होने से सब को इष्ट था, इसकी आकृति मनोहर होने से इष्टरूप था, तथा वह सबका सहायक होने से कान्त अभिलषणीय था । वह कान्तरूप रूप से भी कान्त कम-कमनीय था । वह सब जनों के उपकार करने में परायण होने से सबके लिये प्रिय था । वह रूप से भी प्रिय होने से प्रियरूप था । सब के हित-कारी होने से वह मनोज्ञ था । इसके देखने वाले के लिये यह चित्ताकर्षक होने से मनोज्ञ रूप था । दुःखियों का दुःख दूर करने वाला होने से मनोऽम सबके मन में बसने वाला था । सकल जनमन के अनुकूल आकृति वाला होने से मनोऽमरूप था, इसलिये वह सौम्य-भद्र स्वभाव होने से समस्त जन का आह्लादक था । तथा कल्याण मार्ग पर चलने वाला होने से सुभग था । वह प्रियदर्शन था अर्थात् जो व्यक्ति इसे एकबार भी देख लेता तो पुनः उसे देखनेकी लालसा उस के बनी रहती थी । वह सुरूप-लावण्य की राशि से भरपूर था । राजा ने सुभूम नाम के गणधर के पास जो वासुपूज्यतीर्थकर के प्रथम गणधर थे धर्मदेशना सुनकर दीक्षा धारण करली ।

डोवाथी इष्टरूप होता. तथा तेजो अधाने सहायकरवावाणा डोवाथी कान्त अभि-  
लषणीय होता. ते कान्तरूप रूपथी पणु कान्त-कमनीय होता. तेजो हरेक मनुष्य  
पर उपकार करवाभां परायणु डोवाथी हरेकने प्रिय होता. ते रूपथी पणु प्रिय  
डोवाथी प्रियरूप होता. हरेकना हितचिंतक डोवाथी ते मनोज्ञ होता. तेमने  
जेनारने तेजो चित्ताकर्षक डोवाथी मनोज्ञरूप होता, दुःखीजोना दुःख हरे  
करवावाणा डोवाथी मनोऽम अर्थात् हरेकना मनभां वास करवावाणा होता. सकल  
जनमननी अनुकूल आकृतिवाणा डोवाथी मनोऽमरूप होता, जे भाटे तेजो  
सौम्य लक्षस्वभाव डोवाथी समस्तजनना आह्लादक होता. तथा कल्याण मार्ग  
पर आलवावाणा डोवाथी सुभग होता तेजो प्रियदर्शनीय होता, अर्थात् जे कोछ  
तेने ओकवार जेजो ते डोवाथी तेने जेवानी लालसा उत्पन्न थया करती. ते सुरूप-  
रूपलावण्यथी भरपूर होता. राजजो सुभूम नामना गणधरनी पास के जे वासुपूज्य  
तीर्थकरना प्रथम गणधर होता तेमनी धर्मदेशना सांभजिने दीक्षा धारण करी लीधी.

मञ्जरीनाम्नी वेद्या लावण्यपूरमुनेर्मनोहरं वयोरूपलावण्यसंस्थानादिकं विलोक्य मोहिता जाता । अथ सा लावण्यपूरमुनिं प्रणम्य झटिति द्वारदेशमागत्य सर्वाणि निर्गमद्वाराणि पिधाय पुनस्तस्य समीपमागत्य सानुरागं पश्यन्ती सस्मितं वदति—महात्मन् ! स्वल्पमेव कालं भवानत्र तिष्ठतु, यावद्भिक्षामानयामि । तद्विनयवचनं निशम्य लावण्यपूरमुनिस्तत्रैवतिष्ठति । सा च गृहाभ्यन्तरगता मुनिसंगमाभिलाषिणी भिक्षोपयोगिवस्तुग्रहणव्याजेन नृत्यन्तीव भवने चलन्ती, बाहुविक्षेपैः

एक समय की बात है कि जब ये भिक्षाचरी के लिये निकले तो वे श्रावक का घर जानकर वेद्या के घर में आहार पानी के लिये पहुंच गये । वहां वेद्या ने जब इन्हें आया हुआ देखा तो वह इन पर इनके सुन्दरातिसुन्दररूप को देखकर मोहित हो गई । वेद्या का नाम काममंजरी था । अब क्या था रूप का निधान जब घर के भीतर स्वयं आ गया है तो उसने विचार किया कि यह वापिस न हो जाय इस ख्याल से उठ कर उसने शीघ्र ही बाहिर निकलने के जितने भी द्वार थे वे सब द्वार बंद कर दिये । पश्चात् वह उन मुनिराज के पास आई और सानुराग उनकी ओर निहार कर मुस्कराती मुस्कराती कहने लगी कि—हे महात्मन् ! आप कुछ देर तक यहां ठहरिये—जब तक मैं भिक्षा लेकर आती हूं । मुनिराज उसके विनीत वचन सुनकर वे वहीं पर ठहरे रहे और वह मुनि के साथ संगम की अभिलाषा से घर के भीतर रही हुई आहार पानी लाने के बहाने से मकान में ऐसी चलने लगी कि जैसे मानो नाचती हो । कामराग के प्रकट

એક સમયની વાત છે કે, બ્યારે તે ભિક્ષાચર્યા માટે બહાર નીકળ્યા ત્યારે શ્રાવકનું ઘર બાણીને એક વેશ્યાના ઘરમાં આહાર પાણી માટે બંધ ચડ્યા. બ્યારે વેશ્યાએ મુનિને આવેલા બોલા ત્યારે તે તેના રૂપલાવણ્યને બેઠે તેના ઉપર મોહિત બની ગઈ. વેશ્યાનું નામ કામમંજરી હતું. રૂપનું નિધાન બ્યારે ઘરની અંદર આવેલ હતું પછી બાકી રહે શું ? એણે વિચાર કર્યો કે, મુનિ પાછા ન ફરી બધા એ વાતના ખ્યાલથી ઉઠીને તેણે તરત જ બહાર નીકળવાના બેટલા રસ્તા હતા તે બધા બંધ કરી દીધા. પછી તે મુનિરાજની પાસે આવી અને વિવેકપૂર્વકે હસતી હસતી સામે આવી અને મુનિરાજની સામે બેઠે કહેવા લાગી કે, હે મહાત્મન્ ! આપ થોડીવાર રોકાઈ બધા ત્યાં હું ભિક્ષા લઈને આવું છું. મુનિરાજ તેનાં વિનીત વચન સાંભળીને દરવાજા પાસે ઉભા રહ્યા અને તે વેશ્યા મુનિરાજની સાથે સંગમની અભિલાષાથી ઘરની અંદર ચાલી ગઈ. આહારપાણી લાવવાના બહાને તે મકાનમાં એ રીતે ચાલવા



प्रावरणवसनापगमव्यक्तीकृताङ्गप्रत्यङ्गाच्छादनपरा कामरागं प्रदर्शयति । भोगाभिलाषप्रकाशक मदनधनुःकल्पभ्रुकुटिविलाससहकृतशिथिलारुणनयननिपातैर्लावण्यपूर-मुनेर्मनो हरन्तीव, रूपयौवनसौन्दर्यसम्पन्नसुकुमाराङ्गलीलाप्रदर्शनपरा कोकिला-रावमधुरस्वरेण गायति । तदनु तनुनूतनविविधवर्णचित्रितरुचिरवसनाञ्चल-स्फालनं प्रकुर्वती भूषणध्वनिमनोहरैश्वरणप्रचारणैर्मुनेः समीपमागत्य सा भृङ्गावलि-समाश्लिष्टकमलायमानलावण्यभरविद्योतितसुपुष्टरागोपगतकपोलपाली समाल-म्बितालकावलिबिभूषितसमुज्जृम्भमाणवदना भुजादिनिजगात्राणि मोटयन्ती स्मरमदोन्मादेनापहतकृत्याकृत्यविवेकविज्ञाना गद्गदस्वरेण मुनिमभ्यर्थयति काम-

करने के अभिप्राय से अपने अंग एवं प्रत्यङ्ग को साडी के गिर जाने के छल से प्रकट कर फिर उन्हें बार-बार ढकने लगी । मानों मुनि के मन को हरती हो इस प्रकार वह उनके ऊपर, भोगाभिलाष सूचक एवं काम के धनुष जैसी भ्रुकुटी के विलास के साथ-साथ कुछ-कुछ अरुण नयनों के विक्षेपों से प्रहार करने लगी । रूप, यौवन, एवं सौन्दर्य से संपन्न अपने सुकुमार अंगोंकी लीला के प्रदर्शन में तत्पर बनी हुई उसने फिर कोकिल के शब्दसमान मीठे स्वर से गाना गाना भी प्रारंभ कर दिया । पश्चात् शरीर पर पहिरे हुए नवीन बहुमूल्य रंग विरंगे वस्त्र के अंचल को हिलाती एवं भूषणों की ध्वनि से मनोहर पैरों को ठुमक ठुमक कर रखती हुई वह मुनि के समीप आकर गद्गद स्वर से कहने लगी । कहते हुए उसे जरा भी संकोच जो नहीं हुआ उसका कारण इसके ऊपर चढा हुआ काम का उन्माद था, इससे कृत्य और अकृत्य का विवेक विलुप्त हो चुका था । भौरों से युक्त कमल जिस

लागी है, जलते नाचती होय. कामराग प्रगट करवानी छिछाथी चोताना इरेक अंग प्रत्यंगने साडीना पडी जवाना जडानाथी प्रगट करी इरीथी ते शरीरने वारंवार ढांकवा लागी जल्ले मुनिना मनने डरती होय ! आ प्रकारे ते मुनि उपर, लोकाविलासनां सूचक जेवां कामना धनुष जेवी भ्रुकुटिना विलासनी साथे साथे नयनानां जल्ले इरेकवा लागी. रूप, यौवन अने सौंदर्यथी संपन्न चोताना सुकुमार अंगोनी लीलाना प्रदर्शनमां तत्पर अनेली ते वेश्याजे कोकिलकंठ जेवा भीडा स्वरथी गायन गावानी शङ्खात् करी. पछी शरीर उपर पहिरेला नवीन रंगभेरंगी वस्त्रोना छेडाने डलावती तेमज धरेणुज्योनी ध्वनीथी मनोहर पणोथी ठुमक ठुमक नाचती ते मुनिनी सामे आवीने ते गद्गद् स्वरे कडेवा लागी, कडेती वपते तेने जरा पल्लु संकोच न थये तेनुं कारण तेना उपर कामना उन्मादनी छाया इलाध गध डती. आथी कृताकृत्यता जानने विवेक ते युकी

भोगाय—“ महात्मन् ! कामज्वरभरेण संतप्तमिदं मदङ्गमधुना, दयस्व मम ताप शान्त्यै ” इत्यादिविविधप्रार्थनावचनैर्विविधकामचेष्टाभिश्च सा मुनिं चारित्राञ्चालयितुं प्रवृत्ता । तदा मुनिश्चिन्तयति—

गणिकास्त्रियो हि खलु नाम्नाऽबलाः १, कार्येण सबलाः २, प्रकृतिविषमाः ३, कपटप्रेमगिरिनद्यः ४, अपराधसहस्रगृहाः ५, प्रभवः ( उत्पत्तिस्थानं ) शोकस्य ६,

प्रकार सुन्दर मालूम पड़ता है उसका मुखकमल भी केशपंक्ति से विराजित होने से ठीक ऐसा ही सुन्दर मालूम पड़ता था । मुख की कपोलपाली लावण्य के प्रकर्ष से चमक रही थी । ललाई को लिये हुए थी । काम के आवेश से यह क्षण २ में जंभाई लेती और क्षण २ में आलस्य मोड़ती हुई बोली—महात्मन् ! मेरा यह शरीर इस समय कामज्वर से संतप्त हो रहा है । अतः दया करो और इस कामज्वर को शान्त करो । इत्यादि विविध प्रार्थना के वचनों एवं अनेकविध काम की चेष्टाओं से उसने मुनि को उनके पवित्र चारित्र से चलायमान करने के लिये कोशिश की, परन्तु मुनिराज ने उस समय भी यही विचार किया कि—

ये वेद्या स्त्रियां केवल नाम से ही अबला हैं कार्यसे नहीं १ । कार्य में तो ये बड़ी भारी सबल हैं २ । प्रकृति से ये विषम होती हैं ३ । कपट प्रेम की ये पहाड़ी नदियां हैं जो शीघ्र ही शुष्क हो जाती हैं ४ । हजारों अपराधों की ये स्थान हैं ५ । शोक की उत्पत्ति का ये स्थानभूत हैं ६ ।

गर्भ होती. लभराथी गुंजतुं कमण जे रीते सुंदर देखाय छे तेवी रीते अेतुं भुष कमण पञ्च केश पंक्तिथी विराजत होवाथी अबुंज सुंदर देखातुं हुतुं. तेना मोठा उपरनी लालीमा लावण्यथी यमकी रडेल होती. कामना आवेशथी अे क्षण क्षणमां अटकती अने आणस भरउती ओली. महात्मन् ! दुं आ समये कामज्वरथी पीडाई रही छुं आथी दया करी आ कामज्वरने शांत करे. इत्यादि विविध प्रार्थना वचनोथी तेमज्ज अनेकविध कामचेष्टाथी तेजे मुनिने तेना पवित्र चारित्रथी चलायमान करवानी केशिष करी. आ समये मुनिराजे अे विचार कथे के,—

आ वेद्या स्त्रीओ केवण नामथीज्ज अमणा छे, कार्यथी नही १. कार्यमां तो अे धणी बारे समण छे २. प्रकृतिथी अे विषम होय छे ३. कपट प्रेमनी अे पहाडनी नदीओ जेवी छे, जे वडेली सुकाई नय छे ४. डलरे अपराधोतुं अे स्थान छे ५. शोकनी उत्पत्तिने जगावनार छे ६. अणनो विनाश करनार

विनाशो बलस्य, ( बलहारकत्वात् ) ७, मूना ( वधस्थानं ) पुरुषाणाम् ८, नाशो लज्जायाः—( लज्जारहितत्वात् , अस्याः संगे पुरुषस्य लज्जानाशाच्च ) ९, मूलमविनयस्य १०, गृहं मायानाम् ११, खनिर्वैरस्य १२, भेदो मर्यादानाम् , ( संयममर्यादाया विनाशहेतुत्वात् ) १३, आश्रयो रागस्य, ( आश्रयः स्थानं ) १४, गृहं दुश्चरित्राणाम् १५, स्वलनाः ज्ञानस्य १६, विध्वंसनं ब्रह्मचर्यस्य १७, विघ्नो-धर्मस्य १८, अरिः साधूनाम् ( मोक्षमार्गसाधकानां चारित्र्यप्रमाणविनाशकत्वात् ) १९ दूषणं ब्रह्मचारिणाम् २०, कारणं कर्मरजसः २१, अर्गला मोक्षमार्गस्य २२, भवनं दुर्गुणस्य २३, मत्तगजवन्मदनपरवशाः २४, व्याघ्रीवद् दुष्टहृदयाः २५ तृणच्छन्न-कूपवद् अप्रकाशान्तःकरणाः २६, कारीषाग्निवदन्तर्दहनशीलाः २७, अन्तर्दुष्टत्र-बल को विनाश करने वाली हैं ७ । पुरुषों के मन की हत्या करने के लिये ये वधस्थान हैं ८ । लज्जा की विनाशक हैं ९ । अविनय की ये मूल कारण हैं १० । माया का तो यहां खजाना ही भरा रहता है ११ । वैर विरोध आदि जितने भी अनर्थ दुनियां में होते हैं उन सब में ये प्रधान रहा करती हैं अतः ये उनकी खान हैं १२ । संयममर्यादा का भंग करने वाली हैं १३ । राग का ये स्थान हैं १४ । दुश्चरित्रों की तो ये पेटी हैं १५ । ज्ञान की स्वलना करनेवाली हैं १६ । ब्रह्मचर्य की आंखें कैसे फोड़ी जाती हैं इस बात में ये बड़ी होशियार होती हैं १७ । धर्म की विघ्नभूत है १८ । साधुओं के लिये शत्रुसमान हैं १९ । ब्रह्मचारियों के लिये दूषणरूप है २० । कर्मरज की कारण २१, एवं मुक्तिमार्ग की ये आर्गला हैं २२ । ये दुर्गुणों के भवन हैं २३ । मत्तगजराज के समान हैं २४ । व्याघ्री के समान दुर्हृदयवाली हैं २५ । तृण से ढके हुए कूप के समान हैं २६ । करीषाग्नि के समान अन्तर्दहन-

छे ७. पुरुषोना मननी हत्या करनार ये वधस्थान छे ८. लज्जानो नाश करनार छे ९. अविनयतुं ये मूल छे १०. मायानो तो ये खजानो छे ११. वैर विरोध आदि जेतला अनर्थ दुनियांमां छे ते सधणा अनर्थोनुं उद्गम स्थान छे १२. आथी ते ये अनर्थोनी भाषु छे, संयममर्यादानो भंग करनार छे १३. रागतुं ये स्थान छे १४. दुश्चरित्रोनी तो ये पेटी छे १५. ज्ञानो नाश करनार छे १६. ब्रह्मचर्यनी आंख झडनारी छे १७. ये महुा यपण डोय छे, धर्ममां विघ्न करावनारी छे. १८. साधुओ माटे शत्रु समान छे १९. ब्रह्मचारियो माटे कलंक छे २०. कर्मरजतुं कारण छे २१. मुक्ति मार्गमां आर्गला छे २२. दुर्गुणोनी भाषु छे २३. मत्त गजराज समान छे २४. व्याघ्र जेवी हया वगरनी छे २५. घासथी ढंकायेला कुवा जेवी छे २६. छुपा-

णवत्कुथितहृदयाः २८, सन्ध्याभ्ररागवन्मुहूर्तरागाः २९, समुद्रवीचिवचलस्वभावाः ३०, कृष्णसर्पवन्निरनुकम्पाः ३१, सलिलवन्निम्नगामिन्यः ३२, कृपणवदुत्तान-हस्ताः ३३, नरकवत् त्रासोत्पादिकाः ३४, दुष्टाश्ववद् दुर्दमाः ३५, बालवत् क्षणरुष्टतुष्टाः ३६, अन्धकारवद् दुष्प्रवेशः ३७, विषवल्लीवद् अनाश्रयणीयाः ३८, किंपाकफलतुल्यमुखमधुराः ३९, राक्षसीवद् अकालचारिण्यः ४०, दुरूपचाराः ४१, अगम्भीराः ४२, अविश्वसनीयाः ४३, अरतिकराः ४४, रूपसौभाग्यमद-मत्ताः—( रूपं-सुन्दराकृतिः, सौभाग्यं-स्वकीर्तिश्रवणादिरूपं, मदो-मन्मथजगर्वः, तैर्मत्ताः ) ४५, भुजगगतिवत् कुटिलहृदयाः ४६, कुलस्वजनमित्रभेदनकारिकाः

शील हैं २७। भीतर के घाव की तरह कुथित हृदयवाली हैं २८। संध्यारागसमान हैं २९। समुद्र की तरङ्ग के समान चंचल स्वभाव वाली हैं ३०। कृष्णसर्प के समान भयंकर हैं ३१। जल के समान नीचे की ओर जाने वाली हैं ३२। कृपण की तरह उत्तान हाथोंवाली अर्थात् हर समय 'लाव-लाव' करने वाली है ३३। नरक के तुल्य कष्ट देनेवाली हैं ३४। दुष्ट घोड़े की तरह दुर्दम हैं ३५। बालक के समान क्षणरु में रुष्ट एवं तुष्ट होनेवाली हैं ३६। अन्धकार की तरह दुष्प्रविश्य हैं ३७। विषवल्ली की तरह आश्रय लेने योग्य नहीं हैं ३८। किंपाक फल की तरह आदि में मधुर हैं ३९। राक्षसी की तरह अकाल में चलने वाली हैं ४०। दुरूपचार ४१, अगंभीर ४२, अविश्वसनीय ४३, और अरतिकर हैं ४४। रूप, सौभाग्य तथा मद से सदा उन्मत्त हैं ४५। सर्प की गति के समान कुटिल मनवाली हैं ४६। कुल में, स्वजन में, एवं मित्रों में छेद-भेद करने वाली हैं ४७। दूसरों

येला छाणुना अग्नि माइक आणवावाणी छे २७. अंहरना घाना जेवी दुर्गंधीमां कुथित जेवा हृदयवाणी छे २८. संध्याना रंग जेवी छे २९. समु-द्रना तरंगोनी माइक अंचल स्वभाववाणी छे ३०. कृष्ण सर्प जेवी लयंकर छे ३१. जणनी माइक नीचे जनारी छे ३२. कृपणुनी माइक उत्तान हाथवाणी अर्थात् हर समय लाव लाव करवावाणी छे ३३. नरकना जेवां दुःखो देनारी छे ३४. दुष्ट घोडाना जेवी दुर्दम छे ३५. आणकनी माइक घडीमां रीसानार अने घडीमां हसनार छे ३६. अंधकारना जेवी भीडामणी छे ३७. विषवेलना जेवी आश्रय देवाय तेवी नथी ३८ किंपाक क्षणनी माइक शरुमां मधुर छे ३९. राक्षसीनी माइक अकालमां आलवावाणी छे ४०, दुरूपचार छे ४१, अगंभीर छे ४२, अविश्वसनीय छे ४३, अरतिकर छे ४४, रूप, सौभाग्य तथा मदथी सदा उन्मत्त छे ४५, सर्पनी गती समान कुटिल मनवाणी छे ४६, कुलमां,

४७, परदोषप्रकाशिकाः ४८, अरज्जुकाः पाशाः ( रज्जुकं विना बन्धनरूपाः )  
 ४९, कृतपापपश्चात्तापवर्जिताः ५०, अकार्यप्रवृत्तिशीलाः ५१, अनामका व्याधयः  
 ५२, अरूपा उपसर्गाः ( अनुकूलोपसर्गभूताः ) ५३, चित्तविक्षेपकारिकाः ५४,  
 अनध्रका विद्युतः ५४, समुद्रवेगाः, ( केनापि निरोद्धुमशक्यत्वात् ५६ । उक्तञ्च—

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ।

योषित्संगाद् यथा पुंसो यथा स्त्रीसंगिसंगतः ॥ १ ॥

पदाऽपि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ।

स्पृशन् करीव बध्येत करिण्या अङ्गसंगतः ॥ २ ॥

के दोषों को प्रकाशित करने वाली हैं ४८ । ये विना दोरी के पाशतुल्य हैं ५९ । किये हुए पापों के पश्चात्ताप से वर्जित ५०, एवं अकार्य में प्रवृत्ति करने वाली होती हैं ५१ । विना नाम की ये व्याधियां हैं ५२ । विना आकृति के उपसर्ग समान हैं ५३ । चित्तको विक्षेप करने वाली हैं ५४। विना बादलों की ये विद्युत् हैं ५५। किसी से भी इनका वेग रोका नहीं जा सकता, इसलिये ये समुद्र के वेग जैसी हैं ५६ । कहा भी है—

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसंगतः ।

योषित्संगाद् तथा पुंसो, यथा स्त्रीसंगिसंगतः ॥ १ ॥

पदाऽपि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवीमपि ।

स्पृशन् करीव बध्येत, करिण्या अंगसंगतः ॥ २ ॥

अर्थात्—पुरुष को स्त्री के संग से तथा विषयविलासी के संग से जिस प्रकार का मोह और बन्ध होता है उस प्रकार का मोह और

स्वप्नमां तेमञ्च भिन्नामां छेद लेह करवावनारी छे ४७, भीजना दोषोने प्रका-  
 शीत करवावाणी छे ४८, दोरी वगरना झांसला जेवी छे ४९, करेला पापोना  
 पश्चात्तापथी हूर रहेनारी छे ५०, अकार्यमां प्रवृत्ति करनार डोय छे ५१, नाम  
 वगरने अे शैग छे ५२, आकृति वगरने उपसर्ग छे ५३, चित्तने व्यग्र अना-  
 वनार छे ५४, वादण वगरनी विजणी जेवी छे, डेधथी तेने वेग शैकी  
 शकतो नथी आ कारणे ते समुद्रना वेग जेवी छे. कहुं छे ६—

न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्य प्रसंगतः ।

योषित्संगाद् तथा पुंसो, यथा स्त्री संगिसंगतः ॥ १ ॥

पदाऽपि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद्दारवी मपि ।

स्पृशन् करीव बध्येत, करिण्या अंग संगतः ॥ २ ॥

युद्धने स्त्रिना संगथी तेमञ्च विषय विलासीना संगथी जे प्रकारने मोह  
 अने अंध थाय छे, ते प्रकारने मोह अने अंध भीजथी थतो नथी. आ

તથૈવ પુરુષસંગઃ સાધ્વીનામપિ । ઉક્તञ્ચ—

ઘૃતકુમ્ભસમા નારી તપ્તાઙ્ગારસમઃ પુમાન્ ।

તસ્માદ્ ઘૃતં ચ વહ્નિં ચ, નૈકત્ર સ્થાપયેદ્ બુધઃ ॥ ૧ ॥

इत्येवं विचिन्त्यासौ सुधाधारासारया प्रवचनसारया गिरा तां प्रतिबोधयति ।

બન્ધ દૂસરે સે નહીં હોતા હૈ ॥ ૧ ॥ इसलिये मुनि को चाहिये की वह काष्ठ की पुतली को भी पैर से भी स्पर्श न करे, अगर स्पर्श करे तो जिस प्रकार हथनी के अंगस्पर्श से हाथी बन्ध जाता है उसी प्रकार मुनि भी कामराग में बंध जाता है ॥ २ ॥

इसी प्रकार साध्वियों के लिये भी पुरुषों का संग वर्जनीय है । क्यों कि—पुरुष का संग साध्वी के ब्रह्मचर्य के नाश में असाधारण हेतु है । कहा भी है—

“ ઘૃતકુમ્ભસમા નારી, તપ્તાઙ્ગારસમઃ પુમાન્ ॥

તસ્માદ્ ઘૃતં ચ વહ્નિં ચ, નૈકત્ર સ્થાપયેદ્ બુધઃ ॥ ૧ ॥

અર્થાત્—છ્ત્રી ઘી કે ભરે હુણ્ ઘડે કે સમાન હૈ ઓર પુરુષ પ્રજ્વલિત અઙ્ગાર કે સમાન હૈ । इसलिये विद्वान् को चाहिये कि घृत और अग्नि को एक जगह नहीं रखवे ।

इस प्रकार उन लावण्यपूर मुनिराज ने विचार किया । विचार करने के पश्चात् काम से अति विह्वल बनी हुई उस वेद्या को उन्होंने ने

માટે મુનિઓએ લાકડાની પુતળીનો પગથી પણ સ્પર્શ ન કરવો જોઈએ. કારણ કે, સ્પર્શ કરવાથી જેમ હાથી હાથણીના અંગસ્પર્શથી બંધાઈ બંધ છે, એજ રીતે મુનિ પણ કામ રાગમાં બંધાઈ બંધ છે.

કહ્યું છે કે—આ પ્રકારે સાધ્વિઓને માટે પણ પુરુષોનો સંગ તજવા યોગ્ય છે, કારણ કે પુરુષનોસંગ સાધ્વિને બ્રહ્મચર્યના નાશમાં અસાધારણ હેતુ છે કહ્યું પણ છે—

ઘૃતકુમ્ભસમા નારી, તપ્તાઙ્ગારસમઃ પુમાન્ ।

તસ્માદ્ ઘૃતં ચ વહ્નિં ચ, નૈકત્ર સ્થાપયેદ્ બુધઃ ॥ ૧ ॥

સ્ત્રી ઘીના ભરેલા ઘડા સમાન છે અને પુરુષ પ્રજ્વલિત અગ્નિ સમાન છે, માટે વિદ્વાને બાણવું જોઈએ કે ઘી અને અગ્નિને એક સ્થળે ન રાખે.

આ પ્રકારે તે લાવણ્યપૂર મુનિરાજે વિચાર કર્યો. વિચાર કરીને પછીથી કામવિહણ અનેલી તે વેશ્યાને પોતાની અમૃતતુલ્ય વાણીથી સમબલવવાનો



भगिनि ! इदमब्रह्मचर्यं महापुरुषैरनाचरितं, जन्मजरामरणदायकं कातरपुरुषसेवितं प्रमादबहुलं तपःसंयमविघ्नभूतमधर्मद्वारम्, पङ्कपनकपाशजालतुल्यम् । अस्य खलु अब्रह्मचर्यस्य फलविपाकोनरकनिगोदाद्यनन्तदुःखरूपो महादारुणः, पल्योपमसागरोपमकालेनाप्यमुच्यमानाऽशातवेदनारूपः, तस्माद् विरम्यतामस्मात्पापाचरणात्,

फिर अपनी अमृततुल्य वाणी से समझाना प्रारंभ किया । कहा—हे देवानुप्रिये ! तुम क्या करने के लिये उद्यत हो रही हो । तुम्हें क्या मालूम नहीं है कि कुशीलसेवन का मार्ग महापुरुषों से अनाचरित है । इस में ऐसा कोई भी लाभ नहीं है जो आत्मा को हितकारक हो । इस से जन्म जरा एवं मरण व कष्टों को भोगने के सिवाय कुछ नहीं मिलता है । ब्रह्मचर्य में जो कायर हैं वे ही इसमें आनंद मानते हैं । ये विषयभोग प्रमादबहुल एवं तप तथा संयम के पालन में प्रबल अन्तरायस्वरूप हैं । अधर्म के प्रधान मार्ग हैं । यह कुशीलसेवन पंक — कीचड, पनक—काई तथा जाल के समान है । अर्थात् इसमें मनुष्य गड़ जाता है, फिसल जाता है, और बंध जाता है । इस अब्रह्मचर्य सेवन का फल जीवों को नरक निगोद के अनंत दारुण दुःखों के भोगने के रूप में प्राप्त होता है ।

इसके सेवन के फलस्वरूप अशातवेदनाएँ पल्योपम सागरोपम तक भोगनी पडती हैं, इस लिये इस पापाचरण से विरक्त होने में ही

आरंभ कर्यो, अने कहुं ! हे देवानुप्रिये ! तुं शुं करवा माटे प्रवृत्त भनी छे ? तने शुं भयर नथी के, कुशील सेवनने भाग महापुरुषे आचरवा येज्य नथी. तेमां केरि अवेो दास नथी ने आत्माने डितकारक होय, अनेनाथी जन्म, जरा अने मरणनां दुःखेो लोगववा सीवाय भीज्युं कंरि भणतुं नथी. अब्रह्मचर्यमां ने कायर होय छे तेज आमां आनंद माने छे. आ विषयलोग प्रमाद तप तथा संयमना पालनमां प्रभण अंतराय स्वरूप छे. अधर्मने प्रधान मार्ग छे, आ कुशील सेवन कियड, पाछ, तथा जाल समान छे. अर्थात्—मनुष्य तेमां गणडी जय छे, इसाछ जय छे, अंधाछ जय छे. आ अब्रह्मचर्य सेवननुं कण लोवने नरक निगोदना अनंत दारुण दुःखेोने लोगववाना रूपमां प्राप्त थाय छे. आना सेवनना कण स्वरूप आशातवेदनाओ पल्योपम सागरोपम सुधी लोगववी पडे छे. माटे आ पापाचरणथी विरक्त थवामां ज

एवं मुनिवचनं श्रुत्वा सा वेश्या हतमनोरथा जाता, तदनन्तरमसौ कोपा-  
वेशेन यष्टिमृष्ट्यादिभिर्मर्मणि गाढप्रहारं कृतवती । तदाऽसौ मुनिर्निर्गमनोपायमन-  
वलोक्य ब्रह्मचर्यं परिरक्षयन् तामुज्ज्वलवेदनां शुभाध्यवसायेन सहमानः क्षपक-  
श्रेणिमारूढोऽन्तर्मुहूर्तेनैव प्राप्तकेवलज्ञानः कालं कृत्वा मोक्षं प्राप्तवान् । एवमन्यैरपि  
मुनिभिः स्त्रीपरीषहः सोढव्यः ॥ १७ ॥

एकत्र स्थितस्य मुनेरत्यादिप्रसङ्गः स्यात्, अतो ग्रामानुग्रामविहाररूपा  
चर्या कार्येति चर्याकरणेनैव चर्यापरीषहः सोढव्य इत्याह—

मूलम्—एँग एँव चरे लाढे, अभिभूय परीसहे ।

गाँमे वा नगरे वावि, निर्गमे वां रायहाँणिए ॥१८॥

छाया—एक एव चरेत् लाढः, अभिभूय परीषहान् ।

ग्रामे वा नगरे वाऽपि, निगमे वा राजधान्याम् ॥ १८ ॥

तेरा कल्याण है । इस प्रकार मुनि के वचनों को सुनकर वेश्या बड़ी  
लज्जित हुई । कोप के आवेश में आकर वह मुनिराज पर घोर उपसर्ग  
करने लगी । उन मुनि को यष्टि एवं मृष्टि आदि के प्रहारों से मर्म स्थलों में  
आघात पहुँचाया । मुनि महाराज ने वहाँ से निकलना चाहा परन्तु  
निकलने के जितने भी दरवाजे थे वे सब पहिले से ही बंद किये जा  
चुके थे, अतः वहाँ से निकलने का जब उन्हें कोई उपाय नहीं सूझा तो  
अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा में शुभाध्यवसाय से जीवन को समर्पित करते हुए  
उन्होंने क्षपकश्रेणिपर आरोहण किया और अन्तर्मुहूर्त में केवल ज्ञान  
की प्राप्ति कर मुक्ति का लाभ कर लिया । इसी प्रकार अन्यमुनिजनों  
को भी इस स्त्रीपरीषह को जीतना चाहिये ॥ १७ ॥

ताइं कल्याण छे. आ प्रकारनां मुनिनां वचनाने सांभणी वेश्या भूष लज्जार्घ  
गर्ध अने कोपना आवेशमां आवीने ते मुनिराज ने घोर उपसर्ग आपवा लागी.  
मुनिना मर्मस्थानोमां मुडीआथी अने पगनी लातोथी आघात पडेँआडयो.  
मुनिराजे त्याथी नीकणवा आहुं परंतु नीकणवाना जेटला रस्ता हुता ते पडे-  
द्वेथी ज अंध करी हेवामां आव्या हुता. आथी ये स्थणेथी नीकणवानो कोर्ध  
पणु मार्ग न सुनये त्यारे पोताना ब्रह्मचर्यानी रक्षा भाटे तेमणु शुभ अध्य  
वसायथी अवनतुं समर्पण करीने क्षपकश्रेणी पर आरोहण कयुं अने अंत  
मुहूर्तमां केवणज्ञाननी प्राप्ति करी मुक्तिने लाभ लीधो. आ रीते अन्य मुनि-  
जनोअये पणु स्त्री परीषहने अतवे जेध अये. ॥ १७ ॥

टीका—‘ एग ’ इत्यादि ।

लाढः=अयं देशीयः शब्दः, लाढः=प्रासुकैषणीयाहारेणात्मनिर्वाहको मुनिः  
परीषहान्=क्षुत्पिपासादीन् अभिभूय=विजित्य, ग्रामे=अल्पजननिवासस्थाने, वा=  
अथवा नगरे=प्राकारवेष्टितेऽपि, वा=अथवा निगमे=त्रिणिगजनस्थाने, वा=अथवा  
राजधान्याम्=राजस्थाने, उपलक्षणमेतत् तेन मडम्बादिषु वा, एषु ग्रामादिषु यत्र  
कुत्रापि स्थाने, एकः=रागद्वेषरहितः, यद्वा-योग्यसहायस्यालाभे एकः=एकाकी,  
चरेदेव=अप्रतिबद्धविहारेण चर्यां कुर्यादेव ।

मुनि का एक जगह रहतेर अरति आदि प्रसंग प्राप्त हो सकता है इसलिये उसे ग्रामानुग्रामविहाररूप चर्या करनी चाहिये । इस प्रकार चर्याके करने से ही नौवें चर्यापरीषह पर विजय पाई जाती है, इसी बात को इस गाथा द्वारा सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘ एग एव चरे’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(लाढे—लाढः) ‘लाढ’ यह देशीय शब्द है । ‘प्रासुक एषणीय आहार से अपना निर्वाह करने वाला मुनि’ ऐसा इसका अर्थ है, अतः ऐसा मुनि (परीसहे—परीषहान्) क्षुत्पिपासा आदि परीषहों को (अभिभूय—अभिभूय) जीतकर (ग्रामे वा नगरे वावि निगमे वा राय-हाणिए—ग्रामे वा नगरे वाऽपि निगमे वा राजधान्याम्) थोड़े जनों का जिसमें निवास है ऐसे ग्राम में, अथवा प्राकार से जो वेष्टित है ऐसे नगर में, अथवा व्यापारी जनोंके स्थानभूत ऐसे निगम में, अथवा राजा का जहां रहना हो रहा है ऐसी राजधानी में, उपलक्षण से मडम्बा आदि

मुनिने एक जग्याये रडेवाथी अरति वगेरेना प्रसंग प्राप्त थर्छ शके छे तेथी तेष्से एक गाभथी थील गाभ विहार इपी चर्या करवी जेछे अे आ प्रकारनी चर्याने करवाथी ज नवभा चर्यापरीषह उपर विजय प्राप्त थाय छे आ वातने सूत्रकार आ गाथा द्वारा प्रदर्शित करे छे—एग एव चरे—इत्यादि.

अन्वयार्थ—लाढे—लाढः “ लाढ ” अे देशीय शब्द छे. ‘प्रासुक एषणीय आहारथी पोतानो निर्वाह करवावाणा मुनि’ अेवो आनो अर्थ छे, अेटले आवा मुनि परीसहे—परीषहान् क्षुत्पिपासा आदि परीषहोने अभिभूय—अभिभूय अतीने ग्रामे वा नगरे वावि निगमेवा रायहाणिए—ग्रामे वा नगरे वाऽपि निगमे वा राजधान्याम् थोडा माणुसो जेमां रडेता होय तेवा गाभमां, अथवा कोटथी घेरायेल होय तेवा नगरमां, अथवा वेपारी जनोने जेमां वास होय तेवा निगममां, अथवा राज न्यां रडेते होय तेवी राजधानीमां, उपलक्षणथी मडम्बा आदि स्थानोमां आवा

तथा चाग्रे वक्ष्यति—

न वा लभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।

एको वि पावाइँ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥ १ ॥

( उक्त. ३२ अ. ५ गा. )

छाया—न वा लभेत् निपुणं सहायं, गुणाधिकं वा गुणतः समं वा ।

एकोऽपि पापानि विवर्जयन्, विहरेत् कामेषु असजन् ॥

उक्तमन्यत्रापि—

ग्रामाद्यनियतस्थायी, स्थानबन्धविवर्जितः ।

चर्यामेकोऽपि कुर्वीत, विविधाभिग्रहैर्युतः ॥ १ ॥ इति ।

स्थानों में जहां कहां भी वह ( एग एव चरे—एकाकी एव चरेत् ) राग द्वेष से रहित होकर समुदाय के साथ अथवा योग्य सहाय के अभाव में अप्रतिबंध विहार से अकेला ही विचरे । कहा भी है—

न वा लभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।

एगो वि पावाइँ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥

( उक्त० ३२ अ. ५ गा. )

तात्पर्य इसका यह है कि साधु को जब योग्य सहायक ( शिष्य आदि ) की प्राप्ति न हो तो वह निष्पाप होकर, तथा इच्छाओं को जीतता हुआ अकेला भी विहार करे । अन्यत्र भी यही बात कही है—

ग्रामाद्यनियतस्थायी, स्थानबन्धविवर्जितः ।

चर्यामेकोऽपि कुर्वीत, विविधाभिग्रहैर्युतः ॥ १ ॥

कोई पणु स्थणे ते एग एव चरे—एकाकी एव चरेत् राग द्वेषधी रहित अपनी समुदायनी साथे अथवा योग्य सहायता अभावमां अप्रतिबंध विहारधी अकेला न विचरे कहुं छे—

न वा लभिज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।

एगो वि पावाइँ विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥ उ. ३२, अ. ५.

आनुं तात्पर्यं अे छे के, साधुने न्यारे योग्य सहायक शिष्य आदिनी प्राप्ति न होय तो ते निष्पाप अपनीने इच्छाओंने लतीने अकेला पणु विहार करे. अन्यत्र पणु आन वात कहेल छे—

ग्रामाद्यनियतस्थायी, स्थानबन्धविवर्जितः ।

चर्यामेकोऽपि कुर्वीत, विविधाभिग्रहैर्युतः ॥ ॥

अयं भावः—यथाकल्पं ग्रामनगरादावनियतवासं कुर्वता मुनिनाऽऽलस्यपरिवर्जनेन तत्र तत्रानासक्त्या च ग्रामानुग्रामविहरणात्मकचर्याकरणादेव चर्यापरीषहः सोढो भवति । यस्तु परिक्षीणजङ्घाबलस्तेन स्थिरवासे कृते भिक्षाचर्यायां कथंचित् स्वयं प्रवृत्त्याऽपि स परीषहः सोढो भवतीति ।

ननु—चर्यापरीषहो न भवत्यागन्तुकः, कथं तर्हि स्वयमुदीरितायाश्चर्यायाः परीषहत्वमिति चेत्, उच्यते—कल्पस्यापि कस्यचित् कष्टकारित्वेन सह्यमानत्वात्

यथाकल्प ग्राम नगर आदि में अनियतवास करने वाला अप्रतिबन्ध विहारी मुनि नाना प्रकार के अभिग्रहों से युक्त होकर अकेला अर्थात्—सम्प्रदाय में रहते हुए भी रागद्वेष रहित विचरे ॥१॥

प्रमाद का परिहार करते हुए ग्रामनगरादि में आसक्ति रहित होकर ग्रामानुग्राम विचरणरूप चर्या के करने से ही यह चर्यापरीषह जीता जाता है । जिसका जंघाबल क्षीण हो चुका है उस साधु को भी स्थिरवास करने पर भिक्षाचर्या में कथंचित् स्वयं प्रवृत्ति से यह परीषह सहन किया जाता है । आये हुए कष्ट का नाम परीषह है । चर्या तो आनेवाली नहीं है यह तो स्वयं उदीरित की जाती है अतः चर्या को परीषहरूप कैसे माना जा सकता है ? इसका समाधान इस प्रकार है—यद्यपि चर्या साधु का कल्प है तो भी किसी२ कल्प को कष्टकारी होने से वह सहन करना ही पड़ता है । चर्या भी इसी प्रकार है । अतः भगवानने इसको परीषहरूप फरमाया है । अपने कल्प का प्रमाद से

यथाकल्प ग्राम नगर आदिमां अनियतवास करवावाण अप्रतिबन्ध-विहारी मुनि विविध प्रकारना अभिग्रहोथी युक्त अनी अकेला, अर्थात्—संप्रदायमां रहेवा छातां पणु रागद्वेष रहित विचरे. प्रमादने त्याग करीने ग्राम नगर आदिमां आसक्ति रहित अनीने ग्रामानुग्राम विचरणरूप चर्या करवाथी अ आ चर्या परीषह अताय छे. तेनुं जंघाबल क्षीण अनी गयेल छे अवे साधुअे पणु स्थिरवास करवाथी भिक्षाचर्यामां कडेवामां आवेल स्वयं प्रवृत्तिथी आ परीषह सहन करवामां आवे छे. आवेला दुःषेने सहन करवां तेनुं नाम परीषह छे. चर्या आवती नथी परंतु स्वयं उली करवामां आवे छे. आथी चर्याने परीषहरूप केम मानवामां आवे छे ? तेनुं समाधान आ प्रकारथी छे—कदाच चर्या साधुने कल्प छे तो पणु कोठ कोठ कल्प कष्टकारी होवाथी ते सहन करवाअ पडे छे. चर्याने पणु आअ प्रकार छे. माटे लगवाने तेने परीषहरूप इरभावेल छे. पोताना कल्पनुं प्रमादथी आचरण न करवुं ते परीषह

परीषहरूपत्वं भवति, तत्र प्रमादेन स्वकल्पानाचरणमेव परीषहकृतः पराजयः, तस्मात् प्रमादवर्जितेन यथाकल्पचर्याराधनेनैव चर्यापरीषहः सोढो भवतीति ॥१८॥

उक्तमर्थं दृढीकुर्वन्नाह—

मूलम्—असंमाणे चरे भिक्खू, नेव कुज्जा परिग्गहं ।

असंसत्तो गिहत्थेहिं, अणिएओ परिठवए ॥ १९ ॥

आचरण नहीं करना ही परीषहजनित पराजय है । इसलिये प्रमाद वर्जित होकर यथाकल्प चर्या के आराधन से ही चर्यापरीषह सहन किया जाता है । तभी चर्यापरीषहजयी साधु कहलाता है ।

भावार्थ—चतुर्मास कल्प को छोड़कर मुनि के लिये एकत्र स्थिर रहना जैनशासन की आज्ञा से बाहिर है । कोई खास कारण हो तो मुनि एकत्र वास कर सकता है, अन्यथा नहीं । अतः आत्मकल्याण की भावना से अथवा 'जनता में धर्म का प्रचार होता रहे' इस शुभ अध्यवसाय से मुनि को नगर ग्राम आदि स्थानों में विचरते रहना चाहिये । एक स्थान पर रहने वाले साधु को स्थानजन्य मोह सता देता है, अतः वह चाहे एकाकी रूप में विहार करे चाहे योग्य सहायकों के साथ विहार करे, परन्तु विहार अवश्य करे । विहार में सदा अपने संयम की पूरी दृढता रखे । क्षुत्पिपासा आदि परीषह सतावें तो भी उनकी परवाह न करे । इसका नाम चर्यापरीषहजय है ॥ १८ ॥

जनित पराजय छे भाटे प्रमादथी हर रहीने यथाकल्प चर्याना आराधनाथी न चर्यापरीषह सहन करी शकय छे. जे चर्यापरीषह छेतव साधु कडेवाय छे.

भावार्थः—चतुर्मास कल्पने छोडीने मुनि भाटे जेक स्थणे स्थिर रहवुं जैनशासननी आज्ञाथी अहार छे. केध भास कारण छेय तो मुनि जेक स्थणे वास करी शके छे, ते सीवाय नही. आथी आत्मकल्याणनी भावनाथी अथवा 'जनतामां धर्मना प्रचार थतो रहे जेवा शुभ आशयथी मुनिजे नगर ग्राम आदि स्थानोमां विचरता रहवुं जेधजे. जेक स्थान उपर रहवावाणा साधुने स्थानजन्य मोह सतावे छे. आथी लवे ते जेकाकी रूपमां विहार करे अगर योग्य सहायकोनी साथे विहार करे, परंतु विहार अवश्य करे. विहारमां पोताना संयमनी सदा पूरी दृढता राखे, क्षुत्पिपासा आदि परीषह सतावे तो यण तेनी परवा न करे. आनुं नाम चर्यापरीषहजयो विजय छे. ॥१८॥



छाया—असमानश्चरेद् भिक्षुः, नैव कुर्यात् परिग्रहम् ।

असंसक्तो गृहस्थैः, अनिकेतः परिव्रजेत् ॥ १९ ॥

टीका—‘असमाणो’ इत्यादि ।

भिक्षुः=मुनिः, असमानः=गृहस्थैरन्यतीर्थिकैश्चासदृशः, तत्राश्रयमूर्च्छारहितत्वेन गृहस्थैरसदृशः, अनियतविहारादिनाऽन्यतीर्थिकैरसदृश इति भावः । यद्वा—मानस-हितः समानः, न तथेत्यसमानः, अभिमानवर्जित इत्यर्थः, यद्वा—‘असमाणे’ इत्यस्य ‘असन्निति’ छाया, असन्नित्वा-असन्, यत्र विद्यते तत्राप्यविद्यमान इव, अल्पतरकालस्थायित्वेन तत्र तत्र तत्सत्ताया अनियतत्वात्, तत्र तत्र विद्यमानत्वेऽपि तत्तद्ग्रामोपाश्रयादिषु ममत्वाभिमानाभावाच्च । इममेवार्थं प्रकटयन्नाह—‘नैव कुञ्जा’ इत्यादि । परिग्रहम्=तत्तद्ग्रामोपाश्रयादिषु स्थानेषु द्रव्यभावपरिग्रहं नैव कुर्यात्= न धारयेत् । उक्तञ्च—

“ गामे कुले वा नयरे य देसे, ममंति भावं न कर्हिचि कुञ्जा ” ॥ इति ॥

‘असमाणे’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(असमाणे-असमानः) गृहस्थरूपआधार की मूर्च्छा से रहित होने के कारण गृहस्थों के समान नहीं, तथा अनियत विहार आदि द्वारा अन्यतीर्थिकों के समान नहीं, अथवा-असमान-मान से वर्जित, या “असमाणे-असन्”—अल्पतर काल तक ग्राम नगरादिमें रहने वाला होने की वजह से वहां नहीं जैसा ऐसा (भिक्षू-भिक्षुः) मुनि (परिग्रहं-नैव कुञ्जा-परिग्रहं नैव कुर्यात्) उन २ ग्राम एवं उपाश्रयादिकों में द्रव्य एवं भावरूप परिग्रह से नहीं बंधे-उनमें ममत्व भाव न करे। कहा भी है—

“ गामे कुले वा नयरे य देसे, ममंतिभावं न कर्हिचि कुञ्जा ॥ ”

असमाणे इत्यादि.

अन्वयार्थ—असमाणे-असमानः गृहस्थरूप आधारणी मूर्च्छाधी रहित होवाने कारणे गृहस्थाना समान नहीं, तथा अनियतविहार आदि द्वारा अन्य तीर्थिक-आना समान नहीं, अथवा-असमान-मानधी वर्जित, या असमाणे-असन् अल्पतर काल सुधी ग्राम नगर आदिमां रहेवावाणा होवाना कारणे त्यां नहीं जेवा जेवा भिक्षू-भिक्षुः मुनि परिग्रहं नैव कुञ्जा-परिग्रहं नैव कुर्यात् जे जे ग्राम अने उपाश्रय आदिमां द्रव्य अने लावइय परिग्रहधी न अंधाय-तेमां ममत्वभाव न राजे. कथं छे डे—

“ गामे कुले वा नयरे य देसे, ममंति भावं न कर्हिचि कुञ्जा ॥ ”

उ० ५२

ममत्वाभावः कथं स्यादित्याह—गृहस्थैः=श्रावकैः, असंसक्तः=रागसंसर्गवर्जित इत्यर्थः, अनिकेतः=गृहवर्जितः नैकत्र प्रतिबद्धस्थितिक इत्यर्थः, परिव्रजेत्=सर्वतो विहरेत् न तु नियतदेशादावेव । अयं भावः—गृहस्थैः सह रागसंसर्गकरणे, एकत्र प्रतिबद्धास्पदत्वे, नियतदेशग्रामनगरादिविहारितायां वा ममत्वबुद्धिः स्यात् । तस्मादालस्यं निरस्य ग्रामनगरकुलादिष्वनियतवसतिनिर्ममत्वः सन् यथाकल्पमासक्तिरहितश्चर्यामाचरेदिति ।

अर्थात्—ग्रामादि में कहीं भी ममत्व नहीं करे । तथा ( गृहस्थेहि असंसक्तो—गृहस्थैः असंसक्तः ) गृहस्थों के साथ राग के संसर्ग से वर्जित उनमें मोहरूप परिणाम से रहित होकर वह ( अणिएओ—अनिकेतः ) स्थानादि की ममतारहित होता हुआ ( परिव्वए—परिव्रजेत् ) ग्राम नगरादि में विहार करता रहे । इसका भाव यह है कि गृहस्थों से रागात्मक परिणति करने पर साधु को एक ही जगह प्रतिबद्ध होकर रहने का प्रसंग प्राप्त हो सकता है, इस परिस्थिति में नियत देश, ग्राम आदि में ही उसका विहार होगा, अतः उसमें ममत्वबुद्धि का सद्भाव हो जायगा । इसलिये प्रमाद का परित्याग कर ग्राम नगर आदि में अनियतरूप से विचरने वाले मुनि में निर्ममत्वभाव रहता है । इसलिये साधु को चाहिये की वह गृहस्थों से असंसक्त होकर यथाकल्प अनियतविहाररूप चर्या करता रहे ।

भावार्थ—इस गाथा द्वारा सूत्रकार १८वीं गाथा में कहे हुए ही

अर्थात्—ग्रामादिमां कथांय पशु ममत्व न करे तथा गृहस्थेहि असंसक्तो—गृहस्थैः—असंसक्तः गृहस्थानी साथे रागना संसर्गथी रक्षित—तेमां मोडरूप परिष्ठाभथी रक्षित भनीने ते अणिएओ—अनिकेतः स्थानादिकनी ममता रक्षित थर्धने, परिव्वए—परिव्रजेत् ग्राम नगर आदिमां विहार करता रहे. तेना भावार्थ अे छे के, गृहस्थे साथे रागात्मक परिष्णुती करवाथी साधुने माटे अेक जग्याअे प्रतिबद्ध थर्धने रहेवानेा प्रसंग प्राप्त थाय छे. आ परिस्थितिमां नियत ग्रामनगर आदिमांज ते विचरशे, आथी अेनामां ममत्वनी भावना उत्पन्न थशे. माटे प्रमादनेा परित्याग करी ग्रामनगर आदिमां अनियत रूपथी विचरनार मुनिमां निर्ममत्वभाव रहे छे. आटला माटे ज साधु माटे ते गृहस्थेथी असंसक्त भनी यथाकल्प अनियत विहारस्वरूपी चर्या करता रहे ते जरूरी छे.

भावार्थ—आ गाथा द्वारा सूत्रकार १८ भी गाथामां कहेल अर्थनी पुष्टि

अत्र दृष्टान्तः—

कोल्लाकसंनिवेशे बहुश्रुतः शान्तो दान्तः परीषहोपसर्गसहने सुधीरः क्षमा-  
दिगुणगम्भीरः कर्मधूलिनिवारणे समीरः, श्रुतचारित्रधर्माधनपरः क्षीणजङ्घा-  
बलो निःसङ्गनामक आचार्य आसीत् । एकदा तत्र दुर्भिक्षे जातेऽसौ स्वशिष्यं

अर्थ की पुष्टि कर रहे हैं । जब गृहस्थ जनों का सामान्य भी परिचय मनुष्य को उनमें ममत्वबुद्धि से जकड़ देता है तो फिर साधु की आत्मा को वह भाव वहां जकड़ न देगा यह कैसे हो सकता है । इसी-  
लिये साधु को अनियत विहार कहा गया है । इसमें गृहस्थों के संसर्ग से साधु बचा रहता है । संसक्तिभाव उसका उनमें नहीं हो पाता है । सामान्य परिचय में संसक्ति नहीं आती है । अधिक परिचय से यह दोष पैदा होता है । मूर्च्छापरिणति का नाम ही परिग्रह है । यह परि-  
ग्रह द्रव्य एवं भाव के भेद से दो प्रकार का होता है । साधु इन दोनों प्रकार के परिग्रहों से रहित होता है । रागादिकभाव भावपरिग्रह, एवं क्षेत्र वस्तु आदि द्रव्य-परिग्रह है । अनियत विहार करने वाले साधुमें यह दोष नहीं हो सकता है । इसीलिये उसको सदा यथाकल्प अनियत विहार करना भगवान ने कहा है ।

दृष्टान्त-कोल्लाक नाम के सन्निवेश में बहुश्रुत, शांत, दान्त परीषह एवं उपसर्ग के सहन करने में धीर वीर क्षमादि गुणों से गंभीर, कर्म धूलि के निवारण करने में पवनतुल्य निःसंग नाम के एक आचार्य थे ।

करे छे. न्यारे गृहस्थ जनो साथे सामान्य परिचय पणु मनुष्यने तेनी साथे ममत्व-  
बुद्धिथी जकडी दे छे तो पछी साधुना आत्माने ते भाव त्यां न जकडे ते केम  
अनी शके. आटला भाटेज साधुने अनियत विहार सुचवायेत छे. आमां गृहस्थना  
वधु पउता संसर्गथी साधु अची जय छे, संसकितभाव तेना तेमां आवतो नथी,  
सामान्य परिचयथी संसकितभाव उत्पन्न थतां नथी. अधिक परिचयथी आ दोषो  
पेदाथाय छे. मूर्च्छापरिणतीनुं नाम ज परिग्रह छे. आ परिग्रहना द्रव्य अने भाव  
अमे अे प्रकारना लेह छे. साधु आ अन्ने प्रकारना परिग्रहोथी पर होय छे.  
रागादिकभाव भावपरिग्रह अने क्षेत्र वस्तु आदि द्रव्य परिग्रह छे. अनियत  
विहार करनार साधुमां आ दोष आवतो नथी आटला भाटे साधुने सदाय  
यथाकल्प अनियत विहार करवानुं लगवाने कहुं छे.

दृष्टान्त—कोल्लाक नामना सन्निवेशमां बहुश्रुत, शान्त, दान्त, परीषह  
अने उपसर्ग सहन करवामां धीरवीर, क्षमादि गुणोथी गंभीर, कर्मरजुं

विक्रमाचार्यं गच्छसहितं दूरदेशे प्रेषितवात् । स्वयं तु एकेन शिष्येण सह वसन् तत्रैव नगरे नव भागान् कल्पयित्वा यथाकल्पमज्ञातकुले रूक्षशुष्कमन्तप्रान्तमन्नादिकं ग्रहीत्वा विहरति स्म । जराक्रान्तोऽपि चर्यापरीषहं सोढुकामः कृताभिग्रहत्वात् स्वयंभिक्षार्थमटति स्म । एवं चर्यापरीषहं सहमानस्तमभिग्रहं यावज्जीवं निर्वाह्यालोचितप्रतिक्रान्तः कालमासे कालं कृत्वा स्वकल्याणं साधितवान् ।

श्रुतचारित्ररूप धर्म की आराधना करने में ही इनका जीवन का अधिक से अधिक समय निकलता था । अवस्थाप्राप्त होने से इनका जंघाबल क्षीण हो गया था । एक समय की बात है कि वहां पर भयंकर दुर्भिक्ष पड़ गया । आचार्य ने परिस्थिति का अवलोकन कर अपने विक्रमाचार्य शिष्य को गच्छसहित दूर देश में विहार करा दिया और स्वयं एक शिष्य के साथ उसी नगरी में रहे । वहां नौ भागों की कल्पना कर वे यथाकल्प अज्ञातकुल में रूक्ष, शुष्क, अन्त प्रान्त आहारादिक ग्रहण कर वहां विचरण करते रहे । यद्यपि इनकी वृद्धावस्था थी चलने में पूरी शक्ति नहीं थी तो भी चर्यापरीषह को सहन करने की अभिलाषा से वे विविध अभिग्रह ग्रहण करते और स्वयं भिक्षा के लिये जाते । इस प्रकार चर्यापरीषह को सहन करते-उन्होंने अपने अभिग्रहों का अच्छी तरह से निर्वाह किया । अन्त में अपने कर्तव्यों की आलोचना कर उनके प्रति निवृत्त होकर आत्मकल्याण कर लिया ।

निवारणु करवाभां पवनतुल्य येवा, ऐक निःसंग नामना आचार्यं हता. श्रुतचारित्र इय धर्मनी आराधना करवाभां न तेमना एवननो मोटो भाग तेयो गाणता हता. अवस्था थवाथी तेमनुं न्घाणन क्षीणु अनी गयुं हतुं. ऐक समयनी वात छे के, त्यां लयंकर येवो दुकाण पडयो, आचार्ये परिस्थितितुं अवलोकन करी पोताना विक्रमाचार्यं नामना शिष्यने गच्छ साथे दूर देशभां विहार करावराव्ये अने पोते ऐक शिष्यनी साथे ते नगरभां रखा. त्यां नव भागोनी कल्पना करी तेयो यथाकल्प अज्ञात कुणभांथी रूक्ष, शुष्क अन्तप्रान्त आहार आदि ग्रहण करी त्यां विचरता रखा. जे के तेमनी वृद्धावस्थाने कारणे तेमनाभांयालवानी पूरी शक्ति न हती तो पणु चर्यापरीषहने सहन करवानी अलिदाषाथी तेयो विविध अलिग्रह करता अने स्वयं भिक्षा भाटे जाता. आ प्रकारे चर्यापरीषहने सहन करतां करतां पोताना अलिग्रहोने सारी रीते निर्वाह कर्यो. अंत समय उपर पोतानां कर्तव्योनी आलोचना करी तेनाथी निवृत्त थर्ध आत्मकल्याणु प्राप्त कर्युं.

**अत्रान्योऽपि दृष्टान्तः—**

उज्जयिन्यां वैश्रवणनामक आचार्यः समवसृतः । स स्वशिष्यपरिवारैः सह चर्यापरीषहं सहमानो ग्रामानुग्रामं विहरन् कदाचिदटव्यां प्रविष्टः । आचार्य इव शिष्या अपि चर्यापरीषहसद्विष्णव आसन् । तत्र सर्वैर्भुनिभिरकस्माद् मार्गं विस्मृतः । तत्रैव शर्कराप्रभपृथिवीवद् विकीर्णतीक्ष्णकण्टकिते निम्नोन्नतशिलाखण्डदुर्गमे भयङ्करे विपिने गच्छता तेन दिवसो यापितः, रात्रौ च वृक्षाधस्तले निवासः कृतः, एवं शिष्यपरिवारैः सहासौ भ्रमन्नटव्या अन्तं न प्राप,नापि कश्चिद् ग्रामो दृष्टि-

**द्वितीय दृष्टान्त—**

उज्जैनी नगरी में वैश्रवण नाम के आचार्य पधारे । वे अपने शिष्यपरिवार के साथ चर्यापरीषह को सहन करते हुए ग्रामानुग्राम विहार करते२ कदाचित् मार्ग भूल जाने से एक अटवी में जा पहुँचे । इनके समान ही चर्यापरीषह सहन करने में समर्थ इनके शिष्य भी थे । अकस्मात् वे सब के सब ही मार्ग भूल गये । समस्त दिवस उन सबका शर्करा पृथ्वी के समान, इधर उधर फैले हुए तीक्ष्ण कांटों वाले तथा नीचे ऊँचे शिलाखंडों से दुर्गम उस भयंकर अटवी में ही समाप्त हो गया । रात्रि का समय आ गया । दूसरा कोई उपाय नहीं होने से सभी ने वहीं एक वृक्ष के नीचे ठहर कर रात्रि व्यतीत की । प्रातः काल हुआ । सूर्य की किरणें निकली । मार्ग की तलाश करने लगे परन्तु मार्ग का पता नहीं चला । अटवी कितनी बड़ी थी इसका कुछ अन्त ही नहीं ज्ञात हो सका, और न “ यहाँ से ग्राम कितनी दूर है ”

दृष्टान्त भीष्म—उज्जैनी नगरीमां वैश्रवणु नामना आचार्य पधार्या. तेभ्यो योताना शिष्य परिवारनी साथे चर्यापरीषह सडन करता करता ग्रामानुग्राम विहार करता करता मार्ग भूलवाथी अथानक अेक जंगलमां जध यडया. चर्यापरीषह सडन करवामां तेमना समानज समर्थ तेमना शिष्यो पषु डता. जेगानुजेग तेभ्यो अथा मार्ग भूली गया. शर्कराप्रभ पृथ्वीनी समान, आंही तांही योभेर तीक्ष्ण कांटाभ्योथी पथराभ्येदी तथा उथी नीथी शिलाभ्योथी दुर्गम अेवी लयानक अटवी—जंगलमां आभोअे दिवस वीती गथे रात्रीना समय आवी पडोयतां भीजे केध पषु उपाय न डोवाथी सधणाअे अेक आड नीचे रहूने रात वितावी. सवार पडयुं, सूर्यनां किरणो देआयां, मार्गनी तपास करी परंतु अडार नीकणवानो मार्ग न जडयो. जंगल भोटुं डतुं तेना अंतनी पषु अअर पडती न डती अने गाम आ स्थणेथी डेटलुं इर छे ते पषु जषी शकतुं न

पथे समायातः । स च तस्मिन्नेव विषमकण्ठकितपर्वतीयमार्गे चलन्नपि चर्यापरीषहैः पराजितो नाभूत् । आचार्यो वदति—अस्मिन् वने चलतामस्माकं त्रयो दिवसा अतीताः, क्वचिदाहारो न लब्धो नापि पानीयम् ।

एतदभ्यन्तरे केनचिद्देवेन वैक्रियशक्त्या तत्र शोभनो राजमार्गो निर्मितः । तत्र कस्यचिन्नृपस्य चतुरङ्गिणी सेना गच्छति, बह्व्यः शिबिका नरैर्वाह्यमाना इस बात का पता ही चल सका । आचार्य महाराज शिष्यमंडली सहित उसी जंगल में घूमते रहे । कभी २ चलते २ विषम एवं कंटकित पर्वत के मार्ग पर पहुँच जाते तो भी इनके चित्त में खेदखिन्नता नहीं आती । 'चर्यापरीषह सहन करना यह साधु की कर्तव्य कोटि में है' इस ख्याल से ये उसको शांति के साथ सहन करते रहे । चलते २ जब ठीक तीन दिन व्यतीत हो चुके तब आचार्य महाराज ने शिष्यों से कहा कि देखो—इस वन में लगातार अपने लोग तीन दिन से चल रहे हैं फिर भी मार्ग नहीं मिल रहा है । आहार पानी का भी ठिकाना नहीं पड़ा, अतः समस्या विकट बन रही है ।

आचार्य महाराज जब इस प्रकार अपने शिष्यों से कह रहे थे कि इतने में ही किसी देवने अपनी वैक्रियिक शक्ति के द्वारा उस अटवी में एक सुन्दर राजमार्ग बना दिया, और इस प्रकार का दृश्य दिखलाया कि उस पर होकर किसी राजा की चतुरंगिणी सेना जा रही है ।

इतुं आचार्य महाराज शिष्य मंडली साथे ये जंगलमां भ्रम लटक्या. आसतां आसतां कोर्ध वेणो स्थणे विषम एवा कंटाणा टेकरावाणा रस्ते अदी जता तो पणु तेमना चित्तमां जेठ-खिन्नता आवती नही. "चर्यापरीषह सहन करवेो ये साधुनी कर्तव्य कोटीमां छे आ जयासथी तेओ आवता परीषहोने शान्ती साथे सहन करता रह्या. आसतां आसतां न्यारे त्रणु त्रणु दिवसो वीती गया त्यारे आचार्य महाराजे शिष्योने कलुं के, जुओ आ वनमां आपणु त्रणु त्रणु दिवसोथो लटकीओ छीओ छतां पणु अहार नीकणवानो कोर्ध मार्ग देखातो नथी. आहार पाणीनुं पणु ठेकाणुं पडतुं नथी अटवे आपणी समक्ष विकट समस्या उलो थर्ध छे.

आचार्य महाराज आवुं न्यारे पोताना शिष्योने कही रह्या इता ये वभते कोर्ध देवे पोतानी वैक्रियिक शक्ति द्वारा ते जंगलमां अेक सुंदर राजमार्ग बनावी दीधो अने ये प्रकारनुं दृश्य उलुं करी दीधुं के ते मार्ग उपरथी न्णु कोर्ध राजनी चतुरंगिणी सेना जर्ध रही छे तेमां अनेक पासथीओनो बार



आसन् । तत्र सेनापतिः कानने भ्राम्यमाणमाचार्यं ब्रवीति—भगवन् ! सन्त्यत्र बहूनि शिविकादीनि यानानि, यदत्र रोचते भवद्भ्यस्तत्रारुह्य गम्यताम् । आचार्येणोक्तम्—यानेन गमनं नास्माकं कल्पते, इत्युक्त्वा तेन ' सर्वोऽयं देवप्रपञ्च ' इति विज्ञातम् । राजसैनिके गते सति स आचार्यः शिष्यान् पृच्छति—किमिदानीं कर्तव्यम्, शिष्या आहुः—आर्येण यदनुष्ठेयं, तदेवास्माभिरपि कर्तव्यम्, आचार्यः पादपोपगमनार्थं प्रतिज्ञातवान्, तदनु तदीयशिष्या अपि पादपोपगमनार्थं संस्तारकं कृतवन्तः । सर्वैः समाधिभावेन कालं कृत्वाऽऽत्मनः कल्याणं साधितम् । एवमन्यैरपि मुनिभिश्चर्यापरीषहः सोढव्यः ॥ १९ ॥

उस में अनेक पालकियां को वहन करते हुए मनुष्य चले जा रहे हैं । यह सब दृश्य आचार्य महाराज के देखने में आ रहा था । इसी समय एक सेनापति ने अटवी में भ्रमण करते हुए आचार्य महाराज से कहा हे भदन्त ! यहां बहुत से पालकियां आदि बाहन हैं आप जिन्हें पसंद करें उनपर चढ़कर चले । आचार्यश्रीने सेनापति की बात सुनकर कहा कियान पर चढ़कर चलना यह हमारे कल्प से बाहर है । तथा साथ २ में आचार्यमहाराज ने यह भी जान लिया कि यह सब दैवी माया है । सेनापति के चले जाने पर फिर आचार्य महाराज ने शिष्यों से पूछा कि कहो इस समय क्या करना चाहिये । शिष्यों ने कहा जो आपको करना रुचे वही हमें मंजूर है । शिष्यों की बात सुनकर आचार्य महाराजने पादपोपगमन धारण करने की विचारणा करली । शिष्यों ने भी ऐसा ही किया । सबने वहाँ समाधिभाव से संपन्न होकर पण्डितमरण किया,

उपाडीने मनुष्यो यादी रह्या छे आ सधणुं दृष्य आचार्यं महाराज्जना जेवाभां आवी रह्युं डतुं. जेवाभां जेक सेनापतिजे जंगलभां विचरी रहेदा आचार्य महाराज्जने कहुं, लहत ! अडिं धणी पादभीज्यो विगेरे वाडन छे, आप जेने पसंद करे तेभां जेसीने यादो. आचार्ये सेनापतिनी वात सांलणीने कहुं के, पादभीभां जेसीने विचरवुं ते अमारा कल्पनी अहार छे. साथे साथ आचार्य महाराजे जे पणुं लणी लीधुं के आ सधणी दैवी माया छे. सेनापतिना यादी गया पणी आचार्य महाराजे शिष्योने पूछ्युं के, कडो ! आवे वअते डवे शुं करवुं जेधजे ? शिष्योजे कहुं के, आपने जे करवुं रुचे ते अमने मंजुर छे. शिष्योनी वात सांलणीने आचार्य महाराजे पादपोपगमन करवानी प्रतिज्ञा धारणु करी लीधी. शिष्यो जे पणुं जेमज क्युं. परिष्ठाजे सधणा त्यां समाधी लावथी संपन्न जनी पंडित मरण पाभ्या अने

अथ नैषेधिकीपरीषहजयं प्राह—

मूलम्—सुसाणे सुन्नगारे वां, रुक्खमूले वं एगओ ।

अकुक्कुओ निसीएज्जा, नं यं वित्तासए परं ॥ २० ॥

छाया—श्मशाने शून्यागारे वा, वृक्षमूले वा एककः ।

अकौकुच्यः निषीदेत् न च वित्रासयेत् परम् ॥ २० ॥

टीका—‘ सुसाणे ’ इत्यादि ।

श्मशाने—शवस्थाने, वा=अथवा, शून्यागारे=निर्जनगृहे, वा=अथवा, वृक्ष-  
मूले=वृक्षाधस्तले, मुनिः एककः=द्रव्यतः एकाकी प्रतिमाऽपेक्षया, भावतो—मुनि  
गणस्थितोऽपि रागद्वेषरहितः, अकौकुच्यः=अशिष्टचेष्टारहितः—विषयचेष्टावर्जितः  
सन्नित्यर्थः, निषीदेत्=भयरहितं यतनापूर्वकमुपविशेदित्यर्थः। च—पुनः मुनिस्तत्रोपवि-  
ष्टः सन्, परम्—अन्यं जीवं द्वीन्द्रियादिकं, न वित्रासयेत्=तत्रस्थं जीवं स्थानभ्रष्टादिकं

और आत्मकल्याण की सिद्धि की । इसी तरह समस्त साधुओं को चर्यापरीषह पर विजय पाने में प्रयत्नशील रहना चाहिये ॥१९॥

अब दसवें नैषेधिकीपरीषह को जीतने के लिये सूत्रकार कहते हैं—‘ सुसाणे ’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—मुनि को (सुसाणे—श्मशाने) श्मशानमें (वा) अथवा (सु-  
न्नगारे—शून्यागारे) शून्य घर में (वा) या (रुक्खमूले—वृक्षमूले) वृक्ष के नीचे  
(एगओ—एककः) एकाकी द्रव्य—से प्रतिमा की अपेक्षा अकेले, तथा भाव  
की अपेक्षा मुनि समुदाय में रहते हुए भी रागद्वेषरहित एवं (अकु-  
कुओ—अकौकुच्यः) अशिष्ट चेष्टा से रहित होते हुए ( निसीएज्जा—  
निषीदेत् ) भयशून्य होकर यतनापूर्वक रहे । ( य—च ) तथा वहाँ पर

आत्मकल्याणकी सिद्धि भेणवी. आ प्रभाण्णे सर्वं साधुओअ्थे चर्यापरीषह उपर  
विजय भेणववा पयत्नशील रहेवुं भेधअ्थे. ॥१९॥

इवे सूत्रकार इशमा नैषेधिकीपरीषहने एतवा भाटे उडे छे—‘सुसाणे’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—मुनिअ्थे सुसाणे—श्मशाने श्मशानमां “वा” अथवा सुन्नगारे—शून्यागारे  
सूना अ्थेवा धरमां “ वा ” अथवा रुक्खमूले—वृक्षमूले वृक्षनी नीचे एगओ—एककः  
अेकाकी द्रव्यथी प्रतिमानी अपेक्षाअ्थे अेकला तथा लावनी अपेक्षाअ्थे मुनि समुदायमां  
रहेतां छतां पणु रागद्वेष रडित अने अकुक्कुओ—अकौकुच्यः अशिष्ट चेष्टाथी  
रडित अनीने निसिएज्जा—निषीदेत् अथ रडित थर्ध यतनापूर्वक रहेवुं यच

न कुर्यादित्यर्थः । इदमत्र-बोध्यम्-आदावस्मिन्नध्ययने 'निसीहियापरीसहे' इति यदुक्तं तस्य च्छाया 'नैषेधिकीपरीषहः' इति । निषेधः=प्राणातिपातादि निवृत्तिः, स प्रयोजनमस्या इति नैषेधिकी । यद्वा निषेधः=पापकर्मणां गमनादिक्रियायाश्च निवृत्तिः, स प्रयोजनमस्या इति नैषेधिकी, निषद्या=उपवेशनस्थानम् कायोत्सर्ग-भूमिः । स्वाध्यायभूमिश्चेत्यर्थः । सैत्र च परिषहो नैषेधिकीपरीषहः उपवेशनस्थान परीषहः, तत्र श्मशानादिषु स्थानेषु स्थितेन मुनिना भयंकारोपसर्गसमापतने सति न भेतव्यम्, नापि स्वरविकारादिभिरन्येषां भयमुत्पादनीयमिति ॥ २० ॥

रहे हुए उस मुनि को चाहिये की वह ( परं न वित्तासए-परं न वित्रासयेत्) वहां पर पहिले से रहने वाले द्वीन्द्रियादीक जीवों को स्थान-भ्रष्ट न करे, यहां यह समझना चाहिये कि पहिले इस अध्ययन में " निसीहिया परीसहे " ऐसा कहा गया है उसकी संस्कृत छाया नैषेधिकीपरीषहः" ऐसी की गई है । उसका अर्थ इस प्रकार है- " प्राणातिपातादिक क्रियाओं से निवृत्ति करने का जिसका प्रयोजन हो वह नैषेधिकी है, अथवा पापकर्मों की एवं गमनादिक्रिया की निवृत्तिरूप निषेध जिसका प्रयोजन हो वह नैषेधिकी है, अथवा निषद्या उपवेशन स्थान का नाम है, वह या तो कायोत्सर्ग की भूमिस्वरूप होगा या स्वाध्याय की भूमिस्वरूप । उस निषद्यारूप जो परीषह उसका नाम नैषेधिकीपरीषह है । इसका फलितार्थ उपवेशनस्थान सम्बन्धी परीषह नैषेधिकीपरीषह है । श्मशान आदिक स्थानों में रहे हुए मुनि को भयंकर उपसर्ग के

तथा त्यां रडेता ये मुनिनुं कर्तव्यं छे के ते परं न वित्तासए-परं न वित्रासयेत् त्यां पडेलाथी रडेवावाणा द्विन्द्रियादिक एवोने स्थानभ्रष्ट न करे, अहीं ये समजवुं जेधये के, पडेलां या अध्ययनमां निसीहिया परीसहे येवुं कडेवायुं छे के जेनी संस्कृत छाया " नैषेधिकी परीषहः " येम करवामां आवेल छे. येनो अर्थ या प्रकारनो छे- " प्राणातिपातादिक क्रियाओथी निवृत्ति करवावानुं जेनुं प्रयोजन होय ते नैषे- धिकी छे, अथवा पापकर्मोनी अने गमनादि क्रियाओनी निवृत्तिरूप निषेध जेनुं प्रयोजन होय ते नैषेधिकी छे, अथवा निषद्या उपवेशन स्थाननुं नाम छे. ते यातो कायोत्सर्गनी भूमि स्वरूप होय या स्वाध्यायनी भूमिस्वरूप. ये निष- द्यारूप जे परीषह तेनुं नाम नैषेधिकीपरीषह आनो तो इलीतार्थ उपवेशन स्थान संबन्धी परीषह नैषेधिकीपरीषह छे, श्मशान आदि स्थानोमां रडेनाश मुनिओ लयंकर उपसर्गोना आववा छतां पछु भयलीत न अनवुं जेधये,

उक्तमर्थं विशदीकुर्वन्नाह—

मूलम्—तत्त्वं से<sup>३</sup> चिद्वमाणस्स, उवसंग्गा भिधारण ।

संकांभीओ नं गच्छेज्जा, उट्टित्तां अन्नमासणं ॥ २१ ॥

छाया—तत्र तस्य तिष्ठतः, उपसर्गा अभिधारयेत् ।

शङ्काभीतः न गच्छेत्, उत्थायान्यदासनम् ॥ २१ ॥

टीका—‘तत्त्वं’ इत्यादि ।

तत्र=श्मशानादौ, तिष्ठतः=उपविष्टस्य तस्य मुनेः उपसर्गाः—देवमनुष्यतिर्य-  
क्कृता उपद्रवाः, यदि भवेयुस्तर्हि स मुनिस्तानुपसर्गान् अभिधारयेत्—‘ममाचल  
चेतसः किमेते करिष्यन्तीति चिन्तयन् सहेत । परन्तु शङ्काभीतः=उपसर्गकृतोपद्रव-  
संशयादुद्वेगवान् सन्, उत्थाय—ततः स्थानादपसृत्य, अन्यत्=परम्, आसनम्=  
आस्यते—उपविश्यतेऽस्मिन्नित्यासनं=स्थानम्, न गच्छेत् ।

आने पर भी भयभीत नहीं होना चाहिये और न अपने अंगों को विकृत  
करके दूसरों को भयभीत करना चाहिये ॥ २० ॥

इसी अर्थ को विशद करते हुए सूत्रकार समझाते हैं—  
‘तत्त्वं से’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(तत्त्वं—तत्र) श्मशान आदि स्थान में (चिद्वमाणस्स से—  
तिष्ठतस्तस्य) स्थित उस साधुके ऊपर (उवसंग्गा-उपसर्गाः) देव, मनुष्य,  
तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्ग यदि आवे तो उस मुनि का कर्तव्य है कि वह  
उन उपसर्गों को (अभिधारण—अभिधारयेत्) “ये उपसर्ग मेरा क्या  
कर सकते हैं” निश्चलचित्त से ऐसा विचार कर सहन करे । परन्तु  
(शंकाभीओ—शंकाभीतः) उपसर्गकृत उपद्रव के सन्देह से उद्वेगवान्

अथवा तो पोताना अंगोने विकृत बनावी थीजने लयभीत करवा न लेधये ॥२०॥

आञ् अर्थविशे सूत्रकार विषदरूपथी समजवे छे. ‘तत्त्वं से’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—(तत्त्वं—तत्र) श्मशान आदि स्थानमां चिद्वमाणस्स से—तिष्ठतः तस्य रडेला  
अं साधुनी उपर उपसग्गा—उपसर्गाः देव, मनुष्य, तिर्यञ्च सम्बन्धी उपसर्ग आवे  
त्यारे अं मुनिनुं कर्तव्य छे के ते अं उपसर्गोने अभिधारण—अभिधारयेत् आ  
उपसर्ग माइं शुं करी शकवाना छे “निश्चल” चित्ते अंवेो विचार करी सहन करे.  
परंतु शंकाभीओ—शंकाभीतः उपसर्गकृत उपद्रवना संदेहथी उद्वेगवान् थर्ध

स्वाध्यायकरणार्थं कायोत्सर्गकरणार्थं वा स्त्रीपशुपण्डकविर्जिते स्थाने निषण्णेन मुनिना अनुकूलप्रतिकूलोपसर्गसंपातेऽनुद्वेगकरणेन निषद्याऽपरनामको नैषेधिकीपरीषहः सोढव्य इति भावः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

हस्तिनापुरे कुरुदत्तनामा श्रेष्ठिपुत्रः प्रव्रजितो भूत्वैकाकिविहारप्रतिमया ग्रामानुग्रामं विहरन्नयोध्यानगर्या ईषद्दूरप्रदेशे कायोत्सर्गम् कृत्वा स्थितः । तत्र

होकर ( उद्विक्ता-उत्थाय ) उठकर ( अन्नमासणं-अन्यद् आसनं ) दूसरे किसी स्थान पर ( न गच्छेज्जा-न गच्छेत् ) नहीं जावे ।

तात्पर्य इसका यह है कि स्वाध्याय करने के लिये अथवा कायोत्सर्ग करने के लिये स्त्री पशु पंडक से वर्जित स्थान में बैठे हुए मुनि को चाहिये कि वह अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग के आने पर अनुद्विग्न चित्त होकर निषद्यापरीषह कि जिसका दूसरा नाम नैषेधिकीपरीषह है उसको सहन करे । अर्थात्-श्मशान आदि स्थान में बैठने पर उपसर्ग आदि का आना स्वाभाविक है । अतः ऐसी स्थिति में मुनि का कर्तव्य है कि वह तिर्यञ्चादिकृत उन उपसर्गों को अविचलितचित्त होकर सहन करे । भयभीत न होवे, और न एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपनी रक्षा के अभिप्राय से जावे ।

दृष्टान्त-हस्तिनापुर में कुरुदत्त नाम का एक सेठ का पुत्र रहता था । उसने धर्म का उपदेश सुनकर दीक्षा धारण करली । जब वे श्रुतचा-

उद्विक्ता-उत्थाय त्यांथी उठीने अन्नमासणं-अन्यत् आसनं भीज्ज केअं स्थान उपर न गच्छेज्जा-न गच्छेत् न लय.

आनेा लाव अे छे के, स्वाध्याय करवा भाटे अथवा तो कायोत्सर्ग करवा भाटे स्त्री, पशु, पंडकथी वण्त अेवा स्थानमां अेठेला मुनिअे गमे तेवा अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग आववाथी उद्विग्न चित्त न जनतां विषद्यापरीषह के जेनुं भीणुं नाम नैषेधिकीपरीषह छे अेने सहन करे. अर्थात्-श्मशान आदि स्थानमां अेसवाथी उपसर्ग वगेरेनुं आवपुं स्वाभाविक छे. आथी अेवी स्थितिमां मुनिनुं कर्तव्य छे के, तिर्यञ्च आदि द्वारा यता अे उपसर्गेनि अविचलित चित्त अनी सहन करे अनेलयभीत न थाय. पौताना रक्षथुना अलिप्रायथी अेक स्थानथी भीज्ज स्थान उपर न लय.

दृष्टांत—हस्तिनापुरमां कुरुदत्त नामे अेक शेठनेा पुत्र रहेतो उतो अेण्ठे धर्मनेा उपदेश सांभणी दीक्षा धारथु करी लीधी. न्यारे ते श्रुतचारित्र ३प

रात्रेश्चतुर्थपौरुष्यां कुतश्चिद् ग्रामाद् गोधनापहारं कृत्वा चौराः कुरुदत्तमुनेः पार्श्व-  
स्थेन मार्गेण सवेगं गताः । पश्चाद् गोस्वामिनस्तदन्वेषकास्तत्रायाताः द्वौ मार्गौ  
तत्र दृष्ट्वा ते कुरुदत्तमुनिं पृच्छति-भदन्त ! ब्रूहि चौराः केन पथा गताः । तद्वचनं  
श्रुत्वाऽपि स मुनिर्न किंचिदुक्तवान् ततस्ते गोस्वामिनः कोपावेशेन मुनेः शिरसि  
आर्द्रमृत्तिकालेपेन पालीं कृत्वाऽङ्गाराः क्षिप्त्वाः मुनिस्तु तदुपसर्गकृतवेदनां सहमानो

रित्ररूप धर्म के पालन करने में पूर्ण निष्णात हो गये तो उन्होंने ने  
एकाकीविहारप्रतिमा लेकर ग्रामानुग्राम विचरण करने लगे विहार  
करते २ वे अयोध्यानगरी के समीप कुछ दूर प्रदेश में कायोत्सर्ग  
धारण कर रहे । रात्रि के चतुर्थ प्रहर में किसी ग्राम से गायों को चुरा-  
कर चौर कुरुदत्त मुनि के पास के मार्ग से जल्दी २ बड़े वेग के साथ  
निकले । इनके निकल जाने के बाद ही गायों के स्वामी उनकी तपास  
करते हुए वहाँ पर आ पहुँचे । वहाँ से दो रास्ते जाते थे । उन्हें देख-  
कर उन लोगों ने कुरुदत्त मुनि से पूछा कि भदन्त ! यहाँ से चौर किस  
रास्ते होकर गये हैं । मुनि ने उनकी बात सुनकर कुछ भी उत्तर नहीं  
दिया । वे सबके सब मुनि के ऊपर रुष्ट हुए । क्रोध के आवेशमें  
आकर उन लोगों ने मुनिराज के माथे ऊपर मिट्टी की क्यारी बनाकर  
उसमें जलते हुए अंगार रख दिये । मुनि ने उनके द्वारा किये गये इस

धर्मतुं पालन करवाभां पूरुं पणु निष्णात जनी गया त्यारे अेभणु अेकाकी  
विहार प्रतिमा लध ग्रामानुग्राम विचरण करवा भांडयुं. विहार करतां करतां ते  
अयेध्या नगरीनी पासे थोडा हरना प्रदेशभां कायोत्सर्ग धारण करी रह्या.  
रात्रीना थोथा प्रहरना समये कोध गामथी गाथो थोरीने थोर कुरुदत्त मुनिनी  
पासेना मार्ग उपरथी उतावणथी निकणी गया. गाथो थोरीने लागेला अे थोरनी  
पाछण अेना नीकणी जवा पछी थोडीवारो गाथो जेनी थोराथेदी ते अेनी  
तपासभां नीकण्या. अने कुरुदत्त मुनि जे स्थाने जेठेला हता त्यां पडोअ्या. आं  
स्थानेथी जुदी जुदी आणु जता जे रस्ता कुटता होवाथी गाथोना भादीकोअे  
मुनिने जेठेला जेध तेनी पासे आवी पूछयुं के, लदंत ! अहिंथी थोरो कध  
आणुअे गया ? मुनिअे आनो कोध प्रत्युत्तर न आपतां ते दोको मुनि उपर  
भीजया अने कोधना आवेशभां आवी जध ते दोकोअे मुनिराजना माथा उपर  
भाटीनी क्यारी बनावी तेभां अण अणता अंगारा भूकी दीधा. अे दोको द्वारा  
कराथेला उपसर्गथी मुनिने पूज वेदना थध परंतु तेने पूजज शांत थिते



निरुद्धेगः सन् तत्र स्थित एव समाधिभावेन कालं कृत्वा सिद्धिं प्राप्तवान् । एवं-  
मन्यैरपि मुनिभिर्नैषेधिकीपरीषहः सोढव्यः ॥ २१ ॥

अथ शय्यापरीषहजयं प्राह—

मूलम्—उच्चावयाहिं सेज्जाहिं तवस्सी भिक्खु थामवं ।

नाइवेलं विहन्नेजा, पार्वदिट्ठी विहंन्नई ॥ २२ ॥

छाया—उच्चावचाभिः शय्याभिः, तपस्वी भिक्षुः स्थामवान् ।

नातिवेलं विहन्यात्, पापदृष्टिर्विहन्यते ॥ २३ ॥

टीका—‘उच्चावयाहिं’ इत्यादि ।

स्थामवान्=स्थाम=बलं तद्वान्, शीतोष्णादिसहनशक्तिमानित्यर्थः, तपस्वी=  
अनशनादिविविधतपश्चरणशीलः, भिक्षुः=मुनिः, उच्चावचाभिः=उत्कृष्टापकृष्टाभिः

उपसर्ग की वेदना को बड़े ही शान्त परिणामों से सहन किया । चित्त में जरा भी उद्वेग नहीं आने दिया । ध्यान में ही वे समाधिभाव से स्थिर रहे । अन्त में कालधर्म को प्राप्त कर कुरुदत्तमुनिने सिद्धि प्राप्त की । इसी प्रकार अन्य मुनियों को भी इस कथासे यही शिक्षा लेनी चाहिये कि निषद्यापरीषह में यदि इस प्रकार के विघ्न आवे तो उन्हें सहन करना चाहिये ॥ २१ ॥

अथ ग्याहरवें शय्यापरीषहजय के विषय में सूत्रकार कहते हैं—  
‘उच्चावयाहिं’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(थामवं—स्थामवान्) शीत उष्ण आदि परीषहों को सहन करनेकी शक्तिवाला, तथा (तवस्सी—तपस्वी) अनशन आदि विविध तपों का अनुष्ठान करने वाला (भिक्खु—भिक्षुः) साधु (उच्चावयाहिं सेज्जाहिं—उच्चावचाभिः शय्याभिः) अनुकूल जैसे हेमन्त शिशिर

सहन करी. चित्तमां जरा पणु उद्वेग आववा न दीधो अने ध्यानमां ज समाधी लावमां स्थिर रह्या. अन्ते काण धर्मने पाभी अेभले सिद्धि प्राप्त करी. आ प्रकारे अन्य मुनियोअे पणु आ कथाथी अेवी शिक्षा लेवी नेधअे के, निषद्या-परीषहमां कदाय आ प्रकारनां विघ्न आवे तो अेने सहन करवां नेधअे. ॥२१॥

हुवे सूत्रकार शय्यापरीषह अतवाने कडे छे. ‘उच्चावयाहिं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—थामवं—स्थामवान् ठंडीना अने गरमीना परीषहोने सहन करवानी शक्तिवाणा तथा तवस्वी—तपस्वी अनशन आदि विविध तपोंनुं अनुष्ठान करवावाणा भिक्खु—भिक्षुः साधु उच्चावयाहिं सेज्जाहिं—उच्चावचाभिः शय्याभिः अनुकूल—जेवी के,

उच्चाः=उत्कृष्टाः, अनुकूलाः-हेमन्तशिशिरयोः शैत्यरहिताः उष्णस्पर्शवत्यो वा, ग्रीष्मवर्षासु उष्णस्पर्शवर्जिताः, शीतस्पर्शवत्यो वा, द्रव्यतः उच्चप्रदेशस्थिता वा उच्चाः, सुधाभिः-‘चूना, सिमेन्ट’ इत्यादिभाषाप्रसिद्धाभिः, उपलिप्तलादीना-मुपलक्षणं चैतत् । अवचाः=अपकृष्टाः प्रतिकूलाः-हेमन्तशिशिरयोः शीतस्पर्शयुक्ताः, ग्रीष्मवर्षासु उष्णस्पर्शवत्यः, द्रव्यतः अधोभागस्थिता वा अवचाः, उच्चाश्च अवचाश्चेति, उच्चावचास्ताभिः, शय्याभिः शेरते यासु साधवस्ताः शय्याः=वसतयः उपाश्रयाः, पट्टकादिरूपाः संस्तारकाश्च उच्यन्ते, ताभिर्हेतुभिः, अतिवेळम्-वेला-मतिक्रम्य, स्वाध्यायादिकं न विहन्यात्=न परित्यजेत् । यद्वा-अतिवेलाम्-इति छाया । वेलाशब्दो मर्यादावाचकः, अतिशयिता वेला अतिवेला, अन्यमर्यादाऽपेक्षयाऽतिशयिनीं मर्यादां समतारूपां न विहन्यात्=रागद्वेषजनिताभ्यां हर्षविषादाभ्यां

ऋतु में शैत्यरहित, अथवा-उष्णस्पर्शसहित, ग्रीष्म वर्षाऋतु में उष्ण-स्पर्शरहित, अथवा शीतस्पर्शसहित, अथवा द्रव्य की अपेक्षा उच्च-प्रदेश में स्थित, उपलक्षण से चूना सिमेंट आदि की बनाई गई ऐसी उच्चशय्या-उपाश्रय अथवा पाटला संस्तारकको लेकर, अथवा अवच-उच्च से प्रतिकूल-हेमन्त शिशिर में शीतस्पर्शयुक्त, ग्रीष्मवर्षा में उष्णस्पर्शयुक्त तथा द्रव्य की अपेक्षा अधोभाग में स्थित ऐसी शय्या को-उपाश्रय, पाटला, संस्तारक को-लेकर ( अइवेलं न विहन्ने-ज्जा-अतिवेलं न विहन्यात् ) वेला का उल्लंघन करके स्वाध्याय आदि को न छोड़े, अर्थात् कालोकाल प्रतिलेखनादि करे । अथवा रागद्वेष-जनित हर्षविषादरूप परिणामों के द्वारा अन्यमर्यादा की अपेक्षा अति-शय्यविशिष्ट समतारूप मर्यादा का उल्लंघन न करे । उच्चशय्या-

हेमन्त शिशिर ऋतुमां शैत्य रहित, अथवा उष्णस्पर्शवाणी ग्रीष्म, वर्षा ऋतुमां उष्णस्पर्श रहित अथवा शीतस्पर्श सहित अथवा द्रव्यनी अपेक्षाथी उच्य प्रदेशमां रडेल. उपलक्षणथी युना, सीमेन्ट आदिथी अनाववामां आवेल उच्य शैया, उपाश्रय, अथवा पाटला संस्तारकने लध अथवा अवच उच्यथी प्रतिकूल हेमन्त शिशिरमां ङं दीवाणी, ग्रीष्म वर्षांमां उष्ण स्पर्शवाणी तथा द्रव्यनी अपेक्षा अधोभागमां स्थित येवी अवचशय्याने-उपाश्रय, पाटला, संस्तारकने लध अइवेलं न विहन्नेज्जा-अतिवेलं न विहन्यात् वेलानुं उलंघन करी स्वाध्याय आदिने न छोडे, अर्थात् कालोकाण प्रतिलेखनादि करे. अथवा-रागद्वेष जनित हर्ष विषाद रूप परिणामो द्वारा अन्य मर्यादानी अपेक्षा अतिशय विशिष्ट समता रूप मर्यादानुं उलंघन न करे. उच्य शय्या-अनुकूल वस्तिने लाल मणतां येवो विचार

न लङ्घयेत् । उच्चशय्यां प्राप्य 'अहो ! भाग्यवानऽहं यन्मम सर्वकालसुखदा वसति-  
मिलिते'ति हर्षः, अवचशय्यां प्राप्य तु 'अहो ! कीदृशी मम मन्दभाग्यता, यतः  
शय्याऽपि शीतादिनिवारिका न लभ्यते' इति विषादः । एवंभूताभ्यां हर्षविषा-  
दाभ्यां मध्यस्थभावरूपां मर्यादां नोल्लङ्घनीयेत्यर्थः । यस्तु मुनिः पापदृष्टिः=पूर्वोक्त  
मर्यादोल्लङ्घकः स विनिहन्यते, परीषहैः पराजितोऽत एव साधुमर्यादास्वलितो  
मुनिः संयमात्पतितो भवतीत्यर्थः । तस्मादुपाश्रयादौ रागद्वेषपरिवर्जनेन शय्या-  
परीषहः सोढव्य इति भावः ॥ २२ ॥

अनुकूल वस्ति को पाकर ऐसा विचार न करे कि "अहो ! मैं बड़ा ही  
भाग्यशाली हूँ जो मुझे सर्वकाल में सुख देनेवाली वसति मिली है" तथा  
अवचशय्या प्रतिकूल वस्ति को पाकर ऐसा विचार न करे  
कि-अहो ! मैं कैसा मन्दभागी हूँ जो मुझे शीतादि निवारण करने  
वाली वस्ति भी नहीं मिली । इस प्रकार अनुकूल प्रतिकूल  
वसति की प्राप्ति को लेकर मुनि को हर्षविषादात्मक परिणामों द्वारा  
मध्यस्थभावरूप मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये । जो  
मुनि (पावदिद्वी विहन्नई-पापदृष्टिः विहन्यते) अनुकूल प्रतिकूल  
वसति में रागद्वेष करता है वह पापदृष्टि मुनि इस समताभावरूप  
मर्यादा का नाश करता हुआ संयम से पतित हो जाता है । इसलिये  
मुनिका कर्तव्य है कि वह उपाश्रय आदि में रागद्वेष के परिवर्जन से  
शय्यापरीषह सहन करे ॥ २२ ॥

न करे के, "अहो ! हूँ भूषण न भाग्यशाली छुं. ने भने सर्वकाल सुख देवावाणी  
वस्ति भणी छे" तथा "अवच" शय्या प्रतिकूल वस्तिथी अवेवा विचार न करे के, हूँ  
केवे मंढलागी छुं ने भने ठंडी आदिनुं निवारण करवावाणी वस्ति न भणी, आ  
प्रकारे अनुकूल प्रतिकूल वस्तिनी प्राप्तिने लघु मुनिअे दुर्ष विषादात्मक परिणामे  
द्वारा मध्यस्थ भाव रूप मर्यादानुं उलंघन करपुं न लेछे अे. ने मुनि पावदिद्वी  
विहन्नई-पापदृष्टिः विहन्यते अनुकूल प्रतिकूल वस्तिभां रागद्वेष करे छे. ते  
पापदृष्टि मुनि आ समता भाव रूप मर्यादानो नाश करी संयमथी पतित  
थछे नय छे. आ भाटे मुनिनुं कर्तव्य छे के ते, उपाश्रय आदिभां रागद्वेषना  
परिवर्जनथी शय्या परीषह सहन करे ॥ २२ ॥

शय्यापरीषहः कया रीत्या सोढव्यः ? इति प्रदर्शयति—

मूलम्—पइरिक्कमुवस्सयं लद्धं, कल्लाणं अदुव पावंगं ।

किमेगरायं करिस्सइ, एवं तत्थऽहियासए ॥ २३ ॥

छाया—प्रतिरिक्तमुपाश्रयं लब्ध्वा, कल्याणम् अथवा पापकम् ।

किमेकरात्रं करिष्यति एवं तत्राध्यासीत ॥ २३ ॥

‘पइरिक्क’ इत्यादि ।

साधुः, कल्याणम्=शातरूपं सुखदायकम्, अथवा पापकं-पापरूपं दुःखजनकम्, प्रतिरिक्तं=स्त्रीपशुपण्डकादिवर्जितम् - उपाश्रयं=वसति, लब्ध्वा=प्राप्य, एकरात्रम्-एकस्यां रात्रौ अयमुपाश्रयः किं सुखं दुःखं वा करिष्यति न किञ्चित् करिष्यति’ एवम्=ईदृशेन विचारेण तत्र=उपाश्रये अध्यासीत=अधिवसेत्-रागं द्वेषं वा न कुर्यादित्यर्थः । अयं भावः-कञ्चित्-समभूमिकं सुशोभनं सर्वतुसुखदं,

शय्यापरीषह किस तरह सहना चाहिये। इस बातको सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘पइरिक्क०’-इत्यादि।

अन्वयार्थ—साधु (कल्लाणं-कल्याणम्) शातरूप-सुखदायक (अदुव-अथवा) या (पावंगं-पापकम्) अशातरूप-दुःखजनक ऐसे (उवस्सयं-उपाश्रयं) उपाश्रय-वसति को जो (पइरिक्कं-प्रतिरिक्तम्) स्त्री पशु एवं पण्डक आदि से रहित है (लद्धं-लब्ध्वा) प्राप्त कर ऐसा विचार करे कि ( एगरायं-एकरात्रं) यह उपाश्रय एकरातभर ठहरने वाले मेरे लिये क्या तो सुख दे सकता है और क्या दुःख दे सकता है ( एवं तत्थऽहियासए-एवं तत्राध्यासीत ) इस प्रकार विचार कर के वहां रहे - उपाश्रय के विषय में वह रागद्वेष न करे । तात्पर्य यह कि साधु के लिये कहीं पर समभूमि-

शय्यापरीषह कइ रीतथी सडन करवे। आ वातने सूत्रकार प्रदर्शित करे छे ‘पइरिक्क’ इत्यादि।

अन्वयार्थ—साधु कल्लाणं-कल्याणम् शातरूप-सुखदायक अदुव-अथवा या पावंगं-पापकम् अशातरूप-दुःखजनक अथवा उवस्सयं-उपाश्रयं उपाश्रय-वसति के जे पइरिक्कं-प्रतिरिक्तम् स्त्री पशु अने पण्डक आदिथी रहित छे, अथवा वसति लब्ध्वा-लब्ध्वा प्राप्त करी विचार करे के, एगरायं-एकरात्रं आ उपाश्रय अक रात रोकवावाणा भारा भाटे शुं सुख आपनार छे के शुं दुःख आपनार छे. एवं तत्थऽहियासए-एवं तत्राध्यासीत आ प्रकारने विचार करी त्यां रहे. उपाश्रयना विषयमां ते रागद्वेष न करे. तात्पर्य अे छे के, साधुने भाटे कौं स्थणे समभूमिवाणे उपाश्रय

क्वचिद्विषमभूमिकं पांसुप्रचुरं शर्कराशकलसंकुलं शीतकालेऽतिशीतं ग्रीष्मे बहुघर्मकं दुःखदं सुखदं वा स्यादिरहितमुपाश्रयं, मृदुकठिनादिभेदेनोच्चावचं पट्टकादिरूपं संस्तारकं च प्राप्य, तत्र तत्र रागद्वेषाकरणेनानुद्विग्नो भवेत् । एवं शय्यापरीषहः साधुना विजितो भवतीति ।

वाला उपाश्रय मिले या विषम भूमिवाला, चाहे तो वह ऋतु के अनुकूल हो चाहे प्रतिकूल हो, चाहे वह कंकर पत्थर से युक्त भूमिवाला हो चाहे सिमेंट आदि से बनी हुई भूमिवाला हो—कैसा भी क्यों न हो परन्तु स्त्री पशु आदि से यदि वह रहित है तो साधु को उस में किसी भी प्रकार का हर्षविषाद नहीं करना चाहिये । इसी तरह संस्तारक भी चाहे मृदुगुणयुक्त हो चाहे कठिन हो कैसा भी हो उसको प्राप्तकर साधु को उस विषय में भी रागद्वेषपरिणति नहीं करनी चाहिये । इस तरह करने से साधु के द्वारा शय्यापरीषह जीता जाता है ।

भावार्थ—शय्यापरीषह पर यदि साधु को विजय पाना है तो उसकी विचारधारा ऐसी कभी नहीं होनी चाहिये कि यह शय्या, उपाश्रय अथवा पाट-पाटला आदि सुन्दर हैं या असुन्दर है? ऋतु के अनुकूल हैं या प्रतिकूल हैं । साधु के लिये क्या तो अनुकूल और क्या प्रतिकूल? सबके ऊपर उसकी समान दृष्टि होनी चाहिये । यह तो दृष्टि की विषमता है जो साधुके लिये उसकी समाचारी से उचित नहीं मानी जाती है। संयम का निर्विघ्नरूप से निर्वाह जैसे भी हो सके उस रूप से

भजे अथवा विषमभूमिवाणो, ते ऋतुने अनुकूल ढाय अथवा प्रतिकूल ढाय, याडे ते कांकरा पत्थरनी भूमिवाणो ढाय के, याडे सीमेंट आदिनीभूमिवाणो गमे तेवो ढाय. परंतु स्त्री पशु आदिथी जे ते रहित ढाय तो साधुजे तेमां केध प्रकारनो हर्ष विषाद नहीं करवो जेधजे. जे ज रीते संस्तारक पशु याडे तेवुं सुंवाणुं ढाय अथवा तो कठणु ढाय गमे तेवुं ढाय तेने प्राप्त करी साधुजे ते विषयमां पशु रागद्वेश परिणति राखवी न जेधजे आवी रीते करवाथी साधु शय्यापरीषह जती जय छे.

भावार्थ—शय्यापरीषहने कदाच साधुजे जतवो ढाय तो तेनी विचार धारा जेवी कही न ढाय के, या शय्या उपाश्रय-पाटला आदि सुंदर छे के असुंदर, ऋतुने अनुकूल छे के प्रतिकूल साधु माटे क्युं अनुकूल अने क्युं प्रतिकूल अथा उपर तेनी समान दृष्टि ढावी जेधजे. जे तो दृष्टिनी विषमता छे जे साधु माटे तेनी समाचारीथीउचित मानवामां आवती नथी. संयमनो निर्विघ्न

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयति—

एकदा भावितात्मा शुभचन्द्रनामाचार्यः सुविनीतशिष्यपरिवारैः सह ग्रामानु-  
ग्रामं विहरन् श्रावस्तीनगर्या बहिरशोकनामके नन्दनवनतुल्ये उद्याने समवसृतः ।  
तस्य बहुमध्यदेशभागे केलिप्रियभूपस्य प्रासाद आसीत् । स च प्रासादः प्रासादीयः  
प्रदर्शनीयोऽभिरूपः प्रतिरूपो मणिकुट्टिमतलः समरमणीयभूमिभाग आदर्शतलोपमः  
कोमलस्पर्शः सर्वतुसुखदः सर्वथाऽनुकूलो रुचिरपीठफलकसंस्तारकयुक्त आसीत् ।  
तत्रासौ तपःसंयमाराधको मुनिर्निवसन् विशुद्धभावेन तमनुकूलशय्यापरीषहं मध्य-  
स्थभावेन सहमानश्चिन्तयति—अत्रैकरात्रमात्रं ममावस्थानं, किमनेन शय्यासुखेन ।

करते रहना चाहिये इसी में साधु की शोभा है ।

दृष्टान्त—एक समय की बात है—शुभचंद्र नाम के आचार्य सुविनीत  
अपने शिष्यपरिवार के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए श्रावस्ती  
नगरी के बाहिर रहे हुए नंदनवनतुल्य अशोकनामक उद्यान में पधारे ।  
उस उद्यान के ठीक मध्यभाग में केलिप्रियभूप का प्रासाद था ।  
यह प्रासाद बहुत ही सुन्दर था । इसका कुट्टिमतल मणिमय था ।  
इसका भूमिभाग सम एवं रमणीय था । वह ऐसा चलकता था कि  
मानो दर्पण का तल हो । स्पर्श उसका सुकुमाल था । यह महल सब  
ऋतुओं के अनुकूल था । रुचिर पीठ फलक संस्तारकों से युक्त था ।  
तथा प्रासादिय दर्शनीय अभिरूप और प्रतिरूप था । तप और संयम  
के आराधक ये आचार्य महाराज उस प्रासाद में एक तरफ ठहर गये ।  
उस में इन्हे सब बात की सुविधा थी । परन्तु फिर भी आचार्य ने  
उस विषय में अनुकूलता के विचार से हर्षभाव धारण नहीं किया ।

इपथी निर्वाह जेम थर्ध शके तेवा इपे करतुं रडेवुं जेधं जे तेमां साधुनी शोभा छे.

दृष्टान्त—जेक सभये शुभचंद्र नामना आचार्य सुविनीत पोताना शिष्य  
परिवार साथे ग्रामानुग्राम विहार करता करता श्रावस्ती नगरीनी अहार रडेला  
नंदनवन तुल्य अशोक नामना उद्यानमां पधायो. ते उद्यानना मध्य भागमां  
केलिप्रिय राननुं निवास स्थान हुतुं, ते मडालय भूम ज सुंदर हुतो, जेनुं  
आंगाणुं भुषिजडित हुतुं. भूमिभाग सम अने रमणीय हुतो. ते जेवो अण-  
काट भारतो हुतो के जेणे अरिसो डोय ! जेनो स्पर्श भूम सुवाणो लागतो.  
आ मडेल सधणी ऋतुजोमां अनुकूल हुतो. इथी उपजवे तेवा पीठ, इलक,  
शय्या, संस्तारक आदि युक्त हुतो. तप अने संयमना आराधक शुभचंद्र  
आचार्य ते मडेलनी जेक आणु उतयो जेमां तेमने दरेक प्रकारनी सगवडता  
हुती छतां पणु आचार्ये ते अनुकूलताना विचारथी हर्षभाव धारण न कर्यो.



ईदृशसुखावहशय्यानुरागः किमात्मकल्याणाय मम भविष्यति ?, कदापि नैव । एवं विचिन्त्य शुभपरिणामेन प्रशस्ताध्यवसायेन शिष्यसहितः शुभचन्द्राचार्यस्त-  
दाऽवधिज्ञानं प्राप्तवान् । स च द्वितीयदिवसे शिष्यपरिवारैः सह विहारं कृत्वा  
क्वचिद् लघुग्रामे वसतौ निवसति स्म ।

सा च वसतिरुन्दरुकृतानेकविलयुक्तभित्तिका, भूतभुजंगमादिभयोत्पादिका  
प्रचुरपांसुशर्करासंकुला विषमभूमिका जीर्णशीर्णा पीठफलकादिरहिता चासीत् । तत्र  
प्रमार्जनं कृत्वा संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन्नसौ विहरति स्म । तत्र रात्रौ

किन्तु विशुद्ध भाव से युक्त होकर उस अनुकूल शय्यापरीषह को  
मध्यस्थ भाव से सहन किया । विचार किया कि—यहां एक रात्रि  
भर के लिये तो मेरी स्थिरता है । इस शय्या के सुख से मुझे क्या  
लाभ । इस शय्या का सुख मेरे आत्मकल्याण का कोई साधक नहीं  
है कि जिससे इस में मेरी उपादेय बुद्धि हो । पर द्रव्य के शुभाशुभ  
परिणमन से मैं अपने में शुभाशुभरूप परिणमन क्यों होने दूं । इसका  
परिणमन इसके साथ है और मेरा परिणमन मेरे साथ । इस प्रकार  
विचार कर शुभ परिणाम एवं प्रशस्त अध्यवसाय के प्रभाव से शिष्य  
सहित उनको अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया ।

दूसरे दिन उन्होंने ने वहां से विहार कर दिया । विहार कर वे एक  
छोटे से ग्राम में आये । जहां ये ठहरे वहां का स्थान बड़ा ही भयानक  
था । उस में अनेक चूहों के बिल थे । भूत, भुजंगम आदि का वहां  
उपद्रव भी था । धूलि एवं कंकर से वहां की भूमि सम विषम थी ।

पणु विशुद्ध लावणी युक्त षनी तेमणु अनुकूल शय्यापरीषहने सडन कथीं. विद्यायुं  
के अडिं अेक रात्रि माटे भारी स्थिरता छे. आ शय्याना सुभधी मने शेा लाल ?  
शय्यानुं आ सुभ भारा आत्मकल्याणुं कुं कौर्ष साधक नथी के जेनाथी तेमां भारी  
उपादेय बुद्धि थाय. परद्रव्यना शुभाशुभ परिणमनथी हुं पोतानामां शुभाशुभ  
रूप परिणमन शा माटे थवा डडं. तेनुं परिणमन तेनी साथे अने माडं  
परिणमन भारी साथे. आ प्रकारनेा विचार करी शुभ परिणाम अने प्रशस्त  
अध्यवसायना प्रलावणी शिष्य सहित तेमने अवधिज्ञान उत्पन्न थयुं.

धीजे द्विवसे तेओओे त्यांथी विहार कथीं. विहार करीने तेओओे  
नाना गामडामां आओ्या. ज्यां तेओओे शेकाया डता ते स्थान धखुं न लया-  
नक डतुं. तेमां अनेक डंहरनां लोणु डतां, भूत, भुजंगम वगेरेनेा उपद्रव  
त्यां डतो. धूण अने कंकरथी त्यांनी भूमि डंथी निथी डती, लुषुं शीषुं

स्वाध्यायं ध्यानं च कृत्वा शुभचन्द्राचार्यस्तदाज्ञया सर्वे मुनयश्च स्वस्वसंस्तारको-  
परि शयनार्थमुद्यताः । तदा तत्रैको भुजङ्गमः स्वाहारमन्वेषयन् समागतः । तमवलोक्य  
सर्वे मुनयोऽनुद्विग्ना एव तस्थुः । स च भुजङ्गमः कंचिन्मूषकमनुधावमानस्तस्मिन्  
दृष्टिपथातिक्रान्ते मुनीन् पश्यति । तस्य दृष्टौ विषमासीत् अतस्तेन दृष्टमात्रा एव  
सन्तस्ते मुनयो विषाक्रान्ता जाताः अथ शुभचन्द्राचार्यस्तदीयशिष्याश्च सर्वे मुनयः  
समाधिभावमवलम्ब्य क्षपकश्रेणिं समारूढ्य शुक्लध्यानानलेन सकलं कर्म भस्मसात्  
कृत्वा केवली भूत्वाऽन्तर्मुहूर्तमात्रेण शिवपदं प्राप्तवन्तः । एवं सर्वैर्मुनिभिः शय्या-  
परीषहः सोढव्यः ॥ २३ ॥

जीर्ण शीर्ण संस्तारक तक भी इसमें कोई नहीं था । उस भूमि का  
प्रमार्जन कर आचार्य महाराज ने वहां पर अपनी साधुमंडलीसहित  
निवास किया । तप एवं संयम से आत्मा को भावित करते हुए उन  
आचार्य महाराज ने रात्रि में स्वाध्याय और ध्यान करने के पश्चात्  
समस्त अपने शिष्यों को अपने २ संस्तारकों पर शयन करने की  
आज्ञा दी । आज्ञा पाते ही सब के सब अपने २ संस्तारक पर सोने  
लगे । इतने में वहां एक सर्प अपने आहार की खोज में आया । देखकर  
समस्त मुनिमंडली अनुद्विग्न ही रही । वह सर्प एक चूहेके पीछे पड़ा हुआ  
था । जब वह चूहा उसे दिखा नहीं तो उसने मुनिमंडली की तरफ अपनी  
दृष्टि लगाई । उसकी दृष्टि में ही विष था, इसलिये उसके द्वारा देखे  
गये वे आचार्यसहित मुनिराज विष से आक्रान्त हो गये । सब ने  
मिलकर समाधिभाव का आलम्बन किया, और उसके प्रभाव से वे  
सब के सब क्षपकश्रेणी पर आरूढ होकर शुक्लध्यान की प्राप्ति से सम-

संस्तारक पशु न હતું. આ ભૂમિને સાફ કરીને આચાર્ય મહારાજે તે સ્થળે  
પોતાના શિષ્યો સાથે નિવાસ કર્યો. તપ અને સંયમથી આત્માને ભાવિત  
કરીને તે આચાર્ય મહારાજે રાત્રિમાં સ્વાધ્યાય અને ધ્યાન કર્યા પછી પોતાના  
બધા શિષ્યોને પોતપોતાના સંસ્તારક ઉપર શયન કરવાની આજ્ઞા આપી.  
આજ્ઞા મળતાં જ સઘળા પોતપોતાના સંસ્તારક ઉપર સુવા લાગ્યા. એટલામાં  
એક સર્પ પોતાના આહારની શોધમાં નીકળ્યો, એને જોઈ સમસ્ત સાધુ  
ગણ અનુદ્વિગ્નજ રહ્યું. તે સર્પ એક ઉંદરની પાછળ પડેલ હતો. બ્યારે તે ઉંદર  
તેના જોવામાં ન આવ્યો તો તેણે આ મુનિ ગણ તરફ એની દૃષ્ટિ ફેરવી.  
એની દૃષ્ટિમાં જ ઝેર હતું, એટલે એની દૃષ્ટિએ પડેલા આચાર્ય સહિત  
મુનિરાજે વિષથી આકુળવ્યાકુળ બની ગયા. સઘળાએ મળીને સમાધિ ભાવનું  
આલંબન કર્યું. અને તેના પ્રભાવથી તેઓ સઘળાં ક્ષપકશ્રેણી પર આરૂઢ

अथाऽऽक्रोशपरीषहजयं प्राह—

मूलम्—अक्रोसिज्जं परो भिक्खुं, न तंसि पडिसंजले ।

सरिसो होइ बालाणं, तम्हां भिक्खू न संजले ॥२४॥

छाया—आक्रोशेत् परो भिक्षुं, न तस्मिन् प्रतिसंज्वलेत् ।

सदृशो भवति बालानां, तस्माद् भिक्षुर्न संज्वलेत् ॥ २४ ॥

टीका—‘अक्रोसिज्ज’ इत्यादि ।

परः=अन्यः, यदि भिक्षुं=मुनिम् आक्रोशेत्=दुर्वचनेन तर्जयेत्, तर्हि मुनि-  
स्तस्मिन् न प्रतिसंज्वलेत्=न प्रतिकुप्येत् । अवाच्यभाषयाऽऽक्रुष्टः सन् कोपावे-

स्त कर्मों को नाशकर केवली हो गये, तथा अन्तर्मुहूर्त में शिवपद को प्राप्तकर सिद्ध हो गये । इस कथा से यही शिक्षा मिलती है कि शय्यापरीषह पर विजय पानेवाला मुनि आत्मकल्याण कर मुक्त हो जाता है, अतः शय्यापरीषह पर विजय प्राप्त करना चाहिये ॥ २३ ॥

अब सूत्रकार बारहवें आक्रोशपरीषह का जय कहते हैं—

‘अक्रोसिज्ज’—इत्यादि.

अन्वयार्थ—यदि (परो-परः) कोई अज्ञानी मनुष्य (भिक्खुं-भिक्षुम्) साधुको (अक्रोसिज्ज-आक्रोशेत्) दुर्वचन से तर्जित करे तब वह साधु (तंसि-तस्मिन्) उसके उपर (न पडिसंजले-न प्रतिसंज्वलेत्) क्रोधित न हो-अर्थात् जब कोई अशिष्ट भाषा से साधु के साथ असभ्य व्यवहार करे-गाली आदि दुर्वचन कहे तो साधु को उसके प्रत्युत्तररूप में क्रोध के आवेश से उसके प्रति गाली वगैरह अशिष्ट

अनी शुक्लध्याननी प्राप्तिथी समस्त कर्मभणनो नाश करी केवलीपदने प्राप्त कर्युं.

तथा अंतर मुहूर्तमां शिवपदने प्राप्त करी सिद्ध अनी गया. आ कथाथी अे शिक्षा प्राप्त थाय छे के, शय्यापरीषह पर विजय भेणवनार मुनि आत्मकल्याण करी मुक्तिने पाये छे, भाटे शय्यापरीषहने विजय प्राप्त करवाये जेछये. ॥ २३ ॥

इवे सूत्रकार आरमा आक्रोश परीषहना जय ने कहे छे. ‘अक्रोसिज्ज’—इत्यादि,

अन्वयार्थ—यदि परो-परः जे केछि अज्ञानी मनुष्य भिक्खुं-भिक्षुं साधुने अक्रो-  
सिज्ज-आक्रोशेत् अराज वचनथी अपमानित करे तो पणु ते साधु तंसि-तस्मिन्  
तेना उपर न पडिसंजले-न प्रतिसंज्वलेत् क्रोधित न थाय अर्थात् जे केछि अशिष्ट  
भाषाथी साधुनी साथे असभ्य वडेवार करे, गाण आदि दुर्वचन कहे तो साधुजे  
तेना प्रत्युत्तर इये क्रोध आवेशथी तेना प्रति गाण विगेरे अशिष्ट भाषानो प्रयोग

शेन प्रत्याक्रोशरूपं गालीदुर्वचनादिकं न वदेदित्यर्थः । ननु प्रतिसंज्वलने का हानिरित्याशङ्क्याह—‘ सरिसो होइ बालाणं ’ इति । प्रतिसंज्वलन् बालानाम्—अज्ञानिनां सदृशो भवति, तस्माद् भिक्षुः=मुनिः न संज्वलेत्=आक्रुष्टोऽपि क्रोधं न कुर्यादित्यर्थः ।

इदमत्र बोध्यम्—मिथ्यादर्शनोद्दृप्तमुखनिर्गतानि कोपानलोद्दीपनानि दुर्वचनानि श्रुत्वा तत्प्रतीकारं कर्तुं समर्थोऽपि मुनिः—“दुरन्तः क्रोधकषायोदयनिमित्तपापकर्म-विपाकः” इति चिन्तयन् स्वहृदये क्रोधायानवकाशदानेनाक्रोशपरीषहं सहेत ।

उक्तञ्च—

भाषा का प्रयोग नहीं करना चाहिये, क्यों कि गाली देने वाले को गाली देनेवाला साधु—जैसे के साथ वैसा बनने वाला मुनि—( बालाणं सरिसो होइ—बालानां सदृशो भवति ) अज्ञानियों के सदृश ही माना जाता है । ( तम्हा—तस्मात् ) इसलिये ( भिक्षू न संजले—भिक्षुः न संज्वलेत् ) भिक्षु क्रोध न करे ।

तात्पर्य इसका यह है कि—अज्ञान से मन्दोन्मत्त हुए व्यक्तियों के मुख से निकले हुए दुर्वचनों को जो कि कोपरूप अग्नि के उद्दीपक होते हैं, सुनकर उनके प्रतिकार करने में समर्थ भी मुनि “क्रोध कषाय के उदय के निमित्त से पापकर्म का विपाक दुरन्त होता है” ऐसा विचार कर अपने हृदय में क्रोध को स्थान न दे । इससे मुनि आक्रोशपरीषह पर विजय पाता है । कहा भी है—

न करवे नोष्ठं अ. केम के, गाणे देनारने साभी गाण देनार साधु—नेवानी साथे तेवा थनार—मुनि बालाणं सरिसो होइ—बालानां सदृशो भवति अज्ञानी—ओनी भाइक न मानवामां आवे छे. तुम्हा—तस्मात् आ भाटे भिक्षू न संजले—भिक्षुः न संज्वलेत् भिक्षु क्रोध न करे.

तात्पर्य आनुं अ. छे के, अज्ञानथी महोन्मत्त अनेल व्यक्तिओना मोदाभांथी निकलेला दुर्वचने के नो क्रोध इपी अग्नि उत्पन्न करनार होय छे, ते सांलणी तेना प्रतिकार करवामां समर्थ होय पणु मुनि “क्रोध कषायना उदय निमित्तथी पापकर्मना विपाक दुरन्त होय छे.” ओवे विचार करी पोताना हृदयमां क्रोधने स्थान न आवे. आथी तेवा मुनि आक्रोश परीषह पर विजय प्राप्त करे छे. कहुं पणु छे—

नाक्रुष्टो मुनिराक्रोशेत्, सम्यग्ज्ञानाद्यवर्जकः ।

अपेक्षेतोपकारित्वं, न तु द्वेषं कदाचन ॥ १ ॥

अन्यच्च—

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथवा तापसः,

किं वा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि वा ।

इत्यस्वल्पविकल्पजालमुखरैः संभाष्यमाणो जनै-

र्नो रुष्टो नहि चैव हृष्टहृदयो योगीश्वरो गच्छति ॥ २ ॥

इति विचार्य समत्वेन तिष्ठेत् ॥ २४ ॥

नाक्रुष्टो मुनिराक्रोशेत्, सम्यग्ज्ञानाद्यवर्जकः ।

अपेक्षेतोपकारित्वं, न तु द्वेषं कदाचन ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञानादिक का परिहार नहीं करनेवाला, अर्थात् सम्यग्ज्ञाना-  
दिक गुणों के उपार्जन करने में कुशलमति भिक्षु अपमानित होने पर भी  
कभी भी अपमान करने वाले के प्रति अशिष्ट भाषा का प्रयोग न करे ।  
प्रत्युत अपने प्रति इस प्रकार का व्यवहार करने वाले व्यक्ति को अपना  
उपकारी ही माने, किन्तु इसके प्रति द्वेषभाव कभी न रखे । और भी—

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथवा तापसः,

किं वा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि वा ।

इत्यस्वल्पविकल्पजालमुखरैः संभाष्यमाणो जनै,

र्नो रुष्टो नहि चैव हृष्टहृदयो योगीश्वरो गच्छति ॥ २ ॥

नाक्रुष्टो मुनिराक्रोशेत्, सम्यग्ज्ञानाद्यवर्जकः ।

अपेक्षेतोपकारित्वं, न तु द्वेषं कदाचन ॥ १ ॥

सम्यग्ज्ञानादिकने परिहार न करवावाणा—अर्थात् सम्यग्ज्ञानादिक  
शुद्धोत्तुं उपाजन करवाभां कुशलमति भिक्षु अपमानित थवा छातां पशु कही  
पशु अपमान करवावाणा तरक्ष अशिष्ट भाषाने प्रयोग न करे. पोताना  
तरक्ष आ प्रकारने वडेवार करवावाणी व्यक्तितने पोताने उपकारी न माने.  
तेम तेना तरक्ष देश भाव कही पशु न राणे. भीषुं पशु—

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथवा तापसः,

किं वा तत्त्वनिवेशपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि वा ।

इत्यस्वल्प विकल्पजालमुखरैः संभाष्यमाणो जनै,

र्नो रुष्टो नहि चैव हृष्टहृदयो योगीश्वरो गच्छति ॥ २ ॥

मुनिको देख कर कोई उनको चाण्डाल कहे, कोई ब्राह्मण कहे, कोई शूद्र कहे, कोई तपस्वी कहे, कोई विशिष्ट ज्ञानी तो कोई योगीश्वर कहे, इस प्रकार कहने वाले व्यक्तियों के मुख से निकलते हुए लघुता व श्रेष्ठतासूचक वचनों को सुनकर मुनि न तो रुष्ट होता है न तुष्ट होता है किन्तु समभाव से चला जाता है ।

भावार्थ—अशिष्ट भाषा का प्रयोग साधु जैसे सन्त पुरुषों के प्रति वे ही व्यक्ति करते हैं जो मिथ्यात्व के कीचड़ से लिप्त होते हैं । अतः उनके द्वारा अपमानित होने पर भी साधु को उनके प्रति रुष्ट न होकर प्रत्युत दयावान् ही होते रहना चाहिये । यह उस समय विचार करना चाहिये कि देखो ये कितने अज्ञानी हैं जो खोटी खरी वस्तु के यथार्थ बोध से विकल हो रहे हैं । ये जो कुछ कहते हैं उनमें इनका अपराध नहीं है, यह तो मिथ्यादर्शन का ही प्रभाव है, अतः इनकी आत्मा सम्यग्ज्ञान से वासित बनें और ये उत्तम मार्ग पर आरूढ हो जायें, ऐसी भावना साधुको रखनी चाहिये । तथा इस समय यदि मैं इनके साथ असभ्य व्यवहार इन्हीं जैसा करने लगूँ तो इनमें और मुझ में क्या अन्तर हो सकता है । ज्ञानी और अज्ञानी की चेष्टा में आसमान पाताल जैसा अन्तर जो बतलाया गया है वह यहाँ लुप्त हो

मुनिने जेध कोध अने चंडाल कडे, कोध ब्राह्मण कडे, कोध शूद्र कडे, कोध तपस्वी कडे, कोध विशिष्ट ज्ञानी तो कोध योगीश्वर कडे, आ रीते कडेवा-वाणी व्यक्तियेना मुपथी निकणता लघुता अने श्रेष्ठता सूचक वचनेने सांखणी मुनि न तो कोधित अने छे के न तो तुष्टमान थाय छे. परंतु समभावथी विचरे छे.

भावार्थ—अशिष्ट भाषाने प्रयोग साधु जेवा संत पुरुष तरक्ष अने व्यक्ति करे छे के जे मिथ्यात्वना किचडमां लपटायेला होय छे, आथी अमना द्वारा अपमानित थवा छतां पणु साधुअे तेना तरक्ष न इठतां प्रत्युत्तरमां दयावान् न रडेवुं जेधअे. अे समये अेवो विचार करवो जेधअे के, लुअे ! आ केटला अज्ञानी छे. जे छोटी भरी वस्तुना यथार्थ बोधथी विकण अनी रडेल छे. अे जे कोध कडे छे अेमां अेना अपराध नथी, मिथ्यादर्शनने न आ प्रलाव छे. आथी अेनो आत्मा सम्यग्ज्ञानथी वकसित अनी उत्तम मार्ग उपर आरूढ थई नय अेवी लावना साधुअे राभवी जेधअे. आ समय जे छे अेना जेवोअे असभ्य व्यवहार करवा लागुं तो अेनामां अने भारामां शुं अंतर रडुं ? ज्ञानी अने अज्ञानीनी चेष्टामां आकाश पाताण जेटलुं अंतर अताववामां आव्युं छे ते आथी लुप्त थई नय छे. आना आ व्यवहारने भारे



उक्तार्थमेव विशदीकुर्वन् प्राह—

मूलम्—सोच्चानं फरुसा भासा, दारुणा गामकंटगा ।

तुसिणीओ उवेहेज्जा, न ताओ मणंसी करे ॥२५॥

छाया—श्रुत्वा खलु परुषा भाषाः, दारुणा ग्रामकण्टकाः ।

तूष्णीकः उपेक्षेत, न ता मनसि कुर्यात् ॥ २५ ॥

टीका—‘सोच्चानं’ इत्यादि ।

दारुणाः—दारयन्ति=विदारयन्ति संयमधैर्यमिति दारुणाः=दुःसहाः, मनसि वज्रा-  
घातकारिका इत्यर्थः, ग्रामकण्टकाः=ग्रामः=इन्द्रियाणां समूहस्तस्य कण्टका इव कण्टकाः  
=दुःखोत्पादकत्वेन प्रतिकूलाः परुषा=रूक्षाः कठोराः, भाषाः=वचनानि, श्रुत्वा खलु  
तूष्णीकः=मौनावलम्बी सन्, उपेक्षेत=ता भाषा अवधीरयेत्—नाद्रियेत। ‘उवेहिज्जा’

जाता है। इनके इस व्यवहार को मुझे समताभाव से सहन करना चाहिये, क्यों कि इससे मेरे अधिक कर्मों की निर्जरा होगी, इस निर्जरा में यह मेरा उपकारी है। अतः इस उपकारी के प्रति मैं द्वेष करूँगा यह मेरी कितनी अज्ञानता होगी। ऐसा विचार कर साधु आक्रोश-परीषह पर विजय प्राप्त करे ॥ २४ ॥

उपरोक्त अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—‘सोच्चानं’—इत्यादि.

अन्वयार्थ—(दारुणा-दारुणाः) संयमरूपी धैर्यको विदारणकरने वाली मन में वज्र के तुल्य दुस्सह आघात पहुँचाने वाली तथा (गामकंटगा-ग्रामकंटकाः) इन्द्रियों को कंटकतुल्य दुःख की उत्पादक होने से प्रतिकूल (फरुसा-परुषाः) रूक्ष-कठोर ऐसी (भासा-भाषाः) लोगों की-असभ्य व्यक्तियोंकी भाषाओं-वचनों को (सोच्चानं-श्रुत्वा खलु) सुनकर मुनि (तुसिणीओ उवेहेज्जा-तूष्णीकः उपेक्षेत) चुपचाप रहा हुवा-मौन धारण

समताभावथी सहन करवो जेधं अ. केभके अथी भने अधिक कर्मोनी निर्जरा थशे. अवेो विचार करी साधु आक्रोश परीषह उपर विजय प्राप्त करे. ॥२४॥

उपरोक्तअर्थने स्पष्ट करतां कहे छे—‘सोच्चा णं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—दारुणा-दारुणाः संयमरूपी धैर्यने विदारण करवावाणी दुःसह-मनमां वल्ल तुल्य आघात पहुँचावावाणी गामकंटगा-ग्रामकंटकः तथा इन्द्रियोने कंटक समान दुःखने उत्पादन करनार होवाथी प्रतिकूल फरुसाः-परुषाः रूक्ष कठोर अथी भासा-भाषाः असभ्य बोकेना वचनोने सोच्चानं-श्रुत्वा खलु सांख्यीने मुनि तुसिणीओ उवेहेज्जा-तूष्णीकः उपेक्षेत चुपचाप रहडी, मौन धारण करी ते

इत्यस्यैवार्थं विशदीकुर्वन् प्राह—‘न ताओ मणसी करे’ इति । ताः भाषा मनसि न कुर्यात्—न स्थापयेत् । ‘अज्ञानवशादनेन संयमधैर्यापहारिण्यो भाषा उक्ता अत्र नास्त्यस्य दोषः किं तु समैव पूर्वार्जितकर्मणः फलमेतत्’ इति विचार्य तादृशभाषाया अनादरणेन तद्भाषिणि द्वेषं न कुर्यादिति भावः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

एकदा क्षमाधरनामकः कश्चिद्दुश्चरतपश्चर्यापरायणो मुनिरासीत् । तद्गुणानु-  
रागेण कश्चिद्देवः प्रीत्या तमभिवन्धाब्रवीत्—मम योग्यं कार्यमावेदनीयं भवद्भिः ।

अन्यदा कदाचिन्मार्गे गच्छन् मुनिः स्वाभिमुखवागतेन केनचिच्चाण्डालेन सो-  
पहासयुक्तः—अहो ! अकर्मण्य ! भिक्षुक ! क्व गच्छसि ? । एतद् दुर्वचनं निशम्य

करता हुआ—उस तरफ उपेक्षाभाव धारण करे, किन्तु (ताओ मणसी न करे—ताः मनसि न कुर्यात्) उन वचनों को अपने मन में स्थान न देवे । “अज्ञानवशासे ही इसने संयम धैर्य को अपहरण करने वाली भाषा का प्रयोग किया है सो इस में इसका दोष नहीं है किन्तु मेरे ही पूर्वोपार्जित पापकर्मों का यह फल है ” । यह समझकर उस पुरुष भाषा बोलने वाले पर द्वेषबुद्धि न करे ।

दृष्टान्त—दुश्चरतपश्चर्या करने में लीन क्षमाधर नामक एक मुनि थे । उनके गुणों में अनुरागी होने से कोई एक देव वंदनाकर उनसे बोला कि यदि मेरे योग्य कोई कार्य हो तो आप मुझ से अवश्य कहें, यह मैं आप से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ ।

एक समय की बात है कि वे मुनि कहीं जा रहे थे । रास्ते में सन्मुख आता हुआ उन्हें एक चाण्डाल मिला । उसने मुनिराज को

तरश् उपेक्षाभाव धारण करे परंतु ताओ मणसी न करे—ताः मनसि न कुर्यात् तेना वचनेने पोताना मनमां स्थान न आपे. अज्ञानवशातार्थी तेषु संयम धैर्यं दुं अपमान करतार भाषानो उपयोग कर्थो छे तो तेमां अनेना दोष नथी. परंतु मारा पूर्वोपार्जित पाप कर्मोतुं ज् अे क्ण छे. आपुं समञ्जने अे असम्य भाषा बोलवावाणा उपर द्वेषबुद्धि न करे.

दृष्टान्त—क्षमाधर नामना दुष्कर तपश्चर्या करवामां लीन अेवा अेक मुनि छता. तेमना शुष्णेना अनुरागी अेवा केरि अेक देवे वंदना करीने अेमने कहुं के, मारा योग्य केरि कार्य छेय तो आप मने अवश्य कहे। अेम हु आपने हाथ जेडी प्रार्थना करी कहुं छुं अेक वपत ते मुनि कथांक ज्ध रह्या छता. रस्तामां सामेथी आपतो अेक चण्डाल मज्थे। तेषु मुनिराजने

जातकोपः सन् मुनिरब्रवीत्—उन्मत्तस्त्वमसि किम् ? । ततस्तेन प्रचण्डकोपावेशेन चाण्डालेन कथितम्—अरे भिक्षुक ! किं प्रलपसि ? कोऽन्यस्त्वत्समो मलिनदेहः श्वुत्—पिपासादिवेदनाग्रस्तो लुञ्चितशिरा गृहे गृहे गृहपाल इवाहारमन्वेषयन् भ्रमसि ? अरे ! अकर्मण्य ! पूर्वकृतकर्मणो विपाकमनुभवन्नपि न लज्जसे । कृषिवाणि-ज्यादिकर्म कर्तुमसमर्था एव मुखोपरिवद्धमुखवस्त्रिकाः पात्रहस्ताः बहवो भिक्षु-कास्त्वादृशा उदरपूरणकामा ग्रामानुग्रामं पर्यटन्ति । अरे दुर्भग ! पुत्रदारादिभिः

देखते ही हँसी करते हुए कहा कि—हे अकर्मण्य भिक्षुक ! तू कहां जा रहा है । मुनि ने ज्यों ही इस प्रकार के उसके दुर्वचन सुने तो मुनि को क्रोध आ गया, और कहने लगा—क्या तू इस समय उन्मत्त हो रहा है । मुनि के वचन सुनकर चांडाल के भी कोप का ठिकाना न रहा । उसने चिढ़कर मुनिको कहा—“अरे भिक्षुक ! क्या बकता है ? तेरे जैसा मलिन देह वाला और कौन होगा ? खाते कमाते नहीं बना सो मूंड मूंडाकर मुनि बन गया और घर घर में कुत्ते की तरह भीख मागने के लिये फिरने लगा है । शरम नहीं आती, करते धरते कुछ नहीं बनता सो निकल गये साधु बनने को । पूर्व में दान नहीं दिया सो तो उसका यह फल भोगना पड़ रहा है कि दर दर के भिखारी बन रहा है, फिर भी अकड़ से ऐंठता है ? जरा शर्म कर, तुम्हारे जैसे बहुत से कार्य करने में असमर्थ होकर मुंह बांध कर पेट भरने के लिये गांव गांव भटकते हैं । ऐसा कह कर जब वह चला गया तो कोप

नेधने हांसी करतां कहुं के, डे अकर्मण्य भिक्षुक ! तुं क्यां न्ध रह्यो छे. मुनिअे न्यारे तेनां आवा दुर्वचन सांलज्यां त्यारे तेने क्रोध आवी गये अने कडेवा लाग्या के, शुं तुं आ समये उन्मत्त अनी रह्यो छे ? मुनितुं वचन सांलणीने आंडालना क्रोधतुं डेकाणुं न रह्युं अने तेबुे थिडाधने मुनिने कहुं अरे भिक्षुक ! तुं शुं अके छे ? तारा नेवा मलीन देहवाणो पीजे केणु छे ? आतां कमातां न आवड्युं अेटवे मुंडो मुंडावीने मुनि अनी गया, अने घर घरमां कुतरानी माइक लीप मागवा लाग्यो छे, शरम नथी आवती ? कांर्ध काम करतां आवडतुं नथी अेटवे साधु अतवा निकणी पडयो. पूर्वअवमां दान नडीं दीधुं डोय अेटवे तो अेतुं आ इण लोगववुं पडे छे. अने घरघरने। बिभारी अनी रह्यो छे. छतां पणु अक्कड थधने इरे छे. नरा लाज ! तारा नेवा अनेक कार्य करवामां असमर्थ डोधने मां आंधीने पेट भरवा भाटे गाम गाम लटके छे. आम कडी न्यारे ते आदयो गये त्यारे क्रोधना

परित्यक्ता निर्गतिकाः सन्तः प्रव्रज्यामभ्युपगताः । इत्युक्त्वा तस्मिन् गतवति सति कोपावेशादन्तर्दहमान इव मुनिः स्वस्थानं गतः । क्रमेण कोपप्रशमे सति मुनिना पश्चात्तापः कृतः ।

तदनन्तरमसौ देवस्तस्य मुनेः समीपे समागत्य तमभिवन्द्य तत्पुरोऽवस्थितो वदति—भवतः संयमयात्रा सुखेन निर्वहति किम् ? । शान्तात्मना मुनिना सस्मितं प्रोक्तम्—यदा संयमयात्रा चाण्डालेन बाधिता, तदा क्व गतस्त्वमासीः ? देवेन कथितम्—यदा युवयोः कलहो जातस्तदाऽहमलक्षितः कौतुकं द्रष्टुकामस्तत्रैवासम् । किं तु तदा मया विशेषः कोऽपि नोपलब्धः, यथाऽसौ चाण्डालस्तथैव भवान् ।

के आवेश से वे मुनि भी भीतर ही भीतर जलते हुए अपने स्थान पर आ गये। जब कोप शांत हुआ तो उनको इस विषय का बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ।

इस के बाद वह देव मुनि के पास आकर नमस्कार करके बैठ गया और बोला—आपकी संयमयात्रा तो सुखपूर्वक है ? शान्तात्मा मुनिने मुस्कराते हुए प्रत्युत्तर में कहा कि जिस समय इस संयमयात्रा में चाण्डाल ने बिघ्न डाला था उस समय तुम कहाँ गये थे। देवने जवाब दिया—जब आप दोनोंका कलह हो रहा था उस समय मैं अदृश्य होकर वहीं पर था। मुनिने कहा फिर आपने उस परिस्थिति में मेरी सहायता क्यों नहीं की ? इस प्रकार मुनि के कहने पर प्रत्युत्तरमें देवने कहा कि—मुझे उस समय सहायता करने लायक कोई विशेषता आप में लक्षित नहीं हुई। उस समय जैसा वह चाण्डाल मुझे प्रतीत हुआ वैसे ही आप भी मुझे प्रतीत हो रहे थे फिर सहायता किसकी करना। देव के इस उत्तर से

आवेशથી ते मुनि अंदरने अंदर भणता भणता पोताना स्थान उपर गया.

ज्यारे तेभने कोध शांत थयो त्यारे तेभने आ विषयमां लारे पश्चात्ताप थयो.

आ पछी चेला देव मुनिनी पासे आवीने नमस्कार करीने भेडा अने कहुं, आपनी संयमयात्रा तो सुखपूर्वक छे ने ? शांत आत्मा मुनिजे अंदरथी हसतां हसतां प्रत्युत्तरमां कहुं के, जे सभये आ संयमयात्रामां अंडाळे बिघ्न नाभ्युं ते सभये तभे कथां गया हुता ? देवे जवाब आभ्यो ज्यारे आप भनेने कलह आली रह्यो हुतो त्यारे हुं अदृश्य रूपे त्यां ज हुतो. तो पछी जे परिस्थितिमां तभे भारी सहायता केम न करी ? आ प्रकारे मुनिना कडेवाथी प्रत्युत्तरमां देवे कहुं, भने ते सभये सहायता करवा लायक केछ विशेषता आपनामां न हेभाछि. जे वभते जेवे ते आंडाल भने हेभाये तेवा ज आप भारी दृष्टिमां हेभाता हुता. पछी सहायता केनी करवी ? देवना आ उत्तरथी

मुनिनोक्तम्—तेन मम तुल्यता कथं ज्ञाता? । देवेनोक्तम्—एकेन कोपेनैव, अत-  
स्तस्य शिक्षा न कृता, इदानीमाज्ञापयतु कीदृशी शिक्षा तस्मै कर्तव्या । मुनिः प्राह—  
नासौ दण्डनीयः, किंतु—सर्वथोपेक्षणीयः, यतः साधूनामयं धर्मः—आक्रोशपरीषहः  
सोढव्य इति । एवमुक्तोऽसौ देवस्तस्य मुनेः सेवायां सानुरागं तस्थौ । एवमन्यै-  
रपि मुनिभिराक्रोशपरीषहः सोढव्यः ॥ २५ ॥

मुनि को बड़ा ही विस्मय हुआ और कहने लगे कि मुझ में और चांडालमें  
समानता का अनुभव कैसे किया ? । देव ने कहा—एक क्रोध से आपके  
अन्दर उस समय क्रोधरूप चांडाल प्रविष्ट होया हुआ था, और वह तो  
चांडाल था ही, अतः सहायता करने जैसी बात उस समय मुझे  
उचित प्रतीत नहीं हुई इसलिये सहायता नहीं की, और न उसे भी  
कुछ दण्डादिरूप शिक्षा ही दी, हां ! अब कहिये उसे कैसी शिक्षा दी  
जाय । मुनिराज ने कहा कि अब क्या आवश्यकता है जो अज्ञानी होते  
हैं वे उपेक्षा के ही पात्र हैं इसलिये उसको दण्डादिरूप शिक्षा प्रदान  
करने की कोई जरूरत नहीं है । मुनियों का तो यह आचार ही है कि  
वे आक्रोशपरीषह को सहन करे । मुनि की इस बात को सुनकर देव  
बड़ा ही अनुरागी होकर उनकी सेवा में रहने लगा । इस कथा से मुनि-  
यों को यही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये कि आक्रोशपरीषह सहन  
करना यह मुनिराजों का कर्तव्य है ॥ २५ ॥

मुनिने धष्टुं आश्रयं थयुं अने कडेवा लाग्या. भारामां अने अंडालमां सभा-  
नताने अनुभव तमेने डेवी रीते थये ? देवे कष्टुं अेक क्रोधथी—आपनी अंदर  
ते सभये क्रोध रूपी अंडाल प्रविष्ट थये हतो. अने ते तो अंडाल हतो न.  
आथी सहायता करवा जेवी वात अने ते सभये उचित न लागी. अे माटे  
सहायता न करी. अने तेने पष्टुं दंड आदि रूपां शिक्षा न करी. हा !  
कडो अेने कथ रीते शिक्षा करवामां आवे ! मुनि महाराजे कष्टुं के, डवे शुं  
आवश्यकता छे. जे अज्ञानी होथ छे ते उपेक्षाने पात्र न छे. आ माटे तेने  
दंडादिकरूप शिक्षा आपवानी कथ न जरत नथी. मुनिअेने ते आचारन छे  
के, तेअे आक्रोशपरीषहने सहन करे. मुनिनी आ वात सांभणीने देव  
धष्टुं अनुरागी अनी तेनी सेवामां रहेवा लाग्या. आ कथाथी मुनिअेअे  
अे न शिक्षा ग्रहण करवी जेथअे के, आक्रोशपरीषह सहन करवे ते  
मुनिराजेनुं कर्तव्य छे. ॥ २५ ॥

कश्चिदाक्रोशमात्रेणाऽतुष्टो दुष्टः संयतस्य वधमपि कुर्यादतो वधपरीषहमाह-  
मूलम्—हँओ नँ संजले भिक्खू, मणंपि नँ पओसएँ ।

तित्तिक्खं परंमं नँच्चा, भिक्खुधम्मं विचिंतएँ ॥२६॥

छाया—हतो न संज्वलेद् भिक्षुः मनोऽपि न प्रद्वेषयेत् ।

तितिक्षां परमां ज्ञात्वा, भिक्षुधर्मं विचिन्तयेत् ॥ २६ ॥

टीका—‘ हओ ’ इत्यादि ।

भिक्षुः=मुनिः, हतः=केनापि दुष्टेन मुष्टियुष्ट्यादिना ताडितः सन्, न संज्वलेत्=न क्रुध्येत्, तथा मनोऽपि न प्रद्वेषयेत्=द्वेषयुक्तं न कुर्यात्, तितिक्षां=क्षान्तिं,

कोई दुष्ट पुरुष आक्रोशमात्र से संतुष्ट नहीं होकर मुनि का वध भी करने लगता है इसलिये अब तेरहवें वधपरीषह को कहते हैं—‘ हओ न संजले ’—इत्यादि.

अन्वयार्थ—(भिक्षू-भिक्षुः) मुनि (हओ-हतः) किसी भी दुष्टके द्वारा यष्टि मुष्टि आदि से ताडित हो जाय तौ भी ( न संजले-न संज्वलेत्) क्रोध से तपायमान नहीं होवे । तथा ( मणंपि न पओसए-मनोऽपि-न प्रद्वेषयेत्) मन को भी दूषित नहीं करे, किन्तु (तित्तिक्खं-तित्तिक्षाम्) उत्तम क्षमा को ( परंमं-परमाम्) दशविध धर्मों में सर्वोत्कृष्ट (नच्चा-ज्ञात्वा) जानकर ( भिक्खू-भिक्षुः) वह साधु (धम्मं विचिंतए-धर्मं विचिन्तयेत्) उत्तम क्षमादिरूप साधु के कर्तव्य का, अथवा अपने आत्मस्वरूप का विचार करे कि-क्षमामूलक ही धर्म है । यह जो मुझे निमित्त बना कर के कर्मों का उपचय कर रहा है उसमें मेरा ही

डोछ दुष्ट भाणुस आओश मात्रथी संतोष न पाभवाथी मुनिने। वध पणु करवा लाजे छे. ओ भऱटे डवे तेरभा वधपरीषडने डडे छे. ‘हओ न संजले’-इत्यादि.

अन्वयार्थ—भिक्षू-भिक्षुः मुनि हओ-हतः डोछ पणु दुष्ट द्वारा लाडडी गडहापाटुथी ताडित थरु ढय ते। पणु न संजले-न संज्वलेत् डोथी तपी न ढय मणंपि न पओसए-मनोऽपि न प्रद्वेषयेत् मनने पणु दूषित न करे पणु तित्तिक्खं-तित्तिक्षां उत्तम क्षमाने परंमं-परमां दशविध धर्मां सर्वोत्कृष्ट नच्चा-ज्ञात्वा ढणुने भिक्खू-भिक्षुः ते साधु धम्मं विचिंतए-धर्मं विचिन्तयेत् उत्तम क्षमादिइप साधुना कर्तव्यने। तथा पोताना आत्मस्वरूपने विचार करे डे, क्षमा ओ न धर्म छे. आजे भने निमित्त थनावीने डरनेने उपचय करी



परमां=दशविधेषु धर्मेषु प्राधान्यात् प्रकृष्टां, ज्ञात्वा मुनिः, भिक्षुधर्म=ज्ञानत्यादिकं स्वात्मस्वरूपं वा विचिन्तयेत्, यथा-क्षमामूल एवं धर्मः, यच्च मां निमितीकृत्यायं कर्मोपचिनोति, तत्र ममैव पूर्वकर्म कारणमिति ममैव दोषः, तस्मादेनं प्रति कोपो नोचित इति ॥ २६ ॥

पूर्वोपार्जित कर्म कारण है अतः इसमें मेरा ही दोष है इसलिये इसके प्रति कोप करना मुझे उचित नहीं है ।

भावार्थ—मुनि जनों की यह विचारधारा कितनी सुन्दर है । वज्रहृदय वाला शत्रु भी इस विचार के सामने नतमस्तक होकर अपनी क्रूरता का परित्याग कर देता है । एक तरफ ताड़ना मारणा आदि क्रियाएँ हो रही हैं तो दूसरी ओर उस पर प्रतिकार न करते हुए अपने पूर्वोपार्जित कर्म को ही बलवान माना जा रहा है कि—पूर्वोपार्जित कर्मों का यह फल मुझे मिल रहा है, इस बेचारे का क्या दोष है। अफसोस केवल उस मुनि आत्मा में इसी बातका हो रहा है कि जो यह प्राणी मेरा निमित्त लेकर नवीन कर्मों का बंधक बन रहा है । इस प्रकार मन तक में भी जहाँ प्रतिकार करने की भावना का उदय निषिद्ध बतलाया गया है वहाँ और अन्य प्रतिकारों के करने की तो बात ही क्या हो सकती है । महात्मा का यहाँ कितना अच्छा उपदेश है कि वह ताड़ित होने पर भी अपनी उत्तम क्षमाको न छोड़े । कुल्हाड़ा

रडेल छे. तेमां मारां न पूर्वोपार्जित कर्म कारणरूप छे. आथी तेमां मारेन दोष छे माटे तेना प्रति क्रोध करवे मने उचित नथी,

भावार्थ—मुनिज्योनी आ विचारधारा केटली सुन्दर छे वज्र हृदयवाणो शत्रु पणु आ विचार सामे नतमस्तक अपनी पोतानी कुरताने त्यागी हे छे. अेक तरङ्ग धाकधमकी अने मार मारवानी उद सुधीनी क्रियाओ थाय छे, त्यारे पील तरङ्ग आने प्रतिकार न करातां पोताना पूर्वोपार्जित कर्मोने न बलवान मानवामां आवे छे. “पूर्वोपार्जित कर्मोनुं इण मने मणी रह्युं छे. अे विचारानो केछन दोष नथी” मुनिना आत्मां अफसोस इकत अे वातनो थाय छे के, आ प्राणी मने निमित्त अनावीने नवा कर्मोने अ'ध आंधी रडेल छे. आ प्रमाणे मनमां पणु प्रतिकार करवानी भावनाना उदयनो निषेध अता-ववामां आवेल छे, त्यां अन्य प्रतिकार करवानी तो वात न क्यां रही ? महात्मानो आ केवे सुन्दर उपदेश छे के तेने धाकधमकी केछना तरङ्गी अ'पाय अथवा मार मारवामां आवे तो पणु पोतानी उत्तम क्षमाने न

ઉક્તમેવાર્થ પ્રકારાન્તરેણાહ—

મૂલમ—સમંણં સંજયં દંતં, હ્ણેજાં કોઈ કત્થઈ ।

નંતિ જીવસ્સ નાંસોત્તિ”, ઇંવં પેહેજે સંજંઈ ॥૨૭॥

છાયા—શ્રમણં સંયતં દાન્તં, હ્ણ્યાત્ કોઽપિ કુત્રાપિ ।

નાસ્તિ જીવસ્ય નાશ ઇતિ, ઇવં પ્રેક્ષેત સંયતઃ ॥ ૨૭ ॥

ટીકા—‘સમણં’ ઇત્યાદિ

કોઽપિ=કશ્ચિન્મનુષ્યઃ, કુત્રાપિ—પ્રામાદૌ, સંયતં=ષટ્કાયયતનાવન્તં, દાન્તમ્

ચંદન વૃક્ષ કો કાટ મી ડાલે પર ચંદનવૃક્ષ કા જો ઉસકે ઘુલ્લ કો મી સુલાસિત કરને કા કામ હૈ વહ ઉસે નહીં છોડતા । નહીં તો વહ ચંદન હી નહીં । મહાત્મા મી અપને શત્રુ કે પ્રતિ ઇસી કર્તવ્ય કા નિર્વાહ કરતે હૈં નહીં તો વે મહાત્મા હી નહીં હૈં । ધન્ય હૈ મહાત્મા ! તેરે ઇસ શુભાધ્યવસાય કો । ન્યોછાવર હૈ ત્રૈલોક્ય કા રાજ્ય ઇસ પવિત્ર ભાવના પર । ક્યા હી સુન્દર વિચાર ધારા હૈ । ઇસી વિચારધારા કે બલ પર મહાવીર પ્રભુ કે શાસન મેં સર્વોત્કૃષ્ટતા રહી હુઈ હૈ । પ્રત્યેક મોક્ષાભિલાષી કો યહ અભિનંદનીય વંદનીય વિચારધારા અપનાને યોગ્ય હૈ ॥૨૬॥ વધપરીષહકો કિસ ભાવના સે સહન કરે સો કહતે હૈં—‘સમણં’—ઇત્યાદિ અન્વયાર્થ—(કોઈ—કોઽપિ) કોઈ અજ્ઞાની (કત્થઈ—કુત્રાપિ) કહીં પર મી (સંજયં—સંયતમ્) ષટ્કાય કે જીવોં કી જતના કરનેવાલે ( દંતં—દાન્તમ્ )

છોડે. કુહાડો ચંદન વૃક્ષને કાપી નાખે છતાં ચંદન વૃક્ષમાં જે સુલાસિતતાનો ઉત્તમ ગુણ છે તે પોતાને કાપનાર કુહાડાને પણ આપે છે. જે એમ ન કરે તો તે ચંદન શેનું ? મહાત્મા પણ પોતાના શત્રુ તરફ આવું જ વર્તન રાખે છે. નહીં તો એ મહાત્મા શાના ? ધન્ય છે મહાત્મા ! તમારા આ શુભ વ્યવસાયને ! આ પવિત્ર ભાવના પર ત્રણ ઢોકનું રાજ્ય પણ ન્યોછાવર છે, કેવી સુન્દર વિચારધારા છે ! આ વિચાર ધારાના બળ ઉપર શ્રી મહાવીર પ્રભુના શાસનમાં સર્વોત્કૃષ્ટતા રહેલ છે. પ્રત્યેક મોક્ષાભિલાષીએ આ અભિનંદનીય વંદનીય વિચારધારાને અપનાવવી જોઈએ ॥ ૨૬ ॥

કેવા ભાવથી વધપરીષહને સહન કરવાને કહે છે—સમણં ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—કોઈ—કોઽપિ કોઈ અજ્ઞાની કત્થઈ—કુત્રાપિ કોઈ જગ્યાએ પણ સંજયં—સંયતમ્ ષટ્કાય જીવોનું જતન કરનારા દંતં—દાન્તમ્ પાંચ ધન્દ્રિય અને મનનો નિગ્રહ

=इन्द्रियनोइन्द्रिय दमनशीलम् श्रमणं=तपस्विनं मुनिं हन्यात्=पुष्टियष्ट्यादिना ताडयेत्, तदा संयतः=मुनिः, जीवस्य=आत्मनज्ञानरूपस्य नाशः नास्ति=न भवति शरीरस्यैव नाशात्, इत्येवं प्रेक्षेत=चिन्तयेत् ॥

पांच इन्द्रिय एवं मन को निग्रह करने वाले ( समण-श्रमणम् ) श्रमण-तपस्वी मुनि को (हृणोज्जा-हन्यात्) यष्टि मुष्टि आदि द्वारा मारे। उस समय ( संजए-संयतः) वह मुनि ( जीवस्स नासो नत्थि-जीवस्य नाशः नास्ति ) “ज्ञानस्वरूप आत्मा का नाश नहीं होता है किन्तु उसका पर्यायान्तर होता है अतः शरीरका ही नाश होता है ( एवं पेहेज्ज एवं प्रेक्षेत )ऐसा विचार करे।

भावार्थ—आत्मा को क्रोधी तब होना चाहिये कि जब उसकी चिज वस्तु का विनाश हो। जैसे संसारी लोग अपनी वस्तु के विनाश होने पर क्रोधी या दुःखी हुआ करते हैं दूसरों की वस्तुओं के विनाश में नहीं। इसी प्रकार महात्मा को भी किसीके द्वारा ताडित होने पर या मारे जाने पर वह विचार करना चाहिये कि यह शरीर पुद्गला का है अतः यह मेरी निजवस्तु नहीं है परवस्तु है। इसके विनष्ट होनेपरमैं वयो क्रोधी या दुःखी बनूं? मेरी मिज की वस्तु जो ज्ञानादिक गुण हैं वे तो इस के आघात से नष्ट नहीं होते हैं वे तो सदा अक्षय ही रहते हैं इस लिये क्रोधी या दुःखी होने की मुझे किञ्चित् मात्र भी आवश्यकता नहीं है।

करनारा समणं-श्रमणम् श्रमणु तपस्वी मुनिने हृणोज्जा हन्यात् ठासा पाडु वने-देथी मारे अे समये सजये संयतः ते मुनि जीवस्स नासो नत्थि जीवस्य नाशा नास्ति ज्ञान स्वरूप आत्मानो नाश थतो नथी परंतु अे पर्यायान्तरित डोय छे, आथी शरीरनो अे नाश थाय छे एवं पेहेज्ज-एवं प्रेक्षेत अेवो विचार करे,

भावार्थ—आत्माअे क्रोधित तो त्यारे थवुं जेधं अे के अ्यारे तेनी पोतानी वस्तुनो विनाश थतो डोय. जेम संसारी डोके पोतानी वस्तुअेनो विनाश थता क्रोधित अन दुःभा थया करे छे, भीजनी वस्तुअेना विनाशमा नही. आ प्रकारे महात्माने पणुं केधं तरइथी मार मारवाभां आवे के धाक धमकी आपवाभां आवे त्यारे तेणुं विचार करवो जेधंअे के, आ शरीर पुद्गलनुं छे, आ करणुं ते भारी पोतानी वस्तु नथी, पारकी वस्तु छे. अेनो विनाश थवाथी दुं शा माटे क्रोधी अथवा दुःभीअनुं? भारी पोतानी अे वस्तु ज्ञानादिक गुणुं छे ते अेना आघातथी नाश पावती नथी. अे तो सदाय अक्षय अे रहे छे, आथी क्रोधी अथवा दुःभी थवानी मारे देश मात्र पणुं आवश्यकता नथी.

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

श्रावस्तीनगर्या रिपुमर्दननाम्नो राज्ञः पुत्रो धारिणीदेव्या अङ्गजातः स्कन्दक-  
नामकः कुमार आसीत् । अस्य भगिनी पुरन्दरयशा नाम्नी । सा कुम्भकारकटक-  
नामके पुरे दण्डकिनाम्ने नृपतये पित्रा प्रदत्ता । तस्य दण्डकिभूपस्य पुरोहितः  
पालकनामा ब्राह्मणो मिथ्यादृष्टिरासीत् ।

एकदा मुनिसुव्रतस्वामी विंशतितमस्तीर्थकरः श्रावस्तीनगर्या समवसतः, तस्य  
देशनां श्रुत्वा स्कन्दककुमारः श्रावको जातः । एकदा कदाचिदसौ पालकपुरोहितः  
श्रावस्तीनगर्यामागतः । स राजसभायामार्हतसिद्धान्तं खण्डयितुं प्रवृत्तः तदा

दृष्टान्त—श्रावस्ती नगरी में रिपुमर्दन नाम का एक राजा राज्य  
करता था । उसकी धर्मपत्नी का नाम धारिणी था । धारिणीदेवी से राजा  
के एक कुमार का जन्म हुआ, जिसका नाम स्कन्दक था । स्कन्दक के एक  
बहिन भी थी । उसका नाम पुरन्दरयशा था । कुम्भकारकटक नाम के  
पुर में दण्डकी नामक राजा के साथ उसका विवाह हुआ था । दण्डकी  
राजा का एक ब्राह्मण पुरोहित था । इसका नाम पालक था । यह  
मिथ्यादृष्टि था ।

एक समय की बात है कि वे बीसवें तीर्थङ्कर श्री मुनिसुव्रतस्वामी  
श्रावस्ती नगरी में पधारे । उनकी देशना को सुनकर स्कन्दककुमार  
ने श्रावकधर्म अंगीकार किया । किसी समय पालक पुरोहित श्रावस्ती  
नगरी में आया । राजसभा में बैठकर उसने जैनसिद्धान्त को खण्डन  
करने वाली बात प्रारंभ की । जब वह बोल चुका तब उसकी बात को

दृष्टान्त—श्रावस्ती नगरीमें रिपुमर्दन नामने एक राजा राज्य करते  
हते। तेने धारिणी नामनी एक राणी हती। धारिणीदेवीथी राजने एक कुमा-  
रने जन्म थये, जेनुं नाम स्कंदक हतुं, स्कंदकने एक भडेन पणु हती। तेनुं  
नाम पुरंदरयशा हतुं। कुम्भकारकटक नामना नगरना दंडकी नामना राजनी साथे  
तेने विवाह करवाभां आवेल हते। दंडकी राजने एक ब्राह्मण पुरोहित हते।  
तेनुं नाम पालक हतुं। ते मिथ्यादृष्टी हते।

आ एक समयनी बात छे के न्यादे वीसभा तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत  
स्वामी श्रावस्ती नगरीमें पधार्या। तेमनी देशना सांभणीने स्कंदककुमार  
श्रावकधर्म अंगिकार कर्ये। केवलेंक वपते पालकपुरोहित श्रावस्ती नगरीमें  
आव्या। राजसभामें ऐसीने जैन सिद्धान्तनुं भंडन करवावाणी बातनी शङ्-  
कात करी। न्यादे तेणुं बात पुरी करी त्यादे ते बात सांभणीने त्यां भेडेला

श्रावकव्रतधारी स्कन्दककुमारं आर्हतसिद्धान्तं समर्थयन् तं निरुत्तरं कृतवान् । तेन कारणेन पालकपुरोहितस्य स्कन्दककुमारं प्रति महान् विद्वेषो जातः ।

एकदाऽसौ स्कन्दककुमारः पञ्चभिः शतैः कुमारैः सह भगवतो मुनिसुव्रतस्वामिनः समीपे देशनां श्रुत्वा दीक्षां गृहीतवान् । भगवता ते पञ्चशतकुमारकास्तस्य शिष्यत्वेन निश्रिताः कृताः । ततोऽसौ स्कन्दकाचार्योऽन्यदा भगवन्तं पृच्छति— भगवन् ! कुम्भकारकटकपुराभिमुखं विहर्तुमिच्छामि, भगवानाह— वरं तत्र गम्यताम्, किंतु तत्रोपसर्गो मारणान्तिकः । पुनस्तेनोक्तम्— भगवन् ! वयमाराधकाः, किं वा विराधकाः ? । भगवता कथितम्— एकं त्वां विना सर्व आराधकाः सन्ति ।

सुनकर वहां पर बैठे हुए श्रावकव्रतधारी स्कन्दककुमार ने जैन-सिद्धान्त का समर्थन करते हुए उसको निरुत्तर कर दिया, इससे पालक स्कन्दककुमार का महान् विद्वेषी बन गया ।

कुछ काल के बाद स्कन्दककुमार ने पांचसौ कुमारों के साथ भगवान मुनि सुव्रतस्वामी के समीप धार्मिकदेशना सुनकर दीक्षा ली । उन पांचसौ कुमारोंको भगवानने उनकीनेश्राय(अधीनता)में कर दिया । अब वे स्कन्दक मुनि स्कन्दकाचार्य हो गये । स्कन्दकाचार्य ने एक दिन भगवान से पूछा कि भगवन् ! मैं यहां से कुम्भकारकटक पुर की तरफ विहार करना चाहता हूं यदि आपकी आज्ञा हो तो । भगवान ने कहा जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो परन्तु तुम को वहां मरणान्तिक उपसर्ग का साम्हना करना पड़ेगा । फिर इस बात को सुनकर स्कन्दक ने प्रभु से पूछा कि प्रभो ! हम सब आराधक हैं या विराधक ? भगवान ने कहा तुम्हारे सिवाय सब ही आराधक हैं । भगवान के मुख से इस

श्रावकव्रतधारी स्कंदककुमारने जैनसिद्धांतने समर्थन करतां तेने निरुत्तर जनावी दीधे. आथी पालक स्कंदककुमारने महान विरोधी जनी गये.

केटलाक समय पछी स्कंदककुमारने पांचसो कुमारोनी साथे भगवान मुनिसुव्रतस्वामी पासोथी धार्मिक देशना सांभजीने दीक्षा अंगीकार करी, ओ पांचसो कुमारोने भगवाने स्कंदककुमारनी हेभरेथ नीचे राख्या, आथी ते स्कंदकमुनि स्कंदकाचार्य जनी गया, स्कंदकाचार्ये ओक दिवस भगवानने पूछयुं के, हे भगवन्त ! हुं अडिंथी आपनी आज्ञा डोय तो कुंभकारकटकपुर तरई विहार करवानी छंछ राखुं छुं. भगवाने कहुं, जे रीते तभने सुभ थाय ओ रीते करे. परंतु तभारे त्यां मरणान्तिक उपसर्ग ने सामने करवे पडरी. ते वात सांभजीने स्कंदके प्रभुने पूछयुं, के हे प्रभो ! अमे अधा आराधक छीओ के विराधक ? भगवाने कहुं, के तभारा शिवाय अधा आराधक छे. भगवानना



एवं भगवता कथितोऽपि स्कन्दकाचार्यो भाविशशात् पञ्चशतशिष्यपरिवारसहितः कुम्भकारकटकपुरं प्रति विहारं कृतवान् । पाळकब्राह्मणेन तद् विहारवार्ता श्रुता-  
“अत्रागच्छति स्कन्दकाचार्यः” इति । ततोऽसौ पूर्ववस्मनुस्मृत्य तन्निर्यातनार्थं यत्रोद्याने स्कन्दकाचार्य आगन्तुकस्तत्परितो विविधशस्त्रास्त्राणि प्रच्छन्नरीत्या भूयै निखन्य रातः सद्योपमागत्य वृत्ते स्वामिन् ! स्कन्दकाचार्यः पञ्चशतशिष्यपरिवारैः सह साधुवेषेण इह समायाति, स भवदीयराज्यं हर्तुमिच्छति, वतोऽसौ भवदीयोद्यम-  
नस्य चतुर्दिक्षु रात्रौ प्रच्छन्नो भूत्वाऽस्त्रशस्त्रानि भूम्यन्तर्निहितानि, तद्दृष्टं कथंचि-  
मया ज्ञातम्, तत्र गत्वा पश्यन्तु भवन्तः पुरोहितवचनं श्रुत्वा राजा तत्र गत्वा

भविष्यत् को सुनकर भी स्कन्दकाचार्य ने भाविशशात् पांचसौ शिष्यों के साथ कुम्भकारकटकपुर की ओर विहार कर दिया । पालक पुरोहितने उनके विहार की वार्ता खुनी तो उसको ज्ञात हो गया कि स्कन्दकाचार्य विहार कर यहाँ आ रहे हैं । उसने उनके साथ अपना पूर्व वैर याद कर “ बदला लेने का अवसर आगया है ” इस अभिप्राय से उसने जिस उद्यान में स्कन्दकाचार्य आकर उतरे थे उस में जमीन खुदवाकर नीचे विविध शस्त्र एवं अस्त्र गुप्तसीति से गढ़वा दिये । पश्चात् राजा के पास आकर फिर वह कहने लगा कि हे स्वामिन् ! यहाँ पांच सौ शिष्यों के परिवार से स्कन्दकाचार्य सायु के वेश में आये हुए है । वे आप के राज्य को हरण करना चाहते हैं । इस लिये उम्हों ने गुप्तरीति से उद्यान में चारों ओर अस्त्र शस्त्र भूमि में गढ़वा दिये हैं । यह बात रात्रि में मैंने छुपकर देखी है । आप की जो विश्वास न हो ती

मोहाधी आ लविष्यवाष्ठी सांलणीने पञ्च स्कंदकाचार्ये लाविशशात् ५०० शिष्योनी साथे कुम्भकारकटकपुरनी तरङ्ग विहार करी दीधो। पालकपुरोहिते तेमना विहारनी बात सांलणीने लण्ड्युं स्कंदकाचार्ये विहार करता करता आ तरङ्ग आवी रह्या छे। तेण्णे पोतानुं अगाठिनु तेमनी साथेनुं वैर याद करीने “अद्वेो देवानो अवसर आवी युक्त्यो छे” आवा अलिप्रायथी के जगीच्यामां स्कंदकाचार्ये आवीने उतर्यां हता तेनी अंदरनी जमीन मोहावीने तेनी नीचे गुद्दी गुद्दी जातनां शस्त्र अस्त्र दटावी दीधां। पछी राजनी पासे आवीने ते कडेवा लाज्यो के, पांचसो शिष्योना परिवार साथे स्कंदकाचार्ये साधुना वेशमां अडि आव्या छें। ते आपनु राज्य लठ लेवा छ्छे छे। केमके, तेमण्णे गुप्तरीते जगीच्यामां वारे आजु शस्त्र अस्त्र दटावी राण्यां छे। आ बात में रात्रिना पपते धुपी रीते जेध लीधी छे। आपने के विश्वास न होय तो आप खुद



भूम्यन्तर्गतानि तानि शस्त्रास्त्राणि विलोकितानि। ततोऽसौ नृपः कोपावेशेन पुरो-  
हितमब्रवीत्—हे पालक ! सर्वानेतान् साधूनहं तवाधीनान् करोमि, यथेच्छसि  
तथा कुरु। एवमुक्तोऽसौ दुष्टभावसमन्वितः पुरोहितः सर्वान् मुनीन् परितः समा-  
क्रम्य एकैकं मुनिं तिलादिपीडनयन्त्रे संस्थाप्य पीडयितुं प्रवृत्तः। ते स्वात्मक-  
ल्याणार्थिनो मुनयस्तं वधपरीषहं सम्यक् परिष्वान्तसमये केवलज्ञानं प्राप्य मोक्षं  
गताः। तत्र ४९८ चतुःशताष्टनवतिसंख्यका मुनयः पीडनयन्त्रे पीडितास्त-  
थापि स्कन्दकाचार्येण समभावं समालम्ब्य तत्र स्थितम्। तदा स्वस्मादन्य एक एव  
मुनिरवशिष्टः, तमपि पीडनयन्त्रे स्थापयितुमुद्यतस्तदा स्कन्दकाचार्येणोक्तम्—

स्वयं चलकर देख सकते हैं। पुरोहित की बात सुनकर राजा उद्यान में  
आया और वहाँ उसने भूमि के भीतर गढ़े हुए अनेक अस्त्र शस्त्र देखे।  
इस स्थिति से राजा को बड़ा ही कोप बढ़ा और उसने कोप के ही  
आवेश में तन्मय होकर पुरोहित से कहा, पालक ! इन सब साधुओं  
को मैं तुम्हारे आधीन करता हूँ। तुम जैसा भी समझो इनके साथ  
वैसा करो। राजा ने जब ऐसा कहा तब पुरोहित के आनंद का पार  
न रहा। उसने शीघ्र ही चारों ओर से सब मुनियों को घिरवा दिया और  
एक एक मुनि को कोलहू (घाणी) में पीलने लगा। चारसौअठानवे(४९८)  
मुनियोंने समभाव से वधपरीषहको सहन करके अंत समयमें केवलज्ञान  
प्राप्तकर मुक्ति को प्राप्त किया। स्कन्दकाचार्य और एक बालमुनि पीलनेके  
लिये अवशिष्ट रहे। जब पालक ने उस मुनि को पीलने के लिये कोलहू  
में रखने को उद्यत हुवा तो इतने में स्कन्दकाचार्य ने उससे कहा कि

जधने जेध शके छे. पुरोहितनी बात सांलणीने राज् जणीयाभां गया अने  
त्यां जभीननी अंदर दारैलां अनेक शस्त्र अस्त्र जेयां. आधी राजने भूष कोध  
अउयो अने कोधना आवेशभां आवीने तेणे पुरोहितने कहुं, पालक ! आधी  
अधा साधुओने हुं तभारे हुवाले कइं छुं. तभोने ठीक लागे तेभ तेने इंसबो तभे  
करै. राजओ ज्यारे आ प्रभाणे कहुं त्यारे पुरोहितना आनंदने पार न रह्यो. तेणे  
तरत ज्यारे तरइथी ते मुनिओने घेरी लई पकडीने ओक पछी ओक मुनिने  
घाणीभां पीलवानुं शइ कयुं. ४९८ मुनिओओ समभावथी वधपरीषदने सहन  
करीने अंत समये केवलज्ञानने प्राप्त करीने मुक्तिने पाभ्या. स्कंदकाचार्य अने  
ओक मुनि पीलवा भाटे जाकी रखा. ज्यारे पालके ते मुनिने पीलवा भाटे  
घाणीभां नाभवा प्रवृत्त थया त्यारे स्कंदकाचार्ये तेने कहुं के, आ तो कोभज-

अयमस्ति कोमलकायो बालकः, तस्मादयं त्वया न इन्तव्यः मम समक्षे पीडनयन्त्रेऽस्य स्थापने पीडा मम जायते, मुञ्चैनम् । स्कन्दकाचार्यवचनं श्रुत्वाऽसौ राजपुरोहितः पालकब्राह्मणो वदति-राजसभायां त्वया पराजितोऽहम्, अतो यावदधिकादप्यधिकं दुःखं तव स्यात् तदेव कार्यं मम कर्तव्यम् । इत्युत्त्वाऽसौ तं बालमनगारं स्कन्दकाचार्यस्य समक्षमेव पीडनयन्त्रे संस्थाप्य तत्पीडनं कृतवान् । स बालोऽप्यनगारस्तत्र वधपरीषहं सम्यक् परिषह्य केवलज्ञानं प्राप्य मोक्षं गतः ।

तदा स्कन्दकाचार्यो रोषावेशेन निदानं कृतवान्-“ यदि मम तपःसंयमस्य फलं भवेत्, तदा एतेषां सर्वेषां दुःखदायको भवेयम् ” इति । अथाऽसौ स्कन्दका-

यह इस समय कोमलकाय बालक है अतः तुम इसे छोड़ दो । इसे कोल्हू में रखते हुए देखकर मुझे पीड़ा होती है, अतः यह मारने योग्य नहीं है । स्कन्दकाचार्य के इस प्रकार वचन सुनकर पालक उनसे कहने लगा-सुनो-तुमने मुझे पहिले राजसभा में परास्त किया था, अतः उसके उपलक्ष में अधिक से अधिक जो कष्ट हो सकता है वह मैं तुमको दूँ ऐसा ही मेरा निर्णय है । इस में जरा भी इधर उधर नहीं करना चाहता हूँ । इस प्रकार कह कर उसने उस बालक मुनि को भी स्कन्दकाचार्य के सामने ही कोल्हू में रखकर पील दिया । उस बालक अनगार ने भी खुशी खुशी से वधपरीषह सहन करके अंत में केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त कर लिया । उस समय स्कन्दकाचार्य ने रोश के आवेश में आकर यह निदान किया कि “यदि मेरे तप एवं संयम का फल होता हो तो मैं इन सब को दुःख देने वाला हूँ ।”

काय भाणक छे, माटे अने छोडी हो. अने घाणीमां राजेत जेईने मने पीडा थाय छे माटे ते भारवाने योग्य नथी. स्कंदकाचार्यनुं आ प्रभाषेनुं वचन सांभलीने पालक पुरोहित कडेवा लाग्ये के, सांभलो । तमे मने अगाउ राजसभामां पराजित करेव डतो जेथी तेना उपलक्षमां हुं अधिकमां अधिक कष्ट जे डोय ते हुं तमने आपीश अवेा भारे निर्णय छे. तेमां जरा पषु हुं ईरक्षर करवा छिछतो नथी. आ प्रभाषे कडीने तेबे ते भाणक मुनिने स्कंदकाचार्यनी साभे ज घाणीमां नाभीने पीली नाभ्ये. आ भाण अनगार पषु पुशीथी वधपरीषह सहन करीने अंतमां केवलज्ञान प्राप्त करीने मुक्ति पाभ्या. आ सभये स्कंदकाचार्ये रोषना आवेशमां आवीने आ प्रभाषे निदान करुं के, जे भारे तप अने संयमनुं इण थतुं डोय तो हुं आ अधाने दुःख देवावाणो अनुं. पालके छेवटे स्कंदकाचार्यने पषु घाणीमां पीलीने

चार्यं तत्र यन्त्रे निपीड्य हतवान् । स स्कन्दकाचार्यो मृत्वाऽन्निकुमारदेवत्वेन-  
समुत्पन्नो भूत्वाऽवधिज्ञानेन स्वपूर्वभववृत्तं ज्ञात्वा कोपावेशेन नृपपुरोहितामात्यादि  
सहितं कुम्भकारकटकपुरं सदेशं भस्मसात् कृतवान् । दण्डकिभूपस्य स देशो दण्ड-  
कारण्यनाम्ना पश्चात् प्रसिद्धो जातः । एवमन्यैरपि मुनिभिर्वधपरीषहः सोढव्य एव,  
न तु स्कन्दकाचार्यवत् कोपाविष्टैर्भूवितव्यम् ॥ २७ ॥

अथ याचनापरीषहजयं प्राह—

मूलम्—दुक्करं खलु भो ! निचंचं, अणंगारस्स भिक्खुणो ।

संठ्वं सें जाइयं होइं, नत्थि किंचिं अजाइयं ॥२८॥

छाया—दुक्करं खलु भो ! नित्यम्, अनंगारस्य भिक्षोः ।

सर्वं तस्य याचितं भवति, नास्ति किंचिद् अयाचितम् ॥ २८ ॥

टीका—‘दुक्करं’ इत्यादि ।

खलु=निश्चयेन भो ! इति सम्बोधनम्, हे जम्बूः ! अनंगारस्य=गृहरहितस्य

पालक ने अन्त में स्कन्दकाचार्य को भी कोल्हू में पील कर नष्ट कर  
दिया । स्कन्दकाचार्य मर कर निदान के प्रभाव से अग्निकुमार जाति  
के देव हुए । देवपर्याय में अवधिज्ञान द्वारा अपने पूर्वभव का वृत्ता-  
न्त जानकर उस देवने क्रोध के आवेश में आकरके नृप पुरोहित एवं  
अमात्य आदि सहित समस्त कुम्भकारकटकपुर को भस्मसात् कर  
दिया । दण्डकीभूप का वह देश दण्डकारण्य नाम से प्रसिद्ध हुआ ।  
इस कथा से मुनियों को यही शिक्षा लेना चाहिये कि वे वधपरीषह  
को समभाव से सहन करे । जिस प्रकार उनमुनियों ने वधपरीषहको  
सहा उसी प्रकार अन्य मुनियोंको भी वधपरीषह सहन करना चाहिये ।  
स्कन्दकाचार्य की तरह कोपाविष्ट नहीं होना चाहिये ॥ २७ ॥

तेनो नाश कर्थो. स्कंदकाचार्य भरीने निदानना प्रभावथी अग्निकुमार देव जातीमां  
उत्पन्न थया. देवपर्यायमां पोताना अवधीज्ञानथी पोताना पूर्वभवतुं वृत्तांत जाणीने  
ते देव क्रोधना आवेशमां आवीने राज पुरोहित अने आमात्य सहित समस्त  
कुम्भकारकटकपुरने लस्मीभूत जनावी दीधुं. दंडकी राजने ते देश पछीथी  
दंडकारण्य तरीके प्रसिद्ध थयो. आ कथाथी मुनिओथे शिक्षा अरुद्ध करवी जेधये  
के, वधपरीषहने समभावथी सहन करे. जे प्रकारे मुनिओथे वधपरीषहने सहन  
कर्थो जे प्रकारे सहन करे स्कंदकाचार्यनी भाइक कोपायमान थवुं न जेधये ॥२७॥

भिगोः=पुनेः नित्यं=सर्वदा-यावज्जीवमित्यग्रं, दुष्करं=दुःखेन क्रियमाणं कठिनं भवति । किं दुष्करं भवति ? इत्याह—'सर्वं इत्यादि, तत् सर्वम्=आहारोप-करणादिकं वस्तु तस्य याचितं=याचितमेव भवति, किञ्चिदपि दन्तशोधनादिकमपि अयाचितं नास्ति न गृह्यते तस्मात् कष्टं मुनिजीवनमिति ॥ २८ ॥

उक्तार्थमेव सविशदं वर्णयति—

मूलम्—गोयरंगगपविष्टस्य, पाणी नो सुप्पसारण ।

सेओ अगारवासात्ति, इइ भिक्खू नं चित्तं ॥ २९ ॥

छाया—गोचराग्रप्रविष्टस्य, पाणिः नो सुप्सार्यः ।

श्रेयान् अगारवासः इत्ति, इत्ति भिक्खुर्न चिन्तयेत् ॥ २९ ॥

टीका—'गोचरगग०' इत्यादि ।

गोचराग्रप्रविष्टस्य=गोचरः गौरिव चरणं गोचरः भिक्षाचर्या, यथा-ज्ञाताज्ञात-विशेषमपहायैव गौः प्रवर्तते, तथा साधुरपि ज्ञाताज्ञातकुलेषु भिक्षार्यम् तस्याग्रं =प्रधानं, यतोऽसौ एषणायुक्तो गृह्णाति, न तु गौरिव यथा कथंचित्, तस्मिन् गो-चराग्रे प्रविष्टस्य, मुनेः पाणिः=हस्तः नो सुप्सार्यः=नैव सुखेन प्रसारयितु

अब सूत्रकार चौदह वें याचनापरीषद् को सहन करने का उपदेश करते हैं—'दुष्करं खलु'— इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( खलु ) निश्चय से ( भा-भोः ) हे जंबू ! ( अणगारस्स भिषखूणो-अनगास्स्य भिक्षोः ) गृहरहित भिक्षुको ( सर्वं आइयं होइ-सर्वं याचितं भवति ) समस्त वस्तुएँ याचित ही होती हैं । ( किञ्चि अजाइयं नत्थि किञ्चित् अयाचितं नास्ति ) कोई भी वस्तु अयाचित नहीं होती है । इसलिये मुनिजीवन ( दुष्करं-दुष्करम् ) बड़ा ही दुष्कर है । विना दिये तो वह दन्तशोधनादिक भी तृण तक भी नहीं ले सकते हैं ॥ २८ ॥

७६ वे ओदमो यायनापरीषद् सहन करवानो उपदेश सूत्रकार ७६ छे—

'दुष्करं खलु' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—खलुनिश्चयथी भो-भोः ७६ जम्भू ! अणगारस्स भिक्खुणो अनगास्स्य भिक्षोः गृहं रहित भिक्षुनी सर्वं जाइयं होइ सर्वण्याचितं भवति समस्त वस्तुओ याचितं ७ डोया छे । किञ्चि अजाइयं नत्थि किञ्चिन् अयाचितं नास्ति केअ पण वस्तु अयाचित नथी, माटे मुनिजीवन दु रं-दुष्करम् धलुं ७ दुष्कर छे । केअना आप्या बगर ते हात ने साइ करया माटे तण्णुं पण लण शकता नथी ॥ २८ ॥

शक्यः, नहि मुनिः कस्यापि गृहस्थस्य सम्बन्धीति भावः। इति=अतो हेतोः, अगारवासः=गार्हस्थ्यम् श्रेयान्=श्रेष्ठः, इति=एतद्, भिक्षुः=मुनिर्न चिन्तयेत्, किंतु गृहवासो हि बहुसावद्ययुक्तस्तथा ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धस्य कारणम्, स कथमपि श्रेयस्करो न भवतीति विचारयेत्।

फिर सूत्रकार पूर्वोक्त अर्थको ही विशद करते हैं—‘गोचरग’—इत्यादि।  
अन्वयार्थ—(गोचरगपविट्टस्स-गोचराग्रप्रविष्टस्य) ज्ञात अज्ञातकुलों में गोचरी के लिये प्रविष्ट हुए साधु का (पाणी-पाणिः) हाथ (नो सुप्प-सारए-नो सुप्रसार्यः) सुप्रसार्य नहीं है, क्यों कि मुनि किसी गृहस्थ का संबंधी नहीं है, इसलिये (अगारवासो सेओ-अगारवासः श्रेयान्) इसकी अपेक्षा गृहस्थ जीवन श्रेष्ठ है, ऐसा (भिक्षू न चिंतए-भिक्षुः न चिन्तयेत्) भिक्षुको नहीं विचारना चाहिये, क्यों कि गृहवास बहुसावद्ययुक्त तथा ज्ञानावरणीय आदि अष्टविध कर्मों के बंध का कारण है अतः वह किसी प्रकार श्रेयस्कर नहीं माना जा सकता है।

भावार्थ—गोचरी के लिये ज्ञात अज्ञात कुलों में गये हुए साधु को ऐसा नहीं विचार करना चाहिये कि यहां मैं किसके सामने हाथ फैलाऊँ—कोई मेरा संबंधी तो है नहीं। संबंधी से मागने में कोई शर्म की बात नहीं है। इससे तो अच्छा गृहवास ही है कि जिसमें हर एक से हर एक चीज मांगने में कोई संकोच नहीं होता है। साधु का ऐसा

सूत्रकार पूर्वोक्त अर्थने न इरी समजवे छे—‘गोचरग’ इत्यादि।

अन्वयार्थ—गोचरगपविट्टस्स-गोचराग्रप्रविष्टस्य ञ्णुत्ता अगार अण्णुत्ता कुणोभां गोचरी भाटे जनारा साधुने पाणी-पाणिः हाथ नो सुप्पसारए-नो सुप्रसार्यः सुप्रसार्य नथी. डेमके, मुनि केई गृहस्थना संबंधी नथी तेथी अगारवासो सेओ-अगारवासः श्रेयान् ते अपेक्षाये गृहस्थ जवन श्रेष्ठ छे येवे वाव भिक्षू न चिंतए-भिक्षुः न चिन्तयेत् भिक्षुये वाववे न जेधये. डेमके, गृहवास बहु सावद्ययुक्त तथा ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मेना बंधनुं कारण छे. आथी ते केई प्रकारे श्रेयस्कर मानवाभां आवेल नथी.

भावार्थ—गोचरी भाटे ञ्णुत्ता के अण्णुत्ता कुणभां जता साधुये येवे विचार न करवे जेधये के, हुं त्यां केनी सामे हाथ लांओ कइं ? केई भारे संबंधी तो नथी. संबंधी पासे मागवाभां केई शरमनी बात नथी. आथी तो गृहस्थाश्रम सारे के जेभां जेक भीजथी यीज मागवाभां संकोच थतो नथी.



अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

दशमतीर्थकरश्रीशीतलनाथस्वामिशासने तद्वंशीयो वज्रप्रियनामा भूपति-  
र्बभूव । स दीक्षां गृहीत्वा मासमासक्षणस्य पारणं करोति स्म । स प्रथममास-  
क्षणपारणे भिक्षाचर्यायां प्रविष्टश्चिन्तयति—कथमद्य याचयामि, वज्रप्रियनाम-  
धारकोऽहमिक्ष्वाकुवंशोद्भवेऽपि अग्रसरस्तथा जातिकुलसंपन्नोऽस्मि, पुनरुच्चनी-  
चमध्यमकुलेषु हस्तप्रसारणं ममासिधारावत् कठिनम् । यस्य चरणे राज्ञां मुकुटको-  
टयः परिलसन्ति स्म, यस्याज्ञां मन्दारकुसुममालामिव जनाः सादरं धारयन्ति स्म,

विचार इसलिये प्रशस्य नहीं है कि गृहस्थाश्रम बहुसावद्य कर्मों से युक्त होता है तथा उससे ज्ञानावरणीयादिक अष्टविध कर्मों का बंध होता है ।

दृष्टान्त—दशवें तीर्थकर श्रीशीतलनाथस्वामी के शासनकाल में इनका ही वंशज एक वज्रप्रिय नामका राजा था । उसने धार्मिक उपदेश श्रवणकर दीक्षा धारण कर ली थी । मुनि बनकर उन्होंने खूब तपश्चर्या की। मास-र खमण की तपस्या करने लगे । एक समय की बात है कि जब उनके प्रथम मासक्षण का पारणा था तो स्वयं भिक्षाचर्या के लिये गये । उस समय उन्होंने विचार किया कि मैं आज कैसे याचना करूँगा? मेरा वंश तो ऐसा नहीं है कि जिसमें किसीने याचना की हो । मैं तो इक्ष्वाकुवंशजों में अग्रसर हूँ । मैं जातिकुलसंपन्न हूँ । उच्च नीच एवं मध्यम कुलों में हाथ फैलाना मेरे लिये तो असिधारा के समान कठिन प्रतीत होता है । जिन मेरे चरणों में राजाओं के मुकुट नमते रहे थे,

साधुने आवे विचार अेटवा भाटे ढीक नथी के, गृहस्थाश्रम धरु सावद्य कर्मोथी लरेल छे. तथा अेनाथी ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मोने अंध थाय छे.

दृष्टान्त—दसमा तीर्थकर श्री शीतलनाथ स्वामीना शासन कालमां तेमना न वंशने अेक वज्रप्रिय नामने राजा डतो. तेले धार्मिक उपदेश सांलणीने दीक्षा अडलु करी. मुनि अनीने तेले भूअ तपश्चर्या करी. भास भास अमणुनी तपश्चर्या करवा लाग्या. अेक समयनी वात छे, अ्यारे तेमनुं पडेला भास अमणुनुं पारणुं डतु अेटवे ते अंगे पोते भिक्षाचर्या भाटे गया. ते समये तेमले विचार कर्यो के, हुं आअ डेनी पासे याचना करीश ? भारे वंश तो अेवे नथी के ने याचना करे. हुं तो इक्ष्वाकुवंशने अग्रसर छुं. अतिकुल संपन्न छुं. उच्च नीच मध्यम कुलोमां हाथ इलाववे अे भारा भाटे तरवारनी धार भाके कठिन छे. भारा अरथोमां ने राजाअेना मुकुट नमता डता, नेनी



यस्य दर्शनेन च स्वजन्म सफलं मन्यन्ते स्म, येन मया राज्ञां पुरतः कदापि हस्तो न प्रसारितः, सोऽहमिदानीं तेषां कुले तथा हीनदीनकुलेषु च कथं करं प्रसारयामि । यदि गृहवासमङ्गीकरोमि, तदा तु खलु मम वीरप्रतिज्ञैव नष्टा भवति । ज्ञानदर्शनचारित्र्येभ्यश्च पतितो भवामि, ततश्चानन्तसंसारवृद्धिः स्यात्, तत्रापि नरकनिगोदेष्वनन्तदुःखभोगानन्तरमपि रत्नत्रयं दुर्लभं स्यात् । तत्र रत्नत्रये-दर्शनेन विना ज्ञानं नास्ति, ज्ञानेन विना चारित्र्यं न भवति, चारित्र्येण विना मोक्षो न लभ्यः, तस्माद् याचनापरीषहः सर्वथा मया सोढव्यः, इति विचिन्त्य प्रासुकैषणीयभिक्षा-

जिसकी आज्ञा कल्पवृक्ष के फूलोंकी माला के समान मनुष्य सादर मस्तक पर धारण किया करते थे, जिसके देखने से लोग अपने को सफल जन्मवाला मानते थे-आज वही मैं उन लोगों के घरों में जाकर कैसे मांगने के लिये हाथ फैलाऊँगा । मैंने आजतक तो किसी राजा के भी सामने हाथ नहीं फैलाया । फिर संयमके विषय में विचारने लगे कि-यदि इस संकोच से मैं गृहवास को स्वीकार कर लेता हूँ तो मेरी सावध्यत्यागरूप वीरप्रतिज्ञा नष्ट होती है । ज्ञान दर्शन एवं चारित्र्य से भी पतित हो जाता हूँ । इसका फल यह होगा कि मेरा अनन्त संसार बढ़ेगा । अनन्तसंसारी होने पर नरक निगोद के अनन्तदुःखों को भोगने के बाद भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र्यरूप रत्नत्रय की प्राप्ति मुझे दुर्लभ ही रहेगा, क्योंकि कि दर्शन के विना ज्ञान नहीं और ज्ञान के विना चारित्र्य नहीं, तथा चारित्र्य के अभाव में मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है । इसलिये याचनापरीषह मुझे सर्वथा सहन करना ही चाहिये । इस प्रकार विचार

आज्ञा कल्पवृक्षोना कुलोनी भाणा समान मनुष्ये आदर साथे माथा उपर धारण करता होता, जेने जेधने दोके पोताने सङ्ग जन्मवाणा मानता होता. आज तेज हुं जे दोकेना घरोमां जेध लीक्षा भागवा भाटे केवी रीते हाथ लांभा कइ ? में आज सुधी केध राज सामे पणु हाथ लांभा कथी नथी. पछी संयमना विषयमां विचार करवा लाग्या के-जे आ संकोचथी हुं गृहवासने स्वीकारी लई तो भारी सावध्य त्यागइय वीरप्रतिज्ञा नाश पाये छे. तेनुं इण जे आवशे के, भारी अनन्त संसार वधशे. अनन्त संसारी भनावथी नरक निगोदनां अनन्त दुःखेने लागव्या पछी पणु ज्ञान, दर्शन चारित्र्य रत्नत्रयनी प्राप्ति मने दुर्लभज रहेशे. केभके, दर्शन वीना ज्ञान नही, अने ज्ञान वगर चारित्र्य नही, अने चारित्र्यना अभावमां मुक्तिनी प्राप्ति नही. भाटे याचनापरीषह भारे सर्वथा सहन करवो जे जेधजे. आ प्रकारने विचार

मुपादाय संयमयात्रां निर्वहन् कालमासे कालं कृत्वा स्वकल्याणं साधितवान् ।  
एवमन्यैरपि मुनिभिर्याचनापरीषदः सोढव्यः ॥ २९ ॥

याचनायां प्रवृत्तस्य मुनेः कदाचिल्लामान्तरायोदयात् भिक्षाया अलाभः  
स्यात्, इत्यलाभपरीषदजयं प्राह—

मूलम्—परेसुं घासमेसेज्जा, भोजणे परिनिष्ठिण् ।

लङ्घे पिण्डे अलङ्घे वा, नानुत्प्येज्जं पंडिण् ॥३०॥

छाया—परेषु ग्रासम् एषयेत्, भोजने परिनिष्ठिते ।

लङ्घे पिण्डे अलङ्घे वा, नानुत्प्येत पण्डितः ॥ ३० ॥

टीका—‘परेसु’ इत्यादि ।

पण्डितः=भिक्षुधर्ममर्मज्ञः संयतः, भोजने=ओदनादौ, परिनिष्ठिते=निष्पन्ने  
सत्येव परेषु=गृहस्थेषु ग्रासे=पिण्डम् एषयेत्=गवेषयेत् । ततश्च पिण्डे=आहारेऽ-

कर उसने प्राप्त कर एषणीय आहार की याचना की । याचना में प्राप्त आहार  
को लेकर अपनी संयमयात्राका निर्विघ्न रीतिसे निर्वाह करते अन्तमें वे  
आयुके समाप्त होनेपर कालधर्मको प्राप्त कर आत्माका कल्याण किया ॥२९॥

याचना में प्रवृत्त मुनि को कदाचित् लाभान्तराय के उदय से  
भिक्षा का लाभ न हो सके तो उसे पन्द्रहवें अलाभपरीषद को जीतना  
चाहिये अब यह बात सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—‘परेसु’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(पंडिण्-पण्डितः) भिक्षुधर्म के मर्म का ज्ञाता संयमी  
साधु (भोजने-भोजने) ओदनादिक भोजन (परिनिष्ठिण्-परिनिष्ठिते)  
निष्पन्न होने पर ही (परेसु-परेषु) गृहस्थों के घर विषे (घासं-ग्रासम्)  
पिण्डकी (एसेज्जा-एषयेत्) गवेषणा करे (पिण्डे लङ्घे अलङ्घे वा-

करीने तेमले प्राप्त कर एषणीय आहारकी याचना करी. अने याचनाथी प्राप्त  
थयेला आहारने लधने पोतानी संयमयात्रानुं निर्विघ्ने निर्वाह करतां करतां अंतमां  
तेओओ आयुनी समाप्ति थतां, काणधर्म पाभी आत्मातुं कल्याणु कथुं. ॥२९॥

याचनामां प्रवृत्त मुनिने कदाचित् लाभान्तरना उदयथी भिक्षाने लाभ  
भणी शकते न होय तो तेथी हवे पंद्रमा अलाभपरीषदने शतवे लधओ  
ओ वात हवे सूत्रकार प्रदर्शित करे छे.—‘परेसु’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—पंडिण्-पण्डितः भिक्षुधर्मना मर्मना ज्ञाता संयमी साधु भोजने-  
भोजने ओदनादिक भोजन परिनिष्ठिण्-परिनिष्ठिते निष्पन्न होवाथी अ परेषु-परेषु  
गृहस्थाना घरे अर्ध घासं-ग्रासं पिण्डनी एसेज्जा-एषयेत् गवेषणा करे पिण्डे लङ्घे

निष्टे स्वल्पे वा लब्धे सति, अलब्धे वा नानुत्प्येत=‘ भाग्यहीनोऽस्मि, भिक्षाऽपि न लभ्यते ’ इत्यादिरूपं संतापं न कुर्यादित्यर्थः । ‘परिनिट्टिए’ इति विशेषणेन भोजनकाल एवं गच्छेदिति सूचितम् । ‘घासं’ इत्यनेन भ्रमरवृत्त्या ग्राह्यमिति बोधितम् ॥ ३० ॥

तर्हि किं कुर्यादित्याह—

मूलम्—अज्ञेवाहं न लब्भामि, अवि लाभो सुंए सिंया ।

जो० एवं पडिसंचिक्खे, अलाभो तं न तर्जेए ॥३१॥

छाया—अज्ञेवाहं न लभे, अपि लाभः श्वः स्यात् ।

य एवं प्रतिसमीक्षते, अलाभस्तं न तर्जयेत् ॥ ३१ ॥

पिण्डे लब्धे अलब्धे वा) उस समय यदि थोड़ा आहार मिले अथवा बिलकुल भी न मिले तो भी वह ( नानुत्प्येज्ज-नानुत्प्येत ) “ मैं भाग्यहीन हूँ मुझे भिक्षा भी नहीं मिली ” इत्यादिरूप संताप न करे । “परिनिट्टिए” इस विशेषणद्वारा सूत्रकार की साधु के लिये यह सूचना है कि वे गोचरी के लिये भोजनकाल में ही निकले । “घासं” इस पद से गृहस्थों के यहां से जो भी आहार ग्रहण किया जाय वह भ्रमरवृत्ति से किया जाय, यह सूचित किया है ।

भावार्थ—साधु को गोचरी के लिये भोजनकाल में ही निकलना चाहिये, उस समय यदि भोजन अल्प मिले या बिलकुल भी न मिले तो इस विषय में किसी भी प्रकार का उसे मन में संताप नहीं करना चाहिये ॥ ३० ॥

अलब्धे वा-पिण्डे लब्धे अलब्धे वा अये समये तेने थोडुं लोअन भणे अथवा थोडकुल न भणे पणु ते नानुत्प्येज्ज-नानुत्प्येत हुं भाग्यहीन छुं. भने भिक्षा न भणी ” अयेवी रीते संताप न करे परिनिट्टिए अये विशेषणद्वारा सूत्रकार साधु माटे अयेवुं सूचन करे छे के, ते गोचरी माटे लोअन समये अ निकणे घासं आ पदथी गृहस्थोने त्यांथी अे कंठं आहार ग्रहण करवाभां आवे ते भ्रमरवृत्तिथी स्वीकार करवो लेछंअे. आ सूचना आपवाभां आवे छे.

भावार्थ—साधुअे गोचरी माटे लोअन काणभां अ निकणवुं लेछंअे ते समये ले थोडुं भणे अअर न भणे तो पणु आ विषयभां तेना मनभां कंठं प्रकारने संताप थवो न लेछंअे. ॥ ३० ॥

ટીકા—‘ અજ્જેવાહં ’ ઇત્યાદિ ।

અહમ્, અઘૈવ=અસ્મિન્નેવ દિને ન લભે=ન પ્રાપ્નોમિ અપિ=સમ્ભાવયામિ શ્વઃ=આગામિદિને, ઇદમુપલક્ષણમ્ તેન અન્યસ્મિન્ કસ્મિશ્ચિદાગામિનિ દિને ઇત્યર્થઃ, લાભઃ સ્યાત્=આહારાદિપ્રાપ્તિર્ભવિષ્યતિ, એવમ્=અનેનોક્તપ્રકારેણ, યઃ સાધુઃ પ્રતિસમીક્ષતે=ચિન્તયતિ-અલાભે સત્યન્નુદ્વિગ્નઃ સન્ સંયમયાત્રાં નિર્વહતીત્યર્થઃ । તં મુનિન્-અલાભઃ=અલાભપરીષહઃ, ન તર્જયેત્=કથમપિ પરાજયં કર્તુ ન શક્નુયા-

‘ અજ્જેવાહં ’-ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ-(અહં-અહમ્) મુજ્ઞે (અજ્જેવ ન લભામિ-અઘૈવ ન લભે) આજ યદિ આહાર કા લાભ નહીં હુઆ હૈ (અવિ-અપિ) તો (સુએ-શ્વઃ) આગામી દિન મેં ઉપલક્ષણ સે ઓર મી કિસી અન્ય દિવસ મેં (લાભો સિયા-લાભઃ સ્યાત્) ઉસકા લાભ હો જાયગા । (એવં-એવમ્) ઇસ પ્રકારસે (જો-યઃ) સાધુ (પડિસંચિક્કલે પ્રતિસમીક્ષતે) વિચાર લેતા હૈ, (તં-તમ્) ઉસકે લિયે (અલાભો - અલાભઃ) અલાભપરીષહ (ન તજ્જએ-ન તર્જયેત્) કમી મી સંતાપિત નહીં કર સકતા હૈ । ઇસકા તાત્પર્ય યહ હૈ-યાચના કરને પર મી યદિ ગૃહસ્થ-દાતા કી ઇચ્છા હોગી તા હી દેગા, નહીં હોગી તો નહીં દેગા । યદિ વહ નહીં દેતા હૈ તો ઇસમેં સાધુ કે લિયે અપરિતુષ્ટ હોને કી બાત હી કૌન સી હૈ । જો સાધુ ઇસ પ્રકાર કી વિચારધારા સે યુક્ત હોતા હૈ વહ ભિક્ષા કા લાભ ન હોને પર મી સમચિત્ત બના રહતા હૈ, ઉસકે મન મેં વિકૃતિ નહીં આતી હૈ । ઇસી સે વહ અલાભપરીષહ કા વિજેતા બન જાતા હૈ ।

‘ અજ્જેવાહં ’ ઇત્યાદિ.

અન્વયાર્થ-અહં-અહમ્ મને અજ્જેવ ન લભામિ-અઘૈવ ન લભે આજ ભે ભોજનનેા લાભ થયો નથી અવિ-અપિ તો સુએ-શ્વઃ આગામી દિવસમાં ઉપલક્ષથી બીજા પણ કોઈ દિવસે લાભો સિયા-લાભઃ સ્યાત્ એનેા લાભ મળશે. એવં-એવમ્ આ પ્રકારે જો-યઃ સાધુ પડિસંચિક્કલે-પ્રતિસમીક્ષતે વિચારી લે છે તં-તમ્ તેને માટે અલાભો-અલાભઃ અલાભપરીષહ કદી પણ સંતાપ આપનાર બનતો નથી. આનું તાત્પર્ય એ છે કે, યાચના કરવા છતાં પણ ભે ગૃહસ્થ દાતાની ઇચ્છા હશે તો આપશે. નહીં હોય તો નહીં આપે. ભે તે આપે નહિં. તો સાધુ માટે તેમાં અસંતોષ લાવવાની વાત જ ક્યાં છે, જે સાધુ આ પ્રકારની વિચારધારાથી યુક્ત છે તે ભિક્ષાનેા લાભ ન થવાથી પણ સમચિત્ત બની રહે છે. તેના મનમાં વિકૃતી આવતી નથી. તેનાથી તે અલાભપરીષહનેા વિજેતા બની રહે છે.

दित्यर्थः । अयं भावः—याचिते सति गृहस्थः स्वेच्छया दद्यात् न वा दद्यात्, तत्र कोऽस्त्यसंतोषो न यच्छति सति । एवं भावनया लाभभावेऽपि मुनिना सम-  
चेतसैव अविकृतस्वान्ते नैव भवितव्यमित्यलाभपरीषहो विजितो भवतीति ।

भावार्थ—अलाभपरीषह पर विजय पाने के लिये साधु की विचारधारा कैसी होनी चाहिये यह बात इस गाथा द्वारा सूत्रकार ने प्रदर्शित की है । वे कह रहे हैं कि साधु जब गोचरी के लिये किसी मद्गृहस्थ के यहां जाता है और आहारादिककी याचना करता है तो उसकी इच्छा की पूर्ति होना न होना यह साधु के हाथ की बात नहीं है । गृहस्थ की भावना होगी तो वह देगा—नहीं होगी तो नहीं देगा । साधु की कोई इस में जबर्दस्ती तो है नहीं, अतः ऐसी परिस्थिति में जब कि साधु को आहार का लाभ न हो तो उसका कर्तव्य है कि वह अपनी आत्मा को व्यर्थ में क्लेशित न करे, और न उस पर रूष्ट परिणति ही धारण करे । विचार यह करे कि—आज नहीं मिला तो कल मिल जायगा, कल भी न मिला तो परसों मिल जायगा, इसमें सोच फिकर करने की बात ही कौन सी है । दाता का भाव होगा तो देगा, नहीं होगा तो नहीं देगा । इस तरह जो साधु वर्तता रहना है वह वीर मुनि अलाभ परीषह को अवश्य जीत लेता है ।

भावार्थ—अलाभपरीषह उपर विजय भेजववा भाटे साधुनी विचारधारा डेवी डोवी जेठ जे जे वात आ गाथा द्वारा सूत्रकारे प्रदर्शित करेले छे. तेजो कडे छे के, साधु न्यारे गोचरी भाटे कोठ गृहस्थने घेर जाय अने आहारादिकनी याचना करे तो तेनी ध्यछानी पूर्ती थवी के न थवी ते साधुना हाथनी वात नथी. गृहस्थनी भावना डोय तो आपे, नडीं डोय तो आपवाना नथी. साधुनी कोठ जबरजस्ती कोठ शके नडिं. आथी आवी परिस्थितिमां कोठ साधुने आहारने लाभ न थाय तो तेनुं कर्तव्य छे के ते पोताना आत्माने नकारे क्लुषित न करे. अने न तो तेना उपर गुस्से करे. विचार जे करे के, आज न भयुं तो काले भणशे. काले नडीं भणे तो परम दिवस भणशे. आमां किकर चिंता करवानी डोय न नडिं. दातानो भाव डुशे तो आपशे, नडीं डोय तो नडीं आपे. आ प्रकारे जे साधु वर्तता रहे छे ते वीर मुनि अलाभपरीषहने अवश्य लती दे छे.



अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

विन्ध्याचलप्रदेशे हुण्डनामके ग्रामे निर्धनः कृशशरीरः कुटुम्बबहुलः सौवीर नामा कृषीवल आसीत् । तत्र विन्ध्याचलवर्तिना गिरिसेननृपतिना पञ्चाशत्संख्यकानि हलानि वाहयितुं वारकेण पञ्चाशत्संख्यका हलवाहका नियोजिताः । तत्रैकदा सौवीरकृषीवलस्य वारकः समायातः । तस्मिन् दिने क्षेत्रे वृषभान्नीत्वा हलेषु योजयित्वा क्षेत्रं कर्षितवान् । वृषभाः श्रान्ताः अतिस्थग्नाः क्षुत्पिपासाव्याकुला ग्रीष्मातपसंतप्ता हलमुक्तावस्थां प्रतीक्षमाणाः स्वाहारमभिलषन्ति, पश्यन्ति च पुनः

दृष्टान्त—विन्ध्याचल प्रदेश में एक हुण्ड नाम का ग्राम था । उस में एक निर्धन सौवीर नाम का किसान रहता था । कुटुम्ब बहुत होने की वजह से उसे सदा इसके लालन पालन की चिंता घेरे रहती थी इसलिये चिन्ता के मारे इसका शरीर कृश हो गया था । विन्ध्याचलवर्ती गिरिसेन राजाने बारीर से पांचसौ हलों को जोतने के लिये पांचसौ हलवाहक-हाली-नियुक्त कर रखे थे । सौवीर कृषीवल (किसान) की भी एक दिन बारी आई । उस दिन उसने खेत में बैल ले जाकर और उन्हें हल में नियुक्त कर उस खेत को जोतना प्रारंभ कर दिया । खेत जोततेर बैल थक गये वे बीचर में खडे भी होने लगे । ग्रीष्मकाल के ताप से अतिशय संतप्त होकर वे क्षुत्पिपासा से अत्यंत व्याकुल हो गए और इस बात की प्रतीक्षा करने लगे कि कब हम हल से मुक्तहोवें और कब घास आदि खाकर अपनी क्षुधा को शांत करें । इसी अभिप्राय से वे वेचारे बार बार अपने हाली सौवीर के मुखकी ओर भी

दृष्टान्त—विन्ध्याचल प्रदेशमां अेक हुंड नामनुं गाम हुतुं. तेमां अेक निर्धन सौवीर नामनेा जेडुत रहेता हुता. कुटुंभ भोटुं डोवाना कारखे तेने सदा तेना पालन पोषणनी चिंता रह्या करती हुती. आ चिंताना भोजना कारखे तेतुं शरीर धसाध गथुं हुतुं. विन्ध्याचल प्रदेशना गिरिसेन राजने वारा पाडीने पांचसो हुणे जेडवा माटे पांचसो जेडुतेने नियुक्त करी राख्या हुता. सौवीर जेडुतेना पणु अेक वषत वारे आव्ये. अे द्विसे तेखे जेतरेमां भणद लधे नधने हुण तैयार करी जेडवातुं शरु कथुं. जेतरे जेडतां जेडतां भणद थाकी गया अने वयमां वयमां उभा रहेवा लाग्या. उनाणाना सभ्त तापथी अतिशय संतप्त थधने भूष तरसथी ते धष्या व्याकुण भनी गया. अने अे वातनी प्रतीक्षा करवा लाग्या के, क्यारे अमने हुणथी मुक्त करवामां आवे अने क्यारे घास वगेरे भाधे भूषने शांत करीअे. आवा भावथी ते भीयारा वारवार पोताना भादीक सौवीरना भोदा तरु जेता हुता. परंतु तेमनी आ



पुनः सौवीरमुखम् । परंतु सौवीरस्तान् न मुञ्चति । तेन भक्तपानवेलायामेकश्चासो-  
ऽधिकः कर्षितस्तेन वृषभाणां भक्तपानान्तरायो जातः, ततश्चान्तरायकर्म सौ-  
वीरेण बद्धम् । अथाऽसौ मृत्वा बहुकालं संसारे परिभ्रम्य, कदाचिद् गोपालदारक-  
भवे वने गाश्चारयन् कस्मिंश्चित्तरुतले बद्धसदोरकमुखवस्त्रिकं षट्कायपालकं मुनिं  
दृष्टवान् । तत्र तद्देशनां निश्चय्य स सौवीरस्तस्मिन् गोपालदारकभवे प्रव्रजितः ।  
तदनन्तरं कालमासे कालं कृत्वा सौधर्मकल्पे देवत्वेन समुत्पन्नः । ततश्च्युतोऽसौ द्वार-

देखने लगते थे, परन्तु सौवीर ने उनकी इस परिस्थिति पर जरा भी  
ध्यान नहीं दिया और न उन्हें छोड़ा ही । प्रत्युत उनके खाने पीने के  
समय में उसने एक चास (हलरेखा) और अधिक जोता । इससे  
सौवीर को प्रबल अंतराय कर्म का बंध हुआ । कुछ काल के बाद मर  
कर उस पर्याय से पर्यायान्तरित हुआ । बहुत काल तक इसने संसार  
परिभ्रमण किया । संसारपरिभ्रमण करते-र किसी समय यह गवाल  
के घर में जन्मा । बड़ा होने पर गायों को चराता था । एक दिन जंगल  
में इसकी दृष्टि वृक्ष के नीचे बैठे हुए एक मुनिराज पर जो षट्काय के  
जीवोंकी यतना करने में तत्पर थे, तथा मुख पर जिनके दोरासहित  
मुखवस्त्रिका बंधी हुई थी उन पर पड़ी । उनके पास पहुँचकर इसने  
उनसे धर्मदेशना सुनी । उसका प्रभाव इसकी आत्मा पर इतना पड़ा  
कि यह उसी समय दीक्षित हो गया । साधुचर्या का ठीकर तरह  
निर्वाह करते हुए वह मृत्यु के अवसर में कालधर्म पाकर सौधर्म देव-

परिस्थिति उपर सौवीरे नतो जरा पणु ध्यान आप्थुं के नतो तेभने धुंसरीथी छोडया.  
वधाराभां तेभनेो भावा पीवाना समयने वणते ऐक यास वधारे भेडांयेो, आथी  
सौवीरने प्रभण अंतरायकर्मनेो अंध थयेो. थोडा समय पछी सौवीर भेडूत भरीने  
पर्यायथी पर्यायान्तरित थयेो. धणुा काण सुधी तेणुे संसारभां परिभ्रमणु कथुं".  
संसारपरिभ्रमणु करतां करतां काणांतरे ते ऐक गोवाणने त्यां जनभ्यो.  
भोटो थतां ते गाथेने चराततो हतो. ऐक द्विवस जंगलभां तेनी दष्टी आडनी नीचे  
भेडेवा ऐक मुनिराज उपर पडी, जे षटकायना लुवोनी रक्षा करवाभां तत्पर  
हता. तेभना भोढा उपर दोरा साथे ऐक मुखवस्त्रिका आंधेडी हती. तेनी  
पासे पडोंचीने तेभनी पासेथी धर्मदेशना सांभणी. येनेो प्रभाव तेना आत्मा  
पर येवो पडयेो के ते येज समये दीक्षित भनी गयेो. साधुचर्यानेो डीक डीक  
निर्वाह करतां करतां ते मृत्युना अवसरे काणधर्म पाभ्यो अने ते सौधर्म देव-

कायां श्रीकृष्णवासुदेवगृहे पुत्रत्वेन समुत्पन्नः । स च ढंढणनाम्ना प्रसिद्धो जातः ।

अथैकदा स ढंढणकुमारः श्रीनेमिनाथ तीर्थंकरस्य समीपे प्रव्रजितः । भिक्षा-  
चर्यायां प्रवृत्तोऽसौ श्रीकृष्णस्य पुत्रोऽपि त्रिजगद्गुरोस्तीर्थंकरस्य शिष्योऽपि स्वर्ग-  
लक्ष्मीजित्वरसंपत्समन्वितायां विशालायां द्वारकायां नगर्यां महेश्यानां भवनेष्वपि  
पर्यटन् लाभान्तरायवशात् किञ्चिदपि प्रासुकैषणीयं न लभते । ततोऽसौ क्षुधा-  
पिपासया शुष्कशरीरः श्रीनेमिनाथस्वामिनं तदलामकारणं पृष्टवान् श्रीनेमिनाथ  
स्वामिना कथितम्-वत्स ! अस्माद् पूर्वं नवनवतिलक्ष-नवनवतिसहस्र-नवशत-नवनवति  
९९,९९,९९९ तमे भवे त्वं विन्ध्याचलप्रदेशे हुण्डकग्रामे सौवीरनामा कृषीवल

लोक में देवपने से उत्पन्न हुआ । वहाँ की स्थिति समाप्त होने पर यह  
वहाँ से च्यवकर द्वारिकामगरी में श्रीकृष्ण वासुदेव के घर पुत्ररूप  
से उत्पन्न हुआ और वहाँ इसका नाम ढंढणकुमार रक्खा गया ।

इस ढंढणकुमार ने श्रीनेमिनाथतीर्थंकर के समीप धर्मदेशना सुन-  
कर दीक्षा अंगीकार की । भिक्षाचर्या करने को वे स्वयं जाते थे ।  
श्रीकृष्ण के पुत्र एवं त्रिजगद्गुरु तीर्थंकर नेमिनाथ प्रभु के शिष्य होने  
पर भी उस विशाल द्वारिका नगरी में इनको बड़े सेठ साहूकारोंके घरों  
में जाने पर भी लाभान्तराय कर्म के उदय से थोड़े से भी प्रासुक  
एषणीय आहार का लाभ नहीं होता, अतः ये दिन प्रतिदिन शुष्क  
शरीर होने लगे । भगवान् नेमिनाथ के पास जाकर एकदिन इन्होंने  
आहार के अलाभ का कारण पूछा तो भगवान् ने कहा कि वत्स ! तू  
इस भव से पहिले निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सो निन्यानवे  
९९,९९,९९९ भव में विन्ध्याचल प्रदेश में हुण्डक ग्राम में सौवीर नाम

लोकमां देवपण्ये उत्पन्न थयो. त्यांनी स्थिति समाप्त थतां ते त्यांथी चवीने  
द्वारिका नगरीमां श्री कृष्ण वासुदेवने घेर पुत्र रूपे उत्पन्न थयो. अने त्यां  
तेमनुं नाम ढंढण राणवामां आण्युं.

आ ढंढणकुमारे श्रीनेमिनाथ तीर्थंकर पासे धर्मदेशना सांभणी दीक्षा अडण्य  
करी. भिक्षाचर्या करवा भाटे ते स्वयं जाता हुता. श्रीकृष्णना पुत्र तेमण श्रीजगद्गुरु  
तीर्थंकर नेमिनाथ प्रभुना शिष्य होवा छतां पण्य ते विशाल द्वारिका नगरीमां तेने  
भोटा भोटा शेठ शाहुकारैना घरेमां जवा छतां पण्य लाभान्तराय कर्मना उदयथी  
थोडा पण्य प्रासुक आहारने लाभ मणतो न हुतो. आथी अे दिनप्रतिदिन शुष्क  
शरीरवाणा भनवा लाज्या. भगवान् नेमिनाथ पासे जधने अेक दिवस तेमण्ये आडा-  
रना अलाभनुं कारण्य पूछ्युं, भगवाने कह्युं के, हे वत्स ! तू आ भवथी पडेलां  
नवाण्य लाभ नवाण्य हुण्डक नवसे नवाण्यना ९९,९९,९९९ भवमां विन्ध्याचल प्रदेशे

आसीः। तत्र भवे हलयोजितवृषभाणां भोजनपानान्तरायस्त्वया कृतः। तदन्तरायकर्मा-  
ऽस्मिन् भवे इदानीमुदितम्, अतोऽयमलाभपरीषहस्त्वया सोढव्यः। तदनु ढंढणकु-  
मारेण स्वपूर्वभववृत्तान्तं श्रुत्वा तदन्तरायकर्म क्षपयितुं गाढसंबेगेन सोत्साहमभिग्र-  
हो गृहीतः—अद्यप्रभृति मया परलाभो न ग्राह्य इति। तदनन्तरमभिग्रहमुपादाय स  
प्रतिदिनं भिक्षार्थमटति, परंतु—लाभान्तरायोदयान्न किंचित् प्राप्नोति, तथापि नो  
द्विग्नो भवति, नापि चान्यं निन्दति किन्तु, नित्यमदीनमानसः सन् स्वं कर्मैवाचिन्तयत्।

के एक किसान की पर्याय में था। उस समय तूने हल में जुते हुए बैलों के भोजन पान में अन्तराय डाला था। वह अंतराय कर्म इस भव में तुम्हारे इस समय में उदय में आया है इसलिये इस अलाभ परीषह को तुझे सहन करना चाहिये। भगवान् द्वारा इस प्रकार कहे गये अपने पूर्वभव के वृत्तान्त को सुनकर ढंढणकुमार मुनिने उस बद्ध अन्तराय को नष्ट करने के निमित्त बड़े ही उत्साह के साथ गाढ वैराग्य से युक्त अन्तःकरण होकर ऐसा अभिग्रह ग्रहण किया कि “आज से लेकर मैं परलाभ को ग्रहण नहीं करूँगा” अर्थात् दूसरे के निमित्त से मिला हुआ आहार पानी नहीं ग्रहण करूँगा। इस प्रकार अभिग्रह ग्रहण कर वे प्रतिदिन भिक्षाचर्या को जाते परन्तु लाभान्तराय कर्म के उदय से उनको किञ्चित् भी आहार का लाभ नहीं होता, परन्तु फिर भी इस परिस्थिति में भी उनके चेहरे पर उद्विग्नता के चिह्न जरा भी दिखलाई नहीं पड़ते—वे उद्विग्नचित्त नहीं होते और न

शभां हुंडक गाभभां सौवीर नामथी अेक जेडुतना पर्यायभां डतो। ते सभये तें डणभां जेडेला जणहने लोअन पानभां अंतराय नाअो डतो। ते अंतराय कर्म आ लवभां तभारा भाटे आ सभये उदयभां आवेल छे। भाटे आ अलाभ-परीषहने तभारे सडन करवे जेध अे, लगवान तरक्षथी कडेवभां आवेल आ प्रकारना पोताना पूर्वभवना वृत्तांतने जण्णी ढंढणकुमार मुनिअे आ अस अद्ध अंतरायने नाश करवा भाटे पूअ ज उत्साडथी गाढ वैराग्ययुक्त अंतः-करणवाणा जनी अेवे। अलिअड धारणु कर्यो डे, “आअथी हुं परलाभने अडणु नडीं कडं.” अर्थात् जीअना निमित्तथी मणेल आडार पाण्णी अडणु नडीं कडं. आ प्रकारने अलिअड अडणु करी ते प्रतिदिन भिक्षाचर्या भाटे जता परंतु लाभान्तराय कर्मना उदयथी तेभने थोडे पणु आडारने लाल भणतो नडीं.

अथान्यदा श्रीकृष्णवासुदेवः श्रीनेमिनाथस्वामिनं पृष्टवान्—भगवन्! अष्टा-  
दशसहस्रेषु श्रमणेषु कोऽस्ति दुष्करकारकः?, श्रीनेमिनाथस्वामिना प्रोक्तम्—सर्वे  
श्रमणदुष्करकारकाः, ढंढणमुनिस्तु अतिदुष्करकारकः। श्रीकृष्णेनोक्तम्—कथम्?,  
श्रीनेमिनाथस्वामी प्राह—अलाभपरीषहस्य सम्यक् सहनेन। ततो भक्तिभरेण  
संजातरोमाञ्चः श्रीकृष्णोऽवदत्—प्रभो! महात्मा ढंढणमुनिः क्व विद्यते?। श्री  
भगवानाह—भिक्षार्थं द्वारकापुरीं गतः, नगर्यां प्राविशन्नेव तं द्रक्ष्यसि। तद्वचनं  
श्रुत्वा श्रीकृष्णः श्रीनेमिजिनं प्रणम्य चलितः। ततः पुरद्वारे प्रविशन् श्रीकृष्णः

किसी दूसरे की निन्दा ही करते। निन्दा करते भी तो अदीनमन  
होकर अपने अशुभ कर्म की।

एक दिन की बात है कि श्रीकृष्ण वासुदेव ने श्रीनेमिनाथप्रभु से  
पूछा कि भगवन्! इन अठाहर हजार मुनियों में इस समय दुष्कर-  
कारक कौन है। प्रभु ने कहा सब ही श्रमण दुष्करकारक हैं परन्तु  
ढंढणमुनि विशेष रीति से दुष्करकारक है। वासुदेव ने कहा यह क्यों?  
प्रभुने कहा अलाभपरीषह के सम्यक् सहन करने से। यह सुनते ही  
श्रीकृष्ण का समस्त शरीर भक्ति के आवेश से रोमांचित हो गया।  
श्रीकृष्ण ने कहा—प्रभो! महात्मा ढंढणमुनि इस समय कहां विराजमान  
हैं?। प्रभु ने उत्तर में कहा कि वे इस समय भिक्षा के लिये द्वारिका  
में गये हैं। तुम्हें वहां जाते ही वे मिल जावेंगे। भगवान् की बात सुनकर  
वासुदेव श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान् को वंदना करके वहांसे चलेगये।

आ परिस्थितिमां पणु तेमना यडेरा उपर उद्रीग्नतानुं चिह्न देभातुं नडीं.  
अे उद्रीग्नचित्त न अनता, अने भीज कोधनी निंदा पणु करता नडीं. निंदा  
करता तो ते इकत पोताना अशुभ कर्मनी.

अेक दिवसनी वात अे अे, श्री कृष्ण वासुदेवे श्री नेमीनाथ प्रभुने पूछयुं  
अे, भगवन्! आ अदारुडनर मुनियेमां आ समये दुष्कर स्थिति कोणु  
लोगवे अे? प्रभुअे कहुं अे, अथा श्रमण दुष्कर कष्ट लोगवे अे अतां ढंढण-  
मुनि आ अथाथी वधु दुष्कर स्थितिमां अे. वासुदेवे कहुं अेम अेम? प्रभुअे कहुं अे,  
अलाभपरीषडने सम्यक् सहन करवाथी. आ सांभगतां अ श्री कृष्णतुं शरीर  
लडितना आवेशथी रोमांचित अनी गयुं अने कहुं, प्रभु! महात्मा ढंढण मुनि  
आ समये कयां गिराणे अे? प्रभुअे उत्तरमां कहुं अे, ते आ समये द्वारिकामां  
भिक्षा माटे गया अे, तमने त्यां अतां अ लेटो थध अशे. भगवाननी आ वात  
सांभगणी वासुदेव श्रीकृष्ण नेमीनाथ भगवानने वंदना करी त्यांथी आदी नीकण्या.

कृशशरीरं शान्तचेतसं ढंढणमुनिं दृष्टवान् । ततस्तद्गुणाकृष्टोऽतिमुदितः श्रीकृष्णो हस्तिस्कन्धादवतीर्य महीतलमिलन्मौलिस्तं ववन्दे । तदा तेन वन्द्यमानोऽसौ ढंढणमुनिः केनचिदिभ्येन दृष्टः । तदा तेनेभ्येन चिन्तितम्—अहो ! एष महात्मा श्रीकृष्णेन वन्द्यते । एवं चिन्तयत एव तस्येभ्यस्य गृहे ढंढणमुनिः प्रविष्टः । तेनोत्कृष्टभावेन मोदकैः प्रतिलम्बितः ।

ततोऽसौ ढंढणमुनिः श्रीनेमिनाथस्वामिनः समीपं गत्वा भिक्षां प्रदर्श्य पृच्छति- भगवन् ! मम लाभान्तरायः क्षीणः किम् ?, श्रीनेमिनाथस्वामिना प्रोक्तम्—न तव-

उस समय उन्होंने ने कृशशरीर एवं शान्तचित्त ढंढणमुनि को पुरद्वार में प्रवेश करते हुए देखा । देखते ही वे अपने गजराज से नीचे उतरे और झुककर उनको वंदना करने लगे । कृष्णवासुदेव को वंदना करते हुए उस समय किसी सेठ ने देख लिया । देखते ही उसने विचार किया कि जिस महात्मा को वंदना ये वासुदेव कर रहे हैं वह कोई साधारण साधु नहीं हैं, ऐसा विचार कर ही रहा था कि ढंढणमुनि इतने में उसी सेठ के घर में प्रविष्ट हुए । उसने बड़े ही उत्कृष्टभावों से सम्पन्न होकर ढंढणमुनि को मोदकों की भिक्षा दी । भिक्षा लेकर वे वापिस अपने स्थान पर आ गये और जो कुछ भिक्षा में उनको मिला था वह उन्होंने श्रीनेमिनाथ भगवान् को दिखलाया । दिखलाकर फिर भगवान् से उन्होंने ने पूछा कि हे भगवान् ! मेरा लाभान्तराय कर्म क्षीण हो चुका है क्या ? । भगवान् ने कहा अभी नहीं, भिक्षा में जो ये

એ સમયે તેમણે કૃશશરીરવાળા અને શાંતચિત્ત ઢંઢણ મુનિને દ્વારિકાપુરીના દ્વારમાં પ્રવેશ કરતી વખતે જોયા. જોતાં જ પોતાના હાથી ઉપરથી નીચે ઉતરી ઢંઢણમુનિ પાસે જઈ પહોંચ્યા અને નીચા નમી વંદના કરી. કૃષ્ણ વાસુદેવને વંદના કરતા કોઈ શેઠ જોઈ ગયા અને મનમાં વિચાર કર્યો કે, જે મહાત્માને વાસુદેવ વંદના કરી રહ્યા છે તે કોઈ સાધારણ સાધુ ન હોવા જોઈએ. જ્યાં શેઠ એવા વિચાર કરી રહ્યા હતા ત્યાં ઢંઢણમુનિ એજ શેઠને ઘેર ભિક્ષા માટે જઈ પહોંચ્યા. એણે ખૂબ જ આદર ભાવથી ઢંઢણમુનિને લાડુની ભિક્ષા આપી. ભિક્ષા લઈ તે પોતાના સ્થાન ઉપર પહોંચ્યા અને પોતાને જે કંઈ ભિક્ષામાં મળ્યું હતું તે તેમણે ભગવાન શ્રી નેમીનાથને બતાવ્યું. ભગવાનને બતાવીને પછી તેમણે પૂછ્યું કે, ભગવન્ ! મારું લાભાન્તરાય કર્મ ક્ષીણ થઈ ગયું કે કેમ ? ભગવાને કહ્યું,



કર્મ ક્ષીણમ્, અયં તુ વાસુદેવસ્ય લાભઃ, યતઃ શ્રીકૃષ્ણસ્ત્વાં વન્દિતવાન્, અતસ્તે મોદકાન્ શ્રેષ્ઠી દત્તવાન્ । તદ્વચનં શ્રુત્વા ઢંઢણમુનિઃ ‘ પરલાભો ન કલ્પતે ’ ઇત્યુક્ત્વા રાગદ્વેષ-વર્જિતો મૂર્છારહિતઃ સન્ નગરાદ્ બહિર્ગત્વા પ્રાસુકસ્થણ્ડિલે મોદકાન્ યતનયા પરિષ્ઠાપ્ય, તાપદૈન્યાદ્યકરણેન લાભાન્તરાયકર્મ ક્ષપયન્ ક્ષપકશ્રેણિમારુદ્ય કેવલી જાતઃ । એવમન્યૈરપિ મુનિભિરલાભપરીષહઃ સોઢવ્યઃ ॥ ૩૧ ॥

અલાભાદન્તપ્રાન્તાઘાહારલાભાદ્ વા શરીરે રોગા ઉત્પદ્યન્તે, અતઃ ષાડશં રોગપરીષહજયં પ્રાહ—

મૂલમ્—નચ્ચૌં ઉપ્પદ્વૈયં દુઃકલ્પં, વેયળાણ દુહટ્વિં ।

અંદીણો ઠાવર્ષ પંનં, પુંઢો તંત્થઽહિયાસંણ ॥ ૩૨ ॥

મોદકોં કા લાભ તુમ્હેં હુઆ હૈ વહ લાભ તુમ્હારા નહીં હૈ કિન્તુ યહ લાભ વાસુદેવ કા હૈ, કારણ કિ તુમ કો કૃષ્ણ ને વંદના કી હસલિયે સેઠ ને તુમકો યે મોદક વહરાયે, અતઃ તુમ્હારે હસ લાભ મેં નિમિત્ત કૃષ્ણ હૈ । ઢંઢણમુનિ ને ભગવાન્ કે હન વચનોં કો સુનકર “ પરલાભ મુઝે કલ્પતા નહીં હૈ ” એસા કહકર રાગદ્વેષ સે એવં મૂર્છાં સે વર્જિત હોતે હુએ નગર કે વાહર જાકર કિસી પ્રાસુક ભૂમિ મેં ઁન મોદકોં કો યતનાપૂર્વક પરિઠવદિયા । તાપ એવં દીનતા કે નહીં કરને સે લાભાન્ત-રાયકર્મ કો નષ્ટ કરતે હુએ ઁન ઢંઢણમુનિને ક્ષપકશ્રેણી પર આરોહણ કર કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર લિયા । હસી તરહ અન્યમુનિયોં કો ભી અલાભ પરિ-ષહ કો સહન કરના ચાહિયે ॥ ૩૧ ॥

હુણુ સમય ઓકી છે. લિક્ષામાં લાડવાને લાલ તમને થયો છે તે લાલ તમારો નથી પરંતુ એ લાલ વાસુદેવનો છે. કારણ કે કૃષ્ણે તમારી વંદના કરી આ જોઈને શેઠે તમને લાડવા વહોરાવ્યા છે. આથી તમારા આ લાલમાં નિમિત્ત કૃષ્ણ અન્યા છે. ઢંઢણમુનિએ ભગવાનનાં આ વચન સાંભળી “ ધીજ્ઞને લાલ મને કલ્પતો નથી ” એમ કહી રાગદ્વેષ અને મૂર્છાથી વળત રહી નગરની બહાર જઈ કોઈ પ્રાસુક ભૂમિમાં એ લાડવાને યતનાપૂર્વક છોડી દીધા. તપ અને લિક્ષામાં દીનતા ન કરવાથી લાભાન્તરાય કર્મને નષ્ટ કરતાં એ ઢંઢણમુનિએ ક્ષપકશ્રેણી પર આરો-હણ કરી કેવળજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર્યું. આ રીતે અન્ય મુનિઓએ પણ અલાભ પરીષદને સહન કરતા રહેવું જોઈ એ. ॥ ૩૧ ॥



छाया—ज्ञात्वा उत्पतितं दुःखं, वेदनया दुःखार्तितः ।

अदीनः स्थापयेत् प्रज्ञां, स्पृष्टस्तत्र अधिसहेत ॥ ३२ ॥

टीका—“ नच्चा ” इत्यादि ।

वेदनया=वेदनीयकर्मणा दुःखं=श्वासकासादिषोडशविधरोगसम्बन्धिकं कष्टम्  
उत्पतितम्=उत्पन्नं भवतीति ज्ञात्वा दुःखार्तितः = भाविदुःखशङ्कयाऽऽर्त्तभावं  
गतः अदीनः = दैन्यभावरहितः सन् प्रज्ञां=बुद्धिं स्थापयेत्=भाविदुःखशङ्कया  
चलन्तीं बुद्धिं स्थिरीकुर्यात् । तथा यदि साधुः स्पृष्टः=<sup>१</sup>श्वास-<sup>२</sup>कास-<sup>३</sup>ज्वर-<sup>४</sup>दाह-  
कुक्षिशूल-<sup>५</sup>भगन्दरा-<sup>६</sup>शौऽर्जीर्ण-<sup>७</sup>दृष्टिरोग-<sup>१०</sup>मूर्धशूल-<sup>११</sup>रुच्य-<sup>१२</sup>क्षिशूल-<sup>१३</sup>कर्णशूल-<sup>१४</sup>कण्ठ-

आहार के अलाभ से अथवा अन्तप्रान्त आहार के लाभ से शरीर में रोग उत्पन्न हो जाता है इसलिये सोलहवां रोगपरीषद् साधु को जीतना चाहिये, यह बात सूत्रकार कहते हैं—‘नच्चा’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(वेयणाए—वेदनया) वेदनीय कर्म के उदय से (दुःखं—दुःखं) श्वास कास आदि सोलह प्रकार के रोग संबंधी दुःख (उत्पन्नं—उत्पतितम्) उत्पन्न होता है ऐसा (नच्चा—ज्ञात्वा) जानकर (दुःखार्तितः—दुःखार्तितः) भावी दुःख की आशङ्का से आर्त्त भाव को प्राप्त हुआ मुनि (अदीनो—अदीनः) दैन्यभाव से रहित होकर (पन्नं ठावए—प्रज्ञां स्थापयेत्) भावी दुःख की आशङ्का से चलित होती हुई अपनी बुद्धि को स्थिर करे । यदि साधु (पुट्टो—स्पृष्टः) श्वास, कास, ज्वर, दाह, कुक्षिशूल, भगन्दर, अर्श, अर्जीर्ण, दृष्टिरोग मूर्धशूल, अरुचि, नेत्रशूल

आहारना अलाभथी अथवा अहितकर्ता (अपथ्य) आहारथी शरीरमां रोग थवा संभव छे तेथी सोणभा रोगपरीषद् साधुये एतये जेअ ये वात सूत्रकार कहे छे—‘नच्चा’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—वेयणाए—वेदनया वेदनीय कर्मना उदयथी दुःखं—दुःखम् श्वास कास आदि सोण प्रकारना रोग संबंधी दुःख उत्पन्नं—उत्पतितम् उत्पन्न थाय छे येसुं नच्चा—ज्ञात्वा ज्ञानीने दुःखार्तितः भावी दुःखानी आशङ्काथी आर्त्तभा-यने प्राप्त करनार मुनि अदीनो—अदीनः दैन्य भावथी रहित अपनी पन्नं ठावए—प्रज्ञां स्थापयेत् भावी दुःखानी आशङ्काथी चलित थती पोतानी बुद्धिने स्थिर करे. अगर जे साधु पुट्टो—स्पृष्टः १ श्वास, २ कास, ३ ज्वर, ४ दाह, ५ भदगांड, ६ भगन्दर, ७ दरस, ८ अर्श, ९ दृष्टिरोग, १० मूर्धशूल, ११ अरुचि,

दररोग-<sup>१५</sup>कुष्ठे-<sup>१६</sup>ति षोडशविधरोगात्कैराक्रान्तो भवेत्, तर्हि तत्र=तस्मिन् समये स साधुः तान् रोगात्कान् अधिसहेत्—“ यदधुनाऽहं व्याधिना बाध्यमानोऽस्मि तदेतन्मम स्वस्यैव पूर्वकृतकर्मणः फलम् ” इति समभावमवलम्ब्य रोगपरीषह-सहनं कुर्यादित्यर्थः ॥ ३२ ॥

कण<sup>१३</sup>शूल, कण्ठ<sup>१४</sup>-खजुहट, उदर<sup>१५</sup>रोग, और कुष्ठ<sup>१५</sup>, इन सोलह प्रकार के रोगों से आक्रान्त हो, तो ( तत्थ-तत्र ) उस समय वह साधु ( अहियासए-अधिसहेत ) उन रोगों को शान्तिपूर्वक सहन करे अर्थात्— ‘मैं जो इस समय व्याधि से आक्रान्त हूँ यह मेरे पूर्वभव में किये हुए कर्मों का फल है’ ऐसा विचार कर मुनि रोगपरीषहको समभाव से सहन करे ॥ ३२ ॥

भावार्थ—इस गाथा के द्वारा सूत्रकार साधु को रोगपरीषह सहन करने का उपदेश दे रहे हैं। वे कहते हैं कि-संसारी एवं मुनियों में रोगों को सहन करने की विचारधारा में बड़ा अन्तर रहता है। संसारी तो प्रायः रोगों के उत्पन्न होते ही अधीर हो जाते हैं तब संयमी जन उनका साम्हना बड़े ही धैर्य से करते हैं। रोगों से पीडित होने पर भी साधु को अपनी बुद्धि अस्थिर बनानी नहीं चाहिये-प्रत्युत अस्थिर होने पर उसे मानसिक बल द्वारा स्थिर कर धर्मध्यान में लीन बनाये रखना चाहिये। तथा विचार भी ऐसा करना चाहिये—“ ये जो

१२ नेत्रशूल, १३ कर्णशूल, १४ असंखजुहटी, १५ उदररोग, अने १६ कुष्ठ. आ सोण प्रकारना रोगथी व्याकुण्ठता थाय तो तत्थ-तत्र अये समये ते साधु अहियासए-अधिसहेत अये रोगने शांतिपूर्वक सहन करे. अर्थात्—‘ हूँ आ समय जे व्याधिथी पीडित थई रह्यो छुं अये मारा पूर्वभवनां करेलां कर्मनां फलवो छे ’ अयेवो विचार करी मुनि रोगने समभावथी सहन करे. ॥ ३२ ॥

भावार्थ—आ गाथा द्वारा सूत्रकार साधुने रोगपरीषह सहन करवाने उपदेश आपे छे, तेयो कहे छे के,—संसारियो अने मुनियोने रोगोमां तेने सहन करवानी विचारधारांमां लारे अंतर डोय छे. संसारी तो रोगोने उत्पन्न थतां अ अधिरा थई जय छे त्यारे संयमी जन तेना अत्यंत धैर्यथी सामना करे छे. रोगथी पीडित डोवा छतां पणु साधुअये पोतानी बुद्धिने अस्थिर नहीं थवा देवी जेईअये. परंतु अस्थिर थाय त्यारे तेने मानसिक बलद्वारा स्थिर करीने लीन बनावी राखी जेईअये. अने विचार पणु अयेवो करवो जेईअये

रोगाक्रान्तस्य मुनेः कर्तव्यमाह—

मूलम्—तेगिच्छं नाभिनंदिजा, संचिक्खत्तगवेसए ।

एयं खु तस्स साम्भं, जं नं कुज्जा नं कारेण ॥३३॥

छाया—चिकित्सां नाभिनन्देत्, संतिष्ठेत् आत्मगवेषकः ।

एतत् 'खु' तस्य श्रामण्यं, यन्न कुर्यात् न कारयेत् ॥३३॥

टीका—'तेगिच्छं' इत्यादि ।

मुनिः, चिकित्सां=रोगप्रतीकारं, नाभिनन्देत्=नानुमोदेत् । अनुमतिनिषेधा-  
च्चिकित्सायाः करणं कारणं तु दूरत एव प्रतिषिद्धम् । किं तु आत्मगवेषकः=आत्मा-  
नम्-आत्मकल्याणं गवेषयति-संयमरक्षणेनेति आत्मगवेषकः स्वात्मकल्याणार्थं चारि-  
त्रपालकः सन् संतिष्ठेत्=समाधिना तिष्ठेत् । 'खु'=यस्मात्, एतत् तस्य=श्रम-

कुछ मुझे रोगादिक हो रहे हैं वे सब मेरे ही अशुभ कर्मोंके फल हैं" ॥३३॥

रोगाक्रान्त मुनि के कर्तव्य को सूत्रकार इस गाथाद्वारा कहते हैं—  
'तेगिच्छं' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—मुनि (तेगिच्छं-चिकित्साम्) रोग के प्रतीकार की (नाभि-  
नंदिजा-न अभिनंदेत्) अनुमोदना नहीं करे । मुनि जब चिकित्सा तक  
की अनुमोदना नहीं करता है तो उसकी चिकित्सा करना और कराना तो  
बहुत दूरकी बात है । किन्तु (अत्तगवेसए-आत्मगवेषकः) जो संयम  
की रक्षा से आत्मकल्याण का गवेषक है उसका कर्तव्य है कि वह  
(संचिक्खे-संतिष्ठेत्) रोगादिक अवस्था में भी समाधि भाव से रहे ।  
(खु-यस्मात्) क्यों कि (तस्स-तस्य) उस मुनि का (एयं-एतत्) यही

“आ जे कांछि भने रोग आदि थयेल छे ते षधां मारा अशुभ कर्मेनुं  
इण छे.” ॥ ३२ ॥

रोगाक्रान्त मुनिनुं कर्तव्य शुं छे ते सूत्रकार आ गाथा द्वारा कहे छे.  
'तेगिच्छं' इत्यादि.

अन्वयार्थ—मुनि तेगिच्छं-चिकित्साम् रोगना प्रतिकारनी नाभिनंदिजा-  
न अभिनन्देत् अनुमोदना न करे. मुनिन्यारे चिकित्सा सुधीनी अनुमोदना नथी  
करता त्यारे तेनी चिकित्सा करवी अथवा कराववी घण्टी दुरनी वात छे अत्तगवेसए  
-आत्मगवेषकः जे संयमनी रक्षाद्वारा आत्मकल्याणना गवेषक होय छे तेनुं कर्तव्य  
छे के, संचिक्खे-संतिष्ठेत् रोगादिक अवस्थाभां समाधीभावथी रहे खु-यस्मात्  
केम के, तस्स-तस्य जे मुनिनुं एयं-एतत् जे श्रामण्यं-श्रामण्यम् श्रमण्यपणुं छे

उ० ५९

णस्य, श्रामण्यं=श्रमणधर्मः, यत्-चिकित्सां स्वयं न कुर्यात्, अन्येन वा न कारयेत्, उपलक्षणत्वात् कुर्वन्तमन्यं नानुमोदेत्, इत्यपि बोध्यम् । इदं जिनकल्पिकापेक्षयाऽभिहितम् । स्थविरकल्पापेक्षया तु सावद्यचिकित्सा वर्जिता, निरवद्यचिकित्साया अपि ऐच्छिकं वर्जनम् ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

मथुरानगर्यां शत्रुवित्रासी जितशत्रुनामा भूपतिरासीत् । तेन सर्वाङ्गसुन्दरी कालानाम्नी वेश्या स्वान्तःपुरे स्थापिता । तस्यां राज्ञः पुत्रो जातः । तेन जितशत्रु भूपतिना कालावेश्याया अङ्गजातोऽयमिति हेतोस्तस्य “कालवैशिक” इति नाम

तो (सामण्यं-श्रामण्यम्) श्रमणपना है (जं न कुज्जा न कारए-यत् न कुर्यात् न कारयेत्) जो वह स्वयं भी चिकित्सा न करे और न दूसरों से करावे । तथा उपलक्षण से करने वाले दूसरे की अनुमोदना न करे । यह जो इस प्रकार कहा गया है वह जिनकल्पी साधुओं की अपेक्षासे कहा गया है । स्थविरकल्पियों की अपेक्षा तो सावद्य चिकित्सा ही वर्जित है । निरवद्यचिकित्सा चाहे तो वे करावे न चाहें नहीं करावे यह उनकी इच्छा पर निर्भर है ।

दृष्टान्त—मथुरा नगरी में शत्रु को त्रास पहुँचाने वाला जितशत्रु नाम का एक राजा था । उसने काल नाम की एक सर्वाङ्ग सुन्दरी वेश्या को अपने अन्तःपुर में रखी थी । उस वेश्या के एक पुत्र उत्पन्न हुआ । राजाने इस पुत्र का नाम इस ख्याल से कालवैशिक रखा कि लोगों में इसकी प्रसिद्धि “यह कालवेश्या से पैदा हुआ है” इस रूप से हो

जे ते जं नकुज्जा न कारए-यत् न कुर्यात् न कारयेत् स्वयं चिकित्सा न करे अजर धील्लओ यासे न करावे, तथा उपलक्षणुथी धील्ल करवावाणाओनी अनुमोदना न करे. ओज प्रभाण्णे कडेवाभां आवेल छे ते अनकल्पी साधुओनी अपेक्षाथी कडेवाभां आवेल छे. स्थविरकल्पिओनी अपेक्षाओ तो सावद्य चिकित्सा न वल्लत छे. निरवद्य चिकित्सा आडे तो ते करावे अने न आडे तो न करावे. ते तेनी इच्छा पर निर्भर छे.

दृष्टान्त—मथुरा नगरीमां शत्रुओने त्रास पहुँचाउवावाणा एतशत्रु नामना ओक राजा हुता. तेणे काल नामनी ओक सर्वांग सुन्दर वेश्याने पोताना अन्तःपुरमां राखेल हुती. ते वेश्याथी तेने ओक पुत्र उत्पन्न थयो. राजाओ ओ पुत्रनुं नाम ओ ख्यालथी कालवैशिक राजुं के ओ काल वेश्याथी पैदा थयेलछे.

कृतम् । तस्य कालवैशिकस्य ज्येष्ठा भगिनी जितशत्रुभूपतिना मुद्गशैलनामकनगराधिपाय हतशत्रुनाम्ने नृपाय प्रदत्ता ।

अन्यदा कदाचित् स कालवैशिककुमारो निशि शृगालशब्दं श्रुत्वा स्वसेवकान् पृच्छति—कस्यायं शब्दः श्रूयते ?, सेवका अब्रुवन्—शृगालस्य, ततः कुमारो ब्रूते तं बद्ध्वा मत्समीपे समानयत्, तैः शृगाल आनीतः । क्रीडनप्रियोऽसौ कुमारस्तं यष्ट्या पुनः पुनस्ताडयति । कालवैशिककुमारेण ताड्यमानोऽसौ शृगालः ‘खि-खी’ शब्दं कुर्वन्तुच्चैराक्रन्दति । तं शब्दं श्रुत्वाऽसौ सहर्षं हसति । एवं ताडितः शृगालः कालं कृत्वा अकामनिर्जराया व्यन्तरदेवो जातः ।

जाय कालवैशिक की एक बड़ी बहिन थी जिसका व्याह राजा ने मुद्ग-शैल नामक नगर के अधिपति हतशत्रु के साथ किया था ।

एक दिन की बात है कि कालवैशिककुमार ने रात्रि में शृगाल का शब्द सुनकर अपने सेवकों से पूछा कि यह शब्द किसका सुनाई दे रहा है ? नौकरों ने कहा कि यह शब्द शृगाल का सुनाई पड़ रहा है । कुमार ने कहा उसको बांधकर मेरे पास ले आओ । तब वे शृगाल को बांधकर ले आये और कालवैशिककुमार को सोंप दिया । कुमार खेलने का शोकिन था इसलिये वह शृगाल को बार-बार लकड़ी का घोदा मारता था । जैसे-कुमार उसको लकड़ी का घोदा मारता था तैसे-वह दुःखित होकर “खी खी” शब्द करता हुआ जोर से चिल्लाता था । उसके शब्द को सुनकर कुमार बड़ा हर्षित होता था और वह खूब हँसता था । इस प्रकार कुमारसे ताडित वह शृगाल मर कर अकाम निर्जरा से व्यन्तरदेव हो गया ।

अनी बोकोने ळषु थाय. कालवैशिकने अक मोठी षडेन डती. जेना विवाड रान्ने मुद्गशैल नगरना अधिपति हतशत्रु रान्ने जेडे कर्यो डतो.

अक समयनी वात छे के कालवैशिक कुमारे रात्रिना वषते शीयाणने शब्द सांलणी पोताना सेवकोने पृछ्युं के, आ शब्द शेना सांलणार्थ रह्यो छे ? सेवकोअे कहुं के, आ शब्द शीयाणने सांलणाय छे. कुमारे कहुं के तेने आंधीने भारी यासे लर्ध आवो. सेवको तेने आंधीने कुमार पासे लर्ध आव्या. अने कालवैशिक ने सांपी दीधुं. कुमार जेववानो बारि शोधीन डतो. अटवे ते शीयाणने वारंवार लाकडीना गोदा मारवा लाग्यो. जेम जेम कुमार तेने लाकडीना गोदा मारवा लाग्यो. तेम तेम ते दुःखी थर्धने भी....भी....शब्द करीने जेरथी थीडावा लाग्युं. तेना शब्दो सांलणीने कुमार धण्णो भुशी थतो डतो. अने जेरथी डसतो डतो. आ प्रमाणे कुमारथी मारवाभां आवेल ते शृगाल मरीने अकाम निर्जराथी व्यन्तरदेव थर्ध गथुं.



क्रमेण यौवने वयसि प्राप्ते स कालवैशिककुमारः कदाचित् प्रभासनामकाचार्यस्य समीपे धर्मं श्रुत्वा जातवैराग्यः प्रव्रज्यां गृहीतवान् । स चैकदा एकाकिविहारप्रतिमां प्रतिपन्नो ग्रामानुग्रामं विहरन् मुद्गशैलाख्यं नगरं गतः । तदा तस्य-महापुनेरर्शोः रोगः समुत्पन्नः । स तेन व्याधिना पीड्यमानोऽपि धीरमानसो मनसाऽपि चिकित्सां नेच्छति । चिकित्सायाः करणं कारणं तु तेन दूरत एव निराकृतम् । 'व्याधिः कदा निवर्तिष्यते' इत्यपि न चिन्तितम्, किंतु 'स्वकृत-कर्मणः फलमेत'दिति भावयन्नसौ रोगजनितवेदनां सहते स्म । एकस्मिन् दिने

जब कुमार यौवन अवस्था में आया तो उसने प्रभास नामक आचार्य के पास धार्मिक उपदेश सुनकर विषयों से विरक्त हो दीक्षा धारण करली । श्रुतज्ञानका खूब अभ्यास किया । जब वे मुनि आगमिक ज्ञान से विशिष्ट ज्ञानी बन चुके तो उन्होंने ने एकाकिविहार की प्रतिमा को अंगीकार कर ग्रामानुग्राम विहार करना प्रारंभ किया । विहार करते-तेरे एक दिन मुद्गशैल नामक नगरी में आये । वहाँ इन्हें बवासीर की बीमारी उत्पन्न हो गई इससे इन्हें अधिकाधिक कष्ट हुआ तो भी उस व्याधि की चिकित्सा के लिये इनका मन भी नहीं हुआ । 'इस व्याधि की निवृत्ति कब होगी' इतना तक भी संकल्प उनके दिल में नहीं उठा, पर यह विचार अवश्य हुआ कि यह स्वकृत-अपने किये हुवे कर्म का फल है । इस प्रकार के दृढ अध्यवसाय से उन्होंने ने रोगजनित वेदना को बड़ी ही शूरवीरता से सहन किया । एक दिन की

कुमार न्यारे यौवन अवस्थांमां आये। त्यारे प्रभास नामना आचार्यनी पासेथी धार्मिक उपदेश सांलणीने विषयेथी विरक्त थई ने दीक्षा धारण करी श्रुतज्ञाननेा प्रूण अभ्यास कर्ये। न्यारे ते मुनि आगमिकज्ञानथी विशिष्ट ज्ञानी अनी युक्त्या त्यारे तेमणे अेकाकी विहारनी प्रतिमाने अंगीकार करी अेक गामथी थीजे गाम विहार करवानेा प्रारंभ कर्ये। विहार करतां करतां अेक द्विस मुद्गशैलनगरमां आव्या। त्यां तेमने डरसनी भीमारी उत्पन्न थई तेनाथी तेमने अत्यंत कष्ट थयुं। परंतु आ व्याधिनी चिकित्सा करावानी धरंछा पण तेमने थई नही। आ व्याधि क्यारे मटशे, अेवो संकल्प पण तेना दिलमां उठयेा नही। परंतु अे विचार तेमना मनमां अवश्य थयेा के, पोताना करेला कर्मंतुं आ इण छे। आ प्रभाणे दृढ अध्यवसायथी तेअेा रोगथी उत्पन्न थयेली वेदनाने प्रूण शूरवीरताथी सहन करता उता।



भिक्षार्थं पर्यटनं हतशत्रुपस्य भवनं प्रविष्टः । तत्र तस्य कालवैशिकमहासुने रक्षारोगं तत्सांसारिकभगिनी ज्ञात्वाऽर्शोहरौषधमिश्रां भिक्षां प्रददौ । तेन चाजानता सा भिक्षा गृहीता । आहारसमये कृताऽऽहारेण तेन तदन्तर्गतमौषधं ज्ञात्वा जातानुतापेन चिन्तितम् 'अहो ! अजानता मयाऽनुचितमेतत्कृतम् यच्चिकित्सामनिच्छता मया औषधमिश्रा भिक्षा गृहीता भुक्ता च । ईदृशाहारार्थिनां मुनीनां खलु अभिग्रहस्य भङ्गोऽधिकरणस्य ग्रहणं च स्यात् तस्मादद्यप्रवृत्ति आहारमेव परित्यजामि ' इति विचिन्त्य मुद्गशैलनगरतो निर्गत्य गिरिमारुह्यात्मबलसम्पन्नो मुनिः पादपोषगमनं कर्तुं व्यवसितः ।

बात है कि जब वे भिक्षा के लिये पर्यटन करते-हृतशत्रु राजा के महल में जा पहुँचे तो उनकी संसारी बहिन ने उनके बवासीर रोग उत्पन्न हुआ जानकर औषधमिश्रित उनको भिक्षा दी कि जिससे बवासीर का रोग मिट जाय । अनजानपनमें इन्होंने वह भिक्षा लेली । आहार करते समय इनको मालूम हुआ कि यह आहार औषधमिश्रित है । मुनि को इस बात का बड़ा पश्चात्ताप हुआ । विचार करने लगे कि यह काम अच्छा नहीं हुआ, जो मैंने चिकित्सातक करवाने की भावना से रहित होकर भी औषधमिश्रित आहार लिया और खा भी लिया । इस प्रकार के आहार से मुनियोंके अभिग्रह का भंग अवश्य होता है, अतः आज से मैं अब आहार ही नहीं लूंगा । इस प्रकार विचार कर वे मुनिराज मुद्गशैल नगरसे निकल कर किसी पर्वत पर चले गये और वहाँ आत्मबलसंपन्न होकर पादपोषगमन संथारा करने की तैयारी करने लगे ।

એક દિવસની વાત છે કે, બ્યારે ભિક્ષાને માટે પર્યટન કરતાં કરતાં હતશત્રુ રાજાના મહેલમાં જઈ પહોંચ્યા. ત્યાં તેની સંસારી બહેને તેને હરસની બીમારી થયેલ છે એમ બાણીને ઔષધથી મિશ્રિત એવી ભિક્ષા આપી કે જેથી તેને હરસનો રોગ મટી બય. બબાણુ પણે તેમણે એ ભિક્ષા લઈ લીધી. આહાર કરતી વખતે તેમને ખબર પડી કે, આ આહાર તે ઔષધી મિશ્રિત છે. મુનિને આ ખબતનો ઘણો પશ્ચાત્તાપ થયો. વિચાર કરવા લાગ્યા. આ કામ ઠીક નથી થયું. જે હું ચિકિત્સા કરાવવાની ભાવનાથી રહિત હોવા છતાં ઔષધમિશ્રિત આહાર મેં લીધો અને ખાઈ પણ લીધો. આ પ્રકારના આહારથી મુનિઓના અભિગ્રહનો અવશ્ય ભંગ થાય છે. આથી હું આજથી આહાર જ નહીં લઉં, આ પ્રમાણે વિચાર કરીને તે મુનિરાજ મુદ્ગશૈલ નગરથી નીકળી કોઈ પહાડપર ગયા અને ત્યાં આત્મબળથી સંપન્ન થઈને પાદપોષગમન સંથારો કરવાની તૈયારી કરવા લાગ્યા.

अथ यः शृगालजीवो कालवैशिकेन संसारावस्थायां हतः, तस्य व्यन्तरदेवभवं प्राप्तस्य तदानीं विमाने गच्छतस्तत्र पादपोपगमनाय संस्थितस्य मुनेरुपरि गगने विमानगतिः प्रतिरूढा, तदा स व्यन्तरदेवोऽवधिना पूर्वभववृत्तं ज्ञात्वा वैरनिर्यातनेच्छया तत्र कालवैशिकमुनेः समीपे विकुर्वणशक्त्या स शिशुका शृगाली विकुर्विता । सा शृगाली 'खि-खि' इति शब्दं कुर्वती तस्य महामुनेर्गात्रं दन्तैर्दशति । तस्य

इतने में एकव्यन्तरदेव - जो पूर्वभवमें शृगाल था, जिसका इन मुनि ने अपनी कुमारावस्था में ताड़न तर्जन आदि किया था, और जो इनके ताड़न तर्जन आदि के कारण अकामनिर्जरा से मर कर व्यन्तर हो गया था, वह व्यन्तरदेव-विमानमें बैठ कर कहीं दूसरी जगह जा रहा था उसका विमान वहां आ पहुँचा, जहां ये मुनिराज पादपोपगमन संथारा धारण किये हुए थे। उनके ऊपर से होकर जाने में उस विमान को गति रुक गई। विमान को जातेर रुका हुआ देखकर व्यन्तरदेव को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने अवधिज्ञान से विमान की गति के रुकने में कारण मुनिराज का वह समस्त पूर्व भव का वृत्तान्त जान लिया। उससे मुनि के ऊपर बहुत क्रोध उसका बहने लगा। अपने पूर्वभव में मृत्यु के कारण मुनि को जानकर उस व्यन्तरदेव ने बदला लेने के अभिप्राय से उन मुनिराज के समीप अपनी वैक्रिय शक्तिके द्वारा एक बच्चे सहित शृगाली बनाकर खड़ी कर दी। उस शृगालीने 'खी-खी' शब्द करते हुए उन मुनिराज के समस्त शरीरको अपने

એટલામાં વ્યંતરદેવ કે જે પૂર્વભવમાં શૃગાલ હતો, જેનું આ મુનિરાજે પોતાની કુમાર અવસ્થામાં તાડન તર્જન કરેલ અને એ તાડન તર્જનના પરિણામે અકામનિર્જરાથી મરીને વ્યંતર થયેલ તે વિમાનમાં બેસીને કોઈ બીજે સ્થળે જઈ રહેલ હતા. એનું વિમાન ત્યાં આવી પહોંચ્યું કે જ્યાં મુનિરાજે પાદપોપગમન સંથારો ધારણ કરેલ હતા. ત્યાંથી પસાર થતા તે વિમાનની ગતી અટકી ગઈ. વિમાનને એકદમ અટકેલું જોઈને વ્યંતરદેવને ખૂબ આશ્ચર્ય થયું. તેણે અવધીજ્ઞાનથી વિમાનની ગતી રોકાવાના કારણરૂપ મુનિરાજનો પૂર્વભવનો સમસ્ત વૃત્તાંત બાણ્યો. એનાથી મુનિ ઉપર તેનો ક્રોધ એકદમ વધવા લાગ્યો. પોતાના પૂર્વભવના મૃત્યુના કારણરૂપ મુનિરાજ જ છે તેમ બાણીને તે વ્યંતરદેવે બદલો લેવાની ઇચ્છાથી તે મુનિરાજની પાસે પોતાની વૈક્રિયશક્તિ દ્વારા એક અચ્ચાવાળી પ્રબળ શિયાળને ઉત્પન્ન કર્યું. એ શિયાળ "ખી ખી" શબ્દ કરીને પોતાના તીક્ષ્ણ ઢાંતોથી મુનિરાજના શરીરને કાપવા લાગ્યું. કરડા પછી કરીથી

मुनेर्घोरमुपसर्गं कर्तुं कर्णकठोरं नीरसं शब्दमहर्निशं निरन्तरं करोति । स च व्यन्तर-  
देवस्तं मुनिं शृगालवधरूपं पापं स्मारयति । तदा स तां शृगालीकृतां तथाऽर्शो-  
रोग-  
कृतां च घोरान् दुःसहामुज्ज्वलां वेदनां धैर्येण समभावेन च सहमान आसीत् ।  
एवं पञ्चदश दिनानि घोरपरीषहोपसर्गं परिषह्य स कालवैशिकमुनिः शुक्लध्यानेन  
केवली भूत्वा कर्मक्षयं कृत्वा मोक्षपदं प्राप । एवमन्यैरपि मुनिभिः समभावेन रोग-  
परीषहः सहनीयः ॥ ३३ ॥

अथ सप्तदशं तृणस्पर्शपरीषहजयं प्राह—

मूलम्—अचेलंगस्स लूहस्स, संजयस्सं तव्वस्सिणो ।

तणेसु सयमाणस्स, होज्जा गांयविराहणा ॥३४॥

छाया—अचेलकस्य रूक्षस्य, संयतस्य तपस्विनः ।

तृणेषु शयानस्य, भवति गात्रविराधना ॥ ३४ ॥

तीक्ष्ण दांतों द्वारा काटने लगी, तथा काट खाने के बाद फिर वह  
उनके चारों ओर घूम कर कर्णकटुक विरस शब्द करने लगी । इस  
प्रकार वह तब तक करती रही कि जब तक उनका मृत्यु न हुआ । उस  
व्यन्तरदेव ने भी मुनि के लिये शृगाल को वध करने रूप पाप का  
स्मरण करा कर दुःखित करने की भी खूब चेष्टा की । इस प्रकार  
उन मुनिराज ने उस शृगाली की की हुई, व्यन्तरदेव की की हुई, तथा  
बवासोर की घोर दुःसह वेदना को धैर्यपूर्वक समभाव से सहते हुए  
पन्द्रह दिन व्यतीत कर दिये । पश्चात् शुक्लध्यान के प्रभाव से केवली हो  
कर सर्व कर्मक्षय कर के मुक्ति को प्राप्त किया । इसी तरह अन्य मुनिजनों  
को भी समभाव से रोगपरीषह को सहन करना चाहिये ॥ ३३ ॥

तेनी आरे आब्बुअे धुमीने डानने अप्रिय अेवा कर्कश शब्दो ओलवा लायुं. आ  
प्रकारे ते त्यां सुधी करतुं रहुं के, न्यां सुधी तेनुं मृत्यु न थयुं, अे व्यंतर-  
देवे पणु मुनि भाटे शृगालना वध करवाइप पापतुं स्मरण करी, करावीने  
दुःखीत करवानी अणु अेष्टा करी, आ प्रकारे ते मुनिराजे शृगालीनी भारक्षत  
थयेली अने व्यंतरदेवे करेली अने डरसनी घोर दुःसह वेदनाने धैर्यपूर्वक  
समभावथी सडेतां १५ दिवस व्यतीत कर्या पछी शुक्लध्यानना प्रभावथी  
केवली अनी सर्व कर्म क्षय करी मुक्ति पाव्या. आवी रीते अन्य मुनिज-  
नोअे समभावथी रोगपरीषह सहन करवे लेधअे. ॥ ३३ ॥

टीका—‘अचेलगस्स’-इत्यादि ।

अचेलकस्य=सर्वथा वस्त्ररहितस्य जिनकल्पिकस्य, तथा शास्त्रमर्यादातिरिक्तवस्त्ररहितस्य स्थविरकल्पिकस्य चेत्यर्थः । आगमे हि अल्पमूल्यकाल्पवस्त्रस्य मर्यादितस्यैव धारणात् स्थविरकल्पिकोऽप्यचैलक एवास्तोति प्रागचैलकपरीषहप्रकरणे निर्णीतम् । तथा उभयविधस्य मुनेस्तृणस्पर्शपरीषहेऽन्यान्यपि कारणानि सन्तीति प्रदर्शयितुमाह—‘लूहस्स’-इत्यादि । रूक्षस्य=तैलाभ्यङ्गादिवर्जनाद् अस्निग्धशरीरस्येत्यर्थः, संयतस्य=निरतिचारसंयमाऽऽराधनतत्परस्य, तपस्विनः=तपश्चरणशीलस्य, अनशनादितपःसमाचरणात् कृशशरीरस्येत्यर्थः मुनेः, तृणेषु-दर्भादिषु तदुपरिशयानस्य उपलक्षणत्वादासीनस्य चेत्यर्थः गात्रविराधना=शरीरे तृणस्पर्शजन्या पीडा भवति ॥ ३४ ॥

अब सूत्रकार सत्तरहवां तृणस्पर्शपरीषहजय का विवेचन करते हैं—‘अचेलगस्स’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(अचेलगस्स-अचेलकस्य) सर्वथा वस्त्ररहित जिनकल्पिक, तथा शास्त्र की मर्यादा के अतिरिक्त वस्त्र नहीं रखने वाले स्थविरकल्पिक मुनि के (लूहस्स-रूक्षस्य) कि जिन का तैल आदि की मालिश करना वर्जित होने से शरीर बिलकुल रूक्ष हो रहा है, एवं (संजयस्स-संयतस्य) जो निरतिचार संयमकी आराधना करने में तत्पर रहते हैं, तथा (तवस्सिणो-तपस्विनः) अनशन आदि तपों के करनेवाले होने से कृश शरीर वाले हैं, और जो (तृणेषु संयमाणस्स-तृणेषु शयानस्य) दर्भादिक तृणों के ऊपर सोते हैं उपलक्षण से उपर बैठते हैं उनके (गायविराहणा-गात्रविराधना) शरीर में तृणस्पर्शजन्य पीड़ा होती है ।

इवे सूत्रकार सत्तरमां तृणस्पर्शपरीषह उत्तवानुं वर्णन करे छे.  
‘अचेलगस्स’-इत्यादि.

अन्वयार्थ—अचेलगस्स-अचेलकस्य सर्वथा वस्त्र रहित जिनकल्पिक, तथा शास्त्रनी मर्यादाथी अतिरिक्त वस्त्र न राभवावाणा स्थविरकल्पिक मुनि लूहस्स-रूक्षस्य जेने तेल आदिनी मालिश करवानुं वर्जित होवाथी शरीर भीडकुल रूक्ष जनी गयेल छे. संजयस्स-संयतस्य अने जे निरतिचार संयमनी आराधना करवाभां तत्पर रहे छे तवस्सिणो-तपस्विनः तथा अनशन आदि तप करनार होवाथी कृश शरीरवाणा छे. अने जे तृणेषु संयमाणस्स-तृणेषु शयानस्य दर्भादिक तृणेषु उपर सुवे छे, उपलक्षणथी उपर जेसे छे, तेभना गायविराहणा-गात्रविराधना शरीरमां तृणस्पर्शजन्य पीडा थाय छे.

तृणस्पर्शपीडायां मुनिना यत् कर्तव्यं तद् बोधयितुमाह—

मूलम्—आयवस्स निवाणं, अउला हवइ वेयणा ।

एवं नच्चा नं सेवन्ति, तंतुजं तर्णतज्जिया ॥३५॥

छाया—आतपस्य निपातेन, अतुला भवति वेदना ।

एवं ज्ञात्वा न सेवन्ते, तन्तुजं तृणतर्जिताः ॥ ३५ ॥

टीका—‘ आयवस्स ’ इत्यादि ।

भावार्थ—अचेलक पद से यहां स्थविरकल्पिक को भी जो अचेलक कहा है वह इसी अभिप्राय से कि वे शास्त्रमर्यादा के अनुसार ही बख्त रखते हैं, उससे अधिक नहीं आगम में स्थविरकल्पिक के लिये अल्पमूल्य वाले प्रमाणोपेत वस्त्रों का रखना मर्यादित है उनको ही ये धारण करते हैं। अतः इस अवस्था में भी ये अचेलक ही माने जाते हैं, इस विषय का विशेषरूप से खुलासा छोटे अचेलक परीषह के प्रकरण में किया जा चुका है। मुनि को तैलादिक की मालिश करना वर्जित है। तथा ये तपश्चर्या करते रहते हैं, इसलिये इनका शरीर रूक्ष हो जाता है। रूक्ष शरीर में खून अल्प होने से तृणस्पर्श आदि की वेदना अधिक होती है, अतः ऐसी अवस्था में साधु का कर्तव्य है कि वह उस वेदना को समभाव से सहन करे ॥ ३४ ॥

जब तृणस्पर्श से पीडा हो तब मुनि को क्या करना चाहिये सो कहते हैं—‘ आयवस्स ’ इत्यादि ।

भावार्थ—अचेलक पदथी अडिं स्थविरकल्पिकने जे अचेलक कह्या छे. ते जेवा अभिप्रायथी छे ते, शास्त्र मर्यादांनी अनुसारज वस्त्र राखे छे. तेनाथी अधिक नही. आजममां स्थविरकल्पिक भाटे अल्पमुल्यवाणां प्रमाणोपेत वस्त्रोने राखवां मर्यादित छे, जेने ज तेजो धारण करे छे. आथी आ अवस्थां पणु ते अचेलक ज मानवांमां आवे छे. आ विषयनो विशेषरूपथी खुलासा पडेलां छुं. अचेलकपरीषहना प्रकरणमां आपवांमां आवी गयेल छे. मुनिजे तेल आदिनुं मालिश करवुं वर्जित छे. तथा तपस्या करता रहै छे. आथी तेमनुं शरीर रूक्ष थई जय छे. रूक्ष शरीरमां दोही भूष जोछुं होवाथी तृणस्पर्शनी वेदना अधिक थाय छे. आथी जेवी अवस्थांमां साधुनुं कर्तव्य छे छे, ते वेदाने समभावथी सहन करे. ॥ ३४ ॥

अ्यारे तृणस्पर्शथी पीडा थाय त्यारे मुनिजे शुं करवुं जेईजे ते सूत्रकार कहे छे—‘ आयवस्स ’—इत्यादि.

४० ६०



आतपस्य=धर्मस्य निपातेन=संपातेन, अतुला=महती दुःसहा वेदना भवति, आतपोत्पन्नस्वेदकलेदवशात् तृणक्षते क्षारसेचनेन समुत्पन्ना वेदनेव वेदना भवतीति भावः । एवम्=अनेन प्रकारेण ज्ञात्वाऽपि तृणतर्जिताः=दर्भादितृणक्षता मुनयः तन्तुजं-सूत्रनिर्मितं कार्पासिकम्, उर्णातन्तुनिर्मितं कम्बलादिकं वा वस्त्रम्=आच्छादनवस्त्रं न सेवन्ते ।

अयं भावः-शयने आसने च शुषिरवर्जिततृणस्य दर्भादिः परिभोगोऽनुज्ञातो जिनकल्पिकानां स्थविरकल्पिकानां च । तत्र जिनकल्पिकानां मुनीनां दृढसंहनन-पूर्वगतज्ञान - तीक्ष्णोपयोगनिद्राल्पत्वाद्यनेकप्रखरगुणसम्पन्नत्वेन स्पन्दनचलनादि

अन्वयार्थ—( आयवस्स - आतपस्य ) घाम-धूप के ( निवाएणं-निपातेन ) पड़ने से जो शरीर में पसीना आता है, वह पसीना तृण-क्षत अर्थात् शरीर में तृण के चुभने से उत्पन्न हुए घाव में लगता है, तब ( अउला वेयणा हवई-अतुला वेदना भवति ) महावेदना होती है । ( एवं नच्चा-एवं ज्ञात्वा ) ऐसी वेदना का अनुभव करके भी ( तणतज्जिया-तृणतर्जिताः ) दर्भादिजन्य घाव वाले मुनि ( तंतुजं-तन्तुजम् ) ऊर्णादिक तन्तुओं से निर्मित कम्बलादिक तथा कपास से निर्मित बस्त्रादिकरूप आच्छादन वस्त्र का सेवन नहीं करते हैं ।

इसका भाव यह है—शयन और आसन में निश्चिद्र दर्भादिक तृणों का परिभोग जिनकल्पिक तथा स्थविरकल्पिक दोनों के लिये अनुज्ञात है । जिस में जिनकल्पी मुनि दृढसंहनन, पूर्वों का ज्ञान, तीक्ष्ण उपयोग तथा अल्पनिद्रा आदि अनेक प्रखर गुणवाले होने से

अन्वयार्थ—आयवस्स-आतपस्य घाम तउकाना निवाएणं-निपातेन पउवाथी शरीरमां ने परसेवे आवे छे ते परसेवे तृणक्षत अर्थात् शरीरमां तृणना स्पर्शथी उत्पन्न थयेला घावमां लागे छे त्तारे अउला वेयणा हवई-अतुला वेदना भवति त्तारे वेदना थाय छे एवं नच्चा-एवं ज्ञात्वा येवी वेदनाने अनुभव करीने पण तणतज्जिया-तृण-तर्जिताः इलोद्विजन्य घाव पाणा मुनिये तंतुजं-तन्तुजम् उनना तांतण्णायेथी अनावेल कम्बल आदि तथा कपासथी अनावेल वस्त्रादिकनुं आच्छादन न करवुं जेधिये.

येनो लाव आ प्रभाण्णे छे, शयन अने आसनमां छिद्रो वगरना इलं आदि अउने परिभोग अनकट्टिक तथा स्थविरकट्टिक अन्नेने भाटे अनु-ज्ञात छे, जेमां अनकट्टिक मुनि तेने दृढताथी सडन करीने, पूर्वनु ज्ञान, तीक्ष्ण उपयोग, तथा अल्पनिद्रा आदि प्रखर शुष्वाणा होवाथी तेना शरीरनुं डलन



क्रिया सर्वदा सोपयोगाऽल्पा च भवतीत्यागन्तुकद्वीन्द्रियादिजीवानां विराधना न संभवत्यतस्ते वस्त्रं न सेवन्ते । स्थविरकल्पिकास्तु सापेक्षसंयमिनो भवन्त्यतस्ते तानि दर्भादीनि तृणानि भूमावास्तीर्य तत्रागन्तुककन्थुपिपीलिकादिजन्तुविराधना निवारणाय प्रान्तभागेषु वेष्टनं यथा स्यात्तथा तदुपरि संस्तारकं निधाय शेते, आसते च । एवं यः कठोरकुशदर्भादितृणसंस्पर्शं सम्यक् सहते तेन मुनिना तृणस्पर्शपरीषहो विजितो भवति ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

श्रावस्तीनगर्यां जितशत्रुनृपस्य भद्रनामकः पुत्र आसीत् । स चैकदा पद्मनामकाचार्यस्य समीपे धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजितः । क्रमाद् बहुश्रुतो भूत्वाऽन्यदा कदाचि-

उनके शरीर की हलनचलन आदि क्रिया उपयोगपूर्वक तथा अल्प होती है इससे उनके आगन्तुक द्वीन्द्रियादिक जीवों की विराधना का प्रायः संभव नहीं है इसलिये वे वस्त्र का सेवन नहीं करते हैं । स्थविरकल्पिकमुनि प्रायः ऐसे न होने से दर्भादिक तृणों को भूमि पर बिछा कर उसमें आगन्तुक कुन्थु पिपीलिका आदि जन्तुओं की विराधना निवारण करने के लिये प्रान्त भागों में वेष्टन जिस प्रकार हो जाय इस रूप से उस के ऊपर संस्तारक बिछाकर सोते हैं और बैठते हैं । इस प्रकार जो कठोर कुशदर्भादिक तृणस्पर्श को अच्छी तरह सहन करता है वह मुनि तृणस्पर्शपरीषह का विजेता कहलाता है ।

दृष्टान्त—श्रावस्ती नगरी में जितशत्रु नाम के राजा का भद्र नाम का एक पुत्र था । पद्मनामक आचार्य के पास उसने एक समय धर्म का उपदेश सुनकर दीक्षा धारण करली । क्रम से आगमों का

चलन आदि क्रिया उपयोग पुरती अने अल्प होय छे. तेनाथी आवनार द्विन्द्रियादिक जेवानी विराधना थवानो संभव नथी. आ भाटे ते वस्त्रुं सेवन करता नथी. स्थविरकल्पिक मुनि जेवा न होवाथी दर्भादिक तृणाने भूमि उपर भीछावी तेमां आववावाणा कंथवा, पीपीलीका, आदि जंतुजोनी विराधनातुं निवारण करवा भाटे प्रान्त भागोमां काया न पडे ते भाटे तेना उपर वस्त्र बिछावीने सुवे छे अने जेसे छे. आ प्रकारे जे कठोर कुश-दर्भादिक तृणस्पर्शने सारी रीते सहन करे छे ते मुनि तृणस्पर्शपरीषहना विजेता कहेवाय छे.

दृष्टान्त—श्रावस्ती नगरीमां जितशत्रु नामना राजने भद्र नामनो पुत्र हतो. पद्म नामना आचार्यनी पास तेजे जेक समय धर्मनो उपदेश सांभली दीक्षा धारण करी लीधी. क्रमसे आगमोनो अभ्यास करी ज्यारे ते अहुश्रुत

देकाकिविहारप्रतिमां प्रतिपन्नः सन्नऽप्रतिबद्धविहारं विहरति स्म । स चैकदा विह-  
रन् क्वापि राज्यान्तरे गतः । राजपुरुषाः “ हेरिकोऽय ”-मितिज्ञात्वा तं गृहीत्वा  
पप्रच्छुः-ब्रूहि कस्त्वं ? केन गुप्तचारत्वाय प्रहितोऽसि ? । स भद्रमुनिः प्रतिमा-  
धारित्वात् किमपि नोत्तरं ददौ । ततस्ते कुपितास्तं भद्रमुनिं क्षुरेण तक्षयित्वा अ-  
सिधारातुल्यैः क्षुरधारातुल्यैः कुन्ताग्रतुल्यैस्तीक्ष्णधारैर्दर्मैर्गाढमावेष्ट्य क्षारवर्तितं  
कृत्वा, गर्ते निपात्य स्वस्थानं गतवन्तः । अतितीक्ष्णाग्रैः कुशैर्विध्यमाने क्षारजलैश्च

अभ्यास कर जब वह बहुश्रुत हो गया तब उसने एकाकिविहार  
प्रतिमा अंगीकार कर अप्रतिबद्ध विहार करना प्रारंभ कर दिया । एक  
दिन की बात है कि ये मुनिराज विहार करते-दूसरे किसी राज्य में  
जा पहुँचे । राजपुरुषों ने उन्हें “ यह कहीं का गुप्तचर है ” ऐसा समझ-  
कर पकड़ लिया, और पूछने लगे-कहो कौन हो ? किसने तुम्हें खुफिया  
पुलिस के बतौर यहां भेजा है । राजपुरुषों की यह बात सुनकर प्रतिमा-  
धारी होने से मुनिराज ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । मुनिराज की इस  
मौन परिस्थितिका अवलोकन कर वे सब के सब उन पर बहुत अधिक  
कुपित हुए । उन्होंने ने प्रकृतिभद्र उन मुनिराज को प्रथम क्षुरा से  
घायल कर पश्चात् तलवार की धार के समान, क्षुरा की धार के समान,  
एवं भाले की नोक के समान तीक्ष्ण अनीवाले दर्मों से गाढ वेष्टित  
करके और ऊपर से नमक मिला हुआ जल छिड़ककरके एक खड्डे में  
उनको डाल दिया, और वे सब के सब अपने-स्थान पर चले गये ।  
अति तीक्ष्ण अनीवाले कुशों से वींधे गये शरीर का प्रत्येक अवयवगत

अनी गया त्पारे तेमले ऐकाकी विहार प्रतिमा अगिकार करी, अप्रतिबद्ध  
विहार करवानो प्रारंभ कर्यो. ऐक द्विसनी वात छे के, आ मुनिराज विहार  
करता करता थीन कोरि राज्यमां नरि पडोन्त्या राजपुत्रोये तेने “ आ कोरि  
राज्यनो शुप्तचर छे ” ऐम समलने पकडी लीधा अने ऐने पुषवा लाज्या कडो  
तमे कोषु छे ? कोले तमने शुप्त आतमीहार तरीके अडिं मोकलेल छे ? राज-  
पुत्रोनी ऐ वात सांलणी प्रतिमा धारी होवाथी मुनिराजे कांरि पषु उत्तर न  
आप्यो. मुनिराजनी आ मौन परिस्थीति ऐरि सधणा तेना उपर भूष न  
कोधित अन्या. तेओये प्रकृतिभद्र ते मुनिराजने प्रथम छराथी घायल करी  
पछी तरवारनी धार जेवा, छरानी धार जेवा, अने लालानी अषी जेवा तीक्ष्ण  
अषीवाणा हलोथी गाढ व्यथित करीने उपरथी भीडानुं पाषी छांटी ऐक आडामां  
नाथी दीधा अने अधा राजपुत्रो पौत पौताने स्थाने आल्या गया. अति  
तीक्ष्ण अषीवाणा हलना पानथी वींधायेला शरीरना प्रत्येक अवयवमांथी भांस,

शरीरे प्रत्येकावयवस्य मांसे विदीर्यमाणेऽपि क्षोभवर्जितः शान्तरसनिमग्नो महामुनिः  
क्षमानिधिः कलुषध्यानमकुर्वाणः समाधिभावेन प्रबलामुज्ज्वलां दुःसहां घोराति-  
घोरवेदनां सहते स्म । इत्थं तृणस्पर्शपरीषहं विजित्य क्षपकश्रेणिमारुह्य केवली-  
भूत्वा शिवपदं प्राप । एवमन्यैरपि मुनिभिस्तृणस्पर्शपरीषहः सोढव्यः ॥ ३५ ॥

अथाष्टादशं जल्लपरीषहजयं प्राह—

मूलम्—किलिण्णगाए मेहावी, पंकेण वं रएण वा ।

धिसु वा परितावेणं, सांयं नो परिदेवए ॥३६॥

छाया—क्लिन्नगात्रः मेधावी, पङ्केन वा रजसा वा ।

ग्रीष्मे वा परितापेन, सातं नो परिदेवयेत् ॥ ३६ ॥

टीका—‘ किलिण्णगाए ’ इत्यादि ।

मेधावी=स्नानपरित्यागमर्यादावर्ती मुनिः, ग्रीष्मे, वा शब्दात्—शरदि,

मांस क्षारजल से विदीर्ण होने पर भी क्षोभ से वर्जित एवं शान्त रस में निमग्न, ऐसे उन क्षमा के निधि मुनिराज ने कलुषध्यान नहीं करते हुए समाधिभाव से उस घोरातिघोर प्रबल दुःसह वेदना को सहन किया । इस प्रकार उन्होंने ने तृणस्पर्शपरीषह को जीतकर अन्त में क्षपकश्रेणी पर आरोहण करके केवलज्ञान की प्राप्ति से शिवपद प्राप्त कर लिया । इसी तरह अन्य मुनियों को भी तृणस्पर्शपरीषह सहन करना चाहिये ॥ ३५ ॥

अब अठारवें जल्लपरीषह को जीतने के लिये सूत्रकार कहते हैं—

‘ किलिण्णगाए ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( मेहावी - मेधावी ) स्नानपरित्यागरूप मर्यादा में रहने वाला मुनि ( धिसु—ग्रीष्मे ) ग्रीष्मकाल में (वा-वा) तथा शरत्काल

पारा पाष्ठीथी विदीर्णं थवाथी, क्षोभथी वञ्चितं अने शान्त रसमां निमग्न येवा ते क्षमानिधि मुनिराजे कलुषलाव न राभतां समाधीलावथी ये घोर अति घोर दुःसह वेदनाने सहन करी. आ प्रकारे तेओये तृणस्पर्शपरीषहने अतीने अंतमां क्षपकश्रेणी पर चडीने केवणज्ञाननी प्राप्तिथी शिवपद प्राप्त करी लीधुं. आ रीते अन्य मुनिराजेये तृणस्पर्शपरीषह सहन करवे लोधं ये ॥३५॥  
हुवे अठारवो जल्लपरीषह अतवा भाटे सूत्रकार कहे छे—

‘किलिण्णगाए’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—मेहावी-मेधावी स्नान परित्यागइय मर्यादां रडेवावाणा मुनि धिसु-

वर्षासु वा, परितापेन=उष्णस्पर्शेन, हेत्वर्थे तृतीया । पङ्केन वा=प्रस्वेदादाद्रीभूतेन मलेन वा, रजसा वा=परिशुष्य काठिन्यं प्राप्तेन मलेन वा, यद्वा-रजसा=धूल्या, क्लिन्नगात्रः=व्याप्तदेहः, सन् सातं=सुखं समाश्रित्य न परिदेवयेत्-“ हा ! मम-मलापगमः कथं कदा वा भविष्यती ” - ति कृत्वा न विलापेत्, विलापं न कुर्यादिति भावः ॥ ३६ ॥

में और वर्षाकाल में ( परितावेणं-परितापेन ) उष्णस्पर्श द्वारा आये हुए ( पंकेण व-पङ्केन वा) प्रस्वेद द्वारा गीले हुए मैल से (रण वा-रजसा वा) या पसीने में संसक्त धूलि से (क्लिण्णगाए-क्लिन्नगात्रः) व्याप्त शरीर होने पर भी (सायं नो परिदेवए-सातं नो परिदेवयेत्) “ हा मेरे इस मैल का निवारण कैसे और कब होगा ” ऐसा विचार कर विलाप नहीं करे । किन्तु उस हालत में उस परीषह को अच्छी तरह सहन करे, इसका नाम जल्लपरीषह जय है ।

भावार्थ—ग्रीष्मकाल में या वर्षाकाल में अधिक गर्मी पड़ने से शरीर में अधिक पसीना आया करता है । उससे शारीरिक मैल ढीला पड़ जाता है । रगड़ने से वह चिपका हुआ मैल शरीर से अलग हो जाता है । पुनः उसी स्थान पर उड़ी हुई रज आकर लग जाती है । उससे शरीर में आकुलता होती रहती है । इस आकुलता से न घबरा कर जो मुनि उस मैल से संसक्त होने का परीषह सहन करते हैं उसीका नाम जल्लपरीषहजय है । साधु स्वप्न में भी यह विचार न

ग्रीष्मे उनाणानी ऋतुभां तथा वा-वा शरदकाण अने वर्षाकाणभां परितावेणं-परितापेन उष्णस्पर्शं द्वारा आवेला पंकेण व-पङ्केन वा परसेवा द्वारा पलणेला भेदथी रण वा-रजसा वा अगर् परसेवाभां लणेला धूणथी क्लिण्णगाए-क्लिन्नगात्रः व्याप्त शरीर अनवा छतां पशु सायं नो परिदेवए-सातं नो परिदेवयेत् भारा आ भेदनुं निवारणु केम अने क्यारे थशे ” अवेो विचार करी विलाप न करे. परंतु तेवी डालतभां ते परीषडने सारी रीते सडन करे तेनुं नाम जल्लमल्ल परिषड जय छे.

भावार्थ—ग्रीष्मकाणभां या वर्षाकाणभां अधिक गरमी पडवाथी शरीरभां अधिक परसेवो वणे छे. तेनाथी शरीर उपरनेो भेल ढीलो पडे छे योणवाथी ते योणेल भेल शरीरथी छुटेो पडे छे. इरी अेज स्थणे उडती रज आवीने योणै छे तेनाथी शरीरभां आकुणता थती रडे छे. आथी अे आकुणताथी न गलरातां जे मुनि ते भेदनेो संसक्तपरीषड सडन करे छे अेनुं नाम जल्लमल्ल

मूलम्—वेएज्ज निज्जरापेही, आरियं धम्मं णुत्तरं ।

जाव सरीरभेओत्ति, जल्लं काएण धारये ॥३७॥

छाया—वेदयेत् निर्जरापेक्षी, आर्यं धर्मम् अनुत्तरम् ।

यावत् शरीरभेदः, इति जल्लं कायेन धारयेत् ।

टीका—‘ वेएज्ज ’ इत्यादि ।

निर्जरापेक्षी=आत्यन्तिककर्मक्षयाभिलाषी मुनिः, आर्यं=हेयोपादेयस्वरूपनिरूपकम्, अनुत्तरं=न विद्यते उत्तरम्—उत्कृष्टं यस्मात् सोऽनुत्तरस्तं सर्वोत्तममित्यर्थः। धर्मं=श्रुतचारित्ररूपं प्राप्तः इति शेषः । वेदयेत्—प्रक्रमात् जल्लजनितं दुःखं सहेत । इममर्थं विशदीकुर्वन् प्राह—‘ जाव सरीरभेओ ’ इत्यादि । इति=अतो हेतोः—यावत्—यावताकालेन शरीरभेदः=देहपातः स्यात्, तावत्कालपर्यन्तं, जल्लं=मलं, कायेन=शरीरेण धारयेत् ।

करे कि—“ हा ! इस मेल के निवारण से मुझे साता अर्थात् सुख का अनुभव कब और कैसे होगा ? ” इस प्रकार विलाप न करे ॥ ३६ ॥

‘ वेएज्ज ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( निज्जरापेही—निर्जरापेक्षी ) आत्यन्तिक रूप से कर्मों के क्षयका अभिलाषी मुनि ( आरियं—आर्यम् ) हेय एवं उपादेय के स्वरूप का निरूपक ( अणुत्तरं—अनुत्तरम् ) सर्वोत्कृष्ट—जिससे श्रेष्ठ और कोई दूसरा नहीं है—सर्वोत्तम ऐसे ( धम्मं—धर्मम् ) श्रुतचारित्ररूप धर्म को प्राप्त कर ( वेएज्ज—वेदयेत् ) मेल के दुःख को सहन करे । उसका कर्तव्य है कि ( जाव शरीरभेओत्ति—यावत् शरीरभेद इति ) जब तक शरीर का भेद नहीं होता है—मृत्यु द्वारा शरीर का वियोग नहीं

परीषद्व्य छे. साधु स्वप्नाभां पणु सुभने अनुभव क्यारे अने केम थशे. आ प्रकारने विलाप न करे ॥ ३६ ॥

‘ वेएज्ज ’—इत्यादि.

अन्वयार्थ—निज्जरापेही—निर्जरापेक्षी आत्यन्तिक इयथी कर्मोना क्षय करवाना अभिलाषी मुनि आरियं—आर्यम् हेय अने उपादेयना स्वप्नना निरूपक अणुत्तरं—अनुत्तरम् सर्वोत्कृष्ट अनाथी श्रेष्ठ भीजे कोष नथी. सर्वोत्तम अवेवा धम्मं—धर्मं श्रुतचारित्ररूप धर्मने प्राप्त करी वेएज्ज—वेदयेत् मलना दुःखने सहन करे. तेनुं, कर्तव्य छे के जाव शरीरभेओत्ति—यावत् शरीरभेदः इति अथां सुधी शरीरने लेह नथी थतो मृत्यु द्वारा शरीरने वियोग थतो नथी त्यां सुधी

दृश्यन्ते हि केचिद् दावानलदग्धस्थाणुवत् कालवर्णाः शीतवातादिभिरुपहता धूलिव्याप्ता मलिनदेहा मनुष्याः। तेषामकामनिर्जरया नास्ति कश्चिद् गुणः, मम तु मलधारणेन महान् गुणः, इति मत्वा मलापनयनाय स्नानाद्यभिलाषमपि न कदाचित् कुर्यादित्यर्थः । उक्तञ्च—

न शक्यं निर्मलीकर्तुं गात्रं स्नानशतैरपि ।

अश्रान्तमिव स्रोतोभि, -नवभिर्मलमुद्गिरत् ॥ १ ॥

होता है तब तक वह ( काएण-कायेन ) शरीर से ( जल्लं धारए-जल्लं धारयेत् ) मेल को धारे । उसे यह विचार करते रहना चाहिये कि इस संसार में ऐसे अनेक प्राणी-मनुष्य देखे जाते हैं । जो दावानल से दग्ध स्थाणु की तरह बिलकुल कृष्णवर्ण होते हैं । उनका शरीर शीतवात आदि से सदा पीडित होता रहता है । धूलि से व्याप्त होने के कारण अत्यन्त मलिन होता है । परन्तु फिर भी इनको इसकी चिन्ता नहीं होती है । अकाम निर्जरा से इनको इतना सब कुछ सहन करने पर भी कोई लाभ नहीं । मेरे लिये तो इस मैल धारण करने से महान् लाभ है, अतः इसके दूर करने के लिये मुझे स्नान आदि सावद्यक्रियाओं की अभिलाषा स्वप्न तक में भी नहीं करनी चाहिये । कहा भी है—

न शक्यं निर्मलीकर्तुं, गात्रं स्नानशतैरपि ।

अश्रान्तमिव स्रोतोभि, -नवभिर्मलमुद्गिरत् ॥ १ ॥

काएण-कायेन ते शरीरथी जल्लं धारए-जल्लं धारयेत् भेदने राजे. तेञ्जे अवे विचार करता रहेवुं जेधञ्जे के,आ संसारमां अवेमां अनेक प्राणी, मनुष्य देणवामां आवे छे जे दावानलथी दग्ध पाणुनी जेवा तहन काणा स्वइपना ज होय छे. तेनुं शरीर शीत, वात आदिथी सदा पीडित रहे छे. धूणथी भरैवुं होवाने कारणे अत्यंत मलीन होय छे, छातां पणु अमने अनी चिता होती नथी. अकामनिर्जराथी अमने अटवुं अधुं सहन करवा छातां पणु काई लाभ नथी. मारा भाटे तो आ भेदने परीपह सहन करवाथी महान लाभ छे, आथी तेने इर करवा भाटे भारे स्नान आदि सावद्यक्रियाओनी अभि-लाषा स्वप्ने पणु न करवी जेधञ्जे. कछुं पणु छे.—

न शक्यं निर्मलीकर्तुं, गात्रं स्नानशतैरपि ।

अश्रान्तमिव स्रोतोभि, -नवभिर्मलमुद्गिरत् ॥ १ ॥



अन्यच्च—अत्यन्तमलिनो देहो, देही चात्यन्तनिर्मलः ।

उभयोरन्तरं ज्ञात्वा, कस्य शौचं विधीयते ॥ २ ॥ इति ।

अत्यन्तमलिनो देहो, देही चात्यन्तनिर्मलः ।

उभयोरन्तरं ज्ञात्वा, कस्य शौचं विधीयते ॥ २ ॥

क्यों कि मातापिता के रजवीर्य से यह शरीर अपवित्र ही स्वभावतः उत्पन्न हुआ है। जब कारण स्वयं अशुचिस्वरूप है तो उसका कार्यरूप यह शरीर शुचि कैसे हो सकता है। प्याज को या लहसुन को क्षीरसमुद्र के जल से प्रक्षालित करने पर भी जैसे उसमें निर्गन्धता नहीं आ सकती है उसी प्रकार हजारों बार स्नान करने पर भी इस अपवित्र शरीर में भी निर्मलता-शुचिता नहीं आ सकती है, क्यों कि यह निरन्तर नौ द्वारों से मल को बहाता ही रहता है। देह का जब स्वभाव ऐसा है तो फिर इसकी शुचिविधायक साधन ही यहां कौन से एकत्रित किये जा सकते हैं। जो मैं हूँ वह तो पवित्र हूँ अत्यंत निर्मल हूँ। जिस प्रकार वस्तुस्थिति से विचार करने पर शौचालय में रहा हुआ आकाश अपवित्र न हो सकता है उसी प्रकार इस अपवित्र देह में निवास करने वाला यह आत्मा भी अपवित्र नहीं होता है, वह तो सदा अत्यंत निर्मल है। इस प्रकार शरीर और आत्मामें अन्तर जानकर ज्ञानी सदा ऐसा विचार करता रहे की मैं अब

अत्यंतमलिनो देहो, देही चात्यन्तनिर्मलः ।

उभयोरन्तरं ज्ञात्वा, कस्य शौचं विधीयते ॥ २ ॥

केभके, माता पिताना रजविर्यथी आ शरीर अपवित्र न स्वभावतः उत्पन्न थयेल छे. न्यारे कारण स्वयं अशुचि स्वरूप छे तो तेना कार्य रूप आ शरीर शुचिरूप कछ रीते गणाय, दुंगणीने अथवा लसणुने समुद्रना पाणीथी घोवाथी पणु तेमां निर्गन्धता आवी शकती नथी तेवी रीते हनरौ वार स्नान करवा छतां पणु आ अपवित्र शरीरमां निर्मलता-शुचिता आवती नथी. केभके, आ शरीर निरन्तर नव द्वारोथी भगने अडार काढया न करे छे. देहने न्यारे स्वभाव अवे छे तो पछी अेना शुचि विधायक साधन न कथांथी भेगवी शकय. ने हुं छुं ते तो सदा पवित्र न छुं, अत्यंत निर्मल छुं, ने प्रकारथी वस्तु स्थितिना विचार करवा छतां, शौचालयमां रहेछुं आकाश अपवित्र अनी शकतुं नथी तेवीन रीते देहमां निवास करवावाणो आ आत्मा पणु अपवित्र हो तो नथी. ते तो सदा निर्मल न छे. आ प्रकारे शरीर अने आत्मांमां अंतर लण्ठी ज्ञानी अेवो सदा

उ० ६१

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

चम्पानगर्यां सुनन्दनामा धनाढ्यो वणिक् श्रावक आसीत् । स बहुविधपण्यै-  
र्व्यवहारकरणेन जाताभिमानो विवेकरहितः कदाचिदेकदा साधुं दृष्ट्वा निन्दति  
स्म—अहो ! शरीरसंस्कारवर्जिताः अभद्रवेषा धूलिधूसरा घर्मादिसमुत्पन्नमला-  
नपनयनेन मलिनशरीराः पुनरपि स्ववेषं भव्यमेव मन्यमाना विहरन्ति । स चैवं

स्नानादिक से किसकी शुचि करूँ ? जिस शरीरकी शुचि इन स्नानादि  
क्रियाओं से करना चाहता हूँ वह तो स्वभाव से ही अपवित्र है, तथा  
आत्मा पवित्र होने से उसकी शुचि करने का प्रयास व्यर्थ है । ऐसा  
समझकर साधु जल्लपरीषह को सहन करे ।

दृष्टान्त—चंपानगरी में सुनंद नामका एक धनाढ्य वैश्य श्रावक  
रहता था । इसका व्यापार खूब चलता था । अनेक चीजों का रोजगार  
यह किया करता था । इससे दुकानदारी में इसको अधिक लाभ होता  
था, इसलिये इसे अपनी दुकानदारी का बहुत कुछ अभिमान था ।  
विवेक से रहित होने के कारण एक दिन की बात है कि इसने किसी  
एक साधु को देखकर उसकी भारी निंदा की । कहने लगा—देखो तो  
सही ये शरीर के संस्कार से बिलकुल वर्जित रहते हैं, इनका वेष भी  
भद्रपुरुषों जैसा नहीं होता है, शरीर पर तो इनके धूल चढ़ी रहती है ।  
ये नहाने घाते नहीं हैं । रात दिन पसीना आते रहनेसे कपडे भी इनके  
बुरी तरह से दुर्गन्ध देने लगते हैं । शरीर भी पसीने से तर हो जाने के

विचार करते रहे के, हुं हवे स्नान आदिथी केनी शुद्धि करूं ? केनी शुद्धि  
आवी स्नानादिक क्रियाओथी करवा याहुं छुं तेतो स्वभावथी न अपवित्र  
छे. तथा आत्मा पवित्र होवाथी केनी शुचि करवानेो प्रयास व्यर्थ छे ओबुं समझने  
साधु नपरीषहने सहन करे.

दृष्टान्त—चंपानगरीमां सुनंद नामनेो एक धनाढ्य वैश्य-श्रावक रहतेोः  
हतेो. तेनेो वेपार भूष यावतेो हतेो. अनेक चीजेनेो रोजगार ते करतेो हतेो.  
तेनाथी दुकानदारीमां तेने अधिक लाभ थतेो हतेो. तेने पोतानी दुकानदारीनुं  
घलुं अभिमान हतुं. विवेकथी रहित होवाना कारणे ओक द्विषसनी बात छे के.  
तेणे ओध ओक साधुने ओधने तेनी भूष निंदा करी, कहेवा लाग्ये के, नुओ  
तो भरा ! आ शरीरना संस्कारथी तहन वर्जित रहे छे. तेनेो वेष पणु लद्र  
पुर्षे केवेो नथी. शरीर उपर तो धूल ओटेली रहे छे, ओ नाता घाता नथी,  
रात द्विषस परसेवेो आवतेो होवाथी तेमनां कपडां पणु दुर्गंध भारतां होय  
छे अने शरीर पणु परसेवेथी तर होवाने कारणे भेदथी लखेहुं रहे छे. तो

मुनिनिन्दया दुष्कर्म बद्धवान् । कालमासे कालं कृत्वा श्रावकत्वात् सौधर्मे कल्पे देवत्वं प्राप्तवान् । ततश्च्युतश्चासौ कौशाम्बीनगरे इभ्यस्य वसुचन्द्रश्रेष्ठिनः पुत्रोऽभवत् । स श्रेष्ठिपुत्रो विशुद्धमतिनाम्ना प्रसिद्धो जातः ।

स चैकदा विशाखाचार्यसमीपे धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजितः । अन्यदा कदाचित् तस्य विशुद्धमतिमुनेः पूर्वभवकृतमलिनमुनिनिन्दोपाजितकर्मोदयाद् देहेऽतिदुर्गन्धः समुत्पन्नः । शटितसर्पादिमृतकगन्धादप्यधिकं विशुद्धमतिमुनिदेहभवं दुर्गन्धं कोऽपि सोढुं नाशकत् । सर्वो लोकस्तद्वपुःस्पृष्ट्वायुनाऽपि व्याकुलीकृतः सन्नितस्ततः पलायते ।

कारण मैल से भरा रहता है । फिर भी ये लोग अपने को बहुत ऊँचा समझते रहते हैं और इधर से उधर भटकते रहते हैं । इस प्रकार मुनि की निंदा से उसने गाढ़ दुष्कर्म का बंध कर लिया, और श्रावक होने की वजह से वह मर कर सौधर्म देवलोक में देवपर्याय से उत्पन्न हुआ । वहाँ से च्यवकर यह कौशाम्बी नगरी में वसुचंद्र नामक इभ्य-शेठ का पुत्र हुआ । उसका नाम विशुद्धमति रक्खा गया ।

एक दिनकी बात है कि विशुद्धमति ने विशाखाचार्य के पास धर्म श्रवणकर दीक्षा ले ली । कालान्तरमें विशुद्धमति मुनिके शरीरमें सुन्द वणिकूके भवमें की गई मुनिनिन्दासे उपाजित पापकर्म के उदय से अति दुर्गन्ध आने लगी । सड़े हुए सांप आदिकी जैसी दुर्गन्ध होती है उससे भी अधिक दुर्गन्ध इनके शरीर की थी, अतः उस दुर्गन्ध को सहन करने के लिये कोई भी समर्थ नहीं हुआ । उसके शरीर को स्पर्शकर जो वायु आता था लोग उस वायु से भी घबरा जाते थे ।

पणु आ ढोडो। पोताने पूणज उंचा समजे छे अने अही तही लटकता रहे छे. आ प्रकारनी मुनिनी निंदाथी तेणे गाढ दुष्कर्मने अंध करी दीधी अने श्रावक होवाना कारणे ते मरीने सौधर्म देवदोकमां देव पर्यायथी उत्पन्न थयो. त्यांथी अवीने ते कौशाम्बी नगरीना वसुचंद्र नामना इभ्य-शेठने पुत्र थयो. तेनुं नाम विशुद्धमति राखवामां आंयुं.

એક દિવસની વાત છે કે, વિશુદ્ધમતિએ વિશાખાચાર્યની પાસે ધર્મ શ્રવણ કરી દીક્ષા લઈ લીધી કાળાન્તરમાં વિશુદ્ધમતિ મુનિના શરીરમાં સુન્દ વણીકના ભવમાં કરાયેલ મુનિ નિંદાથી ઉપાર્જન કરેલ પાપકર્મના ઉદયથી અતિ દુર્ગંધ આવવા લાગી. સડેલા સર્પ વગેરેની જે દુર્ગંધ આવે છે તેનાથી પણ અધિક દુર્ગંધ તેના શરીરની હતી. આથી એ દુર્ગંધને સહન કરવા કોઈ સમર્થ ન આંયું, તેના શરીરને સ્પર્શ કરીને જે પવન આવતો તે પવનથી પણ ઢોડો

यत्र यत्रासौ भिक्षाधर्थं याति तत्र तत्र लोकस्तद्वन्धेन विमना भवति । मुनिश्च तिरस्कारं प्राप्नोति तथाप्यसौ जल्लपरीषहं सहते ।

तदनन्तरं विशाखाचार्यस्तमब्रवीत्-वत्स ! त्वद्देहदौर्गन्ध्याद् भृशमुद्वेगो जनानां जायते, तस्मादुपाश्रय एव त्वया स्थातव्यं, न तु बहिर्गृहस्थसंनिधौ गन्तव्यम् । इत्थं तद्वचनं निशम्य विशुद्धमतिमुनिस्तस्मिन्नेवोपाश्रये स्थितः । अन्तप्रान्ताहारेण दुर्बलशरारोऽसौ विशुद्धमतिमुनिः स्वगुरुं प्रार्थ्य तदाज्ञामादाय पादपोषगमनं कृत्वा स्वकल्याणं साधयामास । एवमन्यैर्मुनिभिर्जल्लपरीषहः सोढव्यः ॥ ३७ ॥

जहां जहां ये भिक्षा के लिये जाते वहां र लोग उनके शरीर की दुर्गन्ध से व्याकुल हो उठते । इस दुर्गन्ध के कारण मुनिराज का भी तिरस्कार होने लगा । फिर भी उन्होंने ने इस तर्फ ध्यान नहीं दिया और जल्लपरीषह को जीतने में ही वे अपनी सारी शक्ति लगाते रहे ।

विशाखाचार्य ने एक दिन इनसे कहा वत्स ! तुम्हारे शरीर की दुर्गन्ध से लोगों में बड़ा असन्तोष फैल रहा है वे बड़े उद्विग्न होते हैं, इसलिये तुम अब कहीं न जाकर सिर्फ उपाश्रय में ही रहा करो । इस प्रकार गुरु महाराज के वचन सुनकर विशुद्धमति मुनिराज अब उपाश्रय में ही रहने लगे-बाहर गृहस्थों के यहां आना जाना बंद कर दिया । अन्त प्रान्त आहार से इनका शरीर भी दुर्बल हो गया था, अतः अपने गुरु महाराज से प्रार्थना कर इन्होंने उनकी आज्ञानुसार पादपोषगमन संथारा धारण कर लिया और अपना कल्याण साध कर

गलराधं जता हुता. ज्यां ज्यां ये भिक्षा देवा जता त्यां त्यां दोडो अना शरीरनी दुर्गंधथी व्याकुण अनी जता. अने आ दुर्गंधना कारणे ज्यां त्यां मुनिराजने पणु तिरस्कार थवा लाग्यो. तो पणु तेमणु ये तरङ्ग ध्यान न आप्थुं. अने जल्लपरीषहं अतवाभां ज पोतानी अधी शक्ति लगाडी रह्या.

विशाखाचार्ये तेने अेक दिवस कहुं, डे वत्स ! तमारा शरीरनी दुर्गंधथी दोडोभां घणु असंतोष देवाधं रह्यो छे. आथी घणु उद्विग्न अने छे, माटे तमे डवे कयांय न जतां इकत उपाश्रयभां ज रह्या करे. आ प्रकारतुं गुरुमहाराजनुं वचन सांभणीने विशुद्धमति मुनिराज डवे उपाश्रयभां ज रहेवा लाग्या. अहार गृहस्थीने त्यां जवा आववानुं अधं करी दीधुं. अन्त प्रान्त आहारथी तेमनुं शरीर पणु दुर्बल थधं गथुं, अंते पोताना गुरुमहाराजने प्रार्थना करी तेमनी आज्ञा अनुसार पदपोषगमन संथारे धारणु कर्यो. आथी पोतानुं

अथैकोनविंशतितमं सत्कारपुरस्कारपरीषद्द्वयं प्राह—

मूलम्—अभिवायमब्भुद्वाणं, सामी कुञ्जा निमंतणं ।

जे ताइं पडिसेवन्ति, ने तेसिं पीहंए मुंणी ॥३८॥

छाया—अभिवादम् अभ्युत्थानं, स्वामी कुर्यात् निमन्त्रणम् ।

ये तानि प्रतिसेवन्ते, न तेभ्यः स्पृहयेत् मुनिः ॥ ३८ ॥

टीका—‘अभिवाय०’ इत्यादि ।

स्वामी=राजादिकः, अभिवादम्—अभिवादनम्—‘शिरोनमनचरणस्पर्शनादिपूर्व-  
कमभिवादये प्रणमामी’त्यादिवचनरूपं पुरस्कारं, तथा—अभ्युत्थानम्=अभिमुखमु-  
त्थानम्—ससंभ्रममासनं परित्यज्योत्थानरूपं पुरस्कारं च, तथा—निमन्त्रणम्—  
आहारादिग्रहणाय प्रार्थनम्, ‘अद्य मद्गृहे भिक्षा ग्रहीतव्या’ इत्यादिवचनरूपं

जन्ममरण से सदा के लिये विमुक्त हो गये। इसी तरह अन्य मुनियों  
को भी जल्लपरीषद् सहन करना चाहिये ॥ ३७ ॥

अब उन्नीसवां सत्कारपुरस्कारपरीषद्द्वय को सूत्रकार कहते हैं—  
‘अभिवायं’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—यदि (सामी—स्वामी) राजा आदि (अभिवायं अब्भु-  
द्वाणं निमंतणं—अभिवादनं अभ्युत्थानम् निमन्त्रणं) अभिवादन—अपने  
मस्तक को झुकाकर चरणस्पर्श करते हुए नमस्कार करें, तथा अभ्यु-  
त्थान—मुनि को आते देखकर बड़े आदरभाव से अपने आसन का  
परित्याग कर वे उठ खड़े हों और मुनि के सन्मुख जावें, तथा—निमं-  
त्रण—आहार आदि के ग्रहण करने के लिये प्रार्थना करें कि महाराज!  
आज आप मेरे घर पर भिक्षा लें, इस प्रकार अभिवादन, अभ्युत्थान

कल्याण साधीने जन्ममरणसुधी सहाने भाटे विमुक्त भनी गया. आ रीते अन्य  
मुनिओअये पणु जणपरीषदने सहन करवे। जेधये ॥ ३७ ॥

इवे आगणीसमे सत्कारपुरस्कारपरीषद् एतवाने सूत्रकार कडे छे.

‘अभिवायं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—यदि सामी—स्वामी राजा वगैरे अभिवायं अब्भुद्वाणं निमंतणं—अभिवादनं  
अभ्युत्थानम् निमन्त्रणम् पोताना मस्तकने झुकावी अर्धस्पर्श करी नमस्कार करे,  
तथा अभ्युत्थान—मुनिने आवता जेधने धणा आदरभावधी पोताना आसनने  
परित्याग करी ते उठीने उला रडे अने मुनिनी सामे जाय, तथा निमन्त्रणु—  
आहार आदि अडणु करवा भाटे प्रार्थना करे के, महाराज! आज आप भाश  
धरे भिक्षा ल्यो. आ प्रकारे अभिवादन, अभ्युत्थान तथा निमन्त्रणु कुञ्जा—कुर्यात्



सत्कारं कुर्यात्, तानि=अभिवादादीनि ये स्वयूथवर्तिनः अवसन्नपार्श्वस्थादयः, परतीर्थिका दण्डिशाक्यादयो वा द्रव्यलिङ्गिनः प्रतिसेवन्ते=आगमनिषिद्धान्यपि स्वीकुर्वन्ति, तेभ्यः=ऋद्धिरससातगृद्धियुक्तेभ्यः, मुनिः=अनगारः न स्पृहयेत्, राजादिकृतसत्कारपुरस्कारौ प्रतिसेवमानान् द्रव्यलिङ्गिनः साधून् विलोक्य—“अहो! पुण्यशालिनोऽमी पार्श्वस्थादयः शाक्यादयश्च यदेतादृशं वन्दनाभ्युत्थानादिसत्कारं प्राप्नुवन्ति, अतोऽहमप्येतादृशो भवामी”-ति मुनिस्तत्साम्यं न वाञ्छेदित्यर्थः ॥३८॥

अमुमेवार्थं विशदयति—

मूलम् -अणुक्रंसाई अप्पिच्छे, अन्नाएँसी अलोल्लुए ।

रसेसु नाणुंगिज्झिज्जा, नाणुंतप्पिज्ज पण्णवं ॥३९॥

तथा निमंत्रण ( कुञ्जा-कुर्यात् ) करे और ( ताइं-तानि ) उनको ( जे-ये ) जो स्वयूथवर्ती अवसन्न पासत्थ आदि, अथवा परतीर्थिक दण्डिशाक्यादिक द्रव्यलिङ्गी साधु ( पण्डिसेवंति-प्रतिसेवन्ते ) सेवन करते हैं उनको स्वीकार करते हैं तो ( मुणी तेसिं न पीहए-मुनिः तेभ्यः न स्पृहयेत् ) मुनि उन ऋद्धिरससातगृद्धियुक्तों की स्पृहा न करे राजा आदि द्वारा किये गये सत्कार पुरस्कार को प्रतिसेवन करने वाले अवसन्नपार्श्वस्थादि द्रव्यलिङ्गी साधुओं को देखकर “अहो! ये अवसन्न पार्श्वस्थादिक तथा शाक्यादिक बड़े ही पुण्यशाली हैं जिससे ये इस प्रकार के वन्दन अभ्युत्थान आदि सत्कार को पाते हैं अतः मैं भी इनके जैसा होऊं तो अच्छा हो” इस प्रकार अणगार-मुनि उनकी समानता की अर्थात् उनके जैसा होने की वाञ्छा नहीं करे ॥ ३८ ॥

करे अने ताइं-तानि अेभने जे-ये जे स्वयूथवर्ती अवसन्न पासत्थ आदि अथवा परतीर्थिक दंडी, शाक्यादिक द्रव्यलिङ्गी साधु पण्डिसेवंति-प्रतिसेवन्ते सेवन करे छे-अेभने स्वीकार करे छे मुणी तेसिं न पीहए-मुनिः तेभ्यः न स्पृहयेत् तो मुनि अे ऋद्धिरस सात गृद्धियुक्तेभ्यो स्पृहा न करे. राजा आदि द्वारा करायेला सत्कार पुरस्कारतुं प्रतिसेवन करवावाणा अवसन्न पार्श्वस्थादि द्रव्यलिङ्गी साधुअेभने जेछेने “अहो” अे अवसन्न पार्श्वस्थादिक तथा शाक्यादिक धष्ठा ज पुन्यशाली छे, जेथी ते आ प्रकारनां वंदन अेभ्युत्थान आदि संस्कार पाभे छे. अेथी हुं पण्ण अेभना जेवेा थाडं तो साइं थाय. आ प्रकारे अणुगार मुनि तेभनी समान-तानी अर्थात् तेभना जेवा थवानी वाञ्छना न करे. ॥ ३८ ॥



छाया—अनुत्कशायी अल्पेच्छः, अज्ञातैषी अलोलुपः ।

रसेषु नानुगृध्येत्, नानुतप्येत प्रहावान् ॥ ३९ ॥

टीका—‘अणुककसाई’ इत्यादि ।

अनुत्कशायी=अनुत्कः—अनुत्कण्ठितः शेते, धातूनामनेकार्थत्वाद् वर्तते इत्येवं शीलः सत्कारादिवाञ्छारहित इत्यर्थः, यद्वा—प्राकृतत्वाद्—‘अणुकषायी’ इति-च्छाया । अल्पकषायी—कषायरहित इत्यर्थः—वन्दनादिकमकुर्वते न क्रुध्यति, वन्दनादौ कृते वा न मानं कुरुते न वा तदर्थं शीतोष्णाऽऽतापनादिभिर्मायां करोति, न चापि तत्र लोभं करोतीति भावः । अत एव—‘अल्पेच्छः’=धर्मोपकरणमात्रा-भिलाषी, न तु सत्कारपुरस्काराभिलाषीत्यर्थः । अत एव—अज्ञातैषी—अज्ञातः=जाति-श्रुतादिभिरपरिचितो भूत्वा एषयति—गवेषयति पिण्डादिकं, यः स तथा, यद्वा—अज्ञाते=अज्ञातकुले एषयति=गवेषयति पिण्डादिकं यः स तथा, तत्र हेतुं प्रदर्शयति

अब सूत्रकार इसी अर्थको विशद करते हैं—‘अणुकसाई’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( अणुकसाई—अनुत्कशायी ) सत्कार आदि की अभिलाषा रहित अथवा अल्पकषाय वाला—सत्कारादि विषयक कषायभावं रहित, अर्थात्—वन्दना आदि नहीं करने वाले के प्रति क्रोध नहीं करने वाला, तथा वन्दनादि करने पर अभिमान नहीं करने वाला, तथा मान सन्मान आदि के निमित्त शीत, उष्ण, आतापना आदि द्वारा माया-चार नहीं करने वाला, तथा उस विषय में लोभ—कषाय भी नहीं करने वाला, (अपिच्छे—अल्पेच्छः) तथा अल्पइच्छावाला धर्मोपकरणमात्र की अभिलाषा वाला सत्कारपुरस्कार आदि की अभिलाषा वाला नहीं, तथा (अन्नाएसी—अज्ञातैषी) जाति एवं श्रुत आदि से अपरिचित होकर शुद्ध पिंडादिक की गवेषणा करने वाला, अथवा—अज्ञातकुल में

७वे सूत्रकार आ अर्थने स्पष्ट करे छे—‘अणुकसाई’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—अणुकसाई—अनुत्कशायी सत्कार आदिनी अभिलाषाथी रहित अथवा अल्प कषायवाणा—सत्कारादि विषयक कषायभाव रहित, अर्थात् वन्दना आदि न करना तरके क्रोध नहीं करवावाणा तथा वन्दनादि करवाथी अभिमान नहीं करवावाणा तथा मान सन्मान आदि निमित्त शीत, उष्ण, आतापना आदि द्वारा मायाचार नहीं करवावाणा तथा अे विषयमां दोल कषाय पणु नहीं करवावाणा अपिच्छे—अल्पेच्छः तथा—अल्प इच्छावाणा—धर्मोपकरण मात्रनी अभिलाषावाणा—सत्कार पुरस्कार आदिनी अभिलाषावाणा नहीं तथा अन्नाएसी अज्ञातैषी जाति अगर श्रुत आदिथी अपरिचित अनिने शुद्ध पिंडादिकनी गवेषणा

—‘अलोलुप’ इति । अलोलुपः=सरसाहारादिषु रसनेन्द्रियादिलोलुपतावर्जितः, तथा—प्रज्ञावान्=हेयोपादेयविवेचननिपुणबुद्धिमान्, रसेषु=रसादिषु, नानुगृध्येत्=मनोज्ञरसादिभिः सत्कारे पुरस्कारे च कृते तत्र मूर्च्छा न कुर्यात् । नानुत्प्येत्=सत्कारपुरस्कारयोरभावे विषादं न कुर्यात् ।

अयं भावः—भक्तपानवस्त्रपात्रादीनां लाभः सत्कारः, गुणोत्कीर्तनं वन्दनाभ्युत्थानासनप्रदानादिव्यवहारश्च पुरस्कारः । तत्र—सत्कारपुरस्कारप्राप्तौ सत्यां गृद्धि न कुर्यात्, तयोरभावे द्वेषं न कुर्यात्, नापि च मनस्तापेनात्मानं दूषयेत्, किंतु दैन्यवर्जनेन तदनाकाङ्क्षया च सत्कारपुरस्कारपरीषहः सोढव्यः, इत्येवं सद्भावासद्भावभेदेन द्विविधोऽयं परीषहः सोढव्य इति । उक्तञ्च

गवेषणा करने वाला, तथा (अलोलुप—अलोलुपः) सरस आहारादिक में रसना—इन्द्रिय की लोलुपता से रहित ऐसा (पण्णवं—प्रज्ञावान्) हेय और उपादेय के विवेचन करने में निपुण बुद्धिवाला मुनि (रसेसु नाणुगिज्झज्जा—रसेषु नानुगृध्येत्) मनोज्ञ रसादि के द्वारा सत्कारपुरस्कार होने पर रसादि में मूर्च्छा—गृद्धि भाव नहीं करे, तथा मनोज्ञ रसादि के नहीं मिलने पर विषाद नहीं करे ।

भावार्थ—इसका सारांश यह है कि—भक्त, पान, वस्त्र एवं पात्रादिकका लाभ सत्कार है, तथा गुणों का कथनरूप तथा वन्दना अभ्युत्थान एवं आसनप्रदानरूप जो व्यवहार है वह पुरस्कार है । साधु को सत्कारपुरस्कार की प्राप्ति होने पर गृद्धि और इनके अभाव में द्वेष नहीं करना चाहिये, और न मनके संताप से अपने आपको दूषित ही

करवावाणा अथवा अज्ञात कुण्ठां आहारादीनां गवेषणा करवावाणा तथा अलोलुप—अलोलुपः सरस आहारादिकभां रसनाधन्द्रियनी लोलुपताथी रहित अथी पण्णवं—प्रज्ञावान् हेय अने उपादेयनुं विवेचन करवाभां निपुण बुद्धिवाणा मुनि, रसेसु नाणुगिज्झज्जा—रसेषु नानुगृध्येत् मनोज्ञ रसादि द्वारा सत्कारपुरस्कार होवा छतां रसादिभां मूर्च्छा—गृद्धिभाव न करे. तथा मनोज्ञ रसादि नहीं भणवाथी विषाद न करे.

आनेा सारांश अे छे के—भक्त, पान, वस्त्र, अने पात्रादिकनेा लाभ सत्कार छे, तथा गुणोना कथनरूप, तथा वन्दना अभ्युत्थान अने आसनप्रदान रूप ने वडेवार छे, ते पुरस्कार छे. साधुने सत्कारपुरस्कारनी प्राप्ति होवाथी गृद्धि अने तेना अलावभां द्वेष न करवो अेछेअे. तेम मनना संतापथी पोते

उत्थाने वन्दने दाने, न भवेदभिलाषुकः ।

असत्कारे न दीनः स्यात्, सत्कारे स्यान्न हर्षवान् ॥ १ ॥ इति ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

अरुणाचार्यः शिष्यपरिवारेण सह मथुरानगर्यां समवसृतः । तत्रारिमर्दनो नाम भूपतिरासीत्, इन्द्रदत्तनामकस्तस्य पुरोहितस्तत्र निवसति । स जिनशासनविरो-

करना चाहिये, किन्तु दीनता के परिहार से एवं सत्कारपुरस्कार की अनाकांक्षा से सत्कारपुरस्कार इन दोनों को सहन करते रहना चाहिये । इस प्रकार सद्भाव और असद्भाव के भेद से दो प्रकारका यह परीषद् साधु को सहन करने योग्य बतलाया गया है । कहा भी है—

उत्थाने वन्दने दाने, न भवेदभिलाषुकः ।

असत्कारे न दीनः स्यात्, सत्कारे स्यान्न हर्षवान् ॥ १ ॥

भावार्थ—वस्त्र पात्रादिक का लाभ हो चाहे न हो, कोई वंदनादिक करे या न करे, इस तर्फ लक्ष्य न देना और न इस विषयक हर्ष विषाद करना । चाहे कोई सत्कार करे चाहे न करे सब में समभाव रहना सो सत्कारपुरस्कारपरीषद्हजय है ।

दृष्टान्त—एक समय अरुणाचार्य अपने शिष्यपरिवार के साथ मथुरा नगरी में आये हुए थे । उस समय वहाँ अरिमर्दन राजा का राज्य था । राजा के पुरोहित का नाम इन्द्रदत्त था । यह उसी नगरी

पोताने इषित न करे, परंतु दीनताना परिहारथी अने सत्कारपुरस्कारनी अनाकांक्षाथी सत्कारपुरस्कार आ अन्ने ने सहन करता रहेवुं जेध अने आ प्रकारे सद्भाव अने असद्भावना लेहथी जे प्रकारने आ परीषद् साधुअे सहन करवा योग्य भतावेव छे । कहुं छे के—

उत्थाने वंदने दाने, न भवेदभिलाषुकः ।

असत्कारे न दीनः स्यात्, सत्कारे स्यान्न हर्षवान् ॥ १ ॥

भावार्थ—वस्त्र पात्रादिकने लाभ होय अगर न होय, कोई वंदना आदि करे के न करे, अने तरफ लक्ष न आपवुं । अथवा न आ विषयमां हर्ष विषाद करवो । आडे कोई सत्कार करे, आडे न करे सवणामां समभाव रहेवो ते सत्कारपुरस्कार परीषद् जय छे ।

दृष्टान्त—अेक समये अरुणाचार्य पोताना शिष्य परिवार साथे मथुरा नगरीमां विचरता हुता । अे वअते त्यां अरिमर्दन राजाहुं राज्य हुतुं । राजाना पुरोहितहुं नाम इन्द्रदत्त हुतुं । ते अेज नगरीमां रहेता हुता । जिनशासन प्रत्ये

धित्वात् स्वगवाक्षस्थः सन्नधो व्रजन्तमरुणाचार्यस्य शिष्यं सुधर्मशीलनामकं मुनिं दृष्ट्वा धर्मद्वेषादचिन्तयत्—‘ अस्य मुनेः शिरसि पादं निक्षिपामि ’ इति एवं विचिन्त्य, स तन्मस्तकोपरि स्वपादमवलम्बितं कृतवान् ।

यदा यदा भिक्षार्थं स्थण्डिलभूमौ वा मुनिस्तद्भवनाऽऽसन्नमार्गेण गच्छति, तदा तदाऽसौ पुरोहितः स्वगवाक्षे उपविश्य मुनिमस्तकोपरि पादधारणबुद्ध्या स्वपादौ तत्रावलम्बितौ कृत्वा दृष्टो भवति । एवं निरन्तरं कुर्वाणं दृष्ट्वाऽपि शान्तर-ससमुद्रोऽसौ मुनिर्मनसाऽपि नाकुप्यत् । एकदा मुनिमस्तकोपरि पादं निक्षिपन् स

में रहता था । जिन शासन के प्रति इसका विरोध सदा से चला आता था । एक दिन की बात है कि जब यह अपने मकान के झरोखे में बैठा हुआ था उसी समय इसने अरुणाचार्य के एक शिष्य को कि जिनका नाम सुधर्मशील मुनि था दृष्टि को झुकाकर जाते हुए देखा । देखकर धर्म के प्रति द्वेष होने की वजह से इसने उसी बख्त विचार किया कि आज मैं इस मुनि के मस्तक पर पैर रखुं । ऐसा विचार कर झरोखे के पास से निकलते हुए मुनि के सिर के ऊपर अपने पैर लटका दिये ।

एक दिन उस नगर के सेठ ने कि जिसका नाम सुभद्र था इस पुरोहित को मुनि के मस्तक के ऊपर पैर रखते हुए देख लिया । मुनि के मस्तक ऊपर पुरोहित पैर इस तरह रखता था कि मुनि जबर भिक्षा के लिये या शौच के लिये उसके मकान की खिड़की के पास के मार्गसे हो कर निकलते तब यह पुरोहित अपने मकानकी उस खिड़की में बैठ जाता और चलते हुए मुनि के मस्तक ऊपर अपने दोनों पैर

तेना विशेष सदा आद्ये आवतो હતો. એક દિવસની વાત છે કે, જ્યારે તે પોતાના મકાનના અડધામાં બેઠેલ હતો તે સમયે તેણે અરુણાચાર્યના એક શિષ્યને કે જેનું નામ સુધર્મશીલ મુનિ હતું તેને નીચે માથું રાખી જતા તેણે જોયા. જોઈને ધર્મના તરફ દ્વેષ હોવાના કારણે તેણે તે વખતે વિચાર કર્યો કે, આજ હું આ મુનિના મસ્તક ઉપર પગ રાખું. એવો વિચાર કરી અડધાની પાસેથી નિકળતા મુનિના માથા ઉપર પોતાના પગ લટકાવ્યા.

એક દિવસ એ નગરના જ સુભદ્ર નામના શેઠે આ પુરોહિતને મુનિના માથા ઉપર પગ રાખતા જોઈ લીધા. મુનિના માથા ઉપર પુરોહિત પગ એવી રીતે રાખતા કે, મુનિ જ્યારે જ્યારે ભિક્ષા માટે અગર શૌચ માટે તેના મકાનની ખડકીની પાસેના માર્ગેથી નીકળે ત્યારે ત્યારે તે પુરોહિત પોતાના મકાનની ખડકીમાં બેસી રહેતો, અને આક્ષતા મુનિના માથા ઉપર પોતાના પગ રાખતો.

पुरोहितस्तन्नगरश्रेष्ठिना सुभद्रनामकेन श्रावकेण दृष्टः। स सुभद्रश्रावको गुरोरपमानम-  
सहमानोऽरुणाचार्यसमीपं गत्वा वदति—भदन्त ! पुरोहितकृतो भवदपमानो मया न  
सह्यते, यतो भवदीयशिष्यस्य मस्तकोपरि इन्द्रदत्तपुरोहितेन पादो निक्षिप्तः,  
तस्मादस्य यथोचितशासनं कर्तुमिच्छामि । आचार्येणोक्तम्—देवानुप्रिय ! यथा  
नृपादिकृते सत्कारे पुरस्कारे च न प्रमोदः क्रियतेऽस्माभिः, तथा तदभावे द्वेष-  
दैन्यादिकमपि न क्रियते, जैनधर्मद्वेषादसौ तथा करोति । अस्माभिस्त्वेष परीषद्ः  
सोढव्य एव ।

रखने की इच्छा से पसार देता इससे वे मुनि के माथे ऊपर हो जाते  
थे । इस कार्य से पुरोहित को बड़ा मजा आता । पुरोहित की इस प्रवृत्ति  
को देखकर भी मुनिके चित्त में जरा भी विकृति नहीं आती, क्यों कि  
वे शान्तरस के समुद्र थे । किन्तु सुभद्र श्रावक को पुरोहित की यह बात  
सहन नहीं हुई । गुरु का अपमान देखकर उसका मन तिलमिला उठा ।  
वह शीघ्र ही अरुणाचार्य के पास पहुँचकर कहने लगा—भदन्त ! पुरो-  
हित द्वारा होता हुआ आपका अपमान मुझसे सहन नहीं किया  
जाता है, क्यों कि वह आप के शिष्य के मस्तक पर कई दिन से पैर  
जो रख रहा है, इसलिये मैं उसे इसका उचित उत्तर देना चाहता हूँ ।  
सुभद्र सेठ की बात सुनकर आचार्यमहाराज ने कहा कि देवानुप्रिय !  
हम लोग जिस प्रकार नृपादिकद्वारा क्रियमाण सत्कारपुरस्कार में  
प्रसन्न नहीं होते हैं उसी प्रकार उसके अभाव में द्वेष एवं दैन्यादिक भी

आ किया जेवी रीते करते के, पग लांभा करी पसारतो के जेथी ते मुनिना  
माथा उपर आवे. आ कार्यमां पुरोहितने भूष मज आवती. पुरोहितनी आ  
प्रकारनी प्रवृत्तिने जेधने मुनिना मनमां जरा पणु विकृति आवती न हती.  
कारणु के, तेजो शान्तरसना समुद्र हता. परंतु सुभद्रश्रावकथी पुरोहितनुं आ  
वर्तन सहन न थयुं गुरुनुं अपमान जेधने जेतुं मन भूष व्यअ थर्धगयुं.  
ते तरत ज अज्ञाचार्यनी पासे पडोंथीने कडेवा लाग्या, डे लदन्त ! पुरोहितथी  
थतुं आपनुं अपमान भाराथी सहन थतुं नथी केभके, ते आपना शिष्यना  
मस्तक पर डेटलाक द्विवसथी पग राभी असातना करे छे. हुं तेने आनेो उचित  
उत्तर आपवा आहुं छु. सुभद्रशेठनी वात सांलणीने आचार्य महाराजे कहुं के,  
देवानुप्रिय ! अमे दोडे जे प्रकारे नृपादिक द्वारा करायेला सत्कारपुरस्कारमां  
प्रसन्न नथी थता, तेवी रीते तेना अभावमां द्वेष अने दैन्य आदिक पणु



एकदा गुरोः समीपमागत्य सुभद्रश्रावको वदति-भदन्त ! पुरोहितेन नूतनं भवनं निर्मापितं, तत्राऽसौ राजानं भोजयितुं निमन्त्रयति । तदा स आचार्यः पूर्वं उपयोगं दत्त्वा कथयति-देवानुप्रिय ! यदा राजा भवने प्रवेशं करिष्यति तदैव त्वया करं धृत्वा राजा भवनाद् बहिर्निःसारणीयः, तद्भवनं कुमुहूर्ते निर्मापितं, येन राज्ञः प्रवेशसमये निश्चयेन तत् पतिष्यति । एतच्छ्रुत्वा सुभद्रश्रावकस्तस्मिन् भवने

नहीं करते हैं। यह पुरोहित जो कुछ करता है वह जैनधर्म के प्रति अपने द्वेष से करता है। हमारा तो यही आचार है कि हमें यह परीषह सहन करना ही चाहिये। आचार्य महाराज की बात सुनकर सेठ अपने घर चला गया। पुनः एक समय आकर सुभद्र श्रावक ने आचार्य महाराज को यह खबर सुनाई कि पुरोहित ने एक नूतन भवन बनवाया है सो आज उसके प्रवेश के उत्सव में उस ने राजा को भोजन के लिये आमंत्रित किया है। मैं चाहता हूँ कि पुरोहित का यह व्यवहार जो उसने मुनिराज के साथ किया है वहाँ जाकर चुपके २ राजा को सुनाया जाय। आचार्य महाराज ने सेठ की इस बात पर ध्यान न देकर उसे इस बात से सचेत किया कि-देखो जब राजा पुरोहित के नूतन भवन में प्रवेश करने लगे तो तुम उसी समय उनका हाथ पकड़ कर मकान से बाहर निकाल लेना, क्योंकि वह भवन कुमुहूर्त में बना है, और ज्यों ही राजा उसमें प्रविष्ट होगा त्यों ही वह उस समय गिर पड़ेगा। मरते को बचाना अपना काम है, आचार्य महाराज की बात

करता नहीं. आ पुरोहित ने कांछ करे छे ते जैनधर्म तरङ्गना तेना द्वेषने लक्ष्णे करे छे. अमारो तो अये आचार छे न के, अमारो आ परीषह सहन करवो न लोछंअ. आचार्य महाराजनी वात सांलणीने शेठ पोताने घेर आल्या गया. इरीथी अेक वणते आवीने सुभद्रश्रावके आचार्य महाराजने अेवी अणर आपी के, पुरोहिते अेक नवुं मकान अनांयुं छे. अने आन तेना वास्तु मुहूर्तमां तेणे राजने लोअन भाटे आमंत्रणु आपेल छे. हुं आहुं छुं के, पुरोहितने आ वडेवार ने तेणे मुनिराजनी साथे कथी छे, ते त्यां न्छने राजने चुपकीदीथी कडेवाभां आवे. आ प्रकारनी शेठनी वात उपर ध्यान न आपतां आचार्यमहाराजे लोछने कहुं के अे मकान अेवा कुमुहूर्तमां तैयार करवाभां आंयुं छे के ते मुहूर्तने द्विसे न पडी नवानुं छे. भाटे राज ने सभये अेमां हाणल थवा नय ते सभये तमे तेमने हाथ पकडीने अडार जेअी लेजे. भरताने अथाववा ते आपणे धर्म छे. आचार्य महाराजनी आ वात सांलणी श्रावक सुभद्र शेठ त्यांथी निकणी पुरोहितना नवा



राज्ञः प्रवेशसमये तद्रक्षार्थं गतः । तत्र भवने राजा यदैव प्रविशति, तदैव स करं धृत्वा वेगेन राजानमाकृष्य भवनाद्बहिर्निःसारयति, नृपे निःसारिते सत्येव तद्भवनं समूलं निपतितम् । नृपेणोक्तम्—कथमेतद्भवता विदितम् । श्रावकः प्राह—मम गुरु-देवेन केनचित् कथाप्रसङ्गेन बोधितम्—कुमुहूर्तनिर्मापितं भवनं नृपस्य प्रवेशकाले पतितं भविष्यतीति । इत्युक्त्वा श्रावको नृपतिं निवेदयति—राजन् ! अयं पुरोहितः

सुनकर श्रावक सुभद्र सेठ प्रवेश होने के समय राजा की रक्षा करने के अभिप्राय से उस मकान पर गया। ज्यों ही राजा ने आकर उस भवन के भीतर प्रवेश करना चाहा कि सुभद्र सेठ ने उनका हाथ पकड़ वहाँ से शीघ्र ही राजा को बाहिर की ओर खेंच लिया। राजा के बाहर होते ही वह मकान पूरा का पूरा गिरपड़ा। राजा ने जब परिस्थिति देखी तो उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ। राजा ने हाथ पकड़ कर बाहिर निकालने का कारण पूछा तो सुभद्रसेठ ने सब बात उन्हें स्पष्ट कह सुनाई। राजाने प्रसन्न होकर सुभद्र सेठ से पूछा सुभद्र ! तुम्हें इस बात का पता कैसे पड़ा ? सुभद्र सेठ ने कहा महाराज ! किसी प्रसङ्ग पर आज मेरे गुरु-महाराज ने मुझ से यह बात कही कि कुमुहूर्त में निर्मापित यह भवन नृप के प्रवेश करते समय गिर जायगा। राजा को इस पर बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने आचार्य महाराज के अतिशय ज्ञान की बहुत प्रशंसा की और वहीं से उन्हें परोक्ष वंदन किया। इतनेमें ही सुअवसर देख

मकाने पडोऱ्या अने राजाना आववानी प्रतिक्षा करवा लाग्या. राजाने आवी अे मकानमां प्रवेश करवो शङ् कथी अेटले राजाने भयावीलेवाना अलिप्रा-यथी तेनी प्रतिक्षा करी रडेले सुभद्र शेठे राजानो हाथ पकडी आगण वधता अटकावी दीधा अने थोडा पाछा जेथी दीधा. राजाना भडार जेथार्ध जवानी साथेसाथे जे अे आपुंअे मकान कडडकुस करतुं जभीनहोस्त भ-युं. राजाने आ परिस्थिति जेधे भूभज आश्चर्य थयुं. तेले सुभद्रशेठेने तेनुं कारण पूछयुं त्यारे तेले सधणी वात राजाने कडी संलणावी. राजाने प्रसन्न थतां कहुं के, आ वातनी जाणु कधे रीते थधे ? सुभद्रशेठे जणुांयुं के, आज मारा गुरुदेव साथे वतयितमां आ प्रसंगनी वात उपस्थित थतां तेओश्रीअे कहुं के, पुरोहितना अे मकाननो पाथो अेवा मुहूर्तमां नाभवामां आओये छे के राजानो प्रवेश थतांज अे आपुंअे मकान जभीनहोस्त थवानुं. राजाने आ वातथी घणोअे संतोष थथो. अेले आचार्यमहाराजना अगाध अेवा ज्ञाननी भूभज प्रसंशा करी अने त्यांथी जे अेभने परोक्ष वंदन कथुं. आ वधते सुअवसर जेधे सुभद्र शेठे

कुमुहूर्ते भवनं निर्माप्य भोजनार्थं भवन्तमामन्त्रितवान्, मम गुरुदेवं चानेन पथा गच्छन्तं दृष्ट्वा गवाक्षदेशवस्थितोऽर्थं प्रत्यहं तन्मस्तकोपरि धर्मद्वेषात् पादं निक्षिपति । एतद्वचनं श्रुत्वा नृपस्तस्य दुष्टभावसंपन्नस्य पुरोहितस्य पादच्छेदरूपं दण्डं कर्तुं स्वभृत्यानाज्ञापयत् । इयं राजाज्ञानगरे तत्कालमेव प्रसूता, अरुणाचार्येणापि श्रुता । ततः कर्णार्द्रचित्तः स मुनिः स्वशिष्येण नृपतिं प्रबोधय तं पुरोहितमरक्षयत् । एवमन्यैरपि मुनिभिः सुधर्मशीलमुनिवत् सत्कारपुरस्कारपरीषहः सोढव्य इति ॥३९॥

कर सुभद्र सेठ ने राजा को मुनि के प्रति हुए पुरोहित का व्यवहार भी आद्योपान्त सब स्पष्ट कर के सुना दिया, कहा कि-हे राजन्! आपके इन पुरोहित ने इस भवन का निर्माण कुमुहूर्त में कराया है और उसमें प्रवेश के उत्सव पर आपको भोजन के लिये आमंत्रित किया है । मेरे गुरु महाराज इस भवन की झरोखे के पास से जब २ होकर निकलते हैं तब २ यह धर्म के द्वेष से झरोखे में बैठ कर “मुनिके माथे ऊपर दोनों पैर, मेरे रहे ” इस भावना से पैर पसार दिया करता है । सुभद्र श्रावक की इस बात को सुनकर राजाने “यह पुरोहित दुष्टभाव संपन्न है ” यह जान लिया और अपने नौकरों को यह आदेश दिया कि इसके दोनों पैर काट डालो । यह राजाज्ञा नगर में वायुवेग से फैल गयी । अरुणाचार्य को भी यह बात मालुम हुई तो उन्होंने ने अपने शिष्य द्वारा राजा को समझा बुझा कर पुरोहित को बचा लिया । इस कथा से यही शिक्षा

पुरोहितद्वारा मुनिप्रत्ये कराता अपमानित व्यवहारनी वात विगतथी राज्ञ समक्ष रण्य करी अने कथुं के, डे राजन्! आपना आ पुरोहिते आ भकाननुं निर्माप्य कुमुहूर्तमां कथुं अने तेमां प्रवेशना उत्सव उपर आपने लोअन माटे आमंत्रण्य आपेल छे. भारा गुरुभडाराज आ भकानना अइआयासेथी न्यारे न्यारे निकणे छे त्यारे त्यारे पुरोहित धर्मना द्वेषथी अइआमां जेसी ज्येभना माथा उपर “भारा अन्ने पग रडे” आ लावनाथी पग लांआ करी हे छे. सुभद्र शेठेनी वात सांलणी राज्ञ्ये “आ पुरोहित दुष्ट लावनाथी भरैल छे” आ वात जलणी लीधी, अने पोताना नोकरौने हुकम करी के, पुरोहितना अन्ने पग काफी नापो. आ प्रभाण्येनी राजनी आज्ञा वायुवेगथी नगरमां इलाध गध अने ते अइआयाथं मुनिना जलण्यमां आवता तेज्येज्ये पोताना शिष्य भारकृत राजने समजवी पुरोहितने अयावी लीधी. आ कथाथी ज्ये जलणी

अथ विंशतितमं प्रज्ञापरीषहमाह—

मूलम्—से' य नूणं मए' पुंठ्वं, कर्माणाणफला कंडा ।  
 जेर्णाहं नाभिजाणामि, पुंठो केणइ कंणहुइ ॥ ४० ॥  
 अहं पच्छा उइज्जंति, कर्माणाणफला कड्ढा ।  
 एवमासासि अप्पाणं, नच्चा कम्मविवागयं ॥ ४१ ॥

छाया—अथ नूनं मया पूर्वं, कर्माणि अज्ञानफलानि कृतानि ।  
 येनाहं नाभिजानामि, पृष्टः केनचित् कस्मिंश्चित् ॥ ४० ॥  
 अथ पश्चाद् उदीयन्ते, कर्माणि अज्ञानफलानि कृतानि ।  
 एवम् आश्वासय आत्मानं, ज्ञात्वा कर्मविपाककम् ॥ ४१ ॥

टीका—'से य नूणं' इत्यादि, 'अहपच्छा' इत्यादि ।

अथ च नूनं=निश्चयेन, मया पूर्वं=पूर्वकाले-पूर्वभवे इत्यर्थः, अज्ञानफलानि=अज्ञानोत्पादकानि, कर्माणि=ज्ञानावरणीयकर्माणि, कृतानि=धर्माचार्यगुरुश्रुतज्ञान-निन्दाध्ययनबाधादिभिरुपाजितानि । उक्तञ्च—

मिलती है कि सुधर्मशील मुनि की तरह प्रत्येक मुनि को सत्कारपुरस्कार परीषह सहन करते रहना चाहिये ॥ ३९ ॥

अब बीसवाँ प्रज्ञापरीषहको सूत्रकार बतलाते हैं—

'से य नूणं' इत्यादि । 'अह पच्छा' इत्यादि ।

अन्वयार्थ—प्रज्ञापरीषहको जीतनेके लिये साधु विचार करे कि (नूणं-नूनम्) निश्चयसे (मए-मया) मैंने (पुंठ्वं-पूर्वम्) पूर्व-भवमें (अण्णाणफला कम्मा कडा-अज्ञानफलानि कर्माणि कृतानि) धर्माचार्य गुरु महाराज और श्रुतज्ञान की निंदा करने से तथा किसी के ध्यान अध्ययन में विघ्न डालनेसे अज्ञानोत्पादक ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का उपार्जन किया है ।

शकाय छे डे, सुधर्मशील मुनिनी जेम प्रत्येक मुनिजे सत्कारपुरस्कारपरीषह सहन करता रहेवुं जेधजे. ॥ ३९ ॥

डेवे वीसमा प्रज्ञापरीषहने सूत्रकार बतावे छे—

'से य नूणं' इत्यादि. 'अह पच्छा' इत्यादि.

अन्वयार्थ—प्रज्ञापरीषहने जतवा माटे साधु विचार करे डे, नूणं-नूनं निश्चयथी मए-मया मे पुंठ्वं-पूर्वं पूर्वभवमां अण्णाणफला कम्मा कडा-अज्ञान-फलानि-कर्माणि कृतानि धर्माचार्य गुरुमहाराज अने श्रुतज्ञाननी निंदा करवाभां तथा डेधना ध्यान अध्ययनमां विघ्न नाभवतुं, आज्ञानोत्पादक ज्ञानावरणीय

नाणस्स नाणिणं चिय, निंदा पद्दोसमच्छरेहि य ।

उवघायणविग्घेहिं, नाणग्घं वज्झए कम्मं ॥ १ ॥ ”

छाया-ज्ञानस्य ज्ञानिनां चैव, निन्दाप्रद्वेषमत्सरैश्च ।

उपघातनविघ्नैः, ज्ञानघ्नं बध्यते कम् ॥ १ ॥

येन=यस्मात् कारणात्, केनचित्=जिज्ञासुना, कस्मिंश्चित्=जीवादितत्त्व-विषये, पृष्टोऽहं नाभिजानामि=अज्ञानवशात् प्रश्नस्योत्तरं कर्तुं न शक्नोमीत्यर्थः । पूर्वोपार्जित-ज्ञानावरणीय-कर्मोदयात् मया ज्ञानं न लभ्यते, अतः प्रश्नोत्तरं कर्तु-मसमर्थो भवामीति भावः । उक्तञ्च—

( जेण-येन ) जिसके कारण से ( केणइ-केनचित् ) किसी जिज्ञासु के द्वारा ( कणहुइ-कस्मिंश्चित् ) किसी भी जीवादिक तत्त्व के विषय में ( पुट्ठो-पृष्टः ) पूछे जाने पर ( अहं ) मैं ( नाभिजाणामि-नाभिजानामि ) कुछ भी नहीं जान सकता हूँ, अर्थात् अज्ञानवश उसके प्रश्न का कुछ भी उत्तर नहीं दे सकता हूँ । कहा भी है—

“नाणस्स नाणिणं चिय, निंदा पद्दोसमच्छरेहिं य ।

उवघायण विग्घेहिं, नाणग्घं वज्झए कम्मं ॥ १ ॥ ”

ज्ञान एवं ज्ञानियों की निंदा करने से, उनमें द्वेषबुद्धि रखने से, उनके साथ मत्सरभाव रखने से, उनका उपघात करने से अथवा ज्ञान के साधनों में अथवा ज्ञानियों के ज्ञानोपार्जन में विघ्न करने से जीव ज्ञाननाशक कर्म का बंध करता है ।

आदि कर्मोनुं उपार्जन करेले छे जेण-येन येना कारणुथी केणइ-केनचित् केअं एज्जासु द्वारा कणहुइ-कस्मिंश्चित् केअं पणु एवादिक् तत्त्वना विषयमां पुट्ठो-पृष्टः पुछवामां आववाथी अहं हुं नाभिजाणामि-नाभिजानामि कांअं पणु जणुतो नथी अर्थात् अज्ञानवश येमना प्रश्नो कांअं पणु उत्तर आपी शक्ते नथी कहुं पणु छे के—

“नाणस्स नाणिणं चिय, निंदा पद्दोसमच्छरेहिं य ।

उवघायण विग्घेहिं, नाणग्घं वज्झए कम्मं ॥ ”

ज्ञान अने ज्ञानीयोनी निंदा करवाथी, येमनामां द्वेषबुद्धि राअवाथी, येनी साथे मत्सरभाव राअवाथी, येनो उपघात करवाथी अथवा ज्ञानना साध-नोमां अथवा ज्ञानीयोना ज्ञानोपार्जनमां विघ्न करवाथी एव ज्ञाननाशक कर्मोना अंध करे छे ।

“सुहासुहाणि कम्माणि, सयं कुव्वंति देहिणो ।  
सयमेवोवभुंजंति, दुहाणि य सुहाणि य ॥ १ ॥”

छाया—शुभाशुभानि कर्माणि, स्वयं कुर्वन्ति देहिनः ।  
स्वयमेवोपभुञ्जते, दुःखानि च सुखानि च ॥ १ ॥ ४० ॥

भावार्थ—साधु के ऊपर सब ही का विश्वास होता है। प्रत्येक व्यक्ति उनसे अपनी२ जिज्ञासाका समाधान जानने का अभिलाषी तथा उत्सुक रहता है, इस परिस्थिति में यदि कोई जिज्ञासु पुरुष मुनि के पास आकर जीवादितत्वविषयक अपनी शंका की निवृत्ति करना चाहे और वह साधु से इस विषय में प्रश्न करे, और मुनि उसका उत्तर नहीं दे सके तो उस मुनि को चाहिये कि अपनी आत्मा में संक्लिष्ट परिणाम न करे, किन्तु समभाव से इस प्रकार सोचे कि मेरे ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का कितना तीव्र उदय है जो ज्ञान के साधन होने पर भी मुझे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है। बुद्धि में इस प्रकार की मंदता का कारण मेरे-पूर्व में गुर्वादिक की निंदा आदि से उपार्जित ज्ञानावरणीयादिक कर्म ही हैं। इस में किसी का दोष नहीं है। जैसे कहा भी है—

“सुहासुहाणि कम्माणि, सयं कुव्वंति देहिणो ॥  
सयमेवोवभुंजंति, दुहाणि य सुहाणि य ॥ १ ॥”

देही-आत्मा-शुभ और अशुभ कर्मों को स्वयं उपार्जित करता है और उनके फल सुख दुःखादिक को स्वयं ही भोगता है ॥ ४० ॥

भावार्थ—साधुना उपर दरेकने विश्वास होय छे, प्रत्येक व्यक्ति पोत-पोतानी ज्ञासातुं समाधान ऐमनी पासेथी भेजववाना अभिलाषी तथा उत्सुक रहे छे. आ परिस्थितिमां जे कोछे ज्ञासु पुरुष मुनिनी पासे आवी ज्वाहितत्व विषयक पोतानी शंकातुं निवारण करवा छिछे अने ते साधुने आ विषयमां प्रश्न करे अने मुनि ऐने उत्तर न आपी शके तो ऐ मुनिपोताना आत्मामां शंकाशिल वृत्ति न जगवा हे परंतु समभावथी ऐवुं विचारे के, भारा ज्ञानावरणीयादिक कर्मोने डेटदो तीव्र उदय छे के जे ज्ञानना साधन होवा छतां पण अने ज्ञाननी प्राप्ति थछे शकी नथी. बुद्धिमां आ प्रकारनी मंदतातुं कारण मे-पूर्ववमां गुरु आदिनी निंदा वगेरेथी उपार्जित करैल ज्ञानावरणीयादिक कर्मज छे. ऐमां कोछेने दोष नथी. जेम कहुं पण छे—

“सुहासुहाणि कम्माणि, सयं कुव्वंति देहिणो ।  
सयमेवोवभुंजंति, दुहाणि य सुहाणि य ॥ १ ॥”

आत्मा शुभ अने अशुभ कर्मोने स्वयं उपार्जित करे छे, अने ऐना स्वयं सुख दुःखादिकने स्वयं भोगवे छे. ॥ ४० ॥

‘अह पच्छा’ इति ।

अथ अज्ञानफलानि=अज्ञानोत्पादकानि कर्माणि कृतानि तानि पश्चात्-अबाधोत्तरकालम्, ‘उदीयन्ते’=अज्ञानरूपेण अलर्क-मूषिकविषविकारवद् उदितानि भवन्ति, एवम्=अमृता प्रकारेण कर्मविपाककं=कर्मणः फलं, ज्ञात्वा हे शिष्य ! आत्मानम् आश्वासय=स्वस्थीकुरु, ‘स्वयं कृतानामेव ज्ञानावरणीयकर्मणां कुत्सितं फलमेतत्, यदहं न जानामि-प्रश्नोत्तरमिति विज्ञाय स्वस्थो भव, न तु तन्निमित्तकं विषादं कुरु इत्यर्थः । ‘कम्मा’ इति बहुवचनं कर्मबन्धहेतूनां बहुत्वात् ।

अन्वयार्थ—(कडाऽनाणफला कम्मा-कृतानि अज्ञानफलानि कर्माणि) गुर्वादिर्कोकी निंदा आदिसे पूर्वभवमें उपार्जित तथा ज्ञानमें अंतराय डालने वाले-ज्ञान के निरोधक-ऐसे ज्ञानावरणीयादिक कर्म अपने अबाधाकाल के बाद (उद्दज्जन्ति-उदीयन्ते) पागल कुत्ते अथवा पागल चूहेके विष के विकार की तरह अज्ञानरूप से उदय में आते हैं। (एवं कम्मविवागयं-एवं कर्मविपाककम्) इस प्रकार कर्म के फल को (नच्चा-ज्ञात्वा) जानकर हे शिष्य ! (अप्पाणं आसासि-आत्मानं आश्वासय) तुम अपनी आत्मा को कुछ नहीं आने पर-दूसरों के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकने पर धैर्य बधाओ-इस निमित्त को लेकर विषाद मत करो।

भावार्थ—प्रज्ञापरीषह को जीतने के लिये सूत्रकार साधुओं के लिये शिक्षा देते हैं कि जो जैसा करता है उसे फल भी वैसा ही मिलता है। बबूल का झाड़ बोने पर कोई उससे आम्रफल प्राप्ति की आशा करे तो व्यर्थ है। इसी प्रकार पूर्वभव में जिस जीव ने जिन २

अन्वयार्थ—कडाऽनाणफला कम्मा-कृतानि अज्ञानफलानि कर्माणि पूर्वभवमां गुरुआदिनी निंदार्थी उपाश्रित तथा ज्ञानमां अंतराय नाभवाइय-ज्ञानना निरोधक-अथवा ज्ञानावरणीयादिक कर्म पोताना वितेला काण पथी उद्दज्जन्ति-उदीयन्ते उडकाया कुतराना अथवा वडरेला उंदरना विषना विकारनी भाइक अज्ञान इपथी उदयमां आवे छे. एवं कम्मविवागयं-एवं कर्मविपाककम् आ प्रकारे कर्मना इणने नच्चा-ज्ञात्वा नाणी छे शिष्य ! अप्पाणं आसासि-आत्मानं आश्वासय तमे पोताना आत्मांमां कांथं न आववाथी पीलना प्रश्नोने उत्तर आपी शकता नथी अे. नाणीने आ अधाना निमित्तने लथं विषाद न करे।

भावार्थ—प्रज्ञापरीषहने श्रुतवा भाटे सूत्रकार साधुओ भाटे शिक्षा इपथी कडे छे के, ने नेवुं करे छे, तेने तेवुं इण भणे छे. कांथ आवणनुं आउ वावीने तेमांथी आंभाना इणनी आशा राणे तो ते व्यर्थ छे.



इदं गाथायुगमं प्रज्ञाया अपकर्षमाश्रित्य व्याख्यातम् । इदमुपलक्षणं - यदि ज्ञानावरणीयकर्मणां क्षयोपशमात् प्रज्ञाया उत्कर्षः स्यात् तदा तन्निमित्तकं मदं न कुर्यादित्यपि बोध्यमिति । उक्तं हि ।

कारणों द्वारा जिन २ कर्मों का बन्ध किया है वे वे कर्म अबाधाकाल के बाद उस जीव के उदय आते रहते हैं । जब हे आत्मन् ! गुर्वादिक की निंदा करने से, शास्त्रों का अवर्णवाद बोलने से, उपघात से अर्थात् ज्ञानादिक के साधनों का नाश करने से, ज्ञान की अन्तराय देने से तूने तीव्र ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का बंध किया है, तो उनका फल भी तुझे वैसा ही भोगना पड़ेगा । इसमें कोई के हाथ की बात नहीं है । जिन ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का तूने बंध किया है वे उन उन रूप में ही उदय आवेंगे । अतः यदि तेरे से कोई जीवादिक तत्त्वों के विषय में कुछ पूछता है और तुझे उस विषय का कोई उत्तर ज्ञान में नहीं झलकता है इससे तू आत्मा में हीनता की भावना मत कर, और न खेद ही कर, किन्तु अपने आत्मा को धैर्य बंधा और इस प्रकार समझा कि यह तेरे ही किये हुए कर्म हैं अतः तुझे ही भोगना पड़ेगा । फिर इसमें हर्षविषाद करने की जरूरत क्या है ? । इस प्रकार इस परिणति से आत्मा प्रज्ञापरीषद् को बहुत अच्छी तरह सहन कर सकता है ।

आ प्रकारे पूर्वभवमां न्ने लुवे न्ने न्ने कारणे द्वारा न्ने न्ने कर्मोनां बंध कर्ते  
 होय ते ते कर्म अबाधाकाणनी भाद ते ते लुवने उदयमां आवे छे. आधी  
 छे आत्मन् ! गुरु आदिनी निंदा करवाधी, शास्त्रोनां अवर्णुवाद भोलवाधी, उप-  
 घातधी अर्थात् ज्ञानादिकनां साधनोनां नाश करवाधी ज्ञानमां अंतराय नाप्नवाधी,  
 ते तीव्र ज्ञानावरणीयादिक कर्मोनां बंध कर्ते छे तो तेनुं इण पणु तारे तेवुं  
 लोगववुं पडशे. तेमां कोधना हाथनी वात नथी. न्ने ज्ञानावरणीय कर्मोनां ते  
 बंध कर्ते छे, ते तेवा तेवा रूपमां उदयमां आवशे. आधी न्ने तने कोध लुवा-  
 दिक तत्त्वोना विषयमां कांथ पुछे छे तो तने अे विषयनो कोध ज्ञानलयी उत्तर  
 नउतो नथी तो तेनाधी तुं पोताना आत्मां हीनतानी भावना अने जेह  
 करीश नही. परंतु पोताना आत्मां धैर्य राण अने अे प्रकारे समभव के,  
 आ तारां करेलां कर्म छे. अेधी अे तारे न्ने लोगववां पडशे. पछी आमां  
 हर्ष विषाद करवानी नउर न्ने शुं छे ? आ प्रकारे आ परिणुतीधी आत्मा प्रज्ञा  
 परीषदने पूअण सारी रीते सडन करी शके छे. गाथां “कम्मा” अे अहु-

पूर्वपुरुषसिंहानां, विज्ञानातिशयसागरानन्त्यम् ।

श्रुत्वा साम्प्रतपुरुषाः, कथं स्वबुद्ध्या मदं यान्ति ॥ १ ॥

यद्वा—इह तन्त्रेणार्थद्वयसंभवः अनेकार्थबोधनेच्छातः सकृदुच्चारणं तन्त्रम् ।  
अथ च—तन्त्रन्यायेनार्थद्वयस्य युगपत्संभवः—तन्त्रं च दैर्घ्यप्रसारितास्तन्त्रवः, ततो  
यथा—दैर्घ्यप्रसारितमेकं सूत्रमनेकस्य तिरश्चीनस्य तन्तोः=संग्राहि, तथा—यदेकया

गाथा में “ कम्मा ” यह जो बहुवचनान्त शब्द का प्रयोग किया गया है वह कर्मों के बंध के हेतु अनेक हैं, इस आशय को प्रगट करने के लिये किया है । चालीस और इकतालीसवी गाथा का जो इस प्रकार विवेचन किया गया है वह बुद्धि की मन्दता को लक्ष्य में लेकर किया है । यदि ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से प्रज्ञा का उत्कर्ष आत्मा में हो तो उस समय साधु को इस प्रज्ञानिमित्तक मद-अहंकार नहीं करना चाहिये । यह बात भी उपलक्षण से समझ लेनी चाहिये । कहा भी है—

पूर्वपुरुषसिंहानां, विज्ञानातिशयसागरानन्त्यम् ।

श्रुत्वा साम्प्रतपुरुषाः, कथं स्वबुद्ध्या मदं यान्ति ॥ १ ॥

पहिले के श्रेष्ठ पुरुषों के असाधारण विज्ञान की बातों को सुनकर ऐसा कौन पुरुष होगा जो अपने ज्ञान का मद-अहंकार करेगा । इस-लिये बुद्धि की प्रकर्षता का भी मद नहीं करना चाहिये । तन्त्र न्याय से प्रज्ञा के उत्कर्ष अपकर्षरूप दोनों अर्थ भी युगपत् विवक्षित हो सकते हैं । जैसे एक लंबा फैला हुआ डोरा तिरछे फैले हुए अनेक

वचनात्मक शब्दोंना प्रयोग करेले छे ते कर्मना अंधना हेतु अनेक छे तेवो आशय अताववा भाटे न करेले छे. याणीस अने ऐकताणीसभी गाथाभां ले आ प्रकारे विवेचन करेले छे ते बुद्धिनी मंदताने लक्षभां लधने करेले छे. जे कदी ज्ञाना-वरणीय कर्मोना क्षयोपशमथी प्रज्ञानो उत्कर्ष आत्माभां होय तो ते समये साधुये आ प्रज्ञा निमित्तक मद अहंकार न करवो लेधये. आ बात पण उपल-क्षणथी समल लेवी लेधये. कहुं पण छे—

पूर्वपुरुषसिंहानां, विज्ञानातिशयसागरानन्त्यम् ।

श्रुत्वा साम्प्रतपुरुषाः, कथं स्वबुद्ध्या मदं यान्ति ॥ १ ॥

पहिलां श्रेष्ठ पुरुषोनी असाधारण विज्ञाननी बातो सांख्यीने जेवो कथो पुरुष हसे के जे योताना ज्ञाननो मद अहंकार करसे ? आथी बुद्धिनी प्रकर्ष-तानो पण मद न करवो लेधये.

तंत्र न्यायथी प्रज्ञानो उत्कर्ष अपकर्षरूप अने अर्थ पण युगपत् विव-क्षित अनी शके छे. जेभ अेक लांगो इलायेलो दोरो आडा अवणा इलायेला

गाथया अनेकार्थस्याभिधानं स तन्त्रन्यायः, तद्विवक्षया प्रज्ञाया उत्कर्षमाश्रित्यापि भगवता गाथाद्वयं कथितम्। उपलक्षणत्वे तु तात्पर्यग्राहकतया प्रमाणान्तरं श्रुतमपेक्षणीयं स्यात्, अतस्तन्त्राश्रयणादिह व्याख्याद्वयं क्रियते। तत्र प्रज्ञाया उत्कर्षपक्षे एवं गाथाद्वयं व्याख्यायते—

प्रज्ञोत्कर्षवता एवं चिन्तनीयम्—अथ नूनं मया पूर्वं कर्माणि=ज्ञानप्रशंसा-ज्ञानिवैयावृत्त्यादिरूपाण्यनुष्ठानानि, ज्ञानफलानि = ज्ञानमिह विमर्शपूर्वको बोधस्तत्फलकानि, कृतानि, येन हेतुना-केनापि=अविश्रितविशेषणसर्वेणापीत्यर्थः, कस्मिंश्चित्=यत्र कुत्रापि वस्तुनि विषये पृष्टः अहं, ना=मनुष्यः, विशिष्टमनुष्यत्वमनुभवन् अभिजानामि।

तन्तुओं का वस्त्रादिक में संग्राहक होता है उसी प्रकार एक गाथा द्वारा युगपत् अनेक अर्थों का भी संग्रह होता है, यही तन्त्र न्याय है। इस विवक्षा से इन दोनों गाथाओं द्वारा प्रज्ञा का उत्कर्ष लेकर भी प्रज्ञापरीषह का कथन हो सकता है। इसी अभिप्राय से सूत्रकार ने ये दोनों गाथाएँ कही हैं। बुद्धि की प्रकर्षता को लेकर व्याख्यानइस प्रकार है—

मैंने पूर्वभव में ज्ञानप्रशंसा, ज्ञानियों की वैयावृत्त्य आदिरूप शुभ कर्म किये हैं इसलिये इनका फल मुझे विमर्शपूर्वक बोधरूप में मिला है। इसलिये इस के प्रभाव से मैं जब कोई मुझ से किसी भी विषय की अपनी जिज्ञासा समाधान करने के रूप में उपस्थित करता है उसकी उस जिज्ञासा का यथोचित समाधान कर देता हूँ, इससे उस पूछने वाले को सन्तोष हो जाता है। इसलिये सूत्रकार इकतालीसवीं गाथा द्वारा ऐसे श्रुतशाली-साधु को यह समझाते हैं कि हे साधो!

अनेक ताष्ठावाष्ठांने वस्त्ररूपमां ईरवनार अने छे, ते प्रकारे अेक गाथा द्वारा युगपत् अनेक अर्थोना पष्णु संअड थाय छे आ तत्र न्याय छे आ विवक्षाथी आ अन्ने गाथाओ द्वारा प्रज्ञानो उत्कर्ष लधने पष्णु प्रज्ञापरीषडनुं कथन अनी शके छे, आ अलिप्रायथी लगवान सूत्रकारे आ अन्ने गाथाओ कडी छे. बुद्धिनी प्रकर्षता अतावनार व्याख्यान आ प्रकारनुं छे.

में पूर्वभवमां ज्ञान प्रशंसा, ज्ञानिओनी वैयावृत्ति आदि रूप शुभ कर्म करैल छे. अेतुं इण मने विमर्शपूर्वक बोधरूपमां भणैल छे. आ कारणे अेना प्रलावथी न्यारे कोरि भारी पासे कोरि पष्णु विषयनी पोतानी अज्ञासा समाधान करवाना रूपमां उपस्थित करे छे त्यारे हुं अे अज्ञासानुं यथोचित समाधान करी दडि छुं. आथी अे पूछवावाणाने सन्तोष थाय छे, आ भाटे सूत्रकार अेकतालीसमी गाथाद्वारा अेवा श्रुतशाली-साधुने अेम समजवे छे के, हे साधो!

तत्र-श्रुतमदो न कर्तव्य इति बोधयितुमाह-‘ अह पच्छा ’ इत्यादि । अथ= उत्कर्षभावानन्तरम्, एवं विभावनीयम्-मया पूर्वभवे कृतानि ज्ञानफलानि कर्माणि पश्चात्=अबाधोत्तरकालम्, इदानीम्, उदीयन्ते-उदितानि भवन्ति, एवं कर्म-विपाककं ज्ञात्वाऽऽत्मानम् आश्वासय-आत्मनि शान्तिं स्थापय, न तु तन्निमित्तकं मदं कुरु । अयं भावः-श्रुतमदो हि ज्ञानावरणीयकर्मणः कारणम्, तच्चावश्यवेद्यम्, तदुदये च कुतो ज्ञानम्, तस्माच्छ्रुतमदो न कर्तव्यः ।

यतः-“ नाणं मयदप्पहरं, मज्जइ जो तेण तस्स को वेज्जो ।

अमियं जस्स विसायइ, तस्स तिगिच्छा कहं किज्जइ ” ॥ १ ॥

छाया--ज्ञानं मददर्पहरं, माद्यति यस्तेन तस्य को वैद्यः ।

अमृतं यस्य विषायते, तस्य चिकित्सा कथं क्रियते ॥ १ ॥

इत्येवं चिन्तनेन शान्तिं प्राप्नुहीति ।

वस्तुतस्तु-गाथाद्वयमिदं युग्मकम् । ‘ से ’ अथ नूनं=निश्चयेन मया पूर्व=पूर्व भवे-अज्ञानफलानि कर्माणि कृतानि येन कारणेनाहं केनापि जिज्ञासुना कस्मिंश्चित् जीवाजीवादिस्वरूपविषये पृष्टः सन् नाभिजानामि=मन्दबुद्धित्वाज्जी-

तुमने यदि पूर्वभव में ज्ञान के साधनों का अनुष्ठान करके यदि इस भव में दूसरों की अपेक्षा कुछ विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया है, तो तुम इस ज्ञानरूप श्रुत का मद मत करो, किन्तु अपनी आत्मा में शान्ति-भाव से रहो-आत्मा को समझाते रहो कि कहीं ऐसा न हो जाय कि मद करने से आत्मा ज्ञानावरणीय आदि कर्म का बन्ध करले । इस कर्म के बंध में जब इसका उदय अपनी अबाधाकाल के बाद में आता है तो जीव यथार्थ ज्ञान से रहित हो जाता है, इसलिये हे शिष्य तू श्रुत का मद मतकर । तात्पर्य इन दोनों गाथाओं का यह है कि जिस समय आत्मा में प्रज्ञा की हीनता हो तो मुनि को ऐसा

तमे कदाच पूर्वभवमां ज्ञानना साधनानुं अनुष्ठान करी जे आ बावमां धीजानी अपेक्षाये कांठ विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करेले छे तो तमे ये ज्ञानरूप श्रुतनो मद न करे। यथु तमारा आत्मामां शांतिभावथी रहे। आत्माने समभवता रहे। के कथांय जेवुं न अनी जय के, मद करवाथी आत्मा ज्ञानावरणीय आदि कर्मोतुं अंधन करी ले। ये कर्मना अंधमां न्यारे जेनो उदय पोतानी अबाधाकाजनी पछी आवे छे त्यारे लव यथार्थ ज्ञानथी रहित थई जय छे। आ माटे छे शिष्य ! तुं श्रुतनो मद न कर। आ अन्ने गाथानुं तात्पर्य जे छे के, जे समये आत्मामां प्रज्ञानी छिनता छे। त्यारे मुनिजे जेवो विचार न करवो जेई जे

वादिस्वरूपं निरूपयितुं न समर्थोऽस्मि । एवम्=अमुना प्रकारेण कर्मविपाकं-पूर्वो-  
पार्जित-ज्ञानावरणीयकर्मफलं ज्ञात्वा आत्मानम् आश्वासयेत्युत्तरगाथया सम्बन्धः  
अयमर्थः-हे शिष्य ! बुद्धिमान्धविषये विषादमकृत्वा, तपः संयमाराधने प्रवृत्तो भव ।  
तपःसंयमाराधनेन हि केवलज्ञानप्राप्तिरपि भवितुमर्हतीति सोत्साहं तत्समाराधने  
तत्परो भवेति भावः ।

अथ-प्रज्ञाप्रकर्षे पश्चात्-कदाचित्तथाविधज्ञानावरणीयक्षयोपशमानन्तरं ' कम्मा-  
णाणफला ' इत्यस्य कर्माणि ज्ञानफलानि इति च्छाया तत्र - ज्ञानफलानि-  
जीवाजीवादिस्वरूपनिर्णयजनकानि कर्माणि कृतानि=पूर्वभवोपार्जितानि उदीयन्ते  
तदा एवम्=अमुना प्रकारेण कर्मविपाकं ज्ञानावरणीयक्षयोपशमजन्यं प्रज्ञाप्रकर्षरूपं  
कर्मफलं ज्ञात्वा हे शिष्य ! आत्मानम् आश्वासय=ज्ञानमदं परित्यज्य स्वस्थीकुरु ।  
पूर्वकृतशुभकर्मणा मम ज्ञानावरणीयकर्मणः क्षयोपशमो जातस्तेन सूक्ष्म-सूक्ष्मतर-  
सूक्ष्मतममपि जीवादिस्वरूपं सम्यग् जानामि, तथा केनापि पृष्टः सन् तस्मै  
सम्यगवबोधयितुं समर्थोऽस्मीति विचारणया प्रज्ञामदं परिहरेत्यर्थः ।

विचार नहीं करना चाहिये कि मैं कुछ नहीं जानता हूँ-मूर्ख हूँ जहाँ  
तहाँ मेरा पराभव होता है । इस विचार से आत्मा में परिताप होता  
है, इस प्रकार विचार नहीं करना यह प्रज्ञापरीषद् है । अथवा  
श्रुतज्ञान की विशिष्टता आत्मा में होने पर उस समय उस मुनि को  
उसका मद नहीं करना चाहिये कि-मैं विशिष्टज्ञानसंपन्न हूँ, प्रत्येक  
व्यक्ति मेरे पास अपनी २ जिज्ञासा का समाधान करने के लिये आते  
हैं । प्रत्येक आत्मा को मुझ से कितना लाभ होता रहता है । इस  
प्रकार का मद नहीं करना चाहिये । प्रज्ञा का मद करना इस लिये  
निषिद्ध है कि यह जो ज्ञान प्राप्त हुआ है वह ज्ञानावरणीयकर्म के  
क्षयोपशम से प्राप्त हुआ है । इसका मैं क्यों मद करूँ । इस प्रकार

के, हुं कांछि न्नुत्तो नथी, भूर्ण छुं, न्यां त्यां भारो परालव थाय छे. आ  
विचारथी आत्माभां परिताप थाय छे भाटे आ प्रकारनो विचार न करवो ते  
प्रज्ञापरीषद् छे. अथवा श्रुतज्ञाननी विशिष्टता आत्माभां थवार्थी ते समये ते  
मुनिअे तेनो भद न करवो न्नेधअे के हुं, विशिष्ट ज्ञान संपन्न छुं. प्रत्येक  
व्यक्ति भारी पासे पोतपोतानी ज्ञासानुं समाधान करवा आवे छे. प्रत्येक  
आत्माने भाराथी केटवो लाल थाय छे? आ प्रकारनो भद न करवो न्नेधअे.  
प्रज्ञानो भद करवानो आ भाटे निषेध छे के, जे ज्ञान प्राप्त थयुं छे ते ज्ञाना-  
वरणीय कर्मना क्षयोपशमथी प्राप्त थयेल छे. आनो हुं कर्छी रीते भद करी



अस्य गाथाद्वयस्यायं निष्कर्षः—प्रज्ञाया अपकर्षे 'नाहं किञ्चिज्जानामि, मूर्खोऽस्मि, यत्र तत्र पराजितो भवामि' इत्येवं परितापो न कर्तव्यः उत्कर्षे श्रुत-मदो न कर्तव्यः । किन्तु कर्मविपाकोऽयमिति ज्ञात्वाऽऽत्मनः स्थिरीकरणेन द्विवि-धोऽपि प्रज्ञापरीषहः सोढव्यः ।

अत्र प्रज्ञापकर्षे दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

पुष्पदन्ताचार्यः शिष्यपरिवारेण सह चम्पानगर्यां समवसतः । तेषु शिष्येषु भद्रमतिनामकः शिष्योऽतीवमन्दमतिरासीत् । स आवश्यकसमाप्त्यनन्तरं दश-वैकालिकसूत्राभ्यासार्थं प्रवृत्तः, परन्तु तदा तस्य प्रबलज्ञानावरणीयान्तरायकर्मो-दयो जातस्ते नैकमप्यक्षरं न स्मरति, ततोऽसौ चिन्तयति—अहमस्मि पूर्वधराचार्यस्य शिष्यः, आचार्यो वात्सल्येन मामध्यापयति, अन्ये मुनयश्चापि प्रेम्णा मामक्षरं

आत्मा को अपने स्वभाव में स्थिर करते हुए प्रज्ञा के प्रकर्ष को सहन करना यह भी प्रज्ञापरीषह है । इस तरह प्रज्ञा के उत्कर्ष और अप-कर्ष के भेद से यह परीषह दो प्रकार का हो जाता है । यह दोनों प्रकार का परीषह सहन करना मुनि के लिये आवश्यक है ।

प्रज्ञा के अपकर्ष में दृष्टान्त—किसी समय पुष्पदन्ताचार्य शिष्य-परिवार के साथ चंपानगरी में आये । इनकी इस शिष्यमंडली में भद्रमति नाम का एक शिष्य अतीव मंदमति था । एक दिन की बात है कि उसने आवश्यक की समाप्ति के बाद दशवैकालिकसूत्र का अभ्यास करना प्रारंभ किया । परन्तु उस समय उसके प्रबल ज्ञाना-वरणीयकर्म का उदय होने से एक भी अक्षर उसको याद नहीं होता । इसने विचार किया कि पूर्वधर आचार्य का मैं शिष्य हूँ वात्सल्यभाव

शकुं ? आ प्रकारे आत्माने पोताना स्वभावमां स्थिर करीने प्रज्ञाने प्रकर्षं सहन करवा ते पणु प्रज्ञापरीषहं छे, आवी रीते प्रज्ञाने उत्कर्षं अने अप-कर्षांना लेहथी आ परीषहं छे प्रकारे अने छे. आ अन्ने प्रकारेना परीषहं सहन करवा मुनिने माटे आवश्यक छे. प्रज्ञाना अपकर्षं तुं दृष्टांत—

कैाँ एक सभये पुष्पदन्ताचार्य शिष्यपरिवार साथे चंपानगरीमां आव्या. आ शिष्य मंडलीमां भद्रमति नामनेा एक शिष्य धरुा मंदमती हुतो. एक द्विवसनी वात छे कै, तेरु आवश्यकनी समाप्ति आह दशवैकालिक सूत्रेना अभ्यास करवाे शइ करीा. परंतु ते सभये तेने प्रणण ज्ञानावरणीय कर्मनेा उदय थवाथी एक पणु अक्षर याह रडेतो नहीं. तेरु विचार करीा कै, हुं पूर्वधर आचा-र्यनेा शिष्य छुं, वात्सल्यभावथी तेओ मने शास्त्राध्ययन करावे छे. थीण मुनिओ



बोधयति, तथापि मम तत् स्मृतिपथं नायाति, अत्र कश्चित् मुनिः सकृदेव श्रुत्वा धारयति, कश्चिद् द्विवारं, कश्चित् त्रिवारम् ।

केनचित्-शतं शतं गाथा प्रत्यहमभ्यस्ताः, केनचित् द्वे द्वे शते । कश्चिदेक-पूर्वधरः, कश्चिद् द्विपूर्वधरो यावच्चतुर्दशपूर्वधरः संजातः, परन्तु महानिष्ठुरोऽतीव निर्बुद्धिरहमस्मि, शतशोऽभ्यासे कृतेऽपि धारणा न भवति । मम पूर्वजन्मोपार्जितं ज्ञानावरणीयं कर्म, तथा ज्ञानान्तरायरूपं कर्म तीव्रतया संप्रत्युदयावस्थां प्राप्तम्,

से वे मुझे पढाते हैं, अन्य मुनि भी मुझ पर विशेष अनुग्रह रखते हैं, वे भी समय २ पर मुझे बचवाते हैं-तौ भी मुझ को याद नहीं होता । हमारे में कोई तो मुनिराज ऐसे हैं जो एक बार भी सुनकर याद कर लेते हैं, कोई २ ऐसे हैं जिन्हें दो बार कहने से याद हो जाता है । कोई २ ऐसे हैं जो तीन बार सुनकर विषय को अच्छी तरह याद कर-लेते हैं । कितने ऐसे हैं जो एक ही दिन में सौ-सौ १००-१०० गाथाएँ याद कर लेते हैं । कोई २ ऐसे हैं जो दो सौ २००-दो सौ २०० गाथाएँ तक कंठस्थ कर लेते हैं । कोई एक पूर्वधर हैं । कोई दो पूर्वधर है । कोई तीन, कोई चार, कोई पांच, कोई छह, कोई सात और कोई आठ आदि से लेकर चौदह पूर्वतक के पाठी हैं, किन्तु इन सब में एक मैं ही ऐसा मन्दबुद्धि हूँ जिसको कुछ नहीं आता है । बुद्धिहीन बना हुआ हूँ । सौ बार याद करने पर भी धारणा होती ही नहीं है । क्या करूँ पूर्वोपार्जित ज्ञानावरणीयकर्म का ही इस समय तीव्र उदय

पशु मारा उपर विशेष लाव राणे छे अने समय समय उपर तेज्यो भने अतावे छे, तो पशु भने याद रहेतुं नथी. अमारामां डेटलाक मुनिराज अेवा छे के, तेज्यो अेकवार सांलणीने तेने कंठस्थ करी ले छे, कोर् कोर् अेवा छे के, तेभने जे वअत कडेवाथी याद थर् जय छे, कोर् कोर् त्रषु वार सांल-ज्याथी विषयने सारी रीते याद करी ले छे. डेटलाक अेवा पशु छे के जे अेक जे द्विवसमां १००-१०० (सो-सो) गाथाज्यो याद करी ले छे. कोर् कोर् २००-२०० (असो-असो) गाथाज्यो कंठस्थ करी ले छे. कोर् कोर् पूर्वधर छे, कोर् जे पूर्वधर छे, कोर् त्रषु, कोर् चार, कोर् पांच, कोर् छ, कोर् सात, कोर् आठ आदिथी लधने चौद पूर्व सुधीना पाठी छे आ अथा वर्ये हुं अेकज अेवा भंडबुद्धिने छुं के भने कांर् पशु आवडतुं नथी. हुं बुद्धिहिन अनेलो छुं सो वअत याद करवा छताये अडषु करी शकतो नथी. शुं कइं? पूर्वोपाजित ज्ञाना-वरणीय कर्मज आ समये तीव्र उदयमां आवेदी छे. अेनो ज आ प्रताप छे.

उ० ६४

तस्मान्मया प्रज्ञाया असद्भावरूपोऽयं परीषहः सोढव्यः, न तु कस्मिंश्चित् ईर्ष्या द्वेषो वा करणीयः, एवं विचिन्त्य प्रत्यहं पठति, पुनः पुनरभ्यस्यति च, परं तु धारणा न भवति, 'धम्मो मंगलमुक्किट्ठ' इति गाथा द्वादशवर्षाणि अभ्यस्ता, परं तु तस्या एकस्या अपि गाथायाः स्मृतिस्तस्य नाभूत्, अभ्यासकाले धारितेव सा तस्य भवति, परं त्वल्पकाल एव पुनस्तां विस्मरति । तदाऽसौ पुनरभ्यवस्यति-पुनरपि द्वादशवर्षाणि कालमभ्यासार्थं यापयिष्यामि, येन केनापि प्रकारेण गाथा-मेतां कण्ठस्थीकरिष्याम्येव । इत्येवं निश्चित्य प्रज्ञापकर्षपरीषहं सहमानः शुभा-ध्यवसायेन प्रशस्तध्यानेन क्षपकश्रेणिमारुह्य स भद्रमुनिः केवलज्ञानं प्राप्तवान् ।

हो रहा है, उन्हीं का यह काम है, अतः प्रज्ञा का असद्भावरूप यह परीषह मुझे शांति के साथ सहन करना चाहिये, इसी में मेरा कल्याण है, किसी के साथ ईर्ष्या या द्वेष करने से कोई लाभ नहीं । इस प्रकार भद्रमति मुनि बार २ विचार करता और अपने पूर्वोपाजितकर्मों की निन्दा करता था, परन्तु उसने अपना पढ़ना और याद करना बंद नहीं किया । अकेले "धम्मो मंगलमुक्किट्ठ" इस गाथा को ही उसने लगा-तार बारह वर्षतक याद किया-रटा, पर तौ भी उस को यह गाथा याद नहीं हुई । जिस समय यह याद करने बैठता उस समय तो यह याद हो जाती पर ज्यों ही यह याद करना बंद कर देता अथवा क्रिया करने में उपयोग लगाता तो शीघ्र ही उस गाथा को भूल जाता था । यह फिर भी उसको याद करना और पढ़ना नहीं छोड़ता और विचार करता कि यदि यह गाथा इन बारह १२ वर्षों में कंठस्थ नहीं हुई तो अब आगे के १२ वर्षों में कंठस्थ हो जायेगी, क्या चिंता जैसे भी हो

आधी प्रज्ञानो आ असद्भावरूप परीषहु भारे शांतिथी सहन करवो जेधं अे. तेमां न भारं कट्याषु छे. केधनी सामे धर्षा अथवा द्वेष करवाथी केधं लाभ नथी. आ प्रकारे भद्रमति मुनि वारंवार विचार करता अने पोताना पूर्वो-पाळंत कर्मेनी निंदा करता. पण पोताना पठन-पाठन आदिने तेणु अंध न कर्यो. "धम्मो मङ्गलमुक्किट्ठ" अे अेक गाथाने अेकदां तेणु भार वर्ष सुधी याद करी गोण्युं छतां पणु तेने अे गाथा याद न थधं. जे समय ते याद करवा जेसता तो ते वण्ठते याद रही जती पणु अे पछी याद करवानुं अंध करी क्रियाभां शुथातां ते गाथा भूलार्ध जती. छतां पणु ते अेने याद करवानुं छोडता नही. अने विचार करता के, आ भारवर्षभां याद न थधं तो आवता भारवर्षभां जर याद थधं जशे. चिंता शा भारे करवी जेधंअे. जे रीते अनशे ते रीते पणु गाथाने

प्रज्ञाप्रकर्षे दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

एकदा—कालकाचार्यः प्रमादवतः स्वशिष्यानुज्जयिन्यां विहाय धारावासनगरे स्वशिष्यस्य सागरचन्द्रमुनेः समीपे समागतः । सागरचन्द्रस्तं सामान्यसाधुबुद्ध्या जानाति कालकाचार्योऽपि न किञ्चित् परिचयं ददाति ।

अथाऽन्यदा सागरचन्द्रमुनिनाऽऽगमनिर्णीततत्त्वस्वरूपव्याख्याने कृते सति लोकास्तं प्रशंसन्ति, तदा सागरचन्द्रमुनिः कालकाचार्यं प्रति प्राह—मद्व्याख्यानं सकेगा, इस गाथा को तो याद करके ही छोड़ने का भाव है । इस प्रकार निश्चय करके प्रज्ञापकर्षकरूप परीषद् को सहन करते हुए उस भद्रमुनि ने शुभाध्यवसायजन्य प्रशस्त ध्यान से क्षपकश्रेणी को अरोहण कर केवलज्ञान को प्राप्त किया ।

प्रज्ञा के प्रकर्ष में दृष्टान्त इस प्रकार है—एक समय कालकाचार्य प्रमादशील अपने शिष्योंको उज्जयिनी नगरीमें छोड़कर धारावासनगर में स्वशिष्य सागरचंद्रमुनि के पास आ गये । सागरचंद्रशिष्यने उनके साथ सामान्य साधुके जैसा ही व्यवहार किया, गुरु जैसा नहीं । कालकाचार्यने भी इस बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और अपना परिचय भी नहीं दिया । एक दिन की बात है कि जब सागरचंद्रमुनि ने आगमनिर्णीत तत्त्वों के स्वरूप को समझाते हुए व्याख्यान दिया तो सुनकर लोगों को अपार आनंद आया,—सबने प्रवचन की मुक्तकंठ से प्रशंसा की । सागरचंद्रमुनि ने अपरिचित गुरु के समीप आकर कहा—आपने

याद कियेँ ज छुटके, तेवो भनोलाव छे. आ प्रकारनो निश्चय करीने प्रज्ञापकर्षपरीषदने सहन करतां करतां ते भद्रमुनिअे शुभ अध्यवसाय अन्य प्रशस्त ध्यानथी क्षपकश्रेणी उपर चडी केवलज्ञान प्राप्त कयुं.

प्रज्ञाना प्रदर्शनां दृष्टान्तं आ प्रकारनुं छे—

एक समय कालकाचार्य प्रमादशील पोताना शिष्येने उज्जयिनी नगरीमां भूकीने धारावास नगरमां स्वशिष्य सागरचंद्र मुनिनी पास आव्या. सागरचंद्र शिष्ये तेमनी साथे सामान्य साधु जेवो वडेवार कयो, गुरु शिष्य जेवो नही. कालकाचार्ये आ वात उपर कंठ ध्यान न आभ्युं, अने पोतानो परिचय पणु न आये. एक द्विसनी वात छे के, अन्यारे सागरचंद्र मुनिअे आगम निर्णीत तत्त्वोना स्वरूपने समझववानुं व्याख्यान आभ्युं ते सांभलीने लोकोने अपार आनंद थयो. सघणाअे प्रवचननी मुक्तकंठे प्रशंसा करी. सागरचंद्र मुनिअे अपरिचित गुरुनी समीप आवीने कछुं. आपे आज भाईं तात्विक प्रवचन

श्रुतं भवद्भिः, कीदृशं तत्, ? तेनोक्तम्-शोभनम्, कालकाचार्येण सह तस्य तर्क-  
माश्रित्य वादः प्रवृत्तः । सागरचन्द्रमुनिस्तस्य तुल्यतया प्रत्युत्तरं कर्तुमसमर्थो जात-  
स्ततोऽतीव चमत्कारं स प्राप्तवान् ।

इतश्च कालकाचार्यस्य शिष्याः स्वगुरुपरित्यक्ताश्रतुर्विधसंधैस्तिरस्कारं प्राप्य,  
लज्जिताः सन्तः स्वगुरुं गवेषयन्ति । ते ग्रामानुग्रामं विहरन्तः कालकाचार्यवार्तां  
प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिस्थलं पृच्छन्तः क्रमेण धारावासनगरं समागताः । शिष्य-

आज मेरा तात्त्विक प्रवचन तो सुना है ? वह कैसा हुआ । कालका-  
चार्य ने कहा अच्छा हुआ, बातचीत के सिलसिले में ही गुरु शिष्य का  
तर्कशास्त्र पर परस्पर में वादविवाद छिड़ गया । सागरचंद्रमुनि को  
यह पता नहीं था कि ये मेरे गुरु महाराज कालकाचार्य हैं । सागरचंद्र  
मुनि कालकाचार्य की तर्कणाओं का प्रत्युत्तर नहीं दे सका अतः वह  
कालकाचार्य के अगाध ज्ञान से विशेष प्रभावित हुआ ।

उधर से जब अपने शिष्यों को उज्जयिनी में छोड़कर कालकाचार्य  
आगये तो उन शिष्यों का वहाँ के चतुर्विधसंधेने बड़ा ही तिरस्कार  
किया । वे सबके सब लज्जित होने लगे । सबने विचार किया कि  
गुरु महाराज का पता लगाना चाहिये कि वे कहाँ पधारे हैं । विचार  
निश्चित कर सबने वहाँ से गुरु महाराज की गवेषणा करने के लिये  
विहार कर दिया । ग्रामानुग्राम विचरते हुए उन्होंने ने प्रत्येक जगह में,  
प्रत्येक ग्राम में, प्रत्येक शहर में कालकाचार्य का पता लगाया तथा  
उनकी खबर भी पूछी । पूछते-ये सब के सब धारावास नगर की ओर

सांलज्युं ? ते केम इतुं ? कालकाचार्ये कथं, साङ् इतुं. वातय्यीतनी अर्थ्यामां  
७ गुरु शिष्यने तर्कशास्त्रे उपर परस्परमां वादविवाद थयो. सागरचंद्र मुनिने  
ये अ्याव न इतो के आ मारा गुरुमहाराज कालकाचार्ये छे. सागरचंद्र मुनि  
कालकाचार्यनी तर्क धाराअेनो प्रत्युत्तर अ्यापी शक्या नही. अ्याथी ते कालका-  
चार्यना अगाध ज्ञानथी पूअ प्रभावित अनी गया.

आ तरङ्ग उल्लेनीमां रडेला ते शिष्येनो त्यांता अतुर्विध संधे धषो  
तिरस्कार कर्यो. ते सधणा अ्याथी पूअअ शरमाया. अने अधाअे भणी अे विचार  
कर्यो के, गुरुमहाराजने पतो भेणवो लेधअे के तेअो कयां विचरे छे. विचार  
नक्षी करी अे शिष्येअे गुरुमहाराजनी तपास भाटे विहार कर्यो. आमा-  
नुग्राम विचरषु करतां तेमले प्रत्येक अ्याअे, प्रत्येक गाभमां, प्रत्येक  
शहरमां, कालकाचार्य महाराजनी पृच्छा करी. अने तेमनी अयर पूछी.  
पूछतां पूछतां अयर भणी अतां ते सधणा धारावास नगर तरङ्ग विहार

सहितः कालकाचार्य आगच्छति इति बुद्ध्या सागरचन्द्रमुनिस्तत्रागच्छतां कालका-  
चार्यशिष्याणां संमुखे समागतः । स तत्र परितो विलोक्याचार्यमदृष्ट्वा, तान  
समागतान् मुनीन् पृच्छति—भो मुनयः ! क्व वर्तन्ते पूज्यचरणाः, सागरचन्द्रमुने-  
रेतद्वचनं निश्चयं हताशाः सर्वे मुनयः साश्रुनेत्राः सगद्गदं प्रोक्तवन्तः—हतभाग्या-  
नस्मान् परित्यज्य गुरुचरणाः क्व गता इति वयं न विद्मः, भवता ज्ञायते किम् ? ।  
सागरचन्द्रमुनिनोक्तम्—तं न विद्मः वयम्, किं तु एकः कोऽपि वृद्धः संप्रति वर्तते  
उपाश्रये । ततः सर्वे गुरुभक्त्युद्रेकात् तद्विरहखिन्ना उपाश्रये आगताः । सागरमुनि-  
नाऽङ्गुल्या निर्देशेन प्रदर्श्य कथितम्—अयमागन्तुको महानुभावः । शिष्यास्तदैव

चल दिये । सागरचंद्रमुनि को जब पता चला कि सशिष्य गुरु महा-  
राज कालकाचार्य विहार करते हुए यहां आ रहे हैं तो वे उनका  
स्वागत करने के लिये सामने गये । वहां उन मुनियों में गुरु महाराज  
को नहीं देखा तब उसने उन अपने गुरुभाईओं से पूछा कि—पूज्य  
गुरु महाराज तो दिखते नहीं हैं कहां वे इस समय कहां हैं । तब  
मुनियों ने सागरचंद्रमुनि के वचन सुनकर हताश एवं आंसू डालते  
हुए गद्गद कंठ से बोले हतभाग्य हम लोगों को छोड़कर गुरु महाराज  
कहां चले गये हैं यह हम नहीं जानते हैं । कहां आप को मालूम है  
क्या ? सागरचंद्रमुनि ने कहा उन्हें तो हम जानते नहीं हैं किन्तु एक  
कोई वृद्ध महात्मा इस समय उपाश्रय में अवश्य ठहरे हुए हैं ।  
सागरचंद्रमुनि की इस बात को सुनकर समस्त शिष्य जो गुरु महा-  
राज के विरह से खेदखिन्न बने हुए थे गुरुभक्ति के उद्रेक से प्रेरित  
होकर उपाश्रय में पहुँचे । सागरचंद्रमुनि ने अंगुली के इशारे से

करवा लाया. सागरचंद्र मुनिने ये भयर भया के, गुरुभट्टाराज का कालकाचार्य  
शिष्यो साथे विहार करता करता अड़ी पधारे छे त्यारे ते तेमनुं स्वागत  
करवा साभे गया. त्यां ये मुनियोभां गुरुभट्टाराजने न जेया त्यारे तेण्णै पोताना  
ये गुरुभाईओने पूछयुं के पूज्य गुरुभट्टाराज तो देभाता नथी कडो, ते आ  
सभये क्यां छे ? सागरचंद्र मुनिनां आ वचन सांभणतां ते शिष्यो हताश  
अनी गया अने आंसुभरी आंभे गङ्गद् कंठी ओल्या, हतभागी अमे  
अधाने छोडीने गुरुभट्टाराज क्यां आल्या गया छे ये अमे लखुता नथी. कडो  
कडो आपने भयर छे ? सागरचंद्र मुनिअे कहुं, अमेने हुं ओणअतो नथी  
परंतु अेक वृद्ध महात्मा आ वअते उपाश्रयभां रोकायेदा छे. सागरचंद्रनी  
आ वात सांभणी सधणा शिष्यो जे गुरुभट्टाराजना विरहथी जेदधिन्न अनेद  
हता, ते सधणा गुरुभक्तिना भावथी प्रेरित अनी उपाश्रयभां पडोअ्या. सागर-



हृष्टतुष्टाः ससंभ्रमं हर्षवशविसर्पच्छृदयाः, ' इमे एव मम गुरवः ' इति वन्दितवन्तः । सागरचन्द्रमुनिस्तदा कालकाचार्ये परिचिते पश्चात्तापं कुर्वन् वदति-भगवन्! मया श्रुतनिधीनां तत्रभवतां भवतामाशातना कृता, क्षमस्व ।

कालकाचार्येणोक्तम्—हे वत्स ! श्रुतमदो न कर्तव्यः । एवमन्यैरपि कालका-  
चार्यवत् प्रज्ञाप्रकर्षे मदाकरणेन प्रज्ञापरीषहः सोढव्यः ॥४१॥

मतिश्रुतरूपपरोक्षज्ञानमाश्रित्य प्रज्ञापरीषहो वर्णितः । अथेदानीमवध्यादिरूपं प्रत्यक्षज्ञानमाश्रित्य तदभावरूप एकविंशतितमोऽज्ञानपरीषहः प्रोच्यते—

मूलम्—निरद्वगं मिं विरँओ, मेहुणाँओ सुसंवुँडो ।

जो सर्वखं नाभिजाणाँमि, धर्मं कल्लँण पावगं ॥४२॥

छाया-निरर्थकम् अहं विरतः, मैथुनात् सुसंवृतः ।

यः साक्षात् नाभिजानामि, धर्मं कल्याणं पापकम् ॥ ४२ ॥

बतलाकर कहा कि देखो ये हैं वे आगन्तुक महानुभाव । वे शिष्य सब के सब उसी समय अपार हर्ष से उत्फुल्लहृदय होकर हृष्ट तुष्ट होते हुए बड़े ही आदर से “ यही है हमारे गुरु महाराज ” कह कर उनके चरणों में गिर कर वंदना करने लगे । सागरचंद्रमुनि उस समय कालकाचार्य के परिचित होने पर पश्चात्ताप करता हुआ उनसे बोला भगवन् ! श्रुतनिधि पूज्य आपकी मेरे द्वारा आशातना हुई है, अतः मैं उसकी क्षमा चाहता हूँ, आप क्षमा करें । कालकाचार्य ने कहा वत्स ! श्रुतज्ञान का मद नहीं करना चाहिये । इस कथा से यही शिक्षा मिलती है कि कालकाचार्य की तरह प्रज्ञा के प्रकर्ष में मद नहीं करने से प्रज्ञापरीषह का जय होता है ॥ ४१ ॥

यंद्र मुनिञ्चे आंगणीना धसाराथी भतावीने कहुं के, णुञ्चो आ छे ते आवेला मडानुभाव ! आथी ते सधणा शिष्यो ते सभये अपार उषथी प्रकुद्वित णनी पुशी थतां थतां भूअअ आदरथी “ आ अ छे अमारा गुरुमडाराअ ” कहीने तेभना अरणुमां पडीने वंदन करवा लाग्या. सागरयंद्रमुनि अजे सभये कालका-  
आर्यना परियथथी पश्चात्ताप करतां करतां तेभने कडेवा लाग्या, लगवंत ! श्रुतनिधि पूज्य भाराथी आपनी अशातना थर्थ छे. आथी हुं तेनी क्षमा आहुं छुं. आप भने क्षमा करो. कालकाचार्ये कहुं, वत्स ! श्रुतज्ञानने मड न करवा णेअजे. आ कथाथी अजे णणुवानुं भणे छे के, कालकाचार्यनी माकक प्रज्ञाना प्रकर्षमां मडहनडीं करवाथी प्रज्ञापरीषडने अय थाय छे. ॥४१॥



‘निरद्वगं’ इत्यादि ।

निरर्थकम्=व्यर्थम् मि=अहं मैथुनात्=कामसुखाद् विरतः=निवृत्तः। प्राणातिपा-  
तादिविरमणं विहाय यन्मैथुनमात्रोपादानं तत्तस्य दुस्त्यजत्वबोधनार्थम् । दुस्त्यज-  
मैथुनात् प्रतिनिवर्तनेनाहं दुष्करं कार्यं व्यर्थमेव कृतवानिति भावः । तथा-निरर्थकं  
सुसंवृतः = इन्द्रियनोइन्द्रियव्यापारनिरोधेन सुष्ठुसंवरयुक्तः । योऽहं कल्याणं=  
शुभं, पापकम्=अशुभं, धर्म=वस्तुस्वभावं साक्षात्=परिस्फुटं यथा स्यात् तथा, ना-  
भिजानामि=अवध्यादिज्ञानाभावेन प्रत्यक्षतया सर्वथा न जानामीत्यर्थः । इति  
भिक्षुर्न चिन्तयेत् । ‘इह भिक्खू न चिंतए’ इत्युत्तरगाथा(४४)स्थेन सह सम्बन्धः ।

मतिश्रुतरूप परोक्षज्ञान को आश्रित कर प्रज्ञापरीषह का सूत्रकारने  
यह वर्णन किया है । अब अवधि आदि रूप जो प्रत्यक्ष ज्ञान हैं  
उनके अभावरूप इक्कीसवां अज्ञानपरीषह का वर्णन किया जाता है—

‘निरद्वगंमि’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(निरद्वगंमि मेहुणाओ विरओ-निरर्थकमहं मैथुनात्  
विरतः) व्यर्थ ही मैं कामसुख से विरक्त हुआ हूँ । (सुसंवुडो-सुसं-  
वृतः) व्यर्थ ही मैंने इन्द्रियों एवं मन को अपने अभिलषित विषयों से  
हटाकर सुसंवृत किया है । (जो-यः) जो मैं अभीतक भी (कल्याणं पावगं  
धम्मं सक्खं नाभिजाणामि-कल्याणं पापकं धम्मं साक्षात् नाभिजानामि)  
शुभ तथा अशुभ वस्तुस्वभावरूप धर्म को अवधि आदि प्रत्यक्ष  
ज्ञानों के अभाव में साक्षात्-स्पष्टरूप से नहीं जानता हूँ । इस प्रकार  
भिक्षु विचार न करे । “इह भिक्खू न चिंतए” यह आगे गाथा  
चौबालीस ४४वीं में कहा गया वाक्य यहां योजित कर लेना चाहिये ।

मतिश्रुत रूप परोक्षज्ञानने आश्रित करी प्रज्ञापरीषहनुं सूत्रकारे आ  
वर्णन करेले छे. हुवे अवधि आदिरूप जे प्रत्यक्षज्ञान छे तेना अलावइप  
अेकवीसमा अज्ञानपरीषहनुं वर्णन करवाभां आवे छे—‘निरद्वगंमि’ इत्यादि.

अन्वयार्थ-निरद्वगंमि मेहुणाओ विरओ-निरर्थकमहं मैथुनात् विरतः कामसुखने  
छोडीने हुं नकामो विरक्त भन्थे छुं सुसंवुडो-सुसंवृतः इन्द्रियो अने मनने तेना  
अभिलषित विषयोथी हटावीने मे व्यर्थ सुसंवृत करेले छे, जे आअ सुधी पणु  
हुं कल्याणं पावगं धम्मं सक्खं नाभिजाणामि-कल्याणं पापकं धम्मं साक्षात् नाभि-  
जानामि शुभ तथा अशुभ वस्तु स्वभावइप धर्मने अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञानना  
अलावथी साक्षात्-स्पष्टरूपथी जणुतो नथी. आ प्रकारने विचार भिक्षु न  
करे इह भिक्खू न चिंतए आ आगण भताववाभां आवेले ४४ भी गाथातुं

अयं भावः — मया वृथा मैथुनविरमणं कृतम्, वृथैव चेन्द्रियाणि विजितानि यदहं शुभमशुभं वा वस्तुस्वभावं प्रत्यक्षरूपेण नाभिजानामीत्येवं चिन्तनेन मुनिर्विषादं न कुर्यात् । ' मि ' इत्यार्षत्वात् प्रथमार्थं द्वितीया ॥ ४२ ॥

किञ्च—

मूलम्—तवोवहाणमादाय, पडिमं पडिवज्जओ ।

एवं पिं विहरओ मे, छउमं नं निर्यट्टइ ॥ ४३ ॥

छाया—तपउपधानमादाय, प्रतिमां प्रतिपद्यमानस्य ।

एवमपि विहरतो मे, छन्न न निवर्तते ॥ ४३ ॥

इस गाथा में एक मैथुन मात्र का ही ग्रहण इसलिये किया है कि अहिंसा आदि सब की अपेक्षा यह दुस्त्यज होता है इसलिये मुनि विचारता है कि ऐसे दुष्कर त्याग करने पर भी मुझे कुछ लाभ नहीं हुआ ।

भावार्थ—इसका भाव यह है कि अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञानों की प्राप्ति के अभाव में भिक्षु को अपनी आत्मा के लिये इस प्रकार के विचार से विषादित नहीं करना चाहिये कि—मुझे ब्रह्मचर्य का पालन तथा तपश्चर्या करते २ बहुत काल हो चुका है अभी तक भी मुझे वस्तु का वास्तविक शुभाशुभ स्वभाव स्पष्ट रीति से बतलाने वाले प्रत्यक्ष ज्ञानों में से एक भी किसी ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है । यह दीक्षा ब्रह्मचर्यव्रत और तपश्चर्या आदि मैंने व्यर्थ धारण किये । इसकी अपेक्षा तो संसारदशा में ही आनन्द था ॥ ४२ ॥

वाक्य अहिं योत्त करी देवुं जेधं अ. अ. गाथाभां अक मैथुन मात्रनुं अटला माटे अडणु करवाभां आवेव छे के, अहिंसा आदि अधानी अपेक्षा अ. दुस्त्यज डोय छे. आ माटे मुनि विचारता डोय छे के, आवो दुष्कर त्याग करवा छतां पणु मने कांछं लाल थयो नहीं.

भावार्थ—आने लाव अ. छे के, अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञानोनी प्राप्तिना अलावभां भिक्षुअ. योताना आत्मा माटे आ प्रकारने विचार करी कही विषादित अनवुं न जेधं अ—के, मने अहमर्थनुं पालन अने तपश्चर्या करतां करतां धणो समथ गयो तेम छतां पणु वस्तुने वास्तविक शुभाशुभ स्वभाव स्पष्ट रीते अताव- नार प्रत्यक्ष ज्ञानोभांथी केधं अ. क पणु ज्ञाननी प्राप्ति थवा पाभी नथी. आ दीक्षा, अहमर्थव्रत अने तपश्चर्या वगेरे मे' नकाभां धारणु कर्यां छे. आनी अपेक्षा तो संसार दशाभां अ. आनंद डतो ॥ ४२ ॥

टीका—‘तवोवहाणमादाय’ इत्यादि ।

तपः=यवमध्यचन्द्रप्रतिमा-वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमादिकम्, उपधानं=साभिग्रहं तपः आदाय=स्वीकृत्य चरित्वेत्यर्थः, अभिग्रहविशेषरूपां मासिक्यादिकां, प्रतिपद्यमानस्य=प्रतिपन्नस्य अङ्गीकृतवतः, एवमपि=विशिष्टचर्यायाऽपि, विहरतः=निष्प्रतिबन्धं विचरतः, मे=मम, छद्म=छादयतीति छद्म-ज्ञानावरणीयादिकं कर्म, न निवर्तते=नापगच्छति, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत्, इत्युत्तरगाथास्थेन सह सम्बन्धः ।

अयं भावः—अहं यवमध्यचन्द्रप्रतिमादिकं तपः करामि, तथा साभिग्रहं तपः

किंच—‘तवोवहाणमादाय’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( तवोवहाणमादाय-तपउपधाम् आदाय ) यवमध्यचन्द्रप्रतिमा, वज्रमध्यचन्द्रप्रतिमा आदिक तप को तथा साभिग्रह तप रूप उपधान को स्वीकार कर के, तथा उनका आचरण करके ( पडिमं-पडिवज्जओ-प्रतिमां प्रतिपद्यमानस्य ) अभिग्रहविशेषरूप मासिक्यादिक प्रतिमा को अंगीकार करने वाले ( मे-मम ) मेरा जो कि ( एवं पि विहरओ-एवमपि विहरतः ) इस प्रकार की विशिष्टचर्या से मुक्ति के मार्ग में विचरण कर रहा हूँ ( छउमं-छद्म ) ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का आवरण तौ भी ( न नियट्टइ-न निवर्तते ) निवर्तित नहीं होता है । इस प्रकार भिक्षु विचार नहीं करे ।

ये दो ४२-४३ गाथाएँ अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति के विषय में कही गई हैं ।

तात्पर्य यह है कि मैं यवमध्यचन्द्रप्रतिमा आदिक तप करता हूँ

किञ्च—‘तवोवहाणमादाय’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—‘ तवोवहाणमादाय ’-तपउपधानं आदाय यवमध्यचन्द्रप्रतिमा-वज्रमध्यचन्द्र प्रतिमा आदिक तपने तथा साभिग्रह तप रूप उपधानने स्वीकार करी तथा तेनुं आचरण करी पडिमं पडिवज्जओ-प्रतिमां प्रतिपद्यमानस्य अलिग्रह विशेष रूप मासिक्यादि प्रतिमाने अंगीकार करवावाणा मे-मम हुंके जे-एवं पि विहरओ-एवमपि विहरतः आ प्रकारनी विशिष्ट चर्याथी मुक्तिना मार्गमां विचरण करी रहो छुं छउमं-छद्म छतां ज्ञानावरणीयादिक कर्मोनुं आवरण न नियट्टइ-न निवर्तते इर थतुं नथी. आ प्रकारनो विचार भिक्षु न करे.

ये तादीस अने ते तादीस आ जे गाथाओ अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञाननी अप्राप्तिना विषयमां कडेवामां आवेल छे.

तात्पर्य आ छे के,- हुं यवमध्य चन्द्रप्रतिमा आदिक तप करूं छुं तथा उ० ६५

કરોમિ, પ્રતિમાં સમાચરામિ, એવં મોક્ષમાર્ગે વિચરામિ, તથાપિ-અવધિ-મનઃ પર્ય-યરૂપ-પ્રત્યક્ષજ્ઞાનવાન ન ભવામિ' ઇતિ ન ચિન્તયેત્ । ઇત્યેવમજ્ઞાનસ્ય સદ્ભાવે વિષાદાકરણેનાજ્ઞાનપરીષહઃ સોઢવ્ય ઇતિ ।

યદ્વા-ઇહાપિ તન્ત્રન્યાયેન ગાથાયુગ્મસ્યાર્થદ્વયં બોધ્યમ્ । તત્ર-અજ્ઞાનસદ્ભાવ-પક્ષમાશ્રિત્ય વ્યાખ્યાઽભિહિતા । અથ જ્ઞાનસદ્ભાવપક્ષમાશ્રિત્ય વ્યાખ્યા પ્રદર્શયતે-જ્ઞાનસદ્ભાવે-અવધિમનઃપર્યયજ્ઞાનસદ્ભાવેઽપિ કેવલજ્ઞાનાપ્રાપ્તૌ ભિક્ષુરેવં ન ચિન્તયેત્-યદહં વ્યર્થમેવ મૈથુનાદ્ વિરતઃ=નિવૃત્તઃ । પરમલક્ષ્યકેવલજ્ઞાનમઘાપિ

તથા અભિગ્રહ ધી કરતા હૂં એવં ભિક્ષુપ્રતિમા કા પાલન ધી કરતા હૂં ઇસ પ્રકાર મૈ મોક્ષમાર્ગ મેં હી વિચરણ કર રહા હૂં તો ધી મુજ્ઞે અધીતક અવધિમનઃપર્યયરૂપ પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનકી પ્રાપ્તિ નહીં હુઈ હૈ ઇસ પ્રકારસે સાધુકો વિચાર નહીં કરના ચાહિયે । ઇસ તરહ અવધિમનઃપર્યયરૂપ જ્ઞાનકી પ્રાપ્તિ કે અભાવ મેં વિષાદ નહીં કરના ઇસી કા નામ અજ્ઞાનપરીષહકા જીતના હૈ ।

અથવા તન્ત્રન્યાય સે ધી ઇન ઢોનોં ગાથાઓં કા અર્થ જાનના ચાહિયે । ડસ મેં અજ્ઞાન કે સદ્ભાવ પક્ષ કો લેકર પહલે વ્યાખ્યા કી ગઈ હૈ અબ જ્ઞાન કે સદ્ભાવ પક્ષ કો લેકર વ્યાખ્યા કી જાતી હૈ, વહ ઇસ પ્રકાર હૈ—

અવધિમનઃપર્યયજ્ઞાન કે સદ્ભાવ મેં કેવલજ્ઞાન કી પ્રાપ્તિ ન હોને પર સાધુ ઇસ પ્રકાર વિચાર નહીં કરે કિ-મૈને જો મૈથુન જૈસે દુષ્કર કાર્યોં કા પરિત્યાગ કિયા હૈ પ્રાણાતિપાતાદિક કા વિરમણ કિયા હૈ

અભિગ્રહ પશુ કંઈ છું. આ પ્રકારથી હું મોક્ષમાર્ગમાં જ વિચરણ કરી રહ્યો છું તો પશુ મને હજી સુધી અવધિમનઃપર્યયરૂપ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ નથી. આ પ્રકારનો સાધુએ વિચાર ન કરવો જોઈએ. આ રીતે અવધિમનઃપર્યયરૂપ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિના અભાવમાં વિષાદ ન કરવો જોઈએ. આનું જ નામ અજ્ઞાન પરીષહને જીતવો એ છે.

અથવા-તંત્ર ન્યાયથી પશુ આ બંને ગાથાઓના અર્થ જાણવા જોઈએ. એમાં અજ્ઞાનના સદ્ભાવપક્ષને લઈ પહેલાં વ્યાખ્યા કરવામાં આવી છે હવે જ્ઞાનના સદ્ભાવ પક્ષને લઈ વ્યાખ્યા કરવામાં આવે છે, તે આ પ્રકારે છે.

અવધિમનઃપર્યયજ્ઞાનના સદ્ભાવમાં કેવળજ્ઞાનની પ્રાપ્તિ ન થવાથી સાધુ આ પ્રકારનો વિચાર ન કરે કે-મેં મૈથુન જેવા દુષ્કર કાર્યોનો પરિત્યાગ કર્યો છે, પ્રાણાતિપાતાદિકનું વિરમણ કર્યું છે, તથા ઇન્દ્રિયનો (મન) ઇન્દ્રિયનો

मया नोपलब्धम् । तदनुपलब्धौ च दुस्त्यजमैथुनात् प्रतिनिवर्तनं मम व्यर्थम् । तथा निरर्थकं सुसंवृतः = इन्द्रियनोइन्द्रियव्यापारनिरोधेन मुष्टुसंवरयुक्तोऽभवम् , योऽहं कल्याणं पापकं वा धर्म=वस्तुस्वभावं, साक्षात्=परिस्फुटं, नाभिजानामि=अभि-सर्वथा निरवशेषविशेषपूर्वकं न जानामि । अयं भावः—“ जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ, जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ ” इत्यागमवचनाच्छब्दस्थोऽहं किमप्येकमपि वस्तुस्वरूपं न तत्त्वतो जानामि, यदि साक्षात् समस्तभावस्वभावाव-भासकं केवलालोकं न लब्धवान् , तर्हि किमनेनाल्पेन मुकुलितवस्तुस्वरूपज्ञानेन, इत्येवं विषादं न कुर्यादिति ।

तथा—तपउपधानादिभिर्निर्जराहेतुभिरपि छद्मस्थावस्था न निवर्तते=निरवशेषं न क्षीयते, किं तर्हि ममानेन क्रियाकलापेन? इति विचिन्त्य मुनिर्विषादं न कुर्यात् ।

तथा इन्द्रिय नोइन्द्रिय का निग्रह भी किया है वे सब निरर्थक हैं । क्यों कि अभीतक मुझे शुभाशुभ वस्तु का संपूर्णरूप से ज्ञान कराने वाला केवलज्ञान तो प्राप्त हुआ ही नहीं है । उसके न होने पर इस द्रव्य क्षेत्र काल एवं भाव की मर्यादा को लेकर वस्तु के स्वरूप को प्रकट कराने वाले इन अवधिमनःपर्ययज्ञान से क्या लाभ है । इस प्रकार विचार कर साधु अपनी आत्मा को दुःखित नहीं करे ।

तथा—निर्जरा के कारण इन तप एवं उपधान आदि के आचरण करने से मुझे लाभ ही क्या हुआ, क्यों कि अभीतक मेरी छद्मस्था-वस्था तो दूर नहीं हुई है । समस्त ज्ञानावरणीयकर्म नष्ट होकर जब तक केवलज्ञान प्राप्त नहीं होता तबतक छद्मस्थावस्था रहती है । अतः केवलज्ञान की प्राप्ति का अभावस्वरूप अज्ञानपरीषह साधु को जीतना चाहिये । तथा तप एवं उपधान आदि जो निर्जरा के हेतु हैं उनसे मेरे

निग्रह पण्डु कुर्यो छे. ते अधुं निरर्थक छे. केमके, उल्लु सुधी मने शुभाशुभ वस्तुनुं संपूर्णरूपथी ज्ञान करानेनार केवणज्ञान तो प्राप्त थयुं नथी. तेना न होवाथी आ द्रव्य क्षेत्र काल अने भावनी मर्यादाने लधने वस्तुना स्वरूपने प्रकट करानेनार आ अवधिमनःपर्ययज्ञानथी शुं लाल छे? आ प्रकारनो विचार करी साधु पोताना आत्माने दुःभी न करे.

तथा—निर्जरातुं कारणु आ तप अने उपधान आदिनुं आचरणु करवाथी मने लाल शुं थयो? केमके, उल्लु सुधी मारी छद्म अवस्था हर थध नथी. ज्यां सुधी ज्ञानावरणीय कर्मनो नाश थध केवणज्ञान प्राप्त न थाय त्यां सुधी छद्मस्थ अवस्था रहे छे. आथी केवणज्ञाननी प्राप्तिना अभाव स्वरूप अज्ञानपरीषह साधुओ लतवो ओधओ. तथा तप अने उपधान आदि ने निर्जराना हेतु छे

अत्राऽज्ञानसद्भावपक्षे दृष्टान्तः प्रदर्शयति—

एकदा चतुर्ज्ञानसम्पन्नो भद्रगुप्ताचार्यः शिष्यपरिवारेण सह ग्रामानुग्रामं विहरन् श्रावस्तीनगर्यां तिन्दुकोद्याने समवसृतः । तत्र वसुमित्रनामकः श्रेष्ठी तस्य समीपे धर्मं श्रुत्वा प्रव्रजितः । ततः स एकादशाङ्गान्यधीतवान् । स चानिशमुग्रं तपश्चरति, उग्रं विहारं करोति, उत्कृष्टाचारं पालयति, यतनया चरति, यतनया तिष्ठति, यतनया उपविशति यतनया शेते, यतनया भुङ्क्ते, यतनया भाषते ।

तत्र सुवीरनामको नृपतिर्भद्रगुप्ताचार्यस्य संनिधावागत्य तं वन्दित्वा पर्युपास्ते ।

ज्ञानावरणीयादिक कर्म सर्वथा नष्ट नहीं हुवे हैं तो इस क्रियाकलाप से मुझे क्या लाभ हुआ ? ऐसा विचार कर साधु विषाद नहीं करे ।

अज्ञान के सद्भाव पक्ष में दृष्टान्त—एक समय चतुर्ज्ञानसंपन्न भद्रगुप्त आचार्य शिष्यपरिवार के साथ ग्रामानुग्राम विचरते हुए श्रावस्ता नगरी में तिन्दुक उद्यान में आये । वहा वसुमित्र नाम के एक सेठ ने उनसे धर्मकथा सुनकर दीक्षा धारण की । ग्यारह अंगों को पढ़कर उन्होंने ने अच्छी तरह ज्ञान प्राप्त किया । सदा उग्र तपस्या करना, उग्र विहार करना, उत्कृष्ट आचार का पालन करना, यतना से उठना, यतनासे बैठना, यतनासे सोना, यतना से आहार करना और यतना से बोलना, चलना, इस तरह प्रत्येक क्रिया, इनकी यतना से होने लगी ।

श्रावस्ती नगरी का राजा कि जिनका नाम सुवीर था प्रतिदिन भद्रगुप्त आचार्य के पास वंदना एवं पर्युपासना करने के लिये आते थे ।

तेनाथी भासं ज्ञानावरणीयादिक कर्म सर्वथा नाश पावेन नथी. तो आ क्रिया करवाथी भने शुं लाभ थयो ? अवेो विचार करी साधु विषाद न करे.

अज्ञानना सद्भाव पक्षमां दृष्टान्त—

एक समय चतुर्ज्ञानसंपन्न भद्रगुप्त आचार्य शिष्य परिवारनी साथे ग्रामानुग्राम विचरता श्रावस्ती नगरीनां तिन्दुक उद्यानमां आव्या. त्यां वसुमित्र नामना एक शेठे तेभने धर्म उपदेश सांभणी दीक्षा धारण करी. अगीआर अंगेने लक्ष्णीने तेभणे सारी रीते ज्ञान प्राप्त क्युं. सदा उग्र तपस्या करवी, उग्रविहार करवे, उत्कृष्ट आचारनुं पालन करवुं, यतनाथी उठवुं, यतनाथी भेसवुं, यतनाथी आहार करवे, यतनाथी बोलवुं, यतनाथी चलवुं, आ रीते तेभनी प्रत्येक क्रियाओ यतनापूर्वक थवा लागी.

श्रावस्ती नगरीने राजा के जेतुं नाम सुवीर हुतुं ते दररोज भद्रगुप्त आचार्यनी पास वंदना अने पर्युपासना करवा भाटे आवता हुता. आचार्य



तदा भद्रगुप्तार्यस्तमब्रवीत्-राजन् ! बन्धमोक्षस्वरूपं प्रष्टुं समागतोऽसि किम् ? । राज्ञा प्रोक्तम्-भदन्त ! सत्यं भवदीयवचनम् । ततोऽसौ भद्रगुप्ताचार्यश्चतुर्भिर्ज्ञानैस्तं बन्धमोक्षस्वरूपोपदेशेन परितोषयति स्म । तदा सुवीरनृपतिर्जातवैराग्यः सन् प्रव्रज्यां गृहीतवान् ।

तदा वसुमित्रमुनिर्भद्रगुप्ताचार्यस्याद्भुतं चतुर्ज्ञानप्रभावमवलोक्य मनसि चिन्तयति-अहो ! आत्मनो वीर्यं महदद्भुतम्-यदन्तर्मुहूर्तमात्रेणैव ज्ञानावरणीया-

आचार्य महाराज भी उन को धर्मदेशना देते थे । राजा के हृदय में एक दिन बंध और मोक्ष के यथार्थ स्वरूप को जानने की जिज्ञासा हुई, वे शीघ्र ही आचार्य महाराज के पास आये और वंदना एवं पर्युपासना कर समीप बैठे । आचार्य महाराज ने उनसे कहा-कहो हे राजन् ! आज बंध और मोक्ष का यथार्थ स्वरूप पूछने को आये हो क्या ? राजाने बड़े विनय के साथ दोनों हाथ जोड़कर कहा-हाँ भदन्त ! । चार ज्ञान के धारी आचार्य महाराज ने राजा को बंध और मोक्ष का यथार्थ स्वरूप अच्छी तरह समझाया । उपदेशमें स्पष्ट किये गये बंध और मोक्ष के स्वरूप को सुनकर राजा को बड़ा ही आनंद आया । राजा अपनी वैराग्य भावना से आचार्य महाराज के पास दीक्षा धारण करली ।

वसुमित्र मुनि जिनका नाम संसारी अवस्था में वसुमित्र सेठ था, उन्होंने ने भद्रगुप्त आचार्य के चार ज्ञानों का प्रभाव देखकर मन में विचार किया-अहो ! आत्मा की शक्ति अचिन्त्य है, इसके बल से

महाराज पणु तेमने धर्मदेशना आपता हुता. राजाना हृदयमां अेक दिवस बंध अने मोक्षना यथार्थ स्वरूपने ज्ञापुवानी ज्ञासा थथ. ते तुरत ज आचार्यनी पासे आव्या अने वंदना करी सासे जेडा. आचार्य महाराजे तेमने कहुं, कडे राजन् ! आज बंध अने मोक्षनुं यथार्थ स्वरूप पुछवाने आव्या छे ने ? राजाने विनय साथे अन्ने हाथ जेडीने कहुं, हा ! चार ज्ञानना धारक आचार्य महाराजे राजाने ज्ञान अने बंधनुं यथार्थ स्वरूप सारी रीते समजवुं. उपदेशमां कडेवामां आवेल बंध अने मोक्षना स्वरूप ने सांलणीने राजाने धले आनंद थये अने वैराग्य लावना जगृत थतां राजाने आचार्य महाराज पासे दीक्षा अंगीकार करी.

वसुमित्रमुनि के जेभनुं संसारी अवस्थामां नाम वसुमित्र सेठ हुतुं. तेमणे भद्रगुप्त आचार्यने चार ज्ञानने प्रभाव जेधने मनमां विचार कर्यो, अडे ! आत्मानी शक्ति अचिन्त्य छे. तेना अणथी आत्मा अेक अंतर्मुहूर्तमां ज्ञाना-

घृष्टविधकर्मरजोऽपनीय, अयमात्मा सर्वज्ञः सर्वदर्शी भवति । मया तु एकादशाङ्गान्यधीतानि, एवं निरतिचारं श्रुतज्ञानमाराधितम् । निःशङ्कित-निष्काङ्क्षितादि भेदैर्दर्शनाचारोऽप्याराधितः, समितिगुप्तिभिः प्रशस्तयोगयुक्तो भूत्वा चारित्राचारः समाराधितः, अग्लानतया द्वादशविधैरनशननादितपोभिस्तपआचारः समाराधितः । एषु ज्ञानाचारादिषु चतुर्षु ज्ञानाचारः कालविनयादिभेदैरष्टविधः, दर्शनाचारः खलु निःशङ्कित-निष्काङ्क्षितादि भेदैरष्टविधः, चारित्राचारः समिति-गुप्तिपालनात्मकोऽष्टविधः, तथाऽनशननादिद्वादशविधस्तपआचारस्तेषु सर्वेषु षट्त्रिंशद्विधेष्वचारेषु

आत्मा एक अन्तर्मुहूर्त में ही ज्ञानावरणीयादिक आठ प्रकार की कर्मरज को नष्ट कर सर्वज्ञ सर्वदर्शी हो जाता है । मैंने ग्यारह अंग पढे हैं उनका खूब मनन किया है इस प्रकार निरतिचार श्रुतज्ञान की आराधना की है । निःशङ्कित एवं निःकाङ्क्षित आदि भेदों से युक्त दर्शनाचार का यथावत् पालन किया है । समिति गुप्तियों द्वारा प्रशस्त उपयोग युक्त होकर चारित्राचार का भी अच्छी तरह आराधन किया है । अग्लानभाव से अनशन आदि बारह प्रकार के तपों का अनुष्ठान करने से तप आचार को भी अच्छी तरह पाला है । इसी तरह काल विनयादिक के भेद से आठ प्रकार के ज्ञानाचार, निःशङ्कित, निःकाङ्क्षित आदि भेद से आठ प्रकार के दर्शनाचार, समिति गुप्ति आदि के पालनस्वरूप आठ प्रकार के चारित्राचार, एवं चौबीस तथा अनशननादि बारह प्रकार का तप, इस प्रकार छत्तीस ३६ भेदवाले इस

वरष्ठीयादिक आठ प्रकारनी कर्मरजने नाश करी सर्वज्ञ सर्वदर्षिं अपनी जाय छे. में अगीयारअंगनो अभ्यास कथी छे. तेषुं भूष मनन कथुं छे. अे प्रकारे निरतिचार श्रुतज्ञाननी आराधना करेल छे. निःशङ्कित अने निःकाङ्क्षित आदि लेहथी युक्त दर्शनाचारतुं यथावत् पालन कथुं छे. समिति गुप्तियो द्वारा प्रशस्त उपयोगयुक्त अपनी आरीत्राचारतुं पषु सारी रीते आराधन कथुं छे. अग्लानभावथी अनशन आदी १२ प्रकारना तपोतुं अनुष्ठान करवाथी तप आचारने पषु सारी रीते पाणेल छे. अेवी रीते काल विनयादिकना लेहथी आठ प्रकारना ज्ञानाचार, निःशङ्कित, निःकाङ्क्षित, आदि लेहथी आठ प्रकारनो दर्शनाचार, समितिगुप्ति आदिना पालन स्वरूप आठ प्रकारनो चारित्र आचार अने चौबीस तथा अनशन आदि बार प्रकारतुं तप आ प्रकारे छत्तीस लेहवाणा आ आचारने

अगोपितबलवोर्येण, अर्थात्-परिपूर्णस्वशक्तिप्रयोगेण सोपयोगं पराक्रमणेन वीर्याचारोऽपि समाराधितः । एतानि षट्त्रिंशदाचाररूपोद्यानानि वीर्याचारवारिणा निरन्तरपरिसेचनेन हरितीकृतानि शुभभावनानिरीक्षणैः शोभया भरितीकृतानि तथाप्यद्यावधि मम ज्ञानावरणीय-कर्मणां क्षयाभावादवध्यादिरूपं प्रत्यक्षज्ञानं न जातम् , अतोऽहमपि पुनस्तथा यतिष्ये, यथा तन्ममावश्यं भविष्यत्येव । तस्मादधुना विषादाकरणेनाज्ञानपरीषहं सहमानः पुनरपि वीर्याचारं निरतिचारं निरतिशयं

आचार को परिपूर्ण अपनी शक्ति के प्रयोग से उपयोगपूर्वक तल्लीन होकर पालन किया है । इसीका नाम वीर्याचार है । मैंने इन पाँचों आचारों का सम्यक् रीति से पालन किया है । छत्तीसभेदविशिष्ट इस आचाररूप उद्यान को वीचाररूप निर्मल जल से मैंने निरन्तर सिंचित कर हरा-भरा रखा है । शुभ भावनाओं से इसे शोभित किया है । तो भी अभीतक ज्ञानावरणीयकर्मों के क्षय नहीं होने से मुझे अवधि आदि प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति नहीं हुई है, इसलिये मैं फिर इस प्रकार का यत्न करूँ कि जिससे मुझे इस प्रत्यक्ष ज्ञान की प्राप्ति अवश्य हो जाय । इस प्रकार सोचकर वसुमित्र मुनि ने पुनः यह विचार किया कि प्रत्यक्षज्ञान की प्राप्ति नहीं होने का मुझे इस समय कुछ भी विषाद नहीं करना चाहिये, क्योंकि विषाद करने से अज्ञान परीषह विजित नहीं होता है, अतः विषाद को नहीं लाकर अज्ञान परीषह सहन करना यह साधुमार्ग है, इसलिये वीर्याचार की

परिपूर्णां चोतानी शक्तिना प्रयोगथी उपयोगपूर्वक तल्लीन अपनी पालन कथुं छे, तेनुं नाम वीर्याचार छे. में आ पांचे आचारनुं सम्यक् रीतिथी पालन कथुं छे. छत्तीस भेद विशिष्ट आ आचाररूप उद्यानने वीर्याचार रूप निर्माण जणथी में निरन्तर सिंचित करी कथुं कथुं राप्थुं छे. शुभ भावनाओथी तेने शोभित कथुं छे. तो पणु डल सुधी ज्ञानावरणीयकर्मोना क्षय न थनाथी मने अवधि आदि प्रत्यक्षज्ञाननी प्राप्ति थयेल नथी. आ भाटे हुं करी ओ प्रकारने यत्न कर्ं के, जेनाथी मने आ प्रत्यक्ष ज्ञाननी प्राप्ति अवश्य थर्न थय. आ प्रकारथी विचारने वसुमित्र मुनिओ करीथी ओ विचार कथो के प्रत्यक्षज्ञाननी प्राप्ति न थवानो भारे आ समये कांछ पणु विषाद न करवो जेछओ. केमके, विषाद करवाथी अज्ञानपरीषदने छतातो नथी. आथी विषाद न लावतां अज्ञानपरीषद सहन करवो ओ साधुमार्ग छे. आ भाटे वीर्याचारनी निरतिचार

सम्यगाराधयामि इत्येवं विचिन्त्य प्रशस्तध्यानेन शुभाध्यवसायेन अवधि मनःपर्ययं च  
संप्राप्य क्षपकश्रेणिमारुह्य केवली जातः। एवमन्यैरपि मुनिभिरज्ञानपरीषहः सोढव्यः।

अथाऽज्ञानाऽसद्भाव(ज्ञानसद्भाव)पक्षे दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

उग्रविहारी चतुर्ज्ञानचतुर्दशपूर्वधारी जिनवचनानुगामी गौतमस्वामी शिष्य-  
परिवारेण सह ग्रामानुग्रामं विहरन् भास्करवदज्ञानान्धकारं विध्वंसयन् स्याद्वाद-  
सिद्धान्तं स्थापयन् क्षान्त्यादिधर्मं प्रद्योतयन् चार्वाकादिपाखण्डमतं खण्डयन्  
विचरति स्म। एवं विहरन् गौतमस्वामी चम्पानगरीं पूर्णभद्रोद्याने समवसृतः।

निरतिचार सम्यक् आराधना करते २ प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्राप्ति मुझे हो  
जायगी। इस प्रकार विचार करके उसने प्रशस्तध्यान के हेतुभूत शुभ  
अध्यवसाय से अवधि एवं मनःपर्यय ज्ञान को प्राप्त कर लिया, तथा  
क्षपकश्रेणी पर अरोहण कर केवलपद को भी प्राप्त कर लिया। इसी  
तरह अन्यमुनियों को भी अज्ञानपरीषह सहन करना चाहिये।

अज्ञान के असद्भाव (ज्ञान के सद्भाव) पक्षमें दृष्टान्त इस प्रकार है—

उग्र विहार करने वाले, मति, श्रुत, अवधि एवं मनःपर्ययज्ञान के  
धारी, चौदह पूर्व के पाठी, एवं जिनवचन के अनुसार चलने वाले  
गौतमस्वामी शिष्यपरिवार के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए,  
सूर्य के समान भव्यों के अज्ञानरूप अन्धकार को ध्वस्त करते हुए,  
स्याद्वादसिद्धान्त की विजयपताका फरकाते हुए, क्षान्ति आदि धर्मका  
उद्योत करते हुए एवं भौतिकवादी चार्वाक आदि मत का निराकरण  
करते हुए विहार करते २ चंपानगरी के पूर्णभद्र उद्यान में पधारे।

सम्यक् आराधना करतां करतां प्रत्यक्ष ज्ञानकी प्राप्ति मने धर्ष्यते। आ प्रकारेण वि-  
चार करी तेषु प्रशस्त ध्यानना हेतुभूत शुभ अध्यवसायथी अवधि अने मनःपर्य-  
यज्ञानने प्राप्त कथुं, तथा क्षपकश्रेणी उपर आइठ धर्ष्यते केवण पदने पणु प्राप्त करी  
दीधुं। आ प्रकारे अन्य मुनियोअये पणु अज्ञानपरीषह लुतवेो जेधये—

ज्ञानना सद्भाव पक्षभां दृष्टान्त आ प्रकारनुं छे.—

उग्र विहार करवावाणा, मति, श्रुत, अवधि अने मनःपर्ययज्ञानना धारी,  
चौदह पूर्वना पाठी, अने अनवयन अनुसार आदवावाणा गौतमस्वामी शिष्य  
परिवारनी साथे ग्रामानुग्राम विहार करता, सूर्यनी भाइक लव्येना अज्ञानरूप  
अन्धकारने हर करता स्याद्वादसिद्धान्तनी विजयपताका इरकावता, क्षान्ति आदि  
धर्मने उद्योत करता करता अने लौकिकवादि चार्वाक आदि मतनुं निरा-  
करण करता करता, विचरण करता करता, चंपानगरीना पूर्णभद्र उद्यानभां पधायी।

एकदा सोमभद्रनामा कश्चिदधर्मानुयायी, अधर्मसेवी, अधर्मिष्ठः, अधर्मख्याति-  
रधर्मानुरागी, अधर्मप्रलोकी, अधर्मजीवी, अधर्मप्रजनकः, अधर्मप्रचारकः, सकल-  
शास्त्रदर्शी तत्त्वाविमर्शी प्रकाण्डकुतर्ककेसरी शास्त्रार्थं कर्तुं तत्र गौतमस्वामिसंनिधौ  
समागतः। तयोः शास्त्रार्थविषये विवादः प्रवृत्तः, परस्परं खण्डनमण्डनकरणे  
प्रवृत्तयोस्तयोरेकस्य कस्यापि जयः पराजयो वा नाभूत्। गौतमस्वामी  
शास्त्रार्थविषये स्वबुद्धिप्रतिभावलेन नास्तिकमतं निराकर्तुमुद्यतः, सोऽपि नास्तिकः  
स्वबुद्धिकौशलेन गौतमस्वामिनः स्पर्धया वाग्जालं वितन्वन् परिषदि तत्प्रदर्शितयुक्ति-

एक दिन की बात है कि सोमभद्र नामका कोई एक विशिष्ट विद्वान्  
शास्त्रार्थ करने के लिये उनके पास आया। यह जैनधर्म से अतिरिक्त  
धर्म का अनुयायी था, अधर्मसेवी था, अधर्मिष्ठ था, अधर्माख्यायी था,  
अधर्मानुरागी था, अधर्मप्रलोकी था, अधर्मजीवी था, अधर्मप्ररंजक था,  
अधर्मप्रचारक था, सकलशास्त्रदर्शी होने पर भी तत्त्व-अविमर्शी था,  
इसलिये प्रकाण्डकुतर्ककेसरी था। गौतमस्वामी एवं सोमभद्र का  
परस्पर शास्त्रार्थ के विषय में विवाद प्रारम्भ हुआ। एक दूसरे के  
खंडन मंडन करने में प्रवृत्त हुए। इन दोनों में जब किसी का भी जय  
और पराजय नहीं हुआ तब गौतमस्वामी ने शास्त्रार्थ के विषय में  
अपनी प्रतिभा के बल पर नास्तिकमत का निराकरण करना प्रारंभ  
कर दिया। सोमभद्र ने भी जो नास्तिकमत का पक्षपाती था जब  
अपने मत का खंडन होते देखा तो उसने सिर्फ अपनी बुद्धि की ही  
कुशलता से गौतमस्वामी की युक्तियों का स्वर्धा के वश सभा के

એક દિવસની વાત છે કે, સોમભદ્ર નામનો કોઈ એક વિશિષ્ટ વિદ્વાન  
શાસ્ત્રાર્થ કરવા માટે તેમની પાસે આવ્યો. તે જૈનધર્મથી અતિરિક્ત ધર્મનો  
અનુયાયી હતો. અધર્મસેવી હતો, અધર્મિષ્ટ હતો, અધર્માખ્યાયી હતો, અધ-  
ર્માનુરાગી હતો, અધર્મપ્રલોકી હતો, અધર્મજીવી હતો, અધર્મ પ્રરંજક હતો,  
અધર્મ પ્રચારક હતો, સકળ શાસ્ત્ર દર્શી હોવા છતાં પણ તત્વ-અવિમર્શી હતો.  
આ માટે પ્રકાંડકુતર્કકેસરી હતો. ગૌતમસ્વામી અને સોમભદ્રને પરસ્પર  
શાસ્ત્રાર્થના વિષયમાં વિવાદ શરૂ થયો. એક બીજાનું ખંડન મંડન કરવામાં  
પ્રવર્તી બન્યા. આ બંનેમાંથી જ્યારે કોઈનો પણ જય અને પરાજય ન થયો  
ત્યારે ગૌતમસ્વામીએ શાસ્ત્રાર્થના વિષયમાં પોતાની પ્રતિભાના બળ ઉપર  
નાસ્તિકમતનું નિરાકરણ કરવાનું શરૂ કરી દીધું. સોમભદ્ર કે જે નાસ્તિક  
મતનો પક્ષપાતી હતો તેણે જ્યારે પોતાના મતનું ખંડન થતું જોયું તો તેણે  
ફક્ત પોતાની બુદ્ધિની કુશળતાથી સ્પર્ધાને વશ થઈ ગૌતમસ્વામીની યુક્તિઓને



खण्डनात् प्रतिनिवृत्तो नाभूत् , परंतु अन्ततस्तदुक्तयुक्तिप्रतियुक्तिस्वरूपं खण्डयितुम-  
समर्थः सन् मनसि विचारयति—“सत्यम् अयमस्ति गौतमस्वामी महान् विद्या-  
निधिः, यदीदृशं मम मनोगतं भावं गौतमस्वामी कथयिष्यति तदाऽहमस्य शिष्यो  
भविष्यामि ” इति ।

गौतमस्वामी मनःपर्ययज्ञानधारकतया तदानीमेव परिषदि वदति—“अस्य  
तर्ककेसरिणो मनसि संप्रति अयं विचारः समायातः—“सत्यमयं गौतमस्वामी महान्  
विद्यानिधिः परंत्वेवं मम मनोगतं विचारं गौतमस्वामी यदि कथयेत् तर्हि तस्य  
शिष्यो भविष्यामी”ति । इत्युक्त्वा पुनस्तं नास्तिकं पृच्छति—कथय किमयं विचार-

बीच खंडन करना प्रारंभ कर दिया, परन्तु गौतमस्वामी ने जब उसकी  
युक्तियों का पूरे तोर से खंडन किया तो वह उसको संभालने में समर्थ  
नहीं हो सका । गौतमस्वामी के अगाध ज्ञान को देखकर उस समय  
उसके मन में यही विचार आया कि वास्तव में ये गौतमस्वामी विशिष्ट  
विद्यानिधान हैं, परन्तु यदि ये मेरे इस मनोगत भाव को बतला दें  
तो मैं इनका शिष्य हो जाऊँगा ?

गौतमस्वामी मनःपर्ययज्ञान के धारी थे, अतः उसी समय वे  
इसके मानसिक विचार को स्पष्टरूप से जान गये । उन्होंने ने उसी  
समय सभा के बीच में कहा कि इस तर्ककेसरी सोमभद्र के मन में  
इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ है कि “ये गौतमस्वामी महान्  
विद्या के निधान हैं यदि ये मेरे इस अभिप्राय को बतला दे तो मैं  
इनका शिष्य हो जाऊँगा” । गौतमस्वामी ने ऐसा कह कर उस सोम-

सलानी वचनं श्रुत्वा खंडनं करवाने प्रारंभ करी दीया । परंतु गौतमस्वामीके न्याये  
तेनी युक्तिओनुं पुरी रीते श्रुत्वा “तयारे ते चेतानी जतने संभालवामां  
समर्थं न अन्थे । गौतमस्वामीना अगाध ज्ञानने जेधं अये समय अनेना मनमां अये  
विचार आन्थे के, वास्तवमां आ गौतमस्वामी विशिष्टविद्यानिधान छे । परंतु  
जे तेओ मारा आ मनोलावने अतावी आपे तो हुं अेमने शिष्य अनी जडं ।

गौतमस्वामी मनःपर्ययज्ञानना धारी हुता । आथी ओज वपते तेभजे  
अने मानसिक विचारने स्पष्ट रूपी ज्ञानी दीया । अने ओज वपते सलानी  
वचनं कहुं के, आ तर्ककेसरी सोमभद्रना मनमां अये प्रकारने विचार उत्पन्न  
थये छे के, “आ गौतमस्वामी महान् विद्यानिधान छे तेओ जे मारा आ  
अभिप्रायने अतावी आपे तो हुं तेमने शिष्य अनी जडं ।” गौतमस्वामीके  
ओपुं कहीने सोमभद्रने कहुं के, कडे मडानुलाव ! तमारा मनमां आ विचार



स्तव हृदये जातो न वा ? । तदाऽसौ नास्तिकस्तद्वचनं स्वीकुर्वन् वदति—भदन्त ! भवान् सत्यं वदति मम मनस्ययमेव विचारः प्रादुरासीत् । इत्युक्त्वाऽसौ गौतमस्वामिनः शिष्यो भूत्वा दीक्षितो जातः । तेन शिष्येणान्यैश्च शिष्यपरिवारैः सह ग्रामानुग्रामं विहरन् गौतमस्वामी राजगृहनगरे गुणशिखे चैत्ये भगवतः श्रीवर्धमानस्वामिनः संनिधौ समागतः । भगवन्तं वन्दित्वा नमस्कृत्य गौतमस्वामी चतुर्ज्ञानगर्वमकुर्वन् सविनयं ब्रवीति—हे भगवन् ! अयं भगवत्प्रभावादेव सन्मार्गं समायातः । ततो भगवता श्रीवर्धमानस्वामिना श्रमणनिर्ग्रन्थानाहूय कथितम्—भो ! मुनयः ! गौतम-

भद्र से पूछा कि—कहो महानुभाव ! तुम्हारे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ या नहीं ? । तब सोमभद्र ने गौतमस्वामी के इस कथन को स्वीकार करते हुए कहा—भदन्त ! आपने बिलकुल ही यथार्थ कहा है, मेरे मन में ऐसा ही विचार उत्पन्न हुआ था । इस प्रकार अपने हृदयंगम अभिप्राय को प्रगट करते हुए उसने गौतमस्वामी के पास दीक्षा धारण करली और उनका शिष्य हो गया । मुनि सोमभद्र एवं अन्य शिष्यों के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए गौतमस्वामी राजगृह नगर के गुणशिलचैत्य में भगवान् वर्धमान स्वामी के पास आये । वंदना एवं नमस्कार कर के गौतमस्वामी ने अपने में रहे हुए चतुर्ज्ञान की विशिष्टता का गर्व न करके प्रभु से बड़े विनय के साथ कहा—भगवन् ! यह सोमभद्र मुनि आपके ही प्रभाव से सन्मार्ग में आया है । भगवान् श्रीवर्धमानस्वामी ने श्रमणनिर्ग्रन्थों को बुलाकर कहा कि हे मुनियों ! देखो चार

उत्पन्न थयेल के नही ? त्यारे सोमभद्रे गौतमस्वामीना आ कथनने स्वीकार करीने कहुं, भदन्त ! आपे बिलकुल यथार्थ कहुं छे. मारा मनमां आवे ज विचार उत्पन्न थये हुतो. आ प्रकारे पोताना हृदयमांनो अबिप्रायने प्रगट करीने तेणे गौतमस्वामीनी पासे दीक्षा ग्रहण करी लीधी. अने तेमना शिष्य भनी गया. मुनि सोमभद्र अने बिल शिष्यो साथे ग्रामानुग्राम विहार करता करता गौतमस्वामी राजगृह नगरना गुणशिलचैत्यमां भगवान् वर्धमान स्वामीनी पासे आव्या. वंदना अने नमस्कार करी गौतमस्वामीये पोतानामां आरज्ञान विशिष्टतानो गर्व न करतां प्रभुने धरुण विनय साथे कहुं, भगवन् ! आ सोमभद्रमुनि आपना ज प्रभावधी सन्मार्गमां अब्या छे. भगवान् श्री वर्धमान स्वामीये श्रमणनिर्ग्रन्थोने बोलावीने कहुं के, हे मुनियो ! गुण्यो

श्रुतज्ञानचतुर्दशपूर्वधारकः स्वज्ञानप्रभावाद्नेकयुक्तिप्रतियुक्तीः प्रदर्श्य, मत्तगजेन्द्रमिव सोमभद्रं वशीकृत्य दीक्षितं कृत्वाऽऽनीतवान् । अयं गौतमस्य प्रयत्नेनैव मोक्षमार्गमाश्रितः, तथापि गौतमो विनयातिशयं कुर्वन् ज्ञानगर्वं न बहति, न च केवलज्ञानाप्राप्तौ विषादं करोति । यथा गौतमेनाऽवधिमनःपर्ययज्ञानपरीषहं तन्मदाकरणेन केवलज्ञानाप्राप्तिविषयकविषादाकरणेन च परिषह्य तदुपरि विजयः प्राप्तस्तथाऽन्यैरपि मुनिभिरज्ञानाभावपरीषहः सोढव्यः ॥ ४३ ॥

अथ द्वाविंशतितमं दर्शनपरीषहजयं प्राह—

मूलम्—नन्त्थि नूणं परो लोएँ ईड्ढी वा वि तवस्सिणो ।

अर्दुवा "वंचिओ मि-त्ति", ईइ भिक्खू न चित्तएँ ॥४४॥

छाया—नास्ति नूनं परो लोकः ऋद्धिर्वाऽपि तपस्विनः ।

अथवा वञ्चितोऽस्मीति इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥ ४४ ॥

ज्ञान के धारी एवं चतुर्दशपूर्व के पाठी गौतम ने अपने प्रभाव से ही मत्तगजराज की तरह इस सोमभद्र को अनेक युक्ति प्रयुक्तियों द्वारा वश में कर के दीक्षित किया है, और यहां ये इस को ले आये हैं, गौतम का ही यह प्रयत्न है जो यह मोक्षमार्ग में आ गया है, फिर भी गौतम को अपने विनयातिशय से इस बात का जरा भी गर्व नहीं है । तथा केवलज्ञान की अप्राप्ति के विषय में विषाद भी नहीं है । जिस तरह गौतम ने अवधिमनःपर्ययज्ञान के परीषह को उनका मद नहीं करने से तथा केवलज्ञान की अप्राप्ति में विषाद नहीं करने से जीता है उसी तरह तुम सब मुनियों को भी अज्ञानाभाव अर्थात् ज्ञान का सदभाव परीषह जीतना चाहिये ॥ ४३ ॥

आर ज्ञानना धारी अने शोधपूर्वना पाठी गौतमे मत्त गजराजनी भाइक स्वैरविहारी अने युक्ति प्रयुक्तियोंना स्वामी अेवा आभने पोताना ज्ञानवडे वश करीने दीक्षित करेले छे. अने तेने अही लध आवेले छे. गौतमने ज आ प्रयत्न छे के जे आ मोक्षमार्गमा आवेले छे. छतां पणु गौतमने पोताना विनय अतिशयथी आ वातने जरा पणु गर्व नथी तथा केवलज्ञाननी अप्राप्तिना विषयमां विषाद पणु नथी. जेवी रीते गौतमे अवधिमनःपर्ययज्ञानना परीषहने मद नही करवाथी तथा केवलज्ञाननी अप्राप्तिमां विषाद नही करवाथी छतेले छे. आ रीते तमे सधणा मुनियोंअे पणु अज्ञान अभाव अर्थात् ज्ञानने सदभाव छतवे जेध अे. ॥ ४३ ॥

टीका—‘ नत्थि नूणं ’ इत्यादि ।

परो लोकः=परभवः-जन्मान्तरम्, नूनं=निश्चयेन नास्ति=न भवति । अयं भावः-शरीरं हि भूतात्मकं, तदिहैव नश्यति, शरीरे वर्तमानस्य चैतन्यस्यापि भूत-धर्मत्वादेव शरीरेण सह नाशसंभवात् । शरीरव्यतिरेकेण आत्मनः प्रत्यक्षतोऽनुष-लभ्यमानत्वाच्च जन्मान्तरं न भवतीति निश्चेतव्यमिति । यद्वा-नूनमिति संभाव-नायाम् परलोकः स्वर्गादिर्नास्तीति संभावयामि, यतः परलोके गतः कोऽपि नात्रा-गत्य वदति, तस्मात् प्रत्यक्षाभावाच्चास्ति परलोक इति । वा=अथवा, अपि=इहापि-

अब सूत्रकार बाईसवां दर्शनपरीषहजय को बतलाते हैं—  
‘नत्थि नूणं’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( परे लोए नूणं नत्थि-परः लोकः नूनं नास्ति ) निश्चय से जन्मान्तर नहीं है—यह शरीर भूतात्मक है, इसलिये यह तो यहां ही विनिष्ट हो जाता है । इस शरीर में जो चैतन्य वर्तमान है वह भी भूतों का धर्म होने से शरीर के साथ ही नाश को प्राप्त हो जाता है । दूसरे-शरीर से भिन्न आत्मा-नामक कोई पदार्थ है, यह किसी भी प्रत्यक्ष प्रमाण से साबित नहीं होता है अतः परलोकी ( परलोक जाने वाला आत्मा ) का अभाव होने से परलोक का अभाव स्वतः सिद्ध है, अर्थात् जन्मान्तर नहीं है । अथवा “ नूनं ” यह पद संभावना में भी प्रयुक्त किया जाता है इस अपेक्षा परलोक-स्वर्गादिक जो माने जाते हैं सो वे भी नहीं हैं, ऐसी संभावना होती है, क्यों कि कोई ऐसा तो है नहीं जो परलोक में जाकर पश्चात् यहां आकर यह कहे कि मैं अमुक

हुवे सूत्रकार आवीसवा दर्शनपरीषहने उतवानुं भतावे छे—

‘ नत्थि नूणं ’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—परे लोए नूणं नत्थि-परलोकः नूनं नास्ति निश्चयथी जन्मान्तर नथी. आ शरीर भूतात्मक छे, आ भाटे ते तो अडिं ज विनष्ट थथ जय छे. आ शरीरमां जे चैतन्य वर्तमान छे ते पषु भूतोना धर्म डोवाथी शरीरनी साथेसाथ नाश पावे छे, थीनुं शरीरथी भिन्न आत्मा नामनो कोछ पदार्थ छे, ओ कोछ पषु प्रत्यक्ष प्रमाणथी ओणथी शकतो नथी. आथी परलोकीनो ( परलोक जवावाणो आत्मा ) अभाव डोवाथी परलोकनो अभाव स्वतः सिद्ध छे. अर्थात् जन्मान्तर नथी. अथवा ‘ नूनं ’ आ पद संभावनामां पषु प्रयुक्त कसय छे. आ अपेक्षा परलोक, स्वर्गादिक जे मानवामां आवे छे ते पषु नथी ओवी संभावना थाय छे. केभके, कोछ ओवो तो छे ज नहीं जे परलोकमां

शब्दो भिन्नक्रमः अतोऽयमर्थः—तपस्विनोऽपि मम ऋद्धिः=आमशौषध्यादिलब्धि-  
रूपा नास्ति=न विद्यते, तस्या अप्यनुपलभ्यमानत्वात् ।

प्रसङ्गादिह लब्धिभेदा उच्यन्ते—

१ आमशौषधिः, २ विप्रुडोषधिः, ३ खेलौषधिः, ४ जल्लौषधिः, ५ सर्वौषधिः,  
६ संभिन्नश्रोतोलब्धिः, ७ अवधिलब्धिः, ८ ऋजुमतिलब्धिः, ९ विपुलमतिलब्धिः,  
१० चारणलब्धिः, ११ आशीर्विषलब्धिः, १२ केवलिलब्धिः, १३ गणधरलब्धिः,  
१४ पूर्वधरलब्धिः, १५ अर्हल्लब्धिः, १६ चक्रवर्तिलब्धिः, १७ बलदेवलब्धिः,  
१८ वासुदेवलब्धिः, १९/१ क्षीरास्रवलब्धिः, १९/२ मध्वास्रवलब्धिः,  
१९/३ सर्पिरास्रवलब्धिः, २० कोष्ठबुद्धिलब्धिः, २१ पदानुसारिलब्धिः, २२

स्वर्ग से आया हूं, इसलिये प्रत्यक्ष से उनकी उपलब्धि का अभाव होने से परलोक नहीं है । ( वा ) अथवा ( तवस्सिणो इड्ढी अवि-तपस्विनः ऋद्धिः अपि ) तपस्वी जन को ऋद्धिकी प्राप्ति हो जाती है यह भी बात ठीक नहीं है, क्यों कि ऋद्धियों अर्थात् लब्धियों की सिद्धि भी प्रत्यक्षप्रमाण से होती नहीं है । लब्धियां २८ प्रकार की हैं वे ये हैं—

आमशौषधि १, विप्रुडोषधि २, खेलौषधि ३, जल्लौषधि ४, सर्वौषधि ५, संभिन्नश्रोतोलब्धि ६, अवधिलब्धि ७, ऋजुमतिलब्धि ८, विपुलमतिलब्धि ९, चारणलब्धि १०, आशीर्विषलब्धि ११, केवलिलब्धि १२, गणधरलब्धि १३, पूर्वधरलब्धि १४, अर्हल्लब्धि १५, चक्रवर्तिलब्धि १६, बलदेवलब्धि १७, क्षीरास्रवलब्धि १९/१, मध्वास्रवलब्धि १९/२, सर्पिरास्रवलब्धि १९/३, कोष्ठबुद्धिलब्धि २०, पदानुसारिलब्धि २१, बीजबु-

ज्ज पाछे अडिं आवी ते अम कडे के हुं असुक स्वर्गमां ज्ज ने आव्थे धुं. आ माटे प्रत्यक्षथी तेनी उपलब्धीना अभाव होवाथी परलोका नथी. अथवा तवस्सिणो इड्ढी अवि तपस्वीअने ऋद्धियोनी प्राप्ति थं जय छे अे वात पणु ठीक नथी. केमके, ऋद्धियोनी सिद्धि पणु प्रत्यक्ष प्रमाणथी थती नथी. ऋद्धियो २८ प्रकारनी छे. ते आ प्रमाणे छे.

(१) आमशौषधि, (२) विप्रुडोषधि, (३) खेलौषधि, (४) जल्लौषधि, (५) सर्वौषधि, (६) संभिन्नश्रोतोलब्धि, (७) अवधिलब्धि, (८) ऋजुमतिलब्धि, (९) विपुलमतिलब्धि, (१०) चारणलब्धि, (११) आशीर्विषलब्धि, (१२) केवलिलब्धि, (१३) गणधरलब्धि, (१४) पूर्वधरलब्धि, (१५) अर्हल्लब्धि, (१६) चक्रवर्तिलब्धि, (१७) बलदेवलब्धि, (१८) वासुदेवलब्धि, (१९) क्षीरास्रवलब्धि, मध्वास्रवलब्धि, सर्पिरास्रवलब्धि, (२०) कोष्ठबुद्धिलब्धि, (२१) पदानु-

बीजबुद्धिलब्धिः, २३ तेजोलेश्यालब्धिः, २४ आहारकलब्धिः, २५ शीतलेश्यालब्धिः, २६ वैक्रियलब्धिः, २७ अक्षीणमहानसिकलब्धिः, २८ पुलाकलब्धिः ।

भव्यत्वाभव्यत्वविशिष्टानां पुरुषाणां च यावत्यो लब्धयो भवन्ति, ता एवम्—भव्यपुरुषाणामेताः पूर्वोक्ता सर्वा अपि लब्धयो भवन्ति । अर्हश्चक्रवर्तिवासुदेवबलदेवसंभिन्नश्रोतश्चारणपूर्वधरगणधरपुलाकाऽऽहारकलब्धिलक्षणा एतादृश लब्धयो भव्यस्त्रीणां नैव भवन्ति । शेषास्त्वष्टादशलब्धयो भव्यस्त्रीणां भवन्ति ।

यच्च मल्लिस्वामिनः स्त्रीत्वेऽपि तीर्थंकरत्वमभूत् तदाश्चर्यभूतत्वान्न गण्यते । तथा—अनन्तरोक्ताअर्हदाद्या आहारकपर्यन्ता दश लब्धयः, केवलि—ऋजुमति—विपुलमति

द्विलब्धि २२, तेजोलेश्यालब्धि २३, आहारकलब्धि २४, शीतलेश्यालब्धि २५, वैक्रियलब्धि २६, अक्षीणमहानसीकलब्धि २७, पुलाकलब्धि २८।

अब भव्यत्वभावविशिष्ट एवं अभव्यत्वभावविशिष्ट पुरुष को जितनी जितनी लब्धियां होती हैं वे कहते हैं—

भव्यत्वभावविशिष्ट पुरुषों के ये सभी लब्धियां होती हैं । भव्य स्त्रियों के अर्हल्लब्धि १, चक्रवर्तिलब्धि २, वासुदेवलब्धि ३, बलदेवलब्धि ४, संभिन्नश्रोतोलब्धि ५, चारणलब्धि ६, पूर्वधरलब्धि ७, गणधरलब्धि ८, पुलाकलब्धि ९, एवं आहारकलब्धि १०, ये दस लब्धियां नहीं होती हैं । बाकी अवशिष्ट अठारह लब्धियां भव्य स्त्रियों के भी होती हैं । जो मल्लिस्वामी के स्त्रीपना होने पर भी तीर्थंकरत्व वहां हुआ वह अच्छेरा—आश्चर्य होने की वजह से गिना नहीं जाता है । ये १३ तेरह लब्धियां अभव्यपुरुषों के नहीं होती हैं—केवलिलब्धि, ऋजु-

सारिलब्धि, (२२) पीन्युद्धिलब्धि, (२३) तेजोलेश्यालब्धि, (२४) आहारकलब्धि, (२५) शीतलेश्यालब्धि, (२६) वैक्रियलब्धि, (२७) अक्षीणमहानसिकलब्धि, (२८) पुलाकलब्धि.

इसे लव्यत्वभावविशिष्ट अने अलव्यत्वभाव विशिष्ट पुरुषोने नेटली नेटली लब्धियो थाय छे ते अतावे छे.

लव्यत्वभाव विशिष्ट पुरुषोने आ षधी लब्धियो थाय छे. लव्य स्त्रियोने १ अर्हल्लब्धि, २ चक्रवर्तिलब्धि, ३ वासुदेवलब्धि, ४ बलदेवलब्धि, ५ संभिन्नश्रोतोलब्धि, ६ चारणलब्धि, ७ पूर्वधरलब्धि, ८ गणधरलब्धि, ९ पुलाकलब्धि, अने १० आहारकलब्धि. आ दश लब्धियो थती नथी. षाकीनी अठार लब्धियो लव्य स्त्रियोने पषु थाय छे. नेम मल्लि स्वामीने स्त्रीपषु ढोवा छतां पषु तीर्थंकरत्व तेमने थयुं. ते अच्छेरा—आश्चर्य थवानी गषुत्रीमां गषुवामां आवतुं नथी. आ तेर लब्धियो अलव्य पुरुषोने थती नथी



—लब्धयश्चैतास्त्रयोदश लब्धयः पुरुषाणामप्यभव्यानां नैव भवन्ति, शेषाः पञ्चदश लब्धयस्तु भवन्ति । अभव्यस्त्रीणामप्येतास्त्रयोदश लब्धयो न भवन्ति, मधुक्षीरास्रवल-  
न्धिरपिचतुर्दशी तासां नैव भवति । शेषाश्चतुर्दशलब्धयस्तु तासामपि भवन्ति ।

अथासां व्याख्या प्रदर्शयते—आमर्शौषधिः—आमर्शो हि हस्तादिना स्पर्शः, स एवं औषधिः, करादिसंस्पर्शमात्रादेव व्याध्यपनयनसामर्थ्यम् ॥ १ ॥

विप्रुडोषधिः—यन्माहात्म्यान्मूत्रपुरीषावयवमात्रमपि रोगराशिप्रणाशाय संपद्यते सुरभि च सा ॥ २ ॥

मतिलब्धि, विपुलमतिलब्धि तीन ये तथा भव्य स्त्रियों के जिन दश १० ऋद्धियों का अभाव बतलाया गया है वे । इस प्रकार १३ तेरह लब्धियों का अभव्यपुरुषों के अभाव रहता है । बाकी १५ लब्धियां होती हैं । इसी तरह अभव्यस्त्रियों के भी ये ही १३ तेरह लब्धियां नहीं होती हैं । तथा क्षीरा-  
स्रव एवं मध्वास्रव नामकी भी लब्धि उनके नहीं होती है । इस प्रकार तेरह १३ पूर्वोक्त और १४ चौदहवीं क्षीरास्रव, मध्वास्रव सर्पिरास्रवरूप का उनके अभाव जानना चाहिये । बाकी १४ चौदह लब्धियां अभव्य-  
स्त्रियों के होती हैं ।

इन लब्धियों की व्याख्या की जाती है—हस्त आदि द्वारा स्पर्श होने का नाम आमर्श है । यह स्पर्श ही जिनका औषधि का काम करता है वह आमर्शौषधि है । इस लब्धि के धारी को जो रोगी अपने हस्तादिक से छू लेता है उसका वह रोग छूते ही नष्ट हो जाता है १, जिस के प्रभाव से मूत्र, पुरीष, आदि भी रोगराशिके विनाश करने में औष-

डेवदीलब्धि, ऋणुमतिलब्धि, विपुलमतिलब्धि, त्रष्टु आ तथा लव्य स्त्रीओने जे दशऋद्धियोने अभाव भतावे ल छे ते आ प्रकारनी तेर लब्धिओने अलव्य पुर्षेने अभाव रहे छे. बाकी पंढर लब्धिओ थाय छे. आ रीते अलव्य स्त्रीओने पष्टु आ तेर लब्धिओ थती नथी. तथा क्षीरास्रव अने मध्वास्रव सर्पिरास्रव नामनी पष्टु तेने थती नथी. आ रीते तेर पूर्वोक्त अने चौदहमी क्षीरा-  
स्रव मध्वास्रव लब्धिने तेने अभाव लष्टुवे जेधये. बाकी चौद लब्धिओ अलव्य स्त्रीओने थाय छे.

आ लब्धिओनी व्याख्या कडेवामां आवे छे,—हाथ आदि द्वारा थवानुं नाम आमर्श छे. आ स्पर्श जेने औषधितुं काम करे छे ते आमर्श औषधि छे. आ लब्धिना धारीने जे रोगी पोताना हाथथी अडे छे ओने जे रोग अउतां जे नाश पाये छे. (१) जेना प्रभावथी मूत्र, पुरीष, आदि रोग विनाश करवामां औषधितुं काम करवा लागे छे तथा तेमां सुगंध आववा



खेलौषधिः—यत् प्रभावात् श्लेष्मा सर्वरोगापहारकः सुरभिश्च भवति सा ॥३॥

जल्लौषधिः—जल्लो=मलः कर्णवदननासिकानयनजिह्वासमुद्भवः शरीरसमुद्भवश्च, स एव ओषधिर्भवति यत्प्रभावात् सा ॥ ४ ॥

सर्वौषधिः—यत्प्रभावात् सर्वे विष्मूत्रकेशनखादय ओषधयो भवन्ति सा ॥५॥

संभिन्नश्रोतोलब्धिः—यत्प्रभावात् सर्वैरपि शरीरावयवः सुस्पष्ट शृणोति सा । यद्वा—‘ संभिन्नस्रोतस् ’ इतिच्छाया । अत्र स्रोतस् शब्द इन्द्रियवाचकः, तेन यत्प्रभावात्—एकैकमिन्द्रियं सर्वेषामिन्द्रियाणां कार्यं संपादयति सा । यथा—कर्णे-नैव श्रवणदर्शनघ्राणरसनस्पर्शनकार्याणि लब्धिप्रभावात् सम्पादयति ॥ ६ ॥

अवधिलब्धिः—अवधिज्ञानमेव लब्धिः—अवधिलब्धिः । अरूपिद्रव्यं विहाय

धिका काम करने लग जाते हैं, तथा उनमें सुगंध आने लगती है, इस का नाम विप्रुडोषधि है २ । जिसके प्रभाव से श्लेष्मा सर्वरोग का अप-हारक हो जाता है उस का नाम खेलौषधि है । इसके प्रभाव से श्लेष्म भी सुगंधवाला हो जाता है ३ । जिसके प्रभावसे कान, मुख, नासिका, नयन, एवं जिह्वा का मैल, तथा शरीरका मैल औषधि जैसा परिणमित होता है उसका नाम जल्लौषधि है ४ । जिसके प्रभावसे विष्टा, मूत्र, केश, तथा नख आदिक औषधि जैसे हो जाते हैं उसका नाम सर्वौषधि है ५ । जिसके प्रभावसे समस्त शारीरिक अवयवों द्वारा सुना जाय, अथवा एक ही इन्द्रिय जिसके प्रभाव से अन्य इन्द्रियों का काम करने लग जाय उस का नाम संभिन्नश्रोतोलब्धि है । जिसके यह लब्धि होती है वह एक कर्ण इन्द्रिय से ही अवशिष्ट इन्द्रियों के काम—दर्शनादिक करने की शक्ति-वाला हो जाता है ६ । जिसके प्रभाव से अमूर्तिक द्रव्य को छोड़ कर मूर्तिक द्रव्यको जानने की सामर्थ्य आत्मामें प्रकट हो जाती है उसका नाम

लागे छे. तेनुं नाम विप्रुड औषधि छे. (२) जेना प्रभावथी श्लेष्मा सर्व रोगानो नाश करनार छे तेनुं नाम खेलौषधि छे, तेना प्रभावथी श्लेष्म यण सुगंधवाणा थर्ध नय छे. (३) जेना प्रभावथी कान, भोडुं, नाक, नेणु अने ललनो भेद तथा शरीरनो भेद, औषधिनी जेम परिणमित अने छे तेनुं नाम जल औषधि छे. (४) जेना प्रभावथी विष्टा, मूत्र, वाण, नथ, आदि औषधि जेवा थर्ध नय छे तेनुं नाम सर्वौषधि छे. (५) जेना प्रभावथी शरीरनां तमाम अवयवो द्वारा संलणाय अथवा अेक न इन्द्रिय जेना प्रभावथी थील इन्द्रियोनुं काम करवा लागी नय तेनुं नाम संभिन्नश्रोतोलब्धि छे. जेने आ लब्धि होय छे ते अेक कर्ण इन्द्रियथी न अवशिष्ट इन्द्रियोनां

उ० ६७

રૂપિદ્રવ્યવિષયકમિન્દ્રિયનિરપેક્ષં મનઃપ્રગિધાનવીર્યકં પ્રતિવિશિષ્ટક્ષયોપશમનિમિ-  
ત્તકં દેવમનુષ્યતિર્યઙ્નારકસ્વામિકં જ્ઞાનં ભવતિ યત્પ્રભાવાત્ સા ॥ ૭ ॥

ઋજુમતિલબ્ધિઃ—ઋજુઃ=સામાન્ય-વિશેષરહિતં, દેશકાલાદ્યનેકપર્યાયવ-  
ર્જિતં, સંજ્ઞિના ચિન્તિતં, તદ્ગ્રાહિણી મતિઃ—ઋજુમતિઃ, સૈવ લબ્ધિઃ। સા ચ-  
ઘટોડનેન ચિન્તિતઃ, इत्येवं संज्ञिमनोद्रव्यपरिच्छेदः ॥८॥

વિપુલમતિલબ્ધિઃ—વિશુદ્ધતરઃ સંપૂર્ણમનુષ્યક્ષેત્રવર્તિસંજ્ઞિપઠ્ઠ્વેન્દ્રિયમનોદ્રવ્ય-  
પ્રત્યક્ષીકરણહેતુર્મનઃપર્યયજ્ઞાનવિશેષઃ। યથા-પરેણ ચિન્તિતં ઘટં પ્રસંગતો બહુભિઃ

અવધિલબ્ધિ હૈ, यह अवधि, इन्द्रिय और मनकी सहायता से उत्पन्न नहीं होता है। अवधिज्ञानावरणीय कर्मके प्रतिविशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होता है। देव, मनुष्य, नरक एवं तीर्यञ्च, इस प्रकार चारों गतियों के जीव इस के स्वामी हो सकते हैं ७। जिस के प्रभाव से-  
देश, काल आदि अनेक पर्यायों से वर्जित पदार्थ का सामान्य ज्ञान होता है, और जो संज्ञी जीव के द्वारा चिन्तित पदार्थ को ग्रहण करता है उसका नाम ऋजुमतिलब्धि है। जैसे जिसने अपने मन के द्वारा घट का विचार किया तो ऋजुमतिलब्धि वाला उसे शीघ्र बतला देगा कि इसने घट का विचार किया है ८। जिसके प्रभाव से मनुष्यक्षेत्र-  
वर्ती समस्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मनोद्रव्य को साक्षात् करनेवाला जो विशुद्धतर ज्ञान होता है उसका नाम विपुलमतिलब्धि है। यह मनःपर्यय ज्ञान का एक भेद है। जैसे किसी ने घट का विचार किया

કામ દર્શનાદિક કરવાની શક્તિવાળા બની બાય છે. (૬) જેના પ્રભાવથી અમુર્તિક દ્રવ્યને છોડીને મુર્તિક દ્રવ્યને બાષ્પવાનું સમર્થ આત્મામાં પ્રગટ થાય છે. તેનું નામ અવધિલબ્ધિ છે. આ અવધિ ઈન્દ્રિય અને મનની સહાયતાથી ઉત્પન્ન થતા નથી. અવધિ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના પ્રતિવિશિષ્ટ ક્ષયોપશમથી ઉત્પન્ન થાય છે, દેવ, મનુષ્ય, નરક અને તિર્યચ આ ચાર ગતીના જીવો તેના સ્વામી બની શકે છે. (૭) જેના પ્રભાવ દેશ, કાલ આદિ અનેક પર્યાયોથી વર્જિત સામાન્ય જ્ઞાન થાય છે. અને જે સંજ્ઞી જીવ દ્વારા ચિન્તિત પદાર્થને ગ્રહણ કરે છે. અને તેનું નામ ઋજુમતિલબ્ધિ છે. જેવો જેણે પોતાના મનની સાથે વિચાર કર્યો તો તે ઋજુમતિ લબ્ધિવાળા તેને તુરંત બતાવી શકે છે કે આણું મનમાં આ વિચાર કર્યો છે. (૮) જેના પ્રભાવથી મનુષ્ય ક્ષેત્રવર્તી સમસ્તસંજ્ઞી પંચેન્દ્રિય જીવોના મનોદ્રવ્યોને સાક્ષાત કરવાવાળું જે વિશુદ્ધતરજ્ઞાન હોય છે. તેનું નામ વિપુલમતિલબ્ધિ છે આ મનઃપર્યયજ્ઞાનનો એક ભેદ છે. જેમ કેઈએ મનમાં વિચાર કર્યો હોય તો આ લબ્ધિવાળા તેને પ્રસંગવશ એવા

पर्यायरूपेण जानाति, तत्र घटोऽयं द्रव्यतः सौवर्णः, क्षेत्रतो मरुदेशीयस्तथा गृहाभ्यन्तरस्थः, कालतस्त्रैमासिकः, भावतः-सुसंस्थानचाकचिक्यादियुक्तः, आकारेण महान्, इत्यादि प्रचुरविशेषणविशिष्टं जानाति ॥ ९ ॥ चारणलब्धिः-आकाशगमनशक्तिः ॥ १० ॥ आशीर्विषलब्धिः-आशीः-अनुग्रहः, विषं-निग्रहः, तद्रूपालब्धिः, निग्रहानुग्रहसामर्थ्यमित्यर्थः ॥ ११ ॥ केवलिलब्धिः-केवलिनः केवलज्ञानसिद्धिः ॥ १२ ॥ गणधरलब्धिः-गणधरत्वप्राप्तिः ॥ १३ ॥ पूर्वधरलब्धिः-पूर्वधरत्वप्राप्तिः ॥ १४ ॥ अर्हल्लब्धिः-अर्हत्वप्राप्तिः ॥ १५ ॥ चक्रवर्तिलब्धिः-

है तो इस लब्धिवाला उसे प्रसंगवश इस रूप से स्पष्ट जान लेता है कि इसने द्रव्य की अपेक्षा सुवर्ण का, क्षेत्र की अपेक्षा मरुदेश का अथवा घर के भीतर का, काल की अपेक्षा तीन मास का, एवं भाव की अपेक्षा अच्छे आकार का, अथवा चाकचिक्यादि रूप से युक्त घट का चिन्तन किया है। इस प्रकार विपुलमतिलब्धि वाला घटको अनेक विशेषणां से विशिष्ट जान सकता है तब कि ऋजुमतिलब्धि वाला इस प्रकार से घट को नहीं जान सकता है वह तो उसे सामान्यरूप से ही जानता है ९। आकाश में गमन करने की शक्ति जिस लब्धि द्वारा उत्पन्न हो जाती है वह चारणलब्धि है १०। जिसके प्रभाव से अनुग्रह और निग्रह करने की शक्ति प्रगट हो जावे वह आशीर्विषलब्धि है ११। केवलियों के जो केवलज्ञान की सिद्धि होती है उसका नाम केवलिलब्धि है १२। गणधरपद की प्राप्ति होने में जो कारण होती है वह गणधरलब्धि है १३। पूर्वधरत्व की प्राप्ति पूर्वधरलब्धि। १४, अर्हत्पद की प्राप्ति अर्हल्लब्धि १५, चक्रधरत्व की प्राप्ति चक्रवर्ति-

तेवा इपथी रूपं न्नाणी दे छे के, तेणु द्रव्यनी अपेक्षा, सुवर्णना क्षेत्रनी अपेक्षा, मरुदेशना अथवा घरनी अंदरना काणनी अपेक्षा त्रय मासनुं अने भावनी अपेक्षा सारा आकारनुं अथवा गणकाट अक्यकाटादि इपथी युक्त घट न्नाणु छे. आ प्रकारे विपुलमति लब्धिवाणा घटने अनेक विशेषणोथी विशिष्ट न्नाणी शके छे. त्यारे ऋजुमति लब्धिवाणा आ रीते घटने न्नाणी शकता नथी. ते तो अने सामान्यइपथी न्नाणु छे. (९) आकाशमां उडवानी शक्ति ने लब्धिद्वारा उत्पन्न थाय छे ते चारणलब्धि छे. (१०) जेना प्रभावथी अनुग्रह अने निग्रह करवानी शक्ति प्रगट थाय छे ते आशीर्विषलब्धि छे. (११) केवलीअने केवणज्ञानी लब्धि थाय छे तेनुं नाम केवलिलब्धि छे. (१२) गणधर पदनी प्राप्ति थवामां ने कारण होय छे ते गणधरलब्धि छे. (१३) पूर्वधरत्वनी प्राप्ति पूर्वधरलब्धि. (१४) अर्हत्पदनी प्राप्ति अर्हत्त्वलब्धि. (१५)

चक्रधरत्वप्राप्तिः ॥१६॥ बलदेवलब्धिः—बलदेवत्वप्राप्तिः ॥१७॥ वासुदेवलब्धिः—वासुदेवत्वप्राप्तिः ॥१८॥ क्षीरास्रवलब्धिः—यत्प्रभावाद्बचनं क्षीरवन्मधुरं भवति ॥ १९।१ ॥ मध्वास्रवलब्धिः—यत्प्रभावाद्बचनं मधुतुल्यं भवति ॥ १९।२ ॥ सर्पिरास्रवलब्धिः—यत्प्रभावाद्बचनं घृतवत् स्निग्धमरूक्षं भवति ॥१९।३ ॥

कोष्ठबुद्धिलब्धिः—यथा कोष्ठके धान्यं प्रक्षिप्तं तदवस्थमेव चिरमप्यवतिष्ठते, न किमपि कालान्तरेऽपि गलति, एवं यस्मिन् पुरुषे श्रुतज्ञानं निक्षिप्तं तदवस्थमेव चिरकालं तिष्ठति न कदापि विस्मरति यत्प्रभावात् सा ॥२०॥ पदानुसारिणी लब्धिः—यत्प्रभावात् पुनरेकमपि श्रुतपदमवधार्य शेषमश्रुतमपितदवस्थमेव श्रुतमवगाहते सा ॥ २१ ॥ बीजबुद्धिलब्धिः—यथा—एकस्माद् बीजान्महातरुरूपपद्यते,

लब्धि १६, बलदेव पद की प्राप्ति बलदेवलब्धि १७, वासुदेव पद की प्राप्ति वासुदेवलब्धि १८, क्षीर जैसे मीठे वचनों की प्राप्ति जिसके प्रभाव से हो वह क्षीरास्रवलब्धि, मधुतुल्य मधुर वचनों का होना वह मध्वास्रवलब्धि, सिग्ध एवं अरूक्ष वचन जिसके प्रभाव से हो वह सर्पिरास्रवलब्धि है १९। जिस प्रकार कोठे में रक्खा हुआ धान्य ज्यों का त्यों बहुत काल तक रहता है—बिगडता नहीं है, उसी प्रकार जिसके प्रभाव से प्राप्त श्रुत भी ज्यों का त्यों स्थिर रहे विस्मृत न हो उसका नाम कोष्ठबुद्धिलब्धि है २० जिसके प्रभाव से श्रुत का एक पद भी अवधारित होने पर शेष नहीं सुना हुआ भी श्रुत अवधारित हो जाय इस का नाम पदानुसारिणीलब्धि है २१। जिस प्रकार एक छोटे से भी बीज से विशाल काय वृक्ष उत्पन्न हो जाता है, उसी प्रकार उत्पाद, व्यय,

चक्रधरत्वनी प्राप्ति चक्रवर्तिलब्धि. (१६) अलहेवपदनी प्राप्ति अलहेवलब्धि. (१७) वासुदेव पदनी प्राप्ति वासुदेवलब्धि. (१८) क्षीर जेवां मीठा वचनोनी जेना प्रभावथी थाय ते क्षीरास्रवलब्धि. मधुतुल्य मधुर वचनोनुं अनवुं ते मध्वास्रवलब्धि. सिग्ध अने अरूक्षवचन जेना प्रभावथी थाय ते सर्पिरास्रवलब्धि छे. (१९) जे रीते कोठीमां राणेलुं अनाज जेमनुं तेम धष्या समथ सुधी रहे छे. छातां अगडतुं नथी. ते प्रकारे जेना प्रभावथी प्राप्त श्रुत पणु अन्यानुं त्यां स्थिर रहे, विस्मृत न अने, तेनुं नाम कोष्ठबुद्धिलब्धि छे. (२०) जेना प्रभावथी श्रुतनुं अेक पद पणु अवधारित थवाथी आगण न सांलणेल पणु श्रुत अवधारित थर्ध अथ तेनुं नाम पदानुसारीणीलब्धि छे. (२१) जे रीते अेक नाना थीअथी विशालकाय वृक्ष उत्पन्न थाय छे. ते प्रकारे उत्पाद,

तथा—उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदित्यादिरूपमर्थप्रधानं पदमर्थपदं, तदेकं बीजभूत-  
मर्थपदमनुसृत्य शेषमपि तथैव प्रभूततरमर्थपदं जानाति यत्प्रभावात् सा ॥ २२ ॥

तेजोलेइयालब्धिः — यत्प्रभावाद्नेकयोजनप्रमाणक्षेत्राश्रितवस्तुदहनदक्षती-  
व्रतेजोनिर्जनशक्तिरुत्पद्यते सा । इह यः खलु शमी—क्षमाशीलो मुनिर्निरन्तरम-  
पानकं षष्ठतपः करोति, पारणकदिने च सनखकुलमाषमुष्ट्या जलचुलुकेनैव  
एकेन आत्मानं यापयति, पुनरातापनां करोति तस्य षण्मासान्ते तेजोलेइयालब्धि-  
रुत्पद्यते ॥२३॥ आहारकलब्धिः—आहारकशरीरकरणशक्तिः । आहारकशरीरं च-  
स्फटिकवदुज्ज्वलं हस्तप्रमाणमेकस्मिन् भवे द्विः, संसारे चतुर्वारं कृत्वा मोक्षमवश्यं

एवं ध्रौव्य युक्त सत् है, इत्यादिरूप एक भी अर्थ प्रधानपद के अनु-  
सरण से शेष प्रभूततर अर्थपद भी इसी तरह ज्ञात हो जावे वह  
बीजबुद्धिलब्धि है । २२ जिसके प्रभाव से अनेकयोजनप्रमाण क्षेत्र  
में रही हुई वस्तु को जलाने वाले तेज को निकाल ने की शक्ति उत्पन्न  
हो जाती है इसका नाम तेजोलेइयालब्धि है, जो शमी—क्षमाशीलमुनि  
निरन्तर चौविहार षष्ठ तप करता है, और पारणा के दिन सनख-  
कल्माषमुष्टि अर्थात्—सीझे हुए एक मुट्ठी भर उडद खाकर उसी  
समय एक चुल्लू भर पानी पीता है, और आतापना लेता है, इस प्रकार  
छह महिने तक लगातार करता रहता है तो उसके तेजोलेइयालब्धि  
उत्पन्न हो जाती है । २३ आहारक—शरीर के उत्पन्न होने की लब्धि का  
नाम आहारकलब्धि है । आहारक शरीर स्फटिकमणि के जैसा उज्ज्वल  
तथा एक हाथ का होता है । एक भव में इसकी प्राप्ति जीव को दो बार,  
तथा संसार अवस्था में चार बार तक होती है, पश्चात् वह जीव मुक्ति

व्यय, अने ध्रौव्य युक्त सत् छे ३५ अर्थ प्रधानपदना अनुसरणुथी  
शेष प्रभूततरअर्थ पद पणु तेवी रीते ज्ञात थर्धलय ते थ्रीणुधुद्धि लब्धि छे. (२२)  
जेना प्रभावथी अनेक योजन प्रमाणक्षेत्रमां रडेली वस्तुआने लणुनार तेजने  
डाढवानी शक्ति उत्पन्न थाय छे तेनुं नाम तेजोलेइयालब्धि छे. जे शमी—क्षमाशील  
मुनि निरंतर चौविहार छठ तप करे छे अने पारणाना द्विसे पाईला अर्थ मुठीभर  
अडद भाईने अर्थ वभते अर्थ आपवुं पाणी पीये छे अने आतापना ले छे आ  
प्रकार लगातार छ महिना सुधी करता रडे छे तो तेने तेजोलेइयालब्धि उत्पन्न थाय  
छे. (२३) आहारक शरीरना उत्पन्न थवानी लब्धितुं नाम आहारकलब्धि छे, आहा-  
रक शरीर स्फटिकमणीना जेपुं उल्लवण अने अर्थ हाथतुं डोय छे. अर्थ लवमां तेनी  
प्राप्ति छवने जे वार तथा संसार अवस्थामां चार वार थाय छे. पछीथी अर्थ



प्रयाति । कश्चिच्चतुर्दशपूर्वधारी ऋद्धिं प्राप्य, तीर्थंकरसमीपे प्रेषणार्थमाहारकशरीरं करोति । तत्र प्रेषणं निगोदादिसंशयविच्छेदनार्थं, सूक्ष्मार्थनिर्णयार्थम् ऋद्धिदर्शनार्थं, प्राणिरक्षणार्थं, छद्मस्थोपग्रहार्थं च भवति । उक्तञ्च—

पाणिदय-ऋद्धिदरिसण, छउमत्थोवग्गहणहेउं वा ।

सुहुमत्थ संसयच्छे, -यत्थं गमणं जिणस्संते ॥ १ ॥

इदमत्र बोध्यम्—आहारकशरीरं यत्र स्थाने लब्धिधारी मुनिः प्रेषयति, तत्र भगवतोऽनुपस्थितौ तस्मादाहारकशरीरादूनहस्तं शरीरं निःसरति, तदेव भगवतः

को अवश्य प्राप्त कर लेता है । चतुर्दश पूर्व का पाठी कोई मुनि आहारक लब्धि को प्राप्त कर तीर्थंकर के समीप में भेजने के लिये आहारक शरीर की रचना करता है । निगोदादिसंबंधी संशय को दूर करने रूप सूक्ष्म अर्थ का निर्णय करने के लिये १ ऋद्धि के दर्शन करने के लिये २ प्राणियों की रक्षा करने के लिये ३ और छद्मस्थों का उपकार करने के लिये ४ इस शरीर का तीर्थंकर के पादमूल में गमन होता है । कहा भी है—

“पाणिदय-रिद्धिदंसण, -छउमत्थोवग्गहणहेउं वा ।

सुहुमत्थसंसयच्छेयत्थं गमणं जिणस्संते ॥ १ ॥”

छाया—पाणिदया-ऋद्धिदर्शन-छद्मस्थोपग्रहणहेतुं वा ।

सूक्ष्मार्थसंशयच्छेदार्थं गमनं जिनस्यान्ते ॥ ”

आहारक शरीर को जिस स्थान में लब्धिधारी मुनि भेजता है वहाँ यदि भगवान् न हों तो उस आहारक शरीर से एक हाथ से कुछ

लुप्त अवश्य मुक्ति प्राप्त करी द्ये छे. यीदपूर्वना पाठी कोई मुनि आहारक लब्धिने प्राप्त करी तीर्थंकरना समीपमां भोक्कवा भाटे आहारक शरीरनी रचना करे छे. निगोदादि संबंधि संशयने दूर दूर करवा भाटे, सूक्ष्म अर्थने निष्पद्य करवा भाटे, ऋद्धिनां दर्शन करवा भाटे, प्राणीओनी रक्षा करवा भाटे, अने छद्मस्थाना उपकार करवा भाटे आ शरीरनु तीर्थंकरना पादमूलमां गमन थाय छे. कहुं पथु छे.—

“पाणिदय-ऋद्धिदरिसण, छउमत्थोवग्गहणहेउं वा ।

सुहुमत्थ-संसयच्छेयत्थं, गमणं जिणस्संते ॥ ”

छाया—पाणिदया ऋद्धिदर्शन, -छद्मस्थोपग्रहणहेतुं वा ।

सूक्ष्मार्थसंशयच्छेदार्थं, गमनं जिनस्यान्ते ॥

आहारक शरीरने जे स्थानमां लब्धिधारी मुनि भोक्कवे छे त्यां न्ने लगवान न होय तो ते आहारक शरीरथी ओक हाथ ओछुं ( सुं उहाथ ) शरीर भीणुं



संनिधौ गत्वा स्वकार्यं संपाद्य हस्तप्रमाणशरीरे प्रविशति । तच्चाहारकशरीरं स्वमूल-  
भूते शरीरे पुनर्लीनं भवति ॥२४॥ शीतलेइयालब्धिः—परमकारुण्यवशादनुप्राप्तं  
प्रति तेजोलेइयाप्रशमनहेतुशीतलेजोविशेषविमोचनसामर्थ्यम् ॥ २५ ॥ वैक्रिय-  
लब्धिः — वैक्रियशरीरकरणशक्तिः । सा चानेकविधा—अणुत्व—महत्त्व—लघुत्व—  
गुरुत्व—प्राप्ति—प्राकाम्ये—शित्व—वशित्वा—ऽप्रतिघातित्वाऽन्तर्धान—कामरूपित्वादि-  
भेदात् ॥२६॥ अक्षीणमहानसीलब्धिः—महानसम्—अन्नपाकस्थानं, तदाश्रित-  
त्वाद्ब्रह्ममपि महानसमुच्यते, तच्च यत्प्रभावात् अक्षीणं=स्वल्पमप्यन्नं पात्रे पतितं  
पुरुषशतसहस्रैरपि तृप्त्या भुक्तं न क्षीयते, यावत् स्वेन तदन्नं न भुज्यते सा ॥२७॥

कम शरीर और निकलता है, वही भगवान के पास जाकर अपने कार्य को  
संपादित कर पूर्व के हस्तप्रमाण शरीर में समा जाता है, और वह पूर्व-  
हस्त प्रमाण शरीर भी फिर वहां से लौट कर अपने मूल शरीर में समा-  
जाता है २४। परम करुणा के वश से दया करने योग्य प्राणी के प्रति तेजो-  
लेइया के प्रशमन का हेतु जो शीततेजविशेष को निकालने की शक्ति है  
उसका नाम शीतलेइयालब्धि है २५। वैक्रियशरीर को करने की  
शक्ति का नाम वैक्रियलब्धि है। यह लब्धि अणुत्व, महत्त्व, लघुत्व,  
गुरुत्व, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघातित्व, अन्तर्धान,  
कामरूपित्व आदि के भेद से अनेक प्रकार की है २६। महानस-शब्द  
का अर्थ यद्यपि रसोईघर है तो भी तदाश्रित होने से अन्न को भी  
महानस कह दिया गया है इसलिये महानस शब्द से अन्न समझना

नीकणे छे ते लगवाननी पासे जेठने पोताना कार्यने संपादित करी पूर्वना हस्त  
प्रमाण शरीरमां समार्ध नय छे. अने ते पूर्वहस्त प्रमाण शरीर पणु त्यांथी  
पाधुं करी पोताना मूल शरीरमां समार्ध नय छे. (२४) परम करुणा वशथी दया  
करीने योग्य प्राणी तरइ तेजोलेइयाना प्रशमनने हेतु, जे शीत तेज विशेषने काढ-  
वानी शक्ति छे तेनुं नाम शीतलेइयालब्धि छे. (२५) वैक्रियशरीरने अनाववानी  
शक्तिनुं नाम वैक्रियलब्धि छे. आ लब्धि अणुत्व, महत्त्व, लघुत्व, गुरुत्व, प्राप्ति,  
प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व, अप्रतिघातित्व, अन्तर्धान, कामरूपित्व आदिना लेइथी  
अनेक प्रकारनी छे. (२६) महानस शब्दने अर्थ जे के रसोई घर छे तो पणु  
तदाश्रित होवाथी अन्नने पणु महानस कहवायेल छे. माटे महानस शब्दथी अन्न  
समजवुं जेठ अ. आथी आ अन्न लोअन सामग्री जेना प्रभावथी अक्षीण-स्वल्प

पुलाकलब्धिः—तपःश्रुतहेतुका प्रवचनलाघवादिप्रयोजने जिनशासनविरोधिनः सबलवाहनस्य चक्रवर्त्यादेरपि पुलाकवन्निःसारकरणे समर्था या शक्तिः सा ॥२८॥

अथवा—इति=अनेन—केशलुञ्जनेन पञ्चमहाव्रताङ्गीकारेण, यातनात्मकेनान-शनादिना तपसा, पृथिवीकायादिसप्तदशविधसंयमेन महाकष्टप्रददीक्षाग्रहणेन चेत्यर्थः, वञ्चितोऽस्मि=कामसुखादपवर्जितोऽस्मीत्यर्थः । उक्तं च—

चाहिये अतः यह अन्न-भोजनसामग्री जिसके प्रभाव से अक्षीण-स्वल्प भी अन्न पात्र में पड़े तो भी उससे हजारों मनुष्य भरपेट आहार करले फीर भी खूटे नहीं, जब तक कि वह स्वयं आहार न करले, ऐसी शक्ति का नाम अक्षीणमहानस लब्धि है २७ । प्रवचन की लघुता के समय जिनशासन का विरोधी सेना और वाहनसहित चक्रवर्ती भी होवे तो वह भी जिसके प्रभाव से पुलाक (दानारहित घास का पुला) की तरह निःसार कर दिया जाता है ऐसी शक्ति का नाम पुलाकलब्धि है, यह लब्धि तप एवं श्रुत हेतुक होती है २८ ।

इस प्रकार ये अठाईस लब्धिया जो बतलाई गई हैं वे, अथवा इनमें से कोई एक लब्धि भी मुझे प्राप्त नहीं हुई है । इसी प्रकार केश लुञ्चन करना पंचमहाव्रतों का पालन करना, यतनात्मक अनशनादिक तपों का तपना, पृथिवीकायादिकों की रक्षा करने रूप सत्तरह १७ प्रकार के संयम का पालना, महाकष्टप्रद दीक्षा का ग्रहण करना, इन सब बातों से मैं ठगा गया हूँ—अर्थात् सांसारिक विलासता से मुख

पण्य अन्न पात्रमां पडे तो पण्य तेनाथी हुअरे मनुष्य पेटभरीने आहार करी दे छतां पण्य भूटे नहीं ज्यां सुधी ते पोते आहार न करी दे. आवी शक्तिनुं नाम अक्षीणमहानसलब्धि छे. (२७) प्रवचननी लघुताना समये उन शासनना विरोधी सेना अने वाहन सहित कोर्ध चक्रवर्ती होय तो ते पण्य जेना प्रभावथी पुलाकनी भाङ्क निःसार करी देवामां आवे छे. अवी शक्तिनुं नाम पुलाकशक्ति छे. आ लब्धि तप अने श्रुत हेतुक होय छे. (२८)

आ प्रकारे अे अठ्यावीस लब्धिया जे जताववामां आवी छे ते अथवा आमांथी अेक लब्धि पण्य मने प्राप्त थयेल नथी. आ रीते केशनेो दोअ करवे पांय महाव्रतानुं पालन करवुं, यतनात्मक अनशनादिक तपोने तपवा, पृथ्वी-कायादिकोनी रक्षा करवाइप सत्तर प्रकारना संयमनुं पालन, महाकष्टप्रद दीक्षाने ग्रहण करवी, आ सधणी वातोथी हुं ठगायो छुं. अर्थात् सांसारिक विलासताथी

“तपांसि यातनाश्चित्राः संयमो भोगवञ्चना” इत्यादि। इति=एतद्, भिक्षुः, न चिन्तयेत्=न विचारयेत्। अस्य चिन्तनस्य संयमघातकत्वेन तुच्छत्वात्।

तथाहि-यदुच्यते-जन्मान्तरं नास्ति, शरीरस्य भूतसमुदायात्मकत्वात् भूतधर्म-त्वाच्चैतन्यरूपस्यात्मनः शरीरेण सहैव नाशात्, इति, तदसत्-न वयं शरीरस्य जन्मा-न्तराऽनुगामित्वमङ्गीकुर्मः, किंत्वात्मन एव, स चात्मा नास्ति भूतधर्मः, तथाहि-

मोड़ कर जो मैं इन कष्टप्रद निःसार कार्यों की आराधना में लग गया हूँ वह सब व्यर्थ है। कहा भी है-

तपांसि यातनाश्चित्राः, संयमो भोगवञ्चना” इत्यादि।

अर्थात्-तप एक विचित्र प्रकार का कष्ट है, संयम जो है वह भागों से ठगाना है।

भूतवादी बनकर भिक्षु को इस प्रकार का विचार नहीं करना चाहिये। क्यों कि इस प्रकार की विचारधारा सर्वथा तुच्छ बतलाई गई है। इसीका विचार अब यहां से किया जाता है।

जो भूतवादी यह कहता है कि “जन्मान्तर नहीं है क्यों कि यह शरीर भूतों का समुदायस्वरूप है और चैतन्यरूप आत्मा भी भूत का धर्म है। उसका विनाश भी शरीर के विनाश के साथ ही हो जाता है।” सो इसका इस प्रकार का कहना ठीक नहीं है। क्यों कि हम लोग अर्थात् जैन-शरीर को परलोक में जानेवाला नहीं मानते हैं, हम तो परलोक में जानेवाली एक आत्मा को ही मानते हैं। वह आत्मा भूतों का धर्म नहीं है। जब भिन्न २ अवस्था में भूतों से

श्रेष्ठ भरडीने हुं आ कष्टप्रद निःसार कार्योंनी आराधनामां लागी गये छुं ते सधुं व्यर्थ छे. कहुं छे-

“ तपांसि यातनाश्चित्राः संयमो भोगवञ्चना ” इत्यादि.

अर्थात् तप अेक विशिष्ट प्रकारनुं कष्ट छे संयम अे छे ते भोगाने ठगानर छे. लौतिकवादी अपनी भिक्षुअे आ प्रकारने विचार नहीं करवे. अेध अे. केमके, आ प्रकारनी विचारधारा सर्वथा तुच्छ अताववामां आवी छे तेने विचार हुवे अहीं कहेवामां आवे छे.

पहेलां अे लौतिकवादीअे अेवुं कहुं छे के, “ जन्मांतर नथी केमके आ शरीर अूताना समुदाय स्वरूप छे अने चैतन्यरूप आत्मा पण अूताने धर्म छे. तेने विनाश पण शरीरने विनाशनी साथे थाय छे.” तेनुं तेवा प्रकारनुं कहेवुं ठीक नथी. केमके, अमे लोक अर्थात् जैनशरीरने परलोकमां अवा वाणुं मानता नथी. अमे तो अेक आत्मा अूताने धर्म नथी. अयारे अुदी अुदी

एकैकस्य पृथिव्यादेः पृथक्त्वे चैतन्योत्पत्तिर्न भवति चेत् तर्हि पृथिव्यादिसमुदाया-  
दपि चैतन्यं न भवितुमर्हति । यथैकस्मात् सिकताकणात् तैलं नोत्पद्यते, तेन सिकता-  
समुदायादपि न भवति तैलोत्पत्तिः किंच—चैतन्यस्य भूतधर्मत्वस्वीकारे मरणाभावः  
स्यात्, मृतकायेऽपि पृथिव्यादिभूतानां सद्भावात्, न च मृतकाये वायोस्तेजसो  
वा अभावान्मरणसद्भावः इति वाच्यम्, यतः मृतकाये शोफोपलब्धेर्न वायोरभावः ।  
पक्तिस्वभावस्य च क्रोधस्य (शटनस्य) दर्शनाच्चाग्नौभाव इति । अथ सूक्ष्मः कश्चिद्

चैतन्य की उत्पत्ति नहीं होती है तो उनके समुदाय में चैतन्य की  
उत्पत्ति कैसे हो सकती है, जैसे एक सिकता (रेती) के कण से जब  
तैल नहीं निकलता है तो समुदाय से तैल निकल सकेगा यह बात  
कौन बुद्धिमान मान्य कर सकता है । दूसरी बात यह भी है कि जब  
चैतन्य को भूतों का धर्म माना जायगा तो मरण का अभाव प्रसक्त  
होता है, क्यों कि मृतकाय में भी पृथिवी आदि भूतों का सद्भाव  
तो रहता ही है । यदि मृत शरीर में मरणसद्भाव ख्यापित करने के  
लिये यह कहा जाय कि “वहां पर वायु एवं तेज का अभाव है  
इसलिये इन दो तत्त्वों का अभाव होने से वहां भी मरण का सद्भाव  
अंगीकार किया जाता है” सो ऐसा कहना इसलिये उचित नहीं है  
कि मृतकाय में भी शोफ (सूजन) की उपलब्धि होने से वायु का वहां  
असद्भाव नहीं माना जा सकता है । अग्नि तत्त्व का भी वहां इसी  
तरह अभाव नहीं माना जा सकता है, क्यों कि इसके अभाव में

अवस्थाभां भूतोथी चैतन्यनी उत्पत्ति नथी थती तो तेना समुदायभां चैतन्यनी  
उत्पत्ति केवी रीते थर्छ शके ? जेम रेतीना अेक कणुभांथी तेल नीकणी शकतुं  
नथी तो रेतीना ढगलाभांथी तेल नीकणी शके तेषुं केषु कही शके ? भील  
वात अे पषु छे के, जे चैतन्यने भूतोना धर्म मानवाभां आवे तो मरणुने  
अभाव प्रसक्त थाय छे. केभके, मृतकायभां पषु पृथ्वी आदि भूतोना सद्भाव  
तो रहेलो न छे. जे मरणु शरीरभां मरणु सद्भाव ख्यापित करवा भाटे अेम  
कडेवाभां आवे के, “त्यां वायु अने तेजने अभाव छे भाटे आ अने तत्त्वोना  
अभाव होवाथी त्यां पषु मरणुने सद्भाव अंगिकार करवाभां आवे छे.” तो अेम  
कडेपुं अे भाटे उचित नथी के, मृतकायभां पषु सुजननी उपलब्धि होवाथी  
वायुने त्यां असद्भाव मानी शकतो नथी. अग्नि तत्त्वने पषु त्यां तेवी रीते  
अभाव नथी मानवाभां आवतो केभके, तेना अभावभां अेषुं सडपुं अनतुं  
नथी, जे कदाय अे उपर अेम कडेवाभां आवे के, “सूक्ष्म वायु तथा अग्नि

वायुविशेषोऽन्निर्वा ततोऽप त इति मन्यते, तर्हि जीव एव नामान्तरेण स्वीकृतो भवति, अस्तु यत् किञ्चिदेतत्, कथमपि भूतसद्गुदायमात्रेण न चैतन्याविर्भाव इति सिद्धम्, पृथिव्यादिषु एकत्र व्यवस्थापितेष्वपि चैतन्यानुपलब्धेः । अथ कायाकार-परिणतौ सत्यां तदभिव्यक्तिरिष्यते, तदपि न, यतो लेप्यमयपुत्तलिकायां समस्तभूतसद्भावेऽपि जडत्वमेवोल्भ्यते, तदेवमन्वयव्यतिरेकाभ्यामालोच्यमानो

उसका सड़ना हो नहीं सकता हैं । यदि इस पर यों कहा जाय कि “ सूक्ष्म वायु तथा अग्नि वहां से अपगत हो चुकी है अतः शरीर में मरण का व्यवहार हो जायगा ” सो ऐसा कहना आत्मा के ही सद्भाव का ख्यापक माना जाता है । तुम जिसे सूक्ष्म वायु या अग्नि कहते हो हम उसे आत्मा कहते हैं । भूतसद्गुदाय से चैतन्य का आविर्भाव इसलिये भी सिद्ध नहीं होता है कि एक ही जगह इन चारों को स्थापित करने पर भी उनसे चैतन्य की उप बधि नहीं होती है । यदि भूतवादी इस पर यों कहे कि “ जब ये भूत कायाकार परिणत होते हैं तब ही जाकर इन से चैतन्य की अभिव्यक्ति होती है ” सो ऐसा कहना भी इस लिये उचित नहीं है कि लेप्यमयपुत्तलिका में समस्तभूतों का सद्भाव होने पर भी वहां चैतन्य की उपलब्धि नहीं होती है, किन्तु जड़ता ही उपलब्ध होती है । कार्यकारणभाव अन्वयव्यतिरेक के सद्भाव में ही बनता है । इस प्रकार यहाँ भूत और चैतन्य का अन्वयव्यतिरेक घटित नहीं होता है, -अतः भूतों का कार्य

त्यांथी अपगत थर्छ गयेद छे, आथी शरीरमां भरषुनो वडेवार थवानो छे” तो अेषुं कडेपुं ते आत्माना सद्भावने ज्ञापक मनाथ छे. तमे सूक्ष्म वायु अगगतो अग्नि कडे छे अमे तेने आत्मा कडीये छीअे भूत समुदायथी चैतन्यनो आविर्भाव अे भाटे पषु सिद्ध नथी थतो के, अेकज् ज्ञयाअे ते आरेने लेणा करवा छतां पषु तेमां चैतन्यनी उपलब्धि थती नथी. जे कदाच भूतवादी आ उपर अेषुं कडे के, “ ज्ञयारे अे भूतकायआकार परिषुत डोय छे त्यारे ज् ज्छ ने तेनार्थी चैतन्यनी अभिव्यक्ति थाथ छे.” तो अेषुं कडेपुं पषु अे भाटे ठीक नथी के, लेप्यमय पुत्तलिकामां समस्त भूतानो सद्भाव डोवा छतां पषु त्यां चैतन्यनी उपलब्धि थती नथी परंतु जडताज् उपलब्ध थाथ छे. कार्यकारण भाव अन्वय व्यतिरेकना सद्भावमां ज् अने छे. आ प्रकार अडिं भूत अने चैतन्यनो अन्वय व्यतिरेक घटीत थतो नथी भाटे भूतानुं कार्य चैतन्य छे ते कोर्छ प्रकारे सिद्ध थतुं नथी. आ भाटे आ चैतन्य शुषु



નાયં ચૈતન્યાख्यो गुणो भूतानां भवितुमर्हति । तस्मात् पारिशेष्याच्चैतन्यमात्मनो धर्म इति सिद्धान्तोऽनुसरणीयः ।

यदप्युक्तम्—आत्मनः प्रत्यक्षतोऽनुपलभ्यमानत्वादिति तदप्यसदेव, सर्वेषां स्वात्मा स्वप्रत्यक्ष एव, ज्ञानादीनामात्मगुणानां प्रत्यक्षानुभवात् घटमहं जानामीत्याद्यनुभवस्य सर्वसिद्धत्वात् । यथा घटादीनां रूपादयः प्रत्यक्षतयोपलभ्यन्ते, तथाऽऽत्मनोऽपि ज्ञानसुखादयो गुणाः कस्य न सन्ति प्रत्यक्षानुभवगोचराः, किंतु सर्वेषामाबालवृद्धानां प्रत्यक्षानुभवगोचराः सन्त्येव । उक्तंच—‘आत्मप्रत्यक्ष आत्माऽयम्’ इत्यादि ।

चैतन्य है यह किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता है इसलिये यह चैतन्यगुण पारिशेष्यात् ( अनुमानविशेष से ) आत्मा का ही एक धर्म है, इसी से आत्माका सद्भाव ख्यापित होता है यह सिद्धान्त अनुसर्णीय है ।

तथा और भी जो ऐसा कहा है कि “ आत्मा की प्रत्यक्ष से अनुपलब्धि होने की वजह से सत्ता ज्ञात नहीं होती है ” सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि प्रत्येक संसारी जीवों को अपनी २ आत्मा का स्वानुभव से प्रत्यक्ष होता है, कारण कि उसके ज्ञानादिक गुणों का प्रत्यक्ष अनुभव होता रहता है । “ मैं घट को जानता हूँ ” यह अनुभव तो सब को ही होता है । जिस प्रकार घटादिकों के रूपादिक गुण प्रत्यक्ष से उपलब्ध हैं उसी प्रकार आत्मा के भी ज्ञानादिक गुण समस्त जीवों को प्रत्यक्ष से अनुभवित हो रहे हैं । ऐसा कोई भी जीव नहीं है चाहे वह बालक हो चाहे वृद्ध कि जिसे इन का प्रत्यक्ष से अनुभव न होता हो । कहा भी है—“ आत्मप्रत्यक्ष आत्माऽयम् ” इत्यादि ।

અનુમાન વિશેષથી આત્માનો જ એક ધર્મ છે. આથી જ આત્માનો સદ્ભાવ સ્થાપિત થાય છે. આ સિદ્ધાંત અનુસરણીય છે.

તેમ વધુમાં એમ પણ કહ્યું છે કે, “ આત્માની પ્રત્યક્ષથી અનુપલબ્ધિ હોવાના કારણે સત્તા જ્ઞાત થતી નથી. ” તેવું કહેવું પણ ઠીક નથી. કેમકે, પ્રત્યેક સંસારી જીવોને પોત પોતાના આત્માના સ્વાનુભવથી પ્રત્યક્ષ થાય છે. કારણ કે, તેને જ્ઞાનાદિક ગુણોનો પ્રત્યક્ષ અનુભવ થતો રહે છે. ” હું ઘટને જાણું છું ” આ અનુભવ તો દરેકને થાય છે. જેવી રીતે ઘટાદિકના તથા રૂપાદિકના ગુણ પ્રત્યક્ષથી ઉપલબ્ધ છે જેવી રીતે આત્માને પણ જ્ઞાનાદિક ગુણ સમસ્ત જીવોને પ્રત્યક્ષથી અનુભવિત થઈ રહે છે. એવો કોઈ પણ જીવ નથી, ભલે તે બાળક અથવા વૃદ્ધ હોય કે જેને તેનો પ્રત્યક્ષથી અનુભવ ન થતો હોય. કહ્યું છે કે—“ આત્મ-પ્રત્યક્ષ આત્માઽયમ્ ” ઇત્યાદિ ! જે આની ઉપર એમ કહેવામાં આવે કે,



ननु न यं दृष्टिगोचरो भवतीत्यतो नास्तीत्युच्यते ? नायमप्येकान्तः, उक्तं हि—  
 “ न च नास्तीह तत् सर्वं, चक्षुषा यन्न गृह्यते । ” अन्यथा चैतन्यमपि दृष्टि-  
 गोचरी भवतीति भूतधर्मत्वेन, तदप्यसत् स्यात् । अथ यदि तत् स्वसंविदितम्, अतः  
 सदित्युच्यते, तर्हि अयमात्माऽपि स्वसंविदित एव भवतीति विद्यमानो भवतु। यतः—  
 अस्त्येव चात्मा प्रत्यक्षो, जीवो ह्यात्मानमात्मना ।  
 अहमस्मीति संवेत्ति, रूपादीनि यथेन्द्रियैः ॥ १ ॥ इति ॥

यदि इस पर यों कहा जाय कि—“ यह आत्मा दृष्टिगोचर नहीं होता है इस लिये यह नहीं है ” सो यह कथन एकान्ततः सत्य नहीं माना जा सकता । “ न च नास्तीह तत्सर्वं, चक्षुषा यन्न गृह्यते ” जो चक्षु से गृहीत नहीं होता है वह नहीं है, ऐसा मत कहो, अर्थात् जो वस्तु चक्षु से नहीं दिखाई दे वह भी है ऐसा कहो । नहीं तो तुम्हारे मतसे चैतन्य भी दृष्टिगोचर नहीं होता है अतः वह भूत का धर्म है यह बात असत् माननी पड़ेगी । इस पर यदि यह कहा जाय कि “ वह तो स्वसंवेदन प्रत्यक्ष का विषय है अतः उसे सत् मान लिया जावेगा ” तो आत्मा भी स्वसंवेदित है इस लिये इसे भी सत् मानना चाहिये ।

यतः—“ अस्त्येव चात्मा प्रत्यक्षो, जीवो ह्यात्मानमात्मना ।

अहमस्मीति संवेत्ति, रूपादीनि यथेन्द्रियैः ” ॥ १ ॥

अर्थात् अत्मा प्रत्यक्ष से है क्यों कि जीव ही आत्मा से आत्मा को “मैं हूँ” इस प्रकार संवेदन (अनुभव) करता है, जैसे इन्द्रियों से रूपादिकका

“ आत्मा दृष्टिगोचर यतो नथी माटे आ नथी ” तो आ कहेबुं ऐकान्ततः सत्य मानवाभां आवतुं नथी. “ न च नास्तीह तत्सर्वं चक्षुषा यन्न गृह्यते ” जे चक्षुथी गृहित यतुं नथी, ते नथी. ऐबुं न कडे. अर्थात् जे वस्तु चक्षुथी न होयाय ते पणु छे ऐम कडे. नडी तो तमारा मतथी चैतन्य पणु दृष्टिगोचर यतुं नथी. माटे ते भूतने धर्म छे ऐ वात असत्य मानवी पडशे. आ उपर जे कडाच ऐम कडेवाभां आवे के, “ ते तो स्वसंवेदन प्रत्यक्षने विषय छे आथी ऐने सायुं मानी लेवाभां आवे ” तो आत्मा पणु स्वसंवेदित छे आ माटे तेने पणु सत् मानवे जेछे ऐ. कहुं पणु छे—

“ अस्त्येव चात्मा प्रत्यक्षो, जीवो ह्यात्मानमात्मना ।

अहमस्मीति संवेत्ति, रूपादीनि यथेन्द्रियैः ॥ १ ॥ ”

अर्थात्—आत्मा प्रत्यक्षथी छे. केमके, एवज आत्माथी आत्माने “हूँ छु” आ प्रकारने संवेदन (अनुभव) करे छे. जेम धन्द्रियोथी इप आदिनुं संवेदन थाय छे.

अलमधिकेन, यथा चैतन्यमस्तीति मन्यते, तथा ऽऽत्माऽस्तीत्यपि मन्तव्यः ।  
तथा चोक्तम्—

ज्ञानं स्वस्थं परस्थं वा यथा ज्ञानेन गृह्यते ।

ज्ञाता स्वस्थः परस्थो वा, तथा ज्ञानेन गृह्यताम् ॥ १ ॥

अथाऽऽत्मसत्त्वे तदभावे सर्वसम्बन्ध्यनुपलम्भस्य हेतुत्वं न सम्भवतीत्युच्यते,  
यतोऽयमप्यसिद्धो हेतुः, अहमस्मीत्यनुभवस्य सद्भावात्, सर्वेषां प्राणिनां हि स्वस्य  
स्वस्यात्मन उपलम्भः प्रतिषेद्धमशक्यः, केवलानां च सर्वात्मनामुपलम्भः प्रतिषेद्धमशक्यः।

संवेदन होता है । जिस प्रकार उक्त कथन से चैतन्य का सद्भाव माना  
जाता है उसी प्रकार आत्माका भी सद्भाव मानना चाहिये । कहा भी है—

“ ज्ञानं स्वस्थं परस्थं वा, यथा ज्ञानेन गृह्यते ।

ज्ञाता स्वस्थो परस्थो वा, तथा ज्ञानेन गृह्यताम् ” ॥ १ ॥

जिस प्रकार अपने में रहा हुआ ज्ञान, तथा दूसरे में रहा हुआ ज्ञान,  
ज्ञान से जाना जाता है उसी प्रकार अपने और दूसरे में रहे हुए ज्ञाता  
( आत्मा ) को भी ज्ञान से ग्रहण कर लेना चाहिये ॥ १ ॥

आत्मा के अभावमें जो अनुपलम्भरूप हेतु दिया गया है । सो  
आत्मा का अनुपलम्भ सब को होता है, यदि ऐसा कहा जाय तो यह हेतु  
असिद्ध हो जाता है, क्यों कि सब को आत्मा का अनुपलम्भ है एक  
तो यह बात इन्द्रियजन्य प्रत्यक्ष से जान नहीं सकते दूसरे प्रत्येक प्राणी  
को “ अहमस्मि ” इत्याकारक स्वसंवेदनरूप प्रत्यक्ष से उसकी उपलब्धि

ने रीते आ कथनथी चैतन्यनो सद्भाव मानी देवाभां आवे अेव रीते  
आत्मानो पषु सद्भाव मानवो नेध अे. कहुं पषु छे—

“ ज्ञानं स्वस्थं परस्थं वा, यथाज्ञानेन गृह्यते ।

ज्ञाता स्वस्थो परस्थो वा, तथा ज्ञानेन गृह्यताम् ॥ १ ॥ ”

ने रीते पोतानाभां रडेहुं ज्ञान तथा भीजभां रडेहुं ज्ञान ज्ञानथी भाषी  
शकाय छे अेवी रीते पोताभां अने भीजभां रडेवा आत्माने पषु ज्ञानथी  
समल देवे नेध अे.

आत्माना अभावभां ने अनुपलम्भरूप हेतु आपेद छे ते आत्मानो  
अनुपलम्भ दरेकने थाय छे. तेहुं ने कडेवाभां आवे तो आ हेतु असिद्ध अनी  
भाय छे केभडे, सवणाने आत्मानुं अनुपलम्भ छे. अेक तो आ वात धन्द्रिय-  
जन्य प्रत्यक्षथी भाषी नथी शकातां भीज प्रत्येक प्राणीने “ अहमस्मि ” इत्यादि

यदपि-ऋद्धिर्वा तपस्विनो नास्तीत्युक्तं, तदपि निष्प्रमाणकम् । ऋद्धेरभावेऽनुपलम्भो हेतुरुक्तः सोऽपि स्वसम्बन्धो, सर्वसम्बन्धी वा ? तत्र स्वसम्बन्धी नियतदेशकालापेक्षयाऽन्यथा वाऽनुपलम्भः स्यात्, तत्र प्रथमपक्षे क्वचित् कदाचित् पञ्चमारकापेक्षया भरतक्षेत्रापेक्षया ऋद्धेरनुपलम्भस्योपलम्भस्य चास्माकमपि संमतत्वात् । द्वितीयपक्षे तु हेतोरनैकान्तिकता, यथा देशविप्रकृष्टानां मेरुप्रभृतीनां कालविप्रकृष्टानां पितामहादीनामनुपलम्भेऽपि सत्त्वात् । दृश्यते च क्वचित् कदाचि-  
ल्लब्धिप्रभावाचरणधूलिस्पर्शादि मात्रेण व्याधि प्रशमनादिः । ततश्चेहाऽपि भरतादौ

होती है । केवलियोंको तो सब आत्माका उपलम्भ होता है, यह तो निषेध नहीं किया जा सकता ।

तथा लब्धियों की असत्ता प्रकट करने के लिये भी आपने जो अनुपलंभरूप हेतु कहा है सो वह भी ठीक नहीं है । यहां पर अनुपलंभ स्वसंबंधी ग्रहण किया है या सर्वसंबंधी । स्वसंबंधी अनुपलंभ भी कैसा ? नियतदेशकालापेक्ष, अथवा अनियतदेशकालापेक्ष ? प्रथमपक्ष में सिद्धसाधनता है । अर्थात् यह बात तो हम भी मानते हैं कि इस पंचमकाल के अंदर भरतक्षेत्र में लब्धियों का अनुपलम्भ है । द्वितीयपक्ष में हेतु अनैकान्तिक है । देशविप्रकृष्ट मेवादिकों का, कालविप्रकृष्ट पितामह आदिकों का अनुपलम्भ होने पर भी उनका सद्भाव माना जाता है । कहीं २ कभो २ लब्धि के प्रभाव से चरणधूलि के स्पर्श आदि करने मात्र से व्याधि की शांति होती हुई देखी जाती है । उसी तरह यहां भरत आदि क्षेत्रों में भी पहिले समय में लब्धियों का सद्भाव

कारण स्व संवेदन इय प्रत्यक्षथो तेनी उपलब्धि थाय छे. केवलीओने तो अधा आत्मानो उपलंभ थाय छे. आनो तो निषेध थर्ध शकै तेम नथी.

अर्थात्—ऋद्धिओनी असत्ता प्रकट करवा माटे पणु आपे ने अनुपलंभ इय हेतु कडेल छे ते पणु डीक नथी. आ स्थणे अनुपलंभ स्व संबंधी थडणु करेल छे, के सर्व संबंधी? स्व संबंधि अनुपलंभ पणु डेवो ? नियत देशकाण अपेक्ष के अनियत देशकाण अपेक्ष. प्रथम पक्षमां सिद्ध साधनता छे. अर्थात् ओ वात अमे पणु मानीओ छीये के, आ पंचमकाणनी अंदर भरतक्षेत्रमां ऋद्धिओना अनुपलंभ छे. भीज पक्षमां हेतु अनैकान्तिक छे. देशविप्रकृष्ट मेवादि कोनुं कालविप्रकृष्ट पितामह आदि कोनुं अनुपलंभ होवा छतां पणु तेनो सद्भाव मानवामां आवे छे. कोर्ध कोर्ध स्थणे कदी कदी लब्धिना प्रभावथी अरणुअनो स्पर्श आदि करवा मात्रथी व्याधिनी शांति थती नेवामां आवे छे. ओज रीते अडिं भरत आदि क्षेत्रोमां पणु पडेवा समयमां लब्धि-

कालान्तरेऽतीते काले, महाविदेहेषु च सर्वकालमृद्धीनामपि सद्भावात् । सर्वसम्बन्धी अनुपलम्भस्तु असिद्ध एव ।

यदपि “ कामसुखाद् वञ्चितोऽस्मी ”-त्युक्तं तदप्यसमीक्षितम्, विषयसुखं हि रागद्वेषमोहजननद्वारेण अतृप्तिकाङ्क्षाशोकविषादादिभिर्विविधकर्मबन्धहेतुत्वेन च चतुर्गतिभ्रमणकारकत्वेन बहुलदुःखजनकत्वात् प्रेक्षावतां तत्त्ववेदिनामनुपादेयम् । विषसंपृक्ताऽन्नसदृशं कामसुखं कस्य विवेकिनो मनो रमयेत्, न कस्यापि ।

यदपि-तपसो यातनात्मकत्वमुक्तं, तदप्यसत्-सकलदुःखमूढकर्मक्षयहेतुत्वात्, मनइन्द्रिययोगानामहानिकारकत्वेन तपसो यथाशक्ति विधानात् । उक्तं हि—

था तथा विदेहक्षेत्र में सर्वदा लब्धियों का सद्भाव रहता है । सर्वसंबन्धी अनुपलम्भ तो असिद्ध ही है अर्थात् सर्वसम्बन्धी अनुपलम्भ लब्धियों की अभावात्मकता प्रकट करने में असमर्थ है ।

“ मैं कामसुख से वंचित हो गया हूँ ” जो यह बात कही है वह भी ठीक नहीं है क्योंकि विषयसुख रागद्वेष मोह की उत्पत्ति का कारण होने से, अतृप्ति, कांक्षा, शोक एवं विषाद आदि को उत्पन्न करते रहते हैं, इनसे विविध कर्मों का बंध होता रहता है, उस के उदय से जीव चारों गतियों में भ्रमण करता २ अनेक दुःखपरम्परा को वहाँ भोगता रहता है, अतः काम को सुख मानना यह भ्रम है । इसी लिये तत्त्वज्ञानियों के लिये ये उपादेय नहीं हैं । विचार किया जाय तो विषमिश्रित अन्नकी तरह ये कामसुख किस विवेकी के मन को आनंद पहुँचा सकते हैं, अर्थात् किसी को भी नहीं । तप को यातनात्मक कहना इसलिये अनु-

ओना सद्भाव रहे छे. सर्वसंबंधि अनुपलंभ तो असिद्ध न छे. अर्थात् सर्वसंबंधि अनुपलंभ ऋद्धिओनी अभावात्मकता प्रकट करवाभा असमर्थ छे.

“ हुं कामसुखधी वंचित अनी गयो छुं ” आ वात कडी छे ते पणु ठीक नथी. केमके, विषयसुख रागद्वेष मोहनी उत्पत्तिनुं द्वार होवाथी अतृप्तिकांक्षा सुख शोक अने विषाद आदिने उत्पन्न करतां रहे छे, तेनाथी विविध कर्मोना अंध थतो रहे छे. तेना उदयथी एव यारे गतीओभां भ्रमणु करतां अनेक दुःख परंपराने त्यां लोगवतो रहे छे. माटे कामने सुख मानवुं ओ भ्रम छे. आथी तत्त्वज्ञानीओ माटे ओ उपादेय नथी. विचारवाभां आवे तो विषमिश्रित अन्ननी भाइक ओ काम सुख कया विवेकीना मनने आनंद पडोयाडी शके छे ? अर्थात् कोछने पणु नडीं. तपने यातनात्मक कडेवुं ओ माटे अनुचित छे के, ओनाथी कोछने पणु कष्ट पडोयतुं नथी. आ कारणे ते

मनइन्द्रिययोगाना,—महानिः कथिता जिनैः ।

यतोऽत्र तत्कथं तस्य, युक्ता स्याद् दुःखरूपता ? ॥ १ ॥

केशलुञ्चनादीनामपि किञ्चित् पीडाजनकत्वेऽपि समीहितार्थप्रापकत्वेन दुःखदायकत्वं नास्ति । तदुक्तम्—

“ दृष्टा चेष्टार्थसंसिद्धौ, कायपीडाऽप्यदुःखदा ।

रत्नादिवणिगादीनां, तद्वदत्रापि भाव्यताम् ” ॥ १ ॥

चित्त है कि उस से किसी को भी कष्ट नहीं पहुंचता है प्रत्युत यह सकल दुःखों के मूल कारण कर्मों का क्षय करनेवाला है । मन, इन्द्रिय तथा, योग इन को हानि न पहुंचने पावे इस रूप से यथाशक्ति तपस्या करने का विधान है । कहा भी है—

मनइन्द्रिययोगाना,—महानिः कथिता जिनैः ।

यतोऽत्र तत्कथं तस्य, युक्ता स्यात् दुःखरूपता ॥ १ ॥

तपमें मन और इन्द्रियों के योगों की हानि नहीं होती है, ऐसा भगवानने फरमाया है तो फिर तपमें दुःखरूपता कैसे मानी जाय, अर्थात् तप दुःखरूप नहीं है किन्तु सुखरूप है ॥ १ ॥

यद्यपि केशलुञ्चन आदि क्रियाएँ किञ्चित् पीडाजनक हैं तो भी समीहित अर्थ की सिद्धिके कारण होने से उनमें सर्वथा दुःखदायकता नहीं है । कहा भी है—

दृष्टा चेष्टार्थसंसिद्धौ, कायपीडाऽप्यदुःखदा ।

रत्नादिवणिगादीनां, तद्वदत्रापि भाव्यताम् ॥ १ ॥

सकल दुःखोत्तुं भूषण कारण अने कर्मोना क्षय करनार छे. मन इन्द्रिय तथा योग अने हानी न पड़ोये तेवा इपथी यथाशक्ति तपस्या करवानुं विधान छे. कह्युं पण्य छे—

मनइन्द्रिययोगाना,—महानिः, कथिता जिनैः ।

यतोऽत्र तत्कथं तस्य, युक्ता स्यात् दुःखरूपता ॥ १ ॥

तपमां मन अने इन्द्रियोना योगोनी हानी थती नथी अवेनुं लगवाने इरमांयुं छे. तो पछी तपमां दुःखइपता केम मानवामां आवे ? अर्थात् तप दुःख इप नथी परंतु सुभइप छे.

केश लोचन आदि क्रियाओ ले के पिडाजनक कहेवाय छे तो पण्य समीहित सिद्धितुं कारण होवाथी तेनामां सर्वथा दुःखदायकता नथी. कह्युं पण्य छे—

दृष्टा चेष्टार्थ संसिद्धौ, कायपीडाऽप्यदुःखदा ।

रत्नादिवणिगादीनां, तद्वदत्रापि भाव्यताम् ॥ १ ॥

उ० ६९

इत्थमत्रानुमानप्रयोगः—यत् इष्टार्थप्रसाधकं, न तत् कायपीडाकरत्वेऽपि दुःखदायकं, यथा रत्नवणिजामध्वश्रमादि । इष्टार्थप्रसाधकं च तपः। न चाऽस्याप्यसिद्धता, प्रशम-हेतुत्वेन तपसस्तत्परिपक्तितारतम्यात् परमानन्दतारतम्यस्यानुभूयमानत्वेन तत्प्रकर्षे तस्यापि प्रकर्षाऽनुमानात् । प्रयोगश्च—यत्तारतम्येन यस्य तारतम्यं तस्य प्रकर्षे तत्प्रकर्षः, यथाऽग्नितापप्रकर्षे काञ्चनविशुद्धिप्रकर्षः, अनुभूयते च प्रशमतारतम्येन परमानन्दतारतम्यम्, लोकप्रतीतत्वाच्च ॥ ४४ ॥

इसलिये ऐसा अनुमान बनाना चाहिये कि जो इष्ट अर्थ का प्रसाधक होता है वह काय का पीड़ा कारक होने पर भी दुःखदायक नहीं होता है, जैसे रत्नव्यापारियों का मार्गश्रम देशाटन का परिश्रम, इसलिये तप भी इष्ट अर्थ का प्रसाधक हैं अतः यह भी दुःखदायक नहीं है । तप में इष्टार्थप्रसाधकता असिद्धि नहीं है, क्यों कि तप प्रशम का हेतु है । तप द्वारा प्रशमभाव की जैसी २ तरतमता आत्मा में होगी वैसी २ परमानन्द की तरतमता भी आत्मा में अनुभवित होगी इसलिये प्रशम के प्रकर्ष में परमानन्द का भी प्रकर्ष अनुमित होता है । जैसे अग्नि के ताप के प्रकर्ष में काञ्चन की विशुद्धि का प्रकर्ष, प्रयोग से देखा जाता है । अतः परम्परा रूप से तप इष्ट अर्थ का प्रसाधक सिद्ध होता है, क्यों कि तप प्रशम का कारण, प्रशम परमानन्द का कारण इस प्रकार बनता है ॥ ४४ ॥

આ માટે એવું અનુમાન બનાવવું જોઈએ કે, જે ઈષ્ટ, અર્થના પ્રસાદક હોય છે—તે કાયાને પીડા કારક હોવા છતાં પણ દુઃખ દાયક થતા નથી. જેમકે રત્નવ્યાપારીઓનો માર્ગશ્રમ દેશાટનનો પરિશ્રમ—આ માટે તપ પણ ઈષ્ટ અર્થનો પ્રસાદક છે. માટે એ પણ દુઃખદાયક નથી. તપમાં ઈષ્ટાર્થ પ્રસાદકતા અસિદ્ધ નથી, કેમકે, તપ પ્રશમનો હેતુ છે. તપ દ્વારા પ્રશમભાવની જેવી જેવી તારતમ્યતા આત્મામાં હશે તેવી તેવી પરમાનંદની તરતમતા પણ આત્મામાં અનુભવિત થશે. આ માટે પ્રશમના પ્રકર્ષમાં પરમાનંદનો પણ પ્રકર્ષ અનુમિત થાય છે. જેમ અગ્નિના તાપના પ્રકર્ષમાં કાંચનની શુદ્ધિનો પ્રકર્ષ પ્રયોગથી દેખાય છે. આથી પરંપરા રૂપથી તપ પ્રશમનું કારણ, પ્રશમ પરમાનંદનું કારણ આ પ્રકારથી બને છે ॥ ૪૪ ॥



तथा—

मूलम्—अभू जिणा अत्थि जिणा, अदुवा वि भविस्सइ ।

मुंसं ते एव माहंसु, इइ भिक्खू न चित्तए ॥ ४५ ॥

छाया—अभूवन् जिनाः सन्ति जिनाः, अथवाऽपि भविष्यन्ति ।

मृषा ते एवमाहुः, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत् ॥ ४५ ॥

टीका—‘अभू जिणा’ इत्यादि ।

जिनाः—रागादिजयिनः—केवलिनः, अभूवन् अतीतकाले, ‘जिनाः सन्ति’=वर्तमानकाले जिना विद्यन्ते विदेहेषु इत्यर्थः। अथवा—जिना भविष्यन्ति, भरतादिषु इत्यपि। अपि शब्दो भिन्नक्रमः, ते=जिनास्तित्वादिनः, एवम्=उक्तरीत्या मृषा=मिथ्या-अलीकम्, असत्यमर्थम्, आहुः=वदन्ति, इति भिक्षुर्न चिन्तयेत्, अनुमानादि प्रमाणैर्जिनानां कालत्रयवर्तित्वसिद्धेः ।

अयं भावः—मिथ्यात्वमोहनीयोदयप्रभावात् कथंचिदसम्यक्त्वे समुत्पन्ने प्रत्यक्षा-

तथा—‘अभू जिणा’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(जिणा-जिनाः) रागादिक के जीतने वाले केवली भगवान् (अभू-अभूवन्) अतीतकाल में हुवे हैं (जिणा अत्थि-जिनाः सन्ति) वर्तमानकाल में जिन हैं (अदुवा वि भविस्सइ-अथवाऽपि भविष्यति) अथवा भविष्यत्काल में होंगे। (एवं-एवम्) इस प्रकार जो कहते हैं (ते मुंसं आहंसु-ते मृषा आहुः) वे मिथ्या कहते हैं, (इइ भिक्खू न चित्तए-इति भिक्षुः न चिन्तयेत्) इस प्रकार भिक्षु विचार नहीं करे, कारण कि अनुमानादिक प्रमाणों से जिनका त्रिकाल में अस्तित्व सिद्ध होता है ।

भावार्थ—आत्मामें जब मिथ्यात्वमोहनीयका उदय रहता है तब उसके

तथा—‘अभू जिणा’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—जिणा-जिनाः रागादिने अतीतकाले केवली भगवान् अभू-अभूवन् अतीतकालमां तथा छे जिणा अत्थि-जिनाः सन्ति वर्तमानकालमां अन छे अदुवा वि भविस्सइ-अथवाऽपि भविष्यति अथवा भविष्यत् कालमां थरे एवं-एवम् आ प्रकारनुं जे कहेवामां आवे छे ते मुंसं आहंसु-ते मृषा आहुः ते मिथ्या करे छे. इइ भिक्खू न चित्तए-इति भिक्षुः न चिन्तयेत् आ प्रकारने विचार भिक्षु न करे. कारणके, अनुमानादिक प्रमाणोथी जेनुं त्रिकालमां अस्तित्व सिद्ध थयुं छे.

भावार्थ—आत्मामां न्यारे मिथ्यात्व मोहनियने उदय होय छे त्यारे तेना

दिप्रमाणैः सद्भावनाया तन्निराकृत्य सम्यक्त्वरक्षणो नैव दर्शनपरीषहः सोढव्य इति ।  
अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

अवन्तीनगर्या वैश्रवणाचार्यः शिष्यपरिवारेण सह समवसृतः । तस्य दृढमति नामकः शिष्य आसीत्, स उग्रतपस्वी उग्रविहारी उत्कृष्टक्रियापालकश्चासीत्, अन्तप्रान्ताहारेणावमोदरिकादि तपः करोति, वीरासनादिकं करोति, ग्रीष्मकाले प्रचण्डसूर्यातापनां सेवते । शीतकाले शीतस्पर्श सहते स्म, केवलं चोलपट्टकं, मुखो-

प्रभाव से सम्यक्त्व की प्राप्ति का अभाव होने पर जीव ऐसा मानता है कि जिन आदि परोक्षपदार्थ नहीं हैं । अतः उनका प्रत्यक्ष न होने पर भी अन्य अनुमानादिक प्रमाणों द्वारा उनकी सत्ता सिद्ध होती है, इसलिये उनकी सद्भावना से उनकी असंभावितारूप मिथ्यात्व-परिणति का परिहार करते हुए साधु को अपने सम्यक्त्व का रक्षण करते रहना चाहिये । इसी का नाम दर्शनपरीषह जय है ।

दृष्टान्त—वैश्रवणाचार्य अपने शिष्य परिवार के साथ विहार करते हुए किसी समय अवन्ती नगरी में पधारे । उन शिष्यों में दृढमति नाम का एक शिष्य था जो उग्रतपस्वी, उग्रविहारी एवं उत्कृष्ट-रूप से प्रत्येक क्रिया का पालन करता था । अन्त प्रान्त आहार से यह अवमोदरिका आदि तपों को तपता था । वीरासन आदि आसनों को करता था । ग्रीष्मकाल में प्रचण्ड सूर्य की अतापना लेता था । शीत-काल में शीतस्पर्श को सहता था । केवल चोलपट्टक तथा मुख पर

प्रभावथी सम्यक्त्वनी प्राप्तिने अभाव होवाना कारणे एव अेषुं माने छे के, अन आदि परोक्षपदार्थ नथी. आथी ते प्रत्यक्ष न होवाथी अन्य अनुमानादिक प्रमाणे द्वारा तेनी सत्ता सिद्ध होय छे. आ माटे तेनी सद्भावनाथी तेनी असंभावताइय मिथ्यात्व परिणतीने परिहार करीने साधुअे पोताना सम्यक्त्वनुं रक्षणु करता रहेवुं लेछुं अे तेनुं नाम दर्शनपरीषह जय छे.

दृष्टान्त—वैश्रवणाचार्य पोताना शिष्य परिवार साथे विहार करतां करतां अेक समय अवन्ती नगरीमां पधायी. तेमना शिष्येमां दृढमति नामे अेक शिष्य હતો. જે ઉગ્રતપસ્વિ, ઉગ્રવિહારી અને ઉત્કૃષ્ટ રૂપથી પ્રત્યેક ક્રિયાઓનું પાલન કરતો હતો. અન્તપ્રાન્ત આહારથી તે અવમોદરિકા આદિ તપ તપતો હતા. વીરાસન આદિ આસનો કરતો હતો, ગ્રીષ્મકાળમાં પ્રચંડ સૂર્યની આતાપના લેતો હતો, શીતકાળમાં ઠંડીના સ્પર્શને સહન કરતો, ફક્ત ચોલપટ્ટો અને

परि सदोरकमुखवस्त्रिकां च विभ्रत्, संपूर्णशरीरमनावृतं कृत्वा हेमन्ते रात्रौ उत्थिता एव तिष्ठति, जिनवचने सम्यक् श्रद्दालुरासीत् ।

एकदा कश्चिन्मिथ्यात्वी देवस्तत्रागत्य वैक्रियिकं नन्दनवनमिवोद्यानं प्रदर्श्य, दृढमतिमुनिमब्रवीत् — हे मुने ! अस्यामातापनायां को लाभः, किं निरर्थकमेतत् कष्टं वहसि, नास्ति परलोकः, आगम्यताम्, मया सहाजस्य नन्दनवनसमानोद्यानस्य सुखमनुभूयताम् । यदाज्जौ दृढमतिमुनिर्वीरासनमध्यास्ते, तदा वैक्रियपुष्पशय्या-प्रदर्श्य स देवो वदति—अत्रास्यताम्, किमर्थं कष्टमावहसि, नास्ति परलोकः । यदा-ज्जौ तपस्यति, तदा स देवः स्ववैक्रियशक्त्या विविधं मिष्टान्नं निर्माय तस्य बुभुक्षामु-

सदोरकमुखवस्त्रिका को धारण कर एवं समस्त शरीर को अनावृत रख-कर हेमन्त ऋतु में रात्रि के समय को खडे २ व्यतीत करता था । जिनवचन में इसे अप्रतिम श्रद्दा थी ।

एक समय की बात है कि कोई मिथ्यात्वी देव वहां आया और उसने अपनी वैक्रियशक्ति से नन्दनवनके समान एक उद्यान की रचना कर दृढमति मुनि से कहा हे मुने ! इस आतापना से क्या लाभ है । निरर्थक आप इस कष्ट को सहन करते हो । परलोक आदि कुछ भी नहीं है, अतः आओ और मेरे साथ इस नन्दनवन के समान उद्यान के सुख का यथेच्छ अनुभव करो । जिस समय दृढमति मुनि वीरासन से विराजते तो वह देव वैक्रियपुष्पशय्या की रचना कर उनसे कहता कि इस आसन में बैठने में क्या लाभ है इस पुष्प की शय्या पर आप विराजो । जिस को लक्षित कर यह आप कर रहे हो, हे मुनि वह कुछ भी नहीं है । इसी तरह जब यह तप तपते तो वह अपनी

सदोरकमुखवस्त्रिकाने धारण करी साराजे शरीरने पुद्दुं रात्री हेमन्त ऋतुमां रात भर उले पगे रहेतो हुतो, उन वचनमां अने अप्रतिम श्रद्दा हुती.

अेक समयनी बात छे के, केई मिथ्यात्वी देव त्यां आयेो अने तेछे पोतानी वैक्रियशक्तिथी नन्दनवन जेवुं सुंदर उद्यान अनावी दीधुं. अने दृढमति मुनिने कछुं के, हे मुनि ! आ आतापनाथी शुं लाभ छे ? निरर्थक आप आ कष्टने सहन करै छे ! परलोक वगेरे कांछ पणु नथी. आथी भारी साथे आवेो अने आ नन्दनवन समान उद्यानना सुअनेो यथेच्छ अनुभव करै. जे समये दृढमति मुनि वीरासनमां विराजत थता त्यारे ते देव वैक्रिय पुष्पशय्यानी रचना करी अेनाथी कहेतो के, आ आसनथी जेसवामां कयेो लाभ ? आ पुष्पनी शैया उपर आप वीराज्जे. जेनुं लक्ष करीने आप आ अधुं करी रह्या छे तेवुं हे मुनि कांछ छे नही. आ रीते तप तपता त्यारे पणु ते देव पोतानी

त्पाद्य वदति—मुने ! किं बुभुक्षया प्राणान् गमयसि ! भुङ्क्ष्व विविधानि मिष्टान्नानि, यदर्थमेतत् कष्टमङ्गीकरोषि स नास्ति परलोकः । यदाऽसौ मुनिरग्रविहारं करोति, तेन च श्रान्तो भवति, तदा स देवः स्ववैक्रियशक्त्या शिबिकां वाहकैर्नीयमानां प्रदर्श्य वदति—मुने ! यानमारुह्यताम्, अल्पनेन कष्टकरेण पादचारेण, नास्ति परलोकः । उष्णकाले स्वशक्त्या घोरपिपासामुत्पाद्य शीतलसुगन्धिनिर्मलजलपूर्ण-जलाशयं तदीयदृष्टिगोचरीकुर्वन् स देवस्तं मुनीमब्रवीत्—मुने ! पिव शीतलमिदं

वैक्रियशक्ति के प्रभाव से विविध मिष्टान्नों को तयार कर और उन्हें बुभुक्षित बनाकर कहने लगता है मुने ! क्यों भूख से व्यर्थ में इन प्यारे प्राणों को नष्ट करना चाहते हो । जिसके निमित्त तुम यह कष्ट-परंपरा सह रहे हो वह तो कुछ है ही नहीं, अतः विविध इन मिष्टान्नों को भोगो । जब मुनिराज उग्रविहारी होते और श्रान्त हो जाते तो यह देव उस समय शिबिका की रचना कर उन्हें इस प्रकार दिखाता कि यह शिबिका अनेक पुरुषों द्वारा अपने कंधो पर उठाई जा रही है, और फिर कहने लगता कि महाराज आप थक चुके हैं अतः इस शिबिका पर चढ़कर विहार करिये । कष्टप्रद इस पैदल चलने से क्या लाभ ? इसे छोड़िये । उष्णकाल में अपनी शक्ति के प्रभाव से मुनि को घोर पिपासा उत्पन्न कर और शीतल सुरभि निर्मल जल से परिपूर्ण जलाशय की रचना करके मुनि को दिखाता हुआ कहने लगता

वैक्रियशक्तिना प्रभावथी विविध मिष्टान्न तैयार करी तेने विभूषित अनावी कडेवा लागतो हे मुनि ! शा भाटे व्यर्थमां भूख अने तरसथी आ प्यारा प्राणुने नष्ट करी रह्या छे ? ने निमित्तथी तमे आ अघां कठोर सहन करी छे अेवुं कांठ पणु नथी. आथी आ विविध मिष्टान्नोंने आरोगी. न्यारे मुनि-राज उग्र विहारी अनता अने श्रान्त अनी जाता तो ते देव अे समये शिबिका ( पादपी )नी रचना करी अेने अतावतो अने कडेतो आ शिबिका अनेक पुरुषोद्वारा पोताना अंले उठावामां आवी रही छे. महाराज आप थकी गया छे अेथी आ शिबिकामां अेसी लयो. अने विहार करी. कष्टप्रद अेवा पगपाणा आलवाथी शुं लाभ भणवानो छे ? अेने छोडी हो. उष्णकालमां पोतानी शक्तिना प्रभावथी मुनिराज ने पाणीनी भूख तरस उत्पन्न करावी, शितल सुरभी निर्भण अणथी परिपूर्ण अणशयनी रचना करी मुनिने देखा-दीने कडेतो के, हे मुनि ! लयो आ केवुं सुंदर तणाव अथुं छे. आपने

मधुरं वारि, किमात्मनः पिपासाऽऽकुलीकरणेन, नास्ति परलोकः । इत्येवं विविध-  
परीषहानुत्पाद्य स देवस्तस्य मुनेः सम्यक्त्वमपनेतुं प्रवृत्तः, तथापि स दृढमति-  
मुनिस्तपःसंयमाराधनाद् लेशतोऽपि विचलितो नाभूत् । तदाऽसौ मेरुरिवाप्रकम्पः  
सागर इव गम्भीरः सन् विचारयति-भगवतः सर्वज्ञतया तद्वचनं सत्यं संदेहरहितं ध्रुवं  
नित्यं परमकल्याणसाधकं श्रद्धेयमेवास्ति । एभ्यः पौद्गलिकसुखेभ्यः किमपि

कि हे मुनि ! देखो यह कितना सुन्दर तालाब भरा हुआ है । आपको  
इस समय घोर पिपासा की वेदना हो रही है अतः आप शीतल  
मधुर जल का पान कर पिपासा को शान्त करो । व्यर्थ में पिपासा से  
आत्मा को आकुलित करने से क्या लाभ है ? परलोक नहीं है । इस  
प्रकार इस देव ने मुनिराज के लिये अनेक परीषहों को उत्पन्न कर उनको  
सम्यक्त्व से पतित करने के निमित्त अनेक प्रयत्न किये तो भी वे  
मुनिराज सम्यक्त्व से रंचमात्र भी चलायमान नहीं हुए । प्रत्युत  
संयम एवं तप की आराधना करने में मेरु के समान अप्रकंप होकर  
एवं सागर के समान गंभीर बनकर अधिक से अधिक दृढ बनते रहे ।  
साथ में यह भी इन्होंने विचार करने में कसर नहीं रखी कि भगवान्  
वीतराग होने से, तथा सर्वज्ञ होने से कभी भी असत्य वचन वाले  
नहीं हो सकते हैं, इनका प्रत्येक वचन संदेहरहित ध्रुव सत्य है ।  
जिन वचनों की आराधना से ही जीवों को निःश्रेयस मार्ग की प्राप्ति  
होती है, अतः यही एकान्ततः परमकल्याणसाधक है, और इसी

आ समय भूषण तरस लागी रही छे, आथी आ शितल मधुर जलनुं पान  
करीने तमारी तरसने छीपावे। तरसथी आत्माने नकाभो पीडीत करवाथी शुं  
लाभ ? परलोक छे नही। आ प्रकारे ते देवे मुनिराज भाटे अनेक परीषडो  
उत्पन्न कया अने तेभने सम्यक्त्वथी पतित जनाववा भूषण प्रयत्नो कया तो  
पणु अे मुनिराज लेश मात्र पणु चलायमान थया नही। अने पौताना संयम  
अने तपनी आराधनाभां मेइनी भाइक अउग रीते उला रह्या अने सागरनी  
भाइक धीर गंभिर अनी अधिक दृढ बनता गया। साथे साथे तेमणु अे पणु  
विचार करवाभां कसर न राभी के भगवान वीतरागी सर्वज्ञ होवाने  
कारणु कही पणु असत्य वचनवाणा होई शकता नथी। अेभनुं प्रत्येक वचन  
संदेह रहित ध्रुव-सत्य छे। अनवचनोनी आराधनाथी अे जेवाने निश्रेयस  
(भोक्ष) मार्गनी प्राप्ति थाय छे। जेथी तेना विश्वास करवे। योग्य छे। आथी  
आज अेक मात्र परम कल्याणनुं साधन छे। आ पौद्गलिक सुखेथी जेवानुं



कल्याणं नास्ति । मयाऽनादिभवसमागतं मिथ्यात्वमपनीय सम्यक्तत्वं लब्धम् । तदेव पुनः पुनरात्मनि दृढीकृत्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मरजः समुत्सारणेन केवलित्वप्राप्तिपूर्वकं मोक्षपदं मम लब्धव्यमस्ति । अलमनेन तुच्छेन विषयसुखेन । इति विमृश्य तपःसंयमसमाराधनपूर्वकनिरतिचारसम्यक्त्वरक्षणेन दृढमति मुनिर्दर्शनपरीषहं परिषह्य, क्षपकश्रेणिमारूढ, केवलित्वं लब्ध्वा स्वात्मकल्याणं साधितवान् । एवमन्यैरपि मुनिभिर्दर्शनपरीषहः सोढव्यः ।

का विश्वास करना योग्य है । इन पौद्गलिक सुखों से जीवों का कुछ भी आत्महित नहीं हो सकता है । मैंने बड़ी कठिनता से अनादि भवों से संसक्त मिथ्यात्व का अपनयन कर सम्यक्त्व का लाभ किया है । इसलिये यह दुर्लभता से प्राप्त होने वाली वस्तु (सम्यक्त्व) का नाश न होने पावे, इस प्रकार सचेष्ट होकर मुझे बार २ इस को निज आत्मा में दृढ करते रहना चाहिये, और ज्ञानावरणीय आदि अष्ट प्रकार कर्मरजके निवारण से केवलित्वकी प्राप्तिपूर्वक मुक्ति पदका लाभ करना चाहिये इसी में मेरा कल्याण है । इन तुच्छ वैषयिक सुखों के सेवन से कौनसा निज का लाभ हो सकता है । इस प्रकार विचार कर तप एवं संयम की आराधना करते हुए दृढमति मुनिराज ने निरतिचार सम्यक्त्व की रक्षा से दर्शनपरीषह को सहन किया और क्षपकश्रेणी पर आरूढ हो कर केवलपदका लाभ कर अपना आत्मकल्याण कर लिया । इसी प्रकार अन्य मुनिजनों को भी दर्शनपरिषहजयी बनना चाहिये ।

कांछं पथु आत्महितं यथं शक्यं नथी । भे' लारे कठिनताथी अनादि लवोथी संसक्त मिथ्यात्वनुं अपनयन करी सम्यक्त्वने लाल कथ्ये छे । आ भाटे आ दुर्लभताथी प्राप्त थयेल वस्तु सम्यक्त्वने नाशन थाय अे रीते सयेत अनीने भारे वारंवार अेने भारा पोताना आत्माभां दृढ करता रडेवुं जेधअे । अने ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकारनी कर्मरजना निवारणथी केवलित्वनी प्राप्तिपूर्वक मुक्ति पदने लाल भेजववे जेध अे । आ करवाभां ज भाडुं कल्याण छे । तुच्छ अेवां वैषयिक सुभेना सेवनथी मने कथे लाल थवाने छे ? आ प्रकारने दृढ विचार करी तप अने संयमनी आराधना करतां दृढमति मुनिराजे निरतिचार सम्यक्त्वनी रक्षार्थी दर्शनपरीषह सहन करी क्षपकश्रेणी उपर आरूढ अनी केवलीपदने लाल करी पोताना आत्मानुं कल्याण कथुं । आ रीते अन्य मुनिजनेअे पथु दर्शनपरीषह जयी अनवुं जेधअे ।



अथ परीषहावतरणमाह—

एते धर्मस्यान्तरायकारणभूताः द्वाविंशतिपरीषहाः सोढव्या इत्युक्तम् । तत्र-  
ज्ञानावरणीय-वेदनीय-दर्शनमोहनीय-चारित्रमोहनीया-ऽन्तरायाणां कर्मणामुदयादेते  
सर्वे परीषहाः प्रादुर्भवन्ति । चतसृषु कर्मप्रकृतिषु=ज्ञानावरणीय-वेदनीय-मोहनीया  
-न्तरायेषु द्वाविंशतिः परीषहाः समवतरन्ति, इतरासु चतसृषु-दर्शनावरणीयाऽऽ-  
युष्क-नाम-गोत्रेषु परीषहा नोत्पद्यन्ते । ( भग० ८ । ८ )

यः सूक्ष्म संपरायः सूक्ष्मलोभपरमाणुसद्भावात् न वीतरागत्वं प्राप्तः स दशमगुण-  
स्थानवर्ती उपशमश्रेणिसंपन्नो वा क्षपकश्रेणिसंपन्नो वा तस्य संयतस्य, तथा छद्मस्थवी-  
तरागयोगुणस्थानभेदेन द्विविधयोरेकादशद्वादशगुणस्थानवर्तिनोश्च संयतयोश्चतुर्दश-

अब परीषहों का अवतरण कहते हैं—

यद्यपि धर्मके सेवन करने में ये बाईस परीषह अन्तरायरूप हैं साधु  
को इन को सहन करते रहना चाहिये, यह बात बतलाई जा चुकी है ।  
अब कौन २ से परीषह किस २ कर्म के उदय से होते हैं यह बतलाया  
जाता है—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय ( दर्शनमोहनीय चारित्रमो-  
हनीय ) एवं अन्तराय, इन चार कर्मों के उदय से ये २२ बाईस परीषह  
उत्पन्न होते हैं । दर्शनावरणीय आयु नाम एवं गोत्र, इन चार कर्मों के  
उदय में परीषह उत्पन्न नहीं होते हैं । ( भग० श ८ उ० ८ )

सूक्ष्मलोभ परमाणु के सद्भाव से जो वीतरागता को प्राप्त नहीं  
हुआ है ऐसा दशमगुणस्थानवर्ती जीव चाहे वह उपशमश्रेणी में स्थित  
हो चाहे क्षपकश्रेणी में उसके तथा छद्मस्थ वीतराग के ११ ग्यारहवें एवं

हवे परीषडानुं अवतरणु कडेवामां आवे छे—

धर्मनुं सेवन करवामां कदाय आ आवीस परीषड अंतरायरूप थाय  
छतां साधुअे अेने सहन करता रहेवुं अेधअे. आ वात समभववामां आवी.  
हवे कथा कथा परीषड कथा कथा कर्मा उदयथी थाय छे अे अताववामां आवे  
छे—ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, ( दर्शन मोहनीय चारित्र मोहनीय ) अने  
अंतराय आ चार कर्मोना उदयथी आ आवीस परीषड उत्पन्न थाय छे. दर्शनाव-  
रणीय, आयु, नाम, अने गोत्र आ चार कर्मोना उदयथी परीषड उत्पन्न थता नथी.  
भग. श. ८, उ. ८

सूक्ष्मलोभ परमाणुना सद्भावथी अे वीतरागताने प्राप्त नथी थया अेवा  
दशगुण स्थानवर्ती अेव आडे ते उपशम श्रेणीमां स्थित होय, आडे क्षपक  
श्रेणीमां तथा छद्मस्थ वीतरागना अगीयार अने आरमा शुभस्थानवर्ती अेवोने

उ० ७०

परीषहाः सम्भवन्ति-श्रुत्पिपासा-शीतोष्ण-दंशमशक-चर्या-प्रज्ञा-ऽज्ञाना-लाभ-शय्या-  
वध-रोग-तृणस्पर्श-मलनामकाः । तेषूत्कर्षतो युगपद् द्वादशैव परीषहा वेद्यन्ते,  
शीतोष्णयोः चर्याशय्ययोश्च विरोधात् तयोस्तयोर्मध्ये एकैकस्यैव संभवात् । तेषां  
दशमैकादशद्वादशगुणस्थानवर्तिनामुक्तचतुर्दशेभ्योऽन्येऽष्टौ परीषहाः—अचेला १—  
रति २—स्त्री ३—निषद्या ४—ऽऽक्रोश ५—याचना ६—सत्कारपुरस्कार ७—दर्शना-  
ख्याः ८ न भवन्ति । तत्र सूक्ष्मसंपरायस्य मोहनीयकर्मदियाभावात्, एकादश-  
गुणस्थानवर्तिसंयते उपशान्तमोहत्वात्, द्वादशगुणस्थानवर्तिसंयते तु क्षीणमोह-

१२ बारहवें गुणस्थानवर्ती जीवों के १४ चौदह परीषह होते हैं । वे ये  
हैं—श्रुधा १, तृषा २, शीत ३, उष्ण ४, दंशमशक ५, चर्या ६, प्रज्ञा ७,  
अज्ञान ८, अलाभ ९, शय्या १०, वध ११, रोग १२, तृणस्पर्श १३,  
मेल १४ । इनमें एक जीवके एक साथ बारह ही परीषहों का अधिक से  
अधिक रूपमें वेदन होता है, क्यों कि शीत उष्ण परीषह में से या तो  
शीत का ही वेदन होगा या उष्ण का, युगपत् दोनों का नहीं । इसी तरह  
चर्या और शय्या में भी किसी एक का । इस प्रकार १४ चौदह की जगह  
१२ बारह परीषहों का एक जीवकी अपेक्षा वेदन जानना चाहिये । दशवें  
ग्यारहवें एवं बारहवें गुणस्थानों में ये ८ आठ परीषह नहीं होते हैं । वे  
ये हैं—अचेला १, अरति २, स्त्री ३, निषद्या ४, आक्रोश ५, याचना ६,  
सत्कारपुरस्कार ७, और दर्शन ८ । सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानमें मोहनीय  
कर्मके उदय का अभाव होने से, ११ ग्यारहवें गुणस्थान में मोह का  
उपशान्त अवस्था होने से, तथा १२ बारहवें गुणस्थान में मोह की

चौद परीषह थाय छे, ते आ छे भूषा १, तरसर, ठंडीउ, उष्णु ४, दंशमशक ५, चर्या ६,  
प्रज्ञा ७, अज्ञान ८, अलाभ ९, शय्या १०, वध ११, रोग १२, तृणस्पर्श १३, मेल १४.  
आ चौदमांथी कां तो अक अथवा अक साथे बार परीषहोने अधिकथी अधिक ३ पमां  
अवनेवेदन थाय छे, केमके, ठंडी अने उष्ण परीषहमांथी कां तो ठंडीनी वेदना थाय  
छे अथवा उष्णनी वेदना थाय छे युगपत् अकी साथे अनेने नही. आ रीते  
अथा अने शय्यामां पषु केअ अकने परीषह थाय छे. आभ चौदमांथी १२  
बार परीषहोनुं अक अथवा अपेक्षा अवेदन अथवा दशमा, अगीयारमा अने  
आरमा शुष्मस्थानमां आ आठ परीषह आवता नथी. ते आ छे अचेला, १ अरति, २ स्त्री,  
३ निषद्या, ४ आक्रोश, ५ याचना, ६ सत्कारपुरस्कार, ७ अने दर्शन. ८ सूक्ष्म सांप-  
राय शुष्मस्थानमां मोहनीयकर्मना उदयने अलाव होवाथी अग्यारमा शुष्मस्थानमां  
मोहनीय उपशान्त अवस्था होवाथी तथा आरमा शुष्मस्थानमां मोहनी क्षीणता

त्वादिति विवेकः । ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीया-ऽन्तरायेषु घातिकर्मसु क्षयमात्यन्तिकमुपगतेषु केवलित्वं प्राप्तस्य वेदनीयकर्मनिमित्तका एव एकादशपरीषहाः संभवन्ति, तद् यथा-क्षुत्पिपासा-शीतोष्ण-दंशमशक-चर्या-शय्या-वध-रोग-तृणस्पर्श-मलपरीषहाः। तत्रासौ युगपत् नव परीषहान् उत्कर्षतो वेदयति, शीतोष्णयोः चर्याशय्ययोश्चद्वयोर्द्वयोरेकदा वेदनाया अभावात् । बादरकषाययुक्तस्य उपशमकस्य क्षपकस्य वा क्षुत्पिपासादयः सर्वे परीषहाः संभवन्ति ।

ज्ञानावरणीयोदये द्वौ प्रज्ञाऽज्ञानपरीषहौ भवतः । चारित्रमोहनीयोदये-सप्त

क्षीणता होने से ये आठ परीषह नहीं हैं । ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणाय, मोहनीय एवं अन्तराय, ये चार घातिया कर्म हैं, इनका जब आत्यन्तिक क्षय होता है तब आत्मा केवलीअवस्थासंपन्न होता है । उस समय उस केवलज्ञानविशिष्ट आत्मा के वेदनीय कर्म के उदय से ११ ग्यारह परीषह होते हैं, वे ये हैं-क्षुधा १, पिपासा २, शीत ३, उष्ण ४, दंशम-शक ५, चर्या ६, शय्या ७, वध ८, रोग ९, तृणस्पर्श १०, और मेल ११, केवलीअवस्था में आत्मा उत्कर्ष की अपेक्षा से युगपत् ९ नौ परीषहों का वेदन करता है, शीत उष्ण में से किसी एक का, चर्या-शय्या में से किसी एक का । बादरकषाय से युक्त जीव के अथवा उपशमक अथवा क्षपक के क्षुधा तृषा आदि २२ परीषह होते हैं । फिर भी युगपत् एक जीव के एक काल में बीस परीषह तक ही हो सकते हैं ।

ज्ञानावरणीय कर्म के उदय में प्रज्ञापरीषह और अज्ञानपरीषह,

होवाथी अे आठ परीषह आवता नथी. ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय अने अंतराय आ चार घातीय कर्म छे. अेनुं अ्यारे आत्यन्तिक क्षय थछं अथ छे त्यारे आत्मा केवली अवस्था संपन्न थाय छे. अे समय अे केवलज्ञान विशिष्ट आत्माने वेदनीय कर्मना उदयथी अगीयार परीषह थाय छे ते आ छे भूअ१, तरसर, ठंडीउ, उष्ण४, दंशमशक५, अर्या६, शय्या७, वध८, रोग९, तृणस्पर्श१० अने मेल११ केवली अवस्थामां आत्मा उत्कर्षनी अपेक्षाथी युगपत् नव परीषहोनी वेदना लोगवे छे. शीत उष्णमांथी केछं अेकनी, अर्या शय्यामांथी केछं अेकनी, बादर कषायथी युक्त अथवा उपशमक अथवा क्षपकने भूअ तरस आदि आवीस परीषह होय छे. छतां पञ्च युगपत अेक अथवा अेक कालमां बीस परीषह सुधी अ थछं शके छे.

ज्ञानावरणीय कर्मोना उदयमां प्रज्ञापरीषह अने अज्ञानपरीषह अे अे

अचेला-रति-स्त्री-निषद्या-ऽऽक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्कारपरीषदाः भवन्ति । दर्शनमोहनीयोदये-एकः दर्शनपरीषहः-वेदनीयोदये-एकादश क्षु-त्पिपासा-शीतोष्ण दंशमशक-चर्या-शय्या-वध-रोग-तृणस्पर्श-मलाख्याः परीषदाः उत्पद्यन्ते । लाभान्तरायोदये-एकः अलाभपरीषहः । अष्टविधकर्मबन्धकस्य, तथाऽऽयुर्वर्जितसप्तविधकर्मबन्धकस्य च संयतस्य द्वाविंशतिः परीषदाः संभवन्ति, तत्र स उत्कर्षतो युगपद् विंशतिपरीषदान् वेदयति । यत्र समये शीतपरीषहं वेदयति न तदोष्णपरीषहम्, यदा चोष्णपरीषहं वेदयति, न तदा शीतपरीषहं, तयोः परस्परमत्यन्तविरोधेन एकदा एकत्रासम्भवात् । तथा यस्मिन् समये चर्यापरीषहम् वेदयति, न तदा निषद्यापरीषहम्, यदा निषद्या परीषहं वेदयति न तदा चर्यापरीषहं, चर्यानिषद्यापरीषहयोरपि परस्परमत्यन्तविरोधेन एकदा एकत्रासम्भवात् ।

ये दो परीषह होते हैं । चारित्रमोहनीय के उदय में अचेल १; अरति २, स्त्री ३, निषद्या ४, आक्रोश ५, याचना ६, सत्कारपुरस्कार ७, ये ७ सात परीषह होते हैं । दर्शनमोहनीय के उदय में एक दर्शनपरीषह, वेदनीय के उदय में ११ ग्यारह परीषह-क्षुधा १, तृषा २, शीत ३, उष्ण ४, दंशमशक ५, चर्या ६, शय्या ७, वध ८, रोग ९, तृणस्पर्श १०, और मेल ११ होते हैं । लाभान्तराय के उदय में एक अलाभ परीषह उत्पन्न होता है । आठों प्रकार के कर्म का बन्धक तथा आयु शिवाय सात कर्मों का बन्धक जो संयत है उसके २२ बाईस परीषह होते हैं । एक काल में जीव अधिक से अधिक २० बीस परीषहों का वेदन कर सकता है, क्यों कि चर्या और निषद्या में से किसी एक का, शीत एवं उष्ण में से किसी एक एक का ही वेदन होगा, दोनों का युगपत् नहीं, कारण कि इनका परस्पर एक साथ रहने में विरोध है ।

परीषद छे. चारित्र मोहनीयना उदयमां अचेल, १ अरति, २ स्त्री, ३ निषद्या, ४ आक्रोश ५ याचना, ६ सत्कारपुरस्कार, ७ आ सात परीषद डोय छे. दर्शनमोहनीयना उदयमां अेक दर्शनपरीषद, वेदनीयना उदयमां ११ अगीयार परीषद, क्षुध, १ तरस, २ ठंडी, ३ उष्ण, ४ दंशमशक, ५ चर्या, ६ शय्या, ७ वध, ८ रोग, ९ तृणस्पर्श १० अने मेल ११ डोय छे. लाभान्तरायना उदयमां अेक अलाभ परीषद उत्पन्न थाय छे. आठ प्रकारना कर्मना बंधक तथा आयु शिवाय सात कर्मना बंधक जे संयत छे तेने २२ बावीस परीषद डोय छे. अेक कालमां अेक अथ अधिकमां अधिक २० बीस परीषदनुं वेदन करी शके छे. केभके, चर्या अने निषद्यामांथी केअे अेकनुं ठंडी अने उष्णमांथी केअे अेकनुं जे वेदन थतुं डोय छे. अनेनुं युगपत् नडीं. कारण के, तेने परस्पर अेक साथे रहवामां विरोध छे.

ननु आत्यन्तिकशीतस्पर्शे सति वह्निसाभिध्ये, तथा-शरीरस्यैकस्मिन् भागे छायाश्रितेऽपरस्मिन् भागे सूर्यकिरणप्रतप्ते सति एकस्य पुरुषस्य एकस्यां दिशि शीतम्, अन्यस्यां चोष्णमित्येवं द्वयोरपि शीतोष्णपरीषहयोर्युगपत् संभवोऽस्तीति चेत्, उच्यते-अत्र परीषहे कालकृतशीतोष्णयोर्ग्रहणम्, अतो नास्त्येतत्प्रभावकाश इति ।

शंका—शीतस्पर्श और उष्णस्पर्श का जो आपने परस्पर विरोध बतलाया है वह जचता नहीं है, क्यों कि आत्यंतिक शीतस्पर्श होने पर भी अग्नि के समीप में, तथा शरीर का एक भाग छायाश्रित होने पर, दूसरा भाग सूर्य की किरणों से तप्त होने पर एक ही पुरुष को एक दिशा में शीत का, अन्य दिशा में उष्ण का अनुभव युगपत् होता है, इस प्रकार शीत और उष्णस्पर्श का एक ही पुरुष में देशादिक की अपेक्षा एक साथ सद्भाव पाये जानेसे इनमें आप विरोध कैसे कहते हैं ।

उत्तर—इस प्रकार की आशंका यहां नहीं करना चाहिये । क्यों कि यहां जो शीत उष्ण परीषह का युगपत् विरोध बतलाया गया है वह काल की अपेक्षा से बतलाया गया है । शीतकाल में शीतपरीषह का उष्णकाल में उष्णपरीषह का सद्भाव रहता है । शीतकाल में उष्णकाल नहीं होता और उष्णकाल में शीतकाल नहीं होता, अतः इस अपेक्षा से यहां इस प्रश्न के होने का अवकाश ही नहीं है ।

शंका—शीतस्पर्श અને ઉષ્ણસ્पर्શનો જે આપે પરસ્પર વિરોધ બતાવેલો છે તે બરાબર નથી. કેમકે, અત્યંતિક ઠંડીનો સ્પર્શ હોવાથી પણ અગ્નિના સાંનિધ્યમાં તથા શરીરનો એક ભાગ છાયાશ્રિત હોવાથી, બીજો ભાગ સૂર્યનાં કિરણોથી તૃપ્ત હોવાથી, એકજ માણસને એક દિશામાં ઠંડીનો અને બીજી દિશામાં ઉષ્ણનો અનુભવ યુગપત્ થાય છે. આ રીતે ઠંડી અને ઉષ્ણસ્પર્શનો એકજ માણસમાં દેશાદિકની અપેક્ષા એક સાથ સદ્ભાવ દેખાતાં આમાં આપ વિરોધ કેવી રીતે કહો છો ?

ઉત્તર—આ પ્રકારની આશંકા અહિં ન કરવી જોઈએ કેમકે, અહિં જે ઠંડી અને ઉષ્ણ પરીષદનો યુગપત્ વિરોધ બતાવવામાં આવેલ છે તે કાળની અપેક્ષાથી બતાવવામાં આવેલ છે. શીતકાળમાં ઠંડીનો પરીષદ અને ઉષ્ણકાળમાં ઉષ્ણપરીષદનો સદ્ભાવ રહે છે. શીતકાળમાં ઉષ્ણકાળ હોતો નથી અને ઉષ્ણકાળમાં શીતકાળ હોતો નથી. આથી આ અપેક્ષાએ અહિંયાં આ પ્રશ્ન થવાનો અવકાશ જ નથી.



ननु भगवता ' आयुर्मोहनीयवर्जितषड्विधकर्मबन्धकः सूक्ष्मसंपरायसंयत उत्कर्षतो युगपद् द्वादश परीषहान् वेदयति ' इत्युक्तम्, तत्र यदा शय्यापरीषहं वेदयति, न तदा चर्यापरीषहम्, यदा चर्यापरीषहं वेदयति, न तदा शय्यापरीषहम्, इति कथितम्, कथं तर्हि—सप्तविधकर्मबन्धकोऽष्टविधकर्मबन्धकश्च संयतो युगपद् विंशतिपरीषहान् वेदयेत् । यतश्चर्याया सह शय्यानिषद्ययोर्विरोधेन चर्यासद्भावे शय्यानिषद्ययोरसंभवात्, एकोनविंशतेरेव परीषहाणां वेदनसंभव इति

शंका—भगवान् ने “आयु एवं मोहनीय वर्जित छह कर्मों का बंध करनेवाला सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानवाला संयत उत्कर्ष की अपेक्षा युगपत् १२ बारह परीषहोंका वेदन करता है ” ऐसा कहा है सो उसमें जिस समय वह शय्यापरीषहका वेदन करता है उस समय वह चर्यापरीषहका वेदन नहीं करता है, और जिस समय चर्यापरीषह का वेदन करता है उस समय शय्यापरीषह का वेदन नहीं करता सो इस प्रकार की विवक्षा से वहाँ चौदह परीषहों के सामान्य कथन में उत्कर्षक की अपेक्षा बारह परीषह का वेदन करना ठीक बैठ जाता है, परन्तु जो आयुवर्जित सात प्रकार के अथवा आठ प्रकार के कर्मों का बंधक संयत है उसके चर्या के साथ शय्या और निषद्या का विरोध होने से चर्या के सद्भाव में शय्या और निषद्या का संभव हो नहीं सकता है ऐसी परिस्थिति में इस संयत के जो उत्कर्षक की अपेक्षा २० बीस परीषहों का सद्भाव बतलाया है वह कैसे संगत हो सकता है, क्यों

शंका—भगवाने “आयु अने मोहनीय वर्जित छ कर्मोना बंध करवावाणा सूक्ष्म संपराय संयत उत्कर्षनी अपेक्षा युगपत् आर परीषडनुं वेदन करे छे.” अेवुं कहुं छे ते तेमां ने समय ते शय्यापरीषडनुं वेदन करे छे. ते समय ते चर्यापरीषडनुं वेदन करता नथी. अने ने समय चर्यापरीषडनुं वेदन करे छे ते समय शय्यापरीषडनुं वेदन नथी करता. आ प्रकारनी विवक्षाथी औद प्रकारना परीषडोना सामान्य कथनमां उत्कर्षनी अपेक्षा आर परीषडनुं वेदन करवुं अरोअर बंध भेसतुं छे. परंतु आयुवर्जित ने सात प्रकारना अथवा आठ प्रकारना कर्मोना बंधक संयत छे—अेनी चर्या साथे शय्या अने निषद्याने विरोध होवाथी चर्याना सद्भावमां शय्या अने निषद्याने संभव थर्द शकते नथी. अेवी परिस्थितिमां आ संयत के ने उत्कर्षनी अपेक्षाअे बीस परीषडने सद्भाव अतावेद छे. ते कर्द रीते संगत थर्द शके ?



चेदुच्यते — सूक्ष्मसंपरायस्य चारित्रमोहनीयं दर्शनमोहनीयं सत्तामात्रं वर्तते, न तु परीषद्हेतुभूतः सूक्ष्मोऽपि मोहनीयोदयोऽस्तीति न मोहनीयजन्यपरीषद्भो भवति, ततश्च षड्विधबन्धकस्य मोहनीयोदयाभावेन सर्वत्रौत्सुक्यनिवृत्तिर्भवति, औत्सुक्यनिवृत्त्या च विहारपरिणामाभावः, तेन शय्यापरीषद्भवेदनसमये चर्याया अभावः । अत्र तु—मोहनीयोदयाद् बादररागवत्त्वेन औत्सुक्यं विहारपरिणामरूपं संभवति, तदा शय्यापरीषद्भवेदनसमये चर्यापरीषद्दं परिणामरूपेण वेदयति, अतो विंशतिपरीषद्वात् वेदयतीति कथनं सम्यगेव ।

कि शय्या और निषद्या में से एक फिर घट जाने से वीस की जगह १९ उन्नीस परीषद्दों के वेदना का ही सद्भाव कहना चाहिये ?

उत्तर—सूक्ष्मसंपराय संयत के चारित्रमोहनीय एवं दर्शनमोहनीय केवल सत्तामात्र है, परीषद् का हेतुभूत थोड़ा सा भी मोहनीय का उदय वहाँ नहीं है कि जिससे वहाँ मोहनीय के उदय से होने वाला परीषद् हो सके, अतः छह कर्मों का बंधक जो संयत है उसके मोहनीय कर्म के उदय के अभाव से सर्वत्र औत्सुक्य की निवृत्ति हो जाती है । औत्सुक्य की निवृत्ति से विहार करने के परिणाम की भी निवृत्ति हो जाती है, इससे शय्यापरीषद् के वेदन के समय में वहाँ चर्या का अभाव है परन्तु जो सप्तविध कर्म का अथवा अष्टविध कर्म का बंधक है उसके मोहनीय का उदय है इससे बादर रागवाला होने से उसके विहारपरिणामरूप औत्सुक्यभाव संभवित होता है । उस समय वह शय्यापरीषद् के वेदन के समय में चर्यापरीषद् को परिणाम-

कारण के शय्या अने निषद्यामांथी अेक घटि नवाथी वीसने अद्वे आगणीस परीषदोना वेदनो न सद्भाव कडेवो जेध अे.

उत्तर—सूक्ष्म सांपराय संयतना चारित्र मोहनीय अने दर्शनमोहनीयनी डेवण सत्ता मात्र छे. परीषदना हेतुभूत थोडा पणु मोहनीयनो उदय त्यां नथी के जेनाथी त्यां मोहनीयना उदयथी आवनार परीषद थध शके. आथी छ कर्मोना अंधक जे संयत छे तेना मोहनीय कर्मना उदयना अलावथी सर्वत्र औत्सुक्यनी निवृत्ति थध जय छे. औत्सुक्यनी निवृत्तिथी विहार करवाना परिष्ठाभनी पणु निवृत्ति थध जय छे. आथी शय्यापरीषदना वेदनना समये त्यां चर्याना अलाव छे परंतु जे सात प्रकारना कर्मोना अथवा आठ प्रकारना कर्मोना अंधक छे तेने मोहनीयनो उदय छे. आ कारणे बादर राग वाणा डोवाथी अेना विहार परिष्ठाभ रूप औत्सुक्यलाव संभवित अने छे. अे समये ते शय्यापरीषदना वेदन समयमां चर्यापरीषदने परिष्ठाभरूपथी वेदित

ननु अनिवृत्तिबादरसंपरायस्य मोहनीयसंभवानामष्टानामपि परीषहाणां कथं संभवः ? यतो दर्शनसप्तकोपशमे बादरकषायस्य दर्शनमोहनयोदयाभावेन दर्शन-परीषहाभावात् सप्तानामेव संभवो नाष्टानाम्, अथ दर्शनमोहनीयोदयाभावेऽपि दर्शनमोहनोयसत्ताऽपेक्षया दर्शनपरीषहोऽपि स्यादित्युच्यते, तर्हि उपशमकत्वे सूक्ष्मसंपरायस्यापि मोहनीयसत्तासद्भावात् कथं तज्जनिताः सर्वेऽपि परीषहा न भवन्तीति न्यायस्य समानत्वात् ? ।

अत्रोच्यते—दर्शनसप्तकोपशमस्योपर्येव नपुंसकवेदाद्युपशमकाले अनिवृत्ति-बादरसंपरायो भवति, स च दर्शनसप्तकान्तर्गतस्य दर्शनत्रयस्य मिथ्यात्व-मिश्र-

रूप से वेदित करता है। इस कारण वह २० बीस परीषहों का वेदन करता है, यह कथन समीचीन ही है।

शंका—जो संयत अनिवृत्ति बादर संपराय वाला है उसके मोहनीय से संभवित आठ परीषहों की संभावना कैसे हो सकती है ? क्यों कि दर्शनसप्तक के उपशम होने पर उस बादर कषाय वाले संयत के दर्शनमोहनीय के उदय के अभाव से दर्शनपरीषह तो होगा नहीं, इसलिये वहाँ आठ की जगह ७ सात परीषह ही संभवित होते हैं, फिर आठ की संभावना कैसे कही गई है ? यदि दर्शनमोहनीय के उदय के अभाव में भी दर्शनमोहनीय की सत्ता की अपेक्षा से दर्शन-परीषह भी है ऐसा कहा जाय तो उपशमक होने पर सूक्ष्मसंपराय वाले के भी मोहनीय की सत्ता के सद्भावसे उसके उदय से होनेवाले सर्व परीषह नहीं मानना चाहिये क्यों कि न्याय सर्वत्र समान होता है।

કરે છે આ કારણે તે વીસ પરિષદોનું વેદન કરે છે આ કથન સમીચીન જ છે.

શંકા—જે સંયત અનિવૃત્તિ બાદર સંપરાયવાળા છે તેના મોહનીયથી સંભવિત આઠ પરિષદોની સંભાવના કેવી રીતે બની શકે ? કેમકે દર્શનસપ્તકનું ઉપશમ થવાથી એ બાદર કષાયવાળા સંયતના દર્શન મોહનીયના ઉદયના અભાવથી દર્શનપરીષદ તો થશે નહીં. આ માટે ત્યાં આઠની જગ્યાએ સાત પરિષદ જ સંભવિત દેખાય છે. છતાં આઠની સંભાવના કેમ કહેવાઈ છે ? કદાચ દર્શન મોહનીયના ઉદયના અભાવમાં પણ દર્શન મોહનીયની સત્તાની અપેક્ષા દર્શનપરીષદ પણ છે. એવું કહેવામાં આવે તો ઉપશમક હોવા છતાં સૂક્ષ્મ સંપરાયવાળાને પણ મોહનીયની સત્તાના સદ્ભાવથી તેના ઉદયથી થનાર સર્વ પરિષદ ન માનવા બોધએ. કારણ કે, ન્યાય સર્વત્ર સમાન હોય છે.

सम्यक्त्व-मोहनीयरूपस्य बृहति भागे उपशान्ते, शेषे चानुपशान्ते एवं स्यात् । नपुंसकवेदं चासौ दर्शनत्रयस्य शेषांशेन सहोपशमयितुं प्रवर्तते, ततश्च नपुंसकवेदोपशमावसरे अनिवृत्तिबादरसंपरायस्य सतो दर्शनमोहनीयस्य प्रदेशत उदयोऽस्ति, न तु दर्शनमोहनीयस्य सत्तामात्रम्, ततस्तन्निमित्तको दर्शनपरीषदहस्तस्यास्ति, ततश्चाप्यावपि परीषद्वाणं वेदयति ।

उत्तर—यह अनिवृत्तिबादरसंपराय वाला संयम दर्शनसप्तक के उपशम होने के ऊपर ही नपुंसकवेदादिक के उपशमकाल में होता है । इसके दर्शनमोहनीय का उदय प्रदेश की अपेक्षा से माना गया है । वह इस प्रकार - दर्शनसप्तक के अन्तर्गत जो मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्वमोहनीय, ये तीन दर्शन हैं, इनका अधिक से अधिक जब उपशमन हो जाता है तथा कुछ भाग अनुपशान्त रहता है तब नपुंसकवेद को यह इसी अनुपशान्त दर्शनत्रय के भाग के साथ २ उपशांत करने के लिये प्रवृत्त होता है, इसलिये नपुंसकवेद के उपशमन के काल में इस अनिवृत्तिबादरसंपराय वाले संयत के दर्शनमोहनीय का प्रदेश की अपेक्षा से उदय माना गया है, अतः दर्शनमोहनीय का इसके केवल सत्तामात्र ही नहीं है, प्रदेशोदय भी है । इससे उसके दर्शनमोहनीय उदय जन्य परीषद् है ऐसा मानना चाहिये इससे वहाँ वह आठ परीषदों का वेदन करता है ।

उत्तर—आ अनिवृत्ति बादर संपरायवाणा संयमदर्शनसप्तकनो उपशम भवाना उपर ७ नपुंसकवेदादिकना उपशम काणमां थाय छे. ओना दर्शनमोहनीयनो उदय प्रदेशनी अपेक्षाथी मानवाभां आवेल छे ते आ प्रकारे—दर्शन सप्तकना अंतर्गत ७ मिथ्यात्व, मिश्र, सम्यक्त्व मोहनीय आ दर्शनत्रय छे. ओमनो अधिकथी अधिक भाग न्यारे उपशांत थर्ष जय छे तथा थोडा भाग अनुपशांत रहे छे त्यारे नपुंसकवेदन आ ओ ७ अनुपशान्त दर्शनत्रयना भागनी साथे साथ उपशांत करवा भाटे प्रवृत्त थाय छे. आ भाटे नपुंसकवेदना उपशमना काणमां आ अनिवृत्ति बादर संपरायवाणा संयतना दर्शनमोहनीयना प्रदेशनी अपेक्षाथी उदय मानवाभां आवेल छे. आथी दर्शनमोहनीयने ओमां केवण सत्ता मात्र नथी, प्रदेशोदय पण्य छे. आथी ओना दर्शन मोहनीय उदयजन्य दर्शनपरीषद् छे. ओम मानवुं जेठं ओ. आथी त्यां ते आठ परिषदोनुं वेदन करे छे.

६० ७१

एते च परीषहा द्विविधाः—द्रव्यपरीषहा भावपरीषहाश्च । तत्र द्रव्यपरीषहा नाम ये इहलोक निमित्तका बधबन्धनादयः परवशादधिसहन्ते ते । भावपरीषहा ये संसारोच्छेदनार्थमनाकुलेन मनसाऽधिसहन्ते । अत्र शास्त्रे भावपरीषहाणामेवाधिकारः । अथ छद्मस्थपरीषहाणां भेदाः—

ज्ञानावरणीयादिघातिकर्मचतुष्टयं छद्म, तत्र तिष्ठतीति छद्मस्थः=कषायसहितः, स पञ्चमिः परीषहादिसहनालम्बनरूपैः स्थानैरुदितान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् तत्कषायोदयनिरोधाऽऽदिना सहेतु=विचलितो न भवेत्, क्षान्त्या क्षमेत, अदीन-तया तितिक्षेत, अध्यासीत=परीषहादावेव आधिक्येनासीत, न चलेत् ।

ये परीषह दो प्रकार के हैं—एक द्रव्यपरीषह दूसरा भावपरीषह । इस लोकसंबंधी जो बध बंधन आदिक परवशता से सहन किये जाते हैं वे द्रव्यपरीषह हैं । संसार बंधन को नष्ट करने के लिये भव्य संयमीजनों द्वारा जो बिना किसी आकुलता के सहन किये जाते हैं वे भावपरीषह हैं । इस शास्त्र में इन्हीं भावपरीषहों को सहन करने का उपदेश है, और उसी निमित्त यह अधिकार है ।

छद्मस्थपरीषहों के भेद—ज्ञानावरणीय आदि चार घातियाकर्म का नाम छद्म है । इस छद्म में जो रहता है उसका नाम छद्मस्थ है । ऐसा संयमी जीव कषायसहित होता है । उसे पांच स्थानों से उदित परीषहों एवं उपसर्गों को कषाय के उदय का निरोध आदि करते हुए सहन करना चाहिये । शान्तिभाव से अविचलित होकर उसे उस समय घबराना नहीं चाहिये । परीषह आदि के स्थान में ही अपने आपको

આ પરીષહ બે પ્રકારના છે—એક દ્રવ્યપરીષહ બીજો ભાવપરીષહ. આ લોક સંબંધી જે વધ બંધન આદિક પરવશતાથી સહન કરવામાં આવે છે તે દ્રવ્યપરીષહ છે. સંસાર બંધનને નષ્ટ કરવા માટે ભવ્ય સંયમી જનો દ્વારા જે કોઈ પ્રકારની વ્યાકુળતા વગર સહન કરવામાં આવે છે તે ભાવપરીષહ છે. આ શાસ્ત્રમાં તે ભાવપરીષહોને સહન કરવાનો ઉપદેશ છે અને એ નિમિત્તે આ અધિકાર છે.

છદ્મસ્થપરીષહોના ભેદ—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ ચાર ઘાતીયા કર્મનું નામ છદ્મ છે. આ છદ્મમાં જે રહે છે તેનું નામ છદ્મસ્થ છે. એવા સંયમીજીવ કષાય સહીત છે. એને પાંચ સ્થાનોથી ઉદિત પરીષહો અને ઉપસર્ગોને કષાયના ઉદયનો નિરોધ આદિ સમજીને સહન કરવા ભેઈ એ શાંતિભાવથી અવિચલીત બનીને તેણે એ સમયે તેનાથી ગભરાવું ન ભેઈ એ. પરીષહ આદિના સ્થાનમાં જ પોતે પોતાને અધિકથી

तत्र प्रथमं स्थानम्-उदितकर्मा । उदितं प्रबलं वा कर्म=मिथ्यात्वमोहनीयादि यस्य स तथा, खलु अयं पुरुष उन्मत्तकभूतो मदिरादिना विप्लुतचित्त इवास्ति, तेन कारणेन ' मामयमाक्रोशति वा, अपहसति वा, निच्छोटयति=हस्तादौ गृहीत्वा बलात् क्षिपति वा, दुर्वचनैर्निर्भत्सयति वा, रज्ज्वादिना बध्नाति वा, कारागार-प्रवेशनादिना रुणद्धि वा, छविच्छेदं-छवेः शरीरावयवस्य हस्तादेः छेदं करोति वा, मारणस्थानं नयति वा, मारयति वा, अपद्रावयति वा, उपद्रवं करोति वा, वत्नं,

अधिक से अधिक समय तक रखना चाहिये ताकि उनके सहन करने की क्षमता आत्मा में आती रहे । पांच स्थानों में सर्वप्रथम स्थान उदितकर्मा है-मिथ्यात्व मोहनीय आदि कर्म जिसका प्रबलरूप से उदय में आरहा है ऐसा जीव उदितकर्मा है । इस प्रथमस्थान को लेकर जब परीषह एवं उपसर्गों का निपात संयत के ऊपर हो तब उसे यह विचार करना चाहिये कि यह पुरुष उदितकर्मा है-इसका मिथ्यात्वमोहनीयादिक कर्म प्रबलरूप से उदय में आरहा है, इसलिये यह उन्मत्त जैसा हो रहा है-मदिरा के पान से जिस प्रकार मनुष्य होश हवाश खो बैठता है उसी तरह का यह बना हुआ है, इसी कारण यह मेरे प्रति रुष्ट हो रहा है, मेरी हँसी मजाक करता है, हाथ पकड़ कर मुझे खेंचता है, दुर्वचनों से मेरा तिरस्कार करता है, रस्सी आदि से मुझे बांधता है, कारागार में मुझे बंध करता है, मेरे शरीर के अवयव को छेदता है, बधस्थान पर मुझे ले जाता है, मारता है, मुझे यहाँ

अधिक समय सुधी रहैवुं नैधये. जेथी तेने सहन करवानी समता आत्माभां आवती रहै. पांच स्थानोभां सर्वप्रथम स्थान उदित कर्मा छे. मिथ्यात्व मोहनीय आदि कर्म जेतुं प्रथम उपथी उदयभां आवी रहैल छे जेवो लव उदित कर्मा छे. आ प्रथम स्थानने लर्धने ज्यारे परीषह अने उपसर्गोना निपात साधु संयतनी उपर डोय त्यारे तेखे जे विचार करवो नैध जे के आ पुश्च उदित कर्मा छे. तेनुं मिथ्यात्व मोहनीयादिक कर्म प्रथम उपथी उदयभां आवी रहैल छे आथी ज ते उन्मत्त जेवो अनी रहैल छे. मदिराना पानथी जेवी रीते मनुष्य शुद्धि लुद्धि जोर्ध जेसे छे जेवी रीतनुं आ अनेल छे. आ कारणथी ते मारा तरङ्ग इष्ट अनी रहैल छे, मारी हांसी मजाक करे छे, हाथ पकडीने भने जेजे छे. दुर्वचनोथी मारे तिरस्कार करे छे, दोरडा आदिथी भने बांधे छे, कारागारभां भने अंध करे छे, मारा शरीरना अवयवोने छेदे छे, बधस्थान उपर भने लर्ध लय छे, मारे छे, भने त्यांथी लगाडे छे, मारा उपर उपद्रव



पात्रं, कम्बलं, पादप्रोच्छन्नं, सदोरकमुखवस्त्रिकां रजोहरणं वा आच्छिनत्ति= बलादुद्दालयति वा, विच्छिनत्ति=विच्छिन्नं करोति दूरे व्यवस्थापयति वा, अथवा वस्त्रमीषच्छिनत्ति-आच्छिनत्ति, विशेषेण छिनत्ति-विच्छिनत्ति । भिनत्ति=पात्रं स्फोटयति वा, अपहरति=चोरयति वा । इदं चाक्रोशादिकमत्र आक्रोशवधाभिधान-परीषहद्वयरूपं मन्तव्यम् । उपसर्गविवक्षायां तु मानुष्यकप्राद्वेषिकाद्युपसर्गरूपमिति प्रथमं स्थानम् ।

तथा—अयं परीषहोपसर्गकारी, मिथ्यात्वादिकर्मवशवर्ती पुरुषो यक्षाऽऽविष्टः =देवाधिष्ठितः, तेन कारणेन मामाक्रोशतीत्यादि । इति द्वितीयं स्थानम् ।

तथा—मम तद्भववेदनीयं कर्म उदितमस्ति, तेनैष मामाक्रोशतीत्यादि । तेनैव मानुष्यकेण भवेन वेद्यते=अनुभूयते यत्तत्, तद्भववेदनीयम् । इति तृतीयं स्थानम् ।

से भगाता है, मेरे ऊपर उपद्रव करता है, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद-प्रोच्छन्न, दोरासहित मुखवस्त्रिका रजोहरण आदि मेरे छुड़ाता है, और छुड़ाकर उन्हें दूर फेंक देता है, अथवा उन्हें झटकता है उन्हें फोड़ता है, चुराता है । ये आक्रोश आदि यहां पर आक्रोश एवं वधपरीषहरूप मानना चाहिये । जिस समय उपसर्ग की विवक्षा में ये आक्रोशादिक हों उस समय इनको मनुष्यकृत अथवा किसी द्वेषीकृत उपसर्ग में परिगणित करना चाहिये । इस प्रकार यह प्रथमस्थान है ।

द्वितीय स्थान में यह विचार करना चाहिये कि मिथ्यात्वादिकर्म-वशवर्ती यह परीषह एवं उपसर्गकारी पुरुष किसी देव से अधिष्ठित हो रहा है । इसी कारण यह मुझे आक्रोश आदि से पीड़ित कर रहा है । यह द्वितीय स्थान है ।

करे छे, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोच्छन्न, दोरा सहित मुखवस्त्रिका, रजोहरण आदि भारी पासेथी भसेडे छे, भसेडीने तेने दूर ईंकी दे छे, अथवा तेने आटके छे, तेने झुडे छे, चोरावे छे, ये आक्रोश आदि सर्वने आ स्थणे आक्रोश अने वध परीषहद्वय मानवा जेथ अने जे समये उपसर्गनी विवक्षाभां ये आक्रोश आदिक थाय ते समये अने मनुष्यकृत अथवा केथ द्वेषीकृत उपसर्गभां परिगणित करवुं जेथ अने ये प्रकारे आ प्रथम स्थान छे ।

धीन स्थानभां—ये विचार करवे जेथ अने के, मिथ्यात्व आदि कर्मना वशवर्ती आ परीषह अने उपसर्गकारी पुरुष केथ देवथी अधिष्ठित थथ रहेल छे. आ कारखुथी भने आक्रोश वगेरेथी पीडा आपी रहेल छे. आ धीणुं स्थान छे.



तथा—एष बालः पापभयरहितत्वात् करोतु नाम आक्रोशनादि, मम पुनर सहमानस्य=अक्षममाणस्य अतितिक्षमाणस्य=अनध्यासमानस्य, सर्वथा असातादि पापकर्म संपद्यते । इति चतुर्थं स्थानम् ।

तथा—एष बालः पापभयरहितत्वात् करोतु नाम आक्रोशनादिकं, मम पुनः खलु सम्यक् सहमानस्य यावत् अध्यासमानस्य किं संपद्यते, अयं तावत् पापं बध्नाति मया च एकान्तेन निर्जरा क्रियते । इति पञ्चमं स्थानम् ।

तृतीय स्थान में ऐसा विचार करें कि यह तो बाल है, पाप के भय से रहित होने के कारण भले ही यह आक्रोश आदि करता रहे, परन्तु मेरा कर्तव्य तो इनको सहन करने का ही है । यदि मैं इनको सहन नहीं करता हूँ—सहन में साहस को छोड़ देता हूँ, इनसे यदि घबरा जाता हूँ तो मुझे असाता आदि पापकर्म का नियमतः बंध होगा । इस प्रकार यह चतुर्थ स्थान है ।

पंचमस्थान में संयमी को ऐसा विचार करना चाहिये कि यह परीषह एवं उपसर्गकारी व्यक्ति पाप के भय से रहित होने के कारण बाल है, इसकी इच्छा है यह आक्रोशादिक करे । इससे मेरा बिगड़ता क्या है? मुझे तो उल्टा फायदा ही है, क्यों कि उपसर्ग और परीषह को समतापूर्वक सहन करनेवाले के एकान्ततः कर्मों की निर्जरा होती है, परन्तु यह उपसर्ग परीषहकारी पुरुष पाप का बंध करता है । यह पंचम स्थान है ।

त्रीण स्थानमां—अेवो विचार करे के, आ तो भाण छे, पापना लयथी रडित थवाना कारण्णे लडे अे आक्रोश अदि करतो रडे परंतु भाइं कर्तव्य तो अेने सहन करवानुं छे. जे हुं तेने सहन करतो नथी. तो सहिष्णुताना शुष्थी विमुथ थाउं छुं. जे तेनाथी हुं गलराधं लउछुं, तो मने असाता आदि पाप कर्मनो नियमतः अंध थसे. आ प्रकारे आ चोथुं स्थान पणु छे.

पांचम स्थानमां—संयमीअे अेवो विचार करवो जेधंअे के, आ परीषह अने उपसर्ग करनार व्यक्ति पापना लयथी रडित होवाना कारण्णे भाण छे. तेनी धरछा छे के, आ आक्रोश अदि करे पणु तेथी भाइं अगडे छे शुं? मने तो अेथी ललठो क्षयहोअ छे. कारण्णेके उपसर्ग अने परीषहने समता पूर्वक सहन करनारने अेकान्ततः कर्मोनी निर्जरा थाय छे. परंतु दयानी वात अे छे के उपसर्ग परीषहकारी पुइष तो केवण पापनोअ अंध करे छे. आ पांचमं स्थान छे.

इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैश्छद्मस्थसंयतः उदितान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहेत, क्षमेत, तितिक्षेत, अध्यासीत ।

अथ केवलिपरीषहाणां भेदाः—

पञ्चभिः स्थानैः केवली उदितान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहेत यावत्-अध्यासीत । तद् यथा—क्षिप्तचित्तः=पुत्रशोकादिना नष्टचित्तः खलु अयं पुरुषः, तेन कारणेन—एष पुरुषो मामाक्रोशति वा तथैव यावत् अपहरति वा । इति प्रथमं स्थानम् ।

तथा—अयं पुरुषो हर्षाधिक्याद् दृप्तचित्तोऽस्ति, पुत्रजन्मादि जनितहर्षेण गर्वितोऽस्ति, तेन कारणेन एष पुरुषो मामाक्रोशति यावत् अपहरति वा । इति द्वितीयं स्थानम् ।

इस प्रकार इन पूर्वोक्त पांच स्थानों से उदित परीषह एवं उपसर्गों को सम परिणाम से युक्त हो कर साधु को सहन करना चाहिये । उन से घबराना नहीं चाहिये ।

केवलीपरीषहों के भेद—

केवली पांच स्थानों से उदित परिषहों को सहन करते हैं, यावत् अध्यासित करते हैं—अर्थात् सम्यक् रूपसे सहन करते हैं । प्रथम स्थानमें वे यह विचार करते हैं कि—यह पुरुष पुत्रशोक आदि से विक्षिप्तचित्त है—इसका चित्त ठिकाने पर नहीं है इस कारण यह मेरे प्रति आक्रोश आदि कर रहा है ।

द्वितीयस्थानमें वे यह विचार करते हैं कि यह पुरुष हर्षातिरेकसे दृप्तचित्त है—पुत्रोत्पत्ति आदि जनित हर्ष से गर्वित हो रहा है इस कारण यह मेरे प्रति आक्रोश आदि चेष्टाएँ कर रहा है ।

आ प्रकारनां अये पूर्वोक्त पांच स्थानोष्ठी उदित परीषहू अने उपसर्गाने समपरिष्ठाभथी युक्त अनीने साधुअये सहन करवां जेई अये. अेनाथी गलराबुं न जेई अये.

केवलीपरीषहोना भेद—

केवली पांच स्थानोष्ठी उदित परीषहोने सहन करे. यावत् अध्यासित करे. प्रथम स्थानमां ते विचार करे के आ पुत्र पुत्रशोक आदिथी चित्तप्रम स्थितमां छे. जेनुं चित्त ठेकाछे नथी ते कारणे ते मारा उपर आक्रोश आदि करी रहेल छे.

धीन स्थानमां ते अेवा विचार करे के, आ पुत्र हर्षना आवेशमां कुलाई गथेल छे, पुत्रोत्पत्ति वगेरेना कारणथी ते हर्षथी छडी गथेल छे. आ कारणे अये मारा तरङ् आक्रोश वगेरे चेष्टाअो करे छे.

तथा—यक्षाविष्टः खलु अयं पुरुषः, तेन कारणेन एष पुरुषो मामाक्रोशति यावत्—अपहरति वा । इति तृतीयं स्थानम् ।

तथा—मम पुनः खलु तद्भववेदनीयं कर्म उदितम् । तेन कारणेन एष पुरुषो मामाक्रोशति यावत्—अपहरति वा । इति चतुर्थं स्थानम् ।

तथा—मां पुनः खलु सम्यक् सहमानं क्षममाणं तितिक्षमाणम् अध्यासमानं दृष्ट्वा बहवोऽन्ये छद्मस्थाः श्रमणा निर्ग्रन्था उदितान् परीषहोपसर्गान् एवं सम्यक् सहिष्यन्ते यावत् अध्यासिष्यन्ते । इति पञ्चमं स्थानम् ॥

इत्येतैः पञ्चभिः स्थानैः केवली उदितान् परीषहोपसर्गान् सम्यक् सहेत यावत् अध्यासीत् । एतत् स्थानाङ्गसूत्रे स्पष्टम् । (स्था ५ ठा. १ उ०) ॥ ४५ ॥

तृतीयस्थान में वे यह विचार करते हैं कि यह परीषह एवं उपसर्गकारी व्यक्ति यक्षाविष्ट हो रहा है इस कारण मेरे प्रति आक्रोश आदि कर रहा है ।

चतुर्थस्थान में वे ऐसा विचार करते हैं कि—मेरे इसी भव का वेदनीय कर्म उदित हो रहा है इस कारण यह पुरुष मेरे प्रति आक्रोशादिक कर रहा है ।

पंचमस्थान में ऐसा विचार करते हैं—मुझे इन परीषह एवं उपसर्गों को अच्छी तरह सहन करते हुए देखकर अन्य अनेक छद्मस्थ श्रमण निर्ग्रन्थ उदितपरीषहों एवं उपसर्गोंको सहन करेंगे, उनके सहन करने में चलायमान नहीं होवेंगे—सहन करते समय धैर्य धारण करेंगे ।

इस प्रकार इन पांच स्थानों से परीषहों एवं उपसर्गों को सहन आदि करते हैं । यह स्थानाङ्गसूत्रमें स्पष्ट लिखा हुआ है । (स्था.५ उ.१)॥४५॥

त्रीण स्थानमां अवेो विचार करे के, आ परीषह अने उपसर्ग करनार व्यक्ति यथाविष्ट थर् रडेल छे. आ कारणे ते मारा तरक्ष आक्रोश वगेरे करी रडेल छे.

चोथा स्थानमां अवेो विचार करे छे के, मारां आ लवनां वेदनीय कर्म उदयमां आवेल छे, अने ते कारणेने लर् आ पुर्ष मारा तरक्ष आक्रोश करी रडेल छे.

पांचमा स्थानमां अवेो विचार करे छे के, मने आवा परीषह अने उपसर्गोने सारी रीते सहन करतां जेधने अन्य अनेक छद्मस्थ निग्रन्थ श्रमण उदित परीषहो अने उपसर्गोने सहन करशे. तेना सहन करवामां चलायमान नहीं थाय अने सहन करती वधते धैर्य धारण करता रडेशे.

आ प्रकारे ओ पांचे स्थानोथी परीषहो अने उपसर्गोने सहन करे. आ स्थानाङ्गसूत्रमां स्पष्ट लखेल छे. (स्था. ५ उ०१) ॥४५॥

अध्ययनार्थमुपसंहरन्नाह—

मूलम—एए परीसहा सैव्वे, कासवेणं पवेइया ।

जे भिवसू णं विहम्मज्जा, पुंठोकेणइ कणहुइ ॥४६॥त्तिवमि॥

॥ बीयं परिसहज्जयणं समत्तं ॥

छाया—एते परीषहाः सर्वे, काश्यपेन प्रवेदिताः ।

यान् भिक्षुर्न विहन्येत, स्पृष्टः केनापि कस्मिंश्चित् ॥४६॥ इति ब्रवीमि ॥

टीका—‘ एए ’ इत्यादि ।

एते सर्वे परीषहाः काश्यपेन=काश्यपगोत्रोत्पन्नेन भगवता श्रीवर्धमानस्वामिना तीर्थकरेण प्रवेदिताः-प्रतिबोधिताः । यान्=परीषहान् ज्ञात्वा भिक्षुः केनापि परीषहेण कस्मिंश्चित् स्थाने स्पृष्टः सन् ‘ न विहन्येत=न पराजितो भवेत्, संयमात्

अब अध्ययन के अर्थ का उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—  
‘एए’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(एए परीसहा—एते पराषहाः) ये २२ बाईस परीषह (कास-वेण-काश्यपेन ) काश्यपगोत्रोत्पन्न तीर्थकर भगवान् श्रीमहावीर स्वामीने (पवेइया-प्रवेदिताः) कहे हैं । (जे-यत्) जिनको जानकर (भिवसू-भिक्षुः) भिक्षु (केणइ-केनापि) किसी भी परीषह से (कणहुइ-कुत्रचित्) किसी स्थान में आक्रान्त होने पर (ण विहम्मज्जा-न विहन्येत) पराजित नहीं

हुवे अध्ययनना अर्थनेो उपसंहार करतां सूत्रकार कहे छे.—

‘ एए ’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—एए परीसहा—एते परीषहाः आ आवीस परीषह कासवेण-काश्यपेन काश्यपगोत्रोत्पन्न तीर्थकर भगवान् श्री महावीर स्वामीने पवेइया-प्रवेदिताः कहेल छे. जे-यत् नेने णेने भिक्षु-भिक्षुः केणइ-केनापि परीषहथी कणहुइ-कुत्रचित् केणइ स्थानमां आकांत थाथी ण विहम्मज्जा-न विहन्येत संयमथी भिक्षु पतित न थाय. “ इति ब्रवीमि ” आ प्रकारे हे जंयु ! भगवाने नेवुं कहुं छे तेवुं ज भे कहुं छे. मारीपोतानी पुद्धिनी कटपनाथी कांथ पणु कहेल नथी.

पतितो न भवेदित्यर्थः । इति ब्रवीमि=भगवता यथा प्रतिबोधितं, तथा कथयामि  
न तु स्वबुद्ध्या प्रकल्पयेति भावः ॥ ४६ ॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्ब्रह्म-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-  
कलितललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-  
वादिमानमर्दक-श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-  
“जैनशास्त्राचार्य”-पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-  
बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य-  
श्रीघासीलालवतिविरचितायां श्रीमदुत्तराध्ययन-  
सूत्रस्य प्रियदर्शिन्याख्यायां व्याख्यायां  
परीषहनामकं द्वितीयमध्ययनं  
सम्पूर्णम् ॥ २ ॥

—(०)—

होवे-संयम से पतित नहीं होवे। “इति ब्रवीमि” इस प्रकार हे जम्बू!  
भगवान् ने जैसा कहा है मैंने वैसा ही कहा है। अपनी बुद्धि से कल्पित  
कर कुछ नहीं कहा है।

भावार्थ—अध्ययन की समाप्ति करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जो  
साधु इन परीषहों से पराजित नहीं होता है वह संयम की ठीक २  
आराधना करता है। ये बाईस परीषह मैंने नहीं कहे हैं, भगवान् महा-  
वीरने कहे हैं। अतः इनका स्वरूप जानकर इनके सहन करने में प्रत्येक  
संयत को सावधान रहना चाहिये ॥

॥ यह द्वितीय परीषहअध्ययन समाप्त हुआ ॥२॥



भावार्थ—अध्ययनकी समाप्ति करतां सूत्रकार कहे छे के, जे साधु  
आ परीषडोथी पराल्छत नथी थतां, ते संयमनी ठीक ठीक आराधना करे छे.  
आ आवीस परीषड भे कहे नथी भगवान महावीरे कहे छे आथी जेनुं  
स्वरूप ज्ञानीने तेने सहन करवामां प्रत्येक संयते सावधान रहेवुं जेधजे.

॥ आ जीनुं परीषड नामनुं अध्ययन समाप्त थयुं ॥२॥



## ॥ अथ तृतीयमध्ययनम् ॥

परीषहनामकं द्वितीयमध्ययनमुक्तम् । अथ तृतीयं चतुरङ्गीयमध्ययनं प्रारभ्यते । अस्य चायमभिसम्बन्धः—इहानन्तराध्ययने परीषहाः सोढव्या इत्युक्तम्, तत्र 'किमालम्बनं कृत्वा ते सोढव्याः ?' इत्याकाङ्क्षायां चतुर्णामङ्गानां दुर्लभत्वमेव तत्रालम्बनमिति बोधयितुं चतुरङ्गीयनामकमिदं तृतीयमध्ययनमुच्यते, तत्रादौ तेषां नामानि निर्दिशन्नाह—

### तृतीय अध्ययन—

परीषहनामक द्वितीय अध्ययन कहा जा चुका है । अब चतुरङ्गीयनामक तृतीय अध्ययन प्रारंभ होता है । द्वितीय अध्ययन के बाद इस अध्ययन का प्रारंभ करने का सूत्रकार का यह उद्देश्य है कि जो द्वितीय अध्ययन में "परीषह सहन करना चाहिये" ऐसा कहा है सो वहाँ पर ऐसा प्रश्न होता है कि "इन परीषहों को किसका अवलम्बन लेकर सहन करना चाहिये" । इसके समाधान निमित्त ही इस तृतीय अध्ययन का प्रारंभ है । इसमें यह बतलाया जायगा कि चार परम-उत्कृष्ट अंगों की प्राप्ति महादुर्लभ है । ये चार अंग बड़े पुण्य से मिले हैं, ऐसा समझकर मुनि परीषहों को सहन करते हैं, वे ही चार अंग यहाँ अवलम्बन-आधार-रूप है अतः उन चार अंगोंको यहाँ बतलाते हैं— 'चत्वारि'—इत्यादि ।

### अध्ययन त्रीणुं

परीषह नामनुं त्रीणुं अध्ययन कडेवाध गयुं । डवे यतुरंगिय नामनुं त्रीणुं अध्ययन शङ् थाय छे । त्रीणु अध्ययन पछी आ त्रीणु अध्ययननो प्रारंभ करवानो सूत्रकारनो ओ उदेश छे के, त्रीणु अध्ययनमां "परीषह सहन करवो जेधओ" ओवुं कडेल छे । तेमां ओवो प्रश्न उत्पन्न थाय छे के, आ परीषहोने केतुं अवलंभन लधने सहन करवा जेधओ । ओना समाधान निमित्ते न आ त्रीणु अध्ययननो प्रारंभ छे । आमां ओ वात भताववामां आवे छे के, चार परम-उत्कृष्ट अंगोनी प्राप्ति भडा दुर्लभ छे । ओ चार अंग घण्टा पुन्यथी भणे छे । ओवुं समञ्जने मुनि परीषहोने सहन करे । ओ चार अंग अडो अवलंभन आधार रूप छे । आथी ओ चार अंगोने अडो भताववामां आवेल छे । 'चत्वारि' धत्यादि ।



मूलम्—चत्वारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणो ।

माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि यं वीरियं<sup>१</sup> ॥१॥

छाया—चत्वारि परमाङ्गानि, दुर्लभानि इह जन्तोः ।

मानुषत्वं श्रुतिः श्रद्धा, संयमे च वीर्यम् ॥ १ ॥

टीका—‘चत्वारि’ इत्यादि ।

इह=संसारे चत्वारि परमाङ्गानि-परमाणु=उत्कृष्टानि, अङ्गानि=साधनानि-मुक्तिप्राप्तिकारणानि, जन्तोः=प्राणिनः, दुर्लभानि=दुःखेन लभ्यानि, नरकनिगोदाघनन्तजन्ममरणानन्तरप्राप्यत्वात् । तानि धर्मप्राप्तेः प्रधानकारणानि चत्वारि । कानि ? इत्यत आह—‘माणुसत्तं’ इत्यादि । मानुषत्वं=मनुष्यजन्म, श्रुतिः=धर्मस्य श्रवणम्, श्रद्धा=धर्मे रुचिः, च=पुनः संयमे आस्रवविरमणरूपे विरतिलक्षणे सप्तदशविधे वीर्यं विशेषेण ईरयति प्रवर्तयति आत्मानं तासु तासु क्रियासु इति वीर्यं=सामर्थ्यम् । एतानि चत्वारि जीवस्य दुर्लभानि सन्तीति ।

अन्वयार्थ—(इह) इस संसार में (चत्वारि परमंगाणि-चत्वारि परमाङ्गानि) मुक्तिप्रापक ये चार अंग (जंतुणो-जन्तोः) प्राणि को (दुल्लहाणि-दुर्लभानि) महादुर्लभ हैं-नरक निगोदादिक में अनन्त जन्म कर लेने के बाद जीवों को प्राप्त होते हैं । धर्मप्राप्ति के प्रधान कारण चार अंग ये हैं-(माणुसत्तं-मानुषत्वम्)१ मनुष्यजन्म, (सुई-श्रुतिः)२ धर्म का श्रवण, (सद्धा-श्रद्धा)३ धर्म में श्रद्धा रुचि (य-च) और (संजमम्मि य वीरियं-संयमे वीर्यम्)४ आस्रव का विरमणरूप जो १७ सत्रह प्रकार का संयम है उसमें विशेषरूप से शक्ति के अनुरूप प्रवृत्ति । ये चार बातें जीवके लिये प्राप्त होना महादुर्लभ हैं ।

अन्वयार्थ—इह आ संसारमां चत्वारि परमंगाणि-चत्वारि परमाङ्गानि मुक्तिप्रापक आपनार अे आर अंग जंतुणो-जन्तोः प्राणीने दुल्लहाणि-दुर्लभानि भडा दुर्लभ छे. नरक निगोदादिकमां अनंत जन्म करी लीधा पछी लुवेने प्राप्त थाय छे. धर्म प्राप्तितुं प्रधान कारण आ आर अंग छे माणुसत्तं-मानुषत्वम् १ मनुष्य जन्म, सुई-श्रुतिः २ धर्मतुं श्रवणु सद्धा-श्रद्धा ३ धर्ममां श्रद्धा-रुची य-च अने संजयम्मि वीरियं-संयमे वीर्यम् ४ आस्रवना विरमणु३५ वे सत्तर प्रकारने संयम छे तेमां विशेषरूपथी शक्तिनी अनुरूप प्रवृत्ति आ आर वातो लुव भाटे प्राप्त थवी भडा दुर्लभ छे.

एतदङ्गवतुष्टयं हि गिरिषु मेरुरिव, तरुषु कल्पतरुरिव, धातुषु सुवर्णमिव, पानेषु पीयूषमिव, मणिषु चिन्तामणिरिव, प्रामाणिकपुरुषेषु तीर्थकर इव, धेनुषु कामधेनुरिव, मनुष्येषु चक्रवर्तीव, देवेषु शक्र इव प्रधानमस्तीति सूचनार्थं 'पर-मंगाणि' इत्यत्र परमेति विशेषणम् ।

નતુ માનુષત્વાદીનાં કથં પરમાઙ્ગત્વમ્ નિર્જરાયા एवं मुक्तिप्राप्तौ साक्षात् कारणत्वेन प्राधान्यादिति चेत्? उच्यते—मानुषत्वादिचतुष्टयं विना निर्जराया अनु-त्पत्त्या तदपेक्षया मानुषत्वादिचतुष्टयस्य प्रथमोपादेयतया मुख्यत्वादुत्कृष्टत्वमस्ति ।

ये चार अंग, पर्वतों में जैसे मेरु प्रधान है, वृक्षों में जैसे कल्पवृक्ष प्रधान है, धातुओं में जैसे सुवर्ण प्रधान है, पेय पदार्थों में जैसे अमृत प्रधान है, मणियों में जैसे चिन्तामणि प्रधान है, प्रामाणिक पुरुषों में जैसे तीर्थकर प्रधान है, गायों में जैसे कामधेनु प्रधान है, मनुष्यों में जैसे चक्रवर्ती प्रधान है और देवों में जैसे इन्द्र प्रधान है उसी प्रकार ये चार अंग प्रधान हैं । इसी बात को द्योतन करने के लिये सूत्रकारने “परम” यह विशेषण दिया है ।

प्रश्न—मानुषत्व आदि में परमाङ्गता—प्रधानता कैसे हो सकती है । क्यों कि मुक्ति की प्राप्ति में निर्जरा ही साक्षात्कारण होती है अतः निर्जरा की प्रधानता है ।

उत्तर—यद्यपि मुक्ति की प्राप्ति में साक्षात्कारण निर्जरा है परन्तु निर्जरा निराश्रय तो होगी नहीं, अतः मानुषत्वादि चार के विना जब निर्जरा नहीं बन सकती है तो यह बात स्वतः सिद्ध होती है कि

જેવી રીતે પર્વતોમાં મેરુ પ્રધાન છે, વૃક્ષોમાં જેમ કલ્પવૃક્ષ પ્રધાન છે, ધાતુમાં જેમ સુવર્ણ પ્રધાન છે, પીવાના પદાર્થોમાં જેમ અમૃત પ્રધાન છે, મણીઓમાં જેમ ચિન્તામણી પ્રધાન છે, પ્રામાણિક પુરુષોમાં જેમ તીર્થ કર પ્રધાન છે, ગાયોમાં જેમ કામધેનુ પ્રધાન છે, મનુષ્યોમાં જેમ ચક્રવર્તી પ્રધાન છે, અને દેવોમાં જેમ ઇન્દ્ર પ્રધાન છે, આવી રીતે આ ચાર અંગ પ્રધાન છે. આ વાતને સમજાવવા માટે સૂત્રકારે “પરમ” એવું વિશેષણ આપેલ છે.

પ્રશ્ન—મનુષ્યત્વ આદિમાં પરમાંગતા—પ્રધાનતા કઈ રીતે હોઈ શકે કેમકે, મુક્તિની પ્રાપ્તિમાં નિર્જરા જ સાક્ષાત્ કારણ હોય છે. આથી નિર્જરાની પ્રધાનતા છે.

ઉત્તર—કદાચ મુક્તિની પ્રાપ્તિમાં સાક્ષાત્કારણ નિર્જરા છે પરંતુ નિર્જરા નિરાશ્રય તો રહે નહીં આથી માનુષત્વાદિ ચાર અંગ વગર નિર્જરા બની શકતી નથી. આથી આ વાત સ્વતઃ સિદ્ધ થાય છે કે, નિર્જરાની અપેક્ષા એ આ

मानुषत्वादिषु चतुर्षुकस्याप्येकस्याभावे मोक्षो न संभवतीत्यतउक्तं 'चत्वारि' इति । धर्मश्रवणं विनाऽपि यस्य श्रद्धा दृश्यते सा जन्मान्तरीयश्रवणजन्यैवेति नास्ति शङ्कावसरः । मृदं विना घट इव, तन्तून् विना पट इव, काष्ठं विना शकटमिव मानुषत्वादिचतुष्टयं विना मोक्षो न भवति ।

निर्जरा की अपेक्षा ये चार अंग सर्वप्रथम उपादेय होने के कारण मुख्य हैं । इसलिये उनमें ही उत्कृष्टता आती है । इन चारों में से यदि एक भी अंग का अभाव रहता है तो मुक्ति का लाभ जीव को नहीं हो सकता है । यही बात "चत्वारि" इस विशेषण से पुष्ट की गई है ।

प्रश्न—धर्म के श्रवण से ही जीव को धर्म में श्रद्धा होती है ऐसा ऐकान्तिक नियम नहीं है, क्यों कि प्रायः ऐसे भी जीव देखे जाते हैं कि जो धर्म का श्रवण तो नहीं करते हैं फिर भी उनकी धर्म में अटूट श्रद्धा रहती है ।

उत्तर—प्रश्न ठीक है । परन्तु उसका उत्तर यह है कि—जो जीव ऐसे हैं कि धर्म श्रवण किये विना भी धर्म में श्रद्धाशाली होते हैं उन्होंने ने पहिले भव में धर्मश्रवण किया है, उसीका प्रताप है । मिट्टी के विना जैसे घट उत्पन्न नहीं हो सकता है, तन्तुओं के विना जैसे वस्त्र नहीं बन सकता है, काष्ठ के विना जैसे शकट का निर्माण

चार अंग सर्व प्रथम उपादेय भवाना कारणे मुख्ये छे. आ कारणे तेनामां उत्कृष्टता आवे छे. आ चारमांथी जे ओके पक्ष अंगने अलाव रहे तो मुक्तिने लाल एवने थर् शकते नथी. आ वात "चत्वारि" ओ विशेषणुथी नङ्गी करवामां आवेद छे.

प्रश्न—धर्मना श्रवणुथी ज एवने धर्ममां श्रद्धा थाय छे ओवे ओकान्तिक नियम नथी. केभके, धरु ओवा एव जेवामां आवे छे के, जे धर्मनुं श्रवणु करता नथी छतां पक्ष ओनी धर्ममां अतूट श्रद्धा रहे छे.

उत्तर—प्रश्न ठीक छे. परंतु ओने उत्तर ओ छे के,—जे एव ओवा छे के जे धर्मनुं श्रवणु करी वगर पक्ष धर्ममां श्रद्धावाणा छे, ओमले आगला लवमां धर्म श्रवणु करेहुं होय छे आथी ज आ लवमां धर्ममां जे श्रद्धा छे ते परलवने वीशे सांलजेला धर्म श्रवणुने प्रताप छे. भाटी वगर जेम धडे जनी शकते नथी, तंतुओ वगर जेम वस्त्र जनी शकतुं नथी, लाकडा वगर जेम शकटनुं निर्माण

मानुषत्वं दुर्लभमित्यत्र दश दृष्टान्ताः प्रदर्श्यन्ते, तद् यथा—चोल्लकः १, पाशकः २, धान्यं ३, घृतं ४, रत्नं ५, स्वप्नः ६, चक्रं ७, कूर्मः ८, युगं ९, परमाणुः १० ।

अथ प्रथमश्चोल्लकदृष्टान्तः—चोल्लको=भोजनं तदुपलक्षितो दृष्टान्तः प्रोच्यते—कांपिल्यनगरे ब्रह्मनामको नृपतिरासीत्, तस्य भार्या चुलनीनाम्नी, पुत्रो ब्रह्मदत्तनामकः । तस्मिन् ब्रह्मनृपतौ मृते सति तत्पुत्रस्य ब्रह्मदत्तस्य बाल्यावस्थां विलोक्य ब्रह्मनृपसुहृद् दीर्घपृष्ठनामको नृपस्तद्राज्यं रक्षति । तदनन्तरं स

नहीं हो सकता है उसी तरह इन मानुषत्व आदि चार अंगों की प्राप्ति हुए बिना मुक्ति की प्राप्ति जीव को नहीं हो सकती है ।

“ मानुषत्वं दुर्लभं ” मनुष्यपन की प्राप्ति महादुर्लभ है, इस विषय में दश दृष्टान्त कहे जाते हैं, जैसे—चोल्लक १, पाशक २, धान्य ३, घृत ४, रत्न ५, स्वप्न ६, चक्र ७, कूर्म ८, युग ९ परमाणु १० ।

चोल्लक नाम भोजनका है । इससे उपलक्षित होनेसे चोल्लक को भी दृष्टान्त कह दिया गया है । यह प्रथम चोल्लकदृष्टान्त इस प्रकार है—

कांपिल्य नगर में ब्रह्म नाम का राजा था । इसकी स्त्री का नाम चुलनी और पुत्र का नाम ब्रह्मदत्त था । राजा ब्रह्म के काल प्राप्त हो जाने के बाद ब्रह्मदत्त की बाल अवस्था देखकर “राज्य में अव्यवस्था न फैल जाय ” इस दृष्टि से राजा ब्रह्म के मित्र दीर्घपृष्ठ नाम के राजा ने उसके राज्य को संभाल लिया । जब कुछ समय व्यतीत हो गया

थर्ध शक्तुं नथी, जेज रीते आ मानुषत्व आदि चार अंगोनी प्राप्ति थया विना मुक्तिनी प्राप्ति जवने थर्ध शक्ती नथी.

मानुषत्वं दुर्लभं मनुष्यपणानी प्राप्ति महादुर्लभ छे, आ विषयमां दश दृष्टांत कडेवामां आवे छे. जेम—चौल्लक १, पाशक २, धान्य ३, घृत ४, रत्न ५, स्वप्न ६, चक्र ७, कूर्म ८, युग ९, परमाणु १०.

चौल्लक नाम लोचननुं छे जेथी उपलक्षित थवाथी चौल्लकनुं पणु दृष्टांत कडेवामां आवेल छे. आ प्रथम चौल्लकदृष्टांत आ प्रकारनुं छे.—

कांपिल्य नगरमां ब्रह्मनामनो राजा હતો. તેની સ્ત્રીનું નામ ચુલની અને પુત્રનું નામ બ્રહ્મદત્ત હતું. રાજા બ્રહ્મની કાળપ્રાપ્તિ પછી, બ્રહ્મદત્તની બાળ અવસ્થા જોઈને “ રાજ્યમાં અવ્યવસ્થા ન ફેલાઈ બાય ” આ દૃષ્ટીથી રાજા બ્રહ્મના મિત્ર દિર્ઘપૃષ્ઠ નામના રાજાએ તેના રાજ્યને સંભાળી લીધું. થોડો

चुलन्यामासक्तो जातः । तयोर्दुश्चरितं ब्रह्मदत्तेन विदितम् । ब्रह्मदत्तेन काकहंसी युगलं पिष्टमयं मैथुनपरायणं निर्माय शूलप्रोतं कृत्वा ताभ्यां प्रदर्शितम् । तथा-  
गोनस-पद्मनागिनीयुगलं पिष्टमयं कृत्वा वाचा तर्जयति-रे दुष्ट ! दुराचारिन् !  
गोनस ! किं पद्मनागिन्या सह रमसे ? तत्फलं भुङ्क्ष्व, इत्युक्त्वा तदुभयं प्रज्वलज्ज्व-  
लने प्रक्षिपति । एवं दुष्कर्मनिवृत्त्यर्थं ब्रह्मदत्तप्रदर्शितं दण्डं विलोक्यापि तौ दुष्कर्म-  
करणान्न निवृत्तौ । ततश्चुलन्या दीर्घपृष्ठनृपेण च परस्परं विचार्य ब्रह्मदत्तस्य विवाहः

तो वह दीर्घपृष्ठ चुलनी के मोह में फँस गया । चुलनी और दीर्घपृष्ठ के दुश्चरित की बात ब्रह्मदत्त के कान तक भी पहुँच गई । ब्रह्मदत्त ने उन दोनों को शिक्षा देने के अभिप्राय से आटे का एक, मैथुन में परायण काक और हँसी का जोड़ा निर्मापित कर और उसे शूल में पिरोकर उन दोनों को दिखलाया । तथा गोनस ( फणरहित सर्प ) और पद्मनागिनी का भी एक जोड़ा आटे से उसने तयार किया, और उन्हीं के समक्ष कहने लगा रे-दुष्ट ! दुराचारी गोनस ! तुझे लज्जा नहीं आती जो तू पद्मनागिनी के साथ रमता है ? अरे अधम ! तू अब अपने किये हुए कर्म का फल भोग । इस प्रकार वाणी से तर्जित कर उसने उन दोनों को जलती हुई अग्नि में डाल दिया । इस प्रकार दुष्कर्म की निवृत्ति के लिये ब्रह्मदत्त के द्वारा प्रदर्शित दण्ड को देखकर भी रानी और दीर्घपृष्ठ अपने अनर्थविधायक दुष्कर्म से पीछे नहीं हटा ।

समय विती गया आह ते द्विर्घृष्ट चुलनीना मोहमां इसाध गयो. चुलनी अने द्विर्घृष्टनी आ दुश्चरित्रनी वात ब्रह्मदत्तना कान सुधी यडोच्यी गध, ब्रह्मदत्ते अे अन्ने ने शिक्षा देवाना अबिप्रायथी आटाभांथी ( बोटभांथी ) अेक मैथुनमां परायण्य काक अने डंसलीतुं जेडुं निर्माण्य करी तेने शुत्यमां परेवीने ते अन्नेने अताव्युं. तथा ऐषु वगरने साप अने पद्मनागण्युं पण्य अेक जेडुं आटाभांथी ( बोटभांथी ) अनावी तैयार कर्युं. अने तेनी साभे कडेवा लाग्यो, रे दुष्ट ! दुराचारि गोनस ( ऐषु रडित सर्प ) ! तने लाज नथी आवती के तुं, पद्मनागण्युनी साथे रमी रह्यो छे. अरे अधम ! तुं डवे पोताना करेवा कर्मनुं इण लोगव. आ प्रकारे कहीने अे अन्ने ने तेणु लडलडती अग्निमां नाभी दीधा. आ प्रकारे दुष्कर्मनी निवृत्ति भाटे ब्रह्मदत्तद्वारा प्रदर्शित दंडने जेधने राणी अने द्विर्घृष्ट पोताना अनर्थ विधायक दुष्कर्मथी पाछां न कर्यां. अेक दिवसनी वात छे के, आ अन्नेअे अेकांतमां

कारितः । ततः कपटप्रबन्धेन ब्रह्मदत्तमारणार्थं जतुगृहं कारितम् । तदा धनुनामका ब्रह्मनृपतेर्मन्त्री तत् कपटं ज्ञातवान् । स च नदीतीरात् तद्गृहाभ्यन्तरेऽधः पृथिव्यां सुरङ्गां निर्माय नदीतटे सुरङ्गाद्वारे तुरंगमद्वयं स्थापयित्वा स्वपुत्रं वरधनुनामकं जतुगृहनिर्माणकारणं ज्ञापयति । ततो निःसरणार्थं निर्मापितां सुरङ्गां च दर्शयति । स वरधनुः स्वपित्राज्ञया ब्रह्मदत्तानुचरोऽभवत् ।

अन्यदा कदाचित् जनन्या प्रेरितो ब्रह्मदत्तस्मिन् जतुगृहे सुप्तः, वरधनुश्च

एक दिन की बात है कि इन दोनोंने एकान्त में इस प्रकार की गुप्तमंत्रणा की कि ब्रह्मदत्त का विवाह कर देना चाहिये । ऐसा ही हुआ ब्रह्मदत्त का विवाह कर दिया गया । तथा ब्रह्मदत्त को मारने के लिये कपट से एक लाक्षागृह—लाख का महल भी बनवा कर तैयार कराया गया । राजा ब्रह्म के मंत्री को उनकी यह कपट रचना ज्ञात हो गई । मंत्री का नाम धनु था । उसने नदी के तीर से लेकर उस लाक्षागृह के भीतर तक पृथिवी के नीचे एक सुरंग बनवाई । जब सुरंग बनकर तैयार हो चुकी तो नदी के तट पर कि जहां सुरंग से बाहर निकलने का द्वार था दो घोड़े खड़े करवा दिये और अपने पुत्र से कि जिसका नाम वरधनु था लाक्षागृह के निर्माण का कारण प्रकट कर दिया । तथा यहां से निकलने के लिये जो सुरंग बनाई गई थी उसका भी भीतरी दरवाजा उसे दिखला दिया । वरधनु अपने पिता की आज्ञा से ब्रह्मदत्त का अनुचर बन गया । एक दिन की बात है कि अपनी माता

એવા પ્રકારની ગુપ્ત મંત્રણા કરી કે, બ્રહ્મદત્તનો વિવાહ કરી દેવો. અને એ પ્રમાણે બ્રહ્મદત્તનો વિવાહ કરી દેવામાં આવ્યો. આ પછી બ્રહ્મદત્તને કપટથી મારવા માટે એક લાખાગૃહ (લેગણીનો મહેલ) બનાવી તૈયાર કર્યો રાજા બ્રહ્મના મંત્રીને તેમની આ કપટ રચના જાણવામાં આવી ગઈ. મંત્રીનું નામ ધનુ હતું. તેણે નદીના કાંઠાથી લઈને એ લાખાગૃહની અંદર સુધીનું એક ભોંયડું તૈયાર કરાવ્યું. બીજા ભોંયડું તૈયાર થઈ ગયું ત્યારે નદીના કાંઠા ઉપર કે જ્યાં ભોંયારમાંથી બહાર નીકળવાનો રસ્તો રાખ્યો હતો તે સ્થળે એ ઘોડા તૈયાર રખાવ્યા. અને પોતાના પુત્ર કે જેનું નામ વરધનુ હતું તેને લાખાગૃહની સમસ્ત વાતથી જાણકાર કરી તેમાંથી નીકળવા માટે જે ભોંયડું બનાવવામાં આવેલ હતું તેની સઘળી માહિતી આપી નીકળવા માટેનો દરવાજો તેને બતાવી દીધો. એક દિવસની વાત છે કે, કુમાર બ્રહ્મદત્ત તેની માતાના કહેવાથી તે લાખાગૃહ



तत्समीपे प्रकोष्ठकान्तरे शयनार्थं गतः । तदाऽर्धरात्रे जनन्याऽग्निसंयोजनात् तज्जतुगृहं प्रदीपितम् । ब्रह्मदत्त उत्थितः । तदा वरधनुर्ब्रह्मदत्तं वदति-नाथ ! प्रासादः प्रज्वलति, भवान् निःसरतु । इति तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मदत्तो ब्रवीति-प्रदर्शय मार्गम्, तदा वरधनुर्वदति नाथ ! अयमस्ति सुरङ्गामार्गः, पादाघातेन सुरङ्गाद्वारवर्ति-शिलापट्टकं चूरय, ब्रह्मदत्तेन तथा कृते सति उभौ तेनैव सुरङ्गापथेन निःसृत्य बहि-र्द्वारावस्थिततुरङ्गमौ समारूढ्य देशान्तरं गतौ ।

द्वारा प्रेरित होने पर ब्रह्मदत्त उस लाक्षागृह में जाकर सो गया । वरधनु भी उसी के समीप एक प्रकोष्ठक में सो गया । जब आधी रात होने का समय आया तो चुलनी माता ने उस लाक्षागृह में आग लगा दी मकान जलने लगा । ब्रह्मदत्त एकदम उठा । वरधनु ने शीघ्र पास आकर ब्रह्मदत्त से कहा-नाथ ! महल जल रहा है, अपन यहां से शीघ्र चले जावें । वरधनु के वचन सुनकर ब्रह्मदत्तने कहा-बताओ मार्ग कहां है ? ब्रह्मदत्त के वचन सुनकर वरधनु ने कहा-नाथ ! यह रहा सुरंग का मार्ग । इसके द्वार पर जो यह पत्थर की शिला का ढक्कन लगा हुआ है इसे आप पैरों से हटा दीजिये और बाहर निकल जाईये । ब्रह्मदत्त ने ऐसा ही किया । सुरंग के द्वार पर लगे हुए पत्थर को पैर से हटाकर वे और वरधनु दोनों सुरंगमार्गसे बाहर निकल आये और बाहर के द्वारपर खड़े हुए दोनों घोड़ोंपर चढ़कर वहांसे दूसरे देशको चले गये ।

मडेलमां सुवा भाटे गये। मंत्रीना पुत्र वरधनुं पथु तेनी साथे ते मडेलमां गये अने तेनी साथे अे मडेलमां ते पथु अेक आसन उपर सुते। न्यारे अरधी रातने प्रारंभ थध युक्तये त्यारे दुष्कर्मिणी अेवी कुमारनी माता चुलनीअे ते लाभागृहमां आग लगाडी। मडेल सणगवा लाग्ये, अ्रह्मदत्त अेकदम उठ्ये। वरधनुअे अे वपते तेनी पासे आवीने कहुं, नाथ! मडेल सणगी रह्यो छे। आपण्णे अहीथी तुरत अ नीकणी अणुं अेधअे। वरधनुनां वचन सांभणीने अ्रह्मदत्ते कहुं के मार्ग कयां छे? अतावे। अ्रह्मदत्तनुं वचन सांभणीने वरधनुअे कहुं, नाथ! आ रह्यो अहार नीकणवाने रस्ते। अहीं अे पत्थरनुं ढांकणु लगाउेलुं छे तेने आप पगथी हूर करे अने पछी लोयराभां उतरि अहार नीकणी अये। अ्रह्मदत्ते अे प्रमाणे कथुं, लोयराणा मुअद्वारना पत्थरने हूर करे कुमार अ्रह्मदत्त अने वरधनु अन्ने लोयराणा रस्ते अहार नीकणी गया अने अहारना द्वार पासे तैयार राअवाभां आवेला घेडा उपर अेसी अन्ने अणु हूर देशमां आट्या गया।

अत्यन्तदूरपथभ्रमणजनितश्रपादश्वौ मृतौ । पादचारेण ब्रह्मदत्तो वरधेनुना सह पृथिव्यामटति । ततो दीर्घपृष्ठनृपस्य भयात् पृथक् पृथक् भूत्वा तौ पर्यटतः । अथ ब्रह्मदत्तः पर्यटन् निर्धनवेषेण क्वचिद् वृक्षतले उपविष्टः । तदा केनचित् सामुद्रिकविद्यावता विप्रेण मार्गे ब्रह्मदत्तचरणन्यासं दृष्ट्वा मुदितचित्तः शीघ्रगत्या तत्र वृक्षतले समायातः । तत्र निर्धनवेषेण वर्तमानं ब्रह्मदत्तमवलोक्य स विप्रो रोदिति । तं ब्रह्मदत्तः पृच्छति—हे विप्र ! कथं रोदिषि ?, सामुद्रिकशास्त्रज्ञोऽसौ विप्र आह—अद्य मम विद्या असदर्थबोधिका जाता, भवच्चरणलक्षणं भवतश्चक्रवर्तित्वमावे-

अत्यन्त दूर तक अधिक वेग से चलने के कारण उनके घोड़े बहुत थक गये थे इसलिये उनका पेट फूल गया और दोनों घोड़े मर गये । ब्रह्मदत्त और वरधनु दोनों ही पैदल जंगलमें धूमने लगे, पर दीर्घपृष्ठ राजा का भय हृदय में बना हुआ था । इसलिये उन्होंने ने अब अलग २ होकर चलना ही अच्छा समझा । ब्रह्मदत्त चलते २ एक किसी वृक्ष के नीचे आकर ठहर गया । इतने में वहां एक सामुद्रिक शास्त्र का वेत्ता ब्राह्मण जो उसी रस्तेसे होकर कहीं जा रहा था मार्गमें ब्रह्मदत्त के चरणचिह्नों को देखकर बड़ा ही प्रसन्न हुआ, और चरणचिह्नों को लक्षित कर वह उस स्थान पर आपहुँचा जहां ब्रह्मदत्त वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था । ब्रह्मदत्त की निर्धन अवस्था देखकर ब्राह्मण को रोना आगया । ब्राह्मण को रोते देखकर ब्रह्मदत्त ने पूछा हे ब्राह्मण ! क्यों रो रहे हो ? सामुद्रिक शास्त्रज्ञ उस ब्राह्मण ने कहा कि मैंने जो सामुद्रिक

धनु वेगधी लांभी भजल कापवाधी तेभना घोडा थाकी गया अने अथी अये घोडाओनुं पेट कुली जतां अन्ने घोडा मरी गया. वरधनु अने अहदत्त अन्ने पगपाणा जंगलमां इरवा लाग्या. आ रीते इरवाधी दीर्घपृष्ठ राज तरइथी लय आवी पउथे तेवी दडेशतथी अन्ने जथुअे नुदा नुदा यालवानुं राभ्युं. अहदत्त यालतां यालतां केध अेक वृक्षनी नीचे जध पडोअ्ये अने त्यां रोकाध गयो. आ समये सामुद्रिकशास्त्रज्ञानने जणुकार अेक आह्मणु के ने अे रस्तेथी जध रह्यो हुतो तेणु मार्गमां अहदत्तनां यरणुनां धूणमां पडेलां पगलानां यिन्डोने जेधने पूथ प्रसन्नता अनुलवी अने यरणु यिन्डोने लक्षमां राभतो राभतो ते ने स्थणे कुभार अहदत्त हुतो त्यां आवी पडोअ्ये. अहदत्तनी निर्धन अवस्था जेधने आह्मणुनी आंभमां आंसु आवी गयां. आह्मणुने रोतां जेध अहदत्ते कहुं, डे आह्मणु शा भाटे रडो छो ? सामुद्रिक शास्त्रना जणुकार त आह्मणु कहु के, में आज सुधी

दयति किंतु भवान् निर्धनावतारो मिलितः । ब्रह्मदत्तो वदति—अहमस्मि चक्रवर्ती, यदा मम राज्यप्राप्तिः स्यात्तदा भवता ममान्तिकमागन्तव्यम् ।

कालान्तरे ब्रह्मदत्तेन चक्रवर्तिराज्यं प्राप्तम्, द्वादश वर्षाणि राज्याभिषेकोत्सवः प्रारब्धः । सामुद्रिकशास्त्रज्ञोऽसौ विप्रस्तदुत्सवसमाचारं प्राप्य तत्रागतः ।

शास्त्र का अभीतक अध्ययन किया है वह आज बिलकुल गलत साबित हो रहा है इसलिये मैं रो रहा हूँ। आपके चरणों में जो चिह्न बने हुए हैं उनसे यह बात ज्ञात होती है कि आपको चक्रवर्ती होना चाहिये पर आपकी तो यह दशा है कि इस समय आपके पास खाने तक को अन्न भी नहीं है। आपका यह वेष दरिद्रियों जैसा है। अवस्था आपकी निर्धन है। ऐसे मालूम पड़ता है कि मानों आप में निर्धनताने ही अवतार लिया है। ब्राह्मण की बात सुनकर ब्रह्मदत्त ने कहा—तुम्हारा सामुद्रिक शास्त्र मिथ्या नहीं है दुःखी मत होओ, मैं वास्तव में चक्रवर्ती ही हूँ। जब मुझे राज्य की प्राप्ति हो तो उस समय तुम मेरे पास आना।

कालान्तर में ब्रह्मदत्त को चक्रवर्तिपद की प्राप्ति हुई। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती बन गये। बारह वर्ष का राज्याभिषेक बड़ा ही ठाट बाट से मनाया जाने लगा। इसी अवसर में उस ब्राह्मण ने जब यह समाचार सुना तो वह भी वहाँ पर आगया पर वह ब्रह्मदत्तसे मिल नहीं सका।

सामुद्रिक शास्त्रनुं जे अध्ययन कयुं छे ते आजे भीलकुल नकामुं मालुम पडयुं छे. आ माटे हुं रोध रह्यो छुं. आपना यरहोमां जे गिन्ह जेवामां आवे छे तेनाथी जेवी वात सिद्ध थाय छे के, आप यकवर्ती बनवा जेछे जे. परंतु आपनी तो जे दशा छे के, आ समये आपनी पासे भावाने अन्न पणु नथी. आपनो आ वेश दरिद्रीजोना जेवो छे. आपनी अवस्था निर्धन छे. जेवुं मालुम पडे छे के, आपनामां निर्धनताजे अवतार लीधो छे, ब्राह्मणनी वात सांलणी अहदत्ते कहुं. आ तमाइं सामुद्रिक शास्त्र मिथ्या नथी, दुःखी न बनो. हुं वास्तवमां यकवर्ती न छुं ज्यारे मने राज्यनी प्राप्ति थाय जे समये तमे मारी पासे आवजे.

समयना वडेवा साथे अहदत्तने यकवर्ति पद प्राप्त थयुं. राज्यमां १२ वर्ष सुधी तेना राज्याभिषेकनो उत्सव ठामठाम मनावो लाग्यो. जे ब्राह्मणुं ज्यारे आ प्रसंगना शुभ समायर ज्ञायो तो ते पणु त्यां आवी पडोअ्यो, पणु ते अहदत्तने भणी शक्यो नही. अहदत्त यकवर्ती साथे तेना भेजाप

ब्रह्मदत्तचक्रवर्तिनो दर्शनं मम कथं स्यादिति पृष्ठः कश्चित् श्रेष्ठो तं विप्रं मार्गं दर्शयति । अथोत्सवसमये चक्रवर्ती गजमारूढ बहिर्निःसरति । स विप्रस्तदा जनसमूहमध्ये वंशाग्रे पादत्राणमालां संयोज्य तं वंशमुत्थाप्य स्थितवान् । चक्रवर्ती स्वराज्यैश्वर्यशोभां समन्ताद् विलोकयन् वंशाग्रसंलग्नामुपानद्मालामपश्यत् । ततः कोपारुणनेत्रश्चक्रवर्ती भृत्यैस्तमाहूय पृच्छति—किमेतत् त्वया मर्तुमाचरितम् ? । विप्रः प्राह—नहि मर्तुं, किंतु जीवितुम् । चक्रवर्ती वंशोत्थापनकारणं विज्ञाय

ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती से अब मेरा मिलाप कैसे हो ? इस बात को उसने किसी वही के सेठ से पूछा तो उसने उसे मिलाप का रस्ता भी बतला दिया । उत्सव के समय चक्रवर्ती हाथी पर चढ़कर आ रहे थे, भीड़ काफी थी । ब्राह्मण ने मिलाप का मार्ग सोचा, उसके अनुसार एक वांस पर जूतों की माला लटका कर और उस वांस को भीड़ के बीच में ऊपर उठा कर वह खड़ा हो गया । चक्रवर्ती अपने राज्य के ऐश्वर्य की शोभा का चारों ओर से निरीक्षण करते हुए चल रहे थे । उन्होंने ने इस दृश्य को ज्यों ही देखा इकदम देखते ही आंखों में क्रोध की लाली उतर आई, नौकरों के जरिये उस ब्राह्मण को बुलवाकर पूछा, अरे ! इस सुन्दर अवसर पर यह तूने क्या काम किया है ? मालूम पड़ता है तेरी मौत आ गई है । ब्राह्मण ने चक्रवर्ती की बात सुनकर कहा यह काम मैंने अपनी मौत को बुलाने के लिये नहीं किया है, किन्तु जीने के लिये किया है । जब चक्रवर्ती वंशोत्थापन के कारण से

उठ रीते थाय आ वात तेजे त्यांना कोठ शेडने पूछी तो तेजे भेगाप भाटेने रस्तो षताव्यो. उत्सवना समये चक्रवर्ती हाथी उपर भेसी आवी रहा डता. भीड भूण डती, ब्राह्मणे भेगापने मार्ग विचार्यो. आ अनुसार ते अेक वांस उपर लटकावेळ जेडानी भाणा साथे ते लोडैनी लीडमां हाथमां वांसडे उंथे राभीने उलो रह्यो. चक्रवर्ती पोताना राज्यानी अैश्वर्यानी शोभाने यारे तरक्षे धी ईरवी जेठे रडेळ डता, तेमजे आ ध्य जेयुं अने जेतांज अेक-दम आंभोमां कोधनी लावीमा छवाधे गधे. नोकरे द्वारा अे ब्राह्मणेने जेलावी पूछ्युं. अरे ! आ सुंदर अवसर उपर तुं आवुं काम केम करी रह्यो छे ? मालुम पडे छे के ताडूं मोत आव्युं छे. चक्रवर्तीनी वात सांभणी ब्राह्मणे कहुं, आ काम में मारा मोतना जेलाववाथी नथी क्युं, परंतु अववा भाटे करेळ छे. आ पछी चक्रवर्ती वंशोत्थापनना कारणुथी यथार्थे इपथी

परितुष्टो भूत्वा गजोपरि स्वपार्श्वे तमुपवेश्य ब्रवीति—हे विप्र! स्वाभीष्टं ब्रूहि, सोऽवदत् भार्यां पृष्ट्वा कथयामि। ततस्तेन स्वगृहमागत्य भार्यां पृष्ट्वा। भार्या मनसि चिन्तयति—धनागमे त्रीणि नश्यन्ति जीर्णं गृहं, जीर्णा भार्या, जिर्णं मित्रम्। इति विचार्य सा प्राह—एकैकस्मिन् दिने एकैकगृहे पायसभोजनं भवतु, इत्येव प्रार्थनीयम्। ततोऽसौ विप्रश्चक्रवर्तिसंनिधौ समागत्य तदेव प्रार्थितवान्। चक्रवर्ती

यथार्थरूप में परिचित हो चुके, तब वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने ने उस ब्राह्मण को शीघ्र ही हाथी पर अपने पास बैठा कर कहा कि कहो विप्रदेव! तुम क्या चाहते हो? उसने कहा महाराज! मैं क्या चाहता हूँ यह बात तो अपनी भार्या से पूछकर आपसे कहूंगा। चक्रवर्ती से वह घर जाने की आज्ञा लेकर घर आगया। घर पर आकर उसने अपनी पत्नी से समस्त वृत्तान्त कह दिया। पत्नी ने सुनकर विचार किया कि यदि यह धनवान् बन जायगा तो मुझे अवश्य छोड़ देगा, क्यों कि धन के आने पर तीन चीजें छोड़ दी जाती हैं—१ जूना घर, २ जूनी भार्या और ३ जूना मित्र। इसलिये इससे कह दिया जाय कि हमें तो प्रतिदिन एकर घर पर खीर का भोजन मिलता रहे, ऐसी व्यवस्था हो जानी चाहिये। बस इस प्रकार विचार कर ब्राह्मणी ने अपने पति से यही बात कही और कहा कि जाकर तुम राजा से यही मांगो अपने लिये और वस्तु को क्या करना है। ब्राह्मण ने अपनी पत्नी की सलाह मान कर चक्रवर्ती से यही मांगा। चक्रवर्ती ने ब्राह्मण से कहा

परिचित जनतां भूषण प्रसन्न तथा अने तेमणे प्राह्मणुने अेव वपते पोताना हाथी उपर भेसाडी लधने पूछयुं, कडो विप्रदेव तमे शुं आडो छे? जवा-  
णमां ते प्राह्मणे कलुं, मडाराज! हुं शुं आहुं छुं ते वात भारी स्त्रीने पूछया पछी आपने कडीश. चक्रवर्तीनी आसा लधते पोताने घेर गयो. घेर पडोंस्त्री तेणे पोतानी स्त्रीने सधणे। वृत्तांत कडी संलणायो. स्त्रीअे सधणी थीना सांलणीने विचार कर्यो के, मारो पति धनवान् जनी जशे तो अे मने अवस्थ छोडी देशे. केमके, धनना आववाथी त्रणु स्त्रीले लुलाध जय छे. अेक तो जनुनां धर, थीजुं स्त्री, त्रीजुं जनुनामित्र आ माटे अेने अेम मागवानुं कडेवामां आवे के, अमने प्रतिदिन अेक अेक घेरथी थीरनुं लोअन मणतुं रडे अेवी व्यवस्था करवामां आवे. आ प्रकारने विचार करी प्राह्मणीअे पोताना पतिने अे वात कडी अने कलुं के, तमे राज पासे जधने अे प्रमाणे मागे. आपणे थीजु वस्तुनी शुं जइर छे? प्राह्मणे स्त्रीनी सलाह मानीने राज पासे जधतेनी स्त्रीना कीधा प्रमाणे ज माग्युं.



प्राह—किमिदं प्रार्थयसि ? ग्रामो, नगरं, वा कोशो वा याच्यताम् । स विप्रोऽवदत्—  
इदमेव ममेप्सितम्, ततश्चक्रवर्तिना तत्स्वीकृतम् । प्रथमदिने चक्रवर्तिनो भवने परम-  
सुखाद् पायसं लब्धम् । तत्र काम्पिल्यनगरे चक्रवर्त्याज्ञयाऽसौ विप्रः प्रत्येकगृहे  
भोजनं क्रमेण प्रतिदिनं लभते, तथाप्यसौ गृहाणामन्तं न प्राप, कथं तर्हि तस्य समस्त  
भरतक्षेत्रवर्तिषु गृहेषु एकैकगृहे क्रमेण प्रतिदिनं भोजनप्राप्त्यनन्तरं पुनश्चक्रवर्तिभवने

यह तुमने क्या चीज मांगी है, गांव मांगो नगर मांगो या कोश-  
खजाना मांगो । सुनकर ब्राह्मण ने कहा हमें इन चीजों की आवश्यक-  
कता नहीं है । हमारी इच्छा तो जो है वह आप से निवेदित कर दी है ।  
चक्रवर्ती ने ब्राह्मणकी बात स्वीकार करली । चक्रवर्तीने स्वयं सबसे  
पहिले दिवस इसके लिये परम स्वादिष्ट बढ़िया खीर अपने महलमें तैयार  
करवाई । ब्राह्मण ने बड़े आनंद के साथ खाई । क्रमसे अब यह उस  
कांपिल्य नगर में सब के घर एकद दिन खीर के भोजन के लिये जाने  
लगा, परन्तु वहां इतने अधिक घर थे कि इसके जीवनभर तक भी  
जीमतेर घरों के वारे नहीं समाप्त हो सकते थे । तथा छह खंड की  
पृथिवी का अधिपति चक्रवर्ती होता है इसलिये यद्यपि उसके जीमने  
का नंबर छह खंडोंमें नियत कर दिया गया था, पर जब कांपिल्य नगर  
के घरों की ही समाप्ति नहीं हो सकी तो भरतक्षेत्र भर के घरों का  
बारा उसके कैसे प्राप्त हो सकता था ? अतः वह बड़ा ही चिन्तित रहने  
लगा । वह विचारता रहता कि कब समस्त घरों का बारा मेरा समाप्त

चक्रवर्तींश्चे आह्वयने कलुं के तमे आ शुं भाग्युं ? गाम, नगर अथवा तो धन  
होसत जे जेध जे ते मागीदथे। आह्वयने कलुं के, मडाराज ! मने जेवी केध थीजनी  
जइरीआत नथी। अमारी जे धञ्छा छे ते आपनी समक्ष रज्जु करी छे। चक्रवर्तींश्चे  
आह्वयनी वातनो स्वीकार करी अने पोतानाज मडेलमां तेने माटे स्वादिष्ट  
जेवी भीर तैयार करावी। आह्वयने भूज ज आनंदथी ते पाधी। कमे कमे ते  
कांपिल्य नगरमां अधाने त्यां जेक जेक दिवस भीरना लोअन माटे जवा  
लाग्ये। परंतु त्यां जेटलां अधां धरो डतां के जेना जवन सुधी जमतां जमतां  
धरनो वारे समाप्त थई शके तेम न डतुं। तेमांवणी चक्रवर्तीं तो छ थंड  
धरतीनो अधिपती डोय छे। आथी तेना जभवानो नंअर छ थंडोमां नञ्छी  
करी आपेल डतो पथु न्यारे जेकला कांपिल्य नगरनां ज धरो ते पुरां करी  
शके तेम न डतुं त्यां भरतक्षेत्रनां विस्तारनां धरनो वारे तो कयांथी ज आवे ?  
आथी ते भूज ज चिंता करवा लाग्ये। ते विचारवा लाग्ये के, क्यारे समस्त



भोजनं लब्धव्यम् , समस्तभरतक्षेत्रान्तर्गतगृहाणां बाहुल्यात् । एवं यथा चक्रवर्तिनो भवनेऽनुपमं पायसं प्राप्तुमिच्छतस्तस्य विप्रस्य तद् दुर्लभं तथा मनुष्यजन्म दुर्लभम् ।

अत्र संग्रहश्लोकः — (शार्दूलविक्रीडितवृत्तम्)

भुक्तं स्वादुरसं द्विजेन भवने श्रीब्रह्मदत्तस्य यत् ,  
क्षेत्रेऽस्मिन् भरतेऽखिले प्रतिगृहे भुक्त्वा पुनस्तद्गृहे ।  
जातं तस्य यथा मनोऽभिलषितं तद् भोजनं दुर्लभं,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

॥ इति प्रथमश्रोलकदृष्टान्तः ॥ १ ॥

हो, और कब मुझे पुनः चक्रवर्ती के घर पर बढिया खीर खानेको मिले, परन्तु न समस्त छह खण्ड के घरों का बारा उसका समाप्त हो और न पुनः चक्रवर्ती के घर की खीर उसको मीले । जैसे इस ब्राह्मण को पुनः वह खीर भोजन दुर्लभ हो गया उसी प्रकार यह मनुष्यजन्म भी बड़ा दुर्लभ है । यह प्रथम दृष्टान्त है । इस पर यह संग्रह श्लोक है—

भुक्तं स्वादुरसं द्विजेन भवने श्रीब्रह्मदत्तस्य यत्,  
क्षेत्रेऽस्मिन् भरतेऽखिले प्रतिगृहे भुक्त्वा पुनस्तद्गृहे ।  
जातं तस्य यथा मनोऽभिलषितं तद्भोजनं दुर्लभं ।  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

इस श्लोक में इस कथा का सार घतलाया गया है । अर्थात् जिस प्रकार ब्रह्मदत्तचक्रवर्ती के घर पर एक बार बढिया खीर का भोजन

धरोने। वारो पुरो थाय अने क्यारे भने यकवतींन। म्हालयमां इरीथी उत्तम  
येवी भीर भावानो प्रसंग भणे? आ रीते न तो समस्त छ अंडना धरोने।  
तेने। वारो पुरो थाय अने न यकवतींने त्यां इरीथी भीर भावा जवानो  
प्रसंग भणे. आ रीते ते आद्वेषुने इरीथी यकवतींने त्यां भीर भावानो  
प्रसंग प्राप्त न थयो. तेवी न रीते आ मनुष्य जन्म पणु धणु। दुर्लभ  
छे. आ प्रथम दृष्टान्त छे येना उपर आ संग्रह श्लोक छे.

भुक्तं स्वादुरसं द्विजेन भवने श्रीब्रह्मदत्तस्य यत् ।  
क्षेत्रेऽस्मिन् भरतेऽखिले प्रतिगृहे भुक्त्वा पुनस्तद्गृहे ॥  
जातं तस्य यथा मनोऽभिलषितं तद्भोजनं दुर्लभं ।  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

आ श्लोकमां आ कथानो सार अताववामां आवेल छे. अर्थात् ने रीते  
अक्षदत्तयकवतींन। धरे अेकवार उत्तम भीरनुं लोअन करीने ते आद्वेषुने

अथ द्वितीयः पाशकदृष्टान्तः प्रोच्यते—

पाशको घृतोपकरणविशेषः, स एव दृष्टान्तः—पाशकदृष्टान्तः, स चैवम्—  
गोल्लदेशे चणकनामके ग्रामे बहु शीलव्रतगुणव्रतविरमणप्रत्याख्यानपौषधोपवासादि श्रावकधर्म पालयन् चणकनामको ब्राह्मण आसीत् । स बद्धसदोरकमुखवस्त्रिकः सन्नुभयकालं सामायिकप्रतिक्रमणं कुर्वन्नासीत् । अन्यदा कदाचित् तस्य गृहे सुव्रतकर उस ब्राह्मण को उसी घरपर पुनः भोजन करने की अभिलाषा हुई परन्तु उसकी पूर्ति होनी बड़ी ही मुश्किल थी क्योंकि जब तक उनके साम्राज्यभर के घरों का बारा वह समाप्त नहीं कर लेता तब तक उसको पुनः चक्रवर्ती के घर का नंबर प्राप्त नहीं हो सकता । इसी प्रकार इस संसार में भ्रमण करने वाले इस जीव को पुनः नरभव मिलना बड़ा दुर्लभ है । यह प्रथम चोल्लकदृष्टान्त हुआ ॥ १ ॥

अब दूसरा पाशकदृष्टान्त कहते हैं—

जुआ खेलने का जो उपकरण विशेष होता है जिसको हिन्दी में पासा कहते हैं उसका नाम पाशक है । उसका दृष्टान्त इस प्रकार है—

गोल्लदेशस्थ चणक नाम के ग्राम में बहु शील व्रत गुण अर्थात् व्रत-प्राणातिपातादिविरमण, प्रत्याख्यान-पौषधोपवास आदि श्रावकधर्म को पालन करने वाला चणक नाम का एक ब्राह्मण रहता था । यह दोनों काल मुख पर डोरे से मुखपत्ति बाँधकर सामायिक एवं प्रति क्रमण किया करता था । एक दिन की बात है कि उसके घर पर एक

चक्रवर्तिने त्यां षीरनुं लोअन इरीथी करवानी ध्विछा जगी परंतु तेनी अे ध्विछा पूषुं थर्ध शकी नडी. डेमके, अेना साअान्यथरनां धरेनो वारे ते पूषुं न करी वे त्यां सुधी तेने इरी चक्रवर्तीने त्यां षीर भावा माटे जवानो वारे प्राप्त थतो न डतो. अे प्रकारे आ संसारमां अमणु करवावाणा आ लवने पुनः मनुष्य अवतार मणवे मडा दुर्लभ छे. आ प्रथम यौदलक दृष्टांत अतावेळ छे.

डवे भीणुं पाशकदृष्टांत कडेवामां आवे छे—

जुआर खेलवामां जेने उपयोग करवामां आवे छे तेने पासा कडे छे. तेनुं नाम पाशक छे. तेनुं दृष्टांत आ प्रकारनुं छे.—

गोदल देशमां अणुक नामना गाभमां धणु ज शील व्रत गुण संपन्न अने व्रत प्राणातिपातादि विरमणु प्रत्याख्यान पौषध उपवास वगेरेथी श्रावक धर्मनुं पालन करवावाणा अणुक नामने अेक ब्राह्मणु रहतेो डतेो. अे अन्ने वणत मोठा उपर दोरा साथेनी सुभवस्त्रिका राभीने सामायिक अने प्रतिक्रमणु करतेो डतेो. अेक दिवसनी वात छे डे, तेने घेर सुव्रत नामना अेक मुनिराजु शिक्षा

नामा मुनिर्भिक्षार्थं समागतः । तदा चणकब्राह्मणस्य दन्तसहितः पुत्रो जातः । बालकं मुनेः समीपमानीयाऽब्रवीत्—‘भदन्त ! अयं दन्तसहितो जातः, किमस्य फलं भविष्यति ’ । मुनिः प्राह—अयं दन्तसहितः समुत्पन्नस्तस्मादयं राजा भविष्यति । चणको मुनेर्वचनं निशम्य चिन्तयति—अयं राजा भूत्वा नरकं यास्यति । इत्येवं विचिन्त्य बालकस्य दन्तान् घृष्टवान् ।

पुनरेकदा कालान्तरे सुव्रतमुनिश्चणकस्य गृहे समागतः, ततश्चणकब्राह्मणो मुनिं प्राह—भदन्त ! अस्य बालकस्य दन्ता घृष्टाः । मुनिर्वदति—दन्तेषु घृष्टेषु बालकोऽयं राजा न स्यात्, किं तु सर्वाधिकारसंपन्नः सचिवो भविष्यति । चणकेन

सुव्रत नाम के मुनिराज भिक्षा के लिये आये । उस समय उस ब्राह्मण के यहां दांत सहित एक पुत्र उत्पन्न हुआ था । चणक ने उस बालक को मुनि के समीप लाकर कहा—भदन्त ! यह बालक दांतसहित उत्पन्न हुआ है इसका क्या फल होना चाहिये सो कृपा कर कहिये । सुनकर मुनिराज ने कहा—यह जो दांतोंसहित उत्पन्न हुआ है उसका यह फल है कि यह राजा होगा । चणक ने मुनि के वचन सुनकर विचार किया कि यदि यह राजा होगा तो दुर्गति का भागी हो जायगा इसलिये उसने उसके दांतों को घिस दिया ।

कालान्तर में वे ही सुव्रतमुनि एक दिन चणक के घर पर पुनः पधारे । मुनिराज को आये देखकर चणक ने उनसे कहा—भदन्त ! इस बालक के दांतों को मैंने घिस दिया है । चणक की बात सुनकर मुनिराज ने कहा—दांतों को घिसे जाने से यद्यपि यह बालक राजा नहीं हो सकेगा तो भी राजा जैसा होगा, अर्थात् राजा का सर्वाधिकार

भाटे आब्या. ते वभते अे भ्राह्मणने घेर जन्म वभते दांत सहित अेक पुत्र जन्मये। डतो, यषुक अे भाणकने मुनि पासे लध आठये अने कहुं, लदंत! आ भाणक दांत साथे उत्पन्न थये छे. अेनुं शुं इण डोवुं जेध अे ? सांभणी मुनिराजे कहुं के, दांत सहित उत्पन्न थयेल आ भाणकनुं इण अे छे के, ते राज थशे. यषुके मुनिनुं वचन सांभणीने मनमां विचार कर्ये के, जे आ भाणक राज थशे तो दुर्गति लोगवनार भनशे. आथी तेखे ते भाणकना दांत घसी नाभ्या.

वभत जतां ते सुव्रत मुनि अेक द्विस यषुकने त्यां इरीथी पधार्था. मुनिराजने आवेक्षा जेधने यषुके तेमने कहुं डे लदंत! में आ भाणकना दांतोने घसी नाभ्या छे. यषुकनी वात सांभणीने मुनिराजे कहुं,—दांतोना घसी नाभवाथी जे के ते राज लडे न भनी शके तो यषु ते राज जेवो थशे. अर्थात्

तस्य बालकस्य 'चाणक्य' इति नाम कृतम् । स चतुर्दश विद्या अधीतवान् । तस्य यौवने वयसि विवाहः कारितः ।

चाणक्यस्य श्वशुरो धनाढ्य आसीत् । कदाचित् तस्य गृहे पुत्रस्य परिणयो-  
त्सवः संजातः । तद् वृत्तं विदित्वा चाणक्यस्य भार्या पितुर्भवनं गता । सा गच्छ-  
न्ती पतिमवोचत्—भवताऽपि तत्रागन्तव्यम् । चाणक्यो वदति—अहं निर्धनोऽस्मि,  
स धनाढ्योऽस्ति, स ममादरं न करिष्यति, मां निर्धनं मत्वा तेन नाहं निमन्त्रितः,

संपन्न प्रधान बनेगा । चाणक्य ने उस बालक का नाम चाणक्य रखा । चाणक्य ने १४ चौदह विद्याएँ पढ़ी । पढ़कर जब चाणक्य योग्यता संपन्न हो गया तब युवा होने पर पिताने इसका विवाह कर दिया ।

चाणक्य का श्वशुरपक्ष धनसंपन्न था । किसी एक समय चाणक्य के ससुराल में विवाह होनेवाला था । चाणक्य की भार्या को जब यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वह विवाह में संमिलित होने के लिये पतिगृह से अपने पिता के घर आई । जिस समय यह पतिगृह से पितृगृह आई थी तब इसने अपने पति चाणक्य से चलते २ यह कहा था कि आप भी संमिलित होने के लिये वहां आवें । चाणक्य ने उसके प्रत्युत्तर में उससे कहा कि मैं निर्धन हूँ—वे धनिक हैं वहां बिना बुलाये आने पर मेरा कोई आदर नहीं होगा । यही कारण है कि ससुरने मुझे विवाहका आमंत्रण तक भी नहीं भेजा है । चाणक्य की यह

राजनेो सर्व अधिकार संपन्न अयेो सर्वाधिकारी प्रधान अनशे. अथुके अये  
आणकनुं नाम आणुक्य राजुं. आणुक्ये चौद विधाने अभ्यास कर्ये. आ पछी  
ते विद्याथी संपन्न अनी गयेो अने योग्य वये पढेअयेो त्यारे तेना पिताने  
तेना विवाह करी दीघेा.

आणुक्यने श्वशुरपक्ष धन संपन्न हतेो. केअ अयेक समय आणुक्यना  
श्वशुरपक्षमां लग्न प्रसंग हतेो. आणुक्यनी पतिने अ्यारे आ हकीकत  
नाणी त्यारे ते लग्न प्रसंगमां सामेल थवा माटे पतिने त्यांथी नीकणी पोताना  
पिताना घेर आवी. अे समय ते पोताना पतिने त्यांथी नीकणेदी त्यारे तेणे  
पोताना पति आणुक्यने पणु लग्न प्रसंगमां आववानुं कडेकुं. अेना प्रत्यु-  
त्तरमां आणुक्ये अणुवेकुं के, हुं निर्धन छुं अये धनवान छे. त्यां ओलाव्या  
वगर अवाथी भारेो योग्य आदर न पणु थाय अने भारी निर्धन अवस्था अये पणु  
अेक कारणु छे के अेने अर्थ अने लग्ननुं आमंत्रणु पणु आपवामां आवेल नथी.

चाणक्ये नैवमुक्ता भार्या पुनस्तत्राऽऽगन्तुं प्रति प्रार्थितवती । ततः स्वभार्यानुरो-  
रोधेन चाणक्योऽपि पश्चात् तत्र गतः । ग्रामाद् बहिः क्वचिद् वृक्षतले चाणक्यः  
स्थित्वा श्वशुरं प्रति संदेशं प्रेषयति । श्वश्रूः श्वशुरश्च चाणक्यं प्रति तदुत्तरं दत्तवन्तौ-  
त्वया दिवसेऽत्र नागन्तव्यम् , रात्रौ भवनस्य पश्चाद्भागवर्तिना मार्गेणागन्तव्यम् ।  
चाणक्यस्तच्छ्रुत्वा तथैव रात्रौ गतः । श्वश्रूः श्वशुरश्च भवनस्याधस्तनभूमिकायां  
चाणक्यं भोजयतः । अन्यान् सम्बन्धिनस्तु भवनोपरितनभूमिकायाम् । श्वश्रूश्चा-  
णक्याय शुष्कं रूक्षं भोजनीयं परिवेषयति, अन्येभ्यस्तु त्रिविधानि मिष्टान्नानि ।

घात सुनकर उसकी भार्या ने पुनः उनसे यही प्रार्थना की कि आप इस  
घात का विचार न कर वहाँ अवश्य आवें । भार्या के इस प्रकार के  
अनुरोध करने पर चाणक्य भी पीछे से वहाँ गया । उसने श्वशुर-  
गृह में पहुँचने के पहिले बाहिर ही किसी वृक्ष के नीचे ठहर कर श्वशुर  
के पास अपने आनेका समाचार भेजा । सास ससुर ने चाणक्य के प्रति  
उत्तररूप संदेश भेजा कि आप आये बहुत अच्छा किया परन्तु आप यहाँ  
दिनमें नआवें, रात्रिमें आवें, सो भी मकान के पीछे के मार्ग से आवें  
-साम्हनेके मार्ग से नहीं । चाणक्यने ऐसा ही किया । वे रात्रिमें श्वशुरगृह  
पर पहुँचे। सास और श्वशुरने चाणक्य को भोंयरेमें बैठाकर भोजन कराया।  
बाकीजो और संबंधीजन थे उन सबको मकान की छतपर बैठाकर भोजन  
कराया । चाणक्य के लिये सासुजी ने जो भोजन परोसा था वह इक-  
दम बिलकुल शुष्क एवं रूक्ष था । दूसरे महेमानों के लिये जो भोजन  
परोसा गया था वह विविध प्रकार के मिष्टान्तों से युक्त था । चाणक्य

याणुक्यनुं आ वचन सांलणी तेनी पत्निञ्चे अेवी प्रार्थना करी के, तमे आवी वातने।  
विचार न करतां लग्नमां न्दरथी आवो. पत्निना आवा आग्रहने वश थनी पाछ-  
णथी याणुक्य लग्न प्रसंगमां साभेद थवा त्यां गया. अेणु सासराने त्यां पडोंथतां  
पडेलं गामनी लागणे डोळ अेक वृक्ष नीचे रोकाधने सासराने पोताना आववाना  
अभर भोडल्या. सासु ससराने तेना आववाना सभाथार लाणी तेने कडेवरांथुं के,  
तमे आव्या ते डीक कथुं. परंतु तमे दिवसना लागमां अडिं आवशा नडीं. रातना  
वभते अने ते पणु मकानना पाछला लागमां थडने आवजे. याणुक्ये अेम न  
कथुं. ते रातना वभते सासराने घेर पडोंथ्या. सासु ससराने तेने मकानना  
लोयतणीचे येसाडीने लोअन करांथुं. न्यारे आकीना मडेमानोने अेक साथे सभा-  
शाडमां उपरना भाणे लोअन करांथुं. याणुक्यने आपवामां आवेल लोअन  
पणु साव निरस अने शुष्क डतुं. न्यारे थोळ मडेमानोने स्वादिष्ट मिष्ट

एवमपमानितो भूत्वा सभार्यश्चाणक्यः स्वगृहं समागतः । तदा चाणक्येन चिन्तितम्—श्वशुरेण मम निर्धनत्वादपमानः कृतः । इति विचिन्त्य धनमर्जयितुं चाणक्यः पाटलिपुत्रनगरे नन्दनाम्नो नृपस्य समीपे योगिवेषेण गतः । पूर्वाह्णे राज्यकार्यालये प्रविष्टः, तदा तस्य दासी कार्यालयं समार्जयन्ती पश्यति—चाणक्यः सिंहासने तुम्बीपात्रं स्वासनं च स्थापयति । नन्दनृपस्य भृत्याश्चाणक्यं तिरस्कृत्य बहिर्निःसारयन्ति । तदा चाणक्येन प्रतिज्ञा कृता—नन्दनृपस्य राज्यं समूलं नाशयिष्यामि ।

अपना इस प्रकार का वहाँ निरादर देख कर भार्या को साथ में लेकर अपने घर पर वापिस आ गया। आकर उसने विचार किया कि श्वशुर ने जो मेरा निरादर किया है उसका कारण मेरी यह निर्धनता है, अतः धन कमाने का प्रयत्न करना चाहिये। इस प्रकार विचार करने के बाद यह धन कमाने के लिये पाटलीपुत्र नगर में नन्द नाम के राजा के पास योगी का वेष धारण कर पहुँचा। पूर्वाह्न अर्थात् दिन के पूर्व भाग में चाणक्य ने कचहरी में प्रवेश किया, एक उस कचहरी की दासी ने जो उस समय उस कचहरी को झाड़ रही थी चाणक्य को देखा, चाणक्य ने वहाँ एक ओर सिंहासन के ऊपर अपना तुम्बीपात्र और आसन रख दिया। नन्द राजा के नौकरों ने यह देखकर चाणक्य को धक्का देकर एवं तिरस्कार कर के वहाँ से बाहिर निकाल दिया। चाणक्य ने इस अपमान से क्रुद्ध होकर वहीं पर यह प्रतिज्ञा की, कि मैं इस नन्दनृप के राज्य का समूल विनाश कर दूंगा। इस प्रकार कह

लोञ्जन् ऋभाउयुं. याणुक्य आ प्रकारनी पोताना प्रत्येनी वर्तण्ठुंके जेधने पोतानी पत्तिने लधं ने पोताने घेर पाछा कर्था. घेर आवीने तेणु मनभां जेवे। विचार कर्थो के, सासुससराजे भाइं जे अपमान कर्थुं तेनुं कारणु भारी निर्धनता ज छे. आथी धन कभाववानो भाइे प्रयत्न करवे। जेधजे. आ प्रभाणु विचार कर्था पछी ते धन कभावा भाटे पाटलीपुत्र नगरभां नंद राजनी पासो योगीना वेश धारणु करी पडोंची गया. द्विसना पडेला प्रहरभां याणुक्ये राजकचेरीभां प्रवेश कर्थो. जे वपते राजकचेरीनी दासी कचेरीने साइसुकु करी रळी छती. तेणु याणुक्यने जेया. याणुक्ये त्यां जेक सिंहासन ऊपर पोतानुं तुंभीपात्र जने आसन रापी दीधुं. नंद राजना नोकराजे आ जेधने याणुक्यने धक्का भारीने तथा तेनो तिरस्कार करीने जडार डाढी सुकथा. याणुक्ये आ अपमानथी क्रोधित थधने त्यांज प्रतिज्ञा करी के, जेवे हुं आ नंदराजना राज्यनो समूणगोळ विनाश करी नापीश. आ प्रभाणु निर्णय करीने ते



ततश्चाणक्यस्तस्य नन्दनृपस्य राज्ये भ्रमन् मयूरनामके लघुग्रामे समागतः, तत्र मयूरपालको निवसति । तत्र मयूरपालकस्य सगर्भायां भार्यायाश्चन्द्रपानदोहदो जातः। सा दोहदालाभेन कृशशरीरा खिन्ना संजाता । संन्यासिवेषेण चाणक्यस्तत्र भ्रमन् मयूरपालकस्य गृहे समायातः। दोहदालाभेन मयूरपालकस्य भार्या कृशां दीनां विलोक्य चाणक्यो ब्रूते—भो ! मयूरपालक ! अहमस्या दोहदं पूरयिष्यामि, यदाऽस्याः पुत्रोऽष्टवर्षवयस्कः स्यात् तदा मम शिष्यत्वेन भवता समर्पणीयः । मयूरपालकेन तद् वचनं स्वीकृतम् । ततश्चाणक्यः सच्छिद्रं मण्डपं कारयित्वा तस्योकर वह चाणक्य वहां से चलकर नंद राजा के राज्य के ही अन्तर्गत मयूर नाम के किसी एक छोटे से गांव में चला गया । वहां एक मयूरों को पालने वाला मयूरपालक नामक पुरुष रहता था । उसकी भार्या गर्भवती थी ! उसे चन्द्र को पीने का दोहला उत्पन्न हुआ था । दोहले की पूर्ति न हो सकने के कारण शरीर से वह विशेष कृश हो गई थी । तथा चिन्तित भी रहती थी । चाणक्य भी इधर उधर घूमता घामता मयूरपालक के घर आया । मयूरपालक की पत्नी को ज्यों ही उसने दोहद की पूर्ति न हो सकने के कारण कृश-शरीर एवं खेदखिन्न जाना तो कहने लगा हे मयूरपालक ! तुम्हारी धर्मपत्नी के चन्द्र पीने के दाहद की पूर्ति मैं कर सकता हूँ यदि तुम हमारी इस शर्त को कबूल कर सको तो, शर्त यह है कि जब इसका बालक आठ वर्ष का हो जाय तो तुम उसे सुझे दे देना, मैं उसे अपना शिष्य बना लूंगा । मयूरपालक ने चाणक्य की शर्त स्वीकार करली ।

आणुक्य नंदराजाना राज्ञ्यनी अंदर आवेला मयूर नामना ओक नानकडा गाममां आल्या गया. त्यां मोरने पाणवावाणे मयूरपालक नामने ओक पुंष रंहेतो डतो. तेनी स्त्री गर्भवती હતી. तेने अंद्र पिवानी धंछा उत्पन्न થઈ હતી. તે ધંછા પરિપૂર્ણ ન થઈ શકવાના કારણે તે શરીરે અત્યંત દુબળી થઈ ગઈ તથા ચિંતા-તુર રહેતી હતી. આણुक્ય પણ આમ તેમ કરતાં કરતાં મયૂરપાલકને ઘેર આવી પહોંચ્યા. મયૂરપાલકની સ્ત્રીને તેની ધંછા પરિપૂર્ણ ન થઈ શકવાના કારણે શરીરે દુબળી તેમજ ચિંતાતુર દેખીને તે કહેવા લાગ્યા, મયૂરપાલક તારી પત્નિને અંદ્ર પીવાની જે ધંછા થઈ છે તે હું પરિપૂર્ણ કરી શકું તેમ છું પણ તું મારી એક શરતને કબુલ કરે તો જ. શર્ત એ છે કે, ન્યારે તારી પત્નિને અવતરનાર બાળક આઠ વર્ષનો થાય ત્યારે તે બાળક મને સોંપી દેવો પડશે. હું તેને મારો શિષ્ય બનાવીશ. મયૂરપાલકે આણુક્યની શર્તને સ્વીકાર કર્યો. આણુક્યે

ध्वमागे तच्छिद्राच्छादनार्थं कंचिदेकं पुरुषं गुप्तरीत्या नियोज्य छिद्रस्याधस्तात् सितामिश्रपयःपूर्णं स्थालं स्थापितवान् । अथ मध्यरात्रे तच्छिद्रद्वारेण तत्र स्थाले चन्द्रप्रतिबिम्बसंपाते सति मयूरपालभार्यां तत्र नोत्वा चाणक्यः स्थालगतं चन्द्र-प्रतिबिम्बं प्रदर्शयन् प्राह—अयं चन्द्रः पीयताम् । ततः सा चन्द्रप्रतिबिम्बसहितं स्थालमुत्थाप्य दुग्धं पिबति, तस्मिन्नेव समये छिद्रसमीपस्थः पुरुषः शनैः शनै-श्छिद्रमाच्छादयति ।

चाणक्य ने अब उसके चन्द्र पीने के दोहले की पूर्ति करने का प्रयत्न प्रारंभ कर दिया । इसमें उसने एक सछिद्र मंडप तयार करवाया । उसके उर्ध्वभाग में गुसरीति से एक पुरुष की उसने नियुक्ति की, जो उस छिद्र के पास जाकर बैठ गया । जहां छिद्र था ठीक उसी के नीचे उसने मिश्री से मिश्रित कर एक दूध का भरा हुआ थाल रख दिया । मध्यरात्रि में उस छिद्र के द्वारा उस थाल में चन्द्र का प्रतिबिंब ज्यों ही पड़ा कि चाणक्य ने मयूरपालक की भार्या को वहां बुलवा लिया । उसके आनेपर चाणक्य ने उसको उस थाल में रहे हुए प्रतिबिम्ब को दिखलाया और कहने लगा देखो यह रहा चन्द्र, पी जाओ । उस ने उसी समय चन्द्रप्रतिबिम्बसहित थाल को उठा कर उसमें का दूध पीना प्रारंभ कर दिया । ज्यों २ यह दूध पीती जाती थी त्यों २ छिद्र के पास बैठा हुआ वह मंडप के ऊपर रहा व्यक्ति उस छिद्र को बीरे २ बन्द करता जाता था । जब वह पूरा दूध पी चुकी तो उसने भी उस छिद्र को पूरा बन्द कर दिया । इस प्रकार चाणक्य ने उसके चन्द्र

इवे चंद्र पीवानी मयूरपालकनी पत्निनी छच्छाने परिपूर्णुं करवाना प्रयत्ननी शङ्-  
क्यात करी दीधी. आमां तेष्ते अेक छिद्रवाणे मंडप तैयार कराव्ये. तेना उर्ध्व-  
भागमां शुभ रीते अेक पुरुषने ते छिद्र पासे भेसाडयो. न्यां छिद्र इतुं त्यां  
भराभर तेनी नीचे साकरथो मिश्रीत करेव इधथी भरेदो अेक थाण राभ्ये.  
मध्यरात्रीअे आ छिद्र द्वारा ते थाणमां चंद्रनुं न्यारे प्रतिबिंब पड्यु त्यारे  
याणुक्ये मयूरपालकनी स्त्रीने त्यां भेलावी. अने थाणीमां हेभाता चंद्रने  
भतावी कहुं के, त्ये आ रह्यो चंद्र! पी नव्यो. तेष्णीअे ते वभते चंद्रना  
प्रतिबिंबवाणा थाणने उठावीने तेमांनुं इध पीवानी शङ्क्यात करी. नेम  
नेम ते इध पीती गध तेम तेम ते छिद्रनी पासे भेठेदो. तेमअ ते मंडपनी  
ऊपर छुपाध रडेव ते व्यक्तिअे ते छिद्रने धीरे धीरे अंध करवा मांड्युं.  
न्यारे तेष्णीअे अधुं इध पी दीधुं त्यारे तेष्ते पथु छिद्रने पुरेपुरं अंध करी दीधुं.

एवं चाणक्येन तस्याश्चन्द्रपानदोहदः सफलीकृतः । तदनु चाणक्यो रसायना-  
दिभिर्धनार्जनं कर्तुं प्रवृत्तः । इतश्च समये प्राप्ते सति संपूर्णदोहदायास्तस्याः पुत्रो  
जातः । जनन्या दोहदपूर्तिसमये चन्द्रस्य गोपनात् पित्रा तस्य बालकस्य 'चन्द्रगुप्त'  
इति नाम कृतम् । चन्द्रगुप्तः क्रीडनकाले बालकैः सह राजनीतिं प्रदर्शयन् क्रीडति ।  
यदा चन्द्रगुप्तोऽष्टवर्षवयस्को जातः, तदा पुनश्चाणक्यस्तत्रागतः । ततो विदित-  
स्वजन्मवृत्तान्तोऽसौ चन्द्रगुप्तश्चाणक्यं प्राह-भो मुनीन्द्र ! भवान् स्वेन सह मां  
नयतु । चाणक्यो वदति-त्वत्पिता त्वां प्रतिषेत्स्यति । चन्द्रगुप्तो वदति-मम पिता  
पीने के दोहले की पूर्ति करने में सफलता प्राप्त करली । वह भी अपने  
दोहले की पूर्ति से विशेष प्रसन्न हुई । इसके बाद चाणक्य ने रासाय-  
निक क्रिया द्वारा धन का उपार्जन करना प्रारंभ कर दिया । इस तरफ  
जब पूरे नौ मास व्यतीत हो चुके तब दोहले की पूर्ति से प्रसन्न हुई  
उस मयूरपालक की पत्नी के पुत्र उत्पन्न हुआ । माता की गर्भावस्था  
में चंद्र को गोपन करने से पिताने उसका नाम चन्द्रगुप्त रखा । धीरे २  
जब चन्द्रगुप्त बालकों के साथ क्रीडा करने के लायक हो गया तब  
वह उनके साथ खेलते समय राजनीति का प्रदर्शन करने लगा । जिस  
समय चन्द्रगुप्त की अवस्था आठ वर्ष की हो गई उस समय चाणक्य  
मयूरपालक के घर पर आया चाणक्य ने चंद्रगुप्त को उसकी उत्पत्ति  
के वृत्तान्त से विदित कर दिया । चन्द्रगुप्त को जब अपनी उत्पत्ति  
का वृत्तान्त विदित हो चुका तो उसने चाणक्य से कहा हे महात्मा !  
आप मुझे अपने ही साथ ले चलिये । चाणक्य ने कहा तुम्हारा पिता

आ प्रभाणु याणुक्ये तेषीनी चंद्र पीवानी धञ्छाने परिपूर्णुं करवामां सङ्गता  
भेणवी पोतानी धञ्छानी परिपूर्णुताथी मयूरपालकनी पत्नि भूष प्रसन्नतामां  
रडेवा लागी. आ पछी याणुक्ये रसायणीक क्रियाओ द्वारा धन भेणववानी  
शङ्कात करी हीधी. आ तरङ्ग न्यारे पुरा नव भङ्गिना वीती गया त्यारे  
पोतानी धञ्छानी पूर्तिथी प्रसन्न थयेली ते मयूरपालकनी पत्निओ पुत्रनो जन्म  
आप्यो. पिताओ तनुं नाम चंद्रगुप्त राण्युं. समय जतां न्यारे चंद्रगुप्त  
भाणकेनी साथे रभवाने लायक थये त्यारे तेणु भाणकेनी साथे जेलती वप्यते  
राजनीतिनुं शिक्षणु आपवा मांड्युं. यथा समये न्यारे चंद्रगुप्त आठ वर्षानो थये  
त्यारे याणुक्य मयूरपालकने घेर आवी पडोन्थ्या. याणुक्ये चंद्रगुप्तने तेना  
जन्म काणनुं वृत्तांत कळुं चंद्रगुप्ते पोताना जन्मकाणनुं वृत्तांत ळण्युं त्यारे तेणु  
याणुक्यने कळुं, हे महात्मा ! आप मने आपनी साथे लछ ळओ, याणुक्ये

पूर्वमेव मां दत्तवान् । ततश्चाणक्यश्चन्द्रगुप्तं सह नीत्वा प्राह—तव राज्यलाभं करिष्यामि । ततश्चाणक्यो वनं गत्वा रसायनेन द्रव्यं निर्माय तत्प्रभावात् सेनां संगृहीतवान् । सैनिकैः सह स पाटलिपुत्रनगरे नन्दनृपतिमाक्रमते स्म । नन्दनृपतिश्चाणक्यस्य पराजयं कृतवान् । चन्द्रगुप्तेन सह चाणक्यस्ततोऽपसृत्य क्वचित् प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः । नन्दनृपतेः कश्चित् सैनिकोऽश्वमारुह्य चाणक्यं ग्रहीतुमागतः । चाणक्यस्तं विलोक्य चिन्तयति—अयं तु मां ग्रहीतुं प्रत्यासन्नो भवति, बालकोऽयं चन्द्र-

मेरे साथ चलने में तुम्हें निषेध करेगा । चन्द्रगुप्त ने कहा—निषेध क्यों करेगा ? पिता ने तो मुझे आपको पहिले से ही दे दिया है । चंद्रगुप्त की बात सुनकर चाणक्य ने चंद्रगुप्त को अपने साथ ले लिया । कहा—चलो मैं तुम्हें राज्य की प्राप्ति कराऊँगा । चन्द्रगुप्त को साथ लेकर चाणक्य वन में पहुँचा । रसायन से उसने वहाँ द्रव्य को खूब इकट्ठा किया और उसके प्रभाव से उसने वहीं पर सेना का संग्रह करना भी प्रारंभ कर दिया । जब सेना अच्छी तरह संगृहीत हो चुकी तो चाणक्य ने सेना को लेकर पाटलिपुत्र में जाकर राजा नन्द के ऊपर आक्रमण कर दिया । राजा नन्द ने चाणक्य को पराजित कर वहाँ से निकाल दिया । चाणक्य भी परास्त होकर चन्द्रगुप्त को साथ लेकर वहाँ से चला गया और किसी जगह गुप्तरूप से जाकर छिप गया । राजा नन्द ने चाणक्य को पकड़ने के लिये उसके पीछे एक अपना घुड़सवार भेजा । घुड़सवार को अपना पीछा करते हुए देखकर चाणक्य ने विचार किया

कहूँ के तारा पिता तने मारी साथे भोडलवामां अडयणु उली करशे अंद्रगुप्ते कहुँ अडयणु शा भाटे करशे ? पिताअे तो पडेदेथी न् भने आपने सुप्रत करेख छे. अंद्रगुप्तनी वात सांभणीने आणुक्ये अंद्रगुप्तने पोतानी साथे लछ दीधे। अने कहुँ, आदो ! हुं तभने राज्यनी प्राप्ति करावीश. अंद्रगुप्तने लछ आणुक्य वनमां गया. रसायणु प्रयोगथी त्यां तेले भूष द्रव्य अेकहुं कथुं अने अेनी सहायथी सेना अेकठी करवाने आरंभ करी दीधे। सेनाने लछने पाटलीपुत्र पछोंची नंदराज उपर आक्रमण कथुं. युद्धमां राज नंदे आणुक्यने पराज्य करीने लगाडी भूकथा. आणुक्य हारी न्वाथी अंद्रगुप्तने साथे लछ त्यांथी आली नीकल्या अने कोछ छुपा स्थणे न्छ रडेवा लाग्या. राज नंदे आणुक्यने पकडवा भाटे तेनी पाछण अेक घोडेस्वारने भोडल्यो. घोडेस्वार पोतानो पीछे पकडी रह्यो छे. न्णणीने आणुक्य विचार करवा लाग्या के ते भने पकडवा

गुप्तः कथं मया सह गन्तुं प्रभवति । इत्येवं विचार्य स तत्र सरस्तटे वस्त्रं धावमानस्य रजकस्यान्तिके गत्वा वदति—अरे रजक ! नन्दनपतेः सैनिकास्त्वां हन्तुमागच्छन्ति । रजकस्तद्वचनं श्रुत्वा तद्गयात् ततः पलायितः । चाणक्यस्तानि वस्त्राणि धावमानस्तत्र संस्थितः, चन्द्रगुप्तोऽपि तत्रैवान्यभागे जले प्रविश्य प्रच्छन्नोऽभवत् । अश्वारूढोऽसौ नन्दराजपुरुषस्तत्रागत्य पृच्छति—अरे रजक ! चाणक्यः क्व गतः ? रजकवेषधारी चाणक्यः प्राह—जले प्रविष्टः ततोऽसौ नन्दराजपुरुषस्तस्य कृतरज-

कि यह तो मुझे पकड़ने के लिये बिलकुल ही पास आ चुका है, यह चन्द्र-गुप्त बालक है मेरे साथ दौड़ सकता नहीं है अतः एक उपाय करना चाहिये कि जो साम्हने के तालाब पर घोबी कपडे धो रहा है उसको किसी बहाने से वहां से भगा देना चाहिये और स्वयं को उसका काम करने लग जाना चाहिये तभी रक्षा हो सकती है। ऐसा विचार कर चाणक्य उस घोबी के पास आकर कहने लगा कि अरे घोबी ! तूं देखता नहीं है राजा के सैनिक तुझे मारने के लिये आ रहे हैं । घोबी ने ज्यों ही चाणक्य की इस बात को सुना कि वह वहां से एकदम भग गया । चाणक्य ने अपनी नीति में सफलता प्राप्त की और उस घोबी के जो कपडे वहां धोने के लिए पड़े हुए थे उन्हें धोना प्रारंभ कर दिया । चन्द्रगुप्त भी वहीं पर एक किनारे पानी में जाकर छुप गया । वह आश्वारूढ राजपुरुष जो इनके पीछे पड़ा हुआ था वहां पर आ पहुँचा । उसने आते ही उससे पूछा कि अरे घोबी ! चाणक्य कहां गया है । रजकवेषधारी चाणक्य ने कहा कि वह अभी जल में घुस

भाटे तहैन नलुक आवी गयेल छे. आ भाणक यंद्रगुप्त भारी साथे डोडी शकशे नडी. भाटे अनेा कंधक उपाय करवेा जेधअे. सामा तणाव उपर धोणी कपडां धोए रह्यो छे, तेमने केध पणु अडाने त्यांधी लगाडी हे अने पोते ते काम करवा लागी नय के जेथी रक्षा थाय आवेा विचार करीने आणुक्य ते धोणीनी पासे जधने कडेवा लाग्या, के डे धोणी ! तुं जेतो नथी के राजनेा सैनिक तने मारवा भाटे आवी रह्यो छे ! धोणी आणुक्यनी आ वात सांलणीने त्यांधी अेकदम लागवा लाग्यो. आणुक्ये पोतानी नीतिने मणेवी सङ्गता जेधने ते धोणीनां जे कपडां त्यां धोवा भाटे पड्यां डतां तेने धोवा लाग्यो. यंद्रगुप्त पणु कितारा उपर पाणीमां जधने छुपाए गयो. अेटलाभां पेडो धोडेस्वार राजपुरुष जे तेमनी पाछण पडयो डतो ते त्यां आवी पडोअ्यो. तेणु आवीने पृछयूं, अरे धोणी ! आणुक्य कध आणुअे गयो ? धोणी वेशधारी आणुक्ये कहुं के, ते डमणुं ज पाणीमां उतरी गयो छे. तेनी



कषेपस्य चाणक्यस्य हस्ते स्व खड्गं हयं च दत्त्वा जले प्रविशति । तस्मिन्नेव समये रजकरूपश्चाणक्यस्तेन खड्गेन तस्य नन्दराजपुरुषस्य शिरश्चिच्छेद ।

ततश्चाणक्यश्चन्द्रगुप्तेन सह स्थानान्तरं गतः । कस्मिंश्चिद् ग्रामे भिक्षार्थं गृहस्थगृहे गत्वा पश्यति—एका वृद्धा स्थालके पायसं परिविष्य बालकाय भोक्तुं ददाति । तेन बालकेन स्थालकस्य मध्यभागे हस्तो निक्षिप्तः । प्रतप्तपायसस्पर्शेन तस्य हस्तो दग्धः, तेनासौ क्रन्दति । वृद्धा वदति—रे मूढ ! त्वं चाणक्य इव किमाचरसि । एतद् वचनं श्रुत्वा वृद्धा चाणक्यः प्राह—मातः ! किमनुचितं चाणक्येन कृतम् ,

गया है । सवार ने ज्यों ही यह बात सुनी तो वह अपने घोड़े से नीचे उतर पड़ा और कहने लगा कि तुम मेरे इस घोड़े को और तलवार को पकड़े रहो, जबतक मैं जलमें घुस कर उसे पकड़ लाता हूँ । इतने में ही चाणक्य ने उसकी ही तलवार से उसको मार दिया ।

चाणक्य वहाँ से चंद्रगुप्त को साथ लेकर किसी दूसरे स्थान पर चला गया । एक समय की बात है कि चाणक्य जब भिक्षा लेने के लिये किसी दूसरे गाँव में एक गृहस्थ के घर पर गया हुआ था तब उसने वहाँ देखा कि एक वृद्धा ने थाली में गर्म खीर परोस कर खाने के लिये किसी बालक को दी और उस बालक ने उस गर्म खीर से युक्त थाली के बीचोबीच हाथ डाल दिया सो गर्म खीर के उष्णस्पर्श से उस बालक का हाथ जल गया इससे वह रोने लगा । उसको रोता देखकर वृद्धा ने कहा कि रे मूढ ! तू चाणक्य की तरह क्यों होता जा रहा है । वृद्धा के ये वचन सुनकर चाणक्य ने उससे कहा हे माता ! चाणक्य

आ वात सांलणीने ते पोताना घोडा उपरथी नीचे उतर्यो अने कड़ेवा लाग्यो, मारा आ घोडाने अने तरवारने तमे साथेवा त्यांसुधीमां हुं डमण्वां न तेने पाणी-मांथी पकडीं लावुं छुं. घोडा अने तरवार हाथ करीने आणुक्ये तरवारथी पेला स्वारने मारी नाज्यो. अने मारीने आणुक्ये चंद्रगुप्तने साथे लछं कौर्छं भीन् स्थणे आल्या गया. अेक समयनी वात छे के न्यारे आणुक्ये त्यां स्थिर थछं लिखा लेवा माटे कौर्छं भीन् गाभे अेक गृहस्थने त्यां गया. त्यां ते लिखा माटे पछोंन्या, अेन वणते अेक वृद्धा थाणीमां गरभा गरभ भीर पीरसी आणकने भवराववानी तैयारी करी रडेल डती. आणके भीर आवानी उतावणमां ते गरभ भीरथी लरेदी थाणीनी वञ्चो वञ्च हाथ नाज्यो. गरभ भीरना स्पर्शथी आणकने हाथ दान्यो अने रोवा लाग्यो. आ नैछं वृद्धाअे ते आणकने कहुं, के अरे मूढ ! आणुक्यना जेवो तुं केम थतो नय छे ? वृद्धानां आ वचन सांलणी आणुक्ये ते वृद्धाने पूछ्युं के छे माता ! आणुक्ये अेवुं क्युं



वृद्धा प्राह—भोजने राज्यग्रहणे च प्रथमं प्रान्तभागे हस्तो निक्षेपणीयः । एतद्वचनं श्रुत्वा चाणक्यो हिमगिरिं गतवान् । तत्र पर्वतनामको नृपतिरासीत् । तस्य समीपं गत्वा चाणक्योऽवदत्—पाटलिपुत्रनगरे नन्दनृपतिना सह युद्धे भवान् सहयोगं दधात् तर्हि तदर्थं राज्यं भवते दास्यामि । तदा पर्वतेन तस्य वचनं स्वीकृतम् ।

ततश्चाणक्यः पर्वतश्च चन्द्रगुप्तेन सह पाटलिपुत्रनगरमागत्य नन्दं विजित्य राज्यं गृहीतवन्तौ । तदा नन्दनृपतिर्धर्मद्वारेण निःसर्तुं प्रार्थयति, चन्द्रगुप्तेन तत्प्रार्थनं स्वीकृत्य कथितम्—एकस्मिन् रथे यावद् द्रव्यं समाविशति, तावद् द्रव्यमुपादाय

ने क्या अनुचित किया है ? । वृद्धा ने कहा भोजन एवं राज्यग्रहण में प्रथम प्रान्तभाग में हाथ डालना चाहिये । वृद्धा के वचन सुनकर चाणक्य हिमगिरि जाकर वहाँ के राजा पर्वत से मिला । उससे चाणक्य ने कहा पाटलिपुत्र नगर में नन्दनृपति के साथ यदि युद्ध में आप हमें सहयोग प्रदान करें तो वहाँ का आधा राज्य हम आपको देंगे । चाणक्य की बात सुनकर पर्वत ने युद्ध में सहायता देना कबूल कर लिया ।

चंद्रगुप्त को लेकर चाणक्य और पर्वत दोनों मिल कर पाटलिपुत्र आये । वहाँ नन्द राजा के ऊपर इन्होंने ने धावा बोल दिया । नन्द को परास्त कर उसका राज्य ले लिया । उस समय नन्द ने धर्मद्वार से निकल ने के लिये प्रार्थना की । चंद्रगुप्त ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार करते हुए कहा—एक रथ में जितना द्रव्य हो सकता हो उतने द्रव्य को

अनुचित काम क्युं छे ? वृद्धाये क्युं के, लोअन अने राज्य ग्रहणुमां प्रथम अेक छेडेथी हाथ नाअवेने लेधये. वृद्धातुं आ वचन सांभणी तेने नभन करीने आणुक्य त्यांथी आलता थया. आ पछी आणुक्ये हिमगिरि जेध त्यांना राज पर्वतनी मुलाकात लीधी अने तेने क्युं के, पाटलीपुत्रना राज नंदनी सामे अमे युद्ध करवा धरुंछीये छीये. अे युद्धमां तमे ले अमने साथ आपरी। तो ते छुतेवा राज्यने अरधे लाग तमने आपवामां आवरी. आणुक्यनी आ वात सांभणी पर्वत राजये युद्धमां सहायता देवातुं क्युल क्युं.

चंद्रगुप्तेने लधने आणुक्य अने पर्वत अन्नेये पाटलीपुत्र उपर आकभणु क्युं. सामसामी लडाई थध जेमां राज नंद डारी गया, तेना राज्यने कअने चंद्र-गुप्ते सांभणी लीधी. आ समये नंदे धर्मद्वारथी निकलवा भाटे प्रार्थना करी. चंद्र-गुप्ते तेनी प्रार्थनाने स्वीकार करीने क्युं के, अेक रथमां जेटलुं द्रव्य समाध

भार्यापुत्रादिभिः सह भवान्निःसरतु । नन्देन तथैव कृतम् । तदा रथस्थिता नन्दस्य पुत्री निर्गच्छन्ती चन्द्रगुप्तं सानुरागं पश्यति, तदा नन्दः स्वपुत्रीं प्राह-पुत्रि ! अभीष्टं चेच्चन्द्रगुप्तं वरय । ततोऽसौ नन्दपुत्री चन्द्रगुप्तस्य रथे समारोहति, तदा नव संख्यका रथचक्रस्य अरा भग्नाः । चन्द्रगुप्तस्तद्भङ्गममङ्गलं विज्ञाय नन्दपुत्रीं प्रतिषेधयति । चाणक्यश्चन्द्रगुप्तं वदति-इदं महन्मङ्गलम्, नवसंख्यका अरा भग्ना इति नवपुरुषपर्यन्तं राज्यं स्थास्यति । ततश्चन्द्रगुप्तः पर्वतश्चाणक्यश्च सर्वे राजभवनं प्रविष्टाः ।

लेकर आप अपने स्त्रीपुत्रादिकसहित यहां से चले जाये । चन्द्रगुप्त की आज्ञानुसार नन्द ने वैसा ही किया । जिस समय नन्द राज्य से बाहर होकर बालबच्चेसहित चलने लगा उस समय रथ में बैठी हुई नन्द की पुत्री सुचन्द्रा ने बड़े ही अनुराग से चंद्रगुप्त की ओर देखा । चंद्रगुप्त की ओर अनुराग से देखनेवाली अपनी पुत्री को देखकर नन्द ने कहा कि हे पुत्री ! यदि तेरी इच्छा हो तो तू इस चंद्रगुप्त को वरले । पिता की बात सुनकर पुत्री चंद्रगुप्त के रथ पर जाकर बैठ गई । जिस समय यह उसके रथ पर बैठी उसी समय चंद्रगुप्त के रथ के पहिये के नौ आरे टूट गये । चंद्रगुप्त ने ज्यों ही अपने रथ के पहिये की यह हालत देखी तो उसने इसमें अमंगल माना और नन्द की पुत्री को उस में बैठने से निषेध कर दिया । चाणक्य ने इस बात को देखकर चंद्रगुप्त से कहा कि तुम जिसे अमंगल समझ रहे हो वह बड़ा भारी

शुके तेतलुं लधं आप आपना स्त्री पुत्रादिकने लधं अडीथी यात्या नव. नंहे अंद्रगुप्तनी आज्ञानुसार कथुं. जे समये राज नंद पोताना परिवार सहित राज्य छोडीने जवा लाग्या. ते समये रथमां जेठेन नंदनी पुत्री सुचन्द्राजे अंद्रगुप्तनी सामे लारे अनुरागथी द्रष्टि ईंकी. अंद्रगुप्त तरक्ष अनुरागथी जेधं रडेन पोतानी पुत्रीने उदेशीने नंहे कथुं के, हे पुत्रि ! जे तारी धच्छा होथ तो तुं भुशीथी अंद्रगुप्तने वरी दे. पितानी आ वात सांलणी सुचंद्रा ते रथमांथी उतरी अंद्रगुप्तना रथ उपर अडी गध. जेवी ते अंद्रगुप्तना रथ उपर जधने जेठी तेवा ज अंद्रगुप्तना रथना पधडांना नव आरा तूटी गया. अंद्रगुप्ते पोताना रथनां पैडांना आ जनाव जेतां तेना मनमां अमंगलनी शंका जगी अने जेथी नंदनी पुत्रीने रथ उपर अठवानी ना पाडी. आणुके आ जेधं अंद्रगुप्तने समज्जये के, तमे जेने अमंगल माने छे ते अमं-

चाणक्यस्तदा नन्दराज्यस्य द्वौ भागौ कृत्वा पर्वताय चन्द्रगुप्ताय चैकैकं भागं प्रदत्तवान् । नन्देन स्वभवने विषकन्या स्थापिता । तत्र पर्वतनृपस्तां विलोक्य मोहितो जातः, तस्याः स्पर्शमात्रेण पर्वतनृपो विषाक्रान्तः संजातः । तद्विषापहारार्थं चन्द्रगुप्तः प्रवृत्तः, स चाणक्येन प्रतिषेधितः, तदनन्तरं पर्वतनृपो मृतः । तदा चन्द्रगुप्तस्य राज्यमखण्डं संजातम् ।

अथ नन्दराज्यान्तर्गताः शत्रुलोकाश्चौर्यादिभिरुपद्रवं कुर्वन्ति । चाणक्यश्चौराणां

मंगल है। चक्र के जो नव आरे टूट गये हैं उससे यह सूचित होता है कि नौ पीढ़ी पर्यन्त यह राज्य स्थिर रहेगा। इसके बाद चाणक्य, पर्वत और चंद्रगुप्त राज्यभवन में प्रविष्ट हो गये।

चाणक्य ने उस मिले हुए नन्दराज्य के दो भाग किये। एक भाग पर्वत के लिये और दूसरा भाग चन्द्रगुप्त के लिये दिया। नंद के भवन में एक विषकन्या पाली हुई थी। पर्वत इस कन्या को देखकर उस पर मोहित हो गया। ज्यों ही उसने उसका स्पर्श किया कि उसका समस्त शरीर विष से व्याप्त हो गया। पर्वत के समस्त शरीर में व्याप्त विष को दूर करने के लिये चंद्रगुप्त ने प्रयत्न करना चाहा, परन्तु चाणक्य ने उसे इसके लिये मना कर दिया अतः वह उससे दूर रहने लगा। बाद में पर्वत मर गया। पर्वत के मरते ही चंद्रगुप्त का एकछत्र राज्य हो गया।

राज्य परिवर्तित होने से अब नन्दराज्यान्तर्गत लोकों ने चोरी आदि उपद्रव करना प्रारंभ कर दिया। चाणक्य ने चोरों को दमन

गणरूप नहीं परंतु लारे भंगणरूप छे. यकना जे नव आरा तूटी गया छे अनाथी अे सूचित थाय छे के, तमारी नव पेढी सुधी आ राज्य अयल अने स्थिर रहेशे. पछी आणुक्य, राज पर्वत अने चंद्रगुप्त अधा राज्यभवनमां गया.

नंद राजना अे राज्यना आणुक्ये जे लागला पाउथा. अेक लाग राज पर्वतने अने अेक चंद्रगुप्तने सुप्रत करवामां आये. नंदना राज्यभवनमां अेक विषकन्या उछेरवामां आवी हती. पर्वत अेने जेध अेना उपर मोहीत अनी गये. तेणे अे कन्याना शरीरने स्पर्श कये के तुरत ज तेना समस्त शरीरमां विष प्रसरी गयुं. पर्वतना शरीरमां प्रसरी गयेला विषने दूर करवा चंद्रगुप्त तत्पर अये. अेज वअते आणुक्ये तेने तेम करतां अटकाये. आथी तेणे तेम करवुं मांडी वाठयुं. विषना लारे प्रकोपथी पर्वतनुं मृत्यु थयुं. पर्वतना मृत्युने कारणे राज नंदनुं समअ राज्य चंद्रगुप्तना अेक छत्र नीये आवी गयुं.

राज्यनुं परिवर्तन थवाथी राज्यनुं शासन अहलातां केटलाक लोकोअे चोरी आदि उपद्रवना प्रारंभ करी दीघा. आणुक्ये चोरी आदि उपद्रव करनाराअे सामे

दमनार्थं विचिन्तयन् कदाचिद् नगरतो बहिर्निःसृतः सन् पश्यति-नलदामनामा कुविन्दः पुत्रं मत्कोटकैर्दष्टं दृष्ट्वा कोपाविष्टो भूत्वा तेषां बिलमन्वेषयति । चाणक्यस्तथाकुर्वन्तं कुविन्दं दृष्ट्वा पृच्छति-कुविन्द ! किमन्वेषयसि ? कुविन्दः प्राह-मत्पुत्रदंशदायिनां मत्कोटकानां गृहम्, एवं तद्वृत्तं विदित्वा चाणक्यो मनसि विचारयति-योग्योऽयं कुविन्दो वैरनिर्यातनस्य । इति मनसि विचार्य तमेव नगराध्यक्षं कृतवान् ।

एकदा कोशपूरणार्थं चाणक्यः सुवर्णप्राप्तिकामो देवाराधनं कृतवान् । देवः

करने का बहुत कुछ विचार किया पर समझ में नहीं बैठा । एक दिन इसी विषय का विचार करते २ चाणक्य नगर से बाहर जा पहुँचे । पहुँचते ही वहाँ एक नलदाम नामक कुविन्द (जुलाहे) को देखा जो अपने पुत्र को काटने वाले मकोड़ों के बिल की तलास करने में बड़े क्रोध से अभिभूत होकर इधर उधर फिर रहा था । चाणक्य ने इस प्रकार से तलाशी करने में प्रयत्न करते हुए देखकर कुविन्द से पूछा कि हे कुविन्द ! कहो क्या ढूँढ रहे हो ? कुविन्द ने कहा मेरे पुत्र को एक मकोड़े ने काट लिया है सो मैं उसके घर को देख रहा हूँ । इस प्रकार कुविन्द की बात सुनकर चाणक्य ने मन में विचार किया कि यह कुविन्द वैर का बदला लेने में योग्य है । इस प्रकार विचार कर चाणक्य ने उसे नगर का कोतवाल बना दिया ।

एक समय की बात है कि खजाने की पूर्ति करने के निमित्त चाणक्य ने किसी देव की आराधना की । चाणक्य की आराधना से

सप्त ङाथे ङाम देवानो तेभञ्ज दमननो ङैरडो वीञ्जवानो विचार ङर्यो, परंतु तेभ ङरवुं अत्यारना संज्ञेगोभां तेने उचित न लाञ्छुं. अेक द्विवस आञ्ज आण-तने विचार ङरतां ङरतां आञ्जुञ्च नगरनी अङ्कार ङता हुता, त्यां रस्ताभां अेक स्थणे अेक नलदाम नामना कुविन्द (वञ्जुञ्च)ने ज्ञेथो. जे पोताना पुत्रने ङरडनारा म'ङ्कोडानुं ङर शोधी रह्यो हुतो. तेने आञ्जुञ्च पृछयुं, कुविन्द शुं शोधी रह्यो छे ? धञ्जा जे ङोधना आवेशथी अङ्गी तङ्गी ङरी रङ्गला कुविन्दे ङङ्गुं, भारा पुत्रने अेक म'ङ्कोडाञ्जे ङरडी आधेल छे, हुं तेना धरने गोती रह्यो छुं. आ प्रकारनी कुविन्दनी वात सांलणी आञ्जुञ्चे विचार्युं के, आ भाञ्जुञ्च अद्वैतो देवाभां योग्य छे. आम विचारी तेने सभञ्जवी पछीथी आञ्जुञ्चे तेने नगरना ङोटवाणानी जगाञ्जे नीञ्चे.

अेक सभयनी वात छे-राञ्जयना अञ्जनाने लरपुर अनाववा आञ्जुञ्चे

प्रसन्नो भूत्वा चाणक्याय जयप्रदानं पाशकान् ददौ । तदनन्तरं चाणक्येन दीनारपूर्णस्थालेन सह पाशकान् दत्त्वा कश्चिद् द्यूतपटुः पुरुषो द्यूतार्थं नगरे प्रेषितः । दीनारपूर्णं स्थालं पाशकानपि गृहीत्वाऽसौ पुरुषः पुराभ्यन्तरे भ्रमन् वदति—यद्यहं जयामि, तर्हि दीनारमेकं गृह्णामि । यदि मामन्यो जयति, तदा दीनारपूर्णमिदं स्थालं ददामि—इति । ततो बहवो जना द्यूतक्रीडार्थं समागताः । सर्वे तेन पुरुषेण पराजिता, तं पाशकहस्तं पुरुषं विजेतुमसमर्था जाताः । यथा तस्य पाशकहस्तपुरुषस्य पराजयो दुर्लभस्तथा संसारे खलु मनुष्यजन्म दुर्लभम् ।

देव प्रसन्न भी हो गया । प्रसन्न होकर देव ने चाणक्य के लिये जय कराने वाले चार पासे वरदानरूप में दिये । इसके बाद चाणक्य ने स्वर्णमुद्रा-सोनामुहर से परिपूर्ण एक थाली को उन पासों के साथ किसी द्यूतक्रीडा में निपुण पुरुष को देकर उसको नगर में जुआ खेलने के लिये भेजा । सोनामुहरों से पूर्ण थाल को तथा पासों को लेकर वह पुरुष नगर में यह अवाज देते हुए फिरने लगा कि यदि मैं जीत जाता हूँ तो पराजित हुए व्यक्ति से सिर्फ एक ही सोनामुहर लेता हूँ, और यदि हार जाता हूँ तो जीतने वाले को सोनामुहरों से पूर्ण यह थाल का थाल दे देता हूँ । उसकी इस घोषणा को सुनकर अनेक जन द्यूतक्रीडा के लिये आने लगे । जुआ खेलना प्रारंभ हो गया । उस पुरुष ने सब को जीत लिया, इस को कोई भी पराजित न कर सका । सारांश—जिस प्रकार इस देवप्रदत्त पासों के प्रभाव से उस पुरुष का पराजित होना

कैर्ध देवनी आराधना करी. आणुक्यनी आराधनाथी प्रसन्न थर्ध देवे आणुक्यने विन्य अपावनार येवा यार पासो तेने आग्या. आ पछी आणुक्ये वरदानना इपमां भणेला ये पासानो प्रयोग करवानुं विचारी अेक थाणमां सुवर्णमुद्रायेो लरी द्यूतक्रिडांमां निपुण्ये येवा अेक पुइधने पासो साथे ते थाण आपी नगरीमां जुगार रभवा भोकट्येो. सोनाभडोरथी लरेल थाण तथा पासो लध ते पुइध नगरमां घोषणा करतो इरवा लाग्येो. के ने कैर्ध भने दावमां डरावे तो सोनाभडोरथी लरेल आ थाण आपी दडं अने सामेो भाणुस डारे तो तेणे भने इकत अेक न सोनाभडोर आपवी. येनी आवी घोषणा सांलणीने अनेक भाणुसेो जुगार रभवा आववा लाग्या. जुगार रभवानो प्रारंल थर्ध चुक्येो. तेणे रभवा अपावनार हरेकने लती लीधा पण्य तेने कैर्ध परालत करी शक्युं नडीं. सारांश—देवना आपेला प्रसादइप पासाना प्रभावथी नेवी रीते अे

અત્ર સંગ્રહઃ શ્લોકઃ—( શાર્દૂલ વિક્રીડિતવૃત્તમ્ )

દેવારાધનલબ્ધપાશકવરાન્ સ્થાલં ચ રત્નૈર્મૃતમ્,  
 ચાળક્યેન વિતીર્ય કોઽપિ પુરુષઃ સ્વીયે પુરે પ્રેષિતઃ ।  
 સર્વેષાં સ ચ તત્પુરાધિવસતાં જાતો યથા દુર્જયઃ,  
 સંસારે ભ્રમતઃ પુનર્નરભવો જન્તોસ્તથા દુર્લભઃ ॥  
 ઇતિ દ્વિતીયઃ પાશકદૃષ્ટાન્તઃ ॥ ૨ ॥

અથ તૃતીયો ધાન્યદૃષ્ટાન્તઃ પ્રોચ્યતે—

ભરતક્ષેત્રે દ્વાત્રિંશત્સહસ્રદેશસમન્વિતેઽનેકગ્રામનગરપત્તનાદિસહિતે પ્રશસ્ત  
 વૃષ્ટૌ સત્યાં કૃષિકર્મદક્ષૈઃ કૃષીવલૈઃ સર્વધાન્યબીજેષુમેષુ સમુત્પન્નાન્ નિરુપદ્રવં  
 નિષ્પન્નાન્ શાલિ-ગોધૂમ-ચળક-મુદ્ગ-માષ-તિલાણુક-રાજમાષ-કલાય-યવ-

દુર્લભ બના ઉસી પ્રકાર હસ સંસાર મેં યહ મનુષ્યજન્મ બઢા દુર્લભ હૈ ।

સંગ્રહ શ્લોક—

દેવારાધનલબ્ધપાશકવરાન્ સ્થાલં ચ રત્નૈર્મૃતમ્,  
 ચાળક્યેન વિતીર્ય કોઽપિ પુરુષઃ સ્વીયે પુરે પ્રેષિતઃ ।  
 સર્વેષાં સ ચ તત્પુરાધિવસતાં જાતો યથા દુર્જયઃ,  
 સંસારે ભ્રમતઃ પુનર્નરભવો જન્તોસ્તથા દુર્લભઃ ॥ ૨ ॥  
 યહ દૂસરા પાશકદૃષ્ટાન્ત હુઆ ॥ ૨ ॥

તૃતીય ધાન્યદૃષ્ટાન્ત હસ પ્રકાર હૈ—અનેક ગ્રામ, નગર, પત્તન  
 આદિ સે સહિત હસ ૩૨ બતીસ હજાર દેશવાલે ભરતક્ષેત્ર મેં વૃષ્ટિ કે  
 હોને પર કૃષિ કર્મ મેં દક્ષ કિસાન લોગ શાલિ, ગોધૂમ, ચળક, મુદ્ગ,

પુરુષને પરાશ્રુત બનાવવેા મહાદુર્લભ હતું એવીજ રીતે આ સંસારમાં આ  
 મનુષ્ય જન્મ મહાદુર્લભ છે. સંગ્રહ શ્લોક—

દેવારાધનલબ્ધપાશકવરાન્, સ્થાલં ચ રત્નૈર્મૃતમ્,  
 ચાળક્યેન વિતીર્ય કોઽપિ પુરુષઃ સ્વીયે પુરે પ્રેષિતઃ ।  
 સર્વેષાં સ ચ તત્પુરાધિવસતાં જાતો યથા દુર્જયઃ,  
 સંસારે ભ્રમતઃ પુનર્નરભવો જન્તોસ્તથા દુર્લભઃ ॥ ૨ ॥  
 આ ધીન્દુ પાશકદૃષ્ટાન્ત થયું ॥ ૨ ॥

ત્રીન્દુ ધાન્યદૃષ્ટાન્ત આ પ્રકારનું છે.

અનેક ગ્રામ, નગર, જંગલ વગેરે દરેક સ્થળે ૩૨ હજાર દેશવાળા આ  
 ભરતક્ષેત્રમાં વરસાદ વરસતાં ખેતીના કામમાં રચ્યા પચ્યા રહેનાર ખેડુતો



ब्रीहि-कङ्कण-कोद्रव-मकुष्ठका-ढकी-वल्ल-कुलत्थ-शण - चीनक-मसूरा-तसी-कलम्बषष्ठिका-मक्का-वर्जरीत्यादिवहुभेदभिन्नान् संपूर्णभरतक्षेत्रमध्यगान् धान्य-राशीन् कोऽपि देवः स्वशक्त्या समीत्याभ्रंलिहं तत्पुञ्जं कुर्यात् तत्र प्रस्थैकपरिमित-सर्षपं निक्षिप्य सर्वं धान्यं संमिश्रयेत्, तदनन्तरं जराजर्जरां विगलन्नेत्रां कम्पमा-नगात्रामेकां वृद्धां तान् सर्षपान् धान्यराशिभ्यः कणशः पृथक् कृत्य प्रस्थं पूरयितुं समादिशेत् तदा तस्यास्तत्पृथकरणं यथा दुष्करं भवेत् तथा मनुष्यभवात् प्रच्यु-तस्य प्रमादिनः पुनर्मनुष्यजन्म दुर्लभमिति ॥

उडद, तिल, राजमाष (चौला), मटर, मोंठ, बाजरा आदि समस्त धान्यों को बो देवें और वे जब अपने समय पर निरूपद्रवरूप से पककर तैयार हो जावें तब कोई देव इस समस्त धान्यराशि की उड़ावनी अर्थात्-तुष साफ-करके एक बहुत अधिक ऊँची जो मानो आकाश को भी स्पर्श करती हो ऐसी ढेरी लगा दे। फिर उसमें एक प्रस्थप्रमाण सर्षप मिलाकर किसी वृद्धा को कि जिसे कम दीखता हो तथा शरीर भी जिसका कंपित हो रहा हो यह आदेश दे कि तू इस ढेरी में उस प्रस्थप्रमाण सर्षप को अलग २ छांट दे। तो जैसे ढेरी में उस प्रस्थप्रमाण सर्षप का एक २ कण करके छांटना बड़ा मुश्किल है, उसी प्रकार मनुष्य भव के छूट जाने पर पुनः उसका मिलना जीव को बड़ा दुर्लभ है।

ब्रीहि, कङ्कण, कोद्रव, मकुष्ठका, ढकी, वल्ल, कुलत्थ, शण, चीनक, मसूरा, तसी, कलम्बषष्ठिका, मक्का, वर्जरीत्यादिवहुभेदभिन्नान् संपूर्णभरतक्षेत्रमध्यगान् धान्य-राशीन् कोऽपि देवः स्वशक्त्या समीत्याभ्रंलिहं तत्पुञ्जं कुर्यात् तत्र प्रस्थैकपरिमित-सर्षपं निक्षिप्य सर्वं धान्यं संमिश्रयेत्, तदनन्तरं जराजर्जरां विगलन्नेत्रां कम्पमा-नगात्रामेकां वृद्धां तान् सर्षपान् धान्यराशिभ्यः कणशः पृथक् कृत्य प्रस्थं पूरयितुं समादिशेत् तदा तस्यास्तत्पृथकरणं यथा दुष्करं भवेत् तथा मनुष्यभवात् प्रच्यु-तस्य प्रमादिनः पुनर्मनुष्यजन्म दुर्लभमिति ॥

अत्र संग्रहः— ( शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् )  
 देवः कोऽपि पुरा समस्तभरतक्षेत्रस्य धान्यावलिं ,  
 पिण्डीकृत्य च तत्र सर्षपकणान्, प्रस्थोन्मितान् मीलयेत् ।  
 प्रस्थं पूरयितुं पुनर्विभजनं तेषां यथा दुर्लभं,  
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ ३ ॥  
 इति तृतीयो धान्यदृष्टान्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थो द्यूतदृष्टान्तः—

अङ्गदेशे रत्नपुरे रिपुमर्दनो नाम राजाऽऽसीत् । तस्याष्टोत्तरसहस्रस्तम्भालङ्कृतं सभाभवनमासीत् । स्तम्भे स्तम्भे चाष्टोत्तरसहस्र १००८ कोणाः सन्ति । एकदा तस्य राज्ञः पुत्रो वसुमित्रनामको राज्याकाङ्क्षया चिन्तयति—राजा वृद्धः, तं हत्वा राज्यं गृह्णामि, तद् वृत्तं मंत्रिणा ज्ञातम्, राज्ञे च निवेदितम् । राज्ञाऽपि पुत्रमाहूय

संग्रह श्लोक—

देवः कोपि पुरा समस्तभरतक्षेत्रस्य धान्यावलिं,  
 पिण्डीकृत्य च तत्र सर्षपकणान् प्रस्थोन्मितान् मीलयेत् ।  
 प्रस्थं पूरयितुं पुनर्विभजनं तेषां यथा दुर्लभं,  
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ ३ ॥  
 यह तीसरा धान्यदृष्टान्त है ॥ ३ ॥

चौथा द्यूत का दृष्टान्त इस प्रकार है—अंगदेश में रत्नपुर नाम का एक नगर था । रिपुमर्दन वहाँ का राजा था । उसका जो सभामंडप था वह एक हजार आठ १००८ खंभों से सुशोभित था । एक २ स्तंभ के एक हजार आठ १००८ कोने थे । राजा के पुत्र का नाम वसुमित्र था । एक दिन

संग्रह श्लोकः—देवः कोपि पुरा समस्त भरतक्षेत्रस्य धान्यावलिं,  
 पिण्डीकृत्य च तत्र सर्षपकणान् प्रस्थोन्मितान् मीलयेत् ।  
 प्रस्थं पूरयितुं पुनर्विभजनं तेषां यथा दुर्लभं,  
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ ३ ॥  
 आ त्रीणुं धान्यदृष्टान्तं छे ॥ ३ ॥

शैथुं द्यूतनुं दृष्टान्तं आ प्रकारनुं छे ।

अंग देशमां रत्नपुर नामनुं अके नगर हुतुं । तेमां रिपुमर्दन नामे राजा राख्य करतो हुतो । ते नगरने विशे जे सभा मंडप हुतो ते अके हुनर आठ १००८ थांभलाथी सुशोभित हुतो । अके अके स्तंभने अके हुनर

कथितम्—हे पुत्र ! अस्मिन् कुले पितरि मृते पुत्रो नृपासनं लभते । इमं वंशपरम्परानुगतं क्रमं यो न सहते स घृतं खेलयति । यदि जयति तदा तस्मै राज्यं दीयते । घृत-क्रीडनविधिश्चैवं वर्तते—पुत्रस्यैकवारं दायो भवति, राज्ञस्तु यथेच्छया । अपरं च—अष्टोत्तरसहस्रस्तम्भानामेकैकस्तम्भेऽष्टोत्तरसहस्रकोणाः सन्ति, तेष्वेकैककोणेऽष्टो-

वसुमित्र ने विचार किया कि राजा वृद्ध हो चुके हैं । इनसे यथावत् राज्य का काम काज होता नहीं है, और ये अभी तक भी मुझे राज्य का अधिकारी बना नहीं रहे हैं अतः अच्छा हो कि राजा को मार कर राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त कर लिया जाय । वसुमित्र के इस रहस्य को मंत्री ने जान लिया, और राजा से भी कह दिया । राजा ने वसुमित्र को बुलाकर कहा कि बेटा ! इस कुल की यह रीति चली आ रही है कि जब तक पिता मौजूद रहता है तब तक पुत्र को राज्य का अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता है । पिता के मरने पर ही पुत्र राज्य का अधिकारी होता है । इस प्रकार कुलक्रम से चले आये हुए इस क्रम को जो सहन नहीं कर सकता है वह जुआ खेल कर इस क्रम पर विजय पा सकता है । अर्थात् जो जुए में जीतता है उसको ही राज्य का अधिकारी बना दिया जाता है । जुआ खेलने की विधि इस प्रकार है—पुत्र का दाव एक बार होता है और राजा का उसकी इच्छानुसार । दूसरी बात यह है कि ये जो सभाभवन के एक हजार आठ १००८ खंभे हैं और

आठ १००८ भूषा डता. राजने एक पुत्र डतो अने तेनुं नाम वसुमित्र डतुं. एक वधत वसुमित्रे विचर कर्यो के, राज वृद्ध थर् गया छे. तेनाथी यथावत् राज्यनुं कामकाज थर्तुं नथी. अेम छतां पषु तेअो मने राज्या-धिकार सेंपता नथी. आथी राजने मारी, राज्यने उत्तराधिकार प्राप्त करी लठुं. वसुमित्रनुं आ रडस्य मंत्रीना लषुवामां आयुं, अने अे वात राजने कडी दीधी. राजअे आथी पोताना पुत्रने भोलावीने कहुं के, भेटा ! आपषु कुणगी अे रीत आली आवे छे के, ज्यां सुधी आप लवतो डोय त्यां सुधी पुत्रने राज्यने अधिकार प्राप्त थतो नथी. आपना भरवा पछी ल पुत्र राज्यने अधिकारी अने छे. आ प्रकारे कुणकमथी आदया आवता अे रीवाजने ने सडन करी शकतो नथी ते लुगार रभी आ कभनी सामे विजय भेणवी शके छे. अर्थात् ने लुगारमां लते छे तेने राज्यने अधिकारी अनावी हेवामां आवे छे. लुगार रभवानी विधी आ प्रकारनी छे. पुत्रने दाव एक वधत डोय छे, अने राजने तेनी ध्विअ अनुसार, भील वात अे छे के, ने सभाभवनना अेकडनरआठ १००८ थांलला

ત્રસહસ્રવારં વિજિતે સતિ તનૈવ ક્રમેણ સર્વે સ્તમ્ભા વિજિતા ભવેયુઃ, તન્નાપ્યષ્ટો-  
ત્રસહસ્રવારવિજયકરણે દૈવાત્ તન્મધ્યે પરાજયઃ સ્યાત્ તદા સર્વે વિજિતાઃ  
કોણા અવિજિતાઃ ભવન્તિ, સઠ્ઠદપિ બ્રહ્મચર્યમઙ્ગે સર્વં મહાવ્રતમિવ, અતઃ  
પુનરાદિત એવ સર્વે કોણા વિજેતવ્યાઃ, એવં ત્વમપિ કુરુ । ઇતિ પિર્તુવચનં શ્રુત્વા  
વસુમિત્રશ્ચિન્તયતિ—ઘૂતાદેવ રાજ્યં લભ્યં પુનઃ કિમર્થં પિતરં હન્મિ, ઇતિ વિચાર્ય  
રાજ્ઞા સહ ઘૂતક્રીડાર્યાં પ્રવૃત્તઃ, તથાપિ જયો દુર્લભો જાતઃ તસ્ય વસુમિત્રસ્યૈતત્  
કાર્યં યથા દુષ્કરં, તથા મનુષ્યત્વમપિ દુર્લભમ્ ।

इनके जो प्रत्येक के एक हजार आठ १००८ कोने हैं उन कोनों में से  
एक २ कोने को एक हजार आठ १००८ बार जीत जाता है । इसी क्रम  
से ये समस्त खंभे जब जीत लिये जाते हैं तब जाकर वह विजयी  
कहलाता है । यदि सब कोने जीत भी लिये जायें और एक भी कोना  
यदि जीता न जा सके तो जीते हुए भी सब कोने नहीं जीते समझे  
जा सकते हैं, और उन सब को पुनः जीतने के लिये द्यूत का आरंभ  
करना पड़ता है । जैसे एक बार भी यदि गृहीत ब्रह्मचर्य खंडित हो  
जाता है तो समस्त महाव्रत खंडित माना जाता है । इस प्रकार पिता  
के वचन को सुनकर वसुमित्र ने विचार किया कि जब द्यूत क्रीडा में  
जीत होने से राज्य मिलता है तो फिर पिता के मार ने से क्या लाभ ।  
इस प्रकार विचार कर पिता के साथ जुआ खेलने में प्रवृत्त हो गया ।  
परन्तु उसे विजय पूर्वोक्त प्रकार से जैसे दुष्कर बनी उसी प्रकार यह  
मनुष्यभव भी पुनः प्राप्त होना प्राणी के लिये दुर्लभ जानना चाहिये ।

છે અને એ પ્રત્યેકને એકહજારઆઠ૧૦૦૮ ખુણા છે એ ખુણામાંથી એક એક ખુણાને  
એકહજારઆઠ ૧૦૦૮વાર જીતવામાં આવે છે. આ ક્રમથી તે સમગ્ર શાંભલા બ્યારે  
જીતવામાં આવે ત્યારે તે વિજયી કહેવાય છે. કદાચ બધા ખુણા જીતી લેવામાં આવે  
અને એકાદ ખૂણા જીતવામાં બાકી રહે તો બધા ખુણા ન જીતાયેલા જ મનાય  
છે. અને એ બધાને જીતવા માટે ફરીથી જુગાર રમવો પડે છે. જેમ એક-  
વાર પશુ અહણ કરેલ બ્રહ્મચર્ય ખંડિત થઈ જાય તો સમસ્ત મહાવ્રત ખંડિત  
માનવામાં આવે છે. આ પ્રકારનાં પિતાનાં વચન સાંભળીને વસુમિત્રે વિચાર  
કર્યો કે, બ્યારે જુગાર રમવામાં જીત થવાથીજ જે રાજ મળતું હોય તો પિતાને  
મારવાથી લાભ શું થવાનો ? આ પ્રકારનો વિચાર કરી વસુમિત્ર પિતાની સાથેજુગાર  
ખેલવામાં પ્રવૃત્ત બન્યો. પરંતુ તેને ઉપરોક્ત પ્રકારથી વિજય મેળવવો દુષ્કર  
બન્યો તેવીજ રીતે આ મનુષ્યલવ પુનઃ પ્રાપ્ત થવો પ્રાણી માટે દુર્લભ બાબતો બોધ્યો.

अत्र संग्रहः—(शार्दूल विक्रीडितवृत्तम्)

स्तम्भानां हि सहस्रमष्टसहितं प्रत्येकमष्टोत्तरं ।  
 कोणानां च सहस्रमेषु जयति द्यूते पितु र्यः सुतः ।  
 साम्राज्यं लभते स, तस्य विजयो द्यूते यथा दुर्लभः ।  
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तो स्तथा दुर्लभः ॥ २ ॥  
 इति चतुर्थो द्यूतदृष्टान्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमो रत्नदृष्टान्तः—

धनसमृद्धे पुरे रत्नकोटिप्रभुर्धनदनामा वणिक् प्रतिवसति स भूमौ रत्नानि  
 निखन्य तदुपरि पर्यङ्कं निधाय शयनं करोति । स विश्वासाभावेन पुत्रानपि  
 तानि न प्रदर्शयति । स्वधनानुरूपं वेधं भवनादिकं च न करोति, व्यापारकरणे  
 धनानि हस्तादपगतानि भविष्यन्तीति बुद्ध्या व्यापारमपि न करोति ।

संग्रह श्लोक—

स्तम्भानां हि सहस्रमष्टसहितं प्रत्येकमष्टोत्तरं,  
 कोणानां च सहस्रमेषु जयति द्यूते पितु र्यः सुतः ।  
 साम्राज्यं लभते स तस्य विजयो द्यूते यथा दुर्लभः  
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ ४ ॥  
 यह चौथा द्यूतदृष्टान्त है ॥ ४ ॥

पांचवा रत्न दृष्टान्त इस प्रकार है—धनसमृद्ध नामका एक  
 नगर था । उसमें एक करोड रत्नों का मालिक धनद नामका वणिक्  
 रहता था । वह जमीन में गडे हुए रत्नों के ऊपर पलंग बिछाकर  
 सोया करता था । उसको अपने पुत्रों तक का भी विश्वास नहीं था

संग्रह श्लोक—स्तम्भानां हि सहस्रमष्टसहितं प्रत्येकमष्टोत्तरं,  
 कोणानां च सहस्रमेषु जयति द्यूते पितु र्यः सुतः ॥  
 साम्राज्यं लभते स तस्य विजयो ते यथा दुर्लभः  
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ ४ ॥  
 आ योथुं द्यूतदृष्टान्त छे. ॥ ४ ॥

पांचमुं रत्नदृष्टान्त आ प्रकारनुं छे—

धनसमृद्ध नामनुं एक नगर હતું, તેમાં એક કરોડ રત્નોનો માલિક એવો  
 ધનદ નામનો વણિક રહેતો હતો. તે જમીનમાં દાટી રાખેલા રત્નો ઉપર પલંગ  
 પાથરીને સુઈ રહેતો હતો. તેને પોતાના પુત્રોનો પણ વિશ્વાસ ન હતો, તેથી

कदाचित् सम्बन्धिनः कार्यवशादामन्त्रणपत्रं समागतम् । तत्र गन्तुं प्रस्थितो धनदस्तद्रत्नरक्षणाय वसुप्रियं स्वकनिष्ठपुत्रं सूचयति । तदनन्तरं धनदे गृहान्निः-  
सृते सति वसुप्रियस्य भ्रातरः सर्वे गृहे समागताः । वसुप्रियः पितृसूचितं रत्न-  
स्थानं भ्रातृन् कथयति । तैर्भूमिं खनित्वा रत्नान्युद्धृतानि । सर्वे हृष्टचित्ताः

इसलिये वह रत्नों को वे कहां २ रखे हुए हैं पुत्रों को नहीं बतलाया था । जैसा यह धनपति था उसके अनुरूप न इसका मकान था और न रहन सहन भी । व्यापार भी यह इसलिये नहीं करता था, यह मानता था कि व्यापार करने में जो धन लगाया जाता है वह हाथ से चला जाता है । उसकी पुनः प्राप्ति कोई निश्चित नहीं होती है ।

एक समय की बात है कि किसी संबंधी का इसके पास बुलाने के लिये आमंत्रण पत्र आया । जब यह वहां जाने को तयार हुआ तब रत्नों की रक्षा करने के लिये इसने सब से छोटे पुत्र को कि जिसका नाम वसुप्रिय था, नियुक्त कर दिया । तब कहां कितने २ रत्न रखे हुए हैं यह बात भी उसको बतला दी । धनद जब चला गया और वसुप्रिय रत्नादिक की रक्षा करने लगा तब सब भाई मिलकर वसुप्रिय के पास आये और बातों बार्ता में उसने उन अपने भाईओं को रत्न रखने के समस्त स्थानों को बतला दिया । उन्होंने ने जमीन खोद कर

रत्नाने तेष्ते कथां कथां राज्यां छे ते पोताना पुत्राने पण्य अतावतो न डतो. जेवो ते धनपती डतो तेने अनुश्रुप तेने रडेवानुं मकान न डतुं तेम तेनी रडेष्ठी करष्ठी पण्य तेने अनुश्रुप न डती. ते वेपार पण्य करतो नडी कारण्य के तेनी मान्यता जेवी डती के, वेपारमां जे धन रोकवामां आवे ते हाथथी आत्थुं जय छे. अने गयेलुं धन इरीथी मणवानुं निश्चित डोतुं नथी.

એક સમયની વાત છે કે, જ્યારે તેને જોલાવવા માટે તેના કાંઈ સંબંધીનું આમંત્રણ આવ્યું. જ્યારે તે ત્યાં જવા માટે તૈયાર થયો ત્યારે તેણે રત્નોની રક્ષા માટે પોતાના સૌથી નાનો પુત્ર કે જેનું નામ વસુપ્રિય હતું તેને નિયુક્ત કર્યો. અને કંઈ કંઈ જગ્યાએ કેટલાં રત્નો રાખ્યાં છે, એ વાત પણ તેને બતાવી દીધી. તે ધનદ જ્યારે બહારગામ ગયો ત્યારે વસુપ્રિય રત્નાદિકની રક્ષા કરવા લાગ્યો. બધા ભાઈઓ એકઠા મળીને વસુપ્રિયની પાસે આવ્યા અને વાત વાતમાં વસુપ્રિયે પોતાના ભાઈઓને રત્નનાં બધાં ઠેકાણાં બતાવી દીધાં. તેમણે જમીન ખોદી રત્નો કાઢી લીધાં. દરેકને રત્નોની પ્રાપ્તિ થવાથી અપાર



सन्तस्तन्नगरागतानामन्यान्यदेशवासिनां श्रेष्ठिनां हस्ते रत्नानि विक्रीय वाणि-  
ज्यार्थं पण्यवस्तूनि क्रीतवन्तः, तैर्वाणिज्यकार्यं प्रसारयन्ति स्म । ततस्तत्पुत्राः  
कोटिध्वजा जाताः । चिरेण तेषां पिता गृहमागतः । स स्वस्थापितानि रत्नान्य-  
दृष्ट्वा वसुप्रियं पुत्रं पृच्छति—अरे ! केन मम रत्नानि गृहीतानि ? । वसुप्रिय आह—  
सर्वैर्भ्रातृभिरपहतानि । ततः पुत्रवाक्यं श्रुत्वा धनदः कोपाविष्टः सन्नब्रवीत्—रे  
लक्ष्मीकन्दकुहालकाः । यूयं मद्गृहान्निर्गच्छत, तानि विक्रीतरत्नानि समानीय  
मद्गृहे स्थापयन्तु, अन्यथा गृहे नागन्तव्यम् । यथा तेषां रत्नानां पुनरानयनं  
धनदपुत्राणां दुष्करं, तथा मनुष्यत्वमपि दुर्लभम् ॥

रत्नों को निकाल लिया । सबों को रत्न की प्राप्ति से अपार हर्ष हुआ ।  
जो दूसरे देश के बणिगजन व्यापार के लिये नगर में आये हुए थे  
उनके लिये वे सब रत्न उन लोगों ने बेच दिये और अपना पुंजी बना-  
कर फिर वे सब के सब व्यापार करने में लग गये । इनका व्यापार  
कार्य खूब चला । सब के सब कोटिध्वज हो गये । कालान्तर में धनद  
घर पर वापिस आया । उसने अपने रखे हुए रत्नों की ज्यों ही  
संभाल की वे उसको नहीं मिले—तब उसने वसुप्रिय पुत्र से पूछा ।  
किसने मेरे रत्नों को लिया है । वसुप्रिय ने कहा—सब भाईओं ने ।  
वसुप्रिय की बात सुनकर धनद को बहुत ही अधिक क्रोध आ गया ।  
गुस्से में आकर उसने कहा—तुम सब के सब लक्ष्मीरूपी कन्द को  
उखाड़ने के लिये कुहाली के समान हो अतः तुम्हारी अब भलाई  
इसी में है कि तुम सब मेरे घर से निकल जाओ । नहीं तो बेचे हुए  
रत्नों को वापिस लाओ । जब तक रत्न नहीं आवे तब तक याद

दुर्लभं थयो. भीज देशना वणिक्जने वेपार भाटे नगरमां आव्या हुता तेभने  
आ वी.कै.अ. अथां रत्नो वेथी दीधा अने पोतपोतानी पुत्र अनावी लधने दरेक  
जु वेपार करवा लाग्या. तेभने वेपार भूय आदयो. अथा करोउपती अनी  
गया कालान्तरे धनद पाछे घेर आव्यो, त्यारे तेणे पोते राभेलां रत्नानी जे  
ते स्थणे तपास करी तो ते तेने मळ्यां नही. त्यारे तेणे वसुप्रियने पूछ्युं, कैणे  
भारां रत्नाने लीधां छे ? वसुप्रिये कळ्युं, अथा लाठ अ्यां रत्नो वडेथी लीधां छे.  
वसुप्रियनी वात सांभणीने धनदने अेकदम क्रोध अडयो अने सुरसांमां आवीने  
तेणे कळ्युं, तमे अथा लक्ष्मीरूपी कंदने उपाउतारा कौहाणी जेवा छे. आथी  
तमे अथा भारा घरमांथी आदया जव अेमांज तमे सधणीनी ललाठ छे,  
नहितर वेथेलां रत्नाने पाछां लावो. ज्यां सुधी रत्नो पाछां नही आवे त्यां

अत्र संग्रह—( शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् )

तातेऽन्यत्र गते धराऽन्तरगतान्यादाय रत्नानि यद्,  
विक्रीतानि सुतैर्विदेशिवणिजां हस्तेषु पश्चात् ततः ।  
रत्नान्यानयतेति तातकथने, तत्प्रापणं दुष्करं,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ ५ ॥  
इति पञ्चमो रत्नदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठः स्वप्नदृष्टान्तः—

आसीत् पाटलिपुत्रनगरे मूलदेवनामकः क्षत्रियः । स स्वाभ्युदयार्थं देशान्तरं  
गन्तुं प्रस्थितः । मार्गं गच्छतस्तस्य कश्चित् कार्पटिकः सहचरोऽभवत् । मूलदेवः खलु

रखना घर में तुम्हारे लिये स्थान नहीं है । इस दृष्टान्त से यह समझना  
चाहिये कि जैसे उन विक्रीत रत्नों की प्राप्ति उन पुत्रों के लिये दुष्कर  
हुई उसी तरह से हाथ से निकला हुआ मनुष्य जन्म भी महा दुर्लभ है ।

इस दृष्टान्त का सार प्रदर्शक श्लोक इस प्रकार है—

तातेऽन्यत्रगते धरान्तरगतान्यादाय रत्नानि यत्,  
विक्रीतानि सुतैर्विदेशिवणिजां हस्तेषु पश्चात्ततः ।  
रत्नान्यानयतेति तातकथने तत्प्रापणं दुष्करम्,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥

यह पांचवां रत्नदृष्टान्त है ॥ ५ ॥

छठा स्वप्नदृष्टान्त इस प्रकार है—पाटलिपुत्र नगर में मूलदेव  
नाम का एक क्षत्रिय रहता था । वह किसी समय अपने भाग्य की

सुधी याद राप्ते के, तमारा भाटे घरमां केरि स्थान नथी. अटला भाटे आ  
दृष्टांतथी अम समजुं जेध अ के, वेथेला रत्नानी प्राप्ति ते पुत्रोने भाटे जेम दुष्कर  
थध तेम हाथमांथी निकली गयेल मनुष्यजन्म पषु क्करी प्राप्त थवे मडा दुर्लभ छे.

संग्रह श्लोक—तातेऽन्यत्रगते धरान्तरगतान्यादाय रत्नानि यत्,

विक्रीतानि सुतैर्विदेशिवणिजां हस्तेषु पश्चात्ततः ।  
रत्नान्यानयतेति तातकथने तत्प्रापणं दुष्करम्,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥

आ पांचमुं रत्नदृष्टांत छे. ॥ ५ ॥

छठुं स्वप्नदृष्टांत आ प्रकारथी छे—

पाटलीपुत्र नगरमां मूलदेव नामने अके क्षत्रिय रहेतो हतो. ते अके  
समय पोताना भाग्यनी वृद्धि भाटे धरथी थील देशमां जवा नीक ज्यो.

जिनवचनानुरागी धर्मे दृढमतिरासीत् । मूलदेवः कार्पटिकश्चोभौ काञ्चनपुरनगराद्बहिः सरसस्तटे रात्रौ तिष्ठतः । तत्र सुप्तेन मूलदेवेन रात्रिशेषे स्वप्नो दृष्टः— मुखे चन्द्रः प्रविष्ट इति । तदानीमेव तत्र सुप्तेन कार्पटिकेनापि तादृश एव स्वप्नो दृष्टः । स्वप्नदर्शनानन्तरं तौ विनिद्रौ जातौ । कार्पटिको वदति—स्वप्नावस्थायां मम मुखे चन्द्रः प्रविष्ट इति मया दृष्टः । मूलदेवः प्राह—अयं स्वप्नो रक्षणीयः, साधारण-जनानामग्रे नायं प्रकाशनीयः । स्वप्नोत्थितयोस्तयोर्मनः प्रसन्नमभवत् । सूर्योदयानन्तरमेव तौ काञ्चनपुरनगरे प्रविष्टौ ।

वृद्धि के लिये दूसरे देश को घर से चला । मार्ग में जाते २ एक कार्पटिक ने इसका साथ कर लिया । मूलदेव जिन वचन में श्रद्धालु था । चलते २ ये दोनों कांचनपुर नगर के बहार रहे हुए किसी एक तालाब के तीर पर रात्रि को ठहर गये । मूलदेव को रात्रि के शेषभाग में एक स्वप्न दिखाई दिया । जिसमें उसने देखा कि मेरे मुख में चन्द्रमा प्रविष्ट हो गया है । उसी समय कार्पटिक ने भी इसी तरह का स्वप्न देखा । स्वप्न देखने के बाद दोनों जग गये । आपस में बातचीत होने लगी कार्पटिक ने कहा आज मैंने स्वप्न में चन्द्रमा को अपने मुख में प्रवेश करता हुआ देखा है । मूलदेव ने उसका स्वप्न सुनकर उससे कहा यह स्वप्न गोपनीय है, हर एक आदमी के सामने इसको प्रकाशित नहीं करना । जब प्रातः काल हो चुका तब ये दोनों उठे उस समय वे बड़े ही प्रसन्न मालूम देते थे, क्यों कि इनका मन बड़ा प्रसन्न था । सूर्योदय के अनन्तर फिर इन दोनों ने कांचनपुर नगरमें प्रवेश किया ।

मार्गमां यावतां यावतां तेने अेक लुवाने। साथ थर्ग गये। मूलदेव लुन वयनमां भूम श्रद्धालु हुते। यावतां यावतां अन्ने कांचनपुर नगरनी अडारना अेक तणावना कांडा उपर रातना राकाई गया। मूलदेवने रात्रीना पाछला भागमां अेक स्वप्न देआयुं। जेमां तेले जेयुं के, जेणे तेना मोढाभां अंद्रमाअे आवीने प्रवेश कर्यो छे। आज सभये तेनी आणुमां सुतेला लुवाअे पणु तेहुं ज स्वप्न जेयुं। स्वप्न जेया पछी अन्ने जगी गया। आपसमां वातचीत करवा लाग्या लुवाअे कहुं, आजे मे स्वप्नमां अंद्रमाने मारा मोढाभां प्रवेश करतां जेयो मूलदेवे तेना स्वप्नातुं कथन सांलणीने कहुं के, आ स्वप्न आनगी राअवा जेपुं छे। हरेक आदमीनी सामे आने प्रकाशित न करवुं जेछेअे। न्यारे सवार थयुं त्यारे अन्ने उठया ते सभये तेअो घण्टा प्रसन्न मालुम पडता हुता। केमके, तेमनां मन घण्टां प्रसन्न हुतां। सूर्योदय पछी अन्ने जेणुअे कांचनपुर नगरमां प्रवेश कर्यो।

तत्र मूलदेवः स्वप्नपाठकस्य गृहे गत्वा विनयेन स्वप्नपाठकं पृच्छति—  
मुखे चन्द्रः प्रविष्ट इति स्वप्नो मया दृष्टः किमस्य फलं भविष्यति ? । तेनोक्तम्—  
प्रथमं मम कन्यकया सह विवाहमङ्गीकरोषि चेत्तदाऽस्य स्वप्नस्य फलं वक्ष्यामि ।  
मूलदेवेन तदङ्गीकृतम्, स स्वप्नपाठकः स्वपुत्रीं प्रदाय जामातृसम्बन्धं विधाय भोजनं  
कारयित्वा मूलदेवं वदति—इतः सप्तमे दिवसे भवानस्य नगरस्य राजा भविष्यति ।  
कार्पटिकस्तु स्वकीयस्वप्नवृत्तं तत्र नगरे साधारणलोकानां पुरः प्रकाशितवान्,

मूलदेव ने वहाँ स्वप्न के फल को कहने वाले विद्वान के घर की  
तलाश की । जब उसको इसका पता लग गया तो वह बड़े ही विनय  
के साथ स्वप्नपाठक के घर गया—और वहाँ विनीतभाव से उसने  
स्वप्नपाठक से पूछा—महानुभाव ! आज मैंने रात्रि के पिछले पहर में  
चन्द्रमा को मुख में प्रवेश करते हुवे देखा है इसका फल क्या होगा ।  
कृपाकर कहिये । मूलदेव की बात सुनकर स्वप्नपाठक ने कहा कि—  
यदि तुम पहिले मेरी कन्या के साथ अपना विवाह करना मंजूर करो  
तो मैं इसका फल तुम्हें बतला सकता हूँ । मूलदेव ने स्वप्नपाठक की  
बात अंगीकार करली । स्वप्नपाठक ने अपनी पुत्री का विवाह उसके  
साथ कर दिया । मूलदेव अब स्वप्नपाठक का जमाई बन गया । स्वप्न-  
पाठक ने जमाई का आदरसत्कार किया और भोजन करा कर कहा  
आज से सातवें दिन आप इस नगर के राजा हो जायेंगे ।

इधर कार्पटिक ने अपना स्वप्न नगर के साधारण से भी साधारण  
व्यक्ति को सुनाना शुरू कर दिया । लोकों ने भी उससे यही कहा कि

मूलदेवे त्यां स्वप्न इणना कडेवावाणा विद्वानना घरनी तपास करी,  
तेना पत्तो भेणवी स्वप्नपाठकने घेर गये अने त्यां विनीत लावथी तेणु स्वप्न-  
पाठकने पूछथुं, मडानुभाव ! आज में रात्रिना पाछला पडोरमां चंद्रमाने सुभमां  
प्रवेश करतो जेथो छे. तेनुं इण शुं डशे ? ते कृपाकरीने कडे. मूलदेवनी वात  
सांलणीने स्वप्नपाठके कहुं के, जे तमे पडेलां भारी कन्यानी साथे तमारा विवाह  
करवावुं मंजुर करे तोज हुं तमने तेनुं इण अतावुं. मूलदेवे स्वप्नपाठकनी वात  
स्वीकारी दीधी. स्वप्नपाठके पोतानी पुत्रीने विवाह तेनी साथे करी दीधी.  
मूलदेव डवे स्वप्नपाठकने जमाई अनी गये. स्वप्नपाठके जमाईने  
आदरसत्कार करी अने भोजन जमाईने कहुं के आजथी सातमे दिवसे तमे  
आ नगरना राज थशो. थीण आणु लुवाये पोतावुं स्वप्न नगरना साधा-  
रणथी साधारण भाणुसने पणु संलणावुं शर् करी दीधुं. दोडेअे तेने अेम

लोकैः कथितम्—शुक्रस्य रात्रौ स्वप्नो दृष्टः, अद्य शनिवासरः, तेन कारणेन घृतगुडसहितं रोटकं तैलं च मिलिष्यति। यत्र यत्र गृहस्थगृहे कार्पाटिको भिक्षार्थं गच्छति, तत्र तत्र शनिदिवसे प्रचुरं तादृशं रोटकं तैलं च तेन लब्धम्।

अथ पुत्ररहितस्तन्नगरनृपः स्वायुषः क्षयेण मृतः। तस्मिन् मृते सति मन्त्रिप्रभृतयस्तदा व्यवस्थां कृतवन्तः—इयं राजहस्तिनी यस्य गले पुष्पमालां दद्यात् स एवं राजा भविष्यति। इत्येवं निश्चिते सति हस्तिनी स्वशुण्डया पुष्पमालां नीत्वा मनुष्यपरिवारैः सह नगरे प्रतिमार्गं भ्रमन्ती वनं गता। सा तत्र वृक्षच्छायायामुपविष्टस्य मूलदेवस्य गले पुष्पमालां ददौ। ततो मनुष्यवृन्दैः सह राजमन्त्रिणो मूलदेवं

तुमने शुक्र की रात्रि में यह स्वप्न देखा है, आज शनिवार है, इस कारण तुमको घृत गुड सहित रोट एवं तैल मिलेगा। अब जिसर घरमें वह कार्पाटिक भिक्षा के लिये गया वहां २ उसको वही चीज खूब मिली।

जब छह दिन पूरे हुए उसी रात में उस नगर का राजा मर गया। राजा के कोई पुत्र नहीं था इसलिये जब वह मरा तब मन्त्रियों ने राज्य की व्यवस्था के लिये ऐसा विचार किया कि यह राजा की हथिनी जिसके गले में पुष्पमाला डाले वही राजा समझा जाय। इस प्रकार का विचार जब पूर्णरूप से निश्चित हो चुका तब हथिनी को अपनी सूंड में पुष्पमाला देकर छोड़ा। नगर के प्रत्येक मार्ग में वह घूमती रही। उसके साथ मनुष्यों का समुदाय भी बहुत था। घूमते २ वह जंगल में पहुँची। मूलदेव उस समय एक वृक्ष के नीचे छाया में बैठा हुआ था। हथिनी ने पहुँचते ही मूलदेव के गले में वह पुष्पमाला डाल दी।

कह्युं के, शुक्रनी रात्रीमां आ स्वप्न देभायुं छे आने शनीवार छे. अे कारणे तुमने धी गेण साथे रोटको अने तेल मणशे. डवे न्यां न्यां अे भिक्षा भाटे गये। त्यां त्यां तेने अे थीने पूष प्रभाषुमां मणी.

न्यारे छ द्विस पुरा थये अेक रात्रिअे ते नगरने राजा मरी गये. राजने केछ पुत्र न डतो. मंत्रीअेअे राजनी व्यवस्था भाटे अेवी भसलत करी के राजनी हाथणी नेना गणामां पुष्पमाणा पडेशवे तेने राजगादी सुप्रह करवी. आ प्रकारने न्यारे पूषुंइपथी निषुंथ देवाये। त्यारे हाथणीनी सुंढमां पुष्पमाणा आपीने तेने छुटी मुकी. नगरना हरेक मार्ग उपर ते इरती डती, तेनी पाछण भाषुसोने समूड पषु आह्ये आवतो डतो. धूमतां धूमतां ते जंगल तरइ वणी. मूलदेव आ वभते त्यां अेक वृक्षनी छायामां ठेठो डतो. हाथणीअे त्यां पडोअीने मूलदेवना

तामेव हस्तिनीं सादरं समारोह्य नगरं प्रवेशयन्ति ।

कार्पटिकस्तु—मनुष्यवृन्दैः सह हस्तिनीसमारूढं प्राप्तराज्यं मूलदेवं विलोक्य चन्द्रपानस्वप्नाराधनेन मूलदेवस्य राज्यलाभो जातः, इति बुद्ध्या स्वात्मानं निन्दयन् पश्चात्तापं करोति—धिगूमाम्, मन्दलोकानां पुस्त्यात् स्वप्नप्रकाशनेन मया स्वप्नो निष्फलीकृतः, तस्मात् पुनरहं तत्रैव सरस्तीरे शयिष्ये, तदा राज्यप्राप्तिकरं स्वप्नं पुनः पश्यामीति विचिन्त्य राज्यलक्ष्मीं काङ्क्षमाणः पुनः पुनस्तत्र स्वपिति ।

यथा कार्पटिकस्य तत्स्वप्नदर्शनं दुर्लभं, तथा मनुष्यदेहात् प्रच्युतस्य प्रमादिनः पुनर्मनुष्यत्वं दुर्लभम् ।

हथिनी ने पुष्पमाला मूलदेव के गले में डाली देखकर मन्त्रियों ने मूलदेव को उसी समय उस हथिनी पर बैठा कर बड़े आदर के साथ उनका नगर में प्रवेश कराया ।

कार्पटिक ने मनुष्यवृन्दों के साथ मूलदेव को हस्तिनी पर बैठा एवं वहाँ का राजा बना हुआ देखकर “ चन्द्रमापानरूप स्वप्न के आराधन के प्रभाव से मूलदेव को राज्य का लाभ हुआ है ” इस विचार से अधिक से अधिक पश्चात्ताप किया—मुझे अभाग्य को धिक्कार है जो मैंने सब लोकों के सामने अपने स्वप्न को प्रकाशित कर निष्फल बनाया । अब वह पुनः इस विचार से राजलक्ष्मी की प्राप्ति की आशा से उस स्थान पर बार २ सोने लगा कि कब वह चन्द्रस्वप्न मुझे दिखलाई दे और कब मुझे राज्य की प्राप्ति हो ।

इस दृष्टान्त से यही समझना चाहिये कि जिस प्रकार कार्पटिक का

गणामां पुष्पभाणा पडेरवी दीधी. हाथणीये भूणहेवने पुष्पभाणा पडेरवेदी जेध ने मंत्रीओये भूणहेवने ते समये ते हाथणी उपर जेसाडीने धणु आहर-सत्कारनी साथे तेने नगरप्रवेश कराये.

बुवाये मनुष्यना टोणानी वच्ये भूलहेवने हाथणीपर जेडेके तेमज त्याने राज भनेके जेध ने तेने लाग्युं के स्वप्नना आराधनना प्रभावथी भूलहेवने राज्यने लाब थये छे. आ विचारथी तेने धणु ज पश्चात्ताप थये अने मनमाने मनमां भउभउये के, मने अलागीने धिक्कार छे के, मे सधणा लोकेनी साथे मारा स्वप्नने प्रकाशीत करी निष्प्रण भनाव्युं. आ पछी जथां तेने स्वप्न आव्युं इतुं त्यां राजलक्ष्मीनी आशाथी राज रात्रीना सुध जवा लाग्ये. क्यारे स्वप्नमां मने अंद्र हेणाय अने क्यारे मने राज्यनी प्राप्ती थाय.

आ दृष्टान्तथी जे समजपुं जेध जे के, जे प्रकारे बुवाने ते स्वप्ननी



अत्र संग्रहश्लोकः—( शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् )  
 स्वप्ने कार्पटिकेन रात्रिविगमे चन्द्रं मुखान्तर्गतं,  
 दृष्ट्वा सर्वजनाग्रतो निगदितं लब्धं न राज्यं फलम् ।  
 स्वप्नस्तस्य पुनः स तत्र शयितस्यासीद् यथा दुर्लभः,  
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

॥ इति षष्ठः स्वप्नदृष्टान्तः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमश्चक्रदृष्टान्तः—चक्रोपलक्षितो दृष्टान्तः, राधावेधदृष्टान्त इत्यर्थः । स चैवम्—

मथुरानगर्यां जितशत्रुनामको भूपतिरासीत् । इन्दिरानाम्नी तस्य पुत्री चतुः-

उस स्वप्न की प्राप्ति पुनः दुर्लभ हुई उसी प्रकार इस मनुष्यजन्म से प्रच्युत प्रमादी जीव को पुनः मनुष्यभव की प्राप्ति दुर्लभ है ।

इस कथा का भावदर्शक श्लोक इस प्रकार है—

स्वप्ने कार्पटिकेन रात्रिविगमे चन्द्रं मुखान्तर्गतं,  
 दृष्ट्वा सर्वजनाग्रतो निगदितं लब्धं न राज्यं फलम् ।  
 स्वप्नस्तस्य पुनः स तत्र शयितस्यासीद्यथा दुर्लभः,  
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥  
 यह छद्वा स्वप्नदृष्टान्त है ॥ ६ ॥

सातवां चक्र दृष्टान्त इस प्रकार है—इसका दूसरा नाम राधावेध दृष्टान्त भी है—मथुरा नगरी में जितशत्रु नाम का राजा रहता था । इसकी एक कन्या थी, जिसका नाम इन्दिरा था । यह चौंसठ कलाओं

प्राप्ति दुर्लभ थी ते रीते आ मनुष्यजन्मभी प्रच्युत प्रमादीभवने इरी मनुष्यभवनी प्राप्ति दुर्लभ छे.

आ कथानो भावदर्शक श्लोक आ प्रकारनो छे.

स्वप्ने कार्पटिकेन रात्रिविगमे चन्द्रं मुखान्तर्गतं,  
 दृष्ट्वा सर्व जनाग्रतो निगदितं लब्धं न राज्यं फलम् ।  
 स्वप्नस्तस्य पुनः स तत्र शयितस्यासीद्यथा दुर्लभः,  
 संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

छद्मं स्वप्नदृष्टान्त छे.

सातमुं चक्रदृष्टान्त आ प्रकारनुं छे. आनुं थीणुं नाम राधावेध दृष्टान्त पद्यु छे. मथुरा नगरीमां शत्रु नामनो अेक राजा राज्य करतो હતો. તેને એક કન્યા હતી જેનું નામ ઈન્દિરા હતું. તે ચૌસઠ કલાઓમાં કુશળ હતી એક

षष्टिकलाभिज्ञा जाता । जितशत्रुनृपस्तस्याः विवाहयोग्यं वयो विलोक्य चिन्तयति  
 —यः खलु राजकुमारो धार्मिकः कलाकुशलः सकलनीतिशास्त्रनिपुणो राधावेधसाध-  
 नसमर्थः स्यात् स एव योग्यो वरः स्यादस्याः इति विचिन्त्य, तेन राज्ञा स्वयंवर-  
 मण्डपः कारितः । तत्संनिधौ चैकमुच्चतरः स्तम्भः स्थापितः । तस्य स्तम्भस्योर्ध्व-  
 भागेऽनुलोमेन चत्वारि, विलोमेन च चत्वारि लोहचक्राणि निवेशितानि । तेषां  
 चक्राणामुपरि राधानाम्ना प्रसिद्धा काष्ठमयी भ्रमन्ती पुत्तलिका स्थापिता । तत्रा-  
 धस्तात् तैलपूर्णकटाहश्च स्थापितः । यः खलु राधाया वामनयनं शरेण विध्येत् स  
 एवं मत्कन्यकाया इन्दिराया वरः स्यादिति जितशत्रुणा घोषणारूपेण प्रतिज्ञातम् ।

की ज्ञाता थी । जिस समय जितशत्रु ने विवाहयोग्य इसकी अवस्था देखी तो विचार किया कि—जो राजकुमार धार्मिक, कलाकुशल, सकलनीति शास्त्र में निष्णात एवं साथ में राधावेधसाधन में भी समर्थ हो वही इस कन्या का पति होने योग्य है । इस प्रकार विचार कर राजा ने स्वयंवरमंडप रचाया और उसके पास ही एक ओर एक बड़ा ऊँचा खंभा भी खड़ा करवाया । पश्चात् उसने उस खंभे के उर्ध्व-भाग में लोहे के चार चक्र अनुलोम—सुलटे फिरने वाले और चार चक्र विलोम—उलटे फिरनेवाले लगवा दिये । फिर उन चक्रों के भी ऊपर राधा नाम की एक काष्ठमयी घूमती हुई पुत्तली रखवा दी । खंभे के ठीक नीचे के भाग में तैल से भरा हुआ एक कडाह भी रखवा दिया । जब इस प्रकार से स्वयंवरमंडप की पूर्ण तयारी हो चुकी तब उसने यह घोषणारूप में अपनी प्रतिज्ञा प्रकट करवाई कि जो व्यक्ति राधा के वामनयन को बाण से बेध देगा वही मेरी कन्या इन्दिरा का पति

समये जितशत्रुने तेनी विवाहयोग्य वय नेधने विचार कथी के, ने राजकुमार धार्मिक, कलाकुशल, सकल नीतिशास्त्रमां निष्णात अने साथे साथ राधावेध साधनामां पञ्च समर्थ होय तेज आ कन्याने पति थवा योग्य छे. आ प्रकारने विचार करी राजने स्वयंवरमंडप रच्यो अने तेनी पास जे ओक भूषण लडा उंचो स्तंभ पञ्च उलो करायो. ओ पछी तेणे ते स्तंभना उर्ध्व भागमां लोढाना चार चक्र सीधां करवावाणां अने चार चक्र अवणां करवावाणां गोठवाण्यां पछी ते चक्रोनी उपर पञ्च राधा नामनी करती लाकडानी पुतणी गोठवाणी स्तंभना छेक नीचा लागमां तेलथी लरेदी ओक कडाह रभावी. कन्यारे आ प्रकारे स्वयंवरनी संपूर्ण तैयारी थई चुकी त्यारे तेणे ओक ढंढेरे

ततस्तेन नृपतिना निमन्त्रिता बहवो राजानो राजकुमाराश्च देशाद् देशान्तरादपि तत्र सौत्साहं समागताः । सर्वेषु राजसु राजकुमारेषु च मण्डपे समुपविष्टेषु जितशत्रुनृपस्तत्रागत्य वदति—यो राधापुत्तलिकाया वामनेत्रं शरेण विधेत् तस्मैमया कन्यका दातव्येति । राज्ञो वचः श्रुत्वा एकैकमुत्थितो नृपादिकस्तत्र राधावेधनाय शरं धनुषि संयोज्य प्राक्षिपत् । स च शरः कस्यचिदेकेन चक्रेणास्फाल्य भग्नः सन् भूमौ निपतितः, कस्यचिदेकं चक्रमतिक्रान्तः, कस्यचिद् द्वे, कस्यचित् त्रीणि, अन्येषां तु लक्ष्यादन्यत्रैव निर्गतः, कोऽपि राधावेधं साधयितुं नाशकत् ।

होगा । राजा ने इस प्रकार अपना भाव प्रकट कर सब राजाओं एवं राजपुत्रों के लिये स्वयंवरमंडप में आनेका आमंत्रण भेज दिया । राजा से आमंत्रित हो बड़े उत्साह से अनेक राजा और राजकुमार देश देशान्तर से उत्साहपूर्वक आये और स्वयंवरमंडप में बैठ गये । जब समस्त राजा और राजपुत्र अच्छी तरह अपने २ स्थानों पर बैठ गये तब राजा जितशत्रु वहाँ आये और कहने लगे कि जो इस भ्रमण करती हुई राधा पुत्तलिका के वामनेत्र को बाण से वेधित करेगा वही मेरी पुत्री का पति होगा—अपनी पुत्री मैं उसे ही परणाऊँगा । राजा के इस प्रकार वचन सुनकर वे राजा तथा राजकुमार आदि राधावेध साधने के लिये उठे और अपने २ धनुष पर बाण रख कर राधावेध साधने के अभिप्राय से बाण को छोड़ने लगे । इनमें से किसी का बाण एक चक्र से टकरा कर, किसी का दूसरे चक्र से टकरा कर और

अडार पाडी पोतानी भडेब्छा प्रगट करी के, जे व्यक्ति राधाना डाया नेत्रने आणुथी विंधशे ते भारी राजकन्या धन्डिरानो पति बनशे. राजये आ प्रकारे ढंढेश पीटावीने सधणा राजये. अने राजपुत्राने स्वयंवर मंडपमां आववानुं आमंत्रण भोकलाव्युं. राजनुं आमंत्रण भणतां धणु उत्साहथी अनेक राज अने राजकुमारो देश देशांतरथी उत्साहपूर्वक आव्या अने स्वयंवर मंडपमां गिराव्या. न्यारे सर्व राजये. अने राजपुत्रो सारी रीते पोते पोताना स्थान उपर भेसी गया त्यारे राज अतशत्रु त्यां आव्या अने कडेवा लाग्या के, जे केाछ व्यक्ति आ इरती राधा पुतणीना डाया नेत्रने आणुथी विंधशे तेने भारी पुत्री वरभाणा पडेरावशे अने तेनेज हुं भारी पुत्री परणुवीश. राजनुं आ प्रकारनुं वयन सांभणीने मंडपमां गिराअत थयेला राज तथा राजकुमार वगेरे राधावेध साधवा माटे उठ्या अने पोतपोताना धनुष्य उपर आणु यदावीने राधावेध साधवाना लक्ष्यथी आणुने छोडवा लाग्या. तेयेमांथी केाधनुं

अथेन्द्रपुराधीशस्येन्द्रदत्तनाम्नो नृपस्य पुत्रो जयन्तकुमारः सोत्साहमुत्तिष्ठति, लोकाः करतालीप्रदानपूर्वकमुपहसन्तो वदन्ति—अहो ! इमे वीरा धनुर्धरा यत्र न क्षमास्तत्रास्य कुमारस्य कीदृशं साहसम्?, किमनेन कर्तुं शक्यते?, एवं वदत्सु तन्नगर वास्तव्येषु मनोज्ञरूपलावण्यसंपन्नो जयन्तकुमारः स्तम्भस्य संनिधौ गत्वा धनुषि शरं संयोज्य, तैलपूर्णकटाहसंक्रान्तचक्रप्रतिबिम्बान्तरालमार्गेण राधावामनेत्रप्रतिबि-

किसीका तीसरे चक्र से टकरा कर टूट कर नीचे गिर पडा । लक्ष्यस्थान तक किसी का भी बाण नहीं पहुँच सका । किसी २ का बाण तो लक्ष्य से भी उचटकर आगे निकल गया । इस प्रकार राधावेध किसी के भी द्वारा साध्य नहीं हो सका । इतने में इन्द्रपुर का राजा इन्द्रदत्त का पुत्र जयन्तकुमार बड़े उत्साह से अपने स्थान से उठा । उसके उठते ही लोगों ने करतलध्वनि से पहिले तो उसकी हँसी करने लगे, फिर कहने लगे—देखो ये एक नवीन वीरपुरुष आये हैं, जहाँ ऐसे २ इन वीर धनुर्धारियों की भी नहीं चली वहाँ बिचारे इस कुमार की क्या चलेगी जो यह साहस दिखला ने को खडा हुआ है । लोग जब इस तरह से जयन्तकुमार की हँसी करने में तत्पर हो रहे थे कि कुमार सब के देखते २ ही उस स्तंभ के पास पहुँच गया । पहुँचते ही उसने पहिले अपने धनुष पर बाण चढाया । चढाकर फिर वह तैलपूर्ण-कटाह में पडे हुए चक्र के प्रतिबिम्ब को देखने लगा । देखते २ चक्र के

आणु पडेला चक्र साथे अथडाईने तो केईनुं भील चक्र साथे अथडाईने केईनुं त्रील चक्र साथे अथडाईने तुटीने नीचे पडी जतां पणु लक्ष्य स्थान सुधी केईनुं पणु आणु जई शक्युं नहीं. केई केईनां आणु तो लक्ष्यथी पणु उपर थईने आगण निकणी गयां. आ प्रकारे राधावेध केईनाथी पणु साध्य न थई शक्ये. अेटलाभां इंद्रपुर नगरना राजा इंद्रदत्तने पुत्र जयंतकुमार घणु उत्साहथी पोताना स्थानेथी उठ्ये तेना उठतांज दोकेअे तेनी डांसी उडाववा भांडीअने पछी कडेवा लाग्या-जुअे आ अेक नवीन वीरपुरुष आवेल छे. ज्यां भोटा भोटा वीर धनुर्धा-रीअेनुं पणु न आद्युं त्यां आ भियारा कुभारनुं शुं आलवानुं छे. जे आ साहस अताववा उठ्ये छे. दोके ज्यारे आवी रीते जयंत कुभारनी डांसी उडाववाभां तत्परअनी रह्या डता त्यारे कुभार अधाना जेतजेताभां ते स्तंभनी पास पडेअी गया अने पडेअतां ज तेणु पडेलां पोताना धनुष्य उपर आणु अडाव्युं अने पछी तेलथी लरेल कडाईभां पडता चक्रना प्रतिभिअने जेवा लाग्ये. जेतां जेतां चक्रना अंतरालमार्गथी पछी तेणु राधा पुतणीनी डथी

म्बनिवेशितदृष्टिरुर्ध्वमुष्टिर्भवति, तदा जयन्तकुमारस्य कलाचार्यस्तं पृच्छति-  
पश्यसि, किं दृष्टिगतं भवति? जयन्तकुमारः प्राह-केवलं पुत्तलिकाया वामनेत्रम्,  
न तु किंचिदन्यत् । तद्वचनं श्रुत्वा गुरुः परितुष्टो जातः । ततोऽसौ जयन्तकुमार-  
स्तैलपूर्णकटाहगतं प्रतिबिम्बितं वामनेत्रं पश्यन् निश्चयेन मनसा करं स्थिरीकृत्य  
हस्तलाघवं दर्शयन् सद्यः शरं व्यमुचत् । स शरश्चक्रान्तरालेन सवेगं निर्गच्छन्  
पुत्तलिकाया वामनेत्रकनीनिकामविध्यत् । ततस्तस्य करस्यैर्यलघुहस्तत्वादिकं वर्ण-  
यन्तो लोकाः प्रमुदिता जयजयध्वनिं प्रकुर्वन्ति । तदा जितशत्रुपुत्री इन्दिरा

अन्तराल मार्ग से फिर उसने राधा पुत्तली के वामनेत्र का प्रति-  
बिम्ब देखा । देखकर उसने फिर धनुष को चढाने के लिये हाथ की  
मुट्टी ऊँची की । इतने में उसके कालाचार्य बीच ही में उससे पूछा  
जयन्त ! तुम्हें इस समय क्या दिख रहा है ? । जयन्त ने कहा-गुरुमहा-  
राज ! मुझे इस समय पुत्तली के वामनेत्र सिवाय और कुछ नहीं  
दिख रहा है । जयन्तकुमार के वचन सुनकर कलाचार्य के हर्ष का  
ठिकाना नहीं रहा । जयन्त ने तैलपूर्ण कडाह में पड़े हुए पुत्तली के  
वामनेत्र के प्रतिबिम्ब को लक्ष्यकर शीघ्र ही निश्चल मन से हाथ को  
संभालते हुए उस ओर धनुष से बाण छोड़ दिया । छूटते ही बाण ने  
चक्र के अन्तराल से निकलते हुए उस पुत्तली के वामनेत्र की कनी-  
निका को वेध दिया । उपस्थित जनताने जयन्तके लक्ष्यवेधकी निपुणता  
की एवं हस्तलाघव की बहुत अधिक प्रशंसा की । सब के सब बड़े ही प्रसन्न  
हुए । जयन्त की चारों ओर से जयध्वनिपूर्वक बधाई होने लगी ।

आंभतुं प्रतिभिंभ ज्ये, जेधने तेष्ते धनुष्यने यडाववा भाटे हाथनी मुठी  
ढंथी करी. जे वपते तेना कणाचार्ये वयभां ज तेने पूछथुं न्यंत तमने  
आ सभये शुं हेभाय छे? न्यते कथुं. गुरुमहाराज मने आ सभये पुतणीनी  
डाणी आंभ सिवाय भीणुं कंथ हेभातुं नथी. न्यंतकुमारनां वयन सांभणीने  
कलाचार्ये हर्षित अन्या. न्यते तेक लरेक कडाहभां पडता पुतणीना डाणा  
नेत्रना प्रतिभिंभने लक्ष्य करी तरत ज निश्चल मनथी हाथने सांभाणीने  
ते तरक आणु छोडथुं आणु छुटतां ज यकना अंतरालथी नीकणीने  
पुतणीनी डाणी आंभनी डीडीनुं वेधन कथुं. लेणी थयेली जनताजे न्यंत-  
कुमारना लक्ष्यवेधनी प्रशंसा करी अने हाथकुशणतानी धणीज प्रशंसा करी.  
सधणा भूषज प्रसन्न थया. न्यंतनी आरे आणुथी न्यध्वनी पूर्वक वधाई थवा  
लागी. धन्दिरा पणु पोताना लाग्यने वभाणुती न्यंतना गणाभां वरभाणा

जयन्तकुमारस्य कण्ठे पुष्पमालां ददौ । यथा राधावेधो दुष्करस्तथा मनुष्यदेहा-  
च्च्युतस्य प्रमादिनः पुनर्मनुष्यत्वं दुर्लभमिति ।

अत्र संग्रहश्लोकः—( शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् )

राधायावदनादधः क्रमवशाच्चक्राणि चत्वार्यपि,  
भ्राम्यन्तीह विपर्ययेण खलु तद्वामाक्षिवेधो यथा ।  
प्राप्तो दुष्करतां नरेन्द्रतनयापाणिग्रहाकाक्षिणां,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

इति सप्तमश्चक्रदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

अथाष्टमः कूर्मदृष्टान्तः—

अगाधजलपरिपूर्णः सहस्रयोजनविस्तीर्णः सलिलजन्तुसंभृतः सुशोभितः

इन्दिरा भी अपने भाग्य की सराहना करती हुई जयन्त के गले में  
वरमाला डालकर अपने आपको धन्य मानन लगी । इस दृष्टान्त का भाव  
केवल इतना ही है कि जिस प्रकार राधावेध साधना दुष्कर कार्य  
है उसी प्रकार मनुष्य जन्मको हारा हुआ प्रमादी प्राणी को पुनः मनुष्य-  
जन्मकी प्राप्ति दुर्लभ है । इस दृष्टान्तका भावप्रदर्शकश्लोक इस प्रकार है—

राधाया वदनादधः क्रमवशात् चक्राणि चत्वार्यपि,  
भ्राम्यन्तीह विपर्ययेण खलु तद्वामाक्षिभेदो यथा ।  
जातो दुष्करतां नरेन्द्रतनयापाणिग्रहाकाक्षिणाम् ;  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

यह सातवा चक्रदृष्टान्त है ॥ ७ ॥

आठवाँ कूर्म ( कच्छप ) का दृष्टान्त इस प्रकार है—अगाधजल से

थडेशर्वीने पोते पोताने धन्य मानवा लागी. आ दृष्टान्तने लाव अटवो छे के,  
जे रीते राधावेध साधना अत्यंत कठीन अने दुष्कर छे अजे रीते मनुष्य  
जन्मने डारी गयेल प्रमादी प्राणीने पुनः मनुष्यजन्मनी प्राप्ति दुर्लभ छे.  
आ दृष्टान्तने भावप्रदर्शक श्लोक आ प्रकारने छे.

राधाया वदनादधः क्रमवशात् चक्राणि चत्वार्यपि,  
भ्राम्यन्तीह विपर्ययेण खलु तद् वामाक्षि भेदो यथा ।  
जातो दुष्करतां नरेन्द्रतनयापाणिग्रहाकाक्षिणाम्,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

आ सातवुं अकदृष्टान्त छे. ॥ ७ ॥

आठवुं कुर्म कायथा (कच्छप) नुं दृष्टान्त आ प्रकारनुं छे.—  
अगाध जलथी परिपूर्णुं अवेो अक (धरै) डोअ डतो, जेने विस्तार अक



एको हृद आसीत् । तदुदकं च परस्परसम्बद्धशैवालजालैश्छादितमभवत् । तत्र स्वापत्यसंततिसमन्वितः कच्छपः प्रतिवसति । अन्यदा कदाचित् तत्र सान्द्र शैवालमध्ये हृदोपान्तस्थितजम्बूवृष्टिपिनः सुपक्वफलसंपातेन शैवालतन्तु-विच्छेदाच्छिद्रमभवत्, तस्मिन्नेव समये तत्रस्थिताऽसौ कूर्मस्तत्कालजातच्छिद्रमाश्रित्य ग्रीवां बहिष्करोति । तदनु खल्वसौ निर्मलगगनमण्डलमण्डनायमान तारागणसमन्वितसुषमासम्पन्नशारदपूर्णशशाङ्कबिम्बमवलोक्य साश्चर्यं मनसि चिन्तयति—अहो ! किमिदं विलोक्यते । कीदृशमिदमदृष्टपूर्वं नयनानन्दजनकम् ? इत्येवं

परिपूर्ण एक द्रह था । जिसका विस्तार एक हजार योजन का था । इसमें अनेक जलचर जीव रहते थे । यह बड़ा सुन्दर था । इसका जल परस्पर संबद्ध शैवालसमूह से आच्छादित था । इसमें एक कच्छुआ अपने बच्चों के साथ रहता था । एक समय की बात है कि उस द्रह के किनारे पर जो जामुन के वृक्ष खड़े हुए थे उनके कुछ जम्बूफल उस शैवालजाल के ऊपर गिरे । उनके गिरने से उस शैवालजाल के बीच में शैवाल के तन्तुओं के टूट जाने से छिद्र हो गया । उसी समय कच्छुए ने जो उस शैवालजाल के नीचे रहता था उस छिद्र से अपनी गर्दन को बाहर निकाला । बाहर निकालते ही उसने स्वच्छ आकाश में आकाश का मण्डनस्वरूप एवं तारागणों से सुशोभित परमशोभासंपन्न ऐसे शारदकालीन पूर्णचन्द्रमा के बिम्ब को देखा । देखते ही उसे बड़ा भारी आश्चर्य हुआ । विचार ने लगा—अहा ! यह क्या दिखाई देता है ? मैंने तो आज तक ऐसा नेत्रों को अपूर्व आनन्द देने वाला

हजार योजन जेटदो होता । तेमां अनेक प्रकारना जलचर जीव रहेता होता । ते धरे पूषण सुंदर होता । तेनुं जल शेवाण समूहथी आच्छादित हुतुं जेमां जेक कायणे पोतानां अच्यंजो साथे रहेतो होता । जेक समयनी वात छे के, ते धराना कांठे जंभुडानां वृक्षे डारबंध ज्यं हुतां ते पैकीना जेक वृक्षे उपरथी थोडां नभ्युक्षण शेवाण उपर पडयां । आ रीते जंभुडाना पडवाथी जल उपर आच्छादित थयेली शेवाणमां छिद्र पडी गयां । आ वअते जे शेवाणनी नीचे रहेता कायणजे जंभुने लधने शेवाणमां पडेला छिद्रमांथी पोतानी डोक अडार काढी । पोतानी डोकने शेवाणमांथी अडार काढतां ज कायणजे स्वच्छ आकाशमां तारागणोथी सुशोभित परम शोभासंपन्न जेवा शरदकाणना पृथुं अद्रमाना प्रकाशने जेथे । जेतां ज तेने धरुं ज आश्चर्य थयुं अने ते मनोमन विचारवा लाग्ये के, अहा ! आ शुं हेभाध रहुं छे ? जे आण सुधी नेत्रोने आनंद देवावाणे आये

विचिन्त्य स कूर्मः स्वबन्धुनपि तद् दर्शयितुं जले निमज्ज यावता कालेन तैः सह पुनरायाति, तावत् पुनः समीरसंयोजितशैवालैस्तश्छिद्रमाच्छादितम् । यथा तच्चन्द्रमण्डलदर्शनं पुनस्तस्य कूर्मस्य दुर्लभं तथा मनुष्यदेहाच्च्युतस्य प्रमादिनः पुनर्मनुष्यत्वं दुर्लभमिति ।

अत्र संग्रहश्लोकः—( शार्दूलविक्रीडितवृत्तम् )

दृष्ट्वा कोऽपि हि कच्छपो हृदमुखे शैवालबन्धच्युते,  
पूर्णेन्दुं मुदितः कुटुम्बमिह तं द्रष्टुं समानीतवान् ।

पदार्थ नहीं देखा है, यह कितना सुन्दर है । इस प्रकार विचार कर उसने इस अपूर्व वस्तु को अपने परिवार को भी दिखाने का विचार किया, अतः वह पानी में डुबकी लगाकर अपने परिवार के पास पहुँचा और उनको साथ में लेकर ज्यों ही यह वहाँ आया कि वह शैवालजाल हवा के लगने से फिर से ज्यों का त्यों परस्पर में मिल गया । इस दृष्टान्त से हम को यह शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार हवा के झोकों के लगने से शैवाल के तन्तु आपस में मिल गये और छिद्र का अभाव हो गया, अतः उस अभागे कछुए को पुनः चंद्रदर्शन होना दुर्लभ हुआ, उसी प्रकार मनुष्यजन्म को हारे हुए प्रमादी प्राणी को पुनः मनुष्यजन्म मिलना महा दुर्लभ है । इस दृष्टान्त का भावसंग्रह श्लोक इस प्रकार है—

दृष्ट्वा कोऽपि हि कच्छपो हृदमुखे शैवालबन्धच्युते,  
पूर्णेन्दुं मुदितः कुटुम्बमिह तं द्रष्टुं समानीतवान् ।

अपूर्व पदार्थ कही पणु ज्येथो नथी..आ केवो सुंदर छे ? आ प्रकारनो विचार करी, अये अपूर्व वस्तु पोताना परिवारने पणु अताववानो विचार करी अने पाष्ठीमां दुषकी मारी ते पोताना परिवारनी पासे पडोन्थे. अने तेने साथे लघ ते उपशोक्त स्थणे पडोन्थे. त्यारे ते शेवाण के जेमां जंभुने लघ छिद्र पड्युं हुतुं. ते पवनने कारणे पुराध जतां शेवाणनी सपाटी इरीथी संधाध गध तेथी काचथा अने तेना परिवारने इरीथी चंद्रनां दर्शन न थयां. अये प्रकारे मनुष्य जन्मने डारी गथेल प्रमादी प्राष्ठीने मनुष्य जन्म भणवो भडा दुर्लभ छे.

आ दृष्टान्तनो भावसंग्रहक श्लोक आ प्रमाणे छे.—

दृष्ट्वा कोऽपि हि कच्छपो हृदमुखे शैवालबन्धच्युते,  
पूर्णेन्दुं मुदितः कुटुम्बमिह तं द्रष्टुं समानीतवान् ।

शैवाले मिलिते यथैव शशिनः संदर्शनं दुर्लभं,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

इत्यष्टमः कूर्मदृष्टान्तः ॥ ८ ॥

अथ नवमो युगदृष्टान्तः प्रोच्यते—

असंख्ययोजनविस्तीर्णो वलयाकारः सहस्रयोजनगम्भीरः स्वयंभूरमण-  
समुद्रोऽस्ति । तस्य प्राच्यां दिशि कोऽपि देवो युगं प्राक्षिपत् तस्य युगस्य कीलिकां  
पश्चिमायां दिशि । यथा तस्मिन् समुद्रे भ्राम्यन्त्यास्तस्याः कीलिकायास्तेन युगेन

शैवाले मिलिते यथैव शशिनः संदर्शनं दुर्लभम्,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

यह आठवा कूर्मदृष्टान्त हुआ ॥ ८ ॥

नौवां युगदृष्टान्त इस प्रकार है—यह दृष्टान्त कल्पना से संबंध  
रखता है । असंख्यात द्वीप और समुद्रों के बाद एक अन्तिम द्वीप  
और समुद्र है । अन्तिम समुद्र का असंख्यात योजन का विस्तार है ।  
गहराई भी इसकी एक हजार योजन की है । इसमें कल्पना करो कि  
कोई एक देव पूर्व दिशा की ओर एक जुआ-गाड़ी का अवयवविशेष  
जो बैलों के कर्न्धा पर रखा जाता है—डाल दे, और पश्चिम दिशा की  
ओर उसकी कीलिका-सेल-डाल दे । अब यह कीलिका उस समुद्र में  
उस दिशा से बहती हुई चली आवे और बहते हुए जुआ के साथ

शैवाले मिलिते यथैव शशिनः संदर्शनं दुर्लभम्,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

आ आठमुं कूर्मदृष्टान्तं छे. ॥ ८ ॥

नवमुं युगदृष्टान्तं आ प्रकारमुं छे—

आ दृष्टान्त कल्पनाथी संबंध राषे छे. असंख्यात द्वीप अने समुद्रो  
पछी ओक छेव्हेो द्वीप अने समुद्र छे. ओ छेव्हेो समुद्रनो विस्तार असंख्या  
योजननो छे. उं डार्ध पञ्च तेनी ओक ऊजर योजननी छे. आभां कल्पना करे  
के, केार्ध ओक देव पूर्वदिशा तरङ्ग ओक घोंसर्ङ् के ने गाडीभां अणवना कांध  
उपर राषवामां आवे छे ते नाभी हे अने पश्चिम दिशा तरङ्गथी ओ घोंस-  
रानी लाकडीओ नाभी हे. पश्चिम दिशाओ नापेली घोंसरानी ओ सांघेव  
वडेतां वडेतां चाली आवे अने ते घोंसरी साथे भणी अथ. ने रीते आ वात

સહ સંવદ્નમેવ દુર્લભં, તસ્ય યુગસ્ય છિદ્રે પુનઃ પ્રવેશસ્તુ તત્રાપિ દુર્લભસ્તથા મનુષ્યભવાત્પ્રચ્યુતસ્ય પ્રમાદિનઃ પુનર્મનુષ્યજન્મ દુર્લભમિતિ ।

અત્ર સંગ્રહઃ— ( શાર્દૂલવિક્રીડિતવૃત્તમ્ )

પ્રાચ્યબ્ધૌ યુગ-કીલિકા વિનિહિતા ક્ષિપ્તં યુગં પશ્ચિમે,  
યદ્વદ્ દુર્લભમેવ તત્ર વહતોઃ સંમીલનં તદ્વયોઃ ।  
શમ્યાયાસ્તુ પુનર્યુગસ્ય વિવરે તસ્યાઃ પ્રવેશો યથા,  
સંસારે ભ્રમતઃ પુનર્નરભવો જન્તોસ્તથા દુર્લભઃ ॥ ૧ ॥  
इति नवमो युगदृष्टान्तः ॥ ९ ॥

અથ દશમઃ પરમાણુદૃષ્ટાન્તઃ—

કેનાઽપિ ક્રીડાપરેણ દેવેન મણિક્વમયં સ્તમ્ભં વજ્રેણ ચૂર્ણીકૃત્ય પરમાણુ-

મિલ જાવે તો જિસ પ્રકાર યહ બાત બહુત દુર્લભ હૈ ઓર હસસે મી અધિક દુર્લભ યહ હૈ કિ વહ કીલિકા વહતે ૨ ઉસ જુએ કે છેદ મેં પ્રવિષ્ટ હો જાવે યહ બાત દુર્લભ હૈ । હસી તરહ મનુષ્ય ભવ સે પ્રચ્યુત પ્રમાદી જીવ કો પુનઃ મનુષ્યભવ કી પ્રાપ્તિ હોના દુર્લભ હૈ । હસકા ભાવપ્રદર્શકશ્લોક હસ પ્રકાર હૈ—

પ્રાચ્યબ્ધૌ યુગકીલિકા વિનિહિતા ક્ષિપ્તં યુગં પશ્ચિમે,  
યદ્વદ્દુર્લભમેવ તત્ર વહતોઃ સંમીલનં તદ્વયોઃ ।  
શમ્યાયાસ્તુ પુનર્યુગસ્ય વિવરે તસ્યાઃ પ્રવેશો યથા,  
સંસારે ભ્રમતઃ પુનર્નરભવો જન્તોસ્તથા દુર્લભઃ ॥ ૧ ॥  
यह नौवां युगदृष्टान्त है ॥ ९ ॥

ઘણી જ દુર્લભ છે અને તેનાથી પણ અધિક દુર્લભ તો એ છે કે, ધોંસરાની તે સાંખેલો વહેતાં વહેતાં તે ધોંસરાના વીંધમાં જોડાઈ જાય એ વાત દુર્લભ છે. આ રીતે મનુષ્યભવથી પ્રચ્યુત પ્રમાદી જીવને ફરીથી મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ થવી દુર્લભ છે.

તેના ભાવને દર્શાવતો શ્લોક આ પ્રકારનો છે—

પ્રાચ્યબ્ધૌ યુગકીલિકા વિનિહિતા ક્ષિપ્તં યુગં પશ્ચિમે,  
યદ્વદ્દુર્લભમેવ તત્ર વહતોઃ સંમીલનં તદ્વયોઃ ।  
શમ્યાયાસ્તુ પુનર્યુગસ્ય વિવરે તસ્યાઃ પ્રવેશો યથા,  
સંસારે ભ્રમતઃ પુનર્નરભવો જન્તોસ્તથા દુર્લભઃ ॥ ૧ ॥  
આ નવમું યુગદૃષ્ટાંત છે. ॥ ૯ ॥

तुल्यं तच्चूर्णं नलिकान्तर्निधाय मेरुशिखरं समारूढ्य फूत्कृतसमीरणैस्तच्चूर्णं सकलं सर्वतः समुद्धायितम् ।

अथ तेन देवेन विक्षिप्तास्ते परमाणवः प्रचण्डपवनोद्भूताः सर्वासु दिक्षु दूरं गता एकैकशो विभिन्नाः पतिताः ।

यथा तान् परमाणून् सर्वतः संचित्य तैः पुनः स्तम्भनिष्पादनं लोकस्य दुष्करं, तथा मनुष्यभवात् प्रच्युतस्य प्रमादिनः प्राणिनो मनुष्यजन्म दुर्लभमिति ॥

दसवां परमाणु दृष्टान्त इस प्रकार है—यह दृष्टान्त भी कल्पना से संबंध रखने वाला है—जैसे क्रीडावश किसी देव ने माणिक्यनिर्मित एक स्तम्भ को वज्र के प्रहार से तोड़ा । पश्चात् उसे इतना पीसा कि उसका चूरा चूरा हो गया । चूर्ण जैसा जब वह बन चुका तब उस चूर्ण को उसने एक नलिका में भरा और सुमेरु पर्वत के शिखर पर खड़े होकर उसको सब तरफ फुंक से उड़ा दिया । वे सब के सब उस स्तम्भके परमाणु जो उस देव ने अपनी फुंक से इधर उधर उड़ा दिये हैं और वायुके प्रबल झोंको ने उनकोप्रत्येक दिशा में ले जाकर और भी दूर फेंक दिये । उन सब के सब परमाणुओं को एकत्रित कर के फिर से जैसे उस स्तम्भ का उसी रूप से निर्माण करना दुष्कर है—उसी तरह मनुष्यभव से प्रच्युत जीव को मनुष्यभवकी पुनः प्राप्ति होना दुर्लभ है ।

दसमुं परमाणुदृष्टान्त आ प्रकारनुं छे.

आ दृष्टान्त पञ्च कल्पनाथी संबंध राखवावाणुं छे. जेम रमतना तोरथी केाई देवे माणिक्यथी लरेला जेवा जेक स्तंभने वज्रना प्रहारथी तोडी नाथ्यो. पछी तेने जेटवे। पिरथी के, तेना चूरैचूरा थर्छ गया. चूर्ण जेवा ज्यारे ते थर्छ गथे। त्यारे ते लुकाने तेजे जेक नणीमां लथीं जने सुमेरुपर्वतना शिखर उपर ठेला रहीने जारे आणु ते लुकाने कुंकथी उडाडी दीधा. जे स्तंभना लुका ज्ये भनेला सधणा परमाणुज्जाने ते देवे पोतानी कुंकथी जारे केर उडावी दीधा जने वायुजे प्रभण वेगथी हरैक दिशामां लर्छ जर्धने दूर ईंकी दीधा. हर हर ज्यो त्यां ईंकाई गथेला जे सधणा परमाणुज्जाने जेकत्रित करी करीथी स्तंभनुं निर्माणु करवुं दुष्कर छे तेवीज रीते आ मनुष्यभवने डारी जेठेला जेव करी मनुष्य जन्मनी प्राप्ति करी शकते। नथी.

अत्र संग्रहः—( शादुलविक्रीडितवृत्तम् )

चूर्णीकृत्य पराक्रमान्मणिमयं स्तम्भं सुरः क्रीडया,  
मेरौ सन्नलिकासमीरवशतः क्षिप्त्वा रजो दिक्षु तत् ।  
स्तम्भस्तैः परमाणुभिः सुमिलितैर्लोके यथा दुष्करः,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

॥ इति दशमः परमाणुदृष्टान्तः ॥ १० ॥

तत्र मानुषत्वं कथं दुर्लभं तद्दर्शयितुमाह—

मूलम्—समावन्ना णं संसारे, नाणागोत्रासु जाईसु ।  
कम्मां नार्णाविहा कंट्टु, पुंढो विस्संभयां पया ॥२॥

छाया—समापन्नाः खलु संसारे, नानागोत्रासु जातिषु ।

कर्माणि नानाविधानि कृत्वा, पृथक् विश्वभृतः प्रजाः ॥ २ ॥

टीका—‘ समावन्ना ण ’ इत्यादि ।

‘ ण ’ इति वाक्यालङ्कारे । संसारे नानागोत्रासु=बहुविधकुलसंपन्नासु, जातिषु

इसका भावप्रदर्शक श्लोक इस प्रकार है—

चूर्णीकृत्य पराक्रमान्मणिमयं स्तम्भं सुरः क्रीडया,  
मेरौ सन्नलिका समीरवशतः क्षिप्त्वा रजो दिक्षु तत् ।  
स्तम्भस्तैः परमाणुभिः सुमिलितैर्लोके यथा दुष्करः,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

यह दसवां परमाणुदृष्टान्त है ॥ १० ॥

मनुष्यभव दुर्लभ कैसे है ? इस बात को सूत्रकार प्रकट करते हैं—  
“ समावन्नाण ”—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—गाथा में “ ण ” यह शब्द वाक्यालङ्कार में प्रयुक्त

तेने भाव दर्शावाते श्लोक आ प्रकारने छे.

चूर्णीकृत्य पराक्रमान्मणिमयं स्तम्भं सुरः क्रीडया,  
मेरौ सन्नलिका समीरवशतः क्षिप्त्वा रजो दिक्षु तत् ।  
स्तम्भस्तैः परमाणुभिः सुमिलितैर्लोके यथा दुष्करः,  
संसारे भ्रमतः पुनर्नरभवो जन्तोस्तथा दुर्लभः ॥ १ ॥

आ इसमुं परमाणुदृष्टान्त छे. ॥ १० ॥

मनुष्यभव दुर्लभ कैसे छे, आ बातने सूत्रकार प्रकट करे छे—

‘ समावन्नाण ’ इत्यादि—

अन्वयार्थ—गाथाभां “ ण ” आ शब्द वाक्यालङ्कारभां प्रयुक्त थये।



=एकेन्द्रियादिषु समापन्नाः=प्राप्ताः, प्रजाः=जन्तवः, नानाविधानि=अनेकप्रकाराणि कर्माणि=ज्ञानावरणीयादीनि, कृत्वा पृथक्=एकैकशः लोकाकाशस्यैकैकप्रदेशे एकैक-योनिसमुत्पन्नतया सूक्ष्मपृथिव्यादिस्थावरकायैर्लोकाकाशस्य संभृतत्वात् विश्व-भृतः=सर्वस्थानपूरकाः भवन्ति । उक्तञ्च—

नत्थि किर सो पएसो, लोए वालग्गकोडिमेत्तो वि ।

जम्मणमरणावाहा, जत्थ जिएहिं न संपत्ता ॥ १ ॥

छाया—नास्ति किल स प्रदेशो, लोके बालाग्रकोटिमात्रोऽपि ।

जन्ममरणाबाधा, यत्र जीवैर्न संप्राप्ता ॥ १ ॥

हुआ है । ( संसारे—संसारे ) संसार में ( नाणागोत्तासु—नानागोत्रासु ) अनेक प्रकार के कुलों से संपन्न ( जाइसु—जातिषु ) एकेन्द्रियादिक योनियों में ( समावन्ना—समापन्नाः ) उत्पन्न हुए ( पया—प्रजाः ) ये जीव ( नाणाविहा—नानाविधानि ) अनेक प्रकारके ( कम्मा कट्टु—कर्माणि कृत्वा ) ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का बंध कर ( पुढो—पृथक् ) लोकाकाश के एक प्रदेश में एक एक योनि में उत्पन्न होकर ( विस्संभया—विश्वभृतः ) उस के समस्त स्थानों को भर दिया है । उक्तञ्च—

नत्थि किर सो पएसो, लोए बालग्गकोडिमेत्तो वि ।

जम्मणमरणावाहा, जत्थ जिएहिं न संपत्ता ॥ १ ॥

छाया—नास्ति किल स प्रदेशो, लोके बालाग्रकोटिमात्रोऽपि

जन्ममरणाबाधा, यत्र जीवैर्न सम्प्राप्ता ॥ १ ॥

लोकाकाश का ऐसा कोई सा भी प्रदेश नहीं बचा जा इस जीव

छे. संसारे संसारमां नाणागोत्तासु—नानागोत्रासु अनेक प्रकारना कुणोत्थी संपन्न जाइसु-जातिषु ऐकेन्द्रियादिक योनिओमां समावन्ना समापन्ना उत्पन्न थयेल पया—प्रजाः ये एव नाणाविहा—नानाविधानि अनेक प्रकारना कम्माकट्टु—कर्माणि—कृत्वा ज्ञानावरणीयादिक कर्मोना अंध करी पुढो—पृथक् लोकाकाशना प्रत्येक प्रदेशमां ऐकेक योनीमां उत्पन्न थई विस्संभया विश्वभृतः येना समस्त स्थानोने बरी दीधेल छे. कहुं पथु छे—

नत्थि किर सो पएसो लोए वालग्गकोडिमेत्तो वि ।

जम्मणमरणावाहा जत्थ जिएहिं न संपत्ता ॥ १ ॥

छाया—नास्ति किल स प्रदेशो, लोके बालाग्रकोटि मात्रोऽपि ।

जन्ममरणाबाधा, यत्र जीवैर्न सम्प्राप्ता ॥ १ ॥

लोकाकाशमां एवो केई पथु प्रदेश नथी अत्थो के, ने प्रदेश एवे पोताना

उ० ७९

अयं भावः—मानुषं जन्म लब्ध्वाऽपि प्रमादकृतदुष्कर्मप्रभावादेकेन्द्रियादि-  
जातिप्राप्त्या चक्रवर्तिपायसादिवत् पुनर्मानुषत्वं दुर्लभमिति ॥ २ ॥

एतदेव स्पष्टयति—

मूलम्—एगया देवलोएसु, नरएसुवि एगया ।

एगया आसुरं कायं, अर्हा कम्मोहिं गच्छइ ॥ ३ ॥

ने अपने जन्म मरण से न भर दिया हो। जीव ने सूक्ष्मपृथिवी-  
कायादि स्थावर काय में उत्पन्न होकर लोकाकाश का प्रत्येक प्रदेश को  
तैल से तिल की तरह भर दिया है। इसलिये मनुष्यजन्म पाकर भी  
जो प्रमादी होकर दुष्कर्मों का उपार्जन करते हैं वे उनके प्रभाव से  
एकेन्द्रियादिक जाति की प्राप्ति से चक्रवर्ती के पायस आदि की तरह  
मनुष्यभव की प्राप्ति को दुर्लभ बनालेते हैं—

भावार्थ—मनुष्यभव पाकर भी प्राणी का कर्तव्य है कि वह  
प्रमादी नहीं बने। प्रमाद के कारण ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का बंध  
होने से इस जीव का एकेन्द्रियादिक योनियों में जन्म होता है।  
इसमें इसका अनन्तकाल निकल जाता है। अतः पुनः मनुष्यभव की  
प्राप्ति दुर्लभ बन जाती है। तात्पर्य कहने का यह है कि मनुष्यभव  
सार्थक करने का यही उपाय है कि प्रमादी न बना जाय ॥ २ ॥

जन्मभरणीथी न भरी हीधो डोय. एवे सूक्ष्म पृथ्वी कायादि स्थावर कायमां  
उत्पन्न थर्ध थर्धने दोकाकाशना प्रत्येक प्रदेशने तलना तेलनी भाइक भरी हीधेव  
छे. आ भाटे मनुष्यजन्म भणवा छतां पणु जे प्रमादी अनी दुष्कर्मोनुं उपाज्जन  
करे छे, ते अेना प्रभावथी अेकेन्द्रियादिक जातीनी प्राप्तिथी चक्रवर्तीना दुधपाक  
वगेरेनी भाइक इरी मनुष्यभवनी प्राप्तिने दुर्लभ अनावे छे.

भावार्थ—मनुष्यभव भणवने पणु प्राणीनुं कर्तव्य छे के, ते प्रमादी न  
अने. प्रमादना कारणे ज्ञानावरणीयादिक कर्मोना अंध थवाथी आ एवने अेके-  
न्द्रियादिक जेवी येनीअोमां जन्म थाय छे. तेमां तेना अनंत काण नीकणी  
अय छे. आथी मनुष्यभवनी प्राप्ति दुर्लभ अनी अय छे. तात्पर्य कडेवानुं  
अे छे के, मनुष्यभव सार्थक करवाने अेक मात्र उपाय अे छे के, आपणु  
प्रमादी न अनी अने अ्यां सुधी मुक्तिनी प्राप्ति न थाय त्यां सुधी मनुष्यभवनी ज  
इरी इरी प्राप्ति थती रडे अेवा प्रयत्न तो करवाे अेअे. ॥ २ ॥

छाया—एकदा देवलोकेषु, नरकेष्वपि एकदा ।

एकदा आसुरं कायं, यथा कर्मभिः गच्छति ॥ ३ ॥

टीका—‘एगया’ इत्यादि ।

जीवः, एकदा=एकस्मिन् काले शुभकर्मानुभवकाले देवलोकेषु=सौधर्मादिषु यथाकर्मभिः=तद्रत्यनुरूपैश्चेष्टितैः सरागसंयमदेशविरत्यकामनिर्जराबालतपःकर्मभिः गच्छति । एकदा=अशुभकर्मोदयकाले, नरकेषु=रत्नप्रभादिषु यथाकर्मभिः=महारम्भमहापरिग्रहपञ्चेन्द्रियवधकुणपाहारैर्गच्छति । एकदा आसुरम्—असुरसम्बन्धिनं, कायं=निकायम् असुरकुमारभावमित्यर्थः, यथा कर्मभिः=सरागसंयमादिभिः, गच्छति=प्राप्नोति । उपलक्षणत्वाज्ज्योतिर्व्यन्तरयोरपि गच्छतीति बोध्यम् ॥ ३ ॥

उपरोक्त कथन को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—‘एगया’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—यह जीव (एगया—एकदा) कभी तो शुभ कर्म के अनुभवन काल में (देवलोकेषु—देवलोकेषु) सौधर्म आदि देव लोक में (अहाकस्मेहिं—यथाकर्मभिः) सरागसंयम, देशविरति, अकामनिर्जरा एवं बालतप आदिरूप उस गति के कर्म के कारणों से (गच्छइ—गच्छति) जन्म लेता है । (एगया—एकदा) कभी अशुभकर्म के अनुभवनकाल में (नरकेषु—नरकेषु) रत्नप्रभा आदिक नरकों में (अहाकस्मेहिं—यथाकर्मभिः) महा आरंभ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रियवध कुणप (मांस) आहार आदि करने से (गच्छइ—गच्छति) जाता है । (एगया—एकदा)

उपरोक्त कथनने वधारे स्पष्ट करतां कहे छे—

“एगया” इत्यादि.

अन्वयार्थ—आ ७३ एगया—एकदा कथारेक तो शुभकर्मना अनुभव काणमां देवलोकेषु—देवलोकेषु सौधर्म आदि देवलोकेषुमां अहाकस्मेहिं—यथाकर्मभिः सराग संयम, देशविरति, अकाम निर्जरा, अने बालतप आदिइप ये गतीनां कर्मोनां कारणेथी गच्छइ—गच्छति जन्म ले छे. एगया—एकदा कथारेक अशुभ कर्मना उदयमां नरकेषु रत्नप्रभा आदिक नरकोमां अहाकस्मेहिं—यथाकर्मभिः आरंभ, महाआरंभ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रियवध कुणप (मांस) आहार आदि करवाथी

(१) “चउहिं ठाणेहिं जीवा देवाउयत्ताए कम्मं पगरेंति, तं जहा—सराग संजमेणं, संजमासंजमेणं, बालतवोकस्मेणं, अकामणिज्जराए” (स्था. स्था. ४ उ. ४ एवं औपातिक सूत्रेऽपि )

(२) “चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मंपकरेंति, तं जहा—महारंभाए महापरिगाहाए, पंचिन्द्रियवहेणं, कुणिमाहारेणं (स्था० स्था० ४ उ ४. एवम् औपातिकसूत्रेऽपि )

મૂલમ્—एगया खत्तिओ होइ, तओ चंडाल बुक्कसो ।  
तओ कीड पंगो अं, तओ कुंथु पिपीलियाँ ॥४॥

छाया—एकदा क्षत्रियो भवति, ततश्चण्डालः बुक्सः ।

ततः कीटः पतङ्गश्च, ततः कुन्थुः पिपीलिका ॥ ४ ॥

ટીકા—‘एगया खत्तिओ’ इत्यादि ।

एकदा—एकस्मिन् काले जीवः क्षत्रियः=राजा भवति, ततः=तदनन्तरं स  
चाण्डालो भवति, ततश्च बुक्सो भवति । बुक्सः=वर्णसंकरजातिविशेषः । ब्राह्म-

कभी ( आसुरं कायं—आसुरं कायम् ) असुरकुमार आदि पर्यायो में  
सराग संयम आदि कर्मों के करने से जन्म धारण करता है ।

भावार्थ—इस जीव का किसी खास योनि में स्थिर रूप से रहना  
निश्चित नहीं है । अपने २ कर्तव्यों के अनुसार भिन्न २ योनियों में  
जीव को जन्ममरण करना पड़ता है । यही बात सूत्रकार ने इस गाथा  
द्वारा प्रदर्शित की है । सरागसंयम आदि जैसा शुभ क्रियाओं की  
आराधना करने से यह जीव कभी तो सौधर्म आदि देवलोक में उत्पन्न  
हो जाता है, कभी भवनवासी व्यन्तर आदि देवों में जन्म ले लेता है ।  
कभी महारंभ महापरिग्रहादिक से उत्पन्न हुए अशुभ अध्यवसाय  
द्वारा नरकों में जन्म लेता है ॥ ३ ॥

‘एगया खत्तिओ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—यह जीव ( एगया—एकदा ) कभी ( खत्तिओ—क्षत्रियः )  
राजा ( होइ—भवति ) हो जाता है ( तओ—ततः ) कभी ( चंडालबुक्सो

ગચ્છઈ-ગચ્છતિ ભય છે. એગયા-એકદા કયારેક આસુરં કાયં-આસુરં કાયમ્ અસુર-  
કુમાર આદિ પર્યાયોમાં સરાગ સંયમ આદિ કર્મોના કરવાથી જન્મ ધારણ કરે છે.

ભાવાર્થ—આ જીવનું કોઈ ખાસ યોનીમાં સ્થિરરૂપથી રહેવું નિશ્ચિત નથી.  
પોતપોતાના કર્તવ્યો અનુસાર જુદી જુદી યોનીઓમાં જીવને જન્મ મરણ  
કરવું પડે છે. આ વાત સૂત્રકારે આ ગાથા દ્વારા પ્રદર્શિત કરેલ છે. સરાગ  
સંયમ આદિ જેવી શુભ ક્રિયાની આરાધના કરવાથી આ જીવ કયારેક તે  
સૌધર્મ આદિ દેવલોકમાં ઉત્પન્ન થાય છે, કયારેક ભવનવાસી વ્યન્તર દેવોમાં  
જન્મ લે છે, કયારેક મહાઆરંભ, મહાપરિગ્રહ આદિકથી ઉત્પન્ન થયેલા  
અશુભ અધ્યવસાય દ્વારા નર્કોમાં જન્મ લે છે.

एगया खत्तिओ—इत्यादि.

अन्वयार्थ—આ જીવ એગયા-એકદા કયારેક ખત્તિઓ-ક્ષત્રિયઃ રાજા હોઈ-  
ભવતિ થાય છે, તઓ-તતઃ કયારેક ચંડાલબુક્કસો-ચંડાલઃ બુક્કસઃ ચંડાલ થાય છે,

णेन शूद्रायां जातो निषादः, ब्राह्मणे नैव वैश्यायां जातश्चाम्बष्ठ इत्युच्यते, तत्र निषादेनाम्बष्ठ्यां जातस्तु बुक्स उच्यते । इह च क्षत्रिय-चाण्डाल-बुक्स-पदानामु-पलक्षणत्वाद् यथाक्रमं उच्चनीचसंकीर्णजातयो ग्राह्याः । ततः कीटः=द्वीन्द्रियजन्तु-विशेषः भवति, च=पुनः पतङ्गः=शलभश्चतुरिन्द्रियजन्तुविशेषः भवति, ततश्च कुन्थुर्भवति, कुन्थुः=त्रीन्द्रियजन्तुविशेषः, यः प्रचलनादेव दृश्यो भवति, ततः पिपी-लिकाः=कीटिका 'चीटी' इति भाषाप्रसिद्धाः, त्रीन्द्रियजातिविशेषः भवति । अत्र कीटादयः शब्दाः सकलतिर्यग्भेदोपलक्षकाः ॥ ४ ॥

-चाण्डालः बोकसः) चाण्डाल होता है कभी बुक्स-वर्णसंकर रूप से उत्पन्न होता है ब्राह्मण के समागम से जो शूद्र स्त्री की संतान होती है उसे निषाद कहते हैं । ब्राह्मण के समागम से वैश्य की स्त्री के जो संतान होती है उसे अम्बष्ठ कहते हैं । निषाद के द्वारा जो अम्बष्ठा स्त्री के संतान-पुत्र होता है उसका नाम बुक्स कहा गया है । गाथा में रहे हुए क्षत्रिय चाण्डाल एवं बुक्स ये पद उपलक्षक है अतः इनसे यथाक्रम उच्च नीच संकीर्ण जातियों का ग्रहण हो जाता है ( तओ-ततः ) कभी यह जीव ( कीडपयंगो य-कीटः पतंगश्च ) कीट-द्वीन्द्रिया-दिक जन्तु विशेष, एवं पतंग - शलभ चतुरिन्द्रियादिकजन्तुविशेष हो जाता है ( तओ-ततः ) कभी ( कुन्थु पिपीलिया-कुन्थुः पिपीलिका ) कुन्थु-तेन्द्रिय जीव जो चलने से ही दिखता है और कभी पिपीलिका-चीटी हो जाता है । अर्थात् कभी यह जीव द्विन्द्रियजीवों में जन्म लेता है

क्यारेक वर्णसंकर इपथी उत्पन्न थाय छे. ब्राह्मणना समागमथी शूद्र स्त्रीने जे संतान थाय छे तेने निषाद कडेवामां आवे छे. ब्राह्मणना समागमथी वैश्य स्त्रीने जे संतान थाय तेने अम्बष्ठ कडे छे. निषादथी जे अम्बष्ठा स्त्रीने संतान-पुत्र थाय छे तेनुं नाम बुक्स कडेवामां आवे छे. गाथामां रहैला क्षत्रिय चाण्डाल अने बुक्स अने पद उपलक्षक छे. अर्था आनाथी यथाक्रम उच्च नीच संकीर्ण जातिओनुं ग्रहण थय जय छे. तओ-ततः क्यारेक आ एव कीडपयंगो य-कीटः पतंगश्च कीट द्विन्द्रियादिक जन्तु विशेष अने पतंग-शलभ चार धिन्द्रियवाणा जन्तु विशेष तरीके जन्म पाये छे. तओ-ततः क्यारेक कुन्थुपिपीलीया-कुन्थुः पिपीलिकाः कुन्थु-त्रय धिन्द्रिय एव जे आलवाथी ज हेभाय छे ते कुन्थुवा तरीके के कीडी तरीके जन्म पाये छे. अर्थात् आ एव क्यारेक अधिन्द्रियमां, त्रय धिन्द्रियमां अने क्यारेक चार धिन्द्रियएवामां जन्म बे छे.

मूलम्—एवमावृट्जोणिसु, पाणिणो कम्मकिल्विसा ।

न निविज्जंति संसारे, संव्वट्ठेसु व खत्तिंया ॥५॥

छाया—एवम् आवर्तयोनिषु, प्राणिनः कर्मकिल्विषाः ।

न निविद्यन्ते संसारे, सर्वार्थेषु इव क्षत्रियाः ॥ ५ ॥

टीका—‘ एवम् ’ इत्यादि ।

कर्मकिल्विषाः=कर्मभिर्मलिनाः प्राणिनः संसारे=भवे एवम्=अमुना प्रकारेण, आवर्तयोनिषु=आवर्तेन-पुनःपुनःपरिभ्रमणेन स्पृष्टा योनयः आवर्तयोनयस्तासु चतुरशीतिलक्षप्रकारासु, तत्र पृथिव्यप्तेजोवायुकायेषु प्रत्येकं सप्त सप्त लक्षाः, दश लक्षाः प्रत्येकवनस्पतिषु, निगोदजीवेषु च चतुर्दश लक्षाः, द्वि-त्रि-चतुरिन्द्रियेषु प्रत्येकं द्वे द्वे लक्षे, तिर्यङ्नारकदेवेषु प्रत्येकं चतस्रश्चतस्रो लक्षाः मनुजेषु चतुर्दश लक्षाः,

कभी तेन्द्रिय जीवों में और कभी चतुरिन्द्रिय जीवों में जन्म लेता है । इस प्रकार इस संसार में प्रमादी जीव भ्रमण करता ही रहता है । इस कीटादिक शब्द के उपलक्षणसे समस्त तौर्यश्चजाति के भेदोपभेदों का ग्रहण जानना चाहिये ॥ ४ ॥

‘ एवम्० ’—इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( कम्मकिल्विसा-कर्मकिल्विषाः ) कर्मों से मलिन ( पाणिणो-प्राणिनः ) प्राणी ( संसारे-संसारे ) संसार में ( एवं-एवम् ) उक्त प्रकार से भ्रमण करते हुए ( आवृट्जोणीसु-आवर्तयोनिषु ) इम चौरासी लाख योनियों में ( पृथिवीकाय की सातलाख, अपकाय की सात लाख, तेजस्काय की सात लाख, वायुकाय की सात लाख, प्रत्येक वनस्पति की दश लाख, निगोदजीवों की चौदह लाख, द्विन्द्रिय, तेन्द्रिय चतुरिन्द्रिय की दो दो लाख, तिर्यञ्च, देव एवं नारकी की चार चार

ये प्रकारे आ संसारमां प्रमादी एव भ्रमणुं करोति न रडे छे आ कीटादिके शब्दना उपलक्षणस्य समस्त तिर्यञ्च जातीना भेदोपभेदेषु अङ्गुलान् भेदये ॥ ४ ॥

“ एवम्० ”—इत्यादि.

अन्वयार्थ—कम्मकिल्विसा-कर्मकिल्विषाः कर्मोधी मलीन पाणिणो-प्राणिनः प्राणी संसारे-संसारे संसारमां एव-एवम् उक्त प्रकारस्य भ्रमणुं करोतां करोतां आवृट्जोणीसु-आवर्तयोनिषु आ चौरासी लाख योनीओमां (पृथ्वीकायनी सात लाख, अपकायनी सात लाख, तेजस्कायनी सात लाख, वायुकायनी सात लाख, प्रत्येक वनस्पतिनी दश लाख, निगोद जीवोनी चौदह लाख, द्वे इन्द्रिय, त्रय इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, नी अङ्गुलान् अने तिर्यञ्च, देव अने नारकीनी चार चार लाख,



एवं चतुरशीतिलक्षसंख्यका योनयस्तासु, इत्यर्थः । न निर्विद्यन्ते=अस्मात् पर्यटनात् कदा मोक्षो भविष्यतीति नोद्विजन्ते=उद्वेगं न प्राप्नुवन्ति । केषु क इव ? सर्वार्थेषु=सर्वे च ते अर्थाः, सर्वार्यस्तेषु हिरण्य-सुवर्ण-मणि-मुक्ताफल-वज्र वैदूर्य-ग्राम-नगर-कोश-कोष्ठागार-भूमि-गजाश्वादिषु सर्वविभवेषु प्राप्तेष्वपि, क्षत्रियाः=राजान इव । अयं भावः—यथा सर्वेषु विषयेषु प्राप्तेष्वपि राजानः संतोषं नाप्नुवन्ति, किंतु तत्प्राप्त्यर्थमेव पुनः पुनः प्रवर्तन्ते । एवं तासु तासु योनिषु पुनः पुनरुत्पत्तिमनुभवन्तोऽपि जीवाः पुनः पुनः ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्म कुर्वन्तस्तत्तद् योनिप्राप्त्यर्थमेव प्रवर्तन्ते, तस्मान्मनुष्यजन्म दुर्लभम् इति ।

लाख, तथा मनुष्य की चौदह लाख, इस प्रकार इन चौरासी लाख योनियों-उत्पत्ति स्थाना में ) (न निर्विज्जन्ति-न निर्विद्यन्ते) 'इस संसार परिभ्रमणसे मेरा कब मोक्ष होगा' इस प्रकार कभी भी निर्वेद-उद्वेग को प्राप्त नहीं होते हैं । (व इव) जैसे(सबहुँसे स्वत्तिया-सर्वार्थेषु क्षत्रियाः)हिरण्य सुवर्ण, मणि, मुक्ताफल, वज्र वैदूर्य, ग्राम, नगर, कोश एवं कोष्ठागार, भूमि, गज अश्व आदि प्राप्त विभवोंमें क्षत्रिय लोग उद्वेग (उदासीनता) को प्राप्त नहीं होते हैं । तात्पर्य इसका यह है कि जैसे युद्ध कर २ के समस्त देशों का राज्य प्राप्त होने पर भी क्षत्रिय लोग उद्वेग (उदासीनता) को प्राप्त नहीं होते हैं, किन्तु उनकी प्राप्ति के लिये ही वे बार २ चेष्टा किये करते हैं उसी प्रकार उन उन योनियों में बार २ जन्म मरण के दुःखों का अनुभव करते हुए भी ये जीव पुनः पुनः ज्ञानावरणीयादिक अष्टविध कर्मों का बन्ध करते हुए उन २ योनियों की प्राप्ति करने के लिये

तथा मनुष्योनी चौदह लाख, आ प्रकारे ओ चौरासी लाख योनीओमां 'न निर्विज्जन्ति-न निर्विद्यन्ते आ संसार परिभ्रमणुथी भारो क्यारे मोक्ष थशे?' ओ प्रकारे तेने कोध जतनी चिता थती नथी. व-इव ओम सबहुँसे स्वत्तिया-सर्वार्थेषु क्षत्रियाः हीरा भाण्डेके, सुवर्ण, मणि, मुक्ताफल, वज्र, वैदूर्य, ग्राम, नगर, कोश अने कुष्ठागार, भूमि, गज, अश्व, आदि प्राप्त वैभवोमां रच्यापच्या रडेता क्षत्रियोने कोध उद्वेग थतो नथी. तात्पर्य ओनुं ओ छे के, ओम युद्ध करी करीने समस्त देशनुं राज्य प्राप्त थवा छतां पणु क्षत्रियोने कोध उद्वेग थतो नथी परंतु तेनी प्राप्तिने भाटे ओ वारंवार प्रयत्न करता रडे छे. ओवी रीते योनीओमां वारंवार जन्म मरणुने अनुभव करवा छतां पणु ओ ओव इरी इरी ज्ञानावरणीयादि आठ प्रकारना कर्मोने अंध करीने ते ते योनीओनी प्राप्ति करवामां ओ कीयाशील रडे छे.

સંસારઃ સ્વલુ સકલદુઃસ્વૈકહેતુઃ । અયં કસ્ય વિવેકિનો મનો રમયતિ, નૈવ કસ્યાપિ । અયં કદલીસ્તમ્ભવત્ સંધ્યારાગવચ્ચાપાત એવ મનોહરઃ, સ્વપ્નરાજ્ય-મિવ ક્ષણમ્ભૂગુરઃ, અત્ર કામભોગરૂપા વાટિકા, વિવિધમનોરથરૂપા વૃક્ષાઃ, આશા-રૂપાઃ શતસહસ્રશાખાઃ, તદુપરિ મનોમર્કટઃ સુસ્વરૂપં ફલં ગવેષયન્ પુનઃ પુનરુત્પ્લ-વતે । તથાપિ સુસ્વરૂપં ફલં ન લભતે । યત્ર કાલરૂપઃ સ્વલઃ સર્વાન્ પ્રાણિનો વિપ-ત્તિસાગરે નિપાતયતિ । જન્મરૂપો રિપુરાત્માન પીડયતિ, જરા રાક્ષસી મર્દયતિ ।

હો ચેષ્ટાશીલ હોતે રહતે હૈં । ઇસલિયે મનુષ્યજન્મ દુર્લભ હૈ ।

યહ સંસાર સમસ્ત દુઃખોં કા એક હેતુ હૈ । યહ કિસ વિવેકી કે મન કો આનન્દ ઉત્પન્ન કર સકતા હૈ, કિન્તુ કિસી કો મી નહીં કદલી કે સ્તમ્ભ એવં સન્ધ્યારાણ કે સમાન યહ સંસાર અલ્પકાલ કે લિયે મનોહર માલૂમ પડતા હૈ । સ્વપ્નરાજ્ય કી તરહ યહ ક્ષણમ્ભૂગુર હૈ । ઇસમેં યહ કામભોગરૂપ વાડી હૈ, જિસમેં મનોરથરૂપ વૃક્ષ સ્વહે હુએ હૈં । આશા તૃષ્ણારૂપી હજારોં શાખાં હૈં । ઇનકે ઉપર મનરૂપી બન્દર સુસ્વરૂપ ફલ કી તલાશ મેં રાતદિન ઇધર સે ઉધર કૂડતા ફિરતા હૈ તો મી ઉસકો સુસ્વરૂપ ફલ કી પ્રાપ્તિ નહીં હોતો હૈ । કાલરૂપી દુષ્ટજન યહાં સમસ્ત પ્રાણિયોં કો વિપત્તિરૂપ સાગર મેં ડુબાતા રહતા હૈ । જન્મ-રૂપી શત્રુ સદા યહાં ઇસ જીવ કો કષ્ટ પહુંચાતા રહતા હૈ । જરા રૂપી રાક્ષસી પ્રાણિયોં કા મર્દન કરતી હૈ અર્થાત્ પ્રાણી માત્ર કો દુઃખિત

આત્મહિત ભૂતી જાય છે અને પુદ્ગલોના સુખમાં આસક્ત બને છે. આટલા માટે મનુષ્યભવ તેમના માટે દુર્લભ બની રહે છે.

આ સંસાર સમસ્ત દુઃખોના એક હેતુ છે. એ કોઈ વિવેકીના મનને આનંદ ઉત્પન્ન કરી શકે છે, પરંતુ કોઈને કેળના સ્તંભની અને સંધ્યારાગની માફક આ સંસાર અદ્યકાળ માટે મનોહર જણાય છે. સ્વપ્ન રાજ્યની માફક આ સંસાર ક્ષણભંગુર છે. તેમાં આ કામભોગરૂપ વાડી છે, જેમાં મનોરથરૂપ વૃક્ષ ઉભાં છે, આશાતૃષ્ણારૂપ હજારો શાખાઓ છે, એમાં વળી મનરૂપી વાંદરો સુખરૂપ ફળની તપાસમાં રાત અને દિવસ અહિંથી તહીં ફૂદતો ફરે છે છતાં પણ તેને સુખરૂપ ફળની પ્રાપ્તિ થતી નથી. કાળરૂપી દુષ્ટ જન તેને (સમસ્ત પ્રાણી-ઓને) વિપત્તિરૂપ સાગરમાં ડુબાડતા રહે છે. જન્મરૂપી શત્રુ સદા આ જીવન કષ્ટ પહોંચાડતો રહે છે. જરા રૂપી રાક્ષસી પ્રાણીઓનું મર્દન કરે છે, અર્થાત્ પ્રાણીમાત્રને દુઃખી કરે છે. પ્રાણીઓનું એવું કોઈ વધુ આયુષ્ય પણ નથી,

आयुष्यं स्वल्पं चञ्चलं च, यौवनमपि विद्युदिव चपलम् । प्राणिनो विषयचिन्तया  
ग्रस्ताः, सम्बन्धिनो बन्धनरूपाः, भोगा आदौ किंपाकफलमिव मनोरमाः परिणा-  
मदारूणाः, इन्द्रियाणि कषायसाहाय्येनात्मानं नरकनिगोदादिषु भ्रामयन्ति । चतु-  
रशीतिलक्षसंख्यकासु योनिषु रागद्वेषमोहाभिभूतैर्जन्तुभिर्विषयतृष्णया परस्परं भक्ष-  
णेन ताडनेन मारणेन बन्धनेन अभियोगेन, आक्रोशेन च तीव्रदुःखानि शतसह-  
स्रशः प्राप्यन्ते । यथा विषवल्लरी रक्तपल्लवा चञ्चलभ्रमरसंकुला सौन्दर्येण मनोहरति

करती है । प्राणियों की ऐसी कोई विशेष आयु भी नहीं है । जितनी  
है भी उसका उतने समय तक रहने का कोई निश्चय भी नहीं है ।  
यौवन भी विद्युत् के समान चपल है । जितने भी इस संसार के पदार्थ  
हैं वे सब के सब विषयचिन्ता से युक्त बने हुए हैं । संबंधीजन  
जितने भी हैं वे सब इस जीव के लिये बन्धन स्वरूप हैं । ये भोग भी  
सेवन करते समय ही मनोरम प्रतीत होते हैं, परिणाम में ये किंपाक  
फलकी तरह जीव के शत्रु बन जाते हैं । कषाय की सहायता से  
ये इन्द्रियां जीव को नरक एवं निगोद आदि के दारुण दुःखों को भोग  
ने के लिये विवश कर देती हैं । चौरासी लाख योनियों में रागद्वेष  
मोह से अभिभूत हुए ये प्राणी विषयतृष्णा के कारण से पारस्परिक  
लक्षण से, ताडन से, मारण से, बन्धन से, अभियोग से एवं आक्रोश  
से तीव्र से तीव्र दुःखों को लाखों बार भोगते रहते हैं । जिस प्रकार  
विषवल्लरी रक्त पल्लवों से युक्त होकर चंचल भ्रमरों की गुंजार से गुंजित  
होती हुई देखनेवाले मनुष्यों के मन को लुभाती है उसी प्रकार ये

नेटलु छे तेटला समय सुधी रहेवानो तेनो केछ निश्चय पषु नथी.  
यौवन पषु विद्युतनी भाइक यपण छे, आ संसारना नेटला पषु भागं छे  
ते अघा विषय चिंताथी युक्त अनेला छे. नेटला संबंधीजन पषु छे ते अघा  
आ लव भाटे अंधन स्वरूप छे. भोग विदास पषु सेवन करती वपते मनो-  
रम्य लागे छे. परिष्णामे अे कडवाइणनी नेवा आत्माना शत्रु अनी लय छे.  
कषायनी सहायताथी अे दोलुपी छिन्द्रिये लवने नरक अने निगोद आदिना दारुण  
दुःखेने भोगववा भाटे विवश अनावी हे छे. चौरासी लाख येनीओमां राग,  
द्वेष, मोहथी घेरायेदो अे आत्मा विषय तृष्णाना कारणथी, पारस्परिक लक्षणथी,  
ताडनथी, मारणथी, अंधनथी, अभियोग अने आक्रोशथी तीव्रथी तीव्र दुःखेने  
लाओवार भोगवतो रहे छे. नेम विषवल्ली रक्त पल्लवोथी युक्त थछ यंचल  
भ्रमरैनी गुंजारवथी गुंजत थतो नेनार मनुष्यना मनने दोषावे छे. अेज  
उ० ८०

मनुष्याणाम्, तथा विषया अप्यनुकूलतया मनो हरन्ति सर्वेषाम् । वर्षाकाले जलबुद्बुदा इव, कराञ्जलिगता आ इव सम्पदः क्षणश्वराः सन्ति । यथा—स्वच्छ-जलपरिपूर्णगम्भीरगर्ते प्रतिबिम्बभावापन्नं तत्तटवर्तिवृक्ष-च्छाया-लता-पत्र-पुष्पादिकं किमपि कार्यं साधयितुं न शक्नोति, तथा संसारान्तर्गतं वस्तुजातम् किमपि स्वात्मकल्याणाय न भवति । एवमनन्तदुःखसंभृते संसारेऽनन्तानन्तदुःखमनुभवन्तोऽपि नोद्विजन्ते सर्वार्थेषु लब्धेष्वपि राजान इव प्राणिनः । अतो मनुष्यजन्मदुर्लभम् ।

विषयसुख भी अनुकूल होने से सब को सुहावने लगते हैं, सब के चित्त लुभाते रहते हैं । वर्षाकाल में जैसे जल का बुद्बुदा देखते २ नष्ट हो जाता है, और अंजलि का जल जैसे क्षणभर में झर जाता है उसी प्रकार से यह वैभव भी क्षणविनश्वर जानना चाहिये । जैसे स्वच्छ जल से परिपूर्ण गंभीर खड्डे में प्रतिबिम्बरूप से पतित उसके तटवर्ती वृक्ष की छाया लता पत्र पुष्पादिक कुछ भी कार्य साधक नहीं हो सकते हैं, उसी तरह संसार के अन्तर्गत वस्तुओं का समूह भी आत्मकल्याण का कुछ भी साधक नहीं होता है । इस प्रकार अनन्त दुःखों से भरे हुए इस संसार में अनन्त दुखों का अनुभव करते हुए भी संसारी जीव प्राप्त अर्थ में अधिकतर लुभाने वाले राजा की तरह प्रतिदिन उन्हीं संसारवर्धक वैषयिक सुखों में लुभाते रहते हैं । आत्मकल्याण कैसे होगा इसकी थोड़ी सी भी चिन्ता नहीं करते हैं । इसलिये यदि मनुष्यजन्म पाया है तो कुछ कर लेना चाहिये, नहीं तो इस मनुष्य

प्रकारथी आ विषयसुख पणु अनुकूल होतां सधणाने सुभरूप लागे छे. अधाना चित्तने दोबावे छे, वर्षाकाणमां पाणीना परपोटानी जेम जेत जेतामां नाश पाभे छे अने डाथमां लीधेव पाणी जेम क्षणभरमां आद्युं नय छे. जेज प्रकारथी आ वैभव पणु क्षणभरमां नाश पाभनार समजवेो जेधंजे. जेम स्वच्छ जणथी लरेदा उंटा भाडां प्रतिभिंभ रूपथी पतित तेनी पासेना वृक्षनी छाया, लता, पांटां, पुष्प वगेरे, कांछ पणु कार्यसाधक थतां नथी. जेवी रीते संसारने अंतर्गत वस्तुजोने समूह पणु आत्मकल्याणमां कांछपणु साधक अनतो नथी. आ प्रकारनां अनंत दुःखोथी लरेदा आ संसारमां अनंत दुःखोने अनुभव करवा छतां पणु संसारी एव प्राप्त अर्थमां अधिकतर दोबावनारा राजनी भाङ्क दररोज तेनी संसारवर्धक विषयी सुखोमां दोबातो रहे छे. आत्मानुं कल्याण कछ रीते थशे तेनी थोडी पणु चिंता करतो नथी. आटला भाटेज मनुष्यजन्म भणेल छे तो तेनुं कांछक सार्थक करी लेवुं जेधंजे.

तस्मान्मनुष्यजन्म लब्ध्वा संसारस्वरूपं भावयेत्—अहो ! ईदृशं दुःखस्थानमन्यत्  
किमपि नास्ति यादृशः संसारः ॥ ५ ॥

जन्म छुट जाने के बाद इसकी पुनः प्राप्ति दुर्लभ है, अतः मनुष्य का कर्तव्य है कि वह मनुष्यजन्म प्राप्त कर संसार के स्वरूप का अवश्य विचार करता रहे, उसको सोचना चाहिये कि ऐसा दुःख का स्थान और कोई दूसरा नहीं है जैसा की यह संसार है ।

भावार्थ—कर्म से कदर्थित ये संसारी जीव चौरासी लक्ष योनियों में भ्रमण करते हुए भी पुनः उसी चक्कर में फँसने के अभिलाषी होते रहते हैं । यह चक्कर कैसे बंद होगा इसकी चिन्ता ही नहीं करते हैं । जैसे कोई क्षत्रिय बार बार युद्ध करने पर भी युद्ध से अरुचि नहीं लाता है । उसी प्रकार ये संसारी जीव भी सांसारिक अनंत दुःखों से अरुचि न लाकर ज्ञानावरणीय कर्मों को पुनः पुनः बढ़ाने की ओर ही अग्रेसर बने रहते हैं । इन को इस बात का पता नहीं कि इस मनुष्यभव से ही इन अनंत दुःखों का अंत होता है, अतः इस भवसे यदि ये दुःख नहीं नष्ट किये गये तो फिर दूसरा कौन ऐसा भव है जो इन दुःखों का अन्त करनेवाला हो सकेगा, अतः मिले हुए मनुष्य भव

नहीं तो आ मनुष्यजन्म पुरो यतां तेनी प्राप्ति इरीथवी दुर्लभ छे. आधी मनुष्यजन्म कर्तव्य छे के, ज्यारै महुादुर्लभ जेवो मनुष्यजन्म तेने प्राप्त थये छे तो संसारना साया स्वइपनो अवश्य अवश्य विचार करतो रहे. तेणे विचारवुं जेधजे के, जेवो आ संसार छे तेना जेवुं दुःखनुं स्थान थीजुं केध नथी.

भावार्थ—कर्मथी कदाय संसारी एव चौरासी लाख योनीजोमां भ्रमण करवा छतां पणु इरी जेज यच्छरमां इसाय—पूथी जय तेवां कार्यामां ते रत रहे छे पणु जे यच्छर कर्ध रीते अंध थाय तेनी चिंता करतो नथी. जेम केध क्षत्रिय वारवार युद्ध करवा छतां तेना द्विलमां युद्धनी अइथी जगती नथी. तेनी रीते संसारी एव पणु संसारनां अनंत दुःखोने जणुवा छतां तेना प्रत्ये अइथी न लावतां ज्ञानावरणीय कर्मोने इरी इरी वधारवानी तरइ ज तेनी मुज्य प्रवृत्ति अनी रहे छे. तेने जे वातनो जयाल पणु नथी आवतो के, आ मनुष्यभवद्वारा ज ते अनंत दुःखोने अंत लावी शक्य छे. जे कारणे आ लवद्वारा ज जे ते दुःख नष्ट करवामां नहीं आवे तो इरी जेवो कयो लव छे के, आ दुःखोने अंत लाववामां उपयोगी थाय ? आधी महुापूष्यना उदयथी अप्राप्य जेवा भणेला मनुष्यभवने सकृण अनाववा तरइ लक्ष देवुं



मूलम्—कर्मसंगेहिं संमूढा, दुःखिया बहुवेयणा ।

अमाणुसासु जोणीसु, विणिहम्मंति पाणिणो ॥ ६ ॥

छाया—कर्मसंगैः संमूढाः, दुःखिता बहुवेदनाः ।

अमानुषीषु योनिषु, विनिहन्यन्ते प्राणिनः ॥ ६ ॥

टीका—‘ कर्मसंगेहिं ’ इत्यादि ।

कर्मसंगैः=ज्ञानावरणीयादि कर्मसंयोगैः, संमूढाः-तत्त्वातत्त्वविवेकरहिताः, दुःखिताः=विविधदुःखजालजनक रोगशोकादिसमाक्रान्ताः, बहुवेदनाः=मन्द तीव्र-तीव्रतर-पीडायुक्ताः प्राणिनः, अमानुषीषु=एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियमनुष्यभिन्नपञ्चेन्द्रियरूपासु च, योनिषु कर्मभिः विनिहन्यन्ते=पुनः पुनरुत्पद्यन्ते । अतो मानुषत्वं दुर्लभमिति भावः ॥ ६ ॥

को सफल बनाने की ओर लक्ष्य देना यही सब से प्रथम कर्तव्य है ॥ ५ ॥

“ कर्मसंगेहिं ” इत्यादि

अन्वयार्थ—(कर्मसंगेहिं—कर्मसंगैः) ज्ञानावरणीयादिक कर्मों के संयोग से ( संमूढा—संमूढाः ) तत्त्वातत्त्व के विवेक से विकल बने हुए अतएव (दुःखिया—दुःखिताः) विविधदुःखजनक ऐसे रोग, शोक आदि से समाक्रान्त एवं (बहु वेयणा—बहु वेदनाः) मन्द, तीव्र, तीव्रतर पीडाओं से युक्त ये ( पाणिणो—प्राणिनः ) संसारी प्राणी (अमाणुसासु जोणीसु—अमानुषीषु योनिषु) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय एवं मनुष्य भिन्न पञ्चेन्द्रिय इन योनियों में ( विणिहम्मंति—विनिहन्यन्ते ) पुनः पुनः जन्ममरणजनित दुःख पाते हैं । इसलिये मनुष्यभव दुर्लभ है ।

नेधंअने ते प्राणीभावनुं अक मात्र सौ प्रथम कर्तव्य छे ॥ ५ ॥

“ कर्मसंगेहिं ”—इत्यादि.

अन्वयार्थ—कर्मसंगेहिं—कर्मसंगैः ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंना संयोगथी संमूढा—संमूढाः तत्त्वातत्त्वना विवेकथी, विकल अनेला तेमअ दुःखिया—दुःखिताः विविध दुःखजनक अेवा रोग, शोक आदिथी समाक्रांत अने बहु वेयणा—बहु वेदनाः मंद, तीव्र, तीव्रतर, पीडाअेथी युक्त आ पाणिणो—प्राणिनः संसारी प्राणी अमाणुसासु जोणीसु—अमानुषीषु योनिषु अेकेन्द्रिय, अेधन्द्रिय, त्रीधन्द्रिय, चार धन्द्रिय, अने मनुष्य भिन्न पांच धन्द्रिय आ योनीअेमां विणिहम्मंति—विनिहन्यन्ते इरी इरी जन्म भरथु जनीत दुःख पाते छे. अेटला भाटे मनुष्यभव दुर्लभ कखो छे.



कथं तर्हि मानुषत्वं प्राप्नोतीत्याह—

मूलम्—कम्माणं तु पहाणाए, आणुपुर्व्वि कंयाइ वि ।

जीवां सोहिमणुप्यन्ता, आंययन्ति मणुंस्सयं ॥ ७ ॥

छाया—कर्मणां तु प्रहाण्या, आनुपूर्व्या कदाचिदपि ।

जीवा शोधिमनुप्राप्ताः, आददते मनुष्यताम् ॥ ७ ॥

टीका—‘कम्माणं’ इत्यादि ।

तु=पुनः आनुपूर्व्या=अनुक्रमेण, कर्मणां=मनुष्यगतिविधातकानामनन्तानु-  
बन्धिक्रोधादिरूपाणाम्, प्रहाण्या=क्षयेण-अपगमेन, जीवाः=मागिनः, आनुपूर्व्या  
=अनुक्रमेण पृथिवीकायादिक्रमेणेत्यर्थः, शोधिम्=अशुभकर्मापगमरूपां शुद्धिम्,

भावार्थ—प्राप्त मनुष्यभव यदि प्रमादी होकर यों ही गुमा दिया जाता है तो फिर इस जीव को कर्मों के प्रभाव से तत्त्वातत्त्वविवेक रहित बनकर अनेक अमानुषीय योनियों में अनेक प्रकार के कष्टों का साम्हना करते हुए उत्पन्न होते रहते हैं। इसलिये मिले हुए इस मनुष्य-भव को व्यर्थ मत जाने दो, नहीं तो पुनः इसका मिलना दुर्लभ है ॥ ६ ॥

मनुष्यभव प्राप्त कैसे होता है यह बात सूत्रकार बतलाते हैं—

“कम्माणं” इत्यादि

अन्वयार्थ—(आणुपुर्व्वी-आनुपूर्व्या) अनुक्रम से (कम्माणं-कर्मणाम्) मनुष्यगतिविधातक अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कर्मों की पहाणाए-प्रहाण्या प्रहाणि-क्षयसे (जीवा जीवाः) जीव (आणुपुर्व्वी-आनुपूर्व्या) पृथिवी-

भावार्थ—प्राप्त मनुष्यभव जे प्रमादी जनी जेभने जेभज शुभावी देवाय ते पछी आ जेवने कर्मोना प्रलावथी तत्त्वातत्त्वविवेकरहीत जनी अनेक अमानुषिय योनीज्योमां अनेक प्रकारनां कष्टोना सामना करतां करतां उत्पन्न थता रडे छे. यज्ज मनुष्यभव पाभवो दुर्लभ रडे छे. माटे भणेल्ला आ मनुष्यभवने व्यर्थ ज्वा न देवो जेछे जे. जेवने इरी इरी मनुष्यभव भणवो दुर्लभ छे. ॥६॥

मनुष्यभव केवी रीते प्राप्त थाय छे ते सूत्रकार अतावे छे—

‘कम्माणं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—आणुपुर्व्वी-आनुपूर्व्या अनुक्रमथी कम्माणं-कर्मणाम् मनुष्यगती विधातक अनन्तानुबन्धी क्रोधादि कर्मोना पहाणाए-प्रहाण्याक्षयथी जीवा-जीवाः जेव आणुपुर्व्वी-आनुपूर्व्या पृथ्वीकायादिकना कर्मथी सोहि-शोधिम् अशुभ कर्मोना अपग-

अनुमाप्ताः सन्तः, कदाचिदेव, न तु सर्वदा, अत्र तु-शब्द एवार्थकः । मनुष्यताम् आददते=पृहन्ति-प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । अयं भावः-प्रकृतिभद्रतया, प्रकृतिविनीततया, सानुक्रोशतया (सदयतया) अमत्सरितया मनुष्येषु प्राणिन उत्पद्यन्ते । अपि च-विशिष्टशुद्धिहेतुभिस्तनुकषायत्वादिभिर्मनुष्यायुर्बन्धो भवति । उक्तञ्च—

पयईए तणुकसाओ, दाणरओ सीलसंजमविहूणो ।

मज्झमगुणेहिं जुत्तो मणुयाउं बंधए जीवो ॥ २ ॥

छाया-प्रकृत्या तनुकषायो, दानरतः शीलसंयमविहीनः ।

मध्यमगुणैर्युक्तो मनुजायुर्बध्नाति जीवः ॥ १ ॥ इति ॥ ७ ॥

कायादिक के क्रमसे (सोहिं-शोधिम) अशुभ कर्मों के अपगमरूप शुद्धि को प्राप्त होते हुए (कयाइ वि-कदाचिदपि) कभी कभी ही-सर्वदा नहीं, (मणुस्सयं आययंति-मनुष्यतां आददते) मनुष्यभव को प्राप्त करते हैं । प्राणी स्वाभाविक भद्रपरिणामी हो, स्वाभाविक विनीत हो, दयालु हो, मत्सरभाव से रहित हो तो वह मरकर मनुष्यपर्याय को प्राप्त करता है । विशिष्ट शुद्धि का कारण जो कषायों की मंदता है उससे भी मनुष्यायुका बंध प्राणी को होता है । उक्तञ्च—

पयईए तणुकसाओ दाणरओ सीलसंजमविहूणो ।

मज्झमगुणेहिं जुत्तो मणुयाउं बंधए जीवो ॥ १ ॥

छाया-प्रकृत्या तनुकषाया दानरतः शीलसंयमविहीनः ।

मध्यमगुणैर्युक्तो मनुजायुर्बध्नाति जीवः ॥ १ ॥ ७ ॥

विशिष्ट पुण्य के उदय से किसी जीव को मनुष्यभव की प्राप्ति हो भी जाय तो भी धर्म का सुनना दुर्लभ है इस बात को सूत्रकार

म३५ शुद्धिने प्राप्त करीने कयाइ वि-कदाचिदपि के३४ के३४ वपत मणुस्सयं-मनुष्यतां मनुष्यभवने आययंति-आददते प्राप्त करे छे. प्राणी स्वाभाविक भद्र परिणामी होय, स्वाभाविक विनीत होय, दयालु होय, मत्सरभावही रहित होय तो ते मरीने मनुष्यपर्यायने प्राप्त करे छे. विशिष्ट शुद्धिनुं कारणे ने कषायोनी मंदता छे तेनाथी पणु मनुष्य आयुने अंध प्राणीने थाय छे. कहुं पणु छे—

पयइए तणुकसाओ दाणरओ सीलसंजमविहूणो ।

मज्झम गुणेहिं जुत्तो मणुयाउं बंधए जीवो ॥ १ ॥

छाया—प्रकृत्या तनुकषायो दानरतः शीलसंयमविहीनः ।

मध्यमगुणैर्युक्तो मनुजायुर्बध्नाति जीवः ॥ १ ॥ ७ ॥

विशिष्ट कर्मना उदयथी के३४ एवने मनुष्यभवनी प्राप्ति थई पणु नय तो पणु धर्मने सांभणवे दुर्लभ छे आ वातने सूत्रकार अतावे छे—

कस्यचिद् विशिष्टपुण्यस्योदयेन मानुषत्वलाभेऽपि श्रुतिदुर्लभेत्याह—  
 मूलम्—माणुस्सं विग्गहं लद्धुं, सुई धम्मस्स दुल्लहा ।  
 जं सोच्चा पडिवज्जंति, तवं खंतिमहिंसयं ॥८॥

छाया—मानुष्यं विग्रहं लब्ध्वा, श्रुतिधर्मस्य दुर्लभा ।

यं श्रुत्वा प्रतिपद्यन्ते, तपः क्षान्तिम् अहिंसताम् ॥ ८ ॥

टीका—‘माणुस्सं’ इत्यादि ।

मानुष्यं=मनुष्यभवसम्बन्धिनं, विग्रहं=शरीरं, लब्ध्वा=प्राप्य, धर्मस्य=श्रुतचारित्रलक्षणस्य, श्रुतिः=श्रवणं, दुर्लभा, यं धर्मं श्रुत्वा, तपः=अनशनादि द्वादशविधम्, इन्द्रियजयं वा, क्षान्तिः=क्रोधजयरूपां, उपलक्षणमेतन्मानादिजयस्यापि, अहिंसताम्=अहिंसकत्वम्, अनेन प्रथमव्रतमुक्तम्, इदमप्युपलक्षणम्—मृषावादादत्तादानमैथुनपरिग्रहविरमणस्य, प्रतिपद्यन्ते=प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । धर्मस्य श्रवणं हि मिथ्यात्वतिमिरप्रणाशकं, श्रद्धाज्योतिःप्रकाशकं, तत्त्वातत्त्वविवेचकं, पीयूषपानमिव

कहते हैं—“माणुस्सं” इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(माणुस्सं विग्गहं लद्धुं-मानुष्यकं विग्रहं लब्ध्वा) मनुष्यभव संबंधी शरीर को पाकर भी (धम्मस्स सुई दुल्लहा-धर्मस्य श्रुतिः दुर्लभा) श्रुतचारित्ररूप धर्मका श्रवण दुर्लभ है । (जं सोच्चा-यं श्रुत्वा) जिस धर्म को सुनकर प्राणी (तवं खंतिमहिंसयं-तपः क्षान्तिम् अहिंसताम्) अनशन आदि बारह १२ प्रकार के तप को, अथवा इन्द्रियनिग्रह को, क्रोध जयरूप क्षान्ति को, उपलक्षण से मान आदि कषाय के विजय को, तथा अहिंसक भाव को, उपलक्षण से मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन एवं परिग्रह से विरमणरूप व्रत को (पडिवज्जंति-प्रतिपद्यन्ते) प्राप्त करते हैं । धर्म का श्रवण जीव के मिथ्यात्वरूप तिमिर का विनाशक, श्रद्धारूप ज्योति का प्रकाशक, तत्त्व अतत्त्व का विवेचक, अमृतपान के समान

‘माणुस्सं’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—माणुस्सं विग्गहं लद्धुं-मानुष्यकं विग्रहं लब्ध्वा मनुष्यत्व संबंधी शरीरने भोगवीने पण्य धम्मस्स सुई दुल्लहा-धर्मस्य श्रुतिः दुर्लभा श्रुत चारित्ररूप धर्मनुं श्रवण्य दुर्लभ छे. जं सोच्चा-यं श्रुत्वा जे धर्मने सांभलीने प्राणी तवं खंतिमहिंसयं-तपः क्षान्तिम् अहिंसताम् अनशनादि आर १२ प्रकारना तपने अथवा इन्द्रियनिग्रहने, क्रोधजयरूप, क्षान्तिने उपलक्षण्यथी मान आदि कषायना विजयने तथा अहिंसक भावने उपलक्षण्यथी मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन अने परिग्रहथी वीरभण्य रूप व्रतने पडिवज्जंति-प्रतिपद्यन्ते प्राप्त करे छे. धर्मनुं श्रवण्य भवने मिथ्यात्वरूपी अधकारना नाश करनार, श्रद्धारूप ज्योतिना प्रका-

હિતાવહં, ચરુચન્દ્રચન્દ્રિકેવ હૃદયાહ્વાદકં, સ્વપ્નદૃષ્ટવસ્તુનઃ પુનર્જાગ્રિદવસ્થાયાં તલ્લા-  
ભવત્ પ્રમોદજનકં, ભૂમિગતનિધાનપ્રાપ્તિરિવ સુખજનકં, સકલસંતાપહારકમ્ ।  
તસ્માદ્ ધર્મઃ શ્રોતવ્ય ઇતિ ભાવઃ ॥ ૮ ॥

શ્રુતિલાભેઽપિ શ્રદ્ધા દુર્લભેત્યાહ—

મૂલમ્—આહૃચ્ચ સર્વણં લદ્ધું, સંદ્ધા પરમદુલ્હા ।

સોર્ચ્ચા નૈયાઉયં મર્ગમ્, બૃહવે પરિભંસસૃ ॥ ૯ ॥

છાયા—ક્રદાચિત્ શ્રવણં લબ્ધ્વા, શ્રદ્ધા પરમદુર્લભા ।

શ્રુત્વા નૈયાયિકં માર્ગમ્, બૃહવઃ પરિભ્રજ્યન્તિ ॥ ૯ ॥

એકાન્તતઃ હિતવિધાયક, નિર્મલ ચાંદની કે સમાન હૃદય કો આનંદ  
ઉત્પન્ન કરને વાલા, સ્વપ્ન મેં દૃષ્ટ પદાર્થ કી જાગૃત અવસ્થા મેં પ્રાપ્તિ  
હોને કી તરહ પ્રમોદજનક, ભૂમિ મેં ગડે હુએ નિધાન કી પ્રાપ્તિ કે સમાન  
સુખજનક એવં સમસ્ત સંતાપ કા અપહારક હોતા હૈ, ઇસલિયે ધર્મ  
અવશ્ય શ્રવણ કરને યોગ્ય હૈ ।

ભાવાર્થ—મનુષ્યભવ પાકર મી જીવ કો શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મ કા  
શ્રવણ બડે ભાગ્ય સે મિલતા હૈ । ધન્ય વે પુરુષ હૈ જો ઇસ પ્રકાર સે  
અપને જીવન કો સફલ કરતે હૈ, ક્યોં કિ ધર્મ કે શ્રવણ સે હી યહ  
જીવ કો માલૂમ હોતા હૈ કિ હમારા ક્યા કર્તવ્ય હૈ ક્યા અકર્તવ્ય હૈ ?  
હિંસાદિક પાપ અકર્તવ્ય હૈ, તથા પ્રણાતિપાતાદિ વિરમણરૂપકર્તવ્ય હૈ ।  
તપ પાળને યોગ્ય હૈ એવં કષાયાદિક પરિત્યાગ કરને યોગ્ય હૈ ॥ ૮ ॥

શક, તત્વ અતત્વનેા વિવેચક અમૃત પાન સમાન, એકાન્તતઃ હિત વિધાયક,  
નિર્મળ ચાંદની સમાન હૃદયને ઉત્પન્ન કરવાવાળા, સ્વપ્નમાં દૃષ્ટ પદાર્થની જાગૃત  
અવસ્થામાં પ્રાપ્તિ થવાની માફક, પ્રમોદ જનક ભૂમિમાં દટાયેલા ધનની પ્રાપ્તિ  
સમાન, સુખ જનક અને સમસ્ત સંતાપનેા અપહારક અને છે. માટે ધર્મ  
અવશ્ય શ્રવણ કરવા યોગ્ય છે.

ભાવાર્થ—મનુષ્યભવ ભેગવીને પણ જીવને શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું શ્રવણ ભાગ્યના  
ઉદયથી જ મળે છે. એ પુરુષને ધન્ય છે કે જે આ પ્રકારથી પોતાના જીવનને  
સફળ બનાવે છે. કેમકે ધર્મનું શ્રવણ કરવાથી જ આ જીવને ખબર પડે છે  
કે માફ કર્તવ્ય શું છે અને અકર્તવ્ય શું ? છે હિંસાદિક પાપ એ અકર્તવ્ય  
છે, અને એનાથી પ્રાણાતિપાતાદિ વિરમણરૂપ કર્તવ્ય છે. તપ પાળવા યોગ્ય  
છે, અને કષાયાદિક પરિત્યાગ કરવા યોગ્ય છે. ॥૮॥

टीका—‘ आहच्च ’ इत्यादि ।

कदाचित् श्रवणं=धर्मश्रवणं लब्ध्वाऽपि श्रद्धा=धर्मविषयिका रुचिः, परमदुर्लभाऽस्ति । श्रद्धा हि संसारसागरतरणतरणिः, मिथ्यात्वतिमिरहरणद्युमणिः, स्वर्गापवर्गसुखचिन्तामणिः, क्षपकश्रेणिसरणिः, कर्मरिपुदमनी, केवलज्ञानकेवलदर्शनजननी । श्रद्धायाः परमदुर्लभत्वे हेतुमाह—‘ बहवै ’ इत्यादि ।

बहवो मनुष्या नैयायिकं-न्याये पञ्चसमवायकारणे भवं नैयायिकं पञ्चसम-

धर्मश्रवण की प्राप्ति के बाद सूत्रकार अब श्रद्धा की दुर्लभता दिखलाते हैं—‘ आहच्च ’-इत्यादि ।

अन्वयार्थ—( आहच्च-आहत्य ) कदाचित् ( सवणं लब्धुं-श्रवणं लब्ध्वा ) धर्मका श्रवण भी प्राप्त हो जाय तो भी ( सद्धा परमदुर्लहा-श्रद्धा परमदुर्लभा ) धर्म में श्रद्धा-रुचि-होना परम दुर्लभ है । यह श्रद्धा संसाररूपी सागर से पार कराने के लिये नौका जैसी है, मिथ्यात्वरूपी तिमिर को दूर करने के लिये द्युमणि-सूर्य जैसी है । स्वर्ग एवं मोक्ष के सुखों को देने के लिये चिन्तामणिरत्न जैसी है । क्षपकश्रेणी पर आरूढ होने के लिये निसरणी जैसी है । कर्मरूपी शत्रु को परास्त करने वाली है, एवं केवल ज्ञान केवल दर्शन को उत्पन्न करने के लिये जननी जैसी है । यह श्रद्धा परम दुर्लभक्यों है ? यह बात स्वयं सूत्रकार कहते हैं ( बहवै-बहवः ) संसारमें ऐसे भी कितनेक मनुष्य हैं जो

धर्म श्रवणकी प्राप्ति पाह सूत्रकार हवे श्रद्धानी दुर्लभता समनावे छे.—  
‘ आहच्च ’ इत्यादि.

अन्वयार्थ—आहच्च-आहत्य कदाचित् सवणं लब्धुं-श्रवणं लब्ध्वा धर्मनुं श्रवण प्राप्त थर्ध नय तो पणु सद्धा परमदुर्लहा-श्रद्धा परमदुर्लभा धर्ममां श्रद्धा इथी थवी अे परम दुर्लभ वात छे. आ श्रद्धा संसारइपी सागरथी पार उतारनार नौकानुं काम करे छे. मिथ्यात्व इपी घोर अंधकारने हर करी माणुसना हृदयमां सूर्य तेजनां किरणो जेवो प्रकाश पडोयाडे छे. स्वर्ग अने मोक्षनां सुभोने आपवा भाटे चितामणीरत्न जेवी छे. क्षपकश्रेणी उपर आइठ थवा भाटे अे नीसरणी जेवी छे. कर्मइपी शत्रुनो नाश करवा भाटे अे अतुल भणवाणी छे. अने केवलज्ञानदर्शनने उत्पन्न करवा भाटे अे जननी जेवी छे. आ श्रद्धा परम दुर्लभ केम छे ? आ वात स्वयं सूत्रकार अतावे छे. तेअो कडे छे के, बहवै-बहवः संसारमां अेवा पणु केटलाक मनुष्यो छे जे नेयाज्यं-

वायकारणवादरूपं जैनदर्शनं, यद्वा-न्याययुक्तं मार्गं सम्यग्दर्शनादिरूपं मार्गं=मोक्षमार्गं श्रुत्वा परिभ्रश्यन्ति=मोक्षमार्गात् प्रच्युता भवन्ति ।

अत्र दृष्टान्ताः—जमालिप्रभृतयो निह्ववाः ।

अथ के ते जमालिप्रभृतयः ? इत्युच्यते—जमालिप्रभृतयः सप्त प्रवचननिह्ववाः—मिथ्यात्वाभिनिवेशाज्जिनोक्ततत्त्वापलापकास्त्यक्तसम्यग्दर्शना अभूवन् । तत्र जमालिः प्रथमः, स बहुरतः—बहुषु समयेषु रतः=सक्तः, प्रभूतसमयैः कार्योत्पत्तिर्भवति, नत्वेकेन समयेनेति प्ररूपयति ॥ १ ॥ तिष्यगुप्तो द्वितीयः—स जीवप्रदेशिकः—जीवः प्रदेश एव यस्य स जीवप्रदेशः, स एव जीवप्रदेशिकः, चरमप्रदेश एव जीव इति प्ररूपयति ॥२॥ तृतीय आषाढः—स तु अव्यक्तिकः, अव्यक्तम्—अस्फुटं वस्तु

( नेयाउयं मगं-नैयायिकं मार्गं ) पंचसमवायकारणवादरूपं जैनदर्शनं को, अथवा सम्यग्दर्शनादिरूपं न्याययुक्तं मार्गं-मोक्षमार्गं को (सोच्चा-श्रुत्वा) सुनकर भी उसमें श्रद्धानहीं होने से (परिभ्रस्सइ-परिभ्रश्यन्ति) उस मोक्षमार्ग से भ्रष्ट हो जाते हैं इसलिये श्रद्धा को दुर्लभ बतलाई है ।

इस विषय में दृष्टान्तस्वरूप जमालि निह्वव आदि समझना चाहिये । जमालि आदि कौन हैं ? इस विषय को यहां प्रदर्शित किया जाता है । ये जमालि आदि सात व्यक्ति निह्वव-प्रवचन को छिपाने वाले हुए हैं—मिथ्यात्व के अभिनिवेश से जिनोक्त तत्त्व के अपलापक-सम्यग्दर्शन से रहित हुए हैं । इनमें सर्वप्रथम जमालि हुए हैं, इनकी मान्यता यह है कि अनेकसमयों से द्रव्य की उत्पत्ति होती है, एक समय से नहीं ? द्वितीय निह्वव तिष्यगुप्त हुए हैं, इनकी ऐसी मान्यता है कि जीवका एक अन्तिम प्रदेश ही जीवस्वरूप है २ । तृतीय निह्वव आषाढ हुए हैं, इनकी

मगं-नैयायिकं मार्गं पांच समवायकारणवादरूपं जैनदर्शनं अथवा सम्यग्दर्शनादिरूपं न्याययुक्तं मार्गं-मोक्ष मार्गं सौंये सोच्चा-श्रुत्वा सांख्यीने पञ्च येनामां श्रद्धा न होवाथी परिभ्रस्सइ-परिभ्रश्यन्ति ये मोक्षमार्गथी भ्रष्ट थई जय छे. आ माटे श्रद्धाने दुर्लभ अतावेद छे.

आ विषयमां दृष्टान्तस्वरूपं जमालि निह्वव आदि समझवा जेधंये. जमालि आदि केषु उता ये विषयने आदि प्रदर्शित करवामां आवे छे. ये जमालि आदि सात व्यक्ति प्रवचननिह्वव छुपाववावाणा उता. मिथ्यात्वना अभिनिवेशथी जिनोक्त तत्त्वना अपलापक-सम्यग्दर्शनथी रहित उता. येमां सर्व प्रथम जमालि उता. येमनी मान्यता ये उती के अनेक समयथी द्रव्यनी उत्पत्ति थाय छे येक समयथी नही. (१) द्वितीय निह्वव तिष्यगुप्त उता, येमनी येवी मान्यता उती के, जवनो येक अन्तिम प्रदेश जे जे



यस्य सः, संयतादिज्ञाने संदिग्धबुद्धिः । ३ । अश्वमित्रश्चतुर्थः सामुच्छेदिकः, स उत्पादानन्तरमेव वस्तुनः समुच्छेदः—विनाशो भवतीति प्ररूपयति । ४ । गङ्गाचार्यः पञ्चमो द्वैक्रियः—स एकस्मिन् समये क्रियाद्वयानुभवो भवतीति प्ररूपयति । ५ । षडुलूकः षष्ठ्यैराशिकः, स जीवा-जीव-नोजीव-भेदात् त्रयो राशयः सन्तीति प्ररूपयति । ६ । गोष्ठःमाहिलः स्थविरः सप्तमोऽव्यदिकः स च जीवेन स्पृष्टं कर्म अबद्धं प्ररूपयति । ७ ।

तत्र जमालेर्वृत्तान्तः प्रोच्यते—

क्षत्रियकुण्डपुरे भगवतः श्रीवीरवर्धमानस्वामिनो भगिन्याः सुदर्शनायाः पुत्रः क्षत्रिया ऐसी मान्यता है कि संयत आदि का ज्ञान सदा संदिग्ध रहता है, कौन संयत है कौन नहीं इसका यथार्थ निश्चय नहीं हो सकता है, इस प्रकार ये अव्यक्तवादी हैं ३ । चतुर्थ निहव-अश्वमित्र हैं, इनकी ऐसी मान्यता है कि उत्पाद के अनन्तर ही वस्तु विनष्ट हो जाती है ४ । पंचम निहव गंगाचार्य हैं, इनकी ऐसी मान्यता है कि एक समय में दो क्रियाओं का अनुभव होता है ५ । छठवां निहव षडुलूक हैं, इनकी ऐसी मान्यता है कि जीव अजीव एवं नोजीव, इस प्रकार तीन राशि हैं ६ । गोष्ठ माहिल स्थविर सातवां निहव हैं, इनकी ऐसी मान्यता है कि जीव के स्पृष्ट कर्म सदा उससे अबद्ध रहता है ७ ।

जमालि का वृत्तान्त इस प्रकार है—जमालि भगवान् वर्धमान स्वामा की बहिन सुदर्शना के पुत्र थे । ये क्षत्रियकुण्डपुर का निवासी क्षत्रिय थे । भगवान् वीर प्रभु की पुत्री जो प्रियदर्शना थी उसका

स्वरूप छे. (२) तृतीय निहव आषाढ होता ऐमनी ऐवी मान्यता होती के, संयत आदिनुं ज्ञान सदा संदिग्ध रहे छे. केणु संयत छे ? केणु संयत नथी ? ऐनेो यथार्थ निश्चय थर्ध शकतो नथी. आ प्रकारथी तेओ अव्यक्तवादी होता. (३) चतुर्थ निहव अश्वमित्र होता ऐमनी ऐवी मान्यता होती के, उत्पादना अनंतरव वस्तुनेो नाश थर्ध जय छे. (४) पंचम निहव गंगाचार्य होता, ऐमनी ऐवी मान्यता होती के, एक समयमां ये क्रियाओनेो अनुभव थाय छे. (५) छठा निहव षडुलूक होता ऐमनी ऐवी षषु मान्यता होती के, जव, अजव अने नेो जव आ रीते त्रषु प्रकारनी राशी छे. (६) सातमा निहव गोष्ठमाहिलस्थविर होता ऐमनी ऐवी षषु मान्यता होती के, स्पृष्ट कर्म उंभेशां तेनाथी अणद्ध रहे छे.

जमालिनुं वृत्तांत आ प्रकारे छे—जमालि भगवान् वर्धमान स्वामीनी अडेन सुदर्शनाना पुत्र होता. तेओ क्षत्रिय होता अने क्षत्रियकुण्डपुरना निवासी होता. भगवान् वीरप्रभुनी पुत्री जे प्रियदर्शना होती, तेना तेओ

जमालिरासीत् । श्रीवीरवर्धमानस्वामिनः पुत्री प्रियदर्शना जमालेः भार्याऽभवत् ।

एकदा कदाचित् भगवान् श्रीवीरवर्धमानस्वामी तत्र क्षत्रियकुण्डपुरे समवसतः। जमालिर्भार्याया सह तं वन्दितुं समागतः। भगवद्देशनया जातवैराग्योऽसौ जमालिर्गृहमागत्य पित्रोरनुज्ञां गृहीत्वा पञ्चशतक्षत्रियकुमारैः सह प्रव्रज्यां गृहीतवान् । अयं भगवतः श्रीमहावीरस्य केवलज्ञानप्राप्त्यनन्तरं चतुर्दशे वर्षे प्रव्रजितः । तदा तस्य भार्या प्रियदर्शनाऽपि भगवतः श्रीवीरवर्धमानस्वामिनः समीपे स्त्रीसहस्रेण सह प्रव्रजिता । ततः पञ्चशतसंख्यकान् साधून् जमालिमुनये, तस्यै प्रियदर्शनासाध्यै च साध्वीसहस्रं शिष्यतया भगवान् प्रददौ । अथ जमालिमुनिः श्रीवर्धमानस्वामिना सह विहरन् दुश्चरं तपस्तेपे, एकादशाङ्गानि चाधीतवान् ।

ये पति थे। एक दिन की बात है कि वीर श्रीवर्धमान स्वामी क्षत्रिय-कुण्डपुर में पधारे। जमालि अपनी पत्नी प्रियदर्शना के साथ उनको वंदना करने के लिये आये। भगवान् ने इनको धर्मदेशना दी। दिव्य धर्मदेशना का पान कर जमालि को वैराग्य जागृत हो गया। घर पर आकर इन्होंने अपने माता पिता से आज्ञा लेकर पांचसौ क्षत्रिय-कुमारों के साथ दीक्षा अंगीकार करली। उस समय भगवान् को केवल ज्ञान प्राप्त हुए को चौदह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। पति को दीक्षित देखकर प्रियदर्शना ने भी एक हजार स्त्रियों के साथ दीक्षा अंगीकार करली। प्रभु ने पांचसौ मुनियों को जमालिमुनि की नेसराय में करदिये, एवं एक हजार साध्वियों को प्रियदर्शना साध्वी की नेसराय में कर दी। पांचसौ जमालि के शिष्य और एक हजार साध्वियां प्रियदर्शना की शिष्याएँ हुईं। जमालिमुनि ने श्री वर्धमान-

पति होता. एक समयनी बात छे के, श्री वीर वर्धमानस्वामी दीक्षा लीधा पछी क्षत्रियकुण्डपुरमां पधायी. जमालि पोतानी पत्नी प्रियदर्शनानी साथे तेभने वंदना करवा भाटे आय्या. भगवाने तेभने धर्मदेशना आपी. दिव्य धर्म देशनातुं पान करतां जमालिने वैराग्य जागृत थये. घर आवी पोतानां मातापितानी आज्ञा लई तेभछे पांचसो क्षत्रिय कुमारे सहित दीक्षा अंगिकार करी. आ समये भगवाने केवलज्ञान प्राप्त थया ने चौदह वर्ष वित्ती गयां होतां. पतिने दीक्षित थयेला तेछे प्रियदर्शनाये पणु एक हजार स्त्रीयो सहित दीक्षा अंगिकार करी. प्रभुये पांचसो मुनिओने जमालि मुनिनी नेसरायमां करी दीधा. अने एक हजार साध्वीओने प्रियदर्शना साध्वीनी नेसरायमां करी दीधी. जमालिना पांचसो शिष्य थया अने एक हजार साध्वीओ प्रिय दर्शनानी शिष्या थई. जमालि मुनिये श्री वर्धमान स्वामीनी

अथान्यदा जमालिमुनिर्भगवतः श्रीवीरवर्धमानस्वामिनं वन्दित्वा नमस्कृत्य कृताञ्जलिः सन् पप्रच्छ-भगवन् ! भवदाज्ञयाऽन्यत्र विहर्तुमिच्छामि ? तदा भगवता पृथग्विहारे जमालेर्लाभादर्शनात् मौनमवलम्बितम् । जमालिस्तु अप्रतिषिद्धमनुमतं भवतीति मत्वा भगवन्तं वन्दित्वा नमस्कृत्य पञ्चशतशिष्यैः सह तदन्तिकात् प्रतिनिष्क्रामति ।

अथाऽसौ पञ्चशतैरनगारैः सह ग्रामानुग्रामं विहरन् श्रावस्तीनगर्यां कोष्ठकनामके उद्याने समागतः । तत्र यथाप्रतिरूपमवग्रहं गृहीत्वा संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति ।

स्वामी के साथ विहार करते २ खूब तो तपश्चर्या की और ग्यारह अंगों का अध्ययन भी कर लिया ।

किसी समय जमालि मुनि ने भगवान श्री वर्धमानस्वामी को दोनों हाथ जोड़कर वन्दना एवं नमस्कार कर के पूछा कि हे भगवान् ! आपकी आज्ञा से मैं दूसरी जगह विहार करना चाहता हूँ । जमालि की बात सुनकर भगवान् ने इस अभिप्राय से कि इनका पृथग् विहार लाभकारी नहीं है, उनको कुछ भी उत्तर नहीं दिया किन्तु मौन रहे । भगवान् ने जब जमालि से कुछ भी नहीं कहा तो उन्होंने ने यह समझकर कि “अप्रतिषिद्धं अनुमतम्” अप्रतिषिद्ध अनुमत होता है, वहाँ से प्रभु को वन्दना नमस्कार करके अपने पांचसौ शिष्यों को साथ लेकर विहार कर दिया ।

पांचसो शिष्यो के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे श्रावस्ती

साथे विहार करतां करतां पूष तपश्चर्या करी अने अज्यार अंगोने। अब्यास पथु करी दीधो।

कैध अेक समथे जमालिमुनिअे लगवान श्री वर्धमान स्वामीने अे हाथ जेडीने वंदना नमस्कार करीने पूछथुं के, डे लगवत ! आपनी आज्ञाथी हुं भीलु अज्याअे विहार करवा धुंछुं छुं. जमालिनी आ वात सांलगीने लगवान अेमने। अुहो विहार लाभकारी नथी. अेवा अलिप्रायथी मौन रद्धा अने उत्तर न आप्थे। लगवाने अ्यारे जमालिने कांठ कछुं नडीं त्यारे तेमले अेम समलु दीधुं के, “अप्रतिषिद्धं अनुमतं भवति” मौन अे अनुमती छे, अेम समलुने त्यांथी प्रभुने वंदना नमस्कार करीने पोताना पांचसो शिष्ये साथे प्रभुथी अलग विहार करी दीधो।

पांचसो शिष्योनी साथे आमानुग्राम विहार करतां करतां तेअे श्रावस्ती

ततः खलु श्रमणो भगवान् महावीरोऽन्यदा कदाचित् पूर्वानुपूर्व्याचरन् यावत् सुखंसुखेन विहरन् यत्रैव चम्पानगरी यत्रैव पूर्णभद्रनामकमुद्यानं तत्रैवोपागतः, उपागत्य यथाप्रतिरूपमवग्रहं गृहीत्वा संयमेन तपसाऽऽत्मानं भावयन् विहरति ।

ततः खलु तस्य जमालेरनगारस्य शरीरेऽन्तप्रान्तरूक्षतुच्छाहारैरन्यदा कदाचित् विपुलरोगातङ्कः प्रादुर्भूतः । तदा स उपवेष्टुमशक्तःसन्ननगारान् प्राह—मम संस्तारकः शीघ्रं क्रियताम् । ते मुनयः संस्तारकं कर्तुं प्रवृत्ताः । जमालिस्तान् पुनः पुनः पृच्छति—संस्तारकः कृतो नो वा भवद्भिः ? त ऊचुः—संस्तारकः कृतो

नगरी के कोष्ठक नामक उद्यान में आये । वहां वनपाल से वसति की आज्ञा ग्रहण कर संयम एवं तप से अपनी आत्मा को भवित करते हुए विचरने लगे ।

श्रमण भगवान् महावीर ने भी कोई समय पूर्वानुपूर्वी से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे चंपानगरी के पूर्णभद्रनामक उद्यान में पधारे और यथाप्रतिरूप अवग्रह ( वसति की आज्ञा ) ग्रहण कर संयम एवं तप से आत्मा को भवित करते हुए विचरने लगे ।

इधर जमालि के शरीर में अन्त प्रान्त रूक्ष एवं तुच्छ आहार के लेने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो गये । इससे ये बैठने में भी अशक्त बन गये । इस स्थिति में इन्होंने अपने शिष्यों से कहा—मेरे लिए संस्तारक शीघ्र कर दो । मुनियों ने संस्तारक करना प्रारंभ कर दिया ।

नगरीना कोष्ठक नामना आगमां आवी पडोऽन्या. त्यां वनपाल पासेथी आज्ञा लधने उतथां. अने ते स्थणे संयम अने तपथी पोतानी आत्माने लवित करतां करतां विचरवा लाग्या.

श्रमणु भगवान् महावीर पणु कोष्ठ समय पूर्वानुपूर्वीथी ग्रामानुग्राम विहार करता करता चंपानगरीना पूर्णभद्र नामना आगमां पधार्या. अने यथाप्रतिरूप अवग्रह ( वसतीनी आज्ञा ) लधने संयम अने तपथी आत्माने लवित करतां करतां विचरवा लाग्या.

आ तरङ्क जमालिना शरीरमां अन्त, प्रान्त, रूक्ष तेमण तुच्छ आहार देवाथी अनेक प्रकारना रोगो उत्पन्न थया, आ रोगोना कारणे तेओ जेसवामां पणु अशक्त अनी गया. आ स्थितिमां तेमणु पोतानी शिष्योने कहुं के, भारे भाटे जह्दी संस्तारक (पधारी) करी हो. मुनियो संस्तारकनी तैयारी करवा लाग्या जमालिओ तेमने वारंवार पूछवा भाउथुं के, संस्तारक कथी के नडी ?

नास्ति, किं तु क्रियते, एवमुक्ते सति स जमालिर्मिथ्यात्वमोहनीयोदयात् सम्य-  
त्त्वपरिभ्रष्टः सन् व्यचिन्तयत्-क्रियमाणं कृतमिति जिनोक्तं सत्यं न भवितुमर्हति,  
यतोऽयं संस्तारकः क्रियमाणो न कृतः संस्तीर्यमाणोऽपि न संस्तृत इत्युच्यते ।  
इति मनसि विचिन्त्य तत्र सर्वान् मुनीनाहूय जमालिः प्राह—यत् क्रियमाणं तत्  
कृतम्, यच्चलत् तच्चलितम्, यदुदीर्यमाणं तदुदीरितम्, इत्यादि श्रीमहावीरस्वा-  
मिना यद् भाषितं तत् खलु मिथ्या, क्रियमाणे संस्तारके शयनरूपार्थसाधकत्वा-  
भावेन कृतत्वाभावात् ।

जमालि ने उनसे बार २ पूछना शुरू किया कि संस्तारक किया या नहीं ?  
उन्होंने ने कहा संस्तारक अभी नहीं किया है कर रहे हैं । इस  
प्रकार जब उन्होंने ने कहा तब मिथ्यात्वमोहनीय के उदय से  
सम्यक्त्व से पतित होकर जमालि ने विचार किया कि “ क्रियमाणं  
कृतम् ” जो किया जा रहा है वह “ किया गया ” ऐसा जो जिन  
भगवान ने कहा है वह सत्य नहीं हो सकता है, क्यों कि संस्तारक  
क्रियमाण है वह “ कृतः ” किया गया ऐसा नहीं कहा जा सकता है ।  
उसी तरह यह तो अभी “ संस्तीर्यमाण ” है बिछाया जा रहा है, इसे  
“ संस्तृतः ” बिछ गया है, ऐसे कैसे कह सकते हैं । इस प्रकार विचार  
कर उन्होंने ने अपने समस्त शिष्यों को बुलाकर कहा कि देखो भगवान्  
वीर प्रभु जो ऐसा कहते हैं कि “ क्रियमाणं कृतम् ” “ यच्चलत् तत्  
चलितम् ” “ यदुदीर्यमाणं तदुदीरितम् ” जो क्रियमाण है वह  
किया गया है, जो चल रहा है वह चल चुका है, जो उदय में आ

शिष्योऽप्ये कथं के, संस्तारक उच्यते इति परंतु करीये छी अये आ प्रकारे  
अ्यारे शिष्योऽप्ये कथं, त्यारे मिथ्यात्व मोहनीयता उदयथी सम्यक्त्वथी पतित  
थर्धने अमालिअये विचार करीये के, “ क्रियमाणं कृतं ” अे करवाभां आवे छे ते  
“ थर्धं युक्युं ” अेवुं अे अन लगवाने कथं छे ते सत्य इरतुं नथी. केम के  
संस्तारक क्रियमाण छे ते “ कृतः ” थर्धं युक्युं छे अेम कही शकय नहि.  
आ प्रमाणे आ अे उमथ्यां “ संस्तीर्यमाण ” छे-भीछाववाभां आवे छे अेने  
भीछावी दीधल छे अेम केम कही शकय ? आ प्रमाणे विचार करीने तेमले  
पोताना समस्त शिष्येने मोदावीने कथं के, अनुओ लगवान वीर प्रभु अे अेम  
कडे छे के, “ क्रियमाणं कृतम् ” “ यच्चलत् तत् चलितम् ” “ यदुदीर्यमाणं तदु-  
दीरितम् ” अे क्रियमाण छे ते थर्धं युक्युं छे, अे यादी रह्युं छे, ते यादी



કૃતે સંસ્તારકે શયનાદ્યર્થક્રિયાકારિત્વં વિદ્યતે, કરણસમયે તુ નાસ્તિ તાદૃશી અર્થક્રિયા, અતઃ ક્રિયમાણં કૃતમિતિ વ્યપદેશઃ કથં સ્યાત્ ? । કિન્ન-ક્રિયમાણમિતિ વર્તમાનવ્યપદેશઃ, કૃતમિતિ ચ ભૂતવ્યપદેશઃ, વર્તમાનત્વં ભૂતત્વં ચ પરસ્પરવિરુદ્ધમિતિ પરસ્પરવિરુદ્ધયોસ્તયોરેકતા ન સ્યાત્, વર્તમાનધ્વંસપ્રતિયોગિત્વસ્ય ભૂત-ત્વાદિતિ મહાવીરસ્વામિના યત્ પ્રતિપાદિતમ્-‘ કરેમાણે કઢે ચલમાણે ચલિણ્ ’

રહા હૈ વહ ઉદય મેં આચુકા હૈ ” સો વહ સબ મિથ્યા હૈ, કારણ કિ ક્રિયમાણ સંસ્તારક મેં શયનરૂપ અર્થક્રિયા કે પ્રતિ સાધકત્વ કા અભાવ હોને સે વહાં કૃતત્વ નહીં આ સકતા હૈ ।

સંસ્તારક ( વિસ્તર ) કરને કે ઘાદ હી ઉસમેં શયનાદિરૂપ અર્થ ક્રિયાકારિતા આતી હૈ, પરન્તુ સંસ્તારક કરને કે સમય મેં ઉસમેં ઉસ પ્રકાર કી અર્થક્રિયાકારિતા નહીં હૈ, ફિર “ ક્રિયમાણં કૃતમ્ ”-ક્રિય-માણ કૃત હોતા હૈ-યહ વ્યપદેશ કૈસે હો સકતા હૈ ? ।

ઔર મી-“ ક્રિયમાણમ્ ” યહ વર્તમાન કાલ કા કથન હૈ ઔર “ કૃતમ્ ” યહ ભૂતવ્યપદેશ હૈ । ભૂત ઔર વર્તમાન પરસ્પર વિરુદ્ધ હૈ, ઔર પરસ્પર વિરુદ્ધ દો પદાર્થો કી એકતા નહીં હો સકતી હૈ, ક્યોં કિ વર્ત-કાલ મેં વિદ્યમાન જો ધ્વંસ ઉસકે વિરોધી કા નામ હૈ ભૂત, એતાદૃશ ભૂત ઔર વર્તમાન યે દોનોં એક અધિકરણ મેં નહીં રહ સકતે હૈ । ફિર જો મહાવીર સ્વામી ને કહા હૈ કિ ક્રિયમાણં કૃતમ્, ચલત્ ચલિતમ્

ચુક્યું છે, જે ઉદયમાં આવી રહેલ છે તે ઉદયમાં આવી ચુકેલ છે, એ અધું સધળું મિથ્યા છે. કારણ કે, ક્રિયમાણ સંસ્તારકમાં શયનરૂપ અર્થ ક્રિયામાં સાધકત્વના અભાવથી ત્યાં કરેલ છે એમ આવી શકતું નથી.

સંસ્તારક (પથારી) કયાં પછી જ તેમાં શયનાદિરૂપ “ ક્રિયાકારિતા ” આવે છે. પરન્તુ સંસ્તારક કરતી વખતે તો તેમાં તેવા પ્રકારની ‘ અર્થક્રિયા કારિતા ’ આવતી નથી. તો પછી ક્રિયમાણં કૃતમ્-ક્રિયમાણ કૃત થાય છે, એવો વ્યવહાર કેવી રીતે થઈ શકે ?

વળી “ ક્રિયમાણમ્ ” એ વર્તમાનકાળનું કથન છે. અને “ કૃતમ્ ” એ ભૂતકાળનો વ્યવહાર છે. ભૂત (કાળ) અને વર્તમાન એ બંને પરસ્પર વિરુદ્ધ અર્થવાળાં છે. એટલે પરસ્પર વિરુદ્ધ એવા એ પદાર્થોની એકતા થઈ શકતી નથી. કેમકે વર્તમાનકાળથી વિરુદ્ધ ભૂત (કાળ) છે, એવા પ્રકારનો ભૂત અને વર્તમાન એ બંને એક અધિકરણમાં રહી શકતા નથી. તો પછી મહા-વીર સ્વામીએ જે કહ્યું છે કે, “ ક્રિયમાણં કૃતમ્ ” “ ચલત્ ચલિતમ્ ”-વિગેરે



इत्यादि, तत्सर्वमसंबद्धमेवेति । एवं मिथ्यात्वमोहनीयोदयात् जमालिषुन्मार्गगतं ज्ञात्वा स्थविरा अवदन्-जमाले ! भगवत आशयं न जानासि, भगवान् आप्तः, विगतदोषसत्यवक्ता, तन्मतमनेकान्तवादात्मकम्, एकोपि पदार्थः अपेक्षाभेदेन अनेकरूपो भवति, यथा एक एव पुरुषः अपेक्षाभेदेन जामाता श्यालकः पुत्रः पिता च । तथैव प्रकृतेऽपि क्रियमाणत्वेपि संस्तारके कृतत्वं संभवति । पटस्य क्रियमाणतायां 'कृतः पटः' इत्यादिवत् । ननु कथं क्रियमाणं पटादिकं कृतं स्यादिति चेत्त्रोच्यते-पटस्योत्पद्यमानताकाले प्रथमतन्तुप्रवेशे उत्पद्यमान एव पट उत्पन्नो

- 'इत्यादि' सो यह श्रद्धेय नहीं है । इस प्रकार भाग्यदोष से जमालि को विपरीत मार्ग में जाते हुए देखकर स्थविरां ने कहा-हे जमालि ! आप भगवान के आशय को नहीं जानते हो । भगवान सर्व दोष-रहित यथार्थवक्ता हैं । भगवान का मत अनेकान्तरूप है । एक ही पदार्थ अपेक्षा-भेद से अनेकरूप होता है । जैसे एक ही पुरुष श्वशुर की अपेक्षा से जामाता कहलाता है, बहनोई की अपेक्षा साला कहलाता है पिता की अपेक्षा से पुत्र कहलाता है, पुत्र की अपेक्षा से पिता कहलाता है । उसी प्रकार प्रकृत में आपका विस्तर हो भी रहा है, हो भी गया है, ऐसा कह सकते हैं । जैसे कि पट की क्रियमाणता में भी कृतत्व का व्यवहार होता है उसी तरह । पुनः प्रश्न करता है कि जो क्रियमाण है वह कृत कैसे हो सकता है ? इसका उत्तर देते हैं-पट के उत्पत्तिकाल में प्रथम तंतु के प्रवेश समय में भी वह उत्पन्न होना ही है

ते श्रद्धा करवा योग्य नथी. आ प्रभाषे लाज्यदोषथी विपरीत भागे जाता जमालीने जेध ते स्थविराये तेअने कहुं के-डे जमालि ! तमे भगवानना आशयने जाणुता नथी. भगवान सर्वदोष रहित सायुं जालवावाणा छे. भगवानना मत अनेकान्त रूप छे. अेक ज पदार्थ अपेक्षा लेहथी अनेकरूप थाय छे. जेम अेक ज पुरुष ससरानी आगण जमार्ध कडेवाय छे. अनेवीनी आगण साणो कडेवाय छे. अने पिता आगण पुत्र कडेवाय छे. अने तेज पुरुष पुत्र आगण पिता कडेवाय छे. अेवी ज रीते प्रस्तुतमां आपनी पथारी थध रडी छे. थध पणु गध छे. अेवु कडेवामां आवे छे. जेवी रीते पटनी क्रियमाणतामां कृतत्वनेा व्यवहार थाय छे तेवी ज रीते.

इरीथी प्रश्न करे छे के-जे क्रियमाण छे ते कृत केवी रीते थध शके ? अेना उत्तर आपतां कडे छे के-पटना उत्पत्तिकालमां प्रथम तन्तुना प्रवेश समये पणु ते उत्पन्न थाय ज छे. केभके प्रथमतन्तुप्रवेश कालथी ज " पट

भवति, उत्पद्यमानता च पटस्य प्रथमतन्तुप्रवेशकालादारभ्यैव भवति तदैव 'पट उत्पद्यते' इति व्यवहारदर्शनात् । उत्पन्नत्वमपि तस्य पटस्य तत्काले एवं, तथाहि—उत्पत्तिक्रियाकाले—प्रथमतन्तुप्रवेशे एवासौ उत्पन्नोऽभूत्, अन्यथा उत्पत्तिक्रियाकाले यदि तस्य पटस्योत्पत्तिर्न स्वीक्रियेत तदा प्रथमक्रिया निरर्थिका स्यात्, कार्यकरणमेव धर्मः क्रियायाः । यदि प्रथमक्रिया उत्पत्तिरूपं कार्यं न कुर्यात् तदा सा निरर्थिकैव स्यात्, उत्पाद्योत्पादनमेव क्रियाया धर्मः । एवं यथा प्रथमक्षणे पटो नोत्पन्नस्तथा द्वितीयक्षणेऽपि नोत्पन्न एवं, तृतीयादावपि क्षणे नोत्पन्न इति अन्तिमक्रिययापि अनुत्पन्न एवं स्यात्, युक्तेः सर्वत्र समानत्वात् । यदा तु प्रथमादिक्रियया न किमपि फलमुत्पादितं तदा अन्त्यया फलं स्यादिति प्रत्याशामात्रमेव, दृश्यते चान्त्यतन्तु'

क्यों कि प्रथमतन्तुप्रवेश—काल से ही 'पट उत्पन्न होता है' ऐसा व्यवहार देखने में आता है । तथा उत्पन्नत्व भी उस पट में उस काल से ही है, क्यों कि उत्पत्तिक्रियाकाल में प्रथम तन्तु के प्रवेश होने पर ही पट उत्पन्न हो गया, यदि उस पट की उत्पत्ति स्वीकार नहीं करें तो वह प्रथम क्रिया निरर्थक हो जायगी, कारण कि कार्योत्पाद ही क्रिया का धर्म है । यदि ऐसा मानें कि प्रथम क्षण में पट उत्पन्न नहीं हुआ तो इसी तरह द्वितीय क्षण में भी उत्पन्न नहीं होगा, तृतीय क्षण में भी उत्पन्न नहीं होगा, इस तरह से अन्तिम क्रिया तक पट की उत्पत्ति नहीं होगी, क्यों कि युक्ति सर्वत्र समान है ।

यदि प्रथम क्रिया से कुछ भी फल नहीं हुआ तो अन्तिम क्रियासे भी उत्पादरूप फल का होना असंभव ही है, परन्तु देखने में आता है कि

उत्पन्न थाय छे ” अवेा व्यवहार जेवामां आवे छे. तथा उत्पन्न थवापणुं पणु ते पटमां ते काणथी ज छे, केमके उत्पत्तिक्रियाकाणमां प्रथमतन्तुना प्रवेश थतानी साथे ज पट उत्पन्न थर्ध गथुं, जे ते पटनी उत्पत्तिनेा स्वीकार न करीअे तो ते प्रथमक्रिया निरर्थक थर्ध जशे. कारणु के कार्यनी उत्पत्तिज क्रियानेा धर्म छे. कदाय जे अेम मानीअे के प्रथम क्षणमां पट उत्पन्न थयुं नथी. तो अेवी ज रीते णील क्षणमां पणु उत्पन्न नछिं थाय, तेमज त्रीअ क्षणमां पणु उत्पन्न थशे नछी. अेवी ज रीते अन्तिमक्रिया सुधी पटनी उत्पत्ति थशे नछी, केमके क्रिया सर्वत्र अेकसरणी होय छे.

जे प्रथम क्रियाथी कर्ध पणु इल न थयुं तो अन्तिम क्रियाथी पणु उत्पादरूप इलतुं थयुं असंभव ज छे. परंतु जेवामां आवे छे के अन्तिम

प्रवेशे पटस्योत्पत्तिरिति प्रथमसमयादारभ्य किञ्चित् कार्यं सर्वैरपि क्षणैः कृतमिति मन्तव्यम् । यदि प्रथमक्रियया नोत्पन्नः पटस्तदा उत्तरक्रिययापि नोत्पन्नः स्यादिति सर्वदैव पटानुत्पत्तिप्रसंगः, स च न कस्यापि इष्टः, अतः प्रथमतन्तुप्रवेशकाले एव किञ्चिदुत्पन्नपटस्य यावान् अंशो नोत्पन्नः स एवांशः उत्तरक्रियया उत्पाद्यते यदि पुनरुत्पद्येत तदा एकदेशेनैव उत्पादनं क्रियाया इति स्वीकर्तव्यम् । यदि प्रथमांशोत्पादननिरपेक्षा द्वितीयादिक्रिया तदैव द्वितीया फलवती स्यात्, नान्यथा, ततश्च यथा उत्पद्यमान एव पट उत्पन्नः, तथा क्रियमाणमेव संस्तारकं कृतमिति—

अन्तिम तन्तु के प्रवेश होने पर पट की उत्पत्ति होती है इसलिये 'पट उत्पन्नः'—ऐसा व्यवहार होता है, अतः ऐसा मानो कि प्रथम समय से लेकर कुछ र कार्य सभी क्षणों में होता है। यदि कदाचित् प्रथम क्रिया से पट उत्पन्न नहीं हुआ तो द्वितीय से भी उत्पन्न नहीं होगा, तृतीय से भी नहीं होगा, इस प्रकार अन्तिम क्रिया से भी नहीं होगा तो पट की कभी भी उत्पत्ति नहीं होगी। परन्तु यह किसी को भी इष्ट नहीं है। अतः प्रथमतंतुप्रवेशकाल में भी थोड़ा पट उत्पन्न हुआ, और जो अंश अनुत्पन्न है वह द्वितीयादि क्षणों में होता है। इस प्रकार यह सिद्धान्त होता है कि क्रिया को एक देश से ही उत्पादकत्व है, और यह आपको भी मानना पड़ेगा। यदि प्रथम अंश के उत्पादन से निरपेक्ष द्वितीय क्रिया को मानोगे तभी द्वितीयादि क्रियायें सार्थक होंगी, अन्यथा नहीं। तब जैसे प्रथम क्रिया से उत्पन्न होते हुए पट की उत्पत्ति द्वितीयादि क्रिया से होती है उसी प्रकार

तन्तुना प्रवेश यतानी साथे ज पटनी उत्पत्ति थाय छे. अटला भाटे "पटः उत्पन्नः" अयेवा व्यवहार थाय छे. अटले अेषुं मानवुं जेधये के प्रथम समयथी लधने हरेक क्षण्णे कंठक कंठक कार्यं थाय छे ज. जे कदाय प्रथम क्रियाथी पट उत्पन्न न थयुं तो भीलथी पण्ण उत्पन्न थथे. नही. अने त्रीलथी पण्ण उत्पन्न थथे नहि. तेवी ज रीते अन्तिम क्रियाथी पण्ण थथे नही, अने अे रीते तो पटनी कोध रीते उत्पत्ति थथे ज नही. परंतु अे वात कोध मानी शके तेम नथी. अटले प्रथमतन्तुप्रवेशकालमां पण्ण पटनेा थोडा भाग उत्पन्न थथे, अने जे अंश उत्पन्न नथी थथे, ते भील त्रील विगेरे क्षण्णोमां थाय छे. आ रीते अे वात सिद्ध थाय छे के क्रियाना अेक देशथी ज उत्पादकत्व छे. अने अे वात तभारे पण्ण मानवी पडथे. जे प्रथम अंशना उत्पादनथी निरपेक्ष द्वितीय क्रियाने मानशाे त्पारे ज द्वितीयादिक्रियाओ सार्थक थथे. अन्य रीते नही. तो जेवी रीते प्रथम क्रियाथी उत्पन्न थता पटनी उत्पत्ति द्वितीयादि

वक्तुं शक्यते । व्यवहारनये तु प्रथमक्रियाकालादारभ्यान्तिमक्रियाकालपर्यन्तमुत्पन्न इति व्यपदेशो भवति, निश्चयनये तु अन्तिमक्रियासमये एवोत्पन्न इति व्यवहारो भवतीति । हे जमाले ! निश्चयनयव्यवहारनयौ आश्रित्यैव भगवतो महावीरस्य प्रवचनं क्रियमाणं कृतमिति न तु एकनयापेक्षं भगवतो वचनं, येन भवतां विरोधाभासो भातीति,

अथवा—प्रकारान्तरेण जमालेः पूर्वपक्ष उन्नेयः । तथाहि—क्रियमाणस्य कार्यस्य यदि कृतत्वं मन्यते । तदा—कृतमेव क्रियमाणं भवतीत्यायातम् । ततश्च पूर्वनिष्पन्नस्यैव पुनः क्रियाया उत्पत्तिरभ्युपेयेत, इति—चिरोत्पन्नस्यापि पदार्थस्य पुनरुत्पादः स्यात् । परन्तु कृतस्य क्रियमाणता प्रमाणविरुद्धा । अत्राऽयमनुमान प्रयोगः—कृतं क्रियमाणं न भवति ।

क्रियमाण भी आपके संस्तरक को “ कृत ” कह सकते हैं ।

हे जमालि ! व्यवहार नय को लेकर तो प्रथम क्रियाकाल से लेकर अन्तिम क्रियाकाल तक ‘उत्पन्न’ यह व्यवहार होता है और निश्चय नय को लेकर तो अन्तिम क्रिया के समय में ही ‘उत्पन्न’ ऐसा व्यवहार होता है । हे जमालि ! निश्चय नय और व्यवहारनय को लेकर ही भगवान महावीर ने ‘क्रियमाणं कृतम्’—क्रियमाण कृत है—ऐसा कहा है, एक नय को लेकर भगवानने नहीं कहा है । आपको जो विरोधाभास मालूम होता है वह एक नय की अपेक्षा से, दोनों नय की अपेक्षा से तो कोई विरोध नहीं है ।

अथवा—जमालि के पूर्व पक्ष का प्रकारान्तर से अनुगम करना चाहिये, सो इस प्रकार—यदि क्रियमाण कार्य में कृतत्व मानते हैं तो

क्रियाथी थाय छे तेजरीते “क्रियमाण” पक्ष आपना संस्तरकने कृतकडी शक्य छे. हे जमालि ! व्यवहारनयने स्वीकारतां प्रथम क्रियाकाणथी भांडीने ते अन्तिम क्रियाकाण सुधी ‘उत्पन्न’ एवो व्यवहार थाय छे, अने निश्चय नयने स्वीकारतां तो अन्तिम क्रियाना समयभां ज ‘उत्पन्न’ एवो व्यवहार थाय छे. भाटे हे जमालि ! निश्चय अने व्यवहार एे अने नयने स्वीकारीने तो भगवान महावीरे ‘क्रियमाणं कृतम्’—क्रियमाणं कृत’ एवुं इरभांयुं छे. ओक नयने स्वीकारीने भगवाने इरभांयुं नथी. आपने जे विरोधाभास देखाय छे ते तो ओक नयनी अपेक्षाना कारणेज छे. जे नयनी अपेक्षाये तो केछ विरोध नथी.

अथवा जमालिना पूर्वपक्षने प्रकारान्तरथी अनुगम (लक्ष्यपक्ष) करवे जेछे, ते आवी रीते—जे क्रियमाण कार्यभां कृतत्व मानशा तो तेना अलि-प्राय एे थये के कृत कार्य पक्ष क्रियमाण गण्य थारे तो आप पूर्वोत्पन्ननी

अत्रायमनुमानप्रयोगः—कृतं क्रियमाणं न भवति कृतत्वात् पूर्वनिष्पन्नघटव-  
दिति । यद् विद्यमानं तन्न केनचित् क्रियते यथा पूर्वनिष्पन्नो घटः ।

यदि कृतमेव क्रियमाणं मन्यते तदा बह्वो दोषाः स्युः, तथाहि—यदि कृत-  
मपि क्रियते इति मन्यते, तर्हि कृतोऽपि घटः पुनः पुनः सततं क्रियताम् कृत-  
त्वाविशेषात्, एवं चानवरतं घटोत्पत्तिक्रियाया एव सत्त्वात् कदाचिदपि क्रिया-  
परिसमाप्तिर्न स्यात् । एवं सत्येकस्यापि कार्यस्य निष्पत्तिर्न स्यात् ॥ १ ॥

इसका अभिप्राय यह हुआ कि कृत कार्य भी क्रियमाण होता है, तब  
तो आप पूर्वोत्पन्न की ही पुनः क्रिया द्वारा उत्पत्ति स्वीकार करते हैं,  
ऐसी स्थिति में बहुत पूर्व उत्पन्न हुए पदार्थ की भी फिर से उत्पत्ति  
होने लगेगी, परन्तु कृत की क्रियमाणता प्रमाणविरुद्ध है ।

यहां अनुमान प्रयोग इस प्रकार बनाना चाहिये—“कृतं क्रियमाणं  
न भवति, कृतत्वात् पूर्वनिष्पन्नघटवत्” अर्थात् जिस प्रकार पूर्वनिष्पन्न  
घट में क्रियमाण ऐसा व्यवहार नहीं होता है उसी प्रकार जो कृत  
होता है वह क्रियमाण नहीं होता है, क्यों कि वह कृत है । तथा  
“यद्विद्यमानं तन्न केनचित् क्रियते, यथा पूर्वनिष्पन्नो घटः” जो  
विद्यमान है वह किसी के द्वारा किया नहीं जा सकता है जैसे पूर्वनि-  
ष्पन्न (पहले बना हुआ) घट ।

यदि कृत ही क्रियमाण माना जाय तो इसमें अनेक दोष आते हैं,  
वे इस प्रकार से यदि कृत पदार्थ में भी “क्रियते” इस प्रकार का  
व्यवहार माना जाय तो कृत-क्रिया गया भी जो घट है उस में भी  
पुनः पुनः करने का प्रसंग प्राप्त होता है, क्यों कि उसमें कृतत्व की  
कोई विशेषता नहीं है । इस प्रकार निरन्तर घटोत्पत्तिरूप क्रिया के

જ ફરીને ક્રિયાદ્વારા ઉત્પત્તિનો સ્વીકાર કરો છે. એ સ્થિતિમાં બહુ પહેલાં થયેલ  
પદાર્થની ઉત્પત્તિ ફરીથી થવા માંડશે, પરંતુ કૃતની ક્રિયમાણતા પ્રમાણથી વિરુદ્ધ છે.

અહીં અનુમાન પ્રયોગ આ પ્રકારે બનાવવો જોઈ એ “કૃતં ક્રિયમાણં ન  
ભવતિ કૃતત્વાત્ પૂર્વનિષ્પન્નઘટવત્” અર્થાત્ જે પ્રકારે પૂર્વ નિષ્પન્ન ઘટમાં ક્રિયમાણ  
એવો વહેવાર ન થતો હોય તો તે કાર્ય ક્રિયમાણ બની શકતું નથી. કારણ કે, તે કૃત  
છે. જે વિદ્યમાન છે તે કોઈના દ્વારા કરવામાં આવતું નથી. જેમ પૂર્વ નિષ્પન્ન ઘટ !

જે કૃતને જ ક્રિયમાણ માનવામાં આવે તો એમાં અनेક દોષ આવે છે.  
આ પ્રકારે જે કૃત પદાર્થમાં પણ “ક્રિયતે” આ પ્રકારનો વહેવાર માનવામાં  
આવે તો કરવામાં આવેલ જે ઘટ છે એમાં પણ ફરી ફરી કરણનો પ્રસંગ  
પ્રાપ્ત થાય છે. કેમ કે, એમાં કૃતત્વની કોઈ વિશેષતા નથી. આ પ્રકારે નિરં-



यदि कृतमपि क्रियते, तदाऽन्येऽपि दोषाः सन्ति, तथाहि—यदि कृतमपि क्रियते, अर्थात्—क्रियमाणं कृतं मन्यते तदा घटादिकार्योत्पादनार्थं मृन्मर्दनचक्र-भ्रमणादिकायाः क्रियाया वैफल्यं स्यात्, तस्मिन् काले कार्यस्य घटस्य कृतत्वाभ्युपगमात्, तस्य प्रागेव सत्त्वात् ॥ २ ॥

किञ्च—कृतं क्रियते इति यन्मन्यते तत्र प्रत्यक्षविरोधः, यस्मादुत्पत्तेः पूर्वं मृत्पिण्डावस्थायामविद्यमानं, पश्चात् कुम्भकारादिव्यापारे घटादिकार्यजायमानं दृश्यते उत्पत्तिकाले, तस्मादकृतमेव क्रियमाणं भवति ॥ ३ ॥

सद्भाव से कभी भी वहाँ भवन-होने-रूप क्रिया की परिसमाप्ति नहीं हो सकने के कारण किसी भी कार्य की पूर्णरूप से निष्पत्ति नहीं हो सकेगी। यह कार्यअनिष्पत्तिरूप प्रथम दोष है ॥ १ ॥

यदि कृत भी “क्रियते” ऐसा माना जाय अर्थात् जो हो चुका है वह भी किया जाता है ऐसा ही पक्ष स्वीकार किया जाय तो इसका यह भी तात्पर्य होता है कि जो क्रियमाण है—हो रहा है—वह हो चुका ऐसा कहा जाता है तो इस पक्ष में यह सब से प्रबल दोष उपस्थित होता है कि घटादि कार्य की उत्पत्ति के लिये जो मिट्टा का मर्दन चाक का भ्रमण आदि क्रियाएँ की जा रही हैं ये सब निष्फल हो जाती हैं, क्यों कि क्रियमाण अवस्था में भी घट कृत तो हो चुका तब उसके वर्तमान होनेसे निष्पन्न करने की क्या आवश्यकता रही? यह दूसरा पक्ष है ॥ २ ॥

और भा—“कृतं क्रियते” यह व्यवहार इसलिये भी दूषित साबित होता है कि जबतक घट उत्पन्न नहीं हो जाता है तब तक वह मृत्पिण्ड

तर घटोत्पत्तिरूप क्रियाना सदृशावथी कही पणु त्यां लवन-थवाऽपु क्रियानी परिसमाप्ति न थर्ध शकवाना कारणे कैर्ध पणु कार्यनी पूर्णरूपथी निष्पत्ति थर्ध शकथे नही. आ कार्य अनिष्पत्तिरूप प्रथम दोष छे. ॥ १ ॥

जे कृत पणु “क्रियते” जेम मानवामां आवे अर्थात् जे जनी गयेल छे ते पणु करवामां आवी रह्यु छे तेवे स्वीकार करवामां आवे तो तेनुं जे तात्पर्य थाय छे के, जे क्रियमाणु छे जनी रह्यु छे ते जनी चुकथुं जेम कडे-वामां आवे छे तो आ पक्षमां जे जघाथी मोटेो दोष उपस्थित थाय छे. घटादिकार्यनी उत्पत्ति माटे जे माटीनुं मर्दन जने याकनुं भ्रमणु आदि क्रियाजो करवामां आवे छे ते जधी निष्पन्न जनी जय छे. केमके, क्रियमाणु अवस्थामां पणु घट कृत तो थर्ध जये तो जेनुं वर्तमान थवाथी निष्पन्न करवानी कर्ध आवश्यकता रह्यी ? आ जीजे सुदो. ॥ २ ॥

वणी—“कृतं क्रियते” आ व्यवहार जेटला माटे पणु दूषित साभीत थाय छे के, ज्यां सुधी घट उत्पन्न नथी थतो त्यां सुधी ते माटीना पिंडनी



अथ यस्मिन्नेव समये घटादिकार्यं प्रारभ्यते, तस्मिन्नेव समये निष्पद्यते, अतो निष्पन्नमेव तत् क्रियते-इति चेन्नैवम्, यस्मात् घटादिकार्याणामुत्पद्यमानानामसंख्येयसमयरूपो दीर्घ एवं निर्वर्तनक्रियाकालो दृश्यते, अतो न यस्मिन्नेव

-अवस्था में अविद्यमान रहता है, कुम्भकारादिक के व्यापार के बाद ही वह उत्पन्न हुआ माना जाता है। इसलिये जो अकृत होता है वही किया जाता है कृत नहीं किया जाता, ऐसा मानना चाहिये। यह तीसरा पक्ष है।

यदि कोई “कृतं क्रियते” इस व्यवहार को सत्य साबित करने के लिये ऐसा कहे कि-जिस समय में घटादिक कार्य बनना प्रारंभ होता है वह उसी समय में निष्पन्न हो जाता है इसलिये जब निष्पन्न ही घट क्रिया जाता है तब “कृतमेव क्रियते” इस प्रकार के व्यवहार में कौनसी बाधा आती है? सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है, क्यों कि उत्पद्यमान घटादिक कार्यों की उत्पत्तिरूप क्रिया का वह समय असंख्यातसमयरूप बहुत भारी काल है। ऐसा नहीं है कि जिस समय घट बनना प्रारंभ होता है वह उसी समय निष्पन्न हो जाता है। इसके बनने में तो बहुत समय लगता है। मिट्टी का लाना, उसका पिंड बनाना, उसे चक्र पर रखना शिवक आदि पर्याय में उसे परिणमित करना, इस प्रकार घट की उत्पत्ति होने में बहुत अधिक समय लग जाता है,

अवस्थाમાં ઘટ તરીકે તો અવિદ્યમાન રહે છે. કુમ્ભકારાદિકના વ્યાપાર બાદ જ તે ઉત્પન્ન થયેલ માનવામાં આવે છે. આ માટે જે અકૃત હોય છે તેજ કરવામાં આવે છે. કૃત નથી કરાતું એવું માનવું બેધએ. આ ત્રીજો મુદ્દો છે. ॥ ૩ ॥

બે ઠાઈ “કૃતં ક્રિયતે” આ વ્યવહારને સાચો સાબીત કરવા માટે એવું કહે કે જે સમયમાં ઘટાદિક બનાવવાના કાર્યનો પ્રારંભ થાય છે તે એ સમયમાં પુરું થાય છે માટે બ્યારે નિષ્પન્ન જ ઘટ કરવામાં આવે છે. ત્યારે “ક્રિયતે” આ પ્રકારના વ્યવહારમાં કઈ બાધા આવે છે? તેથી એમ કહેવું એ પણ ઠીક નથી. કેમકે, ઉત્પદ્યમાન ઘટાદિક કાર્યોની ઉત્પત્તિરૂપ ક્રિયાનો તે સમય અસંખ્યાત સમયરૂપ ઘણો ભારે કાળ છે. એવું નથી કે, જે સમયે ઘટ બનવાનો પ્રારંભ થાય છે તે તેજ સમયે નિષ્પન્ન થઈ જાય છે. તેના બનવામાં તો ઘણો સમય લાગે છે. માટીને લાવવી, તેને કચરીને તેનો પિંડ બનાવવો, તે પછી તેને આકડા ઉપર ચઢાવવો, તેને આકાર આપવો, આ રીતે ઘટની ઉત્પત્તિ થવામાં ઘણો જ લાંબો સમય લાગે છે. આથી જે સમયે ઘટને બનાવવાનો

समये घटादि प्रारभ्यते, तस्मिन्नेव समये निष्पद्यते, मृदानयनतत्पिण्डविधान-  
चक्रारोपणशिवकादिविधानादिभिश्चिरकालेनैव तदुत्पत्तिर्भवति ॥ ४ ॥

अस्तु दीर्घः कार्यनिर्वर्तनक्रियाकालः क्रियायाः प्रथमसमय एव कार्यं  
निष्पद्यते, इति चेन्न, यदि क्रियायाः प्रथमसमय एवं कार्यं निष्पद्येत, तर्हि  
तत् तत्रैवोपलभ्येत, न चारम्भसमय एव घटादिरूपं कार्यं दृश्यते, नापि शिवक-  
स्थास-कोश-कुशूलादिसमये दृश्यते । किंतु दीर्घक्रियाकालस्यान्ते घटादिरूपं कार्यं  
दृश्यते, तस्मात् क्रियाया आरम्भकाले कार्यं निष्पद्यते, इति कथनं न युक्तम्, तस्य

अतः “ जिस समय में घट का बनना प्रारंभ होता है वह उसी समय  
में बन जाता है ” यह कहना अनुचित है । यह चौथा पक्ष है ॥४॥

यदि कोई फिर भी ऐसा कहे कि कर्म को निर्वर्तन करने वाली  
क्रिया का काल भले ही अधिक हो इसमें हमें कोई आपत्ति नहीं है,  
परन्तु क्रिया से जो कार्य निष्पन्न होना होता है वह उस क्रिया के प्रथम  
समय में ही निष्पन्न हो जाता है, सो ऐसा कहना भी ठीक नहीं है ।  
कारण कि यदि क्रिया के प्रथम समय में ही कार्य निष्पन्न हो जाता है  
तो वह उस समय ही दिखना चाहिये-परन्तु ऐसा तो होता नहीं है,  
और न विवक्षित कार्य कोश कुशूल शिवक स्थासक आदि समयों में  
प्रतीत होता है, किन्तु दीर्घक्रियाकाल के अन्त में ही निष्पन्न हुआ  
दिखलाई देता है । इसलिये ऐसा मानना कि क्रियाके आरंभकाल में ही  
घट बनकर तैयार हो जाता है, यह कथमपि-किसी तरह भी युक्तियुक्त

प्रारंभ थाय छे अत्र समये ते अनि नय छे अत्र कडेवुं अनुचित छे. आ  
थेथे भुदो छे. ॥ ४ ॥

जे कोछे इरी पणु अत्र कडे के, कर्मने निर्वर्तन करवावाणी क्रियाने  
काण लवे अधिक छेय अत्र अत्रने कोछे वांधो नथी. परंतु क्रियाथी जे  
कार्यं निष्पन्न थवुं जेछे ते अत्र क्रियाना प्रथम समयमां ज निष्पन्न अनि  
नय छे. तेम कडेवुं पणु ठीक नथी. कारण के, जे क्रियाना प्रथम समयमां ज  
कार्यं निष्पन्न थछे नय छे, तो ते ते समये ज देभावुं जेछे परंतु अत्रुं तो  
अनंतुं नथी. अने विवक्षित कार्यं, कोश, कोहाणी, आकार, स्थासक आदि  
समयमां प्रतीत थतो नथी. परंतु दीर्घ क्रियाकाणना अंतमां ज निष्पन्न थयेल  
देभाय छे. आ माटे अत्रुं भानीअे के क्रियाना आरंभ काणमां ज घट अनिने  
तैयार थछे नय छे. तो आ कोछे पणु रीते भानी शकय तेवुं नथी. आथी

तदानीमदर्शनात् । दीर्घक्रियाकालस्यान्ते तु कार्यं भवितुमर्हति, तदानीमेव तस्य दर्शनात् । तदेवं न निर्वर्तनक्रियाकाले कार्यमस्ति, अनुपलभ्यमानत्वात्, किंतु तन्निष्ठाकाल एव तदस्ति, तत्रैवोपलभ्यमानत्वात्, क्रियाकालनिष्ठाकालयोश्चात्यन्त-भेदात्, अतः क्रियमाणं कृतं न भवति । सर्वलोकप्रत्यक्षानुभवसिद्धमेवैतत् ॥ ५ ॥ इति जमालेः पूर्वपक्षः ।

एवं मार्गविच्युतं जमालिं प्रति स्थविराः प्रोचुः—आर्य ! किं विरुद्धवचनं वदसि ?, रागद्वेषरहितानां सर्वज्ञानां जिनानां वचने दोषलेशोऽपि नास्ति, नहि ते मृषा भाषन्ते । आर्य ! “ कृतं न क्रियते, कृतत्वात्, कृतघटवत् ” इति कुतर्कमा-

नहीं हो सकता है, अतः “ अनुपलभ्यमानत्वात् निर्वर्तनक्रियाकाले विवक्षितघटरूपं कार्यं नास्ति इति मन्तव्यम् ” जब यह बात निश्चित हो जाती है तो यह बात भी स्वतः मान लेनी पड़ती है कि कार्य अपने निष्ठाकाल में ही बनकर तयार होता है, क्यों कि वही पर उसकी उपलब्धि होती है । क्रियाकाल एवं निष्ठाकाल इन दोनों में अत्यन्त भेद है इसलिये क्रियमाण कृत नहीं कहा जा सकता । यह बात सर्वजन साक्षिक भी है । यह पांचवा पक्ष है, यह हुआ जमालि का पूर्व पक्ष ॥ ५ ॥

इस प्रकार जमालि द्वारा स्थापित इस पूर्वपक्ष को सुनकर स्थविरों ने उनको मार्ग से च्युत जाना और इसलिये वे उनसे कहने लगे कि—हे आर्य ! विरुद्ध वचन आप क्यों कहते हैं ? रागद्वेषरहित सर्वज्ञ जिन भगवान के वचन अन्यथा नहीं होते हैं उनमें दोष का अंश भी संभवित नहीं हो सकता है । साधारण पुरुषों की तरह वे मिथ्याभाषी

“ अनुपलभ्यमानत्वात् निर्वर्तनक्रियाकाले विवक्षितघटरूपं कार्यं नास्ति इति मन्तव्यम् ”  
 ज्यारे आ निश्चित जनी जय छे तो जे वात पणु आप भेजे मानी देवी पडे छे के, कार्य पोताना योग्य वणते ज जनीने तयार थाय छे, केमके, ते स्थणे तेनी उपलब्धि थाय छे. क्रियाकाल जने निष्ठाकाल आ जनेमां अत्यंत लेह छे. आ माटे क्रियमाण कृत कही शकय नही. आ वात सर्वजनथी साक्षीभूत छे. आ पांचमो मुहो. आ थयो जमालिने पूर्वपक्ष. ॥ ५ ॥

आ प्रकारे जमालि द्वारा स्थापित जे पूर्वपक्षने सांभणीने स्थविरोजे जणुं के जमालीमुनि भगवानना मार्गथी यदित थया छे. जने ते माटे तेजो तेभने कडेवा लाग्या के, हे आर्य ! विरोध वचन आप केम कडे छे ? रागद्वेषरहित सर्वज्ञ जिन भगवाननुं वचन अन्यथा थतुं नथी. तेमां दोषने अंश पणु संभवित थतो नथी. साधारण पुरुषोनी भाइक ते मिथ्याभाषी पणु नथी. आपे जे असत्कार्यवाहने

श्रित्याऽसत्कार्यवादिना भवताऽभिधीयते, अकृतं खलु क्रियमाणं भवतीति, तत्र वयं सत्कार्यवादिनो ब्रूमः—निष्प्रमाणमेतद्भवदीयवचनम् । अकृतम् ( अविद्यमानं ) घटादिकार्यं न क्रियते, असत्त्वात्, आकाशकुसुमवत् । यदि अकृतम् ( अविद्यमानम् ) अपि क्रियते, तर्हि शशविषाणमपि क्रियताम्, अकृतत्वाविशेषात् ( अविद्यमानत्वाविशेषात् ) । अपि च—ये नित्यकरणादयो दोषाः सत्कार्यवादे प्रदत्तास्ते खल्वसत्कार्यवादेऽपि तव सन्ति । विद्यमाने वस्तुनि करणक्रियाया अङ्गीकारे पुनः—पुनरनवरतं करणक्रियाया अतिप्रसङ्गात्, क्रियाया अपरिसमाप्तिः क्रियाया वैफल्यं

नहीं हैं । आपने जो असत्कार्यवाद को लेकर कुतर्क का आश्रय करते हुए ऐसा कहा है कि—' कृतं न क्रियते कृतत्वात्, कृतघटवत् ' अर्थात्—कृत होनेसे कृत किया नहीं जाता है जैसे कृत घट, अकृतं खलु क्रियमाणं भवति ' अर्थात् अकृत ही क्रियमाण होता है सो आपका यह कथन कथंचित् सत्कार्यवादी हमलोगों के चित्त में उतरता नहीं है भला आप को यह विचारना चाहिये जो सर्वथा असत् होता है—द्रव्य दृष्टि से भी जिसकी सत्ता कायम नहीं है ऐसा असत् पदार्थ कभी भी निष्पन्न नहीं हो सकता है । यदि इस प्रकार का भी पदार्थ निष्पन्न होने लगे तो शश विषाण को भी उत्पन्न होना चाहिये । दूसरे द्रव्य की अपेक्षा सत् को कार्य मानने पर जो आपने नित्यकरण होने की प्रसक्तिरूप दोष दिये हैं सो ये सभी दोष आपके असत्कार्यवाद में भी आते हैं, आपने जो यह कहा है कि विद्यमान वस्तु में करनेरूप क्रिया को अङ्गीकार करने पर पुनः पुनः अनवरत उस करनेरूप क्रिया का अतिप्रसंग प्राप्त होता है

स्वीकारी कुतर्कने। आश्रय लधने अेषुं कहुं छे के, कृतं न क्रियते कृतत्वात् कृत घटवत् अर्थात् कृत थवाथी कृत करेव मनातुं नथी जेवी रीते कृत घट, अकृतं खलु क्रियमाणं भवति अर्थात् न्यारे अकृत न क्रियमाणुं होय छे. जेथी आपनुं आ कथन कथंचित् सत्कार्यवादी अमारा दोऊना हिलमां उतरतुं नथी. आपे जे विचारतुं जेधजे के, जे सर्वथा असत् होय छे द्रव्यदृष्टिथी पषु जेनी सत्ता कायम नथी जेवा असत् पदार्थ कही तैयार थध शकता नथी. जे कही आ प्रकारना पषु पदार्थ पुरा थयेला मानवामां आवे तो अरविषाणु (गधेडांने शीगडां) पषु उत्पन्न थवां जेधजे. द्रव्यनी अपेक्षा सत्तने कार्य मानवाथी जे आपे नित्यकरणुं होवाने प्रशस्तीइय दोष आप्ये छे, ते सधणा दोष आपना असत्कार्य वादमां पषु आवे छे. आपे जे जेभ कहुं के, विद्यमान वस्तुमां करवाइय कथिने अङ्गीकार करवाथी करी करी अनवरत जे करवाइय कथिने

चेति दोषद्वयं यदुक्तं, तद् भवन्मतेऽपि शक्यते वक्तुम्, यथाऽस्मत्स्वीकृते कृत-  
पक्षे दोषा भवता प्रदीयन्ते, तथा भवदङ्गीकृते अप्यकृतपक्षेऽपि एते दोषाः आप-  
तन्ति । तथाहि—यद्यकृतम्—(अविद्यमानं) क्रियते, तर्हि नित्यमेव क्रियताम्, शश  
विषाणकल्पस्यासतः करणं कथमुपरमेत । तादृशे कार्ये समुत्पाद्ये क्रियाया वैफल्य-  
मपि तव दुर्वारम्, असतः कदाप्युत्पत्त्यभावात् ।

इससे प्रथम तो करण—क्रिया की वहां कभी भी समाप्ति नहीं हो  
सकती है १, दूसरा वहां करणक्रिया की विफलता भी आती है २ ।  
जब पदार्थ स्वयं मौजूद है तो वहां करनेरूप क्रिया सफलित कैसे हो  
सकती है ? इस प्रकार कृत करण मानने पर आपने ये जो क्रिया की  
असमाप्ति १ और क्रिया की विफलता २ ये दो दोष दिये हैं सो ये दोनों  
दोष आपके मन्तव्य में भी आते हैं, और वे इस प्रकार से—यदि  
“ अविद्यमान ही क्रिया जाता है ” यह बात ही एकान्ततः स्वीकार की  
जाय तो उसको भी नित्य ही होते रहना चाहिये, क्यों कि जो शश  
विषाण की तरह सर्वथा असत् है उसकी करनेरूप क्रिया का विराम  
कैसे हो सकता है । दूसरे असत् की जब उत्पत्ति ही नहीं होती है तो  
असत्कार्य की उत्पत्ति में क्रिया की सफलता भी कैसे हो सकती है ? ।  
वह तो वहां बिलकुल निष्फल ही होगी, क्यों कि उसकी उससे  
उत्पत्ति तो हो नहीं सकती है, कारण वह असत् है इसलिये ।

अति प्रसंग प्राप्त थाय छे. तेनाथी प्रथम तो करण क्रियानी त्यां कही पक्ष  
समाप्ति थती नथी. भीण्युं त्यां करण क्रियानी विक्षणता पक्ष आवे छे ? न्यारे  
पदार्थ स्वयं मौजूद छे तो त्यां करवाइप क्रिया क्षणीभूत केम थर्छ शके ? आ  
प्रकारथी कृतने करण मानवाथी आपे जे क्रियानी असमाप्ति अने क्रियानी  
विक्षणताइप जे दोष आपेल छे तो आ अने दोष आपना मंतव्यमां पक्ष आवे  
छे. अने ते आ प्रकारथी—जे “ अविद्यमान ज करवामां आवे छे ” आ वात  
ज अकान्ततः स्वीकार करवामां आवे तो तेने पक्ष नित्य ज अनी रहवुं जेधअे.  
केमके, जे शशविषाणुनी (ससलाना शींग) भाइक सर्वथा असत् छे. तेना  
करवाइप करवानो विराम कर्छ रीते होछ शके ? भीज असतनी न्यारे उत्पत्ति  
थती नथी तो असत कार्यानी उत्पत्तिमां क्रियानी सक्षणता पक्ष केवी रीते होछ  
शके ? अे तो तहन निष्कण ज थवानी. केमके, तेनाथी उत्पत्ति तो अनी शकती  
नथी. कारण ते असत छे भाटे.



भवत्सम्भते दोषास्तुल्या एव नहि, प्रत्युत कष्टतरकाः, यतः—अस्मत्पक्षे विद्यमाने वस्तुनि पर्यायविशेषाधानद्वारेण कथंचित् करणक्रिया उपपद्यत एव, भवन्मते तु अविद्यमाने वस्तुनि अयं न्यासः सर्वथा न सम्भवति, सर्वथा असत्त्वात्, खर-विषाणवत् । इति पक्षद्वयस्योत्तरम् ॥ १ ॥ २ ॥

अथ सत्कार्यवादे यस्तृतीयो दोषः प्रदत्तः—प्रत्यक्षविरोध इति सोऽपि भवन्मते

कथंचित् सत्कार्य की उत्पत्ति का तात्पर्य यह है कि विवक्षित कार्य द्रव्यरूप से तो सत् है परन्तु पर्यायरूप से तो असत् है अतः इस अपेक्षा वस्तु विद्यमान है तो भी वह विवक्षित पर्याय की अपेक्षा से विद्यमान नहीं भी है इसलिये विवक्षित पर्यायरूप उसे उत्पन्न करने के लिये करणरूप क्रिया सार्थक मानी जाती है । परन्तु जो इस बात को ही एकान्ततः मान्य करता है कि “सर्वथा असत् के ही उत्पाद होने पर करण-क्रिया की सफलता होती है” उसका वह बड़ा भ्रम है । वहाँ उसकी किसी भी अपेक्षा से सफलता साबित ही नहीं हो सकती है, क्यों कि जब वस्तु सर्वथा असत् है तो वह द्रव्यदृष्टि से भी असत् है, इसलिये सर्वथा तुच्छाभाव स्वरूप होने से शशविषाण की तरह उसका स्वप्न में भी उत्पाद नहीं हो सकता है ।

॥ यह प्रथम के दो पक्षों का उत्तर हुआ ॥ १ ॥ २ ॥

सत्कार्यवाद में जो प्रत्यक्षविरोधरूप तीसरा दोष दिया गया है, वह भी आपके ही मत में दुर्निवार है, वह इस तरह से यदि कारण कि

કહેવાયેલ સત્કાર્યની ઉત્પત્તિનું તાત્પર્ય એ છે કે, વિવક્ષિત કાર્ય દ્રવ્ય-રૂપથી તો સત્ છે. પણ પર્યાય રૂપથી અસત્ છે. આથી એ અપેક્ષાએ વસ્તુ વિદ્ય-માન હોવા છતાં પણ તે વિવક્ષિત પર્યાયની અપેક્ષાથી વિદ્યમાન થતું નથી. આ માટે વિવક્ષિત પર્યાયરૂપ તેને ઉત્પન્ન કરવા માટે કારણરૂપ ક્રિયા સાર્થક માનવામાં આવે છે. પરંતુ જે આ વાતને એકાન્તતઃ માન્ય કરે છે કે, ‘સર્વથા અસત્ત્વ’ જ ઉત્પાદન થવાથી કારણક્રિયાની સફળતા બને છે” એ તેનો મોટો ભ્રમ છે. ત્યાં તેની કોઈ પણ અપેક્ષાથી સફળતા સાબીત થતી નથી. કેમકે, ન્યારે વસ્તુ જ સર્વથા અસત છે તો તે દ્રવ્યદૃષ્ટીથી પણ અસત છે. આ માટે સર્વથા તુચ્છાભાવ સ્વરૂપ હોવાથી સસલાના શિંગડાની માફક તેનું સ્વપ્નામાં પણ ઉત્પન્ન થવું સંભવ નથી.

આ પ્રથમના એ મુદ્દાનો ઉત્તર થયો. ॥૧॥૨॥

સત્ કાર્યવાદને જે પ્રત્યક્ષ વિરોધરૂપ ત્રીજો દોષ આપવામાં આવેલ છે તે પણ આપના જ મતમાં વાળી ન શકાય તેવો છે. તે આ રીતે જે કારણની



दुर्वारः, तथाहि—यदि पूर्वम् ( कारवापत्वाघात् ) असत् ( अविद्यमानं ) कार्यं जायते, तर्हि मृत्पिण्डाद् कुम्भवत्, शशशृङ्गमपि जायमानं किं न दृश्यते, असत्त्वा विशेषात् ? । अथ शशशृङ्गमुत्पद्यमानमपि न दृश्यते, तर्हि घटोऽपि तथैवास्तु, उत्पद्यमानत्वाविशेषात् । अथवा—मृत्पिण्डात् घटोऽपि उत्पद्यताम्, असत्त्वाविशेषात् ॥ ३ ॥

अपेक्षा भी कार्य असत् है, और वह उससे उत्पन्न होता है तो जिस प्रकार मृत्पिण्ड से घट उत्पन्न होता है उसी तरह शशशृंग भी उससे उत्पन्न होते दिखना चाहिये, क्यों कि जिस प्रकार मृत्पिण्ड में घट विद्यमान नहीं है उसी प्रकार शशविषाण भी वहां विद्यमान नहीं है फिर अविद्यमान की अविशेषता होने पर भी मृत्पिण्ड से घट ही क्यों उत्पन्न होता है शशशृंग क्यों नहीं ? । यदि इसके ऊपर ऐसा कहा जाय कि शशशृंग भी मृत्पिण्डसे उत्पन्न होता है परन्तु वह दिखता नहीं है तो हम भी यह कह सकते हैं कि इसी तरह उससे जायमान घट भी नहीं दिखना चाहिये, अतः यह मानना ही चाहिये कि अपने कारण में किसी अपेक्षा कार्य रहा हुआ है तभी जाकर वह उससे ही उत्पन्न होता है अन्य से नहीं । नहीं तो फिर क्या है चाहे जिससे चाहे जैसा पदार्थ उत्पन्न होने लगेगा । ऐसी स्थिति में मृत्तिका से पट की भी उत्पत्ति माननी पड़ेगी ॥ ३ ॥

अपेक्षाथी कार्य असत् छे अने ते अनाथी उत्पन्न थाय छे. तो ते रीते माटीना पिंडथी घट उत्पन्न थाय छे. अने रीते ससलाने शींगडां पणु थतां हेभावां न्नेछे. केमके ते रीते माटीना पिंडमां घट विद्यमान नथी अने रीते ससलाने पणु शींगडां विद्यमान नथी. पछी अविद्यमाननी अविशेषता डोवाथी पणु मृत पिंडथी घट न केम उत्पन्न थाय छे ? ससलानां शींग केम नछी ? न्ने आ अने अम कडेवामां आवे के, ससलानां शींग पणु माटीना पिंडाथी उत्पन्न थाय छे परंतु ते हेभतां नथी तो अमे पणु अम कछी शकीअे के, अने रीते अनाथी तैयार थनार घट पणु न हेभावे न्नेछे. आथी अने मानवुं न्नेछे के, पोताना कारणुमां डोछे अपेक्षा कार्य रडेल छे त्यारे न ते तेमांथी उत्पन्न थाय छे. पीअथी नछी. अम न डोय तो पछी गमे ते चीअथी गमे ते पदार्थ उत्पन्न थवा लागशे. आवी स्थितिमां माटीथी पटनी पणु उत्पत्ति मानवी पडशे. ॥ ३ ॥

यदुक्तं—घटादीनां दीर्घ एव निर्वर्तनाक्रियाकालो दृश्यते, इति, अर्थात्—  
मृदानयनमर्दनपिण्डविधानादिकालः सर्वोऽपि घटनिर्वर्तनक्रियाकाल इति भवता  
मन्यते, तदप्युक्तमेव, तत्र प्रतिसमयमन्यान्येव मृत्पिण्डशिवकादीनि कार्याणि  
आरभन्ते, निष्पाद्यन्ते च, कार्यस्य करणकालनिष्ठाकालयोरेकत्वात् । घटस्तु पर्य-  
न्तसमय एवारभ्यते, तत्रैव च निष्पद्यते इत्यस्य निर्वर्तनक्रियाकालो दीर्घो नास्ति  
एवं च—घटो मृद्द्रव्यस्य पर्याय इति मन्यस्व ॥ ४ ॥

घटादिकों की उत्पत्तिरूप क्रिया का काल दीर्घ ही है, अर्थात् मिट्टी  
का लाना, उसका मसलना, फिर उसका पिण्ड बनाना, इत्यादि कार्यों  
का जितना भी काल है वह सब घट की निर्वर्तनरूप क्रिया का ही  
काल है, ऐसा जो आप कहते हैं सो भी उचित नहीं है, क्योंकि वह  
घट का काल नहीं है वहां तो प्रतिसमय अन्य अन्य ही मृत्पिण्ड, शिव-  
कादिक कार्य प्रारंभ होते जाते हैं और बनते जाते हैं अतः वह उसका  
काल है । कार्य का कारणकाल और निष्ठाकाल दोनों एक होते हैं ।  
घट तो पर्यन्त समय में ही आरंभ होता है और उसी समय में वह  
बनकर तयार होता है । इसलिये यह काल कि जिस समय में शिवका  
आदि कार्य हो रहे हैं घट का काल नहीं माना जा सकता है । घट का  
काल वही माना जायगा कि जिसमें वह बनकर तयार हुआ है । इस-  
लिये ऐसा कहना कि—घट का निर्वृत्तिकाल बहुत दीर्घ है, उचित नहीं  
है, अतः घट अपने उपादानकारणस्वरूप होने से मिट्टीस्वरूप  
द्रव्य की एक पर्याय है ॥ ४ ॥

घट आदिनी उत्पत्तिरूप क्रियानो काण दीर्घं न् छे. माटीने लाववी, तेने  
भसणवी, तेनो पिंड अनाववो, छत्यादि कार्योंनो नेटवो. पणु काण छे, ते  
सधणो घटनी तैयार थवाइप क्रियानो न् काण छे. जेवुं ने आप कडेो छे.  
ते पणु हीक उचित नथी. केभके ते घटनो काण नथी त्यां तो प्रति समय  
जुहा जुहा माटीना पिंड, शिवकादिक कार्य प्रारंभ थतो रडे छे, अने अनतां  
नथ छे. आथी ते जेनो काण छे. कार्यनो करणु काण अने निष्ठाकाण अन्ने  
जेक डोय छे. घट तो समयमां न् आरंभ थाय छे. अने जेन समये ते अनिने  
तैयार थथ नथ छे. आ माटे ते काण के ने समयमां शिवका अदि कार्य  
थाय छे. ते घटनो काण मानवामां आवतो नथी. घटनो काण जेन मानवामां  
आवे के, नेटवा समयमां ते अनिने तैयार थथेव छे. आ माटे जेभ कडेवुं के,  
घटनो तैयार थवानो काण पूण लांजो छे ते उचित नथी. आथी घट पोताना  
उपादान कारणरूप डोवाथी माटी रूपी द्रव्यनी जेक पर्याय छे. ॥४॥

ननु—क्रियासमयः सर्वोऽपि क्रियमाणकालः तत्र, च क्रियमाणं घटादिरूपं वस्तु नास्त्येव, उपरतायां तु क्रियायां योऽनन्तरसमयः स कृतकालस्तत्रैव कार्यं निष्पत्तेः, अतः कृतमेव कृतमुच्यते न तु क्रियमाणं कृतमिति चेदुच्यते—

साध्वेतत्, किंतु इदं प्रष्टव्योऽसि—भवन्मते किं क्रियया कार्यं क्रियते, अक्रियया वा ? ।

यदि क्रियया, तर्हि तव मते इयमन्यत्र, कार्यं तु अन्यत्र, इति कथमुपपद्येत ।

शंका—क्रिया का सब ही समय क्रियमाण का काल है, उसमें क्रियमाण घटादिरूप वस्तु है ही नहीं। जब क्रिया समाप्त हो जायगी तब जो अनन्त समय होगा वही कृत का काल कहलायगा क्यों कि उसमें ही कार्य की निष्पत्ति होती है, इसलिये “क्रियमाणं कृतं” ऐसा व्यवहार कैसे हो सकेगा—कृत ही कृत ऐसा व्यवहार होना चाहिये ।

शंका तो यह ठीक है परन्तु हम आपसे इस विषय में केवल इतना ही पूछना चाहते हैं कि क्रियाद्वारा कार्य किया जाता है कि अक्रियाद्वारा। यदि कहो कि क्रियाद्वारा कार्य किया जाता है तो क्रिया किसी काल में होती है, और कार्य किसी और दूसरे समयमें होता है यह बात कैसे बन सकेगी ? क्यों कि कार्य जिस समय में है वहां क्रिया नहीं, और जिस समय में क्रिया है वहां कार्य नहीं। ऐसा तुम स्वयं कह रहे हो—सो यह बात इस पक्ष में घटित नहीं होती है। ऐसा तो होता नहीं है कि छेदन क्रिया तो खदिरमें और उसका कार्य छेद हो पलाश वृक्षमें ।

शंका—क्रियानो समयो समय क्रियमाणो कालो छे, तेमां क्रियमाणो घटादिरूप वस्तु छे न नही. न्यारे क्रिया पुरी थाय त्यारे ने अनन्तर समय उशे ते न कृतनो काल उडेवाशे केभके, तेमांन कार्यनी निष्पत्ति डोय छे. आभाटे “क्रियमाणं कृतम्” अवेो वडेवार केभ थछे शके ? कृत न कृत छे अवेो वडेवार डोवेो नेधअे.

उत्तर—शंका तो अे ठीक छे पणु अमे आपने आ विषयमां केवण अेटलुंन पूछवा भागीअे छीअे के, क्रिया द्वारा कार्य करवामां आवे छे के अक्रिया द्वारा ? ने कडेो के, क्रिया द्वारा कार्य कराय छे तो क्रिया कया कालमां थाय छे ? अने कार्य कौध भीन समयमां थाय छे अे वात कछे रीते अनि शके ? केभके, कार्य ने समयमां छे त्यां क्रिया नथी. अने ने समयमां क्रिया छे त्यां कार्य नथी. अेपुं तमे पोते कडी रह्या छे तो आ वात आ पक्षमां टकी शकती नथी. अेपुं तो थतुं नथी के, छेदन क्रिया तो थाय अदीरमां अने तेनो कार्य छेड डोय पलाश वृक्षमां ? न्यां क्रिया उशे त्यां तेनुं कार्य उशे. पणु आप ने अेपुं कडेो

तथाहि-तवमते यस्मिन् समये क्रियायाःसम्बन्धः, तदन्यसमये कायस्य सम्बन्धः इति नोपपद्यते, खदिरे हि छेदनक्रिया, पलाशे तु तत्यायभूतच्छेदः इति केनाप्युच्यमानं न युज्यते ।

किंच-क्रियाकाले कार्यं न भवति, किंतु पश्चाद् भवति, इति भवन्मते क्रिया उत्पत्स्यमानस्य कार्यस्य विघ्नभूता भवति । यतः यावत् कालं क्रिया प्रवर्तते तावति काले कार्यं नोत्पद्यते, तस्मात् क्रियैव सर्वानर्थमूलं स्यात्, ततो भवन्मते विपर्ययज्ञानवतामेव प्रवृत्तिः स्यात् ।

अथ यदि क्रियैव कार्यं करोति, केवलं तन्निष्पत्तिमात्रं क्रियाविरामे भवति, तेन क्रियायाः कार्यान्तरायत्वं नापद्येत, इति चेत्-उच्यते—

जहाँ क्रिया होगी वहीं पर उसका कार्य होगा । अतः आप जो ऐसा कहते हो कि क्रियमाण के काल में कार्य नहीं और जो अनन्तर समय है वहाँ क्रियमाण वस्तु नहीं वह तो कृत का काल है, सो ऐसा कहना कैसे अच्छा माना जा सकता है ?

और भी—क्रिया के काल में कार्य नहीं होता है किन्तु वह पीछे से होता है इस प्रकार के कथन से यह बात भी साबित होती है कि क्रिया ही आगे उत्पन्न होने वाले कार्य में विघ्नभूत है, क्यों कि जब तक क्रिया होती रहती है तब तक तो वह कार्य होता नहीं है बाद में क्रिया की उपरति में होता है । इसलिये मालूम पडता है कि आपके मत में विपरीत ज्ञान की ही प्रवृत्ति होती है ।

यदि “कार्य तो क्रिया ही करता है परन्तु कार्य की निष्पत्ति ही उसके विराम होने पर होती है इस लये क्रिया में कार्य के प्रति अन्तराय नहीं आती है” ऐसा कहा जाय तो इस पर यही कहा जा सकता

के, क्रियाभाषुना काणमां कार्यं नडीं अने जे अनंतर समय छे त्यां क्रियभाषु वस्तु नडीं. अे तो कृतनो काण छे. तो अेवुं कडेवुं कर्छि रीते साइं मानी शकय.

किंच-क्रियाना काणमां कार्यं थतुं नथी परंतु ते पछीथी थाय छे आ प्रकारनुं कडेवाथी अे वात पषु साबित थाय छे के, क्रिया जे आगण उत्पन्न थनार कार्यमां विघ्नभूत छे. केमके, ज्यां सुधी क्रिया थती रहे त्यां सुधी तो ते कार्य थतुं जे नथी. अे पछी क्रियानी उपरतिमां थाय छे. अेथी मालुम पडे छे के, आपना मनमां विपरीत ज्ञानवाणानी जे प्रवृत्ति थाय छे.

जे “कार्यं तो क्रिया जे करे छे परंतु कार्यनी निष्पत्तिजे तेनो विराम थवाथी जे थाय छे. आ माटे क्रियामां कार्यं प्रति अंतराय आवतो नथी.”

यद्येवं, तर्हि कार्यं कुर्वत्या अपि क्रियायाः कार्यस्य को विरोधः, येन क्रिया-काले कार्यं नोत्पद्येत किंतु क्रियाकालमतिवह्नैव समुत्पद्येत, यदि कार्यं क्रियोपर-मेऽपि जायते, तर्हि क्रियाकाले तु कार्येण अवश्यमेवोत्पत्तव्यम्, कार्यमुत्पादय-न्त्याः क्रियायाः कार्योपकारकत्वेन पुत्रस्य जनन्या इव विरोधाभावात् । तस्मात् क्रियाकाले एव कार्यं निष्पद्यते इति युक्तम् ।

किंच—क्रियोपरमे कार्यमुत्पद्यते, इति भवन्मते क्रियाया अनारम्भेऽपि कार्यं कस्मान्न स्यात्, क्रियानारम्भ-तदुपरमयोरर्थतोऽभिन्नत्वात् । क्रियाया उपरम नामो

है कि फिर इस प्रकार के कथन से कार्य को करने वाली क्रिया से कार्य का क्या विरोध हो सकता है कि जिससे क्रिया काल में कार्य उत्पन्न नहीं होता है—उसके बाद में होता है, ऐसा आपका कथन अच्छा माना जा सके । यदि कार्य क्रिया के बाद में भी होता है, तो इसका तात्पर्य यह भी हो सकता है कि कार्य क्रिया काल में अवश्य ही होना चाहिये । जिस प्रकार माता और पुत्र का कोई विरोध नहीं होता है, उसी प्रकार कार्य को उत्पन्न करने वाली क्रिया का कार्य के साथ भी विरोध कैसे हो सकता है । इसलिये यही मानना चाहिये कि क्रिया काल में ही कार्य उत्पन्न होता है ।

और भी—यदि क्रिया के विराम में कार्य उत्पन्न होता ऐसा माना जाय तो जिस समय क्रिया का अनारंभ है, उस समय भी कार्य क्यों नहीं होता है । क्रियाका उपरम और अनारंभ ये दोनों बातें एकार्थक हैं ।

એવું કહેવામાં આવે તો એની સામે એ કહેવામાં આવે કે આ પ્રકારના કથનથી કાર્યને કરવાવાળી ક્રિયાથી કાર્યને કઈ રીતે વિરોધ થઈ શકે કે જેનાથી ક્રિયાકાળમાં કાર્ય ઉત્પન્ન થતું નથી ? એના પછી જ થાય છે, એવું આપનું કથન ખરોખર માનવામાં આવે. જે કાર્ય ક્રિયાની પછીથી થાય છે તો એનું તાત્પર્ય એ પણ થઈ શકે કે કાર્ય ક્રિયા કાળમાં અવશ્ય થવું જ જોઈએ. જે રીતે માતા અને પુત્રનો કોઈ વિરોધ થઈ શકતો નથી એજ રીતે કાર્યને ઉત્પન્ન કરનાર ક્રિયાનો કાર્યની સાથે વિરોધ કઈ રીતે થઈ શકે ? આથી એ માનવું જોઈએ કે, ક્રિયાકાળમાં જ કાર્ય ઉત્પન્ન થાય છે.

ફરી જે ક્રિયાના વિરામમાં કાર્ય ઉત્પન્ન થાય એવું માનવામાં આવે તો જે સમયે ક્રિયાનો અનારંભ હોય તે સમયે પણ કાર્ય કેમ થતું નથી ? કાર્યને ઉપરમ અને અનારંભ આ બંને વાતો એકાર્થક છે. આહે ક્રિયાનો ઉપરમ કહે



क्रियाया अभावः, स यथा क्रियायाः परिसमाप्तिः, तथा क्रियाया अनारम्भेऽपि ।

अथ यदि अक्रियया कार्यं क्रियते, इति द्वितीयः पक्ष आश्रीयते, तर्हि हिम-  
वन्मेरुसमुद्रादिवद् घटादयोऽप्यकृता एव स्युः, तद्वत् तेषामपि कारणभूतक्रियाम-  
न्तरेणैव सद्भावापत्तेः । मोक्षार्थं तपःस्वाध्यायादीनां विधानं साधूनां व्यर्थं स्यात्,  
तव मते क्रियामन्तरेणैव सर्वकार्योत्पत्तेः । अतो भुवनत्रयवर्तिनः सर्वेऽपि लोका-  
स्तूर्णोभावमाश्रित्य निरुद्योगा निराकुलास्तिष्ठन्तु, क्रियारम्भमन्तरेणैव ऐहिकामु-  
ष्मिकसकलसमीहितसिद्धेः । न चैवं भवति, तस्मात् क्रियैव कार्यस्य कर्त्री, क्रिया-

चाहे क्रिया का उपरम कहो या चाहे अनारम्भ कहो दोनों में कोई  
अर्थभेद तो है नहीं । भले ही शब्दभेद रहे । क्रिया का उपरम अर्थात्  
क्रिया का अभाव वह जैसा उसकी परिसमाप्ति में होता है उसी प्रकार  
उसकी अनारम्भ अवस्था में भी वह है ।

अक्रिया कार्य को करती हैं यह द्वितीयपक्ष यदि स्वीकार किया  
जावे तो जिस प्रकार सुमेरुपर्वत हिमवान् पर्वत एवं समुद्र आदि  
विना किये हुए ही हैं उसी प्रकार घटादिक भी विना किये हुए ही  
मान लेने पड़ेंगे, क्यों कि इनकी कारणभूत क्रिया के अभाव में भी  
सद्भूति तो देखी जा रही है । साधुओं को मोक्ष के लिये तप एवं  
स्वाध्याय आदि का जो विधान है वह भी फिर व्यर्थ मानना चाहिये,  
क्यों कि आपके मन्तव्यानुसार क्रिया के विना ही समस्तकार्यों की  
उत्पत्ति का पक्ष स्वीकार किया जा रहा है । इसलिये आपकी  
मान्यतानुसार तो समस्त तीनों लोक के जीवों को चुपचाप होकर ही  
बैठ रहना चाहिये—कुछ भी कामकाज नहीं करना चाहिये, क्यों कि

अथवा अनारंभ कहे। अन्नेमां केष अर्थ लेह नथी शण्डमां लले डोय क्रियाने।  
उपरम अर्थात् क्रियाने अभाव ते जेम अेनी परि समाप्तिमां थाय छे, अेज रीते  
अेनी आरंभ अवस्थामां पषु ते छे।

अक्रिया कार्यने करे छे अेवे आ अीजे पक्ष जे स्वीकारवामां आवे तो जे  
रीते सुमेरु पर्वत हिमवान् पर्वत अने समुद्र वगेरे वगर कथे थयेल छे, अे  
प्रकारे घटादिकने पषु कथां वगर थयेल मानी लेवा पडे। केभके, अेनी कारण-  
भूत क्रियाना अभावमां पषु सद्भूति तो जेवामां आवे छे। साधुअे माटे  
भोक्षने जेणववा तप अने स्वाध्याय वगेरेनुं जे विधान छे ते पषु पछी व्यर्थ  
मानवुं जेध अे। केभके, आपना मंतव्य अनुसार क्रियाना वगर ज समस्त  
कार्योनी उत्पत्तिने पक्ष जे स्वीकार करवामां आवे छे। आथी आपनी  
मान्यता अनुसार तो त्रणे लोकना जेवोअे चुपचाप थधने जेसी रहेवुं जेध अे,  
कथं पषु कामकाज न करवुं जेध अे। केभके, अेमनां जेटलां आ लोक अने



काल एव कार्यं भवति, न तु तदुपरमे । अतः क्रियमाणमेव कृतं भवतीति स्थितम् । किंच—यदि भवन्मते क्रियाऽन्तसमय एवाभिमतकार्यनिष्पत्तिः, तत्रापि प्रथम-समयादारभ्य कार्यस्य क्रियताऽप्यंशेन निष्पत्तिरेष्टव्या । अन्यथा कथमकस्मादन्ति-समये सा निष्पत्तिर्भवेत् । उक्तञ्च—

“आद्यतन्तुप्रवेशे च, नोतं किंचिद् यदा पटे ।

अन्त्यतन्तुप्रवेशे च, नोतं स्यान्न पटोदयः ॥ १ ॥

तस्माद्यदि द्वितीयादि-तन्तुयोगात् प्रतिक्षणम् ।

किंचित्किञ्चिदुतं तस्य, यदुतं तदुतं हि तत् ॥ २ ॥” इति ॥

उनके जितने भी इस लोकसंबंधी एवं परलोकसंबंधी काम हैं वे सब बिना कुछ किये ही सिद्ध हो जावेंगे । परन्तु ऐसा तो होता नहीं है । इसलिये यह मानना ही पड़ता है कि क्रिया ही कार्य की करने वाली है, अर्थात् क्रिया काल में ही कार्य होता है ।

तथा—यदि आपके मतानुसार क्रिया के अन्तिम क्षण में ही कार्य की निष्पत्ति होती है, तो भी आप को क्रिया के प्रथम समय से लेकर ही कार्य के थोड़े २ अंश की निष्पत्ति माननी होगी । अन्यथा अन्तिम समय में कार्य की आकस्मिक निष्पत्ति कैसे होगी ? किन्तु नहीं होगी । इसलिये क्रिया के प्रत्येक क्षण में कार्य का थोड़ा थोड़ा अंश बनता है, अन्तिम समय में कार्य पूर्णतया निष्पन्न होता है, ऐसा मानना ही चाहिये । कहा भी है—

यदि पट में प्रथमतन्तु के प्रवेश होने पर पट का कुछ अंश का बुना जाना न माने तो अन्तिम तन्तु के प्रवेश होने पर पट के कुछ

परलोक संबंधी काम छे ते अघां कार्यं कथां वगरं न सिद्धं थर्धं नवानां । परंतु अेभ अनतुं नथी आथी अे भानवुं पडे छे डे, क्रियां न कार्यं करवावाणी छे । क्रियाकाणमां न कार्यं थाय छे ।

तथा—जे कदाच आपना मत अनुसार क्रियानी अंतिम क्षणमां न कार्यनी निष्पत्ति थाय छे तो, पञ्च आपे क्रियाना प्रथम समयथी भांडीने न कार्यना थोडा थोडा अंशनी निष्पत्ति मानवी पडशे । अेना वगर छेदवी धडीमां कार्यनी आकस्मिक निष्पत्ति कर्ध रीते थाय ? न न थाय ! आ भाटे क्रियानी प्रत्येक क्षणमां कार्यनी थोडा थोडा अंश अने छे अने अंतिम समये कार्य पूर्ण थतां तैयार थाय छे । अेवुं भानवुं न नोर्ध अे । कथुं पञ्च छे ।—

कदाच पटमां प्रथम तंतुने प्रवेश थवाथी पटने वषाटने थोडा पञ्च भाग वषाथे । न भानवामां आवे तो छेदवा तंतुने प्रवेश थतां पटना डोर्ध

### अनुमानप्रयोगश्चेत्थम्—

यद्यस्याः क्रियाया आद्यसमये न भवति तत्तस्या अन्त्यसमयेऽपि न भवति, यथा घटक्रियाया आदिसमये तु अनिष्पद्यमानः पटोऽन्त्यसमयेऽपि न भवति, अन्यथा घटान्तसमयेऽपि पटोत्पत्तिः स्यादिति । एवं च—

“ यथा वृक्षो धवश्चेति न विरुद्धं मिथो द्वयम् ।

क्रियमाणं कृतं चेति न विरुद्धं तथोभयम् ॥ १ ॥ ” इति ॥

भी अंश का बुना जाना नहीं माना जा सकता और न पट की निष्पत्ति ही मानी जा सकती है । इसलिये द्वितीय आदि तन्तु के संयोग से प्रत्येक क्षण में पट का कुछ न कुछ अंश बुना ही जाता है, वह बुना हुआ पटांश पट ही है । इसका साधक अनुमान इस प्रकार है—

जो कार्य जिस क्रिया के आदि क्षण में नहीं होता है वह उसके अन्तिम क्षण में भी नहीं होगा, जैसे घट क्रिया के आदि क्षण में न होता हुआ पट उस क्रिया के अन्तिम क्षण में भी नहीं होता है । अन्यथा घट क्रिया के अन्तिम क्षण में पट की भी उत्पत्ति होने लगेगी । इसलिये क्रिया के प्रत्येक क्षण में कार्य के कुछ न कुछ अंश की निष्पत्ति होती है और अन्तिम क्षणमें वह कार्य पूर्ण होता है । इससे यह सिद्ध होता है कि क्रियमाण कृत ही है । इसमें एकान्ततः विरोध नहीं है । कहा भी है—

जैसे वृक्ष और धव ये दोनों परस्पर विरुद्ध नहीं हैं, वैसे ही क्रियमाण और कृत भा परस्पर विरुद्ध नहीं हैं ।

पञ्च भागने वष्टायेदो मानवामां न आवे. अने अथी पटनुं तैयार थवानुं पञ्च मानवामां न आवे आ भाटे भीज आदि तंतुअना संयोगथी प्रत्येक-क्षणमां पटनेा कांठने कांठ भाग वष्टातो रडे छे, तेथी वष्टायेदो भाग पञ्च पटनेा अंश ज छे. आनुं साधक अनुमान आ प्रकारनुं छे.—

जे कार्य क्रियानी शङ्कातमां थनुं नथी ते अेनी अंतिम क्षण्णे पञ्च थनुं नथी. जेम घट क्रियानी शङ्कातमां, न डोनार घट अे क्रियानी अंतिम क्षण्णमां पञ्च डोतो नथी. अन्यथा घट क्रियाना अंतिम क्षण्णमां घटनी पञ्च उत्पत्ति थवा लागशे. आ भाटे क्रियानी प्रत्येक क्षण्णमां कार्यना कांठने कांठ अंशनी तैयारी थाय छे. अने अंतिम क्षण्णे ते कार्य पूर्ण थाय छे. आथी अे सिद्ध थाय छे के क्रियमाण कृत ज छे. आमां अेकान्ततः विरोध नथी. कहुं पञ्च छे—

जेम वृक्ष अने तेना लागेमां परस्पर विरुद्धता नथी तेवी ज रीते क्रियमाण अने कृतमां पञ्च परस्पर विरोध नथी.

अस्यानुमानप्रयोगश्चेत्थम्—यद् येनाविनाभूतं न तत् एकान्तेन भिद्यते, यथा वृक्षत्वात् धवत्वम् । एवं कृतत्वाविनाभूतं क्रियमाणत्वमपि कृतत्वाद् नैकान्ततो भिन्नमिति बोध्यम् । हे आर्य ! एतत् प्रवचनरहस्यं मन्यस्व ।

पुनस्ते स्थविराः प्रोचुः—

आर्य ! क्रियमाणं कृतमिति सर्वज्ञस्य वचनं प्रमाणमेव । यत्तु भवता प्रोच्यते—सर्वज्ञोऽप्यनृतं वदतीति, तत् सतां न श्रवणीयम्, तत् सत्यं वचनं मा दूषय । अनेन दुष्कर्मणा संसारकानने भवतो भ्रमणं मा भूत्, एकस्यापि जिनोक्तवचनस्योत्थापने जनो मिथ्यात्वं लभते, तस्मादिदं शीघ्रमालोचय ।

इसका साधक अनुमान इस प्रकार है—जो जिससे भिन्न होकर नहीं रहता वह उससे एकान्तत भिन्न नहीं होता, जैसे वृक्षत्व से धवत्व एकान्ततः भिन्न नहीं है । उसी प्रकार कृतत्व से एकान्ततः भिन्न हो कर क्रियमाणत्व भी नहीं रहता । ऐसा समझना चाहिये । अतः ‘ क्रियमाणं कृतम् ’ यह भगवद्वचन सर्वथा सुसंगत है । इसलिये हे आर्य ! यह प्रवचन का रहस्य है इसको आप मानो ।

फिर उन स्थविरों ने कहा—आर्य ! “ क्रियमाणं कृतम् ” यह जो सर्वज्ञ भगवान् का वचन है वह प्रमाण ही है । इसलिये आप जो ऐसा कहते हैं कि “ सर्वज्ञ भी झूठ बोलते हैं ” सो आपका यह अवर्णवाद-रूप कथन सज्जनों को सुनने के योग्य नहीं हो सकता है । भगवान् सर्वज्ञ का वचन तो त्रिकाल में भी दूषित नहीं होता है, इसे आप दूषित करने की कैसे चेष्टा करते हैं । जो इस प्रकार की दुश्चेष्टा करते हैं वे उससे उत्पन्न होनेवाले दुष्कर्म के प्रभाव से संसाररूपी कानन-अटवी

अनुं साधक अनुमान आ प्रकारनुं छे—जे जेनाथी लिन्न थनी नथी रडेता ते तेनाथी अेकान्ततः लिन्न डोता नथी. जेम वृक्षथी तेना थनी लागे अेकान्ततः लिन्न नथी. अेज रीते कृतत्वथी अेकान्ततः भिन्न थतां क्रियमाणत्व पणु रडेतुं नथी अेवुं समजवुं जेध अे. आथी “ क्रियमाणं कृतम् ” आ भगवान वचन सर्वथा सुसंगत छे. आ भाटे डे आर्य ! आ प्रवचननुं रहस्य छे तेने आप मानो.

इरी अे स्थविराअे कहुं—आर्य ! “ क्रियमाणं कृतम् ” आ जे सर्वज्ञ भगवाननुं वचन छे ते प्रमाणुं छे. आथी आप जे अेवुं कडो छे डे, “ सर्वज्ञ पणुं जेठुं जेठे छे ” आपनुं अे अवर्णवादरूप वचन समजनाअे सांभगवा योग्य नथी. भगवान सर्वज्ञनुं वचन तो त्रयुकाणमां पणुं दूषित नथी डोतुं. अेने दूषित करवानी आप कध रीते चेष्टा करी शके ? जे आ प्रकारनी जेठी चेष्टा करे छे, ते जेनाथी उत्पन्न थनार दुष्कर्मना प्रभावथी

तैः स्थविरैः स्वशिश्यैरेवमुक्तोऽपि जमालिः स्वदुराग्रहं न त्यक्तवान् । तदा तं विहाय केचिन्मुनयो भगवतः श्रीमहावीरसंनिधौ गताः तत्र ये । केचिज्जमाले-  
र्वचसि श्रद्धां कृतवन्तस्ते तत्रैव जमालिमुनेरन्तिके स्थिताः ।

अथ प्रियदर्शना साध्वी सहस्रसाध्वीपरिवृता ग्रामानुग्रामं विहरन्ती प्रसङ्गव-  
शात् तत्र श्रावस्तीनगर्यां ढंकनाम्नः कुम्भकारस्य शालायां समायाता । सा जमालिं  
वन्दितुं समागता । जमालिमुनिस्तदग्रेऽपि स्वमतं प्ररूपितवान् । तदनु सहस्रसाध्वी-

में भ्रमण करते हैं, इसलिये आप इस दशा के पात्र न बने । हमारा सबका  
यही सानुरोध निवेदन है कि आप इस की आलोचना कर लें, ता कि  
जिनवचन के उत्थापनजनित मिथ्यात्व कर्म आपका निवृत्त हो जाय ।

इस प्रकार जमालि मुनि को उनके समस्त शिष्यों ने समझाया फिर  
भी उन्होंने ने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा, शिष्यों ने जब देखा कि जमाली  
अपने दुराग्रह से पीछे नहीं मुड़ रहे हैं, तो उन्होंने ने उन का साथ छोड़  
दिया । कितनेक तो भगवान् महावीर प्रभु के पास आगये और जिन्हे  
जमालि के वचनों में श्रद्धा थी वे उन्हीं के पास रहे ।

प्रियदर्शना साध्वी भी सहस्र साध्वियों से परिवृत होती हुई ग्रामा-  
नुग्राम विहार करती २ प्रसङ्गवशात् उस श्रावस्ती नगरी में आई और  
ढंककुंभार की शाला में आकर ठहर गई । पश्चात् सशिष्या वह अपने  
गुरु जमालि को वंदना करने के लिये गई । जमालि ने सुदर्शना साध्वी

संसारइपी अटवीमां भ्रमणु करे छे. आ माटे आप अे दशाने पात्र न बनो.  
अभाइं सधणानुं सानुरोध निवेदन छे के, आप तेनी आलोचना करी ल्यो. के  
बेथी अनवचनना उत्थापन जनीत मिथ्यात्व कर्म आपनां निवृत्त अनी अय.

आ प्रकारे जमालि मुनिना समस्त शिष्याअे तेमने समभववा छतां  
पणु पोतानो दुराग्रह छोडयो नही. शिष्याअे अण्युं के, जमालि पोताना  
दुराग्रहथी जरा पणु पाछा छटता नथी त्यारे तेअेअे तेमनो साथ छोडी दीघो.  
केटलाक तो भगवान महावीर प्रभु पासो पडोअी गया अने बेमने जमालिना  
वचनो उपर श्रद्धा छती ते जमालिनी साथे रह्या.

प्रियदर्शना साध्वी पणु पोतानी अेक डलर साध्वीअो साथे अेकत्रित  
रीते ग्रामानुग्राम विहार करतां करतां प्रसंगवशात् श्रावस्ती नगरीमां पधार्थो.  
अने ढंक कुंभारनी शालामां उतर्यां. आ पछी पोतानी शिष्याअो साथे  
पोताना शुरु जमालिनी वंदना करवा गयां. जमालिअे प्रियदर्शना साध्वीने पणु

परिवृता प्रियदर्शना जमालिमुनेर्वचः सत्यं मन्यमाना वसतिं समागता । तया शय्या-  
तरस्य दङ्कम्याऽप्रेऽपि तन्मतं प्रोक्तम् दङ्केन मिथ्यात्वमुपगतेयमिति मत्वा तस्याः  
प्रतिबोधनायान्यदा चपाकाग्निमध्ये मृद्धाजनोद्वर्तनपरावर्तने कुर्वता तत्रासन्नप्रदेशे  
स्वाध्यायं कुर्वत्याः प्रियदर्शनायाः शाटिकाप्रान्तभागेऽङ्गारः प्रक्षिप्तः । प्रियदर्शनया  
साध्या स्ववस्त्रं दह्यमानं दृष्ट्वा प्रोक्तम्—मम वस्त्रं दग्धम्, कुम्भकारेणोक्तम्—

को भी अपने मत से परिचित कर दिया । प्रियदर्शाना ने उसके मत को  
खूब सराहना की । उसे सत्य मानकर वह वापिस अपने स्थान पर लौट  
आई । सुदर्शाना की जमालि के मत में श्रद्धा बढ़ गई । सुदर्शाना ने जिस  
कुंभार की शाला में वह ठहरी हुई थी उससे भी जम लि के मत के  
विषय में बातचीत की । ढंककुंभार ने प्रियदर्शाना की बातचीत से यह  
जान लिया कि यह भी मिथ्यात्व की ओर झुक रही है । अतः इसे इस  
दुष्कर्मसे पीछे हटाना चाहिये । इस प्रकार के विचार से प्रेरित होकर  
उसने उसकी शाटिका के एक भाग में जब कि वह वहीं पर पास के  
स्थान में बैठी हुई स्वाध्याय कर रही थी अंगार रख दिया । अंगार रखने में  
उसका अभिप्राय उसे समझाना मात्र था । जिस समय इसने उसकी शाटि-  
काके प्रान्त भागमें अंगार प्रक्षिप्त किया था वह उस समय कुंभारके अबाडा  
के बीच रखे हुए मिट्टी के वर्तनों को उलट पटल कर रहा था । सुदर्शाना  
ने जब अपनी शाटिका को जलती हुई देखा तो कहने लगी कि मेरे  
नेसराय की चादर जल गयी है । प्रियदर्शाना की बात सुनकर कुंभार

पोताना मतथी वाकैऽ कुर्यां. प्रियदर्शानाये तेना मतनी प्रसंशा करी अने तेने  
सत्य भानी ते पोताना स्थान उपर पाछां कुर्यां. प्रियदर्शानानी जमालिना मतमां  
श्रद्धा दढ अनी. जे कुंभारनी शालामां ते उतथां हुतां तेने पषु जमालीना  
मतना विषयमां वातयित करी. ढंककुंभारे प्रियदर्शानानी आवी वातयितथी  
अे जण्णी लीधुं के, आ साध्वि पषु मिथ्यात्वनी तरङ्क ढणी रह्यां छे. आथी अेने अे  
दुष्कर्मथी पाछां वाणवां जेधंअे. आ प्रकारना विचारथी प्रेरित अनी, न्यारे  
ते साध्वि तेनी पासैना स्थानमां जेसी स्वाध्याय करी रह्यां हुतां त्यारे तेमनी  
आहरना अेक भागमां अंगार लगाडी दीधो. अंगार लगाडवामां तेना आशय  
तेमने समजववा पुरतो ज हुतो. तेमनी आहरना अेक भागमां अंगार  
लगाडीने तुरतज ते कुंभार निभाडांमां राभेवां माटीनां वासखोने उलट सुलट  
इशववा लागी गयो. साध्वि प्रियदर्शानाये न्यारे पोतानी आहरने सजगती  
जेध तो, कडेवा लाग्यां के, डे ढंक! जे तारा प्रमादथी भारा नेसरायनी आहर  
अणी गर्ध ! प्रियदर्शानानी वात सांजणी कुंभारे कहुं के, साध्वीं दह्यमानने



हे साध्वि ! दह्यमानं दग्धमिति न मन्यते भवती किं पुनरुच्यते दग्धमिति । एवं कुम्भकारवचो निश्चय प्रियदर्शना साध्वी विगलितमिथ्यादर्शना प्राह-अहो ! देवानुप्रिय ! भवता-मम सम्यक् प्रतिबोधः प्रदत्तः । अतः परं तथा जगत्कल्याणकारं जिनवचनं प्रमाणम् , इति निश्चित्य तदग्रे मिथ्यादुष्कृतं दत्तम् ।

अथाऽसौ प्रियदर्शना साध्वी सहस्रसाध्वीपरिवृता पुनर्जमालिमुनेः संनिधौ गत्वा जिनमतानुयायिनीर्युक्तीः प्रावोचत् । तद्वचनैरपि जमालिमुनिः स्वदुराग्रहं न त्यक्तवान् सुगन्धिद्रव्यवासनैरपि लशुनो दुर्गन्धमिव ।

ने कहा कि साध्वीजी ! दह्यमान को आप दग्ध तो मानती नहीं हैं, फिर आप 'शाटिका जल गई' ऐसा क्यों कहती हैं ? इस प्रकार कुंभार के वचन को सुनकर प्रियदर्शना साध्वी का मिथ्यात्वरूप तिमिर नष्ट हो गया । फिर वह बोली अहो देवानुप्रिय ! आपने मुझे अच्छा प्रतिबोध दिया । इस के बाद उस प्रियदर्शना ने जगत्कल्याणकारक जिनवचन को प्रमाण मानकर उस कुंभार के सामने ही अपने मिथ्यात्व की आलोचना करली ।

हजार साध्वियों से परिवृत होकर पुनः प्रियदर्शना साध्वी जमालि के समीप पहुँची और जिनमत में लाने के लिये उसने उसके सामने अनेक जिनमतपोषक युक्तियों का प्रदर्शन किया परन्तु जमालि अपने दुराग्रह से लेशमात्र भी विचलित नहीं हुआ । सच बात है लहसुन को हजारों सुगन्धित द्रव्यों के बीच में रख भी दिया जाय तो भी वह अपनी स्वाभाविक दुर्गन्ध का परित्याग नहीं करता है ।

आप दग्ध तो मानतां न थी तो पछी आप आपुं केम कडो छे ? आ प्रकारनुं कुंभारनुं वचन न सांभणीने प्रियदर्शना साध्वीनुं मिथ्यात्वरूपी अंधाईं नाश पाव्युं. अने ते ओह्यां, अडो देवानुप्रिय ! आपे भने सारे प्रतिबोध आव्ये. आ पछी प्रियदर्शनाये जगत कल्याण कारक उन वचनने प्रमाण मानी अये कुंभारनी सामे न पोताना मिथ्यात्वनी आलोचना करी.

हजार साध्वीओधी परिवृत थछेने इरीथी प्रियदर्शना साध्वी जमालिनी पासे पडोअ्यां अने तेने उनमतमां लाववा भाटे तेमण्णे अनेक रीते प्रयत्न करी परंतु जमालि पोताना इराग्रहथी जरा पणु पाछा न रछा. साध्वी वात छे के, लसणुने हजारे सुगंधित द्रव्यनी वचमां राओ तो पणु ते पोतानी स्वाभाविक दुर्गंधने त्याग करतुं नथी.



ततः सपरिवारा सा, गतशेषाः साधवश्च तं दुर्मतं जमालिमुनिं परित्यज्य चम्पानगर्यां भगवतः श्रीमहावीरस्य संनिधौ गताः ।

ततः खलु स जमालिमुनिरन्यदा कदाचिद् रोगातङ्केभ्यो विमुक्तः सन् हृष्ट-  
तुष्टो जातः । तदनन्तरं श्रावस्तीनगर्याः कोष्ठकोद्यानात् प्रतिनिक्रम्य पूर्वानुपूर्व्या-  
चरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् चम्पानगर्यां भगवत्संनिधौ समागतः । स श्रमणं भगवन्तं  
श्रीमहावीरं वंदित्वा नमस्कृत्यैवमब्रवीत्-भगवन् ! यथा भवतः शिष्या बहवश्छद्म-  
स्था एव पृथग् विहरन्ति परलोकं गताश्च, तादृशो नाहमस्मि, यतोऽहं सम्प्राप्त-  
केवलज्ञानदर्शनो जिनोऽर्हन्नस्मि ।

एवं जमालिमुनिना प्रोक्ते सति गौतमस्वामी तं पृच्छति-जमाले ! केवली-  
जातोऽसि चेत् तदा द्वयोः प्रश्नयोरुत्तरं वद-“ शाश्वतो लोकः, किं वा अशाश्वतो  
लोकः ?, शाश्वतो जीवः किं वा अशाश्वतो जीवः ? ” ।

इसके बाद वह साध्वी जमालि के पास से वापिस आकर वह तथा  
जो साधु उनके पास थे वे भी उनसे जुड़े होकर चंपानगरी में भगवान्  
श्री महावीर के पास में आगये ।

धीरे २ जमालिमुनि भी रोग एवं आतंकों से विमुक्त होकर शरीर  
से नीरोग हो गये । बाद में उन्होंने ने श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक उद्यान  
से प्रस्थान कर दिया और ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए वे महावीर  
प्रभु के समीप आये । भगवान् को वंदना एवं नमस्कार कर बोले  
-भगवान् ! जैसे आपके अनेक शिष्य छद्मस्थ अवस्था में परलोक को  
प्राप्त हुए हैं वैसा मैं नहीं हूँ । मुझे केवल ज्ञान एवं केवलदर्शन प्राप्त  
हो चुका है अतः मैं अर्हत जिन हो गया हूँ ।

आ पछी ते साध्वी जमालीनी पासेथी पाछां क्युं अने जमालि पासे  
जे साधु आकी रक्षा छता ते पणु जमालिथी लुदा पडी अंपानगरीमां भग-  
वान्श्री महावीर स्वाभीनी पासे पडोन्थी गया.

धीरे धीरे जमाली मुनि पणु रोग अने आतंकोथी मुक्त भनी गया. शरीर पणु  
तंदुरस्त भनी गयुं. आहमां तेओअे श्रावस्तीनगरीना कोष्ठक उद्यानमांथी प्रस्थान  
क्युं, अने पूर्वानुपूर्वी पद्धति अनुसार ग्रामानुग्राम विचरण करतां करतां ते  
महावीर प्रभुनी पासे पडोन्थ्या. भगवानने वंदना अने नमस्कार करी कलुं,  
भगवन् ! जेभ आपना अनेक शिष्य छद्मस्थ अवस्थामां परलोकने प्राप्त थया  
छे तेवे हुं नथी. कारण के भने तो केवलज्ञान अने केवलदर्शन प्राप्त थई युकेल  
छे. आथी हुं अर्हत उन थई गये छुं.

उ० ८५

अथाऽसौ तदुत्तरं दातुमशक्तः सन् मौनमाश्रयत् । ततो भगवान् जमालिमाह—  
हे जमाले ! अस्य प्रश्नस्योत्तरं दातुं छन्नस्था अपि सहस्रशिष्या मम समर्थाः सन्ति  
यथा—अहम्, किंतु ते एवं न वदन्ति, यथा त्वं वदसि । इदमुत्तरं जानीहि—  
लोको जीवश्च सदा शाश्वतः, अशाश्वतोऽपीति । तथाहि—द्रव्यरूपेण लोकः शाश्वत  
उच्यते, प्रतिक्षणं पर्यायपरिवर्तनेन तु अशाश्वतः । द्रव्यरूपेण जीवोऽपि शाश्वतः  
कथ्यते । देवमनुष्यतिर्यङ्मनरकपर्यायपरावृत्त्या तु अशाश्वत उच्यते ।

जमालि मुनि ने जब ऐसा कहा तब गौतमस्वामी ने उनकी बात  
सुनकर उनसे कहा हे जमालि ! तुम यदि केवली हो गये हो तो हमारे  
दो प्रश्नों का उत्तर दो—बोलो लोक शाश्वत है कि अशाश्वत है ? जीव  
शाश्वत है कि अशाश्वत है ? गौतम के इन प्रश्नों का जब उनसे कोई उत्तर  
नहीं बना तो वह चुपचाप हो गये, उनको चुप देखकर भगवान् ने जमालि  
से कहा—हे जमालि ! देखो इन प्रश्नों के उत्तर देने के लिये मेरे हजार  
शिष्य समर्थ हैं तो भी वे ऐसा नहीं कहते हैं जैसा कि तुम कहते हो ।  
इन प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार है—जीव एवं लोक सदा शाश्वत भी है  
एवं अशाश्वत भी है । द्रव्यरूप से लोक शाश्वत कहा गया है । प्रति-  
क्षण पर्यायों के परिवर्तन से अशाश्वत भी कहा गया है । इसी तरह  
द्रव्यदृष्टि से जीव भी शाश्वत, एवं पर्यायदृष्टि से—देव मनुष्य तिर्यञ्च  
एवं नरक पर्यायों के परिवर्तन की अपेक्षा से अशाश्वत जानना चाहिये ।

जमालि मुनिसे आ प्रमाणे कहुं त्पारे गौतम स्वामीसे तेनी आ वात सांखणी  
तेने कहुं, हे जमालि ! तमे ने केवणी थर्ध गया हो तो अमारा ने प्रश्नोने  
जवाब आपो. कडे—दोक शाश्वत छे ? एव शाश्वत छे के अशाश्वत ? गौतम  
स्वामीना आ प्रश्नोने उत्तर जमालिथी आपी शकयो नही अने ते चुप थर्ध  
गया त्पारे तेने चुप नेध लगवाने कहुं,—जमालि ! जुओ आ प्रश्नोने उत्तर  
आपवा माटे मारा अेक डनर शिष्यो समर्थ छे. तो पणु तेओ अेवुं कडेता  
नथी के नेवुं तमे कडे छे. अे प्रश्नोने उत्तर आ प्रकारने छे.—एव अने दोक  
सदा शाश्वत छे अने अशाश्वत पणु छे. द्रव्यरूपथी दोक शाश्वत कडेवाय छे,  
प्रतिक्षण पर्यायोना परिवर्तनथी अशाश्वत पणु कडेवाय छे. आ रीते द्रव्य दृष्टिथी  
एव पणु शाश्वत छे अने पर्यायदृष्टिथी—देव, मनुष्य, तिर्यञ्च अने नरक पर्या-  
योना परिवर्तननी अपेक्षाथी—अशाश्वत जणुं नेध अे.

ततो जमालिर्भगवद्वचनं श्रुत्वाऽपि दुराग्रहवशात् तत्र श्रद्धां न कृतवान् । भगवतोऽन्तिकाद् विनिर्गत्य भूमौ स्वच्छन्दं विचरति । निह्वत्वात् बहुभिः कुमतोक्तिभिर्लोकान् कुतर्कं प्रतिबोधयति ।

एवं जमालिर्बहुवत्सरान् श्रामण्यं पालयित्वा प्रान्तेऽर्घमासिकीं संलेखनां कृत्वा तदतिचारमनालोच्य मृतः । स तदनु षष्ठे देवलोके किल्बिषिकदेवो जातः ।

एकदा गौतमस्वामी भगवन्तं पृष्ठवान्—भदन्त ! जमालिरुग्रतपा आसीत्, स कां गतिं गतः ? । भगवानाह—स षष्ठे कल्पे किल्बिषिक देवो जातः । गौतमः प्राह—

इस प्रकार भगवान् के वचन सुनकर भी दुराग्रह के वश से जमालि ने अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा—भगवान् के वचन में श्रद्धा नहीं की । वहाँ से विहार कर अब वह स्वच्छंदरूप से देशोदेश विहार करने लगे, और भी अनेक कुयुक्तियों द्वारा लोकों को कुतर्क का उपदेश करने लगे ।

इस प्रकार अनेक वर्षों तक जमालि ने श्रवण अवस्था का पालन किया । अन्त में पन्द्रह १५ दिन की संलेखना धारण करके वे मर गये । मरते समय भी इन्होंने अतिचारों की आलोचना नहीं की इसलिये मरकर यह छठवें देवलोक में किल्बिषिक जाति के देव हुए ।

एक समय की बात है कि गौतमस्वामी ने प्रभु से पूछा—भगवन् ! जमालि मर कर किस गति को गया है ?, भगवान् ने कहा कि वह छठवें देवलोक में किल्बिषिक जाति का देव हुआ है । गौतम ने

आ प्रकारनां भगवाननां वचन सांभलीने पथु दुराग्रहने वश अनेक जमालिजे “पोतानो कङ्कोज भरी” जेवो वृथा डडाग्रह आउ राज्ये अने भगवानना वचनमां श्रद्धा न करी. त्यांशी विहार करीने जमालि स्वच्छंद रूपशी देश देशमां विहार करवा लाग्या. पोते न्यां न्यां विहार कर्यो त्यां त्यां अनेक कुतर्कशी लोकाने उपदेश आपवा मांडयो.

आ रीते षष्ठा वर्षो सुधी जमालिजे श्रमण्य अवस्थानुं पालन कर्युं. अते पंढर द्विवसनी संलेखना धारण करी तेमण्णे देह छोडयो. मरती वपते पथु तेमण्णे अतिचारिनी आलोचना न करी. आथी मरीने ते छठु देवलोकमां किल्बिषिक जातिना देव थया.

जेक समये गौतमस्वामीजे प्रभुने पूछ्युं के, भगवन् ! जमालि उथ तापस्वी डता, तेजे मरीने कथं गतिमां गया छे ? भगवाने कछुं के, ते छठु देवलोकमां किल्बिषिक जातिना देव थयेल छे. प्रभुनी बात सांभली करी गौतम-

कथं घोरतपस्विनस्तस्य सा गतिः ? भगवानाह—निह्ववत्वेन, धर्माचार्या-  
देर्विरोधाद् तीव्रतपश्चरणशीलोऽप्यसौ तां गतिं प्राप्तवान् । पुनर्गौतमः प्राह—  
स्वामिन् ! स ततश्च्युत्वा क यास्यति ?, भगवानाह—ततश्च्युतोऽसौ तिर्यङ्मनुष्य-  
नारक-देवरूपेषु चतुर्गतिक-संसारेषु दीर्घकालं भ्रमिन्वा चिरेण सिद्धिं प्राप्स्यति ।

जमालिवद् बहूनां मुनीनां श्रद्धाऽपगता भवतीति श्रद्धा दुर्लभेति बोध्यम् ॥

इति प्रथमनिह्ववजमालिदृष्टान्तः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयनिह्ववतिष्यगुप्त दृष्टान्तः प्रोच्यते—

भगवतः श्रीमहावीरस्वामिनः केवलज्ञानोदयकालादारभ्य षोडशवर्षाण्यतीतानि

प्रभु की बात सुनकर कहा कि भगवन् ! वह तो उग्रतपस्वी था उसकी इतनी छोटी गति क्यों हुई है ? प्रभु ने कहा वह निह्वव-  
-जिन वचनों का अपलापक-होने से अपने धर्माचार्य आदि से भी वह उग्र विरोध रखता था इसलिये तपस्वी होने पर भी उसने इस गति को प्राप्त किया है । गौतम ने फिर प्रभु से कहा-भगवन् ! वह वहां से च्यवकर अब कहां जायगा ? भगवान् ने कहा वह वहां से च्यवकर तिर्यञ्च मनुष्य नारकदेवरूप चतुर्गतिक संसार में दीर्घकालतक भ्रमण कर बहुत काल के बाद सिद्धि को प्राप्त करेगा ।

जमालि की तरह अनेक मुनियों की भी श्रद्धा हट जाती है इसलिये श्रद्धा दुर्लभ है ऐसा समझना चाहिये ।

इस प्रकार यह प्रथमनिह्वव जमालि का दृष्टान्त हुआ ॥ १ ॥

स्वामीએ પૂછ્યું, ભગવંત ! તે તેા ઉગ્ર તપસ્વી હતા, એની આવી નાની ગતિ કેમ થઈ ? પ્રભુએ કહ્યું, તે નિહ્વવ-જન વચ્ચનોના અપલાપક થવાથી પોતાના ધર્માચાર્યનો પણ તેણે વિરોધ કરેલો આથી દીર્ઘતપસ્વી હોવા છતાં પણ તેણે એ ગતિ પ્રાપ્ત કરી છે. ગૌતમસ્વામીએ ફરી પૂછ્યું કે, ભગવંત ! તે ત્યાંથી ચ્યવીને હવે કયાં જશે ? ભગવાને કહ્યું, તે ત્યાંથી ચ્યવીને તિર્યંચ, મનુષ્ય નરકદેવરૂપ ચતુર્ગતિક સંસારમાં ભ્રમણ કરી ઘણા કાળ પછી સિદ્ધિને પ્રાપ્ત કરશે.

જમલિની જેમ ઘણા મુનિઓની શ્રદ્ધા ઓછી થાય છે આથી તે દુર્લભ છે એવું સમજવું જોઈએ.

આ રીતે એ પ્રથમ જમલિ નિહ્વવદ્રષ્ટાન્ત પૂરું થયું ॥૧॥

तदा राजगृहे नगरे गुणशिले उद्याने चतुर्दशपूर्वधरोवसुनामक आचार्यः समागतः । तस्य तिष्यगुप्ता नाम शिष्य आसीत् । स पूर्वाध्ययनतत्परः कस्मिंश्चित् समये आत्मप्रवादनामकं सप्तमं पूर्वं पठति, आत्मप्रवादनामकं पूर्वमधीयानस्य तिष्यगुप्तमुनेरयं सूत्रालापकः समायातः, तद् यथा—

“ एगे भंते जीवपएसे जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे । एवं दो तिण्णि० जाव दस संखेज्जा । असंखेज्जा भंते ! जीवपएसा जीवत्ति वत्तव्वं सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे । एगपएसूणे वि णं जीवे नो जीवेत्ति वत्तव्वं सिया । से केणं अट्ठेणं ? जम्हा णं कसिणे पडिपुण्णे लोगागासपएसत्तुल्ले जीवे जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ?, से तेणट्ठेणं ” इति ॥

अथ द्वितीय निहवतिष्यगुप्तकी कथा कही जाती है, वह इस प्रकारसे है—

भगवान् महावीर को केवलज्ञान की उत्पत्ति होने पर जब सोलह १६ वर्ष व्यतीत हो गये तब राजगृह नगर में गुणशिलनामक उद्यान में चौदह पूर्वधारी वसु नाम के आचार्य आये । इनके शिष्य तिष्यगुप्त नाम के थे । ये पूर्वो के अध्ययन करने में तत्पर थे, किसी समय जब ये सातवां आत्मप्रवाद पूर्व पढ़ रहे थे उस समय इनको उसका यह सूत्रालापक पढ़ने में आया, वह यह है—

“ एगे भंते जीवपएसे जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे । एवं दो तिण्णि० जाव दस संखेज्जा असंखेज्जा भंते ! जीवपएसा जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे । एगपएसूणे वि णं जीवे नो जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ? से केणं अट्ठेणं ? जम्हा णं कसिणे पडिपुण्णे

हुवे थील निहव तिष्यगुप्तनी कथा कडेवाभां आवे छे ते आ प्रकारनी छे.—

भगवान् महावीरने केवलज्ञाननी उत्पत्ति थयाने न्यारे सोलह वर्ष वीत्यां न्यारे राजगृह नगरभां शुशिल नामना उद्यानभां चौदहपूर्वना धारक एवा वसु नामना आचार्य आव्या. एभने तिष्यगुप्त नामना शिष्य हुता ते पूर्वोना अध्ययन करवाभां तत्पर हुता ! एक समय न्यारे ते सातवुं आत्मप्रवाद पूर्व लणी रह्या हुता ए वभते एने सातवा पूर्वनुं सूत्रालापक वांचवाभां आव्युं ते आ छे—

“ एगे भंते जीवपएसे जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे ! एवं दो तिण्णि० जाव दस संखेज्जा असंखेज्जा भंते ! जीवपएसा जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे । एगपएसूणे वि णं जीवे नो जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ? से केणं अट्ठेणं ? जम्हाणं कसिणे

छाया—एको भदन्त ! जीवप्रदेशो जीव इति वक्तव्यं स्यात् ? नो अयमर्थः समर्थः । एवं द्वौ त्रयो० यावद् दश संख्याताः । असंख्याता भदन्त ! जीवप्रदेशा जीव इति वक्तव्यं स्यात् ? नो अयमर्थः समर्थः । एकप्रदेशो नोऽपि खलु जीवो नो जीव इति वक्तव्यं स्यात् ? असौ केनार्थेन ? यस्मात्खलु कृत्स्नः प्रतिपूर्णे लोकाकाशप्रदेशतुल्यो जीवो जीव इति वक्तव्यं स्यात् ? असौ तेनार्थेन ” इति ।

अमुं चालापकमधीयानस्य “ कस्यापि नयस्येदमपि मतं, न तु सर्वनयानाम् ” इत्येवमजानतस्तिष्यगुप्तमुनेर्मिथ्यात्वोदयाद् दर्शनविपर्यासः संजातः । तदा जीव प्रदेशविषये तस्येत्यं मतिर्जाता—एक—द्वि—त्र्यादयः संख्येयाः असंख्येयाः प्रदेशाः

लोगागासपएसतुल्ले जीवे जीवेत्ति वक्तव्यं सिया ? से तेणट्टेणं ” । इति ।

छाया—एको भदन्त ! जीवप्रदेशो जीव इति वक्तव्यं स्यात् ? नो अयमर्थः समर्थः । एवं द्वौ त्रयो यावद् दश संख्याताः असंख्याताः भदन्त ! जीवप्रदेशा जीव इति वक्तव्यं स्यात् ? नो अयमर्थः समर्थः । एकप्रदेशो नोऽपि खलु जीवो नो जीव इति वक्तव्यं स्यात्, असौ केनार्थेन ? यस्मात् खलु कृत्स्नः प्रतिपूर्णे लोकाकाशप्रदेशतुल्यो जीवो जीव इति वक्तव्यं स्यात्, असौ तेन अर्थेन ” इति ।

इस प्रकार इस आलापक को पढ़ने के बाद किसी एक नय की विवक्षा से ऐसा भी हो सकता है अतः यह मत “ किसी एक नय का है, सर्व नयों का नहीं है ! ” इस बात को न समझ कर मिथ्यात्व के उदय से उन तिष्यगुप्त मुनिके दर्शन में विपर्यासता आ गई । इसलिये उनको उस समय जीव के प्रदेशविषय में इस प्रकार का ध्यान बंध गया कि एक

पडिपुण्णे लोगागासपएसतुल्ले जीवे जीवेत्ति वक्तव्यं सिया ? से तेणं अट्टेणं ” । इति ।

छाया—एको भदन्त ! जीव प्रदेशो जीव इति वक्तव्यं स्यात् ? नो अयमर्थः समर्थः एवं द्वौ त्रयो यावद् दश संख्याताः असंख्याताः भदन्त ! जीवप्रदेशा जीव इति वक्तव्यं स्यात् ? नो अयमर्थः समर्थः ! एकप्रदेशो नोऽपि खलु जीवो नो जीव इति वक्तव्यं स्यात् ? असौ केनार्थेन ? यस्मात् खलु कृत्स्नः प्रतिपूर्णे लोकाकाशप्रदेशतुल्यो जीवा जीव इति वक्तव्यं स्यात् असौ तेन अर्थेन ” । इति ।

आ प्रकारे अये आलापकने लएया पछी केअं अेक नयना अबिप्रायथी अेम पखु थअं शके अे. आथी आ मत केअं अेक नयनेअे, सर्व नयेने नथी. ” आ वातने न समअने मिथ्यात्वना उदयथी ते तिष्यगुप्त मुनिना दर्शनमां विपर्ययता आवी गअं आथी तेभने अे समये अुवना प्रदेश विषयमां अे प्रकारं ध्यान अंधाअं गअुं के, अेक अे त्रखु वगेरे संख्यात असंख्यात प्रदेश अुव नथी.



खलु जीवो न भवति, “ एगे भंते ! जीवपएसे ” इत्याद्यालापके निषिद्धत्वात् । एवं यावदेकेनापि प्रदेशेन हीनो जीवो न भवति, अत्रैवालापके प्रतिषिद्धत्वात् । यावन्तो जीवस्य प्रदेशाः सन्ति, तेष्वेकस्यापि प्रदेशस्य न्यूनत्वेऽवशिष्टजीवप्रदेशा जीवव्यपदेशं न लभन्ते । ऊने वस्तुनि पूर्णव्यपदेशो न भवति । यावन्तः प्रदेशा लोकाकाशस्य सन्ति, तत्तुल्या असंख्याता निरवशेषप्रदेशजीवस्य सन्ति । तस्मात् येन केनापि चरमप्रदेशेन स जीवः परिपूर्णः क्रियते स एवं प्रदेशो जीवः, न तु शेषप्रदेशाः, एतत्सूत्राऽऽलापक प्रामाण्यात् । इत्येवं विरुद्धमर्थं प्रतिपन्नस्तिष्यगुप्त-मुनिर्धर्माचार्यमब्रवीत्—यद्येकेनापि प्रदेशेन विहीनाः सकला अपि जीवप्रदेशा

दो तीन आदि संख्यात असंख्यात प्रदेश जीव नहीं है क्यों कि “ एगे भंते ! जीवपएसे ” इस आलापक में इसका निषेध किया गया है । इसी तरह एक भी प्रदेश से हीन भी जीव नहीं होता है यह बात भी इसी आलापक में प्रतिषेध करने में आई है । तात्पर्य इसका यह है कि जितने जीव के प्रदेश होते हैं उनमें से यदि एक भी प्रदेश कम हो तो वह जीव नहीं हो सकता है । अर्थात्—उसके अवशिष्ट प्रदेश जीव नहीं कहलासकते हैं । वस्तु में यदि जरा सी भी कमी हो तो वह पूरी वस्तु कैसे कही जा सकती है । जितने प्रदेश लोकाकाश के हैं उतने ही प्रदेश—असंख्यात प्रदेश—एक जीव के हैं इसलिये जिस किसी अन्तिम प्रदेश से वह जीव परिपूर्ण होता माना जाता है वही अन्तिम प्रदेश जीव है । अवशिष्ट प्रदेश जीव नहीं हैं, क्यों कि इसमें यही सूत्रालापक प्रमाण-भूत है । इस प्रकार अपनी कल्पना से विरुद्ध अर्थ को कल्पित कर तिष्यगुप्त

केम के—“ एगे भंते ! जीवपएसे ” ये आलापकमां तेना निषेध करवामां आवेल छे. आ रीते अेक पषु प्रदेशथी लुव डीन पषु थतो नथी. आ वात पषु आलापकमां प्रतिषेध करवामां आवी छे. अेतुं तात्पर्यं अे छे के, लुवना नेटला प्रदेश डोय छे अेमांथी ने अेक पषु प्रदेश अोछे डोय तो लुव थर् शकतो नथी. अर्थात् तेना अवशिष्ट प्रदेश लुव कडेवाता नथी. वस्तुमां अे जरा पषु अोछप डोय तो ते पुरी वस्तु कडेवाती नथी. लोकाकाशना नेटला प्रदेश छे अेटला ज प्रदेश असंख्यात प्रदेश अेक लुवना छे. आथी ने केछ अंतिम प्रदेशथी ते लुव परिपूर्ण थतो मानवामां आवे छे ते ज अंतिम प्रदेश लुव छे. अवशिष्टप्रदेश लुव नथी. केमके तेमां अेज सूत्रालापक प्रमाणभूत छे. आ रीते पोतानी कल्पनाथी विरुद्ध अर्थने कल्पित करी तिष्यगुप्ते

जीवव्यपदेशं न लभन्ते, तदा स एकैकधरमप्रदेशो जीवनाम्ना वक्तव्यः, यतस्तस्य प्रदेशस्य सद्भावे एव जीवत्वं भवति ।

ततस्तं वसुनामको धर्माचार्यः प्राह-वत्स ! किमयुक्तं ब्रवीषि ? । (१) यदि तव प्रथमप्रदेशो जीवो न संमतस्तर्हि भवद्भिमतोऽन्त्यप्रदेशोऽपि न जीवः, प्रदेशत्वा-विशेषात् प्रथमाद्यन्यप्रदेशवत् । इति ।

(२) अथवा-तव मतेऽन्त्यप्रदेश एव जीवः, प्रथमादिप्रदेशस्तु न जीवः, अप्र कस्तव विशेषहेतुः ?, येन प्रदेशत्वे तुल्येऽपि अन्तिमो जीवः, न प्रथमादिरिति ?,

ने धर्माचार्य के पास जाकर कहा कि यदि एक भी प्रदेश से विहीन होने पर सकल अवशिष्ट जीवसंज्ञा को प्राप्त नहीं होते हैं तो उस एक अन्तिम प्रदेश को ही जीव कहना चाहिये, क्यों कि उस एक प्रदेश के सद्भाव में ही अन्य प्रदेशों में जीव का व्यपदेश होता है ।

तिष्यगुप्त की इस प्रकार बात सुनकर वसु आचार्य ने कहा वत्स ! यह तुम क्या अयुक्त बात कह रहे हो ?

(१) यदि तुम्हें प्रथम प्रदेश में जीव संमत नहीं है, तो तुम जिस अन्तिम प्रदेश को जीव मानते हो वह भी प्रदेशत्व की अविशेषता से जीव नहीं होगा । जैसे प्रथम आदि अन्य प्रदेश तुम्हारी दृष्टि से जीव नहीं है ।

(२) अथवा तुम्हारे मन्तव्यके अनुसार अन्त्यप्रदेश ही जीव है, प्रथम-प्रदेश जीव नहीं है इसमें युक्ति क्या है । जिस तरह प्रदेशता प्रथम-प्रदेश में है उसी प्रकार प्रदेशता अन्तिम प्रदेश में भी है, तब यदि प्रदे-

धर्माचार्यनी पासे ञधं कहुं के, कदाच्य ऐक पषु प्रदेशथी विद्धिन थतां सकल अवशिष्ट एवप्रदेश एव संज्ञाने प्राप्त थता नथी. तो ते अन्तिम प्रदेशने ञ एव कडेवा ञेधये. केमके, ऐ ऐक प्रदेशना सदभावमां ञ णीण प्रदेशोमां एवनेो व्यपदेश थाय छे.

तिष्यगुप्तनी आ वात सांभणीने वसु आचार्ये कहु, वत्स ! तमे आ केवी अबुगती वात करी रखा छे ? ञे तमने प्रथम प्रदेश एव संमत नथी तो तमे ञे अन्तिम प्रदेशने एव मानेो छे ते पषु प्रदेशत्वनी अविशेषताथी एव न थाय. ञेम प्रथम आदि अन्य तमारी दृष्टीथी एव नथी.

(२) अथवा तमारा मत अनुसार अन्त्यप्रदेश ञ एव छे, प्रथम प्रदेश एव नथी आमां युक्ति शुं छे ? ञे रीते प्रथमप्रदेशमां प्रदेशता छे, ते ञ रीते प्रदेशता अन्तिमप्रदेशमां पषु छे, तो प्रदेशत्व हेतुने लध कदाच्य

अथ विवक्षितासंख्यातप्रदेशराशेरन्त्यः प्रदेशः पूरण इति विशेषसद्भावतः स एवं जीवो न तु प्रथमादिः, इति मन्यसे, तदयुक्तम्, यतो यथाऽन्त्यः प्रदेशः पूरकः तथा एकैकः प्रथमादिप्रदेशोऽपि तस्य विवक्षितजीवप्रदेशराशेः पूरक एव, एकमपि प्रदेशमन्तरेण तस्याऽपरिपूर्तेः ॥ २ ॥

(३) एवं च सर्वप्रदेशानां पूरकत्वेऽनिष्टमापत्ति-तथाहि सर्वजीवप्रदेशानां विवक्षिताऽसंख्यातपरिमाणपूरकत्वेऽन्त्यप्रदेशवत् प्रत्येकं जीवत्वात् प्रत्येकजीवोऽसंख्यातजीवः स्यात् (१)।

शत्व हेतु को लेकर यदि अन्त्यप्रदेश में जीव सिद्ध किया जाता है तो इसी तरह प्रथमप्रदेश में भी इसी हेतु द्वारा जीव सिद्ध किया जायगा “ तब प्रथम प्रदेश में जीव नहीं है अन्तिम प्रदेश में ही जीव है ” ऐसा कहना कहाँ तक युक्ति युक्त माना जा सकता है। इस पर यदि यों कहा जाय कि विवक्षित असंख्यात प्रदेशराशि का अन्त्यप्रदेश पूरण है इसलिये वही जीव माना जायगा-प्रथमादिप्रदेश नहीं, क्यों कि वे पूरण नहीं हैं, तो इस प्रकार का कथन भी ठीक नहीं है, क्यों कि जिस प्रकार अन्त्यप्रदेश पूरण है उसी तरह एक एक प्रथमादिप्रदेश भी उस विवक्षित जीव की प्रदेशराशि का पूरक है। क्यों कि यदि एक भी प्रदेश की न्यूनता हो तो उस विवक्षित जीवप्रदेशराशि की पूर्ति नहीं हो सकती है।

(३) इस प्रकार सर्वप्रदेशों में पूरणता मानने पर अनिष्टापत्ति आती है, वह इस तरह से-समस्त जीवप्रदेशों में विवक्षित असंख्यात परिमाण

अन्त्यप्रदेशमां एव साभित करवामां आवे तो आव रीते प्रथम प्रदेशमां पणु ते डेतु द्वारा एव साभित करवामां आवे त्तारे प्रथमप्रदेशमां एव नथी. अन्तिमप्रदेशमां ए एव छे अेवुं कडेवुं युक्ति युक्त कयां सुधी मानी शकाय ? आ अगे अेम कडेवामां आवे के विवक्षित असंख्यात प्रदेश राशीना अन्त्यप्रदेश पूरक छे आ भाटे ते ए एव मानवामां आवशे- प्रथम आदि प्रदेश नही केमके ते पूरक नथी तो आ प्रकारे कडेवुं अे पणु डीक नथी. केम के, ने रीते अन्त्यप्रदेश पूरक छे अे रीते अेक अेक प्रथम आदि प्रदेश पणु अे विवक्षित एवनी प्रदेशराशीना पूरक छे. केम के, ने अेक पणु प्रदेशनी न्यूनता डेय तो ते विवक्षित एव प्रदेश राशीनी पूर्ति भनी शकती नथी,

(३) आ प्रकारे सर्व प्रदेशमां पूर्णता मानवाथी अनिष्ट आपत्ति आवे छे. ते आ रीते छे.-समस्त एव प्रदेशमां विवक्षित असंख्यात परि-

अथवा—प्रथमादिप्रदेशवत् अन्त्यप्रदेशस्यापि अजीवत्वे सर्वथा जीवाभावः प्रसज्यते (२)।

किंच—यद्येक एव प्रदेशो जीवत्वं पूरयति, तर्हि पूर्णस्य जीवस्य कर्तव्याऽर्थ-सम्पादनरूपा क्रिया एकस्मात् प्रदेशात् स्यात्, न त्वेवं दृश्यते, यथैकस्मात् तन्तोः पटस्य कार्यमावरणादिरूपं नोपलभ्यते (३)

अथ पूरकत्वे समानेऽपि अन्त्यप्रदेश एव जीवः, शेषास्तु प्रदेशा अजीवा इत्या-ग्रहो न मुच्यते, तर्हि राजवद्भवतो भाषणम्। यत् प्रतिभासते तदेव जल्पति। तथा च सति—विपर्ययोऽपि कस्मान्न स्यात्, आद्यः प्रदेशो जीवः, अन्त्यस्त्वजीव इति(४)

अथवा—राजवत् स्वच्छन्दभाषित्वात् भवन्मते विषमत्वं कुतो न स्यात्। केचित् प्रदेशाः जीवाः, केचित्तु अजीवाः, इति (४)। अथवा—सर्वविकल्पसिद्धिः

की पूरकता होने पर अन्त्यप्रदेश की तरह प्रत्येक प्रदेश में जीवत्व हो जाने से प्रत्येक जीव असंख्यातजीववाला हो जायगा (१)। अथवा प्रथमादि प्रदेश की तरह अन्त्यप्रदेश में भी अजीवत्व मानने पर सर्वथा जीवका अभाव प्रसक्त होता है। (२) और भी—यदि एक ही प्रदेश जीवत्व की पूर्ति करता है तो ऐसी स्थिति में पूर्ण जीव के द्वारा होने वाली अर्थ संपादनरूप क्रिया एक ही प्रदेश से हो जानी चाहिये—परन्तु ऐसा होता तो दिखता नहीं है। कहीं सम्पूर्णवस्त्र से होने वाली अर्थ-क्रिया उसके एक तन्तु से थोड़े ही हो सकती है (३)।

अथवा—राजा की तरह स्वच्छन्दभाषी होने से तुम्हारे मत में विष-मता कैसे नहीं होगी—कितनेक प्रदेश जीव हो जायेंगे और कितनेक अजीव हो जायेंगे (४)।

भाषुनी पूरकता होवारी अन्त्यप्रदेशनी माइक प्रत्येक प्रदेशमां लुवत्व थर्ध ज्वाथी प्रत्येक लुव असंख्यात लुववाणो थर्ध ज्शे. (१) अथवा प्रथम लुव आदि प्रदेशोनी माइक अन्त्यप्रदेशमां पण्य अलुवत्व मानवारी सर्वथा लुवनो अलाव प्रसक्त थाय छे. (२) किंच—जे अेक ज् प्रदेश लुवत्वनी पूर्ति करे छे तेो अेवी स्थितिमां पण्य पूण्य लुव द्वारा थनारी अर्थ संपादन इप क्रिया अेक ज् प्रदेशथी थर्ध ज्वी जेधअे. परंतु अेवुं थतु जेवामां आवतुं नथी, कथांथ संपूण्य वञ्चथी थनारी अर्थ क्रिया तेना अेक तंतुथी थोडी ज् थर्ध शके छे ? (३)

अथवा—राजनी माइक स्वच्छंद भाषी थवाथी तमारा मतमां विशेषता केम नही आवे ? केटलाक प्रदेश लुव थशे त्यारे केटलाक अलुव थर्धज्शे. (४)

कस्मान्न भवति, स्वेच्छया सर्वपक्षाणामपि वक्तुं शक्यात् ( ५ ) ।

इति तृतीयपक्षे विकल्पपञ्चकम् ॥ ३ ॥

(४) किंच-यत् प्रथमादिप्रदेशसमुदाये सर्वथा जीवत्वं नास्तीति मन्यसे, तदा एकस्मिन्नन्त्यप्रदेशेऽपि जीवत्वं न स्यात्, यथा सिकताकणसमुदायेषु तैलं नास्तीति प्रत्येककणेऽपि तैलं नास्ति । तर्हि जीवत्वं कथमेकस्मिन्नेवान्त्यप्रदेशे समायातमिति ।

(५) किंच-भवन्मतेऽन्त्यप्रदेशे सर्वथा पूर्णो जीवोऽस्ति, तदन्येषु प्रथमादि-प्रदेशेषु देशतो जीवोऽस्ति, इति विशेषो यदुच्यते, तन्न युक्तम्-अन्त्योऽपि प्रदेशो भवन्मते देशत एव जीव इति वाच्यम्, प्रदेशत्वात्, प्रथमादिप्रदेशवत् (१) ।

अथवा-सर्व विकल्पों की सिद्धि भी क्यों न हो जायगी क्यों कि अपनी इच्छा से सब ही पक्ष कह सकने योग्य हो सकते हैं (५) ।

॥ ये तीसरे पक्ष के पांच विकल्प हुए ॥३॥

(४) और भी-जो प्रथमादिप्रदेशसमुदाय में सर्वथा जीवत्व नहीं है ऐसा माना जाय तो एक अन्त्यप्रदेश में भी जीवत्व कैसे आसकता है, जब बालु के समुदाय में तैल नहीं है, तो भला उसके एक कण में तैल का सद्भाव कैसे माना जासकता है ।

(५) और भी-तुम्हारे मन्तव्यके अनुसार अन्त्यप्रदेश में ही सर्वथा पूर्णरूपसे जीव है बाकी प्रथमादिप्रदेशों में देशतः जीव है इस प्रकार का विशेष जो तुम कहो तो यह भी कहना ठीक नहीं है क्यों कि इस प्रकार के कथनसे प्रदेश की अपेक्षा प्रथमादिप्रदेश की तरह अन्त्यप्रदेश में भी जीव अंशतः-देशतः-ही साबित हो सकेगा (१)

अथवा—सर्व विकल्पोंकी सिद्धि पक्ष केम न थर्छ न्य केम के, पोतानी छिछाथी सर्व पक्ष कडेवा लायक अनि न्य छे. (५)

॥ आ त्रीन पक्षना पांच विकल्प थया. (३)

(४) किंच-जे प्रथमादि प्रदेश समुदायमां सर्वथा ज्वत्व नथी, जेवुं मानवामां आवे तो जेक अन्त्यप्रदेशमां पक्षु ज्वत्व कर्छ रीते आवी शके ? जेम देतीना समुदायमां तेल नथी. तो पछी तेना जेक कषुमां तेलना सद्भाव केम मानी शक्याय ?

(५) किंच—तभारा मत अनुसार अन्त्यप्रदेशमां ज सर्वथा पूर्ण रूपथी ज्व छे आकी प्रथम आदि प्रदेशोमां देशतः ज्व छे, आ प्रकारनुं विशेष जे तमे कडे तो पक्षु कडेवुं ठीक नथी. केम के, आ प्रकारनुं कडेवुं प्रदेशनी अपेक्षाजे प्रथमादि अन्त्यप्रदेशमां पक्षु ज्व अंशत देशतः-ज साभीत थथे (१)

अथ यदि अन्त्यप्रदेशे संपूर्णो जीव इति मन्यसे, तर्हि तत्र संपूर्णतायाः सद्भावे यो हेतुः स प्रथमादिप्रदेशेषु समान एव, तुल्यधर्मकत्वात् । अतस्तेष्वपि प्रतिप्रदेशं संपूर्णजीवत्वमन्त्यप्रदेशवत् समापद्येत (२) ।

इति पञ्चमपक्षे विकल्पद्वयम् ॥ ५ ॥

(६) चरमत्वादस्य चरमप्रदेशस्यैव जीवत्वं मन्यते, तद्विन्नेषु प्रदेशेषु जीवत्वं प्रतिविध्यतेऽस्माभिस्तदप्ययुक्तम्, चरमत्वम्-अन्तिमत्वम्, तदपि प्रदेशस्याऽऽपेक्षिकमेव स्यात्, आपेक्षिकं च कदाचिदप्येकत्रनियतं न स्यात्, अपेक्षावशात् सर्वस्यापि प्रदेशस्य चरमत्वसम्भवात् । तस्मादेकेन त्वद्विवक्षितेन चरमेण प्रदेशेन विना

यदि अन्त्यप्रदेश में संपूर्ण जीव माना जायगा तो उस प्रदेश में जीव की संपूर्णता साबित करने वाला जो भी हेतु होगा वही हेतु प्रथमादि प्रदेशों में भी उसका समानरूप से साधक बन जायगा । इसलिये अन्तिम प्रदेश की तरह प्रतिप्रदेश में संपूर्णजीव मानने का प्रसंग प्राप्त होगा (२) । ये पांचवे पक्ष के दो विकल्प हुए ॥ ५ ॥

(६) चरम होने से चरम प्रदेश में ही जीवत्व यदि माना जायगा, और बाकी भिन्न प्रदेशों में जीवत्व नहीं माना जायगा, तो ऐसा कथन ठीक नहीं माना जा सकता है, क्यों कि अन्तिम प्रदेशमें जो चरमता है वह वहां आपेक्षिक है । जो आपेक्षिक होता है वह एक जगह नियत नहीं माना जा सकता । अपेक्षा के वश से सर्व प्रदेशों में चरमता आसकती है । इसलिये तुम्हारे द्वारा विवक्षित एक चरम प्रदेश

यदि अन्त्यप्रदेशमां संपूर्णं एव मानवामां आवे तो अे प्रदेशमां एवनी संपूर्णता साधीत करनार जे पणु डशे ते ज हेतु प्रथम आदि प्रदेशोमां पणु अेना समानरूपथी साधक अनी जशे. आ डारणु अंतिम प्रदेशनी भाङ्क प्रतिप्रदेशोमां संपूर्णं एव मानवानो प्रसंग प्राप्त थशे. (२)

॥ आ पांचमां पक्षना जे विकल्प थया. ॥ पा ॥

(६) चरम होवाथी चरम प्रदेशमां ज एवत्व जे मानवामां आवे अने आकी थीज प्रदेशोमां एवत्व न मानवामां आवे तो अे कडेहुं अशेअर नथी. डेभके, अंतिम प्रदेशमां जे चरमता छे ते त्यां आपेक्षिक छे. जे आपेक्षिक होय छे ते अेक जग्याअे नियत मानवामां आवता नथी. अपेक्षाना वशथी सर्व प्रदेशोमां चरमता आवी शके छे. आ भाटे तभारा तरङ्गथी विवक्षित अेक चरम प्रदेश वीना जेभ अपर प्रदेश



यथाऽपरे प्रदेशास्तव मते जीवत्वं न प्राप्नुवन्ति, तथा जीवतया त्वद्विवक्षितोऽपि चरमः प्रदेशस्तैः प्रदेशैर्विना जीवत्वं न प्राप्नुयात् । सर्वेषां प्रदेशानामप्यापेक्षिक-चरमत्वसिद्धेः (१) ।

अथ प्रथमादिप्रदेशेषु जीवत्वं न मन्यते, तर्हि चरमप्रदेशेऽपि भवन्मते जीवत्वं न स्यात् । तथाहि—अन्त्यप्रदेशोऽपि न जीवः, प्रदेशत्वात्, प्रथमादिप्रदेशवत् (२) ।

इति षष्ठपक्षस्य विकल्पद्वयम् ॥ ६ ॥

तिष्यगुप्तः प्राहः—ननु इयं प्रतिज्ञा आगमबाधिता, यतः पूर्वोक्तालापकरूपे श्रुते के विना जैसे अपर प्रदेश तुम्हारे मन्तव्यके अनुसार जीवरूप नहीं माने जाते हैं उसी तरह जिस चरम प्रदेशको तुम जीवरूपसे विवक्षित कह रहे हो ऐसा वह चरम प्रदेश भी उन द्वितीयादि प्रदेशों के विना जीवस्वरूप नहीं माना जा सकता है, क्यों कि अपेक्षा से सर्व प्रदेशों का चरमत्व पहले सिद्ध हो चुका है ।

यदि प्रथमादिप्रदेशों में जीव नहीं माना जायगा तो चरम प्रदेश में भी तुम्हारी मान्यतानुसार जीवपना नहीं आ सकता है । प्रयोग—“अन्त्यप्रदेशोऽपि न जीवः प्रदेशत्वात् प्रथमादिप्रदेशवत्” प्रथमादि प्रदेश की तरह अन्त्यप्रदेश भी प्रदेश होने से जीवस्वरूप नहीं हो सकता है (२) ये छठे पक्ष के दो विकल्प हुए ॥ ६ ॥

तिष्यगुप्त कहता है—आप इस अनुमान प्रयोग से जो अन्त्यप्रदेश में जीवत्व का निषेध करते हैं सो आपका यह कथन आगम से बाधित होता है, क्यों कि पूर्वोक्त आलापकरूप आगम में प्रथमादि प्रदेशों में

तमारा मानवा सुञ्जल एवञ्च मानवाभां आवता नथी अञ्ज रीते ङे चरम प्रदेशने तमे एवञ्चपथी विवक्षित करी रछा छे तेवा ते चरम प्रदेश पञ्च अे द्वितीयादि प्रदेशो विनाना एव स्वञ्च मानवाभां आवता नथी. केमके, अपेक्षाथी सर्व प्रदेशोनुं चरमत्व पडेलां सिद्ध थर्च युकेल छे. (१)

प्रथम आदि प्रदेशभां ङे एव न मानवाभां आवे तो चरम प्रदेशभां पञ्च तमारी मान्यता अनुसार एवपञ्चुं आवी शकतुं तथी.

प्रयोग—“अन्त्यप्रदेशोऽपि न जीवः प्रदेशत्वात् प्रथमादिप्रदेशवत्” प्रथम आदि प्रदेशनी भाङ्क अन्त्यप्रदेश पञ्च प्रदेश डोवाथी एव स्वञ्च अनी शकतो नथी.

॥ आ छुं पक्षना अे विकल्प थया. ॥ ६ ॥

तिष्यगुप्त कहे छे—आप आ अनुमान प्रयोगथी अन्त्यप्रदेशभां एवत्वनो निषेध करे छे, तो आपनुं अे कहेवुं आगमथी बाधित थाय छे. केमके, पूर्वोक्त आलापकरूप आगमभां प्रथमादि प्रदेशोभां एवत्व नथी अेवुं

प्रथमादिप्रदेशा जीवत्वेन निषिद्धाः, न पुनरन्त्यप्रदेशः, “ अनिषिद्धमनुमतं भवती—”ति न्यायात्, तत्र जीवत्वानुज्ञानात् । अतः प्रथमादिप्रदेशवत् अन्त्यस्य-जीवत्वनिषेधो न शास्त्रानुमत इति, चेत् — उच्यते—

(७) आचार्यः प्राह—अन्त्यप्रदेशोऽपि श्रुते जीवत्वेन निषिद्धोऽस्ति, यतः— “ एगे भंते ! जीवपएसे जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे । ” इति तत्रैवोक्तम् । तस्मात् यदि श्रुतं भवतः प्रमाणं तदा भवन्मतेऽन्त्यप्रदेशस्यापि जीवत्वं न वाच्यम्, एकत्वात्, प्रथमाद्यन्यतरप्रदेशवत् (१) ।

जीवत्व नहीं है ऐसा स्पष्टरूप से कहा गया है । तथा अन्त्यप्रदेश में जीव है ऐसा विधान किया गया है, क्यों कि जो अनिषिद्ध होता है, वह अनुमत समझा जाता है इससे ऐसा ज्ञात होता है कि अन्त्य-प्रदेश में जीवत्व की मान्यता शास्त्रसंमत है । इसलिये मैं कह रहा हूँ कि प्रथमादिप्रदेशों की तरह अन्त्यप्रदेश में जीवत्व का निषेध शास्त्रानुमत नहीं है ।

(७) आचार्य कहते हैं—ऐसा नहीं है, अन्त्यप्रदेश में जीव है यह बात भी शास्त्र में निषिद्ध की गई है, क्यों कि “ एगे भंते ! जीवपएसे-जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे ” यह पाठ भी वहीं पर आया है, सो यदि तुम को श्रुत में प्रमाणता अभीष्ट है तो तुम को “ अन्त्य-प्रदेश में जीव है ” ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्यों कि प्रथमादि अन्य-तर प्रदेश की तरह एक प्रदेशता अन्त्य के प्रदेश में भी स्थित है ।(१)।

स्पष्ट इपथी कडेवाभां आळुं छे. तथा अन्त्यप्रदेशभां अणु छे अणुं विधान करवाभां आवेल छे. केमके, जे अनिषिद्ध डोय छे ते अनुमत समजवाभां आवे छे. आथी अणुं ज्ञाणी शकय छे के, अन्त्यप्रदेशभां अणुत्वनी मान्यता शास्त्र संमत छे. आथी हुं अणुं कहुं छुं के, प्रथम आदि प्रदेशोनी माइक अन्त्यप्रदेशभां अणुत्वनो निषेध शास्त्रानुमत नथी.

(७) आचार्य कडे छे—अणुं नथी. अन्त्यप्रदेशभां अणु छे अणु वात पणु शास्त्रभां निषिद्ध करवाभां आवेल छे. केमके, “ एगे भंते ! जीवपएसे जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे ” आ पाठ पणु त्यांज आवेल छे. आथी जे तमने श्रुतभां प्रमाणता अलीण्ट छे तो तमारे “ अन्त्यप्रदेशभां अणु छे ” तेम न कडेणुं जेधअे. केमके, प्रथमादिक अन्यतर प्रदेशनी माइक अेक प्रदेशती अन्त्यता प्रदेशभां पणु स्थित छे. (१)

किंच—यदि श्रुतं प्रमाणं मन्यते तर्हि सर्वेऽपि जीवप्रदेशाः परिपूर्णाः जीव-  
त्वेन श्रुते उक्ताः, न त्वेक एव चरमप्रदेशः ।

उक्तं हि तत्रैव—“ जम्हा णं कसिणे पडिपुण्णे लोगागासपएसतुल्ले जीवे  
त्ति वत्तव्वं सिया ” । अतः श्रुतप्रामाण्यादन्त्यप्रदेश एव न जीवत्वेनेष्टव्यः किंतु  
सर्वे प्रदेशाः समुदिताः प्रतिपूर्णा जीव इति मन्तव्यम् । (२)

यथा—एकोऽपि तन्तुः समस्तपटोपकारी भवति, तं विना समस्तपटाभा-  
वात्, परंतु स एकस्तन्तुः समस्तपटो न भवति, किंतु—सर्वेऽपि तन्तवः समुदिताः  
संपूर्णपटव्यपदेशं लभन्ते, इति लोके प्रसिद्धिः । तथा एको जीवप्रदेशोऽपि जीवो  
न भवति, किंतु सर्वेऽपि जीवप्रदेशाः समुदिता जीव इति ।

और भी—तुम यदि श्रुत को प्रमाण मानते हो तो सम्मिलित समस्त  
जीवप्रदेश ही जीव है, ऐसा शास्त्र में कहा है, एक चरम प्रदेश ही  
जीव है ऐसा नहीं कहा है । देखो वहीं पर ऐसा कहा है—“ जम्हा णं  
कसिणे पडिपुण्णे लोगागासपएसतुल्ले जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ” । इस  
लिये श्रुतप्रमाण से तुम को अन्त्यप्रदेश ही जीव है ऐसा दुराग्रह छोड़ देना  
चाहिये । ऐसा मानना चाहिये कि सम्मिलित समस्त प्रदेश ही जीव है (२)

जिस प्रकार एक भी तन्तु समस्त पट का उपकारी होता है, क्यों  
कि उसके विना समस्त पट नहीं कहला सकता, किन्तु इसका तात्पर्य  
यह थोड़े ही होता है कि वह तन्तु ही समस्त पट हो जाता है । सम-  
स्त तन्तुओं का समुदाय ही एक पूरा पट कहलाता है, ऐसी बात लोक  
में प्रसिद्ध है, उसी तरह एक जीवप्रदेश भी जीव नहीं है किन्तु समु-  
दित समस्त जीवप्रदेश ही एक जीव है ।

तमे जे श्रुतने प्रमाण मानता छे तो सम्मिलित समस्त प्रदेश ज  
एव छे जेवुं शास्त्रमां कहुं छे. जेक चरम प्रदेश ज एव छे तेवुं  
कडेव नथी. जेजो जेजो जेवुं कडेव छे—“ जम्हाणं कसिणे पडिपुण्णे  
लोगागासपएसतुल्ले जीवेत्ति वत्तव्वं सिया ” आथी श्रुत प्रमाणथी अन्त्य  
प्रदेश ज एव छे जेवो दुराग्रह तमारे छोडी देवो जेधजे. जेवुं ज मानवुं  
जेधजे के, सम्मिलित समस्त प्रदेश ज एव छे. (२)

जे रीते जेक पणु तांतु समस्त पटनेा उपकारी होय छे केमके, तेना  
वगर समस्त पट कडेवातेा नथी. परंतु जेनुं तात्पर्य जे थोडुं ज थाय छे के,  
जे तांतु ज समस्त पट जनी जय छे. समस्त तांतुजोना समुदाय ज जेक  
पूरा पट कडेवाय छे. आ वात लोकमां प्रसिद्ध छे, जे ज रीते जेक एव  
प्रदेश पणु एव नथी परंतु समुदित समस्त एवप्रदेश ज जेक एव छे.

किंच—‘घटोऽयम्’ इति व्यवहारो यथैकस्मिन् परमाणौ न भवति तथा—  
‘अयमात्मा’ इत्यात्मनोऽपि निर्देशः खल्वेकस्मिन् प्रदेशेन भवति (३)

इति सप्तमपक्षस्य विकल्पत्रयम् ॥ ७ ॥

(८) ननु कस्य नयस्यैवं मतम्? इति चेत्, उच्यते—एवंभूताख्यस्य नयस्येदं मतम् । एवं भूतत्वं च—पदानां व्युत्पत्त्यर्थान्वयनियतार्थबोधकत्वेनाभ्युपगन्तव्यम् । नियमश्च कालतो देशतश्चेति न समभिरूढेऽतिव्याप्तिः । ए-भूतनयमाश्रित्य-भगवता—“जम्हा णं कसिणे पडिपुण्णे लोगागासपएसतुल्ले जीवेत्ति वत्तव्वं” इत्युक्तम् । तेन यावन्तोऽसंख्यातप्रदेशा लोकाकाशतुल्याः जीवस्य सन्ति, ते सर्वे समुदिता एवं प्रदेशाः पूर्णो जीवः, नत्वेकश्चरमो वा प्रथमो वा द्वितीयादिर्वा

और भी-जिस प्रकार एक परमाणु में “घटोऽयम्” इत्याकारक व्यवहार नहीं होता है उसी तरह एक जीवप्रदेश में भी “अयं आत्मा” इत्याकारक व्यवहारका निर्देश नहीं हो सकता है (३)

ये सातवें पक्ष के तीन विकल्प हुए ॥ ७ ॥

(८) इस प्रकार का वह किस नय का अभिमत है?,

उत्तर—इस प्रकार का यह अभिमत एवंभूत नय का है । व्युत्पत्ति से लभ्य अर्थ के संबंध से जिस में नियतार्थबोधकता (निश्चित अर्थ को समझाने की शक्ति) हो वही एवंभूतनय है । नियतार्थबोधकता इस में काल की एवं देश की अपेक्षा से जानना चाहिये । इस प्रकार समभिरूढनय से इसकी अतिव्याप्ति नहीं होती है । इसी एवंभूतनय को आश्रित कर भगवान ने “जम्हाणं कसिणे पडिपुण्णे लोगागास-पएसतुल्ले जीवेत्ति वत्तव्वं सिया” यह सूत्रालापक कहा है । इस

के प्रकारे ओके परमाणुमां “घटोऽयम्” इत्याकारक वडेवार थतो नथी तेवी रीते ओके लुवप्रदेशमां पणु “अयं आत्मा” इत्याकारक वडेवार -निर्देश-थर्थ शकतो नथी. (३) सातमा पक्षना आ त्रणु विकल्प थया. ॥७॥

(८) आ प्रकारनो कया नयनो अलिमत छे?

उत्तर—आ प्रकारनो ओ अलिमत ओवंभूत नयनो छे. व्युत्पत्तिथी लभ्य अर्थना संभंधथी ओमां नियतार्थ ओधकता (निश्चित अर्थने समझवानी शक्ति) डोय ते ओवंभूत नय छे. नियतार्थ ओधकता तेमां काणनी अने देशनी अपे-क्षाथी ङणुवी ओछे ओ. आ प्रकारे समभिरूढ नयथी तेनी अतिव्याप्ति थती नथी. आ ओवंभूत नयने आश्रीत करी भगवाने “जम्हाणं कसिणे पडिपुण्णे लोगागासपएसतुल्ले जीवेत्ति वत्तव्वं सिया” आ सूत्रालापक कडेल छे. आथी

एकैकः प्रदेशो जीव इति मन्तव्यम् । लोकाकाशप्रदेशतुल्यादिना भगवत्प्रदर्शितव्युत्पत्त्यर्थाऽसंख्यातप्रदेशसम्बन्धरूपस्य कालादिना नियतस्यार्थस्य बोधकत्वं निरवशेष-प्रदेशसद्भावे एव भवितुमर्हति । न तु अन्यप्रदेशमात्र एव जीव इति मन्यस्व ।

अथ “ग्रामो दग्धः, पटो दग्धः” इत्यादि न्यायादेकदेशेऽपि संपूर्णवस्तूप-

कारण जितने असंख्यातप्रदेश लोकाकाश के तुल्य एक जीव के हैं वे सब समुदितप्रदेश ही एक पूर्ण जीव है । एक केवल चरमप्रदेश अथवा प्रथमप्रदेश या द्वितीयादिक एक एक प्रदेश जीव नहीं है । एवंभूत नय में व्युत्पत्ति से लभ्य अर्थ के संबंध से नियतार्थबोधकता तभी आ सकती है कि जब निरवशेष प्रदेश के सद्भाव में जीव माना जाय । नहीं तो नियतार्थबोधकता नहीं आ सकती है, क्यों कि लोकाकाश आदि के द्वारा जो इसके प्रदेशों की तुल्यता कही है वह अर्थ तभी यहां घटित हो सकता है कि जब एक जीव कालादिक के द्वारा नियत असंख्यात प्रदेशों के समुदायरूप हो । तात्पर्य इसका यही है कि जीव-शब्द का अर्थ जब एवंभूत नय की अपेक्षा विचारकोटि में आयगा तब वह असंख्यातप्रदेशविशिष्ट होगा तो ही इसका विषय माना जा सकेगा-अन्यथा नहीं । एक द्वितीय आदि भिन्न २ प्रदेशस्वरूप जीव-शब्द का अर्थ एवंभूत की अपेक्षा नहीं माना जा सकता ।

शंका—जिस प्रकार “ग्रामो दग्धः, पटो दग्धः” ग्राम जल गया वस्त्र

नेटला असंख्यात प्रदेश लोकाकाशनी तुल्य एक एवना छे ते सधना समुदित प्रदेश न एक पूर्ण एव छे. एक केवल चरमप्रदेश अथवा प्रथमप्रदेश अथवा भीन कोरुं एक एक प्रदेश एव नहीं. एवंभूतनयमां व्युत्पत्तिथी लभ्य अर्थना संबंधथी नियतार्थ बोधकता त्यारे आवे छे के, न्यारे निरवशेष प्रदेशना सद्भावमां एव मानवामां आवे. नहीं तो नियतार्थ बोधकता आवी शकती नहीं. केमके, लोकाकाश. आदि द्वारा जे तेना प्रदेशोनी तुल्यता भतावी छे ते अर्थ त्यारे न अहीं घटीत थछ शके के, न्यारे एक एव कालादिकना द्वारा नियत असंख्यात प्रदेशोना समुदायरूप होय, तात्पर्य आतुं अे छे के, एव शब्दने अर्थ न्यारे एवंभूत नयनी अपेक्षा विचार कोटीमां आवेशे त्यारे ते असंख्यात प्रदेश विशिष्ट छेशे तोन तेना विषय मानी शकेशे. अे वगर नहीं. एक भीनथी जुहा जुहा प्रदेशस्वरूप एव शब्दने अर्थ एवंभूतनी अपेक्षा मानवामां आवतो नहीं.

शंका—जेवी रीते “ग्रामो दग्धः, पटो दग्धः” ग्राम भणी गयुं. वस्त्र भणी



चारादन्त्यप्रदेशलक्षणैकदेशेऽपि संपूर्णजीवबुद्धिः स्यात्, इति चेत्, तर्हि प्रथमादि-  
प्रदेशेऽपि उपचारात् तवमते जीवत्वापत्तिः, न्यायस्य तुल्यत्वात् । अयं त्वत्पक्षम-  
ङ्गीकृत्य दोषः प्रदत्तः । वस्तुतस्तु उपचारादपि त्वत्पक्षो नोपपद्यते—एक एवान्त्य-  
प्रदेश उपचारेण जीवो न भवितुमर्हति, किं तु देशोने एवं जीवोपचारो युज्यते ।  
यथा—स्वलपैस्तन्तुभिरूने पटे पटोपचारो दृश्यते, नत्वेकस्मिस्तन्तुमात्रे ।

जल गया, इस प्रकार का व्यवहार गांवके एवं वस्त्र के एक देश जल जाने पर सम्पूर्णगांव तथा वस्त्रमें उपचार से माना जाता है, उसी प्रकार यहांपर भी अन्तिमप्रदेश में जीव का व्यवहार मुख्यतया मानने पर इतर प्रदेशों में वह उपचार से मान लिया जायगा ? ।

उत्तर—इस प्रकार का कथन ठीक नहीं माना जा सकता, क्यों कि इस प्रकार के कथन से वास्तविक अर्थ की सिद्धि तो हो नहीं सकती है । जिस प्रकार गांव के एक प्रदेश में समस्त गांव का उपचार मानकर गांव जल गया ऐसा कह दिया जाता है, उसी प्रकार अन्त्यप्रदेश में जीव का उपचार मान लिया जायगा सो ऐसा कथन तुम्हारे मन्तव्य से विरुद्ध पडता है, क्यों कि तुम तो वहां मुख्यरूप से संपूर्ण जीव मान रहे हो । अतः इस प्रकार के कथन से अपसिद्धान्त नाम के निग्रहस्थान में तुम्हारा पतन है । दूसरे उपचार मुख्यार्थ का साधक नहीं हुआ करता है । जब तुम अन्तिम प्रदेश में जीवका उपचार करोगे तो इसका

गयुं, आ प्रकारनो वडेवार गाम अने वस्त्रना अेक लाग अणी नवाथी संपूणुं गाम अने वस्त्रमां उपचारथी मानवामां आवे छे. अे रीते अहीं पणु अंतिम प्रदेशमां अवनेो वडेवार मुख्यतया मानवाथी थीन प्रदेशोमां ते उपचारथी भानी देवामां आवशे ?

उत्तर—आ रीते कडेवुं अरोअर नथी. केमके, आ रीते कडेवाथी वास्त-  
विक अर्थनी सिद्धी थर् शकती नथी. अे रीते गामना अेक लागमां समस्त गामनो उपचार भानीने गाम अणी गयुं अेवुं कडेवामां आवे छे. ते न रीते अन्त्यप्रदेशमां समस्त अवनेो उपचार भानी देवामां आवशे तेवुं कडेवुं तभारा मन्तव्य विरुद्धनुं छे केमके, तमे तो त्यां मुख्यरूपथी संपूणुं अव भानी रखा छे. आथी आ प्रकारनुं कडेवाथी अपसिद्धान्त नामना निग्रहस्थानमां तमाङ् पतन छे. थीनुं उपचार मुख्य अर्थनो साधक नथी थतो न्यारे तमे अंतिमप्रदेशमां अवनेो उपचार करशे तो अेनो अर्थ अे पणु थर्



तस्मात् सर्वेष्व्वात्मप्रदेशेषु जीवत्वं व्याप्तं पुष्पे गन्ध इव, क्षीरे घृतमिव, तिले तैलमिवेति निश्चितम् । वत्स ! श्रद्धस्त्व भगवद्वाक्यं विधत्स्व सफलं जनुः ।

एवं दयालुना धर्माचार्येण प्रतिबोधितोऽपि कदाग्रहग्रस्तस्तिष्यगुप्तस्तत् कुमंतं तात्पर्यं यह भी तो हो जाता है कि प्रथमादिप्रदेश में भी जीव है। जैसे गांव का एक देश जला तभी तो जाकर उस में समस्त गवि का उपचार किया गया। इसी प्रकार अन्तिमप्रदेशरूप एक देश में समस्त जीवका व्यवहार भी तो तभी हो सकेगा कि जब वह प्रथमादि असंख्यात प्रदेशमय ही जीव है ऐसा ही मानना चाहिये। केवल अन्तिमप्रदेश में ही समस्त जीव है ऐसा नहीं मानना चाहिये, तथा जिस प्रकार स्वल्प तन्तुओं से विहीन पट में पट का उपचार किया जाता है एक तन्तु में नहीं, उसी प्रकार कुछ कम प्रदेशविहीन जीव में ही जीव का उपचार करना योग्य हो सकता है सिर्फ एक अन्तिमप्रदेश में ही नहीं। इसलिये जिस प्रकार पुष्पमें गन्ध दूध में घृत, तिल में तैल व्याप्त होकर रहता है उसी प्रकार अपने समस्त प्रदेशों में एक जीव व्याप्त होकर रहता है। यह मानना ही युक्तिसंगत है। इसलिये हे तिष्यगुप्त ! तुम भगवान् के वचनों पर विश्वास लाओ और अपने जन्म को सफलित करो।

इस प्रकार दयालु धर्माचार्य ने तिष्यगुप्त को खूब समझाया परन्तु

जन्म छे के, प्रथम आदि प्रदेशमां ज्व छे. जेम गामनो अेक भाग अज्यो त्यारे तो समस्त गामनुं नाम अपायुं. आज रीते अन्तिमप्रदेशरूप अेक देशमां समस्त ज्वनो वडेवार पषु त्यारे थध शके के न्यारे ते प्रथम आदि धतर प्रदेशोनी साथे संबंधित थाय. तेना वगर नही. आथी प्रथमादि असंख्यात प्रदेशमय जे ज्व छे जेवुं ज मानवुं जेधअे. केवण अन्तिमप्रदेशमां ज समस्त ज्व छे जेपुं मानवुं न जेधअे. तथा-जेम थोडा तंतुआथी विहीन पटमां पटनो उपचार कराय छे. अेक तंतुथी नही. तेवी रीते थोडा आछा प्रदेश विहीन ज्वमां ज ज्वनो उपचार करवो योग्य थाय छे. इकत अेकदा अन्तिमप्रदेशमां ज नही. आ माटे जे प्रकारे पुष्पमां गंध, दूधमां धी, तलमां तेल, व्याप्त भनेल रहे छे जेवी ज रीते पोतपोताना समस्त प्रदेशोमां अेक ज्व व्याप्त थधने रहे छे. आ मानवुं जेज युक्ति संभत छे. आ माटे हे तिष्यगुप्त ! तमे भगवानना वचन उपर विश्वास लावो अने पोताना जन्मने सङ्ग अनावो.

आ रीते दयालु धर्माचार्ये तिष्यगुप्तने पूज समज्ज्यो. परंतु तिष्यगुप्ते

न त्यक्तवान् । ततो धर्माचार्यैः कायोत्सर्गपूर्वं स बहिष्कृतः पृथिव्यां स्वमतं प्रचारयन् पर्यटति ।

अन्यदा स तिष्यगुप्तः स्वपरिवारपरिवृतो ग्रामानुग्रामं पर्यटन् आमलकल्पायां नगर्यां आम्रसालवने समायातः । तस्यां नगर्यां श्रीजिनेन्द्रचरणारविन्दमधुव्रतो मित्र-श्रीनामकः श्रावकस्तिष्यगुप्तमुनिमागतं श्रुत्वाऽन्यश्रावकैः सह तत्रोद्याने समायातः । यथाविधि प्रणम्य स तद्देशनां शुश्राव । स तिष्यगुप्तस्तं निह्वं विज्ञाय मनसि चिन्तयति—‘ इममवसरे दृष्टान्तेन बोधयिष्यामि ’ इति ।

तिष्यगुप्त ने अपना कदाग्रह नहीं छोड़ा । धर्माचार्य ने जब यह देखा तो उन्होंने उसको कायोत्सर्गपूर्वक पृथक् कर दिया । तिष्यगुप्त भी बहिष्कृत होकर देशोदेश विचरने लगा और अपने मत का प्रचार करने लगा ।

किसी एक समय ग्रामानुग्राम विहार करते हुए वे तिष्यगुप्त अपने शिष्यपरिवारसहित आमलकल्पा नगरी के आम्रसाल वन में आये । तिष्यगुप्त को आम्रसाल वन में आये हुए सुनकर वहाँ का श्रावक कि जिसका नाम मित्रश्री था और जिनेन्द्र भगवान के चरण कमल का जो मधुकर था अन्यश्रावक जनों के साथ उस उद्यान में आया । सविधि वन्दन कर वह तिष्यगुप्त की धार्मिक देशना सुनने लगा । तिष्यगुप्त ने अपने विचार से मित्रश्री श्रावक को निहव जान कर अपना असर उस पर डालने के अभिप्राय से दृष्टान्तपुरस्सर समझाना प्रारंभ किया । मित्रश्री सेठ भी उनकी देशना सुनकर बापिस अपने स्थान पर आ गया ।

पोतानो ढडाग्रह न छोडयो धर्माचार्ये न्यारे आ परिस्थिति ढाणी त्यारे तेभणे कार्योत्सर्गपूर्वक शिष्य तरीके छुटा करी दीधा. पोताना धर्माचार्यथी छुटा कराअेल तिष्यगुप्त ग्रामानुग्राम विचरवा लाग्या अने पोताना भतने प्रचार करवा लाग्या.

कोई अेक समय ग्रामानुग्राम विहार करतां करतां ते तिष्यगुप्त पोताना शिष्यपरिवार सहित आमलकल्पा नगरीना आम्रसाल वनमां आव्या. तिष्यगुप्तने आम्रसालवनमां आवेला सांलणीने त्याने श्रावक के, नेतुं नाम मित्रश्री हुतुं अने जिनेन्द्रभगवानना चरण कमणने ने प्रेमी हुते ते भीअ श्रावकनी साथे ते वनमां गये. सविधि प्रणाम करी ते तिष्यगुप्त मुनिनी धार्मिक देशना सांलणवा लाग्ये. तिष्यगुप्ते पोताना विचारथी मित्रश्री श्रावकने निहव ढाणीने तेना उपर पोतानी असर पाडवाना अलिप्रायथी दृष्टांत हाणला दलीले. आपवाने प्रारंभ करी दीधा. मित्रश्री सेठ तेमनी देशना सांलण्या पछी पोताना स्थान उपर पाछा क्यो.

अन्यदा मित्रश्रीश्रावकः शिष्यपरिवारैः सह तिष्यगुप्तमुनिं भिक्षाचर्यायां पर्य-  
टन्तं वदति—अद्य भवन्तो मद्गृहं पुनन्तु । ततस्ते तद्गृहं गताः । तदनु स यथा  
कल्प्यमोदकादि बहुविधाऽशनपानखाद्यस्वाद्यसंभृतानि भाजनानि तत्पुरः स्थापयित्वा  
एकैकस्य मोदकादेरंशं तिलप्रमाणमेकैकं तस्मै प्रदत्तवान् । इत्थं कूरस्य सूपस्य  
शाकस्याप्येकैकं सिक्थमर्पितवान् । तथा क्षीरस्य घृतस्य जलस्य च बिन्दुमेकं, पटस्य  
तन्तुमात्रं प्रदत्तवान् । तदा सशिष्यस्तिष्यगुप्तो मनसि भावयति—‘ अयं केनापि  
कारणेन पूर्वमेवं ददाति, पश्चात् पूर्णं प्रदास्यति । एवं भावयतस्तस्य मुनेः पुरस्तादसौ  
स्वयं नमन् स्वबन्धून् प्राह—भो ! यूयमेतान् मुनिवरान् वन्दध्वम् । स पुनः

एक समय की बात है कि जब तिष्यगुप्त अपने शिष्यपरिवारके साथ  
भिक्षाचर्या के निमित्त नगर में आये हुए थे तब मित्रश्री सेठने उनसे  
कहा महाराज ! आज तो आप मेरा घर पवित्र करें । मित्रश्री सेठकी  
प्रार्थना सुनकर तिष्यगुप्त वहां गये, मित्रश्री सेठने कल्पनीय मोदकादिक  
वस्तुओंसे सज्जित कर अनेक थाल वहां रख दिये, और उनमें से एक २  
कल्पनीय वस्तुका तिल २ बराबर अंश निकाल २ कर उनको देने लगा,  
इसी तरह दाल भात शाक आदि का भी एक २ सीधे उनको दिया ।  
दूध घृत जल को भी बिन्दुप्रमाण में दिया । वस्त्र का भी एक तन्तु  
दिया । उसकी इस प्रकार दानशीलता देखकर तिष्यगुप्त ने विचार  
किया—यह किसी कारण वश ही ऐसा दे रहा है पश्चात् सम्पूर्ण चीज  
दे देगा, मुनि तिष्यगुप्त इस प्रकारका विचार कर हो रहे थे कि मित्रश्री  
सेठ उनको नमन कर अपने बन्धुओं से कहा कि—आप लोग इन

एक समय ज्यारे तिष्यगुप्त पौताना शिष्य परिवार साथे भिक्षाचर्या माटे नग-  
रमां आव्या हुता त्यारे मित्रश्री शेठे तेमने कथ्युं, मडाराज ! आज तो आप भाङ्  
घर पवित्र करे। शेठनी विनंती सांभणी तिष्यगुप्त शेठने त्यां गया। मित्रश्री शेठे कल्प-  
नीय मोदकादिक वस्तुओंकी सज्जत करी वण्णु थाण त्यां राणी दीधा। अने तेमांथी एक  
एक कल्पनीय वस्तुनो तल तल जेटेदो लाग काढीने तेमने आपवा भांडये। आज  
रीते दाण, भात, शाक, वगेरेनो पणु एक एक कथु तेमने आप्ये। धीर, धी,  
पाणी, वगेरे पणु भींडु प्रमाणमां आप्युं। वस्त्रनो पणु एक तांतणु आप्ये।  
अनी आ प्रकारनी दानशीलता जेधने तिष्यगुप्ते विचार कर्ये—आ कोठ कारण  
वश थधने ज आ प्रमाणे आपी रहेल छे। पछीथी जधो वस्तुओं आपशे।  
मुनि तिष्यगुप्त आ प्रकारनो विचार करी रह्या हुता त्यारे मित्रश्री शेठे तेमने  
नमन करी पौताना अंधुओने कथुं के, आप दोक पणु आ मुनिराजने वंदना करे।

शिष्यपरिवारसहितं तिष्यगुप्तमुनिं प्राह—भदंत ! अद्य मया मुनयः प्रतिलाभिताः । अतः कृतार्थोऽस्मि, कृतलक्षणोऽस्मि, कृतपुण्योऽस्मि, इत्यादि ।

ततस्तिष्यगुप्तमुनिर्मित्रश्रीश्रावकं प्राह—कथं त्वया धर्षणा कृता ?, तेन श्रावकेणोक्तम्—मया धर्षणा न कृता । भवन्मते—अन्तिमेऽवयवे दत्ते पूर्णोऽवयवी दत्तो भवति, यथाऽन्तिमे प्रदेशे जीवः पूर्णोऽस्ति, तथा सर्वोऽप्यवयवी चरमावयवे पूर्णतया वर्तते । यदि जिनवचनं सत्यमिति भवताऽभ्युपगम्यते, तदा तन्मतमाश्रित्य भवते भैक्षं दातव्यं भवेत् ।

मुनिराजों को वंदना करो । पश्चात् सपरिवार मुनि तिष्यगुप्त से भी उसने कहा भदन्त ! आज मैंने मुनियों को दान दिया इसलिये मैं कृतार्थ कृतलक्षण एवं कृतपुण्य अपने आपको मान रहा हूँ ।

तिष्यगुप्त मुनिने इस परिस्थिति को देखकर मित्रश्री सेठसे कहा कि यह तो ठीक है परन्तु यह तो बताओ कि तुमने यह मेरी आशातना-अनादर क्यों की है ? श्रावक मित्रश्रीने कहा—इसमें आशातना की कौन सी बात है । आपका तो सिद्धान्त ही ऐसा है कि एक अन्तिम अवयव में सम्पूर्ण अवयवी रहता है, अतः एक अन्तिम अंश दिया जाने पर सम्पूर्ण अवयवी दे दिया जाता है । इसी अभिप्राय से मैंने ऐसा किया है जिस प्रकार अन्तिम प्रदेश में पूर्ण जीव है उसी प्रकार पूर्ण-मोदादिक अवयवी भी अपने चरम अवयव में रहा हुआ है । आपकी दृष्टि में यदि जिनवचन सत्य हो तो ही मैं उसके अनुसार आप को भिक्षा दे सकता हूँ ।

पछी तिष्यगुप्त मुनि अने तेमना शिष्यपरिवार मुनीअने उदशीने कहुं के, लहन्त ! आज में मुनिअने दान दीधुं अथी हुं कृतार्थ कृत लक्षण अने कृतपुण्य भारी जतने मानी रह्यो छुं ।

आ परिस्थिति जेधने तिष्यगुप्तमुनिअे मित्रश्री शेठने कहुं के, अे तो ठीक छे । परंतु अे तो अतावे के तमे आ रीते भारी आशातना-अनादर शा माटे क्यो छे ? श्रावक मित्रश्रीअे कहुं—आमां अनादरनी कथं वात छे ? आपने तो सिद्धांत जे अेवे छे के, अेक अन्तिम अवयवमां संपूर्ण अवयवी रहे छे । आथी अेक अन्तिम अंश आपवामां आख्याथी संपूर्ण अवयवी आख्या अराअर छे । आ अभिप्रायथी में आम करेल छे । जे रीते अन्तिम प्रदेशमां पूर्ण अवयव छे अेज रीते पूर्ण मोदादिक अवयवी पथु पोताना चरम अवयवमां रहेल छे । आपनी दृष्टिमां जे जिन वचन सत्य छेय तो जे हुं ते अनुसार आपने भिक्षा आपी शकुं छुं ।

मित्रश्रीश्रावकस्यैतद्वचनं श्रुत्वा सपरिवारस्तिष्यगुप्तमुनिः सबुद्धः सन् प्राह—  
महाश्रावक ! सत्येयं प्रेरणा त्वया कृता, अथ भगवतः श्रीवीरवर्धमानस्य वाक्यं  
मम प्रमाणम् , तदुत्थापनजनितं मम मिथ्यादुष्कृतमस्तु ।

ततः प्रमुदितो मित्रश्रीश्रावकस्तं तिष्यगुप्तमुनिं पूर्णं यथोचितभैक्षं प्रदत्तवान् ।  
परिवारसहितस्तिष्यगुप्तमुनिस्तमतिचारमालोच्य शुद्धिं गतः । यदनेन बोधिलब्ध-  
स्तदस्य महद्भाग्यम् । अतः श्रद्धा परमदुर्लभेति बोध्यम् ।

॥ इति द्वितीयनिहवदृष्टान्तः ॥ २ ॥

मित्रश्री श्रावक के इस वचन को सुनकर सपरिवार तिष्यगुप्त मुनि  
प्रबुद्ध होकर उससे कहने लगे—सुश्रावक ! तुमने यह प्रेरणा मुझे ठीक  
की है । वर्धमानस्वामी के वचन मुझे प्रमाण हैं । उनके उत्थापन करने  
से उत्पन्न हुआ मेरा दुष्कृत मिथ्या होओ ।

मित्रश्री सेठ ने जब इस प्रकार अपनी भूल को सुधार ने वाले  
उनके वचन सुने तो उसको बड़ा हर्ष हुआ । उसी समय उसने उनको  
पूर्ण सामग्री की भिक्षा दी । परिवारसहित तिष्यगुप्त ने अपने अति-  
चार की आलोचना कर शुद्धि प्राप्त की, जो तिष्यगुप्त ने बोधिका  
लाभ कर लिया वह उसका बड़ा भाग्य समझना चाहिये । इसीलिये  
तो कहा गया है कि—श्रद्धा परम दुर्लभ है ।

॥ यह दूसरे तिष्यगुप्त निहव का दृष्टान्त हुआ ॥ २ ॥

मित्रश्री श्रावकनां आ प्रकारनां वचनने सांभणी तिष्यगुप्तमुनि सपरि-  
वार षोड पाभी तेने कडेवा लाग्या. सुश्रावक ! तमे आ प्रेरणा मने ठीक  
करी, वर्धमानस्वामीनां वचन मने प्रमाण छे. तेमनां वचनोना आनादर करवाथी  
उद्दलवेलुं भाइं आ दुष्कृत्य भीथ्या थाओ.

आ रीते पोतानी भूलने सुधारवावाणां तिष्यगुप्त मुनिनां वचन सांभणी  
मित्रश्री शेठने घणो ज हर्ष थयो. ओ वधते तेणु तेमने पूर्ण सामग्रीनी  
भिक्षा आपी. तिष्यगुप्तमुनिओ सपरिवार पोताना अतिचारनी आलोचना  
करी शुद्धि प्राप्त करी. अने षोधीना लाल करी दीघो. आ तेमनुं मोटुं भाग्य  
समञ्जसुं जेठं ओ. आ माटे ज कडेवाभां आवेव छे के, “श्रद्धापरम दुर्लभ छे. ”

॥ आ भीज तिष्यगुप्त निहवनुं दृष्टांत थयुं ॥ २ ॥

अथ तृतीयनिह्ववदृष्टान्तः प्रोच्यते—

भगवतः श्रीमहावीरस्वामिनो निर्वाणसमयाच्चतुर्दशाधिकद्विशत २१४ वर्षेषु व्यतीतेषु आषाढाचार्यः श्वेताम्बिकानगर्यां पोलासनामकोद्याने स्वगच्छसहितोऽवस्थितः । तत्राऽसौ बालग्लानादिप्रतिजागरणादिलक्षणावश्यककर्तव्यरूपमागाढयोगं शिष्यान् शिक्षयति । तदनु ततो विहरन् आषाढचार्यो महारण्ये महातरुतले निवासं कृतवान्, तत्र रात्रावकस्माद् हृदयशूलेन मृतः । स सौधर्मकल्पे देवत्वेन समुत्पन्नः । स चावधिज्ञानोपयोगात् पुनरपि बालवयस्कान् विनीतान् स्वशिष्यान् शिक्षयितुं स्वाङ्गे प्रविष्टः । रात्रिप्रतिक्रमणसमये रात्रिशेषे तेन साधवो जागरिताः। पूर्ववदागाढयोगं स शिक्षयति ।

तृतीय निह्वव अषाढाचार्यशिष्य का दृष्टान्त इस प्रकार है—

भगवान् महावीर के निर्वाण समय से दो सौ चौदह २१४ वर्ष जब व्यतीत हो चुके उस समय अषाढाचार्य श्वेताम्बिका नगरी में पोलास नामक उद्यान में अपने शिष्यपरिवार सहित आकर विराज रहे थे । वहाँ पर वे अपने शिष्यों को बालग्लानादिक साधुओं की सेवा करना आदिरूप आगाढ़ योग की शिक्षा देते थे । फिर एक समय वहाँ से विचरते हुए एक भयंकर अटवी में पहुँचे और विशाल वृक्ष के नीचे निवास किया । वहाँ रात्रि में अकस्मात् हृदयशूल की वेदना से उनका देहांत हो गया । मरकर वे प्रथम स्वर्ग सौधर्मकल्प में देव हुए । अन्तर्मुहूर्त में वहाँ तरुणावस्था संपन्न होकर उन्होंने अवधिज्ञान से अपनी पूर्व अवस्था जानली, और अपने शिष्यों को बालवयस्क और

श्रीनिह्वव आषाढाचार्यशिष्यनुं दृष्टान्त आ प्रकारनुं छे—

भगवान् महावीरना निर्वाण समये न्यारे २१४ असौचौद वर्ष वीती गयां ते समये, आषाढाचार्य श्वेताम्बिका नगरीमां पोलास नामना उद्यानमां पोताना शिष्यपरिवारसहित आवीने रक्षा हुता. ते स्थणे तेभ्यो पोताना शिष्येने आलग्लानादिक साधुभ्योनी सेवा करवा इप आगाढयोगनुं शिक्षण्यु आपी रक्षा हुता. अेक समय त्यांथी विचरतां अेक लयंकर वनमां पछोन्व्या अने त्यां अेक विशाल वृक्षनी नीचे निवास कयो. रात्रिमां अकस्मात् हृदय शूलनी वेदनाथी तेभेने देहांत थछ गयो. मरीने तेभ्यो प्रथम स्वर्ग-सौधर्म कल्पमां देव थया. अन्तरमुहूर्तमां त्यां तरुणावस्था संपन्न अनी तेभ्यो अे अवधिज्ञानथी पोतानी पूर्व अवस्था जानथी लीथी. आ पछी पोताना शिष्येने



एकदा सर्वेषु साधुषु आगाढयोगं संप्राप्तेषु देवरूप आषाढाचार्यो वदति-  
क्षमध्वम्, अत्रतिना मया भवतां वन्दनादि न कृतम्, भवद्भिस्तु कृतं वन्दनादि  
मया स्वीकृतम्। तस्मिन् दिवसे रात्रौ हृदयशूलेन मृतोहं सौधर्मकल्पे देवत्वं प्राप्य  
पुनर्भवतां योगशिक्षणार्थं स्वाङ्गे प्रविष्टः, इतः परं कृतकृत्योऽहं निजास्पदं गच्छामि,  
इत्युक्त्वा स देवलोकं गतः।

विनीत जानकर पूर्व की तरह शिक्षा देने के अभिप्राय से अपने मृत  
शरीर में प्रविष्ट हो गये। रात्रि प्रतिक्रमण के समय में रात्रि के शेष  
रहने पर उन्होंने ने साधुओं को जगाया। जगा कर उनको वे पूर्व की  
तरह अगाढ योग की शिक्षा देने लगे।

एक समय की बात है कि जब इनके समस्त शिष्य आगाढ योग  
को प्राप्त कर चुके थे तब देवरूप अषाढाचार्य ने कहा कि आप लोग मुझे  
क्षमा करो, क्योंकि अत्रती मैंने आप लोगोंकी वन्दनादि कृतिकर्म नहीं  
किया है परन्तु आपने मुझको वन्दनादि किया और उसको मैंने स्वीकार  
भी किया है। कहने लगे कि-उस दिन मैं रात्रि के समय अकस्मात्  
हृदयशूल की वेदना से मर गया था, मर कर मैं प्रथम स्वर्ग में देव  
हुआ हूँ। अवधिज्ञान से अपने पूर्वभव को जानकर मैं ने आप लोगों  
को योग की शिक्षा देने के लिये अपने ही मृत शरीर में प्रवेश किया है।  
अब मैं कृत कृत्य बनकर अपने स्थान पर जा रहा हूँ। इस प्रकार कह

आद्यवयना अने विनीत आषाढाचार्यने पूर्वनी रीते शिक्षा आपवाना अभिप्रायथी  
पैताना मृत शरीरमां प्रविष्ट थई गया. रात्रि प्रतिक्रमण समयमां रात्रिना  
छेदला प्रहरमां तेमण्णे शिष्येने जगाडया अने अगाडिनी भाइक तेमने आगाढ  
योगतुं शिक्षण आपवा मांडया.

એક સમયે જ્યારે તેમના સઘળા શિષ્યો આગાઢ યોગને પ્રાપ્ત કરી  
ચુકયા હતા ત્યારે દેવરૂપ આષાઢાચાર્યે કહ્યું કે આપ સઘળા મને માફ કરો.  
કેમકે, અત્રતી એવા મેં આપને વંદનાદિ કૃતકર્મ કરેલ નથી. પરંતુ આપે જ  
મને વંદન આદિ કરેલ છે. અને મેં તેનો સ્વીકાર કરેલ છે. આ પ્રમાણે કહીને  
તેઓ કહેવા લાગ્યા કે, -તે દિવસે રાત્રીના સમયે અકસ્માત મને હૃદયશૂળની  
વેદના થયેલી જેથી હું મરી ગયો. મરીને પ્રથમ સ્વર્ગમાં હું દેવ થયો છું.  
અવધિજ્ઞાનથી મારા પૂર્વભવને જાણીને હું આપ સઘળાને યોગની સંપૂર્ણતઃ  
શિક્ષા આપવા માટે મારા મૃત શરીરમાં પ્રવેશ કરી તમોને સંપૂર્ણતઃ બનાવી

ते मुनयस्तदङ्गं परिष्ठाप्य कायोत्सर्गं विधाय चिन्तयति—अज्ञानात् स देवोऽस्माभिर्वन्दितः, अतस्तदन्योऽपि न ज्ञायतेऽस्माभिर्देवो वा संयतो वा, अन्योऽपि कश्चिद् अस्मान् न जानाति वयं साधवस्तदन्ये वा, इति । अतो “ नास्ति किञ्चिभिर्णयकारकं ज्ञानम्—अव्यक्तमेव सर्वं वस्तु ” इति तत्त्ववेदिभिर्वक्तव्यम्, यथा मृषावादो न स्यादसंयतवन्दनं च न स्यात् । इत्येवं विचिन्त्य संशयमिथ्यात्वमापन्नाः अव्यक्तभावं स्वीकृत्य, परस्परं वन्दनं न कृतवन्तः । ‘अव्यक्तमेव सर्वं वस्तु’

कर वह देव उस शरीर को वहीं छोड़ कर अपने स्थान पर चले गये ।

मुनियों ने मिल कर उनके शरीर की परिष्ठापना की एवं कायोत्सर्ग कर के फिर इस प्रकार का विचार किया कि देखो—अज्ञान से अपने सबने उन देव को वंदना की है, अतः अब दूसरा भी यह कैसे निश्चय किया जा सकता है कि यह संयत है कि देव है । तथा दूसरे जन भी अपन को यह नहीं जान सकते हैं कि ये देव हैं या साधु हैं । इससे ऐसा ही ज्ञात होता है कि समस्त वस्तुएँ अव्यक्त ही हैं । तथा अपने लिये ऐसा ही कहना चाहिये कि जिससे मृषावाद भी न हो सके और असंयत को वन्दना भी न हो सके । इस प्रकार विचार कर वे संशय—मिथ्यात्व के चक्र में पड़ गये । अव्यक्तभाव को स्वीकार कर उन्होंने ने परस्पर में वन्दना करना भी छोड़ दिया, और सर्वत्र यही कहने लगे कि वस्तु का निर्णय करने वाला कोई ज्ञान नहीं है,

हवे हुं मारा स्थान उपर जर्ध रह्यो छुं. आम कही ते देव अे शरीरने त्यां छोडी दध पोताना स्थाने यात्या गया.

मुनिओअे भणीने तेमना शरीरनी परिष्ठापना करी अने कायोत्सर्ग करीने पछी अे प्रकारने विचार कर्यो के, णुओ. अज्ञानथी आपणे सधणाअे ते देवने वंदना करी छे. आथी हवे भीण पणु कर्ध रीते निश्चय करी शक्य के, आ साधु छे के देव छे. तेम भीण बोके पणु आपणुने नण्णी शकता नथी के, आ देव छे के, साधु! आथी ओवो बोध थाय छे के, समस्त वस्तुओ अव्यक्त न छे. तेम आपणे माटे ओम न कडेवुं नेधअे के, जेनाथी मृषावाद पणु न अने अने असंयतने वंदना पणु न थर्ध शके. आ प्रकारने विचार करी तेओ संशय मिथ्यात्वना अछरमां पडी गया. अव्यक्त भावने स्वीकार करी तेओअे परस्परमां वंदना करवानुं पणु छोडी दीधुं. अने दरेक स्थणे ओवुं कडेवा लाग्या के, वस्तुने निर्णय करनार केअ ज्ञान नथी. माटे “अवक्तव्यमेव

इति मत्तं लोकानां पुरतः प्ररूपणां कुर्वन्तः सार्धमेव सर्वे मुनयो यथारुचि विहरन्ति ।

केचिदन्ये स्थविरास्तान् विरुद्धमर्थं प्रतिपन्नान् प्राह-भवद्भिर्यन्मन्यते-ज्ञानेन किञ्चिदपि वस्तु निश्चेतुं न शक्यते, अतः 'सर्वं वस्तु अव्यक्तम्' इति, तन्न समीचीनं, युक्तिविरोधात् । यतः वस्तुनिर्णयकरं ज्ञानमेवास्ति तथैव लोके दृश्यते । पूर्वं ज्ञानेन हिताहितं निश्चित्य पश्चात् काचित् क्रिया क्रियते तस्मात् सर्वस्यापि ज्ञानस्य निश्चयकारिताऽस्तीति मन्तव्यम् ।

इसलिये "अव्यक्तमेव सर्वं वस्तु" सर्व वस्तु अव्यक्त ही है । इस प्रकार की प्ररूपणा करते हुए ही वे सब एक साथ मिलकर ग्रामोग्राम विहार करने लगे ।

कितनेक मुनियों ने जब यह देखा कि ये सब विरुद्ध अर्थ की प्ररूपणा कर रहे हैं तो उनसे कहा कि आप लोग जो ऐसा कहते हैं कि "ज्ञान से किसी भी वस्तु का निश्चय नहीं हो सकता है अतः सर्व वस्तुएँ अव्यक्त हैं" सो आपका यह सिद्धान्त समीचीन नहीं है, क्यों कि इसमें युक्ति से विरोध आता है । पहिले आप लोगों को यह निश्चय कर लेना चाहिये कि समस्त वस्तुओं का निर्णय एक अवि-संवादी ज्ञान से ही होता है । हित और अहित का निर्णय करके ही जीव पीछे किसी भी क्रिया के करने में प्रवृत्त हुआ करते हैं । अतः ज्ञान का स्वभाव निश्चयकारिता है कह आपको मानने में कोई विवाद नहीं होना चाहिये ।

सर्व वस्तु" इरेक वस्तु अव्यक्त न छे. आ प्रकारनी प्ररूपणा करतां करतां तेओ सधणा ओक साथे भणी आभानुआम विहार करवा लाग्या.

केटलाक मुनिओओे न्यारे आ न्नेथुं त्यारे तेमणे न्नेथुं के, आ सधणा विरुद्ध अर्थानी प्ररूपणा करी रह्या छे. आथी ओमने कहुं के, आप दोको ओवुं कडो छे के, "ज्ञानथी केध पणु वस्तुनो निश्चय थर्ध शकतो नथी आथी सर्व वस्तुओे अव्यक्त छे" आपनो आ सिद्धांत सर्वमान्य नथी. केभके, तेमां युक्तिथी विरोध आवे छे. पडेलं आप दोकोओे ओे निश्चय करी देवो न्नेध ओे के, समस्त वस्तुओेनो निश्चय ओेक अवि-संवादी ज्ञानथी न थाय छे. हित आने अहितनो निश्चय करीने पछीथी न ओव केध पणु क्रिया करवामां प्रवृत्त थाय छे. आथी ज्ञाननो स्वभाव निश्चय कारक छे ओे आपने मानवामां केध विवाद न होवो न्नेध ओे.

કિંચ—યદિ જ્ઞાનં સર્વથા નિશ્ચયકારકં ન સ્યાત્ , તર્હિ ભક્તપાનાદેરપિ નિશ્ચયઃ કથં ભવતિ ' ઇદં શુદ્ધમ્ , ઇદમશુદ્ધમ્ , ઇદં નિર્જીવં ઇદં સજીવમ્ ' ઇત્યાદિરૂપો નિશ્ચયો જ્ઞાનં વિના ન ભવતિ ।

અથ ભક્તપાનાદેર્નિર્ણયકારકં જ્ઞાનં ભવતીતિ વ્યવહારાદેવોચ્યતે, તર્હિ વ્યવહારાદેવ સાધ્વાદેરપિ વસ્તુનો નિર્ણયકારકં જ્ઞાનમેવાસ્તીતિ મન્યસ્વ ।

નતુ ભક્તપાનાનાં વિષયે સર્વા પ્રવૃત્તિર્વ્યવહારાદ્ભવિતુમર્હતિ, ન તુ સાધૂનાં વિષયે ? ઇતિ ચેત્ , સાધૂનાં વ્યવહારોચ્છેદે સતિ તીર્થસ્યાપિ સમુચ્છેદઃ સ્યાદિતિ । તસ્માદ્ ભવન્તોઽપિ વ્યવહારં સ્વીકુર્વન્તુ ।

દૂસરે—જ્ઞાન યદિ સર્વથા નિશ્ચય કરાને વાલા ન માના જાય તો ભક્તપાનાદિકકા ખી નિશ્ચય કેસે હો સકતા હૈ । જ્ઞાન હી તો યહ શુદ્ધ હૈ, યહ અશુદ્ધ હૈ, યહ નિર્જીવ હૈ યહ સજીવ હૈ ઇત્યાદિરૂપ નિશ્ચય કરાતા હૈ ।

યદિ ઇસ પર અવ્યક્તવાદી યોં કહે કિ ભક્તપાનાદિક કા નિર્ણય કારક જ્ઞાન હૈ યહ સબ વ્યવહાર સે હી કહા જાતા હૈ તો ઇસી તરહ સાધુ આદિ કા નિર્ણયકારક જ્ઞાન ખી વ્યવહાર સે હોતા હૈ યહ ખી માન લેના ચાહિયે ।

ભક્તપાન કે વિષય મેં જો પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ વહ તો વ્યવહાર સે હો સકતી હૈ કિન્તુ સાધુઓં કે વિષય મેં નહીં હો સકતી । યદિ એસા કહા જાય તો સાધુઓં કે વ્યવહાર કા હી ઉચ્છેદ હો જાયગા સાધુ-વ્યવહાર કા ઉચ્છેદ હોનેપર તીર્થકા ખી ઉચ્છેદ પ્રાપ્ત હોતા હૈ । ઇસલિયે આપલોગ ખી વ્યવહાર કો સ્વીકાર કરેં ।

બીજું—જ્ઞાન બે સર્વથા નિશ્ચય કરાવનાર ન માનવામાં આવે તો આહાર પાનાદિકનો પણ નિશ્ચય કેમ થઈ શકે ? જ્ઞાન જ આ શુદ્ધ છે, આ અશુદ્ધ છે, આ નિર્જીવ છે, આ સજીવ છે, ઇત્યાદિરૂપ નિશ્ચય કરાવે છે.

આ સામે કોઈ અવ્યક્તવાદી એમ કહે કે, આહાર પાનાદિકનું નિર્ણયકારક જ્ઞાન છે. આ સઘળું વહેવારથી જ કહેવામાં આવે છે. તો આ પ્રમાણે સાધુ આદિનું નિર્ણયકારક જ્ઞાન પણ વહેવારથી થાય છે. આ પણ માની લેવું બેઠકું.

આહાર પાણીના વિષયમાં જે પ્રવૃત્તિ થાય છે તે વહેવારથી જ થઈ શકે છે. પરંતુ સાધુઓના વિષયમાં થઈ શકતી નથી, એવું બે કહેવામાં આવે તો સાધુઓના વહેવારનો જ ઉચ્છેદ થઈ જાય. સાધુ વહેવારનો ઉચ્છેદ થવાથી તીર્થનો પણ ઉચ્છેદ પ્રાપ્ત થાય છે. માટે આપલોક પણ વહેવારનો સ્વીકાર કરો.

एवं स्थविरैः प्रतिबोधिता अपि ते मुनयः स्वदुराग्रहं न त्यक्तवन्तः । ततस्तैः स्थविरैः कायोत्सर्गपूर्वकं बहिष्कृता ग्रामानुग्रामं विहरन्तः स्वमतप्रचारं कुर्वन्तो राजगृहनगरे गुणशिलोद्याने समागताः ।

तत्र मौर्यवंशीयो बलभद्रनामको नृपः “ अव्यक्तनिह्वा अत्र पुरे समागताः ” इति श्रुत्वा तान् प्रतिबोधयितुं स्वभटैर्गुणशिलोद्यानात् बद्ध्वा समानायितवान् । यष्टिमुष्ट्यादिभिर्भटैस्ताडितास्ते वदन्ति—भो ! राजन् ! त्वं श्रमणोपासकः, वयं श्रमणाः, कस्मादस्माकमनर्थं कारयसि ? । भूपेनोक्तम्—एवं मा वदन्तु भवन्तः,

इस प्रकार स्थविरो से प्रतिबोधित होने पर भी उन लोगों ने अपने दुराग्रह का परित्याग नहीं किया । अतः उन सबने कायोत्सर्ग-पूर्वक उनका बहिष्कार कर दिया । बहिष्कृत होकर वे सब के सब ग्रामानुग्राम विचरते हुए और अपने मत की पुष्टि करते हुए राजगृह नगर में गुणशिलोद्यान में आये ।

वहाँ एक मौर्यवंशीय बलभद्र नाम के राजा ने “ अव्यक्त निह्व इस पुर में आये हुए हैं ” ऐसा सुनकर उनको प्रतिबोधित करने के लिये अपने सुभटों से बंधवा कर मंगाया । भट लोग उनको लेने के लिये पहुँचे । यष्टि मुष्टि आदि के प्रहारों से खूब ताड़ित कर वे उनको राजा के पास ले आये । आते ही उन्होंने ने राजा से कहा कि महाराज ! आप श्रमणोपासक हैं, और हम श्रमण हैं । हमारे उपर आप अनर्थ क्यों करवा रहे हो । श्रमणों की बात सुनकर राजा ने कहा—आप

आ प्रकारे स्थविरोऽथी प्रतिबोधित थवा छतां पञ्च ते ढोकोऽथे पोताना दुराग्रहो त्याग कथी नहीं. अने अे सधणाऽथे कायोत्सर्ग पूर्वक तेमने अहिष्कार कथी. अहिष्कृत थवार्थी ते सधणा ग्रामानुग्राम विचरता विचरता पोताना मतनी पुष्टि करता करता राजगृह नगरमां गुणशील उद्यानमां आव्या.

राजगृह नगर उपर मौर्यवंशीय बलभद्र नामना राजानुं आधिपत्य हुतुं. पोताने त्यां अव्यक्त निह्वने आवेला लक्ष्मीने श्रमणोपासक ते राजनीऽथे गुणशीलउद्यानमां उतरेला अे अव्यक्तनिह्वनेने प्रतिबोधित करवाना उदेशथी पोताना सुभटो द्वारा आंधीने डण्डर करवानो हुकम कथी. राज्याना भाष्यसो तेमने पकडी लाववा माटे उद्यानमां पडोऽथ्या अने अधाने पकडी आंधी लेवानी साथे गडदा पाटु वगेरेना प्रहारथी भूष त्रास आप्यो. पछी राजनी सामे लध लध रण्य करतां अे पकडी मंगाववामां आवेला निह्वोऽथे राजनी समक्ष उपस्थित थता कहुं के, हे राजन् ! आप तो श्रमणोपासक छो अने अमे श्रमण्य छीऽथे. अमारा उपर शा माटे अनर्थ करावी रखा छो ? श्रमणोऽथी वात सांभणी

भवतामव्यक्तं मतम्, तदनुसारेण नाहं निश्चिनोमि-युयं श्रमणाश्चोराश्चरटा वा वयं श्रमणोपासका अन्ये वा स्म इति, इत्येवं तेन भूपेन बोधं प्राप्ताः कथित-वन्तः-राजन् ! भवानस्मान् सन्मार्गे स्थापितवान् । राजा प्राह-भो महाभागाः ! भवतः प्रतिबोधयितुं मया यदाचरितं तत्सर्वं क्षन्तव्यं भवद्भिः । ते मिथ्या दुष्कृतं दत्त्वा तेषु स्थविरेषु मिलिताः ॥

इति तृतीयाषाढाऽऽचार्यशिष्यनिहवदृष्टान्तः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थनिहवाऽश्वमित्रदृष्टान्तः प्रोच्यते—

भगवतः श्रीमहावीरस्वामिनो निर्वाणसमयाद् विंशत्यधिकद्विशत २२० वर्षेषु

लोग ऐसा मत कहो-आपका तो मत अव्यक्त है इसके अनुसार हम यह कैसे निश्चय कर सकते हैं कि आप श्रमण हैं कि चोर या लूटेरे हैं, और हम श्रमणोपासक हैं या अन्य कोई । इस प्रकार जब उस राजा ने कहा तो उनको बोध हो गया । राजा द्वारा बोध को प्राप्त हुए उन श्रमणों ने कहा-महाराज ! आपने हमलोगों को सन्मार्ग में लगा दिया यह अच्छा किया । राजा ने कहा कि आप लोगों को सन्मार्ग में लाने के लिये-प्रतिबोधित करने के लिये-जो कुछ हमारे द्वारा करवाया गया है उसे आप क्षमा करे । फिर वे मुनि मिथ्यादुष्कृत देकर स्थविरो में संमिलित हो गये ।

यह तीसरा अषाढाचार्य शिष्य निहव दृष्टान्त हुआ

चतुर्थ निहव अश्वमित्र की कथा इस प्रकार है—

भगवान महावीर स्वामी को मोक्ष गये हुए जब २२० दोसो बीस वर्ष

राजसे कहुं के, -आप सेवुं कहुं शकता नथी-आपने तो अव्यक्त मत छे आथी हुं केम भानी शकुं के, आप श्रमण छे अथवा तो चोर, लुंटांरा छे ? अने हुं श्रमणोपासक छुं के थिजे केछ ? राजनुं आ प्रकारनुं कथन सांलणतां ते सखणाने ओध थछ गयो, पोतानी भूल समजछ गछ. अज्ञाननां पडण इर थछ जतां से श्रमणोसे राजने कहुं, महाराज ! आपे असेने आजे साथे भागं जताव्यो छे ते धखुं ज साइं कथुं. राजसे कहुं के, आप लोकेने सन्मार्गे लाववा भटे भारा तरइथी जे कांछ करवाभां आवेल छे तेनी मने क्षमा करे. राज द्वारा प्रतिओधित अनेला से मुनिओ मिथ्यादुष्कृत्य दछने स्थविरै साथे मणी गया.

॥ आ त्रीज अषाढाचार्य शिष्य निहवनुं दृष्टान्त थयुं ॥३॥

ओथा निहवनी कथा आ प्रकारनी छे—

भगवान महावीर स्वामीने मोक्षभां गयाने असे बीस वर्ष बीती युक्कां



व्यतीतेषु मिथिलायां लक्ष्मीगृहोद्याने महागिरिशिष्यस्य कौण्डिन्यस्य शिष्योऽश्व-  
मित्रमुनिः पूर्वपठनोद्यत आसीत् । स चान्यदा दशलक्षाधिकैककोटिपदपरिमाणकस्य  
विद्याऽनुप्रवादनामकस्य दशमपूर्वस्य नैपुणिकनामकवस्तु पठन्निममालापकं पठितवान्—

“ सव्वे पडुप्पन्नसमया नेरइया वोच्छिज्जिस्संति एवं जाव वेमाणियत्ति,  
एवं वित्तियाइसमएसु वत्तव्वं ” इति ।

छाया—सर्वे प्रत्युत्पन्नसमया नैरयिका व्युच्छेत्स्यन्ति, एवं यावद् वैमानिका  
इति एवं द्वितीयादि समयेषु वक्तव्यम् । इति ।

तदा स एवं रूपमालापकमधीयानो मिथ्यात्वमुगतः सन्नेवं प्रवचनविरुद्धमर्थं  
विचिन्तयति स्म—

व्यतीत हो चुके थे तब मिथिला नगरी के लक्ष्मीगृहोद्यान में महागिरि  
आचार्य के शिष्य जो कौण्डिन्य थे उनके शिष्य अश्वमित्र मुनि पधारे । ये  
पूर्वों के पठन पाठन में तत्पर थे । जब एक करोड दसलाख पद वाले  
विद्यानुप्रवादनामक दशमपूर्वकी नैपुणिकनामक वस्तु का अध्ययन  
कर रहे थे तब वहां उनको यह आलापक पढ़ने को मिला—

“ सव्वे पडिप्पुन्नसमया नेरइया वोच्छिज्जिस्संति एवं जाव वेमा-  
णियत्ति एवं वित्तियाइसमएसु वत्तव्वं ” इति ।

छाया—सर्वे प्रत्युत्पन्नसमया नैरयिका व्युच्छेत्स्यन्ति । एवं यावत्  
वैमानिका इति, एवं द्वितीयादिसमयेषु वक्तव्यम् ” इति ।

इस आलापक को पढ़ते ही उनके चित्तमें मिथ्यात्वका उदय हो जाने  
से प्रवचनविरुद्ध अर्थ की कल्पना जग उठी । उन्होंने धर्माचार्य से कहा—

इतां अे समये मिथिला नगरीना लक्ष्मीगृह उद्यानमां महागिरि आचार्यना  
शिष्य कौण्डिन्य इता तेमना शिष्य अश्वमित्र मुनि पधायो अश्वमित्र मुनि पूर्वोना  
पठन पाठनमां पूअ अ तत्पर इता. न्यारे अेक करोड दसलाख पदवाणा  
विद्यानुप्रवाद नामना दशमापूर्वानी नैपुणिकनामनी वस्तुनुं अध्ययन करी रइया  
इता त्यां तेमने आ आलापक वांयवामां आव्युं.—

“ सव्वे पडिप्पुन्नसमया नेरइया वोच्छिज्जिस्संति एवं जाव वेमाणियत्ति  
एवं वित्तियाइसमाएसु वत्तव्वं ” इति ।

छाया—“ सर्वे प्रत्युत्पन्नसमया नैरयिका व्युच्छेत्स्यन्ति ।

एवं यावत् वैमानिका इति, एवं द्वितीयादिसमयेषु वक्तव्यम् ” इति ।

आ आलापकने लक्षुतांअ तेमना चित्तमां मिथ्यात्वना उदय थअ अतां  
प्रवचन विरुद्ध अर्थनी कल्पना अगी पडी. तेमणे धर्माचार्यने कइं—

वर्तमानक्षणवर्तिनो नैरयिकादयो वैमानिकान्ताः सर्वेऽपि चतुर्विंशतिदण्डक-  
जीवाः क्षणान्तरे व्युच्छेत्स्यन्ति तस्मात् सर्वेऽपि जीवादयः पदार्थाः प्रतिक्षणं  
समुच्छेदं यान्ति । किंच—यत्रार्थक्रियाकारित्वं तदेव वस्तुनः सत्त्वम् । यत्रार्थक्रि-  
याकारित्वं नास्ति, न तत् सत्त्वम् । यद्यर्थक्रियाकारित्वाभावेऽपि सत्त्वं मन्येत  
तर्हि शशश्रृङ्गादीनामपि सत्ता स्वीकर्तव्या स्यात्, अतो “यदेवार्थक्रियाकारि  
तदेव परमार्थसत्”—दिति सिद्धान्तो निष्पद्यते । अर्थक्रियाकारित्वरूपं सत्त्वं क्षण-  
विनश्वरपदार्थेष्वेव संभवति, न तु नित्येषु । नित्यपदार्थेष्वर्थक्रियाकारित्वं चेत्  
स्वीक्रियेत, तर्हि ते नित्यपदार्थाः किं क्रमशोऽर्थक्रियाकारिणो भवन्ति ? किं वा  
युगपद्येन ?, यदि क्रमशोऽर्थक्रियाकारित्वं तर्हि तेषां नित्यत्वं व्याहन्येत । किंच—

वर्तमान क्षणवर्ती नैरयिक आदि वैमानिकान्त चौवीस दंडक के  
जीव क्षणान्तर में व्युच्छिन्न हो जायेगे । इसलिये ऐसा मानना चाहिये  
कि समस्त जीवादिकपदार्थ प्रतिक्षण में नष्ट हो रहे हैं । स्थिर नहीं हैं ।  
तथा जहां अर्थक्रियाकारिता है वही सत्त्व है । इसके अतिरिक्त—जहां  
अर्थक्रियाकारिता नहीं है वहां सत्त्व नहीं है । यदि जो कार्य को नहीं करने  
वाला है उसमें भी सत्त्व माना जाय तो शशश्रृंग आदि पदार्थों में भी  
सत्त्व मान लेना पड़ेगा, अतः “यदेव अर्थक्रियाकारि तदेव परमार्थ-  
सत्” यही सिद्धान्त स्थिर होता है । अर्थक्रियाकारितारूप सत्त्व क्षण-  
विनश्वर पदार्थ के अतिरिक्त नित्य पदार्थ में कथमपि आ नहीं सकता—  
इस विषय में नित्यपदार्थवादियों से पूछा जाय कि—नित्यपदार्थ  
क्रम से अर्थक्रिया करता है, या युगपत् अर्थक्रिया करता है ? यदि

वर्तमान क्षणवर्ती नैरयिक आदि वैमानिक पदार्थ चौवीस दंडकना एव  
क्षणान्तरमां व्युच्छिन्न थर्ष नश्ये. आथी एषुं मानवुं नोद्ये के, सधणा एवा-  
दिक पदार्थ प्रतिक्षणमां नष्ट थर्ष रह्या छे. स्थिर नथी. अने न्यां अर्थक्रिया  
कारिता छे ते न सत्व छे. आथी अतिरिक्त—न्यां अर्थक्रिया कारिता नथी ते  
सत्व नथी. ने कार्य करनार नथी तेमां पणु सत्व मानवामां आवे तो शशश्रृंग  
( ससलाना शींग ) वगेरे पदार्थोमां पणु सत्व मानवुं पडशे आथी “यदेव  
अर्थक्रियाकारि तदेव परमार्थ सत्” आ सिद्धांत सिद्ध थाय छे. अर्थक्रिया  
कारिता इप सत्व क्षणवर्तुर पदार्थना अतिरिक्त नित्यपदार्थमां कोर्ष द्विवस  
आवी शकतो नथी. केभके, नित्य पदार्थवादीओथी एषुं पुछवामां आवे के,  
नित्यपदार्थ कभथी अर्थक्रिया करे छे के, युगपत् ( ओकी साथे ) अर्थक्रिया  
करे छे ? ने ओभ कडेवामां आवे के, कभथी अर्थक्रिया करे छे तो आ

क्रमशः कालान्तरवर्तिसमस्तार्थक्रियाकारित्वमशक्यम्, नित्यपदार्थानामेकस्वभावतया समस्तार्थक्रियाणामेकत्वमसङ्गात् । यदि तेषां भिन्नस्वभावत्वं स्वीक्रियेत, तर्हि स्वभावपरिवृत्त्या एक स्वभावत्वहानौ तेषामनित्यत्वमापद्येत । अथ यौगपद्येनार्थक्रियाकारित्वं स्वीक्रीयेत तर्हि एकस्मिन्नेव क्षणे सर्वा अर्थक्रियाः संपद्येरन्, ततश्च द्वितीयादिक्षणेऽर्थक्रियाकर्तृत्वाभावात्तेषामवस्तुत्वमापद्येत । किञ्च-एकस्मिन् क्षणे समस्तार्थक्रियाकारित्वाभावः प्रत्यक्षसिद्ध एव, अतः क्षणिकस्यैव वस्तुनोऽर्थ

कहा जाय कि क्रम से अर्थक्रिया करता है, तो इस प्रकार की मान्यता में उसमें नित्यत्व की हानि आती है । दूसरे कालान्तरवर्ती समस्त अर्थक्रियाएँ उस क्रम से हो भी कैसे सकती हैं, क्योंकि नित्य जब एक स्वभाववाला है तो उसी स्वभाव से वह समस्त अर्थक्रियाएँ करेगा, इस अपेक्षा समस्त अर्थक्रियाओं में एकता आनेका प्रसंग प्राप्त होगा । यदि उसमें भिन्न २ स्वभावता मानी जाय तो फिर इस तरह से स्वभाव परिवर्तन होने से एकस्वभावताकी हानि होगी, और इस वजहसे वहाँ अनित्यता माननी पड़ेगी । यदि यह कहा जाय कि नित्य पदार्थ युगपत् अर्थक्रिया करता है तो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि जब वह एक ही क्षण में समस्त कार्यों को कर देगा तो द्वितीयादिक क्षण में वह क्या करेगा? इस अपेक्षा उसमें अवस्तुत्त्वापत्ति माननी पड़ेगी । तथा एक ही क्षण में उसमें कार्य-अकारणता प्रत्यक्षसिद्ध है । इसका कारण यह मानना चाहिये कि क्षणिक वस्तु ही कार्य करती है अतः

प्रकारनी मान्यतामां तेमां नित्यत्वनी डानी आवे छे. जीणुं कालान्तरवर्ति समस्त अर्थक्रियाओ तेना कर्मथी थर्ष पणु केम शके ? केमके, नित्य न्यारे ओक स्वभाववाणे छे तो ओ न स्वभावथी ते समस्त अर्थक्रियाओ करशे आ अपेक्षा समस्त अर्थक्रियाओमां ओकता डोवाने प्रसंग प्राप्त थशे. जे तेमां भिन्न भिन्न स्वभावता मानवामां आवे तो ते रीते तो स्वभाव परिवर्तन डोवाथी ओक स्वभावनी डानी थशे. अने तेना कारणे त्यां अनित्यता मानवी पडशे. जे ओम डडेवामां आवे के, नित्य पदार्थ युगपत् अर्थक्रिया करे छे तो ओपुं कडेपुं पणु डीक नथी. केमके, न्यारे ते ओक न क्षणुमां समस्त कार्यने करी देशे तो जीणु क्षणुमां ते शुं करशे ? आ अपेक्षा ओ तेमां अवस्तुत्वापत्ति मानवी पडशे, तथा ओक न क्षणुमां तेमां कार्यनी अकारणता प्रत्यक्ष सिद्ध छे. तेनुं कारणे ओ मानवुं ओध ओ के, क्षणिक वस्तु न कार्य करे छे.

क्रियाकारित्वं स्वीकर्तव्यम् । एवं च 'सर्वं वस्तुक्षणिकम्' इत्येव मन्तव्यम् । वस्तुनः प्रतिक्षणं समुच्छेदो निरन्वयनाशो भवति । यथा विद्युज्जलबुद्बुदादिपदार्थानामिति ।

एवं वदन्तं तमश्चमित्रमुनिं कौण्डिन्यनामको धर्माचार्यः प्राह—वत्स ! प्रतिक्षणं वस्तुनः सर्वथा नाशं मा स्वीकुरु । वस्तुनः प्रतिक्षणं नाशः कथंचित् अन्यान्यपर्यायोत्पत्तिनाशापेक्षयैव भवति न तु सर्वथानाशरूपो निरन्वयनाशो भवति । पदार्थस्य सर्वथा निरन्वयनाशाऽभ्युपगमे तु क्षणान्तरे तथारूपः पदार्थः प्रत्यक्षेण कथं दृश्यते ।

पदार्थ क्षणिक हैं । क्षणिक का मतलब है निरन्वय विनाश । वस्तु प्रतिक्षण उत्पन्न होती रहती है और प्रतिक्षण ही नष्ट होती रहती है, जैसे विजली या जलबुद्बुद आदि पदार्थ ।

अश्वमित्र मुनि की इस बात को सुन धर्माचार्य कौण्डिन्य ने कहा—वत्स ! प्रतिक्षण वस्तु के सर्वथा विनाश को तुम स्वीकार मत करो । यह बात तो सिद्धान्त अभिमत है कि वस्तु सदा एकसी हालत में नहीं रहती है, उसमें प्रतिक्षण नवीन पर्यायों का उत्पाद एवं पूर्व २ पर्यायों का विनाश होता रहता है । इस अपेक्षा से उसका कथंचित् विनाश भी माना गया है । इस प्रकार की स्वीकृति से यह तात्पर्य नहीं निकलता है कि वस्तु का सर्वथा निरन्वय विनाश हो जाता है । पदार्थ का निरन्वय विनाश तो त्रिकालमें भी नहीं हो सकता है । यदि पदार्थ का निरन्वय विनाश माना जाय तो द्वितीयादिक क्षणान्तर में जो पदार्थ का ज्यों का त्यों प्रत्यक्ष होता है वह नहीं हो सकता ।

એટલા માટે પદાર્થ ક્ષણિક છે. ક્ષણિકનો અર્થ નિરન્વય વિનાશ થાય છે. વસ્તુ પ્રતિ-ક્ષણ ઉત્પન્ન થતી રહે છે. અને પ્રતિક્ષણે નાશ થતી રહે છે. જેમકે આકાશમાંની વિજળી અથવા પાણીનો પરપોટો વગેરે પદાર્થો જેવી રીતે ક્ષણભ્રવી છે તેની માફકજ-

અશ્વમિત્ર મુનિની આ વાત સાંભળીને ધર્માચાર્ય કૌન્ડિન્યે કહ્યું, હે વત્સ ! પ્રતિક્ષણ વસ્તુના સર્વથા વિનાશનો તમે સ્વીકાર ન કરો. એ વાત તો સિદ્ધાંતથી સ્વીકારાયેલી છે કે, ચિજમાત્ર સદા એક જ હાલતમાં કદી રહેતી નથી. તેમાં પ્રતિક્ષણ નવા નવા પર્યાયો ઉમેરાતા જાય છે અને પહેલાંના પર્યાયોનો ક્ષય થતો જ રહે છે. આ અપેક્ષાએ તેનો કંઈક અંશે વિનાશ પણ માનવામાં આવે છે. આ પ્રકારનો સ્વીકાર કરવાથી એવું તાત્પર્ય નિકળતું નથી કે, વસ્તુનો સર્વથા નિરન્વય વિનાશ થાય છે. પદાર્થનો નિરન્વય વિનાશ તો ત્રણે કાળમાં પણ થતો નથી. છતાં પણ જે પદાર્થનો નિરન્વય વિનાશ માનવામાં આવે તો બીજા ક્ષણે એ પદાર્થ જેમનો તેમ પ્રત્યક્ષ દેખાય છે તે શક્ય નથી.

किंच—वस्तुनः प्रतिक्षणं सर्वथा नाशं स्वीकरोषि, तर्हि ऐहिकः पारत्रिकश्च सर्वोऽपि व्यवहारः कथं स्यात् ?, तथाहि भोक्ता कोऽप्यन्यः, तृप्तिस्तु कस्याप्यन्यस्य इति कथमुपपद्येत । तथा—अन्यः पन्थानं गच्छति, अन्यस्तु गमनश्रममनुभवेत् । अन्यो घटादीनर्थान् पश्यति, अन्यस्य तद्विषयकं ज्ञानं स्यात् । अन्यो दुष्कर्म करोति, अपरो नरके गच्छेत् । अन्यश्चारित्रं पालयति, अन्यो मोक्षमधिगच्छेत् । इति क्षणिकवादाङ्गीकारे तव मते सर्वं विपरीतं स्यात्, न चैतत् क्वचिद् दृष्टमिष्टं वा ।

और भी—वस्तु का प्रतिक्षण सर्वथा विनाश यदि तुम स्वीकार करते हो तो ऐसी हालत में इसलोकसंबन्धी एवं परलोकसंबन्धी समस्त ही व्यवहार व्युच्छिन्न मानना पड़ेगा । भोक्ता कोई होगा और तृप्ति किसी दूसरे को होगी, कारण कि जिसने भोजन किया है वह तो एक क्षण के बाद निरन्वयरूप से नष्ट हो गया, और अब जो इसके बाद उत्तर क्षणरूप व्यक्ति हुआ है उसको तृप्ति होगी । मार्ग कोई दूसरा चलेगा श्रम का अनुभव होगा किसी अन्य को । घटादिक पदार्थों को देखेगा दूसरा, तद्विषयक ज्ञान होगा किसी दूसरे को । दुष्कर्म करेगा कोई और नरक जावेगा और ही कोई । चारित्र्य पालन करेगा और कोई और मोक्ष जायगा और कोई । इस प्रकार क्षणिकवाद के अंगीकार करने में सर्व ही बातें विपरीतरूप में परिणत हो जायेंगी, परन्तु इस तरह का व्यवहार न तो किसी ने देखा है और न किसी को इष्ट ही है, और न इस प्रकार के व्यवहार का साधक कोई प्रमाण ही है । इसलिये

विशेषतः—वस्तुनो प्रतिक्षणं सर्वथा विनाशं थायं छे, तेषु जे तमे स्वीकारता छे तो अेवी हालतमां आ लोक संअंधी अने परलोक संअंधी सधणी वडेवार न छिन्न लिन्न मानवो पडशे. वस्तुनो लोक्ता केअं अेक हशे अने तेनी तृप्ति केअं भीजने थशे. कारण के, मानोके जेजे लोअन कथुं ते तो अेक क्षण पछी निरन्वरूपना कारजे नष्ट थर्थ गथे, अ्यारे अेना पछी भील न क्षणजे अे अक्ति थर्थ अेने न तृप्ति थशे. पणे केअं अेक आलशे अ्यारे तेना थक भीजने लागशे. अेम तो घट वीगेरे पदार्थने केअं जेशे अने तेना विषेनुं ज्ञान केअं भीजने थशे. दुष्कर्म केअं करशे अने तेने अहद्वे नरकमां केअं भीज नशे. आरित्रनुं पालन करशे केअं अने तेने अहद्वे मोक्षमां केअं भीजे न पडोअी नशे. आ प्रकारना क्षणिकवादनो जे स्वीकार करवामां आवे तो सधणी वातो विपरीत रूपमां ईरवार्थ नशे. अेटला माटे आ प्रकारना वडेवार न तो केअंजे जेथो छे के, न तो केअंने पसंद छे, वणी आ प्रकारना वडेवारने साथे ठराववा माटे केअं प्रभाष्य पष्य नथी.



तस्मात्-वस्तुनोऽनुक्षणं सर्वथा नाश इति न युक्तम्, किं तु पर्यायपरिवर्तने-  
नैवानुक्षणं द्रव्यस्य नाशः, इति मन्तव्यम् । दशमे पूर्वे यदुक्तं नारकादीनां व्युच्छेद  
इति, तत्र व्युच्छेदः पर्यायान्तरसंप्राप्तिरूपः । यतः—

जैनानामखिलं वस्तु, द्रव्यतः शाश्वतं भवेत् ।

अपरापरपर्याय-परावृत्तेस्त्वशाश्वतम् ॥ १ ॥

इत्येवं धर्माचार्यैः प्रतिबोधितोऽपि सोऽश्वमित्रः स्वदुराग्रहं न त्यक्तवान् तदा  
धर्माचार्यस्तं 'निह्वोऽयम्' इति मत्वा कायोत्सर्गपूर्वकं बहिष्कृतवान् ।

वस्तुका प्रतिक्षण सर्वथा नाश मानना युक्तियुक्त नहीं है । किन्तु  
यही मानना चाहिये कि पर्याय के परिवर्तन से ही प्रतिक्षण  
वस्तु का नाश होता है । दशमपूर्व में जो नारकी आदि का व्युच्छेद  
कहा है उसका अभिप्राय सर्वथा नाश से नहीं है, किन्तु पर्याय से  
पर्यायान्तरित होता है, ऐसा है क्यों कि जैनशास्त्र की यह मान्यता है

“जैनानामखिलं वस्तु, द्रव्यतः शाश्वतं भवेत् ।

अपरापरपर्यायपरावृत्ते त्वशाश्वतम् ॥ १ ॥”

समस्त पदार्थ द्रव्य की अपेक्षा शाश्वत एवं पर्याय की अपेक्षा  
अशाश्वत हैं ।

इस प्रकार धर्माचार्य द्वारा प्रतिबोधित होने पर भी अश्वमित्र ने  
अपने दुराग्रह का त्याग नहीं किया । धर्माचार्य ने उसका इस मान्यता  
से निह्वव जानकर कायोत्सर्गपूर्वक गच्छ से बाहिर कर दिया । गच्छसे

आथी वस्तुनो प्रतिक्षणु सर्वथा नाश थाय छे तेम मानवुं ते व्याज्भी  
नथी. परंतु अेम ज् मानवुं जेधअे के, पर्यायना परिवर्तनथी ज् प्रतिक्षणु  
वस्तुनो नाश थाय छे. दशमपूर्वभां नारकी आदिनो जे विच्छेद क्खो छे तेनो  
हेतु अे नथी के तेनो सर्वथा नाश थाय छे परंतु अेक पर्यायथी भीछ  
पर्यायान्तरित थाय छे. कारणु के जैनशास्त्रनी अे तो मान्यता ज् छे के,

“जैनानामखिलं वस्तु, द्रव्यतः शाश्वतं भवेत्,

अपरापरापर्यायपरावृत्तेस्त्वशाश्वतम् ॥ १ ॥”

सधणा पदार्थ द्रव्यनी अपेक्षाअे शाश्वत अने पर्यायनी अपेक्षाअे अशाश्वत छे.

धर्माचार्य तरइथी आट आटलो प्रतिबोध आपवा छतां पणु अश्वमित्रे  
पोतानो दुराग्रह न छोडयो. तेनी आ जतनी मान्यताथी तेने निह्वव (सूत्रनो  
सत्य अर्थने पहले अवणो अर्थ करनार) जण्णीने धर्माचार्ये कायोत्सर्ग पूर्वक  
तेने गच्छ अडार भूडी हीधो.



ततोऽसौ लोके समुच्छेदवादोक्तया स्वकीयकुमन्तं व्युद्ग्राहयन् भूमौ पर्यटति ।

अथान्यदाऽसौ सपरिवारः पर्यटन् राजगृहे समागतः । तत्र-राज्ञः शुल्काध्यक्षाः श्रावकोत्तमा आसन् । ते च सामुच्छेदिकनिह्वानागतान् ज्ञात्वा मनसि चिन्तयन्ति-कर्कशेनापि कर्मणा एतान् बोधयामः इति विचिन्त्य ते राजपुरुषाः कशादिभिस्तेषां ताडनं कुर्वन्ति । ततस्ते मुनयः प्राहुः-यूयं श्रावकाः, वयं साधवः कथं कुट्यन्ते युष्माभिः, श्रावकाः वदन्ति-भवन्मते वयं न श्रावकाः ये भवद्भिर्दृष्टास्ते

गच्छ से बाहिर होकर इन्होंने ने स्वेच्छापूर्वक विहार किया और वे सर्वत्र अपने समुच्छेदवाद की प्ररूपणा एवं पुष्टि करने लगे ।

किसी एक समय ये सपरिवार विचरते हुए राजगृह नगरमें आये । उस समय वहां राज्य के चुंगीघर में काम करने वाले श्रावक थे । जब उन्होंने ने सुना कि समुच्छेदवादी निहव यहां आये हुए हैं, तो उन्होंने ने विचार किया कि कर्कश-कठोर से भी कठोर कर्म द्वारा इनको समझाना चाहिये । इस प्रकार निश्चय कर वे सब राजपुरुष उनके पास आये और चाबुक आदि के प्रहारों से उनको खूब ताड़ित करने लगे । मुनियों ने जब उनका ऐसा अनुचित व्यवहार देखा तो कहने लगे कि आप लोग तो श्रावक हो और हम लोग साधु हैं अतः व्यर्थ में हमें क्यों मारते हो । उनकी बात सुनकर उन श्रावकों ने कहा कि खूब कहा-आप लोगों के मतानुसार न हम श्रावक हैं और न आप

गच्छथी षडार थया पछी अश्वमित्र मुनीये स्वेच्छापूर्वक विहार करवा मांडथो. अने ते न्यां न्यां गया त्यां त्यां पोताना समुच्छेदवादी प्ररूपणा अने पुष्टि करवा लाग्या.

कोई अेक सभये विचरतां विचरतां ते परिवार सहित राजगृह नगरमां पधार्या. ते सभये त्यांना राज्यना षडारता भाताना कर्मचारीये श्रावको हता. तेभणे सांलण्युं के, समुच्छेदवादी निहव अर्द्धि पधार्या छे, तो तेओये विचार कर्यो के, कर्कश-कठोरथी पणु कठोर कार्य द्वारा तेमनी बुद्धि ठेकाणे लाववी जेठ अे. आ प्रकारनेा विचार करी ते सधणा राजपुरुषो तेमनी पासे आव्या अने आणुक विगेरेना प्रडारथी तेमने भूष मारवा लाग्या. मुनीओये न्यारे राजपुरुषोनेा आवो अनुचित वडेवार जेथो अेटवे कडेवा लाग्या के, आप दोको तो श्रावक छे अने अमे साधुओ छीये, तो अमेने व्यर्थ शा माटे मारो छे ? अश्वमित्र अने तेमना साधुओनी आ वात सांलणीने ते श्रावकोअे कहुं के, वाह ! आपना मत अनुसार न तो अमे श्रावक छीये के

भवन्मते विनष्टाः, वयं तु नवीना एवोत्पन्नाः, ये भवन्तः पूर्वमस्माभिर्दृष्टास्ते भवन्मते विनष्टाः यूयं तु नवीना एवं, भवन्मते क्षणक्षयित्वात् सर्वस्य वस्तुन इत्येवं तैः शिक्षितः प्रतिबोधितश्च ॥

इति चतुर्थाऽश्वमित्रनिहवदृष्टान्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमगङ्गनिहवदृष्टान्तः प्रोच्यते—

भगवतः श्रीमहावीरस्वामिनो निर्वाणसमयाद् अष्टाविंशत्यधिकद्विंशतवर्षेषु २२८ व्यतीतेषु द्वैक्रियनिहवो जातः ।

उल्लुकाख्याया नद्याः पूर्वस्मिन् पुलिने उल्लुकातीरनामकं नगरमासीत्, तस्या एवं नद्या द्वितीयपुलिने धूलिप्रकाराऽऽवृतनगरविशेषरूपं खेटस्थानमासीत् ।

साधु हो । आपने जिन्हें देखा है वे तो नष्ट ही हो गये हैं, हम तो नवीन ही उत्पन्न हुए हैं । तथा हमलोगों ने जिन आपलोगों को पहिले देखा है वे भी आप लोग नहीं है, वे तो आपके सिद्धान्तानुसार विनष्ट हो चुके हैं । आप तो नवीन ही उत्पन्न हुए हैं, क्यों कि आपका मत ही क्षण-क्षय का प्रतिपादक है, समस्तपदार्थ क्षणविनश्वर है, यह आपका अभिमत है । इस प्रकार उनके द्वारा शिक्षित होकर वे सब के सब प्रतिबोधित हो गये । यह चौथे अश्वमित्र निहवका दृष्टान्त हुआ ॥४॥

पंचम गंगाचार्य निहव का वृत्तान्त इस प्रकार है—

भगवान् महावीर को मुक्ति गये जब २२८ दोसो अट्ठाईस वर्ष व्यतीत हो चुके तब द्वैक्रिय निहव हुआ । उस समय उल्लुकातीर नाम का नगर था । और द्वितीय तट पर धूलि के कोट से परिवृत एक नगरविशेष के

न तो तमो साधु छे. आपे जेने जेया छे तेने तो नाश थर्छ गये छे. अमे तो नवीन न उत्पन्न थया छीअे. तेन प्रमाखे अमारामाना जेमखे आप दोडोने पडेलां जेया छे ते पषु आप दोडो नथी. आपना सिद्धांत अनुसार ते तो नाश पाभ्या छे. आप तो केछि नवा न उत्पन्न थया छे. केभके, आपने मत न क्षण क्षयने प्रतिपादक छे. सर्व पदार्थो क्षण विनाशी छे. अवे आपने अभिमत छे. आ प्रमाखे अे श्रावके द्वारा शिक्षण भेगवी. ते सधणा प्रतिबोधित थया. आ योथुं द्रष्टांत अश्वमित्र निहवनुं थयुं. ॥ ४ ॥

इवे पांचमा गंगाचार्य निहवनुं द्रष्टांत आ प्रकारनुं छे—

भगवान् महावीरने निर्वाण पाभ्ये मांड मांड २२८ असे अठ्ठावीस वर्ष वीत्यां इशे. ते सभ्ये द्वैक्रिय निहव थया. ते सभ्ये उल्लुका नदीना पूर्व किनारे अेक उल्लुकातीर नामनुं अेक नगर इतुं. अ्यारे भील किनारे धुणना

तत्र महागिरिशिष्यो धनगुप्तनामको मुनिश्चातुर्मास्यामवस्थितः । धनगुप्ताचार्यस्य शिष्यो गङ्गनामकः आचार्यस्तु उल्लुकानद्याः पूर्वतटवर्तिनि उल्लुकातीरनामके नगरे समवस्थितः ।

तदनन्तरं शरत्काले धर्माचार्यवन्दनार्थं गच्छन् गङ्गाचार्यो नदीमुत्तरीतुं नद्यां प्रविष्टः । स च खल्वाटः, अक्षस्तस्य शिरसि प्रखरभास्करकिरणसंपर्कात् तापः संजातः, चरणयोश्च शीतलजलसंपर्कतः शैत्यं संजातम् । ततोऽत्रान्तरे कथमपि मिथ्यात्वमोहनीयोदयात् तस्य मनसि विचारः समुत्पन्नः—अहो ! एकस्मिन् समये एकैव क्रियाऽनुभूयते इति सूत्रोक्तिः कथं घटते, यतोऽहमधुना शीतगुणं च युगपद्

जैसा खेटक था । वहाँ महागिरि के शिष्य धनगुप्त नाम के मुनि ने चतुर्मास किया । इन धनगुप्त आचार्य के एक शिष्य थे जिनका नाम गंग था, और ये भी स्वयं आचार्य थे, उन्होंने ने उल्लुका नदी के पूर्व-तट पर वसे हुए उल्लुकातीरनगर में चतुर्मास किया ।

एक दिन की बात है कि शरत्काल में धर्माचार्य को वन्दना करने के लिये गंगाचार्य जा रहे थे । मार्ग में नदी पड़ती थी । उन्होंने ने उस नदी को पार करने के लिये उसमें प्रवेश किया । ये खल्वाट-गंजे थे अतः प्रखर सूर्य की किरणों के आतप से इनका मस्तक तप रहा था । ज्यों ही इनको शीतल जल का संपर्क हुआ तो इनके चरणों में शीतलता आ गई । मिथ्यात्वकर्म के उदय से इसी बीच इनके मन में इस प्रकार का विचार जागृत हो गया कि एक समय में एक जीव एक ही क्रिया का अनुभव करता है, इस प्रकार आगम का आदेश है परन्तु

कैटथी आंधेद्वे ऐक षट्क-कस्थो ढतो. त्यां महागिरिना शिष्य धनगुप्त नामना मुनिराजे यातुर्मास कथुं. ऐ धनगुप्त आचार्यने ऐक शिष्य ढतो जेतुं नाम गंग ढतुं अने ते पञ्च पुढ आचार्य ढता. तेमणे उल्लुका नदीना पूर्व किनारा उपर आवेदी उल्लुका नगरीमां यातुर्मास कथुं.

शरद्ऋतुने ऐ समय ढतो. कैध ऐक द्विसे गंगाचार्य चेताना धर्मा-चार्यने वंदना करवा भाटे जध रखा ढता. मार्गमां नदी आवती ढती. तेमणे सामे कांडे जवा भाटे नदीमां प्रवेश कर्यो. तेमना माथामां टाल ढती, ते कारणे प्रभर सूर्यनां किरणाना आतापथी तेमनुं मस्तक तपी रह्युं ढतुं. श्री७ आण्णे ऐमना चरणाने शीतल जणने स्पर्श थतां ऐमना चरणामां शीतलताने अनुभव थवा मांडथो. मिथ्यात्व कर्मना उदयथी ऐ समये तेमना मनमां ऐवा प्रकारने तर्क जगथो के, आगम तो अतावे छे के ऐक समयमां ऐक एव ऐक ज कियाने अनुभव करे छे, परंतु वर्तमानकाणे मारा आ

अनुभवामि, अतोऽनुभवविरुद्धत्वादिदमागमोक्तं न प्रमाणम्, इति विचिन्त्य गङ्गाचार्योऽधनगुप्ताचार्यस्य समीपं गत्वा स्वाभिप्रायमाह—भदन्त । ममैकस्मिन्नेव समये शीतोष्णानुभवः संजातः, अतो यदुक्तमागमे युगपत् क्रियाद्वयस्यानुभवो न भवतीति, तन्न प्रमाणम्, यतः—युगपत् क्रियाद्वयसंवेदनमस्ति, अनुभवसिद्धत्वात्, मम चरणशिरोगतशीतोष्णक्रियासंवेदनवत्, इति । ततो धनगुप्ताचार्यस्तमाह-

वर्तमान इस अनुभव से यह बात सत्य प्रतीत नहीं होती है, क्यों कि मैं इस समय में शीतस्पर्श एवं उष्णस्पर्श का युगपत्—एकसाथ अनुभव कर रहा हूँ, अतः स्वानुभव से विरुद्ध होने के कारण यह आगमोक्त कथन प्रमाणभूत नहीं है । इस प्रकार विचार करते २ ये अपने गुरुमहाराज धनगुप्त आचार्य के पास पहुँच गये । वहाँ पहुँचते ही इन्होंने अपना अभिप्राय गुरुमहाराज से कहा । भदन्त ! मुझे एक ही समय में शीतस्पर्श एवं उष्णस्पर्श का अनुभव हुआ है, इसलिये आगम में जो ऐसा कहा है कि क्रियाद्वय का युगपत् अनुभव एक जीव को न हीं होता है, वह मेरी दृष्टि से अप्रमाण है । एक जीव के एक ही समय में क्रियाद्वय का संवेदन होने से यह अनुमान प्रयोग बन जाता है कि—“ युगपत्क्रियाद्वयस्य संवेदनमस्ति अनुभवसिद्धत्वात् ममचरणशिरोगतशीतोष्णक्रियासंवेदनवत् ” अर्थात्—एक समय में दो क्रियाओंका संवेदन होता है, क्यों कि यह अनुभव सिद्ध है, जैसे मेरे पैरों में शीतसंवेदन और मस्तक में उष्णसंवेदन हुआ है । धनगुप्त

स्व अनुभववर्ती अथै वात सत्य लागती नथी. कारणु के, आ समये उष्णता अने शीतता अन्नेने अथै साथे हुं अनुभव करी रह्यो छुं. माटे हुं ने अनुभवी रह्यो छुं तेनाथी विरुद्ध अथै आगममां दर्शावाअथै कथन प्रमाणभूत नथी न. आ प्रकारने विचार करतां करतां पोताना गुरु महाराज धनगुप्त आचार्यनी पास नथ पड्यो. त्यां पड्योतां न पोताने अनुभववेदी अलिप्राय गुरु महाराजने कथो. भदन्त ! मने अथै न समयमां शीतता अने उष्णताने अनुभव थयो छे. अथैला माटे आगममां ने अथै न क्रमां छे के, अथै क्रियाने अथै समये युगपत् अनुभव अथै अथै थयो नथी ते मारी दृष्टिअे प्रमाणभूत इत्तुं नथी. आथी करीने अथै अथै न समये क्रियाद्वयनु संवेदन थतुं होवाथी मारा अनुभवे आ अनुमान प्रयोग अनी नथ छे के, “ युगपत् क्रियाद्वयस्य संवेदनमस्ति अनुभवसिद्धत्वात् मम चरणशिरोगतशीतोष्ण क्रियासंवेदनवत् ” अर्थात्—अथै समयमां अथै क्रियाअेनु संवेदन पथु थाय छे. अथै म म मारा पयोमां शीतसंवेदन अने मस्तकमां उष्णसंवेदन अनुभव्युं,

वत्स ! उपयोगयुगं युगपन्नोपपद्यते, छायातपवत्-युगपत् क्रियाद्वयानुभव-स्त्वयाऽभ्युपगम्यते स तव क्रमेणैव संपद्यते न तु युगपत् । परंतु तत् त्वया न लक्ष्यते, समयावलिकादेः कालस्य सूक्ष्मत्वात्, तथा मनसश्चातिचलत्वेनाऽतिसूक्ष्म-तया शीघ्रसंचारित्वात् । तस्मादनुभवसिद्धत्वादित्यसिद्धोऽयं हेतुः ॥ १ ॥

किंच—मनः सूक्ष्मातीन्द्रियपुद्गलस्कन्धनिवृत्तत्वात् सूक्ष्मम्, शीघ्रसंचारस्व-भावत्वात् शीघ्रसंचारि च । एवंभूतं मनः यस्मिन् श्रोत्रादिद्रव्येन्द्रियविषये शब्दादौ

आचार्य ने गंगाचार्य की बात सुनकर कहा कि वत्स ! एक काल में एक जीव के दो उपयोग संभवित नहीं होते हैं जैसे छाया और आतप । एक साथ दो क्रियाओं का अनुभव तुम जो मान रहे हो सो वह भ्रम है । क्रियाद्वय का अनुभव तो क्रम २ से ही होता है, परन्तु वह लक्षित नहीं होता है, क्यों कि समय आवली आदि जो काल है वह अतिसूक्ष्म है । तथा मन भी अतिचंचल एवं सूक्ष्म है इसलिये उसका संचार शीघ्र होने से ऐसा मालूम पड़ता है कि दो क्रियाओं का युगपत् अनुभव हो रहा है इसलिये “ अनुभवसिद्धत्वात् ” यह हेतु असिद्ध है ।

मन सूक्ष्म इसलिये है कि वह सूक्ष्म, अतीन्द्रिय पुद्गल स्कंध से निर्वर्तित-रचित हुआ है । उसका स्वभाव शीघ्र संचरण करने का है । इस स्वभाववाला यह मन जिस श्रोत्रइन्द्रिय आदिके विषयभूत शब्दा-

तेम એ અનુભવ સિદ્ધ વાત છે. ધનશુપ્તઆચાર્યે ગંગાચાર્યની આ પ્રમાણેની વાત સાંભળીને કહ્યું, હે વત્સ! એક સમયમાં એક જીવને બે ઉપયોગ સંભવિત થતા નથી જેમકે છાયા અને તડકો, એકી સાથે બે ક્રિયાઓનો અનુભવ જેને તમે માની રહ્યા છો તે તમારો ભ્રમ છે. ક્રિયાદ્વયનો અનુભવ તો ક્રમ ક્રમથી જ થાય છે. પરંતુ તે લક્ષિત થતો નથી. કેમકે, સમય આવલી સમયનોક્રમ આદિ જે કાળ છે તે અતિ સૂક્ષ્મ છે. તેજ પ્રમાણે મન પણ અતિ ચંચલ અને સૂક્ષ્મ છે. એટલા માટે તેનો સંચાર વેગવંત હોવાથી એવું જણાય છે કે બાણે બે ક્રિયાઓનો યુગપત્ અનુભવ થઈ રહ્યો છે. પણ એ ભ્રમ છે. આથી તમારો “ અનુભવસિદ્ધત્વાત્ ” આ નવો સિદ્ધાંત અસિદ્ધ છે.

મન સૂક્ષ્મ એ માટે છે કે તે સૂક્ષ્મ, અતીન્દ્રિય પુદ્ગલ સ્કંધથી નિર્વર્તિત રચિત થયેલ છે. તેનો સ્વભાવ શીઘ્ર સંચરણ કરવાનો છે. આ પ્રકારના સ્વભાવવાળું આ મન જે શ્રોત્રેન્દ્રિય વગેરેના આ વિષયભૂત શબ્દાદિકમાં જે સમયે સંયુક્ત



यस्मिन् काले संयुज्यते तस्मिन् काले तस्यैव विषयस्य ज्ञाने हेतुर्मनो भवति । यस्मिन् काले यस्मिन् विषये द्रव्येन्द्रियेण सह मनो न संयुज्यते, तस्मिन् काले तस्य विषयस्य ज्ञानं नोत्पद्यते । यतः शब्दादिषु विद्यमानेष्वपि तत्र मनोयोगाभावात् कस्यापि तद्विषयकं ज्ञानं न भवति । कोऽपि युगपत् द्वे क्रिये क्वाऽपि नैव संवेदयते । इत्थमत्र प्रयोगः—‘ इह पादशिरोगतशीतोष्णवेदने युगपत् न क्वापि कोऽपि संवेदयते भिन्नदेशत्वात्, विन्ध्यहिमगिरिशिखरस्पर्शनक्रियाद्वयवत् । यतोऽनुभवसिद्धत्वाद् ’ इत्यसिद्धोऽयं हेतुः ।

दिक में जिस समय में संयुक्त होता है उस समय में उसी विषय के ज्ञान का हेतु मन होता है । जिस काल में जिस विषय में द्रव्येन्द्रिय के साथ मन संयुक्त नहीं होता है उस काल में उस विषय का ज्ञान नहीं होता है । यद्यपि उस काल में शब्दादिक विषय विद्यमान भी रहें तौ भी उनके साथ मनोयोग का अभाव होने से किसी को भी तद्विषयक ज्ञान नहीं होता है । ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जिसे एक ही काल में दो क्रियाओं का कहीं पर भी संवेदन होता हो । इसकी सिद्धि इस अनुमान प्रयोग से होती है—“ इह पादशिरोगतशीतोष्णवेदने युगपत् न क्वापि संवेद्येते, भिन्नदेशत्वात्, विन्ध्यहिमगिरिशिखरस्पर्शनक्रियाद्वयवत् ” अर्थात् यहां पैर और शिर में रहे हुए शीत और उष्ण का संवेदन एक समय में नहीं होता है, क्यों कि वे दोनों भिन्न २ देशवर्ती है—जैसे विन्ध्यगिरि और हिमगिरि के शिखर की स्पर्शनरूप दो क्रियाएँ, इसलिये “ अनुभवसिद्धत्वात् ” यह हेतु असिद्ध हो जाता है ।

થાય છે તે સમયે જ્ઞાનનો હેતુ મન બને છે. જે કાળે જે વિષયમાં દ્રવ્યેન્દ્રિયની સાથે મન સંયુક્ત નથી થતું તે કાળે તે વિષયનું જ્ઞાન-ભાન થતું નથી. છતાં પણ બે કદાચ તે કાળમાં શબ્દાદિક વિષય વિદ્યમાન-હયાત રહે તે પણ એની સાથે મનોયોગનો અભાવ હોવાથી કોઈને પણ તે વિષયનું જ્ઞાન થતું નથી. એવી કોઈ પણ વ્યક્તિ નથી કે જેણે એક જ સમયે બે ક્રિયાઓનું કયાંય પણ સંવેદન અનુભવ્યું હોય. આની સિદ્ધિ આ અનુમાન પ્રયોગથી થાય છે કે, “ ઇહ પાદશિરોગતશીતોષ્ણવેદને યુગપત્ ન ક્વાપિ સંવેદયતે ભિન્નદેશત્વાત્ વિન્ધ્યહિમગિરિશિખરસ્પર્શનક્રિયાદ્વયવત્ ” અર્થાત્—અહીં પણ અને માથામાં થતું શીત અને ઉષ્ણનું સંવેદન એક સમયમાં થતું નથી. કેમકે, તે બંને અલગ અલગ દેશવર્તી છે. હિમગિરિ અને વિન્ધ્યગિરિના શિખરના સ્પર્શનરૂપ બે ક્રિયાઓ જેમ એક સમયે થતી નથી. આથી “ અનુભવ સિદ્ધત્વાત્ ” આ હેતુ અસિદ્ધ બની બાક છે.



किञ्च—जीवः खलु उपयोगमयः स येन केनाऽपि स्पर्शनादीन्द्रियेण करण-भूतेन यस्मिन् शीतोष्णाद्यन्यतरविषये यस्मिन् काले उपयुज्यते तन्मयोपयोग एवं भवति, नान्यथोपयुक्तो भवति । एकस्मिन् काले एकत्रैवार्थे उपयुक्तो जीवः संभवति न तु अर्थान्तरे, सांकर्यादिदोषप्रसङ्गात् । तस्माद् युगपत् क्रियाद्वययोगोऽसिद्ध एवं । ननु एकस्मिन्नर्थे उपयुक्तोऽर्थान्तरेऽपि किं नोपयुज्यते, इत्यत्राह—एकार्थ-स्योपयोगमात्रे व्यापृतशक्तिकः कथं युगपद् अर्थान्तरे उपयोगं कर्तुं प्रभवेत् ? न कथंचित्, सांकर्यादिदोषप्रसङ्गात् ।

और भी-जीव उपयोगस्वरूप है । वह जिस किसी भी कारणभूत स्पर्शइन्द्रिय के द्वारा जिस शीत उष्ण आदि विषय में जिस समय उपयुक्त होता है वह उसी उपयोगमय हो जाता है, इसलिये वह उसी विषय का ज्ञाता होता है, अन्य का नहीं, और जिस समय विवक्षित उपयोग नहीं होता उस समय वह विवक्षित पदार्थ का ज्ञाता भी नहीं होता है । एक काल में एक ही अर्थ में जीव उपयुक्त होता है दूसरे अर्थ में नहीं, कारण कि इस प्रकार की मान्यता से संकर आदि दोषों का प्रसंग प्राप्त होता है, इसलिये एक समय में दो क्रियाओं के साथ उपयोग का संबंध मानना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि यह बात किसी भी प्रमाण से सिद्ध नहीं होती है । एक अर्थ में उपयुक्त आत्मा अर्थान्तर में भी उपयुक्त क्यों नहीं होता है ? । इसका समाधान यह है कि आत्मा की शक्ति ही ऐसी है जो एक ही अर्थ में एक समय उपयुक्त हो सकती है दूसरे पदार्थ में नहीं, क्योंकि यह बात ऊपर बतला दी

वर्ण-७५ उपयोग स्वरूप છે. તે જે કોઈ પણ કારણભૂત સ્પર્શેન્દ્રિય દ્વારા જે શીત ઉષ્ણ આદિ વિષયમાં જે સમયે ઉપયુક્ત બને છે. તે પ્રમાણે એજ ઉપયોગમય બની બને છે. આથી તે સમયે તે એજ વિષયનો બાહ્યકાર બને છે, બીજા વિષયનો નહીં. અને જે સમયે વિવક્ષિત ઉપયોગ વિશિષ્ટ નથી હોતો તે સમયે તે વિવક્ષિત પદાર્થનો જ્ઞાતા પણ હોતો નથી. એક સમયને વીશે એક જ અર્થમાં જ ઉપયુક્ત બને છે. બીજા અર્થમાં નહીં. કારણ કે, આ પ્રકારની માન્યતાથી સંકર આદિ દોષો થવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થાય છે. એટલા માટે એક સમયમાં બે ક્રિયાઓની સાથે ઉપયોગનો સંબંધ માનવો સર્વથા અયોગ્ય છે. કારણ કે, આવી વાત કોઈ પણ પ્રમાણથી સિદ્ધ થતી નથી. એક અર્થમાં ઉપયુક્ત આત્મા અર્થાન્તરમાં પણ ઉપયુક્ત કેમ થતો નથી ? તેનું સમાધાન એજ છે કે. આત્માની શક્તિ જ એવી છે કે જે એક જ અર્થમાં

કિञ્ચ—સર્વૈરપિ સ્વપ્રદેશૈરેકસ્મિન્નર્થે ઉપયુક્તસ્ય જીવસ્ય કઃ પ્રદેશ ઉદ્ધરિતઃ, યેનાર્થાન્તરોપયોગં સ વ્રજેત્ । યતો નાસ્ત્યેવ સ કશ્ચિદુદ્ધરિતઃ પ્રદેશઃ, યેન તત્સમ-કાલમેવ અર્થાન્તરોપયોગં સ કુર્યાત્ । યથા વૃશ્ચિકદંશને સતિ સા વેદના સર્વૈઃ પ્રદેશૈરનુભૂયતે ન તુ કશ્ચિત્ પ્રદેશોઽવશિષ્ટસ્તદ્વેદનાનુપયુક્તઃ ॥

નનુ યુગપત્ ક્રિયાદ્વયોપયોગો ન ભવતિ ચેત્તર્હિ કથં તમહં સંવેદયામિ ? इति चेत् , उच्यते—

गई है, कि ऐसा मानना संकर आदि दोषों का प्रसंग होता है ।

और भी—जीव जब किसी एक अर्थ में एक काल में उपयुक्त होता है, तो वह अपने समस्त प्रदेशों से उसमें उपयुक्त होता है । अब ऐसा और कोई प्रदेश नहीं बचता जो अर्थान्तर के उपयोग होने में कारण हो सके । अतः ऐसा नहीं होने से जीव एक काल में एक ही अर्थ में उपयुक्त होता है, यह सिद्धान्त ही ठीक है । देखो—जिस समय वृश्चिक आदि काटता है उस समय उसके काटने की वेदना का समस्त प्रदेशों द्वारा जीव अनुभव करता है, ऐसा ता कोई अवशिष्ट नहीं बचता है जो उस वेदना का अनुभवन करता हो ।

यदि एक साथ क्रियाद्वय का उपयोग नहीं होता है तो मुझे उन दोनों क्रियाओं का एक साथ संवेदन क्यों होता है ? यदि इस प्रकार की शंका की जाय तो उसका समाधान इस प्रकार है—

એક જ સમયે ઉપયુક્ત થઈ શકે છે, બીજા પદાર્થમાં નહીં. કેમકે, એ વાત ઉપર ખતાવવામાં આવી છે કે એવું માનવાથી સંકર આદિ દોષો થવાનો પ્રસંગ બને છે.

વળી જીવ બ્યારે એક અર્થમાં એક કાળને વિશે ઉપયુક્ત થાય છે તે તે પોતાના સમસ્ત પ્રદેશોથી તેમાં ઉપયુક્ત બને છે. પછી એવો બીજો કોઈ પણ પ્રદેશ બાકી નથી રહેતો જે અર્થાન્તરનો ઉપયોગ થવામાં કારણ ભૂત બની શકે. આથી તેવું ન થવાથી જીવ એક કાળમાં એક જ અર્થમાં ઉપયુક્ત થાય છે, આ સિદ્ધાંત જ સાચો છે. દાખલા તરીકે જે સમયે વિંછી વગેરે ડંખ મારે છે તે સમયે તેના ડંખની વેદના અનુભવ સઘળા પ્રદેશો દ્વારા જીવ કરે છે. એવો કોઈ પણ પ્રદેશ બાકી નથી રહેતો કે જે આ વેદનાના અનુભવથી બકાત હોય !

આ રીતે જો એકી સાથે ક્રિયાદ્વયનો ઉપયોગ નથી થતો, તો મને તેવું સંવેદન કેમ થાય છે ? જો આ પ્રકારની શંકા કરવામાં આવે તો એવું સમાધાન આ પ્રમાણે છે.—

समयावलिकादिकालभेदस्य दुर्लक्ष्यतया कालभेदेन प्रवृत्तमपि क्रियाद्वयसंवेदनमुत्पलशतपत्रवेधवद् युगपत् प्रवृत्तमिव मन्यसे । उत्पलपत्रशतकमूर्ध्वाधःक्रमेण व्यवस्थितं सुतीक्ष्णयाऽपि सूच्या समर्थेनापि वेधकर्त्रा न समकालमेव विध्यते, किंतु कालभेदेन, उपर्युपरितने पत्रे त्वविद्धेऽधोऽधस्तनपत्रस्य वेधासंभवात् । तत्र वेधकर्ता वेधं युगपद्विहितमेव मन्यते, तद्वेधनकालभेदस्य सूक्ष्मतया दुरवबोधत्वात् ।

यथा वा—अलातचक्रं कालभेदेन दिक्षु भ्रमदपि भ्रमणकालभेदस्य सूक्ष्मतया दुरवबोधत्वाच्चिरन्तरभ्रमणमेव लक्ष्यते । एवमिहापि शीतोष्णक्रियाकालभेदस्य सूक्ष्मत्वेन दुरवबोधत्वाद् युगपदिव तदनुभवं भवान् मन्यते ।

देखो—जिस प्रकार कमल के ऊपरा-ऊपरी रखे गये सौ पत्ते जब तीक्ष्ण सुई आदि द्वारा वेधित किये जाते हैं तो ऐसा मालूम होता है कि ये सब के सब एक ही साथ विध गये हैं, अब विचारो-क्या ये सब पत्ते एक ही साथ एक ही काल में विधे हैं? नहीं, उनके वेधन में काफी समय लगा है, क्यों कि वे सब के सब क्रम २ से विधे हैं । इसी तरह समय आवली आदि जो व्यवहार काल के भेद हैं, ये अतिसूक्ष्म होने से छद्मस्थों के लिये दुर्लक्ष हैं, अतः इनमें कोई भेद ज्ञात नहीं होता है । इसलिये क्रियाद्वयका संवेदन उत्पल शतपत्रके वेधनकी तरह युगपत् हुआ जैसा मान लिया जाता है । वास्तवमें यह संवेदन युगपत् नहीं हुआ है ।

अथवा—जिस प्रकार अलात (अंगारा) चक्र जब घुमाया जाता है तो चारों दिशाओं में अग्नि का चक्रर युगपत् ज्ञात है, परन्तु उसका

धारेके कभणनी सो पांढडीओ उपरा उपरी गोठववामां आवी डोय पछी न्यारे तेने अेक तीक्ष्ण सोय द्वारा आरधार विंधवामां आवे तो प्रथम दृष्टिअे अेवुं मालुम पडे छे के, जखे अे सधणी पांढडीओ अेक साथे विंधवामां आवी छे. डवे विचार करे, आ सधणां पान शुं अेक ज समये अेक साथे ज विंधायां छे? ना, भीलकुल नही. तेने विंधवामां सारे अेवो समय लाग्या छे. केभके, ते अधां पान कभ प्रमाळे अेक पछी अेक अे रीते विंधायां छे. आ ज प्रमाळे समय आवली-समयने कभ जे वडेवार काणने लेद छे ते अती सूक्ष्म डोवार्था छद्मस्थो माटे लक्ष जडारनी वात छे. अेथी तेमां केछ लेद जखुतो नथी. अेटला माटे ज क्रियाद्वयनुं संवेदन कभणना सो पांढडाना वेधननी माइक युगपत् थयुं अेवुं मानवामां आवे छे. पखु वास्तवमां अे संवेदन युगपत् थयुं नथी.

अथवा—जेवी रीते आगनुं अक न्यारे गोण इरववामां आवे छे. त्यारे आरे केर अग्निनुं अकरर युगपत् जखुय छे. परंतु तेनुं अ्रमण्ये आरे दिशा-

यथा वा शुष्कशङ्कुलिकाभक्षणे शङ्कुलिकागतरूपरसगन्धस्पर्शशब्दानां सर्वेषामुपलब्धिरयुगपत् प्रवृत्ताऽपि यौगपद्येन लक्ष्यते तथाऽत्रापि शिरःपादादिभिः स्पर्शनेन्द्रियदेशैरिन्द्रियान्तरैश्च क्रमेण संयुज्यमानमपि मन एकस्मिन् काल एव संयुज्यमानं लक्ष्यते ।

इदमत्र तत्त्वम्—इह दीर्घां शुष्कां च शङ्कुलिकां भक्षयतः कस्यचित् तद्रूपं चक्षुषा पश्यतो रूपज्ञानमुत्पद्यते, तद्रन्धं च घ्राणेन जिघ्रतो गन्धज्ञानम्, तद्रसं च

भ्रमण चारों दिशाओंमें युगपत् नहीं हो रहा है क्रमशः ही हो रहा है, परन्तु वहाँ कालभेद अतिसूक्ष्म होने से दुर्लक्ष्य होता है। इसी तरह शीतोष्णक्रियाद्वय का संवेदन अतिसूक्ष्म होने से भेदविशिष्ट ज्ञान नहीं होता है अतः तुम्हारे द्वारा ऐसा मान लिया जाता है कि यह सब एक साथ एक ही काल में हो रहा है।

अथवा—शुष्क शङ्कुलिका (सूखी पुडी) के चबाने पर शङ्कुलिकागत रूप, रस, गंध, स्पर्श एवं कटकट आदि शब्द की उपलब्धि अयुगपत् होती हुई भी जैसे युगपत् हो रही है ऐसी मालूम होती है, उसी तरह शिर पैर आदि स्पर्शनेन्द्रिय प्रदेशों द्वारा, और अन्य इन्द्रियों द्वारा क्रम २ से संयुज्यमान भी मन एक ही काल में संयुक्त हो रहा है, ऐसा मालूम पड़ता है। वास्तव में भिन्न २ समय में ही मन संयुक्त हो रहा है। ऐसा जानना चाहिये।

इसका भाव यह है कि दीर्घ एवं शुष्क शङ्कुलिका को खानेवाले

आमां युगपत् थतुं नथी डेतुं, पञ्च कभशः थतुं डेत्ये छे. परंतु त्यां काणलेड अति सूक्ष्म डेवाने कारण्णे डुर्लक्ष्य थाय छे. आ रीते शीतोष्ण क्रियाद्वयतुं संवेदन अतिसूक्ष्म डेवाथी लेदविशिष्ट ज्ञानतुं नथी. आ कारण्णे तभारा द्वारा अे मानी डेवामां आवे छे डे, आ सधणुं अेकी साथे अेक ज काणमां थथ रहुं छे.

अथवा—सुकाई गअेली पुरीना आववाथी पुरीमां रडेलां इप, रस, गंध, स्पर्श अने कटकट आदी शब्दनी उपलब्धि अयुगपत् थवा छतां पञ्च नेम युगपत् थथ रडी छे अेवुं मालुम पडे छे. अे ज रीते माथुं पग आदि स्पर्शनेन्द्रिय प्रदेशो द्वारा अने अन्य इन्द्रियो द्वारा कभ कभथी संयुज्यमान अेवुं मन अेक ज काणमां संयुक्त थथ रहुं छे अेवुं मालुम पडे छे. वास्तवमां भिन्न भिन्न समयमां ज ते मन संयुक्त थाय छे अेवुं ज्ञानवुं जेध अे.

आ डडेवाने डेतु अे छे डे, दीर्घ अने सुकाई गअेली पुरीने

रसनया आस्वादयतो रसज्ञानं, तस्पर्शं च स्पर्शनेन वेदयतः स्पर्शज्ञानं, चर्वणादुत्पन्नं तन्लब्धं च शब्दतः शब्दज्ञानं जायते । एतानि पञ्चापि ज्ञानानि क्रमेणैव जायन्ते अन्यथा सांकर्यादिदोषप्रसङ्गात्, मत्यादिज्ञानोपयोगकाले चावध्याद्युपयोगस्यापि प्राप्तेः, एकं च घटादिकमर्थं विकल्पयतोऽनन्तानामपि घटाद्यर्थविकल्पानां प्रवृत्ति-प्रसङ्गाच्च । न चैतदस्ति । अतः क्रमेण जायमानान्यप्येतानि ज्ञानानि प्रतिपत्ता-“युगपदुत्पद्यन्ते” इति मन्यते, समयाऽऽवलिकाऽऽदिकालविभागस्य सूक्ष्मत्वात् ।

किसी पुरुष को चक्षु से उसका रूप देखते समय रूपज्ञान उत्पन्न होता है, घ्राण इन्द्रिय द्वारा उसके गंध का, रसना इन्द्रिय द्वारा उसके रस का, स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा उसके स्पर्श का एवं चबाते समय उसके शब्द का ज्ञान होता है । इस प्रकार ये पांचों ही ज्ञान विचार करो तो उस खाने वाले व्यक्ति को क्रमशः ही होते हैं, परन्तु वहां ऐसा भान होता है कि ये सब ज्ञान एक ही साथ एक ही काल में हो रहे हैं । इन पांचों ज्ञानों का काल यदि क्रमशः न माना जाय तो मत्यादिज्ञान के उपयोग काल में अवधि आदि ज्ञान के उपयोग का भी सद्भाव मानना पड़ेगा । एक ही घटादिक पदार्थ को जानते समय अनन्त घटादिकों के जानने का प्रसंग प्राप्त होगा, परन्तु ऐसा तो होता नहीं है । प्रतिपत्ता-जानने वाला सिर्फ क्रम २ से होनेवाले इन ज्ञानों को “ये मुझे एक ही साथ एक काल में उत्पन्न हुए हैं” ऐसा समझ लेता है । उसकी इस

भावावाणा केर्ध पुरिषने आंभेथी पुरीतुं स्वइप जेती वभते इप ज्ञान उत्पन्न थाय छे. ध्राण्णुन्द्रियथी जेनी गंधने, रसनेन्द्रियथी जेना रसने, स्पर्शेन्द्रियथी जेना स्पर्शने अने आवती वभते जेना शब्दतुं ज्ञान थाय छे. आ रीते जे पांचिय ज्ञानने विचार करे तो जे पुरी भावावाणाने जेक पछी जेक जे रीते ज्ञान थाय छे छतां पणु तेने जेवुं लासे छे के, जे भधां ज्ञान तेने जेकी साथे अने जेक जे काणमां थर्ध रक्षां छे. आ पांचि प्रकारनां ज्ञानने काण जे क्रमशः थतो न मानवामां आवे तो भतिज्ञान विगेरे ज्ञानना उपयोग काणमां अवधिज्ञान विगेरे ज्ञानना उपयोगने पणु सद्भाव थतो मानवो पडे. जेक जे घट (धडो) विगेरे पदार्थने नजरमां देती वभते अनंत घट आदिने ज्याद नजरमां आववानो प्रसंग उलो थरो. परंतु जेवुं तो थतुं नथी. जणुनार व्यक्ति इकत कमे कमे थनारा ज्ञानने “आ ज्ञान भने जेकी साथे अने जेकज काणमां थयेद छे,” जेवुं समज्ज जेसे छे. जेनी



एवमिहापि शिरःपादादिभिः स्पर्शनेन्द्रियदेशैरिन्द्रियान्तरैश्च क्रमेण संयुज्यमान-  
मपि मनः प्रतिपत्ता युगपत् संयुज्यमानमध्यवस्यति, न तु तत्त्वतोऽसौ मनसः स्व-  
भावः । तथा चोक्तम्—‘ युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ’ इति ।

यदि चोक्तरीत्या सर्वेन्द्रियजनिते ज्ञाने क्रमेण संचरतो मनसः संचारो  
दुर्लक्षः, तर्हि कथमेकस्यैव स्पर्शनेन्द्रियमात्रस्य शीतवेदनोपयोगादन्यस्मिन्नुष्णवेद-  
नोपयोगरूपे उपयोगान्तरे उत्पद्यमाने तत्संचारः सुलक्षः स्यात् । अत्रापि अलक्ष्यमाणः  
खलु मनसः क्रमेण संचारः, इति जनीहि ।

समझ का कारण एक ही समय आवलि आदि कालविभाग की सूक्ष्मता है ।  
इसी तरह शिर पैर आदि स्पर्शन इन्द्रिय के प्रदेशों से, तथा अन्य  
इन्द्रियों से क्रम २ से संयुज्यमान भी मन को प्रतिपत्ता-ज्ञाता ऐसा  
मान लेता है कि यह युगपत् संयुक्त हुआ है । परमार्थ दृष्टि से विचार  
किया जाय तो मन का ऐसा स्वभाव नहीं है । कहा भी है—“ युगप-  
ज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ” अर्थात् एक साथ ज्ञान की अनुत्पत्ति ही  
मन का अस्तित्व प्रकट करने वाली है ।

उक्त पद्धति के अनुसार जब सर्व इन्द्रियों से जनित ज्ञान में क्रम  
से संचरण करने वाले मन का संचार दुर्लक्ष है तो फिर एक ही  
स्पर्शन इन्द्रिय मात्र के शीतवेदनारूप उपयोग से अन्य उष्णवेदनारूप  
उपयोगान्तरके उत्पन्न होने पर उसका संचार कैसे सुलक्ष हो सकता है ?  
किन्तु नहीं हो सकता । अर्थात् मन का क्रम से संचार ज्ञात नहीं होता है ।

आ ज्ञतानी भान्यता—समञ्जसुनुं कारण्यु अेक समय—आवलि ( समयनो क्म )  
आदि काण विभागनी सूक्ष्मता छे. आञ् प्रभाषे भस्तक, पण विगेरे स्पर्शे-  
न्द्रियना प्रदेशोथी तथा अन्य इन्द्रियोथी क्मे क्मे संयुज्यमान पण मनने  
प्रतिपत्ता-ज्ञाता अेषुं भानी वे छे के, आ युगपत् संयुक्त थयुं छे. परमार्थ  
दृष्टीथी विचार करवाभां आवे तो मननो अेषो स्वभाव न् नथी. कथुं पणु छे—  
“ युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम् ” अर्थात् अेक साथे ज्ञाननी अनुत्पत्ति न्  
मनना अस्तित्वने प्रगट करनारी होय छे.

आगण कडेदी पद्धति अनुसार न्यारे सर्व इन्द्रिय जनित अेषा ज्ञानभां  
क्मसर संचरण करवावाणा मननो संचार दुर्लक्ष छे, तो पछी अेक न् स्पर्शेन्द्रिय  
मात्रनी शीतवेदना इप उपयोगथी अन्य उष्णवेदनाइप उपयोगान्तरना उत्पन्न  
थवाथी तेनो संचार सुलक्ष थछं शके छे ? ना तेम नथी थछं शकतुं. अर्थात्  
मननो क्मथी थतो संचार ज्ञाती शकतो नथी.



नन्वेकस्मिन्नर्थे उपयुक्तस्य मनसोऽर्थान्तरेऽप्युपयोगो युगपत् भवतीति स्वीकारे को दोषः ? उच्यते—

यस्य मनोऽन्यस्मिन्नर्थे उपयुक्तं स स्वपुरोऽवस्थितं हस्तिनमपि न पश्यति तस्मादेकस्मिन्नर्थे उपयुक्तं मनो न कदाचिदन्यार्थोपयोगं लभते ।

ननु श्रुतेऽवग्रहादीनामनुज्ञाने एकस्मिन्नुपयोगबहुताऽभिहिता, तर्हि कथमुच्यते -वस्तुनोऽनेकपर्यायाणां सामान्यरूपतया ग्रहणमात्रमेव ज्ञाने उपयोगयोग्यतामा-

शंका—एक ही अर्थ में उपयुक्त मन का अर्थान्तर में भी उपयोग एक साथ होता है, ऐसा मानने में दोष क्या है? सो कहो—

उत्तर—जिसका मन अन्य अर्थ में उपयुक्त हो रहा है उसके समक्ष हस्ती भी आकर उपस्थित हो जावे तो वह भी उसको नहीं दिखता है । इसलिये एक अर्थ में जुड़ा हुआ मन कभी भी अन्य अर्थ में उस समय उपयुक्त नहीं हो सकता है ।

आगम में जब अवग्रह आदि के निरूपणावसर में एक समय में भी उपयोग का बाहुल्य कहा गया है, फिर आप कैसे कहते हैं कि— एक समय में अनेक उपयोग नहीं होता है ? । प्रतिवादी के इस शंका का समाधान सिद्धान्ती इस प्रकार करते हैं—तुम जो कहो कि आगम में एक समय में भी अनेक उपयोग होना माना गया है, सो ऐसी बात नहीं है । तुमने वहाँ के आगमवचन का अभिप्राय नहीं समझा । वहाँ का

शंका—एक ज अर्थमां उपयुक्त मन अर्थान्तरमां पणु उपयोग ऐक साथे थाय छे. ऐवुं मानवामां दोष शे छे ते तो अतावे। ?

उत्तर—जेतुं मन अन्य अर्थमां उपयुक्त थर्छ रहैल छे ऐनी सामे हाथी पणु आवीने अडो थर्छ जाय तो पणु ऐ हाथी तेना जेवामां नथी आवतो. ऐटला माटे ऐक अर्थमां-पदार्थमां जेडायेल मन कही पणु ऐज समये अन्य अर्थमां-पदार्थमां उपयुक्त थर्छ शकतुं नथी.

आगममां न्यारे अवग्रह विगेरेना निरूपणावसरमां ऐक समयमां पणु उपयोगनेो बाहुल्य कहेवामां आवेल छे तो पछी आप ऐम कहेो छे के, ऐक समयमां अनेक उपयोग नथी थतो ? प्रतिवादीनी आ शंकानुं समाधान सिद्धांति आ प्रकारे करे छे—तमे जे ऐम कहेो के, आगममां ऐक समयमां पणु अनेक उपयोग होवानुं स्वीकारवामां आवे छे तो ते ऐवी वात नथी. तमे त्यां आगण आगमवचननेो अलिप्राय समज्या नथी. त्यां आगणनेो

प्रव्यवस्थापनमेवेत्यर्थः एकस्मिंस्तु वस्तुन्येककालमुपयोगानेकता क्वापि नास्ति, क्रमेणैवोपयोगानां भावादिति ।

ननु युगपदनेकार्थानां ग्रहणं भवताऽपि स्वीक्रियते, तर्हि शीतोष्णद्वये युगपद् गृह्यमाणे मम को दोषः स्यादिति चेत्—

उच्यते—हे वत्स ! युगपदपि सामान्यरूपतया सेना—वन—ग्राम—नगरादिवदनेके ऽर्थाः गृह्यन्ते, इत्येतन्न निवारयामः, इह तु उपयोगद्वये विचारोऽयं प्रस्तुतः, स चोपयोग एकदा एक एव भवति, न त्वनेक इति ॥

अभिप्राय तो यही है कि—वस्तुगत अनेक पर्यायों का सामान्यरूप से ग्रहणमात्र होता है, अर्थात् ज्ञान में उपयोग की योग्यता मात्र स्थापित की जाती है, परन्तु एक वस्तु में एक समय में उपयोग की अनेकता तो कहीं भी नहीं कही गयी है, क्यों कि उपयोग क्रम से ही होता है। अतः एक समय में एक ही उपयोग होता है, दो नहीं, यह सिद्धान्त सिद्धमत है।

गंगाचार्य शंका करते हैं कि—युगपत् अनेक अर्थों का ग्रहण करना तो आप भी मानते हैं फिर शीत उष्ण दोनों का एक साथ होने में हम को आप बाधक क्यों मानते हैं ? ।

धनगुप्त आचार्य उत्तर देते हैं,—हे वत्स ! इसमें बाधक बनने की बात कौनसी है ? पदार्थों का ज्ञान सामान्य एवं विशेषरूप से होता है। जहाँ सामान्यरूप से ज्ञान होता है, वहाँ सेना वन ग्राम नगर आदि पदार्थों के ज्ञान की तरह अनेक अर्थ युगपत् भी ज्ञान द्वारा

अभिप्राय तो आ प्रमाहे छे के—वस्तुगत अनेक पर्यायानुं सामान्य रूपथी अहणु मात्र थाय छे. अर्थात्—ज्ञानमां उपयोगनी योग्यता मात्र स्थापित करवामां आवे छे. परंतु अेक वस्तुमां अेक समयमां उपयोगनी अनेकता तो कयांय पणु कडेवामां आवेद नथी. केभके, उपयोगतो कुभथी न थाय छे. आथी अेक समयमां अेक न उपयोग थाय छे—अे नही. आन सिद्धांत सिद्ध मत छे.

गंगाचार्य शंका करे छे के,—युगपत् अनेक अर्थानुं अहणु करवुं ते तो आप पणु मानो छो तो पछी शीत अने उष्ण अन्नेनुं अेक साथे ज्ञान थवामां आप शा माटे बाधक अने छो ?

धनगुप्त आचार्य उत्तर आपतां कहुं के, हे वत्स ! आमां बाधक थवानी वात न कयां छे ? पदार्थानुं ज्ञान सामान्य अने विशेष रूपथी न थाय छे. न्यां सामान्यरूपथी ज्ञान थाय छे त्यां सेना, वन, ग्राम, नगर विगेरे पदार्थाना ज्ञाननी भाइक अनेक अर्थ युगपत् पणु ज्ञान द्वारा अहणु कराया डोय छे. अही

युगपदनेकार्थग्रहणेऽभ्युपगम्यमाने कोऽयमेकानेकोपयोगभेदः ? अत्रोच्यते-  
यः सामान्योपयोगः स एकोपयोगः, स स्कन्धावारोपयोगवद्भवति यथा-  
'स्कन्धावारोऽयम्' इत्येवं यः सामान्यमात्रग्राहक उपयोगः स एकोपयोग उच्यते ।

गृहीत होते हैं । यहां उपयोग भी सामान्यरूप से ही होता है. विशेष-  
रूप से नहीं, अतः सामान्यरूप से अनेक अर्थ भी युगपत् ज्ञान के  
विषय होते हैं । इसका हम निवारण कब करते हैं । यहां तो दो उप-  
योग एक साथ हो सकते हैं या नहीं ? यह बात विचारकोटि में आरही  
है, अतः यहां इसकी पुष्टि की जा रही है कि एक काल में एक  
ही उपयोग होता है, दो नहीं । सामान्य पदार्थ का जब ग्रहण किया  
जाता है वहां उपयोग भी सामान्य ही होता है । उपयोग भी दर्शनो-  
पयोग एवं ज्ञानोपयोग के भेद से दो प्रकार का होता है । सामान्य-  
पदार्थ के ग्रहण करने में दर्शनोपयोग होता है, और विशेषपदार्थ के  
ग्रहण करते समय ज्ञानोपयोग होता है । दर्शन उपयोग का नाम एक  
उपयोग है और ज्ञानोपयोग का नाम अनेक उपयोग है ।

फिर गंगाचार्य शंका करते हैं—एक साथ अनेक पदार्थों का ग्रहण  
जब आप स्वयं स्वीकार कर रहे हो तो यह पता नहीं पड़ता कि ये एक  
अनेक उपयोग के भेद क्या है ? इनका तात्पर्य क्या है ?

उपयोग पणु सामान्य रूपी न थाय छे—विशेषरूपी नही. आथी सामान्य  
रूपी अनेक अर्थ पणु युगपत् ज्ञानेनो विषय अने छे, जेतुं निवारणु आपणु  
क्यारे करीअे छीअे ? अही तो अे उपयोग अेक साथे थछे शके छे के नही ?  
अे वात विचार कोटीमां आवी रही छे. आथी अही अेनी पुष्टि करवामां  
आवे छे के, अेक काणमां अेक नु उपयोग डोछे शके छे—अे नही. सामान्य  
पदार्थ न्यारे अडणु करवामां आवे छे त्यां उपयोग पणु सामान्य नु डोछे छे.  
उपयोग पणु दर्शनोपयोग अने ज्ञानोपयोगना लेदथी अे प्रकारेनो डोछे छे.  
सामान्य पदार्थ अडणु करवामां दर्शनोपयोग थाय छे. न्यारे विशेष पदार्थ  
अडणु करती वअते ज्ञानोपयोग थाय छे. दर्शन उपयोगनुं नाम अेक उपयोग  
छे. अने ज्ञानोपयोगनुं नाम अनेक उपयोग छे.

इरी गंगाचार्यने शंका थवा लागी के:—अेक साथे अनेक पदार्थाना अड-  
णुनो न्यारे आप पोते नु स्वीकार करे छे त्यारे अे नथी समनवामां  
आवतुं के, अे अेक-अनेक उपयोगना लेद शुं छे ? अे कडेवानो डेतु शुं छे ?

યસ્તુ પ્રતિવસ્તુવિભાગઃ—એતે હસ્તિનઃ, અમી અશ્વાઃ, ઇમે રથાઃ, એતે પદાતયઃ, એતે સ્વકુન્તાદયઃ, શિરસ્ત્રાણકવચાદયઃ, પટકુટિકાઃ, ધ્વજાઃ, પતાકાઃ ઢકા-શઙ્ક-કાહલાદયઃ, કરભરાસભાદયશ્ચેત્યાદિકો ભેદાધ્યવસાયઃ સોઽનેકોપયોગ ઉચ્યતે ।

‘મમ વેદના વર્તતે’ इत्येवं सामान्यरूपतया युगपत् शीतोष्णरूपं ज्ञानद्वयं वर्तते, किन्तु—शीतोष्णवेदनाविशेषतया युगपदुपयोगद्वयं न भवति । पूर्वं सामान्यज्ञानसापेक्षं विशेषज्ञानं भवति । सामान्यस्यानेकविशेषाश्रयत्वात् । पूर्वं वेदनासामान्यं गृहीत्वा

ધનગુપ્ત આચાર્ય ઉત્તર દેતે હૈં—અચ્છા વત્સ ! સુનો-સામાન્ય ઉપયોગ કા નામ એક ઉપયોગ હૈ, ઇસ્કા તાત્પર્ય યહ હૈ કિ જૈસે-સેના વન આદિ કા જો જ્ઞાન હોતા હૈ ઉસમેં ભિન્ન ૨ પદાર્થોં કા યુગ-પત્ જ્ઞાન નહીં હોતા હૈ । એક સાથ સામાન્યતયા સ્વ કા જ્ઞાન હોતા હૈ । ઇસીકા નામ સામાન્ય ઉપયોગ એક ઉપયોગ હૈ । જહાં પ્રતિ વસ્તુ કા અલગ ૨ જ્ઞાન હોતા હૈ જૈસે યે હાથી હૈં, યે ઘોડે હૈં, યે રથ હૈં, યે પદાતિ હૈં, યે સ્વઙ્ક કુન્ત આદિ હથિયાર હૈં, યે શિરસ્ત્રાણ હૈં, યે કવચ હૈં, ઇત્યાદિ, ઇસ્કા નામ અનેક ઉપયોગ હૈ । વિશેષ પદાર્થોં કે ગ્રહણ મેં એક કાલ મેં એક હી ઉપયોગ-જ્ઞાન ઉપયોગ હોતા હૈ ।

“મુજ્ઞે વેદના હો રહી હૈ” યહાં પર સામાન્યરૂપ સે એક સાથ શીતોષ્ણરૂપ દો જ્ઞાન હૈં કિન્તુ—શીતોષ્ણ વેદના વિશેષરૂપ સે એક સાથ દો ઉપયોગ નહીં હૈં । પહિલે સામાન્ય જ્ઞાન હોતા હૈ પશ્ચાત્ વિશેષજ્ઞાન હોતા હૈ । વિશેષજ્ઞાન સામાન્યજ્ઞાનસાપેક્ષ હી હોતા હૈ,

ધનગુપ્તાચાર્ય ઉત્તર આપે છે કે:—હે વત્સ ! સાંભળો સામાન્ય ઉપયોગનું નામ એક ઉપયોગ છે. એ કહેવાનો આશય એ છે કે, જેમ-સેના, વન, વિગેરેનું જે જ્ઞાન થાય છે તેમાં અલગ અલગ પદાર્થોનું યુગપત્ જ્ઞાન થતું નથી પણ એક સાથે સામાન્યતઃ સર્વનું જ્ઞાન થાય છે. એનું નામ સામાન્ય ઉપયોગ-એક ઉપયોગ છે. જ્યાં દરેક વસ્તુનું અલગ અલગ જ્ઞાન થાય છે જેમકે આ હાથી છે, આ ઘોડો છે, આ રથ છે, આ પદાતિ છે, આ ખડ્ગ કુંત આદિ હથિયાર છે, આ શિરસ્ત્રાણ છે, આ કવચ છે, વિગેરે વિગેરે ! આનું નામ અનેક ઉપયોગ છે. વિશેષ પદાર્થોના અહણમાં એક કાળમાં એક જ ઉપયોગ-જ્ઞાન-ઉપયોગ હોય છે.

“મને વેદના થઈ રહી છે” અહીં સામાન્ય રૂપથી એક સાથે શીતોષ્ણ રૂપ બે જ્ઞાન છે. પરંતુ શીત-ઉષ્ણ વેદના વિશેષરૂપથી એક સાથે બે ઉપયોગ નથી. પહેલાં સામાન્ય જ્ઞાન થાય છે અને પછીથી વિશેષજ્ઞાન થાય છે.

तत ईहां प्रविश्य 'शीतेयं पादयोर्वेदना' इति वेदनाविशेषं निश्चिनोति । शिरस्यपि प्रथमं वेदनासामान्यं गृहीत्वा तत ईहां प्रविश्य 'उष्णोयमिह वेदना' इत्यध्यवस्यति । ततश्चैवं न क्वचिद् विशेषज्ञानानां युगपत् प्रवृत्तिसंभवः, सामान्यरूपतया तु समकालमपि विशेषाणां ग्रहणं भवेत् । यथा सेना, वनमित्यादि । विशेषाणां तु न युगपदुपयागः । तथा च-भिन्नकाले एवं शीतोष्णविशेषज्ञाने तस्माद् भ्रान्तिरेवेदं भवतो युगपत् शीतोष्णद्वयवेदनम् ।

क्यों कि सामान्य अनेक विशेषों का आश्रय होता है, इसलिये । जब यह बात है तो पहिले वेदनासामान्य का ग्रहण होगा-पश्चात् विशेष वेदना का । अतः पहिले वेदनासामान्य का ग्रहण करके उससे फिर ईहा में प्रविष्ट होकर "शीतेयं पादयोर्वेदना" मेरे पैरों में यह शीत-वेदना है, इस प्रकार से वेदनाविशेष का निश्चय किया जाता है । इसी प्रकार शिर में भी प्रथम वेदना सामान्य को ग्रहण कर पश्चात् ईहा में प्रविष्ट होकर "उष्णोयमिह शिरसि वेदना" मेरे शिर में यह उष्ण-वेदना हो रही है, इस प्रकार से उष्णवेदना का निश्चय किया जाता है । इस प्रकार कहीं पर भी एक साथ विशेषज्ञानों की युगपत् प्रवृत्ति नहीं हो सकती है । सामान्यरूप से भले ही एक साथ विशेषों का ग्रहण हो जाय इसमें कोई सिद्धान्तविरुद्ध जैसी बात नहीं है, जैसा कि सेना वन इत्यादि सामान्य बोध में होता है । विशेषों का ग्रहण युगपत् नहीं हो सकता है, इसलिये ये शीतउष्ण विशेषज्ञान भिन्न

विशेषज्ञान सामान्यज्ञान सापेक्ष न होय छे, केमके, सामान्य अनेक विशेषोने आश्रय होय छे आन कारणने लीधे न्यारे आन वात छे तो पडेलां वेदना सामान्यनुं अडणु थाय छे, पछीथी विशेष वेदनानुं. आथी पडेलां वेदना सामान्यनुं अडणु करी अेना पछी धडा प्रविष्ट थध "शीतेयं पादयोर्वेदना" मारा पगोमां आ शीत वेदना छे. आ प्रमाणे वेदना विशेषने निश्चय करवामां आवे छे. आन रीते माथामां पणु प्रथम वेदना सामान्यने अडणु करी पछीथी धडांमां प्रविष्ट थध "उष्णोयमिह शिरसि वेदना"—मारा मस्तकमां आ उष्णवेदना थध रही छे. आ प्रकारे उष्णवेदनाने निश्चय करवामां आवे छे. आ प्रकारे गमे त्यां पणु अेक साथे विशेषज्ञानोनी युगपत् प्रवृत्ति थध शकती नथी. सामान्य रुपथी लदे अेक साथे विशेषोनुं अडणु थध नय आमां केध सिद्धांत विरुद्ध नैवी वात नथी. नैमके, सेना वन, विगेरे सामान्य बोधमां होय छे. विशेषोनुं अडणु युगपत् थध शकतुं नथी. आथी आ शीत उष्ण विशेषज्ञान लिख

इत्यादियुक्तिशतैर्गुरुणा प्रज्ञापितोऽपि गंगाचार्यः स्वाग्रहं न त्यक्तवान् तदा गुरुणा कायोत्सर्गपूर्वकं बहिष्कृतोऽसौ ग्रामानुग्रामं विहरन् राजगृहनगरमागतः। तत्र वीरप्रभनामक उद्याने मणिनायकयक्षभवने उत्तीर्णः। तत्र लोकानां पुरतः 'क्रियाद्वयस्य युगपदनुभवो भवति' इति स्वमतं प्ररूपयति। तदा मणिनायकयक्षः कोपमाविष्कुर्वन् मुद्गरेण तं गङ्गाचार्यं ताडयन् वदति—अरे! अत्रैव समवसृतेन

कालवर्ती हैं ऐसा मानना चाहिये। भ्रान्तिवश ही इनमें एक कालता प्रतीत होती है। इत्यादि सैंकड़ों युक्तियों से इस तरह प्रज्ञापित होने पर भी गंगाचार्य ने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा। धनगुप्ताचार्य ने जब गंगाचार्य को दुराग्रही बना देखा तो उन्होंने ने उसको शीघ्र ही कायोत्सर्गपूर्वक गच्छ से बाहिर कर दिया।

बाहर होकर यह भी स्वेच्छापूर्वक इधर उधर विहार करने लगे। विहार करते २ एक समय ये राजगृह नगर में आये। वहां वीरप्रभ नामक उद्यान में जो मणिप्रभ नामके यक्ष का भवन था उसमें उतरे। “दो क्रियाओंका अनुभव एक ही साथ होता है” इस प्रकारकी मान्यता की प्ररूपणा लोगों के समक्ष वहां करने लगे। मणिप्रभनामक यक्षने इनकी इस असत्प्ररूपणा से कुपित होकर उनको सचेत करने के लिये उनके ऊपर मुद्गर का प्रहार किया और कहने लगा—अरे तुम इस मत

काणवतीं छे अेषु मानवुं जेधं अे। भ्रातिवशं तेमां अेक काणपणुं प्रतीत थाय छे। आ प्रकारे सैंकडो युक्तिअेथी प्रज्ञापित थवा छतां पणु गंगाचार्ये पोतानो दुराग्रह छोडयो नहीं धनगुप्त आचार्ये ब्यारे गंगाचार्यने दुराग्रही अनेल जेया तो तेअेअे तेने तरत न कायोत्सर्ग पूर्वक गच्छनी अडार भूकी दीधा।

गच्छथी अडार थवा छतां पणु गंगाचार्य स्वेच्छापूर्वक अडीं तडीं विहार करवा लाग्या। विहार करतां करतां अेक सभये तेअे राजगृह नगरमां पधार्या। त्यां वीरप्रभ नामना उद्यानमां मणिप्रभ नामना अेक यक्षनुं लवन डतुं तेमां तेअे उतर्या। “अे क्रियाअेनो अनुभव अेक न साथे थाय छे” आ प्रकारनी पोतानी मान्यतानी प्ररूपणा दोडोनी समक्ष त्यां आगण करवा लाग्या। मणिप्रभ नामना यक्षे तेमनी आ असत् प्ररूपणथी बोधायमान अनी तेने येतववा भाटे तेना उपर मुद्गणनो प्रहार कर्यो अने कडेवा लाग्यो—



भगवता श्रीमहावीरस्वामिना 'क्रियाद्वयस्यानुभवो युगपन्नभवतीति समयस्य सूक्ष्मतया युगपदनुभवाभिमानो भ्रम एवेति देशितम् । किं तस्मादप्यधिकोऽसि ? यदेवं वदसि । तस्मात् परित्यजैनां कूटप्ररूपणाम्, अन्यथा त्वां मुद्गरेण नाशयिष्यामि । इत्यादि तदुक्तभयवाक्यैर्युक्तिवचनैश्च प्रबुद्धोऽसौ मिथ्यादुष्कृतं दत्त्वा गुरुसमीपं गत्वा प्रतिक्रमणं कृतवान् ॥

इति पञ्चमगङ्गनिहवदृष्टान्तः ॥ ५ ॥

की प्ररूपणा व्यर्थ क्यों कर रहे हो । महावीर प्रभुने यहां विराजकर इस बात की प्ररूपणा बहुत अच्छी स्पष्ट की है कि एक ही साथ क्रियाद्वय का अनुभव किसी भी जीव को नहीं होता है, जो ऐसा कहते हैं वे भ्रम में हैं, भ्रम का कारण समय की अतिसूक्ष्मता है फिर तुम व्यर्थ में बकवाद क्यों करते फिर रहे हो ? क्या तुम ज्ञान में उनसे भी अधिक हो जो ऐसा समझ रहे हो और कहते फिर रहे हो । इसलिये भलाई तुम्हारी इसी में है कि तुम इस कूट-झूठ-प्ररूपणा को छोड़ दो, नहीं तो मैं तुम्हारा इसी मुद्गर से विनाश कर दूंगा । इस प्रकार यक्षकथित इन भयप्रद वचनों से तथा युक्तियुक्त वचनों से प्रतिबुद्ध हो इन्होंने अपने दुराग्रह का परिहार करते हुए मिथ्यादुष्कृत देकर और गुरु के समीप पहुँच कर प्रतिक्रमण किया ।

॥ यह पांचवें गंगनिहवका दृष्टान्त हुआ ॥ ५ ॥

अरे ! तमे आ मतनी प्रइपण्णा व्यर्थं केम करी रह्या छे ? मडावीर प्रभुअे आंढीं पीराएने आ वातनी प्रइपण्णा धएणी सारी रीते समजवी छेके, अेक ज साथे जे कियाने अनुभव केअं पण्ण एवने थतो नथी,छतां जे आवुं कडे छे ते भ्रमभां पडेला छे. भ्रमनुं कारणु समयनी अति सूक्ष्मता छे. तो पछी तमे व्यर्थभां अकवाद केम करी रह्या छे ? शुं तमे ज्ञानभां प्रभुमडावीरथी पण्ण अधिक छे के तमे अेपुं समए जेठा छे अने लोकेने कडेता इरे छे ? आथी तमे आवी इर, एुठी प्रइपण्णाने छोडी हो तेमां ज तमारी ललाध छे नडीं तो हुं आ मुद्गगण्णी तमारो नाश करी नापीश. आ प्रकारनां अे यक्षनां भयप्रद वचनोथी तथा युक्ति युक्त वचनोथी प्रतिभोधित थया अने तेमण्णे पोताना दुराग्रहने परिहार करतां करतां माइं पाप निष्करण थाम्भो-मिच्छामि दुष्कडम् अे लधने गुरुनी पासे पडेअीने प्रतिक्रमणु कथुं.

॥ आ पांचमा गंगनिहवनुं दृष्टान्त पुइं थयुं. ॥ ५ ॥

अथ षष्ठनिह्वव रोहगुप्तदृष्टान्तः प्रोच्यते—

भगवतः श्रीमहावीरस्वामिनो निर्वाणसमयाच्चतुश्चत्वारिंशदधिकपञ्चशत ५४४ वर्षेषु व्यतीतेषु अन्तरञ्जिकानगर्यां बलश्रीनामनो नृप आसीत् । तत्रैकदा तस्यां नगर्यां बहिर्भूतगृहनामकोद्याने परिवारसहितः श्रीगुप्ताचार्यः समागतः । तस्य शिष्या रोहगुप्तनामाऽन्यत्र ग्रामे स्थित आसीत् । स गुरुवन्दनार्थमन्तरञ्जिका-यामागतः । तत्र नगर्यामेकः परिव्राजको विद्याबल्यगर्वसंयुतः समागतः । सच लोहपट्टिकाबद्धोदरः करे जम्बूशाखां दधानः सन् लोके विहरति । यदि लोकः पृच्छति—परिव्राजक ! किं प्रयोजनकमेतल्लोहपट्टिकया उदरे बन्धनम् ? किमर्थं च

छठवे षड्लूक (रोहगुप्त) निह्वव की कथा इस प्रकार है—

भगवान् महावीर स्वामी को मुक्ति गये ५४४ वर्ष पीछे अंतरंजिका नगरी में एक राजा हुआ, जिसका नाम बलश्री था । नगरी के बाहर एक भूतगृह नामका बगीचा था । उस में किसी समय शिष्यपरिवारसहित श्री गुप्ताचार्य महाराज पधारे । इनके एक शिष्य जिनका नाम रोहगुप्त मुनि था, वह उस समय किसी और दूसरे ग्राम में थे । जब इन्होंने गुरुमहाराज का आगमन अंतरंजिका नगरी में सुना तो वे उनको वंदना करने के लिये वहां आये । उसी समय वहां एक परिव्राजक भी कि जिसको अपनी विद्या का विशेष अभिमान था आया । उसने अपने पेट को लौह की पट्टी से जकड़ रखाथा, तथा हाथ में जामुन के वृक्ष की एक डाली लिये हुए था । जब लोग उससे यह पूछते कि कहो महाराज !

छठा षड्लूक (रोहगुप्त) निह्ववनी कथा का प्रकारनी छे—

भगवान् महावीर स्वामीना निर्वाण पाभ्ये ५४४ पांचसोने युमातीस वर्ष पछी अंतरंजिका नगरीमां अेक राज् थयो । जेनुं नाम अलश्री हुतुं । नगरीनी अहार अेक भूतगृह नामनो अगीथो हुतो । तेमां कौअ अेक समये शिष्यपरि वार सहित श्री गुप्ताचार्य महाराज पधायीं । तेमना शिष्यो पैकी अेक शिष्य जेमनुं नाम रोहगुप्त मुनी हुतुं तेओ ते समये कौअ अेक थीण् गाभमां हुता, न्यारे तेमणे गुरुमहाराजनुं अंतरंजिका नगरीमां आगमन सांअुयुं तो तेओ तेमने वंदना करवा माटे त्यां आव्या । अे वपते अेक परिव्राजक के जेने पोतानी विद्यानुं विशेष अभिमान हुतुं ते पण् आव्या हुता । तेमणे पोताना पेटने अेक लौहाना पटाथी आंधी राअेअ हुतुं । तथा तेमना हाथमां अंधुना वृक्षनी अेक डाल हुती । न्यारे लौके तेने अे पूछता के, कडो महाराज !

करे जम्बूशाखाधारणम् ? । तदाऽसौ प्रत्याह—मदीयमुदरं महाविद्यासंभारेण स्फुटितं भविष्यतीति मत्वा मया लौहपट्टकेन बद्धम् । जम्बूद्वीपे च मम प्रतिवादी कोपि नास्तीति सूचयितुं मया जम्बूशाखा हस्ते गृहीता । ततस्तेन परिव्राजकेन “नास्ति कश्चिन्मम प्रतिवादी” इत्युद्घोषणापूर्वकं पटहो वादितः । लोहपट्टवद्गोदृ-जम्बूवृक्षशाखायोगाच्च तस्य लोके “पोट्टशाल” इति नाम जातम् । ततो नगरीं प्रविष्टो रोहगुप्तः पटहध्वनिपूर्विकामुद्घोषणां श्रुतवान् ।

आपने अपने पेट को किस कारण से लौह के इस पट्टे से बांध रखा है ? तथा यह जामुनवृक्ष की शाखा भी हाथ में क्यों ले रखी है । उस समय यह कहता कि मेरे इस पेट में अनेक विद्याएँ भरी पड़ी हैं अतः उनके भार से यह पेट फट न जाय इसलिये इसको इस लौह के पट्टे से बांध रखा है, तथा “इस जंबूद्वीप में मेरा कोई भा प्रतिवादी नहीं रहा है” इस बात को सूचित करने के लिये यह जामुन के वृक्ष की डाली हाथ में ले रखी है । इसके बाद उस परिव्राजक ने उस नगर में पटहवादनपूर्वक ऐसी घोषणा की कि यहाँ पर भी मेरा कोई प्रतिवादी नहीं है । इस परिव्राजक का नाम पोट्टशाल था । इसका कारण भी यही था कि लौह के पट्टे से इसका पेट बंधा रहता था, तथा जंबूवृक्ष की शाखा इसके हाथ में रहा करती थी, इसलिये लोगों में यह पोट्टशाल इस नाम से विख्यात हुआ था । पोट्टशालकी इस घोषणा को नगरी में प्रवेश करते समय रोहगुप्त ने सुनी ।

आपे आपना पेटने ढोढाना पटाथी शा माटे आंधी राभ्युं छे ? तथा आ न्छुना वृक्षनी डाण ढाथमां शा माटे पकडी राभो छे ? त्थारे ते कडेता के भारा आ पेटमां अनेक विद्याओ लरेली छे. तेथी विद्याना लारथी आ पेट क्शटी न नय अेटला आतर तेने आ ढोढाना पटाथी आंधी राभेल छे. तथा “आ न्छुद्विपमां भारे कोछ प्रतिस्पर्धि रडेल नथी” आ वातने सूचित करवा माटे प्रतिक तरीके आ न्छुना वृक्षनी डाणी में ढाथमां धारण करेली छे, आ पछी ते परिव्राजके ते नगरमां मोटामोटा अवाज करी अेवी घोषणा करी के, “आ स्थणे पणु भारे कोछ प्रतिस्पर्धि नथी.” आ परिव्राजकतुं नाम पोट्टशाल इतुं. तेतुं कारण पणु अेज इतुं के ढोढाना पटाथी तेतुं पेट आंधेलुं रडेतुं इतुं, तथा न्छु वृक्षनी शाखा तेना ढाथमां रडेती इती. आ उपरथी ढोढेमां ते पोट्टशाल अे नामथी नष्णीते इतो. पोट्टशालनी आ घोषणा नगरमां प्रवेश करती वभते रोडगुप्ते सांभजी.

अथ रोहगुप्तो वदति-तेन परिव्राजकेन सह वादं करिष्यामीति । एवमुक्त्वा स गुह्यं श्रीगुप्ताचार्यमपृष्ट्वाऽपि तामुद्घोषणां पटहवादनं च निवर्तयति । गुरुसमीपं चागत्यालोचयता तेन घोषणानिवारणरूपो वृत्तान्तः कथितः । आचार्येणोक्तम्-त्वया युक्तं नाचरितम्, स हि परिव्राजको वादे त्वया पराजितोऽपि विद्यासु परमकौशलेन त्वामभिविष्यति । एताः सप्त विद्यास्तस्य स्फुरन्ति । १ वृश्चिकविद्या, २ सर्पविद्या, ३ मूषकविद्या, ४ मृगविद्या, ५ वाराहीविद्या, ६ काकविद्या, ७ पोताकी (शकुनिका) विद्या, च । एताभिर्विद्याभिः स परिव्राजकस्तत्रोपद्रवं

रोहगुप्तमुनि ने कहा कि मैं उस परिव्राजक के साथ वाद करूँगा । ऐसा कह कर उन्होंने ने अपने गुरु श्री गुप्ताचार्य से विना पूछे ही उस घोषणा एवं पटह के बजने को रोक दिया । पश्चात् गुरु महाराज के पास आकर उन्होंने ने इस बात की आलोचना करते समय “मैंने आपसे विना पूछे ही परिव्राजक पोद्दशाल की कृत्न घोषणा का निवारण कर दिया है” ऐसा कहा ।

आचार्य ने रोहगुप्त की बात सुनकर कहा-तुमने यह काम अच्छा नहीं किया । यद्यपि तुम उस परिव्राजक को वाद में पराजित कर दोगे तो भी वह विद्याओं में परम कुशल है इसलिये वह अपनी कुशलता से ही तुम्हारा पराभव कर देगा । उसके पास ये सात विद्याएँ हैं-वृश्चिकविद्या १, सर्पविद्या २, मूषकविद्या ३, मृगीविद्या ४, वाराहीविद्या ५, काकविद्या ६, और पोताकी (शकुनिका) विद्या ७, सो इन विद्याओं से वह परिव्राजक तुम्हारे ऊपर अनेक उपद्रव करेगा । गुरु महाराज की बात सुनकर

शैड्युप्त मुनिञ्चे कहुं के, “हुं आ परिव्राजकनी साथे वादविवाद करीश. अे प्रभाणे कहीने तेमणे पोताना गुरुने पूछया शिवाय अे घोषणा करनार तथा थाणी पीटनारने थोलावी दीघो. ते पछी गुरुमहाराजनी पासे आवीने तेमणे अे वातनी आलोचना करतां कहुं के, “में आपने पूछया वगर परिव्राजक पोद्दशालनी करेदी घोषणाने अंध करवी दीघी छे”

आचार्ये शैड्युप्तनी आ प्रभाणे वात सांभणीने कहुं के, “तमे आ कार्यं ठीक न क्युं”. कदाच तमे अे परिव्राजकने वादविवादमां पराजित करी देशे। तो पछु ते (मंत्र) विद्याओमां परम कुशल छे, अेटले ते पोतानी कुशलताथी अ तमोने डरावी देशे. तेनी पासे सात प्रकारनी विद्याओ छे. वृश्चिकविद्या१, सर्पविद्या२, मूषकविद्या३, मृगीविद्या४, वाराहीविद्या५, काकविद्या६, अने शकुनिकाविद्या७, आ विद्याओना प्रभावथी ते परिव्राजक तमारी उपर अनेक अतना त्रास वरतावशे”

करिष्यति । रोहगुप्तेनोक्तम्—यद्येवं तर्हि मम यथा वादे जयः स्यादुपद्रवश्च न कश्चिद् स्यात् तथा प्रसादः कार्यो भवद्भिः । ततो गुरुस्तस्मै मयूरी १, नकुली २, बिडाली ३, व्याघ्री ४, सिंही ५, उलूकी ६, उलावकप्रधाना च ७, एताःसप्तविधाः परिव्राजकपराजयकारिणीस्त्वं गृहाण । इति गुरुणाऽभिहिते रोहगुप्तेन ताः सर्वा विद्या गृहीताः । तदनन्तरं रजोहरणं चाभिमन्त्र्य तस्मै दत्त्वा गुरुः प्राह—यदि अन्यदपि किञ्चित् तत्प्रणीतक्षुद्रविद्याकृतमुपसर्गजातमुपतिष्ठते तदा तन्निवारणार्थमेतन्मस्तकोपरि भ्रामणीयम् । ततः सुरेन्द्रस्याप्यजेयो भविष्यसि, किमुत मनुष्यमात्रस्य तस्य ।

रोहगुप्त ने कहा—गुरु महाराज! आप ऐसा आशीर्वाद देवें कि जिससे वाद में मेरा विजय हो जाय और उस के द्वारा मेरे ऊपर कोई उपद्रव भी न हो सके । गुरुमहाराज ने उसकी बात सुनकर उनको मयूरी १, नकुली २, बिडाली ३, व्याघ्री ४, सिंही ५, उलूकी ६, एवं उलावकप्रधाना ७, ये सात विद्याएँ उनको दीं, और यह कहा कि ये विद्याएँ परिव्राजक को पराजित करेगी । रोहगुप्त ने ये सब विद्याएँ ग्रहण कर लीं । पश्चात् रजोहरण को अभिमंत्रित कर देते हुए गुरुमहाराज ने कहा कि—यदि कदाचित् कोई क्षुद्रविद्याकृत उपसर्ग तुम्हारे ऊपर वह करे तो तुम उस समय उसकी निवृत्ति के लिये इस रजोहरण को अपने मस्तक पर फेर लेना । उस समय यदि इन्द्र भी परास्त करना चाहेगा तो वह भी तुम्हें परास्त नहीं कर सकेगा, मनुष्यकी तो बात ही क्या है ।

शुरुमहाराजनी वात सांलणीने रोहगुप्ते कहुं—शुरुमहाराज! आप जेवो आशीर्वाद आपो के, जेनाथी वादविवादमां भारो निश्चय विजय थाय. अने तेने कारणे भारो उपर उपद्रवनेो केधं लय उलो न थाय. शुरुमहाराजे तेनी वात सांलणीने तेने मयूरी१, नकुली२, जिलाडीनी३, व्याघ्री४, सिंही५, धुव-डनी६, अने आजनी७, जेम सात प्रकारनी विद्याओ तेने शीजवी. अने कहुं के, आ विद्याओ ज परिव्राजकेने पराजित करशे. रोहगुप्ते जे सप्तगी विद्याओ अडषु करी लीधी. पछी रजेडरषुने मंत्रित करी आपतां शुरु महाराजे कहुं के, जे कदाय केधं क्षुद्र विद्यानेो उपसर्ग तभारा उपर ते करे तो तमे ते वपते तेना निवारषु भाटे आ रजेडरषुने तभारा मस्तक उपर डेरवजे. जेवे सभजे जे खुद धंद्र पषु तमोने परास्त करवा याडे तो पषु तमोने परास्त करी शकशे नडीं, त्यां मनुष्य मात्रनी तो वात जे क्यां ?



अथ रोहगुप्तो गुरुं वन्दित्वा राजसभां गतः । तत्रासौ वदति—वराकोऽयं परिव्राजकः किं जानाति, करोत्वयमेव यदृच्छया पूर्वपक्षम्, तमहं निराकरोमि । ततः परिव्राजकेन चिन्तितम्—अयमस्ति पूर्णविद्यावान्, केनापि प्रकारेण मया जेतुमशक्यः, अतोऽस्यैव संमतं पक्षं परिगृह्य वादं करोमि येनायं निराकर्तुं न शक्नुयात् । इत्येवं विचिन्त्य परिव्राजको वदति—इह जीवा अजीवाश्च द्वावेव राशी, तथैवोपलभ्यमानत्वात्, शुभाशुभवत्, इत्यादि ।

ततो रोहगुप्तस्तद्बुद्धिं पराभवितुमिमं स्वसिद्धान्तपक्षमपि निराकुर्वन् प्रत्याह—असिद्धोऽयं हेतुः, अन्यथोपलम्भात्, जीवा, अजीवा, नोजीवाश्चेति राशित्रयदर्शनात् ।

रोहगुप्त गुरु को वंदना कर राजसभा में पहुंचा । पहुंचते ही वहां उसने कहा—विचारा यह परिव्राजक क्या जानता है? इसलिये जो भी इसकी इच्छा हो उसके अनुसार यह पूर्वपक्ष खुशी से करे, मैं उसका उत्तरपक्षरूप में निराकरण करूंगा । रोहगुप्त की बात सुनकर परिव्राजक ने विचार किया हां मालूम पड़ता है कि यह पूर्णविद्यासंपन्न है, इसे जीतना मेरी शक्ति से बाहर की बात है, अतः इसके द्वारा संमतपक्ष ही ग्रहण कर इसके साथ वाद करना उचित होगा, ता कि यह उसे निराकृत नहीं कर सकेगा । इस प्रकार विचार कर परिव्राजक ने कहा—जीव एवं अजीव ये दो ही राशि हैं क्यों कि इसी तरह इनकी उपलब्धि होती है, जैसे शुभ और अशुभ । परिव्राजक के इस पक्ष को सुनकर रोहगुप्त ने उसे पराभवित करने के लिये इस स्वसिद्धान्त पक्ष का भी निराकरण करते हुए कहा कि नहीं तुम्हारा यह हेतु असिद्ध है, कारण कि दो राशि से भी

रोहगुप्त गुरुने वंदना नमस्कार करी राजसभामां पढोऽय्या. त्यां पढोऽय्यातां न तेमणे कहुं के, आ भियारे परिव्राजक शुं नणे छे? आ माटे ते पढेल करे अने तेनी ने छिछा थाय ते मुज्ज ते भुशीथी करे. हुं तेनुं सामा पक्ष (प्रतिस्पर्धि) तरीके निवारण करीश. रोहगुप्तनी आ वात सांलणीने परिव्राजक विचारमां पडयो के हां मालुम पडे छे के, नर आ केध पूणुं विद्या संपन्न छे.—तेने एतवे अे मारी शक्तिनी अहारनी वात छे. तो अेनी मारुत संमत पक्ष न अहण करी तेनी साथे वाद करवे न येअ छे. जेथी अे तेने निराकृत नही करी शके. आ प्रमाणे विचार करीने परिव्राजके कहुं के एव अने अएव अे जे राशी छे. केमके, आ रीतनीने तेनी उपलब्धि डोय छे, जेवाके शुभ अने अशुभ. परिव्राजकना आ कथनने सांलणीने रोहगुप्ते तेने डराववा माटे आ स्वसिद्धान्त पक्षनुं पणु निराकरण करतां कहुं के, ना, तमारो आ हेतु असिद्ध छे. कारण के, जे राशीथी



तत्र जीवा नारकर्तिर्यगादयः, अजीवास्तु परमाणुघटादयः, नोजीवास्तु गृहगोधिकादीनां छिन्नपुच्छादयः। ततो जीवाऽजीवनोजीवरूपास्त्रयो राशयः, तथैवोपलभ्यमानत्वात्, उत्तममध्यमाधमवत्, इत्यादियुक्तिभिः प्रश्नं निराकृत्य परिव्राजकः पराजितो रोहगुप्तेन।

ततोऽसौ वृश्चिकविद्यया रोहगुप्तविनाशार्थं वृश्चिकान् मुञ्चति, तदा रोहगुप्तस्तत्प्रतिपक्षभूतमयूरीविद्यया मयूरान् मुञ्चति। तैश्च वृश्चिकेषु निवारितेषु परिव्राजकः सर्पान् मुञ्चति। तदा तन्निवारणार्थं रोहगुप्तो नकुलान् विसृजति। एवं मूषिकाणां निवा-

अधिक की उपलब्धि होती है—१ जीव, २ अजीव एवं, ३ नोजीव, इस प्रकार तीन राशियों की उपलब्धि होने से इस हेतु में असिद्धता का समर्थन हो जाता है। नारक तीर्थच आदि जीव, परमाणु घट आदि अजीव, गृहगोधिका—विषमरा—छिपकली—आदि की कटी हुई पूंछ आदि नोजीव हैं। उत्तम, मध्यम एवं अधम की तरह ये तीन राशि हैं। इस प्रकार युक्तियों से अपने पक्ष का स्थापन करके रोहगुप्त ने परिव्राजक के पश्न का निराकरण कर उसे पराजित कर दिया। जब परिव्राजक पराजित हो चुका तो उसने रोहगुप्त को नष्ट करने के लिये वृश्चिकविद्या के प्रभाव से उसके ऊपर विच्छुओं को छोड़ा। रोहगुप्त ने उनकी प्रतिपक्षभूत मयूरी विद्या के प्रभाव से मयूरों को छोड़ा। मयूरों द्वारा वृश्चिकों का निवारण हो चुका तब परिव्राजक ने उस पर सर्पों को छोड़ा। रोहगुप्त ने उनके निवारण करने के लिये नकुलों को छोड़ा। इसी तरह मूषिकों को

पञ्च अधिकनी उपलब्धि होय छे, १ अजीव, २ अजीव अने ३ नोजीव. आ प्रकारे त्रयु राशीअोनी उपलब्धि होवाथी तमारा आ हेतुमां असिद्धतानुं समर्थन थछे नय छे. नारकीय, तीर्थच विगेरे अजीव, परमाणु, घट, आदि अजीव, गृहगोधिका, विषमरा—ढेढगरेणी विगेरेनी कथाअेदी पुंछडी वगेरे नोजीव छे. उत्तम, मध्यम अने अधमनी भाइक आ त्रयु राशीअे छे. आ प्रकारे युक्तिपूर्वक पोताना पक्षने मज्जभूत करी रोहगुप्ते परिव्राजकना प्रक्षतुं निराकरण करी तेने पराजित करी दीधे. परिव्राजक न्यारे हारी गये त्यारे तेहे रोहगुप्तने नाश करवा भाटे वृश्चिक विद्याना प्रलावथी तेनी उपर विंछीअे छोड्या. रोहगुप्ते तेनी सामे निवारण भाटे मयूरीविद्याना प्रलावथी मार छोड्या. मयूराअे लेगा थछे विंछी अलास कथां त्यारे परिव्राजक तेना उपर सर्पाने छोड्या. रोहगुप्ते तेना निवारण भाटे नोजीवाअेने छोड्या. आ

रणार्थं मार्जारान्, मृगाणां निवारणार्थं व्याघ्रान्, शूकराणां निवारणार्थं सिंहान्, काकानिवारणार्थं उलूकान्, पोताकीनां निवारणार्थं उलावकान् (इयेनान्) मुञ्चति । ततो गर्दभी मुक्ता । तां चागच्छन्तीं दृष्ट्वा रोहगुप्तेन रजोहरणं मस्तकोपरि भ्रामयित्वा तेनैव रजोहरणेन निवारिता सती सा गर्दभी परिव्राजकस्योपरि मूत्रपुरीषोत्सर्गं कृत्वा तिरोहिता जाता । ततः सभापतिना सभ्यैः समस्तलोकेन च निन्द्यमानोऽसौ परिव्राजको नगरान्निःसारितः ।

ततोऽसौ षडुलूकापरनामको रोहगुप्तः षोडशालं परिव्राजकं जित्वा गुरोः समीपमागत्य तं वन्दित्वा प्राह—भदन्त ! परिगृहीतराशिद्वयपक्षः स परिव्राजको

भगाने के लिये मार्जारों को, मृगों को भगाने के लिये व्याघ्रों को, शूकरो को भगाने के लिये सिंहों को, काकों को भगाने के लिये उल्लूकों को और पक्षियों को भगाने के लिये बाजोंको छोड़ा । पश्चात् गर्दभी को छोड़ा । गर्दभीको आती हुई देखकर रोहगुप्त ने मस्तक के ऊपर रजोहरण को फेरकर और उसी रजोहरण से उसे भगा दिया । गर्दभी पीछे लौट गई, और परिव्राजक के ऊपर ही मलमूत्र करके तिरोहित हो गई । सभापति, सभ्य तथा समस्त लोकोंने परिव्राजक की निंदा की और इसको नगर से बाहिर कर दिया ।

इस के बाद षडुलूक कि जिसका दूसरा नाम रोहगुप्त है षोडशाल परिव्राजक को पराजित कर अपने गुरु के पास आये । उनको वंदना की । फिर बोले—भदन्त ! परिव्राजक ने जीव अजीव इस प्रकार दो रशियों का

प्रमाणे उँदरनेो नाश करवा भाटे, भीलाडीओने, मृगलांनेो नाश करवा भाटे वाघने, सुवर (बुँड)नेो नाश करवा भाटे सिंहने, कागडाओनेो नाश करवा भाटे ध्रुवडोने अने अकलांनेो नाश करवा भाटे आञ्जने छोडया. छेले परित्राजके गधेडी छोडी. गधेडीने आवती जेध रौडगुप्ते भाथा उपर रजोहरणुने डेरुये. अने तेनाथी तेने मारी मारीने लगाडी दीधी. गधेडी पाछी डूरी. अने परित्राजकनी उपर मणमुत्र करीने अद्रश्य थध गध. सभापति डाञ्जर रडेला सभ्येओ तथा समस्त लोकैओ परित्राजकनी निंदा करी अने तेने नगरनी अडार काढी मुकये.

आ पछी षडुलूक के जेतुं भीनुं नाम रौडगुप्त छे ते षोडशाल परित्राजकने परालत करी पोताना गुरुनी पासे पडोअ्या. गुरुने वंदना नमस्कार करी पछी कहुं के, हे भदन्त ! परित्राजके लव अलव आ जे राशीओनेो

नृपसभामध्ये वादे मया पराजितः। मया तृतीयं नोजीवराशिं स्वीकृत्य, तत्र छिन्नं गृहगोधिकादीनां पुच्छमेव दृष्टान्ततया प्रदर्शितम्। एवं रोहगुप्तेनोक्ते सति गुरुः प्राह—वत्स ! सुष्ठु कृतं त्वया, यदासौ परिव्राजकः पराजितः, किं तु तत्रोत्तिष्ठता त्वया एतन्नोक्तम्—तृतीयो नोजीवराशिरित्ययं नास्त्यस्माकं सिद्धान्तः। जीवा-जीवलक्षणराशिद्वयस्यैवास्मत्सिद्धान्तेऽभिहितत्वात्। तस्मात् तत्र परिषन्मध्ये गत्वा कथय नायमस्माकं सिद्धान्तः, किं तु तस्य परिव्राजकस्याभिमानभङ्गार्थं मया तद्बुद्धिं परिभूय स उपशमं नीत इति। एवं गुरुणा बहुशः कथितोऽसौ रोहगुप्तः प्राह—

पक्ष उपस्थित किया, मैंने उसे राजसभा के बीच में जीव अजीव एवं नोजीव इस प्रकार तीन राशि का पक्ष स्थापित कर पराजित कर दिया है। नोजीव में मैंने गोधिका की छिन्नपुच्छ को दृष्टान्त कोटि में रखा है। जब रोहगुप्त ने गुरु महाराज को अपने विजय की इस प्रकार बात कह कर सुनाई तो गुरुमहाराज ने कहा—वत्स ! तुमने यह काम तो अच्छा किया जो परिव्राजक को परास्त कर दिया, परन्तु जब तुम वहां से उठे तब ऐसा क्यों नहीं कहा कि “नोजीवराशि” का हमारा सिद्धान्त नहीं है। जीव अजीव, ये दो राशि ही हमारे सिद्धान्त में अभिहित हैं। इसलिये अब तुम सभा में जाकर ऐसा कहो कि यह हमारा सिद्धान्त नहीं है किन्तु उस परिव्राजक के मान को भंग करने के अभिप्राय से उसकी बुद्धि को तिरस्कृत करने के निमित्त मैंने ऐसा किया है, कि जिससे वह शांत हो जाय। इस प्रकार गुरु महाराज ने उसको बहुत २ समझाया

पक्ष उपस्थित कथ्ये—मे' तेने राजसभानी वयमां लव, अलव अने नोलव आ प्रकारनी त्रषु राशिनी सुदो स्थापी परालत करी दीधा छे. नोलवमां मे' गरोणीनी कपायेली पुंछडीने दृष्टांत रूपे अतावी छे. न्यारे रोहगुप्ते गुरुम-डाराजने पोताना विजयनी आ प्रकारनी बात कही संलणावी त्यारे गुरु महाराजे कहुं के, डे वत्स ! तमे अे काम तो साइं कथुं के, परिव्राजकने डराव्यो. परंतु तमे न्यारे त्यांथी लतीने उठ्या त्यारे अेपुं केम न कहुं के “नोलव राशि” अमारा सिद्धांतमां नथी. इक्त लव अने अलव आ जेज राशि अमारा सिद्धांतमां अतावेली छे. माटे तमे सभामां जधने इरीथी अेम कडेा के, आ अमारा सिद्धांतमां नथी. परंतु अे परिव्राजकना माननुं अंडन करवाना आशयथी तेमज तेना उडापणुने तोडी पाडवाना आशयथी ज मे' आम कडेल छे के, जेथी ते ठंडो थछंनय. आ प्रकारे करवा गुरुमहाराजे तेने धलुं धलुं समजव्युं छतां पषु तेम करवा तेओ तैयार न थया. अने गुरु

भदन्त ! कथमयं विरुद्धसिद्धान्तः ?, यदि नोजीवलक्षणतृतीयराशिस्वीकारे कोऽपि दोषः स्यात् तदाऽयं विरुद्धसिद्धान्तः स्यात्, न चैतदस्ति, तर्हि कथमपि विरुद्ध-सिद्धान्तवादित्वमारोप्य दोषपरिहारार्थं पुनर्मां तत्र भवान् प्रेषयति । गुरुः प्राह—असतः प्ररूपणे जिनानामाशातना भवति, तस्मादेवं न वाच्यम्, एवं गुरुणा वार्य-माणोऽपि स्वाग्रहं न त्यक्तवान्, गुरुणा सह वादं कर्तुं प्रवृत्तः ।

तदनन्तरं श्रीगुप्ताचार्यो बलश्रीनृपस्य पर्षदि गत्वा प्राह—अनेन मम शिष्येण परिव्राजकस्य पुरतो यदुक्तं तन्न समीचीनम्, यतः द्वावेव राशी विद्येते—जीवा

तौ भी वह नहीं माना, और गुरु महाराज से कहने लगा—भदन्त ! यह सिद्धान्त विरुद्ध कैसे है ? यदि नोजीवरूप तृतीय राशि स्वीकार करने में कोई दोष आता होवे तब तो यह सिद्धान्त से विरुद्ध माना जा सकता है, परन्तु ऐसा तो है नहीं तो फिर आप मुझपर सिद्धान्तविरुद्धवादित्व का आरोप कर क्यों मुझे वहां भेजना चाहते हैं। गुरु महाराजने रोहगुप्त की बात सुनकर कहा—देखो असत् की प्ररूपणा करने में जिन भगवान् की आशातना होती है, इसलिये ऐसा नहीं कहना चाहिये। इस प्रकार गुरु महाराज के द्वारा वारित होने पर भी रोहगुप्त ने अपने आग्रह का परित्याग तो नहीं किया प्रत्युत गुरुमहाराज के साथ भी वाद करने के लिये प्रवृत्त हो गया।

इसके बाद स्वयं श्री गुप्ताचार्य बलश्री राजा की राजसभा में गये और जाकर कहने लगे कि इस मेरे शिष्य ने परिव्राजक के आगे जो कहा है कि एक तीसरी भी नोजीवराशि है वह उसने ठीक नहीं कहा है, क्यों कि

महाराजने उपरथी कहेवा लाग्या के, भदन्त ! माइं आ कथन सिद्धांत विरुद्ध कथं रीते छे ? जे नोऽपि लक्षणनी त्रीण राशीने स्वीकार करवाभां केछि दोष आवतो छोय तो तो जे सिद्धांतथी विरुद्धतुं मानी शक्य. परंतु जेवुं तो छे नही. तो पछी आप मारा पर सिद्धांत विरुद्ध वात करवाने आरोप मुकी अने त्यां भोडलवा शा माटे द्वाणु करे छे ? गुर् महाराजे रोहगुप्तनी वात सांभलीने कहुं. “जुओ ! असत्यनी प्ररूपणा करवाभां लन भगवाननी आशातना थाय छे माटे जेम न करवुं जेछिजे.” आ प्रकारे गुरु महाराजना वारंवार कहेवा छतां पणु रोहगुप्ते पोताना डठाग्रहने छोउये नही अने गुरुनी साथे वाद करवा पणु तत्पर थछं गया.

जे पछी श्री गुप्ताचार्य जते बलश्री राजनी राजसभां गया अने त्यां जेछं ने जेने कहेवा लाग्या के, मारा शिष्य रोहगुप्ते परिव्राजकनी साथे जेवुं कहुं छे के, जेक त्रीण पणु नोऽपि राशी छे. तो ते तेणु सायुं कहुं नथी.

अजीवाश्चेति जिनेः कथितम्, अनेन तु परिव्राजकं विजेतुं राशित्रयं प्ररूपितम् । अद्याप्ययं सत्यमर्थं न जानाति, मया प्रतिबोध्यमानोऽयं विवादायोपतिष्ठते । भो राजन् ! तस्मादावयोर्वादमाकर्णय, भवादृशैर्विना सदसद्विवेको न स्यात् । ततो बलश्रीनृपतिनाऽभ्यनुज्ञातः श्रीगुप्ताचार्यस्तत्र रोहगुप्तमाह—ब्रूहि स्वमतम् । तदा रोहगुप्तो वदति—यथा जीवादजीवो भिन्नः, तथा नोजीवोऽपि जीवाजीवाभ्यां भिन्नः, तस्माद् ‘ जीवाजीवनोजीवरूपं राशित्रयमस्ति ’ इति मम मतम् । यतो

जीव अजीव इस प्रकार से दो ही राशि हैं, ऐसा ही जिनेन्द्र भगवान ने कहा है । परिव्राजक को जीतने के लिये ही सिर्फ शिष्य ने ऐसी प्ररूपणा की है कि राशित्रय है । इसे मैंने बहुत कुछ समझाया है परन्तु वह नहीं मानता है । मुझ से भी वादविवाद करने के लिये तैयार हो जाता है । इसलिये हे राजन् ! आप हम दोनों के बीच में मध्यस्थ बन जायें और वाद को सुनें । आप जैसों के विना सत् असत् का विवेक नहीं हो सकता है । श्री गुप्ताचार्य की बात बलश्री राजा ने स्वीकार कर ली और मध्यस्थ बनकर गुरुशिष्य के वाद को सुनने लगे । श्री गुप्ताचार्य ने रोहगुप्त से कहा—कहो तुम्हारा क्या मत है ।

रोहगुप्त ने कहा—जिस प्रकार जीव से भिन्न अजीव है, उसी तरह नोजीव भी जीव और अजीव इन दोनों से भिन्न है इसलिये जीव, अजीव नोजीव ये तीन राशियां हैं । ऐसा मेरा मत है । नोजीव में नो

केभङ्के, एव अने अएव अे प्रकारनी जे न राशी, छे अेवुं एुह एनेन्द्रलगवाने लाज्युं छे. इकत परिव्राजकने एतवा भाटे न भारा शिष्ये अेवी प्ररूपणा करी छे के राशी त्रषु छे. तेने भे धण्णे न समज्जये। परंतु ते मानते नथी. भारी साथे पणु वादविवाद करवा भाटे तैयार थर्ध जय छे. आटला भाटे छे राजन् ! आप अभारा अन्नेनी वयमां लवाद अने अभारा वादविवादाने सांलणे। आप जेवा मध्यस्थ वगर सत्य अने असत्यने लेदभाव केर्ध पारभी शकशे नडीं. श्री गुप्ताचार्यनी आ भागणी अलश्री राजअे स्वीकारी लीधी, अने मध्यस्थी अनीने गुरु अने शिष्यना वादविवादाने सांलणवा लाग्या. श्री गुप्ताचार्ये रोहगुप्तने पूछ्युं, “कडे तभारे शे मत छे ?”

रोहगुप्ते कहुं—जे प्रभाण्णे एवथी अएव लिन्न छे, अेव रीते ‘नोएव’ पणु एव अने अएव आ अन्नेथी लिन्न छे. आथी करीने एव, अएव अने नोएव अेभ त्रषु राशी छे, अेवो भारे मत छे. ‘नोएव’ शब्दमां ‘नो’ अे



નોજીવ इत्यत्र शब्दो देशनिषेधपरः न तु सर्वनिषेधपरः, नोजीवो जीवैकदेशः न तु सर्वस्यापि जीवस्याभावः । छिन्नं गृहगोधिकादिपुच्छं, पुरुषादीनां छिन्ना हस्ता-  
दयश्च जीवद्रव्यैकदेशरूपाः सन्ति । छिन्नं गृहगोधिकादिपुच्छं जीवाऽजीवभ्यो  
भिन्नं, तथाहि—तज्जीवत्वेन व्यपदेष्टुं न शक्यते, तत्कायस्यैकदेशत्वेन तद्भिन्न-  
त्वात्, अजीव इत्यपि वक्तुं न शक्यते स्फुरणादिभिस्तस्मादपि विलक्षणत्वात् ।  
यस्मादेवम्, अतः पारिशेष्यान्नोजीव इत्युच्यते ।

यह शब्द देशनिषेधपरक है, सर्वनिषेधपरक नहीं। नोजीव शब्द का अर्थ इस विवक्षा से “ जीव का एक देश ” ऐसा होता है। समस्त जीव का अभाव नोजीव का अर्थ नहीं होता है। छिपकली आदि की छिन्न पुच्छ, पुरुष आदि के कटे हुए हस्त आदि, ये सब नोजीव हैं, क्योंकि इनमें जीव का एक देश है। छिपकली की छिन्न-पूँछ जीव और अजीव से भिन्न है इसका कारण यह है कि यह समस्त जीवरूप से व्यपदेशित नहीं हो सकती है, क्योंकि वह उसके शरीर का एकदेश है, इसलिये वह उससे भिन्न है। अजीव भी उसे इसलिये नहीं कह सकते हैं कि उसमें स्फुरण आदि क्रियाएँ होती दिखती हैं, इसलिये वह उससे भी भिन्न है। जब यह बात है कि वह पूर्ण जीव नहीं और अजीव भी नहीं तो इन दोनों से अवशिष्ट होने के कारण वह नोजीव है, ऐसा कहा जाता है।

શબ્દ દેશનિષેધપરક છે. સર્વનિષેધપરક નથી. નોજીવ શબ્દનો અર્થ આ અભિપ્રાયે “ જીવનો એક દેશ ” એ પ્રમાણે થાય છે. નોજીવનો અર્થ સમસ્ત જીવનો અભાવ એમ થતો નથી. ગરોળી વિગેરેની તુટેલી પૂંછડી મનુષ્ય આદિના કપાયેલા હાથ, એ સઘળા નોજીવ છે. કારણ કે તેમાં જીવનો એક દેશ છે. ગરોળીની કપાયેલી પૂંછડી એ જીવ અને અજીવથી ભિન્ન છે. તેનું કારણ એ છે કે તે સમસ્ત જીવરૂપે કહી શકાતી નથી. કારણ કે તે એના શરીરનો એક ભાગ છે, આથી તે એનાથી ભિન્ન છે. અજીવ પણ તેને એટલા ખાતર કહી ન શકાય કારણ કે, તેમાં સ્ફુરણ (તરફડાટ) વિગેરે ક્રિયાઓ થતી દેખાય છે. માટે જ તે તેનાથી (અજીવથી) પણ ભિન્ન છે. હવે બ્યારે વાત આમ છે કે તે પૂર્ણ જીવ પણ નથી અને અજીવ પણ નથી તો એ બન્નેથી ભિન્ન હોવાને કારણે તે ‘નોજીવ’ છે એવું કહી શકાય છે.



किञ्च—धर्मास्तिकायादिदेशिनोऽपृथग्भूतोऽपि देशः सिद्धान्ते पृथग् वस्तु-  
त्वेन कथितः, किं पुनर्यच्छिन्नं जीवात् पृथक् कृतं गृहगोधिकादिपुच्छं पृथग् वस्तु  
न भविष्यति, अपि तु भविष्यत्येव । तच्च छिन्नत्वेन पृथग्भूतत्वात्, स्फुरणादिना  
च अजीवविलक्षणत्वात्, सामर्थ्यान्नोजीव इत्युच्यते । अजीवरूपणां कुर्वता  
भगवता धर्मास्तिकायादीनाममूर्ताजीवानां दशविधत्वमुक्तम् ।

“अजीवा दुविहा पणत्ता । तं जहा—रूवि—अजीवा य, अरूवि—अजीवा य ।  
रूवि—अजीवा चउन्विहा पणत्ता । तं जहा—खंधा, देसा, पएसा, परमाणुपोग्गला ।  
अरूवि—अजीवा दसविहा पनत्ता । तं जहा—धम्मत्थिकाए, धम्मत्थिकायस्स देसे  
धम्मत्थिकायस्स पएसे, एवं अधम्मत्थिकाए वि, आगासत्थिकाए वि, अद्दासमए ॥”

और भी—जब धर्मास्तिकायादिक देशी के अपृथग्भूत भी देश  
सिद्धान्त में पृथक् वस्तुरूप से कहे गये हैं तो क्या जीव से पृथक् हुई  
छिपकली की पूंछ पृथक् वस्तु नहीं कही जा सकती है । छिन्न होने से वह  
सम्पूर्ण जीव से जुड़ी है, तथा स्फुरण आदि क्रियाविशिष्ट होने से वह  
अजीवसे भिन्न है । इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि वह नोजीव है ।  
अजीव की प्ररूपणा करते समय भगवाने धर्मास्तिकायादिक अमूर्त  
अजीवों को दश प्रकार का कहा है—

“अजीवा दुविहा पणत्ता—तं जहा रूवि—अजीवा य अरूवि—अजीवा य  
रूवि—अजीवा चउन्विहा पणत्ता—तं जहा—खंधा देसा पएसा  
परमाणुपोग्गला । अरूवि—अजीवा दसविहा पणत्ता तं जहा—धम्मत्थि-  
काए, धम्मत्थिकायस्स देसे, धम्मत्थिकायस्स पएसे, एवं अधम्मत्थिकाए  
वि आगासत्थिकाए वि अद्दासमये ।”

न्याये धर्मास्तिकायादिक देशना अपृथग्भूत ( छुटी न पडेली ) देश पण  
सिद्धांतमां पृथक् वस्तु स्वइपथी कडेवायेल छे तो शुं लवथी छुटी पडेली  
गरोणीनी पूंछडी पृथक् वस्तु न कडेवाय ? अलग थवाथी ते संपूर्ण लवथी  
नुही छे तथा स्फुरण आदि क्रिया विशिष्ट होवाथी ते अलवथी पणु भिन्न छे  
अथी अे वात सिद्ध थाय छे के ते ‘नोलव’ छे. अलवनी प्रइपणु करती  
वपते भगवाने धर्मास्तिकायादिक अमूर्त अलवने दश प्रकारना कहा छे.—

“अजीवा दुविहा पणत्ता—तं जहा रूवि अजीवा य, अरूवि अजीवा य, रूवि  
अजीवा, चउन्विहा पणत्ता—तं जहा—खंधा देसा पएसा परमाणु पोग्गला । अरूवि  
अजीवा दसविहा पणत्ता—तं जहा—धम्मत्थिकाए, धम्मत्थिकायस्स देसे,  
धम्मत्थिकायस्स पएसे, एवं अधम्मत्थिकाए वि आगासत्थिकाए वि अद्दासमए ॥”

छाया—“अजीवा द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-रूप्यजीवाश्च, अरूप्यजीवाश्च । रूप्यजीवाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-स्कन्धाः, देशाः, प्रदेशाः, परमाणुपुद्गलाः । अरूप्यजीवा दशविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-धर्मास्तिकायः, धर्मास्तिकायस्य देशः, धर्मास्तिकायस्य प्रदेशः, एवमधर्मास्तिकायोऽपि, आकाशास्तिकायोऽपि, अद्वासमयः । तदेवं धर्मास्तिकायादीनां दशविधत्वकथनेन तद्देशस्य पृथग् वस्तुत्वमुक्तम्, अन्यथा दशविधत्वानुपपत्तेः । यदि धर्मास्तिकायादीनां देशस्तेभ्योऽपृथग् भूतोऽपि पृथग् वस्तुच्यते, तर्हि गृहगोधिकादीनां छिन्नं पुच्छादिकं छिन्नत्वेन जीवात् पृथग्भूतं सुतरा पृथग् वस्तु भवितुमर्हति । तच्च जीवाजीवविलक्षणत्वान्नो जीव इत्युच्यते ।

छाया—अजीवा द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-रूप्यजीवाश्च अरूप्यजीवाश्च । रूप्यजीवाश्चतुर्विधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-स्कन्धाः देशाः, प्रदेशाः, परमाणु-पुद्गलाः । अरूप्यजीवा दशविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-धर्मास्तिकायः, धर्मा-स्तिकायस्य देशः धर्मास्तिकायस्य प्रदेशः, एवमधर्मास्तिकायोऽपि, आका-शास्तिकायोऽपि, अद्वासमयः ” ॥

इस प्रकार इस पाठ में धर्मास्तिकायादिकों की दशविधप्ररूपणा से उसके देश को पृथक् वस्तुरूप से प्रतिपादित किया गया है । नहीं तो जो इस प्रकार का कथन न माना जाय तो दश प्रकार की प्ररूपणा ही संपन्न नहीं होती है । धर्मास्तिकायादिकों का देश उनसे अपृथक्भूत है फिर भी वह जैसे उनसे पृथक्भूत मानकर वस्तुस्वरूप माना जाता है, इसी तरह गृहगोधिका आदि के छिन्नपुच्छादिक अवयव भी छिन्न होने से

छाया—अजीवा द्विविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा, रूप्यजीवाश्च अरूप्यजीवाश्च । रूप्यजीवाश्चतुर्विधा प्रज्ञप्ताः तद्यथा—स्कन्धाः देशाः प्रदेशाः परमाणुपुद्गलाः ! अरूप्यजीवा दशविधाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा धर्मास्तिकायः, धर्मास्तिकायस्य देशः, धर्मास्तिकायस्य प्रदेशः, एवम्—अधर्मास्तिकायोऽपि, आकाशास्तिकायोऽपि, अद्वासमयः ” ॥

आ प्रकारे आ पाठमां धर्मास्तिकायादिकेना इह प्रकारे प्ररूपणायां तेना देशेने पृथक् वस्तु स्वरूपेण प्रतिपादित करवायां आवेद छे. जे आ प्रकारतुं कथन न मानवायां आवे तो इह प्रकारनी प्ररूपणा न संपन्न थती नथी. धर्मास्तिकायादिकेना देश तेनाथी अपृथक्भूत (अलिन्न) छे. छतां पण ते जेभ तेनाथी पृथक्भूत (लिन्न) वस्तु स्वरूप मानवायां आवे छे तेवी रीते गराणी विगेरेनी तुठेदी पूंछडी वगेरे अवयवो पण एवथी लिन्न थतां ते ओक पृथक्

अपि च—समभिरूढनयानुसारेण जीवप्रदेशो नोजीवो भवितुमर्हति, अतः सिद्धान्तेऽपि नोजीवोऽस्तीति मन्यते । अनुयोगद्वारसूत्रे हि—प्रमाणद्वारान्तर्गतं नयप्रमाणं विचारयता भगवता प्रोक्तम्—

“ समभिरूढो सदनयं भणइ—जइ कम्मधारएण भणसि तो एवं भणाहि—जीवे य से पएसे य, से पएसे नोजीवे ” इति ।

छाया—समभिरूढः शब्दनयं भणति—यदि कर्मधारयेण भणसि, तर्हि एवं भण—जीवश्च स प्रदेशश्च, स प्रदेशो नोजीवः । इति ॥

तदनेन प्रदेशलक्षणो जीवैकदेशो नोजीव उक्तः । यथा घटैकदेशो नोघट इति ।

जीव से पृथक् होते हुए अवश्य पृथक् वस्तु हैं, ऐसा मानने में क्या विरोध हो सकता है। अतः वह जीव और अजीव इनसे विलक्षण होने से “नोजीव है” ऐसा कहा जाता है ।

और भी—समभिरूढनय की अपेक्षा से जीवप्रदेश नोजीव ही होना चाहिये तभी तो सिद्धान्त में “नोजीव है” ऐसा माना गया है। अनुयोगद्वारसूत्र में प्रमाणद्वारान्तर्गत नयप्रमाण का विचार करते समय भगवान् ने कहा है—

“ समभिरूढो सदनयं भणइ, जइ कम्मधारएण भणसि तो एवं भणाहि—जीवे य से पएसे य, से पएसे नोजीवे ” इति छाया—समभिरूढः शब्दनयं भणति, यदि कर्मधारयेण भणसि, तर्हि एवं भण—जीवश्च स प्रदेशश्च, स प्रदेशो नोजीवः । इति ।

इस पाठ से यह कहा गया है कि प्रदेशलक्षण जीव का एक देश नोजीव है । जिस प्रकार घट का एक देश नोघट है । इस प्रकार

वस्तु છે. એવું માનવામાં કયો વિરોધ હોઈ શકે ? આથી તે જીવ અને અજીવથી કાંઈક જુદું જ હોવાથી “નોજીવ છે” એવું કહી શકાય. તે ઉપરાંત સમભિરૂઢનયની અપેક્ષાએ તો જીવપ્રદેશ નોજીવ જ હોવો જોઈએ. માટે સિદ્ધાંતમાં “નોજીવ છે.” એવું માનવામાં આવે છે. અનુયોગદ્વારસૂત્રમાં પ્રમાણદ્વારા અન્તર્ગત નયપ્રમાણનો વિચાર કરતી વખતે ભગવાને કહ્યું છે !

“ સમભિરૂઢો સદનયં ભણइ—જइ કમ્મધારણ ભણસિ તો એવં ભણાહિ જીવે ય સે પએસે ય, સે પએસે નો જીવે ” ઇતિ ।

છાયા—સમભિરૂઢઃ શબ્દનયં ભણતિ યદિ કર્મધારયેણ ભણસિ, તર્હિ એવં ભણ જીવશ્ચ સ પ્રદેશશ્ચ, સ પ્રદેશો નોજીવઃ ઇતિ ॥

આ પાઠથી એમ કહેવામાં આવેલ છે કે, પ્રદેશ લક્ષણ જીવનો એક દેશ નોજીવ છે. જેવી રીતે ઘટનો એક દેશ નોઘટ છે. આ રીતે યુક્તિ પૂર્વક

તસ્માદસ્તિ નોજીવલક્ષણસ્તૃતીયરાશિઃ, યુક્તયાઽઽગમસિદ્ધત્વાત્, જાવાજીવાદિત-  
ત્ત્વત્ । ઇતિ રોહગુપ્તસ્ય પૂર્વપક્ષઃ ।

રોહગુપ્તેનૈવમુક્તે સતિ શ્રીગુપ્તાચાર્યઃ પ્રાહ—

યદિ સત્યમેવ તવ સૂત્રં પ્રમાણં તર્હિ તેષુ તેષુ સૂત્રેષુ જીવાજીવરૂપૌ દ્વાબેવ રાશી  
પ્રોક્તૌ । તથા ચ—સ્થાનાંગસૂત્રે—

દુવે રાશી પળ્ણત્તા । તં જહા—જીવા ચેવ અજીવા ચેવ ।

છાયા—દ્વૌ રાશી પ્રજ્ઞપ્તૌ । તદ્વથા—જીવાશ્ચૈવ અજીવાશ્ચૈવ ।

તથાઽનુયોગદ્વારસૂત્રેઽપ્યુક્તમ્—

કઙ્ઘિહા ણં મંતે દ્વવા પળ્ણત્તા ? ગોયમા ! દુવિહા પળ્ણત્તા । તં જહા—જીવ-  
દ્વવા ય અજીવદ્વવા ય ।

યુક્તિ ઓર આગમ સે સિદ્ધ હોને કે કારણ નોજીવસ્વરૂપ એક તૃતીય  
રાશિ મી હૈ । જૈસે જીવ ઓર અજીવ યે દો રાશિયાં સ્વતન્ત્ર હૈં ઉસી  
પ્રકાર યહ રાશિ મી સ્વતન્ત્ર હૈ । ઇસ પ્રકાર રોહગુપ્ત ને અપને પૂર્વપક્ષ  
કા સ્થાપન કર ઉસકા યુક્તિ ઓર આગમ સે સમર્થન કિયા ।

શ્રીગુપ્તાચાર્ય ને રોહગુપ્ત કે ઇસ પૂર્વપક્ષ કો સુનકર કહા કિ-  
ઘદિ તુમ કો સૂત્ર પ્રમાણ હૈં તો દેખો ઉન્હીં સૂત્રો મેં જગહ ૨ યહી પ્રરૂ-  
પણા મિલતી હૈ કિ જીવ ઓર અજીવ યે દો હી રાશિયાં હૈં । સ્થાનાંગ-  
સૂત્ર મેં એસા હી કહા હૈ—“દુવે રાશી પળ્ણત્તે—તં જહા જીવા ચેવ અજીવા  
ચેવ ” । છાયા—દ્વૌ રાશી પ્રજ્ઞપ્તૌ । તદ્વથા—જીવાશ્ચૈવ અજીવાશ્ચૈવ । તથા  
અનુયોગદ્વારસૂત્ર મેં મી એસા હી કહા હૈ—“કઙ્ઘિહાણં મંતે દ્વવા  
પળ્ણત્તા ? ગોયમા ! દુવિહા પળ્ણત્તા । તં જહા જીવદ્વવા ય અજીવદ્વવા ય ”

અને આગમથી સિદ્ધ હોવાનું ‘પૂરવાર કથું’ કે નોલવ સ્વરૂપ એ એક ત્રીણ રાશી  
પણ છે. જેમ લવ અને અલવ એ બે રાશી સ્વતંત્ર છે તેજ પ્રકારે આ રાશી  
પણ સ્વતંત્ર છે. આ પ્રકારે રોહગુપ્તે પોતાના નવા સિદ્ધાંતનું પ્રતિપાદન કરી  
તેનું યુક્તિપૂર્વક અને આગમમાં પ્રમાણભૂત છે એવું સમર્થન કર્યું.

શ્રી ગુપ્તાચાર્યે રોહગુપ્તના આ પૂર્વપક્ષને સાંભળીને કહ્યું કે, જે તમને  
સૂત્ર પ્રમાણભૂત લાગતું હોય તો, બુઓ ! એજ સૂત્રોમાં ઠેક ઠેકાણે એજ  
પ્રરૂપણા મળી આવે છે કે, લવ અને અલવ એ બેજ રાશી છે. સ્થાનાંગ-  
સૂત્રમાં એવુંજ કહ્યું છે.—“ દુવે રાશી પળ્ણત્તે—તં જહા જીવા ચેવ અજીવા ચેવ ”  
છાયા—“ દ્વૌ રાશિ પ્રજ્ઞપ્તૌ ! તદ્વથા—જીવાશ્ચૈવ અજીવાશ્ચૈવ ” તથા અનુયોગ-  
દ્વાર સૂત્રમાં પણ એમ જ કહ્યું છે—“ કઙ્ઘિહાણં મંતે દ્વવા પળ્ણત્તા ? ગોયમા !  
દુવિહા પળ્ણત્તા તં જહા જીવદ્વવા ય અજીવ દ્વવા ય । ” છાયા—કતિવિધાનિ સ્વલુ

छाया—कतिविधानि खलु भदन्त ! द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! द्विविधानि प्रज्ञप्तानि । तद्यथा—जीवद्रव्याणि च, अजीवद्रव्याणि च ।

तथोत्तराध्ययनसूत्रे चाभिहितम्—

“ जीवा चेव अजीवा य एस लोए वियाहिए ॥ ”

छाया—जीवाश्चैव अजीवाश्च एष लोको व्याख्यातः ॥

अन्येष्वपि सूत्रेषु तथा बहुशः प्ररूपितम् । नोजीवराशिस्तु तृतीयः सूत्रे क्वचिदपि नोक्तः, अतस्तत्प्ररूपणा कथं न श्रुताऽऽशातना स्यादिति ।

धर्मास्तिकायादीनां देशस्य पृथक्वस्तुत्वं वस्तुतो नास्ति, किंतु विवक्षामात्रेणैव तस्य भिन्नवस्तुत्वकथनमिति । एवं छिन्नपुच्छादिकमपि गृहगोधिकादिजीवादयो नास्ति, तत्सम्बन्धसद्भावात् । अतो जीव एव तत् छिन्नपुच्छादिकं, न तु

छाया—कतिविधानि खलु भदन्त ! द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! द्विविधानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—जीवद्रव्याणि च अजीवद्रव्याणि च । उत्तराध्ययनसूत्रमें भी ऐसा ही पाठ है—“ जीवा चेव अजीवा य एस लोए वियाहिए ” छाया—जीवाश्चैव अजीवाश्च एष लोको व्याख्यातः । इसी तरह अन्य सूत्रों में भी अनेक जगह इसी तरह के पाठ उल्लिखित हैं । नोजीवराशि तृतीय है, यह बात तो किसी भी सूत्र में प्ररूपित करने में नहीं आई है । इसलिये इस प्रकार की प्ररूपणा श्रुत की आशातनास्वरूप ही जानना चाहिये । यथार्थ में धर्मास्तिकायादिकों के देश में पृथक्वस्तुता है ही नहीं, किन्तु विवक्षामात्र से ही देश पृथक्वस्तुरूप में कहा गया है, अतः यह मानना चाहिये कि जिस प्रकार धर्मास्तिकायादिकों के देश यथार्थरूप में पृथक्वस्तुस्वरूप नहीं है, उसी प्रकार छिपकली आदि के छिन्न

भदन्त ! द्रव्याणि प्रज्ञप्तानि । तद्यथा—जीव द्रव्याणि च अजीवद्रव्याणि च । उत्तराध्ययन सूत्रमां पणुं अवे। न पाठ छे डे—“ जीवाचेव अजीवा य एस लोए वियाहिए ” छाया—जीवाश्चैव अजीवाश्च ! एष लोको व्याख्यातः आन प्रकारना भीन सूत्रेमां पणुं अनेक नव्याये आ प्रकारना पाठने उद्वेप छे. नोएव अे त्रीए राशी छे अे वात तो डेअ पणु सूत्रमां प्ररूपित करवामां आवी नथी. माटे आ प्रकारनी प्ररूपणु आगण सूत्रेनी आशातना रूपे न मानवी न्नेअे. यथार्थमां धर्मास्तिकाय विगेरेना देशमां पृथक् वस्तुपणुं छे न नडीं पणु अलिप्राय मात्रथीन देश पृथक् वस्तु रूपमां कडेवामां आवेल छे. आथी अेम मानवुं न्नेअे के, ने प्रकारे धर्मास्तिकाय विगेरेना देश यथार्थ रूपमां पृथक् वस्तु स्वरूप नथी. अेन प्रमाणे गरेणी विगेरेनी कपायेती पूंछडी



नोजीवः । तथाहि—गृहगोधिकादीनां पुच्छादिके छिन्नेऽपि गृहगोधिकादेस्त-  
त्पुच्छादिकस्य च यदन्तरालं तत्र जीवप्रदेशानां संयोगः सूत्रे भगवता कथितः ।

तथा च भगवतीसूत्रे—

“अह भंते ! कुम्भे, कुम्भावलिया, गोहा, गोहावलिया, गोणे, गोणावलिया,  
मणुस्से मणुस्सावलिया, महिसे महिसावलिया, एएसि णं दुहा वा तिहा वा  
असंखेज्जहा वा छिन्नाणं जे अंतरा ते वि णं तेहिं जीवपएसेहिं फुडा ? । हंता,  
फुडा पुरिसे णं भंते । अंतरे हत्थेण वा, पाएण वा, अंगुलियाए वा, सलगाए वा,  
कट्टेण वा, किर्लिचेण वा, आमसमाणे वा, संमुसमाणे वा, आलिहमाणे वा, विलि-

पुच्छादिक अवयव भी जीव से भिन्न नहीं हैं । उसके साथ संबंध  
विशिष्ट होने से वे जीवस्वरूप ही हैं । इसलिये नोजीव राशि नहीं है ।  
देवो-गृहगोधिकादिकों के पुच्छादिक अवयव जब छिन्न हो जाते  
हैं तब उन पुच्छादिक अवयवों एवं उस गृहगोधिका आदि के बीच  
में जीव प्रदेशों का संयोग बना रहता है, यह बात स्वयं भगवान् ने  
सूत्र में कही है—वहां का पाठ इस प्रकार है—

“अह भंते ! कुम्भा, कुम्भावलिया, गोहा, गोहावलिया, गोणे,  
गोणावलिया, मणुस्से, मणुस्सावलिया, महिसे महिसावलिया, एएसि  
णं दुहा वा तिहा वा असंखेज्जहा वा छिन्नाणं जे अंतरा ते वि णं तेहिं  
जीवपएसेहिं फुडा ? हंता फुडा । पुरिसे णं भंते । अंतरे हत्थेण वा, पाएण  
वा, अंगुलियाए वा, कट्टेण वा, किर्लिचेण वा, आमसमाणे वा, संमुस-  
माणे वा, आलिहमाणे वा, विलिहमाणे वा, अण्णयरेण वा, तिक्खेणं

विगेरे अवयव पणु एवथी जुहा नथी. तेनी साथे संबंध विशिष्ट होवाने  
कारणु तेओ एव स्वरूप न छे. भाटे त्रीए नोएवराशीनुं अस्तित्व न नथी.  
णुओ ! गराणीनी पूछडी विगेरे अवयव न्यारे कपाठ नय छे त्यारे ते पूछडी  
विगेरे अवयवो अने ते गराणी आदिनी वचमां एव प्रदेशाने संयोग  
अनी रहे छे, आ वात जुह भगवाने सूत्रमां कही छे. ते पाठ आ प्रकारे छे.

“अह भंते ! कुम्भा, कुम्भावलिया, गोहा, गोहावलिया, गोणे गोणावलिया,  
मणुस्से, मणुस्सावलिया, महिसे, महिसावलिया, एएसि णं दुहा वा तिहा वा  
असंखेज्जहा वा छिन्नाणं जे अंतरा ते वि णं तेहिं जीवपएसेहिं फुडा ? हंता फुडा !  
पुरिसे णं भंते ! अंतरे हत्थेण वा, पाएण वा, अंगुलियाए वा, कट्टेण वा, किर्लि-  
चेण वा, आमसमाणे वा, संमुसमाणे वा, आलिह माणे वा, विलिहमाणे वा, अण्ण-



हमाणे वा, अणयरेण वा, तिवखेणं सत्थजाएणं आछिंदमाणे वा, विच्छिंदमाणे वा, अगणिकायेणं समोडहमाणे तेसिं जीवपएसाणं किंचि आवाहं वा विवाहं वा उप्पाएइ छविच्छेयं वा करेइ ? । नो इणट्टे समट्टे । नो खलु तत्थ सत्थं संकमइ ” इति । ( भग० श० ८ उ० ३ )

छाया—अथ भदन्त ! कूर्माः, कूर्मावलिका, गोधाः, गोधावलिका, गौः, गवावलिका, मनुष्याः मनुष्यावलिका, महिषः, महिषावलिका, एतेषां खलु द्विधा वा, त्रिधा वा, असंख्येयधा वा छिन्नानां येऽन्तरास्तेऽपि खलु तै जीवप्रदेशैः स्पृष्टाः ? हन्त स्पृष्टाः । पुरुषः खलु भदन्त ! अन्तरे हस्तेन वा, पादेन वा, अङ्गुलिकया वा शलाकया वा काष्ठेन वा, किलिञ्चेन वा आमृशन् वा, संमृशन् वा आलिखन् वा, विलिखन् वा, अन्यतरेण वा तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिन्दन् वा, विच्छिन्दन् वा अग्निकायेन समवदहन् वा तेषां जीवप्रदेशानां किंचिदाबाधं वा विबाधं वा उत्पादयति ? छविच्छेदं वा करोति ? नो अयमर्थः समर्थः । नो खलु तत्र शस्त्रं संक्रामति ।” इति।

सत्थजाएणं आछिंदमाणे वा, विच्छिंदमाणे वा अगणिकाएणं समोडहमाणे तेसिं जीवपएसाणं किंचिआवाहं वा विवाहं वा उप्पाएइ विच्छेयं वा करेइ ? नो इणट्टे समट्टे, नो खलु तत्थ सत्थं संकमइ ” इति । (भग. श.८ उ. ३)

छाया—अथ भदन्त ! कूर्माः कूर्मावलिका, गोधाः, गोधावलिका, गावः, गवावलिका, मनुष्याः मनुष्यावलिका, महिषाः महिषावलिका, एतेषां खलु द्विधा वा, त्रिधा वा, असंख्येयधा वा छिन्नानां येऽन्तरास्तेऽपि खलु तैर्जीवप्रदेशैः स्पृष्टाः ? हन्त ! स्पृष्टाः पुरुषः खलु भदन्त ! अन्तरे हस्तेन वा, पादेन वा, अङ्गुलिकया वा, काष्ठेन वा, किलिञ्चेन वा, आमृशन् वा, संमृशन् वा, आलिखन् वा, विलिखन् वा, अन्यतरेण वा, तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन आच्छिन्दन् वा, विच्छिन्दन् वा, अग्निकायेन समवदहन् वा,

यरेण वा, तिवखेणं सत्थजाएणं आछिंदमाणे वा, विच्छिंदमाणे वा, अगणि कायेणं समोडहमाणे त सिं जीवपएसाणं किंचिअवाहं वा विवाहं वा, उप्पाएइ विच्छेयं वा करेइ ? नो इणट्टे समट्टे नो खलु तत्थ सत्थं संकमइ” इति। भग० श. ८ उ० ३

छाया—अथ भदन्त ! कूर्माः कूर्मावलिका, गोधाः गोधावलिका, गावः, गवावलिका, मनुष्याः मनुष्यावलिका, महिषाः महिषावलिका, एतेषां खलु, द्विधा वा, त्रिधा वा, असंख्येयधा वा छिन्नानां येऽन्तरास्तेऽपि खलु तैर्जीवप्रदेशैः स्पृष्टाः ? हन्त ! स्पृष्टाः ! पुरुषः खलु भदन्त ! अन्तरे हस्तेन वा, पादेन वा, अ गुलिकया वा काष्ठेन वा, किलिञ्चेन वा, आमृशन् वा, संमृशन् वा, आलिखन् वा विलिखन् वा, अन्यतरेण वा, तीक्ष्णेन शस्त्रजातेन वा आच्छिन्दन् वा, विच्छिन्दन्

રોહગુપ્તઃ પૃચ્છતિ—યદિ સૂત્રે જીવપ્રદેશાનાં તદન્તરાલેऽપિ સમ્બન્ધઃ પ્રોક્તસ્તર્હિ તદન્તરાલે તે જીવપ્રદેશઃ કથં નોપલભ્યન્તે ? આચાર્યો વદતિ—કાર્મણશરીરસ્ય સૂક્ષ્મત્વાત્, જીવપ્રદેશાનાં ચામૂર્તત્વાદન્તરાલે વિદ્યમાના અપિ જીવપ્રદેશા ન દૃશ્યન્તે ।

રોહગુપ્તઃ પૃચ્છતિ—નનુ યથા ઘટે સ્ફુટિતે સતિ તસ્માત્ પૃથગ્ભૂતં રથ્યાગતં ઘટસ્વખંડં ઘટૈકદેશત્વાન્નોઘટ ઇત્યુચ્યતે, તથા ગૃહગોધિકાદિપુચ્છસ્ય જીવસ્ય છિન્નત્વાત્ પુચ્છાદિકં સ્વખંડં તસ્માત્ પૃથગ્ભૂતત્વાત્ તદેકદેશત્વાચ્ચ નો જીવઃ કથં નોચ્યતે ? ઇતિ ।

तेषां जीवप्रदेशानां किञ्चिदाबाधं वा, विबाधं वा, उत्पादयति, विच्छेदं वा, करोति ?, नो अयमर्थः समर्थः, नो खलु तत्र शस्त्रं संक्रामति ” इति ।

इस पाठ को सुनकर रोहगुप्तने कहा—यदि सूत्र में जीवप्रदेशों का कमलतन्तुओं के समान अन्तराल में भी संबंध कहा है, तो वे प्रदेश वहाँ उपलब्ध क्यों नहीं होते हैं ? रोहगुप्त के इस तर्क को सुनकर आचार्य महाराज ने कहा कि कार्मण शरीर अतिसूक्ष्म और जीव के प्रदेश अमूर्त हैं इसलिये अन्तराल में विद्यमान भी उन प्रदेशों की उपलब्धि नहीं होती है ।

रोहगुप्त ने कहा—जैसे घट के फुट जाने पर उससे पृथक्भूत होकर गली में पड़ा हुआ उसका टुकड़ा घट का एकदेश होने के कारण नोघट कहा जाता है उसी तरह गृहगोधिकादिक के पुच्छादिक—अवयव भी कट जाने पर जीव के छिन्न हो जाने से तथा उससे पृथक्भूत हो जाने से उसी के एकदेश होने के कारण नोजीव क्यों नहीं कहा जायगा ? ।

वा, अग्निकायेन समदहन् वा, तेषां जीवप्रदेशानां किञ्चिदाबाधं वा, विबाधं वा उत्पादयति, विच्छेदं वा करोति ! नो अयमर्थः समर्थः ! नो खलु तत्र शस्त्रं संक्रामति ” इति ।

સૂત્રોનો આ પાઠ સાંભળીને રોહગુપ્તે કહ્યું—જો સૂત્રમાં જીવ પ્રદેશોનો કમલતંતુઓના સમાન અંતરાલમાં પણ સંબંધ રહ્યો છે. તો તે પ્રદેશ ત્યાં ઉપલબ્ધ કેમ નથી થતો ? રોહગુપ્તના આ બીજા તર્કને સાંભળી આચાર્ય મહારાજે કહ્યું કે, કાર્મણ શરીર અતિ સૂક્ષ્મ અને જીવનો પ્રદેશ અમૂર્ત છે, એટલા માટે અન્તરાલમાં પણ વિદ્યમાન એવા એ પ્રદેશોની ઉપલબ્ધિ થતી નથી.

રોહગુપ્તે કહ્યું—જેવી રીતે ઘડો કુટી જવાથી તેના થએલા ટુકડા રસ્તામાં ફેંકી દેવાય છે અને તે ટુકડા ઘડાનો એક દેશ હોવાને કારણે નોઘટ કહેવામાં આવે છે, એજ રીતે ગરોળીની પૂંછડી આદિ અવયવો પણ કપાઈ જવાથી જીવથી બુદ્ધા થઈ જવાથી તથા એનાથી પૃથક્ભૂત થઈ જવાથી તેનો એક દેશ હોવાના કારણે નોજીવ કેમ ન કહેવામાં આવે ?

आचार्यो वदति—नैतद् युक्तम्—घटादेः कपालादिविकारो यथा दृश्यते, तथा जीवस्य न दृश्यते, अपि च घटादेर्विनाशकारणानि वह्निशस्त्रादीनि सन्ति, तथा जीवस्य न सन्ति, जीवस्यामूर्तद्रव्यत्वात् अकृतकत्वाच्च तस्माज्जीवस्य खण्डशो नाशो न भवति। अतश्छिन्नपुच्छादौ जीवादन्यत्वं नास्ति, ततश्च जीवाजीवविलक्षणत्वाभावान्नोजीवत्वं नोपपद्यते।

किंच—शस्त्रच्छेदादिना जीवप्रदेशस्य खण्डशो नाशे तस्य सर्वनाशः स्यात्। तथाहि—यत् खण्डशो नश्यति, तस्य सर्वनाशो दृष्टः, यथा घटादेः, त्वया घटादि-वज्जीवो मन्यते, अतस्तद्वत् सर्वनाशः स्यात्।

इस रोहगुप्त की तर्क का समाधान करते हुए आचार्य महाराज ने कहा यह कथन ठीक नहीं है—मूर्त घटादिक के कपाल आदि विकाररूप अवयव जिस प्रकार दिखलाई पड़ते हैं उस प्रकार अमूर्त जीव का विकार दिखलाई नहीं देता है। दूसरे—जैसे घटादिक के विनाश कारण वह्निशस्त्रादिक हैं उस तरह के जीव के विनाश कारण नहीं हैं, क्यों कि जीव अमूर्त द्रव्य है अकृतक है, इसलिये जीव का खण्डरूप से नाश नहीं होता है। छिन्न पुच्छादिक अवयवगत जीवप्रदेशों में जीव से भिन्नता नहीं है, इसलिये जीव अजीव से नोजीव में विलक्षणता-भिन्नता-का अभाव होने से तृतीयराशिता नहीं आ सकती है।

और भी—यदि शस्त्रों द्वारा जीवप्रदेश का खण्डशः नाश माना जायगा तो जीव का सर्वनाश ही मानना पड़ेगा। जिसका खंडशः विनाश होता है, उसका सर्वनाश देखा जाता है जैसे घटादिक का।

रोहगुप्तना आ तर्कं नुं समाधानं कर्तव्यं आचार्य महाराजे कथ्युं; तमाज्ञं आ कर्तव्यं परोपरं नथी—मूर्तं घट आदिनां ठीकरां आदि विकाररूप अवयव जे प्रकारे देखाय छे ओ प्रकारे अमूर्तं जेवनो विकार देखाई शकतो नथी. पीणुं—जेम घटादिकना विनाशनुं कारण वह्निशस्त्रादिक छे पणु ओ प्रभाणे जेवनो विनाशनुं कारण नथी केमके जेव अमूर्तं द्रव्य छे, अकृतक छे. आ कारणे जेवनो (दुकडे उपे) अंउडे नाश थतो नथी. आथी कपायेली पूंछडी आदि अवयवगत जेवप्रदेशोमां जेवथी लिन्नता नथी. आटला ज कारणे जेव, अजेवथी नेजेवमां विलक्षणता-लिन्नतानो अभाव होवाथी ते त्रीज राशी थई शकती नथी.

किंच—जे शस्त्रो द्वारा जेवप्रदेशेना अंउशः (दुकडे दुकडे) नाश मानवामां आवे तो जेवनो सर्वनाश ज मानवो पडे. जेनो अंउशः विनाश थाय छे जेनो परिणामे तो सर्वनाश ज जेवामां आवे छे. जेमके—घटादिकनुं

नन्वस्तु सर्वनाशः, का हानिरिति चेत्, तन्न सम्यक्, सर्वनाशस्वीकारे जिन-  
मतपरित्यागरूपदोषापत्तेः, जिनमते हि सद्रूपस्य जीवद्रव्यस्य सर्वथा विनाशः  
प्रतिषिद्धः, असत्श्च सर्वथोत्पादोऽपि निषिद्ध एव । तथा चोक्तम्—

जीवाणं भंते । किं व ढंति हायंति, अवड्डिया, ? । गोयमा ! नो वड्डंति नो  
हायंति अवड्डिया । ”

छाया—जीवाः खलु भदन्त ! किं वर्द्धन्ते, हीयन्ते, अवस्थिताः ? गौतम !  
ना वर्द्धन्ते नो हीयन्ते अवस्थिताः । इत्यादि,

तुम जीव को घटादिक के समान मान रहे हो अतः इसकी तरह उसका  
सर्वनाश तुम्हें मानने का प्रसंग प्राप्त होगा । यदि इस पर तुम ऐसा कहो  
कि जीव का सर्वनाश मानने में दोष ही क्या है ? मान लेना चाहिये सो  
इस प्रकार की युक्ति तुम्हें शोभा नहीं देती, कारण कि इस प्रकार के  
कथन से तो यह बात साबित होती है कि तुमने जिनमत का ही परि-  
त्याग कर दिया है । जिनमत में सद्रूप जीवद्रव्य का सर्वथा विनाश  
निषिद्ध है और सर्वथा असत् का उत्पाद भी निषिद्ध है । जैसे कहा है—

“ जीवाणं भंते ! किं वड्डंति हायंति अवड्डिया ? गोयमा ! नो वड्डंति  
नो हायंति, अवड्डिया ” ॥

छाया—जीवाः खलु भदन्त ! किं वर्द्धन्ते, हीयन्ते, अवस्थिताः ?  
गौतम ! नो वर्द्धन्ते नो हीयन्ते, अवस्थिताः । इत्यादि ॥

अने छे तेम तमे अउने घटादिकनी समान मानी रह्या छे आथी तो अेनी  
भाइक तेनो पणु सर्वनाश मानवानो प्रसंग तमारा भाटे उलो थशे. आ अंगे  
कदाच तमे अेवुं पणु कडे के, अउनेो सर्वनाश मानवाभां दोष शेो छे ?-तो  
समअ देजे के, आ प्रकारनुं तमाइं कथन तमारा भाटे शोभाइप नथी.  
कारणु के, आ प्रकारना कथनथी तो अे वात साभीत थाय छे के, तमे अने-  
श्वरना मतनो न त्याग करी हीधो छे. अनमतभां सद्रूप अउद्रव्यनो सर्वथा  
विनाश निषिद्ध कही छे. अने सर्वथा असत्ना उत्पादनो पणु निषेध मान्यो छे.  
कहुं पणु छे के-

“ जीवाणं भंते ! किं वड्डंति हायंति अवड्डिया ? गोयमा ! नो वड्डंति नो  
हायंति, अवड्डिया ” ॥

छाया—जीवा खलु भदन्त ! किं वर्द्धन्ते, हीयन्ते, अवस्थिताः ? गौतम ! नो  
वर्द्धन्ते नो हीयन्ते, अवस्थिताः । इत्यादि ॥

अतो जीवस्य सर्वथा नाशे स्वीक्रियमाणे जिनमतत्याग एव स्यात् ।

तथा-तत्सर्वनाशे मोक्षाभावः प्राप्नोति मुसुक्षोर्जीवस्य सर्वथा नाशात् । मोक्षाभावे च दीक्षादिकष्टानुष्ठानवैफल्यं, क्रमेण च सर्वेषामपि जीवानां सर्वनाशे संसारस्य शून्यत्वमापद्येत । कृतस्य च शुभाशुभकर्मणः सर्वनाशः स्यात्, तस्माज्जीवस्य खण्डशो नाश इति न मन्तव्यम् ।

रोहगुप्तो वदति-गृहगोधिकादीनां छिन्नं पुच्छादिखण्डं पृथग्भूतं भवतीति प्रत्यक्षत एव नाशो दृश्यते, इति, आचार्यो वदति - तदयुक्तम्, औदारिक शरीरस्यैव हि तत् खण्डं यत् प्रत्यक्षतो दृश्यमानमस्ति, न तु जीवस्य तत् खण्डम्, तस्यामूर्तद्रव्यत्वेन केनापि खण्डयितुमशक्यत्वात् ।

इसलिये जीव का सर्वथा विनाश मानने पर जिनमत का परित्याग किया गया ही माना जायगा । तथा-जीव का सर्वनाश मानने पर एक यह बड़ी भारी आपत्ति आती है कि मोक्ष का अभाव मानना पड़ेगा । मोक्ष के अभाव में दीक्षादिक कष्टों को सहना भी व्यर्थ हो जायगा । क्रमशः जब समस्त जीवों का सर्वनाश हो जायगा तो संसार का भी सद्भाव नहीं रह सकेगा । संसार के अभाव में शुभाशुभ कर्मों का भी सर्व विनाश मानना पड़ेगा । इसलिये जीव का खण्डशः नाश मानना युक्तियुक्त नहीं है ।

रोहगुप्त ने पुनः कहा कि-गृहगोधिकादिक के छिन्न पुच्छादिकों का विनाश स्पष्ट रीति से प्रतीत होता है । अतः वह जीव का ही तो विनाश है । श्रीगुप्ताचार्य महाराज ने इस के ऊपर उत्तररूप में कहा-यह कहना

आटला भाटे लुवनेो सर्वथा विनाश मानवाथी तमे लुनमतनेो परित्याग कुर्ये छे अमेम मानवामां आवे छे. वणी लुवनेो सर्वनाश मानवाथी पणु अेक लारे मुश्केली उली थशे के, जेने लधने मोक्षनेो अलाव मानवेो पडशे. मोक्षनेो अलाव मानवाथी दीक्षादिकनां कष्टोने सडेवां अे पणु नकामां-अर्थ विनानां अनी जशे अने अे प्रभाणे कभवार सर्व लुवनेो सर्वनाश थध जशे तो पछी संसारतुं अस्तित्व पणु रडी शकशे नडीं संसारना अलावमां शुभ अशुभ कर्मेोने पणु सर्वविनाश मानवेो पडशे. आ कारणे लुवनेो अंशः (ककडे ककडे) नाश मानवेो योग्य नथी.

शेडगुप्ते दूरीथी कहुं के-गरेणीनी कपायेली पूंछडी वगेरेनेो विनाश स्पष्ट रीते ज देषाय छे. ते ज अतावे छे के लुवनेो विनाश छे ज. श्री गुप्ताचार्य महाराजे तेनेो उत्तर आपतां कहुं के, तमाईं आ प्रभाणे कडेवुं अे उचित



### રોહગુપ્તઃ પુચ્છતિ—

નનુ જીવપ્રદેશાનાં સ્વખંડશો નાશેઽપિ તત્સંઘાતસ્ય નાશાભાવાન્ન જીવસ્ય સર્વનાશઃ સ્યાદિતિ, યથા ક્વચિત્ પુદ્ગલસ્કન્ધેઽન્યસ્કન્ધગતં સ્વખંડં સમાગત્ય મિલિત્વા સંયુજ્યતે, તદ્ગતં ચ સ્વખંડં મિત્ત્વાઽન્યત્ર ગચ્છતિ એવં જીવસ્યાપિ અન્ય-જીવસ્વખંડં સંબધ્યતે, તદ્ગતં તુ મિદ્યતે, ઇત્યેવં સંઘાતભેદધર્મવત્ત્વં જીવસ્ય ઇષ્યતે ।

इसलिये उचित नहीं है कि वहां औदारिकमूर्तशरीरका ही खंड हुआ है, और उसीका विनाश होता है, जीव का नहीं, क्योंकि वह तो अमूर्त है, अतः जो पुच्छादिक उससे भिन्न दिखते हैं वे औदारिक शरीर के ही खंड हैं जीव के नहीं। जीव तो अमूर्त है किसी से भी उसका खंड नहीं होता है। रोहगुप्त ने पुनः कहा—जीवप्रदेशों का खंडशः नाश मानने पर भी जीवका सर्वविनाश नहीं हो सकता, क्योंकि कि जीवप्रदेशों के संघात तो नाश होता नहीं है। जैसे किसी पुद्गल स्कंध में अन्यस्कंधगतखंड आकर के मिल जाता है तथा तद्गतखंड भिदकर उससे अलग होकर दूसरी जगह चला जाता है, तो पुद्गल-स्कंध का सर्वथा नाश कहां होता है, इसी प्रकार जीव में भी अन्यजीव खंड संबंधित हो जाता है और तद्गत खंड उससे अलग हो जाता है, इस प्रकार संघातभेद धर्मवत्ता जीव में मानी जाती है अतः उस का सर्वविनाश नहीं हो सकता है ।

નથી કારણ કે ત્યાં ઔદારિકમૂર્ત શરીરનો જ ખંડ ટુકડો થાય છે અને તેનો જ વિનાશ થાય છે—જીવનો નહીં કારણ કે જીવ તો અમૂર્ત છે. આથી જે કપાયેલી પૂંછડી વિગેરે તેનાથી ભિન્ન દેખાય છે તે ઔદારિક શરીરનો જ ટુકડો છે—જીવનો નહીં. જીવતો અમૂર્ત છે. તેના કકડા કરવા કોઈ સમર્થ નથી. રોહગુપ્તે ફરીથી કહ્યું કે, જીવ પ્રદેશોનો ખંડશઃ નાશ માનવાથી જીવનો સર્વવિનાશ થઈ શકતો નથી કેમકે, જીવ પ્રદેશોના સંઘાતનો તો નાશ થતો જ નથી. જેમ કોઈ પુદ્ગલસ્કંધમાં બીજા સ્કંધગત ખંડ આવીને મળી જાય છે તથા તે મળી ગયેલા ખંડને લેદીને તેનાથી અલગ થઈને બીજી જગ્યાએ ચાલ્યા જાય છે તો પુદ્ગલ સ્કંધનો સર્વથાનાશ ક્યાં થાય છે? એ પ્રકારે જીવમાં પણ અન્યજીવ ખંડ સંબંધિત થઈ જાય છે અને તદ્ગત ખંડ તેનાથી અલગ થઈ જાય છે. આ પ્રકારે સંઘાતભેદ ધર્મવત્તા જીવમાં મનાય છે. આથી એનો સર્વવિનાશ થઈ શકતો નથી.



आचार्यो वदति—यदा शुभाशुभकर्मान्वितमेकं जीवस्य खण्डम् अन्यजीवस्य संबध्यते, अन्यसंबन्धिरखण्डं तु तस्य संबध्यते, तदा तत्सुखादयोऽन्यस्य प्राप्तुवन्ति अन्यसुखादयस्तु तस्य, इत्येवं सर्वजीवानां परस्परं सुखादिगुणसांकर्यं स्यात् । तथा—एकस्य कृतनाशः, अन्यस्य अकृताभ्यागम इत्यादयोऽपि दोषाः स्युः ।

रोहगुप्तः पृच्छति—ननु जीवस्य च्छेदे स्वीक्रियमाणे सर्वजीवानां परस्पर-सुखादिसांकर्यं कृतनाशोऽकृताभ्यागमश्चेत्यादयो दोषाः स्युरिति मास्तु जीवस्य नाशापरपर्यायश्छेदः, किंतु—जीवादपृथग्भूतोऽपि जीवसंबद्धोऽपि जीवदेशो नोजीव इत्युच्यते, यथा धर्मास्तिकायादेरेकदेशो नोधर्मास्तिकायादिस्तद्वत्, ।

इसके ऊपर श्रीगुप्ताचार्य ने कहा कि जिस समय शुभ अशुभ कर्मों से अन्वित जीवका खंड अन्यजीव से बंधेगा, तथा अन्यजीव संबन्धी खंड उस जीव से बंधेगा तो उस समय उस जीव के सुखादिक उस में प्राप्त हो जायेंगे, और इस के उस में जाकर प्राप्त हो जायेंगे, इस प्रकार परस्पर में समस्त जीवों के सुखादिकगुणों में संकरता की आपत्ति आजायेगी। इससे एक के कृतकर्मका विनाश और अन्यके अकृत कर्मका भोग भी मानना पड़ेगा। और भी अनेक दोष इस प्रकार की मान्यता में आते हैं।

रोहगुप्त ने पुनः कहा कि यदि जीव का छेद स्वीकार किया जाय तो ही सर्व जीवों के सुखादिकोंका परस्पर में सांकर्य एवं कृतकर्म का नाश और अकृतकर्म का आगमन आदि दोष आते हैं, इसलिये पर्यायच्छेदरूप नाश जीव का नहीं मानना चाहिये—किन्तु जिस प्रकार धर्मास्तिकाया-

आ सामे श्री गुप्ताचार्ये कलुं के, जे समये शुभ अशुभ कर्मोथी युक्त एवनेो अउ अन्यएवथी अंधाशे अने अन्यएव संबन्धी अउ ते एवथी अंधाशे तो ते समये ते एवनां सुख विगेरे तेमां प्राप्त थछ जशे अने तेनां ते भीलमां भणी जछने प्राप्त थशे. आ प्रकारे परस्परमां समस्त एवनेो सुखादिक गुणोमां संकरतानी आकृत उली थशे तेनाथी तो अेकना करैलां कर्मनेो विनाश अने भीलना कथी विनाना कर्मनेो उपलोग पषु मानवो पउशे. भील पषु अनेक दोष आ प्रकारनी मान्यताथी उलाथाय छे.

रोहगुप्ते इरीथी कलुं—जे एवना छेदननेो स्वीकार करवामां आवे तो जे सर्वएवनां सुखादिकेनेो परस्परमां सांकर्य अने कृतकर्मनाश करैलां कर्म नीष्कण जाय अने अकृतकर्मनुं आगमन—नडीं करैलां कर्म उदयमां आवे विगेरे दोष लागे छे माटे पर्याय छेदइए एवनेो नाश मानवो न जेछअे.—

આચાર્યો વદતિ—યદિ જીવપ્રદેશો નોજીવ ઇતિ મન્યસે તદા પ્રતિપ્રદેશં નોજીવાઃ સન્તીત્યેકૈકસ્મિન્નાત્મનિ અસંખ્યાતા નોજીવાઃ સ્યુઃ, તતઃ સર્વેષામપિ જીવાનાં પ્રત્યેકમસંખ્યાતનોજીવત્વપ્રસન્નાત્ તવ મતે ક્વાપિ જીવો ન સ્યાત્ ।

કિંચ—એવમજીના અપિ ધર્માસ્તિકાયાદયઃ દ્વ્યણુકસ્કન્ધાદયો ઘટાદયશ્ચ પ્રતિપ્રદેશભેદાત્ અજીવૈકદેશત્વાત્ તવ મતે સર્વે નોઅજીવા ભવેયુઃ ઘટૈકદેશનોઘટ-વદિતિ તતઃ ક્વાપ્યજીવો ન સ્યાત્, પરમાણૂનામપિ પુદ્ગલાઽસ્તિકાયરૂપાઽજી-દિકોં કા એક દેશ નોધર્માસ્તિકાય માના જાતા હૈ ડસી તરહ જીવ સે અપૃથક્ભૂત એવં જીવ સે સંબદ્ધ ધી જીવદેશ નોજીવ માના જાય તો હસમેં આપ કો ક્યા આપત્તિ હૈ ? ।

હસ પર આચાર્ય મહારાજ ને કહા કિ—યદિ એક જીવપ્રદેશ કો નોજીવ માનોગે તો પ્રત્યેક પ્રદેશ મેં વહુત જીવ માનના પડેગા, હસ પ્રકાર એક હી આત્મા મેં અસંખ્યાત પ્રદેશ હોને સે અસંખ્યાત નોજીવ માનને કા પ્રસંગ પ્રાપ્ત હોગા । અતઃ પ્રત્યેક જીવ મેં અસંખ્યાત નોજીવત્વ કે પ્રસંગ સે કહીં પર ધી જીવ નહીં હો સકેગા ।

ઔર ધી—હસી તરહ અજીવ ધી ધર્માસ્તિકાયાદિક તથા દ્વ્યણુક-સ્કન્ધાદિસ્વરૂપ ઘટાદિક પ્રતિપ્રદેશ કે ભિન્ન હોને કી વજહ સે તથા અજીવ કે એકદેશ હોને સે તુમ્હારે મતાનુસાર નોઅજીવ માનને પડેંગે, જિસ પ્રકાર ઘટ કા એક દેશ નોઘટ માના જાતા હૈ । હસલિયે કહીં પર ધી પૂર્ણ અજીવ સંભવિત નહીં હો સકેગા—સબ હી અજીવ પદાર્થ નોઅજીવ હી માનને પડેંગે । પુદ્ગલાસ્તિકાય કે એક દેશ હોને સે

પરંતુ જે પ્રકારે ધર્માસ્તિકાય વિગેરેના એક દેશ નોધર્માસ્તિકાય માનવામાં આવે છે, તેવી રીતે જીવથી અપૃથક્ભૂત અને જીવથી સંબદ્ધ એવો જીવ દેશ નોજીવ માનવામાં આવે તો તેમાં તમને શું વાંધો છે ?

આચાર્ય મહારાજે રોહિણીને જવાબ વાળ્યો કે—જે એક જીવ પ્રદેશને નોજીવ માનશે તો પ્રત્યેક પ્રદેશમાં ઘણા જીવ માનવા પડે તો એ પ્રકારે એકજ આત્મામાં અસંખ્યાત પ્રદેશ હોવાથી અસંખ્યાત નોજીવ માનવાનો પ્રસંગ પ્રાપ્ત થશે આથી પ્રત્યેક જીવમાં અસંખ્યાત નોજીવત્વના પ્રસંગથી કોઈ પણ સ્થળે જીવની શક્યતા રહેશે નહીં ।

આ રીતે અજીવ પણ ધર્માસ્તિકાયાદિક તથા દ્વ્યણુક ( જે અણુના ) સ્કન્ધાદિ સ્વરૂપ ઘટાદિક પ્રતિપ્રદેશના જુદા જુદા કારણે તથા અજીવને એક દેશ હોવાથી તમારા મત અનુસાર નોઅજીવને માનવું પડશે, એવી રીતે ઘટને એક દેશ નોઘટ માનવામાં આવે છે. આ માટે કોઈ સ્થળે પણ પૂર્ણ

वैकदेशत्वेन तव मते नोअजीवत्वात् सर्वत्र नोअजीवानामेव संभवात् । ततश्च राजसदसि राशित्रयनिरूपणं तव कथं संभवति नोजीव-नोअजीवलक्षणराशिद्वय-स्यैव सद्भावात् । तस्माद् बहुदोषप्रसङ्गान्न जीवश्छिद्यत इति स्थितम् ।

किंच—छिद्यतां वा जीवस्तथापि-नोजीवो न सिध्यति, तथाहि-गृहगो-धिकादिजीवः पुच्छाद्यवयवच्छेदेन छिन्नोऽपि भवतु तथापि जीवलक्षणस्य स्फुरणादेः सद्भावात् पुच्छादिदेशः कथं नोजीवः स्यात् । संपूर्णोऽपि गृहगोधिकाजीवः स्फुरणादिलक्षणैरेव जीव इत्युच्यते, तानि स्फुरणादीनि छिन्ने पुच्छाद्यवयवे

परमाणुओं को भी तुम्हारे मतानुसार नोअजीव माना जायगा । इस प्रकार सर्वत्र नोअजीव की ही संभवता होगी । फिर राशित्रय की कल्पना भी अस्तंगत हो जाने से राजसभा में जो तुमने राशित्रय की प्ररूपणा की है वह सुसंगत कैसे मानी जा सकेगी ? क्यों कि इस प्रकार के निरूपण से तो नोजीव एवं नोअजीव ये दो ही राशियों का सद्भाव ख्यापित होता है । इसलिये जीव के छेद में अनेक दोषों का सद्भाव आता है अतः उसका छेद नहीं मानना चाहिये ।

अथवा—जीव का छेद रहे तौ भी नोजीव सिद्ध नहीं हो सकता है-गृहगोधिकादिक का जीव पुच्छादिक अवयव के छेद से भले ही छिन्न हो आवे तौ भी उसमें जीव के लक्षणरूप स्फुरण आदि के सद्भाव से वह पुच्छादिदेश नोजीव कैसे हो सकता है ? गृहगोधिका में संपूर्ण जीव है यह बात जीव के अविनाभावी स्फुरणादिकों द्वारा ही तो जानी

अथवा संलवित जनशे नडी-सधणा अथवा पदार्थने अथवा न मानवा पडशे पुङ्गवास्तिकायने अकदेश डोवाथी परमाणुंओने पथु तभारा मत अनुसार नोअथव मानवे पडशे. आ प्रकारे सर्वत्र नोअथवनी न संलवता रडेरी, पथी त्रथु राशीनी पथु कल्पना असंगत थर्ष नवाथी राजसभामां तभे न त्रथु राशीनी प्ररूपणा करी छे, ते सुसंगत कथ रीते मानी शकाशे ? केभके, आ प्रकारना निरूपणथी तो नोअथव अने नोअथव अे ओन राशीओने सद्भाव स्थापित थाय छे, आथी अथवना छेदमां अनेक दोषोने सद्भाव आवे छे भाटे तेने विच्छेद न मानवे नैर्ष अे.

अथवा-अथवना छेद रहे तो पथु नोअथव सिद्ध थतो नथी-गराणीने अथव पूंछडी विगेरे अवयवोना छेदथी लडे छिन्न थर्ष नय तो पथु तेमां अथवना लक्षणरूप स्फुरण विगेरेना सद्भावथी ते पूंछडी विगेरे देश नोअथव कथ रीते थर्ष शके ? गराणीमां संपूर्ण अथव छे अे वात अथवना अविनाभावी ( सर्वदा अस्तित्ववाणा ) स्फुरण विगेरे द्वारा तो नोअथव शकाय छे. संपूर्ण कडेवाने

दृश्यन्ते, जीवलक्षणयुक्तस्वाज्जीव एव भवितुमर्हति न तु नोजीव इति कल्पना ।  
 रोहगुप्तो वदति—जीवलक्षणसद्भावेऽपि पुच्छादिकस्य तदवयवस्य नोजीवत्वमिष्यते ।  
 आचार्यो वदति—तर्हि अजीवस्यापि घटादेशो नोजीवः स्यात् जीवैक-  
 देशनोजीवत्वम् ।

रोहगुप्तो वदति—अस्त्वेवम्, मम न किञ्चिद् विनश्यतीति ।

आचार्यः प्राह—एवं स्वीक्रियमाणे ये भवता त्रय एव राशयः स्वीक्रियन्ते,

जाती है । संपूर्ण का तात्पर्य उसके अपने शरीर बराबर असंख्यात प्रदेशी जीव से है । पुच्छादिकों के छिन्न होने पर यही जीव स्फुरणादि लक्षणों से वहाँ पुच्छमें भी जाना जाता है । ऐसी बात तो है नहीं कि गृहगोधिका के शरीर में कुछ जीव है, और उसकी छिन्न पुच्छ में कुछ जीव है । जीव तो एक ही है । यदि ऐसा होता तो उसे नोजीव मानने में कोई अनौचित्य नहीं था । परन्तु ऐसा तो है नहीं, क्यों कि जीव को अमूर्त्त होने से उसको छेद नहीं होता है, अतः उसे नोजीव नहीं कह सकते हैं ।

रोहगुप्त ने पुनः आचार्य महाराज से कहा—माना जीव का लक्षण छिन्नादिक अवयवों में है तो भी उन छिन्नपुच्छादिक अवयवों को हम नोजीव ही मानेंगे । तब आचार्यने कहा—तो फिर जीव के एकदेश नोजीव की तरह अजीव घटादिक के देश को भी नोजीव मानना पड़ेगा ।

रोहगुप्तने कहा—हां मान लेंगे, इसमें क्या हानि है ? ।

आशय अना पोताना शरीरनी अशेअर असंख्यात प्रदेशी लवथी छे. पूंछडी विगेरेतुं छेदन थवाथी तेज लव स्फुरणादि लक्षणोथी त्यां पूंछडीमां पषु लववामां आवे छे. अवी वात तो नथी के, गराणीना शरीरमां केछ अके लव छे अने तेनी कपाथेव पूंछडीमां केछ थीजे लव छे? लव तो अके ल छे. जे अम डोत तो तेने नोलव मानवामां केछ डरकत न डती. परंतु अेषुं तो छे ल नडी, केमके, लवतुं अमूर्त्तपषुं डोवाथी तेने छेड थतो नथी. आथी तेने नोलव कडी शकथ नडी.

रोहगुप्ते इरी आचार्य महाराजने कहुं धारो के लवतुं लक्षण छेदाथेवा अवयवमां छे तो पषु ते छेदाथेवी पूंछडी आदि अवयवोने हुं नोलव लव मानीश त्यारे आचार्ये कहुं के, तो पछी लवनो अके देश नोलवनी माकक अलव घटादिकना देशने पषु नोलवलव मानवो पडशे. रोहगुप्ते कहुं, हा ! मानी लवथि. तेमां शुं नुकशान थवानुं छे ? आचार्ये कहुं—नुकशान केम

ते तु नोपपद्यन्ते, किन्तु चत्वारो राशयस्तव मते स्युः, तद् यथा जीवाः, अजीवाः, नोजीवाः, नोअजीवाश्चेति ।

रोहगुप्तो वदति—अजीवस्यैकदेशः स्कन्धात् पृथग्भूतोऽपि अजीव एवं, न तु नोअजीवः अजीवसमानजातिलिङ्गवत्त्वात्, तत्राजीवत्वं जातिः, पुँल्लिङ्गलक्षणं च लिङ्गं, एतद् द्वयमपि अजीव-तद्देशयोः समानमेवास्ति, अतस्तद्देशोऽप्यजीव एव, न तु नोअजीव इति भवितुमर्हति ।

आचार्यः प्राह—यद्येवं तर्हि जीवदेशोऽपि जीवसमानजातिलिङ्गवत्त्वात् जीव एवं स्यात्, न तु नोजीव इति, तथा च त्वदुक्तं राशित्रयं न सिध्यति ।

आचार्यने कहा—हानि क्यों नहीं है। सब से बड़ी हानि है और वह यही है कि तुम जो तीन राशियां माननी चाहते हो उनकी जगह चार राशियां माननी पड़ेगी—१ जीव, २ अजीव, ३ नोजीव, ४ नोअजीव ।

रोहगुप्त ने कहा—अजीवराशि ही मानी जायगी नोअजीव राशि नहीं, कारण कि अजीव का एक देश स्कंध से पृथक्भूत होने पर भी अजीव ही कह लायगा, नोअजीव नहीं, क्यों कि उसकी अजीव के समान ही जाति एवं लिङ्ग है इसलिये, अजीवत्व जाति एवं पुँल्लिङ्गलक्षण लिङ्ग, ये दोनों अजीव की तरह अजीव के एकदेश में भी रहते हैं। इसलिये नोअजीव वह नहीं कहा जायगा ।

आचार्य ने कहा—ठीक है, यदि ऐसा ही है तो जीव का एकदेश भी जीवसमान जाति एवं लिङ्ग से विशिष्ट होने की वजह से जीव ही कहलायेगा नोजीव नहीं। अतः राशित्रय की मान्यता उचित नहीं है।

नथी ? धलुं लारे नुकशान छे. अने ते अे छे के तमे जे त्रणु राशीअेने मान्य करे छे तेनी जगाअे चार राशी मानवी पडशे. १ लुव, २ अलुव, ३ नोलुव, अने ४नोअलुव.

रोहगुप्ते कहुं—अलुव राशी ज मानवामां आवशे पणु नोअलुव राशी नडीं. कारण के, अलुवनो अेक देश स्कंधथी पृथक्भूत होवाथी ते पणु अलुव ज कडेवाशे, परंतु नोअलुव नडीं कडेवाय, केमके, तेने अलुवनी भाइक ज जाती अने दिंग छे अलुवत्व जाती अने पुदिलगलक्षणु दिंग अे अने अलुवनी भाइक अलुवना अेकदेशमां पणु रहे छे. आथी तेने नोअलुव न कडी शकाय.

आचार्ये कहुं—ठीक छे, जे अेम ज छे तो लुवनो अेकदेश पणु लुव समान, जाती अने दिंगथी विशिष्ट होवाथी लुव ज कडेवाय पणु नोलुव नडीं. आथी तभारी त्रणु राशीनी मान्यता योग्य नथी.



किञ्च—गृहगोधिकादिजीवावयवः पुच्छादिकश्छिन्नोऽपि जीव एव, स्फुरणादितल्लक्षणयुक्तत्वात्, यथा संपूर्णोऽच्छिन्नगृहगोधिकादिजीवः । तत्र पुच्छादिके तदवयवे देश एवेति कृत्वा जीवत्वं न मन्यसे संपूर्णस्यैव तव मते जीवत्वात्, तदा पुनरजीवस्यापि घटादेशो नैवाजीवः स्यात्, संपूर्णस्यैवाजीवत्वात् । ततश्च अजीवदेशोऽपि 'नोजीव' एवं स्यान्नत्वजीवः । तथा—सति स एवं राशि चतुष्टयप्रसङ्गः ।

यदुक्तं—समभिरूढनयानुसारेण जीवप्रदेशो 'नोजीव' इत्युच्यते, तदप्ययुक्तम्—“ जीवे य से पएसे य, से पएसे नोजीवे । ”

और भी—सजीव गृहगोधिकादि के अवयव जो पुच्छादिक हैं वे छिन्न भी हो गये हों तौ भी जबतक उनमें स्फुरणादिक क्रिया होती रहती है तबतक वे जीव ही हैं जैसे संपूर्ण अच्छिन्न गृहगोधिका जीव है । यदि उसका छिन्न पुच्छादिक उसका अवयव है—एकदेश है, ऐसा मान कर उसे पूर्ण जीव न माना जाय और संपूर्ण को ही जीव माना जाय तो इस प्रकार की मान्यता से ३ राशि की जगह पूर्वोक्त चार राशियां माननी पड़ेगी १ जीव, २ अजीव, ३ नोजीव, ४ नोजीव, क्योंकि जिस प्रकार जीव का एकदेश नोजीव माना जाता है, उसी प्रकार अजीव घटादिकका भी एकदेश नोजीव मानना चाहिये । तथा जो पहिले यह कहा है कि समभिरूढनय के अनुसार जीवप्रदेश नोजीव कहा जाता है सो यह भी कथन ठीक नहीं है—“ जीवे य से पएसे य. से पएसे नोजीवे ” छाया—जीवश्च स प्रदेशश्च, स प्रदेशो

सलव गरोणीना अवयव पूंछडी विगेरे ले कपाछ गया होय तो पषु न्यां सुधी तेमां स्फुरणादिक क्रिया थती रहे छे त्यां सुधी ते लव न छे. ले प्रभाणे संपूर्ण छेदाया वगरनी गरोणीमां लव छे ते प्रभाणे ले तेनी छेदायेल पूंछडी वगेरे तेनुं अवयव छे, अेक देश छे अेपुं भानीने तेने पूंछुं लव न मानवामां आवे अने संपूर्णने न लव मानवामां आवे तो आ प्रकारनी मान्यताथी त्रषु राशीनी नगाअे आगण कद्या प्रभाणे चार राशीअे न मानवी पडशे, १लव, २अलव, ३नोलव, ४नोअलव. केमके, ले प्रकारे लवने अेक देश नोलव मानवामां आवे छे अेन प्रकारे अलव घटादिकने पषु अेक देश नोअलव मानवे पडशे. तथा पडेलं ले अेपुं कहुं छे के, समभिरूढनयना अनुसार लवप्रदेश नोलव कडेवामां आवे छे, तो अे कथन पषु ठीक नथी. “ जीवे य पएसे य, से पए से नोजीवे ” छाया—“ जीवश्च स प्रदेशश्च, स



छाया—जीवश्च स प्रदेशश्च स प्रदेशो नोजीवः । इत्यनुयोगद्वारोक्तसूत्रालापके समभिरूढनयोऽपि त्वदभिमतं जीवप्रदेशं नोजीवत्वेन नावबोधयति । तथाहि—समभिरूढनयो देशदेशिनोः कर्मधारयलक्षणं समानाधिकरणमेव समासं ब्रवीति न तु नैगमादिरिव तत्पुरुषम् । समानाधिकरणसमासश्च नीलोत्पलादीनामिव विशेषणविशेष्ययोर्भेद एव भवति । अतो ज्ञायते—जीवादन्यरूप एव देशो 'नोजीव' इति । एवं जीवनोजीवयोरभेदे तृतीयराशिस्तव न सिध्यति । जीवश्चासौ प्रदेशश्च जीवप्रदेशः, स एव—जीवादव्यतिरिक्तो जीवप्रदेशो नोजीव इति समभि-

नोजीवः” अनुयोगद्वार में उक्त इस सूत्रालापक में समभिरूढनय भी तेरे माने हुए जीवके प्रदेशको नोजीवपने प्रतिबोधित नहीं करता है । समभिरूढनय देश और देशी में कर्मधारयलक्षणवाले समानाधिकरण समास को ही बतलाता है, नैगमादिक नय की तरह तत्पुरुष समास को नहीं । यह समानाधिकरणसमास नीलोत्पल-नील एवं उत्पल आदिकोंकी तरह विशेषण और विशेष्यमें अभेद होने पर ही होता है । अतः जब “जीवदेश” यहां यह समास है तो इससे यह स्वतः ही ज्ञात होता है कि जीव और देश में परस्पर में अभिन्नता है । इसलिये जीव से अनन्य रूप ही देश नोजीव है । इस प्रकार जीव और नोजीव का अभेद होने से यह तुम्हारी मानी हुई नोजीवरूप तृतीय राशि सिद्ध नहीं होती है । “जीवश्चासौ प्रदेशश्च जीवप्रदेशः” इस प्रकार समानाधिकरणता इनमें है, अतः जीव से अव्यतिरिक्त जीवप्रदेश

प्रदेशो नोजीवः” अनुयोगद्वारमां कडेवामां आवेल आ सूत्रालापकमां समभिरूढनय पञ्च तमारा मानेदा लवना प्रदेशने नोलवपञ्चाथी अतावता नथी. समभिरूढनय देश अने देशीमां कर्मधारय लक्षणवाणा समान अधिकरण समासने न अतावेल छे. नैगमादिकनयनी माइक तत्पुइय समासने आ समान अधिकरण समास नीलोत्पल-नील अने उत्पल विगेरेनी माइक विशेषण अने विशेष्यमां अलेह डोवाथी न थाय छे. आथी न्यारे “लवदेश” अवे आ समास छे तो आथी अ आपमेणे न लणी शकाय छे के, लव अने देशमां परस्परमां अलिन्नता छे. माटे न लवथी अनन्यइय देश न नोलव छे आ प्रकारे लव अने नोलवनो अलेह डोवाथी तमारी आ मानेदी नोलवइय त्रील राशी सिद्ध थथ शकती नथी. “जीवश्चासौ प्रदेशश्च जीवप्रदेशः” आ प्रकारे न समान अधिकरणता आमां छे. आथी लवथी अव्यतिरिक्त लव प्रदेश न नोलव छे.

रूढनयेन बोध्यते, न तु जीवदलं जीवात् पृथग् भूतं तत्खण्डं नोजीव इति त्वद-  
भिमतम् । समभिरूढनयप्रतिबोधितस्य नोजीवस्य जीवराशावन्तर्भावात् तृतीय-  
राशिस्तव न सिध्यति ।

एवं वादप्रतिवादाभ्यां तयोः षण्मासा व्यतीताः तदा राज्ञाऽभिहितम्—मम  
राजकार्यं नश्यति, भवतां वादसमाप्तिर्न जाता, अतः परं संक्षेपेण वादं समापयन्तु  
भवन्तः ।

आचार्येणोक्तम्—अस्मिन् वादे निर्णयं श्वः करिष्यामि, ततः प्रभाते राजादि-

ही नोजीव है, उससे व्यतिरिक्त जीवप्रदेश नोजीव नहीं है, इस  
प्रकार का अभिप्राय इस समभिरूढनय का है । इससे यह बात बोधित  
नहीं होती है कि—जीव से पृथक्भूत जीव का खंड नोजीव है । इस-  
लिये समभिरूढनय से प्रतिबोधित नोजीव जीवराशि में अन्तर्भूत  
होने से तुम्हारे द्वारा कथित तृतीय नोजीवराशि सिद्ध नहीं होती है ।

इस प्रकार जब गुरुशिष्य में वाद विवाद होते २ छह मास व्यतीत  
होगये तब राजा ने कहा—देखो—आप के इस वादविवाद में उपस्थित  
रहने के कारण मेरे द्वारा राज्य का काज यथावत् संचालित नहीं हो रहा है  
तथा पता नहीं कि आप लोगों का यह वादविवाद भी कबतक चले  
अतः मैं आप लोगों को यह अर्ज करता हूँ कि—संक्षेप से अब आपलोग  
वाद विवाद करें और शीघ्र इसे समाप्त करें ।

आचार्य ने कहा—इस वाद का निर्णय कल ही कर दिया जायगा ।

अेनाथी व्यतिरिक्त लवप्रदेश नोलव नथी. आ प्रकारनो अबिप्राय आ  
समभिरूढनयनो छे. अेनाथी अे वात योक्कस थती नथी के, लवथी पृथक्भूत  
लवनो अंड लव राशीमां अंतर्भूत थवाथी तमारी कडेली त्रील नोलव राशी  
सिद्ध थती नथी.

आ प्रकारे न्यारे गुरुशिष्य वच्चे वादविवाद थतां थतां छ मास पुरा  
थया त्पारे राज्ज्मे कहुं, लुओ! आपना आ वादविवादमां डान्जर रडेवाना  
कारणु मारा राज्जनुं कामकाज माराथी जेध अे तेषु संचालित थतुं नथी.  
तथा अे पणु ढाणी शकतुं नथी के, आपनो आ वादविवाद कयां सुधी आदशे?  
भाटे हुं आप डोकोने अरज कइं छुं के, दुंकाणुमां वादविवाद करे अने नदही  
पुरे करे.

आचार्ये कहुं—आ वादनो निष्पृथ कलेज करी देवामां आवशे. आ

जनपरिवृतः स आचार्यः कुत्रिकापणे समागतः । यत्र त्रैलोक्यवर्तिनः पदार्थाः क्रयविक्रयव्यवहारार्थं सन्ति, स कुत्रिकापण इत्युच्यते । तत्र धनिकं प्रति स आचार्यः प्राह—‘ जीवान् देहि ’ इत्युक्ते सति तत्र तद्वनिकेन कुमारकुमारीहस्त्य-श्वदय अनेके जीवाः प्रदर्शिताः ।

ततः पुनस्तैनाचार्येणोक्तम्—अजीवान् देहि, इत्युक्ते सति घटपटादयः पदार्थाः प्रदर्शिताः । ततो ‘ नोजीवान् देहि ’ इत्याचार्येणोक्ते कुत्रिकापणधनिकः प्राह—‘ न सन्ति लोकत्रये नोजीवाः ’ यद् वस्तु लोकत्रये भवति, तदेव कुत्रिकापणे भवति नान्यत् । तदा स श्री गुप्ताचार्यो रोहगुप्तमाह—जीवाजीवल-

इस प्रकार कह कर वे दूसरे दिन प्रातःकाल राजा आदि पुरजन से परिवृत होकर कुत्रिकापण-कुतियावण की दुकान पर पहुँचे जहाँ तीनलोक के समस्त पदार्थ क्रय विक्रयरूप व्यवहार के निमित्त रखे हुए थे । पहुँचते ही आचार्य महाराज ने दुकान के मालिक से कहा-जीव को दो, आचार्यरूप ग्राहककी बात सुनकर उस दुकानदारने उन्हें कुमार, कुमारी, हाथी, घोड़े आदि समस्त जीव दिखला दिये । देखनेके बाद आचार्यने पुनः उस दुकानदार से कहा कि जीव तो देख लिये अब अजीवों को भी दिखलाओ, आचार्य महाराज की बात सुनकर दुकानदारने अजीवों को भी घट, पटादिक अजीवपदार्थों को भी दिखला दिया । देखकर पुनः आचार्य महाराजने कहा-ये भी देखलिये अब नोजीवों को और दिखला दिजिये क्यों कि उनकी भी आवश्यकता है । दुकानदार आचार्य महाराज की इस बात को सुनकर उनसे कहने लगा-महाराज आप क्या कहते हैं

प्रकारे कडीने तेज्या थील दिवसे प्रातःकाणे राज वगेरे नगरवासीज्याना समूह साथे कुतियावणुनी ( ज्यां त्रणे लोकनी थीले मणी शके तेवी छे ) दुकाने पडोअ्या. ज्यां त्रणे लोकना सधणा पदार्थ वेयाता उता. त्यां पडोअ्यतां ज आचार्य महाराजे दुकानना मालिकने कहुं-लव आपो ! आचार्य महाराजनी आडक र्पे आ वात सांभणीने दुकानदारे तेमने कुमार, कुमारी, हाथी, घोडा आदि सर्व लवे अताव्या. ते जेया पछी आचार्ये इरीथी जे दुकानदारने कहुं के, लव तो जेठ लीधा-हवे अलव अतावे. आचार्य महाराजनी वात सांभणीने दुकानदारे अलव जेवा घट पटादिक अलव पदार्थी पळु अताव्या. जे जेया आड इरीथी आचार्य महाराजे कहुं-के, जे पळु जेठ लीधा. हवे नालव अतावे. केभके, तेनी पळु जरत छे. दुकानदार आचार्य महाराजनी आ वात सांभणीने तेमने कडेवा लाग्यो-महाराज आप शुं

क्षणौ द्वावेव राशी, न तु तृतीयः, असत्त्वात्, खरविषाणवत् ।

एवं श्रीगुप्ताचार्येणोक्ते सति रोहगुप्तः पराजितः सन् 'अयं निहवः' इति कृत्वा जनैर्निन्दितः सन् राजसभातो निःसारितः । श्रीगुप्ताचार्यस्तु तस्मान्नरेन्द्रात् सर्वलोकाच्चोत्तमं सत्कारं प्राप्तवान् । रोहगुप्तेन वैशेषिकमतं प्रकटीकृतं, षट् पदार्थास्ते नैव प्ररूपिताः, षड्लूकः स उच्यते ॥

॥ इति षष्ठनिहव दृष्टान्तः ॥ ६ ॥

नोजीव तो लोकत्रय में भी नहीं हैं । इस कुत्रिकापण में वही चीज रहती है जो तीनलोक में होती है । जो इस में नहीं है समजो वह तीनलोक में कहींपर भी नहीं है । दुकानदारकी इस बातको सुनकर आचार्य महाराज ने रोहगुप्त से कहा—सुना यह क्या कह रहा है ? यह कह रहा है कि जीव और अजीव ये दो ही राशि हैं, तीसरी नोजीव राशि खरविषाणकी तरह असत्त्व होनेसे नहीं है । इस प्रकार जब श्रीगुप्ताचार्यने कहा तब “रोहगुप्त पराजित हो गया है” ऐसा समझकर लोगों ने उसको निहव मानकर राजसभासे बाहर कर दिया, तथा उसकी निंदा भी वे लोग करने लगे । श्रीगुप्ताचार्यका लोगों ने एवं राजाने विशेष अभिनंदन करते हुए खूब सत्कार किया । गच्छ से बहिष्कृत होकर रोहगुप्तने वैशेषिक मत को चलाया, उसमें उसने भावात्मक छह पदार्थों की प्ररूपणा की इसी से इसका दूसरा नाम षड्लूक भी हो गया ॥

॥ यह छठे षड्लूक (रोहगुप्त) निहव का दृष्टान्त हुआ ॥ ६ ॥

कडो छे ? नेलुव तो त्रणे दोकमां पणु नथी. जे चीले त्रणे दोकमां अस्तित्व धरावे छे ते सधणी भारी दुकाने मणशे. जे चीज भारे त्यां न भणे तो समलु वेजे के जे अहीं नथी. जे चीले त्रणे दोकमां कयांय डशे नडि, भाटे तभने नहीं भणे. दुकानदारनी आ वातने सांभणीने आचार्य महाराजे रोहगुप्तने कहुं—सांभणुं ! आ शुं कडे छे ? जे कडे छे के, लुव अने अलुव जे जेज राशी छे. त्रीलु नेलुव राशी गधेडानां शींगडांनी भाकुक तेतुं अस्तित्व न डोवाने कारणे ते नथी. आ प्रकारे न्यारे श्री गुप्ताचार्ये कहुं त्यारे “रोहगुप्त डारी गयो.” जेपुं भानीने दोकजे तेभने निहव समलु राजसभामांथी कादी भूक्या अने तेनी निंदा पणु करवा दाज्या. दोकजे अने राजजे श्री गुप्ताचार्यने अभिनंदन आपी भूष सत्कार कयो. रोहगुप्ते गच्छथी अडिष्कृत थर्धने वैशेषिक मतनी स्थापना करी. तेमां तेणे भावात्मक छ पदार्थोनी प्ररूपणा करी. तेनाथी तेतुं थिल्लुं नाम षड्लूक पणु पड्युं.

॥ आ छट्टुं षड्लूक (रोहगुप्त) निहवतुं दृष्टान्त थयुं. ॥ ६ ॥

अथ सप्तमनिह्वगोष्ठमाहिलदृष्टान्तः प्रोच्यते—

भगवतः श्रीमहारवीस्वामिनो निर्वाणसमयाच्चतुरशीत्यधिकपञ्चशत ५८४ वर्षेषु व्यतीतेषु दशपुरे नगरे इक्षुगृहनामकोद्याने आर्यरक्षितनामक आचार्यः समायातः । तस्य त्रयः शिष्या आसन्—गोष्ठमाहिलः१, फल्गुरक्षितः२, दुर्बलिकापुष्पश्चेति ३।

इतश्च मथुरानगर्यामक्रियावाद उत्थितः । तत्र तन्मतं निराकर्तुं कौऽपि प्रतिवादी नाभूदिति तत्रस्थसंघेन स आर्यरक्षिताचार्यो विज्ञापितः । आर्यरक्षिताचार्यस्तदा गोष्ठमाहिलं वादलब्धिमन्तं मत्वा तमेव सशिष्यं मथुरायां प्रेषितवान् । तेन तत्र गत्वा राज्ञः सदसि तमक्रियावादिनं चार्वाकं वादे निरुत्तरीकृतवान् ।

सातवे गण्टमाहिल निह्व की कथा इस प्रकार है—

श्री वीर प्रभु को निर्वाण प्राप्त हुए पांचसौ चोरासी ५८४ वर्ष जब व्यतीत हो चुके तब दशपुर नगर में इक्षुगृह नाम के बगीचे में आर्यरक्षित आचार्य महाराज आये। इनके तीन शिष्य थे—१ गोष्ठमाहिल, २ फल्गुरक्षित, ३ दुर्बलिकापुष्प। इसी समय मथुरा नगरी में अक्रियावाद का प्रचार हो रहा था। इस प्रचार को रोकने के लिये वहां कोई भी प्रतिवादी बनने को तयार न हुआ अतः वहां के श्रीसंघ ने आचार्य आर्यरक्षित महाराज को इसकी खबर दी। आचार्य महाराज ने वादलब्धि से युक्त गोष्ठमाहिल को जानकर सशिष्य उनको ही मथुरा नगरी भेज दिया। गोष्ठमाहिल ने पहुँचते ही राजसभा में उपस्थित होकर अक्रियावादी उस चार्वाकको वाद में परास्त कर दिया। गोष्ठमाहिल की विद्वत्ता से वहां की जनता बड़ी ही प्रसन्नचित्त हुई। जनता

सातमा गोष्ठमाहिल निह्वनी कथा का प्रकारनी छे—

श्री वीरप्रभुने निर्वाण पाभ्ये पांचसो चोरासी वर्ष वीती युक्त्यां ये सभ्ये दशपुर नगरमां इक्षुगृह नामना अगीत्यामां आर्यरक्षित आचार्य महाराज पधार्या. तेभने त्रयु शिष्य डता. (१) गोष्ठमाहिल, (२) इक्षुरक्षित, (३) दुर्बलिकापुष्प. आ सभ्ये मथुरानगरीमां अक्रियावादनो प्रचार थड रह्यो डतो. आ प्रचारने रोकवा भाटे त्यां डेड पणु प्रतिवादी बनवा तयार न थयुं त्यारे त्यांना श्रीसंघे आचार्य आर्यरक्षित महाराजने तेना अजर पडोऽयाडया. आचार्यमहाराजे आ भाटे वादलब्धिथी युक्त अेवा गोष्ठमाहिलने शिष्य साथे मथुरा नगरीमां भोकल्या. गोष्ठमाहिले त्यां पडोऽयीने तुरत अ राजसभामां डजर थड अक्रियावादी अेवा चार्वाकने वादविवादमां डरावी दीधो. गोष्ठमाहिलनी विद्वत्ताथी त्यांनी जनता पूण प्रसन्न थड,

उ० ९६



ततो मथुरानगरनिवासिभिः श्रावकैः सादरं गोष्ठमाहिलः सन्मानितः स्वगुरोः समीपे गन्तुकामोऽभवत् । परंतु तत्रत्यसंघस्याग्रहवशाद् वर्षाचतुर्मास्यां तत्र स्थितः।

इतश्च विश्ववन्दितः श्रीआर्यरक्षिताचार्यः स्वमरणसमयमासन्नं ज्ञात्वा चिन्तयति—योग्य एवं शिष्यः स्वपट्टके स्थापनीयः, अतः सर्वान् मुनीन् सर्वसंघं च पृच्छामि, इति चिन्तयित्वा स सर्वान् मुनीन् सर्वसंघं च समाहूय वल्लतैलघृतकुम्भदृष्टान्तान् वदति—यथा चणकसंभृतं कुम्भं रिक्तीकर्तुं अधोमुखीकृतात् तस्मात् कुम्भात् तदन्तर्गताः सर्वे चणकाः सत्त्वरं निर्यान्ति, एवं दुर्बलिकापुष्पस्य सूत्रार्थदाने वल्ल-

ने इनका खूब आदर सत्कार किया । कुछदिन वहां ठहरकर गोष्ठमाहिल ने अपने गुरु महाराज के पास आने का विचार किया । ज्यों ही ये गुरु महाराज के पास आने को तैयार होने लगे कि वहां के संघ ने इनको विशेष आग्रहकर अपने ही यहां ठहरा लिये । इतने में वर्षाकाल आगया । श्री संघ की विनंति से इन्होंने वहाँ पर चतुर्मास कर लिया ।

इधर आचार्य आर्यरक्षित का मरणकाल निकट आगया । इसलिये आचार्य महाराज ने अपना मरणकाल निकट आया जानकर विचार किया कि—योग्य शिष्य को ही अपने पाट पर स्थापित करना चाहिये इस के लिये मुझे सर्वसंघ एवं सर्व मुनियों से पूछ लेना चाहिये । ऐसा विचार कर उन्होंने ने सर्वसंघ एवं सर्वमुनियों को बुलाया और बुलाकर उन सब के समक्ष वल्ल (चने) तैल एवं घृतकुम्भ के उदाहरणों को सुनाया और कहा—जिस प्रकार चनों से भरे हुए घडेको खाली करनेके लिये उस घडेको उल्टा किया जाता है इससे भरे हुए समस्त चने उससे नीचे गिर पड़तेहै,

जनताએ તેમનો ખૂબ આદરસત્કાર કર્યો. થોડો સમય ત્યાં રોકાઈ ગોષ્ઠમાહિલે પોતાના ગુરુમહારાજ પાસે પાછા જવાનો વિચાર કર્યો. જ્યાં એ ગુરુમહારાજ પાસે જવા તૈયારી કરવા લાગ્યા ત્યારે ત્યાંના શ્રીસંઘે વિશેષ આગ્રહ કરી રોકી લીધા. એટલામાં ચાતુર્માસ એસી ગયું. શ્રીસંઘની વિનંતીથી તેમણે ત્યાં જ ચાતુર્માસ કર્યું.

આ તરફ આચાર્ય આર્યરક્ષિત મરણ પથારીએ હતા. પોતાનો મરણ કાળ નજીક આવેલો જાણી આચાર્ય મહારાજે વિચાર કર્યો કે મારે ઉત્તરાધિકારી તરીકે યોગ્ય શિષ્યને જ મારી જગાએ નિયુક્ત કરવો જોઈએ. આ અંગે મારે સર્વસંઘ અને સર્વે મુનિઓને પૂછવું જોઈએ. એવો વિચાર કરી તેમણે સર્વસંઘ અને સર્વ મુનિઓને બોલાવ્યા અને એ સઘણાની સમક્ષ ચણા, તેલ અને ઘી ભરેલા ઘડાના ઉદાહરણો સંભળાવ્યાં અને કહ્યું—જે રીતે ચણાથી ભરેલા ઘડાને ખાલી કરવા માટે એ ઘડાને ઉધો વાળવામાં આવે તો તેમાં ભરેલા સઘણા ચણા નીચે પડી જાય છે. એ પ્રમાણે દુર્બલિકાપુષ્પને સૂત્રાર્થ



संभृतघटोपमः संजातोऽस्मि । तैलपूर्णघटादधोमुखीकृताद् यथा भूरितैलं निर्याति, किं तु तत्र घटे किञ्चित् तैलमवशिष्टं तिष्ठत्यपि, तथा फल्गुरक्षितस्य श्रुतदाने तैलकुम्भसदृशः संजातोऽस्मि । यथा घृतपूर्णघटादधोमुखीकृतात् स्तोकमेव घृतं निर्याति, भूयस्तु तत्र घटे तिष्ठत्येव, तथा गोष्ठमाहिलमुनेः सिद्धान्तसूत्रार्थदाने घृतघटोपमः संजातोऽस्मि । तस्माद् दुर्बलिकापुष्पमुनिः श्रुतसिन्धुपारदृश्वा गुणवानस्ति, यदि सर्वेषां संमतिर्भवेत् तदाऽयं गणधारी भवतु । इत्येवमाचार्येणोक्ते सति सर्वे तद्वचनं तथैवाङ्गीकृतवन्तः ।

इसी प्रकार दुर्बलिकापुष्प को सूत्रार्थ के देने में मैं बल्लसंभृत घट के जैसा हुआ हूँ। यद्यपि तैलपूर्ण घट को जब उल्टा कर दिया जाता है तो उससे अधिक से अधिक तैल बाहर निकल जाता है परन्तु फिर भी कुछ थोड़ा बहुत तैल उसमें भी बाकी बचा रहता है, उसी प्रकार फल्गुरक्षित को भी श्रुतप्रदान करने में मैं इस तैल घट के तुल्य हुआ हूँ। जिस प्रकार घृतपूर्णघट को जब उल्टा किया जाता है तो उससे थोड़ा ही घृत बाहिर निकलता है अधिक नहीं-अधिक तो उस घटे में ही भरा रहता है, उसी प्रकार गोष्ठमाहिल को सिद्धान्तसूत्रार्थ प्रदान करने में घृतघट के समान मैं हुआ हूँ। इसलिये दुर्बलिकापुष्प मुनि श्रुतरूपी समुद्र के पारगामी हैं गुणवान हैं, इसलिये आप सब महानुभावों की जो संमति हो तो इसको गच्छाचार्य बना दिया जावे। इस प्रकार जब आचार्य महाराज ने कहा तो सब ने एक स्वर से उनके कथन को स्वीकार कर लिया।

आपवामां हुं अष्टाथी लरेला घडा जेवो रह्यो छुं. जे के तेलथी लरेला घडा ज्यारे उंधो करवामां आवे छे तो तेमांथी अेकदम अडार नीकणी जय छे, परंतु ते छतां पञ्च थोडुं धरुं तेल तेमां रडी जय छे. आ प्रकारे इक्षुरक्षितने पञ्च श्रुतप्रदान करवामां आ तेलना घडा जेवो हुं रह्यो छुं. जे रीते धी लरेला घडाने उंधो वाणवामां आवे छे तो अेमांथी थोडुं ज धी अडार नीकणे छे, वधु नडीं. वधु तो अे घडामां ज रडे छे. अे प्रकारे गोष्ठमाहिलने सिद्धान्तसूत्रार्थ प्रदान करवामां हुं धीना घडा समान रह्यो छुं. आटला माटे दुर्बलिकापुष्प मुनि श्रुतरूपी समुद्रना पारगामी छे, गुणवान छे. आथी आप सधणा महानुभावोनी संमति डोय तो तेभने गच्छ आचार्यनुं पद आपवामां आवे. आ प्रकारे आचार्य महाराजे ज्यारे कहुं त्यारे सधणाअे तेभनुं कथन सर्वानुभते स्वीकार्युं. ते पछी आचार्य महाराजे दुर्बलिकापुष्प

अथाचार्यः स्वशिष्यं दुर्बलिकापुष्पं प्रति प्राह—वत्स ! गच्छोऽयं मया त्वदङ्गे स्थाप्यते, एनं यत्नेन रक्ष । गोष्ठमाहिले फल्गुरक्षिते च विशेषतो विनयेन वर्तितव्यं भवता, इत्युक्त्वा स आचार्यस्तं मुनीन्द्रं स्वपदे स्थापयित्वा भक्तप्रत्याख्यानानेन स्वर्गं गतः

अथ गोष्ठमाहिलमुनिः स्वगुरुं दिवं गतं ज्ञात्वा मथुरातो दशपुरनगरं समागतः । आचार्येण दुर्बलिकापुष्पमुनिः स्वपदे स्थापित इति निश्चयं जातामर्षः सन् पृथगुपाश्रये स्थितः । दुर्बलिकापुष्पाचार्यस्तत्रागत्य वन्दित्वा सविनयं गोष्ठमाहिल-

बाद में आचार्य महाराज ने दुर्बलिकापुष्प मुनि से कहा—वत्स ! इस गच्छ को मैं आज से तुम्हारी गोदी में स्थापित करता हूँ अतः यत्न से इस की रक्षा करते रहना । गोष्ठमाहिल एवं फल्गुरक्षित, इन बड़ों का विशेषरूप से विनय करते रहना । ऐसा कहकर आचार्य महाराज ने दुर्बलिकापुष्पमुनि को अपने पद पर स्थापित कर दिया और स्वयं भक्तप्रत्याख्यान कर समाधिमरण धारण कर लिया । अन्त में वे कालधर्म पाकर स्वर्ग में देव हुए ।

गोष्ठमाहिल को जब अपने गुरु का मरणवृत्तान्त ज्ञात हुआ तो वह मथुरा से विहार कर दशपुर नगर आये । वहाँ आकर वे अपने गुरुभाईयों के पास नहीं ठहरे, कारण कि उनको यह ज्ञात हो चुका था कि गुरु महाराज ने अपने पद पर दुर्बलिकापुष्प मुनि को स्थापित कर दिया है इससे उसके चित्त में क्रोध की मात्रा ने स्थान कर लिया, अतः वे वहाँ किसी दूसरे ही उपाश्रय में जाकर ठहर गये । दुर्बलिका-

मुनिने कहुं, वत्स ! आ गच्छने हुं आञ्छी तमारा ढाथमां सुप्रत कइं छुं, अेटवे डवेथी तेतुं यत्नपूर्वक रक्षणु करवानो जवाणहारी तमारी छे. गोष्ठ-माहिल अने इदशुरक्षित तमाराथी भोटा छे तो तेमनो विशेषइपथी विनय करता रहेजे. आभ कहीने आचार्य महाराजे दुर्बलिकापुष्प मुनिने पोतानी जगाये आचार्यपदे स्थापित करी हीधा. अने पोते भक्तप्रत्याख्यान करी समाधिपूर्वक काणधर्म पाभी स्वर्गमां देव इपे उत्पन्न थया.

गोष्ठमाहिले ज्यारे पोताना गुरुना समाधिपूर्वक काणधर्म पाभ्याना समाचार लइया के तुरत ज ते मथुराथी विहार करी दशपुर नगर आव्या. त्यां आवीने पोताना गुइलार्थअोनी साथे न उतर्या कारणु के, तेमना लणु-वामां आव्युं के गुइमहाराजे आचार्यपदे दुर्बलिकापुष्प मुनिने स्थापित कर्या छे, तेथी तेमना चित्तमां क्रोध लभूकी उठये अने तेथी तेमनी साथे न उतरतां तेओ कौई थील उपाश्रयमां उतर्या. दुर्बलिकापुष्पने ज्यारे आ वातनी

मुनिं प्राह—कथं पृथगुपाश्रये स्थीयते, एकत्रैव स्थानेऽस्माभिः स्थातव्यम्, इत्यु-  
क्तोऽपि गोष्ठमाहिलमुनिस्तथा स्थातुं नेच्छति, किंतु पृथगुपाश्रये एवं स्थितः ।

द्वितीये दिवसे दुर्बलिकापुष्पाचार्यः सूत्रवाचनार्थं गोष्ठमाहिलमुनेः समीपे  
स्वशिष्यान् प्रेषयति । ते शिष्या गोष्ठमाहिलमुनेः समीपं गत्वा प्रार्थयन्ति—सूत्रवा-  
चनां कारयन्तु भवन्तः । गोष्ठमाहिलमुनिना तद्वचनं न स्वीकृतम् । तदा तैः  
शिष्यैराचार्यस्य समीपे वाचना गृहीता ।

वाचनावसाने विन्ध्यनामकः शिष्यः अशीतिसहस्राधिकैककोटिसंख्यकपदयुक्तं

पुष्पाचार्य को जब बात ज्ञात हुई तो वे उनके पास आये और वन्दना  
करके गोष्ठमाहिल से कहने लगे । आपने पृथक उपाश्रय में स्थान क्यों  
किया ? हम सब को तो एक ही जगह रहना चाहिये । इस प्रकार आचार्य  
के कहने पर भी गोष्ठमाहिल ने उनकी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं  
दिया और न कुछ कहा भी अलग ही ठहरे रहे । दूसरे दिन दुर्ब-  
लिकापुष्पाचार्य ने अपने शिष्यों को सूत्रवाचना लेने के लिये गोष्ठमा-  
हिल के पास भेजा । शिष्य जाकर उनसे कहने लगे कि महाराज !  
गुरु महाराज ने आपके पास हम को सूत्रवाचना लेने के लिये भेजे हैं,  
अतः प्रार्थना है कि आप हम को सूत्र की वाचना दें । गोष्ठमाहिल  
ने उन शिष्यों की बात को अनसुनी करदी । शिष्य वापिस आगये  
और गुरुमहाराज से वाचना लेने लग गये ।

एक करोड अस्सी हजार १००८०००० पदवाले कर्मप्रवाद नामक

जल्लु थर्छ त्पारे ते तेमनी पासे जर्छ पडोन्था अने वंदना नभस्कार करीने  
गोष्ठमाहिलने कडेवा लाग्या. आप जुदा उपाश्रयमां शा भाटे उतर्या ?  
आपणे सधणाये तो अेक ज स्थणे रहेबुं जेर्छ अे. आ प्रकारे आ नवा  
आचार्यना कडेवा छतां पणु गोष्ठमाहिले तेमनी वात उपर कांथं ध्यान आप्युं  
नडीं, तेमज कांथं जवाय पणु न वाज्ये. अने ज्यां उतर्या छता त्यां ज रद्धा.

धीजे द्विवसे दुर्बलिकापुष्पाचार्ये पोताना शिष्येने सूत्रवाचना (सूत्रना-  
पाड) देवा भाटे गोष्ठमाहिल पासे भोकल्या. शिष्ये जर्छने तेमने कडेवा लाग्या  
के, महाराज ! गुरुमहाराजे अभौने आपनी पासे सूत्रवाचना देवा भाटे  
भोकल्या छे. आथी अमारी आपने निनांति छे के आप अमने सूत्रनी वाचना  
(पाड) आपो. गोष्ठमाहिले अे शिष्येनी वातने सांलणी न सांलणी करी अवगण्णी.  
शिष्ये पाछा इर्या अने गुरुमहाराज पासेथी वाचना (पाड) देवा लाग्या.

अेक करौड अेशीडज्जर १००८०००० पदवाणा कर्मप्रवाद नामना अष्टम

કર્મપ્રવાદનામકમષ્ટમં પૂર્વં પઠન્ ગુરું પૃચ્છતિ—કેન પ્રકારેણ જીવેન કર્મં વધ્યતે ?, આચાર્યેણોક્તમ્—કર્મં ત્રિવિધં વધ્યતે, વદ્ધં સ્પૃષ્ટં નિકાચિતં ચેતિ । તત્ર વદ્ધં યથા લોહતન્તુવેષ્ટિતઃ સૂચીકલાપઃ, સ્પૃષ્ટં યથા તા એવં સૂચિકાઃ કુટ્ટિતાઃ સત્યઃ સંશ્લિષ્ટા ભવન્તિ તદ્વત્, નિકાચિતં તુ યથા વહ્નિતાપેન કુટ્ટનૈશ્ચ તાઃ સૂચિકા એકત્વં પ્રાપ્તા-સ્તદ્વત્ । એવમાત્મા પૂર્વં રાગદ્વેષપરિણામતઃ સકલૈઃ પ્રદેશૈર્જ્ઞાનાવરણીયાદિકં કર્મં વધ્નાતિ । પરિણામવૃદ્ધ્યા તદેવ કર્મં સ્પૃષ્ટં ભવતિ, સંશ્લિષ્ટપરિણામતસ્તુ તદેવ કર્મં નિકાચિતં ભવતિ । જીવપ્રદેશૈર્વદ્ધમાત્રં વદ્ધં કર્મં તદૈવ વિઘટતે, નિન્દનાદ્યુપાયૈર્નશ્યતિ,

અષ્ટમપૂર્વં કો પઢતે હુએ વિંધ્યનામ કે એક શિષ્ય ને વાચના કે પૂર્ણ હોને પર ગુરુ સે પૂછા—જીવ કે સાથ કર્મોં કા બંધ કિસ પ્રકાર સે હોતા હૈ ? આચાર્ય મહારાજ ને કહા સુનો—કર્મ ત્રીન પ્રકાર કે હૈ—વદ્ધ, સ્પૃષ્ટ ઓર નિકાચિત । જીવ કે સાથ ઇન્હોં કર્મોં કા બંધ હોતા હૈ । લોહે કે તાર સે વેષ્ટિત જૈસે સૂઈયોં કા કલાપ—સમૂહ હોતા હૈ ઇસી તરહ વદ્ધકર્મ હોતે હૈ । જૈસે વે હી સૂઈયાં જબ ખૂબ કૂટી જાકર પરસ્પર મેં સંશ્લિષ્ટ હો જાતી હૈ ઇસી તરહ કે સ્પૃષ્ટ કર્મ હોતે હૈ । જૈસે—અગ્નિ મેં તપાકર ઓર કૂટકર સૂઈયાં—એક કરદી જાતી હૈ ઇસી તરહ કા નિકાચિત કર્મ હોતે હૈ । આત્મા પહિલે રાગ—દ્વેષપરિણામ સે સકલ પ્રદેશોં દ્વારા જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોં કા બંધ કરતા હૈ, પશ્ચાત્ પરિણામવૃદ્ધિ સે વહી વદ્ધકર્મ સ્પૃષ્ટ હો જાતે હૈ । સંશ્લિષ્ટ પરિણામોં સે વહી કર્મ નિકાચિત હો જાતે હૈ । જીવપ્રદેશોં કે સાથ વદ્ધમાત્ર વદ્ધકર્મ ઁસી સમય દૂર હો સકતે હૈ

પૂર્વં તુ અધ્યયન કરતાં કરતાં વિંધ્યનામના એક શિષ્યે વાચના પૂર્ણ થતાં ગુરુને પૂછ્યું—જીવની સાથે કર્મોંનો અંધ કયા પ્રકારથી થાય છે? આચાર્ય મહારાજે કહ્યું—સાંભળો! કર્મ ત્રણ પ્રકારનાં છે. વદ્ધ, સ્પૃષ્ટ અને નિકાચિત. જીવની સાથે આજ કર્મોંનો અંધ હોય છે. લોહનાતારમાંથી જેવી રીતે સોયનો સમૂહ તૈયાર થાય છે, એજ રીતે વદ્ધ કર્મ થાય છે. જેમ તે જ સોયનો સમૂહ બ્યારે ખૂબ ટીપાયા પછી પરસ્પરમાં એકરૂપ થઈ જાય છે એજ રીતના સ્પૃષ્ટ કર્મ હોય છે. જેમ અગ્નિમાં તપાવીને અને ટીપીને સોયોને એક કરવામાં આવે છે એજ રીતે નિકાચિત કર્મ હોય છે. આમાં પહેલાં રાગદ્વેષ પરિણામથી સકળ પ્રદેશો દ્વારા જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંનો અંધ કરે છે. પછી પરિણામવૃદ્ધિથી તેજ વદ્ધકર્મ સ્પૃષ્ટ થઈ જાય છે. સંશ્લિષ્ટ પરિણામોથી એજ કર્મ નિકાચિત બની જાય છે. જીવપ્રદેશોની સાથે વદ્ધમાત્ર વદ્ધકર્મ એ સમયે દૂર થઈ શકે છે. આત્માની સાક્ષીએ પોતાના કર્મોંને

स्पृष्टं कर्म कालान्तरेण प्रायश्चित्तादिना निवर्तते, यथा आर्द्रमृत्पिण्ड-शुष्कमृत्पिण्डौ कुडचे प्रक्षिप्येते, तत्र य आर्द्रमृत्पिण्डः स कुडचे संलग्नो भवति एवं रागद्वेष-परिणामवृद्ध्या जीवे कर्माणि संलग्नानि भवन्ति । यस्तु शुष्कः स स्पृष्टः सन्नेव निवर्तते, एवं बद्धं कर्म तदैव निवर्तते । निकाचितं तु वह्न्ययः, पिण्डन्यायेन जीवेन सहैकीभूतम्, उदयं प्रायैव चिरेणापि वेद्यते, नान्यथा इति गुरुसंनिधाव-धीत्य विन्ध्यमुनिर्गोष्ठमाहिलस्य समीपेऽन्यदा तथैव प्ररूपयति ।

आत्मसाक्षिक निन्दना, गुरुसाक्षिकगर्हणा आदि उपायों से झड़ जाते हैं । स्पृष्टकर्म कालान्तर में प्रायश्चित्त आदि से दूर हो सकते हैं जैसे-गीली मिट्टी का पिंड और शुष्क मिट्टी का पिंड भीतपर डालने से जो गीली मिट्टी का पिंड होता है तो वहीं पर चिपक जाता है, इसी तरह रागद्वेष-परिणामों की वृद्धि से जीव में कर्म संलग्न हो जाते हैं-चिपक जाते हैं, वे स्पृष्ट कर्म हैं, और जो सूखी मिट्टी का पिंड है वहाँ से छूते ही नीचे गिर पड़ता है, उसी प्रकार बद्धकर्म उसी वक़्त दूर हो जाते हैं । निकाचित कर्म जिस प्रकार लोहे के गोले में अग्नि के प्रवेश करने पर दोनों एकमेक से हो जाते हैं, इसी प्रकार जो कर्म जीव के साथ एकीभूत हो जाते हैं वे निकाचित हैं । ये बिना भोगे नहीं छूटते हैं । इन का फल जीव को बहुतकालतक भी अवश्य भोगना पड़ता है । ये दूसरे रूप नहीं हो सकते हैं । इस प्रकार गुरुमहाराज के पास पढ़कर विन्ध्यमुनि किसी

नीहवाथी तेमञ्ज गुरुनी साक्षिञ्जे गड्ढा कश्वा, आदि उपायोथी कर्मक्षय थाय छे. स्पृष्टकर्म काणांतरमां प्रायश्चित्त विगेरे करवाथी इर थध शके छे नेम-लीनी भाटीने पिंड अने सुकी भाटीने पिंड भींत उपर नाभवाथी लीनी भाटीने पिंड डोय छे ते त्यां थोटी जय छे, ब्यारे सुकी भाटीने पींड भींत पर थोटतो नथी. आ प्रभाणे रागद्वेष परिष्ठाभोनी वृद्धिथी लुवमां कर्म संलग्न थध जय छे.-थोटी जय छे. ते स्पृष्ट कर्म छे अने ने सुकी भाटीने पिंड छे ते त्यां अडतां न नीचे पडी जय छे. अद्धकर्म पञ्च अञ्ज रीते इर थध जय छे. निकाचित कर्म ने रीते दोढाना गोणाने अग्निमां तपावतां दोढुं अने अग्नि अने अक रूप अनी जय छे. तेवी रीते ने कर्म लुवनी साथे अक रूप थध जय छे ते निकाचित कर्म छे. ते उदय आव्या वगर छुटतां नथी. अने पुरीष्ठाभ लुवने धष्ठा काण सुधी पञ्च अवश्य लोगवपुं पडे छे. अने थीज रूप थध शकतां नथी. आ प्रकारे गुरु



एवं प्ररूपणां श्रुत्वा गोष्ठमाहिलो विन्ध्यमुनिं प्राह—नैवं शास्त्रकृतसंमतम्, यथा कञ्चुकः कञ्चुकिनो देहं स्पृशति, किं तु देहेन सह श्लिष्टो न भवति, तथा कर्म जीवं स्पृशति न तु अविभागेन संमिलितं भवति, यदि जीवेन सहाविभागबद्धं भवेत्, तर्हि कर्म न त्रियुक्तं भवितुमर्हति, तथा च जीवस्य भवक्षयो न स्यादिति । विन्ध्ये-नोक्तम्—ममाचार्येणैवमाख्यातं मया तदुच्यते । गोष्ठमाहिलो वदति—त्वद्गुरुः किं विजानाति । ततः शङ्कितो भूत्वा विन्ध्यमुनिर्गुरुं पृच्छति—किमिदं मया सम्यक्

समय गोष्ठमाहिलमुनि के पास गये—और पूछने पर उन के पास इसी तरह की प्ररूपणा की ।

विन्ध्यमुनि द्वारा कृत इस प्रकार की प्ररूपणा सुनकर गोष्ठमाहिल ने उनसे कहा इस प्रकार की प्ररूपणा शास्त्रकारों की दृष्टि से उचित नहीं है । जैसे कञ्चुक-अंगरखा पहिरने वाले की देह को छूता तो है परन्तु उससे श्लिष्ट नहीं होता है, इसी तरह कर्म जीव को छूता तो है परन्तु वे अविभागरूप से उसके साथ संमिलित नहीं होते हैं । यदि जीव के साथ वे अविभागरूप से संमिलित माना जायगा तो वे कभी भी उससे अलग नहीं हो सकेंगे, अलग नहीं हो सकने के कारण जीव को संसार का क्षय भी कभी नहीं होगा । गोष्ठमाहिल की इस बात को सुनकर विन्ध्यमुनिने उनसे कहा—मुझे तो आचार्य महाराज ने ही ऐसा समझाया है अतः मैं भी ऐसा ही कहता हूँ । गोष्ठमाहिलने कहा—तुम्हारे

महाराजनी पासेथी मोध भेणवीने विन्ध्य मुनि केधं ओक सभये गोष्ठमाहिल मुनिनी पासे गया अने पूछयुं. जवाभमां तेभणु आ प्रकारनी प्ररूपणा करी.

विन्ध्यमुनिओ कडेली आ प्ररूपणा सांलणीने गोष्ठमाहिले कहुं आ प्रकारनी प्ररूपणा शास्त्रकारेनी दृष्टिओ उचीत नथी. जेम कञ्चुक-अंगरखुं तेना पहरेवावाणाना शरीरने अडके छे पणु अनाथी अेकइप थतुं नथी. ओज रीते कर्म आत्माने अडके छे परंतु अविभागइपथी अेनी साथे अेक-इप थथं शकतुं नथी. जे अुवनी साथे ते पणु अविभागइपथी संमिलित मानवामां आवे तो ते कदी पणु अेनाथी अलग थथं शके नही. तो पछी अलग थथं शकवाना कारणु अुवने संसारना लव अ्रमणुने। पणु क्षय न ज थाय. गोष्ठमाहिलनी आ वातने सांलणीने विन्ध्यमुनिओ तेभने कहुं भने तो आचार्य महाराजे ज अेवुं सभलव्युं छे, अेटला भाटे ज हुं अे प्रभाणु कहुं छुं. गोष्ठमाहिले कहुं तमारा गुरु लणु छे ज शुं ? गोष्ठमाहिलनी आ



न श्रुतम् ? आचार्येणोक्तम्-त्वया सम्यक् श्रुतम्, इदमित्थमेव नान्यथा । तदनु विन्ध्येन गोष्ठमाहिलोक्तं कथितम् । आचार्यो वदति-एतत् सर्वं मिथ्या, यथा अयः-पिण्डं वह्निः सर्वात्मना संबध्यते वियुज्यते च, एवं कर्माऽपि । न तु देहकञ्चुकवत् स्पृष्टमात्रं भवति ।

यथात्माऽन्यप्रदेशस्थं कर्मादायात्मानमनुवेष्टयेत्, तदा कञ्चुकोपमा घटेत्, किंतु सूत्रविरोधादपसिद्धान्तः स्यात् । सूत्रे हि अन्यप्रदेशस्थस्य कर्मणो ग्रहणं निषिध्यते।

गुरुने इसका मर्म नहीं जाना है। गोष्ठमाहिलकी बात सुनकर विन्ध्यमुनि को संदेह हो गया और जाकर अपने गुरुमहाराजसे कहा कि क्या मैंने पढ़ते समय पाठ आपके पास अच्छी तरह नहीं सुना है, जो इसका अर्थ इस प्रकार नहीं है, ऐसा गोष्ठमाहिलजी कह रहे हैं। गुरु ने सुनकर कहा-नहीं ऐसा नहीं है-तुमने पाठ ठीक सुना है, यह जैसा तुम कह रहे हो वैसा ही है। गोष्ठमाहिल जो कहते हैं वह ठीक नहीं है, मिथ्या है, जिस प्रकार लोहे के पिंड में अग्नि सर्वात्मना प्रविष्ट होती है और वियुक्त भी होती है ठीक इसी प्रकार कर्म भी आत्मप्रदेशों के साथ एक क्षेत्रावगाह होकर बंधते हैं और वियुक्त होते हैं। कंचुक जैसे शरीर पर स्पृष्टमात्ररूपमें रहता है इस प्रकार कर्म आत्मा में नहीं रहते हैं।

कंचुक की उपमा तो तब सुसंगत बैठ सकती कि जब आत्मा अन्य प्रदेशस्थ कर्म को ग्रहण कर अपने आप में अनुवेष्टित करता ।

प्रभाषे वात सांभलीने विन्ध्यमुनिना मनमां संदेह जाग्ये अने तेणु ज्ठ पोताना गुरुमहाराज ने कहुं के मे लक्ष्मी वणते आपनी पासेथी पाठ अशेअर सांभल्ये नथी, जेथी अनेा अर्थ अे प्रकारनेा न डोर्छ शके अेनुं गोष्ठमाहिलेण कही रह्या छे. आ सांभलीने गुरुअे कहुं-नही, अेम नथी तमे पाठ सांभल्ये छे ते अशेअर छे, अने तमे जेम कडे छे ते अ अशेअर छे. गोष्ठमाहिलेण जे कडे छे ते अशेअर नथी, मिथ्यात्व छे, जे रीते डोढाना पिंडमां अग्नि सर्वात्मना प्रविष्ट थाय छे अने वियुक्त पणु थाय छे. अेअ प्रभाषे कर्म पणु आत्मप्रदेशोनी साथे अेक क्षेत्र अवगाह थधने अंधाय छे अने वियुक्त थाय छे. कंचुक जेम शरीर अपर स्पर्श इपे अ रहे छे, अेअ रीते कर्म पणु आत्मांमां रहेतां नथी.

कंचुकनी उपमा तो त्पारे अ सुसंगत थध शके के अ्यारे आत्मा अन्य प्रदेशस्थ कर्मने अडणु करी तेने पोतानांमां जेणवी ल्ये परंतु अेवी मान्यता

કિંચ—યદિ કર્મ કઞ્ચુકવદ્ બહિઃ સ્થિતં ભવેત્ તર્હિં કર્મહેતુકા વેદનાઽપિ અન્તરાત્મનિ કથં સ્યાત્ ? ।

યદિ કર્મ સંચરણશીલમિતિ મધ્યેઽપિ સંસ્થિતસ્ય કર્મણઃ ફલમાત્મન્યન્તવેદનાઽપિ સ્યાદિતિ તેન મન્યતે, તદા તદુક્તં કઞ્ચુકસાદૃશ્યં વ્યાહતં સ્યાત્, યતઃ કઞ્ચુકો બહિઃ સ્પૃષ્ટ એવં ભવતિ, ન તુ દેહાન્તર્ગતઃ, કિંચ—બહિરન્તશ્ચ યુગપદ્વેદના ન સ્યાત્, કર્મણસ્તુ બહિરન્તર્વા સમ્બન્ધાદ્ વેદના યુગપત્ સંભવતિ । કિંચ—સંચરણત્વં

કિન્તુ એસી માન્યતા તો હૈ નહીં, ક્યોં કિ ઇસ પ્રકાર કી માન્યતા મેં અપસિદ્ધાન્ત નામ કા નિગ્રહસ્થાન આતા હૈ । સૂત્ર મેં ‘ આત્મા અન્ય-પ્રદેશસ્થ કર્મ કા ગ્રહણ કરતા હૈ યહ્ બાત નિવેધ કરને મેં આઈ હૈ ।

ઔર ખી—જૈસે કંચુક બાહિર સ્થિત રહતા હૈ ઉસી તરહ્ કર્મ ખી યદિ આત્મા સે બાહિર રહે તો ઉસકે દ્વારા હોનેવાલી વેદના ખી આત્મા કે બાહર હી હોની ચાહિયે । આત્મા કે ખીતર નહીં ।

યદિ કહા જાય કિ કર્મ સંચરણ સ્વભાવવાલા હૈ ઇસલિયે વહ આત્મા કે મધ્યસ્થિત હોકર ઉસકો અન્તવેદના કા હેતુ હો જાયગા, સો એસા કથન કંચુક કે સાદૃશ્ય સે વ્યાહત હો જાતા હૈ, ક્યોં કિ કંચુક તો દેહ્ કે બાહર હી મેં સ્પૃષ્ટ રહતા હૈ વહ શરીર કે ખીતર તો કુલ પ્રવિષ્ટ હોતા નહીં હૈ । દૂસરે—યદિ કર્મ આત્મા સે સ્પૃષ્ટમાત્ર રહતે હૈ યહ્ બાત હી માની જાય તો એક સાથ આત્મા કો જો ખીતર બાહિર મેં વેદના કા અનુભવ હોતા હૈ વહ નહીં હોના ચાહિયે । યદિ કર્મોં કો

તો છે જ નહીં; કેમ કે, આ પ્રકારની માન્યતામાં અપસિદ્ધાન્ત નામનું નિગ્રહસ્થાન આવે છે. સૂત્રમાં આત્મા અન્ય પ્રદેશસ્થ કર્મને ગ્રહણ કરે છે આ વાતનો નિવેધ કરવામાં આવેલ છે.

હવે જેમ કંચુક શરીર ઉપર છતાં શરીરમય નહીં એમ રહે છે, એજ રીતે કર્મ પણ આત્મા સાથે છતાં પણ આત્માથી અલગ રહે તો એના દ્વારા થનારી વેદના પણ આત્માની બહાર થવી જોઈએ—આત્માની અંદર નહીં.

જે એમ કહેવામાં આવે કે—કર્મ સંચરણ સ્વભાવવાળાં છે, તો તે આત્માની મધ્યમા સ્થિત થઈ અને અંતવેદનાનું કારણ બની જાય એટલે એવું કથન કંચુકના દેહાન્તથી વિરૂધ્ધનું થઈ જાય છે કેમ કે, કંચુક તો દેહની ઉપર જ સ્પર્શ કરીને રહે છે શરીરની અંદર તેનો પ્રવેશ થતો નથી. હવે ખીજું જે કર્મ આત્માથી સ્પર્શીને માત્ર રહે છે એ વાત પણ માનવામાં આવે તો આત્માને જે અંદર અને બહાર એકી સાથે વેદનાનો અનુભવ

मन्यते चेत्, तर्हि जीवेन सह भवान्तरे कर्म न गच्छेत्, देहस्थनिःश्वासादिवायुवत् ।

तस्माद् रागादिबन्धहेतूनां सद्भावात् संपूर्णात्मनि सर्वैः प्रदेशैर्निबद्धं कर्म भवतीति मन्यताम् । जीवेन सहाविभागसम्बन्धात् कदापि कर्मणः पृथग्भावो नैव स्यादिति तद्वचो नैव श्रद्धेयम्, यतः क्षीरनीरयोरविभागसम्बन्धवतोरपि हंसचञ्चुना पृथग्भावो जायमानः प्रत्यक्षेण निरीक्ष्यते ।

संचरणस्वभाववाला माना जाय तो भवान्तर में जो कर्म जीव के साथ जाते हैं यह बात ठीक नहीं बैठ सकेगी, क्यों कि देह में स्थित वायु, आदि जैसे जीव के साथ नहीं जाते हैं ।

इसलिये ऐसा ही मानना चाहिये कि रागादिक बंध के कारणों के सद्भाव में संपूर्ण आत्मामें समस्त प्रदेशों के साथ कर्म निबद्ध होता है, स्पृष्टमात्र नहीं रहता । जीव के साथ कर्मोंका अविभक्त संबंध है, इसलिये वह कभी भी जीव से पृथक् नहीं हो सकते, ऐसी जो गोष्ठमाहिल की तर्कणा है वह श्रद्धेय नहीं है । यह तो प्रत्यक्ष से स्पृष्ट प्रतीत होता है कि दूध और पानी अविभक्त हैं—परन्तु हंसकी चञ्चु उन्हें अलग २ कर देती है । इसलिये यह “जो अविभक्त हैं वे पृथक् नहीं हो सकते ” कैसे एकान्ततः माना जा सकता है । इसी तरह सुवर्ण और सुवर्णपाषाण परस्पर में अविभक्त रहते हैं परन्तु अग्नि का संयोग उन्हें अलग २ कर देता है ।

थाय છે તે ન થવો જોઈએ. જે કર્મોને સંચરણ સ્વભાવવાળા માનવામાં આવે તો ભવાન્તરમાં ( ભવ ભવમાં ) કર્મ જીવની સાથે જાય છે એવી માન્યતા છે તે પણ ઠીક બેસી શકશે નહીં, કેમ કે એવી રીતે તો દેહમાં રહેલાં વાયુ વિગેરે પણ જીવની સાથે જતાં નથી.

એટલા માટે એ માનવું જોઈએ કે, રાગાદિક બંધના કારણોના સદ્ભાવથી સંપૂર્ણ આત્મામાં સમસ્ત પ્રદેશોની સાથે કર્મ નિબંધ હોય છે, સ્પર્શિને માત્ર રહેતાં નથી. જીવની સાથે કર્મોને અવિભક્ત સંબંધ છે. આ કારણે તે કદી પણ જીવથી જુદાં થઈ શકતાં નથી. એવા જે ગોષ્ઠમાહિલના તર્ક વિતર્ક છે તે, શ્રદ્ધા કરવાં જેવાં નથી. એમ તો પ્રત્યક્ષથી સ્પષ્ટ ખાત્રી થાય છે કે, દૂધ, અને પાણી અવિભક્ત છે પરંતુ હંસની ચાંચ તેને અલગ કરી દે છે આથી એવો નિયમ જણાય છે કે જે અવિભક્ત છે તે જુદાં પડી શકતાં નથી તે સિદ્ધાન્તને કઈ રીતે એક સ્વરૂપે માનવામાં આવે, એજ પ્રમાણે સુવર્ણ અને કાચું સોનું ( માટી સહિતનું ) પરસ્પરમાં અવિભક્ત રહે છે પરંતુ અગ્નિનો સંયોગ તેને અલગ અલગ કરી દે છે.

किंच — अश्महेमयोरविभागसम्बन्धवतोरपि वह्न्यादिसंयोगेन पृथग्भावः प्रत्यक्षेण दृश्यते । इत्यादि वचनं श्रुत्वा विन्ध्यमुनिर्निःशङ्कः सन् गोष्ठमाहिलस्य समीपमागत्य शास्त्रसिद्धान्तं प्रोक्तवान् । परंतु गोष्ठमाहिलमुनिर्मिथ्यात्वोदयवशात् स्वाग्रहं न त्यक्तवान् ।

अन्यदा स विन्ध्यमुनिः चतुरशीतिलक्षपदात्मके नवमे पूर्वे प्रत्याख्यानाधिकारं पठन् मुनेः प्रत्याख्यानं वर्णयति—“ पाणाइवायं पचक्खामि जावज्जीवाए ” इत्यादि । तदा गोष्ठमाहिलः प्राह—“ जावज्जीवाए ” इति न वक्तव्यम्, यतः—अपरिमाणकृतं प्रत्याख्यानं श्रेयः, कृतपरिमाणं तु दुष्टं, यावज्जीवमिति प्रोक्ते

जब गुरु ने इस प्रकार समझाया तो विन्ध्यमुनि निःशंकचित्त होकर गोष्ठमाहिल के पास आकर कहने लगे कि देखो शास्त्र का सिद्धान्त इस प्रकार है अतः आप का कथन उचित नहीं है । आप अपने आग्रह को छोड़ दो । विन्ध्यमुनि के इस प्रकार निवेदन करने पर गोष्ठमाहिलने कुछ भी ध्यान नहीं दिया और अपने आग्रहपर ही डटे रहे ।

एक समय की बात है कि विन्ध्यमुनि चौरासी लाख (८४०००००) पदवाले प्रत्याख्यानप्रवाद नामके नवमपूर्व के प्रत्याख्यान अधिकार का अध्ययन कर रहे थे उसमें यह पाठ उन्होंने ने पढ़ा कि “ पाणाइवायं पचक्खामि जावज्जीवाए ” । गोष्ठमाहिल ने इस पाठ को सुना और बोले कि इस पाठ में “ जावज्जीवाए ” यह नहीं बोलना चाहिये, क्यों कि जिस प्रत्याख्यान में प्रमाण नहीं किया जाता है वही ठीक होता है ।

જ્યારે શુરુએ આ પ્રકારે સમજાવ્યું ત્યારે વિન્ધ્યમુનિની શંકા દૂર થઈ અને ગોષ્ઠમાહિલની પાસે જઈ કહેવા લાગ્યા કે, ભુએ! શાસ્ત્રનો સિદ્ધાંત તો આ પ્રકારનો છે, માટે આપ જે કહેો છો તે યોગ્ય નથી. આપ આપના દુરાશ્રદ્ધને છોડી દો. વિન્ધ્યમુનિના આ પ્રકારના નિવેદન ઉપર ગોષ્ઠમાહિલે કાંઈ ધ્યાન આપ્યું નહીં અને પોતાના જ આશ્રદ્ધ ઉપર તે મક્કમ રહ્યા.

એક સમયની વાત છે કે વિન્ધ્યમુનિ ચોરાસી લાખ (૮૪૦૦૦૦૦) પદવાળા પ્રત્યાખ્યાનપ્રવાદ નામના નવમપૂર્વના પ્રત્યાખ્યાન અધિકારનું અધ્યયન કરી રહ્યા હતા તેમાં આ પ્રમાણેનો પાઠ તેમના વાંચવામાં આવ્યો કે, “ પાણાઈવાયં પચક્કલામિ જાવજ્જિવાએ ” ગોષ્ઠમાહિલે આ પાઠને સાંભળ્યો અને બોલ્યા કે આ પાઠમાં “ જાવજ્જિવાએ ” એવું ન બોલવું જોઈએ, કેમકે જે પ્રત્યાખ્યાનમાં પ્રમાણ નથી કરવામાં આવતું તે જ ઠીક હોય છે. પ્રમાણવાળું

कालमानं स्वीकृतं भवति, तथा च प्रत्याख्यानस्य सावधिकत्वेनावधौ पूर्णे प्रत्याख्या-  
तवस्तुन आशंसासंभवात् “अहमग्रे हनिष्यामी”—त्याशंसारूपं दूषणं स्यात्, तस्माद्  
‘अपरिमाणेन सर्वं प्राणातिपातं प्रत्याख्यामि त्रिविधं त्रिविधेने’—ति वाच्यं मुनिनेति।

गोष्ठमाहिलेनैवमुक्ते सति विन्ध्यमुनिर्दुर्बलिकापुष्पाचार्यं पृच्छति—भदंत !  
गोष्ठमाहिलमुनिर्जावज्जीवमिति प्रत्याख्याने वक्तुं नेच्छति ।

आचार्यः प्राह—प्रत्याख्यानस्य कालावधिकत्वमवश्यं कार्यम्, अन्यथा मर्या-  
दाविरहाद् अकार्यसेवनं स्यात्, अपि चोत्सूत्रप्ररूपणापत्तिस्ततश्चानन्तसंसारः स्यात् ।

प्रमाणवाला प्रत्याख्यान श्रेयस्कर नहीं होता। यावज्जीव कहने से प्रत्या-  
ख्यान प्रमाणोपेत हो जाता है। काल का प्रमाण इस शब्द से स्पष्टरूप में  
कथित होता है। और भी—प्रत्याख्यान में सावधिकता आने से अवधि  
की पूर्णता होने के बाद प्रत्याख्यान वस्तु में आशंसा—आकांक्षा—का संभव  
होने से “मैं आगे माँगा” इस प्रकार का दूषण लगता है, इसलिये  
मुनि को तो ऐसा ही कहना चाहिये कि “मैं त्रिविध त्रिकरणसे विना  
किसी प्रमाण के समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ।”

गोष्ठमाहिल की इस तर्क को सुनकर विन्ध्यमुनि ने जाकर आचार्य  
महाराज दुर्बलिकापुष्पमुनिसे पूछा कि भदंत ! गोष्ठमाहिल मुनि प्रत्या-  
ख्यान में “जावज्जीवाए” नहीं कहना चाहिये ऐसा कहते हैं। विन्ध्य-  
मुनि की बात सुनकर आचार्य महाराज ने कहा कि प्रत्याख्यान में काल  
की अवधि अवश्य करनी चाहिये, अन्यथा मर्यादा का विरह होनेसे

प्रत्याख्यान श्रेयस्कर नहीं होता। यावज्जीव कहेवाली प्रत्याख्यान प्रमाणोपेत  
शर्त नष्ट है। कालनું प्रमाण आ शब्दही स्पष्ट रूपमां कथित थाय है।  
प्रत्याख्यानमां समय मर्यादा आववाली अवधिनी पूर्णता तथा पछी प्रत्याख्यात  
करैली वस्तुमां आशंसा—आकांक्षानो संभव होवाली “हुं आगण भारीश” आ  
प्रकारनું दूषण लागे छे आली मुनिये तो अबुं कहेवुं नेधये के हुं त्रिविध  
त्रिकरणही केध पछ प्रमाण वगर समस्त प्राणातिपातनું प्रत्याख्यान कर छुं।

गोष्ठमाहिलना आ तर्कने सांलणीने विन्ध्यमुनिये नर्धने आचार्य भडा-  
राज दुर्बलिकापुष्प मुनिने पूछयुं के, हे भदन्त ! गोष्ठमाहिल मुनि “जावज्जि-  
वाए” अबुं प्रत्याख्यानमां न कहेवुं नेधये अब कहे छे। विन्ध्यमुनिनी बात  
सांलणी आचार्य भडाराने कहुं के, प्रत्याख्यानमां कालनी अवधि अवश्य करवी  
नेधये। ये प्रमाण न करातां मर्यादानो विरह थवाली अकार्य सेवन पछ



अथ गोष्ठमाहिलमुनिस्तथाऽभिनिवेशाद् दुर्बलिकापुष्पाचार्येण सह वादार्थं समागत्य स्वमतं वर्णयति । आचार्यः प्राह—अहो आर्य ! कालावधियुक्तं यावज्जीवं प्रत्याख्यानं देवादिभवे व्रतभङ्गदोषवारणार्थं क्रियते, देवादिभवे व्रतप्रसङ्गाभावात् । एवमुक्तेऽपि गोष्ठमाहिलमुनिः स्वाग्रहं न मुञ्चति । तदा सर्वसंघेन मिलित्वा कायो-

अकार्यं सेवनं भी हो सकता है। तथा ऐसा करने से उत्सूत्रप्ररूपणा करने की आपत्ति आती है इससे उस जीव को अनन्त संसार हो जाता है।

गोष्ठमाहिल मुनि ने इस प्रकार के अभिनिवेश के वशसे दुर्बलिका पुष्पाचार्य के पास आकर इस विषय पर उनसे वादविवाद करना प्रारंभ कर दिया। आचार्य ने कहा अहो आर्य ! यावज्जीवरूप काल की अवधियुक्त जो प्रत्याख्यान किया जाता है उसका मतलब यह है कि संयमी आत्मा मर कर यदि देवादिभवे में पहुँच जाता है, तो वह वहाँ व्रतभंग के दोष का भागी नहीं हो सकता है, क्योंकि वहाँ व्रतप्रसंग का अभाव है। मनुष्यभवे में जो इसने व्रत लिये है वे उस मनुष्यभवे तक ही गृहीत व्रतों का निरतिचार रूप से—निर्दोषरूप से—पालन करने वाला है, अन्य देवादिभवे में नहीं। यही बात इस यावज्जीवपद से लक्षित होती है। इस प्रकार आचार्य महाराज द्वारा समझाने पर भी गोष्ठमाहिल ने अपने दुराग्रह का परित्याग नहीं किया। जब संघने गोष्ठमाहिल की यह हालत देखी तो संघ ने मिल कर कायोत्सर्गद्वारा एक देवी का

थर्धं ज्ञयं छे, तथा ज्येभं करवाथी उत्सूत्रं प्ररूपणं करवाथी आपत्ति आवे छे. आभं करवाथी तो आ ज्ञवने अनन्त संसारनी वृद्धि थाय छे.

गोष्ठमाहिल मुनि आ प्रकारना अलिमानथी छकी जर्धने दुर्बलिका-पुष्पाचार्यनी पासे आवी ज्ये विषय उपर ज्येभनी साथे वादविवाद शर् कर्ये आचार्ये कर्हुं, अहो आर्य ! यावज्जीवरूप कालनी अवधियुक्त जे प्रत्या-ख्यान करवाभां आवे छे ज्येनुं कारणे ज्ये छे के, संयमी आत्मा मरीने जे देव विगेरे लवने पाभे छे तो त्यां ते व्रतभंगना दोषना भागी नथी बनतो कारणे के त्यां व्रत नियमनो अभाव छे. मनुष्यनालवभां ज्येभजे जे व्रत नियम लीधां छे ते ज्येना मनुष्यलव सुधी ज लीधेला व्रतोनो निरतिचार रूपथी—निर्दोष रूपथी—पालन करवावाणा छे, पणु देव विगेरे अन्य लवभां ज्ये शक्य नथी. आ वात आ यावज्जीव पढेना हेतु छे. आ प्रकारे आचार्य महाराजे समजववा छतां पणु गोष्ठमाहिले पौताना दुराग्रहने न छेउथे. ज्यारे संघे गोष्ठमाहिलनी आ हालत जेर्धं त्यारे संघे लेगा भणीने कायोत्सर्ग-



त्सर्गेण देवी आकृष्टा । सा आगता ग्राह-आदिशतु सङ्घः । संघो वदति-हे देवि ! महा-विदेहे गत्वा तीर्थकरं पृच्छ-दुर्बलिकापुष्पाचार्यप्रमुखः संघो यद् वदति तत् सत्यम्, किमुत गोष्ठमाहिलोक्तम्, एतन्निश्चेतुं सङ्घः कायोत्सर्गेण स्थितः । सा महाविदेह-तीर्थकरं पृष्ट्वा समागता वदति-सङ्घः सम्भगवादी, अन्यस्तु मिथ्यावादी निह्वः । गोष्ठमाहिलमुनिस्तदा देवीवाक्येऽपि श्रद्धां न करोति वदति च-एषा मिथ्या वदति, न तत्र गता । ततः संघेन गोष्ठमाहिलमुनिस्तिरस्कृतो बहिष्कृतः । स चानालोचि-ताप्रतिक्रान्तश्च कालमासे कालं कृत्वा प्रथमकल्पे देवत्वेन समुत्पन्नः । ततः संसारे परिभ्रम्य मोक्षं यास्यति ।

इति सप्तमनिह्वगोष्ठमाहिलदृष्टान्तः ॥ ७ ॥

आकर्षण किया। देवी ने आकर कहा-संघ आज्ञा देवे मैं किसलिये बुलाई गई हूँ। संघने कहा हे देवि ! तीर्थकर के पास जाकर पूछो कि दुर्बलिकाचार्य प्रमुख संघ जो कहता है वह सत्य है कि गोष्ठमाहिल कहता है वह सत्य है। इस बात को निश्चय करने के लिये संघ ने कायो-त्सर्ग किया है। वह देवी वहां से विदेहक्षेत्र में तीर्थकर के पास गई और पूछकर वह वहां से वापिस आई। संघ से बोली-जो संघ कहता है वह सत्य है। दूसरा मिथ्यावादी निह्व है। इस प्रकार देवी के कहने पर भी गोष्ठमाहिल को उसके वचन में विश्वास नहीं हुआ। बोला-यह तो मिथ्या बोलती है, क्यों कि यह वहां गई ही नहीं है। संघ ने जब गोष्ठ-माहिल की इस प्रकार की बातें सुनी तो उसको संघ से बहिष्कृत कर

पूर्वक अेक देवीनुं आराधन कथुं. देवीअे आवीने कहुं, संघनी शी आज्ञा छे ? मने शा भाटे जोदाववामां आवी छे ? संघे कहुं के डे देवी ! तीर्थ-करनी पासे गधने पूछे के, दुर्बलिकापुष्पाचार्य प्रमुख संघ ने कडे छे ते सत्य छे के, गोष्ठमाहिल कडे छे ते सत्य छे ? आ वातने निष्पथ करवा भाटे श्रीसंघे कायोत्सर्ग करेव छे अने आपने तस्दी आपी छे. आ प्रभाणेनी डकीकत ज्ञाणी ते देवी त्यांथी महाविदेह क्षेत्रमां तीर्थकरनी पासे गध अने प्रश्नने। उत्तर भेणवीने त्यांथी पाछी करी अने श्रीसंघने ज्ञाण्युं के, श्रीसंघ ने कडे छे ते सत्य छे, न्यारे जीजे मिथ्यावादी निह्व छे. आ प्रकारे देवीना कडेवां छतां पणु गोष्ठमाहिलने देवीना वचनमां विश्वास न भेटे। अने तेणु कहुं के, अे देवी तो जोटुं जोले छे, केम के अे त्यां तीर्थकर पासे गध न नथी. संघे न्यारे गोष्ठमाहिलनी आ प्रकारनी वात सांलणी त्यारे तेने संघ जहार

एवमन्येऽपि सूत्रार्थापलापका निह्ववास्तदन्तर्गता विज्ञेयाः । यथा—बोटिकाः—  
दिगम्बराः, जैनाभासा दण्डिनः, साम्प्रतिकस्तेरापन्धधारकभिक्षुप्रभृतयश्च ।  
तत्र बोटिक ( दिगम्बर ) निह्ववदृष्टान्तः प्रोच्यते—

भगवतः श्रीमहावीरस्वामिनो निर्वाणसमयाब्जवाधिकषट्शत६०९वर्षेषु व्यती-  
तेषु रघुवीरपुरे दीपकोद्याने आर्यकृष्णाचार्यः समवसृतः । तत्र नगरे रिपुमर्दन-  
नामकस्य राज्ञः समीपे शिवभूतिनामको मल्लः समायातः, स श्रावस्तीनगरी-  
वास्तव्यस्य श्रीभद्रमल्लस्य पुत्रः सहस्रमल्लापरनामक आसीत् । स रिपुमर्दननृपं

दिया । अन्त में वह अनालोचित अप्रतिकान्त अवस्था में ही मरकर  
प्रथम कल्प में देव हुआ ।

॥ यह सातवें गोष्ठमाहिल निह्व की कथा हुई ॥ ७ ॥

इस प्रकार और भी जो सूत्रार्थ के अपलाप करनेवाले हैं वे सब  
निह्वों की कोटि में ही गर्भित जानना चाहिये । जैसे दिगम्बर तथा  
जैनाभास दंडी एवं तेरापन्धधारक भिक्षुजी वगैरह ।

दिगम्बरों की उत्पत्ति विषयक कथा इस प्रकार है—

भगवान् महावीर स्वामी को मोक्ष गये हुए जब छहसौ नौ  
६०९ वर्ष व्यतीत हो चुके तब रघुवीर पुर के दीपकोद्यान से आर्य  
कृष्णाचार्य आये । इस नगर में रिपुमर्दन नाम के राजा का शासन  
था । राजा के पास शिवभूति नाम का एक मल्ल आया । इसका दूसरा  
नाम सहस्रमल्ल था । यह श्रावस्ती नगरी के रहनेवाले श्रीभद्रमल्ल का

भुक्ती दीधो. अंतमां ते आद्योचना कथा वगर अने प्रतिकभणु कथा विना  
भरीने प्रथम कल्पमां देव था.

॥ आ सातमा गोष्ठमाहिल निह्वनी कथा थछ ॥ ७ ॥

आ रीते जे भीलओ सूत्रार्थने अवणे. अर्थ करवावाणा छे ते सधणा  
निह्वोनी कोटीना लणुवा लोथओ. जेभ दिगम्बर तथा जैनाभास दंडी अने  
तेरापन्धधारक भिक्षुल वगेरे.

॥ दिगम्बरानी उत्पत्ति विषयक कथा आ प्रकारनी छे. ॥

भगवान् महावीर स्वामीने मोक्ष पधार्थे न्यारे छसो नव (६०६)  
वर्ष वीती चुक्यां त्यारे रघुवीरपुरना दीपकोद्यानमां आर्य कृष्णाचार्य पधार्था  
आ रघुवीरपुर नगरमां रिपुमर्दन नामे राजा राज्य करतो. उतो. राजनी  
पासे शिवभूति नामे ओक मल्ल आओ. ओनुं भीलुं नाम सहस्रमल्ल उतुं.  
ओ श्रावस्ती नगरीमां रछेता श्री भद्रमल्लने पुत्र उतो. तेथे राजने कछुं

वदति-राजन्! तव सेवां कर्तुमिच्छामि, राज्ञा कथितम्-परीक्षानन्तरं तव सेवावसरं दास्यामि ।

अन्यदा राज्ञा स कृष्णचतुर्दश्यामाहूतः कथितश्च, अस्यां रात्रौ श्मशाने गत्वा तत्र तिष्ठ । स तद्वचनात् तत्र गतः । नृपेण तत्रान्ये पुरुषास्तस्य भयोत्पादनार्थं प्रच्छन्नरीत्या पश्चात् प्रेषिताः । राजपुरुषाः श्मशाने गत्वा व्याघ्रवेतालादिशब्दैर्भयमुत्पादयन्ति, तथाप्यसौ न विभेति, किंतु निःशङ्क एव तत्र स्थितः । स च

पुत्र था । आते ही शिवभूति ने राजा से कहा राजन्! मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ । राजाने कहा-पहिले मैं तुम्हारी परीक्षा करूँगा पश्चात् तुम्हें सेवा करने का अवसर दूँगा ।

किसी एक समय राजाने उसे कृष्णचतुर्दशी के दिन बुलाया । बुलाकर कहा-आज तुम रात्रि में श्मशान में जाकर बैठो । राजा की बात सुनकर शिवभूतिमल्लने वैसा ही किया । राजाने उसकी परीक्षा लेने के अभिप्राय से ऐसा काम किया कि कुछ अपने राजकर्मचारियों को श्मशान में गुप्तरीति से भेज दिये । और उनसे कह दिया कि-तुम सब वहाँ पर शिवभूति को डराने के लिये ऐसे काम करो कि जिससे उसको वहाँ भय जागृत हो जाय । सेवको ने जाकर वहाँ वैसा ही काम किया । व्याघ्र, वेताल आदि के शब्दोंद्वारा उसको अधिक से अधिक डराने का प्रयत्न किया तो भी शिवभूति डरा नहीं प्रत्युत ज्यों २ इन लोगोंने उसको डराने का प्रयत्न किया त्यों २ यह सुदृढ बनता गया और एक आसन पर जमकर बैठा रहा । जब राज-

के,-राजन्! हुं आपनी सेवा करवा भायुं छुं, राज्ञ्ये क्खुं के-हुं पडेकां तमारी परीक्षा करीश ये पछी ज तमने मारी सेवाभां राणीश.

कैाँ अेक सभये तेने राज्ञ्ये अंधारीयानी औदसने दिवसे गेलाअ्ये अने क्खुं के, आअनी रात तमे श्मशानभां गाणेा. राजनेा आदेश सांअणीने शिवभूति मट्ठे अे प्रमाणे क्खुं. राज्ञ्ये तेनी परीक्षा देवाना आशयथी पोताना केटकाक राजकर्मचारीअेान शुभ रीते श्मशानभां भेकली दीधा, अने तेअने क्खुं के तमे अधा शिवभूतिने उराववा माटे अेवी गेाडवणु करे के, जेथी शिवभूति लयलीत अनी जय. सेवकेअे त्यां जधने राज्ञ्ये क्खुा प्रमाणे क्खुं. वाध, अने वैतालना अवाअे करी करी अेने उराववाना धणुा प्रयत्नेा कर्या तो पणु शिवभूति जराअे उर्ये नडीं. परंतु जेम जेम अे डोकाअे अेने उराववानेा प्रयत्न करवा भांडयेा तेम तेम ते दृढ निश्चयी अनतेा गयेा, अने अेक आसन उपर स्थिर जेसी गयेा. न्यारे राज्ञ्य कर्मचारीअे

प्रभाते राज्ञः समीपमागत्य वदति—अहं श्मशाने रात्रौ निर्भयतया स्थितः । राज-  
पुरुषा अपि वदन्ति—अस्माभिर्भये प्रदर्शितेऽपि निर्भय एवायं तत्रावस्थितः । तदा  
नृपतिः स्वसेवायां तं नियोजयति स्म ।

अन्यदा नृपतिः स्वसैनिकान् मथुरां ग्रहीतुं प्रेषयति, तैः सह—शिवभूतिमपि  
प्रेषयति । मार्गे गच्छद्भिस्तैः परस्परमुक्तम्—भोः ! वयं राजानमपृष्ट्वा प्रस्थिताः, का

कर्मचारी अपने काम में सफलित नहीं हुए तो वे सब वहाँ से वापिस  
चले आये। प्रातःकाल होते ही शिवभूति भी वहाँ से चला आया और  
राजा के पास आकर कहने लगा कि राजन् ! मैं आपकी आज्ञानुसार  
निर्भय होकर रातभर श्मशानमें रहा। इतने में राजपुरुषों ने भी आकर  
राजा को समाचार दिया कि हम लोगों ने हर एक प्रकार से शिवभूति  
को भय प्रदर्शित करने में कसर नहीं रखी, परन्तु यह तो जरा भी  
भय से विचलित नहीं हुआ। राजा ने राजकर्मचारियों की बात सुनकर  
शिवभूति को निर्भय मान उसको अपनी सेवा में रख लिया। किसी  
एक समय की बात है कि राजा ने अपने सैनिकों को आदेश दिया कि  
वे मथुरानगरीकी ओर धावा बोल दें। राजा का आदेश पाकर सैनि-  
कोने मथुरानगरी की ओर प्रयाण कर दिया। साथमें राजा की तर्फ से  
शिवभूति को भी जाने का आदेश मिला। रास्ते में जाते २ इन लोगों ने  
परस्पर में इस प्रकार विचार किया—अरे भाई ! यह तो कहो कि अपन

पोताना काममां—तेने उराववामां सक्ष्ण न थया त्यारे ते अथा त्यांथी पाछा  
क्ष्या. सवार थतां शिवभूति श्मशानमांथी पाछे क्ष्यां अने राजनी पासे  
आवीने कडेवा लाग्ये राजन् ! हुं आपनी आज्ञा अनुसार निर्भय थधने  
आपी रात्रि श्मशानमां रह्यो छुं. जेज सभये राजकर्मचारीज्ये पञ्च  
आवीने राजने समाचार आप्या के, अजे दोडोके अनेक प्रकारे शिवभूतिने  
उराववामां कांछि कथास रापी नथी. परंतु जे जरा पञ्च उथ्यो नही. राज-  
कर्मचारीज्येनी आ वात सांभणी शिवभूतिने निडर मानी पोतानी सेवामां  
रापी छीधो. केाछि जेक सभये राजजे पोताना कर्मचारीज्येने हुकम कथ्यो  
के, तेज्यो मथुरा नगरी पर चढाछि करे, राजने आदेश मणतां सैनिकेज्ये  
मथुरा नगरी तरक्ष प्रयाण करी छीधुं. राजजे तेमनी साथे पोताना तरक्षथी  
शिवभूतिने पञ्च जवानो हुकम कथ्यो. जतां जतां रस्तामां जे दोडोके ज्येवो  
विचार कथ्यो के, अरे बाछ ! जे तो कहे के आपणे कछि मथुरा नगरी

मथुराऽस्माभिर्ग्राह्येति । तत्र शिवभूतिः प्राह—द्वे अपि मथुरे ग्रहीष्यामः, यत्र ग्रहणं भवतां दुष्करं, तत्राहं यास्यामि । एवमुक्त्वा शिवभूतिः पाण्डुमथुरायां गतः । तत्र गत्वा बलेन तां जग्राह । ततो द्वितीयामपि मथुरां विजित्य शिवभूतिस्तैः सैनिकैः सह नृपसमीपे समायातः । नृपेणोक्तम्—सुदुष्करं कार्यं कृतवानसि, अतः परितुष्टोऽस्मि, ब्रूहि स्वमनोगतम् । शिवभूतिः प्राह—सर्वत्र मम स्वेच्छाभ्रमणं देहि । नृपेण तत् प्रदत्तम् ।

को कौनसी मथुरा पर धावा बोलना है । चलते समय राजा से इस बात को तो अपन लोगों ने पूछा ही नहीं है । सबकी बात सुनकर शिवभूति ने कहा कि इसकी क्या चिन्ता-चलो दोनों ही मथुरा पर धावा बोल देंगे । आप लोगों को जिस पर जाना दुष्कर प्रतीत होता हो, वह मेरे जुम्मे रहे । इस प्रकार कह कर शिवभूति सैनिकों को साथ लेकर सर्व-प्रथम पाण्डुमथुराकी ओर बढ़ा और उसको विजितकर द्वितीयमथुराकी ओर भी चला । उसको भी उसने जीत लिया । पश्चात् सैनिकोंके साथ वापिस अपने स्थान पर लौट आया । राजा के पास आकर उसने दोनों मथुराओं को जीतने की खबर सुनाई । सुनकर राजाने कहा-धन्यवाद आपने बहुत ही बड़ा भारी दुष्कर कार्य साधा है इससे मुझे बड़ी भारी प्रसन्नता है, कहो-तुम्हें इसके फलस्वरूप क्या देना चाहिये । सुनकर शिवभूति ने अपने मनोगत भावको प्रकट कर दिया और कहा कि-मेरा

उपर खटाई करनी छे ? नीकणती वधते आ वात आपणु राब्बने तो पृथी पणु नडीं. अधानी वात सांभणीने शिवभूतिअे कहुं के अेमां चिन्ता शा भाटे ? आबो अन्ने मथुरा उपर खटाई करीशुं. आपने अ्यां खटाई करवानुं वधु कठणु दागतुं डोय तो तेनी अवाअहारी भारा शिर उपर छे. आ प्रभाणु कडीने शिवभूति सैनिकेने साथे लई प्रथम पांडु मथुरानी तरङ्ग उपडथो अने अेने अती लईने भीअ मथुरा उपर पणु अेणु खटाई करी. अने तेने पणु अती लीधी. विअथी अन्या पछी सैनिको साथे पोताना स्थाने पाछो इर्यो. राब्बनी पासे आवीने तेणु अने मथुराने अती लीधानी वात कडी संभणावी. आ सांभणी राब्बअे कहुं धन्यवाद ! तमे अणुं अ साइं काम कथुं, अणुं दुष्कर कार्य पार पाडथुं. छे आथी हुं तमारा उपर अणु अ प्रसन्न थयो छुं कडो तमोने शुं पुरस्कार धनाम आपुं ? अे सांभणीने शिवभूतिअे पोताना मननेो आव प्रगट कर्यो अने कहुं के, केअ पणु प्रकारनी देकटोके वगर

अथासौ स्वेच्छया सर्वत्र भ्रमन् रात्रौ वा प्रभाते वा मध्याह्ने वाऽन्त्यप्रहरे वा समायाति, कदाचित् स्वगृहे नागच्छत्यपि । दिवसे यावद् गृहे नागच्छति, तावत् तस्य भार्या न भोजनं करोति, रात्रौ यावन्नायाति सा तावन्न शेते ।

अन्यदा कदाचित् सा खिन्ना श्वश्रूं प्रति वदति—हे मातस्तव पुत्रोऽर्धरात्रे कदाचिन्नरमे प्रहरे, कदाचिन्नायात्यपि, दिवसेऽपि रात्रावपि च कालेऽतिक्रान्त एवं

सर्वत्र स्वेच्छानुसार विना किसी प्रतिबंध के आना जाना हो, इसकी आज्ञा आपकी तरफ से मिलनी चाहिये । राजा ने शिवभूति की बात स्वीकार करली ।

बस अब क्या था—शिवभूति स्वेच्छानुसार इधर उधर फिरने लगा । रात्रिमें, दिन में प्रातःकाल मध्याह्नकाल में तथा अंतिमप्रहर में जहां इच्छा होती चल देता और जब इच्छा होती वापिस आता । कभी २ नहीं भी आता । दिन में जबतक शिवभूति घर पर नहीं आता तबतक उसकी पत्नी भोजन नहीं करती, तथा रात्रिमें जबतक नहीं आता तबतक नहीं सोती ।

शिवभूति की इस प्रकार स्वेच्छाचार प्रवृत्ति से जब यह विशेष तंग आगई तो एक दिन अपनी सास से कहने लगी—सासुजी ! आप के पुत्र तो विशेष स्वच्छंद हो गये हैं । आप उनसे कुछ कहती ही नहीं है । कभी तो ये अर्धरात्रि गये बाद घर पर आते हैं, और कभी अन्तिम-

हुं सर्वं जग्याये भारी धम्छा अनुसार जर्ध आवी शकुं तेवी आज्ञा आपना तरङ्गी भगवी जेर्धये, राज्ञये शिवभूतिनी वात स्वीकारी लीधी.

पछी शुं जन्थुं ? शिवभूति पोतानी धम्छा अनुसार न्यां त्यां इरवा लाज्ये. रात्रिजे, दिवसे, प्रातः काणे, मध्याह्न काणे तथा अंतिम प्रहरमां न्यारे अने न्यां जवानी धम्छा थती त्यारे ते त्यां पछोंथी जतो, अने तेनी भरल मुज्ज धम्छा थाय त्यारे पाछे इरतो केध केध वपत गमे त्यां रोकध जतो. इडाडे न्यां सुधी शिवभूति घेर पाछे न आवतो त्यां सुधी तेनी स्त्री लोजन कर्या विना राड जेर्धने जेसी रहेती. रात्रीना सभये पथु ते न्यां सुधी घेर न आवतो त्यां सुधी तेनी राड जेर्धने जेसी रहेती.

शिवभूतिनी आ प्रकारनी स्वेच्छाचार प्रवृत्तिथी न्यारे जे पूष ज कुंटाणी गर्ध त्यारे तेणे जेक दिवस पोतानी सासुने कहुं के, सासुल ! आपना पुत्र पूष ज स्वच्छंदी थर्ध गयेक छे आप तेने केम कांथ कडेतां नथी ? केध केध वपत भधराते तो केध वपते पाछवी रात्रे ते घेर आवे छे



तव पुत्रः समायाति, अहं कदाचिन्निद्रातुरा, कदाचित् क्षुधातुरा च तिष्ठामि । तदा श्वश्र्वा निगदितम्—अस्यां रात्रौ द्वारं पिधाय त्वया शयनीयम्, अहमत्र जाग्रती तिष्ठामि, पुत्रवध्वा तथैवाऽऽचरितम् । शिवभूतिर्मध्यरात्रे समायातः स वदति—द्वारमुद्घाटय, तदा जनन्या कथितम्, अस्मिन् समये यत्र गृहे द्वारमुद्घाटितं भवति तत्र गम्यताम् । स रोषावेशेन निर्गच्छति । तत्र नगरे प्रतिगृहद्वारं भ्रमता तेन कृष्णाचार्यस्योपाश्रय एवोद्घाटितो दृष्टः । तत्र गत्वाऽऽचार्यं वन्दित्वा स वदति—

प्रहर में, तथा कभी २ नहीं भी आते हैं । तात्पर्य कहने का यह है कि समयानुसार नहीं आते जाते हैं । जब मनमें आया तब आ गये—नहीं तो नहीं आये । दिवस हो चाहे रात्रि हो बेसमय ही ये आते हैं । मैं तो इनसे बड़ी परेशानी भोगती रहती हूँ—न समय पर खा पाती हूँ और न समय पर सो पाती हूँ । वहू की बात सुनकर सासुजीने कहा—बेटी ! आज रात्रि को तू तो घरका दरवाजा बंद कर के सो जाना और मैं जागती रहूंगी । सासुजी की बात सुनकर पुत्रवधू ने वैसा ही किया । शिवभूति अर्धरात्रि गये बाद घर पर आया । आते ही उसने पत्नी से कहा कि—किवाड़ खोलो । शिवभूति की बात सुनकर बीच ही में माता ने कहा कि जहां के किवाड़ खुले हुए हों वहीं पर जा । माता की यह बात सुनकर उसको इकदम क्रोध आ गया और उसी आवेश में वह वहां से चल दिया । हर एक घर के द्वारों को देखते हुए वह जा रहा था कि

अने कैध कैध वपत तो भिदकुल घेर आवता न थी, अेटदे के, कैध दिवस वपतसर घेर आवता न थी, न्यारे मनमां आवे त्यारे घेर आवे, मनमां न आवे तो न आवे, दडाडे डोय के रात डोय डंभेशां समय भेसभये ते आवे छे. डवे तो हुं तेमनाथी डेरान डेरान थछ गछ छुं, नथी समयसर आवानुं ठेकाळुं पडतुं, के नथी सुवानुं भणतुं. वहुनी वात सांलणीने सासुअे कहुं के भेटी ! आवे रातना धरने। दरवाने अंध करीने तुं सुधं न न्ये अने हुं नगती रहीश. सासुअणी वात सांलणीने पुत्रवधूअे अेम न कथुं. शिवभूति भधरात वित्या पछी घेर आव्थे आवतां न पत्नीने कमाड भोदवानुं कहुं, शिवभूतिने अवान सांलणीने माताअे कहुं के, न्यानां कमाड पुद्लां डोय त्यां न. मातानी आ वात सांलणीने तेने अेकदम क्रोध अठयो अने क्रोधना आवेशमां ते त्यांथी आली नीकअ्ये. दरेक धरनां कमाड तरक्ष दृष्टि करतां करतां ते नछ रद्यो डते। अेटलाभां

भदन्त ! मां प्रव्रजितं कुरु । आचार्यस्तं प्रव्राजयितुं नेच्छति । ततस्तेन स्वयमेव लोचः कृतः । सङ्गेन साधुवेषः प्रदत्तः । ततः कृष्णाचार्येण सह मिलितः । स कृष्णाचार्यः शिवभूतिमुनिनाऽन्यैश्च मुनिभिः सह ग्रामानुग्रामं विहरन् कालान्तरेण पुनस्तत्रैवागतः । राजा तद्वन्दनार्थमागतः । ततः शिवभूतिमुनिर्गुरोराज्ञया भिक्षाचर्यां गतः । राजा तस्मै रत्नकम्बलं दत्तवान् । रत्नकम्बलं गृहीत्वा गुरुसमीपे समायातः । बहुमूल्यको रत्नकम्बलोऽनेन गृहीतः यः साधोर्न कल्पते, इति मत्वाऽऽचार्येण शिव-

इतने में उसे कृष्णाचार्य का उपाश्रय उघाडे द्वार वाला खुल्ला दिख पड़ा । उपाश्रय में जाकर वंदना करके उसने आचार्य से कहा-भदन्त ! आप मुझे दीक्षा दे दीजिये । आचार्य ने उस को दीक्षित न होने की अपनी संमति प्रदर्शित की । बाद में उसने स्वयं ही अपने हाथों से केशलौच कर लिया । संघ ने उसी समय इसको साधु का वेष दे दिया । साधु पद से विशिष्ट होकर शिवभूति आचार्यमहाराज के पास जा पहुँचा । शिवभूति मुनि के साथ तथा अन्यमुनियों के साथ आचार्यमहाराज ने वहाँ से विहार कर दिया । ग्रामानुग्राम विचरते हुए आचार्यमहाराज कालान्तर में उसी रघुवीर पुर में आये । मुनिराजों का आगमन सुनकर राजा उनको वंदना करने के लिये आया । शिवभूतिमुनि अपने गुरुमहाराज की आज्ञा ले कर भिक्षाचर्या के लिये गया । राजाने उसको एक रत्नकम्बल दिया । शिवभूति उस कम्बल को लेकर गुरु के पास आया । रत्नकम्बल को

तेणे कृष्णाचार्यानां उपाश्रयानां द्वार खुल्लां ज्ञेयां । उपाश्रयमां जर्धं वंदना करीने तेणे आचार्याने कहुं भदन्त ! आप मने दीक्षा आपो । आचार्य भडाराजे तेने दीक्षित न थवा समज्जोये छतां पणु तेणे पोताना हाथथी पोताना वाणने दोअ कर्यो ते पछी संघे तेने साधुने वेश आप्यो साधुने वेश धारण करीने शिवभूति आचार्यभडाराजनी पासो जर्धने रह्यो । आ पछी शिवभूति मुनि अने अन्य मुनिज्योनी साथे आचार्य भडाराजे त्यांथी विहार कर्यो, ग्रामानुग्राम विचरतां केटलाक समये जे रघुवीरपुरमां पाछा पधार्था । मुनिराजोतुं आगमन सांभज्जिने राजा तेमने वंदना करवा आव्या । शिवभूति मुनि पोताना शुरुनी आज्ञा लर्धने भिक्षाचर्या करवा भाटे नीकज्या । राजाने त्यां जतां राजजे तेने जेक रत्नकंभल आपी । शिवभूति जे कंभल लर्धने शुरुनी पासो आव्या । रत्नकंभल जेर्धने आचार्य भडाराजे विचार्युं

भूतिमुनी उपाश्रयाद् बहिर्गते सति रत्नकम्बलं खण्डशः कृत्वा श्लेष्मवस्त्रार्थं मुनि-  
भ्यस्तद्रत्नकम्बलखण्डानि दत्तानि । तदनु शिवभूतिमुनिः समागतः, एतद्वृत्तं  
विज्ञाय सकषायः सन् आचार्यं पृच्छति—मम निश्रितकम्बलः क्वास्ति ? गुरुणा  
कथितं—बहुमूल्यकवस्त्रधारणं साधूनां परिग्रहो भवति, अतस्तं खण्डशः कृत्वा मया  
साधुभ्यः श्लेष्मवस्त्रार्थं स प्रदत्तः। एतन्निश्चयं शिवभूतिना प्रोक्तम्—यदि बहुमूल्यक-  
वस्त्रधारणं साधूनां परिग्रहस्तदाऽल्पमूल्यकवस्त्रधारणमपि परिग्रहः स्यादेव, परिग्रहे

देखकर आचार्य महाराज ने विचारा कि साधुओं के लिये बहुमूल्य की  
वस्तु का लेना कल्पता नहीं है। ऐसा सोचकर जब शिवभूतिमुनि उपा-  
श्रय से बाहिर गया हुआ था तब आचार्य महाराज ने उस कम्बल के  
टुकड़े २ करवा कर अन्य साधुओं को एक २ टुकड़ा श्लेष्म पोंछने के  
लिये दे दिया। जब शिवभूति उपाश्रय में आया तो उसको इस बात  
की खबर पड़ते ही कषायपरिणति जागृत हो गई, जाकर उसने आचार्य  
महाराज से पूछा—मेरी नेसराय की रत्नकम्बल कहां है। गुरु महाराज ने  
कहा—सुनो बहुमूल्यवाले वस्त्रों का धारण करना साधुओं के कल्प से  
बाहर है अतः मैंने उसके टुकड़े २ करके अन्य साधुओं को एक २  
टुकड़ा श्लेष्म पोंछने के लिये दे दिये हैं। गुरु महाराज की इस बात को  
सुनकर शिवभूति ने कहा कि यदि बहुमूल्यवाले वस्त्रों का धारण करना  
साधुकल्प से बाहर है अर्थात् वह परिग्रह है—तो फिर इसी तरह अल्प-  
मूल्यवाले वस्त्रों का धारण करना साधु की समाचारी से बाहर मानना

के, साधुओं भाटे अहुमूह्यवान वस्तु लेवी कल्पती नथी. अबुं विचारिने  
न्यारे शिवभूति मुनि उपाश्रयथी अडार गया हुता त्यारे आचार्य मडाराजे  
ते क'अलना टुकडे टुकडा करावी थील साधुओंने अकेक टुकडो नाक लुछवा  
भाटे आपी दीधो. न्यारे शिवभूति मुनि उपाश्रयमां आव्या त्यारे तेमने  
अे वातनी अअर पडी. अअर पडतां न तेमनामां कषाय परिणति ( कोध )  
जगृत थछ जतां तेणे आचार्यमडाराजने कहुं भारी वडोरी लावेदी  
रत्नक'अल कयां छे ? आचार्ये कहुं सांभणो ! अहुमूह्यवान—कींमती - वस्त्र  
धारण करवा साधुओंने न अये. आथी में ते रत्नक'अलना टुकडे - टुकडा  
करीने साधुओंने अेक अेक टुकडो नाक साक करवा आपी दीधेल छे. शुरु-  
मडाराजनी आ वात सांभणीने शिवभूतिअे कहुं के, अे अहुमूह्यवान वस्त्रनुं  
धारण करवुं साधुना आचारनी अडार छे अथोत अे परिग्रह छे—तो पछी  
अह्यमूह्यवाणा सामान्य वस्त्रोतुं धारण करवुं अे पण साधुनी समाचारीथी

सति च मोक्षाभावः । इत्थं च वस्त्राणां सर्वथा त्याग एवं श्रेयः । किमनेनाल्पमूल्य-  
बहुमूल्यवस्त्रग्रहणाग्रहणविचारेण ।

एवं श्रुत्वा कृष्णाचार्यः कथयति—वत्स ! अयं वस्त्राभावरूपः कल्पो जिनक-  
ल्पिकानां युज्यते, तद्वर्णनं यथा—जिनकल्पिको द्विविधः—सपात्रकः करपात्रकश्च,  
सचेलकः, अचेलकश्च, तत्र परिधानवस्त्रं सदोरकमुखवस्त्रिका चेति वस्त्रद्वय-  
मात्रधारकः सचेलकः । सर्वथा वस्त्ररहितोऽचेलकः ।

चाहिये—परिग्रहरूप मानना चाहिये और जब यह अल्पमूल्यवाले निय-  
मित वस्त्रों का धारण करना भी परिग्रहरूप हुवा, तो फिर परिग्रहावस्था  
में मुक्ति की प्राप्ति का अभाव होगा । इससे तो यही सिद्ध होता है कि वस्त्रों  
का सर्वथा परित्याग ही श्रेयसाधक—मोक्षसाधक है । फिर अल्पमूल्यक  
वस्त्र ग्रहण करना चाहिये, बहुमूल्य वस्त्र नहीं, इस प्रकार का विचारविमर्श  
व्यर्थ ही है । शिवभूति की इस प्रकार की कपोलकल्पित तर्क सुनकर  
आर्य कृष्णाचार्य ने उसको समझाया कि सर्वथा वस्त्र का त्याग करना यह  
जिनकल्पियों का आचार है । जिनकल्पियों का स्वरूप इस प्रकार है—  
जिनकल्प दो प्रकार के होते हैं, १ सपात्रक, २ करपात्रक । तथा सचेल  
और अचेल । इनमें वस्त्रका धारण करना तथा दोरे से मुखवस्त्रिका  
मुँह पर बाँधना इस प्रकार दो उपकरणों का धारण करना यह आचार  
सचेल जिनकल्पियों का है । सर्वथा वस्त्र का परित्याग कर देना यह  
आचार अचेल जिनकल्पियों का है ।

आचार्यी अहार मानवुं लेधये—परिग्रहइय मानवुं लेधये. न्यारे अल्प-  
मूल्यवाणा नियमित वस्त्रोने धारणुं करवां ये पणुं परिग्रहइय थयुं तो पछी  
परिग्रह अवस्थाभां मोक्षनी प्राप्तिने अभाव थशे. येनाथी तो ये न सिद्ध  
थाय छे के, वस्त्रोने सर्वथा परित्याग न श्रेयसाधक—मोक्ष साधक छे. आथी  
अल्पमूल्य वस्त्र ग्रहणुं राभवां लेधये. अने बहुमूल्यवाणां न राभवां  
आ प्रकारने विचारविमर्श न व्यर्थ छे. शिवभूतिने आ प्रकारने कपोलकल्पित  
तर्क सांभलीने आचार्य कृष्णाचार्ये तेने समलव्युं के सर्वथा वस्त्रोने त्याग  
करवे. ये अनकल्पियोने आचार छे. अनकल्पियोनुं स्वरूप आ प्रकारनुं छे.  
अनकल्पि ये प्रकारना होय छे. १ सपात्रक, २ करपात्रक तथा सचेल अने  
अचेल तेभां शरीर उपर वस्त्रने धारणुं करवुं तथा दोरासहित मुखवस्त्रिका मोढा  
उपर बाँधवी आ रीते ये उपकरणोने धारणुं करवां ये आचार सचेल अनकल्पियोने  
छे, सर्वथा वस्त्रोने परित्याग करवे. ये आचार अचेल अनकल्पियोने छे.

एवं जिनकल्पकवर्णनं श्रुत्वा शिवभूतिः पृच्छति—तर्हि कथमसौ जिनकल्प-  
कमार्गः साम्प्रतं नाश्रीयते ? । आचार्येणोक्तम्—स मार्गः साम्प्रतं व्युच्छिन्नोऽस्ति ।  
शिवभूतिः प्राह—स तु व्युच्छिन्नोऽल्पसत्त्वानां न तु समर्थानाम् । किञ्च—यद्येष  
मार्गोऽनुष्ठीयते तदाऽस्य व्युच्छेदोऽपि न स्यात् , अतो मोक्षार्थिना एष मार्गोऽ-  
नुष्ठेयः, यतः सर्वथा परिग्रहवर्जितत्वमेव श्रेयः । आचार्येणोक्तम्—धर्मोपकर-  
णमेवैतत् , न तु परिग्रहः । जिनकल्पकस्तु प्रथमसंहननादिगुणवानेव भवति, इदानीं  
तु प्रथमसंहननादिगुणाभावात् जिनकल्पकमार्गो नानुष्ठीयते ।

एतद्रीत्या बहुशः प्रतिबोधितोऽपि शिवभूतिमुनिस्तत्र श्रद्धां न कृतवान् ,

इस प्रकार आचार्य द्वारा जिनकल्प का वर्णन सुनकर शिवभूति ने  
पूछा—तो फिर आजकल यह जिनकल्पियों का मार्ग आचरित क्यों नहीं  
किया जाता है ? । आचार्यने कहा—यह मार्ग इस समय व्युच्छिन्न  
हो गया है । शिवभूतिने पुनः कहा—यह व्युच्छिन्न तो अल्पसत्त्व  
प्राणियों के लिए है किन्तु समर्थों के लिये नहीं, तथा यदि यह  
मार्ग अनुष्ठित कर लिया जाय तो फिर इसका व्युच्छेद भी नहीं  
होगा, अतः मोक्षार्थियों को तो इस मार्ग का सेवन अवश्य करना  
चाहिये, क्यों कि बात भी कुछ ऐसी ही समझमें आती है कि परि-  
ग्रह का सर्वथा वर्जन करना ही श्रेयस्कर मार्ग है । शिवभूति की बात  
सुनकर आचार्य महाराज ने कहा—यह धर्मोपकरण है, अतः यह  
परिग्रह नहीं है । यह तो धर्मोपकरण होने से ग्राह्य है । जिनकल्प प्रथम  
संहनन आदि गुणवाले जीव के ही होता है । इस पंचमकाल में वह  
प्रथम संहनन आदि गुण जीवों में नहीं है, इस लिये जिनकल्पिक मार्ग

आ प्रकारे आचार्य पासेथी अनकल्पनु वरुण सांलणीने शिवभूतिमे  
पूछथुं तो पछी आन काल मे अनकल्पिमेनो मार्ग केम आचरवामां  
आवतो नथी ? आचार्ये कहुं मे मार्ग आ समये छिन्नबिन्न थर्ध गयेल छे.  
शिवभूतिमे इरीथी कहुं—विच्छेद तो निर्णय मनना प्राणीमे माटे छे, समर्थ  
पुइषे माटे नही. वणी जे मे मार्ग अपनावी देवामां आवे तो पछी  
मेनो विच्छेद पणु नही थाय आधी मोक्षार्थीमेमे तो मे मार्गनुं सेवन  
अवश्य करवुं लेछेमे केम के मे वात समल शकाय मेवी छे के परिअडने  
सर्वथी त्याग करवे मे न सर्व रीते श्रेयस्कर मार्ग छे. शिवभूतिनी आ  
वात सांलणीने आचार्य महाराजे कहुं आ तो धर्म उपकरण छे, माटे ते  
परिअड नथी. वणी धर्म उपकरण डोवाने कारणे न ते ग्राह्य छे अनकल्प  
प्रथमसंहनन आदि गुणवाणा एवने माटे न डोई शके, आ पंचम  
काणमां तो प्रथम संहनन आदि गुण एवामां छे न नहि माटे अनकल्पिक



प्रत्युतामर्षवशात् स्ववस्त्रं त्यक्त्वा एकाकी भूत्वा वनं गतः ।

अत्र द्वितीयाध्ययने त्रयोदशगाथाव्याख्यानावसरे जिनकल्पिकमार्गस्य सविस्तरं वर्णनं कृतं, जिज्ञासुना तत्र द्रष्टव्यम् ।

अथोद्याने स्थितस्य शिवभूतिमुनेर्वन्दनार्थं तद्भगिनी उत्तरानाम्नी तत्र समागता । वस्त्रधारणेन मोक्षो न भवतीति तदुपदेशात् तयाऽपि वस्त्रं परित्यक्तम् । अन्यदा कदाचित् सा तत्र रघुवीरपुरे भिक्षार्थं गता, तदा स्वगृहस्योपरिभूमिकायां अनुष्ठित नहीं हो सकता है । इस प्रकार आचार्य ने शिवभूतिको अनेक प्रकारसे समझाया परन्तु शिवभूतिने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा । क्रोधके आवेशमें आकर यह वस्त्र का परित्याग कर अकेला ही वन की ओर चला गया ।

इसी सूत्र के द्वितीय अध्ययन में तेरह १३ वीं गाथा के व्याख्यान के अवसर में जिनकल्पिकमार्ग का सविस्तृत वर्णन किया जा चुका है अतः जिज्ञासु को वहां पर यह विषय देख लेना चाहिये ।

शिवभूति की बहिन जिस का नाम उत्तरा था उस को जब यह खबर पड़ी तो वह अपने भाई शिवभूति को वंदना करने के लिये वहां पहुँची । वस्त्र के धारण करने से मुक्ति नहीं होती है इस प्रकार का शिवभूति का उपदेश सुन कर उत्तरा ने भी अपने गृहीत वस्त्र का परित्याग कर दिया और बिल्कुल नग्न हो गई । एक दिन की बात है कि जब यह रघुवीरपुर में भिक्षा के लिये निकली तो इस को अपने घर

मार्गं आचरन्नुभं मुक्ती शक्यते नथी. आचार्ये शिवभूतिने अनेक रीते सम्बन्धा, परंतु शिवभूतिञ्चे पोताने दुराग्रह न छोड्यो अने क्रोधना आवेशमां आवीने पोते पडेरेलां वस्त्रोने परित्याग करी, कांथं पणु साथे वीधा विना अकेला न वन तरङ्ग आह्या गया.

आ सूत्रमां षीज अध्ययनमां १३ भी गाथाना व्याख्यानना अवसरमा एनकद्विपकमार्गनुं सविस्तर वर्णन करवामां आवेल छे. एज्ञासुञ्चोञ्चे आ विषय अे स्थणे जेठ देवे.

शिवभूतिनी अडेन जेनुं नाम उत्तरा इतुं, तेने न्यारे आ अणर पडी तो ते पोताना लाठ शिवभूतिने वंदना करवा माटे वनमां जेठ पडोन्थी. वस्त्रोने धारण करवाथी मुक्ति भणती नथी अे प्रकारने शिवभूतिने उपदेश सांभणीने उत्तराञ्चे पणु पोते धारण करेलां वस्त्रोने त्याग करी वीधा, अने नग्न अनी गथ. अेक द्विस न्यारे ते रघुवीरपुरमां भिक्षा माटे निकणी ते वथते अेक वेश्या पोताना भडानना गोअमां अेठी इती. तेञ्चे उत्तरा साध्विने



स्थितया कयाचिद् वेश्यया तां विवस्त्रां विलोक्य तस्या उपरि शाटिका निक्षिप्ता ।  
तया शाटिका परिधृता । तां परिहितवस्त्रां विलोक्य शिवभूतिना पृष्टा—कथं शाटिका  
परिहिता ? । भगिन्या प्रोक्तम्—नग्नतया मया स्थातुं न शक्यते । शिवभूतिना  
चिन्तितम्—स्त्रीणां मोक्षो नास्ति, लज्जाया अपरिहार्यत्वात्, तासां वस्त्रधारणस्या-  
वश्यकत्वात् । अथ शिवभूतिना द्वौ शिष्यौ संगृहीतौ—बोटिकः, कोट्टवीरश्चेति ।  
तौ स्वमतं प्रतिबोध्य प्रवाजितवान् । ततो बोटिकमतं मिथ्यादर्शनं प्रवृत्तम् ।

इति बोटिक (दिगम्बर) निहवदृष्टान्तः ॥ ८ ॥

एतत्त्रयप्राप्तावपि संयमवीर्यस्य दुर्लभत्वमाह—

की छत पर बैठी हुई किसी वेश्या ने देखा । देखते ही उस ने इसके  
ऊपर एक साड़ी ऊपर से डाल दी । उत्तरा ने उस साड़ीको पहिर लिया ।  
साड़ी पहिरी हुई उत्तरा को जब शिवभूति ने देखा तो वह कह ने लगा  
अरे ! साड़ी क्यों पहिर ली । उत्तरा ने कहा कि मुझ से नग्न नहीं रहा  
जाता है । शिवभूति ने उत्तरा की बात सुनकर विचार किया कि स्त्रियों  
को इसी लिये मुक्ति नहीं होती है । क्यों कि वे लज्जा का परित्याग नहीं  
कर सकती हैं । लज्जा निवारण के निमित्त उनको वस्त्र का धारण करना  
अपरिहार्य है । शिवभूति ने दो शिष्य बनाये १ बोटिक, २ कोट्टवीर ।  
इन दोनों को उसने अपने मत में दीक्षित कर लिया । उन से ही यह  
बोटिक मत मिथ्यादर्शनस्वरूप प्रवृत्त हुआ है ।

॥ यह बोटिक ( दिगम्बर ) निहव की कथा हुई ॥ ८ ॥

अथेलक-नग्न अवस्थामां जेतां न तेणे भेडी उपरथी अेक साडी तेनी अेभ  
ढांकवा नापी. उत्तराअे पोतानी अेभ ढांकवा ते साडीने पडेरी लीधी. बिक्षा-  
अर्या पतावी साडी सडित उत्तरा शिवभूति पासे पडोंची. शिवभूतिअे साडी  
सडित उत्तराने जेध त्यारे तेने पूछ्युं के उत्तरा तमे साडी केम पडेरी ?  
उत्तराअे नवाभ आप्थे के, माराथी नग्न रडेवातुं नथी. शिवभूतिअे उत्त-  
रानी वात सांभजीने विचार कर्ये के, स्त्रियाे लाज भयोदाने परित्याग करी  
शकती नथी. लज्जाना निवारण्य अर्थे तेमनुं वस्त्र धारण्य करवुं अे अपरि-  
हायं छे, माटे स्त्रियाे ने मोक्षनी शक्यता न थी. ते पछी शिवभूतिअे  
पोताना अे शिष्य थनांच्या अेक बोटिक अने भीजे केट्टवीर. आ अनेने  
तेणे पोताना मत अनुसारनी दीक्षा आपी. जेनाथी आ केटिकमत मिथ्या  
दर्शन स्वरूप प्रवर्तक थये छे.

आ बोटिक ( दिगम्बर ) निहवनी कथा थर्ध ॥ ८ ॥

મૂલમ્—સુદ્ધં ચે લઢ્ધું સદ્ધં ચ, વીરિયં પુણ દુલ્લહં ।

બંહેવે રોયમંાણા વિ<sup>૧</sup>, નો ય<sup>૨</sup> ણં પડિવેજ્જણ ॥ ૧૦ ॥

છાયા—શ્રુતિ ચ લઢ્ધવા શ્રદ્ધાં ચ, વીર્યં પુનર્દુર્લભમ્ ।

બહવઃ રોચમાના અપિ, નો ચ તત્ પ્રતિપદ્યન્તે ॥ ૧૦ ॥

ટીકા—‘સુદ્ધં ચ’ ઇત્યાદિ ।

શ્રુતિ=ધર્મશ્રવણ, ચ=અપિ શ્રદ્ધાં=ધર્મરુચિ, ચકારાત મનુષ્યત્વં લઢ્ધવા વીર્યં—ચારિત્રપાલને પરાક્રમસ્ફોરણં પુનર્દુર્લભમ્, વીર્યં હિ—કર્મરજઃપ્રક્ષાલકં જલમિવ, મોગમ્બુજઙ્ગવિષનિવારણે મન્ત્ર ઇવ, કર્મઘનાઘનવિકિરણે પવન ઇવ, કેવલજ્ઞાનમાસ્કર-પ્રકટને પ્રાચી દિગિવ, સાઘનન્તમુક્તિસામ્રાજ્યામિલપિતપ્રાપ્તૌ કલ્પતરુરિવાસ્તિ । વીર્યવન્ત એવં મોક્ષપ્રાપ્તાવધિકારિણો ભવન્તિ । સંયમવીર્યસ્ય દુર્લભત્વે હેતુમાહ—

મનુષ્યત્વ, શ્રુતિ ઓર શ્રદ્ધા, ઇન તીનોં કી પ્રાપ્તિ હોને પર મી સંયમ મેં વીર્યોલ્લાસ કા હોના મહાદુર્લભ હૈ, યહ બાત ઇસ નીચે કી ગાથાદ્વારા સૂત્રકાર બતલાતે હૈ—‘સુદ્ધં ચ’ ઇત્યાદિ ।

અન્વયાર્થ—(સુદ્ધં ચ સદ્ધં ચ લઢ્ધું—શ્રુતિ ચ શ્રદ્ધાં ચ લઢ્ધવા) ધર્મશ્રવણ, તથા શ્રદ્ધા—ધર્મ મેં રુચિ—એવં મનુષ્યભવ પાકર કે મી (પુણ વીરિયં દુલ્લહં—પુનઃ વીર્યં—દુર્લભમ્) ચારિત્ર કે પાલન કરને મેં વીર્યોલ્લાસ કા હોના દુર્લભ હૈ । ક્યોં કિ યહ વીર્ય કર્મરૂપી ધૂલિકો ધોને કે લિયે પાની જૈસા, મોગરૂપી મ્બુજંગ કે વિષનિવારણ કરને કે લિયે મન્ત્ર જૈસા, કર્મરૂપી મેઘપટલકો ઉઢાનેકે લિયે પવન જૈસા, કેવલજ્ઞાનરૂપી સૂર્ય કો પ્રકટ કરને કે લિયે પૂર્વદિશા જૈસા, સાઘનન્ત મુક્તિરૂપ અમિલપિત કી પ્રાપ્તિ કરાને કે લિયે કલ્પવૃક્ષ જૈસા હૈ । જો વીર્યવિશિષ્ટ હોતે હૈ વે હી

મનુષ્યત્વ, ધર્મશ્રવણ અને તેમાં શ્રદ્ધા થવી આ ત્રણેની પ્રાપ્તિ થવા છતાં પણ સંયમના માર્ગમાં પુરૂષાર્થ કરવામાં રત થવું એ મહાદુર્લભ છે. એ વાત આ નીચેની ગાથા દ્વારા સૂત્રકાર બતાવે છે. સુદ્ધં ચ—ઇત્યાદિ,

અન્વયાર્થ—સુદ્ધં ચ સદ્ધં ચ લઢ્ધું—શ્રુતિ ચ શ્રદ્ધાં ચ લઢ્ધવા ધર્મ શ્રવણ તથા શ્રદ્ધા ધર્મમાં રૂચી અને મનુષ્યભવ પામીને પણ પુણ વીરિયં દુલ્લહં—પુનઃ વીર્યં દુર્લભમ્ ચારિત્રનું પાલન કરવામાં પુરૂષાર્થ કરવો ઘણો દુર્લભ છે. કેમ કે, એ વીર્ય (પુરૂષાર્થ) કર્મરૂપી ધુળને ધોવા માટે પાણી સમાન, ભોગ રૂપી મ્બુજંગ (સપ્ત)નું ઊંચે નિવારણ કરવા માટે મન્ત્ર સમાન, કર્મરૂપી મેઘપટલ (વાહણ)ને વિખેરવા માટે પવન સમાન, કેવળજ્ઞાન રૂપી સૂર્યને પ્રગટ કરવા માટે પૂર્વ દિશા સમાન સાઘનન્ત મોક્ષની અભિલાષાની પ્રાપ્તિ કરવા માટે કલ્પવૃક્ષ સમાન છે. મોક્ષની જે ધર્મકરણીમાં વીર્ય વિશિષ્ટ (વધારે પરાક્રમી) હોય છે તેને જ પ્રાપ્તિના

‘बहवे’ इत्यादि । चकारो ह्यर्थे, यतः बहवो जना रोचमाना अपि=धर्मं श्रद्धावन्तोऽपि ‘णं’ तद्-वीर्यं नो प्रतिपद्यन्ते=चारित्रमोहनीयकर्मोदयात् न प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । श्रेणिका दिवत् ॥ १० ॥

मानुषत्वादेः फलमाह—

मूलम्—माणुसत्तम्मि आयाओ, जो धम्मं सुच्च सदहे ।

तवस्सी वीरियं लंढुं, संवुंडो णिडुणे रियं ॥११॥

छाया—मानुषत्वे आयातो, जो धर्मं श्रुत्वा श्रद्धत्ते ।

तपस्वी वीर्यं लब्ध्वा, संवृतः निर्धुनोति रजः ॥ ११ ॥

टीका—‘माणुसत्तम्मि’ इत्यादि ।

मानुषत्वे आयातः=मनुष्यदेहे समागतः सन् यः जीवः, धर्मं श्रुत्वा श्रद्धत्ते=धर्मं श्रद्धावान् भवति, स तपस्वी=निदानाद्यभावात् प्रशस्ततपोयुक्तः, वीर्यं

मोक्षप्राप्तिके अधिकारी माने जाते हैं । ( रोयमाणा वि बहवे-रोचमाना अपि बहवः ) क्यों कि अनेक मनुष्य संसार में ऐसे भी हैं जो धर्म में श्रद्धा तो रखते हैं परन्तु चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से ( नो य णं पडिवज्जए-नो च तत् प्रतिपद्यन्ते ) उस समय में वीर्योल्लास को प्राप्त नहीं कर सकते हैं अर्थात् संयममें पराक्रम नहीं फोड़सकते हैं । तात्पर्य यह है, कि-मनुष्यभव, धर्मश्रवण एवं श्रद्धा इन तीनों के पाने पर भी सब मनुष्य संयममें वीर्योल्लासवाले नहीं देखे जाते हैं, अतः यह दुर्लभ है ॥१०॥

मनुष्यभव आदि के फल को सूत्रकार कहते हैं—माणुसत्तम्मि इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(माणुसत्तम्मि आयाओ-मानुषत्वे आयातः) मनुष्य देह में आया हुआ (जो-यः) जोजीव ( धम्मं सुच्चा सदहे-धर्मं श्रुत्वा श्रद्धत्ते )

अधिकारी मानवाभां आवे छे. रोयमाणा वि बहवे-रोचमाना अपि बहवः केम के आ संसारभां अनेक मनुष्ये अेवां पणु छे ने धर्मभां श्रद्धा तो राणे छे परंतु चारित्र मोहनीय कर्मना उदयथी श्रद्धा डोवा छतां नो य णं पडिवज्जए-नोच तत् प्रतिपद्यते धर्मं करणी करवाभां पुइपार्थ करी शकता नथी. अेटले के-संयमभां पराक्रम हेभाडी शकतां नथी. तात्पर्य अे छे के. मनुष्यभव, धर्मश्रवण अने तेभां थती श्रद्धा आ तले वस्तुओ प्राप्त करवा छतां पणु सधणा मनुष्ये संयमना भागे करणी करवाभां पुइपार्थ करतां हेभाता नथी. भाटे न ते दुर्लभ छे. ॥ १० ॥

मनुष्यभव आदिना इणने सूत्रकार कडे छे—माणुसत्तम्मि-इत्यादि.

अन्वयार्थ—माणुसत्तम्मि आयाओ-मानुष्यत्वे आयातः आ मनुष्य देहभां आवेले अेवा जो-यः ने एव धम्मं सुच्चा सदहे-धर्मं श्रुत्वा श्रद्धत्ते धर्मनुं श्रवण करी तेभां

लब्ध्वा संवृतः=संवरयुक्तः सन् आस्रवं निरुध्येत्यर्थः, रजः=वद्धं बध्यमानं च कर्मरूपं रेणुं, निर्धुनोति=नितरां धुनोति-अपनयति, तदपनयनाच्च मोक्षं प्राप्नोतीत्यर्थः॥११॥

मानुषत्वादेः पारत्रिकफलं कथितम् । इदानीं मैहिकफलं बोधयितुमाह—

धर्म का श्रवण कर उसमें श्रद्धा करता है—श्रद्धाशाली होता है—वह (तवस्सी—तपस्वी) निदान आदि शल्य से रहित प्रशस्त तप का आराधक और (संवुडो—संवृतः) आस्रव का निरोध करने वाला जीव (वीरियं लद्धुं) संयम में वीर्योल्लास को धारण कर (रयं निद्गुणे—रजः निर्धुनोति) बद्ध अथवा बध्यमान कर्मरूप धूलिका अपनी आत्मासे बिलकुल अलग कर देता है, अर्थात्—कर्मरजरहित होकर मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ—तप से दो काम होते हैं—१ संवर और २ निर्जरा। ये दो ही तत्त्व मुक्ति के कारण हैं। जो आत्मा मनुष्यदेह को पाकर धर्म में रुचिशाली होता है वह तपस्वी बनकर निदान आदि शल्यरहित तप से आस्रव का निरोध कर संयम में वीर्योल्लास की अधिकता से बद्ध अथवा बध्यमान कर्मों का नाश करने वाला हो जाता है ॥ ११ ॥

मनुष्यत्व आदि का पारत्रिक फल कह दिया है। इस समय ऐहिक फल बतलाने के लिये यह गाथा कही जाती है—‘सोही’ इत्यादि।

श्रद्धा करे छे,—श्रद्धावान भने छे, ते तवस्सी-तपस्वी निदान आदि शल्यथी रहित प्रशस्त तपने आराधक अने संवुडो-संवृतः आस्रवने निरोध करवा वाणो ७व वीरियं लद्धुं-वीर्यं लब्ध्वा संयममां वीर्योल्लासने धारण करी रयं निद्गुणे-रजः निर्धुनोति अद्ध (अंधार्थ युकेलां) अथवा अध्यमान (नवां अंधातां) कर्मरूप धूलने पोताना आत्माथी बिलकुल अलग करी दे छे. अर्थात् कर्मरज रहित थधने मोक्षने प्राप्त करी ले छे.

भावार्थ—तपथी जे कार्य थाय छे. जेक संवर अने भीणुं निर्जरा जे जे तत्व ज मोक्षनुं कारण छे. जे आत्मा मनुष्यदेहने पामीने धर्ममां रूचीवाणो भने छे, ते तपस्वी अनी निदान आदि शल्यरहित तपथी आस्रवने निरोध करी संयममां प्रवृत्त अनतां अद्ध अथवा अध्यमान कर्मोने नाश करी शके छे. ॥ ११ ॥

मनुष्यत्व आदिनां परलोक संबन्धि इण विशेष कहेवामां आण्युं छे. आसभये ऐहिक (आ लोकनां) इण अताववा भाटे आ गाथा कहेवामां आवे छे. सोही-धत्यादि.

मूलम्—सोही उज्जुयभूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ ।  
निव्वाणं परमं जाइ, घयसित्तव्व पावए ॥ १२ ॥

छाया—शुद्धिः ऋजुभूतस्य, धर्मः शुद्धस्य तिष्ठति ।

निर्वाणं परमं याति, घृतसिक्त इव पावकः ॥ १२ ॥

टीका—‘ सोही ’ इत्यादि ।

ऋजुभूतस्य=सरलीभूतस्य मानुषत्वादिचतुरङ्गीप्राप्तस्य मोक्षं प्रति नैरन्तर्येण प्रवृत्तात्मन इत्यर्थः शुद्धिर्भवति, कषायकालुष्यापगमादिति भावः । तदनन्तरं शुद्धस्य=शुद्धिं प्राप्तस्य धर्मः=क्षान्त्यादिस्तिष्ठति=स्थिरो भवति विचलितो न भवतीत्यर्थः । शुद्धिरहितस्य तु कषायोदयवशात् कदाचित् धर्मभ्रंशसंभवादिति भावः । धर्मस्थैर्ये प्राप्ते चासौ धर्मात्मा, घृतसिक्तः=घृतेन हुतः, पावकः=अग्निखि तपस्तेजसा दीप्यमानः, परमम्=उत्कृष्टं, निर्वाणं याति=मुक्तिं प्राप्नोति=केवली भवतीत्यर्थः ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(उज्जुयभूयस्स—ऋजुभूतस्य) सरलीभूत—मानुषत्व आदिचारों की प्राप्तिसे मोक्षके प्रति निरन्तर प्रवृत्तिशील आत्माकी (सोही—शुद्धिः) कषायजन्य कलुषता के नष्ट होने से शुद्धि होती है । तदनन्तर (सुद्धस्स—शुद्धस्य) शुद्धि को प्राप्त हुए उस आत्मा के (धम्मो चिट्ठइ—धर्मः तिष्ठति) क्षान्ति आदिरूप धर्म स्थिर होता है । जो शुद्धि से विहीन आत्मा है वह कषायोदय के वश से कदाचित् धर्म से भ्रष्ट भी हो सकता है । जब आत्मा में धर्म स्थिरता को पालेता है तब वह धर्मात्मा (घयसित्तव्व पावए—घृतसिक्त इव पावकः) घृत से सिक्त अग्नि की तरह तपके तेज से देदीप्यमान होता हुआ (परम निव्वाणं जाइ—परमं निर्वाणं याति) उत्कृष्ट—अपुनरावृत्तिरूप—मुक्ति को पालेता है ॥ १२ ॥

अब शिष्य को उपदेश करते हुए कहते हैं—‘ विगिंच ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—उज्जुयभूयस्स—ऋजुभूतस्य मनुष्यत्व विगेरे चार वस्तुनी प्राप्ति यतां मोक्षनी तरश्च निरन्तर प्रवृत्तिशील आत्मानि सोही—शुद्धिः कषायजन्य कलुषता नष्ट यवाथी शुद्धि थाय छे. सुद्धस्स—शुद्धस्य शुद्धिने प्राप्त कथी पछी ते आत्माभां धम्मो चिट्ठइ—धर्मस्तिष्ठति क्षमा विगेरे ३प धर्म स्थिर थाय छे. जे शुद्धिथी रहित आत्मा छे ते कषायना उदयने वश करीने कदाय धर्मथी भ्रष्ट पण्ण थर्ध जाय छे. न्यारे आत्माभां धर्म स्थिर थर्ध जाय छे त्यारे ते धर्मात्मा घयसित्तव्व पावए—घृतसिक्त इव पावकः थीथी सींथाअेला अग्निनी भाक्क तपना तेजथी हेदिप्यमान थधने परमं निव्वाणं जाइ—परमं निर्वाण याति अेने करी जन्म न वेवा पडे अेवा परम निर्वाण मोक्षने प्राप्त करे छे ॥ १२ ॥

हुवे शिष्यने उपदेश आपतां कडे छे—‘ विगिंच ’ इत्यादि.



अथ शिष्यमुपदिशन्नाह—

मूलम्—विगिंचै कम्मणो हेउं, जसं संचिणुं खंतिणं ।

सरीरं पाढवं हिच्चां, उड्डं पक्कमई दिसं ॥ १३ ॥

छाया—वेविग्धि कर्मणः हेतुं, यशः संचिनु क्षान्त्या ।

शरीरं पार्थिवं हित्वा, ऊर्ध्वां प्रक्रामति दिशम् ॥ १३ ॥

टीका—‘विगिंच’ इत्यादि ।

हे शिष्य ! कर्मणः—अत्र प्रक्रमात् मानुषत्वप्रतिबन्धकस्य कर्मणः हेतुं=कारणं मिथ्यात्वाविरतिकषाययोगादिकं, वेविग्धि=पृथक् कुरु, तथा यशः=यशस्करं संयमं, विनयं चेत्यर्थः क्षान्त्या उपलक्षणं चैतत् तेन मार्दानादिभिरपि संचिनु=वर्धय रक्षयेत्यर्थः । तस्य मुख्यं फलमाह—‘सरीरं’ इत्यादि । य एवं करोति, स पार्थिवं=अन्यदर्शनप्रसिद्ध्या पृथिवीविकारं शरीरं हित्वा=त्यक्त्वा ऊर्ध्वां दिशं=मोक्षं प्रति, प्रक्रामति=प्रकर्षेण गच्छति ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ—हे शिष्य ! (कम्मणो—कर्मणः) मनुष्यभवके प्रतिबन्धक कर्म के (हेउं—हेतुम्) कारण—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय एवं अशुभयोगादिकको (विगिंच—वेविग्धि) अपनी आत्मा से पृथक् करो । तथा—(जसं—यशः) यशस्कर संयम एवं विनय को (खंतिणं—क्षान्त्या) क्षान्ति आदि के द्वारा (संचिणु—संचिनु) बढाओ—रक्षित करो । ऐसा जीव (पाढवं सरीरं हित्वा—पार्थिवं शरीरं हित्वा) पार्थिव—पौद्गलिक इस शरीर को छोड़कर (उड्डं दिसं पक्कमई—उर्ध्वां दिशं प्रक्रामति) उर्ध्व दिशा की ओर—मोक्ष सन्मुख—मोक्ष के प्रति प्रयाण करता है ।

भावार्थ—इस गाथा द्वारा सूत्रकार यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि जो

अन्वयार्थ—हे शिष्य ! कम्मणो—कर्मणः मनुष्यत्ववना प्रतिबन्धक—रोकना कर्मना हेउं—हेतुम् कारणे मिथ्यात्व, अविरति, कषाय अने अशुभयोग विगेरेने विगिंच—वेविग्धि आपणा पोताना आत्माभांथी हुकावे । तथा जसं—यशः यशस्कर संयम अने विनयने खंतिणं—क्षान्त्या क्षान्ति विगेरे द्वारा संचिणु—संचिनु वधादे—रक्षित करे । ऐसे जीव पाढवं सरीरं हित्वा—पार्थिवं शरीरं हित्वा पार्थिव—पृथ्वी उपरनां पौद्गलिक शरीरने छोडी उड्डं दिसं पक्कमई—उर्ध्वां दिशम् प्रक्रामति उर्ध्वदिशा तरङ्—मोक्ष सन्मुख—मोक्षना तरङ् प्रयाण करे छे ।

भावार्थ—आ गाथा द्वारा सूत्रकार ऐसे प्रदर्शित करे छे के, ने



एवं तद्भवे मोक्षप्राप्तिरूपं फलमुक्त्वा कर्मावशेषे सति परभवे तत्फलमाह—  
मूलम्—विसालिसेहिं सीलेहिं, जक्खा उत्तर-उत्तरा ।

महासुक्का व दिप्पंता, मन्नंता अपुणञ्चवं ॥१४॥

छाया—विसदृशैः शीलैः, यक्षाः उत्तरोत्तराः ।

महाशुक्ला इव दीप्यमानाः मन्यमाना अपुनश्च्यवम् ॥ १४ ॥

टीका—‘ विसालिसेहिं ’ इत्यादि ।

मुनयः विसदृशैः=अनुपमैः, अत्युत्कृष्टैरित्यर्थः, शीलैः—चारित्रविनयरूपैः,  
यक्षाः—देवाः भूत्वा उत्तरोत्तराः=यथोत्तरप्रधानाः, महाशुक्लाः=अत्युज्ज्वलतयाऽति  
शुक्लवर्णाश्चन्द्रमूर्यादयः इव दीप्यमानाः=प्रकाशमानाः, अपुनश्च्यवं स्वात्मनस्त-  
दन्यभवे पुनरच्युतिं मन्यमानाः, ‘ उद्भूतं कल्पे चिद्वन्ति ’ ऊर्ध्वं कल्पेषु तिष्ठन्ति,  
इत्यग्निमगाथया सम्बन्धः ॥ १४ ॥

आत्मा मिथ्यात्व आदि को अपनी आत्मा से पृथक् कर संयम आदि का संरक्षण करता रहता है वह आत्मा धर्म के द्वारा ही इस पौद्गलिक शरीर का परिहार कर के मोक्षसुख को पा लेता है ॥ १३ ॥

इस प्रकार उसी भव में मोक्षप्राप्तिरूप फल कह कर अब सूत्रकार “यदि उस आत्माका कर्म अवशिष्ट हो तो परभव में उसको किस फल की प्राप्ति होती है?” यह बतलाते हैं—‘ विसालिसेहिं ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—मुनिजन (विसालिसेहिं—विसदृशैः) अनुपम (सीलेहिं—शीलैः) चारित्रविनयरूप शीलों द्वारा (जक्खा—यक्षाः) देव होकर (उत्तरा उत्तरा—उत्तरोत्तराः) आगे २ के भवों में (महासुक्का व दिप्पंता—महासुक्ला इव

आत्मा मिथ्यात्व विगेरेने पोताना आत्माथी हर करी संयम विगेरेनुं जतन करतो रहे छे ते आत्मा धर्म द्वारा ज आ पौद्गलिक शरीरने त्याग करी मोक्ष सुख प्राप्त करवा लाज्यशाणी अने छे. ॥ १३ ॥

आ प्रकारे जे लवमां मोक्ष प्राप्तिरूप कण कहुने हवे सूत्रकार “जे ते आत्मानुं कर्म आकी होय तो परलवमां तेने केवां कणनी प्राप्ति थाय छे.” जे अतावे छे, विसालिसेहिं—इत्यादि.

अन्वयार्थ—मुनिजन विसालिसेहिं—विसदृशैः अनुपम सीलेहिं—शीलैः चारित्र विनय-  
रूप शील द्वारा जक्खा—यक्षाः देव थछ उत्तरा उत्तरा—उत्तरोत्तराः आगण उपर थनारां  
लवमां महासुक्का व दिप्पंता—महासुक्ला इव दीप्यमानाः अति उज्वल वषुं विशिष्ट

इ० १००

कीदृशास्ते यथा इत्याह—

मूलम्—अपिप्या देवकामाणं, कामरूवविउड्विणो ।

उडूढं कप्पेसु चिंढंति, पुढंवा वाससर्या बहू ॥१५॥

छाया—अर्पिता देवकामेभ्यः, नामरूपविकुर्वाणाः ।

उर्ध्वं कल्पेषु तिष्ठन्ति, पूर्वाणि वर्षशतानि बहूनि ॥ १५ ॥

टीका—‘ अपिप्या ’ इत्यादि ।

देवकामेभ्यः=देवलोकसुखेभ्यः, अर्पिताः—अर्पिता इव पूर्वभवाऽऽचरितैर्ब्रह्मै-  
रुपस्थापिताः, पूर्वसुकृतानि साधून् दिव्यसुखसंनिधौ नीत्वा दिव्यसुखेभ्यः समर्पय-  
न्तीत्यर्थः । कामरूपविकुर्वाणाः—कामेन स्वेच्छया रूपं विकुर्वन्ति—विरचयन्तीत्येवं-  
शीलाः, अभिलषितरूपनिर्माणकारिण इत्यर्थः । ऊर्ध्वम्—उपरि=उपर्युपरिगतेषु  
कल्पेषु सौधर्मादिषु, अच्युतान्तेषु उपलक्षणत्वाद् ग्रैवेयकानुत्तरेषु च पूर्वाणि=बहूनि

दीप्यमानाः) अति उज्ज्वलवर्णविशिष्ट चंद्र सूर्य की तरह प्रकाशमान  
होते हुए (अपुणञ्चवं—अपुनञ्चवम्) अन्य किसी दूसरे भवों में अपनी  
उत्पत्ति न हो इस तरह की (मन्नंता—मन्यमानाः) अभिलाषा वाले होकर  
ऊपर २ के कल्पों में चिरकालतक निवास करते हैं ।

भावार्थ—उत्कृष्ट चारित्र्य विनयरूप शीलों को पालन करने वाले  
जीवों को जब तक मुक्ति की प्राप्ति में बाधक कर्म अवशिष्ट रहता है  
तब तक वे उत्तमोत्तम देवादिक पर्यायों को धारण करते रहते हैं ॥ १४ ॥

वे देव किस प्रकार के होते हैं सो कहते हैं—‘ अपिप्या ’ इत्यादि ।  
अन्वयार्थ—( देवकामाणं—देवकामेभ्यः) देवभवसंबंधी सुखों के लिये ही  
मानो (अपिप्या—अर्पिताः) समर्पित किये हैं अर्थात्—पूर्वभवमें आचरित

चंद्र सूर्यनी भाङ्क प्रकाशमान थईने अपुणञ्चवं—अपुनञ्चवम् भील केड लवेोभां  
पोताने जन्म न लेवेो पडे आ प्रकारनी मन्नंता—मन्यमानाः अलिलाषां सेवतां  
सेवतां उपर उपरना उच्च कल्पेोभां लांआ समय सुधी निवास करे छे.

भावार्थ—उत्कृष्ट चारित्र्य विनयरूप शीलानुं पालन करवावाणा एवने ज्यां  
सुधी मोक्षनी प्राप्तिभां तेनां अवशिष्ट कर्मो बाधक रहे छे त्यां सुधी ते  
उत्तमोत्तम देवादिक पर्यायाने धारण करता रहे छे. ॥ १४ ॥

ओ देवेो देवा प्रकारना डोय छे ते सूत्रकार अतावे छे—अपिप्या—इत्यादि.  
अन्वयार्थ—देवकामाणं—देवकामेभ्यः देवलवसंबंधीनां सुखेोने अर्थे ज लखे  
अपिप्या—अर्पिताः समर्पित कर्या छे अर्थात्—पूर्वलवभां करेलां पूष्य द्वारा ज ओ

पूर्वाणि चतुरशीतिलक्षवर्षपरिमितमेकं पूर्वाङ्गम् । चतुरशीतिलक्षपूर्वाङ्गपरिमितमेकं पूर्वं भवति । तत्तु सप्ततिलक्षकोटिषट्पंचाशत्सहस्रकोटिवर्ष-(७०५६०००००००००००) परिमितं भवति । एवंप्रमाणानि बहूनि पूर्वाणीत्यर्थः, बहूनि=असंख्यातानि वर्षशतानि यावत् तिष्ठन्ति । असंख्यातशतपूर्ववर्षाणि यावद् देवसुखानि भुञ्जते ॥ १५ ॥

मूलम्—तत्तथै ठिच्चां जहाँठाणं, जक्खा आउक्खये चुंया ।

उवेति माणुसं जोणिं, से<sup>०</sup> दंसंगेभिजायए ॥१६॥

छाया—तत्र स्थित्वा यथास्थानं, यक्षा आयुःक्षये च्युताः ।

उपयान्ति मानुषीं योनिं, स दशाङ्गोऽभिजायते ॥ १६ ॥

पुण्यों के द्वारा ही मानो उस स्थान पर लाकर रख दिये हैं, इसीलिये वहां ( कामरूपविउत्विणो—कामरूपविकुर्वाणाः ) अपनी इच्छानुसार रूप को बनाते हुए वे देव ( उड्डहं कप्पेसु—अर्धकल्पेषु ) ऊपर ऊपर के सौधर्म आदि कल्पों में—सौधर्म से लेकर अच्युतकल्प तक तथा उपलक्षणसे ग्रैवेयकों में एवं अनुत्तर विमानों में ( पुब्बा बहू वाससया—पूर्वाणि बहूनि वर्षशतानि ) कई पूर्वों तक—अर्थात्—चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वांग होता है । चौरासी ८४ लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है, वह पूर्व सत्तरलाखकरोड छप्पनहजार करोड ७०५६००००००००००० सत्तर छप्पन और ऊपर दश शून्य, ऐसे चौदह अंकवाले वर्षों का होता है, इस प्रकारके बहुत पूर्वों तक, तथा असंख्यात सैकड़ों वर्षों तक ( चिद्वृत्ति—तिष्ठन्ति ) निवास करते हैं, अर्थात् वहां सुखों को भोगते हैं ॥ १५ ॥  
' तत्थ ' इत्यादि ।

स्थान प्राप्त करवाभां आ०युं छे अेटला भाटे त्यां कामरूपविउत्विणो—कामरूपविकुर्वाणाः पोतानी धब्धा अनुसार इपने जनावीने ते देव उड्डं कप्पेसु—अर्धकल्पेषु उपर उपरनां सौधर्म आदि कल्पेभां—सौधर्मथी लछ अच्युतकल्प सुधी तथा उपलक्षणथी ग्रैवेयकें अने अनुत्तर विमानेभां पुब्बा बहू वाससया—पूर्वाणि बहूनि वर्षशतानि केटलाय पूर्वो सुधी अर्थात् चौरासीलाख वर्षोनुं अेक पूर्वांग थाय छे, अेवा चौरासी लाख पूर्वांगनु अेक पूर्व थाय छे ते पूर्व ७०५६००००००००००० आ प्रभाषे चौदह अंकवाणा वर्षोनु थाय छे. आवा प्रकारनां धब्धां पूर्वो सुधी तथा असंख्यात सैकडे वर्षो सुधी निवास करे छे अेटले के त्यां सुणेने भोगवे छे. ॥ १५ ॥

' तत्थ '—इत्यादि,

टीका—‘ तत्थ ’ इत्यादि ।

तत्र=देवलोकेषु यथास्थानं स्थित्वा=स्व-स्वयोग्यतानुसारेण स्थितिं प्राप्य, यक्षाः=देवाः, आयुःक्षये=सति देवभवात् च्युताः मानुषीं योनिं=जातिम्, उपयान्ति=प्राप्नुवन्ति । तत्र च स=सावशेषपुण्यकर्मा प्रत्येकजीवः, दशाङ्गः=दश अङ्गानि यस्य स तथा, दशसंख्यकभोगोपकरणवान्, अभिजायते=भवति ॥१६॥

अथ कानि तानि दशाङ्गानि ? इति जिज्ञासायामाह—

मूलम्—खित्तं वैत्थुं हिरण्णं च, पसवो दास-पौरुसं ।

चत्तारि कार्मखंधाणि, तंतथ से<sup>१०</sup> उववज्जइ ॥१७॥

छाया—क्षेत्रं वस्तु हिरण्यं च, पशवो दासपौरुषेयं ।

चत्वारः कामस्कन्धाः, तत्र स उपपद्यते ॥ १७ ॥

अन्वयार्थ—(तत्थ ठिच्चा-तत्र स्थित्वा) उन देवलोकोमें यथास्थान स्थित होकर अपनी २ योग्यता के अनुसार स्थिति को प्राप्तकर ( जक्खा-यक्षाः ) वे देव ( आउक्खये चुया-आयुःक्षये च्युताः ) वहां की आयु जब समाप्त हो जाती है तब वहाँसे च्यवकर ( माणुसं जोणि उवेत्ति-मानुषीं योनिं उपयान्ति ) मनुष्यभवसंबंधी योनिमें आ कर जन्म लेते हैं । वहां पर ( से-सः ) वह प्रत्येक जीव अपने पुण्यकर्मके अवशेष रह जाने से ( दसंगे भिजायए-दशाङ्गोऽभिजायते ) दश प्रकार के भोगोप-भोगों की सामग्रीवाला होता है ।

भावार्थ—उत्कृष्ट चारित्र की आराधना का फल स्वर्गादिकों में भोग चुकने के बाद जीव वहां की स्थिति समाप्त करते ही मनुष्य में उत्पन्न होकर यहां अवशिष्ट-बचे हुए पुण्य के उदय को भोगता है ।

अन्वयार्थ—तत्थ ठिच्चा-तत्र स्थित्वा ये देव लोकमां यथास्थान स्थित थधने पोत पोतानी योग्यता अनुसार स्थितिने प्राप्त करी जक्खाः-यक्षाः ते देव आउक्खये चुया-आयुःक्षये च्युताः त्यांनु आयुष्य न्यारे पूण्णं थधं नय छे त्यारे त्यांथी थ्यवीने माणुसं जोणि उवेत्ति-मानुषीं योनिउपयांति मनुष्य भवमां मनुष्य-योनीमां आवीने जन्म वे छे. अने त्यां से-सः ते प्रत्येक एव पोते पोतानां पुण्यकर्मनुं अवशेष रळी जवाथी दसंगे भिजायए-दशाङ्गोऽभिजायते दश प्रकारनां लोग उपलोगाना साधन संपन्नवाणा अने छे.

भावार्थ—उत्कृष्ट (उच्चतर) चारित्रनी आराधनाना इण स्वर्गादिकेमां लोगवी सुकथा पळी एव त्यांनी स्थिति पूण्णं थये मनुष्य योनीमां उत्पन्न

टीका—‘ खित्तं ’ इत्यादि ।

क्षेत्रं=ग्रामोद्यानादि, वास्तु=खातोच्छ्रित-तदुभयरूपं, तत्र खातं-भूमिगृहादि, उच्छ्रितं-प्रासादादि, तदुभयं भूमिगृहोपरिस्थः प्रासादः, हिरण्यं-सुवर्णम् उपलक्षणमेतद् रूप्यादीनामपि, पशवः=गोमहिषी गजतुरङ्गमादयः । दासपौरुषेयं=दासाः-चेटकश्चेट्यश्च, पौरुषेयाः=पुरुषाः पदातयश्च, एषां समाहारः दासपौरुषेयम् । एते चत्वारः=चतुःसंख्यकाः, अत्र क्षेत्रे वास्तु चेत्येकः, हिरण्यमिति द्वितीयः, पशव इति तृतीयः, दासपौरुषेयमिति चतुर्थः, कामस्कन्धाः-कामाः-काम्यन्ते अभिलष्यन्ते इति कामाः=कामभोगहेतवः, त एव स्कन्धाः=तत्तत्पुद्गलसमूहाः यत्र भवन्ति, तत्र-तेषु कुलेषु, स उपपद्यते-उत्पद्यते । अनेन एकमङ्गमुक्तम् । ‘ कामखंधाणि ’ इति प्राकृतत्वान्नपुंसकनिर्देशः ॥ १७ ॥

अथावशेषाणि नवाङ्गानि बोधयितुमाह—

वहां उसको दस १० प्रकार की भोगोपभोग की सामग्री प्राप्त होती है। उस को कोई न्यूनता नहीं रहती ॥ १६ ॥

उसी १० प्रकार की सामग्री को सूत्रकार इस गाथाद्वारा कहते हैं—  
‘ खित्तं ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(खित्तं-क्षेत्रम्) ग्राम, उद्यान आदि क्षेत्र (वत्थुं-वास्तु) वास्तु भूमिगृह आदि, उच्छ्रित-प्रासाद आदि, उभय-भूमिगृह और उसके उपर बना हुआ प्रासाद (हिरण्यं-हिरण्यम्) सुवर्ण-उपलक्षण से रूप्यादिक (पसवो-पशवः) गाय भैंस, हाथी घोडा आदि (दास पौरुसं-दास-पौरुषेयम्) चेटक चेट्टी, आदि दास, पदाति आदि पौरुषेय ये (चत्वारि-चत्वारः) चार-१ क्षेत्रवास्तु, २ हिरण्य, ३ पशु, ४ दास-पौरुषेय, तथा (कामखंधाणि-कामस्कन्धाः) कामभोगके हेतुरूप स्कंध-पुद्गलसमूह-जहां होते हैं ऐसे कुलों में वह जीव (उववज्जइ-उपपद्यते) उत्पन्न होता

थै त्वां अवशिष्ट अथेवा पुष्यना दश प्रकारनां लोणुपलोणनी सामग्री प्राप्त थाय छे, अने केरि प्रकारनी पोटा न्यूनता रहेती नथी ॥ १६ ॥

ये दश प्रकारनी सामग्रीने सूत्रकार आ गाथा द्वारा दर्शावे छे—खित्तं-धियादी.

अन्वयार्थ—खित्तं-क्षेत्रम् ग्राम उद्यान विगेरे क्षेत्र वत्थुं-वास्तु भूमिगृह आदि (१) उच्छ्रित (उंथा) प्रासाद (लवन) (२) उभय भूमिगृह अने तेना उपर अनेल प्रासाद-भंडालय (३) हिरण्यं-हिरण्यम् सुवर्ण उपलक्षणुथी रूप्यादिक पसवो-पशवः गाय, भैंस, हाथी, घोडा आदि. दास पौरुसं-दासपौरुषेयम् चेटक चेट्टी-आदि दास पदाति आदि पौरुषेय ये चत्वारि-चत्वारः चार क्षेत्र वस्तु, हिरण्य, पशु, दास-पौरुषेय-तथा कामखंधाणि-कामस्कन्धाः काम लोणना हेतु ३५ स्कंध-पुद्गल समूह ज्वां होय छे अथेवा कुणोभां ते एव उववज्जइ-उपपद्यते

મૂલમ્—મિત્તવં નાઈવં હોઈ, ઉચ્ચાગોૈ યં વર્ણવં ।

અપ્પાંયંકે મહાપણ્ણે અભિજાણે જસોં બલે ॥ ૧૮ ॥

છાયા—મિત્રવાન્ જ્ઞાતિમાન્, ભવતિ, ઉચ્ચૈર્ગોત્રશ્ચ વર્ણવાન્ ।

અલ્પાતઙ્કઃ મહાપ્રજ્ઞઃ. અભિજાતઃ યશસ્વી બલી ॥ ૧૮ ॥

ટીકા—‘મિત્તવં’ इत्यादि ।

સ મિત્રવાન્ ભવતીત્યન્વયઃ ૧, તથા—જ્ઞાતિમાન્ ભવતિ ૨ । એવમ્—ઉચ્ચૈર્ગોત્રઃ ઉચ્ચૈઃ=ઉત્કૃષ્ટં, ગોત્રં=કુલં યસ્ય સ તથા ૩ । તથા—વર્ણવાન્—શરીરે સદ્વર્ણયુક્તઃ રૂપલાવણ્યવાનિત્યર્થઃ ૪ । તથા—અલ્પાતઙ્કઃ=આતઙ્કરહિતઃ, અલ્પશબ્દોઽભાવાર્થકઃ । નૈરુજ્યવાનિત્યર્થઃ ૫ । તથા—મહાપ્રજ્ઞઃ—મહતી પ્રજ્ઞા યસ્ય સ તથા, પण्डित इत्यर्थः ૬ । તથા—અભિજાતઃ=વિનીતઃ ૭ । અત એવ યશસ્વી=હ્યાતિમાન્ ૮ । તથા—બલી=કાર્ય-કરણં પ્રતિ સામર્થ્યવાન્ ૯ । ‘જસો’ ‘બલે’ इत्युभयत्र सौत्रत्वान्मत्वर्थीयप्रत्य-यस्य लोपः ॥ ૧૮ ॥

है । यह प्रथम अंग है १ इस गाथामें प्रथम अंग कहा गया है ॥ १७ ॥

अवशिष्ट नौ अंग इस गाथा द्वारा स्पष्ट करते हैं—‘मिच्छवं’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—वह जीव (मिच्छवं-मित्रवान्) सन्मित्रोंसे युक्त होता है २ (नाइवं-ज्ञातिमान्) प्रशस्त जाति से संपन्न होता है ३ । (उच्चागोए य-उच्चैर्गोत्रश्च) उत्कृष्ट कुल वाला होता है ४ । (वर्णवं-वर्णवान्) शरीर में अच्छे वर्णवाला होता है—रूपलावण्य आदिसे संपन्न होता है ५ । (अप्पा-यंके-अल्पातंकः) रोगादिरहित होता है ६ । (महापण्णा-महाप्रज्ञः) विशिष्ट बुद्धिशाली होता है ७ । (अभिजाए-अभिजातः) विनीत होता है ८ । (जसो-यशस्वी) ह्याति से युक्त होता है ९ । (बले-बली) प्रत्येक कार्य को करने की शक्ति से संपन्न होता है १० । इस गाथा में अवशिष्ट नौ अंगों को समझाया है ॥ १८ ॥

ઉત્પન્ન થાય છે, આ પ્રથમ અંગ છે. ૧ આ ગાથામાં પ્રથમ અંગ કહેલ છે. ॥ ૧૭ ॥

અવશિષ્ટ નવ અંગ આ ગાથા દ્વારા સ્પષ્ટ કરવામાં આવેલ છે. મિત્તવં—ઈત્યાદિ.

અન્વયાર્થ—તે જીવ મિત્તવં-મિત્રવાન્ સન્મિત્રોથી (સારા મિત્રો)થી યુક્ત બને છે ૨. નાઈવં-જ્ઞાતિમાન્ પ્રશસ્ત જાતિ સંપન્ન હોય છે ૩. ઉચ્ચાગોૈ ય-ઉચ્ચૈર્ગોત્રશ્ચ ઉચ્ચા કુળવાળો હોય છે ૪. વર્ણવં-વર્ણવાન્ રૂપાળા શરીરવાળો હોય છે,—રૂપલાવણ્યથી ભરપૂર હોય છે ૫. અપ્પાયંકે-અલ્પાતંકઃ રોગ વગેરેથી મુક્ત હોય છે ૬, મહાપણ્ણા-મહાપ્રજ્ઞઃ વિશિષ્ટ બુદ્ધિશાળી હોય છે ૭, અભિજાણે-અભિજાતઃ વિનીત હોય છે ૮. જસો-યશસ્વી યશસ્વી હોય છે. બલે-બલી પ્રત્યેક કાર્ય કરવાની શક્તિવાળો હોય છે. આ ગાથામાં અવશિષ્ટ નવઅંગો સમજાવેલ છે ॥ ૧૮ ॥



मूलम्—भुच्चो माणुस्सए भोए, अप्पण्डिरूवे अहाउयम् ।

पुव्वं विसुद्धसद्धम्मे, केवलं बोहि बुज्झियां ॥१९॥

छाया—भुक्त्वा मानुष्यकान् भोगान्, अप्रतिरूपः यथायुष्कम् ।

पूर्वं विशुद्धसद्धर्मः, केवलां बोधिं बुद्ध्वा ॥ १९ ॥

टीका—‘ भुच्चा ’ इत्यादि ।

स अप्रतिरूपः=द्वितीयसदृशरहितः सन् यथायुः, आयुषोऽनतिक्रमेण, मानुष्यकान्=मनुष्यसम्बन्धिनः, भोगान्=अनुकूलशब्दादिविषयान् भुक्त्वा, पूर्व=पूर्वजन्मनि, विशुद्धसद्धर्मः=विशुद्धः=निदानरहितः, सद्धर्मः=शोभनधर्मो, यस्य स तथा, केवलां=निर्मलां बोधिं=सम्यक्तत्वं बुद्ध्वा=प्राप्य, अस्याग्रिमगाथायां सम्बन्धः॥१९॥

मूलम्—चउरंगं दुल्लहं नच्चा, संजमं पडिवज्जिया ।

तवसा धुयंकम्मसे, सिद्धे ह्वइ सासएत्ति<sup>१</sup> बेमि<sup>२</sup> ॥२०॥(युग्मं)

छाया—चतुरङ्गीं दुर्लभां ज्ञात्वा, संयमं प्रतिपद्य ।

तपसा धृतकर्मांशः, सिद्धो भवति शाश्वतः ॥ इति ब्रवीमि ॥२०॥

‘ भुच्चा ’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—वह जीव (अप्पण्डिरूवे-अप्रतिरूपः) निरुपम-उपमारहित वह (अहाउयं-यथायुष्कम्) जितनी आयुका बंध इस पर्यायका उसको हुआ है उतनी ही पूरी आयु तक (माणुस्सए भोए-मानुष्यकान् भोगान्) मनुष्यभवसंबंधी भोगों को (भुच्चा-भुक्त्वा) भोगकर (पुव्वं विसुद्धसद्धम्मे-पूर्वं विशुद्धसद्धर्मः) पूर्व जन्ममें निदान आदि से रहित होनेके कारण सद्धर्मशाली होता हुआ (केवलं-केवलाम्) केवल-निर्मल (बोहि-बोधिम्) सम्यक्त्वको (बुज्झिया-बुद्ध्वा) पाकर-‘चउरंगं’ इत्यादि ।

अन्वयार्थ—(दुल्लहं चउरंगं नच्चा-दुर्लभां चतुरङ्गीं ज्ञात्वा) दुर्लभ इस चतुरङ्गी को मनुष्यत्व, श्रुति, श्रद्धा और संयम में वीर्योल्लासको प्राप्तकर

भुच्चा-इत्यादि.

अन्वयार्थ—ते एव अप्पण्डिरूवे-अप्रतिरूपः निरुपम-उपमा रहित अहाउयं-यथायुष्कम् ते जेटला आयुष्येने अध तेने आ पर्यायने (मनुष्य भवने) थाय छे जेटला पूर्ण आयुष्य सुधी माणुस्सए भोए-मानुष्यकान् भोगान् मनुष्यभव संबंधी भोगोंने भुच्चा-भुक्त्वा भोगवीने पुव्वं विसुद्धसद्धम्मे-पूर्वं विशुद्धसद्धर्मः पूर्व जन्ममें निदान आदिसे रहित होवाना कारणे सद्धर्मशाली भवनेकेवलं-केवलाम् केवल निर्मल बोहि-बोधिम् सम्यक्त्वने प्राप्त करीने.चउरंगं-इत्यादि.

अन्वयार्थ—दुल्लहं चउरंगं नच्चा- दुर्लभांचतुरङ्गीं ज्ञात्वा आ दुर्लभ चतुरङ्गीने मनुष्यत्व, श्रुति, श्रद्धा अने संयममें प्रवृत्त भवी तथा संजमं पडिवज्जिया-संयमं

टीका—‘चउरंगं’ इत्यादि ।

दुर्लभां चतुरङ्गीं=मानुषत्वं, श्रुतिः, श्रद्धा, संयमे वीर्यं चेति चतुष्टयं ज्ञात्वा=प्राप्य, संयमं प्रतिपद्य=अङ्गीकृत्य, तपसा धूतकर्मांशः=अपनीतकर्मांशः शाश्वतः सिद्धो भवति ।  
सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिने प्रति तृतीयाध्ययनार्थमुक्त्वाऽन्ते प्राह—हे जम्बू ! इति  
=इदं भगवता यदुक्तं तदिदं ब्रवीमि, न तु स्व बुद्ध्या कल्पितं किञ्चित् कथयामि ॥२०॥

इति श्रीविश्वविख्यात-जगद्ब्रह्म-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषा-  
कलितललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-

वादिमानमर्दक-श्रीशाहूछत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-

“जैनशास्त्राचार्य”-पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु-

बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्य-

श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां श्रीमदुत्तराध्ययन-

सूत्रस्य प्रियदर्शिन्याख्यायां व्याख्यायां

चतुरङ्गीयनामकं तृतीयमध्ययनं

सम्पूर्णम् ॥ ३ ॥

के तथा (संजमं पडिवज्जिया-संयमं प्रतिपद्य) संयम को अंगीकार करके (नवसा धुयकम्मंसे-तपसा धूतकर्मांशः) एवं तप से अवशिष्ट कर्मांश को नष्ट करके (सासए सिद्धे हवइ-शाश्वतः सिद्धो भवति) शाश्वत सिद्ध हो जाता है ।

सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी के प्रति इस तृतीय अध्ययन के अर्थ को कह कर अन्त में उनसे कह रहे हैं कि-(त्तिबेमि-इति ब्रवीमि) हे जम्बू ! जो यह मैंने कहा है सो भगवान् के द्वारा कहा गया ही कहा है स्वबुद्धि से कल्पित कर नहीं कहा है ॥ २० ॥

॥ इस प्रकार उत्तराध्ययन सूत्रकी प्रियदर्शिनी टीका में यह चतुरङ्गीय नामक तृतीय अध्ययन का हिन्दी भाषानुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥३॥

प्रतिपद्य संयमने अंगिकार करीने तपसा धुयकम्मंसे-तपसा धूतकर्मांशः अने तपसी अवशिष्ट कर्मांशने नष्ट करीने सासए सिद्धे हवइ-शाश्वतः सिद्धो भवति शाश्वत सिद्ध थई नथ छे.

सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने आ त्रीला अध्ययननेो अर्थ कहीने अंतमां तेने कहे छे के, त्तिबेमि-इतिब्रवीमि छे जम्बू ! आ ने भे कहुं छे ते भगवाने ने इरमायुं छे ते ज भे कहुं छे, भारी पोतानी बुद्धिथी कल्पित अएवुं कांछ कहुं नथी. ॥१६॥२०॥

आ प्रकारे उत्तराध्ययननी प्रियदर्शिनी टीकांमां आ चतुरङ्गीय नामना त्रीला अध्ययननेो शुभराती अनुवाद सम्पूर्ण थयो. ॥ ३ ॥